पाणिनीयाऽष्टाध्यायीव्याख्याभूता

श्रीमद्वामन-जयादित्यविरचिता

काशिकावृत्तिः

'सोमलेखा'-हिन्दीव्याख्यायुताऽनेकोपयोगिविषयैरुपबृंहिता काशिकास्थ-सूत्र-वार्त्तिकेष्टि-फिट्सूत्र-गणसूत्र-परिभाषोणादिसूत्र-कारिको-दाहरण-प्रत्युदाहरणाद्यभूतपूर्वसूचीभिरलङ्कृता

• प. ईश्वरचन्द्र

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

॥ श्रीः ॥

व्रजजीवन प्राच्यभारती ग्रन्थमाला

१०७

पाणिनीयाऽष्टाध्यायीव्याख्याभूता

श्रीमद्वामन-जयादित्यविरचिता

काशिकावृत्तिः

'सोमलेखा'-हिन्दीव्याख्यायुताऽनेकोपयोगिविषयैरुपबृंहिता काशिकास्थ-सूत्र-वार्त्तिकेष्टि-फिट्सूत्र-गणसूत्र-परिभाषोणादिसूत्र-कारिको-दाहरण-प्रत्युदाहरणाद्यभूतपूर्वसूचीभिरलङ्कृता

तृतीयो भागः

[सप्तमाऽष्टमाऽध्यायात्मकः]

व्याख्याकारः

प. ईश्वरचन्द्रः

हरियाणाप्रदेशीय-भिवानीमण्डलान्तर्गत-भिवानीनगरस्थ-राजकीय-स्नातकोत्तर-महाविद्यालयीय-संस्कृत-विभागाऽध्यक्षः

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

दिल्ली

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रकाशक

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर

पो. बा. नं. 2113

दिल्ली 110007

दूरभाष : 23856391

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण संस्करण 2004 ई.

प्रथम भाग 325.00 • द्वितीय भाग 375.00

तृतीय भाग 325.00 • सम्पूर्ण (1-3 भाग) 1000.00

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन

पो. बा. नं. 1129, वाराणसी 221001

दूरभाष : 2335263, 2333371

❖

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक ऑफ बड़ौदा भवन के पीछे)

पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001

दूरभाष : 2420404

मुद्रक

ए.के. लिथोग्राफर्स, दिल्ली

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

THE
VRAJAJIWAN PRACHYABHARATI GRANTHAMALA
107

KĀŚIKĀVṚTTI

A COMMENTARY ON PĀṆINI'S AṢṬĀDHYĀYĪ

OF

VĀMANA & JAYĀDITYA

with 'Somalekhā' Hindi commentary and other valuable explanations and various indices i.e. Sūtra, Vārtika, Iṣṭi, Phiṭsūtra, Gaṇasūtra, Paribhāṣā, Uṇādisūtra, Kārikā and Examples

Part 3

[Adhyāyas 7-8]

By

Pt. Ishwar Chandra

Head, Dept. of Sanskrit
Govt. (P.G.) College, Bhiwani (Haryana)

CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN
DELHI

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Publishers :

© CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN
(Oriental Publishers & Distributors)
38 U.A. Bungalow Road, Jawahar Nagar
Post Box No. 2113
Delhi 110007
Tel. # 23956391

All Rights Reserved

First Edition 2004

Also can be had from :

CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN
K. 37/117, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1129
Varanasi 221001
Tel. # 2335263, 2333371

❖

CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
Chowk (Behind to Bank of Baroda Building)
Post Box No. 1069
Varanasi 221001
Tel. # 2420404

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

॥ श्रीः ॥

श्रीमद्वामन-जयादित्यविरचिता

पाणिनीयाष्टाध्यायीसूत्रवृत्तिः

काशिका

अथ

सप्तमाऽध्यायस्य प्रथमः पादः

(3177) युवोरनाकौ *1* (1247)

यु, वु–इत्येतयोरुत्सृष्टविशेषणयोरनुनासिकयणोः प्रत्ययोर्ग्रहणम्, तयोः स्थाने यथासङ्ख्यम् अन, अक–इत्येतावादेशौ भवतः। योरनः, वोरकः। नन्द्यादिभ्यो (3.1.134) ल्युः–नन्दनः। रमणः। सायमादिभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च (4.3.23)–सायन्तनः। चिरन्तनः। ण्वुल्तृचौ–कारकः। हारकः। 'वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन्' (4.3.98)–वासुदेवकः। अर्जुनकः। अनुनासिकयणोरिति किम्? 'ऊर्णाया युस्' (5.2.123) ऊर्णायुः। 'भुजिमृङ्भ्यां युक्त्युकौ' (उ०सू० 301)–भुज्युः, मृत्युरिति। एवमादीनां हि यणोऽनुनासिकत्वं न प्रतिज्ञायते, 'प्रतिज्ञानुनासिक्याः पाणिनीयाः' (व्या०प०)। इह 'युवोः' इति निर्देशाद् द्वन्द्वैकवद्भावपक्षे 'अनित्यमागमशासनम्' (व्या० प०) इति नुम् न क्रियते। नपुंसकलिङ्गता वा 'लिङ्गमशिष्यं लोकाश्रयत्वाल्लिङ्गस्य' (व्या०प०) इति न भवति। इतरेतरपक्षे तु छान्दसत्वाद् वर्णलोपो द्रष्टव्यः।

युवोश्चेद् द्वित्वनिर्देशो द्वित्वे यण् तु प्रसज्यते।
अथ चेदेकवद्भावः कथं पुंवद्भवेदयम्॥
द्वित्वे नैगमिको लोप एकत्वे नुमनित्यता।
अशिष्यत्वाद्धि लिङ्गस्य पुंस्त्वं वेह समाश्रितम्॥

अर्थ—विशेषणरहित तथा अनुनासिक यण्[1] वाले 'युँ' तथा 'वुँ' के स्थान पर यथासंख्य 'अन' तथा 'अक' आदेश होते हैं। ये आदेश अदन्त हैं। अनेकाल् होने से सर्वादेश हैं।

उदा० (क) नन्द्यादिभ्यो ल्युः—
(1) नन्दनः
नदि → नन्द् ल्यु—इदितो नुम् धातोः, लशक्वतद्धि०,
नन्द अन—सर्वादेश,
नन्दन—सु।

(2) रमणः
रम् ल्यु—पूर्ववत्,
रम् अन सु—णत्व।

(ख) सायमादि०—
(3) सायन्तनः
सायम् ट्यु—चुटू,
सायम् तु ट्यु—अन, अनुस्वार, परसवर्ण,
सायन्तन—सु।

(ग) ण्वुल्तृचौ—
(4) कारकः
कृ ण्वुल्—धातुसंज्ञा, धातोः, चुटू, हलन्त्यम्,
कृ अक—अचो ञ्णिति, उरण् रपरः,
कार् अक—सु।

1. प्रतिज्ञानुनासिक्याः पाणिनीयाः अर्थात् अद्यत्वे गुरुपरम्परया एव अनुनासिकता का ज्ञान होता है।

ऊर्णाया युस्—ऊर्णायुः। यहाँ 'युस्' में अनुनासिक यण् न होने से इसे 'अन' आदेश नहीं हुआ। इसी प्रकार भुज् तथा मृङ् धातुओं से यथासंख्य होने वाले उणादि प्रत्यय युक् और त्युक् भी अनुनासिक यण् वाले नहीं हैं। अतः इनके 'यु' को 'अन' नहीं होता है। यथा भुज् युक्—भुज्युः। मृत्युक्—मृत्युः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(5) हारकः
ह ण्वुल् सु—पूर्ववत्।

(घ) वासुदेवार्जुनाभ्यां—

(6) वासुदेवकः
वासुदेव वुन्—पूर्ववत्।

(7) अर्जुनकः (पूर्ववत्)।

अनुना०—अनुनासिक यण् वाले 'यु' तथा 'वु' के स्थान पर ही उक्त आदेश होते हैं।

(8) ऊर्णायुः
'ऊर्णाया युस्' से 'युस्' हुआ, जो अनुनासिक वाला नहीं है। 'अन' नहीं हुआ।

(9) भुज्युः
पूर्ववत्—द्र० पादटिप्पणी।

(10) मृत्युः
द्र०—पादटिप्पणी।

एवमा०—इस प्रकार के शब्दों के यणों का अनुनासिकत्व प्रतिज्ञात नहीं है। द्र०—प्रतिज्ञानुनासिक्याः पाणिनीयाः।

इह०—'युवोः' पद में व्याख्याकार एकवचन या द्विवचन दोनों की कल्पना करते हैं। एकवचन की दशा में एकवद् (समाहार) द्वन्द्व होकर 'युवुनः' ऐसा नुम् सहित रूप होना चाहिए था। परन्तु 'अनित्यम् आगमशासनम्' (परि०) के अनुसार आगम अनित्य होने से यहाँ अनिवार्य नहीं है। अतः सौत्र पुंस्त्व मानना चाहिए। अन्यत्र भी ऐसा ही देखा जाता है। द्र०—

ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः।

यदि द्विवचन माना जाय तो इतरेतर द्वन्द्व होगा। यथा—

युश्च वुश्च—युवू, तयोः युवयोः। अब वकार का लोप छान्दस मान लिया जाय तो 'युवोः' प्रयोग बन जाता है।

इसी प्रकार दोनों मत उचित है।

युवोश्छेद्०—यदि 'युवोः' पद में द्विवचन अर्थात् इतरेतर योग का निर्देश स्वीकार किया जाय तो यण् प्रसक्त होता है। यथा—युव्वोः।

अथ०—यदि यहाँ एकवद्भाव अर्थात् समाहार द्वन्द्व का निर्देश मान लिया जाय तो पुंस्त्व न होकर नपुंसकत्व होना चाहिए तथा नुम् होना चाहिये। यथा—युवुनः।

द्वित्वे०—इतरेतर योग के पक्ष में यण् लक्षण वकार का सूत्र के छान्दस होने से लोप होता है तथा समाहार पक्ष में आगम शासन के अनित्य होने से नुम् नहीं होता है।

इसके अतिरिक्त लिंग लोकाश्रित होता है, उसका शासन नहीं किया जा सकता। अतः यहाँ पुंस्त्व होता है।

सार यह है कि इतरेतर तथा समाहार—दोनों पक्ष उचित हैं।

(3178) आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम् *2* (475)

आयन्, एय्, ईन्, ईय्, इय्–इत्येते आदेशा भवन्ति यथासंख्यं फ, ढ, ख, छ, घ–इत्येतेषां प्रत्ययादीनाम्। 'फ' इत्येतस्यायनादेशो भवति–'नडादिभ्यः फक्' (4.1.99), नाडायनः, चारायणः। ढस्य एयादेशो भवति–'स्त्रीभ्यो ढक्' (4.1.130), सौपर्येणः, वैनतेयः। खस्य ईनादेशो भवति–'कुलात्खः' (4.1.139), आढ्यकुलीनः, श्रोत्रियकुलीनः। छस्य ईयादेशो भवति–'वृद्धाच्छः' (4.2.114), गार्गीयः, वात्सीयः। 'घ' इत्येतस्येयादेशो भवति–'क्षत्राद्घः' (4.1.138), क्षत्रियः। प्रत्ययग्रहणं किम्? फक्कति। ढौकते। खनति। छिनत्ति। घूर्णते। आदिग्रहणं किम्? ऊरुदघ्नम्। जानुदघ्नम्। एते आयन्नादयः प्रत्ययोपदेशकाल एव भवन्ति। कृतेष्वेतेषु प्रत्ययाद्युदात्तत्वं भवति। तथा च 'घच्छौ च' (4.4.117) इति घचश्छित्करणमर्थवद्भवति (म० भा०)। गाङ्गः, षण्ढः–इत्येवमादीनां हि 'उणादयो बहुलम्' (3.3.1) इति बहुलवचनादादेशा न भवन्ति। 'ऋतेरीयङ् इति' (3.1.29) वा वचनं ज्ञापकम्–धातुप्रत्ययानामादेशाभावस्य। 'एजेः खश्' (3.2.28) 'पदरुजविशस्पृशो घञ्' (3.3.16) इत्येवमादिषु तु इत्संज्ञया भवितव्यम्। तद्धितेषु हि खकारघकारयोरादेशवचनमवकाशवदितीत्संज्ञां बाधितुं नोत्सहते। आयन्नीनोर्नकारस्येत्संज्ञायां प्राप्तायां प्रतिविधातव्यम्, नित्कार्यं हि सम्भवति।

अर्थ—प्रत्यय के आदि में जो फ्, ढ्, ख्, छ् तथा घ्—इन्हें यथासंख्य करके आयन्, एय्, ईन्, ईय् तथा इय् आदेश होते हैं।

'फ' आदि में अकार उच्चारणार्थ है।

उदा० (क) फ आयन्—
(1) नाडायनः
नड फक्—नडादिभ्यः फक्,
नड आयन् अ सु—सवर्णदीर्घ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(2) चारायणः (पूर्ववत्)।

(ख) ढ एय्—

(3) सौपर्णेयः

सुपर्णा ढक्—स्त्रीभ्यो ढक्, हलन्त्यम्

सौपर्ण् एय् अ—आकारलोप, आदिवृद्धि, सु।

(4) वैनतेयः

विनता ढक्—पूर्ववत्।

(ग) ख ईन्–

(5) आढ्यकुलीनः

आढ्यकुल ख—कुलात्खः,

आढ्यकुल् ईन् अ—सु।

(6) श्रोत्रियकुलीनः (पूर्ववत्)।

(घ) छ ईय्–

(7) गार्गीयः

गर्गस्याऽपत्यम् — गार्ग्यः—गर्गादिभ्यो यञ्।

गार्ग्य छ—तस्येदम्, वृद्धाच्छः,

गार्ग्य् ईय् अ—यस्येति च,

गार्ग् ईय सु—आपत्यस्य च०।

(8) वात्सीयः (पूर्ववत्)।

(ङ) घ इय्—

(9) क्षत्रियः

क्षत्र घ—क्षत्राद्घः,

क्षत्र् इय् अ—सु।

प्रत्यय०—**प्रत्यय** के आदि में 'फ' आदि के स्थान पर 'आयन्' आदि आदेश होते हैं।

(10) फक्कति

फक्क् शप् तिप्—'फ' प्रत्ययादि नहीं है, अतः इसके स्थान पर 'आयन्' नहीं हुआ।

(11) ढौकते

पूर्ववत् ढकार के स्थान पर 'एय्' नहीं हुआ।

(12) खनति

'ईन्' नहीं हुआ।

(13) छिनत्ति

'ईय्' नहीं हुआ।

(14) घूर्णते—'इय्' न हुआ।

आदिग्रह०—प्रत्यय के आदि में जो 'फ' आदि, उनके स्थान पर ही 'आयन्' आदि होते हैं।

(15) ऊरुदघ्नम्

ऊरू प्रमाणमस्य—प्रमाणे द्वयसच्,

प्रत्यय के आदि में घकार नहीं है। अतः इयादेश नहीं हुआ।

(10) जानुदघ्नम् (पूर्ववत्)।

एते०—ये आयन् आदि आदेश उपदेश काल में ही होते हैं। उनके करने पर प्रत्यय की आद्युदात्तता होती है। तब 'घच्छौ च' से घच् को चित् करण सार्थक होता है।

शङ्ख०—'शङ्खः' तथा 'षण्ढः' शब्दों में 'उणादयो बहुलम्' में बहुलम् वचन से आयनादि आदेश नहीं होते हैं।

(17) शङ्खः

शम् खः—सु।

(18) षण्ढः

षण् → सण् ढ सु।

ऋतेरीयङ्०—धातु से जो 'फ' आदि प्रत्यय उन्हें 'आयन्' आदि आदेश नहीं होते हैं। यहाँ 'ऋतेरीयङ्' सूत्र ज्ञापक है। यदि धातु से उत्तर प्रत्यय को आयनादि आदेश होते तो 'ऋतेरीयङ्' के स्थान पर 'ऋतेश्छङ्' सूत्र होना चाहिए था। अतः यहाँ 'इयङ्' अंश व्यर्थ होकर ज्ञापित करता है कि धातु से उत्तर प्रत्यय के आदि में आयनादि आदेश नहीं होते हैं।

फलतः 'एजेः खश्' में 'खश्' के खकार की तथा 'पदरुजविशस्पृशो घञ्' में 'घञ्' के घकार की इत् सञ्ज्ञा होती है। यदि उन्हें आयनादि आदेश होते तो इनको इत् सञ्ज्ञा करना व्यर्थ हो जाता।

तद्धितेषु०—'आयन्' आदि आदेशों के अन्त्य वर्णों की 'हलन्त्यम्' से इत् सञ्ज्ञा प्राप्त होती है, परन्तु इनकी इत् सञ्ज्ञा नहीं होती। यहाँ 'प्राचार्यमवृद्धात् फिन् बहुलम्' सूत्र ज्ञापक है। 'फिन्' के नकार की इत्सञ्ज्ञा होकर 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' से आद्युदात्त होता है। यदि 'आयन्' के नकार की इत्सञ्ज्ञा होती तो फिन् को नित् करना व्यर्थ है। अतः यह 'फिन्' व्यर्थ होकर ज्ञापित करता है कि आयन् के नकार की इत् सञ्ज्ञा नहीं होती।

(3179) झोऽन्तः *3* (2169)

प्रत्ययग्रहणमनुवर्त्तते, आदिग्रहणं निवृत्तम्। प्रत्यया-वयवस्य झस्य 'अन्त' इत्ययमादेशो भवति। कुर्वन्ति। सुन्वन्ति। चिन्वन्ति। 'अद्य श्वो विजनिष्यमाणाः पतिभिः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सह शयान्तै' (वासि०गृ० 13.24)। 'जृविशिभ्यां झच्' (उ०सू० 406)-जरन्तः, वेशन्तः। 'प्रत्ययस्य' इत्येव-उज्झिता। उज्झितुम्। उज्झितव्यम्। अस्मिन्नप्यन्तादेशो कृते प्रत्ययाद्युदात्तत्वं भवति। तथा च-झचश्चित्करण-मर्थवद्भवति।

अर्थ—'प्रत्यय' पद का अनुवर्त्तन है। 'आदि' पद की निवृत्ति हो चुकी है। प्रत्यय के अवयव 'झ्' के स्थान पर 'अत्' आदेश होता है। 'अन्त' में अकार उच्चारणार्थ है।[1]

उदा० (1) कुर्वन्ति
कृ झि—तनादिकृञ्भ्य उः, झोऽन्तः,
कृ उ अन्ति—गुण, अत उत् सार्वधातुके,
कुर् उ अन्ति—यणादेश।

(2) सुन्वन्ति
षु → सु झि—धात्वादेः षः सः,
सु श्नु अन्ति—झोऽन्तः, शप् को बाध कर श्नु,
सुन्वन्ति—यण्।

(3) चिन्वन्ति (पूर्ववत्)।

(4) शयान्तै
शी लेट्—लिङर्थे लेट्,
शी आ झ—झ, लावस्था में ही 'लेटोऽडाटौ',
शे आ अन्त—गुण, झोऽन्तः,
शयान्ते—टित आत्मनेपदानां०,
शयान्तै—वैतोऽन्यत्र।

(5) जरन्तः
जृ झच्—जृविशिभ्यां०,
जर् अन्त सु—पूर्ववत्।

(6) वेशन्तः (पूर्ववत्)।

प्रत्यय०—प्रत्यय का अवयव जो 'झ्', उसके स्थान पर 'अन्त्' होता है।

(7) उज्झिता
उज्झ् तिप्—लुट्,
उज्झ् इ तास् डा—प्रत्यय का अवयव 'झ्' नहीं है। अतः 'अन्त्' आदेश नहीं हुआ।
उज्झिता—टिलोप।

(8) उज्झितुम्
उज्झ् तुमुन्—पूर्ववत्।

(9) उज्झितव्यम् (पूर्ववत्)।

अस्मिन्न—यहाँ भी अन्तादेश करने पर प्रत्ययलक्षण आद्युदात्त होता है। तब 'झच्' को चित्करण अर्थवान् होता है।

(3180) अदभ्यस्तात् *4* (2479)

अभ्यस्तादङ्गादुत्तरस्य झकारस्य 'अत्' इत्ययमादेशो भवति। ददति, ददतु। दधति, दधतु। जक्षति, जक्षतु। जाग्रति, जाग्रतु। अन्तादेशापवादोऽयम्, जुसादेशेन तु बाध्यते-अददुः, अदधुः, अजागरुः। अत्राप्यादेशे कृते प्रत्ययाद्युदात्तत्वं भवति।

अर्थ—अभ्यस्तसञ्ज्ञक शब्द से उत्तर प्रत्यय के आदि (अव्यवहित) झ् के स्थान पर 'अत्' आदेश होता है।

'अत्' के तकार की इत्सञ्ज्ञा का पूर्ववत् निषेध होता है।

उदा० (1) ददति
दा झि—लट्, शप्, श्लु,
द दा अति—अभ्यासकार्य,
द द् अति—श्नाऽभ्यस्तयोरातः।

(2) ददतु
दा झि—ददति—पूर्ववत्, लोट् में,
ददतु—एरुः।

(3) दधति
धा झि—पूर्ववत्।

(4) दधतु
लोट्, पूर्ववत्।

(5) जक्षति
जक्ष् झि—जक्षित्यादयः षट्, शेष पूर्ववत्।

(6) जक्षतु
जक्षति—पूर्ववत्,
जक्षतु—एरुः।

(7) जाग्रति
जाग्र् झि—शप्, शप् का लुक्,
जाग्रति—पूर्ववत्।

(8) जाग्रतु
लोट्, पूर्ववत्।

---

1. 'अन्त्' की 'विभक्तिश्च' से विभक्ति सञ्ज्ञा, 'हलन्त्यम्' से तकार की इत्सञ्ज्ञा की प्राप्ति, 'न विभक्तौ तुस्माः' से निषेध।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्तादेशा०—यह अन्त आदेश का अपवाद है। जुस् आदेश के द्वारा इसका बाध होता है।

(9) अदधुः
धा धा झि—लङ् शप्, श्लु, 'सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च' से 'जुस्',
द धा जुस्—अभ्यासकार्य,
अ द ध् उस्—'अदभ्यस्तात्' का बाध हुआ।

(10) अजक्षुः
जक्ष् झि—पूर्ववत् 'जस्',
अजक्ष् उस्—चुटू।

(11) अजागरुः
जागृ झि—जुस्, जागृ अङ्ग को जो गुण की प्राप्ति, उसका निषेध 'अविचिण्णल् ङित्सु' से हुआ,
जागर् उस्—'जुसि च' से गुण,
अजागर् उस्—अट्।

(3181) आत्मनेपदेष्वनतः *5* (2258)

आत्मनेपदेषु यो झकारस्तस्यानकारान्तादङ्गादुत्तरस्य 'अत्' इत्ययमादेशो भवति। चिन्वते। चिन्वताम्। अचिन्वत। पुनते। लुनते। लुनताम्। अलुनत। आत्मनेपदेष्विति किम्? चिन्वन्ति, लुनन्ति। अनत इति किम्? च्यवन्ते। प्लवन्ते। नित्यत्वादत्र विकरणे कृते झोऽन्तादेशेन भवितव्यमित्यदादेशो न भवति। अनकारान्तेनाङ्गेन झकारविशेषणं किम्? इह मा भूत्–'अद्य श्वो विजनिष्यमाणाः पतिभिः सह शयान्तै' (वासि०गृ० 13.24)।

अर्थ—आत्मनेपद में जो झकार, ऐसे झकार के स्थान पर 'अत्' आदेश होता है यदि ह्रस्व अकार से अतिरिक्त जो वर्ण, तदन्त अङ्ग से उत्तर वह 'झ्' हो।

उदा० (1) चिन्वते
चि झ → चि श्नु झ—शप् को बाध कर श्नु,
चिनि अत—'चिनु' अङ्ग अकारान्त नहीं है,
चिन्वते—'अचि श्नुधातु०' से इयङ्, हुश्नुवो०, यण्, एत्व।

(2) चिन्वताम्
चि श्नु झ—लोट्, शेष पूर्ववत्, आमेतः।

(3) अचिन्वत
चि श्नु झ—लङ्, शेष पूर्ववत्।

(4) पुनते
पू श्ना झ—शप् को बाध कर श्ना, ह्रस्व,
पु न् अत—आकारलोप, एत्व।

(5) लुनते (पूर्ववत्)।
(6) पुनताम् (पूर्ववत्)।
(7) अपुनत (पूर्ववत्)।
(8) लुनताम्
लोट्—पूर्ववत्।

(9) अलुनत
लङ्—पूर्ववत्।

आत्मने०—आत्मनेपद में जो झकार, उसके स्थान पर 'अत्' होता है।

(10) चिन्वन्ति
चि श्नु झि—आत्मनेपद नहीं है, झोऽन्तः,
चि नु अन्ति—यण्।

(11) लुनन्ति (पूर्ववत्)।

अनत०—ह्रस्व अकार से भिन्न वर्ण है अन्त में जिसके, ऐसे अङ्ग से उत्तर 'झ्' को 'अत्' होता है।

(12) च्यवन्ते
च्यव् शप् झ—'झ' आत्मनेपद में वर्त्तमान है परन्तु वह 'च्यव' इस अकारान्त अङ्ग से उत्तर है,
च्यवन्ते—'अत्' नहीं हुआ, झोऽन्तः, एत्व।

(13) प्लवन्ते (पूर्ववत्)।

नित्यत्वा०—नित्य होने से विकरण करने पर 'झोऽन्तः' से 'अन्त्' आदेश होना चाहिए। अतः 'अत्' आदेश नहीं होता है।

अनकारा०—अनकारान्त अङ्ग से अकार का विशेषण कहा गया है, ताकि निम्नलिखित में न हो—

(14) शयान्तै
शी आट् झ—लेट्, लेटोऽडाटौ, 'अन्त' आदेश होता है, 'अत्' नहीं।

(3182) शीङो रुट् *6* (2442)

शीङोऽङ्गादुत्तरस्य झादेशस्यातो रुडागमो भवति। शेरते। शेरताम्। अशेरत। रुडयं परादिः क्रियते, स यदि झकारस्यैव स्यात्, अदादेशो न स्यादिति, अत एवायमादेशस्यागमो विधीयते। सानुबन्धग्रहणमयङ्लुगर्थम्। तेनेह न भवति–व्यतिशेश्यते।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—शीङ् से उत्तर जो 'झ', उसके स्थान पर आदेशभूत 'अत्' को रुट् आगम होता है।

उदा० (1) शेरते
शी झ—शप् का लुक्, आत्मनेपदेष्वनतः,
शी रुट् अत—रुट् आगम,
शेरते—शीङः सार्वधातुके गुणः, एत्व।

(2) शेरताम्
शी झ—लोट्, शेष पूर्ववत्, आमेतः।

(3) अशेरत
लङ्—पूर्ववत्।

रुडयं०—रुट् आगम 'अत्' को होता है, न कि 'झ' प्रत्यय को। अतः 'अत्' को विभक्तिविपरिणाम से षष्ठ्यन्त बना लेते हैं।

यदि 'झ' को रुट् किया जाता तो 'अत्' आदेश नहीं होगा—
शी झ—शी रुट् झ—इस अवस्था में 'झ्' को 'अत्' आदेश प्राप्त नहीं होता है।

सानुबन्ध०—'शीङः' पद में ङकार अनुबन्ध के ग्रहण का प्रयोजन यह है कि यङ्लुक् में 'रुट्' नहीं होता है। यथा—

(4) व्यतिशेश्यते
वि अति शी यङ्—यङ् लुक्,
व्यति शी शी—प्रत्ययलक्षण से द्वित्व,
व्यतिशे शी झ—अत आदेश,
व्यतिशेश्यते—रुट् नहीं हुआ, यण्।

(3183) वेत्तेर्विभाषा *7* (2701)

वेत्तेरङ्गादुत्तरस्य झादेशस्यातो विभाषा रुडागमो भवति। संविद्रते, संविदते। संविद्रताम्, संविदताम्। समविद्रत, समविदत। वेत्तिरिति लुग्विकरणस्य ग्रहणम्, किम्? इह मा भूत्-विन्ते, विन्दाते, विन्दते इति।

अर्थ—विद् अङ्ग से उत्तर जो 'झ' प्रत्यय उसके स्थान पर हुआ जो 'अत्' आदेश, उसे विकल्प से रुट् आगम होता है।

उदा० (1) संविद्रते
सम् विद् झ—समो गम्यृच्छिभ्याम्,
सम् विद् रुट् अत—शप्, लुक्, अत्, रुट्,
संविद् र् अत—अनुस्वार, एत्व।

(2) संविदते
पक्ष में 'रुट्' नहीं हुआ।

(3) संविद्रताम्
लोट्, पाक्षिक रुट्।

(4) संविदताम्
पक्ष में रुट् नहीं हुआ।

(5) समविद्रत
लङ्, रुट्।

(6) समविदत
पक्ष में—रुट् नहीं हुआ।

वेत्तिरि०—सूत्र में 'वेत्ते' इस प्रकार विकरण का लुक् करके ग्रहण किया गया है। इसका प्रयोजन यह है कि आदादिक विद् धातु का ही यहाँ ग्रहण इष्ट है।

(7) विन्ते
विद् त—शप् को बाध कर श्नम्,
वि न द् त—अकारलोप,
विन्ते—खरि च, एत्व।

(8) विन्दाते
वि श्नम् द् आताम्—प्र०पु० द्विवचन,
विन्दाते—अकारलोप।

(9) विन्दते
वि न द् झ—'अत' आदेश,
विन्द् अत—अकारलोप,
विन्दते—एत्व।

(3184) बहुलं छन्दसि *8* (3557)

छन्दसि विषये बहुलं रुडागमो भवति। देवा अदुह्र। 'गन्धर्वा अप्सरसो अदुह्र' (मै० 4.2.13)। दुहेर्लङि झकारस्यादादेशे कृते रुट्। 'लोपस्त आत्मनेपदेषु' (7.1.41) इति तकारलोपः। न च भवति-अदुहत। बहुलवचनादन्यत्रापि भवति-अदृंश्रन्नस्य केतवः (ऋ० 1.50.3)। 'ऋदृशोऽङि गुणः' (7.4.16) इत्येतदपि बहुलवचनादेवात्र न भवति।

अर्थ—'झ्' को आदेशभूत 'अत्' को 'रुट्' आगम बहुलता से होता है, वेद के विषय में।

उदा० (1) अदुह्र (मै०सं० 4.2.13)
दुह् झ—शप्, लुक्,
दु ह् र् अत् अ—'अत्' आदेश, रुट्,
अ दु ह्र् अ अ—लोपस्त आत्मने०, अतो गुणे, अट्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(2) अदुहत
पक्ष में रुट् नहीं हुआ।

बहुल०—'बहुलम्' पाठ होने से सूत्रोक्त विषय से अन्यत्र विषय में भी सूत्र की प्रवृत्ति होती है।

(3) अदृश्रन् (ऋ० 5.3.11; 7.76.2; मा०सं० 16.7)
दृश् च्लि अन्ति—लुङ्, झोऽन्तः,
दृश् अङ् अन्त्—इरितो वा, इतश्च,
दृश् रुट् अ अन्त्—रुट्,
दृ श्र अन्—संयोगान्तलोप,
अदृश्रन्—अतो गुणे

यहाँ न तो 'झ' है तथा न ही उसका आदेशभूत 'अत्' आदेश है, तदपि बहुलवचन से रुट् हुआ है।

विशेष—वेद में अदृश्रन्[1] तथा अदृश्रम्[2] दोनों प्रकार के रूप प्राप्त होते हैं। काशिकाकार[3] तथा न्यासकार[4] ने 'अदृश्रन्' उदाहरण दिया है तथा पदमञ्जरीकार[5], भट्टोजिदीक्षित[6] एवं वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी (वैदिकी प्रक्रिया) के सुबोधिनी टीकाकार[7] ने 'अदृश्रम्' उदाहरण माना है।

(3185) अतो भिस ऐस् *9* (203)

अकारान्तादङ्गादुत्तरस्य भिस ऐसित्ययमादेशो भवति। वृक्षैः। प्लक्षैः। अतिजरसैः। जरामतिक्रान्तैरिति विगृह्य समासे कृते ह्रस्वत्वे च भिस ऐसादेशो भवति। 'एकदेशविकृतमनन्यवद्भवति' (व्या०प०) इति जरशब्दस्य जरसादेशः। 'सन्निपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्य' (3.1.14) इति परिभाषेयमनित्या; 'कष्टाय क्रमणे' (व्या०प०) इति निर्देशात्। अत इति किम्? अग्निभिः। वायुभिः। तपरकरणं किम्? खट्वाभिः। मालाभिः।

एत्वं भिसि परत्वाच्चेदत एस् क्व भविष्यति।
कृतेऽप्येत्वे भौतपूर्व्यादिस्तु नित्यस्तथा सति।। (म० भा०)
'अतः' इत्यधिकारः–'जसः शी' (7.1.17) इति यावत्।

1. ऋ० 5.3.11; 7.76.2; मा०सं० 16.7
2. ऋ० 1.5०.3
3. काशि० 7.1.8
4. न्यास० 7.1.8
5. पदम० 7.1.8
6. वै०सि०कौ० सूत्र 3557
7. सुबो (वै०सि०कौ० सूत्र 3557)....लुङ्, व्यत्ययेन प्रथमपुरुष-बहुवचनस्थान उत्तमपुरुषैकवचनं मिप्।

अर्थ—ह्रस्व अकारान्त अङ्ग से उत्तर जो भिस् प्रत्यय, उसके स्थान पर 'ऐस्' आदेश होता है। 'न विभक्तौ तुस्माः' से सकार की इत्संज्ञा का निषेध होता है।

उदा० (1) वृक्षैः
वृक्ष भिस्—ऐस् आदेश,
वृक्ष ऐस्—सर्वादेश, वृद्धिरेचि।

(2) प्लक्षैः (पूर्ववत्)।
(3) अतिजरसैः (पूर्ववत्)।

जरामति०—जरामतिक्रान्तः तैः—इस प्रकार विग्रह करके 'कुगतिप्रादयः' से समास, 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' से ह्रस्व, तब ऐस् आदेश होता है। एकदेशविकृतमनन्य०' परिभाषा के द्वारा जर शब्द को जरस् आदेश होता है।

सन्निपात०—(शङ्का) यहाँ सन्निपातलक्षण परिभाषा से 'जर' के स्थान पर 'जरस्' नहीं होता। 'जर' इस अकारान्त को निमित्त मानकर 'भिस्' के स्थान पर 'ऐस्' यह अजादि आदेश होता है, यही आदेश 'जर' के स्थान पर 'जरस्' आदेश करने में निमित्त नहीं बन सकता।

(समा०) सन्निपातलक्षण परिभाषा अनित्य है। यहाँ 'कष्टाय क्रमणे' सूत्र ज्ञापक है। 'य' आदेश अकारान्त अङ्ग लक्षण विधि है। वह 'सुपि च' से दीर्घ होता है तथा अकारान्तता के विघात का निमित्त नहीं होना चाहिए। यहाँ दीर्घ नहीं होना चाहिये था, परन्तु दीर्घ हो गया है। अतः यह व्यर्थ होकर ज्ञापित करता है कि उक्त परिभाषा अनित्य है।

अत०—**ह्रस्व अवर्णान्त** अङ्ग से उत्तर 'भिस्' को 'ऐस्' होता है।

(4) अग्निभिः
अग्नि भिस्—'ऐस्' नहीं हुआ।
(5) वायुभिः (पूर्ववत्)।

तपर०—**ह्रस्व** अकारान्त अङ्ग से उत्तर 'भिस्' के स्थान पर 'ऐस्' होता है।

(6) खट्वाभिः
खट्वा भिस्—अवर्णान्त अङ्ग है परन्तु ह्रस्वान्त नहीं है; अतः 'ऐस्' नहीं हुआ।

(7) मालाभिः (पूर्ववत्)।

एत्वं०—(शङ्का) वृक्ष भिस्—इस दशा में प्रकृत सूत्र से 'भिस्' के स्थान पर 'ऐस्' आदेश तथा 'बहुवचने झल्येत्'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(7.3.103) से एत्व—दोनों की युगपत् प्राप्ति होती है। परकार्य के बलवान् होने से प्रथम एत्व करके पश्चात् भूतपूर्व अकारान्तता का आश्रयण कर 'भिस्' को 'ऐस्' हो जाता है। अतः एत्व ही करना चाहिये; ऐस् नहीं।

(समा०) यदि (परवर्ती) एत्व करेंगे तो अकारान्त अङ्ग के क्वचिदपि प्राप्त न रहने से ऐस् सम्भव नहीं होगा। यदि भूतपूर्व अकारान्तता का आश्रयण करके ऐस्त्व की प्राप्ति मान ली जाय तो भी यह (अर्थात् एत्व) व्यर्थ है। कारण कि एत्व करना तथा एत्व न करना—इन दोनों स्थितियों में ऐस्त्व की प्राप्ति हो ही जायेगी। तब 'कृताकृतप्रसङ्गी नित्य होता है' इस परिभाषा से ऐस्त्व ही होगा। इसलिए परवर्ती एत्व को बाध कर ऐस् आदेश करना चाहिए। 'अतः' पद का अधिकार 'जसः शी' पर्यन्त चलता है।

विशेष—लोक में प्राप्त निम्नलिखित आर्ष प्रयोग दर्शनीय हैं—

तैः, तेभिः (बौ०ध०सू० 16.32) इमैः (चरकसंहिता—चि० 21.127) भा० 1.129.23

(3186) बहुलं छन्दसि *10* (3558)

छन्दसि विषये बहुलमैसादेशो भवति। अत इत्युक्तम्, अनतोऽपि भवति—नद्यैरिति। अतो न भवति—देवेभिः सर्वेभिः प्रोक्तमिति।

अर्थ—ह्रस्व अकारान्त अङ्ग से उत्तर 'भिस्' के स्थान पर बहुलता से 'ऐस्' आदेश होता है, वेद के विषय में। अकारान्त अङ्ग से उत्तर 'भिस्' को 'ऐस्' कहा गया है। अतः अकारान्त से भिन्न अङ्ग से उत्तर भी 'ऐस्' प्राप्त होता है।

(1) नद्यैः[1]

नदी भिस् → नदी ऐस्।

(2) देवेभिः

देव भिस्—अकारान्त अङ्ग से उत्तर 'भिस्' के स्थान पर बाहुलकात् 'ऐस्' नहीं हुआ,

देवे भिस्—बहुवचने झल्येत्।

(3187) नेदमदसोरकोः *11* (349)

इदम्, अदस्—इत्येतयोरककारयोर्भिस ऐस्न भवति। एभिः। अमीभिः। अकोरिति किम्? इमकैः। अमुकैः। अकोरित्येतदेव प्रतिषेधवचनं ज्ञापकम्—'तन्मध्यपतितस्तद्-ग्रहणेन गृह्यते' (व्या०प०) इति। 'इदमदसोः कात्' इति नोक्तम्, विपरीतोऽपि नियमः सम्भाव्येत—इदमदसोरेव कादिति। ततश्चेह न स्यात्—सर्वकैः, विश्वकैः। इह च स्यादेव—एभिः, अमीभिः। प्रतिषेधकरणं विपरीतनियम-निवृत्त्यर्थम्।

अर्थ—ककाररहित जो इदम् और अदस् शब्द, इनसे उत्तर 'भिस्' के स्थान पर 'ऐस्' आदेश नहीं होता है।

उदा० (1) एभिः

इदम् भिस् → इद अ भिस्—त्यदादीनामः,

इद् भिस्—अतो गुणे,

अ भिस्—हलि लोपः, व्यपदेशिवद्भाव से 'अतो भिस ऐस्' से ऐस्त्व की प्राप्ति, प्रकृत सूत्र से निषेध,

ए भिस्—बहुवचने झल्येत्।

(2) अमीभिः

अदस् भिस् → अद अ भिस्—त्यदादीनामः,

अद भिस्—पूर्ववत् पररूप, ऐस्त्व का निषेध,

अदे भिस्—बहुवचने झल्येत्,

अमीभिस्—एत ईद् बहुवचने।

अकोरि०—**ककाररहित** इदम् तथा अदस् शब्दों से उत्तर 'भिस्' को 'ऐस्' होता है।

(3) इमकैः

ककार से युक्त 'इदम्' शब्द है। इससे उत्तर 'भिस्' को 'ऐस्' का निषेध नहीं हुआ।

(4) अमुकैः

पूर्ववत् निषेध नहीं हुआ।

अकोरित्य०—ककाररहित इदम् व अदस् शब्दों से उत्तर 'भिस्'को 'ऐस्' आदेश के निषेध से ज्ञापित होता है कि उसके मध्य में पतित का उसके ग्रहण से ग्रहण हो जाता है।

इदम०—(शङ्का) प्रकृत सूत्र के स्थान पर 'इदमसोः कात्' ऐसा पाठ करने से लाघव होता है।

(समा०) ऐसा पाठ करने से निम्नलिखित स्थलों पर दोष प्रसक्त होता है—

(5) सर्वकैः

'सर्वक' शब्द ककारयुक्त है; 'इदमदसोः कात्' इस पाठ की

1. 'अतो भिस ऐस्' (7.1.9) के स्थान पर 'अतो भिस एस्' इस पाठ में मात्रालाघव होता है तथा इष्टसिद्धि भी हो जाती है। परन्तु 'एस्' न करके 'ऐस्' के विधान का प्रयोजन 'नद्यैः' आदि रूपों में स्पष्ट हो जाता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दशा में, इससे पर 'भिस्' के स्थान पर 'ऐस्' प्राप्त नहीं होता है। ककारयुक्त इदम् व अदस् से पर 'भिस्' को ही 'ऐस्' हो पायेगा। अतः विधि की अपेक्षा निषेध (नेदमदसोरकोः) करना पड़ता।

(6) विश्वकैः
यहाँ पूर्ववत् दोष प्रसक्त होता है।

(7) एभिः
'इदमदसोः कात्' इस विधिनिर्देश की दशा में यहाँ 'भिस्' के स्थान पर 'ऐस्' प्राप्त होकर अनिष्ट रूप की प्राप्ति होती है। अतः निषेध-निर्देशयुक्त सूत्रपाठ उचित है।

(8) अमीभिः
पूर्ववत् दोष प्रसक्त होता है।

(3188) टाङसिङसामिनात्स्याः *12* (201)

अकारान्तादङ्गादुत्तरेषां टाङसिङसाम् इन, आत्, स्य–इत्येते आदेशा भवन्ति यथासंख्यम्। 'टा' इत्येतस्येनादेशो भवति–वृक्षेण, प्लक्षेण। 'ङसि' इत्येतस्य आत्–वृक्षात्, प्लक्षात्। 'ङस्' इत्येतस्य स्यादेशो भवति–वृक्षस्य, प्लक्षस्य। अत इति किम्? सख्या। पत्या। अतिजरसिना, अतिजरसादिति केचिदिच्छन्ति। यथा तु भाष्ये, तथा नैतदिष्यत इति लक्ष्यते।

अर्थ—अदन्त अङ्ग से उत्तर टा, ङसि तथा ङस्—इन विभक्तियों के स्थान पर यथासंख्य इन, आत् और स्य आदेश होते हैं।

उदा० (1) वृक्षेण
वृक्ष टा—'इन' आदेश,
वृक्षेन—आद् गुणः, अट्कुप्वाङ्०।

(2) प्लक्षेण (पूर्ववत्)।

(3) वृक्षात्
वृक्ष ङसि—'आत्' हुआ।

(4) प्लक्षात् (पूर्ववत्)।

(5) वृक्षस्य
वृक्ष ङस्—'स्य' हुआ।

(6) प्लक्षस्य (पूर्ववत्)।

अत०—अदन्त अङ्ग से उत्तर ये सूत्रोक्त आदेश होते हैं।

(7) सख्या
सखि टा—यहाँ 'इन' नहीं हुआ।

(8) पत्या (पूर्ववत्)।

अतिजर०—कुछ विद्वान् निम्नलिखित स्थलों पर भी 'इन' आदि आदेश स्वीकार करते हैं—

(9) अतिजरसिना
अतिजरस् टा—'इन' हुआ।

(10) अतिजरसात्
'ङसि' को 'आत्' हुआ।
परन्तु जैसा भाष्य में है, उससे तो उक्त रूप इष्ट नहीं है, ऐसा लक्षित होता है।

(3189) ङेर्यः *13* (204)

'ङेः' इति चतुर्थ्येकवचनस्य ग्रहणम्। अकारान्तादङ्गादुत्तरस्य 'ङे' इत्येतस्य 'य' इत्ययमादेशो भवति। वृक्षाय। प्लक्षाय। अत इति किम्? सख्ये, पत्ये। 'सन्निपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्य' (व्या०प०) इति परिभाषेयमनित्या, तेन दीर्घो भवति।

अर्थ—'ङे' के द्वारा चतुर्थी एकवचन का ग्रहण होता है। अदन्त अङ्ग से उत्तर 'ङे' के स्थान पर 'य' आदेश होता है।

उदा० (1) वृक्षाय
वृक्ष ङे → वृक्ष य—स्थानिवत् हुआ, सुपि च।

(2) प्लक्षाय (पूर्ववत्)।

अत०—अदन्त से उत्तर 'ङे' को 'य' होता है।

(3) सख्ये
यहाँ 'य' नहीं हुआ। यण् हुआ।

(4) पत्ये (पूर्ववत्)

सन्निपात०—सन्निपातलक्षण परिभाषा अनित्य होती है। अतः दीर्घ होता है।

(3190) सर्वनाम्नः स्मै *14* (215)

अकारान्तात्सर्वनाम्न उत्तरस्य ङेः 'स्मै' इत्ययमादेशो भवति। सर्वस्मै। विश्वस्मै। यस्मै। कस्मै। तस्मै। 'अतः' इत्येव–भवते। अथो अत्रास्मै–इत्यन्वादेशेऽशादेशे (2.4.32) एकादेशः प्राप्नोति? तत्रान्तरङ्गत्वादेकादेशात्पूर्वं स्मैभावः क्रियते, पश्चादेकादेश इति।

अर्थ—अदन्त सर्वनाम अङ्ग से उत्तर 'ङे' के स्थान पर 'स्मै' आदेश होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उदा० (1) सर्वस्मै
सर्व ङे—चतुर्थी एकवचन,
सर्व स्मै—'स्मै' आदेश।

(2) विश्वस्मै (पूर्ववत्)।

(3) यस्मै
यद् ङे—त्यदादीनामः,
य अ ङे—अतो गुणे,
य स्मै—आदेश।

(4) कस्मै
किम् ङे—पूर्ववत्।

(5) तस्मै
तद् ङे—पूर्ववत्।

अत०—अदन्त सर्वनाम अङ्ग से उत्तर ही 'ङे' को 'स्मै' होता है।

(6) भवते
भवत् ङे—सर्वनाम अङ्ग है परन्तु अदन्त नहीं है; अतः 'स्मै' नहीं हुआ।

अथो०—अथो 'अत्राऽस्मै' यहाँ अन्वादेश में 'अत्र इदम् ङे' इस दशा में प्रथम 'इदमोऽन्वादेशे' से अश् आदेश करने पर 'अत्र अश् ङे' यह स्थिति होती है। तब सवर्णदीर्घ एकादेश प्राप्त होता है। अन्तरङ्ग होने से प्रथम 'अ' अन्तादेश (त्यदादीनामः) तथा पररूप (अतो गुणे) करके पश्चात् सवर्णदीर्घ किया जाता है।

(3191) ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ *15* (216)

ङसि, ङि-इत्येतयोरकारान्तात् सर्वनाम्न उत्तरयोः स्मात्, स्मिन्-इत्येतावादेशौ भवतः। ङसीत्येतस्य 'स्मात्'-सर्वस्मात्, विश्वस्मात्, यस्मात्, तस्मात्, कस्मात्। ङीत्येतस्य 'स्मिन्'-सर्वस्मिन्, विश्वस्मिन्, यस्मिन्, तस्मिन्, अन्यस्मिन्। अत इत्येव-भवतः। भवति। सर्वनाम्न इत्येव-वृक्षात्। वृक्षे।

अर्थ—अदन्त सर्वनाम अङ्ग से उत्तर 'ङसि' और 'ङि' विभक्तियों के स्थान पर यथासंख्य 'स्मात्' तथा 'स्मिन्' आदेश होता है।

उदा० (1) सर्वस्मात्
सर्व ङसि—पञ्चमी एकवचन,
सर्वस्मात्—'स्मात्' आदेश।

(2) विश्वस्मात् (पूर्ववत्)।

(3) यस्मात्
यद् ङसि—त्यदादीनामः, अतो गुणे,
यस्मात्—पूर्ववत्।

(4) तस्मात्
तद् ङसि—यस्मात् की तरह।

(5) कस्मात्
किम् ङसि—पूर्ववत्।

(6) सर्वस्मिन्,
सर्व ङि → सर्वस्मिन्।

(7) विश्वस्मिन् (पूर्ववत्)।

(8) यस्मिन्
यद् स्मिन् → य अ स्मिन्।

(9) तस्मिन् (पूर्ववत्)।

(10) अन्यस्मिन् (पूर्ववत्)।

अत०—अदन्त सर्वनाम से उत्तर ङसि व ङि के स्थान पर सूत्रोक्त आदेश होते हैं।

(11) भवतः
भवत् ङसि।

(12) भवति
भवत् ङि।

सर्वनाम्न०—सर्वनाम अङ्ग से उत्तर ङसि व ङि के स्थान पर सूत्रोक्त आदेश होते हैं।

(13) वृक्षात्
वृक्ष ङसि—'वृक्ष' अदन्त है, सर्वनाम नहीं, 'स्मात्' नहीं हुआ,
वृक्ष आत्—टाङसिङसामि०।

(14) वृक्षे
वृक्ष ङि—'स्मिन्' नहीं हुआ। आद् गुणः।

(3192) पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा *16* (221)

पूर्वादिभ्यो नवभ्यः सर्वनाम्न उत्तरयोर्ङसिङ्योः स्मात्, स्मिन्-इत्येतावादेशौ वा भवतः। पूर्वस्मात्, पूर्वात्। पूर्वस्मिन्, पूर्वे। परस्मात्, परात्। परस्मिन्, परे। अवरस्मात्, अवरात्। अवरस्मिन्, अवरे। दक्षिणस्मात्, दक्षिणात्। दक्षिणस्मिन्, दक्षिणे। उत्तरस्मात्, उत्तरात्। उत्तरस्मिन्, उत्तरे। अपरस्मात्, अपरात्। अपरस्मिन्, अपरे। अधर-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्मात्, अधरात्। अधरस्मिन्, अधरे। स्वस्मात्, स्वात्। स्वस्मिन्, स्वे। अन्तरस्मात्, अन्तरात्। अन्तरस्मिन्, अन्तरे। नवभ्यः इति किम्? त्यस्मात्। त्यस्मिन्।

अर्थ—'पूर्व' आदि नौ अदन्त अङ्गों से उत्तर ङसि व ङि के स्थान पर विकल्प से यथासंख्य स्मात् व स्मिन् होते हैं।

उदा० (1) पूर्वस्मात्
पूर्व ङसि—'स्मात्' हुआ।

(2) पूर्वात्
पक्ष में 'स्मात्' नहीं हुआ।

(3) पूर्वस्मिन्
पूर्व ङि—'स्मिन्' हुआ।

(4) पूर्वे
पक्ष में नहीं हुआ।

(5) परस्मात्
'स्मात्' पक्ष।

(6) परात्
'स्मात्' अभाव पक्ष।

(7) परस्मिन्
'स्मिन्' पक्ष।

(8) परे
'स्मिन्' अभाव पक्ष।

(9) अवरस्मात्
'स्मात्' पक्ष।

(10) अवरात्
'स्मात्' अभाव पक्ष।

(11) अवरस्मिन्
'स्मिन्' 'पक्ष'।

(12) अवरे
अभाव पक्ष।

(13) दक्षिणस्मात्
'स्मात्' पक्ष।

(14) दक्षिणात्
अभाव पक्ष।

(15) दक्षिणस्मिन्
'स्मिन्' पक्ष।

(16) दक्षिणे
अभाव पक्ष।

(17) उत्तरस्मात्
'स्मात्' पक्ष।

(18) उत्तरात्
अभाव पक्ष।

(19) उत्तरस्मिन्
'स्मिन्' पक्ष।

(20) उत्तरे
अभाव पक्ष।

(21) अपरस्मात्
'स्मात्' पक्ष।

(22) अपरात्
अभाव पक्ष।

(23) अपरस्मिन्
'स्मिन्' पक्ष।

(24) अपरे
अभाव पक्ष।

(25) अधरस्मात्
'स्मात्' पक्ष।

(26) अधरात्
अभाव पक्ष।

(27) अधरस्मिन्
'स्मिन्' पक्ष।

(28) अधरे
अभाव पक्ष।

(29) स्वस्मात्
'स्मात्' पक्ष।

(30) स्वात्
अभाव पक्ष।

(31) स्वस्मिन्
'स्मिन्' पक्ष।

(32) स्वे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अभाव पक्ष।

(33) अन्तरस्मात्
'स्मात्' पक्ष।

(34) अन्तरात्
अभाव पक्ष।

(35) अन्तरस्मिन्
'स्मिन्' पक्ष।

(36) अन्तरे
अभाव पक्ष।

नवभ्य०—नौ से ही उत्तर जो ङसि व ङि, उनके स्थान पर विकल्प से यथासंख्य 'स्मात्' व 'स्मिन्' होते हैं।

(37) त्यस्मात्
त्यद् ङसि—पूर्व आदि नौ में त्यद् परिगणित नहीं है, अतः विकल्प नहीं हुआ।

(38) त्यस्मिन् (पूर्ववत्)।

(3193) जसः शी *17* (214)

अकारान्तात्सर्वनाम्न उत्तरस्य जसः 'शी' इत्ययमादेशो भवति। सर्वे। विश्वे। ये। के। ते। दीर्घोच्चारणमुत्तरार्थम्–त्रपुणी। जतुनी।

अर्थ—अदन्त सर्वनाम अङ्ग से उत्तर 'जस्' को 'शी' आदेश होता है।

उदा० (1) सर्वे
सर्व जस्—जसः शी,
सर्व शी—चूँकि आदेश के समय 'शी' प्रत्यय सञ्ज्ञा नहीं है, आदेश के पश्चात् स्थानिवद्भाव से प्रत्ययसञ्ज्ञा होती है। तब प्रत्ययसञ्ज्ञा के अभाव में 'लशक्वतद्धिते' की प्रवृत्ति नहीं होती है, तब अनेकाल्त्व के कारण सर्वादेश होता है, न कि शित् होने के कारण,
सर्व ई—स्थानिवद्भाव से प्रत्ययसञ्ज्ञा, लशक्वतद्धिते,
सर्वे—आद् गुणः
(2) विश्वे (पूर्ववत्)।
(3) ये
यद् जस्—य अ जस्—य शी—शेष पूर्ववत्।
(4) के
किम् जस्—पूर्ववत्।
(5) ते
तद् जस्—पूर्ववत्।

दीर्घो०—'सर्व शी' यहाँ गुण करना इष्ट है। 'शि' करने पर भी गुण सिद्ध हो जाता है। अतः 'शी' के स्थान पर 'शि' का पाठ करने में लाघव होता है।

(समा०) 'सर्वे' आदि स्थलों पर 'शी' अथवा 'शि' करने से कोई अन्तर नहीं पड़ता है, परन्तु प्रकृत सूत्र में 'शी' यह दीर्घनिर्देश उत्तरवर्त्ती शास्त्र (अर्थात् 'मधुनी' आदि स्थलों) के लिए है।

(6) त्रपुणी
त्रपु औङ्—नपुंसकाच्च,
त्रपु शी—नुम्, लशक्वतद्धिते,
त्रपु न् ई—णत्व।

(7) जतुनी (पूर्ववत्)।

(3194) औङ आपः *18* (287)

आबन्तादङ्गादुत्तरस्यौङः 'शी' इत्ययमादेशो भवति। खट्वे तिष्ठतः। खट्वे पश्य। बहुराजे। कारीषगन्ध्ये। ङकारः सामान्यग्रहणार्थः–औटोऽपि ग्रहणं यथा स्यात्।

औकारोऽयं शीविधौ ङिद्गृहीतो
ङिच्चास्माकं नास्ति कोऽयं प्रकारः।
सामान्यार्थः तस्य चासङ्गनेऽस्मिन्
ङित्कार्यं ते श्यां प्रसक्तं स दोषः॥
ङित्त्वे विद्याद्वर्णनिर्देशमात्रं
वर्णे यत्स्यात्तच्च विद्यात्तदादौ।
वर्णश्चायं तेन ङित्त्वेऽप्यदोषो
निर्देशोऽयं पूर्वसूत्रेण वा स्यात्॥ (म० भा० 1-2)।

अर्थ—आबन्त अङ्ग से उत्तर 'औङ्' के स्थान पर 'शी' होता है।

उदा० (1) खट्वे
खट्वा औ → खट्वा शी—'वृद्धिरेचि' को बाध कर 'शी',
खट्वा ई—लशक्वतद्धिते, आद् गुणः।

(2) खट्वे
द्वितीया द्विवचन, पूर्ववत्।

(3) बहुराजे
बहवो राजानो ययोः → बहुराजा—डाबुभाभ्यामन्यत०।
शेष पूर्ववत्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(4) कारीषगन्ध्ये (पूर्ववत्)।

ङकारः०—'औङ्' को ङित् सामान्य के ग्रहण के लिये किया गया है, ताकि इसके द्वारा 'औ' (प्रथ० द्विवचन) तथा 'औट्' (द्वितीय० द्विवचन)—दोनों का ग्रहण हो सके।

इसके अतिरिक्त 'औङ्' यह औकार विभक्ति (औ तथा औट्) की प्राचीन सञ्ज्ञा है।[1]

औकारोऽयं०—यह औकार शीविधि में ङित् गृहीत है; परन्तु सम्पूर्ण व्याकरण में यह क्वचिदपि ङित् नहीं है।

(समा०) यह ङित् सामान्य के ग्रहण के लिए निर्देश है। ताकि 'औ' तथा औट्—दोनों का ग्रहण हो सके।

(शङ्का) इस समाधान पर आक्षेप है कि 'औ' को ङित् करने में एक महान् दोष है। ङकार की इत् सञ्ज्ञा करके लोप कर देने पर भी शी आदेश के स्थलों पर ङित् कार्य प्रसक्त होने लगेंगे। तब 'माला शी' इस दशा में 'याडापः' से 'याट्' आगम की प्राप्ति होने लगेगी।

ङित्त्वे०—(समा०) इस ङित् में केवल वर्ण का निर्देश मानना चाहिये। वर्णाश्रित कार्य में तदादि नियम लागू होता है अर्थात् उस वर्ण के आदि में रहते ही वर्णाश्रित कार्य होता है। 'याडापः' सूत्र का कार्य ङित् परे रहते होता है। 'ङित्—ङकार इद् यस्य सः' इस प्रकार बहुव्रीहि समास न मानकर 'ङ् एवेत् ङित्' इस प्रकार कर्मधारय मानना चाहिये। चूँकि 'औङ्' का ङकार अन्त्य वर्ण है; आदि में नहीं है; अतः 'माला शी' यहाँ 'याट्' प्राप्त नहीं होगा।

वर्णश्चा०—दूसरा समाधान—'औङ्' एक विशेष वर्ण है। ङकार मुखसुखार्थ है। यथा—'ऋदोरप्' में 'ऋत्' यहाँ तकार उच्चारणार्थ है। इसी प्रकार ङकार उच्चारणार्थ है। इससे 'औ' तथा 'औट्' दोनों का ग्रहण होता है।

अथवा पूर्ववर्ती आचार्यों के सूत्रपाठ से ऐसा निर्देश मानना चाहिये। पूर्व आचार्यों ने 'औ' तथा 'औट्'—दोनों को ङित् पढ़ा है। न्यासकार के अनुसार सूत्र 'आवौटावौङ्' (औ + औट् + औङ्) इस प्रकार है।

(3195) नपुंसकाच्च *19* (310)

नपुंसकादङ्गादुत्तरस्य औङः 'शी' इत्ययमादेशो भवति। कुण्डे तिष्ठतः। कुण्डे पश्य। यस्येति लोपः (6.4. 148) प्राप्तः। *श्यां प्रतिषेधो वक्तव्यः* (म०भा०)। इति न भवति—दधिनी, मधुनी, त्रपुणी, जतुनी।

अर्थ—नपुंसक अङ्ग से उत्तर औङ् विभक्ति के स्थान पर 'शी' आदेश होता है।

उदा० (1) कुण्डे तिष्ठतः
कुण्ड औ → कुण्ड शी—
कुण्ड ई—आद् गुणः।

(2) कुण्डे पश्य
कुण्ड औट्—पूर्ववत्।

स्थानिवद्भाव से 'शी' भी स्वादि हुआ। 'सुडनपुंसकस्य' की प्राप्ति नहीं होती है। 'यचि भम्' से भसञ्ज्ञा। 'यस्येति च' से अकारलोप प्राप्त हुआ।

श्यां०—'शी' परे रहते अकारलोप नहीं होता है।

(3) दधिनी
दधि औ → दधि शी—इकोऽचि विभक्तौ,
दधि नुम् ई—अनुबन्धलोप।

(4) मधुनी (पूर्ववत्)।
(5) त्रपुणी
णत्व, शेष पूर्ववत्।
(6) जतुनी (पूर्ववत्)।

(3196) जश्शसोः शिः *20* (312)

नपुंसकादङ्गादुत्तरयोर्जश्शसोः 'शि' इत्ययमादेशो भवति। कुण्डानि तिष्ठन्ति। कुण्डानि पश्य। दधीनि। मधूनि। त्रपूणि। जतूनि। जसा सहचरितस्य शसो ग्रहणादिह न भवति—कुण्डशो ददाति। वनशः प्रविशन्तीति।

अर्थ—नपुंसक अङ्ग से उत्तर जस् व शस् के स्थान पर 'शि' होता है।

उदा० (1) कुण्डानि तिष्ठन्ति
कुण्ड जस्—'शि' आदेश,
कुण्ड नुम् शि—शि सर्वनामस्थानम्, नपुंसकस्य झलचः,
कुण्डान् इ—सर्वनामस्थाने चाऽसम्बु०।

(2) कुण्डानि पश्य
कुण्ड शस्—पूर्ववत्।
(3) दधीनि
दधि जस् (या शस्)—पूर्ववत्।

1. वै०सि०कौ०—औङित्यौकारविभक्तेः सञ्ज्ञा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(4) मधूनि (पूर्ववत्)।
(5) त्रपूणि (पूर्ववत्)।
(6) जतूनि (पूर्ववत्)।

जसा०—'जश्शसोः' इस प्रकार 'जस्' के सहचरित होने से 'शस्' के द्वारा द्वितीया बहुवचन का ग्रहण होता है तथा 'शस्' इस तद्धित प्रत्यय का ग्रहण नहीं होता है।

(7) कुण्डशो ददाति
यहाँ 'शि' आदेश नहीं हुआ।

(8) वनशः
'शि' नहीं हुआ।

(3197) अष्टाभ्य औश् *21* (372)

'अष्टाभ्यः' इति कृताकारोऽष्टन्-शब्दो गृह्यते। तस्मादुत्तरयोर्जश्शसोः 'औश्' इत्ययमादेशो भवति। अष्टौ तिष्ठन्ति। अष्टौ पश्य। कृताकारस्य ग्रहणं किम्? अष्ट तिष्ठन्ति। अष्ट पश्य। एतदेव कृतात्वस्य ग्रहणं ज्ञापकम्-'अष्टन आ विभक्तौ' (7.2.84) इति आत्त्वविकल्पस्य। 'षड्भ्यो लुक्' (7.1.22) इत्यस्यायमपवादः, नाप्राप्ते तस्मिन्निदमारभ्यते। यस्तु 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' (2.4.71) इति, तस्मिन्प्राप्ते चाप्राप्ते चेति स न बाध्यते-अष्टपुत्रः, अष्टभार्य इति। तदन्तग्रहणमत्रेष्यते-परमाष्टौ, उत्तमाष्टौ। 'प्रियाष्टानः' इत्यत्रात्वस्याभावादौश्त्वं न भवति।

अर्थ—आकार आदेश करने पर 'अष्टन्' से प्राप्त 'अष्टा' शब्द से उत्तर जस् व शस् विभक्तियों के स्थान पर 'औश्' होता है।

'भ्यस्' में अष्टन् शब्द के दो रूप बनते हैं—अष्टाभ्यः तथा अष्टभ्यः।

उदा० (1) अष्टौ
अष्टन् जस्—प्रकृत सूत्र से आकार अन्तादेश तथा औश् आदेश,
अष्टा औश्—वृद्धिरेचि।
अष्टन् शस् (पूर्ववत्)।

कृताका०—प्रकृत सूत्र में आकार अन्तादेश निर्देशयुक्त 'अष्टाभ्यः' पाठ है। 'अष्टा' शब्द का तात्पर्य यह है कि 'अष्टन आ विभक्तौ' से प्राप्त आकार अन्तादेश वाला 'अष्टन्' शब्द यहाँ गृहीत है। तब निम्नलिखित में 'औश्' नहीं होता है।

(2) अष्ट
अष्ट जस्—अष्ट। षड्भ्यो लुक्।
अष्ट शस्—अष्ट।

एतदेव०—सूत्र में कृत आकार अन्तादेश के निर्देश से ज्ञापित होता है कि 'अष्टन आ विभक्तौ' से आत्त्व विकल्प से होता है।[1]

षड्भ्यो०—यह सूत्र 'षड्भ्यो लुक्' का अपवाद है। उसके अप्राप्त न रहने पर यह विधान है। सर्वत्र लुक् होगा तो यह सूत्र व्यर्थ हो जायेगा। 'सुपो धातुप्रातिपदिकयोः' से सुप् विभक्ति का लुक् होता है। उसके प्राप्त या अप्राप्त रहते बाध नहीं होता है।

(3) अष्टपुत्रः
यहाँ 'औश्' आदेश नहीं होता है। सुप् का लोप होता है।

(4) अष्टभार्यः (पूर्ववत्)।

तदन्त०—यहाँ तदन्त का ग्रहण भी इष्ट है।

(5) परमाष्टौ
परमाश्चाष्टौ—यहाँ कर्मधारय हुआ।
परमाष्ट जस् (और शस्)—यहाँ भी 'औश्' हुआ।

(6) उत्तमाष्टौ (पूर्ववत्)।

(7) प्रियाष्टानः
प्रिया अष्टौ येषां ते—प्रियाष्टन् जस्। उपधादीर्घ।
यहाँ भी आत्व न होने से 'औश्' आदेश नहीं होता है।

(3198) षड्भ्यो लुक् *22* (261)

षट्संज्ञकेभ्य उत्तरयोर्जश्शसोर्लुग्भवति। षट् तिष्ठन्ति। षट् पश्य। पञ्च। सप्त। नव। दश। षट्प्रधानात्तदन्तादपि भवति-परमषट्। उत्तमषट्। यत्र तूपसर्जनं षट्, ततो न भवति-प्रियषषः, प्रियपञ्चान इति।

अर्थ—षट्सञ्ज्ञक अङ्ग से उत्तर जस् व शस् का लुक् होता है।

उदा० (1) षट्
षष्—ष्णान्ता षट्,
षष् जस्—लुक्, पदसंज्ञा,

1. शङ्का होती है कि 'अष्टन आ विभक्तौ' के द्वारा हलादि विभक्ति में ही आकार अन्तादेश होता है। तब अजादि विभक्ति (जस् व शस्) में अन्तादेश के अप्राप्त रहने पर 'औश्' कैसे हो सकता है? तब प्रकृत सूत्र में 'अष्टाभ्यः' पद व्यर्थ होकर ज्ञापित करता है कि आचार्य को जस् व शस् विभक्ति में भी 'अष्टन्' शब्द को आकार अन्तादेश इष्ट है। यदि आचार्य को ऐसा अभिमत नहीं होता तो वे 'अष्टाभ्य औश्' के स्थान पर 'अष्टभ्य औश्' पाठ करते।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

षड्—झलां जशोऽन्ते, वाऽवसाने।

(2) षट्
षष् शस्—पूर्ववत्।

(3) सप्त
सप्तन् जस्/शस्—लुक् आदि पूर्ववत्,
सप्त—नलोपः प्रातिपदि०।

(4) नव
नवन्—पूर्ववत्।

(5) दश
दशन्—पूर्ववत्।

षट्प्र०—षट् का प्राधान्य होने के कारण तदन्त से भी विधि होती है।

(6) परमषट्
परमषष् जस्/शस्—पूर्ववत्।

(7) उत्तमषट्
उत्तमषष्—पूर्ववत्।

यत्र तूप०—जहाँ 'षष्' शब्द गौण होता है; वहाँ उक्त विधि नहीं होती है।

(8) प्रियषषः
प्रियाः षट् येषां ते—बहुव्रीहि,
प्रियषष् जस्/शस्—लुक् नहीं हुआ।

(3199) स्वमोर्नपुंसकात् *23* (319)

सु, अम्–इत्येतयोर्नपुंसकादुत्तरयोर्लुग्भवति। दधि तिष्ठति। दधि पश्य। मधु तिष्ठति। मधु पश्य। त्रपु–2। जतु–2। तद्ब्राह्मणकुलमित्यत्र लुका त्यदाद्यत्वं बाध्यते; पूर्वविप्रतिषेधेन, नित्यत्वाद्वा। लुको हि निमित्तम् 'अतोऽम्' (7.1.24) इति लक्षणान्तरेण विहन्यते, न पुनस्त्यदाद्यत्वेनैव। यस्य च लक्षणान्तरेण निमित्तं विहन्यते न तदनित्यं भवति।

अर्थ—नपुंसक अङ्ग से उत्तर 'सु' तथा 'अम्' विभक्तियों का लुक् होता है।
इसका अपवाद 'अतोऽम्' है।
उदा० (1) दधि
दधि सु—प्रथमैकवचन,
दधि—लुक् हुआ।

(2) दधि
दधि अम्—'आदेः परस्य' से 'अम्' के अकार का लुक् प्राप्त होता है, परन्तु 'प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः' से लुक् आदि संज्ञाएँ समग्र प्रत्यय की कही गई हैं; प्रत्यय के एक अंश की नहीं। अतः समग्र प्रत्यय (अम्) का लुक् हुआ,
दधि—रूप बना।

(3) मधु
मधु सु → मधु।
इसी प्रकार—मधु अम्।

(4) त्रपु
त्रपु सु/अम्—प्रत्यय का लुक्।

(5) जतु (पूर्ववत्)।

तद्ब्रा०—तद् ब्राह्मणकुलम्—यहाँ 'स्वमोर्नपुंसकात्' से लुक् तथा 'त्यदादीनामः' से अकार अन्तादेश—दोनों की प्राप्ति है। तब नित्य होने से अथवा पूर्वविप्रतिषेध से लुक् अन्तादेश का बाध करता है।

यदि परवर्त्ती होने से प्रथम अन्तादेश किया जाता है तो 'अतोऽम्' से लुक् का बाध होकर 'अम्' ही होता है। अतः लुक् अन्तादेश का बाध कर देता है।

लुको०—लुक् का निमित्त 'अतोऽम्' इस दूसरे सूत्र से नष्ट किया जाता है तथा अन्तादेश के द्वारा नहीं। जिसका निमित्त अन्य सूत्र के द्वारा नष्ट किया जाता है, वह अनित्य नहीं होता है। अतः लुक् नित्य होने से बलवान् है; तब लुक् ही होता है।

लुक् हो जाने पर विभक्ति परे न रहने से अन्तादेश भी नहीं होता। 'न लुमताङ्गस्य' से निषेध हो जाने से प्रत्ययलक्षण भी नहीं होता है।

(3200) अतोऽम् *24* (309)

अकारान्तान्नपुंसकाद् उत्तरयोः स्वमोः 'अम्' इत्ययमादेशो भवति। कुण्डं तिष्ठति। कुण्डं पश्य। वनम्–2। पीठम्–2। मकारः कस्मान्न क्रियते? दीर्घत्वं (7.1.102) प्राप्नोति।

अर्थ—अदन्त नपुंसक अङ्ग से उत्तर 'सु' और 'अम्' के स्थान पर 'अम्' आदेश होता है।

उदा० (1) कुण्डम्
कुण्ड सु → कुण्ड अम्—अमि पूर्वः,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कुण्डम्—पूर्वसवर्ण।

(2) कुण्डम्
कुण्ड अम् → कुण्ड अम्—पूर्ववत्।

(3) वनम्
वन सु/अम्—पूर्ववत्।

(4) पीठम् (पूर्ववत्)।

मकारः—(शङ्का) 'अतोऽम्' के स्थान पर 'अतो मः' पाठ में प्रक्रिया की दृष्टि से लाघव प्रतीत होता है।

(समा०) इस प्रकार के पाठ में एक दोष प्रसक्त होता है। यथा—

जल सु—जल म्—इस स्थिति में 'सुपि च' से दीर्घ प्राप्त होने लगता है।

अतः आचार्य ने 'म्' आदेश न करके 'अम्' आदेश किया है।

विशेष—1. 'अम्' के स्थान पर पुनः 'अम्' आदेश करना उचित नहीं लगता; परन्तु इसका प्रयोजन यह है कि 'द्विर्बद्धं सुबद्धं भवति' अर्थात् 'अम्' के स्थान पर 'अम्' ही हो तथा कहीं भी 'स्वमोर्नपुंसकात्' से लुक् न हो।

2. 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' से नपुंसकलिङ्ग में सर्वत्र ह्रस्व प्राप्त होता है; दीर्घ प्राप्त ही नहीं है। तब 'अतः' पद को तपरकरण व्यर्थ हो जाता है। तपरकरण मुखसुख के लिये है।[1]

3. कुछ व्याख्याकार 'अतोम्' का विच्छेद 'अतः म् ' इस प्रकार करते हुए 'अम् ' आदेश के स्थान पर 'म्' आदेश स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार भी इष्टसिद्धि में कोई व्यवधान नहीं होता। यथा—

जल अम्—द्वितीया एकवचन,

जल म् म्—'आदेः परस्य' से 'अम्' के अकार के स्थान पर मकार हुआ,

जलम्—संयोगान्तस्य लोपः।

परन्तु पतञ्जलि, काशिकाकार, न्यासकार व पदमञ्जरीकार सभी ने इस अर्थ की आलोचना की है।[2]

1. न्यास० 7.1.24 तपरकरणं मुखसुखार्थम्।

2. महा० 6.1.67

पदम० 7.1.24 अत्रामिति पदच्छेदः, न तु मिति। तथाहि सति लाघवाय 'मत' इत्येव ब्रूयात्।

न्यास 7.1.24 किमर्थमम् भाव उच्यते।····विधातव्येऽमादेशं कुर्वन्नेतज्ज्ञापयति····।

(3201) अद्ड् डतरादिभ्यः पञ्चभ्यः *25* (315)

डतरादिभ्यः परयोः स्वमोरद्ड् इत्ययमादेशो भवति। कतरत्तिष्ठति। कतरत्पश्य। कतमत्तिष्ठति। कतमत्पश्य। इतरत्। अन्यतरत्। अन्यत्। पञ्चभ्य इति किम्? नेमं पश्य। डित्करणं किम्? कतरत् तिष्ठतीत्यत्र पूर्वसवर्ण-दीर्घो मा भूत्। इह तु कतरत्पश्येति स्थानिवद्भावादमि पूर्वत्वेनापि सिद्ध्यति। एवं तर्हि तकारादेश एव कस्मान्न विधीयते? हे कतरदिति सम्बुद्धेर्लोपो मा भूत्।

अपृक्तश्चेदमो दोषो निवृत्ते डतरादिषु।
अद्डित्त्वाद्डुतरादीनां न लोपो नापि दीर्घता।।

अर्थ—डतर आदि पाँच नपुंसकलिङ्ग अङ्गों से उत्तर सु तथा अम् के स्थान पर 'अद्ड्' आदेश होता है।

डकार की इत्सञ्ज्ञा होती है। डतर आदि पाँच शब्द ये हैं—डतर, डतम, अन्य, अन्यतर, इतर। इनका पाठ सर्वादिगण में है।

उदा० (1) कतरत्
कतर सु—कतर अद्ड्—चुटू,
कतर् अद्—प्रथमयोः पूर्वसवर्णः, स्थानिवद्भाव से स्वादि हुआ, भसञ्ज्ञा, टेः।

(2) कतरत्
कतर अम्—पूर्ववत्।

(3) कतमत्
कतम सु/अम्—पूर्ववत्।

(4) इतरत्
इतर सु/अम्—पूर्ववत्।

(5) अन्यतरत् (पूर्ववत्)।

(6) अन्यत् (पूर्ववत्)।

पञ्चभ्य०—डतर आदि **पाँच** प्रातिपदिकों से ही 'अद्ड्' होता है।

(7) नेमम्
नेम सु—'नेम' का परिगणन उक्त पाँचों में नहीं है। अतः अद्ड् नहीं हुआ।

डित्कर०—'अद्ड्' को डित् किया गया है, ताकि पूर्वसवर्ण दीर्घ न हो, अन्यथा 'कतर अद्' इस दशा में 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' से पूर्वसवर्ण दीर्घ होने लगता।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इह तु०—यहाँ 'कतर अम्—कतरत्' इस स्थल पर स्थानिवद्भाव होकर 'अमि पूर्वः' से पूर्वरूप से इष्टसिद्धि हो जाती है। तब शङ्का है कि 'अद्ङ्' के स्थान पर केवल तकार आदेश करने में लाघव होता है।

(समा०) तकार आदेश करने पर सम्बुद्धि में लोप प्राप्त होकर अनिष्ट रूप की प्राप्ति होती है। अतः 'अद्ङ्' करना ही उचित है।

हे कतरत्—यहाँ 'त्' स्थानिवद्भाव से सम्बुद्धि हुआ। 'एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः' से लोप प्रसक्त होता है।

अपृक्त०—यदि अपृक्त है तो अम् का दोष प्रसक्त होता है। यदि अपृक्त नहीं है तो डतर आदि में दोष प्रसक्त होता है। अतः अद्ङ् को डित् करने में न तो लोप होता है तथा न ही पूर्वसवर्ण दीर्घ होता है। 'एङ् ह्रस्वात्सम्बुद्धेः' में 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०' से 'अपृक्तः' पद का अनुवर्त्तन कर लिया जाय। 'आदेः परस्य' से 'अम्' के अकार के स्थान पर दकार करने पर 'डतर द्म्' इस दशा में 'संयोगान्तस्य लोपः' से मकार का लोप कर लिया जाय तो संयोगान्त लोप के असिद्ध होने से 'द्' की अपृक्त सञ्ज्ञा नहीं हो सकेगी। तब 'एङ् ह्रस्वात्सम्बुद्धेः' की प्रवृत्ति भी नहीं होगी। इस प्रकार इष्टसिद्धि हो जाती है। अतः 'अद्ङ्' के स्थान पर तकार आदेश करना चाहिये।

(समा०) इसमें एक दोष है। 'हे काण्ड' यहाँ भी अपृक्त न मिल पाने से 'अम्' का भी लुक् नहीं हो सकेगा। पूर्ववत् 'अपृक्तः' पद का अनुवर्त्तन करना उचित नहीं है। इसलिये कारिका में कहा गया है—अपृक्तश्चेदमो दोषः अर्थात् यदि 'अपृक्तः' पद का अनुवर्त्तन करते हैं तो 'अम्' में दोष होता है।

यदि 'अपृक्तः' पद का अनुवर्त्तन नहीं किया जाता है तो 'हे कतरत्' में लोप प्रसक्त होता है। अतः कहा गया है—निवृत्ते डतरादिषु अर्थात् 'अपृक्तः' पद के अनुवर्त्तन न करने की दशा में डतर आदि में दोष प्रसक्त होता है।

अद्डित्त्वा····दीर्घता—इसलिये 'अद्ङ्' को डित् किया गया है। इसे डित् करने पर न तो लोपलक्षण दोष उपस्थित होता है तथा न ही पूर्वसवर्णदीर्घ। 'अदड्' में ष्टुत्व होकर तथा संयोगान्त लोप होकर 'अड्' ऐसा रूप बनता है; परन्तु आचार्य ने स्पष्टता के लिए सन्धिकार्य नहीं किया है।

(3202) नेतराच्छन्दसि *26* (3559)

इतरशब्दादुत्तरयोः स्वमोश्छन्दसि विषये अद्डादेशो न भवति। 'मृतंमित्तरमितरमाण्डंमंजायत (मै० 1.6.12)। वार्त्रघ्नमितरम्। छन्दसीति किम्? इतरत्काष्ठम्। इतरत्कुण्डयम्। 'अतोऽम्' (7.1.24)-इत्यस्मादनन्तरमितराच्छन्दसीति वक्तव्यम्? 'नेतराच्छन्दसि' इति वचनं योगविभागार्थम्। *एकतराद्धि सर्वत्र छन्दसि भाषायां प्रतिषेध इष्यते* (म०भा०)। एकतरं तिष्ठति। एकतरं पश्येति।

अर्थ—'इतर' अङ्ग से उत्तर सु तथा अम् के स्थान पर 'अद्ङ्' आदेश नहीं होता है, वेद के विषय में।

उदा० (1) इतरम् (मै० 1.6.12)
इतर सु → इतर अम्—इतरम्।

(2) इतरम्
इतर अम्—पूर्ववत्।

छन्दसी०—वेद में ही यह निषेध होता है।

(3) इतरत्
लोक में निषेध नहीं हुआ।

अतोऽम्०—'अतोऽम्' सूत्र के शीघ्र पश्चात् 'इतराच्छन्दसि' ऐसा पाठ करना चाहिये था; परन्तु 'नेतराच्छन्दसि' यह पाठ योगविभाग के लिये किया गया है।

एकतरा०—लोक तथा वेद—दोनों में एकतर शब्द से उत्तर 'सु' तथा 'अम्' के स्थान पर 'अद्ङ्' आदेश नहीं होता है।

(4) एकतरम्
एकतर सु/अम्—'अद्ङ्' नहीं हुआ।

(3203) युष्मदस्मद्भ्यां ङसोऽश् *27* (399)

युष्मदस्मद्-इत्येताभ्यामुत्तरस्य ङसः 'अश्'-इत्ययमादेशो भवति। तव स्वम्। मम स्वम्। शित्करणं सर्वादिशार्थम्; अन्यथा ह्यादेशव्यपदेशप्रक्लृप्त्यर्थमादेरेव स्यात्, ततश्च 'योऽचि' (7.2.89) इत्येतन्न स्यात्।

अर्थ—युष्मद् तथा अस्मद् इन अङ्गों से उत्तर 'ङस्' (षष्ठी एकवचन) के स्थान पर 'अश्' आदेश होता है। यह सर्वादेश है।

उदा० (1) तव
युष्मद् ङस् → तव अद् ङस्—तवममौ ङसि,
तवद् अश्—अतो गुणे, अश्, हलन्त्यम्,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तव् अ—शेषे लोपः।

(2) मम

अस्मद् ङस् → मम अद् ङस्—शेष पूर्ववत्।

शित्सर्वा०—शित् सर्वादेश के लिए किया गया है। अन्यथा आदेश के व्यपदेश की निष्पन्नता के लिये आदि के स्थान पर ही यह आदेश होने लगता। अतः 'योऽचि' नहीं होता है।

(3204) ङे प्रथमयोरम् *28* (382)

'ङे' इत्यविभक्तिकोऽयं निर्देशः। 'ङे' इत्येतस्य प्रथमयोश्च विभक्त्योः = प्रथमाद्वितीययोर्युष्मदस्मद्भ्यामुत्तरयोः 'अम्' इत्ययमादेशो भवति। तुभ्यं दीयते। मह्यं दीयते। प्रथमयोः- त्वम्, अहम्। युवाम्, आवाम्। यूयम्, वयम्। त्वाम्, माम्। युवाम्, आवाम्।

अर्थ—'ङे' यह अविभक्तिक निर्देश है। युष्मद् तथा अस्मद्—इन अङ्गों से उत्तर ङे (चतुर्थी एकवचन); प्रथमा (सु, औ, जस्) तथा द्वितीया (अम्, औट्, शस्)—इनके स्थान पर 'अम्' आदेश होता है।

(1) तुभ्यम्

युष्मद् ङे → युष्मद् अम्—स्थानिवद्भाव से 'अम्' भी ङे-वद् हुआ,

तुभ्य अद् अम्—तुभ्यमह्यौ ङयि,

तुभ्यद् अम्—अतो गुणे,

तुभ्य् अम्—टिलोप पक्ष—शेषे लोपः।

(2) मह्यम् (पूर्ववत्)।

(3) त्वम्

युष्मद् सु > अम्—अमादेश,

त्व अद् अम्—त्वाहौ सौ, अतो गुणे,

त्व् अम्—शेषे लोपः।

(4) अहम्

अस्मद् सु > अम्—पूर्ववत्,

अह अद् अम्—त्वाहौ सौ, पररूप,

अह् अम्—शेषे लोपः।

(5) युवाम्

युष्मद् औ → युष्मद् अम्—

युव अद् अम्—युवावौ०,

युवद् अम्—अतो गुणे,

युव आ अम्—प्रथमायाश्च द्विव०,

युवा अम्—अकः सवर्णे दीर्घः, अमि पूर्वः।

(6) आवाम्

अस्मद् औ → अस्मद् अम्—

आव अद् अम् → आवद् अम्—

आव आ अम् → आवाम्।

(7) यूयम्

युष्मद् जस् → युष्मद् अम्—

यूय अद् अम्—यूयवयौ जसि,

यूयद् अम् → अतो गुणे,

यूय् अम्—शेषे लोपः।

(8) वयम्

अस्मद् जस् → अस्मद् अम्—

वय अद् अम् → वयद् अम्—

वय् अम् → वयम्।

(9) त्वाम्

युष्मद् अम् → युष्मद् अम्—

त्व अद् अम्—त्वमावेकवचने,

त्वद् अम्—अतो गुणे,

त्व आ अम्—द्वितीयायाञ्च,

त्वा अम्—अकः सवर्णे दीर्घः, अमि पूर्वः।

(10) माम्

अस्मद् अम् → अस्मद् अम्—

म अद् अम् → मद् अम्—

म आ अम् → मा अम्।

(11) युवाम्

पीछे (सं० 5) देखें।

(12) आवाम्

पीछे (सं० 6) देखें।

(3205) शसो न *29* (391)

युष्मदस्मद्भ्यामुत्तरस्य शसो नकारादेशो भवति। युष्मान् ब्राह्मणान्। अस्मान् ब्राह्मणान्। युष्मान् ब्राह्मणीः। अस्मान् ब्राह्मणीः। युष्मान् कुलानि। अस्मान्कुलानि। 'तस्माच्छसो नः पुंसि' इति सिद्धे स्त्रीनपुंसकार्थं वचनम्। अलिङ्गे वा युष्मदस्मदी।

अर्थ—युष्मद् व अस्मद् अङ्गों से उत्तर 'शस्' के स्थान पर 'न' आदेश होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उदा० (1) युष्मान्

युष्मद् शस्—'ङे प्रथमयोरम्' को बाध कर प्रकृत सूत्र से नकारादेश प्राप्त हुआ, 'अलोऽन्त्यस्य' से अन्त्य वर्ण के स्थान पर आदेश प्राप्त हुआ; परन्तु 'आदेः परस्य' से आदि वर्ण के स्थान पर हुआ,

युष्मद् न् स्—'द्वितीयायाञ्च' से आकार,

युष्मान् स्—सवर्णदीर्घ,

युष्मान्—संयोगान्तस्य लोपः। संयोगान्त लोप के असिद्ध होने से नलोपः प्रातिपदि० की प्राप्ति नहीं होती है। अट्कुप्वाङ्नुम्० से प्राप्त णत्व का 'पदान्तस्य' से निषेध।

(2) अस्मान्

अस्मद् शस् → अस्मद् न् स्—

अस्म आ न् स् → अस्मान् स्—पूर्ववत्।

तीनों लिङ्गों में एक समान रूप होते हैं। यथा—

युष्मान् ब्राह्मणान्।

युष्मान् ब्राह्मणीः।

युष्मान् कुलानि।

इसी प्रकार—

अस्मान् ब्राह्मणान्।

अस्मान् ब्राह्मणीः।

अस्मान् कुलानि।

तस्माच्छ०—'तस्माच्छसो नः पुंसि' से भी इष्टसिद्धि सम्भव थी, परन्तु स्त्रीलिङ्ग व नपुंसक लिङ्ग के लिये यह विधान है। युष्मद् व अस्मद् अलिङ्ग होते हैं।

(3206) भ्यसो भ्यम् *30* (395)

युष्मदस्मद्भ्यामुत्तरस्य भ्यसः 'भ्यम्' इत्ययमादेशो भवति। युष्मभ्यं दीयते। अस्मभ्यं दीयते। भ्यमादेशे कृते शेषे लोपे च 'बहुवचने झल्येत्' (7.3.103) इत्येवं प्राप्नोति, तद् 'अङ्गवृत्ते पुनर्वृत्तावविधिर्निष्ठितस्य' (व्या० प०) इति न भवति। केचित् पुनरभ्यमादेशमेत्वनिवृत्त्यर्थं कुर्वन्ति। येषां तु शेषे लोपष्टिलोपः, तेषामभ्यमादेश एव। उदात्तनिवृत्तिस्वरश्चादेरेव भवति।

अर्थ—युष्मद् व अस्मद् अङ्गों से उत्तर 'भ्यस्' के स्थान पर 'भ्यम्' होता है।

उदा० (1) युष्मभ्यम्

युष्मद् भ्यस् → युष्मद् भ्यम्—'हलन्त्यम्' से प्राप्त इत्सञ्ज्ञा का 'न विभक्तौ तुस्माः' से निषेध,

युष्म भ्यम्—'शेषे लोपः' से अन्त्य का लोप।

(2) अस्मभ्यम्

अस्मद् भ्यस् → अस्मद् भ्यम्—पूर्ववत्,

अस्म भ्यम्—शेषे लोपः।

भ्यमादे०—भ्यम् आदेश करने पर तथा 'शेषे लोपः' से लोप कर लेने पर 'बहुवचने झल्येत्' से एत्व प्राप्त होता है। 'अङ्गवृते पुनर्वृत्तावविधिर्निष्ठितस्य' (अर्थात् अङ्गवृत्त में पुनः वृत्ति में निष्ठित की विधि नहीं होती है) से एत्व नहीं होता है। यहाँ अङ्गसञ्ज्ञा-सम्बन्धी कार्य (भ्यम्) हो चुका है। पुनः अङ्गसम्बन्धी कार्य (एत्व) नहीं होता है।

केचित्०—चूँकि 'भ्यसो भ्यम्' का दो प्रकार से विच्छेद किया जा सकता है। यथा—

'भ्यसो भ्यम्' तथा 'भ्यसो अभ्यम्'।

अतः कुछ विद्वान् 'भ्यम्' आदेश के स्थान पर 'अभ्यम्' आदेश स्वीकार करते हैं। वे एत्व के निवारण के लिये 'अभ्यम्' आदेश करते हैं। जिनके मत में 'शेषे लोपः' से टिलोप होता है, उनके मत में 'अभ्यम्' आदेश ही होता है।

उदात्तनिवृत्तिस्वर भी आदि को ही होता है।

(3207) पञ्चम्या अत् *31* (397)

पञ्चम्या भ्यसो युष्मदस्मद्भ्यामुत्तरस्य 'अत्' इत्ययमादेशो भवति। युष्मद् गच्छन्ति। अस्मद् गच्छन्ति।

अर्थ—युष्मद् और अस्मद् अङ्गों से उत्तर पञ्चमी (बहुवचन) के 'भ्यस्' के स्थान पर 'अत्' आदेश होता है। तकार उच्चारणार्थ है।

उदा० (1) युष्मत्

युष्मद् भ्यस्—पञ्चमी बहुवचन,

युष्मद् अत्—'अत्' आदेश,

युष्म् अत्—शेषे लोपः,

युष्मत्—रूप।

(2) अस्मत्

अस्मद् भ्यस्—पूर्ववत्।

(3208) एकवचनस्य च *32* (396)

पञ्चम्या एकवचनस्य युष्मदस्मद्भ्यामुत्तरस्य 'अत्' इत्ययमादेशो भवति। त्वद् गच्छन्ति। मद् गच्छन्ति।

अर्थ—युष्मद् तथा अस्मद् अङ्गों से उत्तर पञ्चमी एकवचन (ङसि) के स्थान पर 'अत्' आदेश होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उदा० (1) त्वत्
युष्मद् ङसि → युष्मद् अत्—सर्वादेश,
त्व अद् अत्—त्वमावेकवचने,
त्वद् अत्—अतो गुणे,
त्व् अत्—शेषे लोपः।

(2) मत्
अस्मद् ङसि → अस्मद् अत्—
म अद् अत् → मद् अत् — म् अत्।

(3209) साम आकम् *33* (400)

'साम' इति षष्ठीबहुवचनमागतसुट्कं गृह्यते। तस्य युष्मदस्मद्भ्यामुत्तरस्य 'आकम्' इत्ययमादेशो भवति। युस्माकम्। अस्माकम्। अथ किमर्थमागतसुट्को गृह्यते, न ह्यादेशविधानकाले सुड् विद्यते? तस्यैव तु भाविनः सुटो निवृत्त्यर्थम्। आदेशे कृते हि शेषे लोपे युष्मदस्मदोरकारान्तत्वात्सुट् प्राप्नोति, स स्थान्यन्तर्भूतत्वान्निवर्तते। दीर्घोच्चारणं सवर्णदीर्घार्थम्। अकमि तु सति ह्रस्वकरणे तद्विधानसामर्थ्यादेव सवर्णदीर्घत्वं न प्राप्नोति। तत्सामर्थ्यमेत्वं प्रति भविष्यतीति अकारकरणमेत्वनिवृत्त्यर्थमिति 'अतो गुणे' (6.1.97) पररूपत्वं स्यात्।

अर्थ—'सामः' के द्वारा सुट् आगमसहित षष्ठी बहुवचन का ग्रहण होता है। युष्मद् व अस्मद् अङ्ग से उत्तर 'साम्' के स्थान पर 'आकम्' आदेश होता है।

उदा० (1) युष्माकम्
युष्मद् आम् → युष्मद् आकम्—
युष्म आकम्—'शेषे लोपः' से अन्त्यलोप,
युष्माकम्—अकः सवर्णे दीर्घः।

युष्मद् आकम्—इस दशा में 'शेषे लोपः' से टिलोप,
युष्म् आकम्—रूप बना।

(2) अस्माकम्
अस्मद् आम् → अस्मद् आकम्—
अस्म आकम्—पूर्ववत्।

अथ०—यहाँ 'सामः' पद में सुट् आगमसहित 'आम्' का किसलिए ग्रहण किया गया है। 'आमि सर्वनाम्नः सुट्' के द्वारा अदन्त सर्वनामसञ्ज्ञक अङ्ग से उत्तर 'आम्' को 'सुट्' आगम होता है। युष्मद् व अस्मद् अङ्ग अदन्त नहीं है। अतः इनसे परे 'आम्' को 'सुट्' सम्भव नहीं। तब शङ्का होती है कि सूत्र में 'सामः' पद व्यर्थ है, इसके स्थान पर 'आमः' होना चाहिए था।

वस्तुतः यहाँ 'साम्' निर्देश के द्वारा भावी 'सुट्' को सूचित करता है। 'आकम्' आदेश करने के पश्चात् 'शेषे लोपः' (अन्त्यलोप पक्ष में) के द्वारा दकार का लोप होकर अकारान्त अङ्ग (युष्म/अस्म) बचता है। तब इनसे परे 'आम्' को सुट् आगम प्राप्त होता है। उसकी निवृत्ति के लिए 'साम्' ऐसा निर्देश किया गया है।

तात्पर्य यह है कि प्रकृत सूत्र के द्वारा 'आम्' के स्थान पर 'आकम्' आदेश किया गया है तथा अन्त्य लोपपक्ष में 'आम्' को प्राप्त सुट् आगम का निषेध होता है।

दीर्घो०—(शङ्का) 'आकम्' के स्थान पर 'अकम्' पाठ में लाघव होता है।

(समा०) 'आकम्' इस प्रकार दीर्घोच्चारण सवर्ण के लिए है। भाव यह है कि 'शेषे लोपः' के दो पक्ष हैं—अन्त्यलोपपक्ष तथा टिलोपपक्ष। टिलोपपक्ष में 'आकम्' करना अनिवार्य हो जाता है। अन्त्यलोपपक्ष में 'अतो गुणे' (युष्म अकम्) से प्राप्त पररूप की निवृत्ति तथा सवर्णदीर्घ के लिए 'आकम्' करना उचित है।

(शङ्का) 'आकम्' के स्थान पर 'अकम्' करना चाहिए। आपने कहा कि सवर्णदीर्घ के लिए करना चाहिए। सो विधान-सामर्थ्य से भी सवर्णदीर्घ नहीं होता है। यह उचित नहीं है। कारण कि उसका सामर्थ्य एत्व के प्रति होगा। अतः यह एत्व की निवृत्ति के लिए है। 'अकम्' की दशा में पररूप प्राप्त अवश्य होगा।

(3210) आत औ णलः *34* (2371)

आकारान्तादङ्गादुत्तरस्य णल औकारादेशो भवति। पपौ। तस्थौ। जग्लौ। मम्लौ। अत्रौत्वमेकादेशः, स्थानिवद्भावः, द्विर्वचनम्-इत्यनेन क्रमेण कार्याणि क्रियन्ते (म०भा०)। एकादेशादनवकाशत्वादौत्वं द्विर्वचनादपि परत्वादेकादेश इति।

अर्थ—आकारान्त अङ्ग से उत्तर 'णल्' के स्थान पर 'औ' आदेश होता है।

उदा० (1) पपौ

पा णल् > औ—लिट्, तिप्, परस्मैपदा०, 'वृद्धिरेचि' (6.1.85) से वृद्धि तथा द्वित्व (6.1.8) दोनों की प्राप्ति, परत्वात् वृद्धि की प्राप्ति, द्विर्वचनेऽचि, द्वित्व,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प पा औ—ह्रस्वः, वृद्धि।

(2) तस्थौ
स्था औ—पूर्ववत्,
थ स्था औ—शर्पूर्वाः खयः, ह्रस्वः,
त स्था औ—अभ्यासे चर्च।

(3) जग्लौ
ग्लै → ग्ला औ—पूर्ववत्,
ग ग्ला औ—ह्रस्वः, हलादिः शेषः,
जग्लौ—कुहोश्चुः, वृद्धिरेचि।

(4) मम्लौ
म्ला णल् → म्ला औ—शेष पूर्ववत्।

अत्रौत्व०—यहाँ औत्व, एकादेश, स्थानिवद्भाव तथा द्विर्वचन—इस प्रकार कार्य करने चाहिये। पा णल्—इस दशा में द्वित्व, सवर्णदीर्घ एकादेश तथा 'औ' आदेश—इन तीनों की युगपत् प्राप्ति है। काशिकाकार के अनुसार प्रथम 'आत औ णलः' से औकार आदेश, पश्चात् 'वृद्धिरेचि' से एकादेश, तब 'द्विर्वचनेऽचि' से स्थानिवद्भाव तथा अन्त में द्वित्व करना चाहिए।

एकादेश०—एकादेश से पूर्व औत्व होता है। 'पा णल्' इस स्थिति में यदि प्रथम एकादेश करते हैं तो औत्व प्राप्त ही नहीं रहेगा। अतः औत्व के निरवकाश होने से एकादेश से पूर्व औत्व ही किया जाता है।

द्विर्वचना०—द्वित्व की अपेक्षा परवर्त्ती होने से वृद्धि एकादेश द्विर्वचन से पूर्व ही होता है। तब स्थानिवद्भाव तथा द्वित्व करना चाहिए। यथा—

पा णल् → पा औ → पौ → पा पौ → पपौ।

(3211) तुह्योस्तातङाशिष्यन्यतरस्याम् *35* (2197)

तु, हि–इत्येतयोराशिषि विषये तातङादेशो भवत्यन्यतरस्याम्। जीवताद्भवान्। जीवतात्त्वम्। जीवतु भवान्। जीव त्वम्। ङित्करणं गुणवृद्धिप्रतिषेधार्थमिति सर्वादेशस्तातङ् भवति। ङित्त्वाच्चास्य स्थानिवद्भावाद्यत्पित्त्वं प्राप्नोति, तन्निवर्त्तते; ङिच्च पित्र भवति। तेन 'ब्रुव ईट्' (7.3.93) इति ब्रूताद्भवान्–इतीण्न भवति। आशिषीति किम्? ग्रामं गच्छतु भवान्। गच्छ त्वम्।

तातङि ङित्त्वं संक्रमकृत्स्यादन्त्यविधिश्चेत्तच्च तथा न।
हेरधिकारे हेरधिकारो लोपविधौ तु ज्ञापकमाह॥
तातङो ङित्त्वसामर्थ्यान्नायमन्त्यविधिः स्मृतः।
न तद्वदनङादीनां तेन तेऽन्त्यविकारजाः॥

अर्थ—आशीर्वाद अर्थ गम्यमान हो तो 'तु' और 'हि' के स्थान पर विकल्प से 'तातङ्' आदेश होता है।

ङकार व अकार की इत् सञ्ज्ञा होती है। 'ङिच्च' से 'तातङ्' आदेश अन्त्य वर्ण के स्थान पर प्राप्त होता है; परन्तु परत्वात् 'अनेकाल्शित्सर्वस्य' के द्वारा सर्वादेश होता है।

'तु' के द्वारा लोट् प्र०पु० एकवचन तथा 'हि' के द्वारा लोट् म०पु० एकवचन का ही ग्रहण होता है।

(शङ्का) प्र०पु० बहुवचन के 'अन्तु' में 'तु' अंशतः होता है। अतः 'तु' के द्वारा इसका ग्रहण होना चाहिये। 'अर्थवद्ग्रहणे नाऽनर्थकस्य' परिभाषा से यहाँ इस 'तु' का ग्रहण नहीं होता।

'तु' तिप् का आदेशभूत होने से स्थानिवद्भाव से पित् है। 'अनुदात्तौ सुप्पितौ०' से यह अनुदात्त है। इसके स्थान पर होने वाला 'तातङ्' आदेश भी अनुदात्त होता है।

इसी प्रकार आतिदेशिक अपित्त्व के कारण उदात्त 'हि' को उदात्त 'तातङ्' ही होता है।

उदा० (1) जीवतात्
जीव् तिप्—आशिषि लिङ्लोटौ, लोट्, शप्,
जीवतु—एरुः,
जीवतात्—तातङ्।

(2) जीवतु—पक्ष में।

(3) जीवतात्
जीव हि—सिप्, शप्, सेर्ह्यपिच्च,
जीवतात्—तातङ्।

(4) जीव
पक्ष में—अतो हेः।

ङित्कर०—अष्टाध्यायी में प्रत्यय को ङित् करण के दो प्रयोजन होते हैं—

(क) **अन्तादेश**—ङित् होने से 'ङिच्च' से अन्तादेश होता है; यथा—आनङ् ऋतो द्वन्द्वे।

(ख) **गुण-वृद्धि-निषेध**—ङित् होने से इसके परे रहते 'क्ङिति च' से गुण व वृद्धि का निषेध होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यहाँ पर भी 'तातङ्' में ङकार अनुबन्ध जोड़ने में दो प्रयोजन हैं—

(क) **गुण-वृद्धि-निषेध**—तातङ् के ङित् होने से गुण व वृद्धि आदेशों का निषेध होता है; यथा—

(5) युतात्
यु तात्—शप्, शप् का लुक्, तातङ्, 'उतो वृद्धिर्लुकि हलि' से वृद्धि प्राप्त, उसका निषेध।

(6) द्विष्टात्
द्विष् तात्—शप्, शप् का लुक्, 'पुगन्तलघूपधस्य' से प्राप्त गुण का निषेध।

यहाँ ध्यातव्य है कि 'तातङ्' का ङित् करण गुण-वृद्धि-प्रतिषेध के लिये है; अन्तादेश के लिए नहीं है।

(ख) **पित्त्व-निवृत्ति**—'तातङ्' में ङकार अनुबन्ध का दूसरा प्रयोजन है—पित् धर्म की निवृत्ति। स्थानिवद्भाव से 'तातङ्' में पित्त्व प्राप्त है। इसे ङित् करने से पित्त्व की निवृत्ति हो जाती है। कहा गया है—ङिच्च पित्र, पिच्च ङित्र। इसके परिणाम-स्वरूप 'ब्रूतात्' में ईट् नहीं होता है।

(7) ब्रूतात्
ब्रू तातङ्—'ब्रुव ईट्' से प्राप्त 'ईट्' नहीं हुआ।

आशिषी०—आशीर्वाद अर्थ में ही 'तातङ्' होता है।

(8) गच्छतु ग्रामं भवान्
आशीर्वाद अर्थ नहीं है, सामान्य विधि है। 'तातङ्' नहीं हुआ।

(9) गच्छ त्वं ग्रामम्
पूर्ववत् 'तातङ्' नहीं हुआ।

तातङि०—'तातङ्' में ङकार अनुबन्ध गुण व वृद्धि के प्रतिषेध के लिये किया गया है। (इसका दूसरा प्रयोजन आतिदेशिक पित्त्व धर्म की निवृत्ति है)।

अन्त्य०—'ङिच्च' के द्वारा 'तातङ्' के विषय में अन्त्य विधि मानना अनुचित है। 'तातङ्' में 'ङ्' अन्तादेश के लिए नहीं है।

हेरधिका०—'अतो हेः' इससे 'हेः' का अधिकार सुलभ रहने पर भी 'हुझल्भ्यो हेर्धिः' में 'हेः' का ग्रहण लोपविधि में ज्ञापक है। इससे ज्ञापित होता है कि स्थानिवद्भावेन प्राप्त अथवा आदेशभूत 'हि' का लोप नहीं होता, अपितु 'हि' रूप से ही जो 'हि' है, उसी का लोप होता है।

तातङो०—'तातङ्' को ङित्त्व-सामर्थ्य से भी अन्तादेश नहीं माना जा सकता। तब अनेकाल् होने से यह सर्वादेश ही होता है।

न तद्व०—परन्तु 'अनङ्' आदि के विषय में ऐसा नहीं है। वहाँ तो अन्तादेश ही होता है।

(3212) विदे शतुर्वसुः *36* (3105)

'विद ज्ञाने'-इत्येतस्माद्धातोरुत्तरस्य शतुर्वसुरादेशो भवति। विद्वान्, विद्वांसौ, विद्वांसः। स्थानिवद्भावादुगित्कार्ये सिद्धे वसोरुकारकरणम् 'वसोः सम्प्रसारणम्' (6.4.131) इत्यत्र क्वसोरपि सामान्यग्रहणार्थम्। 'एकानुबन्धकग्रहणे न द्व्यनुबन्धकस्य' (व्या०प०) इत्येतदपि न भवति; तथा सत्युकारकरणमनर्थकं स्यात्। अन्यतरस्यांग्रहणं केचिदनुवर्त्तयन्ति। विदन्, विदन्तौ, विदन्तः।

अर्थ—विद् अङ्ग से उत्तर शतृ प्रत्यय के स्थान पर 'वसु' आदेश होता है। वसु के उकार की इत् सञ्ज्ञा है।

धातुपाठ में अनेक गणों में विद् धातु का पाठ प्राप्त होता है—

(क) विद सत्तायाम् (दि०),
(ख) विद विचारणे (रु०),

ये दोनों धातु आत्मनेपदी हैं। इनसे शतृ प्राप्त नहीं है। अतः इनका ग्रहण यहाँ सम्भव नहीं है।

(ग) विद् लाभे (तुदा०)
यह उभयपदी है। परस्मैपद की दशा में ही 'शतृ' प्राप्त है; परन्तु यहाँ 'श' विकरण का व्यवधान होने से इसका ग्रहण नहीं होता है।

(घ) विद (अदा०)।
यहाँ इसी आदादिक धातु का ग्रहण है।

उदा० (1) विद्वान्
विद् शतृ—लटः शतृशानचा०,
विद् अत्—शप्, शप् का लुक्,
विद् वसु सु—विभक्तिकार्य।

(2) विद्वांसौ
विद्वस् औ—पूर्ववत्, नुम्, उपधादीर्घ।

(3) विद्वांसः
विद्वस् जस्।

(4) विदन्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विद् शतृ—पक्ष में 'वसु' नहीं हुआ,
विदत् सु—विभक्तिकार्य।

(5) विदन्तौ
विद् औ—नुम् आदि।

(6) विदन्तः
विदत् जस्—पूर्ववत्।

स्थानिव०—शतृ के स्थान पर 'वसु' न करके 'वस्' कर दिया जाय तो मात्रालाघव होता है तथा स्थानिवद्भाव से 'वस्' उगित् होकर उससे वे सभी कार्य होते हैं, जो 'वसु' को प्राप्त हैं।

(समा०) 'वसु' में उकार अनुबन्ध का फल यह है कि 'वसोः सम्प्रसारणम्' में क्वसु आदि का सामान्य ग्रहण हो सके। 'एकानुबन्धकग्रहणे न द्व्यनुबन्धकस्य ग्रहणम्' (अर्थात् एक अनुबन्ध वाले शब्द के द्वारा दो अनुबन्ध वाले शब्द का ग्रहण नहीं होता है)—यह परिभाषा भी यहाँ लागू नहीं होती। यदि ऐसा होता तो उकार अनुबन्ध का जोड़ना व्यर्थ हो जाता।

अन्यतर०—कुछ विद्वान् इस सूत्र में 'अन्यतरस्याम्' का अनुवर्त्तन स्वीकार करते हैं। अतः पक्ष में विदन् आदि रूप भी बनते हैं।

(3213) समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् *37* (3332)

समासेऽनञ्पूर्वे 'क्त्वा' इत्येतस्य 'ल्यप्' इत्ययमादेशो भवति। प्रकृत्य। प्रहृत्य। पार्श्वतःकृत्य। नानाकृत्य। द्विधाकृत्य। समास इति किम्? कृत्वा। हृत्वा। अनञ्पूर्व इति किम्? अकृत्वा। अहृत्वा। परमकृत्वा। उत्तमकृत्वा। 'अनञ्' इति हि नञोऽन्यदनञ् नञ्सदृशमव्ययं परिगृह्यते। तेन नञ् अनव्ययं चानञ् न भवति। स्नात्वाकालकादिषु मयूरव्यंसकादिषु निपातनाल्ल्यबादेशो न भवति। अथ वा 'समासे' इति निर्धारणे सप्तमी। तेन क्त्वान्तः समास एव परिगृह्यते। स च 'येन विधिस्तदन्तस्य' (व्या०प०) इत्यनेन तदन्तविधिना, न तु 'कृदग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापि' (व्या०प०) इति। तथा च 'अनञ्पूर्वे' इत्युच्यते। गतिकारकपूर्वस्यैव तु ग्रहणे सति नञ्पूर्वस्य प्रसङ्ग एव नास्ति, नञ्न गतिः, न च कारकमिति (म०भा०)। प्रधाय, प्रस्थायेत्यादिषु हिप्रभृतीन् 'अन्तरङ्गानपि विधीन्बहिरङ्गो ल्यब्बाधत एव' (व्या०प०)-इति ज्ञापितमेतत्।

अर्थ—नञ् नहीं है पूर्वपद में जिसके, ऐसे समास में 'क्त्वा' प्रत्यय के स्थान पर 'ल्यप्' आदेश होता है।

लकार व पकार की इत्सञ्ज्ञा होती है। लित् स्वरार्थ है तथा पित्करण तुक् आगम के लिये हैं। क्त्वा के स्थान पर होने वाला 'ल्यप्' स्थानिवद्भाव से कित् व आर्धधातुक हुआ।

उदा० (1) प्रकृत्य
प्र कृ क्त्वा—समानकर्तृकयोः पूर्वकाले, एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् से इट् का निषेध,
प्र कृ क्त्वा—सार्वधातुकार्धधातु० से प्राप्त गुण का 'क्ङिति च' से निषेध, कुगतिप्रादयः से समास,
प्र कृ ल्यप्—अनुबन्धलोप,
प्र कृ त् य सु—ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्, प्रातिपदिक सञ्ज्ञा, क्त्वातोसुन्कसुनः,
प्रकृत्य—अव्ययादाप् सुपः।

(2) प्रहृत्य (पूर्ववत्)।

(3) पार्श्वतः कृत्य
पार्श्वतस् कृ क्त्वा—पूर्ववत् समास आदि,
पार्श्वतः कृत्य—ल्यप्, तुक्, सु।

(4) नानाकृत्य (पूर्ववत्)।

(5) द्विधाकृत्य (पूर्ववत्)।

समास०—समास में ही 'क्त्वा' के स्थान पर 'ल्यप्' होता है।

(6) कृत्वा
कृ क्त्वा—समास नहीं है, ल्यप् नहीं हुआ,
कृत्वा सु—प्रातिपदिक सञ्ज्ञा, सु, लुक्।

(7) हृत्वा (पूर्ववत्)।

अनञ्पूर्व०—नञ् नहीं है पूर्वपद में जिसके, ऐसे समास में 'क्त्वा' को 'ल्यप्' होता है।

(8) अकृत्वा
पूर्वपद में नञ् है, ल्यप् नहीं हुआ।

(9) अहृत्वा (पूर्ववत्)।

(10) परमकृत्वा (पूर्ववत्)।

अनञ्०— 'अनञ्' का अर्थ है—जो नञ् के सदृश है; परन्तु नञ् को छोड़कर। तब नञ् तथा अनव्यय अनञ् नहीं होता है। भाव यह है कि समास के पूर्वपद में नञ् से भिन्न कोई अव्यय हो तो क्त्वा को 'ल्यप्' होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्नात्वा०—स्नात्वाकालक आदि में मयूरव्यंसकादि के कारण निपातन से ल्यप् नहीं होता है।

अथवा०—अथवा 'समासे' इस पद में निर्धारण अर्थ में सप्तमी है। तब समासों में जो क्त्वा प्रत्ययान्त समास, उसका ही ग्रहण किया जाता है और 'येन विधिस्तद०' से तदन्तविधि से होता है; 'कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्याऽपि' इससे नहीं। इसीलिये अनञ्पूर्वे० ऐसा कहा जाता है। यदि गतिपूर्वक और कारकपूर्वक का ही ग्रहण होता है, तब नञपूर्वक क्त्वा के स्थान पर ल्यप् प्राप्त ही नहीं है। कारण कि नञ् की न तो गतिसञ्ज्ञा है; न ही कारकसञ्ज्ञा है।

प्रधाय०—प्रधाय व प्रस्थाय आदि स्थलों पर 'हि' आदि अन्तरङ्ग विधियों का बाध बहिरङ्ग ल्यप् से हो जाता है।

(12) प्रधाय

प्र धा क्त्वा—'दधातेर्हिः' से 'हि' प्राप्त होता है, जो अन्तरङ्ग है। ल्यप् बहिरङ्ग विधि है। तदपि ल्यप् आदेश 'हि' का बाध करता है,

प्र धा य सु—विभक्तिकार्य।

(13) प्रस्थाय

प्र स्था क्त्वा—'द्यतिस्यतिमास्थामिति किति' से इत्त्व प्राप्त है, इसे बाध कर 'ल्यप्' होता है।

न्यास में निम्नलिखित अतिरिक्त उदाहरण दिखाये गये हैं—

(14) प्रखन्य

प्र खन् क्त्वा—'जनसनखनाम्०' से आत्त्व प्राप्त था।

(15) प्रणम्य

प्र नम् क्त्वा—'अनुनासिकस्य क्विझलोः' से दीर्घादेश प्राप्त था।

(16) आपृच्छ्य

आ प्रच्छ् क्त्वा—'च्छ्वोः शूडनुनासिके च' से शत्व प्राप्त था।

(17) प्रतिदीव्य

प्रति दिव् क्त्वा—पूर्वसूत्र से 'ऊठ्' प्राप्त था।

(18) प्रपठ्य

प्र पठ् क्त्वा—वलादिक इट् प्राप्त था।

(3214) क्त्वापि छन्दसि *38* (3560)

समासेऽनञ्पूर्वे 'क्त्वा' इत्येतस्य 'क्त्वा' इत्ययमादेशो भवति, अपिशब्दाल्ल्यबपि भवति छन्दसि विषये। 'कृष्णां वासो यजमानं परिधापयित्वा' (काठ०सं० 6.8) 'प्रत्यञ्चमर्कं प्रत्यर्पयित्वा' (अथ० 2.12.55)। ल्यबपि भवति—'उद्धृत्य जुहोति' (काठ०सं० 6.8)। 'वा छन्दसि' इति नोक्तम्, सर्वोपाधिव्यभिचारार्थम्। तेनासमासे ल्यब्भवति—अर्च्य तान् देवान् गतः। छन्दोऽधिकारः 'आज्जसेरसुक्' (7.1.50) इति यावत्।

अर्थ—नञ् नहीं है पूर्वपद में जिसके, ऐसे समास में क्त्वा के स्थान पर क्त्वा होता है तथा ल्यप् भी (पर्यायेण) होता है, वेद के विषय में। 'अपि' पद के द्वारा विधि का व्यभिचार उपस्थित होता है।

उदा० (1) परिधापयित्वा (काठ० सं० 6.8)

परि धा णिच् क्त्वा—पुक् हुआ, 'क्त्वा' के स्थान पर 'ल्यप्' प्राप्त था; परन्तु नहीं हुआ।

(2) प्रत्यर्पयित्वा (शौ०सं० 12.2.55, 2.12.55.?)

पूर्ववत्—'ल्यप्' नहीं हुआ। 'अर्तिह्री०' से पुक् तथा 'पुगन्तलघूप०' से गुण।

(3) उद्धृत्य

उद् हृ क्त्वा—'ल्यप्' हुआ है,

उद्धृत्य—झयो होऽन्यतरस्याम्।

वा छन्दसि०—प्रकृत सूत्र के स्थान पर 'वा च्छन्दसि' पाठ में लाघव होता है; परन्तु 'अपि' पद का प्रयोग 'बहुलम्' पद के समानार्थ में ही होता है। अतः आचार्य ने सभी विधियों के व्यभिचारार्थ 'अपि' पद का प्रयोग किया है। तब असमास की दशा में भी 'ल्यप्' होता है।

(4) अर्च्य

अर्च् क्त्वा—'ल्यप्' प्राप्त नहीं था।

छन्दो०—'छन्दसि' पद का अधिकार 'आज्जसेरसुक्' (7.1.50) सूत्रपर्यन्त है।

(3215) सुपां सुलुक्पूर्वसवर्णाच्छेयाडाड्यायाजालः *39* (3561)

छन्दसि विषये सुपां स्थाने-सु, लुक्, पूर्वसवर्ण, आ, आत्, शे, या, डा, ड्या, याच्, आल्-इत्येते आदेशा भवन्ति। सु-'अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्थाः (ऋ० 10.84.23) पन्थान इति प्राप्ते। *सुपां सुपो भवन्तीति वक्तव्यम्* (ऋ० 10.85.23)। धुरि दक्षिणायाः (ऋ०

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

1.164.19)। दक्षिणायामिति प्राप्ते। *तिङां तिङो भवन्तीति वक्तव्यम्* (म०भा० 7.1.39)। चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति। (ऋ० 1.161.6)। तक्षन्तीति प्राप्ते। लुक्–'आर्दे चर्मन्' (तै०सं० 1.5.9.3)। लोहिते चर्मन्। चर्मणीति प्राप्ते। हविर्द्धनि यत्सुन्वन्ति तत्सामिधेनीरन्वाह। यस्मिन्सुन्वन्ति तस्मिन्सामिधेनीरिति प्राप्ते। पूर्वसवर्णः–'धीती' (ऋ० 1.164.8)। मती। 'सुष्टुती' (ऋ० 2.32.4)। धीत्या, मत्या, सुष्टुत्या इति प्राप्ते। आ–'उभा (द्वा) यन्तारा (तै०सं० 4.6.9.3)। उभौ यन्तारौ इति प्राप्ते। आत्–न ताद् ब्राह्मणाद् (ब्राह्मणान्) निन्दामि। तान् ब्राह्मणानिति प्राप्ते। शे–'न युष्मे वाजबन्धवः' (ऋ० 8.68.19)। 'अस्मे इन्द्राबृहस्पती' (ऋ० 4.49.4)। यूयं वयमिति प्राप्ते। यूयादेशः, वयादेशश्च छन्दसत्वान्न भवति। या–'उरुया' (मै०3.7.8)। धृष्णुया। उरुणा, धृष्णुनेति प्राप्ते। डा–'नाभा पृथिव्याम्' (अथ० 7.61.1)। नाभौ पृथिव्यामिति प्राप्ते। ड्या–'अनुष्टयौ च्यावयतात्' (तै० 4.13.4.25)। अनुष्टुभेति प्राप्ते। याच्–'साधुया' (ऋ० 10.66.12) साध्विति सोर्लुकि प्राप्ते। आल्–'वसन्ता यजेत' (मै०2.3.4)। वसन्त इति प्राप्ते। *इयाडियाजीकाराणामुपसंख्यानम्* (म०भा०)। इया–'उर्विया (परिख्यन्) परिधानम् (ऋ० 1.97.2)। दार्विया। उरुणा, दारुणेति प्राप्ते। डियाच्–सुक्षेत्रिया। सुगात्रिया। सुक्षेत्रिणा, सुगात्रिणेति प्राप्ते। ईकारः–'दृतिं न शुष्कं सरसी शयानाम्' (ऋ० 7.10.3.2)। सरसि शयानमिति प्राप्ते। *आङ्याजयारामुपसंख्यानम्*। आङ्–प्रबाहवा (ऋ० 2.28.2)। प्रबाहुनेति प्राप्ते। अयाच्–'स्वप्नया संचसेजनम्' (अथ० 5.7.8)। स्वप्नेनेति प्राप्ते। आयर्–सिन्धुमिव नवया (ऋ० 1.97.8)। नावेति प्राप्ते।

अर्थ—वेद में सुप् प्रत्ययों के स्थान पर सु, लुक्, पूर्वसवर्ण, आ, आत्, शे, या, डा, ड्या, याच् तथा आल् होते हैं।

उदा० (क) सुपां सु—

(1) पन्थाः (ऋ० 10.84.23)

पथिन् जस्—'जस्' के स्थान पर 'सु' हुआ।

पथिन् सु → पन्थाः।

सुपां—सुप् के स्थान पर अन्य सुप् हो जाता है, वेद में। न्यासकार ने पूर्वसूत्र से 'अपि' पद का अनुवर्त्तन किया है।[1] तब अनुक्त समुच्चय का ग्रहण होता है। 'अपि' पद सर्वोपाधि व्यभिचारार्थक होता है। अतः सुपों के स्थान पर अन्य सुप् हो जाया करता है।

(2) दक्षिणायाः (ऋ० 1.164.19)

दक्षिणा ङि—'ङस्' हो गया है।

तिङां०—वेद में तिङ् के स्थान पर भिन्न तिङ् हो जाता है।

(3) तक्षति (ऋ० 1.161.6)

तक्ष् झि—'तिप्' हो गया है।

(ख) सुपां लुक्—

(4) चर्मन् (तै०सं० 7.5.9.3)

चर्मन् ङि—'ङि' का लुक् हुआ।

(5) यत्

यद् ङि—प्रत्यय का लुक् हुआ।

(ग) पूर्वसवर्णः—

(6) धीती (ऋ०1.164.8)

धीती टा—पूर्वसवर्ण हुआ।

(7) मती

पूर्ववत् पूर्वसवर्ण।

(8) सुष्टुती (ऋ०2.32.4)

पूर्ववत्—टा।

(घ) सुपाम् आ—

(9) यन्तारा (तै०सं० 4.6.9.3)

यन्तृ औ—'औ' के स्थान पर 'आ' हुआ है।

यन्तार् आ—उपधादीर्घ।

(ङ) सुपाम् आत्—

(10) ताद् ब्राह्मणात्

यहाँ सुप् के स्थान पर 'आत्' आदेश हुआ है। काशिकाकार के अनुसार यहाँ शस् विभक्ति को 'आत्' हुआ है।[1] न्यासकार[2] तथा भट्टोजिदीक्षित[3] के अनुसार यहाँ 'अम्' को 'आत्' हुआ है।

(च) सुपां शे—

(11) युष्मे (ऋ० 8.68.19)

'जस्' के स्थान पर 'शे' आदेश हुआ है।

1. न्यास० 7.1.39—पूर्वसूत्रादपिशब्दोऽनुवर्त्तते।

1. काशि० 7.1.39—तान् ब्राह्मणान् इति प्राप्ते।
2. न्यास० 7.1.39—ब्राह्मणशब्दाच्च द्वितीयैकवचनं स्यात्।
3. वै०सि०कौ० सूत्र।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(12) अस्मे (ऋ० 4.49.4)
पूर्ववत् 'शे'।

(छ) सुपां या—
(13) उरुया (मै०सं० 3.7.8)
'टा' के स्थान पर 'या' हुआ है।

(14) धृष्णुया (मा०सं० 27.38) (पूर्ववत्)।

(ज) सुपां डा—
(15) नाभा (शौ०सं० 7.61.1)
'ङि' के स्थान पर 'डा' हुआ है।

(झ) सुपां ड्या—
(16) अनुष्ट्या (मै०सं० 4.13.4)
अनुष्टुभ् टा—'टा' के स्थान पर 'ड्या'—
अनुष्ट् या—टि का लोप।

(ञ) सुपां याच्—
(17) साधुया (ऋ० 1.46.11)
साधु सु—'स्वमोर्नपुंसकात्' से लुक् प्राप्त,
साधु याच्—'सु' को 'याच्' हुआ।

(ट) सुपाम् आल्—
(18) वसन्ता (मै०सं० 2.3.4)
'ङि' के स्थान पर 'आल्' हुआ

इयाडि—वेद में सुपों के स्थान पर इया, डियाच् तथा ईकार, आदेश होते हैं।

(19) उर्विया (ऋ० 1.97.2)
'टा' के स्थान पर 'इया' हुआ।

(20) दार्विया (पूर्ववत्)।
(21) सुक्षेत्रिया
सुक्षेत्रिन् टा—'टा' के स्थान पर 'डियाच्',
सुक्षेत्र् इया—टिलोप।

(22) सुगात्रिया
सुगात्रिन् डियाच्—पूर्ववत्।

(23) सरसी (ऋ० 7.103.2)
सरस् ङि—'ङि' के स्थान पर 'ई'।

आड्या०—वेद में सुप् प्रत्ययों के स्थान पर आङ्, अयाच् तथा अयार् आदेश होते हैं।

(24) प्रबाहवा (ऋ० 2.28.2)
'टा' के स्थान पर 'आङ्'।

(25) स्वप्नया (अथ० 5.7.8)
'टा' को 'अयाच्'।

(26) नावया (ऋ० 1.97.8)
'टा' के स्थान पर 'अयार्'।

(3216) अमो मश् *40* (3562)

'अम्' इति मिबादेशो गृह्यते। तस्य छन्दसि विषये मशादेशो भवति। 'वधीं वृत्रम्' (ऋ० 1.165.8)। क्रमीं वृक्षस्य शाखाम्। लुङि 'बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि (6.4.75) इत्यडागमाभावः। शित्करणं सर्वादेशार्थम्। मकारस्यापि हि मकारवचनमनुस्वारनिवृत्त्यर्थं स्यात्।

अर्थ—'अम्' के द्वारा 'मिप्' के आदेशभूत 'अम्' का ग्रहण होता है। वेद के विषय में 'अम्' को 'मश्' आदेश होता है। यह सर्वादेश होता है।

उदा० (1) वधीम् (ऋ० 1.165.8)
हन् स् अम्—मिप्, तस्थस्थमिपां०, सिच्,
हन् स् मश्—मिप्, अनुबन्धलोप,

वध् इट् स् ईट् म्—लुङि च, आर्धधातुकस्येड्०, अस्ति-सिचो०, इट ईटि,

वध् इ ई म्—बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपि, अट् अभाव।

(2) क्रमीम् (पूर्ववत्)।

शित्कर०—'मश्' को शित् सर्वादेशार्थ किया गया है। 'मश्' में अकार उच्चारणार्थ है।[1] मकार के स्थान पर मकार का विधान अनुस्वार की निवृत्ति के लिए है।

(3217) लोपस्त आत्मनेपदेषु *41* (3563)

आत्मनेपदेषु यस्तकारस्तस्य छन्दसि विषये लोपो भवति। 'देवा अदुह्र' (मै० 4.2.1)। गन्धर्वाप्सरसो अदुह्र। अदुहतेति प्राप्ते। 'दुह्रामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयम्' (ऋ० 1.64.27)। दुग्धामिति प्राप्ते। 'दक्षिणतः शये'। शेत इति प्राप्ते। अपीत्यधिकारान्न भवति–तत्र आत्मानमनृतं कुरुते। आत्मनेपदेष्विति किम्? 'वत्सं दुहन्ति कलशं चतुर्बिलम्' (तै०ब्रा० 3.7.4.16)।

अर्थ—आत्मनेपद में वर्त्तमान तकार का लोप होता है, वेद के विषय में।

उदा० (1) अदुह्र (मै०सं० 4.2.1)

1. न्यास० 7.1.40—अकार उच्चारणार्थः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दुह् अत्—लङ्, शप्, लुक्, आत्मनेपदेष्वनतः,
दुह् र् अ त—बहुलं छन्दसि, तकारलोप,
अ दुहर् अ अ—अतो गुणे।

(2) अदुहत
लोक में तकारलोप नहीं होता है।

(3) दुह्राम् (ऋ० 1.64.27)
दुह् झ—लोट्, शप्, शप् का लुक्, आत्मनेपदेष्वनतः,
दुह् अते—टि को एत्व, आमेतः,
दुह् अताम्—रुट् आगम, तकारलोप,
दुहर् अ आम्—अकः सवर्णे दीर्घः।

(4) दुग्धाम्
दुह् त—लोट्, शप्, शप् का लुक्,
दुहते—एत्व,
दुह् ताम्—आमेतः,
दुघ् ताम्—दादेर्धातोर्घः,
दुघ् धाम्—झषस्तथोर्धोऽधः,
दुग्धाम्—झलां जश् झशि। लोक में।

(5) शये
शी त—लट्,
शी शप् ते—शप्, टि को एत्व,
शे ते—शप् का लुक्, शीङः सार्वधातुके गुणः,
शे ए—तकारलोप, अयादेश।

(6) शेते
शी त—शप्, शप् का लुक्,
शेते—गुण, एत्व।

अपी०—'क्त्वाऽपि च्छन्दसि' से 'अपि' पद का अनुवर्त्तन है। अतः तकारलोप नहीं होता है।

(7) कुरुते
यहाँ तकारलोप नहीं हुआ।

आत्मने०—आत्मनेपद में वर्त्तमान तकार का लोप होता है।

(8) दुहन्ति
दुह् झि—शप्, शप् का लुक्,
दुह् अन्ति—आत्मनेपद नहीं है, अतः तकारलोप नहीं हुआ।

(3218) ध्वमो ध्वात् *42* (3564)

छन्दसि विषये ध्वमो ध्वादित्ययमादेशो भवति। 'अन्त-रे्वोष्मा॑णं॒ वारयध्वात्' (मै० 3.4.13)। वारयध्वमिति प्राप्ते।

अर्थ—'ध्वम्' के स्थान पर 'ध्वात्' आदेश होता है, वेद के विषय में।

उदा० (1) वारयध्वात्
वृ णिच्—हेतुमति णिच्,
वारि—वृद्धि, धातुसञ्ज्ञा,
वारि अ ध्वम्—लोट्, शप्,
वारयध्वात्—गुण, आय्, ध्वात्।

(2) वारयध्वम्
लोक में।

(3219) यजध्वैनमिति च *43* (3565)

'यजध्वम्' इत्येतस्य एनमित्येतस्मिन्परतो मकारलोपो निपात्यते वकारस्य च यकारश्छन्दसि विषये। 'यजं॑ध्वैनं प्रियमेधा॒ः' (ऋ० 8.2.37)। यजध्वमेनमिति प्राप्ते।

अर्थ—वेद के विषय में 'यजध्वैनम्' शब्द निपातनसिद्ध है।

उदा० (1) यजध्वैनम् (ऋ० 8.2.37)
यजध्वम् एनम्—मकारलोप निपातन से,
यजध्व एनम्—वृद्धिरेचि।

काशिकाकार 'यजध्वैनम्' के स्थान पर 'यजध्यैनम्' पाठ मानते हैं।[1] हरदत्त दोनों रूप स्वीकार करते हैं।[2] भट्टोजिदीक्षित इसे काशिकाकार का प्रमाद मानते हैं।[3]

(3220) तस्य तात् *44* (3566)

तशब्दस्य लोण्मध्यमपुरुषबहुवचनस्य स्थाने 'तात्' इत्ययमादेशो भवति। 'गात्रं॑गात्रम॒स्या नूनं॑ कृणुतात्' (तै० 4.3.4.25)। कृणुतेति प्राप्ते। 'ऊवध्य॒गोहं॑ पार्थिवं खनतात्' (तै० 4.13.4.25)। खनतेति प्राप्ते। 'अ॒स्नार॒क्षः सं॑सृं॒ज॒तात्' (तै० 4.13.4.25)। संसृजतेति प्राप्ते। सूर्यं॒ चं॑क्षु॒र्गम॑य॒तात्' (तै० 4.13.4.24)। गमयतेति प्राप्ते।

---

1. काशि० 7.1.43....वकारस्य च यकारश्छन्दसि विषये।
2. पदम० 7.1.43 बह्वृचास्तु वकारमेवाधीयते, तत्र मलोपमात्रं निपात्यते।
3. वै०सि०कौ० सूत्र 3565 वकारस्य यकारो निपात्यत इति वृत्तिकारोक्तिः प्रामादिकी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—वेद के विषय में लोट् मध्यम पुरुष बहुवचन के 'त' के स्थान पर 'तात्' आदेश होता है।

उदा० (1) कृणुतात् (तै०सं० 4.3.4.25)
कृ नु त—'तात्' हुआ, णत्व।

(2) कृणुत
लोक में।

(3) खनतात् (पूर्ववत्)।

(4) खनत
लोक में 'तात्' नहीं हुआ।

(5) संसृजतात्
सम् सृज् शप् त—'तात्' आदेश, अनुस्वार।

(6) संसृजत
लोक में।

(7) गमयतात्
गम् णिच् शप् त—पूर्ववत्।

(8) गमयत
लोक में 'तात्' नहीं हुआ।

(3221) तप्तनप्तनथनाश्च *45* (3567)

'तस्य' इति वर्त्तते। छन्दसि विषये तस्य स्थाने तप्, तनप्, तन, थन-इत्येते आदेशा भवन्ति। तप्-'शृणोत ग्रावाणः'। शृणुतेति प्राप्ते। 'सुनोतं' (ऋ० 7.32.8)। सुनुतेति प्राप्ते। तनप्-'संवर्त्रा दधातन' (ऋ० 10.101.5)। धत्तेति प्राप्ते। तन-'जुजुष्टन' (ऋ० 4.3.6.7)। जुषतेति प्राप्ते। छान्दसत्वात् श्लुः। थन-'यदिष्ठनं' (ऋ० 10.63.6)। यदिच्छतेति प्राप्ते। पित्करणमङित्त्वार्थम्।

अर्थ—'तकार के स्थान में'—इसका अनुवर्त्तन है। वेद के विषय में (लोट् मध्यम पुरुष बहुवचन) तकार के स्थान पर तप्, तनप्, तन तथा थन आदेश होते हैं।

उदा० (1) शृणोत
श्रु त—श्रुवः शृ च,
शृ श्नु त—'तप्' हुआ,
शृणोत—गुण, णत्व।
लोक में 'शृणुत' होता है।

(2) सुनोत (ऋ० 7.32.8)
षु → सु श्नु त—पूर्ववत्।
सुनोत—तप्, गुण,
लोक में 'सुनुत' होता है।

(3) दधातन (ऋ० 8.101.5)
दधात—'तनप्' हुआ। ङित्त्व के अभाव से श्नाऽभ्यस्तयो० की अप्राप्ति।
लोक में 'धत्त' होता है।

(4) धत्त
धा त → धा धा त—श्लु, द्वित्व,
द धा त—ह्रस्वः, अभ्यासे चर्च,
ध धा त—'दधस्तथोश्च' से अभ्यास के दकार के स्थान पर धकार,
ध ध् त—आकारलोप, झलां जश् झशि,
ध द् त—खरि च
धत्त—रूप बना।

(5) जुजुष्टन
जुष् त—श, 'बहुलं छन्दसि' से श्लु, द्वित्व,
जु जुष् तनप्—तनप् आदेश,
जुजुष्टन—ष्टुना ष्टुः।

(6) जुषत
लोक में 'तुदादिभ्यः शः'।

(7) यदिष्ठन
इष् त—शप्, 'बहुलं छन्दसि' से लुक्
इष् थन—ष्टुत्व।

(8) इच्छत
लोक में—इषुगमियमां छः, छे तुक्।

चकार पद के द्वारा 'तस्य' पद का अनुकर्षण होता है। 'अपि' पद का अधिकार होने से 'त' (लोट् म०पु० बहुवचन) से अन्यत्र भी 'तप्' आदि आदेश प्राप्त होते हैं।

(9) अब्रवीतन (ऋ० 1.161.3)
लङ् म०पु० बहुवचन का रूप है।

(10) अभूतन (शौ०सं० 4.37.5) (पूर्ववत्)।

(3222) इदन्तो मसि *46* (3568)

छन्दसि विषये मसित्ययं शब्द इकारान्तो भवति। मसः सकारान्तस्य इकारागमो भवति, स च तस्यान्तो भवति।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तद्ग्रहणेन गृह्यत इत्यर्थः। 'पुनस्त्वोद्दीपयामसि' (अथ० 12.2.5)। दीपयाम इति प्राप्ते। 'शलभं भञ्जयामसि' (पै० 2.20.4)। भञ्जयाम् इति प्राप्ते। 'त्वयि रात्रिं वासयामसि' (शौ० 19.47.9)। वासयाम इति प्राप्ते।

अर्थ—वेद के विषय में 'मस्' ह्रस्व इकार अवयव वाला होता है। सकारान्त मस् को इकार आगम होता है और वह उसका अन्त्य अवयव होता है।

उदा० (1) दीपयामसि (अथ० 12.2.5)
दीप् णिच् मस्—इकार हुआ,
दीपयामसि—शप् आदि।

(2) दीपयामः
लोक में।

(3) भञ्जयामसि (पै०सं० 2.20.4)
पूर्ववत् 'मसि'।

(4) भञ्जयामः
लोक में।

(5) वासयामसि (पूर्ववत्)।

(6) वासयामः
लोक में।

(7) वोचेम[1]
वच् मस्—आ० लिङ्०,
वच् अङ् यासुट् मस्—लिङ्याशिषि,
वच् अ इय् मस्—अतो येयः
व उम् चे य्स् मस्—वच उम्, 'छन्दस्युभयथा' से सार्वधातुक सञ्ज्ञा, लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य,
वोचेय् मस्—नित्यं ङितः, आद् गुणः,
वोचेम—लोपो व्योर्वलि, 'मस्' के सकार का लोप हो जाने पर भी 'एकदेशविकृतमनन्यवत्' परिभाषा से यह 'मस्' ही है, अतः इकार आगम प्राप्त हुआ। परन्तु यहाँ नहीं होता है। 'छन्दसि दृष्टानुविधिर्भवति' अथवा 'अपि' पद के अधिकार से इकार नहीं होता है।

(3223) क्त्वो यक् *47* (3569)

'क्त्वा' इत्येतस्य यगागमो भवति छन्दसि विषये। 'दुत्त्वाय (ऋ० 10.85.13) सविता धियः'। दत्त्वेति प्राप्ते। 'क्त्वापि छन्दसि' (7.1.38) इत्यस्यानन्तरमिदं कस्मान्नोच्यते? 'समासे' इति तत्रानुवर्त्तते।

अर्थ—वेद के विषय में 'क्त्वा' को 'यक्' आगम होता है।

ककार की इत्सञ्ज्ञा होती है। 'आद्यन्तौ टकितौ' से 'क्त्वा' का अन्त्य अवयव बनता है।

उदा० (1) दत्त्वाय (ऋ० 10.85.13)
दा क्त्वा—दो दद्घोः,
दद् त्वा—खरि च,
दत्त्वाय—यक् आगम, सु, लुक्।

क्त्वाऽपि०—प्रकृत सूत्र का पाठ 'क्त्वाऽपि छन्दसि' के पश्चात् किया जाना चाहिये।

(समा०) 'क्त्वाऽपि छन्दसि' सूत्र में 'समासे' पद का अनुवर्त्तन है। अतः प्रकृत सूत्र में 'समासे' पद का अधिकार प्राप्त होने लगेगा।

(3224) इष्ट्वीनमिति च *48* (3570)

'इष्ट्वीनम्'-इत्ययं शब्दो निपात्यते छन्दसि विषये। यजेः क्त्वाप्रत्ययान्तस्य ईनमादेशोऽन्त्यस्य निपात्यते। 'ईष्ट्वीनं देवान्' (आश्व०श्रौ०सू०पू० 204)। इष्ट्वा देवानिति प्राप्ते। पीत्वीनमित्यपीष्यते। चकारस्यानुक्त-समुच्चयार्थत्वात्सिद्धम्।

अर्थ—वेद के विषय में क्त्वाप्रत्ययान्त 'इष्ट्वीनम्' पद निपातन-सिद्ध है।

उदा० (1) इष्ट्वीनम् (आश्व०सू०पृ० 204)
यज् क्त्वा → इष्ट्वा—सम्प्रसारण (वचिस्वपियजा०),
इष्ट्व् ईनम्—'ईनम्' अन्तादेश।

पीत्वी०—चकार पद अनुक्त समुच्चय के अनुकर्षण के लिये है। यथा—
(2) पीत्वीनम्
पीत्वा ईनम् → पीत्वीनम्।

(3225) स्नात्व्यादयश्च *49* (3571)

'स्नात्वी'-इत्येवमादयः शब्दा निपात्यन्ते छन्दसि विषये। स्नात्वी मलेदिव (मै०सं० 3.11.10)। स्नात्वेति प्राप्ते। 'पीत्वी सोमस्य वावृधे' (ऋ० 3.40.7)। पीत्वेति प्राप्ते। प्रकारार्थोऽयमादिशब्दः।

1. यह उदाहरण काशिका में प्रदर्शित नहीं है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—वेद के विषय में स्नात्वी आदि शब्द निपातनसिद्ध हैं।

उदा० (1) स्नात्वी (मै०सं० 3.11.10)
स्ना क्त्वा → स्नात्वी।

(2) पीत्वी (ऋ० 3.40.6) (पूर्ववत्)।

प्रकारा०—प्रकृत सूत्र में 'आदि' शब्द प्रकारवाची है। अतः निम्नलिखित अन्य शब्द भी वेद में प्राप्त होते हैं—

(3) कृत्वी (ऋ० 10.15.12)।
(4) हित्वी (यजु० 33.93)

(3226) आज्जसेरसुक् *50* (3572)

अवर्णान्तादङ्गादुत्तरस्य जसेरसुगागमो भवति छन्दसि विषये। 'ब्राह्मणास्: पितर: सोम्यास: (ऋ० 6.75.10)। ब्राह्मणा: सोम्या इति प्राप्ते। 'ये पूर्वासो य उपरास:' (ऋ० 10.15.2)-इत्यत्र परत्वादसुकि पुनः प्रसङ्गविज्ञानाच्छीभाव: प्राप्त:, 'सकृद्गतौ विप्रतिषेधे यद्बाधितं तद्बाधितमेव' (व्या०प०) इति न भवति।

अर्थ—वेद के विषय में अवर्णान्त अङ्ग से उत्तर 'जस्' विभक्तियों को 'असुक्' आगम होता है।

इसके ककार व उकार की इत्सञ्ज्ञा होती है। कित् होने से यह 'जस्' का अन्त्य अवयव बनता है।

उदा० (1) ब्राह्मणास: (ऋ० 7.10.3.7)
ब्राह्मण जस्—असुक् आगम,
ब्राह्मण अस् अस्—अनुबन्धलोप,
ब्राह्मणास:—अक: सवर्णे दीर्घ:।

(2) ब्राह्मणा:
लोक में 'असुक्' नहीं होता है।

'पूर्वास:' इस स्थल पर 'जस्' के स्थान पर 'शी' आदेश तथा प्रकृत सूत्र से 'असुक्' आगम—इनकी युगपत् प्राप्ति होती है। परकार्य होने से प्रथम 'असुक्' आगम करने पर पुनः शीभाव की प्राप्ति हुई, परन्तु 'सकृद्गतौ विप्रतिषेधे यद्बाधितं तद्बाधितमेव' से शीभाव नहीं हुआ।

(3227) अश्वक्षीरवृषलवणानामात्मप्रीतौ क्यचि *51* (2662)

'छन्दसि' इत्यत:प्रभृति निवृत्तम्। अश्व, क्षीर, वृष, लवण-इत्येतेषामङ्गानामात्मप्रीतिविषये क्यचि परतोऽसुगागमो भवति। अश्वस्यति वडवा। क्षीरस्यति माणवक:। वृषस्यति गौ:। लवणस्यत्युष्ट्र:। आत्मप्रीताविति किम्? अश्वीयति। क्षीरीयति। वृषीयति। लवणीयति। *अश्ववृषयोर्मैथुनेच्छायामिति वक्तव्यम्* (म०भा०)। *क्षीरलवणयोर्लालसायामिति वक्तव्यम्* (म.भा.)। तृष्णातिरेक: = लालसा। अन्यत्रात्मप्रीतावपि न भवति। अपर आह-*सर्वप्रातिपदिकेभ्यो लालसायामसुग्वक्तव्य:* (म० भा०)। दध्यस्यति, मध्वस्यति इत्येवमाद्यर्थम्। अपर आह-*सुग्वक्तव्य:* (म०भा०)। दधिस्यति, मधुस्यति-इत्येवमाद्यर्थम्।

अर्थ—क्यच् प्रत्यय परे रहते अश्व, क्षीर, वृष तथा लवण—इन अङ्गों को 'असुक्' आगम होता है, 'आत्मप्रीति' अर्थ गम्यमान हो तो।

उदा० (1) अश्वस्यति वडवा।
आत्मनोऽश्वम् इच्छति—सुप आत्मन: क्यच्,
अश्व क्यच्—अनुबन्धलोप,
अश्व असुक् य—असुक् आगम,
अश्वस्य शप् तिप्—धातुसञ्ज्ञा, शप् आदि।

(2) क्षीरस्यति माणवक: (पूर्ववत्)।
(3) वृषस्यति गौ: (पूर्ववत्)
(4) लवणस्यत्युष्ट्र: (पूर्ववत्)।

आत्मप्री०—**आत्मप्रीति** अर्थ गम्यमान हो तो 'असुक्' आगम होता है।

(5) अश्वीयति
अश्वम् इवाऽऽचरति—'उपमानादाचारे' 'आत्मप्रीति' अर्थ न होने से 'असुक्' नहीं हुआ, 'क्यचि च',
अश्व क्यच्—शेष पूर्ववत्।

(6) वृषीयति
वृषम् इवाऽऽचरति—पूर्ववत् क्यच्, असुक् की अप्राप्ति, 'क्यचि च' आदि।

(7) क्षीरीयति
'अश्वीयति' की तरह।

(8) लवणीयति
'अश्वीयति' की तरह।

अश्व०—'मैथुनेच्छा' गम्यमान हो तो अश्व और वृष अङ्गों को 'असुक्' आगम होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्षीर०—'लालसा' गम्यमान हो तो क्षीर तथा लवण अङ्गों को 'असुक्' आगम होता है।

अपर०—कुछ विद्वानों के अनुसार 'लालसा' अर्थ गम्यमान हो तो सभी प्रातिपदिकों को 'असुक्' आगम होता है।

(9) दध्यस्यति
दधि क्यच्—क्यच् हुआ,
दधि असुक् य—यणादेश, धातुसञ्ज्ञा,
दध्यस्यति—तिप, शप्, अतो गुणे।

(10) मध्वस्यति
मधु असुक् क्यच्—शेष पूर्ववत्।

अपर०—अन्य विद्वान् 'लालसा' अर्थ गम्यमान हो तो 'असुक्' के स्थान पर 'सुक्' आगम स्वीकार करते हैं। उकार व ककार की इत्सञ्ज्ञा होती है।

(11) दधिस्यति
दधि क्यच्—'क्यच्' हुआ,
दधि स् य—सुक्, धातुसञ्ज्ञा,
दधिस्यति—तिप्, शप्, पररूप।

(12) मधुस्यति
मधु सुक् क्यच्—शेष पूर्ववत्।

(3228) आमि सर्वनाम्नः सुट् *52* (217)

'आत्' इति वर्त्तते। अवर्णात्सर्वनाम्न उत्तरस्यामः सुडागमो भवति। सर्वेषाम्। विश्वेषाम्। येषाम्। तेषाम्। सर्वासाम्। यासाम्। तासाम्। आदित्येव-भवताम्। 'आमि' इति षष्ठीबहुवचनं गृह्यते, न 'ङेराम्नद्याम्नीभ्यः, (8.3.16) इति, तस्य हि परत्वादाङ्याट्स्याटो भवन्ति। यश्च 'किमेत्तिङव्ययघादामुः' (5.4.11), 'आम् च लिटि' (3.1.35); न तौ सर्वनाम्नः स्तः। सानुबन्धकाविति वा, तौ न गृह्येते। 'आमि' इति सप्तमीनिर्देशं उत्तरार्थः। इह तु 'सर्वनाम्नः' इति पञ्चमीनिर्देशात् 'तस्मादित्युत्तरस्य' (1.1.67) इति षष्ठीप्रक्लृप्तिर्भविष्यति।

अर्थ—'आत्' का अनुवर्त्तन है। अवर्णान्त सर्वनामसञ्ज्ञक अङ्ग से उत्तर 'आम्' प्रत्यय को 'सुट्' आगम होता है।

'सुट्' के उकार व टकार की इत्सञ्ज्ञा होती है। टित् होने से यह 'आम्' का आदि अवयव बनता है।

उदा० (1) सर्वेषाम्
सर्व आम्—षष्ठी बहुवचन,
सर्व सुट् आम्—अनुबन्धलोप,
सर्वे स् आम्—बहुवचने झल्येत्,
सर्वेषाम्—आदेशप्रत्यययोः।

(2) विश्वेषाम्
विश्व आम्—पूर्ववत्।

(3) येषाम्
यद् आम्—त्यदादीनामः,
य अ आम्—अतो गुणे,
य सुट् आम्—शेष पूर्ववत्।

(4) तेषाम्
तद् आम् → त अ आम् → त आम्—
त सुट् आम्—पूर्ववत्।

(5) सर्वासाम्
सर्व टाप्—स्त्रियाम्, अजाद्यतष्टाप्,
सर्वा आम्—सुट्,
सर्वा स् आम्—अनुबन्धलोप।

(6) यासाम्
यद् → य अ → य टाप् → या—शेष पूर्ववत्।

(7) तासाम्
तद् → त अ → त टाप् → ता,
ता सुट् आम्—शेष पूर्ववत्।

आमि०—अष्टाध्यायी में 'आम्' चार स्थानों पर प्राप्त होता है—

(क) सुप् प्रत्यय—षष्ठी बहुवचन,

(ख) सुप् आदेश—'ङेराम्नद्याम्नीभ्यः' के द्वारा 'ङि' के स्थान पर प्राप्त 'आम्' आदेश,

(ग) 'किमेत्तिङाव्ययघादाम्व' से होने वाला 'आम्',

(घ) 'कास्प्रत्ययादाम्' से लिट् परे रहते होने वाला 'आम्'।

अन्तिम दो 'आम्' प्रत्ययों का यहाँ प्रयोजन नहीं हैं। ये दोनों 'आम्' सर्वनाम से प्राप्त नहीं हैं। 'आमि' इस पद के द्वारा षष्ठी बहुवचन का ही ग्रहण होता है, न कि 'ङेराम्नद्याम्नीभ्यः' के द्वारा प्राप्त 'आम्' आदेश का।

कारण कि, 'आम्' आदेश को परवर्त्ती होने से आट्, याट् व स्याट् हो जाते हैं।

आमि०—'आमि' इस पद में सप्तमी विभक्ति है। 'सर्वनाम्नः'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पद में पञ्चमी विभक्ति है। सप्तमी की अपेक्षा पञ्चमी बलवान् होती है। अतः यह 'सुट्' आगम सर्वनाम सञ्ज्ञक अङ्ग से उत्तर जो अव्यवहित 'आम्' विभक्ति, उसे होता है।

(3229) त्रेस्त्रयः *53* (264)

'त्रि' इत्येतस्य आमि परे 'त्रय' इत्ययमादेशो भवति। त्रयाणाम्। *त्रीणामित्यपि छन्दसीष्यते*-त्रीणामपि समुद्राणामिति।

अर्थ—'आम्' परे रहते 'त्रि' अङ्ग के स्थान पर 'त्रय' आदेश होता है।

अनेकाल् होने से 'त्रय' सर्वादेश है। 'त्रेः' पद एकवचनान्त है। एकवचन का निर्देश अनुकरणवशात् है। भाव यह है कि 'त्रि' शब्द यहाँ 'तीन' इस संख्या का वाचक नहीं है, अपितु 'त्रि' एक अनुकरणात्मक शब्दस्वरूप है।

उदा० (1) त्रयाणाम्
त्रि आम् → त्रय आम्—
त्रय नुट् आम्—ह्रस्वनद्यापो नुट्,
त्रयानाम्—नामि, अट्कुप्वाङ्नुम्०।

त्रीणामि०—वेद में 'त्रीणाम्' भी प्राप्त होता है। वेद में सभी विधियाँ विकल्प से प्रवृत्त होती हैं। अतः 'त्रय' आदेश नहीं हुआ।

(3230) ह्रस्वनद्यापो नुट् *54* (208)

ह्रस्वान्तान्नद्यन्तादाबन्ताच्चोत्तरस्यामो नुडागमो भवति। ह्रस्वान्तात्तावत्-वृक्षाणाम्। प्लक्षाणाम्। अग्नीनाम्। वायूनाम्। कर्तॄणाम्। नद्यन्तात्-कुमारीणाम्। किशोरीणाम्। गौरीणाम्। शार्ङ्गरवीणाम्। लक्ष्मीणाम्। ब्रह्मबन्धूनाम्। वीरबन्धूनाम्। मालानाम्। बहुराजानाम्। कारीषगन्ध्यानाम्।

अर्थ—ह्रस्ववर्णान्त, नदीसञ्ज्ञक, तदन्त तथा आप् प्रत्ययान्त अङ्गों से उत्तर 'आम्' प्रत्यय को 'नुट्' आगम होता है।

इसके उकार व टकार की इत्सञ्ज्ञा होती है। 'नुट्' टित् होने से 'आम्' का आदि अवयव बनता है।

जिसके अन्त में ह्रस्व अच् वर्ण हो, उसे ह्रस्वान्त कहा जाता है। 'यूस्त्याख्यौ नदी' के द्वारा नदीसञ्ज्ञा होती है। 'आप्' के द्वारा टाप्, चाप् व डाप्—इन तीनों स्त्रीप्रत्ययों का ग्रहण होता है। जिस शब्द के अन्त में टाप् आदि प्रत्यय हों, वह आबन्त कहलाता है।

उदा० (क) ह्रस्वान्तात्—

(1) वृक्षाणाम्
वृक्ष आम्—ष० बहुवचन,
वृक्ष नुट् आम्—नुट्, अनुबन्धलोप,
वृक्षानाम्—नामि, अट्कुप्वाङ्नुम्०।

(2) प्लक्षाणाम्
प्लक्ष आम्—शेष पूर्ववत्।

(3) अग्नीनाम्
अग्नि आम्—ष० बहुवचन,
अग्नि नुट् आम्—नुट्,
अग्नीन् आम्—'नामि' से दीर्घ।

(4) वायूनाम्
वायु न् आम्—पूर्ववत्।

(5) कर्तॄणाम्
कर्तृ नुट्—आम्—पूर्ववत्,
कर्तॄणाम्—नामि, ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्।

(6) हर्तॄणाम् (पूर्ववत्)।

(ख) नद्यन्तात्—

(7) कुमारीणाम्
कुमारी आम्—नदी सञ्ज्ञा, ष० बहुवचन,
कुमारी नुट् आम्—शेष पूर्ववत्।

(8) किशोरीणाम् (पूर्ववत्)।
(9) गौरीणाम् (पूर्ववत्)।
(10) शार्ङ्गरवीणाम् (पूर्ववत्)।
(11) लक्ष्मीणाम् (पूर्ववत्)।

(12) ब्रह्मबन्धूनाम्
नदी सञ्ज्ञा, शेष पूर्ववत्।

(13) वीरबन्धूनाम् (पूर्ववत्)।

(ग) आबन्तात्—

(14) मालानाम्
माला आम्—टाप् प्रत्ययान्त 'माला' शब्द,
माला न् आम्—शेष पूर्ववत्।

(15) बहुराजानाम्
बहुराजा आम्—'डाबुभाभ्यामन्यतरस्याम्' से 'डाप्' होकर 'बहुराजा' बनता है, शेष पूर्ववत्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(16) कारीषगन्ध्यानाम्

कारीषगन्धेरपत्यम्—इस अर्थ में 'अण्' होता है, पश्चात् 'अणिञोरनार्ष०' से 'ष्यङ्' आदेश, तब 'यङश्चाप्' से 'चाप्' हुआ।

कारीषगन्ध्या आम्—'आम्' हुआ, शेष पूर्ववत्।

(3231) षट्चतुर्भ्यश्च *55* (338)

षट्संज्ञकेभ्यश्चतुःशब्दाच्चोत्तरस्यामो नुडागमो भवति। षण्णाम्। पञ्चानाम्। सप्तानाम्। नवानाम्। दशानाम्। चतुर्णाम्। रेफान्तायाः संख्यायाः षट्संज्ञा न विहिता; 'षड्भ्यो लुक्' (7.1.22) इति लुग्मा भूत्। बहुवचन-निर्देशादत्र संख्याप्रधानस्य ग्रहणं भवति–परमषण्णाम्। परमपञ्चानाम्। परमसप्तानाम्। परमचतुर्णाम्। उपसर्जनी-भूतायास्तु संख्याया न भवति–प्रियषषाम्, प्रियपञ्चाम्, प्रियचतुरामिति।

अर्थ—षट्सञ्ज्ञक अङ्ग तथा चतुर अङ्ग से उत्तर 'आम्' प्रत्यय को 'नुट्' आगम होता है।

'ष्णान्ताः षट्' से षट्सञ्ज्ञा होती है।

उदा० (1) षण्णाम्

षष् आम्—षट् सञ्ज्ञा,

षष् न् आम्—नुट् आगम,

षड् नाम्—यरोऽनुनासिकेऽनु०,

षण्णाम्—ष्टुना ष्टुः।

(2) पञ्चानाम्

पञ्चन् आम्—षट् सञ्ज्ञा, नुट्,

पञ्चन् न् आम्—अनुबन्धलोप,

पञ्चान् नाम्—'नोपधायाः' से दीर्घ, 'स्वादिष्वसर्व०'

पञ्चानाम्—नलोपः प्रातिपदिका०।

(3) सप्तानाम्

सप्तन् न् आम्—पूर्ववत्,

सप्तान् नाम् → सप्तानाम्।

(4) अष्टानाम्

पूर्ववत्। 'अष्टन आ विभक्तौ' से आकार।

(5) नवानाम् (पूर्ववत्)।

(6) दशानाम्

दशन् आम्—पूर्ववत्।

(7) चतुर्णाम्

चतुर् न् आम्—पूर्ववत्,

चतुर्णाम्—रषाभ्यां नो णः समा०।

पक्ष में 'अचो रहाभ्यां द्वे' से णकार को द्वित्व।

रेफान्ता०—रेफान्त की षट् सञ्ज्ञा नहीं होती है। तब 'चतुर् जस्/शस्' इस स्थिति में 'षड्भ्यो लुक्' की प्रवृत्ति नहीं होती है। अतः सूत्र में 'चतुर्' शब्द का पृथक् पाठ किया गया है।

बहुवचन का निर्देश होने से संख्याप्रधान का ही ग्रहण होता है।

(8) परमषण्णाम्

यहाँ नुट् हुआ है।

(9) परमपञ्चानाम्

पूर्ववत् नुट्।

(10) परमसप्तानाम् (पूर्ववत्)।

(11) परमचतुर्णाम् (पूर्ववत्)।

गौण होने की दशा में उस संख्या का ग्रहण नहीं होता है।

(12) प्रियपञ्चाम्

प्रिय पञ्च् न् आम्

प्रिय पञ्च् ञ् आम्—स्तोः श्चुना श्चुः।

(13) प्रियचतुराम्

'चतुर्' शब्द के गौण होने से 'आम्' को नुट् नहीं हुआ। तब रूप बनता है।

(3232) श्रीग्रामण्योश्छन्दसि *56* (3573)

श्री, ग्रामणी–इत्येतयोश्छन्दसि विषये आमो नुडागमो भवति। श्रीणामुदारो धरुणो रयीणाम् (ऋ० 10.45.5) 'अप्यत्र सूतग्रामणीनाम्' (का० 28.3)। श्रीशब्दस्य 'वामि' (1.4.5) इति विकल्पेन नदीसंज्ञा, तत्र नित्यार्थं वचनम्। सूतग्रामणीनामिति–यदा सूताश्च ग्रामण्यश्च सूतग्रामण्यो भवन्ति, तदर्थमिदं वचनम्। यदा तु सूतश्च ग्रामणीश्च सूतग्रामणि, सूतग्रामणि च सूतग्रामणि च सूतग्रामणि चेति सूतग्रामणीनामिति, तदा 'ह्रस्वात्' (7.1.54) इत्येव सिद्धम्।

अर्थ—वेद के विषय में श्री तथा ग्रामणी अङ्गों से उत्तर 'आम्' विभक्ति को 'नुट्' आगम होता है।

उदा० (1) श्रीणाम् (ऋ० 10.45.5)

श्री आम्—'नुट्' हुआ,

श्री न् आम्—णत्व।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(2) सूतग्रामणीनाम् (का०सं० 28.3) (पूर्ववत्)।

श्रीशब्द०—'वाऽऽमि' से श्री शब्द की विकल्प से नदी-सञ्ज्ञा होती है, उसमें नित्य 'नुट्' करने के लिए 'श्री' शब्द का यहाँ पाठ है।

जब सूताश्च ग्रामण्यश्च—सूतग्रामण्यः इस प्रकार विग्रह किया जाता है तो इसके लिए सूत्र में 'ग्रामणी' शब्द का पाठ किया गया है।

जब 'सूतग्रामणि च सूतग्रामणि च सूतग्रामणि च' इस प्रकार विग्रह किया जाता है तो 'आम्' को 'नुट्' आगम 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' से सिद्ध है अर्थात् इस दशा में प्रकृत सूत्र की आवश्यकता नहीं होती है।

(3233) गोः पादान्ते *57* (3574)

'गो' इत्येतस्मादृक्पादान्ते वर्त्तमानादुत्तरस्यामो नुडागमो भवति। विद्मा हि त्वा सत्पतिं शूरगोनाम् (ऋ० 10.47.2)। पादान्त इति किम्? 'गवां गोत्रमुदसृजो यदङ्गिरः' (ऋ० 2.23.18)। 'सर्वे विधयश्छन्दसि विकल्प्यन्ते' (व्या०प०) इति पादान्तेऽपि क्वचिन्न भवति। 'हन्तारं शत्रूणां कृधि विराजं गोपतिं गवाम्' (ऋ० 10.166.1)।

अर्थ—ऋक्पाद के अन्त में वर्त्तमान 'गो' शब्द से उत्तर जो 'आम्' विभक्ति, उसे 'नुट्' आगम होता है।

यहाँ 'छन्दसि' पद का अधिकार है। अतः 'पाद' शब्द के द्वारा ऋक् पाद का ग्रहण होता है तथा श्लोक का पाद यहाँ गृहीत नहीं है।

उदा० (1) गोनाम् (ऋ० 10.47.1)
गो आम्—ऋचा के पाद के अन्त में है, अतः 'नुट्' आगम हुआ,
गो न् आम्—नुट्।

(2) गवाम् (ऋ० 2.23.18)
ऋचा के पाद के मध्य में 'नुट्' नहीं हुआ।

पादान्त०—पादान्त में ही 'आम्' को 'नुट्' होता है। 'सर्वे विधयश्छन्दसि विकल्प्यन्ते' परिभाषा के द्वारा पाद के अन्त में भी कभी-कभी नुट् नहीं होता है। द्र०—
हन्तारं शत्रूणां···गवाम्।

(3234) इदितो नुम् धातोः *58* (2262)

इदितो धातुर्नुमागमो भवति। कुडि–कुण्डिता, कुण्डितुम्, कुण्डितव्यम्, कुण्डा। हुडि–हुण्डिता, हुण्डितुम्, हुण्डितव्यम्, हुण्डा। इदित इति किम्? पचति। पठति। अयं धातूपदेशावस्थायामेव नुमागमो भवति (भ०भा०)–कुण्डा, हुण्डेति; 'गुरोश्च हलः' (3.3.103) इत्यकार-प्रत्ययो यथा स्यात्। तथा हि–'धिन्विकृण्योर च' (3.1.80) इति प्रत्ययविधावेव नुमनुषक्तयोर्ग्रहणम्। धातुग्रहणं चेह क्रियते–धातूपदेशकाल एव नुमागमो यथा स्यादित्येवमर्थम्। तासिसिचोरिदित्कार्यं नास्ति–इत्युच्चारणार्थो निरनुनासिक इकारः पठ्यते। अमंस्तेत्येवमादौ हि 'हनः सिच्' (1.2.24) इति कित्त्वविधानसामर्थ्यान्नकारलोपो न भवति। मन्ता–इत्यत्रापि 'असिद्धवदत्राभात्' (6.4.22) इति टिलोपस्यासिद्धत्वान्नलोपो न भवति। इह कस्मान्न भवति–भेत्ता, छेत्तेति? 'इरितां समुदायस्येत्संज्ञा' (4.2.57) इतीदित्त्वं नास्ति। अवयवशोऽपीत्संज्ञायां सत्याम् 'गोः पादान्ते' (7.1.57) इत्यतोऽन्तग्रहणमनुवर्त्तयितव्यम्। तेनान्तेदितो धातवो गृह्यन्ते।

अर्थ—इदित् जो धातु, उसे 'नुम्' आगम होता है।

'नुम्' के उकार तथा मकार की इत्सञ्ज्ञा होती है। जिस धातु का इत् (= ह्रस्व इकार) की इत्सञ्ज्ञा होती है, उसे इदित् धातु कहते हैं।

उदा० (1) कुण्डिता
कुडि → कुन् ड्—इकार की इत्सञ्ज्ञा, नुम्, मिदचोऽ०, नश्चाऽपदान्त०, अनुस्वारस्य०,
कुण्ड् तृ—आर्धधातुक सञ्ज्ञा, आर्धधातुकस्येड्० से इट्,
कुण्डितृ सु—विभक्तिकार्य।

(2) कुण्डितुम्
कुण्ड् तुम्—पूर्ववत् 'नुम्' आदि,
कुण्ड् इट् तुम्—इट्, सु, सुलुक्।

(3) कुण्डितव्यम्
कुण्ड् इ तव्यत्—पूर्ववत्।

(4) कुण्डा
कुण्ड्—पूर्ववत् 'नुम्',
कुण्ड् अङ् टाप् सु—विभक्तिकार्य।

(5) हुण्डिता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हुडि → हु न् ड—इत्सञ्ज्ञा, इदितो नुम् धातोः,
हुण्ड् इट् तृच्—अनुस्वार, परसवर्ण, इट्,
हुण्डिता—सु।

(6) हुण्डितुम्
हुण्ड् तुम्—पूर्ववत् नुम् आदि,
हुण्ड् इट् तुम्—इट्, सु।

(7) हुण्डितव्यम्
हुण्ड्—पूर्ववत्,
हुण्ड् इ तव्यत्—सु।

(8) हुण्डा
हुण्ड्—पूर्ववत्,
हुण्ड् अ टाप् सु—पूर्ववत्।

इदित०—इदित् धातु को 'नुम्' आगम होता है।

(9) पचति
पच → पच्—अकार की इत्सञ्ज्ञा है,
पच् शप् तिप्—इदित् न होने से 'नुम्' नहीं हुआ, तिप् हुआ, शप् हुआ।

अयं०—'नुम्' आगम उपदेश अवस्था में ही होता है। यदि उपदेश अवस्था में 'नुम्' नहीं करेंगे तो गुरुसंज्ञा के अभाव में 'गुरोश्च हलः' की प्राप्ति नहीं हो सकेगी। यथा 'धिन्विकृण्व्योर च' में प्रत्ययविधि में नुम् आगम वाले ही दोनों धातुओं का ग्रहण है।

धातुग्रह०—प्रकृत सूत्र में 'धातोः' पद के ग्रहण का प्रयोजन यह है कि धातु के उपदेशकाल में ही 'नुम्' होता है। तासि और सिच् प्रत्ययों के की इकार की इत्सञ्ज्ञा नहीं है। वहाँ यह उच्चारणार्थ है। अतः उनसे इदिल्लक्षण कार्य नहीं होता है।

'अमंस्त'[1] इत्यादि में 'हनः सिच्' से कित्त्वविधान के सामर्थ्यवशात् नकारलोप नहीं होता है। 'मन्ता'[1] इस स्थल पर भी 'असिद्धवदत्राभात्' से टिलोप के असिद्ध हो जाने से नकार-लोप नहीं होता है।

इह कस्मा०—भेत्ता तथा छेत्ता में इदिल्लक्षण कार्य क्यों नहीं होता है ? 'इर इत्सञ्ज्ञा वाच्या' से 'इर्' इस समग्र समुदाय की इत् सञ्ज्ञा होती है; केवल इकार की नहीं। अतः 'भेत्ता' आदि में इदिल्लक्षण कार्य नहीं होता है।

अवयवो०—यदि एक-एक अवयव[2] की इत्सञ्ज्ञा मान ली जाय तो 'गोः पादान्ते' सूत्र से 'अन्ते' का अनुवर्त्तन करने से कोई दोष प्रसक्त नहीं होता है। अन्ते पद का अनुवर्त्तन करने पर सूत्रार्थ इस प्रकार होता है—

अन्त में इत्सञ्ज्ञक ह्रस्व इकार है जिस धातु के, उस धातु को 'नुम्' आगम होता है।

इस प्रकार सूत्रार्थ करने पर कोई दोष नहीं रहता है।

(3235) शे मुचादीनाम् *59* (2542)

शे प्रत्यये परतो मुचादीनां नुमागमो भवति। मुच्ल्र-मुञ्चति। लुप्ल्र-लुम्पति। विद्ल्र-विन्दति। लिपि-लिम्पति। सिच्-सिञ्चति। कृती-कृन्तति। खिद-खिन्दति। पिश-पिंशति। शे इति किम् ? मोक्ता, मोक्तुम्, मोक्तव्यम्। मुचादीनामिति किम् ? तुदति, नुदति। *शे तृम्फादीनामुपसंख्यानं कर्त्तव्यम्* (म०भा०)। के पुन-स्तृम्फादयः ? 'तृफ तृम्फ तृप्तौ' (धा०पा० 1308-9)। 'दृफ दृम्फ उत्क्लेशे' (धा०पा० 1314-15), 'गुफ गुम्फ ग्रन्थे' (धा०पा० 1318-19); 'उभ उम्भ पूरणे' (धा०पा० 1320-21), 'शुभ शुम्भ शोभार्थे' (धा० पा० 1322-23)-इत्यत्र ये सानुषङ्गास्तृम्फादयः, तेषाम् 'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति' (6.4.24) इत्यनु-नासिकलोपे कृते नुम्विधीयते, स च विधानसामर्थ्यान्न लुप्यते-तृम्फति, दृम्फति, गुम्फति, उम्भति, शुम्भति। ये तु निरनुषङ्गाः, तेषां तृफति, दृफति, गुफति, उभति, शुभतीत्येवं भवति।

1. मन् त—लुङ् प्र०पु० एकव०, मन् सिच् त—च्लि, च्लेः सिच्; अमंस्त—चकार की इत्सञ्ज्ञा तथा इकार की निवृत्ति, अट् आगम। सिच् का इकार उच्चारणार्थ है, यदि इकार की इत् सञ्ज्ञा होती तो सिच् इदित् होता। चूँकि 'अमंस्त' में अनुनासिक लोप नहीं होता है; अतः सिच् इदित् नहीं है। यदि सिच् इदित् होता तो 'हनः सिच्' से हन् से उत्तर सिच् को कित् करना व्यर्थ हो जाता है। कारण कि सिच् के इदित् पक्ष में अनुनासिक लोप स्वतःसिद्ध है। अतः 'हनः सिच्' से कित्त्व-विधान व्यर्थ होकर ज्ञापित करता है कि सिच् को इदिल्लक्षण कार्य नहीं होते हैं।

1. मन् तास् डा—लुट्; मन् त् आ—टिलोप। टिलोप के असिद्ध होने से नकारलोप नहीं हुआ। यदि तासि को इदित मानते हैं तो यहाँ अनुनासिक लोप होकर अनिष्ट रूप की प्राप्ति होती है। इससे सिद्ध होता है कि 'तासि' में इकार उच्चारणार्थ है तथा उस इकार की इत्सञ्ज्ञा नहीं होती है।

2. 'उपदेशेऽजनुनासिक इत्' से इकार की तथा 'हलन्त्यम्' से रेफ की इत्सञ्ज्ञा करके 'इर्' इस शब्द की इत्सञ्ज्ञा की जा सकती है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—'श' प्रत्यय परे रहते मुच् आदि धातुओं को 'नुम्' का आगम होता है।

मुच् आदि आठ धातुओं का पाठ तुदादिगण के अन्त में है। 'तुदादिभ्यः शः' से सार्वधातुक लकारों (लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ्) में 'श' विकरण होता है। शतृ व शानच् की 'तिङ् शित् सार्वधातुकम्' से सार्वधातुक सञ्ज्ञा होती है। अतः शतृ व शानच् में भी 'श' होता है।

उदा० (1) मुञ्चति
मुच् तिप्—लट्, प्र०पु०एकवचन,
मुच् श तिप्—शप् को बाध कर 'श',
मु न् च् अ ति—अनुबन्धलोप, नुम्,
मुञ्चति—'नश्चाऽपदान्तस्य झलि' से अनुस्वार तथा 'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः' से परसवर्ण। यहाँ ध्यातव्य है कि 'सार्वधातुकमपित्' से 'श' ङिद्वत् होकर इसके परे रहते 'अनिदितां हल उपधा०' से अनुनासिकलोप प्राप्त होता है; परन्तु वचनसामर्थ्य से नहीं होता है।

(2) लुम्पति
लुप् श ति—तिप्, श,
लु न् प् अ ति—नुम्, अनुस्वार, परसवर्ण।

(3) विन्दति
वि न् द् श ति—पूर्ववत् 'श' विकरण, नुम् आगम, अनुस्वार तथा परसवर्ण।

(4) लिम्पति
लि न् प् श ति—पूर्ववत् 'श' विकरण, नुम् आगम, अनुस्वार, परसवर्ण।

(5) सिञ्चति
सि न् च् अ ति—पूर्ववत् 'श' विकरण, नुम् आगम, अनुस्वार तथा परसवर्ण।

(6) कृन्तति
कृ न् त् अ ति—पूर्ववत् सभी कार्य।

(7) खिन्दति
खि न् द् अ ति—पूर्ववत्।

(8) पिंशति
पि न् श् अ ति—अनुस्वार को परसवर्ण नहीं होता है। शेष कार्य पूर्ववत्।

श इति०—श प्रत्यय परे रहते 'नुम्' होता है।

(9) मोक्ता
मुच् तृ—'श' परे नहीं है, 'नुम्' नहीं हुआ,
मोच् तृ → मोक्तृ—'पुगन्तलघूपधस्य च' से लघूपधगुण तथा कुत्व होकर,
मोक्ता—सु।

(10) मोक्तुम्
मुच् तुमुन्—पूर्ववत् नुम् नहीं हुआ,
मोक् तुम् सु—लघूपधगुण, कुत्व।

(11) मोक्तव्यम्
मुच् तव्यत्—नुम् नहीं हुआ,
मोक् तव्य सु—पूर्ववत्।

मुचादी०—मुच् आदि आठ धातुओं को ही 'नुम्' आगम होता है।

(12) तुदति
तुद् श तिप्—'श' हुआ, 'नुम्' नहीं हुआ।

(13) नुदति
पूर्ववत् 'नुम्' नहीं हुआ।

शे तृम्फा०—'श' प्रत्यय परे रहते तृम्फ् आदि धातुओं से नुम् आगम होता है। तृम्फ आदि धातु निम्नलिखित हैं—

तृफ तृम्फ तृप्तौ, दृफ दृम्फ उत्क्लेशे, गुफ गुम्फ ग्रन्थे, उभ उम्भ पूरणे, शुभ शुम्भ शोभार्थे। ये सानुषङ्ग धातु ही तृम्फादि कहे जाते हैं। यहाँ 'आदि' शब्द प्रकारवाची है। 'अनिदितां हल०' से इन धातुओं के अनुनासिक का लोप करने के पश्चात् नुम् का विधान किया जाता है। उस नुम् का विधानसामर्थ्य से लोप नहीं होता है।

(14) तृम्फति
तृम्फ् श तिप्—शप् को बाध कर 'श', इसे ङिद्वत् हुआ, तब अनुनासिकलोप हुआ,
तृ न् फ् अ ति—नुम्,
तृम्फति—अनुस्वार, परसवर्ण।

(15) दृम्फति
दृम्फ् श तिप्—पूर्ववत्।

(16) गुम्फति
सभी पूर्ववत्।

(17) उम्भति
सभी पूर्ववत्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(18) शुम्भति
सभी पूर्ववत्।

ये तु०—जो निरनुषङ्ग धातु हैं, उनको नुम् नहीं होता है। यथा—

(19) तृफति, (20) दृफति, (21) गुफति, (22) उभति, (23) शुभति।

(3236) मस्जिनशोर्झलि *60* (2517)

मस्जि, नशि–इत्येतयोरङ्गयोर्झलादौ प्रत्यये नुमागमो भवति। मङ्क्ता, मङ्क्तुम्, मङ्क्तव्यम्। नंष्टा, नंष्टुम्, नंष्टव्यम्। झलीति किम्? मज्जनम्। नशनम्। 'मस्जेरन्त्यात्पूर्वं नुममिच्छन्त्यनुषङ्गादिलोपार्थम्' (म० भा० 8.2.21)। मग्नः। मग्नवान्।

अर्थ—मस्ज् और नश् धातुओं को नुम् आगम होता है, झलादि प्रत्यय परे रहते।

उदा० (1) मङ्क्ता
मस्ज् तृ—'मिदचोऽन्त्यात्परः' से नुम् अन्त्य अच् से पर प्राप्त हुआ, 'मस्जेरन्त्यात् पूर्वं नुममिच्छन्त्य०' (1.1.46 वा०) से अन्त्य अल् से पूर्व नुम् हुआ,
मस् न् ज् तृ → मन्ज्तृ—स्कोः संयोगाद्यो० से सकारलोप,
म न् ग् तृ—'चोः कुः' से कुत्व,
म न् क् तृ—खरि च,
मङ् क्तृ—नश्चाऽपदा०, अनुस्वारस्य ययि०,
मङ्क्ता—सु।

(2) मङ्क्तुम्
मस्ज् तुमुन्—सभी कार्य पूर्ववत्।

(3) मङ्क्तव्यम्
मस्ज् तव्यत्—सभी कार्य पूर्ववत्।

(4) नंष्टा
नश् तृ—प्रत्यय हुआ, 'रधादिभ्यश्च' से पाक्षिक इट्,
न न् श् तृ—इट् अभाव पक्ष, नुम्,
न न् ष् तृ—व्रश्चभ्रस्ज०,
नंष्टा—ष्टुना ष्टुः, नश्चाऽपदान्त०, सु।

(5) नंष्टुम्
नश् तुमुन्—सभी कार्य पूर्ववत्।

(6) नंष्टव्यम्
नश् तव्यत्—पूर्ववत्।

अन्य उदाहरण (जो काशिका में प्रदर्शित नहीं हैं)।

(7) ममङ्क्थ
मस् न् ज् थल्—लिट्, सिप्, परस्मैपदानां णलतुसुस्०, पूर्ववत् नुम्,
म मस् न् ज् थ—भारद्वाज नियम से पाक्षिक इट्, इट् अभाव पक्ष, द्वित्व, हलादिः शेषः,
म म न् क् थ—पूर्ववत् सलोप, कुत्व, चर्त्व,
ममङ् क्थ—नश्चाऽपदान्तस्य०, अनुस्वारस्य ययि०।

(8) ममज्जिथ
ममस् ज् इ थ—इट् पक्ष में,
म म श् ज् इ थ—प्रथम श्चुत्व,
म म ज् ज् इ थ—पश्चात् जश्त्व।

(9) अमाङ्क्षीत्
म स् न् ज् त्—लुङ्, इतश्च, पूर्ववत् नुम्,
मा स् न् ज् स् त्—सिच्, हलन्तलक्षणा वृद्धि,
मा न् ज् स् ई त्—अस्तिसिचोऽपृक्ते०, स्कोः संयोगा०,
मान् ग् स् ई त्—'चोः कुः' से कुत्व,
अ माङ् क् सीत्—'खरि च' से चर्त्व, अनुस्वार, परसवर्ण, आदेशप्रत्यययोः, अङ्ग को अट् आगम।

(10) ननंष्ठ
न न् श् थ—लिट्, सिप्, थल्, नुम्, इट् अभाव पक्ष,
न न न् श् थ—द्वित्व, हलादिः शेषः,
न न न् ष् थ—व्रश्चभ्रस्ज०,
न न न् ष् ठ—ष्टुना ष्टुः,
ननंष्ठ—नश्चाऽपदान्तस्य०।

(11) नेशिथ
नश् इ थ—इट् पक्ष में नुम् नहीं हुआ, 'थलि च सेटि' के द्वारा एत्व तथा अभ्यासलोप।

झलीति०—**झलादि प्रत्यय** परे रहते 'नुम्' होता है।

(12) मज्जनम्
मस्ज् अन—'धातोः' के अधिकार में ल्युट् हुआ, अनुबन्धलोप करने पर 'युवोरनाकौ' से यु को 'अन्',
म श् ज् अन—'स्तोः श्चुना श्चुः' (8.4.40) से श्चुत्व (शकार) तथा 'झलां जश् झशि' (8.4.53) से जश्त्व (जकार)—दोनों की प्राप्ति, जश्त्व श्चुत्व के प्राप्ति 'असिद्धवदत्राभात्' से असिद्ध है, अतः प्रथम श्चुत्व हुआ,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मज्ज् अन सु—तब जश्त्व,[1] सु।

(13) नशनम्
नश् अन—पूर्ववत्,
नशन सु—विभक्तिकार्य।

मस्जेर०—नकारलोप के लिए मस्ज् धातु के अन्त्य वर्ण से पूर्व 'नुम्' आगम होता है। 'मिदचोऽन्त्यात्परः' से नुम् अन्त्य अच् से पर प्राप्त था। यदि इस परिभाषा के बल पर 'नुम्' को 'मस्ज्' के अन्त्य अच् से पर कर दिया जाय तो सकार के संयोगादि न होने से 'स्कोः संयोगा०' की प्राप्ति नहीं होती है। तब उपधा में नकार न रहने से अनुनासिक लोप भी नहीं होता है।

(14) मग्नः
मस्ज् क्त—'धातोः' के अधिकार में 'निष्ठा' तथा 'क्तक्तवतू निष्ठा' से 'क्त' हुआ, 'लशक्वतद्धिते' से ककार की इत्सञ्ज्ञा,
मस् न् ज् न—नुम् पूर्ववत्, 'ओदितश्च' से नकार आदेश,
म ज् न—अनुनासिकलोप, सकारलोप,
म ग् न सु—'चोः कुः' से कुत्व।

(15) मग्नवान्
मस्ज् क्तवतु—पूर्ववत् प्रत्यय आया, उकार तथा ककार की इत्सञ्ज्ञा,
म स् न् ज् तवत्—शेष कार्य पूर्ववत्,
मग्नवत् सु—विभक्तिकार्य।

(3237) रधिजभोरचि *61* (2302)

रधि, जभि-इत्येतयोरजादौ प्रत्यये नुमागमो भवति। रन्धयति। रन्धकः। साधुरन्धी। रन्धंरन्धम्। रन्धो वर्त्तते। जम्भयति। जम्भकः। साधुजम्भी। जम्भं जम्भम्। जम्भो वर्त्तते। परापि सती वृद्धिर्नुमा बाध्यते; नित्यत्वात्। अचीति किम्? रद्धा। जभ्यम्।

अर्थ—रध् तथा जभ् का नुम् आगम होता है, अजादि प्रत्यय परे रहते।

उदा० (1) रन्धयति
रध् णिच्—नुम्, मिदचोऽन्त्यात्परः,
र न् ध् इ शप् तिप्—अनुस्वार, परसवर्ण, धातुसञ्ज्ञा, लट्, तिप्, शप्, गुण तथा अयादेश।

(2) रन्धकः
रध् ण्वुल्—चुटू, हलन्त्यम्, तस्य लोपः, युवोरनाकौ,
र न् ध् अक सु—शेष कार्य पूर्ववत्।

(3) साधुरन्धी
साधु रध् णिनि—सुप्यजातौ णिनिस्ता०,
साधु रन्ध् इन् सु—चुटू, उपदेशेऽजनुना०, नुम्, विभक्तिकार्य।

(4) रन्धं रन्धम्
रध् णमुल्—आभीक्ष्ण्ये णमुल्, चुटू, उपदेशेऽजनुना०, हलन्त्यम्,
र न् ध् अम्—नुम्, 'आभीक्ष्ण्ये द्वे भवतः' से द्विर्वचन,

(5) रन्धः
रध् घञ्—भाव में प्रत्यय,
र न् ध् अ सु—लशक्वतद्धिते, हलन्त्यम्, तस्य लोपः, नुम्, अनुस्वार, परसवर्ण, विभक्तिकार्य।

(6) जम्भयति
जभ् णिच्—'रन्धयति' की तरह।

(7) जम्भकः
जभ् ण्वुल्—'रन्धकः' की तरह।

(8) साधुजम्भी
साधु जभ् णिनि—'साधुरन्धी' की तरह।

(9) जम्भं जम्भम्
जभ् णमुल्—'रन्धं रन्धम्' की तरह।

(10) जम्भः
जभ् घञ्—'रन्धः' की तरह।

परापि०—'अत उपधायाः' (7.2.116) से वृद्धि प्राप्त है, जो पर भी है। नित्य होने से वृद्धि का नुम् से बाध होता है।

अचीति०—अजादि विभक्ति परे रहते ही 'नुम्' आगम होता है।

(11) रद्धा
रध् तृ—अजादि परे न रहने से 'नुम्' नहीं हुआ,
रध् धृ—झषस्तथोर्धोऽधः,
रद् धृ सु—झलां जश् झशि, विभक्तिकार्य।

(12) जभ्यम्
जभ् यत्—अजादि परे न होने से 'नुम्' नहीं हुआ,
जभ्य सु—विभक्तिकार्य।

1. यहाँ न्यासकार ने प्रथम जश्त्व (मद्ज् अन) किया है, पश्चात् श्चुत्व (म ज् ज् अन) किया है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(3238) नेट्यलिटि रधेः *62* (2516)

इडादावलिटि प्रत्यये परे रधेर्नुमागमो न भवति। रधिता। रधितुम्। रधितव्यम्। इटीति किम्? रन्धनम्, रन्धकः। अलिटीति किम्? ररन्धिव, ररन्धिम। नुमि कृते संयोगान्तत्वाद् 'असंयोगाल्लिट् कित्' (1.2.5) इति कित्त्वं नास्तीति नलोपो न भवति। अथ क्वसौ कथं भवितव्यम्? रेधिवानिति। कथम्? एत्वाभ्यासलोपयोः कृतयोरिडागमः क्रियते, ततो नुमागमः, तस्यौपदेशिक-कित्त्वाश्रयो लोपः। अथ इटि लिटीत्येवं नियमः कस्मान्न क्रियते-लिट्येवेटि नान्यत्रेति? विपरीतमप्यवधारणं सम्भाव्येत-इट्येव लिटि नान्यत्रेति। तथा हि सति ररन्धेत्यत्र न स्यात्, रधितेत्यत्र च स्यादेव।

अर्थ—इडादि प्रत्यय के परे रहते रध् धातु को 'नुम्' आगम नहीं होता है, परन्तु लिट् परे रहते यह निषेध नहीं होता है।

उदा० (1) रधिता

रध् तृच्—'रधादिभ्यश्च' से पाक्षिक इट्, इट् पक्ष,

रध् इ तृ—नुम् प्राप्त था, निषेध हुआ,

रधिता—सु।

(2) रधितुम्

रध तुमुन्—पूर्ववत् पाक्षिक इट्, नुम् की प्राप्ति, निषेध, विभक्तिकार्य।

(3) रधितव्यम्

'रधितुम्' की तरह।

इटीति०—इडादि प्रत्यय परे रहते ही 'नुम्' का निषेध होता है—

(4) रन्धनम्

रध् ल्युट्—लशक्वतद्धिते, हलन्त्यम्, युवोरनाकौ,

र न् ध् अन—इडादि प्रत्यय परे नहीं है, नुम् का निषेध नहीं हुआ, सु।

(5) रन्धकः

रध् ण्वुल्—पूर्ववत् 'नुम्' हुआ।

अलिटी०—लिट् प्रत्यय परे रहते नुम् आगम का निषेध नहीं होता है।

(6) ररन्धिव

रध् वस्—लिट्, उ०पु० द्विवचन,

रध् इव—परस्मैपदानां णलतुसुस्०, क्रादिनियम से इट्,

र रन्ध् इव—इडादि प्रत्यय (इव) परे है; परन्तु लिट् होने से नुम् का निषेध नहीं हुआ, द्वित्व, अभ्यासकार्य।

(7) ररन्धिम

'ररन्धिव' की तरह।

नुमि०—उपदेश अवस्था में नुम् करने पर 'ररन्धिव' आदि स्थलों पर अङ्ग के संयोगान्त होने से इससे पर लिट् कित् नहीं होता है (द्र०—असंयोगाल्लिट् कित्)। कित् न होने से अनुनासिक का लोप नहीं होता है।

(8) रेधिवान्

रध् क्वसु—लिट्, क्वसु हुआ, लशक्वतद्धिते, उपदेशेऽज०,

र रध् वस्—द्वित्व, हलादिः शेषः,

रेध् वस्—अत एकहल्मध्ये० से एत्व तथा अभ्यासलोप,

रेध् इट् व नुम् स् सु—'वस्वेकाजाद्धसाम्' से इट्, सु नुम्,

रेधिवान्—सान्तमहतः संयो० से उपधादीर्घ, हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०, संयोगान्तस्य लोपः।

अथ०—प्रश्न यह है कि क्वसु प्रत्यय परे रहते क्या होना चाहिये? 'रेधिवान्' होता है। किस प्रकार? यहाँ एत्व तथा अभ्यासलोप के करने पर इट् आगम होता है, तत्पश्चात् नुम् आगम होता है। अतः इस धातु के औपदेशिक कित्त्व का आश्रय करके नकार का लोप होता है।

अथ इटि०—(शङ्का) 'इटि लिटि' ऐसा नियम क्यों नहीं किया जाता है? अर्थात् लिट् परे ही इडादि रहने पर नुम् होता है, अन्यत्र नहीं।

(समा०) ऐसा नहीं हो सकता। कारण कि विपरीत भी नियम हो सकता है—इडादि लिट् परे रहते ही नुम् होता है, अन्यत्र नहीं होता—इस प्रकार। ऐसा होने पर 'ररन्ध' इस स्थल पर 'नुम्' नहीं होगा तथा 'रधिता' में 'नुम्' प्राप्त होने लगेगा। अतः 'लिट्भिन्न इडादि प्रत्यय परे ही नुम् नहीं होता है'—यह नियम है।

(3239) रभेरशब्लिटोः *63* (2581)

रभेरङ्गस्य शब्लिङ्वर्जितेऽजादौ प्रत्यये परतो नुमागमो भवति। आरम्भयति। आरम्भकः। साध्वारम्भी। आरम्भमारम्भम्। आरम्भो वर्त्तते। अशब्लिटोरिति किम्? आरभते। आरेभे। अचीत्येव-आरब्धा।

अर्थ—रभ् अङ्ग को नुम् आगम होता है, शप् तथा लिट् को छोड़कर शेष अजादि प्रत्यय परे रहते।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उदा० (1) आरम्भयति
आ रभ् णिच्—अजादि परे रहते 'नुम्' हुआ,
आ र न् भ् इ—नश्चाऽपदान्तस्य झलि, अनुस्वारस्य ययि०,
आरम्भय् अ ति—धातुसञ्ज्ञा, तिप्, शप्, गुण, अय् आदेश।

(2) आरम्भकः
आ रभ् ण्वुल्—चुटू, हलन्त्यम्, युवोरनाकौ,
आ र न् भ् अक सु—पूर्ववत्।

(3) साध्वारम्भी
साधु आ रभ् णिनि—'सुप्यजातौ०' से 'णिनि',
साध्वारम्भिन् सु—यण्, नुम्।

(4) आरम्भम् आरम्भम्
आ रभ् ण्मुल्—आभीक्ष्ण्ये णमुल्,
आरम्भम्—नुम्, परसवर्ण आदि,
आरम्भम् आरम्भम्—'आभीक्ष्ण्ये द्वे भवतः' से द्वित्व।

(5) आरम्भः
आ रभ् घञ्—अनुबन्धलोप, नुम्,
आरम्भ् अ सु—परसवर्ण आदि।

अशब्०—शप् तथा लिट् के परे रहते नुम् आगम नहीं होता है।

(6) आरभते
आ रभ् शप् त—लट्, अनुदात्तेत् होने से आत्मनेपद सञ्ज्ञा, 't' प्रत्यय, कर्त्तरि शप्, नुम् नहीं हुआ,
आरभते—टित आत्मनेपदानां टेरे।

(7) आरेभे
आ रभ् त—'लिटस्तझयोरेशिरेच्' से 'एश्' आदेश,
आर रभ् एश्—द्वित्व, अभ्यासकार्य,
आरेभे—एत्व तथा अभ्यासलोप।

अचीत्ये०—अजादि प्रत्यय परे रहते ही 'नुम्' आगम होता है।

(8) आरब्धा
आ रभ् तृ—'धातोः' के अधिकार में 'ण्वुल्तृचौ',
आ रभ् धृ--नुम् नहीं हुआ, झषस्तथोर्धो०,
आ रब् धृ सु—झलां जश् झशि, विभक्तिकार्य।

(3240) लभेश्च *64* (2582)

लभेश्चाजादौ प्रत्यये शब्लिङ्वर्जिते नुमागमो भवति। लम्भयति। लम्भकः। साधुलम्भी। लम्भंलम्भम्। लम्भो वर्त्तते। अशब्लिटोरित्येव–लभते। लेभे। अचीत्येव–लब्धा। लभेश्च पृथग्योगकरणमुत्तरार्थम्।

अर्थ—अजादि प्रत्यय परे रहते लभ् अङ्ग को नुम् आगम होता है, परन्तु शप् तथा लिट् परे रहते नहीं होता है।

उदा० (1) लम्भयति
लभ् णिच्—अनुबन्धलोप, नुम्, अनुस्वार, परसवर्ण,
लम्भि—धातुसञ्ज्ञा, तिप्,
लम्भे शप् तिप्—शप्, गुण, अयादेश।

(2) लम्भकः
लभ् ण्वुल्—'आरम्भकः' की तरह।

(3) साधुलम्भी
साधु लभ् णिनि—'साध्वारम्भी' की तरह।

(4) लम्भं लम्भम्
लभ् णमुल्—'आरम्भमारम्भम्' की तरह।

(5) लम्भः
लभ् घञ्—'आरम्भः' की तरह।

अशब्लि०—शप् तथा लिट् प्रत्ययों के परे रहते 'नुम्' नहीं होता है।

(6) लभते
लभ् त—लट्, 't', शप्, अनुबन्धलोप,
लभ अ त—शप् परे रहते नुम् नहीं हुआ,
लभते—टित आत्मनेपदा०।

(7) लेभे
लभ् एश्—लिट्, त, लिटस्तझयोरेशि०,
ल लभ् ए—लिट् परे है, नुम् नहीं हुआ, द्वित्व, हलादिः शेषः,
लेभ् ए—एत्व, अभ्यासलोप।

अची०—अजादि परे रहते ही नुम् आगम होता है।

(8) लब्धा
लभ् तृ—नुम् नहीं हुआ, झषस्तथोर्धो०,
लभ् धृ—झलां जश् झशि,
ल ब् धृ सु—विभक्तिकार्य।

लभेश्च०—'लभेश्च' यह पृथक् पाठ उत्तर शास्त्र के लिये है।

(3241) आङो यि *65* (2845)

आङ उत्तरस्य लभेर्यकारादिप्रत्ययविषये नुमागमो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भवति। आलम्भ्या गौः,। आलम्भ्या वडवा। प्राक्प्रत्ययोत्पत्तेर्नुमि कृते विहतमदुपधत्वमिति 'ऋहलोर्ण्यत्' (3.1.124) इति ण्यत्प्रत्ययः, तत्र कृदुत्तरपदप्रकृतिस्वरत्वेनान्तस्वरितत्वं भवति। यति तु पुनरुत्तरपदाद्युदात्तत्वं स्यात्। आङ इति किम्? लभ्यम्। कथम्-'अग्निष्टोम आलभ्य' इति? 'सर्वे विधयश्छन्दसि विकल्प्यन्ते' (व्या०प०)। अथ वा-आलभ्य इत्यत्र नुमि कृतेऽनुषङ्गलोपः क्रियते।

अर्थ—वकारादि प्रत्यय के विषय में आङ् से उत्तर जो 'लभ्' अङ्ग, उसे नुम् आगम होता है।

उदा० (1) आलंभ्या गौः
आलन्भ् ण्यत्—ऋहलोर्ण्यत्, चुटू, हलन्त्यम्,
आ ल न् भ् य—अनुस्वार, परसवर्ण,
आलम्भ्य टाप् सु—स्त्रियाम्, अजाद्यतष्टाप्।

प्राक्०—प्रत्यय की उत्पत्ति से पूर्व नुम् करने पर उपधा में ह्रस्व अकार नहीं रहता। अतः 'ऋहलोर्ण्यत्' से 'ण्यत्' हो जाता है, अन्यथा 'पोरदुपधात्' से 'यत्' प्राप्त होने लगेगा। यहाँ कृदुत्तरपद प्रकृतिस्वर से अन्तस् वरित होता है। यत् में उत्तरपद को आद्युदात्त होता।

आङ०—आङ् से उत्तर लभ् अङ्ग को नुम् होता है।

(2) लभ्यम्
लभ् यत्—'पोरदुपधात्' से यत् हुआ है।

यीति—यकारादि प्रत्यय के विषय में ही सूत्रोक्त नुम् होता है।

(3) आलब्धा
आ लभ् तृ—'नुम्' नहीं हुआ,
आ लभ् धृ—झषस्तथो०,
आलब्धा—झलां जश् झशि, सु।

कथम०—'अग्निष्टोम आलभ्यः' प्रयोग किस प्रकार साधु है?

(समा०) यह वैदिक प्रयोग है और वेद में सभी विधियाँ विकल्प से प्रवृत्त होती हैं। अतः 'नुम्' का अभाव है।

दूसरा समाधान यह है कि नुम् करने पर अनुनासिक लोप कर दिया जाता है। तब यह 'आलभ्यः' (विना नुम् वाला) रूप सिद्ध होता है।

(3242) उपात्प्रशंसायाम् *66* (2846)

उपादुत्तरस्य लभेः प्रशंसायां गम्यमानायां यकारादिप्रत्ययविषये नुमागमो भवति। उपलम्भ्या भवता विद्या। उपलम्भ्यानि धनानि। ण्यत्प्रत्ययान्तत्वादन्तस्वरितत्वमेव। प्रशंसायामिति किम्? उपलभ्यमस्माद् वृषलात्किञ्चित्। पोरदुपधत्वाद्यत्प्रत्ययान्तमिदम्।

अर्थ—प्रशंसा अर्थ में वर्त्तमान 'उप' उपसर्ग से उत्तर जो लभ् अङ्ग, उसे 'नुम्' आगम होता है, यकारादि प्रत्यय के विषय में।

उदा० (1) उपलम्भ्या विद्या
उप ल न् भ् ण्यत्—नुम्, प्रत्यय हुआ,
उपलम्भ्या सु—परसवर्ण आदि, टाप्, विभक्तिकार्य।

(2) उपलम्भ्यानि धनानि
उप ल न् भ् ण्यत्—शेष कार्य पूर्ववत्,
उपलम्भ्य जस्—विभक्तिकार्य।
ण्यत् प्रत्ययान्त होने से अन्तस्वरित होता है।

प्रशंसाया०—प्रशंसा अर्थ में ही 'नुम्' होता है।

(3) उपलभ्यम्
उपलभ् य—नुम् नहीं हुआ।
'पोरदुपधात्' से 'यत्' हुआ है।

(3243) उपसर्गात्खल्घञोः *67* (3306)

उपसर्गादुत्तरस्य लभेः खल्घञोः परतो नुमागमो भवति। ईषत्प्रलम्भः। सुप्रलम्भः। दुष्प्रलम्भः। घञि-प्रलम्भः, विप्रलम्भः। सिद्धे सत्यारम्भो नियमार्थः-उपसर्गादेव लभेः खल्घञोः परतो नुमागमो भवति, नान्यत्र। ईषल्लभः। लाभो वर्त्तते।

अर्थ—उपसर्ग से उत्तर लभ् अङ्ग को नुम् आगम होता है, खल् तथा घञ् प्रत्ययो के परे रहते।

उदा० (क) खलि—

(1) ईषत्प्रलम्भः
ईषत् प्र ल न् भ् खल्—ईषद्दुःसुषु० से 'खल्' हुआ, नुम्,
ईषत्प्रलम्भ सु—लशक्वतद्धिते, हलन्त्यम्, अनुस्वार, परसवर्ण, विभक्तिकार्य।

(2) सुप्रलम्भः
सु प्र ल न् भ् खल्—सभी कार्य पूर्ववत्।

(3) दुष्प्रलम्भः
दुस् प्र लभ् खल्—पूर्ववत् 'खल्' हुआ,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दुस् प्र ल न् भ् अ—अनुबन्धलोप, नुम्,
दुष्प्रलम्भ सु—'इदुदुपधस्य' से षत्व।

(ख) घञि—

(4) प्रलम्भः
प्र लभ् घञ्—अनुबन्ध लोप,
प्र ल न् भ् अ सु—शेष कार्य पूर्ववत्।

(5) विप्रलम्भः
वि प्र ल न् भ् घञ्—सभी कार्य पूर्ववत्।

सिद्धे सत्या०—'लमेश्च' के द्वारा नुम् यहाँ सिद्ध ही है। तब प्रकृत सूत्र के द्वारा नियम किया जाता है कि उपसर्ग से उत्तर रहने पर ही लभ् अङ्ग को नुम् आगम होता है, खल् तथा घञ् के परे रहते। अन्यत्र नुम् नहीं होता। यथा—

(7) ईषल्लभः
ईषत् लभ् खल्—'नुम्' नहीं हुआ।

(8) लाभः
लभ् घञ्—'नुम्' नहीं हुआ। 'अत उपधायाः' से उपधावृद्धि।

(3244) न सुदुर्भ्यां केवलाभ्याम् *68* (3307)

सु, दुर्–इत्येताभ्यां केवलाभ्यामन्योपसर्गरहिताभ्यामुपसृष्टस्य लभेः खल्घञोः परतो नुमागमो न भवति। सुदुर्लभम्। सुलभम्। दुर्लभम्। घञि–सुलाभः, दुर्लाभः। केवलाभ्यामिति किम्? सुप्रलम्भः। दुष्प्रलम्भः। 'सुदुर्भ्याम्' इति तृतीयां मत्वा केवलग्रहणं क्रियते। पञ्चम्यां हि व्यवहितत्वादेवाप्रसङ्गः। अतिसुलभमित्यत्र कर्मप्रवचनीयत्वादतेः केवल एव सुशब्द उपसर्ग इति भवति प्रतिषेधः। यदा त्वतिशब्दो न कर्मप्रवचनीयः, तदा नुम्भवत्येव–अतिसुलम्भ इति। पञ्चमीनिर्देशपक्षेऽप्येवमर्थं केवलग्रहणं कर्त्तव्यम्।

अर्थ—केवल सु और दुर् उपसर्गों से उत्तर लभ् अङ्ग को नुम् आगम नहीं होता है, खल् तथा घञ् परे रहते।

उदा० (1) सुदुर्लभम्
सु दुर् लभ् अ—खल्, अनुबन्धलोप,
सु दुर्लभ—नुम् का निषेध,
सुदुर्लभम्—सु।

(2) सुलभम्
सु लभ् खल्—पूर्ववत्।

(3) दुर्लभम्
दुर् लभ् खल्—पूर्ववत्।

(4) सुलाभः
सु लभ् घञ्—नुम् का निषेध, अत उपधायाः,
सुलाभ सु—विभक्तिकार्य।

(5) दुर्लाभः
दुर् लभ् घञ्—पूर्ववत्।

केवल०—**केवल** सु तथा दुर् से उत्तर लभ् अङ्ग को 'नुम्' का निषेध होता है। इन उपसर्गों से पूर्व या उत्तर अन्य उपसर्ग नहीं होना चाहिये।

(6) सुप्रलम्भः
सु प्र लभ् खल्—'सु' उपसर्ग केवल नहीं है, इससे उत्तर 'प्र' है। अतः नुम् का निषेध नहीं हुआ,
सु प्र ल न् भ् अ सु—पूर्ववत् परसवर्ण आदि।

(7) दुष्प्रलम्भः
दुर् प्र ल न् भ् खल्—पूर्ववत् नुम् का निषेध नहीं हुआ।

सुदुर्भ्यां०—सु तथा दुर् का केवल का ग्रहण होता है। अतः 'सुदुर्भ्याम्' पद में तृतीया विभक्ति है। यदि यहाँ पञ्चमी विभक्ति मानते हैं तो 'तस्मादित्युत्तरस्य' परिभाषा से अव्यवहित पर को कार्य होना चाहिए। अतः उसकी प्राप्ति नहीं है।

(8) अतिसुलभम्—इस स्थल पर कर्मप्रवचनीय सञ्ज्ञा हो जाने से अति से उत्तर जो 'सु' शब्द है, वह केवल उपसर्ग है। तब 'नुम्' का निषेध हुआ है। जहाँ 'अति' शब्द की कर्मप्रवचनीय सञ्ज्ञा नहीं होती है, वहाँ 'नुम्' का निषेध नहीं होता। यथा—

(9) अतिसुलम्भः
यहाँ 'नुम्' होता है।

पञ्चमी निर्देशपक्ष में भी 'केवल' शब्द का ग्रहण करना चाहिए।

(3245) विभाषा चिण्णमुलोः *69* (2765)

चिण्, णमुल्–इत्येतयोर्विभाषा लभेर्नुम्भवति। अलाभि, अलम्भि। लाभंलाभम्। लम्भंलम्भम्। व्यवस्थितविभाषा चेयम्, तेनानुपसृष्टस्य विकल्पः। उपसृष्टस्य नित्यं नुम्भवति–प्रालम्भि, प्रलम्भम्।

अर्थ—लभ् अङ्ग को विकल्प से नुम् होता है, चिण् और णमुल् के परे रहते।

उदा० (1) अलाभि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लभ् त—कर्मवाच्य, लुङ्, 'त' प्रत्यय,
लभ् चिण् त—च्लि, चिण्, अनुबन्धलोप, नुम् अभाव पक्ष,
लाभ् इ त—अत उपधायाः, चिणो लुक्,
अलभि—अट्।

(2) अलम्भि
ल न् भ् इ त—पक्ष में 'नुम्' हुआ,
अ ल म् भि—अनुस्वार, परसवर्ण, प्रत्यय का लुक्, अट्।

(3) लाभं लाभम्
लभ् णमुल्—'नुम्' अभाव पक्ष,
लाभ् अम्—अत उपधायाः, सु,
लाभं लाभम्—आभीक्ष्ण्ये द्वे भवतः।

(4) लम्भंलम्भम्
नुम् पक्ष, अनुस्वार, परसवर्ण, द्विर्वचन पूर्ववत्।

व्यवस्थि०—यह व्यवस्थित विभाषा है। उपसर्गरहित लभ् अङ्ग को विकल्प से 'नुम्' आगम होता है। उपसर्गसहित लभ् अङ्ग को नित्य 'नुम्' होता है।

(5) प्रालम्भि
प्र अ लभ् चिण् त—नित्य 'नुम्' होता है,
प्र अ लम्भ् इ—प्रत्यय का लुक्, अकः सवर्णे दीर्घः।

(6) प्रलम्भम्
णमुल् हआ, नित्य 'नुम्' आगम हुआ।

(3246) उगिदचां सर्वनामस्थानेऽधातोः *70* (361)

उगितामङ्गानां धातुवर्जितानामञ्चतेश्च सर्वनामस्थाने परतो नुमागमो भवति। भवतु–भवान्, भवन्तौ, भवन्तः। ईयसुन्–श्रेयान्, श्रेयांसौ, श्रेयांसः। शतृ–पचन्, पचन्तौ, पचन्तः। अञ्चतेः–प्राङ्, प्राञ्चौ, प्राञ्चः। उगिदचामिति किम्? दृषत्, दृषदौ, दृषदः। सर्वनामस्थान इति किम्? भवतः पश्य। श्रेयसः पश्य। अञ्चतिग्रहणं नियमार्थम्–अञ्चतेरेव धातोरन्यस्य मा भूत्। उखास्रत्। पर्णध्वत्। अधातोरिति किम्? अधातुभूतपूर्वस्य यथा स्यात्। गोमन्तमिच्छति गोमत्यति, गोमत्यतेरप्रत्ययः–गोमान्। अत्र हि धातुत्वादञ्चतिग्रहणान्न स्यात्।

अर्थ—धातुभिन्न उगित् अङ्ग को तथा जिसके नकार का लोप हो चुका है, ऐसे अञ्च् धातु को 'नुम्' का आगम होता है, सर्वनाम-सञ्ज्ञक प्रत्यय परे रहते।

'सुडनपुंसकस्य' तथा 'शि सर्वनामस्थानम्' से सर्वनामस्थान-सञ्ज्ञा होती है। जिसका उक् वर्ण (उ, ऋ, ऌ) इत्सञ्ज्ञक है, उसे उगित् कहा जाता है।

उदा० (क) उगितः—
(1) भवान्
भू डवतु → भवत्
भवत् सु—उकार इत् है, उगित् हुआ,
भव न् त् स्—नुम्, अनुबन्धलोप, अनुस्वार, परसवर्ण,
भ व न् त्—हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्०, उपधादीर्घ, संयोगान्तस्य लोपः,
भवान्—नलोपः प्राति० की अप्राप्ति।

(2) भवन्तौ
भवन् त् औ—शेष पूर्ववत्।

(3) भवन्तः
जस्—'भवन्तौ' की तरह।

(4) श्रेयान्
प्रशस्य ईयसुन् → श्र ईयस् → श्रेयस्—प्रशस्यस्य श्रः,
श्रेयस् सु—उकार इत् है, उगित् हुआ,
श्रेयन् स् स्—नुम्, अनुबन्धलोप, हल्ङ्यादि लोप,
श्रेयान्—सान्तमहतः० से दीर्घ।

(5) श्रेयांसौ
श्रेयस् औ—नुम् आदि पूर्ववत्, 'नश्चाऽपदान्तस्य झलि' से अनुस्वार।

(6) श्रेयांसः
श्रेयस् जस्—सभी कार्य 'श्रेयांसौ' की तरह।

(7) पचन्
पच् शतृ—कर्तरि शप्,
पच् अ अत्—अतो गुणे,
पचत् सु—ऋकार इत् है, उगित हुआ,
पचन् त् स्—सलोप, संयोगान्तलोप।

(8) पचन्तौ
पचत् औ—पूर्ववत् नुम्।

(9) पचन्तः
पचत् जस्—'पचन्तौ' की तरह।

(ख) अञ्चतेः—
(10) प्राङ्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्र अञ्च् क्विन्—सर्वापहारलोप, सवर्णदीर्घ, अनुनासिकलोप,
प्राच् सु—नुम् हुआ,
प्रा न् च् स्—हल्ङ्यादिलोप, संयोगान्तलोप,
प्रान्—प्रत्ययलक्षण से क्विन् प्रत्ययान्त, 'क्विन् प्रत्ययस्य कुः' से कुत्व,
प्राङ्—रूप बनता है।

(11) प्राञ्चौ
प्राच् औ—नुम्, अनुस्वार, परसवर्ण,
प्राञ्च् औ—रूप।

(12) प्राञ्चः
प्राच् जस्—'प्राञ्चौ' की तरह।

उगिद०—उगित् अङ्ग और **अञ्च्** धातु को 'नुम्' आगम होता है।

(13) दृषत्
दृषद् सु—नुम् नहीं हुआ, हल्ङ्यादिलोप।

(14) दृषदौ
दृषद् औ—नुम् नहीं हुआ।

(15) दृषदः
दृषद् जस्—नुम् नहीं हुआ।

सर्वनाम०—सर्वनामस्थानसञ्ज्ञक प्रत्यय परे रहते 'नुम्' होता है।

(16) भवतः
भवत् शस्—'शस्' की सर्वनामस्थानसञ्ज्ञा नहीं है,
भवतस्—नुम् नहीं हुआ, अनुबन्धलोप।

(17) श्रेयसः
श्रेयस् शस्—पूर्ववत् नुम् नहीं हुआ।

अञ्चति०—'अञ्चति' पद का ग्रहण नियमार्थ है। अञ्च् धातु को ही 'नुम्' होता है; अन्य धातु को नहीं होता है।

(18) उखास्रत्
उखास्रंस् क्विप्—'क्विप् च', सर्वापहारलोप, अनुनासिकलोप, 'वसुस्रंसुध्वंस्व०' से दकार, 'वाऽवसाने' से चर्त्व,
उखास्रत् सु—नुम् नहीं हुआ।

(19) पर्णध्वत् (पूर्ववत्)।

अधातो०—धातु को 'नुम्' नहीं होता है। जो भूतपूर्व धातु न रहा हो, ऐसे अङ्ग को नुम् हो जाता है।

(20) गोमान्
गोमन्तम् इच्छति—'सुप आत्मनः क्यच्' से 'क्यच्',
गोमत् क्यच्—धातुसञ्ज्ञा,
गोमत्य क्विप्—सर्वापहार लोप,
गोमत्य्—अतो लोपः,
गोमत्—क्यस्य विभाषा,
गो म न् त् सु—सु, नुम्,
गोमान्—'अत्वसन्तस्य०' से दीर्घ।

अत्र०—यहाँ धातु होने से तथा अञ्च् का ग्रहण होने से नुम् नहीं होता है।

(3247) युजेरसमासे *71* (376)

युजेरसमासे सर्वनामस्थाने परतो नुमागमो भवति। युङ्, युञ्जौ, युञ्जः। असमासे इति किम्? अश्वयुक्, अश्वयुजौ, अश्वयुजः। 'युजेः' इतीकारनिर्देशाद् 'युज समाधौ' (धा०पा० 1178) इत्यस्य ग्रहणं न भवति–युजमापन्ना ऋषयः।

अर्थ— सर्वनामस्थानसञ्ज्ञक प्रत्यय परे रहते युज् अङ्ग को 'नुम्' होता है, परन्तु समास में नहीं होता है।

उदा० (1) युङ्
युजिर् क्विप्—'ऋत्विग्दधृक्०' से क्विप्, सर्वापहारलोप,
युज्—प्रातिपदिक सञ्ज्ञा,
युज् सु—सुबुत्पत्ति,
यु न् ज्—नुम्, सु का लोप,
युन्—संयोगान्तस्य लोपः,
युङ्—क्विन् प्रत्ययस्य कुः।

(2) युञ्जौ
युज् औ—पूर्ववत् नुम्, अनुस्वार, परसवर्ण।

(3) युञ्जः
युज् जस्—पूर्ववत्।

असमासे०—असमास की दशा में युज् से नुम् होता है।

(4) अश्वयुक्
अश्वं युनक्ति—सत्सूद्विष०, क्विप्,
अश्वयुज्—सर्वापहारलोप,
अश्वयुज् सु—प्रातिपदिक सञ्ज्ञा, सु, नुम् की अप्राप्ति,
अश्वयुज्—हल्ङ्यादि लोप,
अश्वयुज्—'चोः कुः' प्रत्ययलक्षण से कुत्व।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(8) अश्वयुजौ
अश्वयुज् औ—नुम् नहीं हुआ।

(6) अश्वयुजः
जस्—नुम् की अप्राप्ति।

युजे०—धातुपाठ में 'युज्' धातु का दोबार पाठ प्राप्त होता है—

युजिर योगे (रु०उभ०)
युज समाधौ (दि०)।

प्रायः धातु के निर्देश में इक् अथवा श्तिप् प्रत्ययों का प्रयोग होता है; परन्तु 'युजि' पद में इक् का प्रयोग नहीं है। यहाँ इकार का निर्देश युजिर धातु के ग्रहण के लिए है। अतः 'युज समाधौ' का ग्रहण नहीं होता है।

(3248) नपुंसकस्य झलचः *72* (314)

नपुंसकस्य झलन्तस्याजन्तस्य च सर्वनामस्थाने परतो नुमागमो भवति। उदश्विन्ति। शकृन्ति। यशांसि। पयांसि। अजन्तस्य-कुण्डानि। वनानि। त्रपूणि। जतूनि। नपुंसकस्येति किम्? अग्निचिद् ब्राह्मणः। झलच इति किम्? बहुपुरि। बहुधुरि। विमलदिवि। चत्वारि। अहानि। उगितो झलन्तस्य नपुंसकस्य परत्वादनेनैव नुम्भवति। श्रेयांसि, भूयांसि, कुर्वन्ति, कृषन्ति, ब्राह्मण-कुलानि। *बहूर्जि प्रतिषेधो वक्तव्यः* (म० भा०)। बहूर्जि ब्राह्मणकुलानि। अन्त्यात्पूर्वं नुममेक इच्छन्ति (म० भा०)। बहूर्ञ्जि ब्राह्मणकुलानि।

अर्थ—झलन्त अङ्ग अजन्त नपुंसक अङ्ग को 'नुम्' आगम होता है, सर्वनामस्थानसञ्ज्ञक प्रत्यय के परे रहते।

उदा० (क) झलन्तस्य—

(1) उदश्विन्ति
उदश्वित् जस्—जश्शसोः शिः, शि सर्वनामस्थानम्,
उदश्वि न् त् इ—लशक्वतद्धिते, नुम्,
उदश्विन्ति—अनुस्वार, परसवर्ण।

(2) शकृन्ति
शकृत् जस्—पूर्ववत्।

(3) यशांसि
यशस् जस्—पूर्ववत्, 'नश्चाऽपदान्तस्य झलि' से अनुस्वार होता है।

(4) पयांसि
पयस् जस्—'यशांसि' की तरह।

(ख) अजन्तस्य—

(5) कुण्डानि
कुण्ड जस्—पूर्ववत् 'शि',
कुण्ड न् इ—नुम्,
कुण्डानि—'सर्वनामस्थाने चाऽधातोः' से उपधादीर्घ।

(6) वनानि
वन् शि—पूर्ववत्।

(7) त्रपूणि
पूर्ववत्, णत्व अधिक होता है।

(8) जतूनि
जतु शि—पूर्ववत्।

नपुंसक०—नपुंसक अङ्ग को 'नुम्' होता है।

(9) अग्निचिद्
अग्निचिद् सु—झलन्त है, परन्तु नपुंसक न होने से नुम् नहीं हुआ। हल्ङ्यादिलोप।

झलच०—झलन्त अङ्ग को ही 'नुम्' होता है।

(10) बहुपुरि
बहुपर् शि—बह्व्यः पुरो येषाम्—इस अर्थ में बहुव्रीहि, 'ऋक्पूरब्धू०' से समासान्त अकार प्राप्त हुआ, समासान्त विधि अनित्य होती है, नपुंसक अङ्ग है परन्तु झलन्त नहीं है, 'नुम्' नहीं हुआ।

(11) बहुधुरि
बहुधुर् शि—पूर्ववत् 'नुम्' की अप्राप्ति।

(12) विमलदिवि
विमलदिव शि—पूर्ववत्।

(13) चत्वारि
चतुर् जस्—'चतुरनडुहोरामुदात्तः' से 'आम्',
चतु आम् र् शि—'शि' आदेश, यण्,
चत्वारि—'नुम्' नहीं हुआ।

(14) अहानि
अहन् जस्—'शि' आदेश,
अहान् शि → अहानि—लशक्वतद्धिते।

उगितो०—परकार्य होने से उगित् झलन्त नपुंसक अङ्ग को

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस सूत्र से ही होता है। 'उगिदचां सर्वनाम०' सूत्र पूर्ववर्ती है। अतः इससे नुम् नहीं होता है।

(15) श्रेयांसि
श्रेयस् जस्—'नुम्' हुआ।

(16) भूयांसि
भूयस् जस्—पूर्ववत्।

(17) कुर्वन्ति
कुर्वत् जस्—पूर्ववत्।

(18) कृषन्ति
कृष् शतृ → कृषत् जस्—पूर्ववत्।

बहूर्जि०—'बहूर्जि' शब्द में 'नुम्' का निषेध होता है।

(19) बहूर्जि
बहूनि ऊर्ज्जि येषु (येषां वा) तानि—इस अर्थ में,
बहूर्ज् जस्—शि, नुम् का निषेध,
बहूर्जि—लशक्वतद्धिते।

अन्त्यात्०—कुछ विद्वानों के मत में अन्त्य वर्ण से पूर्व 'नुम्' होता है। 'मिदचोऽन्त्यात् परः' से अन्त्य अच् से पर प्राप्त था।

(20) बहूर्ञ्जि
बहूर्ज् शि—जस् को 'शि' हुआ,
बहू र् न् ज् इ—अनुस्वार, परसवर्ण।

महाभाष्य में एक वचन प्राप्त होता है कि अच्पूर्वक झल् को ही नुम् आगम होता है।[1]

(21) मांसि
मांस् जस्—जश्शसोः शिः,
मांसि—सकार झल् है, परन्तु इससे पूर्व अच् नहीं है, नुम् नहीं हुआ।

(3249) इकोऽचि विभक्तौ *73* (320)

इगन्तस्य नपुंसकस्याङ्गस्याजादौ नुमागमो भवति। त्रपुणी। जतुनी। तुम्बुरुणी। त्रपुणे। जतुने। तुम्बुरुणे। इक इति किम्? कुण्डे। पीठे। अचीति किम्? उत्तरार्थम्। यद्येवम्, तत्रैव कर्त्तव्यम्? इह तु करणस्य एतत्प्रयोजनम्–हे त्रपो इत्यत्र नुम् मा भूदिति, 'न ङिसम्बुद्ध्योः' (8.2.8) इति नलोपप्रतिषेधः स्यात्। ननु च 'न लुमताङ्गस्य' (1.1.63) इति प्रत्ययलक्षणे प्रतिषिद्धे विभक्तिरेव नास्ति? एतदेवाज्ग्रहणं ज्ञापकम्–प्रत्ययलक्षणप्रतिषेधोऽत्र न भवतीति। तथा च–सम्बुद्धिगुणः क्रियते। विभक्ताविति किम्? तौम्बुरवं चूर्णम्।

इकोऽचि व्यञ्जने मा भूदस्तु लोपः स्वतः कथम्?
स्वरो वै श्रूयमाणेऽपि लुप्ते किं न भविष्यति?
(म० भा०)

रायात्वं तिसृभावश्च व्यवधानान्नुमा अपि।
नुड् वाच्य उत्तरार्थं तु इह किञ्चित्त्रपो इति।।
(म० भा०)

अर्थ—इगन्त नपुंसक अङ्ग को नुम् आगम होता है, अजादि विभक्ति परे रहते।

इगन्त = इक् वर्ण है अन्त में जिसके। इक्—इ, उ, ऋ, ऌ।

उदा० (1) त्रपुणी
त्रपु औ—नपुंसकाच्च,
त्रपु शी—लशक्वतद्धिते,
त्रपुन् ई—नुम्, अट्कुप्वाङ्नुम्०।

(2) जतुनी
जतु औ—पूर्ववत्।

(3) तुम्बुरुणी (पूर्ववत्)।

(4) त्रपुणे
त्रपु ङे—लशक्वतद्धिते,
त्रपु न् ए—नुम्,
त्रपुणे—णत्व।

(5) जतुने
जतु ङे—पूर्ववत्।

(6) तुम्बुरुणे
ङे—पूर्ववत्।

इक०—इगन्त अङ्ग को ही 'नुम्' होता है।

(7) कुण्डे
कुण्ड औ → कुण्ड शी—पूर्ववत्, इगन्त अङ्ग न होने से 'नुम्' नहीं हुआ।

(8) पीठे
पीठ औ—पूर्ववत्।

अचीति०—अजादि विभक्ति के परे रहते 'नुम्' होता है।

1. महा० 7.1.72—अचः परस्यैव झलो नुम्विधानम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यह उत्तरशास्त्र के लिए है। यदि ऐसा है तो इसका पाठ अगले सूत्र पर होना चाहिए था। प्रकृत सूत्र में 'अचि' के ग्रहण का प्रयोजन यह है कि 'हे त्रपो' यहाँ 'नुम्' न हो। 'न ङिसम्बुद्ध्योः' से नकार के लोप का निषेध हो जाता है।

ननु च०—अपि च, 'न लुमताऽङ्गस्य' से प्रत्ययलक्षण का निषेध हो जाने पर विभक्ति ही नहीं है। इसके ग्रहण से ज्ञापित होता है कि प्रत्ययलक्षण प्रतिषेध यहाँ नहीं होता है। यहाँ सम्बुद्धि को गुण होता है।

विशेष—प्रकृत सूत्र में 'अचि' पद की सार्थकता पर विचार करते हुए काशिकाकार[1] व न्यासकार[2] ने अनेक सम्भावनाओं की कल्पना की है तथा अन्त में 'अचि' पद के योग के द्वारा ज्ञापक सिद्ध किया है कि 'न लुमताऽङ्गस्य' सूत्र अनित्य है। यथा—

(क) यदि उत्तर शास्त्र के लिए 'अचि' पद का योग है तो इसे अगले सूत्र में पढ़ा जाना चाहिए।

(ख) हलादि विभक्ति में नुम् आगम की निवृत्ति के लिए 'अचि' पद का योग व्यर्थ है। कारण कि—

वारिभ्याम्—इस दशा में नुम् कर दिया जाये तो कोई हानि नहीं। वारिन् भ्याम्। 'स्वादिष्व०' से पदसञ्ज्ञा होकर 'नलोपः प्राति०' से नलोप हो जायेगा—वारिभ्याम्।

(ग) लुक् प्राप्त विभक्ति को निमित्त मानकर प्राप्त नुम् की निवृत्ति के लिए भी 'अचि' पद का ग्रहण व्यर्थ है। यथा—

हे त्रपु स्—इस दशा में 'सु' का 'स्वमोर्नपुंसकात्' से लुक् हुआ। हे त्रपु। अब लुक् हुए 'सु' को निमित्त मानकर नुम् की प्राप्ति होती है। 'हे त्रपुन्' इस दशा में 'नलोपः प्रा०' से प्राप्त नकारलोप का 'न ङिसम्बुद्ध०' से निषेध हो जाता है। इसकी निवृत्ति के लिए 'अचि' पद की आवश्यकता मानना भी व्यर्थ है। कारण कि 'न लुमताऽङ्गस्य' के द्वारा नुम् का निषेध हो जाता है।[3]

निष्कर्ष—प्रकृत सूत्र में 'अचि' पद व्यर्थ होकर ज्ञापित करता है कि 'न लुमताङ्गस्य' सूत्र अनित्य है।

यदि यह निषेध नित्य होता तो सम्बुद्धि में लुक् को प्राप्त विभक्ति को निमित्त मानकर कोई कार्य नहीं होना चाहिए।

परिणामस्वरूप 'हे त्रपु' में नुम् की प्राप्ति ही नहीं है तो सूत्र में 'अचि' पद का ग्रहण व्यर्थ है। 'अचि' पद का ग्रहण ज्ञापित करता है कि आचार्य नुम् के निषेध के प्रति सचेष्ट हैं। नुम् की प्राप्ति तभी सम्भव है, जब 'न लुमताङ्गस्य' सूत्र अनित्य हो।

विभक्ता०—**विभक्ति** परे रहते ही 'नुम्' होता है।

(9) तौम्बुरवम् (चूर्णम्)

तुम्बुरु अञ्—विकार अर्थ में प्रत्यय,

तौम्बुरो अ—इगन्त अङ्ग है, अजादि (अञ्) परे है परन्तु इसकी विभक्तिसञ्ज्ञा नही है, अतः नुम् नहीं हुआ, 'ओर्गुणः' से गुण हुआ,

तौम्बुरव सु—आदिवृद्धि, विभक्तिकार्य।

इकोऽचि०—'अचि' के ग्रहण का प्रयोजन यह है कि व्यञ्जनादि विभक्ति परे रहते नुम् आगम न हो। नलोपः प्रातिपदि० से लोप हो जायेगा। अतः न का श्रवण न होने पर कोई हानि नहीं है। यदि 'अचि' का ग्रहण न हो तो स्वर कैसे होगा? यथा—पञ्चत्रपुभ्याम्, पञ्चत्रपुभिः—इन स्थलों पर यदि नुम् आगम कर दिया जाय तो उत्तरपद नकारान्त हो जायेगा। तब उत्तरपद के इगन्त न रहने से 'इगन्तकालकपालभगाल०' से पूर्वपद को प्रकृतिस्वर नहीं हो सकेगा? नकार का श्रवण होने पर भी तथा नकार के लुप्त हो जाने पर स्वर क्यों नहीं होगा? अतः इसमें कोई दोष नहीं है।

रायात्वं०—नुम् का व्यवधान होने पर भी 'रायो हलि' से आत्व तथा 'त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ' से तिसृभाव हो जाते हैं। यथा—

रायम् अतिक्रान्ताभ्यां ब्राह्मणकुलाभ्याम्—'कुगतिप्रादयः' से समास तथा 'रायो हलि' से आत्व होकर 'अतिराभ्याम्' होता है। नपुंसकलिङ्ग में 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' से ह्रस्व होकर तथा नुम् होकर नलोप हुआ। 'अतिर भ्याम्' इस दशा में नकारलोप के असिद्ध होने से आत्व नहीं हो सकेगा।

इसी प्रकार—प्रियास्तिस्रोऽनयोर्ब्राह्मणकुलयोः' इस अर्थ में बहुव्रीहि होकर 'प्रियतिसृभ्याम्' बनता है। परन्तु व्यञ्जनादि विभक्ति परे भी नुमागम की दशा में नुम् का व्यवधान पूर्ववत् होने से तिसृभाव नहीं होता है। आत्व आदेश तथा तिसृभाव परवर्त्ती होने से नुम् का बाध कर लेते हैं। तब पुनः नुम् नहीं होता है।

नुड्०—पूर्वविप्रतिषेध के लिये 'नुट्' कहना चाहिए। वस्तुतः 'अचि' का पाठ उत्तरवर्त्ती सूत्र के लिए है। यहाँ 'हे त्रपो' के लिए 'अचि' का ग्रहण है।

---

1. काशि० 7.1.73 उत्तरार्थम्।···· । तत्रैव कर्त्तव्यम्।
2. न्यास 7.1.73 व्यञ्जनादौ मा भूत्···एतच्चाऽप्रयोजनम्, अस्त्वत्र नुम्।
3. काशि० 7.1.73···प्रत्ययलक्षणे प्रतिषिद्धे विभक्तिरेव नास्ति।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विशेष—त्रपु शि—त्रपु इ—इस दशा में 'नपुंसकस्य झलचः' (7.1.72) तथा इकोऽचि विभक्तौ (7.1.73) की युगपत् प्रवृत्ति होती है। इस विषय में वैयाकरणों के दो मत हैं—

(क) परत्व के कारण 'इकोऽचि विभक्तौ' से यहाँ नुम् होना चाहिए।

(ख) 'इकोऽचि विभक्तौ' शेष अजादि विभक्तियों में चरितार्थ है। यहाँ 'नपुँसकस्य झलचः' के द्वारा ही नुम् होना चाहिए। ऐसा आचार्य का मन्तव्य प्रतीत होता है, अन्यथा आचार्य पाणिनि 'झलचः' के स्थान पर 'झलतः' पाठ करते।

(3250) तृतीयादिषु भाषितपुंस्कं पुंवद् गालवस्य *74* (321)

तृतीयादिषु विभक्तिष्वजादिषु भाषितपुंस्कमिगन्तं नपुंसकं गालवस्याचार्यस्य मतेन पुंवद्भवति। यथा पुंसि ह्रस्वनुमौ भवतः, तद्वदत्रापि न भवत इत्यर्थः। ग्रामणीर्ब्राह्मणः, ग्रामणि ब्राह्मणकुलम्। ग्रामण्या ब्राह्मणकुलेन, ग्रामणिना ब्राह्मणकुलेन। ग्रामण्ये ब्राह्मणकुलाय, ग्रामणिने ब्राह्मणकुलाय। ग्रामण्यो ब्राह्मणकुलात्, ग्रामणिनो ब्राह्मणकुलात्। ग्रामण्यो ब्राह्मणकुलस्य, ग्रामणिनो ब्राह्मणकुलस्य। ग्रामण्योर्ब्राह्मणकुलयोः, ग्रामणिनोर्ब्राह्मणकुलयोः। ग्रामण्यां ब्राह्मणकुलानाम्–'नुमचिर' (8.2.24) इति पूर्वविप्रतिषेधेन नुट्, ग्रामणीनां ब्राह्मणकुलानाम्। ग्रामण्यां ब्राह्मणकुले, ग्रामणिनि ब्राह्मणकुले। शुचिर्ब्राह्मणः, शुचि ब्राह्मणकुलम्। शुचिना ब्राह्मणकुलेन। शुचये ब्राह्मणकुलाय, शुचिने ब्राह्मणकुलाय। शुचेर्ब्राह्मणकुलात्, शुचिनो ब्राह्मणकुलात्। शुचेर्ब्राह्मणकुलस्य, शुचिनो ब्राह्मणकुलस्य। शुच्योर्ब्राह्मणकुलयोः, शुचिनोर्ब्राह्मणकुलयोः। शुचौ ब्राह्मणकुले, शुचिनि ब्राह्मणकुले। तृतीयादिष्विति किम्? ग्रामणिनी ब्राह्मणकुले। शुचिनी ब्राह्मणकुले। भाषितपुंस्कमिति किम्? त्रपुणे, जतुने। इह कस्मान्न भवति–पीलुर्वृक्षः पीलु, फलम्–पीलुने फलायेति? समानायामाकृतौ यद्भाषितपुंस्कं तुल्ये प्रवृत्तिनिमित्ते तस्य पुंवद्भावः (म० भा०)। इह तु वृक्षाकृतिः प्रवृत्तिनिमित्तं पुंसि शब्दस्य, फलाकृतिर्नपुंसके। तदेतदेवं कथं भवति–भाषितपुंस्कमिति? भाषितः पुमान्यस्मिन्नर्थे = प्रवृत्तिनिमित्ते स भाषितपुंस्कशब्देनोच्यते, तद्योगादभिधेयमपि यद् नपुंसकं तदपि भाषितपुंस्कम्। तस्य प्रतिपादकं यच्छब्दरूपं तदपि भाषितपुंस्कमिति। इक इत्येव–कीलालपा ब्राह्मणः। कीलालपं ब्राह्मणकुलम्। कीलालपेन ब्राह्मणकुलेन। अचीत्येव–ग्रामणिभ्यां ब्राह्मणकुलाभ्याम्।

अर्थ—इगन्त भाषितपुंस्क नपुंसक अङ्ग को विकल्प से पुँवद्भाव होता है, अजादि तृतीयादि विभक्ति परे रहते।

जिस शब्द का एक प्रवृत्तिनिमित्त हो, उसे भाषितपुंस्क कहते हैं। भाव यह है कि वह शब्द जो पुँल्लिङ्ग में भी उसी प्रवृत्तिनिमित्त को भाषित कर चुका है, भाषितपुंस्क कहलाता है।

यथा०—पुंवत् का अर्थ है—पुंल्लिङ्ग की तरह। इसका प्रयोजन यह है कि जिस प्रकार पुंल्लिङ्ग में ह्रस्वादेश तथा नुम् आगम नहीं होते हैं, उसी प्रकार यहाँ भी नहीं होते।

उदा० (1) ग्रामण्या (ब्राह्मणकुलेन)
ग्रामणी टा—पुँवद्भाव,
ग्रामण्या—'एरनेकाच०' से यण्।

(2) ग्रामणिना
पक्ष में पुँवद्भाव नहीं हुआ, नुम् हुआ।

(3) ग्रामण्ये
ग्रामणी ङे—पुंवद्भाव, एरनेकाच०।

(4) ग्रामणिने
पुँवद्भाव नहीं हुआ।

(5) ग्रामण्यः
ग्रामणी ङसि—पुँवद्भाव।

(6) ग्रामणिनः
पुँवद्भाव अभाव।

(7) ग्रामण्यः
ग्रामणी ङस्—पुँवद्भाव।

(8) ग्रामणिनः
पुँवद्भाव अभाव।

(9) ग्रामण्योः
ग्रामणी ओस्—पुँवद्भाव।

(10) ग्रामणिनोः
पुँवद्भाव अभाव पक्ष।

(11) ग्रामण्याम्
ग्रामणी आम्—पुँवद्भाव।
'नुमचिर०' से पूर्वविप्रतिषेध से नुट् होता है।

(12) ग्रामणीनाम्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ग्रामणि नुट्—'नामि' से दीर्घ।

(13) ग्रामण्याम्
ग्रामणी ङि—ङेराम्नद्याम्नीभ्यः।

(14) ग्रामणिनि
पुंवद्भाव अभाव।
इसी प्रकार—शुचिर्ब्राह्मणः, शुचि ब्राह्मणकुलम्।

(15) शुचिना
पुंवद्भाव पक्ष में 'आङो नाऽस्त्रियाम्' से 'ना'भाव होता है।
पुंवद्भाव अभाव पक्ष में नुम् होकर रूप बनता है।

(16) शुचये
शुचि ङे—गुण, अयादेश।

(17) शुचिने
पुंवद्भाव अभाव।

(18) शुचेः
शुचि ङसि/ङस्—गुण, ङसिङसोश्च।

(19) शुचिनः
पुंवद्भाव अभाव।

(20) शुच्योः
शुचि ओस्—यण्।

(21) शुचिनोः
शुचि ओस्—पुंवद्भाव अभाव, नुम्।

(22) शुचौ
औदच्च घेः।

(23) शुचिनि
पुंवद्भाव अभाव।

तृतीया०—तृतीयादि विभक्तियों में ही पुंवद्भाव होता है।
ग्रामणिनी
ग्रामणि औ—अजादि विभक्ति है, परन्तु तृतीयादि नहीं है, पुंवद्भाव नहीं हुआ,
ग्रामणि शी—नपुंसकाच्च,
ग्रामणि न् ई—नुम्।

(25) शुचिनी
शुचि औ—पूर्ववत्।

भाषित०—भाषितपुंस्क को ही पुंवद्भाव होता है।

(26) त्रपुणे
त्रपु ङे—अजादि तृतीयादि विभक्ति परे है, परन्तु 'त्रपु' शब्द भाषितपुंस्क नहीं है।
त्रपु न् ए—पुंवद्भाव नहीं हुआ, णत्व।

(27) जतुने
जतु ए—पूर्ववत्।

इह०—निम्नलिखित स्थल पर पुंवद्भाव नहीं होता है।

(28) पीलुने
पीलु ङे—'पीलु' वृक्ष तथा 'फल' दोनों होते हैं।

समाना०—समान आकृति में जो भाषितपुंस्क हो अर्थात् तुल्य प्रवृत्तिनिमित्त होने पर ही पुंवद्भाव होता है। यहाँ पुंल्लिङ्ग में वृक्षाकृति प्रवृत्तिनिमित्त है तथा नपुंसक लिङ्ग में फलाकृति। अतः प्रवृत्तिनिमित्त के भिन्न-भिन्न होने से पुंवद्भाव नहीं हुआ।

तदेत०—यदि ऐसा है तो फिर यह कैसे होता है भाषितपुंस्क ? पुमान् भाषित है जिस अर्थ में, वह भाषितपुंस्क शब्द से कहा जाता है। इसके योग से अभिधेय भी जो नपुंसक होता है, वह भी भाषितपुंस्क होता है। उस अर्थ का प्रतिपादक जो शब्दस्वरूप, वह भी भाषितपुंस्क होता है।

इक०—इगन्त शब्द को ही पुंवद्भाव होता है।

(29) कीलालपेन
कीलालपा ब्राह्मणः, कीलालपं ब्राह्मणकुलम्—पुंवद्भाव नहीं हुआ।

अची०—अजादि विभक्तियों में ही होता है।

(30) ग्रामणिभ्याम्
'भ्याम्' अजादि विभक्ति नहीं है। पुंवद्भाव नहीं हुआ।

(3251) अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनङुदात्तः *75* (322)

अस्थि, दधि, सक्थि, अक्षि-इत्येतेषां नपुंसकानां तृतीयादिष्वजादिषु विभक्तिषु परतोऽनङित्ययमादेशो भवति, स चोदात्तो भवति। अस्थ्ना, अस्थ्ने। दध्ना, दध्ने। सक्थ्ना, सक्थ्ने। अक्ष्णा, अक्ष्णे। अस्थ्यादय आद्युदात्ताः, तेषामनङादेशः स्थानिवद्भावादनुदात्तः स्यादित्युदात्तवचनम्। तत्र भसंज्ञायामल्लोपे कृते उदात्तनिवृत्तिस्वरेण विभक्तिरुदात्ता भवति। एतैरस्थ्यादिभिर्नपुंसकस्याप्यङ्गस्य तदन्तग्रहणमिष्यते। प्रियास्थ्ना ब्राह्मणेन, प्रियदध्ना। तृतीयादि-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ष्विति किम्? अस्थिनी, दधिनी। अचीत्येव–अस्थिभ्याम्, दधिभ्याम्।

अर्थ—अस्थि, दधि, सक्थि तथा अक्षि—इन नपुंसकलिङ्ग अङ्गों को अनङ् आदेश होता है और वह आदेश उदात्त होता है, अजादि व तृतीयादि विभक्तियों के परे रहते।

उदा० (1) अस्थ्ना
अस्थि टा—अनङ् हुआ, ङिच्च, अकार उच्चारणार्थ,
अस्थन् आ—अल्लोपोऽनः
अस्थ्न् आ—रूप।

(2) अस्थ्ने
अस्थि ङे—अनङ्, लशक्वतद्धिते,
अ स्थ् न् ए—अकारलोप।

(3) दध्ना
दधि टा—अनङ्, अकारलोप।

(4) दध्ने
दधि ङे—पूर्ववत्।

(5) सक्थ्ना
टा, अनङ्, अकारलोप।

(6) सक्थ्ने
सक्थि ङे—अनङ्, अकारलोप।

(7) अक्ष्णा
अक्षि टा—अनङ्,
अक्षन् टा—अतो लोपः,
अक्ष् न् आ—रषाभ्यां नो णः समा०।

(8) अक्ष्णे
अक्षि ङे—पूर्ववत्।

अस्थ्या०—अस्थि आदि आद्युदात्त हैं। उनको विहित अनङ् आदेश स्थानिवद्भाव से अनुदात्त होने लगेगा। उदात्त का विधान किया गया है। तब भसञ्ज्ञा होने पर अकार का लोप करने पर उदात्तनिवृत्ति स्वर से विभक्ति उदात्त होती है।

एतैर०—इन अस्थि आदि नपुंसकलिङ्ग शब्दों के द्वारा अनपुंसकलिङ्ग अङ्ग का तदन्त का ग्रहण होता है। यथा—

(9) प्रियास्थ्ना ब्राह्मणेन
प्रियाण्यस्थीनि यस्य—प्रियास्थिर्ब्राह्मणस्तेन।
यहाँ पूर्ववत् अनङ् आदेश व आकारलोप हुआ।

इसी प्रकार—

(10) प्रियास्थ्ने, (11) प्रियदध्ना, (12) प्रियदध्ने, (13) प्रियसक्थ्ना, (14) प्रियसक्थ्ने, (15) प्रियाक्ष्णा, (16) प्रियाक्ष्णे।

तृतीया०—तृतीयादि विभक्तियों के परे रहते ही 'अनङ्' आदेश होता है।

(17) अस्थिनी
अस्थि औ—'औ' तृतीयादि नहीं है, अनङ् नहीं हुआ,
अस्थि शी—नपुंसकाच्च,
अस्थिनी—लशक्वतद्धिते।

(18) दधिनी
दधि औ—अनङ् की अप्राप्ति।

(19) सक्थिनी
सक्थि औ—पूर्ववत्।

(20) अक्षिणी
अक्षि औ—अनङ् नहीं हुआ, अट्कुप्वाङ्०

अची०—अजादि विभक्तियों में ही 'अनङ्' होता है।

(21) अस्थिभ्याम्
अस्थि भ्याम्—तृतीयादि विभक्ति है, परन्तु अजादि नहीं है, अतः अनङ् नहीं हुआ।

(22) दधिभ्याम् (पूर्ववत्)।
(23) सक्थिभ्याम् (पूर्ववत्)।
(24) अक्षिभ्याम् (पूर्ववत्)।

विशेष—'नपुंसक शब्द अस्थि आदि शब्दों का विशेषण है। इसका प्रयोजन यह है कि जब अस्थि आदि यदृच्छा शब्द के रूप में अन्य लिङ्गों में होते हैं, तब यह अनङ् आदेश नहीं होता है।[1] यथा—

(25) दधिना
दधि टा—'दधि' किसी व्यक्ति का नाम है, तब अनङ् अन्तादेश नहीं हुआ, 'घि' सञ्ज्ञा होकर 'आङो नाऽस्त्रियाम्' से 'ना' होता है।

(3252) छन्दस्यपि दृश्यते *76* (3575)

अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनङ् छन्दस्यपि दृश्यते। यतो विहितस्ततोऽन्यत्रापि दृश्यते। 'अचि' इत्युक्तम्, अनजा-

1. न्यास० 7.1.75 यदा ते यदृच्छाशब्दाः सन्तोऽपि लिङ्गान्तरे वर्त्तन्ते तदा मा भूत्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दावपि दृश्यते–'इंन्द्रो दधीचो अस्थभिः (ऋ० 1.44. 13)। 'भद्रं पश्येमाक्षभिः' (वा०सं० 25.21)। 'तृतीयादिषु' इत्युक्तम्, अतृतीयादिष्वपि दृश्यते–अस्थान्युत्कृत्य जुहोति। 'विभक्तौ' इत्युक्तम्, अविभक्तावपि दृश्यते–अक्षण्वता लाङ्गलेन। 'अस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति' (ऋ० 1.164.4)।

अर्थ—वेद के विषय में अस्थि, दधि, सक्थि तथा अक्षि—इन नपुंसक अङ्गों को अनङ् आदेश अन्यत्र भी होता है।

'अपि' पद के द्वारा सभी विधियों का व्यभिचार गृहीत होता है। अतः विहित स्थलों से अन्यत्र भी 'अनङ्' आदेश दृष्टिगोचर होता है।

अचि०—अजादि विभक्तियों के परे रहते 'अनङ्' का विधान है। 'अपि' पद होने से अनजादि (अर्थात् हल्) विभक्ति के परे रहते भी अनङ् देखा जाता है।

(1) अस्थभिः (ऋ० 1.84.13)
अस्थि भिस्—अनङ् हुआ,
अस्थन् भिस्—पदसञ्ज्ञा, नलोपः प्राति० से नलोप।

(2) अक्षभिः (मा०सं० 25.21)
अक्षि भिस्—पूर्ववत् अनङ् नलोप।

तृतीया०—तृतीयादि विभक्तियों के परे रहे 'अनङ्' विहित है, परन्तु 'अपि' पद का ग्रहण होने से तृतीया से अतिरिक्त विभक्ति में भी 'अनङ्' दृष्टिगोचर होता है।

(3) अस्थानि
अस्थि जस्—'जश्शसोः शिः' से 'शि', अनङ्,
अस्थन् इ—लशक्वतद्धिते,
अस्थन् इ—उपधादीर्घ।

विभक्तौ०—विभक्ति के परे रहते 'अनङ्' विहित है, 'अपि' पद का ग्रहण होने से विभक्ति से भिन्न प्रत्यय के परे रहते भी 'अनङ्' दृष्टिगोचर होता है।

(4) अक्षण्वता
अक्षि मतुप्—मतुप् की विभक्तिसञ्ज्ञा नहीं है, अनङ्,
अक्षन् वत् टा—प्रातिपदिक सञ्ज्ञा, णत्व।

(5) अस्थन्वन्तम् (ऋ० 1.164.4)
अस्थि मतुप्—पूर्ववत् अनङ् हुआ,
अस्थन्वत् अम्—विभक्तिकार्य।

(3253) ई च द्विवचने *77* (3576)

द्विवचने परतश्छन्दसि विषयेऽस्थ्यादीनामीकारादेशो भवति, स चोदात्तः। अक्षी ते इन्द्र पिङ्गले कपेरिव। 'अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्याम्' (ऋ० 10.163.1)। अक्षी–इत्यत्र नुम्परत्वादीकारेण बाध्यते, तत्र कृते 'सकृद्गतौ विप्रतिषेधे यद्बाधितं तद्बाधितमेव' (व्या०प०) इति पुनर्नुम् क्रियते।

अर्थ—वेद के विषय में अस्थि, दधि, सक्थि तथा अक्षि अङ्गों को ईकार आदेश होता है, द्विवचन विभक्ति (औ, औट्, भ्याम्, ओस्) के परे रहते तथा वह अन्तादेश उदात्त होता है।

उदा० (1) अक्षी
अक्षि औ—नपुंसकाच्च,
अक्षी शी—ईकार अन्तादेश, लशक्वतद्धिते, प्रथमयोः पूर्वसवर्णः से प्राप्त पूर्वसवर्णदीर्घ का 'दीर्घाज्जसि च' से निषेध, परन्तु छान्दस होने से दीर्घ हुआ।

(2) अक्षीभ्याम्
अक्षि भ्याम्—ईकार अन्तादेश।

अक्षी०—'अक्षी' इस स्थल पर प्रकृत सूत्र के द्वारा ईकार अन्तादेश तथा नुम् आगम—दोनों की प्रवृत्ति होती है। पर होने से ईकार अन्तादेश के द्वारा नुम् आगम का बाध होता है। एक बार बाध हो जाने पर 'सकृद्गतौ विप्रतिषेधे०' परिभाषा से पुनः प्राप्ति नहीं होती है।

(3254) नाभ्यस्ताच्छतुः *78* (427)

अभ्यस्तादङ्गादुत्तरस्य शतुर्नुम् भवति। ददत्, ददतौ, ददतः। दधत्, दधतौ, दधतः। जक्षत्, जक्षतौ, जक्षतः। जाग्रत्, जाग्रतौ, जाग्रतः। शतुरनन्तर ईकारो न विहित इति व्यवहितस्यापि नुमः प्रतिषेधो विज्ञायते।

अर्थ—अभ्यस्तसञ्ज्ञक अङ्ग से उत्तर शतृ प्रत्यय को नुम् आगम नहीं होता है।

उदा० (1) ददत्
दा शतृ—लट्, शतृ प्रत्यय, अनुबन्धलोप,
दा शप् अत्—'कर्त्तरि शप्' से शप्, 'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः' से श्लुत्व,
दा दा अत्—श्लौ, एकाचो द्वे प्रथमस्य,
द द् अत्—ह्रस्वः, 'श्नाऽभ्यस्तयोरातः' से आकारलोप,
ददत् सु—नुम् नहीं हुआ, प्रातिपदिक सञ्ज्ञा, सुलुक्। यहाँ 'उगिदचां० से नुम् प्राप्त था।

(2) ददतौ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ददत् औ—पूर्ववत् 'नुम्' की अप्राप्ति।

(3) ददतः
ददत् जस्—पूर्ववत्।

(4) दधत्
धा शतृ—पूर्ववत् सभी कार्य।

(5) दधतौ
दधत् औ—पूर्ववत्।

(6) दधतः
दधत् जस्—पूर्ववत्।

(7) जक्षत्
जक्ष् शतृ—जक्षित्यादयः षट्, शेष पूर्ववत्।

(8) जक्षतौ
जक्षत् औ—पूर्ववत्।

(9) जक्षतः
जक्षत् जस्—पूर्ववत्।

(10) जाग्रत्
नुम् नहीं हुआ।

(11) जाग्रतौ
जाग्रत् औ—पूर्ववत्।

(12) जाग्रतः
जाग्रत् जस्—पूर्ववत्।

शतुरन०—शतृ प्रत्यय के अनन्तर ईकार अन्तादेश का विधान नहीं किया गया है। तब व्यवधानयुक्त होने पर भी नुम् का निषेध होता है।

(3255) वा नपुंसकस्य *79* (444)

अभ्यस्तादङ्गादुत्तरो यः शतृप्रत्ययस्तदन्तस्य नपुंसकस्य वा नुमागमो भवति। ददति, ददन्ति कुलानि। दधति, दधन्ति कुलानि। जक्षति जक्षन्ति कुलानि। जाग्रति, जाग्रन्ति कुलानि।

अर्थ—अभ्यस्तसञ्ज्ञक से उत्तर जो शतृ प्रत्यय, तदन्त नपुंसक अङ्ग को नुम् आगम विकल्प से होता है, सर्वनामस्थानसञ्ज्ञक प्रत्यय के परे रहते।

उदा० (1) ददन्ति
ददत्—'दा शतृ' से 'ददत्' बनता है,
ददत् जस्—'जश्शसोः शिः' से 'शि', 'शि सर्वनामस्थानम्' से सर्वनामस्थान सञ्ज्ञा, 'नुम्' हुआ।

(2) ददति
पक्ष में—नुम् अभाव।

(3) दधन्ति
'ददन्ति' की तरह।

(4) दधति
दधत् शि—नुम् अभाव।

(5) जक्षन्ति
जक्षत् शि—जक्षित्यादयः षट्, पूर्ववत् 'नुम्' हुआ।

(6) जक्षति
नुम् अभाव।

(7) जाग्रन्ति
नुम् हुआ।

(8) जाग्रति
जाग्रत् शि—पूर्ववत्, नुम का अभाव।

(3256) आच्छीनद्योर्नुम् *80* (445)

अवर्णान्तादङ्गादुत्तरस्य शतुर्वा नुमागमो भवति शीनद्योः परतः। तुदती कुले, तुदन्ती कुले। तुदती ब्राह्मणी, तुदन्ती ब्राह्मणी। याती कुले, यान्ती कुले। याती ब्राह्मणी, यान्ती ब्राह्मणी। करिष्यती कुले, करिष्यन्ती कुले। करिष्यती ब्राह्मणी, करिष्यन्ती ब्राह्मणी। अत्रान्तरङ्गत्वादेकादेशे कृते व्यपवर्गाभावादवर्णान्तादङ्गादुत्तरस्य शतुरिति न युज्यते वक्तुम्, 'उभयत आश्रये नान्तादिवत्' (व्या०प०) इत्यन्तादिवद्भावोऽपि नास्ति, भूतपूर्वगत्याश्रयणे वा—अदती, घ्नतीत्येवमादिष्वतिप्रसङ्ग इति? अत्र समाधिं केचिदाहुः—शतुरवयवे शतृशब्दो वर्त्तते, अवर्णान्तादङ्गादुत्तरो यः शत्रवयव इति। अपरे पुनराहुः—'आत्' इत्येतेन शीनद्यावेव विशेष्येते, अवर्णान्तादङ्गादुत्तरे ये शीनद्यौ तयोः परतः शत्रन्तस्य नुम्भवतीति। तत्र येन नाव्यवधानं तेन व्यवहितेऽपि वचनप्रामाण्यादिति तकारेणैव व्यवधानमाश्रयिष्यते। आदिति किम्? कुर्वती। सुन्वती। शीनद्योरिति किम्? तुदताम्। नुदताम्।

अर्थ—अवर्णान्त अङ्ग से उत्तर जो शतृ प्रत्यय का अवयव, तदन्त अङ्ग के अवयव को नुम् आगम विकल्प से होता है, शी तथा नदी के परे रहते।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'शी' प्रत्यय है, जो द्विवचन विभक्ति (औ) के स्थान पर आदेश होता है। 'नदी' के द्वारा ङीप् आदि का ग्रहण होता है।

उदा० (1) तुदन्ती

तुद् शतृ—लट् के स्थान पर 'शतृ' हुआ, शप् को बाध कर 'श' हुआ,

तुदत् औ—'अतो गुणे' से पररूप, 'तुद' यह अवर्णान्त अङ्ग है, इससे उत्तर 'त्' शतृ प्रत्यय का अवयव है, तदन्त अङ्ग 'तुदत्' हुआ,

तुदन् त् शी—नपुंसकाच्च, नुम्,

तुदन्ती—अनुस्वार, परसवर्ण।

(2) तुदती

पक्ष में 'नुम्' नहीं हुआ।

(3) तुदन्ती

तुदत् ङीप्—स्त्रियाम्, उगितश्च से ङीप्,

तुद न् त ई—नुम्।

(4) तुदती

पक्ष में 'नुम्' अभाव।

(5) यान्ती

यात् शी—नुम्।

(6) याती

नुम् का अभाव।

(7) यान्ती

यात् ङीप्—पूर्ववत् नुम्।

(8) याती

पक्ष में 'नुम्' का अभाव।

(9) करिष्यन्ती

कृ स्य शतृ—आर्धधातुक सञ्ज्ञा, बलादिक इट्,

करिष्यत् औ—पूर्ववत् नुम् आदि।

(10) करिष्यती

पक्ष में 'नुम्' का अभाव।

इसी प्रकार ङीप् में दो रूप बनते हैं।

अत्रान्तर०—यहाँ अन्तरङ्ग कार्य होने से प्रथम पररूप एकादेश करने पर व्यपवर्ग के अभाव के कारण (अर्थात् दोनों अकारों के मिल जाने पर) अवर्णान्त अङ्ग से पर शतृ नहीं रहता और नुम् की अप्राप्ति होती है। दोनों ओर से आश्रयण करने में (पूर्व का) अन्तवद्भाव तथा (पर का) आदिवद्भाव नहीं होता है। फलतः अन्तादिवद्भाव भी नहीं होता है। अथवा भूतपूर्व गति का आश्रय कर लिया जाय (अर्थात् एकादेश से पूर्व अवर्णान्त ही था। उसका हो जाय), ऐसा मानने पर अदतः, घ्नतः—इन स्थलों पर अतिप्रसङ्ग होता है। कारण कि लुक् से पूर्व ये अकारान्त ही थे।

कुछ विद्वान् इसका समाधान इस प्रकार करते हैं—शतृ के अवयव अर्थ में शतृ शब्द है। अतः अवर्णान्त अङ्ग से उत्तरवर्ती जो शतृ का अवयव इस प्रकार। तब नुम् हो जाता है।

अपरे—अन्य विद्वान् कहते हैं कि 'आत्' इस पद के द्वारा 'शी' तथा 'नदी' ही विशेषित होते हैं। यथा—अवर्णान्त अङ्ग से उत्तरवर्ती जो 'शी' और 'नदी', इनके परे रहते शतृ प्रत्ययान्त को 'नुम्' होता है। इस दशा में 'जिसका अव्यवधान नहीं होता है, उसके द्वारा व्यवधान में भी कार्य होता है—इस वचन के प्रामाण्य से केवल तकार से ही व्यवधान का आश्रयण किया जाता है।

आदिति०—अवर्णान्त से उत्तर जो शतृ प्रत्यय का अवयव, तदन्त को 'नुम्' आगम पाक्षिक होता है।

(11) कुर्वती

कुर्वत् ङीप्—यहाँ नुम् नहीं हुआ।

(12) सुन्वती

षु → सु—धात्वादेः षः सः,

सु श्नु शतृ—शप् को बाध कर 'श्नु',

सुन्वत् ङीप्—'नुम्' नहीं हुआ।

शीनद्यो०—शी तथा नदी के परे रहते नुम् होता है।

(13) तुदताम्

तुदत् आम्—नुम् नहीं हुआ।

(14) नुदताम् (पूर्ववत्)।

(3257) शप्श्यनोर्नित्यम् *81* (446)

शप्, श्यन्-इत्येतयोः शतुः शीनद्योः परतो नित्यं नुमागमो भवति। पचन्ती कुले, पचन्ती ब्राह्मणी। दीव्यन्ती कुले, दीव्यन्ती ब्राह्मणी। सीव्यन्ती कुले, सीव्यन्ती ब्राह्मणी। नित्यग्रहणम् 'वा' इत्यस्याधिकारस्य निवृत्त्यर्थम्। इहारम्भसामर्थ्यान्नित्यमुत्तरत्र विकल्प एवेत्याशङ्क्येत।

अर्थ—शप् तथा श्यन् का जो अवर्णान्त अङ्ग, उससे पर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जो शतृ का अवयव, तदन्त अङ्ग को नित्य नुम् आगम होता है, शी तथा नदी के परे रहते।

'कर्तरि शप्' से शप् तथा 'दिवादिभ्यः श्यन्' से श्यन् होता है।

(1) पचन्ती
पच् शप् शतृ—कर्तरि शप्, अतो गुणे,
पचत् औ—नपुंसकाच्च, नुम्,
प च न् त् ई—अनुस्वार, परसवर्ण।
इसी प्रकार 'ङीप्' में—पचन्ती।

(2) दीव्यन्ती
दिव् श्यन् शतृ—दिवादिभ्यः श्यन्, दीर्घ, अतो गुणे,
दीव्यत् शी—पूर्ववत् 'औ' को शीभाव,
दीव्य न् त् ई—पूर्ववत्।
इसी प्रकार 'ङीप्' में—दीव्यन्ती।

(3) सीव्यन्ती
सीव्यत् औ/ङीप्—सभी कार्य पूर्ववत्।

नित्य०—'नित्य' का ग्रहण 'वा' के अधिकार की निवृत्ति के लिये है। यहाँ आरम्भसामर्थ्य से नित्य विधि होती है। उत्तर शास्त्र में विकल्प ही होता है—ऐसी आशङ्का होती है।

(3258) सावनडुहः *82* (332)

सौ परतोऽनडुहोऽङ्गस्य नुमागमो भवति। अनड्वान्। हे अनड्वन्! अत्र केचित् 'आत्'-इत्यधिकारादाममोः कृतयोर्नुमं कुर्वन्ति। तेन नुमाऽमामौ न बाध्येते, आमम्भ्यां च नुमिति। अपरे तु-सत्यपि सामान्यविशेषत्वे आममोर्नुमश्च समावेशमिच्छन्ति, न बाध्यबाधकभावम्, यथा-चिचीषत्यादिषु दीर्घत्वद्विर्वचनयोरिति।

अर्थ—अनडुह् अङ्ग को 'नुम्' होता है, 'सु' परे रहते।

उदा० (1) अनड्वान्
अनडुह् सु → अनडु आम् ह् स्—चतुरनडुहोराम्०,
अनड्वान् ह् स्—यण्, नुम्,
अनड्वान्—हल्ङ्यादि लोप, संयोगान्तलोप।

(2) हे अनड्वन्
पूर्ववत् 'नुम्' हुआ।

अत्र०—यहाँ कुछ विद्वान् पूर्वसूत्र से 'आत्' का अनुवर्त्तन स्वीकार करते है। 'आत्' के अधिकार में सूत्रार्थ इस प्रकार होता है—

'सु' परे रहते अनडुह् अङ्ग को नुम् आगम होता है, परन्तु वह आगम अवर्ण से उत्तर होता है।

चूँकि आम् अथवा अम् किये विना अवर्ण प्राप्त नहीं है; अतः प्रथम आम् अथवा अम् करने के पश्चात् नुम् आगम करते हैं। इस प्रकार नुम् के द्वारा आम् तथा अम् का बाध नहीं होता तथा आम् व अम् के द्वारा नुम् का बाध नहीं होता।

अपरे०—अन्य विद्वान् मानते हैं कि सामान्य और विशेष होने परे भी आम् तथा नुम् का समावेश होता है। उनके अनुसार बाध्य-बाधकभाव नहीं होता है। यथा 'चिचीषति' में दीर्घत्व और द्विर्वचन का समावेश होता है।

(3) चिचीषति
चि सन्—अज्झनगमां सनि,
ची स—सन्यङोः,
चि ची स—द्वित्व, अभ्यासकार्य,
चिचीषति—लकारकार्य।

(3259) दृक्स्ववस्स्वतवसां छन्दसि *83* (3577)

दृक्, स्ववस्, स्वतवस्-इत्येतेषां सौ परतो नुमागमो भवति छन्दसि विषये। ईदृङ्। तादृङ्। यादृङ्। सदृङ्। स्ववान्। स्वतवान्पायुरग्ने।

अर्थ—वेद के विषय में 'सु' विभक्ति परे रहते दृक्, स्ववस् तथा स्वतवस्—इन अङ्गों को नुम् आगम होता है।

उदा० (1) ईदृङ्
इदम् दृश् क्विन्—त्यदादिषु० से क्विन्, सर्वापहारलोप,
ईश् दृश्—इदं किमोरीश्की० से 'ईश्' आदेश,
ईदृश् स्—प्रातिपदिक सञ्ज्ञा, सु,
ईदृन् श् स्—नुम्, हल्ङ्याब्भ्यो०'
ईदृन्—संयोगान्तस्य लोपः,
ईदृङ्—क्विन् प्रत्ययस्य कुः।

(2) तादृङ्
तद् दृश् क्विन्—पूर्ववत्,
ता दृश्—सर्वापहारलोप, 'आ सर्वनाम्नः०' से आकार अन्तादेश, सवर्णदीर्घ,
ता दृ न् श् स्—सु, शेष कार्य पूर्ववत्।

(3) यादृङ्
यद् दृश् क्विन्—'तादृङ्' की तरह।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

94) सदृङ्
समान दृश् क्विन्—सभी कार्य 'तादृङ्' की तरह, 'दृग्दृशवतुषु' से 'समान' के स्थान पर 'स' होता है।

(5) स्ववान्
स्ववस् सु → स्ववन् स् स्—हल्ङ्यादिलोप,
स्ववान् स्—उपधादीर्घ, संयोगान्तस्य लोपः।

(6) स्वतवान्
स्वतवस् सु—पूर्ववत् नुम् आदि।

(3260) दिव औत् *84* (336)

'दिव्'-इत्येतस्य सौ परतः 'औत्' इत्ययमादेशो भवति। द्यौः। दिविति प्रातिपदिकमस्ति निरनुबन्धकम्। धातुस्तु सानुबन्धकः, स इह न गृह्यते-अक्षद्यूः।

अर्थ—दिव् अङ्ग को 'औ' आदेश होता है, 'सु' विभक्ति परे रहते। औत् का तकार उच्चारणार्थ है। 'औ' आदेश अन्त्य वर्ण (वकार) के स्थान पर होता है।

उदा० (1) द्यौः
दिव् सु—दि औ सु—यण्,
द्यौस्—विसर्जनीय।

दिविति०—'दिव्' के द्वारा 'दिवु' धातु का ग्रहण नहीं होता। यहाँ 'दिव्' प्रातिपदिक का ही ग्रहण होता है। धातु का अनुबन्ध-रहित निर्देश नहीं होता है। निम्नलिखित में इसका ग्रहण नहीं होता है—

(2) अक्षद्यूः
अक्षदिव् सु—'च्छ्वोः शूडनुनासिके च' से 'ऊठ्',
अक्ष दि ऊ स्—यण्।

(3261) पथिमथ्यृभुक्षामात् *85* (365)

पथिन्, मथिन्, ऋभुक्षिन्-इत्येतेषामङ्गानां सौ परत आकार आदेशो भवति। पन्थाः। मन्थाः। ऋभुक्षाः। स्थानिन्यनुनासिकेऽपि अकारोऽनुनासिको न भवति। भाव्यमानेन सवर्णानां ग्रहणं न भवतीति शुद्धो ह्याय-मुच्चार्यते।

अर्थ—पथिन्, मथिन् तथा ऋभुक्षिन्—इन अङ्गों को आकार (अन्तादेश) होता है, 'सु' विभक्ति परे रहते। तकार उच्चारणार्थ है।

उदा० (1) पन्थाः, (2) मन्थाः, (3) ऋभुक्षाः
सिद्धि अगले सूत्र पर देखें।

स्थानि०—पथिन्, मथिन् तथा ऋभुक्षिन् को आकार होता है। अलोऽन्त्य परिभाषा से अन्त्य वर्ण के स्थान पर होता है। सूत्रोक्त पथिन् आदि तीनों शब्दों के अन्त में नकार है। यथा नकार स्थानी है। इसके स्थान पर होने वाला आकार आदेश 'स्थानेऽन्तरतमः' से अनुनासिक आकार प्राप्त होता है; परन्तु 'भाव्यमान अण् के द्वारा सवर्णों का ग्रहण नहीं होता है' इस परिभाषा से शुद्ध आकार होता है।

(3262) इतोऽत्सर्वनामस्थाने *86* (366)

पथ्यादीनामिकारस्य स्थाने अकारादेशो भवति सर्वनाम-स्थाने परतः। पन्था, पन्थानौ, पन्थानः, पन्थानम्, पन्थानौ। मन्थाः, मन्थानौ, मन्थानः, मन्थानम्, मन्थानौ। ऋभुक्षाः, ऋभुक्षाणौ, ऋभुक्षाणः, ऋभुक्षाणम्, ऋभु-क्षाणौ। 'आत्' इति वर्त्तमाने पुनरद्वचनं षपूर्वार्थम्। ऋभुक्षणमित्यत्र 'वा षपूर्वस्य निगमे' (6.4.9) इति दीर्घविकल्पः।

अर्थ—पथिन्, मथिन् तथा ऋभुक्षिन्—इन अङ्गों के इकार के स्थान पर आकार आदेश होता है, सर्वनामस्थानसञ्ज्ञक प्रत्यय परे रहते।

उदा० (1) पन्थाः
पथिन् सु—'पथिमथ्यृभुक्षामात्' से आकार,
पथि आ स्—'इतोऽत् सर्व०' से अकार,
पथ् अ आ स्—'अकः सवर्णे दीर्घः' से सवर्णदीर्घ,
पथास्—थो न्थः।

(2) पन्थानौ
पथिन् औ → पथन् औ—इतोऽत्सर्व०,
पन्थन् औ—थो न्थः,
पन्थान् औ—सर्वनामस्थाने चाऽस०।

(3) पन्थानः
पथिन् जस् → पथन् अस्—इतोऽत्सर्व०,
पन्थन् अस् → पन्थानस्—थो न्थः, सर्वनामस्थाने०।

(4) पन्थानम्
पथिन् अम् → पथन् अम् → पन्थन् अम्—इतोऽत्०, थो न्थः,
पन्थान् अम्—उपधादीर्घ।

(5) पन्थानौ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पथिन् औट्—पूर्ववत्।

(6) मन्थाः
'पन्थाः' की तरह।

(7) मन्थानौ
'पन्थानौ' की तरह।

(8) मन्थानः
'पन्थानः' की तरह।

(9) मन्थानम्
मथिन् अम्—'पन्थानम्' की तरह।

(10) मन्थानौ
मथिन् औट्—पूर्ववत्।

(11) ऋभुक्षाः
ऋभुक्षिन् सु → ऋभुक्ष् आ स्—आकार अन्तादेश, इतोऽत्सर्व०, सवर्णदीर्घ,
ऋभुक्षास्—विसर्ग।

(12) ऋभुक्षाणौ
ऋभुक्षिन् औ—अकार आदेश,
ऋभुक्षन् औ—उपधादीर्घ, णत्व।

(13) ऋभुक्षाणः
'जस्' विभक्ति, शेष पूर्ववत्।

(14) ऋभुक्षाणम्
अम् विभक्ति, शेष पूर्ववत्।

(15) ऋभुक्षाणौ
औट्—पूर्ववत्।

आत्०—यद्यपि पूर्वसूत्र से 'आत्' पद का अनुवर्त्तन प्राप्त है, तदपि प्रकृत सूत्र में 'अत्' का ग्रहण 'षपूर्व' के लिये है। तब निम्नलिखित में 'षपूर्वस्य निगमे' से पाक्षिक दीर्घ होता है।

(3263) थो न्थः *87* (367)

पथिमथोस्थकारस्य स्थाने 'न्थ'-इत्ययमादेशो भवति सर्वनामस्थाने परतः। पन्थाः, पन्थानौ, पन्थानः। मन्थाः, मन्थानौ, मन्थानः।

अर्थ—पथिन् व मथिन्—इन अङ्गों के थकार के स्थान पर 'न्थ्' आदेश होता है, सर्वनामस्थानसञ्ज्ञक प्रत्यय परे रहते। 'न्थ' में अकार उच्चारणार्थ है।

यद्यपि यहाँ 'ऋभुक्षिन्' पद भी अनुवृत्त है, तदपि इसके सम्भव न होने से अर्थ में इसे दिखाया नहीं गया है।

उदा० (1) पन्थाः, (2) पन्थानौ, (3) पन्थानः, (4) पन्थानम्, (5) पन्थानौ, (6) मन्थाः, (7) मन्थानौ, (8) मन्थानः, (9) मन्थानम्, (10) मन्थानौ—

सभी रूपों की सिद्धि पिछले सूत्र पर देखें।

(3264) भस्य टेर्लोपः *88* (368)

पथ्यादीनां भसंज्ञकानां टेर्लोपो भवति। पथः, पथा, पथे। मथः, मथा, मथे। ऋभुक्षः, ऋभुक्षा, ऋभुक्षे। 'सर्वनामस्थाने' इत्यनुवर्त्तमानमपि विरोधादिह न सम्बद्ध्यते।

अर्थ—भसञ्ज्ञक पथिन्, मथिन् व ऋभुक्षिन् अङ्गों के 'टि' का लोप होता है।

उदा० (1) पथः
पथिन् शस्—'यचि भम्' से भसञ्ज्ञा, 'अचोऽन्त्यादि टि' से 'इन्' की टिसञ्ज्ञा,
पथ् अस्—टिलोप।

(2) पथा
पथिन् टा—टिलोप,
पथ् आ—पूर्ववत्।

(3) पथे
पूर्ववत् टिलोप।

(4) मथः
मथिन् शस्—टिलोप।

(5) मथा
मथिन् टा—पूर्ववत्।

(6) मथे
मथिन् ङे—पूर्ववत्।

(7) ऋभुक्षः
ऋभुक्षिन् शस्—टि का लोप।

(8) ऋभुक्षा
ऋभुक्षिन् टा—पूर्ववत्।

(9) ऋभुक्षे
ऋभुक्षिन् ङे—टि का लोप।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सर्वनाम०—यहाँ 'सर्वनामस्थाने' पद का अनुवर्त्तन है। तदपि विरोध होने से यहाँ इसका सम्बन्ध नहीं होता है।

(3265) पुंसोऽसुङ् *89* (436)

'पुंस्' इत्येतस्य सर्वनामस्थाने परतोऽसुडित्ययमादेशो भवति। पुमान्। पुमांसौ। पुमांसः। इह परमपुमानिति प्रागेव च प्रत्ययोत्पत्तेः समासान्तोदात्तत्वमुत्पन्नायां विभक्तौ असुञित्यनिष्टः स्वरः प्राप्नोति? तदर्थमसुङि उपदेशिवद्वचनं कर्त्तव्यम् (म० भा०)। तेन परमपुमानित्यन्तोदात्तो भवति। पुमानित्ययं पुनराद्युदात्त एव।

अर्थ—'पुंस्' अङ्ग को 'असुङ्' आदेश होता है, सर्वनामस्थान-सञ्ज्ञक प्रत्यय के परे रहते।

ङकार की इत्सञ्ज्ञा है। 'ङिच्च' के द्वारा अन्त्य वर्ण के स्थान पर होता है।

उदा० (1) पुमान्

पुंस् → पुम् असुङ् सु—सर्वनामस्थान (सु) की विवक्षा में सकार के स्थान पर 'असुङ्', 'निमित्ताऽपाये नैमित्तिकस्याऽप्यपायः' के द्वारा अनुस्वार के स्थान पर 'म्' हुआ,

पुम् अस् सु—उकार व ङकार की इत्सञ्ज्ञा,

पुम् अन् स् स्—उगिदचां सर्व० से नुम्,

पुमान्—हल्ङ्यादि लोप, संयोगान्तस्य लोपः, 'सान्त-महतः०' से दीर्घ होता है।

(2) पुमांसौ

पुंस् औ → पुम् असुङ् औ—असुङ् आदेश, नुम्,

पुमांस् औ—उपधादीर्घ, अनुस्वार।

(3) पुमांसः (पूर्ववत्)।

इह०—'परमपुमान्' इस स्थल पर प्रत्यय की उत्पत्ति से पूर्व समासलक्षण अन्तोदात्त स्वर होता है। यदि विभक्ति कर दी जाय तो पश्चात् असुङ् यह अनिष्ट स्वर प्राप्त होता है। इसलिये असुङ् में व्यपदेशिवद्भाव कहना चाहिए। तब 'परमपुमान्' अन्तोदात्त हो पायेगा। 'पुमान्' यह तो आद्युदात्त होता ही है।

भाव इस प्रकार है—पु धातु से मुक्सुन् प्रत्यय होकर 'पुंस्' शब्द बनता है। इसको नित् स्वर (ञ्नित्यादिर्नित्यम्) अर्थात् आद्युदात्त होता है।

(3266) गोतो णित् *90* (284)

गोशब्दात्परं सर्वनामस्थानं णिद्भवति। णित्कार्यं तत्र भवतीत्यर्थः। गौ, गावौ, गावः। तपरकणं किम्? चित्रगुः। शबलगुः। कथं हे चित्रगो, हे शवलगव इति? 'अङ्गवृत्ते पुनर्वृत्ताविधिर्निष्ठितस्य' (व्या०प०) इति सम्बुद्धिजसोर्गुणे कृते णित्त्वं न भवति। अथ वा—'गोतः' इति सम्बन्धलक्षणा षष्ठी, गोतः सम्बन्धि यत्सर्वनाम-स्थानमिति। यच्च तदर्थस्यैकत्वादिषु सर्वनामस्थानं तद् गोः सर्वनामस्थानमित्युच्यते। चित्रगुशब्दात्तु सर्वनामस्थानं तदन्यपदार्थस्यैकत्वादीनाह। तपरकरणं तु निर्देशार्थमेव। केचित् 'ओतो णित्' इति पठन्ति। द्योशब्दादपि यत्सर्व-नामस्थानं विद्यते तदर्थम्। द्यौः, द्यावौ, द्यावः। 'गोतः' इत्येतदेव तपरकणनिर्देशादोकारान्तोपलक्षणं द्रष्टव्यम्। वर्णनिर्देशेषु हि तपरकरणं प्रसिद्धम्।

अर्थ—ओकारान्त अङ्ग से उत्तर जो सर्वनामस्थानसञ्ज्ञक विभक्ति, वह णिद्वत् होती है।

भाव यह है कि जो-जो कार्य णित् परे रहते होते हैं, वे सभी कार्य यहाँ होते हैं।

उदा० (1) गौः

गो सु—णिद्वत्, 'अचो ञ्णिति' से वृद्धि,

गौ स्—विसर्ग।

(2) गावौ

गो औ—पूर्ववत्, 'एचोऽयवायावः' से आवादेश।

(3) गावः

जस्—पूर्ववत्।

तपर०—'गोतः' पद 'गो' शब्द से पञ्चमी के अर्थ में 'तसिल्' प्रत्यय करके निष्पन्न होता है, परन्तु सम्पूर्ण अष्टाध्यायी में शब्द-विशेष से क्वचिदपि 'तसिल्' प्रत्यय का प्रयोजन नहीं हुआ है। तपरकरण का प्रयोजन यह है कि ओकारान्त जो गो अङ्ग, उससे पर विभक्ति णिद्वत् होती है।

(4) चित्रगुः

चित्रा गावोऽस्य—समास; 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' से ह्रस्वादेश,

चित्रगु सु—सु को णिद्वद्भाव नहीं हुआ।

(5) शबलगुः

पूर्ववत् णित्त्व का अभाव।

कथं०—'हे चित्रगो' तथा हे चित्रगवः'—इन स्थलों पर णिद्वत् नहीं होता है। यहाँ क्रमशः सम्बुद्धि तथा जस् विभक्ति में रूप बनते हैं। 'अङ्गवृत्ते पुनर्वृत्ताविधिर्निष्ठितस्य' परिभाषा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

से णित्व नहीं होता है। 'हे चित्रगो स्' इस स्थल पर 'सु' विभक्ति उकारान्त 'चित्रगु' शब्द से विहित है, न कि ओकारान्त 'चित्रगो' शब्द से। अतः 'सु' णिद्वत् नहीं होता है। महाभाष्य में एक वार्त्तिक 'विहितविशेषणञ्च' प्राप्त होती है। इसका अर्थ है कि ओकारान्त शब्द से उत्तर विहित सर्वनामस्थानसञ्ज्ञक विभक्ति णित् होती है। यह वार्त्तिक पूर्वोक्त परिभाषा का समर्थन करती है।

अथवा०—'गोतः' में सम्बद्धलक्षणा षष्ठी है। इसका अभिप्राय यह है कि 'गो' इस शब्द से सम्बन्धित जो सर्वनामस्थानसञ्ज्ञक विभक्ति, वह णित् होती है। जो उसके अर्थ के एकत्वादि में सर्वनामस्थान होता है, वह 'गो' का सर्वनामस्थान होता है। 'चित्रगु' शब्द से जो सर्वनामस्थान है, वह तो 'गो' से भिन्न अर्थात् पुरुषादि के एकत्व को कहता है। अतः णिद्वत् नहीं होता।

तपर०—'गोतः' पद में तपरकरण निर्देशार्थ है। कुछ विद्वान् 'गोतो णित्' के स्थान पर 'ओतो णित्' इस प्रकार सूत्र का स्वरूप स्वीकार करते हैं।[1] 'द्यो' शब्द से पर जो सर्वनामस्थानसञ्ज्ञक विभक्ति, वह भी णित् होती है। यथा—

(6) द्यौः
द्यो सु—णिद्वत्, पूर्ववत् वृद्धि।

(7) द्यावौ
'गावौ' की तरह।

(8) द्यावः
'गावः' की तरह।

गोतः०—'गोतः' में तपरकरण के निर्देश से 'ओकारान्त' यह अर्थ उपलक्षित होता है। वर्ण का निर्देश करने में शास्त्र में तपरकरण प्रसिद्ध ही है।

आदरणीय पं० युधिष्ठिर मीमांसक जी के अनुसार ओकारान्त शब्दों की 'गो' सञ्ज्ञा प्राचीन आचार्यों में प्रसिद्ध थी, जिसे आचार्य पाणिनि ने अपने शास्त्र में अविकल रूप में गृहीत कर लिया है।[1]

1. 'ओतो' के स्थान पर 'गोतो' पाठ श्रुतिदोषजन्य है। उनके अनुसार 'गोतो णित्' के स्थान पर 'ओतो णित्' मूल पाठ था। संहिता की दशा में 'पुंसोऽसुङोतो णित्' इस प्रकार सूत्रपाठ होना चाहिए। चूँकि प्राचीन ज्ञान श्रुतिपरम्परा में था। अतः सम्भव है कि श्रुतिदोष के कारण 'पुंसोऽसुङोतो णित्' के स्थान पर 'पुंसोऽसुङ्गोतो णित्' गृहीत कर लिया गया। परन्तु यह कल्पनामात्र प्रतीत होता है। यदि प्रकृत सूत्र का मूलपाठ 'ओतो णित्' होता है तो महर्षि पतञ्जलि को 'ओतो णिद् इति वाच्यम्' (वा०) का पाठ नहीं करना पड़ता। अतः सूत्र का मूल पाठ 'गोतो णित्' ही प्रतीत होता है।

(3267) णलुत्तमो वा *91* (2283)

उत्तमो णल्वा णिद् भवति। णित्कार्यं तत्र वा भवतीत्यर्थः। अहं चकार, अहं चकर। अहं पपाच, अहं पपच।

अर्थ—उत्तम पुरुष का 'णल्' णित् विकल्प से होता है। णित् के दो अर्थ हैं—

(क) जिसका णकार इत् हो,
(ख) णित् के समान हो।

प्रथम अर्थ के अनुसार सूत्रार्थ इस प्रकार होता है—

उत्तम पुरुष के णल् के णकार की विकल्प से इत्सञ्ज्ञा होती है।

'णित्' शब्द के दूसरे अर्थ के अनुसार सूत्रार्थ इस प्रकार होता है—

उत्तम पुरुष का णल् विकल्प से णिद्वत् होता है।

चूँकि प्रकृत सूत्र अतिदेश प्रकरण में पठित है; अतः सूत्र का दूसरा अर्थ ही सङ्गत बैठता है।

इसका भाव यह है कि यहाँ णित् कार्य विकल्प से होते हैं।

उदा० (1) चकार (अहम्)

कृ णल्—लिट्, तिप्, परस्मैपदानां णलतुसुस्० से 'णल्', इसके णकार व लकार की इत्सञ्ज्ञा,

च कार् अ—वृद्धि आदेश, 'द्विर्वचनेऽचि' से रूपातिदेश, द्वित्व, उरत्, हलादिः शेषः, कुहोश्चुः,

चकार—रूप बनता है।

(2) चकर (अहम्)

पक्ष में णल् णिद्वत् नहीं हुआ। णिद्वत् न होने से वृद्धि नहीं हुई, गुण हुआ। शेष पूर्ववत्।

(3) पपाच (अहम्)

पच् णल्—'णिद्वत् पक्ष में 'अत उपधायाः' से वृद्धि।

(4) पपच (अहम्)

णिद्वत् अभाव पक्ष।

1. सं०व्या० शास्त्र का इति०—(भाग प्रथम)—पृ० 79 तथा 234

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(3268) सख्युरसम्बुद्धौ *92* (253)

असम्बुद्धौ यः सखिशब्दः तस्मात्परं सर्वनामस्थानं णिद्वद्भवति। सखायौ। सखायः। असम्बुद्धाविति किम्? हे सखे।

अर्थ—अङ्गसञ्ज्ञक जो 'सखि' शब्द, उससे उत्तर सर्वनामस्थानसञ्ज्ञक विभक्ति णित् होती है, परन्तु सम्बुद्धिसञ्ज्ञक विभक्ति नहीं होती है।

उदा० (1) सखायौ
सखि औ—णिद्वद्,
सखै औ—अचो ञ्णिति, एचोऽयवायावः।

(2) सखायः
सखि जस्—पूर्ववत् वृद्धि, आय् आदेश।

असम्बुद्धा०—सम्बुद्धिभिन्न सर्वनामस्थान विभक्ति णित् होती है।

(3) (हे) सखे
हे सखि सु—'ह्रस्वस्य गुणः' से अङ्ग को गुण,
हे सखे स्—'एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः' से लोप।

(3269) अनङ् सौ *93* (248)

सखिशब्दस्य सौ परतोऽनङित्ययमादेशो भवति, स चेत्सुशब्दः सम्बुद्धिर्न भवति। सखा। असम्बुद्धाविति किम्? हे सखे।

अर्थ—अङ्गसञ्ज्ञक 'सखि' शब्द के स्थान पर 'अनङ्' आदेश होता है, सम्बुद्धिभिन्न 'सु' विभक्ति के परे रहते।

'सु' शब्द के द्वारा प्रथमा एकवचन 'सु' तथा सप्तमी बहुवचन 'सुप्'—इन दो का ग्रहण होता है। 'सुप्' की दशा में 'असम्बुद्धौ' अधिकार व्यर्थ हो जाता है। अतः यहाँ प्रथमा एकवचन का ही ग्रहण होता है।

अनङ् के ङकार तथा नकारोत्तरवर्त्ती अकार की इत्सञ्ज्ञा है।

उदा० (1) सखा
सखि सु—'ङिच्च' से अनङ् अन्त्य अल् के स्थान पर होता है,
सखन् स्—अनुबन्धलोप,
सखान् स्—सर्वनामस्थाने चाऽस०,
सखा—हल्ङ्याब्भ्यो०, नलोपः प्रातिप०।

असम्बु०—सम्बुद्धि विभक्ति परे रहते 'अनङ्' नहीं होता है।
(2) (हे) सखे
सिद्धि पूर्वसूत्र पर देखें।

(3270) ऋदुशनस्पुरुदंसोऽनेहसां च *94* (276)

ऋकारान्तानामङ्गानाम्, उशनस्, पुरुदंसस्, अनेहस्—इत्येतेषां चासम्बुद्धौ सौ परतोऽनङादेशो भवति। कर्त्ता। हर्त्ता। माता। पिता। भ्राता। उशना। पुरुदंसा। अनेहा। असम्बुद्धावित्येव—हे कर्त्तः। हे मातः। हे पितः। हे पुरुदंसः। हे अनेहः। हे उशनः। उशनसः सम्बुद्धावपि पक्षेऽनङ् इष्यते—हे उशनन्। 'न ङिसम्बुद्ध्योः' (8.2.8) इति नलोपप्रतिषेधोऽपि पक्ष इष्यते—हे उशन। तथा चोक्तम्—

सम्बोधने तूशनसस्त्रिरूपं
सान्तं तथा नान्तमथाप्यदन्तम्।
माध्यन्दिनिर्वष्टि गुणं त्विगन्ते
नपुंसके व्याघ्रपदां वरिष्ठः।। इति।
तपरकरणमसन्देहार्थम्।

अर्थ—'सु' विभक्ति परे रहते ऋदन्त, उशनस्, पुरुदंसस् तथा अनेहस् अङ्गों को 'अनङ्' आदेश होता है, परन्तु सम्बुद्धि परे रहते नहीं होता है।

उदा० (1) कर्त्ता
कर्तृ सु → कर्तनङ् स्—अनङ् आदेश,
कर्तान् स्—अनुबन्धलोप, अप्तृन्तृच्० से उपधादीर्घ,
कर्त्ता—हल्ङ्याब्भ्यो०, नलोपः प्रातिपदि०।

(2) हर्त्ता
हर्तृ सु—पूर्ववत्।

(3) माता
मातृ सु → मातनङ् स्—पूर्ववत्।

(4) पिता
पितृ सु—'माता' की तरह।

(5) भ्राता (पूर्ववत्)।

(6) उशना
उशनस् सु → उशन अनङ् स्—
उशनन् स्—'अतो गुणे' से पररूप, अनुबन्धलोप,
उशनान्—उपधादीर्घ, हल्ङ्यादिलोप,
उशना—नलोपः प्रातिप०।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(7) पुरुदंसा
पुरुदंसस् सु—पूर्ववत्।

(8) अनेहा
'उशना' की तरह।

असम्बु०—सम्बुद्धि परे रहते 'अनङ्' आदेश नहीं होता है।

(9) (हे) कर्त्तः
हे कर्तृ सु—'अनङ्' नहीं हुआ,
कर्तर्—गुण,
कर्त्तः—विसर्जनीय।

(10) (हे) मातः
अनङ् नहीं हुआ।

(11) (हे) पितः
'मातः' की तरह।

(12) (हे) पुरुदंसः
पुरुदंसस् सु—अनङ् नहीं हुआ,
पुरुदंसस्—हल्ङ्यादि लोप।

(13) (हे) अनेहः (पूर्ववत्)।
(14) (हे) उशनः (पूर्ववत्)।

उशनसः—उशनस् को सम्बुद्धि में भी पक्ष में 'अनङ्' होता है।[1]

(15) हे उशनन्
उशनस् सु—'अनङ्' हुआ,
उशन अनङ् स्—'अतो गुणे' से पररूप,
उशनन्—हल्ङ्यादि लोप।

'न ङि०'—'न ङिसम्बुद्ध्योः' से पक्ष में नकारलोप का निषेध भी होता है। यथा—

(16) (हे) उशन
नकारलोप हुआ।

सम्बोधने—सम्बोधन में 'उशनस्' प्रातिपदिक के तीन रूप बनते हैं—
(क) सान्त—हे उशनः (अनङ् अभाव पक्ष),
(ख) नान्त—हे उशनन् (अनङ् पक्ष),
(ग) अदन्त—हे उशन (अनङ् पक्ष, नलोप पक्ष)।

गुण०—वैयाघ्रपद्य आचार्य इगन्त नपुंसक में गुण चाहते हैं।

तपर०—'ऋत्' में तपरकरण स्पष्टता के लिए है।

(3271) तृज्वत्क्रोष्टुः *95* (274)

क्रोष्टुशब्दस्तुन्प्रत्ययान्तः संज्ञाशब्दः सर्वनामस्थानेऽसम्बुद्धौ परतः तृज्वद्भवति। तृजन्तस्य यद्रूपं तदस्य भवतीत्यर्थः। रूपातिदेशोऽयम्। प्रत्यासत्तेश्च क्रुशेरेव तृजन्तस्य यद्रूपं तददितिदिश्यते। तच्च 'क्रोष्टृ' इत्येतदन्तोदात्तम्। क्रोष्टा, क्रोष्टारौ, क्रोष्टारः। क्रोष्टारम्, क्रोष्टारौ। 'सर्वनामस्थाने' इत्येव–क्रोष्टून्। 'असम्बुद्धौ' इत्येव–हे क्रोष्टो।

अर्थ—'क्रोष्टु' शब्द तुन् प्रत्ययान्त सञ्ज्ञा शब्द है। सर्वनाम-स्थानसञ्ज्ञक विभक्ति के परे रहते 'क्रोष्टु' शब्द को तृज्वद्भाव होता है, परन्तु सम्बुद्धि में नहीं होता। भाव यह है कि इसका रूप तृजन्त के समान हो जाता है।

रूपाति०—यह रूपातिदेश है। प्रत्यासत्ति से क्रुश् के ही तृजन्त का जो रूप है, उसी का अतिदेश होता है।

यह 'क्रोष्टृ' शब्द अन्तोदात्त होता है।

उदा० (1) क्रोष्टा
क्रोष्टु सु—तृज्वद्भाव,
क्रोष्टृ स्—'ऋतो ङि सर्वनामस्थानयोः' से प्राप्त गुण का निषेध,
क्रोष्ट् अनङ् स्—'ऋदुशनस्पुरु०' से 'अनङ्',
क्रोष्टान् स्—'अप्तृन्तृच्० से उपधादीर्घ,
क्रोष्टा—हल्ङ्यादिलोप, नलोपः प्रातिप०।

(2) क्रोष्टारौ
क्रोष्टु औ—तृज्वद्भाव,
क्रोष्टृ औ—'ऋतो ङिसर्व०' से गुण,
क्रोष्टर् औ—'अप्तृन्तृच्०' से उपधादीर्घ।

(3) क्रोष्टारः
क्रोष्टु जस्—पूर्ववत्।

(4) क्रोष्टारम्
अम्—पूर्ववत्।

(5) क्रोष्टारौ
औट्—पूर्ववत्।

1. प्रकृत सूत्र में चकार पाठ से अनुक्त समुच्चय का ग्रहण होता है। अतः पक्ष में 'अनङ्' भी होता है। द्र०—न्यास 7.1.94 चकारोऽत्र···'णलुत्तमो वा' इत्यधिकारात् पक्षे भविष्यति।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सर्वनाम०—सर्वनामस्थान विभक्ति परे रहते तृज्वद्भाव होता है।

(6) क्रोष्टून्

क्रोष्टु शस्—'शस्' की सर्वनामस्थानसञ्ज्ञा न होने से तृज्वद्-भाव नहीं हुआ,

क्रोष्टूस्—'इको यणचि' को बाध कर 'प्रथमयोः पूर्व०' से पूर्वसवर्णदीर्घ,

क्रोष्टून्—तस्माच्छसो नः पुंसि।

सम्बुद्धि में तृज्वद्भाव नहीं होता है।

(7) हे क्रोष्टो

हे क्रोष्टु सु—'एकवचनं सम्बुद्धि' से सम्बुद्धि सञ्ज्ञा, तृज्वत् नहीं हुआ,

क्रोष्टो स्—गुण, एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः।

(3272) स्त्रियां च *96* (305)

असर्वनामस्थानार्थमारम्भः। स्त्रियां च क्रोष्टुशब्दस्य तृज्वद् भवति। क्रोष्ट्री। क्रोष्ट्रीभ्याम्, क्रोष्ट्रीभिः। क्रोष्टु-शब्दं केचिद् गौरादिषु पठन्ति, ते ङीषि प्रत्यये तृज्वद्भावं कुर्वन्ति। तेषां पञ्चभिः क्रोष्ट्रीभिः क्रीतैः–पञ्चक्रोष्टृभी रथैरिति स्त्रीशब्दस्य लुकि कृते न सिद्ध्यति, तत्र प्रति-विधेयम्। ये तु गौरादिषु न पठन्ति, तेषां स्त्रियामित्य-र्थनिर्देशः–स्त्रियां वर्त्तमानः क्रोष्टुशब्दः तृज्वद्भवति। कृते-ऽतिदेशे, 'ऋन्नेभ्यो ङीप्' (4.1.5) इति ङीप्प्रत्ययः। तत्र 'उदात्तयणो हल्पूर्वात्' (6.1.174) इत्यन्तोदात्त एव क्रोष्ट्रीशब्दो भवति।

अर्थ—असर्वनाम स्थान के लिये यह विधान है। स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान क्रोष्टु शब्द तृज्वत् होता है।

भाव यह है कि स्त्रीलिङ्ग की विवक्षा में 'क्रोष्टु' शब्द के स्थान पर 'क्रोष्टृ' आदेश होता है। 'ऋन्नेभ्यो ङीप्' से ङीप् होकर 'क्रोष्ट्री' शब्द बन जाता है।

उदा० (1) क्रोष्ट्री

क्रोष्टु → क्रोष्टृ ङीप्—इको यणचि,

क्रोष्ट्री सु—हल्ङ्याब्भ्यो०।

(2) क्रोष्ट्रीभ्याम्

क्रोष्ट्री भ्याम्—पूर्ववत्।

(3) क्रोष्ट्रीभिः (पूर्ववत्)।

क्रोष्टु०—कुछ विद्वान् क्रोष्टु शब्द का पाठ गौरादिगण में स्वीकार करते हैं। वे 'षिद्गौरादिभ्यश्च' से ङीष् प्रत्यय में तृज्वद्भाव करते हैं।

(शङ्का) 'ऋन्नेभ्यो ङीप्' से ङीप् करने की दशा में 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' से अनुदात्त प्राप्त होता है। उसके निवारण के लिए कुछ विद्वान् ङीप् के स्थान पर 'ङीष्' करते हैं। इनके अनुसार 'पञ्चभिः क्रोष्ट्रभिः क्रीतैः' इस अर्थ में 'पञ्चक्रोष्टुभी रथैः' यहाँ स्त्रीप्रत्यय का लुक् कर देने पर सिद्ध नहीं होता है। इसमें प्रतिविधान करना चाहिए। इसका सार इस प्रकार है—

पञ्चभिः क्रोष्ट्रीभिः क्रीतः तैः—इस विग्रह की दशा में 'तद्धितार्थोत्तरपदसमा०' से समास, 'आर्हादगोपुच्छाट्ठक्' से 'ठक्' प्रत्यय,

पञ्चन् क्रोष्ट्री ठक्—'अध्यर्धपूर्वाद्०' से प्रत्यय का लुक्, 'लुक्-तद्धितलुकि' से स्त्रीप्रत्यय का लुक्,

पञ्चन् क्रोष्टु—ङीष् प्रत्यय की निवृत्ति हो जाने पर प्रत्ययलक्षण से तृज्वद्भाव सम्भव नहीं, अतः प्रतिविधान करना चाहिए।

ये तु०—जो विद्वान् क्रोष्टु शब्द का पाठ गौरादिगण में स्वीकार नहीं करते हैं, उनके अनुसार 'स्त्रीत्व की विवक्षा में' ऐसा अर्थ-निर्देश है। अर्थात् स्त्रीत्व में वर्त्तमान जो क्रोष्टु शब्द, उसे तृज्वद्भाव होता है। (इस प्रकार) अतिदेश करने पर ङीप् प्रत्यय किया जाता है। यहाँ 'उदात्तयणो हल्पूर्वात्' से 'क्रोष्ट्री' शब्द अन्तोदात्त ही होता है।

(3273) विभाषा तृतीयादिष्वचि *97* (278)

तृतीयादिषु विभक्तिष्वजादिषु क्रोष्टुर्विभाषा तृज्वद्भवति। क्रोष्ट्रा, क्रोष्टुना। क्रोष्ट्रे, क्रोष्टवे। क्रोष्टुः, क्रोष्टोः–2। क्रोष्टरि, क्रोष्टौ। क्रोष्ट्रोः, क्रोष्ट्वोः–2। तृतीयादिष्विति किम्? क्रोष्टून्। अचीति किम्? क्रोष्टुभ्याम्। क्रोष्टुभिः। *तृज्वद्भावात्पूर्वविप्रतिषेधेन नुम्नुटौ भवतः* (म० भा०)। प्रियक्रोष्टुनेऽरण्याय। हतक्रोष्टुने वृषलकुलाय। नुद्-क्रोष्टूनाम्।

अर्थ—क्रोष्टु शब्द विकल्प से तृज्वत् होता है, अजादि तृतीयादि विभक्तियों के परे रहते।

अजादि तृतीयादि आठ विभक्तियाँ हैं—

(1) टा, (2) ङे, (3) ङसि, (4) ङस्, (5) ओस्, (6) आम्, (7) ङि, (8) ओस्।

तृज्वद्भाव के अभावपक्ष में घिसञ्ज्ञा होती है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उदा० (1) क्रोष्ट्रा
क्रोष्टु टा—तृज्वद्भाव,
क्रोष्टृ आ—इको यणचि।

(2) क्रोष्टुना
क्रोष्टु टा—पक्ष में तृज्वद्भाव नहीं हुआ, घिसञ्ज्ञा,
क्रोष्टुना—आङो नाऽस्त्रियाम्।

(3) क्रोष्ट्रे
क्रोष्टु ङे—तृज्वद्भाव, इको यणचि।

(4) क्रोष्टवे
क्रोष्टु ङे—पक्ष में घिसञ्ज्ञा, 'घेर्ङिति' से गुण,
क्रोष्टो ए—एचोऽयवायावः।

(5) क्रोष्टुः
क्रोष्टु ङसि/ङस्—तृज्वद्भाव, ऋत उत्, उरण् रपरः,
क्रोष्टुर् स्—'रात्सस्य' से सलोप,
क्रोष्टुः—विसर्ग।

(6) क्रोष्टोः
क्रोष्टु ङसि/ङस्—पक्ष में 'घेर्ङिति' से गुण,
क्रोष्टो अस्—ङसिङसोश्च,
क्रोष्टोस्—विसर्ग।

(7) क्रोष्टरि
क्रोष्टु ङि—तृज्वद्भाव पक्ष,
क्रोष्टर् इ—ऋतो ङिसर्वनाम० से गुण, उरण् रपरः,
क्रोष्टरि—रूप।

(8) क्रोष्टौ
क्रोष्टु ङि—पक्ष में तृज्वत् नहीं हुआ, घिसञ्ज्ञा,
क्रोष्ट औ—अच्च घेः,
क्रोष्टौ—वृद्धिरेचि।

(9) क्रोष्ट्रोः
क्रोष्टु ओस्—तृज्वद्भाव,
क्रोष्ट ओस्—इको यणचि।

(10) क्रोष्ट्वोः
क्रोष्टु ओस्—पक्ष में यण् आदेश।

तृतीया०—तृतीयादि विभक्तियों में ही तृज्वद्भाव होता है।

(11) क्रोष्टून्
क्रोष्टु शस्—अजादि विभक्ति परे है; परन्तु यह तृतीयादि नही है, तृज्वद्भाव नहीं हुआ, प्रथमयोः पूर्वसवर्णः, तस्माच्छसो नः पुंसि।

अचीति०—अजादि विभक्ति के परे रहते ही तृज्वद्भाव होता है।

(12) क्रोष्टुभ्याम्
क्रोष्टु भ्याम्—भ्याम् तृतीयादि तो है, परन्तु अजादि विभक्ति नहीं है, तृज्वद्भाव नहीं हुआ।

तृज्वद्०—तृज्वद्भाव की अपेक्षा पूर्वविप्रतिषेध से प्रथम नुम् व नुट् आगम होते हैं।

(13) क्रोष्टूनाम्
क्रोष्टु आम्—प्रकृत सूत्र के द्वारा तृज्वद्भाव तथा 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' (7.1.54) से 'नुट्' आगम प्राप्त हैं। 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' से प्रथम तृज्वद्भाव प्राप्त हुआ। 'नुमचिरतृज्वद्भावेभ्यो०' (वा०) के द्वारा 'नुट्' हुआ,
क्रोष्टु न आम्—अनुबन्ध लोप,
क्रोष्टूनाम्—नामि।

पाठकों की सुविधा के लिए क्रोष्टु शब्द की समग्र रूपमाला नीचे दी जा रही है—

रूपमाला

	एकव०	द्विव०	बहुव०
प्रथमा	क्रोष्टा	क्रोष्टारौ	क्रोष्टारः
द्वितीया	क्रोष्टारम्	क्रोष्टारौ	क्रोष्टून्
तृतीया	क्रोष्ट्रा, क्रोष्टुना	क्रोष्टुभ्याम्	क्रोष्टुभिः
चतुर्थी	क्रोष्ट्रे, क्रोष्टवे	क्रोष्टुभ्याम्	क्रोष्टुभ्यः
पञ्चमी	क्रोष्टुः, क्रोष्टोः	क्रोष्टुभ्याम्	क्रोष्टुभ्यः
षष्ठी	क्रोष्टुः, क्रोष्टोः,	क्रोष्ट्वोः कोष्ट्रोः	क्रोष्टूनाम्
सप्तमी	क्रोष्टरि, क्रोष्टौ,	क्रोष्ट्वो क्रोष्ट्रोः	क्रोष्टुषु
सम्बो०	हे क्रोष्टो	हे क्रोष्टारौ	हे क्रोष्टारः

(14) प्रियक्रोष्टुने (अरण्याय)
प्रियक्रोष्टु ङे—तृज्वद्भाव तथा नुम् युगपत् प्राप्त हैं। पूर्वविप्रतिषेध से 'नुम्' हुआ,
प्रियक्रोष्टु न् ए—अनुबन्धलोप।

(15) हतक्रोष्टुने (वृषलकुलाय) (पूर्ववत्)।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(3274) चतुरनडुहोरामुदात्तः *98* (331)

चतुर्, अनडुह्-इत्येतयोः सर्वनामस्थाने परत आमागमो भवति, स चोदात्तः। चत्वारः। अनड्वान्, अनड्वाहौ, अनड्वाहः, अनड्वाहम्। तदन्तविधिरत्रेष्यते। प्रियचत्वाः, प्रियचत्वारौ, प्रियचत्वारः। प्रियानड्वान्, प्रियानड्वाहौ, प्रियानड्वाहः। *अनुडुहः स्त्रियां वेति वक्तव्यम्* (म० भा०)। अनुडुही, अनड्वाही। गौरादिपाठात् (4.1.41) सिद्धम्।

अर्थ—चतुर् तथा अनडुह् अङ्गों को आम् आगम होता है तथा वह उदात्त होता है, सर्वनामस्थानसञ्ज्ञक विभक्ति के परे रहते।

(1) चत्वारः
चतुर् जस्—आम् आगम, मिदचोऽन्त्यात् परः,
चतु आम् र् अस्—इको यणचि।

(2) चत्वारि
चतुर् जस्—नपुंसक लिङ्ग में,
चतुर् शि—'जश्शसोः शि' से शिभाव, 'शि सर्वनामस्थानम्' से सर्वनामस्थानसञ्ज्ञा,
चतु आम् र् इ—आम् आगम, इको यणचि।

(3) अनड्वान्
अनडुह् सु—आम्,
अनडु आम् ह् स्—'सावनडुहः' से 'नुम्',
अनडु आ नुम् ह् स्—हल्ङ्याब्भ्यो०,
अनड्वान् ह्—संयोगान्तस्य लोपः, इको यणचि।

(4) अनड्वाहौ।
अनडुह् औ—आम् आगम,
अनडु आम् ह् औ—इको यणाचि।

(5) अनड्वाहः
अनडुह् जस्—पूर्ववत्

(6) अनड्वाहम्
अनडुह अम्—पूर्ववत्।

तदन्त०—यहाँ तदन्त विधि होती है।

(7) प्रियचत्वाः
प्रियचतुर्—बहुव्रीहि समास, 'सर्वनामसङ्ख्ययोरुपसङ्ख्यानम्' से संख्या शब्द का पूर्वनिपात प्राप्त होता है, परन्तु 'वा प्रियस्य' से प्रिय शब्द का पूर्वनिपात,
प्रियचतु आम् र् स्—आम् आगम,
प्रियचत्वार्—हल्ङ्यादि लोप।

(8) प्रियचत्वारौ
प्रियचतुर् औ—पूर्ववत् आम् आगम, यण्।

(9) प्रियचत्वारः
जस्—पूर्ववत् आम् आगम।

(10) प्रियाऽनड्वान्
पूर्ववत् सु, आम्, नुम् आदि।

(11) प्रियाऽनड्वाहौ
औ—आम् आगम।

(12) प्रियाऽनड्वाहः
जस्—पूर्ववत्।

अनडुहः०—स्त्रीत्व की विवक्षा में अनुडुह् शब्द को आम् आगम विकल्प से होता है।

(13) अनड्वाही
अनडु आम् ह् ई—आम् हुआ।

(14) अनडुही
आम् अभाव पक्ष।

(3275) अम्सम्बुद्धौ *99* (333)

सम्बुद्धौ परतश्चतुरनडुहोरमागमो भवति। पूर्वस्यायमपवादः। हे प्रियचत्वः! हे प्रियानड्वन्!।

अर्थ—चतुर् व अनडुह अङ्गों को 'आम्' आगम होता है, सम्बुद्धि विभक्ति के परे रहते। यह पूर्व विधि (आम् आगम) का अपवाद है।

उदा० (1) (हे) प्रियचत्वः
हे प्रियचतुर् सु—'एकवचनं सम्बुद्धिः',
हे प्रियचतु अम् र् स्—अम् आगम,
हे प्रियचत्वर्—'इको यणचि' से यण्, 'रात्सस्य' से सलोप।

चूँकि 'चतुर्' शब्द से सम्बुद्धि विभक्ति सम्भव नहीं है। अतः तदन्त का उदाहरण दिखाया गया है[1]।

(2) हे प्रियाऽनड्वन्
हे प्रियाऽनडुह् सु—सम्बुद्धि सञ्ज्ञा,
हे प्रियाऽनडु अम् ह् स्—'अम्' आगम,

1. न्यास 7.1.99

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हे प्रियाऽनड्वन् ह् स्—इको यणचि, नुम् आगम,
हे प्रियाऽनड्वन्—हल्ङ्यादिलोप, संयोगान्तस्य लोपः।

(3276) ऋत इद्धातोः *100* (2390)

ऋकारान्तस्य धातोरङ्गस्य इकारादेशो भवति। किरति। गिरति। आस्तीर्णम्। विशीर्णम्। धातोरिति किम्? मातॄणाम्। पितॄणाम्। लाक्षणिकस्याप्यत्र ग्रहणमिष्यते। चिकीर्षतीत्यत्रापि यथा स्यादिति धातुग्रहणं क्रियते।

अर्थ—अङ्गसञ्ज्ञक ऋकारान्त धातु को ह्रस्व इकार आदेश होता है। अलोऽन्त्य परिभाषा के द्वारा इकार आदेश अन्त्य वर्ण (ऋ) के स्थान पर होता है। जिस स्थल पर प्रकृत सूत्र के द्वारा इत्व तथा 'उदोष्ठ्यपूर्वस्य' (7.1.102) के द्वारा उत्त्व के साथ-साथ गुण व वृद्धि प्राप्त होते हैं, उन-उन स्थलों पर गुण व वृद्धि इत्व तथा उत्व को परत्व के कारण बाध लेते हैं। द्र०—

इत्त्वोत्त्वाभ्यां गुणवृद्धी भवतः विप्रतिषेधेन (वा०)।

अतः जहाँ-जहाँ गुण-वृद्धि का विषय नहीं होता है, वहाँ-वहाँ प्रकृत सूत्र के द्वारा इत्व होता है।

उदा० (1) किरति
कृ तिप्—लट्, तिङ् शित् सार्वधातुकम्,
कृ श तिप्—कर्त्तरि शप् को बाध कर 'श', अनुबन्धलोप, 'सार्वधातुकमपित्' से 'श' ङित् हुआ, 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से गुण प्राप्त, 'क्ङिति च' से निषेध,
किर् अ ति—इकार आदेश, उरण् रपरः।

(2) गिरति
गृ तिप्—पूर्ववत्।

(3) आस्तीर्णम्
आ तॄ क्त—'आर्धधातुकं शेषः' से आर्धधातुक सञ्ज्ञा, 'सार्वधातुकार्धधातु०' से गुण, पूर्ववत् निषेध,
आ स्तिर् त—इकार आदेश, उरण् रपरः,
आ स्तीर् न—'रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य०' से नकार, 'हलि च' से दीर्घ,
आस्तीर्ण सु—'रषाभ्यां नो णः समा०' से णत्व।

(4) विशीर्णम्
वि शॄ क्त—'आस्तीर्ण' की तरह।
यहाँ 'श्र्युकः किति' से इट् का निषेध होता है।

धातो०—धातु को ह्रस्व इकार आदेश होता है।

(5) मातॄणाम्
मातृ आम्—'ह्रस्वनद्यापो नुट्' से 'नुट्' तथा 'नामि' से दीर्घ हुआ,
मातॄ नाम्—यहाँ ऋकार है, परन्तु धातु का नहीं है, अतः इकार आदेश नहीं हुआ,
मातॄणाम्—ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्।

(6) पितॄणाम्
पूर्ववत् इकार नहीं होता है।

लाक्षणिक०—लाक्षणिक का भी ग्रहण होता है।

(7) चिकीर्षति
कृ सन्—'अज्झनगमां सनि' से दीर्घ हुआ,
कॄ स—'कॄ' लाक्षणिक दीर्घ ऋकारान्त है,
किर् स—इकार आदेश, उरण् रपरः,
चिकिर् स—द्वित्व, हलादिः शेषः, कुहोश्चुः,
चिकीर्ष—दीर्घ, आदेशप्रत्यययोः से षत्व, धातुसंज्ञा,
चिकीर्षति—तिप्, शप्, पररूप।

(3277) उपधायाश्च *101* (2571)

उपधायाश्च ऋकारस्य इकारादेशो भवति। कीर्त्तयति, कीर्त्तयतः, कीर्त्तयन्ति।

अर्थ—अङ्गसंज्ञक धातु की उपधाभूत ऋकार के स्थान पर इकार होता है।

उदा० (1) कीर्त्तयति
कृत् णिच्—अनुबन्धलोप,
किर्त् इ—इकार आदेश, उरण् रपरः,
कीर्त्त् इ—दीर्घ, 'अचो रहाभ्यां द्वे' से द्वित्व, धातुसंज्ञा,
कीर्त्तयति—तिप्, शप्, गुण, अयादेश।

(2) कीर्त्तयतः
कीर्त्त् इ—पूर्ववत् धातुसंज्ञा,
कीर्त्त् इ तस्—पूर्ववत्।

(3) कीर्त्तयन्ति
झि—झोन्तः, शेष कार्य पूर्ववत्।

(3278) उदोष्ठ्यपूर्वस्य *102* (2494)

ओष्ठ्यः पूर्वो यस्माद् ऋकारादसावोष्ठ्यपूर्वस्तदन्तस्य धातोरङ्गस्य उकारादेशो भवति। पूर्त्ताः पिण्डाः। पुपूर्षति। मुमूर्षति। सुस्वूर्षति। दन्त्यौष्ठ्यपूर्वोऽप्योष्ठ्यपूर्वो भवतीति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अत्रापि भवति–वुवूर्षति ऋत्विजम्, प्रावुवूर्षति कम्बलम्। ओष्ठ्यो ह्यत्र प्रत्यासत्तेरङ्गावयव एव गृह्यते, तेन 'ऋ गतौ' (धा०पा० 1498) इत्यस्य सम्पूर्वस्य समीर्णमिति भवति। *इत्वोत्त्वाभ्यां गुणवृद्धी भवतो विप्रतिषेधेन* (म०भा०)। आस्तरणम्, आस्तारकः। निपरणम्, निपारकः। निगरणम्, निगारकः।

अर्थ—अङ्गसंज्ञक धातु का अवयव ओष्ठ्य वर्ण है पूर्व में जिसके, ऐसा जो ऋवर्ण, तदन्त अङ्ग को ह्रस्व उकार आदेश होता है।

'उपूपध्मानीयानामोष्ठौ'[1] से उकार पवर्ग (प, फ, ब, भ, म) तथा उपध्मानीय—ये ओष्ठ्य वर्ण हैं। वकार का उच्चारण स्थान दन्तोष्ठ है। द्र०—वकारस्य दन्तोष्ठम्।[1] अतः वकार का ओष्ठ्यत्व अक्षुण्ण रहता है।

उदा० (1) पूर्त्ता:

पृ क्त—उकार आदेश, उरण् रपरः,

पुर् त—दीर्घ, 'अचो रहाभ्यां द्वे' से द्वित्व,

पूर्त्त जस्—प्रातिपदिक संज्ञा, जस्, प्रथमयोः पूर्वसवर्णः।

(2) पुपूर्षति

पृ सन्—'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा' से 'सन्',

पुर् स—हलन्त्यम्, उकार आदेश, उरण् रपरः,

पु पूर् स—हलि च से दीर्घ, सन्यङोः तथा एकाचो द्वे प्रथमस्य से द्वित्व, हलादिः शेषः, ह्रस्वः,

पुपूर्ष—आदेशप्रत्यययोः से षत्व, धातुसंज्ञा,

पुपूर्षति—तिप्, शप्, अतो गुणे।

(3) मुमूर्षति

'पुपूर्षति' की तरह।

(4) सुस्वूर्षति

स्वृ → स्वृ सन्—'धातोः कर्मणः समा०' से सन्, 'अज्झनगमां' से दीर्घ,

स्वुर् स—उकार, उरण् रपरः,

स्वूर् स—'हलि च' से दीर्घ,

सुस्वूर्ष—पूर्ववत् द्वित्व, अभ्यासकार्य, षत्व,

सुस्वूर्षति—धातुसंज्ञा, पूर्ववत्सनः, तिप्, शप्।

दन्तोष्ठ्य०—दन्तोष्ठ्य वर्ण है पूर्व में जिसके, ऐसा वर्ण भी 'ओष्ठ्यपूर्व' कहलाता है। अतः 'वुवूर्षति' तथा 'प्रावुवूर्षति' में भी उकार होता है। यहाँ ओष्ठ्य शब्द के द्वारा प्रत्यासत्ति से अङ्ग के अवयव का ही ग्रहण होता है। तब सम् पूर्वक ऋ गतौ धातु से 'समीर्ण' बनता है।

(5) वुवूर्षति

वृ सन्—पूर्ववत् सन् प्रत्यय,

वृ स—'अज्झनगमां सनि' से दीर्घ, वकार दन्तोष्ठ्य वर्ण है, अतः 'वृ' में ऋ वर्ण ओष्ठ्यपूर्व हुआ,

वूर् स—उकार, रपरत्व आदि सभी पूर्ववत्,

वुवूर्षति—शेष पूर्ववत्।

(6) प्रावुवूर्षति

प्र आ वुवूर्षति—सभी कार्य पूर्ववत्।

(7) समीर्णम्

सम् ऋ क्त—आर्धधातुक संज्ञा, लशक्वतद्धिते, प्राप्त गुण का निषेध,

सम् इर् त—प्रकृत सूत्र से उकार आदेश प्राप्त हुआ। मकार ओष्ठ्य वर्ण है, ऋकार से पूर्व है; परन्तु मकार अङ्ग का अवयव नहीं है, उकार आदेश नहीं हुआ, इकार आदेश, रपरत्व होता है,

समीर्ण—'हलि च' से दीर्घ, रदाभ्यां निष्ठातो० से नत्व,

समीर्ण सु—विभक्तिकार्य।

इत्वोत्त्वा०—इत्त्व तथा उत्त्व की अपेक्षा विप्रतिषेध से गुण व वृद्धि आदेश होते हैं।

(8) आस्तरणम्

आ स्तृ ल्युट्—'ऋत इद्धातोः' से इकार आदेश तथा 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से गुण प्राप्त हैं, इकार को बाध कर गुण हुआ,

आस्तर् अन—उरण् रपरः, युवोरनाकौ,

आस्तरण सु—अट्कुप्वाङ्नुम्० से णत्व।

(9) आस्तारकः

आ स्तृ ण्वुल्—'ण्वुल्तृचौ' से प्रत्यय, हलन्त्यम्, चुटू, तस्य लोपः,

आ स्तार् अक—'युवोरनाकौ' से 'अक', इकार आदेश तथा 'अचो ञ्णिति' से वृद्धि आदेश प्राप्त हैं, इकार आदेश को बाध कर वृद्धि आदेश हुआ,

आस्तारक सु—विभक्तिकार्य।

(10) निपरणम्

1. वै०सि०कौ० सूत्र 10

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नि पृ ल्युट्—अनुबन्धलोप, युवोरनाकौ,

नि पृ अन—सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से गुण तथा 'उदोष्ठ्य-पूर्वस्य' से उकार आदेश प्राप्त हैं, गुण उकार आदेश का बाध करता है,

नि पर् अन सु—गुण, उरण् रपरः, णत्व, विभक्तिकार्य।

(11) निपारकः

नि पृ ण्वुल्—पूर्ववत् अनुबन्धलोप,

नि पृ अक—'अचो ञ्णिति' से वृद्धि तथा 'उदोष्ठ्यपूर्वस्य' से उकार आदेश प्राप्त हैं,

नि पार् अक सु—वृद्धि से उकार आदेश का बाध हुआ, उरण् रपरः, विभक्तिकार्य।

(12) निगरणम्

नि गृ ल्युट्—'आस्तरणम्' की तरह।

(13) निगारकः

नि गृ ण्वुल्—'आस्तारकः' की तरह।

(3279) बहुलं छन्दसि *103* (3578)

छन्दसि विषये ऋकारान्तस्य धातोरङ्गस्य बहुलमुकारादेशो भवति। 'ओष्ठ्यपूर्वस्य' इत्युक्तम्, अनोष्ठ्यपूर्वस्यापि भवति–'मित्रावरुणौ ततुरिः (ऋ० 1.145.3)। 'दूरे ह्यध्वा जगुरिः' (ऋ० 10.108.1)। ओष्ठ्यपूर्वस्यापि न भवति–पप्रितमम्, वव्रितमम्। क्वचिद् भवति–'पपुरिः' (ऋ० 1.46.4)।

इति श्रीवामनविरचितायां काशिकायां वृत्तौ सप्तमाऽध्यायस्य प्रथमः पादः॥

अर्थ—वेद के विषय में अङ्गसंज्ञक ऋकारान्त धातु को उकार आदेश बहुलता से होता है।

'बहुलम्' के ग्रहण से सभी विधियों का व्यभिचार प्राप्त होता है।

(क) 'उदोष्ठ्यपूर्वस्य' से ओष्ठ्यपूर्व ऋकार को उकार आदेश कहा गया है। ओष्ठ्यपूर्व से अन्यत्र भी उकार प्राप्त होता है। यथा—ततुरिः, जगुरिः।

(ख) ओष्ठ्यपूर्व के स्थान पर उकार आदेश प्राप्त नहीं है। यथा—पप्रितमम्, वव्रितमम्।

(ग) ओष्ठ्यपूर्व को उकार आदेश प्राप्त होता है। यथा—पपुरिः।

उदा० (1) ततुरिः (ऋ० 1.145.3)

तॄ कि—'आदृगमहनज०' से 'कि' प्रत्यय,

तुर् इ—उत्त्व, 'द्विर्वचनेऽचि' से रूपातिदेश होकर द्वित्व, अभ्यासकार्य,

त तुर् इ सु—विभक्तिकार्य।

(2) जगुरिः (ऋ० 1.108.1)

गॄ कि—सभी कार्य 'ततुरिः' की तरह।

(3) पप्रितमम्

पॄ कि—पूर्ववत् प्रत्यय, इकार आदेश, रूपातिदेश, द्वित्वादि,

प प्रि तमप्—विभक्तिकार्य होकर रूप बनता है।

(4) वव्रितमम्

वॄ कि—'पप्रि' की तरह सभी कार्य,

वव्रि तमप् सु—विभक्तिकार्य।

(5) पपुरिः (ऋ० 1.46.4)

पॄ कि—पूर्ववत्, लशक्वतद्धिते,

पॄ पुर् कि—'उदोष्ठ्यपूर्वस्य' से उकार आदेश, उरण् रपरः,

प पुर् इ—'द्विर्वचनेऽचि' से स्थानिवद्भाव, रूपातिदेश, द्वित्व, अभ्यासकार्य, उरत्, हलादिः शेषः,

पपुरि सु—विभक्तिकार्य।

इति पण्डितेश्वरचन्द्रविरचितायां काशिकायाः सोमलेखाऽऽख्यायां हिन्दीटीकायां सप्तमाऽध्यायस्य प्रथमः पादः समाप्तः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सप्तमाऽध्यायस्य द्वितीयः पादः

(3280) सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु *1* (2297)

परस्मैपदपरे सिचि परत इगन्तस्याङ्गस्य वृद्धिर्भवति। अचैषीत्। अनैषीत्। अलावीत्। अपावीत्। अकार्षीत्। अहार्षीत्। अन्तरङ्गमपि गुणमेषां वृद्धिर्वचनाद्बाधते (म० भा०)। न्यनुवीत्, न्यधुवीत्–इत्यत्र कुटादित्वाङ्ङित्त्वे सति प्रतिषिद्धायां वृद्धावुवङादेशः क्रियते। परस्मैपदेष्विति किम्? अच्योष्ट। अप्लोष्ट।

अर्थ—परस्मैपद प्रत्यय जिससे परे है, ऐसे सिच् प्रत्यय के परे रहते इगन्त अङ्ग को वृद्धि आदेश होता है।

उदा० (1) अचैषीत्
चि तिप्—लुङ्,
चि स् ई त्—च्लि, सिच्, इतश्च, अस्तिसिचो०,
चै ष् ई त्—वृद्धि, षत्व,
अचैषीत्—अट्।

(2) अनैषीत्
नी स् ई त्—पूर्ववत्।
अनै ष् ई त्—वृद्धि।

(3) अलावीत्
लू स् त्—पूर्ववत् लुङ्, तिप्, इकारलोप, सिच्,
लू इ स् ई त्—आर्धधातुकस्येड्०, अस्तिसिचो०,
लौ इ ई त्—वृद्धि, इट ईटि,
अलाव् ई त्—अकः सवर्णे दीर्घः, आव् आदेश, अट्।

(4) अपावीत्
पू तिप्—सभी कार्य पूर्ववत्,
अ पौ इ ई त्—पूर्ववत्।

(5) आकार्षीत्
कृ इ स् ई त्—पूर्ववत्,
कार् स ई त्—वृद्धि, आदेशप्रत्यययोः,
कार् ष् ई त्—षत्व,
अकार्षीत्—अट्।

(6) अहार्षीत्
हृ स् ई त्—पूर्ववत्,
अ हार् ष् ई त्—षत्व, वृद्धि, अट्।

अन्तरङ्ग०—(इन स्थलों पर) प्रसक्त गुणादेश अन्तरङ्ग है, तदपि वचनसामर्थ्य से वृद्धि से इसका बाध होता है।[1]

(7) न्यनुवीत्, (8) न्यधुवीत्

न्यनु०—इन स्थलों पर इनका कुटादिगण में पाठ होने से ङित् होने पर वृद्धि आदेश का 'क्ङिति च' से निषेध होता है। तब उवङ् आदेश होता है।

परस्मै०—परस्मैपद प्रत्यय के परे रहते वृद्धि आदेश होता है।

(9) अच्योष्ट
च्यु त—लुङ्,
च्यु स् त—सिच्, वृद्धि नहीं हुई, गुण,
अच्योष्ट—अट्, षत्व आदि।

(10) अप्लोष्ट
प्लु त—'अच्योष्ट' की तरह।

(3281) अतो र्लान्तस्य *2* (2330)

रेफलकारौ यावतोऽन्तौ = समीपौ, तदन्तस्याङ्गस्य अत एव स्थाने वृद्धिर्भवति। क्षर–अक्षारीत्। त्सर–अत्सारीत्। ज्वल–अज्वालीत्। ह्वल–अह्वालीत्। 'अतो हलादेर्लघोः' (7.2.7) इति विकल्पस्यायमपवादः। अत इति किम्? न्यखोरीत्। न्यमीलीत्। र्लान्तस्येति किम्? मा भवानटीत्। मा भवानशीत्। अन्तग्रहणं किम्? अवभ्रीत्। अश्वल्लीत्। अत्र यौ रेफलकारावङ्गस्यान्तौ न तावतः समीपौ।

अर्थ—परस्मैपद प्रत्यय परे है जिससे, ऐसे सिच् प्रत्यय के परे रहते अकार के समीप जो रेफ व लकार, तदन्त अङ्ग को वृद्धि होती है।

---

1. सिच् की आर्धधातुक संज्ञा होती है। अतः सिच् के परे रहते 'सार्वधातुकार्धधातु०' से गुण भी प्राप्त होता है।

गुण अन्तरङ्ग तथा वृद्धि बहिरङ्ग है। अतः वृद्धि को बाध कर गुण होना चाहिए; परन्तु वचनसामर्थ्य से वृद्धि गुण का बाध कर लेती है। यदि वृद्धि का बाध करके गुण करते हैं तो सर्वत्र गुण हो जाया करेगा और वृद्धि निरवकाश हो जायेगी। इस दशा में प्रकृत सूत्र का पाठ व्यर्थ हो जाता।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विशेष—अन्त शब्द के दो अर्थ होते हैं—छोर, समीप। 'छोर' अर्थ में 'अन्त' शब्द के ग्रहण की आवश्यकता नहीं है। केवल 'अतो र्लं' इतने मात्र से काम चल जाता। तदन्त विधि हो जाती है। इसके अतिरिक्त 'छोर' अर्थ में 'अन्त' पद का प्रयोग मान लिया जाय तो 'अश्वल्लीत्' में वृद्धि प्राप्त होकर अनिष्ट रूप बनता है। अतः प्रकृत सूत्र में 'अन्त' पद समीप अर्थ में है।

'ल्रान्तस्य' पद का दो प्रकार से विग्रह सम्भव है—

(क) ल्रं च तद् अन्तं च (कर्मधारय),

(ख) ल्रस्याऽन्तस्य (ष०तत्पु०)।

प्रथम प्रकार के विग्रह की दशा में विशेषणभूत 'अन्त' पद का पूर्वनिपात प्राप्त होता है। अतः यहाँ कर्मधारय समास नहीं है।

द्वितीय विग्रह के अनुसार सूत्रार्थ इस प्रकार होता है—लकार व रेफ के समीपवर्त्ती अङ्ग का अवयव जो ह्रस्व अकार, उसे वृद्धि होती है, परस्मैपदपरक सिच् प्रत्यय के परे रहते। इस दशा में रप्, रण् व शल्ल् आदि धातुओं के अकार को वृद्धि आदेश (अनिष्ट कार्य) प्राप्त होता है।[1] कारण कि, रप् व रण् में रेफ के पास के अङ्ग का अवयवभूत ह्रस्व अकार है तथा 'शल्ल्' में वह लकार के पास है।

इस प्रकार यहाँ षष्ठीतत्पुरुष भी नहीं माना जा सकता। वस्तुतः आचार्य को 'र्लान्तस्य' एक पद इष्ट नहीं है। 'र्लं' पद लुप्त षष्ठ्यन्त है, जो 'अङ्गस्य' का विशेषण है। तदन्तविधि होकर ल्रान्तस्य अङ्गस्य अतः वृद्धिः स्यात्—ऐसा अर्थ हो जाता है।

प्रस्तुत सूत्र में 'वृद्धि' पद के अनुरोध से 'इको गुणवृद्धी' परिभाषा उपस्थित होती है, परन्तु 'अतः' पद की आवृत्ति कर लेने पर इस दोष की निवृत्ति होकर सूत्र का समुच्चित अर्थ इस प्रकार होता है—

अत् (= ह्रस्व अकार) के समीप जो लकार वा रेफ, तदन्त अङ्ग के अत् (= ह्रस्व अकार) के स्थान पर वृद्धि आदेश है सिच् परे रहते; यदि उस सिच् से परे परस्मैपद का प्रत्यय हो।

अब एक शङ्का उपस्थित होती है कि वृद्धि का निषेध (नेटि०—पा०सू० 7.2.4) तथा पाक्षिक वृद्धि (अतो हलादेर्लघोः—पा०सू० 7.2.7) दोनों परकार्य हैं। अतः प्रकृत सूत्र के कार्य का बाध करते हैं।

समाधान यह है कि लकारान्त व रेफान्त सभी धातु सेट् हैं। यदि वहाँ 'नेटि' से वृद्धि का निषेध करने लगेंगे तो प्रकृत सूत्र को कहीं अवकाश प्राप्त न होकर व्यर्थ हो जायेगा। अतः वृद्धि-निषेध तथा पाक्षिक वृद्धि का प्रकृत सूत्र अपवाद है और यह इन्हें बाध लेगा।

उदा० (1) अक्षारीत्

क्षर् त्—लुङ्, तिप्, इतश्च,

क्षर् इस् ई त्—सिच्, अस्तिसिचोऽपृक्त ईट्, इट्,

क्षार् इ ई त्—वृद्धि, इट ईटि,

अक्षारीत्—अकः सवर्णे दीर्घः, अट्।

(2) अत्सारीत्

त्सर् तिप्—पूर्ववत्।

(3) अज्वालीत्

ज्वल् तिप्—पूर्ववत्।

(4) अह्वालीत्

ह्वल् तिप्—पूर्ववत्।

अतो०—'अतो हलादेर्लघोः' से प्राप्त विकल्प का यह अपवाद है।

अत०—**ह्रस्व अकार** के स्थान पर वृद्धि होती है।

(5) न्यखोरीत्

खुर् तिप्—रेफ अकार के पास नहीं है तथा ह्रस्व अकार भी नहीं है, वृद्धि नहीं होती है,

नि अखोरीत्—सिच्, इट्, ईट्, सिच् लोप, गुण, अट्।

(6) न्यमीलीत्

पूर्ववत् वृद्धि का अभाव।

र्लान्त०—**रेफान्त** तथा **लकारान्त** धातु के अकार को वृद्धि होती है।

(7) मा भवान् अटीत्

अट् इ स् ई त्—लुङ्, सिच्, आदि पूर्ववत्, यहाँ अकार तो है; परन्तु धातु न तो लकारान्त है और न ही रेफान्त है, अतः वृद्धि नहीं होती है,

अटीत्—इट ईटि, सवर्णदीर्घ, 'न माङ्योगे' से आट् आगम का निषेध।

(8) मा भवान् अशीत्

अश् तिप्—पूर्ववत्।

1. ध्यातव्य है कि 'अतो हलादे०' से पाक्षिक वृद्धि होकर अरापीत्-अरपीत्, अराणीत्-अरणीत् रूप बनते हैं। वृद्धि-निषेध होकर 'शल्ल्' से 'अशल्लीत्' बनता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्त०—ह्रस्व अकार के समीप जो लकार या रेफ, तदन्त धातु के अकार को वृद्धि होती है।

(9) अवभ्रीत्
वभ्र् तिप्—लुङ्,
वभ्र् इ स् ई त्—पूर्ववत्, यहाँ धातु रेफान्त है; परन्तु रेफ अकार के पास नहीं है,
अवभ्र् ई त—वृद्धि नहीं हुई।

(10) अश्वल्लीत्
श्वल् इ स् ई त्—पूर्ववत् वृद्धि नहीं हुई।

अत्र यौ०—यहाँ अङ्ग के अन्त में रेफ व लकार हैं, उसके समीप नहीं हैं।

(3282) वदव्रजहलन्तस्याचः *3* (2267)

वदव्रजोर्हलन्तानां चाङ्गानामचः स्थाने वृद्धिर्भवति सिचि परस्मैपदे परतः। अवादीत्। अव्राजीत्। विकल्पबाधनार्थं वदिव्रजिग्रहणम्। हलन्तानाम्-अपाक्षीत्। अभैत्सीत्। अच्छैत्सीत्। अरौत्सीत्। अत्र योगविभागे सति हलन्तग्रहणमन्तरेणापि सिद्ध्यति, कथम्? वदिव्रज्योरित्यत्र प्रथमयोगे 'अतः' इति स्थानी अनुवर्त्तते, ततो यत् 'अचः' इति सूत्रम्, तत्राङ्गेनाञ्चिशेष्यते-अङ्गस्याचः सिचि परतो वृद्धिर्भवति। तदेतद्धल्ग्रहणं हल्समुदायपरिग्रहार्थम्। इहापि स्यात्-अराङ्क्षीत्, असाङ्क्षीत्। अन्यथा हि येन नाव्यवधानं तेन व्यवहितेऽपि वचनप्रामाण्यादित्येकेन वर्णेन व्यवधाने स्यात्, अनेकेन हला न स्यात्। उदवोढाम्, उदवोढमित्यत्र वहेः सिचि ढत्वसलोपादीनाम् 'पूर्वत्रासिद्धम्' (8.2.1) इत्यसिद्धत्वात्पूर्वं हलन्तलक्षणा वृद्धिः क्रियते, पश्चाद् ढलोपनिमित्तमोत्त्वम्। तत्र कृते पुनर्वृद्धिर्न भवति; कृतत्वात्। यत्र त्वकृता वृद्धिः, ओकारस्यैव तत्र भवति-सोढामित्रस्यापत्यं सौढामित्रिरिति।

अर्थ—वद्, व्रज् और हलन्त अङ्गों के अच् के स्थान पर वृद्धि आदेश होता है, परस्मैपदपरक सिच् के परे रहते।

उदा० (1) अवादीत्
वद् तिप्—लुङ्, इतश्च,
वद् इ स् ई त्—च्लि, सिच्, ईट्, इट्,
वाद् इ ई त्—वृद्धि, सिच् लोप, अकः सवर्णे दीर्घः,
अवादीत्—अट्।

(2) अव्राजीत्
व्रज् तिप्—पूर्ववत्।

विकल्प०—विकल्प के बाध के लिए वद् व व्रज् का ग्रहण है।

(3) अपाक्षीत्
पच् तिप्—लुङ्, इतश्च,
पच् इ स् ई त्—सिच् आदि पूर्ववत्,
पाच् स् ई त्—वृद्धि
पाक् षीत्—आदेशप्रत्यययोः, चोः कुः,
अपाक्षीत्—अट्

(4) अभैत्सीत्
भिद् स् ई त्—पूर्ववत्,
भैद् सीत्—वृद्धि,
अभैत् सीत्—खरि च, अट्।

(5) अच्छैत्सीत्
छिद् स् ई त्—पूर्ववत्,
छैद् सीत्—वृद्धि,
अच्छैत्सीत्—खरि च, 'छे च' से तुक्, स्तोः श्चुना श्चुः।

(6) अरौत्सीत्
रुद् लुङ्—पूर्ववत् वृद्धि।

अत्र०—यहाँ योगविभाग होने पर हल् ग्रहण के विना भी सिद्ध होता है। कैसे? 'वदव्रज्योः' यहाँ प्रथम योग में 'अतः' इस स्थानी का अनुवर्त्तन है। तब 'अचः' यह सूत्र है। इसमें 'अङ्ग' के द्वारा 'अच्' विशेषित होता है। यथा—सिच् परे रहते अङ्ग का जो अङ्ग, उसे वृद्धि आदेश होता है। इसलिये हल् का ग्रहण हलों के समुदाय के ग्रहण के लिए है।

इहापि०—निम्नलिखित में भी वृद्धि होती है—

(7) अराङ्क्षीत्
रञ् तिप्—लुङ्, 'इतश्च' से इकारलोप,
रञ् स् ई त्—सिच्, ईट्, चोः कुः,
र न् क् सीत्—अनुस्वारस्य, परसवर्ण,
अराङ्क्षीत्—वृद्धि, आदेशप्रत्यययोः, अट्।

(8) असाङ्क्षीत्
षञ् → सञ्—धात्वादेः षः सः,
सञ् स् ई त्—पूर्ववत् सिच् आदि,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स न् क् सीत्—चोः कुः, अनुस्वार,
असाङ्क्षीत्—परसवर्ण, वृद्धि, षत्व, अट्।

अन्यथा०—अन्यथा 'जिससे कभी भी अव्यवधान नहीं होता है, उससे व्यवधान में भी वचनसामर्थ्यवशात् कार्य हो जाया करता है'—इस परिभाषा के द्वारा एक ही वर्ण के व्यवधान में वृद्धि हो पाती, अनेक हलों के व्यवधान में नहीं।

(9) उदवोढाम्
वह् ताम्—लुङ्, तस्, 'तस्थस्थमिपां०' से 'ताम्',
वह् स् ताम्—सिच्, 'हो ढः' (8.2.31) से ढत्व तथा 'झलो झलि' (8.2.26) से सलोप प्राप्त हैं। ये दोनों 'पूर्वत्रासिद्धम्' से असिद्ध हैं,
वाह् स् ताम्—हलन्तलक्षणा वृद्धि,
वाढ् ताम्—'हो ढः' से ढत्व, 'झलो झलि' से सलोप,
वाढ् ढाम्—'झषस्तथोर्धो०' से धकार, 'ष्टुना ष्टुः' से ढकार,
वोढ् ढाम्—'सहिवहोरोद०' से ओत्व,
उद् अ वो ढाम्—'ढो ढे लोपः' से ढलोप, अट्, उद्।
यहाँ करने पर पुनः वृद्धि नहीं होती है।

(10) उदवोढम्
वह् तम्—लुङ्, थस्, 'तम्' आदेश
उद् अ वो ढम्—शेष कार्य पूर्ववत्।

जहाँ वृद्धि न की गई हो, वहाँ ओकार के स्थान पर होती है—

(11) सौढामित्रिः
सोढामित्रस्याऽपत्यम्—'अत इञ्' से 'इञ्',
सौढामित्र इ सु—वृद्धि, यस्येति च, विभक्तिकार्य।

विशेष—चूँकि हलन्तकथन के द्वारा वद् व व्रज् का भी ग्रहण हो जाता है; अतः वद् व व्रज् का पृथक् उल्लेख सप्रयोजन है।

यदि यहाँ वद् व व्रज् का ग्रहण न किया जाता तो 'नेटि' के द्वारा वृद्धिनिषेध होकर 'अतो हलादेर्लघोः' के द्वारा वैकल्पिक वृद्धि प्राप्त होती है। प्रकृत सूत्र में इनका योग होने से विधानसामर्थ्य के कारण इन्हें वृद्धि हो जाती है और 'नेटि' की प्रवृत्ति नहीं होती है।

'अचः' पद का न्यास सप्रयोजन है। यदि सूत्र में 'अचः' पद का योग न होता तो 'इको गुणवृद्धी' परिभाषा उपस्थित होकर केवल इगन्त अङ्ग को ही वृद्धि हो पाती। इस दशा में 'अपाक्षीत्' में वृद्धि नहीं हो सकती थी।

(3283) नेटि *4* (2268)

इडादौ सिचि हलन्तस्याङ्गस्य वृद्धिर्न भवति। अदेवीत्। असेवीत्। अकोषीत्। अमोषीत्। 'हलन्तस्य' इत्येव- अलावीत्। नन्वत्रैतदप्यन्तरङ्गत्वाद् गुणावादेशयोः कृत-योर्हलन्तं भवति? नैतदेवम्; 'अन्तरङ्गमपि गुणं वचनारम्भ-सामर्थ्यात्सिचि वृद्धिर्बाधते' इत्युक्तम्।

अर्थ—परस्मैपद प्रत्यय परे है जिसके, ऐसे इडादि सिच् परे रहते हलन्त अङ्ग के स्थान पर वृद्धि नहीं होती है।

'वदव्रजहलन्तस्य' इस समूचे पद का अधिकार होने पर भी यहाँ 'हलन्तस्य' का ही योग होता है। कारण कि, वद् तथा व्रज् को विधानसामर्थ्य के कारण निषेध प्रसक्त नहीं होता है।

उदा० (1) अदेवीत्
दिव् त्—लुङ्, इतश्च,
दिव् इ स् ई त्—सिच्, इट्, ईट्,
देव् इ ई त्—हलन्तलक्षणा वृद्धि का निषेध, इट ईटि, गुण,
अदेवीत्—अकः सवर्णे दीर्घः, अट्।

(2) असेवीत्
सिव् तिप्—पूर्ववत्।

(3) अकोषीत्
कुष् तिप्—पूर्ववत्।

(4) अमोषीत्
मुष्—पूर्ववत्।

हलन्त०—हलन्त अङ्ग को वृद्धि नहीं होती है।

(5) अलावीत्
यहाँ वृद्धि का निषेध नहीं हुआ।

नन्वत्रै०—'अलावीत्' इस स्थल पर अन्तरङ्ग होने से गुण तथा अव् आदेश कर देने पर 'लव्' इस प्रकार हलन्त हो जाता है। ऐसा नहीं है। अन्तरङ्ग होने पर भी गुण को वचनसामर्थ्य से सिच् परे रहते वृद्धि आदेश बाध लेता है।

[1]**इडादा०**—इडादि सिच् परे रहते ही वृद्धि का निषेध होता है।

(6) अगौप्सीत्
गुप् त्—लुङ्, तिप्, इतश्च, 'आर्धधातुकं शेषः' से आर्धधातुक

1. यह अंश काशिका में नहीं है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संज्ञा, 'आयादय आर्धधातुके वा' से पाक्षिक 'आय' प्रत्यय (आय पक्ष में 'अगोपायीत्'[1]),

गुप् स् ई त्—आय अभाव पक्ष, सिच्, अस्तिसिचोऽपृक्ते०,

गुप् स् ई त्—'स्वरतिसूति०' से पक्षिक इट् (इट् पक्ष में 'अगोपीत्'[2]) इट् अभाव पक्ष में,

अ गौप् स् ई त्—हलन्तलक्षणा वृद्धि।

(3284) ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम् *5* (2299)

हकारान्तानां मकारान्तानां यकारान्तानामङ्गानाम्, क्षण; श्वस, जागृ, णि, श्वि–इत्येतेषामेदितां च इडादौ सिचि परस्मैपदे परतो वृद्धिर्न भवति। ग्रह–अग्रहीत्। स्यम्–अस्यमीत्। व्यय–अव्ययीत्। दुवम्–अवमीत्। क्षण–अक्षणीत्। श्वस्–अश्वसीत्। जागृ–अजागरीत्। णि–औनयीत्, ऐलयीत्। श्वि—अश्वयीत्। एदिताम्–रगे, अरगीत्। कखे–अकखीत्। ह्म्यन्तक्षणश्वसामेदितां च 'अतो हलादेर्लघोः' (7.2.7) इति विकल्पे प्राप्ते प्रतिषेधः। जागृ-णि-श्वीनां तु सिचि वृद्धिः प्राप्ता, सा च 'नेटि' (7.2.4) इति न प्रतिषिध्यते। न च अन्तरङ्गत्वादत्र पूर्वं गुणो भवति; सिचि वृद्धेरनवकाशत्वात्। यदि पूर्वं गुणः स्यात्, इह णिश्विग्रहणमनर्थकं स्यात्; गुणायादेशयोः कृतयोर्यकारान्तत्वादेव प्रतिषेधस्य सिद्धत्वात्। तस्मादिदमेव णिश्विग्रहणं ज्ञापकम्–न सिच्यन्तरङ्गमस्तीति। अथ जागृग्रहणं किमर्थम्, 'जाग्रोऽविचिण्णल्ङित्सु' (3.7.85) इति जागर्त्तेर्गुणो वृद्धेरपवादो विधीयते, स यथा 'अचो ञ्णिति' (7.2.115) इति वृद्धिं बाधते, तथा सिचि वृद्धिमपि बाधिष्यते? नैतदस्ति; कृते गुणे 'अतो र्लान्तस्य' (7.2.2) इति या वृद्धिः प्राप्नोति सा प्रतिषिध्यते। अथ गुणविधानसामर्थ्यादुत्तरकालभाविन्यपि वृद्धिर्बाध्यते, यथा जागरयतीत्यत्र 'अत उपधायाः' (7.1.113) इत्यपि वृद्धिर्न भवति, तथा चिण्णलोः प्रतिषेधोऽर्थवान्भवति इति शक्यमिह जागृग्रहणमकर्त्तुम्? तत्तु क्रियते विस्पष्टार्थम्।

अर्थ—परस्मैपदसंज्ञक प्रत्यय परे है जिसके, ऐसे इडादि सिच् के परे रहते हकारान्त, मकारान्त, यकारान्त, क्षण्, श्वस्, जागृ, णिप्रत्ययान्त, श्वि तथा एदित् (= जिसका एकार इत् है)—इन अङ्गों की वृद्धि नहीं होती है।

उदा० (1) अग्रहीत्
ग्रह् तिप्—लुङ्, इतश्च,
ग्रह् इ स् ई त्—सिच्, इट्, ईट्,
अ ग्रहीत्—सिच् लोप, सवर्णदीर्घ।

(2) अस्यमीत्
स्यम् इ स् ई त्—पूर्ववत्,
अस्यम् ईत्—सिच् लोप, वृद्धि का निषेध।

(3) अव्ययीत्
व्यय् तिप्—पूर्ववत् वृद्धि का निषेध।

(4) अवमीत्
वम्—पूर्ववत्।

(5) अक्षणीत्
क्षण्—पूर्ववत्।

(6) अश्वसीत्
पूर्ववत् वृद्धिनिषेध।

(7) अजागरीत्
जागृ इ स् ई त्—पूर्ववत्,
अ जागर् ई त्—वृद्धिनिषेध, गुण हुआ।

(8) औनयीत्
ऊन् णि → ऊनि—धातुसंज्ञा,
ऊनि इ स् ई त्—पूर्ववत् लुङ् आदि,
ऊने ई त्—सिच् लोप, सवर्णदीर्घ, वृद्धिनिषेध, गुण,
आ ऊनय् ई त्—आट्, आटश्च।

(9) ऐलयीत्
ईल् णिच् → ईलि—धातुसंज्ञा,
ईले इ स् ई त्—पूर्ववत्, वृद्धिनिषेध होकर गुण,
आ ई लय् ई त्—'आटश्च' से वृद्धि एकादेश।

(10) अश्वयीत्
श्वि इ स् ई त्—पूर्ववत्,
अ श्वे ई त्—वृद्धिनिषेध, गुण।

---

1. पाठकों की सुविधा के लिये नीचे विस्तार से सिद्धि दिखाई जा रही है—

गुप् आय इ स् ई त्—सिच्, इट्, ईट् आदि होकर 'अतो लोपः' से अकारलोप होता है। 'इट ईटि' से सिच् का लोप हुआ। गुप् आय् इ ई त्—सवर्णदीर्घ, लघूपधगुण तथा अट् होकर रूप बनता है।

2. इसी प्रकार आय अभाव पक्ष में 'स्वरतिसूति०' से पाक्षिक इट् होकर हलन्तलक्षणा वृद्धि का निषेध होता है। गुप् इ स् ई त्—सिच् का लोप, सवर्णदीर्घ तथा लघूपधगुण होकर 'अगोपीत्' बनता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(11) अरगीत्
रगे → रग् तिप्—लुङ्,
रग् इ स् ई त्—पूर्ववत्,
अरगीत्—वृद्धिनिषेध।

(12) अकखीत्
कखे → कख्—पूर्ववत्,
अ कख् इ स् ई त्—पूर्ववत् वृद्धिनिषेध।

ह्यन्त०—हकारान्त, मकारान्त, यकारान्त, क्षण, श्वस् तथा एदित् (= ह्रस्व एकार जिसका इत् है)—ये हलन्त अङ्ग हैं। अतः इन्हें हलन्तलक्षणा वृद्धि प्राप्त होती है। 'नेटि' के द्वारा इसका निषेध होकर 'अतो हलादेर्लघोः' से वैकल्पिक वृद्धि प्राप्त हुई, जिसका प्रकृत सूत्र के द्वारा निषेध होता है।

जागृ, णिप्रत्ययान्त तथा श्वि अङ्गों को 'सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु' के द्वारा प्राप्त नित्य वृद्धि का निषेध होता है।

यदि०—यदि पहले गुण कर लिया जाय तो यहाँ सूत्र में णि तथा श्वि का ग्रहण व्यर्थ हो जाता है; क्योंकि गुण तथा अय् आदेश—इनके करने पर यकारान्त हो जाने से सिद्ध ही है। अतः प्रकृत सूत्र में णि तथा श्वि के ग्रहण से ज्ञापित होता है कि सिच् में अन्तरङ्ग नहीं होता है।

अथ जागृ०—शङ्का होती है कि 'अजागरीत्' में 'सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु' से प्राप्त वृद्धि का जाग्रोऽविचिण्० के द्वारा बाध हो जाता है। तब प्रकृत सूत्र में 'जागृ' पद का ग्रहण व्यर्थ है।

इसका समाधान यह है कि पूर्ववत् गुण कर लेने पर 'अतो र्लान्तस्य' के द्वारा प्राप्त वृद्धि के प्रतिषेध के लिए यहाँ सूत्र में 'जागृ' का ग्रहण आवश्यक है।

अथ गुण०—गुणविधानसामर्थ्य से उत्तरकालभावी वृद्धि का बाध हो जाता है। कारण कि यदि गुण करने के पश्चात् वृद्धि की जाती है तो वह गुणविधान व्यर्थ हो जाता है। यथा—
जागरयति
जागृ णिच्—जागर् इ—गुण, उरण् रपरः, धातुसंज्ञा, 'अत उपधायाः' से वृद्धि प्राप्त,
जागरि शप् तिप्—तिप्, शप् आदि।

इसी प्रकार चिण् और णल् का जो प्रतिषेध किया जाता है, वह भी व्यर्थ हो जाता है। इसलिए प्रकृत सूत्र में 'जागृ' का ग्रहण करना उचित नहीं है। यहाँ स्पष्टता के लिए किया जा रहा है।

(3285) ऊर्णोतेर्विभाषा *6* (2449)

ऊर्णोतेरिडादौ सिचि परस्मैपदपरे परतो विभाषा वृद्धिर्न भवति। प्रौर्णवीत्, प्रौर्णावीत्। 'विभाषोर्णोः' (1.2.3) इत्यङित्त्वपक्षे वृद्धिविकल्पोऽयम्। ङित्त्वपक्षे तु गुण-वृद्ध्योरभावे उवङ् भवति–प्रौर्णुवीत्।

अर्थ—परस्मैपद प्रत्यय है परे जिससे, ऐसे इडादि सिच् के परे रहते ऊर्णु धातु को वृद्धि आदेश का विकल्प से निषेध होता है।

उदा० (1) प्रोर्णवीत्
ऊर्णु स् त्—लुङ्, तिप्, इतश्च, सिच्,
ऊर्णु इ स् ई त्—इट्, ईट्, 'विभाषोर्णोः' से पाक्षिक ङिद्वत्,
ऊर्णो ई त्—'सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु' से नित्य वृद्धि प्राप्त, प्रकृत सूत्र से पाक्षिक वृद्धि, वृद्धि अभाव पक्ष में आर्धधातुक गुण,
आ ऊर्णो ई त्—अवादेश, आट्, आटश्च।

(2) प्रौर्णावीत्
ऊर्णौ इ स् ई त्—पाक्षिक वृद्धि, आव् आदेश,
प्र आ ऊर्णावीत्—आटश्च।

विभाषो०—'विभाषोर्णोः' से अङित् पक्ष में वृद्धि का विकल्प होता है। ङित् पक्ष में गुण तथा वृद्धि का निषेध तथा उवङ् होता है।

(3) प्रौर्णुवीत्

पाठकों की सुविधा के लिए ऊर्णु धातु लुङ् लकार की रूप-माला विस्तार से दिखाई जा रही है—

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	और्णावीत् (वृद्धि)	और्णाविष्टाम्	और्णाविषुः
	और्णवीत् (गुण)	और्णविष्टाम्	और्णविषुः
	और्णुवीत् (उवङ्)	और्णुविष्टाम्	और्णुविषुः
मध्यम पुरुष	और्णावीः	और्णाविष्टम्	और्णाविष्ट
	और्णवीः	और्णविष्टम्	और्णविष्ट
	और्णुवीः	और्णुविष्टम्	और्णुविष्ट
उत्तम पुरुष	और्णाविषम्	और्णाविष्व	और्णाविष्म
	और्णविषम्	और्णविष्व	और्णविष्म
	और्णुविषम्	और्णुविष्व	और्णुविष्म

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(3286) अतो हलादेर्लघोः *7* (2284)

हलादेरङ्गस्य लघोरकास्य इडादौ सिचि परस्मैपदपरे परतो विभाषा वृद्धिर्न भवति। अकणीत्, अकाणीत्। अरणीत्, अराणीत्। अत इति किम्? अदेवीत्। असेवीत्। न्यकुटीत्, न्यपुटीत्–इत्यत्र 'अतः' इत्यस्मिन्नसति स्थानिनिर्देशार्थम् 'अचः' इत्येतदनुवर्त्तयितव्यम्। तत्र अज्लक्षणा वृद्धिरिग्लक्षणा न भवतीति 'क्ङिति च' (7.2.118) इति प्रतिषेधो न स्यात्। हलादेरिति किम्? मा भवानशीत्। मा भवानटीत्। लघोरिति किम्? अतक्षीत्। अरक्षीत्। अथेह कस्मान्न भवति–अचकासीदिति? येन नाव्यवधानं तेन व्यवहितेऽपि वचनप्रामाण्यादिति हला व्यवधानमाश्रितम्; न पुनरचापि व्यवधानमिति वृद्धिर्न भवति। अथ पुनरेकेन वर्णेन व्यवधानमाश्रीयते, न पुनरनेकेन–इति कल्पने शक्यमकर्तुम् 'लघोः' इति, अतक्षीदित्यत्रानेकेन व्यवधानमिति न भविष्यति? तत्क्रियते विस्पष्टार्थम्। इटीत्येव–अपाक्षीत्।

अर्थ—परस्मैपद प्रत्यय है परे जिससे, ऐसे इडादि सिच् प्रत्यय के परे रहते हलादि अङ्ग के लघु अकार के स्थान पर विकल्प से वृद्धि नहीं होती है।

लघु = लघुसंज्ञक। 'नेटि' से प्राप्त निषेध का विकल्प होता है। 'इडादौ सिचि' पद 'लघोरतः' का विशेषण है। तब 'येन नाऽव्यवधानं तेन व्यवहितेऽपि' (प०) के द्वारा इडादि सिच् परे रहते केवल एक वर्ण का व्यवधान क्षन्तव्य है। इसके कारण 'अचकासीत्' में वैकल्पिक वृद्धि नहीं होती है।

उदा० (1) अकणीत्

कण् इ स् ई त्—इस स्थिति में सिच् प्रत्यय को मानकर 'कण्' हलादि अङ्ग है, इससे परे इडादि सिच् (इस्) है, इससे परे परस्मैपदसंज्ञक 'त्' प्रत्यय है, अकार की लघुसंज्ञा है,

अकणीत्—पाक्षिक वृद्धि अभाव पक्ष, इट ई टि, अट्।

(2) अकाणीत्

पाक्षिक वृद्धि हुई।

(3) अरणीत्

पूर्ववत् वृद्धि निषेध।

(4) अराणीत्

वृद्धि।

अत०—अकार के स्थान पर ही पाक्षिक वृद्धि होती है।

(5) अदेवीत्

दिव् इ स् ई त्—'दिव्' हलादि अङ्ग है, इससे पर इडादि सिच् है, इससे पर परस्मैपदसंज्ञक प्रत्यय है; परन्तु लघुसंज्ञक अकार नहीं है,

अदेवीत्—पाक्षिक वृद्धि नहीं हुई, 'नेटि' से वृद्धि का नित्य निषेध, लघूपधगुण।

(6) असेवीत्

सिव् इ स् ई त्—पूर्ववत्।

न्यकु०—(7) न्यकुटीत्, (8) न्यपुटीत्।

इन स्थलों पर 'अतः' ऐसा न रहने पर स्थानी के निर्देश के लिए 'अचः' इस पद का अनुवर्त्तन करना चाहिए। यहाँ अज्लक्षणा वृद्धि इग्लक्षणा नहीं होती है। अतः 'क्ङिति च' से निषेध भी नहीं होता है।

हलादे०—हलादि अङ्ग के लघु अकार को पाक्षिक वृद्धि होती है।

(9) (मा भवान्) अशीत्

अश् इस् ई त्—इस दशा में हलादि अङ्ग न होने से पाक्षिक वृद्धि नहीं हुई।

(10) (मा भवान्) अटीत्

अट् इ स् ई त्—पूर्ववत्।

लघो०—लघुसंज्ञक अकार के स्थान पर पाक्षिक वृद्धि होती है।

(11) अतक्षीत्

तक्ष् इ स् ई त्—इस दशा में 'तक्ष्' हलादि अङ्ग है, इससे पर इडादि सिच् है, इससे पर परस्मैपद प्रत्यय है, अकार के स्थान पर पाक्षिक वृद्धि प्राप्त हुई, परन्तु अकार की 'संयोगे गुरु' से गुरुसंज्ञा है, वृद्धि नहीं हुई।

(12) अक्षरीत् (पूर्ववत्)।

(13) अचकासीत्

अथेह०—उपर्युक्त स्थल पर क्यों नहीं होता है? 'जिससे अव्यवधान नहीं होता है, उसके व्यवधान रहने पर भी होता है' इस परिभाषा से हल् का व्यवधान का आश्रय तो कर लिया जाता है; परन्तु अच् के व्यवधान का आश्रय नहीं किया जाता; अतः वृद्धि नहीं होती है।

'चकास्' इस दशा में ककार का व्यवधान तो मान्य है; परन्तु 'आ' का व्यवधान मान्य न रहने से पाक्षिक वृद्धिनिषेध नहीं होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ पुन०—एक वर्ण के व्यवधान का आश्रय किया जाता है, अनेक वर्णों का नहीं। इस प्रकार की कल्पना में 'लघोः' का पाठ उचित नहीं है। 'अतक्षीत्' यहाँ अनेक वर्णों का व्यवधान है; अतः वृद्धि नहीं होगी। इसलिए स्पष्टता के लिए 'लघोः' पद का ग्रहण है।

इडादि सिच् पर रहते वृद्धि का निषेध होता है।

(12) अपाक्षीत्
पच् स् ई त्—वलादिक इट् का निषेध, इडादि सिच् न होने से वृद्धि का निषेध नहीं हुआ।

(3287) नेड्वशि कृति *8* (2981)

वशादौ कृति प्रत्यये परत इडागमो न भवति। वरमनादौ प्रयोजनम्। ईशिता, ईशितुम्-ईश्वरः। दीपिता, दीपितुम्-दीप्रः। भसिता, भसितुम्-भस्म। याचिता, याचितुम्-याच्ञा। वरमनादौ इत्युदाहरणप्रदर्शनार्थम्, न परिगणनम्। तेन 'ञमन्ताड्डः' (उ०सू० 119) इत्येवमादावपि हि प्रतिषेधो भवति। अथ तत्र 'उणादयो बहुलम्' (3.3.1) इति समाधीयते? सम्भवोदाहरणप्रदर्शनमेतत्। कृतीति किम्? रुरुदिव। रुरुदिम।

अर्थ—वशादि कृत् संज्ञक प्रत्यय को इट् आगम नहीं होता है। 'वश्' एक प्रत्याहार है। वश् प्रत्याहार के अन्तर्गत व, र, ल, वर्गीय पञ्चम वर्ण (ञ, म, ङ, ण, न), चतुर्थ अक्षर (झ, भ, घ, ढ, ध) एवं तृतीय अक्षर (ग, ज, ड, द, ब) आते हैं। 'वशि' तथा 'कृति'—इन दोनों पदों में षष्ठी के अर्थ में सप्तमी हुई है। सर्वत्र 'आर्धधातुकस्येड् वलादेः' से इट् प्राप्त था।

उदा० (1) ईशिता
ईश् तृच्—ण्वुल्तृचौ,
ईश् इ तृ—वलादिक इट्,
ईश् इ तृ सु—विभक्तिकार्य।

(2) ईशितुम्
ईश् इ तुमुन्—पूर्ववत्।

(3) ईश्वरः
ईश् वरच्—'स्थेशभासपि०' से 'वरच्', कृदतिङ्,
ईश् वर—इट् निषेध।

(4) दीपिता
दीप् तृच्—'तृच्' प्रत्यय,
दीप् इट् तृ—वलादिक इट्,
दीपितृ सु—विभक्तिकार्य।

(5) दीपितुम्
दीप् इट् तुमुन्—पूर्ववत्।

(6) दीप्रः
दीप् र—नमिकम्पि०,
दीप्र सु—विभक्तिकार्य।

(7) भसिता
भस् तृच्—पूर्ववत्,
भस् इ तृ—इट्
भसितृ सु—विभक्तिकार्य।

(8) भसितुम्
भस् इट् तुमुन्—पूर्ववत्।

(9) भस्म
भस् मनिन्—अन्येभ्योऽपि दृश्यते,
भस् मन्—इट् का निषेध।

(10) याचिता
याच् तृच्—पूर्ववत्,
याच् इ तृ—इट्,
याचितृ सु—विभक्तिकार्य।

(11) याचितुम्
याच् इ तुम्—इट् हुआ।

(12) याच्ञा
याच् नङ्—'यजयाचयत०' से नङ्,
याच् ञ—स्तोः श्चुना श्चुः,
याच्ञ टाप् सु—अजाद्यतष्टाप्।

वर०—व, र, म, न—ये आदि में हों—ऐसा कथन उदाहरण-प्रदर्शन के लिए है, न कि परिगणन है। तब 'ञमन्ताड्डः' इत्यादि में भी निषेध होता है। 'उणादयो बहुलम्' से समाधान किया जाता है। यह सम्भव उदाहरण का प्रदर्शन है।

कृतीति०—**कृत्संज्ञक** प्रत्यय के परे रहते ही इट्-निषेध होता है।

(13) रुरुदिव
रुद् व—लिट्, वस्, 'व' आदेश,
रु रुद् इ व—'व' वशादि है तथा कृत् नहीं है, अतः इट् का निषेध नहीं हुआ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(14) रुरुदिम
रुद् म—पूर्ववत्।

(3288) तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च *9* (3163)

ति, तु, त्र, त, थ, सि, सु, सर, क, स–इत्येतेषु कृत्सु इडागमो न भवति। 'ति' इति–क्तिन्क्तिचोः सामान्यग्रहणम्। क्तिच्–तनिता, तनितुम्–तन्तिः। क्तिन्–दीपिता, दीपितुम्–दीप्तिः। तु–'सितनिगमिमसिसच्यविधाञ्कृशिभ्यस्तुन्' (उ०सू० 70), सचिता, सचितुम्–सक्तुः। त्र–'दाम्नीशसयुयुज' (3.3.182) इति ष्ट्रन्, पतिता, पतितुम्–पत्त्रम्=वाहनम्। उणादिष्वपि 'सर्वधातुभ्यः ष्ट्रन्' (उ० सू० 598), तनिता, तनितुम्–तन्त्रम्। त–'हसिमृगृण्वमिदमितमिलूपूधुर्विभ्यस्तन्' (उ०सू० 366), हसिता, हसितुम्–हस्तः। लविता, लवितुम्–लोतः। पविता, पवितुम्–पोतः। धूर्विता, धूर्वितुम्–धूर्तः। औणादिकस्यैव तशब्दस्य ग्रहणमिष्यते, न पुनः क्तस्य, हसितमित्येव हि तत्र भवति। थ–'हनिकुषिनीरमिकाशिभ्य क्थन्' (उ०सू० 160), कोषिता, कोषितुम्, कुष्ठम्। काशिता, काशितुम्–काष्ठम्। सि–'प्लुषिशुषिकुषिभ्यः क्सिः' (उ०सू० 435), कोषिता, कोषितुम्–कुक्षिः। सु–'सुक् च इषेः' (उ०सू० 437), एषिता, एषितुम्–इक्षुः। सर–'अशेः क्सरन्' (उ०सू० 350), अशिता, अशितुम्–अक्षरम्। क–इण्भीकापाशल्यतिमर्चिभ्यः कन्' (उ०सू० 323), शलिता, शलितुम्–शल्कः। स–'वृतृवदिहनिक्रमिकषियुमुचिभ्यः सः' (उ०सू० 342), वदिता, वदितुम्–वत्सः। *तितुत्रतथेष्वग्रहादीनामिति वक्तव्यम्* (का०वा०)। ग्रहादयो ग्रहप्रकाराः, येषामिट् क्तिनि दृश्यते। निगृहीतिः। उपस्निहितिः। निकुचितिः। निपठितिः। 'कृति' इत्येवरोदिति। स्वपिति।

अर्थ—ति, तु, त्र, त, थ, सि, सु, सर, क तथा स—इन कृत्संज्ञक प्रत्ययों को इट् आगम नहीं होता है।

उदा० (क) तौ—
'ति' के द्वारा 'क्तिन्' व 'क्तिच्' दोनों का ग्रहण होता है।

(1) तनिता
तन् तृच्—प्रत्यय हुआ,
तन् इट् तृ—इट्,
तनितृ सु—विभक्तिकार्य।

(2) तनितुम्
तन् इ तुमुन्—पूर्ववत्।

(3) तन्तिः
तन् क्तिच्—इट् का निषेध,
तन् ति सु—विभक्तिकार्य।

(4) दीपिता
दीप् तृच्—वलादिक इट्।

(5) दीपितुम्
पूर्ववत् इट्।

(6) दीप्तिः
दीप् क्तिन्—वलादिक इट् की प्राप्ति,
दीप् ति सु—इट् का निषेध।

(ख) तौ परतः—

(7) सचिता
षच् इट् तृच्—वलादिक इट् हुआ, विभक्तिकार्य होकर रूप बनता है।

(8) सचितुम्
सच् इट् तुमुन्—वलादिक इट्।

(9) सक्तुः
सच् तुन्—'सितनिगमिमसि०' से 'तुन्', इट् का निषेध।

(ग) त्रे परतः—

(10) पतिता
पत् इट् तृ—इट् हुआ।

(11) पतितुम्
पत् इट् तुमुन्—पूर्ववत्।

(12) पत्त्रम्
पत् त्र—इट् का निषेध। दाम्नीशसयुयुज० से प्रत्यय।

(13) तनिता
तन् इट् तृच्—पूर्ववत् इट्।

(14) तनितुम्
तन् इट् तुमुन्—वलादिक इट्।

(15) तन्त्रम्
तन् ष्ट्रन्—'सर्वधातुभ्यः ष्ट्रन्' से 'ष्ट्रन्',

(घ) ते परतः—

(6) हसिता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हस् तृच्—इट् हुआ।

(17) हसितुम्
हस् इट् तुमुन्।

(18) हस्तः
हस् तन्—'हसिमृगृण्वमिदमि०' से तन्, इट् निषेध।

(19) लविता
लू इट् तृच्—इट्,
लो इ तृ—गुण, विभक्तिकार्य।

(20) लवितुम्
लू इट् तुमुन्।

(21) लोतः
लू त—पूर्ववत् 'तन्' गुण, सु।

(22) पविता
पू इट् तृच्।

(23) पवितुम्
पू इट् तुमुन्।

(24) पोतः
पू तन्—गुण, इट् निषेध।

(25) धूर्विता
धूर्व् इट् तृ।

(26) धूर्वितुम्
पूर्ववत् इट्।

(27) धूर्तः
धूर्व् त
धूर् त
धूर् त सु।

औणादि०—औणादिक 'त' शब्द का ही ग्रहण है; 'क्त' का ग्रहण नहीं होता। वहाँ 'हसितम्' होता है।

(ङ) शे परतः—

(28) कोषिता
कुष् इट् तृ—इट्।

(29) कोषितुम्
कुष् इ तुमुन्।

(30) कुष्ठम्
कुष् थ—'हनिकुषिनीरमि०' से 'क्थन्', इट् निषेध, ष्टुना ष्टुः।

(31) काशिता
काश् इट् तृच्।

(32) काशितुम्
काश् इ तुमुन्।

(33) काष्ठम्
काश् क्थन्—इट् निषेध 'व्रश्चभ्रस्ज०' से षकार, ष्टुत्व।

(च) सौ परतः—

(34) कोषिता
कुष् इ तृच्।

(35) कोषितुम्
कुष् इ तुमुन्।

(36) कुक्षिः
कुष् सि → कुक् सि—'प्लुषिशुषिकुषिभ्यः क्सिः' 'षढोः कः सि',
कुक् षि—इट् निषेध, 'इण्कोः' से षत्व।

(छ) सौ परतः—

(37) एषिता
इष् इट् तृ—वलादिक इट्, लघूपधगुण, सु।

(38) एषितुम्
इष् इट् तुमुन्।

(39) इक्षुः
इष् सुक्—'सुक् च इषेः' से 'सुक्', इट् निषेध,
इक् षु सु—षढोः कः सि, इण्कोः।

(ज) सरे परतः—

(40) अशिता
अश् तृ—वलादिक इट्।

(41) अशितुम्
अश् इट् तुमुन्।

(42) अक्षरम्
अश् सर—'अशेः क्सरन्' से 'क्सरन्', इट् निषेध,
अष् सर—व्रश्चभ्रस्ज०,
अक् सर—षढोः कः सि, सु।

(झ) के परतः—

(43) शलिता
शल् ईट् तृच्।

(44) शलितुम्
शल् इट् तुमुन्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(45) शल्कः
शल् कन्—'इण्भीकापाशल्यति०' से 'कन्', इट् निषेध,

(ञ) से परतः—

(46) वदिता
वद् इट् तृच्।

(47) वदितुम्
वद् इट् तुमुन्।

(48) वत्सः
वद् स—'वृतृवदिहनिक्रमिकषि०' से 'स', इट् निषेध,
वत् स सु—खरि च।

तितुत्र०—ग्रह आदि अङ्गों से भिन्न अङ्गों से पर ति, तु, त्र, त तथा थ कृत् प्रत्ययों को इट् आगम होता है।

(49) निगृहीतिः
नि ग्रह् इट् क्तिन्—अनुबन्धलोप, इट्,
नि ग्रह् इ ति—सम्प्रसारण,
निगृहीति सु—'ग्रहोऽलिटि०' से दीर्घ।

(50) उपस्निहितिः
उप स्निह् इ क्तिन्—पूर्ववत् इट्।

(51) निकुचितिः
पूर्ववत् इट्।

(52) निपठितिः
पूर्ववत् इट्।

कृति०—कृत् प्रत्यय परे रहते पूर्वोक्त इट्-निषेध होता है।

(53) रोदिति
रुद् तिप्—इट् हुआ।

(54) स्वपिति
स्वप् इट् तिप—इट् हुआ।

(3289) एकाच उपदेशेऽनुदात्तात् *10* (2246)

उपदेशे य एकाच् धातुरनुदात्तश्च तस्मादिडागमो न भवति। प्रकृत्याश्रयोऽयं प्रतिषेधः। के पुनरुपदेशेऽनुदात्ताः? ये तथा गणे पठ्यन्ते, त एव विस्पष्टार्थमनिट्कारिकासु प्रविभक्ताः प्रदर्श्यन्ते–

अनिट्स्वरान्तो भवतीति दृश्यताम्,
इमांस्तु सेटः प्रवदन्ति तद्विदः।
अदन्तमृदन्तमृतां च वृङ्वृञौ
श्विडीङिवर्णेष्वथ शीङ्श्रिञावपि॥
गणस्थमूदन्तमुतां च रुस्नुवौ
क्षुवं तथोर्णोतिमथो युणुक्ष्णवः।
इति स्वरान्ता निपुणं समुच्चिताः
ततो हलन्तानपि सन्निबोधत॥

द्वये एव धातवः–स्वरान्ताः, व्यञ्जनान्ताश्च। तत्र सर्वे स्वरान्ता एकाचोऽनुदात्ताः, अदन्तादीन्वर्जयित्वा। दाता। नेता। चेता। स्तोता। कर्त्ता। हर्त्ता। अदन्तादय उदात्ताः–आवधिष्ट। ऋदन्तम्–तरिता, तरीता। ऋतां च वृङ्वृञौ–निर्वरिता, निर्वरीता। प्रवरिता, प्रवरीता। श्विडीङिवर्णेष्वथ शीङ्श्रियावपि–श्वयिता, उड्डयिता, शयिता, श्रयिता। गणस्थमूदन्तम्–लविता। पविता। उतां च रुस्नुवौ क्षुवं तथोर्णोतिमथो युणुक्ष्णवः–रविता। प्रस्नविता। क्षविता। प्रोर्णविता। 'वाच्य ऊर्णोर्णुवद्भावो यङ्प्रसिद्धिः प्रयोजनम्'–इत्यतिदेशादेकाच्त्वमूर्णोतेरस्तीति उदात्त उपदिश्यते। यविता। नविता। क्ष्णविता।

इति स्वरान्ता निपुणं समुच्चिताः
ततो हलन्तानपि सन्निबोधत।
शकिस्तु कान्तेष्वनिडेक इष्यते
घसिश्च सान्तेषु वसिः प्रसारणी॥

घसिः प्रकृत्यन्तरमस्ति–घस्ता। वसिः प्रसारणी–वस्ता। प्रसारणीति किम्? वसिता वस्त्राणाम्। 'वस निवासे' (धा०पा० 1006) इत्यस्य यजादित्वात्सम्प्रसारणं विहितम्, न तु 'वस आच्छादने' (धा०पा० 1024) इत्यस्य।

रभिस्तु भान्तेष्वथ मैथुने यभिस्ततस्तृतीयो लभिरेव नेतरे।

आरब्धा। यब्धा। लब्धा।

यमिर्यमन्तेष्वनिडेक इष्यते रमिश्च यश्च श्यनि पठ्यते मनिः। नमिश्चतुर्थो हनिरेव पञ्चमो गमिश्च षष्ठः प्रतिषेधवाचिनाम्॥

यन्ता। रन्ता। मन्ता। श्यनीति किम्? मनुतेर्मनिता–इत्येव भवति। नन्ता। हन्ता। गन्ता।

दिहिर्दुहिर्मेहतिरोहती वहि-
र्नीहिस्तु षष्ठो दहतिस्तथा लिहिः।
इमेऽनिटोऽष्टाविह मुक्तसंशया
गणेषु हान्ताः प्रविभज्य कीर्तिताः॥

देग्धा। दोग्धा। मेढा। आरोढा। वोढा। नद्धा। दग्धा। लेढा। मुक्तसंशया इति किम्? तन्त्रान्तरे चत्वा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रोऽपरे पठ्यन्ते–सहिमुहिरिहिलुहयः। तत्र सहेर्विकल्प-स्तकारादौ, मुहिरपि रधादौ पठ्यते, तेन तौ ससंशयौ सविकल्पौ। इतरौ तु धातुषु न पठ्येते। कैश्चिदभ्युपगम्येते इति स्वरूपेणैव ससंशयौ।

दिशिं दृशिं दंशिमथो मृशिं स्पृशिं
रिशिं रुशिं क्रोशतिमष्टमं विशिम्।
लिशं च शान्ताननिटः पुराणगाः
पठन्ति पाठेषु दशैव नेतरान्॥

देष्टा, द्रष्टा, दंष्टा; आम्रष्टा, आमर्ष्टा; स्रष्टा, स्पर्ष्टा। ऋदुपधानामुदात्तोपदेशानां मृजिदृशी वर्जयित्वा 'अनुदात्तस्य चर्दुपधस्यान्यतरस्याम्' (6.1.59) इति रमागमविकल्पः। रेष्टा, रोष्टा, क्रोष्टा, प्रवेष्टा, लेष्टा।

रुधिः सराधिर्युधिबन्धिसाधयः
क्रुधिक्षुधी शुध्यतिबुध्यती व्यधिः।
इमे तु धान्ता दश येऽनिटो मता-
स्ततः परं सिध्यतिरेव नेतरे॥

रोद्धा। राद्धा। योद्धा। बन्द्धा। साद्धा। क्रोद्धा। क्षोद्धा। शोद्धा। बोद्धा। व्यद्धा। सेद्धा। बुध्यति-सिध्यत्योः श्यना निर्देशात् न्याय्यविकरणयोर्बुधिसिध्योरिड् भवत्येव–बोधिता, सेधिता। निष्ठायामपि प्रतिषेधाभावात्–बुधितम्, सिधितमित्येव भवति।

शिषिं पिषिं शुष्यतिपुष्यती त्विषिं
विषिं श्लिषिं तुष्यतिदुष्यती द्विषिम्।
इमान् दशैवोपदिशन्त्यनिड्विधौ
गणेषु षान्तान् कृषिकर्षती तथा॥

शेष्टा। पेष्टा। शोष्टा। पोष्टा। त्वेष्टा। वेष्टा। श्लेष्टा। तोष्टा। दोष्टा। द्वेष्टा। क्रष्टा, कर्ष्टा। कृषेस्तौदादिकस्य, भौवादिकस्य च कृषिकर्षती–इति निर्देशः।

तपिं तिपिं चापिमथो वपिं स्वपिं
लिपिं लुपिं तृप्यतिदृप्यती सृपिम्।
स्वरेण नीचेन शपिं छुपिं क्षिपिं
प्रतीहि पान्तान् पठितांस्त्रयोदश॥

तप्ता। तेप्ता। आप्ता। वप्ता। स्वप्ता। लेप्ता। लोप्ता। तृप्यतिदृप्यत्योरनुदात्तत्वममागमार्थमेव। इट् त्वनयो रधादिपाठाद्विकल्पेन भवति–त्रप्ता, तर्प्ता, तर्पिताः, द्रप्ता, द्रर्प्ता, दर्पिता। तुदादिषु तु यौ तृपिदृपी तावुदात्तावेव–त्रप्ता, तर्प्ता। शप्ता। छोप्ता। क्षेप्ता।

अदिं हदिं स्कन्दिभिदिच्छिदिक्षुदीन्
शदिं सदिं स्विद्यतिपद्यती खिदिम्।
तुदिं नुदिं विद्यति विन्त इत्यपि
प्रतीहि दान्तान्दश पञ्च चानिटः॥

अत्ता। हत्ता। स्कन्ता। भेत्ता। छेत्ता। क्षोत्ता। शत्ता। सत्ता। स्वेत्ता। स्विद्यतीति श्यना निर्देशः–'ञिष्विदा' (धा०पा० 979) इत्यस्य ग्रहणं मा भूत्। उदात्त एवायम्। पत्ता। खेत्ता। तोत्ता। नोत्ता। वेत्ता। विद्यति विन्त इत्यपि–श्यना श्नमा च निर्देशोऽन्यविकरणनिवृत्त्यर्थः। वेत्तिविन्दती उदात्तावेव–वेदिता विद्यानाम्, वेदिता धनस्य।

पचिं वचिं विचिरिचिरञ्जिपृच्छतीन्,
निचिं सिचिं मुचिभजिभञ्जिभृज्जतीन्।
त्यजिं यजिं युजिरुजिसञ्जिमज्जतीन्
भुजिं स्वजिं सृजिमृजि विद्ध्यनिट्स्वरान्॥

पक्ता। वक्ता। विवेक्ता। रेक्ता। रङ्क्ता। प्रष्टा। निर्णेक्ता। सेक्ता। मोक्ता। भक्ता। भङ्क्ता। भ्रष्टा, भर्ष्टा। त्यक्ता। यष्टा। योक्ता। रोक्ता। सङ्क्ता। मङ्क्ता। भोक्ता। परिष्वक्ता। स्रष्टा। मार्ष्टा। मृजिरयमूदित्पठ्यते, ततोऽस्य विकल्पेनेटा भवितव्यम्–मार्ष्टा, मर्जिता इति; अमागमोऽप्यस्य न दृश्यते? तदिह पाठस्य प्रयोजनं चिन्त्यम्। केचिदस्य स्थाने विजिं पठन्ति–सृजिं विजिं विद्ध्यनिट्स्वरानिति। निजादिषु यो विजिरसावनिडिष्यते। तथा च ग्रन्थान्तरे 'निजिविजिष्वञ्जिवर्जम्' इत्युक्तम्। एकाच इति किम्? अवधीत्। वृद्धिनिवृत्त्यर्थमदन्तो वधिरुपदिश्यते। उपदेशग्रहणं किम्? इह च यथा स्यात्–लविष्यति, पविष्यति। इह च मा भूत्–कर्त्ता कटान्, कर्तुमिति।

अर्थ—उपदेश अवस्था में एक अच् वाला तथा अनुदात्त धातु से उत्तर आर्धधातुक प्रत्यय को इट् आगम नहीं होता है। यह प्रकृत्याश्रय-निषेध है।

के०—उपदेश में अनुदात्त धातु कौन-से हैं? जिनका गण में पाठ है। उन धातुओं के ज्ञान के लिए काशिकाकार ने निम्नलिखित कारिकाओं में अनिट् व सेट् का परिगणन कर दिया है—

अनिट्०—(संस्कृत में धातु दो ही प्रकार के हैं; यथा—अजन्त व हलन्त।) अजन्तों में उदात्तोपदेश धातु थोड़े हैं। कारिका में इनका परिगणन कर दिया गया है। अतः कारिकोक्त अजन्त व एकाच् धातु अनुदात्तोपदेश जानना चाहिए।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ऊदन्तमृ०—ऊदन्त (= जिनके अन्त में दीर्घ ऊकार है), ॠदन्त (= जिनके अन्त में दीर्घ ॠकार है), वृङ्, वृञ्, श्वि, डीङ्, शीङ् श्रिञ्, ह्रस्व उकारान्तों में रु, स्नु, क्षु, ऊर्णु, यु, णु, क्ष्णु—ये एकाच्, अजन्त धातु उदात्त हैं (अतः इन्हें छोड़कर शेष एकाच् अजन्त धातु उपदेश में अनुदात्त हैं)। अब हलन्तों को भी जानना चाहिए।

द्वय एव०—धातु दो ही प्रकार के होते हैं—स्वरान्त तथा व्यञ्जनान्त। सभी स्वरान्त एकाच् धातु अदन्तों आदि को छोड़कर अनुदात्त हैं।

उदा० (1) दाता—इट् नहीं हुआ।

(2) नेता, (3) चेता, (4) स्तोता, (5) कर्त्ता, (6) हर्त्ता। अदन्त आदि धातु उदात्त हैं। अतः वहाँ इट् होता है।

(7) आवधिष्ट—आ वध स् त—इस दशा में अकारलोप, इट् आगम, षत्व व ष्टुत्व। आडो यमहन०। आत्मनेपदेष्व०।

ॠदन्तम्०—ॠकारान्त धातु सेट् हैं। यथा—

(8) तरिता—तॄ इट् तृच्।

(9) तरीता—पाक्षिक दीर्घ।

ॠतां०—ॠकारान्त में वृङ् व वृञ् सेट् हैं। शेष अनिट् हैं।

(10) निर्वरिता, (11) निर्वरीता, (12) प्रवरिता, (13) प्रवरीता।

श्वि, डीङ्, शीङ्, श्रिञ् सेट् हैं; यथा—

(14) श्वयिता, (15) उड्डयिता, (16) शयिता, (17) श्रयिता।

गण०—ऊदन्त में निम्नलिखित सेट् हैं—

(18) लविता—लूञ् इट् तृ।

(19) पविता—पूञ् इ तृ।

उतां०—उदन्त धातुओं में निम्नलिखित सेट् हैं—

(20) रविता—रु इट् तृ।

(21) प्रस्नविता—प्र स्नु इ तृ।

(22) क्षविता—क्षु इ तृ।

(23) प्रोर्णविता—प्र ऊर्ण इ तृ।

वाच्य०—यङ् प्रत्यय की सिद्धि के लिए 'ऊर्णुञ्' धातु का णुवद्भाव कहना चाहिए।

(24) यविता—यु इट् तृच्।

(25) नविता—णु → नु इट् तृच्।

(26) क्ष्णविता—क्ष्णु इट् तृच्।

इस प्रकार स्वरान्तों का भली प्रकार परिगणन कर दिया गया है। अब हलन्त धातुओं के विषय में भी जानना चाहिए।

शकिस्तु० (हलन्त धातुओं में अनुदात्तोपदेश धातु थोड़े हैं। अतः उनका कारिका में सीधे परिगणन किया जा रहा है।)—

(क) कान्त (= जिनके अन्त में ककार है) धातुओं में एक धातु (शक् शक्तौ) अनिट् है।

(ख) सान्त (= जिनके अन्त में सकार है) धातुओं में घस् तथा वस् दो धातु अनिट् हैं। यहाँ 'घस्' के द्वारा 'घस्लृ' अदने धातु का ग्रहण है; 'अद्' के स्थान पर 'लुङ्सनोर्घस्लृ' से प्राप्त आदेशभूत 'घस्' का ग्रहण होता नहीं है।

(27) घस्ता—घस् तृच्—इट् का निषेध।

(28) वस्ता—वस् तृच्—पूर्ववत्।

प्रसारणी०—सम्प्रसारण वाले वस् धातु को इट् का निषेध तथा 'वस निवासे' इस धातु को ही सम्प्रसारण कहा गया है। वचिस्वपियजादीनां०।

(29) वसिता वस्त्राणाम्—यहाँ वस् प्रसारणी न होने से इट् का निषेध नहीं हुआ।

रभिस्तु०—(ग) भान्त (= जिनके अन्त में भकार है) धातुओं में तीन धातु ही अनिट् हैं—रभ् राभस्ये, यभ् मैथुने तथा लभ् प्राप्तौ।

(30) आरब्धा—आ रभ् तृ—आरभ् धृ—झषस्तथो०,
आरब् धृ—झलां जश् झशि,
आरब्धा—विभक्तिकार्य।

(31) यब्धा—यभ् तृ—पूर्ववत्

(32) लब्धा—पूर्ववत्।

यमि०—(घ) ञमन्त (= ञम् वर्ण है अन्त में जिसके) धातुओं में निम्नलिखित अनिट् धातु हैं—

यम् उपरमे, रम् क्रीडायाम्, मन् ज्ञाने (दि०), नम् प्रह्वत्वे शब्दे च, हन् हिंसागत्योः, गम् गतौ। यथा—

(33) यन्ता—यम् तृ—अनुस्वार, परसवर्ण।

(34) रन्ता, (35) मन्ता, (36) नन्ता, (37) हन्ता, (38) गन्ता—पूर्ववत्।

श्यनीति०—श्यन् विकरण वाला मन् धातु ही अनिट् है।

(39) मनिता—मन् (तुदा०) इट् तृ—इट् होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दिहि०—(ङ) हान्त (= जिनके अन्त में हकार है) धातुओं में निम्नलिखित आठ धातु अनिट् कहे गए हैं—

दिह् उपचये, दुह् प्रपूरणे, मिह् सेचने, रुह् बीजजन्मनि, वह् प्रापणे, णह् बन्धने, दह् भस्मीकरणे तथा लिह् आस्वादने।

(40) देग्धा—दिह् तृ—पुगन्तलघूपधस्य च,
देह् तृ—दाऽऽदेधातोर्घः,
देघ् तृ—झषस्तथो०,
देग् धृ—झलां जश् झशि, विभक्तिकार्य।

(41) दोग्धा—दुह् तृ—'देग्धा' की तरह।

(42) मेढा—मिह् तृ—पुगन्तलघूपधस्य च,
मेढ् तृ—हो ढः,
मेढ् धृ—झषस्तथो०,
मेढ् ढ् → मेढ् सु—ढो ढे लोपः।

(43) आरोढा—आ रुह् तृ—'मेढा' की तरह।

(44) वोढा—वह् तृ—'सहिवहोरोद०' से ओत्व, शेष पूर्ववत्।

(45) नद्धा—नह् तृ—नहो धः,
नध् धृ—झषस्तथो०,
नद् धृ सु—झलां जश् झशि।

(46) दग्धा—दह् तृ—'देग्धा' की तरह।

(47) लेढा—लिह् तृ—'मेढा' की तरह।

मुक्त०—उपर्युक्त धातुओं में कोई संशय नहीं है। अन्य व्याकरण में अन्य चार धातुओं का भी पाठ है—सहि, मुहि, रिह तथा लुह। इनमें सह का तकारादि परे रहते विकल्प कहा है (द्र०—तीषसहलुभ०)। मुह् धातु का रधादिगण में पाठ है। अतः 'रधादिभ्यश्च' से पाक्षिक इट् होता है। अतः ये दोनों संशययुक्त विकल्प वाले धातु हैं। शेष (रिह, लुह) का धातुपाठ में पाठ ही नहीं है। कुछ लोगों ने इन्हें माना है। अतः ये संशय वाले कहे जाते हैं।

दिशि० (च) शान्त (= जिनके अन्त में शकार है) धातुओं में निम्नलिखित धातु अनिट् हैं,, अन्य नहीं—

दिश् अतिसर्जने, दृश् दर्शने, दंश् दशने, मृश् आमर्शने, स्पृश् संस्पर्शे, रिश्—रुश् हिंसायाम्, क्रुश् आह्वाने रोदने च, विश् प्रवेशने तथा लिश् अल्पीभावे।

(48) देष्टा—दिश् तृ—पुगन्तलघूप०,
देश् तृ—व्रश्चभ्रस्ज० से षकार,
देष् टा—ष्टुना ष्टुः, सु।

(49) द्रष्टा—दृश् तृ—सृजिदृशोर्झल्यमकिति,
द्रश् तृ—इको यणचि,
द्रष् टा—शेष पूर्ववत्।

(50) दंष्टा—दंश् तृ—'व्रश्चभ्रस्ज०' से षकार,
दंष् टा—ष्टुत्व, सु।

(51) आम्रष्टा—आ मृश् तृ—अनुदात्तस्य चर्दु०,
आ मृ अम् श् तृ—इको यणचि, पूर्ववत् षकार,
आम्रष् टा—ष्टुत्व, सु।

(52) आमर्ष्टा—पक्ष में 'अम्' नहीं हुआ।
आमर्श् तृ—गुण, पूर्ववत्।

(53) स्रष्टा—स्पृश् तृ—अम् आगम,
स्रष् तृ—षकार, ष्टुत्व, सु।

(54) स्पर्ष्टा
स्पृश् तृ—'अम्' अभाव, गुण,
स्पर् ष् तृ सु—षकार, ष्टुत्व, सु।

ऋदुप०—ह्रस्व ऋकार उपधा वाले अनुदात्तोपदेश धातुओं को पाक्षिक रम् आगम होता है, लेकिन मृज् व दृश् धातुओं को नहीं होता।

(55) रेष्टा—रिश् तृ—व्रश्चभ्रस्ज०,
रेष् तृ सु—लघूपधगुण, ष्टुत्व।

(56) रोष्टा—रुश् तृ—'रेष्टा' की तरह।

(57) क्रोष्टा—क्रुश् तृच्—'रेष्टा' की तरह।

(58) प्रवेष्टा—प्र विश् तृच्—व्रश्चभ्रस्ज०, पुगन्तलघू०, ष्टुना ष्टुः तथा विभक्तिकार्य।

(59) लेष्टा—लिश् तृ—व्रश्चभ्रस्ज० से षकार,
लेष् तृ सु—लघूपधगुण, ष्टुत्व।

रुधिः—(छ) धान्त (= जिनके अन्त में धकार है) धातुओं में निम्नलिखित ग्यारह धातु अनिट् हैं—

रुध् आवरणे, राध् संसिद्धौ, राध् वृद्धौ, युध् सम्प्रहारे (दि०), बन्ध् बन्धने, साध् संसिद्धौ, क्रुध् क्रोधे, क्षुध् बुभुक्षायाम्, शुध् शौचे, बुध् अवगमने (दि०), व्यध् ताडने तथा सिध् संराद्धौ (दि०)।

(60) रोद्धा—रुध् तृ—पुगन्तलघूपधस्य च, झषस्तथो०,
रोध् धृ सु—झलां जश् झशि।

(61) राद्धा—राध् तृ—'रोद्धा' की तरह।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(62) योद्धा—युध् तृ—'रोद्धा' की तरह लघूपधगुण, धकार, जश्त्व (दकार) तथा विभक्तिकार्य।

(63) बन्द्धा—बन्ध् तृ—झषस्तथो० से धकार, 'झलां जश् झशि' से दकार जश्त्व तथा सु।

(64) साद्धा—साध् तृ—'राद्धा' की तरह।
(65) क्रोद्धा—क्रुध् तृ—'योद्धा' की तरह।
(66) क्षोद्धा—पूर्ववत्।
(67) शोद्धा—शुध् तृ—'योद्धा' की तरह।
(68) बोद्धा—बुध् तृ—'योद्धा' की तरह।
(69) व्यद्धा—व्यध् तृ—'राद्धा' की तरह।
(70) सेद्धा—लघूपधगुण, धकार, जश्त्व।

बुध्यति०—'बुध्यति' आदि में 'श्यन्' का निर्देश होने से दैवादिक बुध् व सिध् धातुओं का ही ग्रहण होता है। न्याय तथा विकरण अर्थों में ये धातु सेट् हैं—

(71) बोधिता—बुध् इट् तृ—लघूपधगुण।
(72) सेधिता—सिध् इ तृ—लघूपधगुण।

निष्ठा०—निष्ठा में भी इट् का निषेध न होने से इट् हो जाता है। यथा—

(73) बुधितम्—बुध् इ क्त सु।
(74) सिधितम्—पूर्ववत्।

शिषिं०—(ज) षान्त (= जिनके अन्त में षकार है) धातुओं में निम्नलिखित अनिट् है—

शिष् हिंसायाम् (भ्वा०), पिष् सञ्चरणे (रुधादि), शुष् शोषणे (दि०), पुष् पुष्टौ (दि०), त्विष् दीप्तौ, विष् व्याप्तौ, विष् सेचने, विष् विप्रयोगे, श्लिष् आलिङ्गने (दि०), तुष् प्रीतौ (दि०), दुष् वैकृत्ये (दि०), द्विष् अप्रीतौ, कृष् विलेखने (तुदा०, भ्वा०)।

(75) शेष्टा—शिष् तृ—लघूपधगुण, ष्टुत्व।
(76) पेष्टा—पिष्—पूर्ववत् गुण।
(77) शोष्टा—शुष्—पूर्ववत्।
(78) पोष्टा—पुष्—पूर्ववत्।
(79) त्वेष्टा—त्विष्—गुण।
(80) वेष्टा—विष्—'पेष्टा' की तरह।
(81) श्लेष्टा—श्लिष्—पूर्ववत्।
(82) तोष्टा—तुष्—'पोष्टा' की तरह।
(83) दोष्टा—दुष्—पूर्ववत्।
(84) द्वेष्टा—द्विष्—'वेष्टा' की तरह।

(85) क्रष्टा—कृष् तृ—'अनुदात्तस्य०' से 'अम्', कृ अम् ष् तृ—इको यणचि, ष्टुत्व, सु।

(86) कर्ष्टा—कृष् तृ—पक्ष में 'अम्' नहीं हुआ। गुण।

तपिं०—(झ) पान्त (= जिनके अन्त में पकार है) धातुओं में निम्नलिखित तेरह धातु अनिट् हैं—

तप् सन्तापे, तिप् क्षरणे, आप् व्याप्तौ, आप् लम्भने, वप् बीजसन्ताने, स्वप् शये, लिप् उपदेहे, लुप् छेदने (तुदा०), तृप् प्रीणने (दि०), दृप् हर्षमोचनयोः (दि०) सृप् गतौ, छुप् स्पर्शे, क्षिप् प्रेरणे, तप् ऐश्वर्ये, तप् दाहे तथा शप् आक्रोशे।

(87) तप्ता—तप् तृ सु।
(88) तेप्ता—तिप् तृ—लघूपधगुण।
(89) आप्ता—आप् तृ सु।
(90) वप्ता—पूर्ववत्।
(91) स्वप्ता—स्वप् तृ।
(92) लेप्ता—लिप् तृ—गुण।
(93) लोप्ता—लुप् तृ—गुण।

तृप्यति०—तृप् व दृप् को 'अनुदात्तस्य चर्दुपध०' से पाक्षिक 'अम्' आगम होता है। रधादिगण में पाठ होने से पाक्षिक इट् होता है।

(94) त्रप्ता—तृप् तृ—अम् पक्ष, इट् अभाव पक्ष, तृ अम् प् तृ सु—इको यणचि।

(95) तर्प्ता—तृप् तृ—अम् अभाव, लघूपधगुण, इट् अभाव, तर्प् तृ सु—विभक्तिकार्य।

(96) तर्पिता—इट् पक्ष, अम् अभाव पक्ष, तर्प् इ तृ सु—लघूपधगुण।

(97) द्रप्ता—अम् पक्ष, इट् अभाव, द्रप् तृ सु—यण्।

(98) दर्प्ता—अम् अभाव, इट् अभाव, दर्प् तृ सु—लघूपधगुण।

(99) दर्पिता—अम् अभाव, इट् पक्ष, लघूपधगुण।

तुदादि०—तुदादि गण में जो तृप् व दृप् धातु हैं, वे उदात्तोपदेश हैं। अतः वहाँ इट् नहीं होता, पाक्षिक 'अम्' होता है।

(100) त्रप्ता—तृप् तृ—'अम्' होकर।
(101) तर्प्ता—'अम्' अभाव, लघूपधगुण।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(102) द्रप्ता।
(103) दर्प्ता।
(104) स्रप्ता—सृप् तृ—अम् पक्ष।
(105) सर्प्ता—अम् अभाव, गुण।
(106) शप्ता—शप् तृ—पूर्ववत्।
(107) छोप्ता—छुप् तृ—लघूपधगुण।
(108) क्षेप्ता—क्षिप् तृ—पूर्ववत्।

अदिं—(ञ) दान्त (= जिनके अन्त में दकार है) धातुओं में पन्द्रह धातु अनिट् हैं—

अद् भक्षणे, हद् पुरीषोत्सर्गे, स्कन्द् गतिशोषणयोः, भिद् विदारणे, छिद् द्वैधीकरणे, क्षुद् सम्प्रेषणे, शद् शातने, षद् विशरणगत्यवसादनेषु, स्विद् गात्रप्रक्षरणे (दि०), पद् गतौ (दि०), खिद् दैन्ये, खिद् परिघाते, तुद् व्यथने, णुद् प्रेरणे, विद् सत्तायाम् (दि०), विद् विचारणे (रु०)।

(109) अत्ता—अद् तृ—खरि च, सु।
(110) हत्ता—'अत्ता' की तरह।
(111) स्कन्ता—पूर्ववत्।
(112) भेत्ता—लघूपधगुण, खरि च।
(113) छेत्ता—'भेत्ता' की तरह।
(114) क्षोत्ता—पूर्ववत्।
(115) शत्ता—खरि च।
(116) सत्ता—खरि च।
(117) स्वेत्ता—गुण, खरि च।

स्विद्य०—श्यन् का निर्देश होने से दैवादिक स्विद् धातु का ग्रहण होता है; 'ञिष्विदा' का नहीं होता। यह धातु उदात्तोपदेश है।

(118) पत्ता—पद् तृ—खरि च।
(119) खेत्ता—खिद् तृ—लघुपधगुण, खरि च।
(120) तोत्ता—तुद् 'खेत्ता' की तरह।
(121) नोत्ता—नुद्—'खेत्ता' की तरह।
(122) वेत्ता—विद्—'खेत्ता' की तरह।

विद्यति०—विद् धातु से श्यन् व श्नम् विकरणों का निर्देश हाने से अन्य विकरणों की निवृत्ति होती है। तब यहाँ दैवादिक तथा रौधादिक विद् धातुओं का ही ग्रहण होता है; अन्य का नहीं। आदादिक विद् तथा तौदादिक विद् धातु उदात्तोपदेश हैं। इनके सेट् होने से यहाँ इनका ग्रहण नहीं है। यथा—

(123) वेदिता—इट् तथा गुण हुआ है।

पचि०—(ट) निम्नलिखित चान्त (= जिनके अन्त में चकार है) धातु अनिट् हैं—

पच् पाके, वच् परिभाषणे, विच् पृथग्भावे, रिच् विरेचने, षिच् क्षरणे तथा मुच् मोक्षणे।

(124) पक्ता—पच् तृच्—इट् निषेध,
पक् तृ सु—चोः कुः।

(125) वक्ता—वच् तृच्—इट् निषेध।
(126) वेक्ता—विच्—लघूपधगुण।
(127) रेक्ता—रिच्—पूर्ववत्।
(128) सेक्ता—षिच्—सिच्—धात्वादेः षः सः,
सेक् तृ सु—गुण, कुत्व।
(129) मोक्ता—मुच् तृ—गुण,
मोक् तृ सु—कुत्व।

(ठ) छान्त (= जिनके अन्त में छकार है) धातुओं में निम्नलिखित एक धातु अनिट् है—

प्रच्छ् ज्ञीप्सायाम्।

(130) प्रष्टा—प्रच्छ तृ—व्रश्चभ्रस्ज० से षकार, ष्टुत्व, सु।

(ड) जान्त (= जिनके अन्त में जकार है) धातुओं में निम्नलिखित अनिट् हैं—

रञ्ज् रागे, णिज् शौचपोषणयोः, भज् सेवायाम्, भञ्ज् आमर्दने, भ्रस्ज् पाके, त्यज् हानौ, यज् देवपूजासङ्ग०, युज् योगे, युज् समाधौ, रुज् भङ्गे, षञ्ज् सङ्गे, मस्ज् शुद्धौ, भुज् कौटिल्ये, भुज् पालनाऽभ्यवहारयोः, युज् संयमने, ष्वञ्ज् परिष्वङ्गे, सृज् विसर्गे, मृज् शुद्धौ (अदा०), मृज् शौचाऽलङ्करयोः (चु०)।

(130) रङ्क्ता—रञ्ज् तृच्—कुत्व होने से नकार को अनुस्वार, तब परसवर्ण हुआ।

(131) निर्णेक्ता—निर् णिज्—लघूपधगुण, कुत्व तथा विभक्तिकार्य होकर रूप बनता है।

(132) भक्ता—भज् तृच्—कुत्व।
(133) भङ्क्ता—भञ्ज् तृ—कुत्व,
भङ् क् तृ सु—नकार को अनुस्वार, परसवर्ण।

(134) भ्रष्टा—भ्रस्ज् तृ—भ्रज् तृ—स्कोः संयोगा०,
भ्रष् तृ—व्रश्चभ्रस्ज०,
भ्रष् टा—ष्टुना ष्टुः, सु।

(135) भर्ष्टा—भ्रस्ज् तृ—भ रम् ज् तृ—'भ्रस्जो रोपधयो०' से 'रम्',

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भर्ज् तृ → भर्ष् तृ—व्रश्चभ्रस्ज०, ष्टुत्व।

(136) त्यक्ता—त्यज् तृच्—कुत्व,
त्यक् तृ सु—विभक्तिकार्य।

(137) यष्टा—यज् तृ—व्रश्चभ्रस्ज०,
यष् तृ—ष्टुना ष्टुः।

(138) योक्ता—युज्—लघूपधगुण, कुत्व।
(139) रोक्ता—रुज्—पूर्ववत्।
(140) सङ्क्ता—षञ्ज्—धात्वादेः षः सः,
सङ्क् तृ सु—कुत्व, अनुस्वार, परसवर्ण।

(141) मङ्क्ता—मस्ज् तृ—'मस्जिनशोर्झलि' (7.1.60) तथा 'मस्जेरन्त्यात् पूर्वं० (1.1.46 वा०) से नुम्; मन् ज् तृ—स्कोः संयोगाद्योर० से सकारलोप, चोः कुः, खरि च, नश्चाऽपदा०, अनुस्वारस्य०, सु।

(142) भोक्ता—भुज् तृ—कुत्व, लघूपधगुण।
(143) परिष्वक्ता—परि ष्वज्—परि स्वज्—षकार को सकार, पूर्ववत् कुत्व, विभक्तिकार्य।

(144) स्रष्टा—सृज् तृ—अम्, 'व्रश्चभ्रस्ज०' से षकार,
स्रष् टा—ष्टुत्व, सु।

(145) मार्ष्टा—मृज् तृ—मार्ज् तृ—मृजेर्वृद्धिः,
मार्ष् तृ—व्रश्चभ्रस्ज०, ष्टुत्व, सु।

मृजिर०—मृज् धातु ऊदित् पठित है। तब 'स्वरतिसूतिधूञ्०' से पाक्षिक इट् होता है। इसे अम् आगम भी नहीं होता है। अतः यहाँ इसका पाठ चिन्तनीय है। कछ विद्वान् इसके स्थान पर 'विज्' धातु का पाठ स्वीकार करते हैं। निज् आदि में जो विज् है, वह अनिट् है। अन्यत्र 'निजिविजिष्वञ्जिवर्जम्' ऐसा कहा गया है।

(146) मर्जिता
मृज् इट् तृच्—लघूपधगुण,
मर्ज् इ तृ सु—विभक्तिकार्य।

एकाच०—एकाच् धातु से पर आर्धधातुक प्रत्यय को इट् आगम का निषेध होता है।

(147) अवधीत्
वध इ स् ई त्—'हनो वध लुङि' लुङ्, इतश्च, सिच्, वध आदेश अदन्त है, अनेकाच् होने से इट् का निषेध नहीं हुआ,
अ वध् इ ई त्—सवर्णदीर्घ, अट्।

वृद्धि०—वृद्धि के निवारण के लिए अदन्त वध का उपदेश किया जाता है।

उपदेश०—उपदेश अवस्था में जो एकाच् व अनुदात्त धातु, उससे पर आर्धधातुक को इट् का निषेध होता है।

(148) लविष्यति
लू स्य तिप्—'लू' उपदेश में अनुदात्त नहीं है, अतः इट्-निषेध नहीं हुआ, मूर्धन्य आदेश आदि कार्य होते हैं।

(149) पविष्यति (पूर्ववत्)।

इह०—यहाँ निषेध नहीं होता है। यथा—
कर्त्ता कटान्।

विशेष—ध्यान रहे कि 'एकाचः' और 'अनुदात्तात्' दोनों के साथ 'उपदेशे' पद का सम्बन्ध है। यदि 'उपदेशे' का सम्बन्ध केवल 'एकाचः' के साथ मानते हैं तो सूत्रार्थ इस प्रकार होगा—

'उपदेश में जो एकाच् धातु, ऐसे अनुदात्त धातु से पर आर्धधातुक प्रत्यय को इट् आगम नहीं होता है।' इस अर्थ के अनुसार 'कर्तुम्' में इट् प्राप्त होता है। यथा—

कृ तुमुन्—कृ धातु उपदेश में एकाच् है। 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' से इसे उदात्त हुआ। भले ही यह धातु उपदेश में अनुदात्त है; परन्तु अब उपदेशोत्तर काल में अनुदात्त न रहने से इट्-निषेध नहीं हो सकेगा।

यदि 'उपदेशे' का सम्बन्ध केवल 'अनुदात्तात्' के साथ मानते हैं तो सूत्रार्थ इस प्रकार होता है।

'उपदेश में जो अनुदात्त धातु ऐसे एकाच् धातु से पर आर्धधातुक प्रत्यय को इट् आगम नहीं होता है।' इस अर्थ के अनुसार 'चकृषे' में इट् प्राप्त होने लगता है। यथा—

कृ थास्—चकृसे।

यहाँ 'कृ' धातु उपदेश में अनुदात्त है। लिट् में द्वित्व होकर यह अनेकाच् हो गया है। 'कृ' धातु भले ही उपदेश में एकाच् है; परन्तु अब अनेकाच् होने से इससे पर आर्धधातुक प्रत्यय (से) को प्राप्त इट् का निषेध नहीं होता है।

इस प्रकार सिद्ध होता है कि 'उपदेशे' पद का 'एकाचः' तथा 'अनुदात्तात्' दोनों के साथ सम्बन्ध है।

अतः अनुसार सूत्रोक्त निषेध की प्रवृत्ति के लिए धातु का उपदेश काल में एकाच् व अनुदात्त दोनों का होना आवश्यक है।

अनुबंन्धरहित धातु का एकाच्त्व वा अनेकाच्त्व देखा जाता है। अन्यथा डुकृञ् के सानुबन्ध अवस्था में अनेकाच् रहने से 'कर्तुम्' आदि रूप नहीं बन सकेंगे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धातुपाठ में धातुओं के सस्वर पाठ के दो प्रयोजन हैं—

(क) पद-विधान—धातु के अनुबन्ध का सस्वर पाठ 'पद' के लिए किया गया है। यथा—

1. अनुदात्तङित आत्मनेपदम् के द्वारा जिस धातु के अनुदात्त की इत् संज्ञा होती है, उससे पर आत्मनेपद होता है। ऐसे धातु को अनुदात्तेत् कहते हैं। एधँ, कमुँ आदि अनुदात्तेत् धातु हैं।

2. स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले के द्वारा जिसके स्वरित की इत् संज्ञा होती है, उससे पर परस्मैपद (क्रियाफल के परगामी होने पर) अथवा आत्मनेपद (क्रियाफल के कर्तृगामी होने पर) होता है। ऐसे धातु को स्वरितेत् कहते हैं।

(ख) अन्य प्रयोजन—कुछ धातुओं को (शुद्ध रूप में) अनुदात्तादि स्वर के साथ पठित किया गया है।

जिन धातुओं को अनुदात्त के साथ पढ़ा गया है, उन्हें अनुदात्तोपदेश धातु तथा जिन्हें उदात्त के पढ़ा गया है, उन्हें उदात्तोपदेश धातु कहा जाता है। अनुदात्तोपदेश धातु से पर आर्धधातुक प्रत्यय को इट् का निषेध होता है। इस प्रकार अनुदात्तेत् व अनुदात्तोपदेश धातुओं में अन्तर जानना चाहिए। चूँकि इट् वलादि आर्धधातुक को ही होता है। अतः साक्षात् अनुवृत्ति न होने पर भी 'वलादेः' तथा 'आर्धधातुकस्य' पद अर्थतः यहाँ गृहीत होते हैं।

काशिकाकार तथा सायण यहाँ 'आर्धधातुकस्य' का अधिकार नहीं मानते हैं। चूँकि सभी अनुदात्त अनिट् धातु 'एकाच्' ही हैं; अतः प्रकृत सूत्र में 'एकाचः' पद का योग व्यर्थ प्रतीत होता है।

इसका समाधान यह है कि प्रकृत सूत्र में 'एकाचः' का योग होने से यङ्लुक् में प्रकृत सूत्र प्रवृत्त नहीं होता है। अतः 'एकाचः' पद का योग सार्थक है। व्याकरण शास्त्र के व्याख्याकारों के अनुस्वार यङ्लुक् प्रक्रिया में पाँच कार्य नहीं होते; जिन्हें निम्नलिखित कारिका में संगृहीत किया गया है—

श्तिपा शपाऽनुबन्धेन निर्दिष्टं यद्गणेन च।
यत्रैकाज्ग्रहणं चैव पञ्चैतानि न यङ्लुकि॥

अर्थात्—

(क) **श्तिपा**—धातु का निर्देश इक् तथा श्तिप्—इन दो प्रत्ययों के द्वारा किया जाता है। (द्र०—इक्श्तिपौ धातुनिर्देशे)।

जो कार्य श्तिप् को प्रयोग करके होते हैं, वे यङ्लुक् में नहीं होते हैं। यथा—

'हन्तेर्जः' के द्वारा हन् धातु को 'ज' आदेश कहा गया है। 'हन्तेः' पद में 'हन्' धातु का 'श्तिप्' के द्वारा निर्देश किया गया है। फलतः 'ज' आदेशरूप कार्य 'श्तिप्' के द्वारा निर्दिष्ट हुआ। यह कार्य यङ्लुक् में नहीं होगा अर्थात् यङ्लुक् में म०पु० एकवचन में 'ज' आदेश नहीं होगा। वहाँ 'जङ्धहि' बनता है।

(ख) **शपा** अर्थात् जिन कार्यों को करने के लिए शप् के द्वारा निर्देश किया जाय, वे कार्य भी यङ्लुक् में नहीं होते हैं। यथा—

सनीवन्तर्धभ्रस्जदम्भु० के द्वारा इव् अन्त वाले तथा ऋध् आदि धातुओं से उत्तर सन् को विकल्प से इट् होता है। इस सूत्र में 'भर' पद में शप् के द्वारा 'भृ' धातु का निर्देश है। अतः शप् निर्देश के द्वारा किया जाने वाला कार्य (इट् का विकल्प) यङ् लुक् प्रक्रिया में नहीं होगा। तात्पर्य यह है कि डुभृञ् पालन-पोषणयोः तथा भृञ् भरणे—दोनों धातुओं के यङ्लुक् में सन् को इट का विकल्प नहीं होता है।

(ग) **अनुबन्धेन**—अर्थात् अनुबन्ध के निर्देश के द्वारा किए जाने वाले कार्य यङ्लुक् में नहीं होते हैं।

अनुबन्ध का निर्देश दो प्रकार से होता है—

1. शीङः सार्वधातुके गुणः, स्तुसुधूञ्भ्यः परस्मैपदेषु, क्रीङ्-जीनां णौ—इन सूत्रों में ङकार (शीङ्), ञकार (धूञ् में) तथा ङकार (क्रीङ् में) अनुबन्धों को तत् तत् सूत्र में स्वरूपतः दिया गया है। अतः इन धातुओं को इन सूत्रों से होने वाले कार्य इनकी यङ्लुक् प्रक्रिया में नहीं होंगें।

2. कई बार अनुबन्धों का निर्देश इत्संज्ञा करने के लिए किया जाता है—

अनुदात्तङित आत्मनेपदम्, इदितो नुम् धातोः—इन सूत्रों में ङकार व इकार अनुबन्धों की इत् संज्ञा के लिए दिया गया है। इनके निर्देश से होने वाले कार्य (आत्मनेपद का होना तथा नुम् आगम का होना) यङ्लुक् में नहीं होंगे। तात्पर्य यह है कि शीङ् का यङ्लुक् में 'शेशयीति' रूप होता है तथा टुनदि धातु से यङ्लुक् में नुम् भी नहीं होता है—

नानदीति, नानत्ति।

(घ) निर्दिष्टं यद् गणेन च—अर्थात् गण के निर्देश के द्वारा होने वाला कार्य भी यङ्लुक् में नहीं होता है। यथा—

जुहोत्यादिभ्यः श्लुः।
दिवादिभ्यः श्यन्।
स्वादिभ्यः श्नुः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इन सूत्रों में गणनिर्देशपूर्वक श्लुत्व, श्यन् विकरण तथा श्नु विकरण का विधान किया गया है। अतः यङ्लुक् में ये कार्य होते हैं।

तात्पर्य यह है कि गण के निर्देश के द्वारा विहित कार्य यङ्लुक् में नहीं होता है। यथा—'हु' से यङ्लुक् में 'जोहवीति' तथा 'दिव्' से 'देदिवीति' बनता है।

(ङ) यत्रैकाज् ग्रहणं चैव अर्थात् जो कार्य 'एकाच्' शब्द को लेकर होता है, वह यङ्लुक् में नहीं होता है।

'एकाच् उपदेशेऽनुदात्तात्' में 'एकाच्' पद के निर्देश के द्वारा इट् का निषेध कहा गया है। अतः उक्त निषेध यङ्लुक् में नहीं होता है। यथा—

वेभिदिता—यहाँ वलादिलक्षण इट् हुआ है।

(3290) श्र्युकः किति *11* (3381)

'श्रि' इत्येतस्य उगन्तानां च किति प्रत्यये परत इडागमो न भवति। श्रित्वा, श्रितः, श्रितवान्। उगन्तानां च-युत्वा, युतः, युतवान्। लूत्वा, लूनः, लूनवान्। वृत्वा, वृतः, वृतवान्। तीर्त्वा, तीर्णः, तीर्णवान्। श्र्युक इति किम्? विदितः। कितीति किम्? श्रयिता, श्रयितुम्, श्रयितव्यम्। केचिदत्र द्विककारनिर्देशेन गकारप्रश्लेषं वर्णयन्ति-भूष्णुरित्येवं यथा स्यात्, सौत्रत्वाच्च निर्देशस्य 'श्र्युकः किति' इत्यत्र चर्त्वस्यासिद्धत्वमनाश्रित्य रोरुत्वं न कृतम्, विसर्जनीयश्च कृत इति। 'ग्लाजिस्थश्च क्स्नुः' (3.2.139) इत्यत्र स्था + आ इत्याकारप्रश्लेषेण 'स्थास्नोः' सिद्धत्वान्न किञ्चिदेतत्। 'उपदेश' इत्येव-तीर्ण इत्यत्रापि यथा स्यात्। इत्त्वे हि कृते रपरत्वे च न स्यात्। मा भूदेवम्, 'इट् सनि वा (7.2.41) इति विकल्पे विहिते 'यस्य विभाषा' (7.2.15) इति निष्ठायां प्रतिषेधो भविष्यति? कस्य पुनः सा विभाषा? ऋतः। यद्येवम्, इत्त्वे हि कृते नायमृकारान्तो भविष्यति? स्थानिवद्भावाद् भविष्यति। अनल्विधौ स्थानिवद्भावः, अल्विधिश्चायम्? तस्मादनुवर्त्तयितव्यमुपदेश इति। तथा च सति-जागरितः, जागरितवानित्यत्रापि प्राप्नोति, तदर्थम् 'एकाचः' इत्यनुवर्त्तयितव्यम्। ऊर्णोतेस्तु-

वाच्य ऊर्णोर्णुवद्भावो यङ्प्रसिद्धिः प्रयोजनम्।
आमश्य प्रतिषेधार्थमेकाचश्चेडुपग्रहात्॥

प्रोर्णुतः। प्रोर्णुतवान्।

अर्थ—'श्रि' अङ्ग से उत्तर व उगन्त एकाच् धातु के अङ्ग से उत्तर कित् प्रत्यय को इट् आगम नहीं होता है।

उक् एक प्रत्याहार है। इसमें उ, ऋ तथा ऌ वर्ण सम्मिलित हैं। 'एकाचः' पद 'उकः' का विशेषण है।

उदा० (क) श्रिञः—

(1) श्रित्वा
श्रि क्त्वा—लशक्वतद्धिते, इट् नहीं हुआ। सु।

(2) श्रितः
श्रि क्त—ककार की इत् संज्ञा, इट् नहीं हुआ,
श्रित सु—विभक्तिकार्य।

(3) श्रितवान्
श्रि क्तवतु—पूर्ववत्।

(ख) उगन्तस्य—

(4) युत्वा
युक्त्वा—इट् निषेध, गुणनिषेध।

(5) युतः
यु क्त सु—पूर्ववत्।

(6) युतवान्
यु क्तवतु—पूर्ववत्।

(7) लूत्वा
लू क्त्वा—इट् निषेध, गुणनिषेध,
लू त्वा—सु।

(8) लूनः
लू क्त—ल्वादिभ्यः,
लू न—सु।

(9) लूनवान्
लू क्तवतु—पूर्ववत्।

(10) वृत्वा
वृ क्त्वा—इट् निषेध, गुणनिषेध,
वृ क्त्वा सु—विभक्तिकार्य।

(11) वृतः
वृ क्त—इट् निषेध, गुणनिषेध,
वृ त सु—विभक्तिकार्य।

(12) वृतवान्
वृ क्तवतु—पूर्ववत्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(13) तीर्त्वा

तॄ क्त्वा—तिर् त्वा—ऋत इद् धातोः, उरण् रपरः,

तीर् त्वा सु—हलि च।

(14) तीर्णः

तॄ क्त—तिर् त—ऋत इद्धातोः, उरण् रपरः,

तीर् न—'हलि च' से दीर्घ, रदाभ्यां निष्ठातो०, षाभ्यां नो०, सु।

(15) तीर्णवान्

तॄ क्तवतु—पूर्ववत्।

श्र्युक०—श्रि अङ्ग तथा उगन्त एकाच् धातु के अङ्ग से उत्तर कित् प्रत्यय को इट् आगम नहीं होता है।

(16) विदितः

विद् इ क्त—इट् का निषेध नहीं हुआ।

किती०—कित् प्रत्यय को ही इट् का निषेध होता है।

(17) श्रयिता

श्रि तृच्—'श्रि' अङ्ग है; परन्तु कित् प्रत्यय नहीं है, इट् निषेध नहीं हुआ,

श्रि इ तृ—गुण, अय्, सु।

(18) श्रयितुम्

श्रि तुमुन्—पूर्ववत्।

(19) श्रयितव्यम्

श्रि तव्यत्—पूर्ववत्।

केचिद०—कुछ विद्वान् यहाँ दो ककारों के निर्देश[1] के द्वारा गकार का प्रश्लेष स्वीकार करते हैं; ताकि 'भूष्णु' आदि में इट् का निषेध हो जाय।

(शङ्का) यहाँ गकार का प्रश्लेष मानने की दशा में गकार के चर्त्व आदेश के असिद्ध होने से 'रु' को उत्व (हशि च) होकर 'श्र्युको क्किति' ऐसा स्वरूप होना चाहिए था।

(समा०) सौत्रकार्य आर्ष होता है। अतः उत्व न करके विसर्जनीय कर दिया है। 'ग्लाजिस्थश्च क्स्नुः' इस स्थल पर 'स्था + आ'—इस प्रकार आकार का प्रश्लेष होने से 'स्थास्नु' शब्द सिद्ध हो जाता है।

उपदेशे०—उपदेश की अवस्था में उगन्त व एकाच् धातु के अङ्ग से उत्तर कित् प्रत्यय को इट् का निषेध होता है।

1. ग् च क् च—क्कौ, क्काविती यस्य सः क्कित्, तस्मिन् क्किति।

(20) तीर्णः—यहाँ इट् का निषेध होता है। 'तिर् क्त' इस दशा में उगन्त अङ्ग नहीं है; परन्तु उपदेश अवस्था में उगन्त अङ्ग होने से इट् नहीं हुआ।

इत्त्व तथा रपर कर देने पर निषेध प्राप्त नहीं होता। 'उपदेशे' का अनुवर्त्तन न हो। कारण कि 'इट् सनि वा' से पाक्षिक इट् का विधान कर देने पर निष्ठासंज्ञक प्रत्यय के विषय में 'यस्य विभाषा' से निषेध हो जाता है। अतः 'उपदेशे' पद का अनुवर्त्तन आवश्यक नहीं है।

कस्य०—यह विकल्प किसका होता है ? ॠकारान्त का। यदि ऐसा है तो ॠकार को इकार आदेश कर देने पर ॠकारान्त धातु ॠकारान्त नहीं होता है।

(समा०) स्थानिवद्भाव से (आदेश करने पर भी) ॠकारान्त मान लिया जायेगा। अल्विधि से अन्यत्र स्थानिवद्भाव होता है। यह अल् विधि है। अतः स्थानिवद्भाव प्रसक्त नहीं होता। तब 'तीर्ण' के लिए 'उपदेशे' की अनुवृत्ति आवश्यक है।

तथा च०—'उपदेशे' पद का अनुवर्त्तन कर लेने पर 'जागरितः' तथा 'जागरितवान्' में इट् का निषेध प्राप्त होने लगेगा। 'जागृ' धातु उपदेश अवस्था में उगन्त है।

(समा०) इसकी निवृत्ति के लिए 'एकाचः' पद का अनुवर्त्तन करना चाहिए। 'जागृ' उगन्त तो है; परन्तु एकाच् नहीं है। अतः इट् का निषेध नहीं होगा।

ऊर्णोते०—(शङ्का) 'एकाचः' पद का अनुवर्त्तन मान लेने पर 'प्रोर्णुतः', 'प्रोर्णुतवान्'—इन स्थलों पर इट् का निषेध नहीं हो पायेगा।

वाच्य०—(समा०) 'ऊर्णु' धातु को नुवद्भाव कहने पर इट् का निषेध हो जाता है। पतञ्जलि जी ने 'ऊर्णुञ्' धातु को नुवत् माना है। उन्होंने इसके तीन प्रयोजन बताये हैं, जिन्हें काशिकाकार ने कारिका में प्रदर्शित किया है—

यङ्०—ऊर्णु धातु अनेकाच् तथा हलादि है। धातोरेकाचो० से इसे यङ् प्राप्त नहीं है। इसे नुवत् कर देने पर यङ् प्रत्यय प्राप्त हो जाता है। यथा—

(21) ऊर्णोनूयते

ऊर्णु यङ्—सन्यङोः, अजादेर्द्वितीयस्य, न न्द्राः संयोगादयः,

ऊ र् नु नु य—रेफ के हट जाने से 'णु' को 'नु' हुआ अथवा 'रषाभ्यां नो णः समा०' से होने वाले णत्व के द्वित्वविधि की दृष्टि में असिद्ध होने से 'नु' को द्वित्व,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ऊ र् र्णो नू य—अभ्यास को गुण व णत्व, दीर्घ, धातुसंज्ञा,
ऊ र् र्णोनूय त्—आत्मनेपद प्रत्यय,
ऊर्णोनूयते—शप्, पररूप, टि को एत्व।

आमश्च०—ऊर्णु धातु इजादि है तथा गुरुमान् भी है। अतः लिट् में इससे 'आम्' प्राप्त है। इसे नुवत् कर देने पर 'आम्' नहीं हो पायेगा; यथा—

(22) प्रोर्णुनाव
ऊर्णु णल्—लिट्, तिप्, परस्मैपदानां णलतुसुस्०,
ऊ र् णु नु अ—पूर्ववत् द्वित्व,
प्र ऊर्णुनाव् अ—अचो ञ्णिति, आव् आदेश, आद्गुणः।

इडुपग्रहात्०—ऊर्णु धातु से 'क्त' करने पर इसके अनेकाच् होने से 'श्युकः किति' से इट्-निषेध की प्रवृत्ति नहीं हो सकेगी; परन्तु इसे नुवत् मान लेने पर इस स्थल पर इट् का निषेध हो जाता है। यथा—

(23) ऊर्णुतः
क्त—इट् नहीं हुआ।

(24) प्रोर्णुतवान्
क्तवतु—पूर्ववत्।

(3291) सनि ग्रहगुहोश्च *12* (2610)

ग्रह, गुह-इत्येतयोरुगन्तानां च सनि प्रत्यये परत इडागमो न भवति। जिघृक्षति। जुघुक्षति। उगन्तानां च-रुरूषति। लुलूषति। 'सनीवन्तर्धभ्रस्जदम्भुश्रिस्वृयूर्णुभरज्ञपिसनाम्' (7.2.49) इति विकल्पविधानात् श्रयतिरत्र नानुकृष्यते। ग्रहेर्नित्यं प्राप्तः। गुहेरूदित्वाद् (7.2.44) विकल्पः।

अर्थ—ग्रह, गुह् तथा उगन्त धातुओं से उत्तर सन् प्रत्यय को इट् आगम नहीं होता है।

उदा० (1) जिघृक्षति
ग्रह् सन्—धातोः कर्मणः समान०, आर्धधातुकं शेषः, 'आर्धधातुकस्येड् वलादेः' से इट् प्राप्त, प्रकृत सूत्र से निषेध,
गृह् स—'रुदविदमुष०' से सन् प्रत्यय कित्, 'ग्रहिज्यावयि०' से सम्प्रसारण, सम्प्रसारणाच्च,
गृद् स—'हो ढः' से ढकार,
गृक् स—'षढोः कः सि' से ककार,
घृक् स—'एकाचो बशो०' से घकार,
घृक् घृक् ष—आदेशप्रत्यययोः, सन्यङोः, पूर्वोऽभ्यासः,
घ घृक् ष—हलादिः शेषः, उरत्, उरण् रपरः, हलादिः शेष,
ज घृक् ष—कुहोश्चुः, अभ्यासे चर्च,
जिघृक् ष ति—सन्यतः, तिप्, शप्, अतो गुणे।

(2) जुघुक्षति
गुह् सन्—पूर्ववत् इट् प्राप्त, 'स्वरतिसूति०' से इट् की विकल्प से प्राप्ति, प्रकृत सूत्र से निषेध,
घुक् स—हो ढः, षढोः कः सि, एकाचो बशो०,
घु घुक् ष—षत्व, द्वित्व, हलादिशेष,
जु घुक्ष शप् तिप्—कुहोश्चुः, अभ्यासे चर्च, धातुसंज्ञा, पूर्ववत् सनः, तिप्, शप्, पररूप।

(3) रुरूषति
रु सन्—इट् का निषेध,
रु रू स—द्वित्व, दीर्घ, धातुसंज्ञा, तिप्, शप् आदि।

(4) लुलूषति
लू सन्—इट् का निषेध,
लु लू ष—द्वित्व, ह्रस्वः, धातुसंज्ञा,
लु लूष शप् तिप्—पूर्ववत्।

सनीवन्त०—'श्रि' धातु का 'सनीवन्तर्धभ्रस्जदम्भुश्रि' में पाठ होने से इससे पर सन् को पाक्षिक इट् होता है। अतः पूर्वसूत्र 'श्युकः किति' से 'श्रि' पद का अनुवर्त्तन नहीं होता है, केवल 'उकः' का अनुवर्त्तन होता है। ग्रह् धातु से उत्तर सन् को नित्य वलादिक इट् प्राप्त है तथा 'गुहू' के ऊदित् होने से 'स्वरतिसूति०' से पाक्षिक इट् प्राप्त है। सर्वत्र प्रकृत सूत्र के द्वारा निषेध होता है।

(3292) कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवो लिटि *13* (2293)

कृ, सृ, भृ, वृ, स्तु, द्रु, स्रु, श्रु-इत्येतेषां लिटि प्रत्यय इडागमो न भवति। कृ-चकृव, चकृम। सृ-ससृव, ससृम। भृ-बभृव, बभृम। वृञ्-ववृव, ववृम। वृङ्-ववृवहे ववृमहे। स्तु-तुष्टुव, तुष्टुम। द्रु-दुद्रुव, दुद्रुम। स्रु-सुस्रुव, सुस्रुम। श्रु-शुश्रुव, शुश्रुम। सिद्धे सत्यारम्भो नियमार्थः (कात०प० 62)-क्रादय एव लिट्यनिटः, ततोऽन्ते सेट इति। बिभिदिव, बिभिदिम। लुलुविव, लुलुविम। अनुदात्तोपदेशानामत्र प्रकृत्याश्रयः प्रतिषेधः, वृञ्वृङोस्तु प्रत्ययाश्रयः, तदुभयस्याप्ययं नियमः। वृञो हि थलि ववर्थेति निपातनाद् व्यवस्था। स्तुद्रुस्रुश्रुवां तु 'ऋतो भारद्वाजस्य' (7.2.63) इत्यस्मादपि नियमाद् य इट् प्राप्नोति सोऽपि नेष्यते-तुष्टोथ, दुद्रोथ सुस्रोथ, शुश्रोथ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

***कृञोऽसुट्कस्येति वक्तव्यम्* (म० भा०)। ससुट्कस्य इडागमो यथा स्यात्। सञ्चस्करिव। सञ्चकरिम। 'ऋतो भारद्वाजस्य' (7.2.63) इत्येतदप्यसुट्कस्यैवेष्यते-सञ्चस्करिथ।**

अर्थ—अङ्गसंज्ञक कृ, सृ, भृ, वृ, स्तु, द्रु, स्रु तथा श्रु—इनसे पर लिट् प्रत्यय को इट् नहीं होता है।

'कृ' के द्वारा डुकृञ् करणे तथा कृञ् हिंसायाम्—इन दोनों का ग्रहण होता है। 'भृ' के द्वारा भृञ् भरणे तथा डुभृञ् धारण-पोषणयोः—इन दोनों का ग्रहण होता है। 'वृ' के द्वारा वृङ् सम्भक्तौ तथा वृञ् वरणे—इन दोनों का ग्रहण होता है।

उदा० (1) चकृव
कृ व—लिट् वस्, परस्मैपदानां णल०,
चकृव—प्राप्त इट् का निषेध, द्वित्व, अभ्यासकार्य।

(2) चकृम
कृ म—शेष पूर्ववत्।

(3) ससृव
सृ वस्—पूर्ववत्।

(4) ससृम
सृ मस्—पूर्ववत्।

(5) बभृव
भृ व—पूर्ववत् 'व' आदेश, इट् निषेध,
बभृव—द्वित्व, उरत्, हलादिः शेषः, अभ्यासे चर्च।

(6) बभृम (पूर्ववत्)।

(7) ववृव
वृ वस्—पूर्ववत्।

(8) ववृम
वृ मस्—पूर्ववत्।

(9) ववृवहे
वृ वहि—पूर्ववत् सभी कार्य, टि को एत्व।

(10) ववृमहे
महिङ्—टित आत्मनेपदानां टेरे।

(11) तुष्टुव
स्तु व—इट्-निषेध,
तुष्टुव—द्वित्व, शर्पूर्वाः खयः, षत्व, ष्टुत्व।

(12) तुष्टुम
स्तु म—पूर्ववत्।

(13) दुद्रुव
द्रु व—इट्-निषेध पूर्ववत्,
दुद्रुव—द्वित्व, हलादिः शेषः।

(14) दुद्रुम
मस्—पूर्ववत्।

(15) सुस्रुव
वस्—'दुद्रुव' की तरह।

(16) सुस्रुम
मस्—पूर्ववत्।

(17) शुश्रुव
श्रु व—इट्-निषेध, द्वित्व,
शुश्रुव—हलादिः शेषः।

(18) शुश्रुम
मस्—पूर्ववत्।

सिद्धे०—सूत्रोक्त कृ, सृ तथा भृ धातु एकाच् तथा अनुदात्तोपदेश हैं। अतः 'एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्' से यहाँ लिट् (आर्धधातुक प्रत्यय) को इट् का निषेध स्वतः सिद्ध है। 'वृ' से उत्तर लिट् को 'श्र्युकः किति' से इट् निषेध है। तब कृ, सृ, भृ तथा श्रु—इन चार धातुओं का ग्रहण व्यर्थ होकर ज्ञापित करता है कि इनका पाठ नियमार्थ है। यह सूत्र दो प्रकार से नियम करता है—

(क) यदि कृ आदि धातुओं से पर आर्धधातुक को इट् का निषेध करना ही हो तो वह केवल लिट् में ही होता है। इस प्रकार नियम करने पर 'कृत'[1], 'भृत'[2] तथा 'परिवृत'[3] इन स्थलों पर इट् प्राप्त होने लगेगा। अतः यह नियम उचित नहीं है।

अनुदात्तो०—(ख) प्रकृति को आश्रय मानकर या प्रत्यय को आश्रय मानकर होने वाला इट् का निषेध कृ आदि आठ धातुओं से ही परे लिट् को इट् का आगम नहीं होता है। भले ही कृ आदि से भिन्न किसी अनिट् धातु से पर लिट् को इट् आगम हो जाय।

सार यह है कि कृ, सृ, भृ तथा वृ—इन चार धातुओं को इट् का निषेध होने पर 'ऋतो भारद्वाजस्य' से पाक्षिक इट् थल् को होता है। इसके वारण के लिए प्रकृत सूत्र में इनका ग्रहण नियमार्थ किया गया है।

1. 'कृते ग्रन्थे' पा० 4.3.116)
2. 'तमधीष्टो भृतो भूतो०' पा० 5.1.79)
3. 'परिवृतो रथः' पा० 4.2.9)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्तु, द्रु, स्नु तथा श्रु—इन धातुओं के ग्रहण के निम्नलिखित दो प्रयोजन हैं—

(क) थल् में भारद्वाज नियम से प्राप्त पाक्षिक इट् का निवारण।

(ख) व, म, से, ध्वे, वहि तथा महिङ् में क्रादि नियम से प्राप्त इट् का निवारण। यथा—

(18) तुष्टोथ
स्तु थल्—इट् निषेध।

(19) दुद्रोथ
द्रु थल्—पूर्ववत्।

(20) सुस्रोथ
स्नु थल्—पूर्ववत्।

(21) शुश्रोथ
श्रु थल्—पूर्ववत्।
इसी प्रकार—

(22) तुष्टुव, (23) तुष्टुम, (24) तुष्टुषे, (25) तुष्टुध्वे, (26) तुष्टुवहे, (27) तुष्टुमहे।

इसी प्रकार शेष धातुओं से भी जानना चाहिए।

नागेशप्रभृति विद्वानों का मत है कि यह नियम उन सभी धातुओं पर लागू होता है, जिनमें इट् का निषेध चाहे 'न' कह कर किया गया हो (एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्) अथवा 'वा' कहकर (स्वरति-सूति०)।[1]

इस विषय में कुछ नव्य व्याख्याकारों का मत है कि यह नियम केवल उन अनिट् धातुओं पर ही लागू होता है, जहाँ 'न' कहकर इट् का निषेध किया गया है।[2] यथा—

भिद् आदि से उत्तर आर्धधातुक प्रत्यय को इट् का स्पष्टतः निषेध (एकाच उपदेशेऽनु०) किया गया है। अतः भिद् से उत्तर प्रत्यय को क्रादि नियम से इट् होना चाहिए। इनके मत में बिभिदिव' रूप बनता है तथा गुप् (ऊदित्) धातु से 'जुगोपिथ' व 'जुगोप्थ' रूप बनते हैं, जबकि नागेश के मत में गुप् धातु से केवल 'जुगोपिथ' ही बनता है।

कृञो०—सुट् रहित कृ धातु से पर आर्धधातुक को ही इट् का निषेध होता है। यथा—

(28) सञ्चस्करिव
सम् कृ व—लिट्, परस्मैपदानां णलतुसुस्०, द्वित्व आदि,
सम् च स् करिव—'अडभ्यासव्यवायेऽपि' से 'सुट्', अनुबन्ध-लोप, इट्, गुण, रपर,
सञ्चस्करिव—अनुस्वार, परसवर्ण।

(29) सञ्चस्करिम (पूर्ववत्)।

ऋतो०—'ऋतो भारद्वाजस्य' से भी सुट् रहित कृ को इट् निषेध होता है।

(3293) श्वीदितो निष्ठायाम् *14* (3039)

श्वयतेरीदितश्च निष्ठायामिडागमो न भवति। शूनः, शूनवान्। ईदितः-'ओ लजी' (धा०पा० 1291) लग्नः, लग्नवान्। 'ओ विजी' (धा०पा० 1290)-उद्विग्नः, उद्विग्नवान्। 'ओदितश्च' (8.2.45) इति निष्ठातकारस्य नकारः। 'दीपी' (धा०पा० 1151)-दीप्तः, दीप्तवान्। डीङस्त्वोदितां मध्ये पाठो ज्ञापको निष्ठायामनिट्त्वस्य। स हि नत्वार्थः, नत्वं च निष्ठातोऽनन्तरस्य विधीयते। उड्डीनः। उड्डीनवान्। 'निष्ठायाम्' इत्यधिकारः 'आर्ध-धातुकस्येड्वलादेः' (7.2.35) इति यावत्।

अर्थ—अङ्गसंज्ञक श्वि धातु तथा ईदित् धातु (= जिसकी दीर्घ ईकार इत् है) से पर निष्ठासंज्ञक प्रत्यय को ईट् का निषेध होता है।

उदा० (1) शूनः
श्वि क्त—निष्ठा, क्तक्तवतू निष्ठा, लशक्वतद्धिते,
श् उ इ त—इट् निषेध, वचिस्वपियजा०, सम्प्रसारणाच्च,
शु न—'ओदितश्च' से नकार, 'हलः' से दीर्घ, सु।

(2) शूनवान्
श्वि क्तवतु—पूर्ववत्।

(3) लग्नः
ओलस्जी → लस्ज् क्त—पूर्ववत्,
लस्ज् न—इट् निषेध, 'ओदितश्च' (8.2.45),
लज् न—सकारलोप, नत्व के असिद्ध होने से 'चोः कुः' (8.2.30) से कुत्व,
लग् न—विभक्तिकार्य।

(4) लग्नवान्
लस्ज् क्तवतु—लग्नवत् सु—विभक्तिकार्य।

(5) उद्विग्नः
ओविजी → विज् क्त—इट् निषेध आदि पूर्ववत्,

1. ल०श० 7.2.13
2. वै०सि०कौ० (तत्त्व०) सूत्र 2293

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उद् विग् न सु—नत्व, कुत्व पूर्ववत्।

(6) उद्विग्नवान्
उद् विज् क्तवतु—पूर्ववत्।

(7) दीप्तः
दीपी → दीप् क्त—इट् का निषेध।

(8) दीप्तवान्
दीप् क्तवतु—पूर्ववत्।

डीङस्त्वो०—डीङ् धातु उदात्तोपदेश है। अतः इससे पर निष्ठा प्रत्यय को वलादिक इट् प्राप्त है। डीङ् धातु का ओदित् धातुओं के मध्य पाठ होने से ज्ञापित होता है कि निष्ठा को नत्व होता है तथा इट् का निषेध होता है।

'निष्ठायाम्' यह अधिकार 'आर्धधातुकस्येड् वलादेः' तक जाता है।

(3294) यस्य विभाषा *15* (3025)

यस्य धातोर्विभाषा क्वचिदिडुक्तस्तस्य निष्ठायां परत इडागमो न भवति। वक्ष्यति–'स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा' (7.2.44) विधूतः, विधूतवान्। गुहू–गूढः, गूढवान्। 'उदितो वा' (7.2.56)–वृधु–वृद्धः, वृद्धवान्। 'तनिपतिदरिद्राणामुपसंख्यानम्' (काशिका 7.2.49) इति पतेर्विभाषितेट्कस्यापि 'द्वितीया श्रितातीतपतित' (2.1.27) इति निपातनादिडागमः।

अर्थ—जिस अङ्गसंज्ञक धातु से इट् का विधान विकल्प से किया गया हो, उससे पर निष्ठासंज्ञक प्रत्यय को इट् का निषेध होता है। आगे 'स्वरतिसूतिसूयति०' से इट् का वैकल्पिक विधान किया जायेगा।

उदा० (1) विधूत
वि धू क्त—पाक्षिक इट् प्राप्त हुआ, इट् का निषेध, सु।

(2) विधूतवान्
वि धू क्तवतु—पूर्ववत्।

(3) गूढः
गुह् क्त—पूर्ववत् इट् का निषेध,
गुद् त—'हो ढः' से ढकार,
गुद् ध—झषस्तथोर्धो०,
गुद् ढ—ढो ढे लोपः,
गूढ सु—ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः।

(4) गूढवान्
गुह् क्तवतु—पूर्ववत्।

(5) वृद्धः
वृध् क्त—'उदितो वा' से विकल्प से इट् प्राप्त, इट् का निषेध,
वृध् ध—झषस्तथो०,
वृद् ध सु—झलां जश् झशि।

(6) वृद्धवान्
वृध् क्तवतु—पूर्ववत्।

तनिपति०—'तनिपतिदरिद्राणामुपसङ्ख्यानम्' से 'पत्' धातु को विकल्प से इट् का आगम होता है, तदपि 'द्वितीया श्रितातीतपतित०' इस निपातन से इट् का आगम होता है।

(7) पतितः
पत् क्त—निष्ठा,
प त् त—अनुबन्धलोप,
प त् इ त—इट्,
पतित सु—विभक्तिकार्य

(3295) आदितश्च *16* (3036)

आदितश्च धातोर्निष्ठायामिडागमो न भवति। ञिमिदा (धा०पा० 1244)–मिन्नः, मिन्नवान्। ञिक्ष्विदा (धा० पा० 1245)–क्ष्विण्णः, क्ष्विण्णवान्। ञिष्विदा (धा० पा० 744)–स्विन्नः, स्विन्नवान्। चकारोऽनुक्तसमुच्चयार्थः। आश्वस्तः। वान्तः। योगविभागकरणं किमर्थम्, 'आदितश्च विभाषा भावादिकर्मणोः' इत्येवं पठितव्यम्, अन्यत्र हि भावादिकर्मभ्यां 'यस्य विभाषा' (7.2.15) इति प्रतिषेधो भविष्यति? ज्ञापनार्थमेतत्। ज्ञापयति–'यदुपाधेर्विभाषा तदुपाधेः प्रतिषेधः' (म०भा०) इति। तेन 'विभाषा गमहनविदविशाम्' (7.2.68) इत्यत्र विदेर्लाभार्थस्य विभाषेति ज्ञानार्थस्य प्रतिषेधो न भवति। विदितः। विदितवान्।

अर्थ—आदित् (= आकार है इत् जिसका) अङ्गसंज्ञक धातु से पर निष्ठासंज्ञक प्रत्यय को इट् का निषेध होता है।

उदा० (1) मिन्नः
ञिमिदा → मिद् क्त—इट् निषेध,
मिन्न सु—रदाभ्यां निष्ठातो०, सु।

(2) मिन्नवान्
मिद् क्तवतु—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(3) क्ष्विण्णः
त्रिक्ष्विदा → क्ष्विद् क्त—पूर्ववत्,
क्ष्विन्न सु—अट्कुप्वाङ्नुम्०।

(4) क्ष्विण्णवान्
क्तवतु—पूर्ववत्।

(5) स्विन्नः
ञिष्विदा → स्विद्—धात्वादेः षः सः, शेष पूर्ववत्।

(6) स्विन्नवान्
क्तवतु—पूर्ववत्।

चकारो०—चकार से अनुक्त समुच्चय का ग्रहण होता है। तब आदित् से भिन्न धातु से उत्तर प्रत्यय को भी इट् का निषेध होता है।

(7) आश्वस्तः
आ श्वस् क्त—इट् निषेध, सु।

(8) वान्तः
वम् क्त—इट् निषेध,
वाम् त—'अनुनासिकस्य क्विझलो०' से दीर्घ,
वान् त सु—अनुस्वार, परसवर्ण।

योगविभा०—(शङ्का) योगविभाग की क्या आवश्यकता है? 'आदितश्च विभाषा भावादिकर्मणोः' इस प्रकार पाठ करना चाहिए। अन्यत्र भावकर्म से पर 'यस्य विभाषा' से निषेध हो जायेगा।

ज्ञापना०—(समा०) ज्ञापन के लिए योगविभाग किया गया है कि जो उपाधि अर्थात् विशेषण का विकल्प है, वह उपाधि का निषेध है। अतः 'विभाषा गमहनविदविशाम्' से लाभार्थक विद् धातु से उत्तर को वैकल्पिक इट् तथा ज्ञानार्थक विद् से उत्तर को निषेध नहीं होता है।

(9) विदितः
विद् क्त—इट् हुआ है।
(10) विदितवान्
विद् क्तवतु—पूर्ववत्।

(3296) विभाषा भावादिकर्मणोः *17* (3054)

भावे आदिकर्मणि च आदितो धातोर्विभाषा निष्ठाया-मिडागमो न भवति। मिन्नमनेन, मेदितमनेन। प्रमिन्नः, प्रमेदितः। सौनागाः कर्मणि निष्ठायां शकेरिटमिच्छन्ति विकल्पेन। शकितो घटः कर्तुम्। शक्तो घटः कर्तुम्। भावे न भवत्येव-शक्तमनेन। अस्यतेर्भावे-असितमनेन। आदिकर्मणि च न भवत्येव-अस्तः काण्डः।

अर्थ—भाव तथा आदिकर्म में वर्त्तमान आदित् धातु के अङ्ग से उत्तर निष्ठासंज्ञक प्रत्यय को विकल्प से इट् होता है।

उदा० (1) भिन्नम् अनेन
भिद् क्त—इट् निषेध, रदाभ्यां निष्ठातो०।

(2) भेदितम् अनेन
भिद् इ क्त—पाक्षिक इट्।

(3) प्रमिन्नः
पूर्ववत् इट् निषेध।

(4) प्रमेदितः
प्रमिद् क्त—पक्ष में इट्।

सौनागाः—सौनाग लोग कर्म में वर्त्तमान निष्ठा के परे रहते शक् धातु से इट्-विकल्प स्वीकार करते हैं।

(5) शकितो घटः कर्तुम्
इट् हुआ।

(6) शक्तो घटः कर्तुम्
इट् नहीं हुआ।

भावे०—भावे में इट् नहीं होता है। यथा—
शक्तम् अनेन।
अस् धातु से भाव में इट् होता है। यथा—
असितम् अनेन।
आदि०—आदिकर्म में इट् नहीं होता है। यथा—
अस्तः काण्डः।

(3297) क्षुब्धस्वान्तध्वान्तलग्नम्लिष्टविरिब्ध-फाण्टबाढानि मन्थमनस्तमःसक्ताविस्पष्ट-स्वरानायासभृशेषु *18* (3058)

क्षुब्ध, स्वान्त, ध्वान्त, लग्न, म्लिष्ट, विरिब्ध, फाण्ट, बाढ-इत्येते निपात्यन्ते यथासंख्यं मन्थ, मनः, तमः, सक्त, अविस्पष्ट, स्वर, अनायास, भृश-इत्येतेष्वर्थेषु। क्षुब्ध इति भवति मन्थाभिधानं चेत्। क्षुब्धो मन्थः। क्षुभितमन्यत्। क्षुभितं मन्थेन, क्षुब्धा गिरिनदी-इत्येवमाद्युपमानाद्भविष्यति। स्वान्तमिति मनोऽभिधानं चेत्। स्वनितमन्यत्, स्वनितो मृदङ्गः। स्वनितं मनसा। ध्वान्तमिति भवति तमो-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ऽभिधानं चेत्। ध्वनितमन्यत्। ध्वनितो मृदङ्गः। ध्वनितं तमसा। लग्नमिति भवति सक्तं चेत्। लगितमन्यत्। म्लिष्टमिति भवति अविस्पष्टं चेत्। म्लेच्छितमन्यत्। इत्त्वमप्येकारस्य निपातनादेव। विरिब्धमिति स्वरश्चेत्। विरेभितमन्यत्। 'रेभृ शब्दे' (धा०पा० 385) इत्यस्यैतन्निपातनम्। अन्ये तु विरिभितमन्यदिति पठन्ति। रभिं सौत्रं धातुं पठन्ति, ते विरिभितमिति प्रत्युदाहरन्ति। फाण्टमिति भवत्यनायासश्चेत्। फणितमन्यत्। यदशृतमपिष्टं च कषायमुदकसम्पर्कमात्राद् विभक्तरसमीषदुष्णं तत्फाण्टम्। तदल्पप्रयत्नसाध्यत्वादनायासेन लक्ष्यते। बाढमिति भवति भृशं चेत्। बाहितमन्यत्। 'बाह प्रयत्ने' (धा०पा० 645) इत्यस्य धातोरेतन्निपातनम्। अतिशयश्च भृशमिहोच्यते।

अर्थ—मन्थ, मनस्, तमस्, सक्त, अविस्पष्ट, स्वर, अनायास तथा भृश—इन अर्थों में यथासंख्य क्षुब्ध, स्वान्त, ध्वान्त, लग्न, म्लिष्ट, विरिब्ध, फाण्ट तथा बाढ—ये शब्द निपातनसिद्ध हैं। सर्वत्र इट् का अभाव है।

उदा० (1) क्षुब्धः (मन्थः)
क्षुभ् क्त—इट् का निषेध, झषस्तथो०,
क्षुब् ध—झलां जश् झशि, सु।

(2) अन्यत्र इट होकर—क्षुभितम्।

(3) स्वान्तः
स्वन् क्त सु—'अनुनासिकस्य क्विझलोः' से दीर्घ।

(4) स्वनितम्—अन्यत्र इट् होता है।

(5) ध्वान्तम् (तमः)
ध्वन् क्त—पूर्ववत् दीर्घ।

(6) ध्वनितम्—अन्यत्र इट् होता है।

इसी प्रकार—ध्वनितो मृदङ्गः। ध्वनितं तमसा।

(7) लग्नं (सक्तम्)।
लग् क्त—नत्व का निपातन।

(8) लगितम्—अन्यत्र इट् होता है।

(9) म्लिष्टम् (अविस्पष्टम्)।
म्लेच्छ् क्त—व्रश्चभ्रस्ज० से षकार,
म्लिष् त → निपातन से इकार,
म्लिष् ट सु—ष्टुना ष्टुः, विभक्तिकार्य।

(10) म्लेच्छितम्—अन्यत्र इट् होता है।

(11) विरिब्धम्
विरिभ् त—निपातन से ह्रस्व,
विरिभ् ध—झषस्तथो०, झलां जश् झशि।

(12) विरेभितम् अन्यत्र इट् होता है।

रेभृ०—रेभृ शब्दे धातु से यह निपातित है। अन्य विद्वान् तो यहाँ 'विरिभितम्' पाठ स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार 'रभि' सौत्र धातु है। वे 'विरिभितम्' प्रत्युदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

(13) फाण्टम्
फण् क्त—अनुनासिकस्य० से दीर्घ,
फाण् ट सु—ष्टुत्व।

(14) फाणितम्—अन्यत्र इट् होता है।

(15) बाढम्
बाह् त → बाढ् त—हो ढः, झषस्तथो०,
बाढ् ढ सु—ढो ढे लोपः।

(16) बाहितम्—अन्यत्र इट् होता है।

(3298) धृषिशसी वैयात्ये *19* (3059)

वियातस्य भावो वैयात्यम् = प्रागल्भ्यम्, अविनीतता। तत्र धृष, शस–इत्येतयोर्निष्ठायामिडागमो न भवति। धृष्टोऽम्। विशस्तोऽयम्। धृषेः 'आदितश्च' (7.2.16) इति प्रतिषेधः सिद्ध एव, शसेरपि 'उदितो वा' (7.2.56); 'यस्य विभाषा' (7.2.15) इति? नियमार्थं वचनम्–धृषिशस्योर्वैयात्ये एवेड् न भवति। भावादिकर्मणोरपि वैयात्ये धृषिर्नास्ति। धृष्टः। विशस्तः। वैयात्य इति किम्? धर्षितः। विशसितः।

अर्थ—अविनय अर्थ में वर्त्तमान धृष् तथा शस् धातुओं से उत्तर निष्ठासंज्ञक प्रत्यय को इट् का निषेध होता है।

उदा० (1) धृष्टः
धृष् क्त—ष्टुना ष्टुः, सु।

(2) विशस्तः
वि शस् त सु—पूर्ववत्।

धृषेः—'ञिधृषा' इस प्रकार आदित् होने से 'आदितश्च' से इट् का निषेध सिद्ध ही था। शस् धातु से भी 'उदितो वा' तथा 'यस्य विभाषा' से इट् का निषेध सिद्ध है। अतः यह विधान नियमार्थ है। धृष् तथा शस् धातुओं से उत्तर आर्धधातुक निष्ठा को अविनय अर्थ में ही इट् का निषेध होता है। भाव तथा अदिकर्म में भी अविनय अर्थ में धृष् नहीं होता है। यथा—धृष्टः, विशस्तः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वैयात्य०—अविनय अर्थ में ही इट् का निषेध होता है।

(3) धर्षितः
इट् हुआ है।

(4) विशसितः
इट् हुआ है।

(3299) दृढः स्थूलबलयोः *20* (3060)

'दृढः' इति निपात्यते, स्थूले बलवति चार्थे। दृढः स्थूलः। दृढो बलवान्। किमत्र निपात्यते? दृंहेः क्तप्रत्यये इडाभावः, हकारनकारयोर्लोपः, परस्य ढत्वम्। अथ दृहिः प्रकृत्यन्तरमस्ति? तत्राप्येतदेव सर्वं नलोपवर्जनम्; नकारस्याभावात्। हलोपनिपातनं पूर्वत्रासिद्धत्वनिवृत्त्यर्थम्। ढलोपे हि सति तस्य पूर्वत्रासिद्धत्वाद् द्रढिमा, द्रढीयान्, द्रढीयतीत्यत्र-'र ऋतो हलादेर्लघोः' (6.2.161) इति रेफो न स्यात्, इह च परिद्रढय्य गत इति 'ल्यपि लघुपूर्वात्' (6.4.56) इति णेरयादेशो न स्यात्, इह च परिदृढस्यापत्यं पारिदृढी कन्येति गुरूपोत्तमलक्षणः (4.1.78) ष्यङ् च प्रसज्येत। स्थूलबलयोरिति किम्? दृंहितम्, दृहितम्।

अर्थ—स्थूल तथा बलवान् अर्थों में 'दृढ' शब्द निपातनसिद्ध है।

उदा० (1) दृढः
दृंह् क्त—निपातन से इट् निषेध,
दृह् त—निपातन से अनुस्वारलोप,
दृ त—निपातन से हकारलोप,
दृढ सु—निपातन से ढकार।

किमत्र०—यहाँ क्या-क्या निपातन से होता है? इट् का अभाव, हकार व नकार का लोप तथा तकार को ढकार—ये कार्य निपातन से होते हैं। यहाँ दृह् धातु से भी 'दृढ' शब्द निष्पन्न होता है। इस दशा में नुम् आगम के न होने से अनुस्वारलोप को छोड़कर शेष सभी कार्य होते हैं।

हलोप०—'पूर्वत्राऽसिद्धम्' से प्राप्त असिद्धभाव की निवृत्ति के लिए हकारलोप का निपातन किया जाता है। ढकार का लोप होने पर उसके 'पूर्वत्राऽसिद्धम्' से असिद्ध होने से निम्नलिखित स्थलों पर 'र ऋतो हलादेर्लघोः' की प्रवृत्ति नहीं होती है—

(2) द्रढिमा
दृढ इमनिच्—वर्ण दृढादिभ्यः०, रेफादेश, 'तुरिष्ठेमेयस्सु' सु।

(3) द्रढीयान्
दृढ ईयसुन्—रेफादेश, यस्येति च।

(4) द्रढीयति
दृढम् आचष्टे—'तत्करोति तदाचष्टे' से णिच्, णाविष्ठवत् कार्यं प्रातिपदिकस्य,

(5) परिद्रढय्य
दृढम् आचष्टे—णिच् हुआ,
द्रढि—रेफ, धातु संज्ञा,
परिद्रढि क्त्वा—प्रादिसमास, समासेऽनञ्पूर्वे०,
परि द्रढय् ल्यप्—ढकारलोप के असिद्ध होने पर 'ल्यपि लघुपूर्वात्' की प्राप्ति नहीं होती है।

(6) पारिदृढी कन्या
परिदृढस्याऽपत्यम् स्त्री—यहाँ ढकारलोप के असिद्ध होने से गुरूपोत्तमलक्षण ष्यङ् प्राप्त होता है।

स्थूल०—स्थूल तथा बलवान् अर्थों में ही सूत्रोक्त निपातन होता है।

(7) दृंहितम्
इट् हुआ।

(8) दृहितम्
इट् हुआ।

(3300) प्रभौ परिवृढः *21* (3061)

'परिवृढः' इति निपात्यते प्रभुश्चेद्भवति। परिवृढः कुटुम्बी। पूर्वेण तुल्यमेतत्। वृंहेर्निपातनम्। वृहिश्च यदि प्रकृत्यन्तरमस्ति, तस्यापि तदेव सर्वम्। हलोपनिपातनस्य च तदेव प्रयोजनम्। परिव्रढयति। पव्रिढय्य गतः। पारिवृढी कन्येति। परिवृढमाचष्टे इति विगृह्य वृढशब्दादेव णिजुत्पद्यते। संग्रामयतेरेव सोपसर्गाण्णिजुत्पत्तिरिष्यते नान्यस्मादिति। तथा सति परिव्रढयतीति 'तिङ्ङतिङः' (8.2.28) इति निघातो भवति। परिव्रढय्येत्यत्र परिशब्दस्य क्त्वाप्रत्ययान्तेन समासे सति ल्यबादेशः सिद्धो भवति। प्रभाविति किम्? परिवृंहितम्, परिवृहितम्।

अर्थ—स्वामी अर्थ में निष्ठान्त परिवृढ शब्द निपातनसिद्ध है।

उदा० (1) परिवृढः
परिवृह् क्त—निपातन से इट् अभाव, हकार व नकार का लोप तथा तकार को ढकार,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परिवृढ सु—विभक्तिकार्य।

वृहिश्च०—यदि वृह् धातु से 'परिवृढ' शब्द माना जाय तो नकारलोप को छोड़कर शेष सभी कार्य पूर्ववत् होते हैं। हकारलोप के निपातन का प्रयोजन पूर्ववत् है। यथा—

परिव्रढयति, परिव्रढय्य, पारिवृढी कन्या।

परिवृ०—परिवृढम् आचष्टे—इस प्रकार विग्रह करके वृढ शब्द से णिच् उत्पन्न होता है। 'सङ्ग्रामयति' केवल इसी उपसर्ग-विशिष्ट से णिच् प्रत्यय इष्ट है, अन्य किसी भी उपसर्गविशिष्ट से नहीं। ऐसा होने पर 'परिव्रढयति' इस स्थल पर 'तिङ्ङतिङः' से निघात होता है। 'परिव्रढय्य' यहाँ परि शब्द का क्त्वा प्रत्ययान्त के साथ समास करने पर ल्यप् आदेश सिद्ध होता है।

प्रभावि०—स्वामी अर्थ में यह निपातन है।

(2) परिवृंहितम्
परि वृंह् इ क्त—इट् हुआ।

(3) परिवृहितम्
परि वृह् इट् क्त—इट् हुआ।

(3301) कृच्छ्रगहनयोः कषः *22* (3062)

कृच्छ्र, गहन-इत्येतयोरर्थयोः कषेर्धातोर्निष्ठायामिडागमो न भवति। कष्टोऽग्निः। कष्टं व्याकरणम्। ततोऽपि कष्टतराणि समानि। कृच्छ्रम्=दुःखम्, तत्कारणमप्यन्नादिकं कृच्छ्रमित्युच्यते। गहने-कष्टानि वनानि। कष्टाः पर्वताः। कृच्छ्रगहनयोरिति किम्? कषितं सुवर्णम्।

अर्थ—दुःख तथा गम्भीर अर्थों में कष् धातु से उत्तर निष्ठा को इट् नहीं होता है।

(1) कष्टः
कष् क्त—ष्टुना ष्टुः, सु।
इसी प्रकार—कष्टं व्याकरणम्। कष्टानि समानि। कष्टानि वनानि। कष्टाः पर्वताः।

कृच्छ्र०—दुःख तथा गम्भीर अर्थों में ही इट्-निषेध होता है।

(2) कषितम्
इट् हुआ।

(3302) घुषिरविशब्दने *23* (3063)

घुषेर्धातोरविशब्दनेऽर्थे निष्ठायामिडागमो न भवति। घुष्टा रज्जुः। घुष्टौ पादौ। अविशब्दन इति किम्? अवघुषितं वाक्यमाह। विशब्दनम्=प्रतिज्ञानम्। 'घुषिर शब्दार्थे' (धा०पा० 653) इति भूवादिषु पठ्यते, 'घुषिर विशब्दने (धा०पा० 1727) इति चुरादिषु; तयोरिह सामान्येन ग्रहणम्। विशब्दनप्रतिषेधश्च ज्ञापकः-'चुरादि-णिज्विशब्दनार्थस्यानित्यः' इति। तेनायमपि प्रयोग उपपन्नो भवति-'महीपालवचः श्रुत्वा जुघुषुः पुष्पमाणवाः' (म० भा०) इति। स्वाभिप्रायं शब्देनाविष्कृतवन्त इत्यर्थः।

अर्थ—अविशब्दन अर्थ में घुष् धातु से उत्तर निष्ठासंज्ञक प्रत्यय को इट् का निषेध होता है।

उदा० (1) घुष्टा रज्जुः
घुष् क्त—इट्-निषेध, टाप्, सु।
इसी प्रकार—घुष्टौ पादौ।

विशब्द०—घुषिर शब्दार्थे का भूवादि में पाठ है तथा घुषिर विशब्दने का चुरादि में पाठ है। उन दोनों का यहाँ ग्रहण है। विशब्दन का निषेध होने से ज्ञापित होता है कि चुरादि णिच् विशब्दनार्थ का अनित्य है। इससे यह प्रयोग भी उपपन्न होता है।

महीपालवचः श्रुत्वा जुघुषुः पुष्पमाणवाः।

अपने अभिप्राय को शब्द के द्वारा आविष्कृत किया—यह अर्थ है।

(3303) अर्देः संनिविभ्यः *24* (3064)

सम्, नि, वि-इत्येतेभ्य उत्तरस्यार्देर्निष्ठायामिडागमो न भवति। समर्णः। न्यर्णः। व्यर्णः। अर्देरिति किम्? समेधितः। संनिविभ्य इति किम्? अर्दितः।

अर्थ—सम्, नि तथा वि उपसर्गपूर्वक अर्द् धातु से उत्तर निष्ठा प्रत्यय को इट् का निषेध होता है।

उदा० (1) समर्णः
सम् अर्द् क्त—रदाभ्यां निष्ठातो०,
सम् अर्न् न—षाभ्यां नो णः०,
समर्ण् न—ष्टुना ष्टुः,
समर्ण सु—हलो यमां यमि लोपः।

(2) न्यर्णः
नि अर्द् क्त—सभी कार्य पूर्ववत्।

(3) व्यर्णः
वि अर्द् क्त—पूर्ववत्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्देः०—अर्द् धातु से उत्तर निष्ठा को इट् का निषेध होता है।

(4) सम्मेधितः
सम् एध् इ क्त—इट् हुआ,
सम् एधित—सु हुआ।

सन्निवि०—सम्, नि तथा विपूर्वक अर्द् धातु से उत्तर निष्ठा को इट् का निषेध होता है।

(5) अर्दितः
अर्द् क्त—इट् हो गया है।

(3304) अभेश्चाविदूर्ये *25* (3065)

अभिशब्दादुत्तरस्यार्देराविदूर्येऽर्थे निष्ठायामिडागमो न भवति। अभ्यर्णा सेना। अभ्यर्णा शरत्। आविदूर्य इति किम्? अभ्यर्दितो वृषलः। शीतेन पीडित इत्यर्थः। विदूरम्=विप्रकृष्टम्, ततोऽन्यदविदूरम्, तस्य भाव आविदूर्यम्। एतस्मादेव निपातनात् 'न नञ्पूर्वात्तत्पुरुषात्' (5.1.121) इत्युत्तरस्य भावप्रत्ययस्य प्रतिषेधो न भवति।

अर्थ—सन्निकट अर्थ में वर्त्तमान अभिपूर्वक अर्द् धातु से पर निष्ठासंज्ञक प्रत्यय को इट् आगम नहीं होता है।

उदा० (1) अभ्यर्णा सेना
अभि अर्द् क्त—इट् नहीं हुआ,
अभ्यर्ण टाप् सु—इको यणचि।

(2) अभ्यर्णा शरत् (पूर्ववत्)।

आविदूर्य०—**सन्निकट** अर्थ में ही अर्द् से उत्तर निष्ठा को इट् नहीं होता है।

(3) अभ्यर्दितो वृषलः
अभि अर्द् इ क्त—इट् हुआ।

विदूर०—विदूर=दूर। उससे भिन्न को 'अविदूर' कहते हैं। अविदूर का भाव 'आविदूर्य' कहलाता है। इस निपातन से ही 'न नञ्पूर्वात्तत्पुरुषात्' से उत्तर भावप्रत्यय का निषेध नहीं होता है।

(3305) णेरध्ययने वृत्तम् *26* (3066)

ण्यन्तस्य वृत्तेर्निष्ठायामध्ययनार्थे वृत्तमितीडभावो णिलुक्च निपात्यते। वृत्तो गुणो देवदत्तेन। वृत्तं पारायणं देवदत्तेन। अध्ययन इति किम्? वर्त्तितमन्यत्। वृतिरयमकर्मकः, स ण्यर्थे वर्त्तमानः सकर्मको भवति। 'तेन निर्वृत्तम्' इति हि प्रकृतेरेव कर्मणि क्तप्रत्ययो दृश्यते। तद्वदिहापि ण्यर्थवृत्तेरेव च वृतेः वृत्तो गुणो देवदत्तेनेति भविष्यतीति निपातनमनर्थकम्? तत्क्रियते-यदापि णिचैव ण्यर्थोऽभिधीयते तदा वर्त्तितमित्यध्ययने मा भूदिति केचित्। अपरे तु-वर्त्तितो गुणो देवदत्तेन इत्यपीच्छन्ति।

अर्थ—अध्ययन अर्थ में ण्यन्त वृत् धातु से निष्ठा में 'वृत्त' शब्द निपातनसिद्ध है।

उदा० (1) वृत्तो गुणो देवदत्तेन
वृत् णिच् क्त—निपातन से इट् का निषेध, णिलोप,
वृत्त सु—विभक्तिकार्य।
इसी प्रकार—वृत्तं पारायणं देवदत्तेन।

अध्ययन०—**अध्ययन** अर्थ में ही 'वृत्त' शब्द निपातनसिद्ध है।

(2) वर्त्तितम्
वृत् इट् क्त—गुण, सु।

वृत्ति०—वृत् धातु अकर्मक है। णिच् प्रत्ययान्त वृत् धातु सकर्मक है। तब 'तेन निर्वृत्तम्' से प्रकृति से ही कर्म में क्त प्रत्यय दिखाई पड़ता है। इसी प्रकार ण्यर्थ में वर्त्तमान 'वृत्' को होता है। यथा—वृत्तो गुणो देवदत्तेन। अतः निपातन की क्या आवश्यकता है? जब णिच् द्वारा ही णिजर्थ कहा जाता है, तब 'वर्त्तितम्' यह प्रयोग अध्ययन अर्थ में न हो—इसके लिए है।

(3306) वा दान्तशान्तपूर्णदस्तस्पष्टच्छन्नज्ञप्ताः *27* (3068)

'णेः' इत्यनुवर्त्तते। दम्, शम्, पुरी, दस्, स्पश्, छद्, ज्ञप-इत्येतेषां ण्यन्तानां धातूनां वा अनिट्त्वं निपात्यते। दान्तः, दमितः। शान्तः, शमितः। पूर्णः, पूरितः। दस्तः, दासितः। स्पष्टः, स्पाशितः। छन्नः, छादितः। ज्ञप्तः, ज्ञपितः। इट्प्रतिषेधो णिलुक्च निपात्यते। ज्ञपेस्तु 'भरज्ञपिसनाम्' (7.2.49) इति विकल्पविधानाद् 'यस्य विभाषा' (7.2.15) इति नित्ये प्रतिषेधे प्राप्ते विकल्पार्थं निपातनम्।

अर्थ—'णेः' का अनुवर्त्तन है। दान्त, शान्त, पूर्ण, दस्त, स्पष्ट, छन्न तथा ज्ञप्त—ये निपातनसिद्ध हैं।

उदा० (1) दान्तः
दम् णिच् क्त—इट् का निषेध, अत उपधायाः, णि का लुक्, मितां ह्रस्वः,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दाम् त सु—अनुनासिकस्य क्वि०, अनुस्वार, अनुस्वारस्य०,

(2) दमितः
पक्ष में इट् हुआ, 'जनिजृष्क्नसु०' से मित् संज्ञा,
दाम् णिच् इट् त—मितां ह्रस्वः, सु।

(3) शान्तः
शम् णिच् क्त—'दान्तः' की तरह।

(4) शमितः
'दमितः' की तरह।

(5) पूर्णः
पूर् णि क्त—निपातन से णिच् का लुक्,
पूर्ण सु—रदाभ्यां निष्ठातो०, षाभ्यां नो णः०।

(6) पूरितः
इट् हुआ।

(7) दस्तः
दस् णिच् क्त—निपातन से णि का लोप।

(8) दासितः
अत उपधायाः से वृद्धि, इट्।

(9) स्पष्टः
स्पश् णिच् क्त—निपातन से णिलोप,
स्पष् त—व्रश्चभ्रस्ज०,
स्पष्ट सु—ष्टुना ष्टुः।

(10) स्पाशितः
'दासितः' की तरह।

(11) छन्नः
छद् णिच् क्त—निपातन से णिलुक्,
छद् त सु—रदाभ्यां निष्ठा०।

(12) छादितः
'दासितः' की तरह।

(13) ज्ञप्तः
ज्ञप् णिच् क्त—णि का लुक्।

(14) ज्ञपितः
ज्ञप् णिच् क्त—अत उपधायाः से वृद्धि,
ज्ञाप् इ त—'मारणतोषणनिशामनेषु ज्ञा मिच्च' से घटादि, घटादयो मितः, मितां ह्रस्वः,
ज्ञपित—सु।

इट्०—यहाँ इट् का निषेध तथा णि का लुक् निपातन से होते हैं। न्यासकार के अनुसार चकार के द्वारा कहीं-कहीं उपधा को ह्रस्वादेश निपातन से होता है।[1] ज्ञप् धातु से 'भरज्ञपिसनाम्' से पाक्षिक इट् प्राप्त, 'यस्य विभाषा' से नित्य निषेध हुआ, तब विकल्प के लिए विधान किया गया है।

(3307) रुष्यमत्वरसंघुषास्वनाम् *28* (3069)

'वा' इति वर्तते। रुषि, अम, त्वर, सङ्घुष, आस्वन–इत्येतेषां निष्ठायां वा इडागमो न भवति। रुष्ट, रुषितः। 'तीषसहलुभरुषरिषः' (4.2.102) इति विकल्पविधानाद् 'यस्य विभाषा' (7.2.15) इति प्रतिषेधे प्राप्ते विकल्पार्थं वचनम्। अम्–अभ्यान्तः, अभ्यमितः। त्वर–तूर्णः, त्वरितः। 'आदितश्च' (7.2.16) इति प्रतिषेधे प्राप्ते वचनम्। सङ्घुष–सङ्घुष्टौ पादौ, सङ्घुषितौ पादौ। सङ्घुष्टं वाक्यमाह, सङ्घुषितं वाक्यमाह। सङ्घुष्टौ दम्यौ, सङ्घुषितौ दम्यौ। सम्पूर्वस्य घुषेरविशब्दनेऽपि परत्वादयमेव विकल्पो भवति। आस्वन्–आस्वान्तो देवदत्तः, आस्वनितो देवदत्तः। आस्वान्तं मनः, आस्वनितं मनः। आङ्पूर्वस्य स्वनेर्मनोभिधानेऽपि परत्वादयं विकल्पः 'क्षुब्धस्वान्त' (7.2.18) इति निपातनं बाधते।

अर्थ—'वा' का अनुवर्त्तन है। रुष्, अम्, त्वर्, सम् पूर्वक घुष् तथा आपूर्वक स्वन्—इन अङ्गों से उत्तर निष्ठासंज्ञक प्रत्यय को विकल्प से इट् आगम नहीं होता है।

उदा० (1) रुष्टः
रुष् क्त—ष्टुना ष्टुः।

(2) रुषितः
पक्ष में इट्।

तीषसहलुभ०—'तीषसहलुभ०' से पाक्षिक इट् का 'यस्य विभाषा' से नित्य निषेध प्राप्त होने पर विकल्प के लिए यह विधान है।

(3) अभ्यान्तः
अभि अम् क्त—'अनुनासिकस्य०' से दीर्घ,
अभ्यां त—इको यणचि, अनुस्वार, परसवर्ण।

(4) अभ्यमितः
पक्ष में इट् हुआ है।

1. न्यास 7.2.27 चकारात् क्वचिदुपधाह्रस्वत्वमपि निपात्यते।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(5) तूर्णः
त्वर् क्त—'ज्वरत्वरस्रव्यविम०' से ऊठ्
त् ऊठ् र् त—'रदाभ्यां निष्ठा,
तूर् न—रषाभ्यां नो णः समा०।

(6) त्वरितः
पक्ष में इट् होकर।

आदित०—'आदितश्च' से निषेध प्राप्त होने पर विकल्प कहा गया है।

(7) सङ्घुष्टः
सम् घुष् क्त—ष्टुना ष्टुः, अनुस्वार, परसवर्ण।

(8) सङ्घुषितम्
सम् घुष् त—पक्ष में इट्।

सम्पूर्व०—सम् पूर्वक घुष् से अविशब्दन अर्थ में भी पर होने से यह विकल्प होता है।

(9) आस्वान्तः
आ स्वन् क्त—इट् निषेध, दीर्घ।

(10) आस्वनितः
पक्ष में इट् हुआ।

आङ्पूर्व०—आङ्पूर्वक स्वन् से 'मनस्' अर्थ में भी पर होने से यह विकल्प होता है। यह विकल्प 'क्षुब्धस्वान्त०' का बाध करता है।

(3308) हृषेर्लोमसु *29* (3070)

लोमसु वर्त्तमानस्य हृषेर्निष्ठायां वा इडागमो न भवति। हृष्टानि लोमानि, हृषितानि लोमानि। हृष्टं लोमभिः, हृषितं लोमभिः। हृष्टाः केशाः, हृषिताः केशाः। हृष्टं कैशैः, हृषितं केशैः। 'हृषु अलीके' (धा०पा० 709) इत्युदित्त्वान्निष्ठायामनिट्, 'हृष तुष्टौ' (धा०पा० 1230) इत्ययं सेट्; तयोरुभयोरिह ग्रहणमित्युभयत्रविभाषेयम्। लोमानि मूर्धजानि, अङ्गजानि च सामान्येन गृह्यन्ते; यथा–'लोमनखं स्पृष्ट्वा शौचं कर्त्तव्यम्' इति। तद्विषये च हर्षे वर्त्तमानो लोमसु वर्त्तत इत्युच्यते। लोमस्विति किम्? हृष्टो देवदत्त इत्यलीकार्थस्य, हृषितो देवदत्त इति तुष्ट्यर्थस्य। *विस्मितप्रतिघातयोश्चेति वक्तव्यम्*। हृष्टो देवदत्तः, हृषितो देवदत्तः। विस्मित इत्यर्थः। हृष्टा दन्ताः, हृषिता दन्ताः। प्रतिहता इत्यर्थः।

अर्थ—लोम अर्थ में वर्त्तमान हृष् धातु से पर निष्ठा प्रत्यय को विकल्प से इट् नहीं होता है।

उदा० (1) हृष्टानि लोमानि
हृष् क्त—ष्टुत्व, जस्।

(2) हृषितानि लोमानि
इट् हुआ है। शेष पूर्ववत्। 'गत्यर्थाकर्मक०' से 'क्त' हुआ है।

(3) हृष्टं लोमभिः
इट्-निषेध।

(4) हृषितं लोमभिः
इट् हुआ है। 'नपुंसके भावे क्तः' से भाव में प्रत्यय है। यहाँ 'लोम' तथा 'केश' दोनों का ग्रहण है। यथा—

हृष्टाः केशाः, हृषिताः केशाः, हृष्टं केशैः, हृषितं केशैः।

हृषु०—हृषु अलीके यहाँ 'उदितो वा' से निष्ठा में विकल्प से इट् प्राप्त था। हृष तुष्टौ—यह धातु सेट् है। इन दोनों से पाक्षिक इट् का विधान है। अतः यह प्राप्ताप्राप्त विभाषा है।

लोम के द्वारा शिर पर होने वाले केश आदि तथा अङ्गों पर होने वाले रोम आदि—दोनों का ग्रहण होता है। यथा—लोमनखं स्पृष्ट्वा शौचं कर्त्तव्यम्।

लोमस्वि०—लोम अर्थ में वर्त्तमान हृष् धातु से उत्तर निष्ठा को विकल्प से इट् नहीं होता है।

हृष्टो देवदत्त, हृषितो देवदत्तः—यहाँ 'लोम' अर्थ न होने से विकल्प नहीं हुआ।

विस्मित०—विस्मित तथा प्रतिघात अर्थों में निष्ठा को पाक्षिक इट् होता है।

(3) हृष्टो देवदत्तः (= देवदत्त विस्मित है)।
(4) हृषितो देवदत्तः (= देवदत्त विस्मित है)।

इसी प्रकार हृष्टाः दन्ताः, हृषिताः दन्ताः (प्रतिघात अर्थ)।

(3309) अपचितश्च *30* (3071)

'अपचितः' इति क्वा निपात्यते। अपपूर्वस्य चायतेर्निष्ठायामनिट्त्वं चिभावश्च निपात्यते। अपचितोऽनेन गुरुः। अपचायितोऽनेन गुरुः। *क्तिनि नित्यमिति वक्तव्यम्* (म०भा०)। क्तिनि नित्यं चिभावो निपात्यते। अपचितिः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—'अपचित' शब्द विकल्प से निपातनसिद्ध है। अप-पूर्वक चाय् धातु से पर निष्ठा प्रत्यय को इट् का निषेध तथा धातु के स्थान पर 'चि' आदेश निपातन से होते हैं।

उदा० (1) अपचितः
(2) अपचायितः—पक्ष में।

क्तिनि०—क्तिन् प्रत्यय में नित्य 'चि' आदेश होता है।

(3) अपचितिः
अप चाय् क्तिन्—अपचिति सु।

(3310) हु ह्वरेश्छन्दसि *31* (3579)

ह्वरतेर्धातोर्निष्ठायां छन्दसि 'हु' इत्ययमादेशो भवति। हुतस्य चाहुतस्य च। अहुतंमसि हविर्धानम् (वा०सं० 1.7)। छन्दसीति किम्? ह्वृतम्।

अर्थ—वेद के विषय में निष्ठासंज्ञक प्रत्यय के परे रहते 'ह्वृ' के स्थान पर 'हु' आदेश होता है।

उदा०—(1) अहुतमसि (यजु० 1.9)
अनुदात्तोपदेश होने से 'एकाच उपदेशेऽनु०' से इट् का निषेध।

छन्दसी०—वेद में ही यह आदेश होता है।

(2) ह्वृतम्
लोक में 'हु' नहीं हुआ।

(3311) अपरिह्वृताश्च *32* (3580)

'अपरिह्वृताः' निपात्यते छन्दसि विषये। 'हु' इत्येतस्यादेशस्याभावो निपात्यते। 'अपरिह्वृताः सनुयाम वाजम्' (ऋ० 1.100.19)।

अर्थ—वेद के विषय में 'अपरिह्वृताः' शब्द निपातनसिद्ध है।

उदा० (1) अपरिह्वृताः (ऋ० 1.100.19)
अपरिह्वृ क्त—'हु ह्वरेश्छन्दसि' से प्राप्त 'हु' भाव का निपातन से अभाव,
अपरिह्वृत जस्—विभक्तिकार्य।

(3312) सोमे ह्वरितः *33* (3581)

'ह्वरितः' इति ह्वरतेर्निष्ठायामिडागमो गुणश्च निपात्यते छन्दसि विषये, सोमश्चेद्भवति। मा नः सोमो ह्वरितः। विह्वरितस्त्वम्।

अर्थ—वेद के विषय में 'ह्वरित' शब्द निपातनसिद्ध है, सोम अर्थ में।

उदा० (1) ह्वरितः
ह्वृ क्त—इट् आगम निपातन से,
ह्वर् इ त—गुण निपातन से, 'हु ह्वरेश्छन्दसि' से प्राप्त 'हु'-भाव का निपातन से अभाव।

(3313) ग्रसितस्कभितस्तभितोत्तभितचत्तविकस्ता विशस्तृशंस्तृशास्तृतरुतृतरूतृवरुतृवरूतृवरूत्रीरुज्ज्वलितिक्षरितिक्षमितिवमित्यमितीतिच *34* (3582)

ग्रसित, स्कभित, स्तभित, उत्तभित, चत्त, विकस्त, विशस्तृ, शंस्तृ, शास्तृ, तरुतृ, तरूतृ, वरुतृ, वरूतृ, वरूत्रीः, उज्ज्वलिति, क्षरिति, वमिति, अमिति–इत्येतानि छन्दसि निपात्यन्ते। तत्र ग्रसितस्कभितस्तभितोत्तभितेति–ग्रसु, स्कन्भु, स्तन्भु इत्येतेषामुदित्वान्निष्ठायामिट्प्रतिषेधे प्राप्ते इडागमो निपात्यते। 'ग्रसितं वां पुतत्सोमस्य (मै० सं० 3.4.7)। ग्रस्तमिति भाषायाम्। स्कभित–'विष्कंभिते अजरे' (ऋ० 6.70.1)। विष्कब्ध इति भाषायाम्। स्तभित–'येन स्वः स्तभितम्' (ऋ० 10.121.5) स्तब्धमिति भाषायाम्। उत्तभित–'सत्येनोत्तभिता भूमिः (ऋ० 10.85.1)। उत्तब्धेति भाषायाम्। उत्तभितेति उत्पूर्वस्य निपातनसामर्थ्यादन्योपसर्गपूर्वः स्तभितशब्दो न भवति। चत्त विकस्तेति–चतेः, कसेश्च विपूर्वस्य निष्ठायामिडभावो निपात्यते। चत्ता वर्षेण विद्युत्। चतितेति भाषायाम्। विकस्त–'उत्तानाया हृदयं यद् विकस्तम्' (मै० 2.7.4)। विकसितमिति भाषायाम्। निपातनं बहुत्वापेक्षम् 'विकस्ताः' इति बहुवचनं कृतम्। अपरेषु तु निपातनेषु प्रत्येकं विभक्तिनिर्देशः। विशस्तृ, शंस्तृ, शास्त्रिति–शसेर्विपूर्वस्य, शंसेः, शासेश्च तृचि इडभावो निपात्यते। विशस्तृ–'एकस्वष्टुरश्वस्याविशस्ता'। विशसितेति भाषायाम्। शंस्तृ–'उत शंस्ता सुविप्रः'। शंसितेति भाषायाम्। शास्तृ–'प्रशास्ता'। प्रशासितमिति भाषायाम्। तरुतृतरूतृवरुतृवरूतृवरूत्रीरिति–तरतेः वृङ्वृञोश्च तृचि उट्, ऊट्–इत्येतावगमौ निपात्येते। तरुतारं रथानाम् (ऋ० 10.178.1) तरूतारम्। तरितारम्, तरीतारमिति भाषायाम्। वरुतारं रथानाम्, वरूतारं रथनाम्। वरितारम्, वरीतारमिति भाषायाम्। 'वरूत्रीष्ट्वा देवीर्विश्वदेव्यवती' (मै० 2.7.6)। जसि पूर्वसवर्णोच्चारणं प्रयोगदर्शनार्थम्। अतत्रं चैतत्। इदमपि हि भवति–अहोरात्राणि वै वरूत्रय इति।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

छान्दसिकमत्र ह्रस्वत्वम्। प्रपञ्चार्थमेव च ङीबन्तस्य निपातनम्। वरूतृशब्दो हि निपातितः, तत एव ङीपि सति सिद्धो वरूत्रीशब्दः। उज्जलिति, क्षरिति, क्षमिति, वमिति, अमितीति च–ज्वलतेरुत्पूर्वस्य, क्षर, क्षम, वम, अम–इत्येतेषां च तिपि शप इकारादेशो निपात्यते, शपो लुग्वा, इडागमः। अग्निरुज्ज्वलिति। उज्ज्वलतीति भाषायाम्। क्षरिति–स्तोकं क्षरिति। क्षरतीति भाषायाम्। क्षमिति स्तोमं क्षमिति। क्षमतीति भाषायाम्। वमिति–यः सोमं वमिति। वमतीति भाषायाम्। अमिति–अभ्यमिति वरुणः। अभ्यमतीति भाषायाम्। इतिकरणं प्रदर्शनार्थम्, तेन क्वचिदीकारो भवति–'रविमभ्यमीति वरणः' (वा० 22.5) इत्यपि हि वेदे पठ्यते।

अर्थ—वेद में ग्रसित, स्कभित, स्तभित, उत्तभित, चत्त, विकस्त, विशस्तृ, शंस्तृ, शास्तृ, तरुतृ, तरूतृ, वरुतृ, वरूतृ, वरूत्री, उज्ज्वलिति, क्षरिति, वमिति तथा अमिति शब्द निपातन-सिद्ध हैं।

उदा० (1) ग्रसितः (मै०सं० 3.7.4)

ग्र सु क्त—'उदितो वा' से पाक्षिक इट् प्राप्त, 'यस्य विभाषा' से नित्य निषेध, निपातन से इट्, लोक में—ग्रस्तः।

(2) स्कभितः (ऋ० 6.70.1)

स्कम्भु क्त—पूर्ववत्। 'अनिदितां हल०' से अनुनासिकलोप। लोक में—स्कब्धः।

(3) स्तभितः (ऋ० 10.121.5)

स्तन्भु क्त—पूर्ववत्। लोक में—स्तब्धः।

(4) उत्तभितः (ऋ० 10.85.1)

उद् स्तन्भ् क्त—सभी पूर्ववत्, खरि च। लोक में—उत्तब्धः।

(5) चत्तः

चते क्त—इट् अभाव निपातन से। लोक में—चतिता।

(6) विकस्तः (मै०सं० 2.7.4)

वि कस् क्त—पूर्ववत्। लोक में—विकसितम्।

(7) विशस्ता (ऋ० 1.162.19)

वि शस् तृच्—इट् निषेध निपातन से। लोक में—विशसिता।

(8) शंस्ता (ऋ० 1.162.5)

शंस् तृच्—निपातन से इट् निषेध। लोक में—शंसिता।

(9) प्रशास्ता (ऋ० 2.5.4)

प्र शास् तृच्—इट् निषेध। लोक में—प्रशासितम्।

(10) तरुतारम्

तृ तृच्—निपातन से 'उट्',
तर् उट् तृ सु—गुण। लोक में—तरितारम्।

(11) तरूतारम्

तृ तृच्—ऊट् आगम। लोक में—तरीतारम्।

(12) वरुतारम्

वृङ् तृ—पूर्ववत् 'उट्'। लोक में—वरितारम्।

(13) वरूतारम्

ऊट् आगम्। लोक में—वरीतारम्।

(14) वरूत्रीः (मा०सं० 11.61)

वरूतृ—पूर्ववत्,
वरूतृ ङीप् जस्—ऋन्नेभ्यो ङीप्।

जसि०—जस् विभक्ति में पूर्वसवर्णदीर्घ हुआ। यह प्रयोग के दर्शनार्थ है। यह उचित नहीं है। निम्नलिखित भी होता है—

अहोरात्राणि वै वरूत्रयः। यहाँ ह्रस्वादेश छान्दस है। ङीप् प्रत्ययान्त 'वरूत्री' शब्द का निपातन प्रपञ्चार्थ है। सूत्रोक्त 'वरूतृ' शब्द से ङीप् करके भी यह शब्द सिद्ध था।

(15) उज्ज्वलिति

उद् ज्वल् शप् तिप्—निपातन से इकार,
उद् ज्वलिति—स्तोः श्चुना श्चुः।

इत्येते०—यहाँ निपातन से अकार के स्थान पर इकार होता है अथवा शप् का लुक् होकर इट् आगम होता है। लोक में—उज्ज्वलति।

(16) क्षरिति

क्षर् शप् तिप्—पूर्ववत्,
क्षरि ति—इकार। लोक में—क्षरति।

(17) क्षमिति

पूर्ववत् इकार। लोक में—क्षमति।

(18) वमिति

वम् शप् तिप्—पूर्ववत्। लोक में—वमति।

(19) अमिति

अम् शप् तिप्—पूर्ववत्। लोक में—अमति।

इतिक०—इतिकरण प्रदर्शनार्थ है। अतः कहीं ईकार भी होता है। यथा—

(20) अभ्यमीति (मा०सं० 22.5)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अभि अम् ई तिप्—ईकार हुआ।

(3314) आर्धधातुकस्येड्वलादेः *35* (2184)

'छन्दसि' इति निवृत्तम्। आर्धधातुकस्य वलादेरिडागमो भवति। लविता, लवितुम्, लवितव्यम्। पविता, पवितुम्, पवितव्यम्। आर्धधातुकस्येति किम्? आस्ते। शेते। वस्ते। 'रुदादिभ्यः सार्वधातुके' इत्येतस्मिन्नियमार्थे विज्ञायमाने प्रतिपत्तिगौरवं भवतीति आर्धधातुकग्रहणं क्रियते। वलादेरिति किम्? लव्यम्, पव्यम्। लवनीयम्, पवनीयम्। इडिति वर्त्तमाने पुनरिड्ग्रहणं प्रतिषेधनिवृत्त्यर्थम्।

अर्थ—'छन्दसि' का अनुवर्त्तन नहीं है। अङ्गसंज्ञक शब्द से उत्तर वलादिक आर्धधातुक को इट् आगम होता है।

उदा० (1) लविता
लू तृ—आर्धधातुकं शेषः, इट्,
लो इ तृ—'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से गुण, सु।

(2) लवितुम्
लू तुमुन्—पूर्ववत्।

(3) लवितव्यम्
लू तव्यत्—पूर्ववत्।

(4) पविता
पू तृच्—पूर्ववत्।

(5) पवितुम्
पू तुमुन्—पूर्ववत्।

(6) पवितव्यम्
पू तव्यत्—पूर्ववत्।

आर्धधा०—आर्धधातुक को इट् होता है।

(7) आस्ते
आस् त—शप्, शप् का लुक्, तिङ् शित् सार्वधातुकम्, आर्धधातुक न होने से इट् नहीं हुआ,
आस्ते—टित आत्मनेपदानां टेरे।

(8) शेते
शी त—पूर्ववत्। शीङः सार्वधातुके गुणः।

(9) वस्ते
वस् त—पूर्ववत्।

रुदादि०—'रुदादिभ्यः सार्वधातुके' के नियमार्थ ज्ञात हो जाने पर प्रतिपत्ति का गौरव होता है। अतः 'आर्धधातुके' का ग्रहण है।

वलादे०—वलादि प्रत्यय को इट् आगम होता है।

(10) लव्यम्
लू यत्—'अचो यत्' से यत् हुआ, आर्धधातुक संज्ञा है। परन्तु वलादि न होने से इट् नहीं हुआ,
लो य सु—वान्तो यि प्रत्यये।

(11) पव्यम्
पू यत्—इट् नहीं हुआ।

(12) लवनीयम्
लू अनीयर्—गुण, अवादेश।

(13) पवनीयम्
पू अनीयर्—पूर्ववत्।

इडिति०—प्रकृत सूत्र में 'इट्' का अनुवर्त्तन होने पर भी पुनः 'इट्' का ग्रहण निषेध की निवृत्ति के लिए है।

(3315) स्नुक्रमोरनात्मनेपदनिमित्ते *36* (2323)

नियमार्थमिदम्। स्नुक्रमोरार्धधातुकस्य वलादेरिडागमो भवति, न चेत्स्नुक्रमौ आत्मनेपदस्य निमित्तं भवतः। क्व च तावात्मनेपदस्य निमित्तम्? यत्रात्मनेपदं तदाश्रयं भवति-भावकर्मकर्तृकर्मकर्मव्यतिहाराः। क्रमेर्वृत्त्यादयश्च। तेनायं सत्यात्मनेपदे प्रतिषेधो भवति, नासतीति। प्रतिषेधफलं चेदं सूत्रम्। स्नुक्रमोरुदात्तत्वादिट् सिद्ध एव। प्रस्नविता, प्रस्नवितुम्, प्रस्नवितव्यम्। प्रक्रमिता, प्रक्रमितुम्, प्रक्रमितव्यम्। अनात्मनेपदनिमित्ते इति किम्? प्रस्नोषीष्ट, प्रक्रंसीष्ट। प्रस्नोष्यते, प्रक्रंस्यते। प्रसुस्नूषिष्यते, प्रचिक्रंसिष्यते। सर्वत्रैवात्र स्नौतिः, क्रमिश्चात्मनेपदस्य निमित्तम्। सनन्तादपि हि 'पूर्ववत्सनः' (1.3.62) इत्यात्मनेपदं विधीयते। निमित्तग्रहणं किम्? सीयुडादेस्तत्परपरस्य च प्रतिषेधार्थम्। इह तु प्रस्नवितेवाचरतीति प्रस्नवित्रीयत इति क्यङन्तमात्मनेपदस्य निमित्तम्, न स्नौतिः। *क्रमेस्तु कर्तर्यात्मनेपदविषयादसत्यात्मनेपदे कृति प्रतिषेधो वक्तव्यः* (म० भा०)। प्रक्रन्ता। उपक्रन्ता। कर्त्तरीति किम्? प्रक्रमितव्यम्। उपक्रमितव्यम्। आत्मनेपदविषयादिति किम्? निष्क्रमिता। स्नौतेः सनि किति च प्रत्यये 'श्र्युकः किति' (7.2.12) 'सनि ग्रहगुहोश्च' (7.2.13) इत्येव प्रतिषेधो भवति-प्रसुस्नूषति। प्रस्नुतः। प्रस्नुतवान्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—यह नियम के लिए है। स्नु तथा क्रम् अङ्गों से उत्तर आर्धधातुक वलादि प्रत्यय को इट् का आगम होता है, यदि स्नु तथा क्रम् आत्मनेपद के निमित्त न हों।

ये आत्मनेपद के निमित्त कहाँ होते हैं ? जहाँ तदाश्रित आत्मनेपद होता है। यथा—

भावकर्म में, कर्तृकर्म में, कर्मव्यतिहार में इत्यादि। ऐसा होने पर यह निषेध होता है। ऐसा न होने पर इट् नहीं होता है।

प्रतिषेध०—यह सूत्र निषेध का फल है। स्नु तथा क्रम् धातुओं के उदित् होने से 'उदितो वा' से इट् सिद्ध ही है।

उदा० (1) प्रस्नविता
प्र स्नु तृ—आर्धधातुकं शेषः, इट्,
प्र स्नो इ तृ—सार्वधातुकार्धधातु०, अवादेश, सु।

(2) प्रस्नवितुम्
प्र स्नु तुमुन्—पूर्ववत्।

(3) प्रस्नवितव्यम्
प्र स्नु तव्यत्—पूर्ववत्।

(4) प्रक्रमिता
प्र क्रम् इट् तृच्—इट् हुआ।

(5) प्रक्रमितुम्
प्र क्रम् इट् तुमुन्—सु।

(6) प्रक्रमितव्यम्
प्र क्रम् तव्यत्—इट्, सु।

अनात्मने०—आत्मनेपद का निमित्त न हो तो इट् होता है।

(7) प्रस्नोषीष्ट
स्नु सीयुट् सुट् त—आशिषि लिङ्, 'भावकर्मणोः' से कर्त्ता में आत्मनेपद, 'सुट् तिथोः' से 'सुट्',
स्नु सीय् स् त—अनुबन्धलोप,
स्नु षी ष् त्—यकारलोप, आदेशप्रत्यययोः,
प्र स्नु षी ष् ट—ष्टुना ष्टुः।

(8) प्रक्रंसीष्ट
प्र क्रम् त—आशीर्लिङ्, 'प्रोपाभ्यां समार्थाभ्याम्' से कर्त्ता में आत्मनेपद प्रत्यय,
प्रक्रम् सीय् स् त—पूर्ववत्,
प्रक्रंसीष्ट—'नश्चाऽपदान्तस्य झलि' से अनुस्वार, शेष पूर्ववत्।

(9) प्रस्नोष्यते
प्र स्नु त—'ल्ट् शेषे च' से ल्ट् प्रत्यय,
प्र स्नु स्य त—स्यतासी ल्लुटोः, आर्धधातुक गुण,
प्रस्नो स्य त—आदेशप्रत्यययोः, एत्व।

(10) प्रक्रंस्यते
प्र क्रम् स्य त—पूर्ववत् आत्मनेपद, स्य आदि।

(11) प्रसुस्नूषिष्यते
स्नु सन्—'अज्झनगमां सनि' से दीर्घ, 'सन्यङोः' से द्वित्व,
सु स्नू स—हलादिः शेषः, ह्रस्वः, आदेशप्रत्यययोः, धातुसंज्ञा,
सुस्नूष त—'पूर्ववत् सनः' से आत्मनेपद, ल्ट्, स्य,
प्रसुस्नूष् इस्य ते—'अतो लोपः' से अकारलोप, आदेश-प्रत्यययोः।

(12) प्रचिक्रंसिष्यते
क्रम् सन्—द्वित्व, हलादिः शेषः,
क क्रम् स—कुहोश्चुः, सन्यतः, 'नश्चाऽपदान्तस्य झलि' से अनुस्वार,
चिक्रंस त—धातु संज्ञा, पूर्ववत् ल्ट्,
प्र चिक्रंस् इ स्य त—शेष पूर्ववत्।

सर्वत्र—यहाँ सर्वत्र स्नु तथा क्रम धातुओं से आत्मनेपद का निमित्त है। सन् प्रत्ययान्त से भी 'पूर्ववत् सनः' से आत्मनेपद होता है।

निमित्त०—आत्मनेपद का निमित्त होने पर ही आर्धधातुक को इट् नहीं होता है। यह सीयुट् आदि का तथा उससे पर से उत्तर के निषेध के लिए है। अतः 'प्रस्नवित्रीयते' में क्यङ् प्रत्ययान्त आत्मनेपद का निमित्त है; स्नु का नहीं।

(13) प्रस्नवित्रीयते
प्र स्नु तृच्—इट्, गुण आदि होकर,
प्रस्नवितेवाऽऽचरति[1]—'कर्तुः क्यङ् सलोपश्च' से क्यङ्,
प्र स्नवित् रीङ् य—लशक्वतद्धिते, हलन्त्यम्, 'रीङ् ऋतः' से रीङ्,
प्रस्नवित्रीय शप् त—अतो गुणे।

क्रमे०—क्रम् धातु, कर्त्ता अर्थ में आत्मनेपद विषय वाली से आत्मनेपद न रहने पर, कृत् प्रत्यय परे प्रतिषेध होता है।

(14) प्रक्रन्ता
प्र क्रम् तृच्—इट् निषेध, अनुस्वार,

1. कुछ विद्वान् यहाँ प्रस्नवितारमिवाऽऽचरति—इस प्रकार विग्रह करते हैं। वे यहाँ भ्रान्त हैं। कारण 'कर्तुः क्यङ् सलोपश्च' से कर्त्ता से क्यङ् हुआ करता है; कर्म सुबन्त से नहीं। द्र०—न्यास 7.2.36

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रक्रंतृ सु—परसवर्ण।

(15) उपक्रन्ता
उप क्रम् तृ—पूर्ववत्।

कर्त्तरी०—कर्त्ता अर्थ में ही निषेध होता है।

(16) प्रक्रमितव्यम्
प्र क्रम् तव्यत्—इट् हुआ।

(17) उपक्रमितव्यम्
पूर्ववत् इट् हुआ।

स्नौते०—स्नु धातु से उत्तर सन् प्रत्यय को 'सनि ग्रहगुहोश्च' से इट् का निषेध होता है तथा कित् प्रत्यय को 'श्र्युकः किति' से निषेध होता है।

(18) प्रसुस्नूषति
स्नु सन्—'अज्झनगमां सनि' से दीर्घ,
स्नू स्नू स—'सन्यङोः' से द्वित्व, पूर्वोऽभ्यासः,
सु स्नूष—हलादिः शेषः, ह्रस्वः, आदेशप्रत्यययोः,
प्र सुस्नूष शप् ति—पूर्ववत् सनः, शप्।

(19) प्रस्नुतः
प्र स्नु क्त—कित् प्रत्यय को इट् नहीं हुआ।

(20) प्रस्नुतवान्
प्र स्नु क्तवतु—पूर्ववत्।

(3316) ग्रहोऽलिटि दीर्घः *37* (2562)

ग्रह उत्तरस्य इटः अलिटि दीर्घो भवति। ग्रहीता, ग्रहीतुम्, ग्रहीतव्यम्। अलिटीति किम्? जगृहिव। जगृहिम। प्रकृतस्येटो दीर्घत्वम्, इदं चिण्वदिटो न भवति-ग्राहिता, ग्राहिष्यते।

अर्थ—ग्रह् धातु के अङ्ग से उत्तर इट् को दीर्घ आदेश होता है, परन्तु लिट् परे रहते नहीं होता।

'इट्' को विभक्तिविपरिणाम से षष्ठ्यन्त में परिणत कर लिया जाता है। 'इट्' के स्थान पर होने वाला दीर्घादेश आन्तरतम्य से दीर्घ ईकार होता है।

उदा० (1) ग्रहीता
ग्रह् तृच्—ण्वुल्तृचौ, आर्धधातुकस्येड् वलादेः,
ग्रह् इ तृ—अनुबन्धलोप,
ग्रहीतृ सु—दीर्घ।

(2) ग्रहीतुम्
ग्रह् तुमुन्—पूर्ववत् इट्, दीर्घ।

(3) ग्रहीतव्यम्
ग्रह् तव्यत्—इट् आदि।

अलिटी०—लिट् परे रहते दीर्घ नहीं होता है।

(4) जगृहिव
ग्रह् व—लिट्, परस्मैपदानां णलतुसुस्०, ग्रहिज्या० से सम्प्रसारण,
गृह् इ व—इट् आदेश, हलादिः शेषः,
ज गृह् इ व—उरत्, हलादिः शेषः, कुहोश्चुः, दीर्घ नहीं हुआ।

(5) जगृहिम
ग्रह् म—पूर्ववत्।

प्रकृत०—'आर्धधातुकस्येड् वलादेः' से विहित इट् को ही दीर्घ आदेश होता है तथा चिण्वत् इट् से होने वाले इट् को नहीं होता है।

(6) ग्राहिता
ग्रह् तास् डा—लुट्, चिण्वत्,
ग्राह् इट् त् आ—अत उपधायाः,
ग्राहिता—रूप बना।

(7) ग्राहिष्यते
ग्रह् स्य त—चिण्वद्भाव तथा इट्,
ग्राह् इ स्य त—दीर्घ नहीं हुआ, षत्व, एत्व। 'एकाचः' का अनुवर्त्तन होने से एकाच् जो 'ग्रह्' धातु, उससे उत्तर इट् को दीर्घ आदेश होता है।

(8) जाग्रहिता
ग्रह् यङ्—सन्यङोः, यङ् का लुक्,
जाग्रह्—धातुसंज्ञा, इट्,
जाग्रहिता—इट् को दीर्घ नहीं हुआ।

(3317) वृतो वा *38* (2391)

'वृ' इति वृङ्वृञोः सामान्येन ग्रहणम्। तस्मादुत्तरस्य, ऋकारान्तेभ्यश्चेटो वा दीर्घो भवति। वरिता, वरीता। प्रावरिता, प्रावरीता। ऋकारान्तेभ्यः-तरिता, तरीता। आस्तरिता, आस्तरीता। वृत इति किम्? करिष्यति। हरिष्यति। अलिटीत्येव-ववरिथ। तेरिथ।

अर्थ—'वृ' के द्वारा 'वृङ्' तथा 'वृञ्' दोनों का सामान्य रूप से ग्रहण होता है। वृ अङ्ग तथा ऋदन्त धातु के अङ्ग से उत्तर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विहित इट् को विकल्प से दीर्घ आदेश होता है; परन्तु लिट् परे रहते नहीं होता।

उदा० (1) वरीता
वृ तृच्—इट्, आर्धधातुक गुण,
वर् इ तृ सु—दीर्घ,

(2) वरिता
पक्ष में दीर्घ नहीं हुआ।

(3) प्रावरीता
पूर्ववत् दीर्घ।

(4) प्रावरिता
दीर्घ का अभाव।

(5) तरीता
तृ तृच्—इट्, गुण,
तर् इ तृ—दीर्घ, सु।

(6) तरिता
पक्ष में दीर्घ नहीं हुआ।

(7) आस्तरीता
आ स्तृ तृ—पूर्ववत् इट्, दीर्घ आदि।

(8) आस्तरिता
दीर्घ नहीं हुआ।

वृत०—वृ तथा ऋदन्त अङ्ग से उत्तर इट् को दीर्घ होता है।

(9) करिष्यति
कृ तिप्—लृट् शेषे च, तिप्, स्यतासी लृलुटोः,
कृ इट् स्य ति—ऋद्धनो स्ये, आर्धधातुक गुण,
कर् इ ष्य ति—आदेशप्रत्यययोः।

(10) हरिष्यति
हृ ति—पूर्ववत्।

अलिटी०—लिट् परे रहते इट् को दीर्घ नहीं होता है।

(11) ववरिथ
वृ थल्—लिट्, सिप्, परस्मैपदानां णलतुसुस्०,
वृ इ थ—द्वित्व, उरत्, हलादिः शेषः,
व वृ इ थ—गुण, इट् को दीर्घ नहीं हुआ।

(12) तेरिथ
तृ इ थल्—पूर्ववत्,
तर् तर् इ थ—अत एकहल्मध्ये०,
तेरिथ—एत्व, अभ्यासलोप, इट् को दीर्घ नहीं हुआ।

(3318) न लिङि *39* (2529)

वृत उत्तरस्य इटो लिङि दीर्घो न भवति। विवरिषीष्ट। प्रावरिषीष्ट। आस्तरिषीष्ट। विस्तरिषीष्ट।

अर्थ— वृ धातु के अङ्ग से तथा ऋदन्त धातु के अङ्ग से उत्तर विहित इट् को दीर्घदेश नहीं होता है, लिङ् प्रत्यय परे रहते।

उदा० (1) विवरिषीष्ट
वृ त—लिङ्, 'त',
वृ सीयुट् सुट् त—'सुट् तिथोः' आदि लगकर, अनुबन्धलोप,
वृ इ सीय् स् त—'लिङ्सिचोरात्मने०' से इट्, गुण,
वि वर् इषीष्ट—षत्व, ष्टुत्व, इट् को दीर्घ का निषेध।

(2) विस्तरिषीष्ट
स्तृ त—पूर्ववत् सभी कार्य। कर्म में आत्मनेपद।

(3319) सिचि च परस्मैपदेषु *40* (2392)

परस्मैपदपरे सिचि वृत उत्तरस्य इटो दीर्घो न भवति। प्रावारिष्टाम्, प्रावारिषुः। अतारिष्टाम्, अतारिषुः। आस्तारिष्टाम्, आस्तारिषुः। परस्मैपदेष्विति किम्? प्रावरिष्ट, प्रावरीष्ट।

अर्थ—वृ धातु के अङ्ग से तथा ऋदन्त धातु के अङ्ग से उत्तर इट् को दीर्घ नहीं होता है, परस्मैपदपरक सिच् के परे रहते।

(1) प्रावारिष्टाम्
वृ ताम्—लुङ्, तस्, तस्थस्थमिपां तां०,
वृ इट् स् ताम्—सिच्, इट्,
वार् इ स् ताम्—सिचि वृद्धिः परस्मैपदेषु, उरण् रपरः,
प्र अवारिष्टाम्—इट् को दीर्घ का निषेध, अट्।

(2) प्रावारिषुः
वृ इट् सिच् उस्—झि, सिच्, इट्, 'सिजभ्यस्तविदि०' से जुस्', चुटू' से जकार की इत्संज्ञा,
प्र अ वार् इषुः—पूर्ववत् दीर्घ का निषेध।

(3) अतारिष्टाम्
तृ स् ताम्—लुङ्, तस्, ताम्, सिच्,
तार् इ स् ताम्—इट्, वृद्धि, दीर्घ का निषेध,
अ तारि ष् टाम्—षत्व, अट्।

(4) अतारिषुः
जुस् विभक्ति में पूर्ववत् दीर्घदेश का निषेध।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(5) आस्तारिष्टाम्
स्तृ तस्—'अतारिष्टाम्' की तरह।

(6) आस्तारिषुः
स्तृ झि—'अतारिषुः' की तरह।

(7) व्यशारिष्टाम्
शॄ तस्—'अतारिष्टाम्' की तरह।

(8) व्यशारिषुः
शॄ झि—'अतारिषुः' की तरह।

परस्मै०—परस्मैपद प्रत्यय है परे जिसके, ऐसे सिच् के परे रहते इट् को दीर्घ नहीं होता है।

(9) प्रावरिष्ट
वृ त—लुङ्, आत्मनेपद,
वृ इ स् त—सिच्, इट्, गुण,
वर् इ स् त—'वृङ्' धातु आत्मनेपदी है, इट् से पर सिच् है, परन्तु सिच् से पर परस्मैपद प्रत्यय है, अतः दीर्घ नहीं हुआ,
प्र अ वरि ष् ट—षत्व, ष्टुत्व, अट्।

(10) प्रावरीष्ट
पक्ष में—'वृतो वा' से दीर्घ हुआ।

(3320) इट् सनि वा *41* (2625)

वृतः सनो वा इडागमो भवति। वुवूर्षति। विवरिषते, विवरीषते। प्रावुवूर्षति, प्राविवरिषति, प्राविवरीषति। ऋकारान्तेभ्यः–तितीर्षति, तितरिषति, तितरीषति। आतिस्तीर्षति, आतिस्तरिषति, आतिस्तरीषति। 'सनि ग्रहगुहोश्च' (7.2.12) इति इट्प्रतिषेधे प्राप्ते पक्षे इडागमो विधीयते। इटश्च 'वृतो वा' (7.2.38) इति पक्षे दीर्घः। चिकीर्षति, जिहीर्षति–इत्यत्रोपदेशाधिकारात्, लाक्षणिकत्वाच्च इडागमो न भवति।

अर्थ— वृ धातु के अङ्ग व ऋदन्त धातु के अङ्ग से उत्तर सन् प्रत्यय को विकल्प से इट् आगम होता है।

उदा० (1) वुवूर्षति
वृ सन्—'सनि ग्रहगुहोश्च' से इट् का निषेध, प्रकृत सूत्र से इट्, इट्-अभाव पक्ष,
वृ सन्—'इको झल्' से सन् कित् हुआ, 'अज्झनगमां०' से दीर्घ,
वुर् स—'उदोष्ठ्यपूर्वस्य' से उकार आदेश,
वु वु र् स—द्वित्व, हलादि शेष,
वु वू र् ष—'हलि च' से दीर्घ, षत्व, धातुसंज्ञा,
वु वू र् ष शप् तिप्—शप्, पररूप।

(2) विवरिषते
वृ स—इट् पक्ष में,
वृ इ स—सन्यङोः, पूर्वोऽभ्यासः,
वृ वृ इ स—उरत्, हलादिः शेषः,
वि वर् इ स—गुण, सन्यतः, षत्व, धातुसंज्ञा,
विवरिषते—त, शप्, अतो गुणे।

(3) विवरीषते
'वृतो वा' से पाक्षिक दीर्घ।

(4) प्रावुवूर्षति
प्र आ वुवूर्षति—पूर्ववत् इट् का अभाव।

(5) प्राविवरिषति
प्र आ विवरिषति—इट् पक्ष, दीर्घ अभाव पक्ष।

(6) प्राविवरीषति
इट् पक्ष, दीर्घ पक्ष।

(7) तितीर्षति
तॄ सन्—'ऋत इद्धातोः' से इकार, इट् अभाव,
तिर् स—दीर्घ, द्वित्व, हलादि शेष,
ति तीर् स—ह्रस्वः, षत्व, धातुसंज्ञा,
तितीर्ष शप् तिप्—अतो गुणे।

(8) तितरिषति
इट् पक्ष, दीर्घ अभाव—'विवरिषति' की तरह।

(9) तितरीषति
इट् पक्ष, दीर्घ पक्ष—'विवरीषति' की तरह।

(10) आतिस्तीर्षति
स्तृ सन्—ऋत इद्धातोः, इट् का अभाव,
स्तिर् स—दीर्घ, द्वित्व,
ति स्तीर् ष—शर्पूर्वाः खयः, षत्व, धातुसंज्ञा,
आ तिस्तीर्ष शप् तिप्—अतो गुणे।

(11) आतिस्तरिषति
इट् पक्ष, द्वित्व, 'सन्यतः' से इकार, गुण, शेष पूर्ववत्।

(12) आतिस्तरीषति
सभी कार्य पूर्ववत्, केवल इट् को दीर्घ अधिक होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सनि०—'सनि ग्रहगुहोश्च' से इट् का निषेध, पाक्षिक इट् हुआ है। इट् पक्ष में 'वृतो वा' से पाक्षिक दीर्घ होता है।

चिकीर्ष०—यहाँ उपदेश का अधिकार होने से निम्नलिखित में लाक्षणिक ऋदन्त होने से इट् का आगम नहीं होता है—

(13) चिकीर्षति

कृ सन्—'अज्झनगमां सनि' से अङ्ग को दीर्घ,

कृ स—ऋदन्त 'कृ' है, परन्तु वह लाक्षणिक दीर्घ ऋकारान्त है, औपदेशिक नहीं। अतः प्रकृत सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होती है,

किर् स—ऋत इद्धातोः,

कीर् स—हलि च, सन्यङोः,

चिकीर्ष—हलादिः शेषः, ह्रस्वः, कुहोश्चुः, धातुसंज्ञा,

चिकीर्ष शप् तिप्—अतो गुणे।

(14) जिहीर्षति

हृ सन् → हृ स → हिर् स—पूर्ववत् दीर्घ, इकार, दीर्घ,

हीर् स → जि हीर् स—द्वित्व, हलादिः शेषः, ह्रस्वः, कुहोश्चुः, अभ्यासे चर्च, षत्व, धातुसंज्ञा, शप् आदि।

(3321) लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु *42* (2528)

वृतो लिङि सिचि च आत्मनेपदपरे वा इडागमो भवति। वृषीष्ट, वरिषीष्ट। प्रावृषीष्ट, प्रावरिषीष्ट। आस्तरिषीष्ट, आस्तीर्षीष्ट। सिचि खल्वपि-अवृत, अवरिष्ट, अवरीष्ट। प्रावृत, प्रावरिष्ट, प्रावरीष्ट। आस्तीर्ष्ट, आस्तरिष्ट, आस्तरीष्ट। आत्मनेपदेष्विति किम्? प्रावारिष्टाम्, प्रावारिषुः। लिङः प्रत्युदाहरणं न दर्शितम्: असम्भवात्, यासुटोऽवलादित्वादिति।

अर्थ—वृ तथा ऋदन्त धातु—इन अङ्गों से उत्तर आत्मनेपद लिङ् तथा आत्मनेपदपरक सिच् प्रत्ययों को विकल्प से इट् आगम होता है।

उदा० (क) लिङि—

(1) वृषीष्ट

वृ त—आशीर्लिङ्।

वृ सीयुट् सुट् त—इट् का अभाव,

वृ सीय् स् त—अनुबन्धलोप,

वृषी ष् त—यकारलोप, षत्व,

वृषीष् ट—ष्टुत्व।

(2) वरिषीष्ट

वृ इ सीय् स् त—इट् पक्ष,

वरि षी ष् ट—गुण, शेष पूर्ववत्। वृतो वा। न लिङि।

(3) प्रावृषीष्ट

प्र आ वृषीष्ट—पूर्ववत्।

(4) प्रावरिषीष्ट

प्र आ वरिषीष्ट—पूर्ववत्।

(5) आस्तरिषीष्ट

स्तृ सीय् स् त—पूर्ववत्, इट् भाव, गुण,

स्तर् इ सी स् त—यकारलोप,

स्तरि षी ष् त—षत्व, वृतो वा, न लिङि,

आ स्तरि षी ष् ट—ष्टुत्व।

(6) आस्तीर्षीष्ट

स्तिर् सीय् स् त—पूर्ववत्, इट् अभाव, ऋत इद्धातोः, 'उश्च' से किद्वत्, क्ङिति च' से गुणनिषेध,

स्तीर् सी स् त—दीर्घ, यकारलोप,

आस्तीर् षी ष् ट—पूर्ववत्।

(ख) सिचि—

(7) अवृत

वृ त—लुङ्, त, सिच्,

वृ स् त—इट् अभाव पक्ष।

वृ त—'ह्रस्वादङात्' से सिच् का लुक्,

अ वृ त—अट्।

(8) अवरिष्ट

वृ स् त—पूर्ववत्, पक्ष में इट्,

वर् इ स् त—गुण,

अ वरि ष् त—षत्व, अट्।

(9) अवरीष्ट

वृ इ स् त—इस स्थिति में गुण,

वरि स् त—'वृतो वा' से पाक्षिक दीर्घ,

अ वरी ष् ट—षत्व, ष्टुत्व, अट्।

(10) प्रावृत

प्र अवृत—इट् अभाव, सिच् लुक्।

(11) प्रावरिष्ट

प्र आ अवरिष्ट—इट् पक्ष, दीर्घ अभाव।

(12) प्रावरीष्ट

इट् पक्ष, दीर्घ पक्ष।

(13) आस्तीर्ष्ट

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्तृ स् त—इट् अभाव पक्ष, ऋत इद्धातोः,
स्तिर् स् त—उश्च, गुणनिषेध,
आ अ स्तीर् ष् ट—हलि च, षत्व, ष्टुत्व, अट्।

(14) आस्तरिष्ट
स्तृ स् त—लुङ्, पूर्ववत् सिच् आदि।
स्तर् इ स् त—इट् पक्ष, गुण।
स्तरि ष् त—षत्व।
आ अ स्तरिष्ट—ष्टुत्व, अट्।

(15) आस्तरीष्ट
स्तरि ष् त—इस दशा में 'वृतो वा' से दीर्घ,
आ अ स्तरी ष्ट—शेष पूर्ववत्।

आत्मने०—आत्मनेपद में ही पाक्षिक इट् होता है।

(16) प्रावारिष्टाम्
वृ स् ताम्—लुङ्, तस्, ताम् आदेश, सिच्,
वार् इ स् ताम्—नित्य इट्, अज्लक्षणा वृद्धि,
वारि ष् ताम्—षत्व,
प्र अवारिष्टाम्—ष्टुत्व, अट्।

(17) प्रावारिषुः
वृ स् झि—'सिजभ्यस्तविदि०' से 'जुस्', चुटू,
अ वार् इ स् उस्—पूर्ववत् इट्, वृद्धि,
प्र अवारिष् उस्—षत्व, अट्।

लिङ०—लिङ् का प्रत्युदाहरण दिखाया नहीं गया है। यासुट् प्रत्यय के वलादि न होने से इट् सम्भव नहीं है।

(3322) ऋतश्च संयोगादेः *43* (2526)

ऋदन्ताद्धातोः संयोगादेरुत्तरयोर्लिङ्सिचोरात्मनेपदेषु वा इडागमो भवति। ध्वृषीष्ट, ध्वरिषीष्ट। स्मृषीष्ट, स्मरिषीष्ट। अध्वृषाताम्, अध्वरिषाताम्। अस्मृषाताम्, अस्मरिषाताम्। ऋत इति किम्? च्योषीष्ट, प्लोषीष्ट। अच्योष्ट, अप्लोष्ट। संयोगादेरिति किम्? कृषीष्ट, हृषीष्ट। अकृत, अहृत। 'आत्मनेपदेषु' इत्येव–अध्वार्षीत्, अस्मार्षीत्। संस्कृषीष्ट, समस्कृत–इत्यत्रोपदेशाधिकारात्, अभाक्तत्वाच्च सुट इडागमो न भवति।

अर्थ—संयोग है आदि में जिसके, ऐसे ऋदन्त धातु के अङ्ग से उत्तर आर्धधातुक लिङ् तथा आत्मनेपदपरक सिच् प्रत्ययों को इट् का आगम विकल्प से होता है।

उदा० (1) ध्वृषीष्ट

ध्वृ त—लिङ्, 'ध्वृ' ऋदन्त धातु अङ्ग है, इससे पूर्व संयोग भी है,
ध्वृ सीयुट् सुट् त—इट् अभाव पक्ष, अनुबन्धलोप,
ध्वृ षी ष् ट—षत्व आदि।

(2) ध्वरिषीष्ट
ध्वृ सीय् स् त—इस दशा में इट्, गुण तथा शेष पूर्ववत्।

(3) स्मृषीष्ट
स्मृ त—'ध्वृषीष्ट' की तरह।

(4) स्मरिषीष्ट
इट् पक्ष—'ध्वरिषीष्ट' की तरह।

(5) अध्वृषाताम्
ध्वृ स् आताम्—लुङ्, इट् अभाव,
ध्वृष् आताम्—षत्व,
अ ध्वृषाताम्—अट्।

(6) अध्वरिषाताम्
ध्वर् इट् ष् आताम्—इट्, गुण, षत्व,
अ ध्वरिष् आताम्—अट्।

(7) अस्मृषाताम्
स्मृ स् आताम्—सिच्, इट् अभाव,
अ स्मृष् आताम्—पूर्ववत्।

(8) अस्मरिषाताम्
'अध्वरिषाताम्' की तरह।

ऋत०—ऋदन्त धातु से उत्तर लिङ् व सिच् को इट् होता है।

(9) च्योषीष्ट
च्यु सीय् स् त—'च्य्' की संयोगसंज्ञा है, परन्तु यह ऋकार से पूर्व नहीं है, अतः इससे उत्तर लिङ् को इट् नहीं हुआ, गुण हुआ।

(10) प्लोषीष्ट
'च्योषीष्ट' की तरह।

(11) अच्योष्ट
च्यु स् त—लुङ्, पूर्ववत् ऋदन्त अङ्ग न होने से इट् प्राप्त नहीं हुआ।

(12) अप्लोष्ट
'अच्योष्ट' की तरह।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संयोगा०—संयोग है आदि में जिसके, ऐसे ऋदन्त धातु से उत्तर लिङ् व सिच् को इट् होता है।

(13) कृषीष्ट

कृ सीय् सुट् त—लिङ्, 'कृ' ऋदन्त है; परन्तु इससे पूर्व संयोग नहीं है, इट् प्राप्त नहीं हुआ,

कृ षी ष् त—यकारलोप, षत्व,

कृषीष् ट—ष्टुत्व।

(14) हृषीष्ट

'कृषीष्ट' की तरह।

(15) अकृत

कृ स् त—'कृ' ऋदन्त है; परन्तु इससे पूर्व संयोग नहीं है। अतः 'कृ' से उत्तर सिच् को इट् नहीं हुआ,

अ कृ त—ह्रस्वादङ्गात्, अट्।

(16) अहृत

'अकृत' की तरह।

आत्मने०—आत्मनेपद में ही इट् होता है।

(17) अध्वार्षीत्

ध्वृ स् ई त्—लुङ्, परस्मैपद, तिप्, 'इतश्च' से इकारलोप, सिच्, अस्तिसिचोऽपृ०,

ध्वार् स् ई त्—'ध्वृ' ऋदन्त अङ्ग है, ऋकार से पूर्व संयोग (ध्व्) भी है; परन्तु आत्मनेपद का सिच् न होने से इसे इट् नहीं हुआ, वृद्धि, उरण् रपरः,

अध्वार् ष् ई त्—आदेशप्रत्यययोः, अट्।

(18) अस्मार्षीत्

पूर्ववत् इट् नहीं हुआ।

संस्कृषी०—संस्कृषीष्ट तथा समस्कृत—इन स्थलों पर 'उपदेशे' पद का अधिकार होने से, अभाक्त होने से सुट् तथा इडागम नहीं होते हैं।

(19) संस्कृषीष्ट

सम् कृ सीयुट् सुट् त—लिङ्, सीयुट् आदि,

संस् कृ सीय् स् त—'सम्पुंकाना०' से मकार के स्थान पर सकार तथा पूर्व के स्थान पर अनुनासिक,

संस्कृषीष्ट—मूर्धन्य आदेश, ष्टुत्व।

(20) समस्कृत

सम् कृ त—सुट्, अट् आदि।

(3323) स्वरतिसूतिसूयतिधूञूदितो वा *44* (2279)

स्वरति, सूति, सूयति, धूञ्–इत्येतेभ्यः ऊदिद्ध्यश्चोत्तरस्य बलादेरार्धधातुकस्य वा इडागमो भवति। स्वर्त्ता, स्वरिता। सूति–प्रसोता, प्रसविता। सूयति–सोता, सविता। धूञ्–धोता, धविता। ऊदिद्ध्यः खल्वपि–'गाहू', विगाढा, विगाहिता। गुपू–गोप्ता, गोपिता। 'वा' इति वर्त्तमाने पुनर्वाग्रहणं लिङ्सिचोर्निवृत्त्यर्थम् (म०भा०)। सूतिसूयत्योर्विकरणनिर्देशः 'षू प्रेरणे' (धा०पा० 1409) इत्यस्य निवृत्त्यर्थः। 'धूञ्' इति सानुबन्धकस्य निर्देशः–'धू विधूनने' (धा०पा० 1399) इत्यस्य निवृत्त्यर्थः। सविता, धुवितेत्येव नित्यमेतयोर्भवति। स्वरतेरेतस्माद्विकल्पाद् 'ऋद्धनोः स्ये' (7.2.70) इत्येतद्भवति विप्रतिषेधेन–स्वरिष्यति। किति तु प्रत्यये 'श्र्युकः किति' (7.2.11) इति नित्यः प्रतिषेधो भवति पूर्वविप्रतिषेधेन–स्वृत्वा, सूत्वा, धूत्वा।

अर्थ—स्वृ, षू, षू (दैवादिक), धू—इन धातुओं से उत्तर तथा ऊदित् (= दीर्घ ऊकार जिनका इत् है) धातु से उत्तर वलादि आर्धधातुक प्रत्यय को इट् आगम विकल्प से होता है।

उदा० (1) स्वरिता

स्वृ तृच्—पाक्षिक इट्,

स्वर् इ तृ सु—गुण।

(2) स्वर्त्ता

स्वृ तृ—इट् का अभाव, गुण,

स्वर् तृ—अचो रहाभ्यां द्वे, सु।

(3) प्रसविता

षू → सू तृ—धात्वादेः षः सः,

प्र सू इ तृ—गुण, अव् आदेश, सु।

(4) प्रसोता

इट् अभाव पक्ष।

(5) सविता

षूङ् → सू इ तृ—पूर्ववत्।

(6) सोता

इट् अभाव।

(7) धविता

धू इ तृ—पूर्ववत्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(8) धोता
इट् अभाव, गुण।

(9) विगाहिता
वि गाह् इट् तृ—इट् हुआ।

(10) विगाढा
वि गाह् तृ—इट् नहीं हुआ,
वि गाद् तृ—हो ढः,
वि गाद् धृ—झषस्तथोर्धो०,
वि गाद् ढृ—ष्टुना ष्टुः, ढो ढे लोपः, सु।

(11) गोपिता
गुप् इट् तृ सु।

(12) गोप्ता
इट् नहीं हुआ, गुण।

वा०—'वा' का अनुवर्त्तन होने पर भी पुनः 'वा' का ग्रहण लिङ् व सिच् की निवृत्ति के लिए है। 'सूति' में विकरण लुक् तथा 'सूयति' में श्यन् विकरण का निर्देश 'षू प्रेरणे' की निवृत्ति के लिए है।

धूञ्०—'धूञ्' यह अनुबन्धसहित निर्देश है। इससे 'धू विधूनने' की निवृत्ति हो जाती है। अतः सविता तथा धुविता में नित्य इट् होता है। स्वृ धातु से विकल्प कहा गया है। तब इससे पर 'स्य' को 'ऋद्धनोः स्ये' से इट् होता है।

(13) स्वरिषयति

किति०—कित् प्रत्यय परे रहते 'श्र्युकः किति' से पूर्व-विप्रतिषेध से नित्य निषेध होता है।

(14) स्वृत्वा, (15) सूत्वा, (16) धूत्वा।

(3324) रधादिभ्यश्च *45* (2515)

'रध हिंसासंसिद्धयोः' (धा०पा० 1194) इत्येवमादिभ्योऽष्टाभ्य उत्तरस्य वलादेरार्धधातुकस्य वा इडागमो भवति। रद्धा, रधिता। नंष्टा, नशिता। त्रप्ता, तर्प्ता, तर्पिता। द्रप्ता, द्रर्प्ता, दर्पिता। द्रोग्धा, द्रोढा, द्रोहिता। मोग्धा, मोढा, मोहिता। स्नोग्धा, स्नोढा, स्नोहिता। स्नेग्धा, स्नेढा, स्नेहिता। क्रादिनियमाल्लिटि रधादिभ्यः परत्वाद्विकल्पं केचिदिच्छन्ति। अपरे पुनराहुः–पूर्वविधेरिण्निषेधविधानसामर्थ्याद् बलीयस्त्वं प्रतिषेधनियमस्येति नित्यमिटा भवितव्यम्–ररन्धिव, ररन्धिमेति भवति।

अर्थ—रधादि धातुओं से उत्तर वलादि आर्धधातुक को इट् आगम विकल्प से होता है।

रधादि दिवादिगण का एक उपगण है। इसमें निम्नलिखित आठ धातुओं का पाठ है—

उदा० (1) रधिता
रध् इट् तृ सु।

(2) रद्धा
रध् तृ—इट् अभाव, झषस्तथो०,
रध् धृ—झलां जश् झशि,
रद् धृ सु—सु।

(3) नाशिता
णश् → नश् तृच्—णो नः,
नश् इट् तृ सु।

(4) नष्टा
नश् तृ—इट् निषेध,
न नुम् श् तृ—मस्जिनशोर्झलि, अनुबन्धलोप,
न न् ष् तृ—व्रश्चभ्रस्ज०,
नंष् तृ—नश्चाऽपदान्त०, ष्टुना ष्टुः, सु।

(5) तर्पिता
तृ प् इट् तृ—इट् पक्ष, गुण, सु।

(6) त्रप्ता
तृप् तृ—इट् अभाव,
तृ अम् प् तृ—अनुदात्तस्य चर्दु०,
त्रप् तृ सु—इको यणचि।

(7) तर्प्ता
तृप् तृच्—इट् अभाव, अम् अभाव,
तर्प् तृ सु—गुण।

(8) दर्पिता
दृप् इट् तृ—इट् पक्ष।

(9) द्रप्ता
दृ अम् प् तृ—'त्रप्ता' की तरह।

(10) दर्प्ता
दृप् तृ—इट् अभाव, अम् अभाव।

(11) द्रोहिता
द्रुह् इट् त्—इट् पक्ष।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(12) द्रोग्धा
द्रुह् तृ—इट् अभाव पक्ष,
द्रुघ् तृ—वा द्रुहमुह०,
द्रुघ् धृ—झषस्तथो०,
द्रुग् धृ सु—झलां जश् झशि।

(13) द्रोढा
द्रुह् तृ—इट् अभाव, घत्व अभाव,
द्रुद् तृ—हो ढः,
द्रुद् धृ—झषस्तथो०,
द्रुद् ढृ सु—ष्टुना ष्टु, गुण।

(14) मोहिता
मुह् इट् तृ—इट् पक्ष।

(15) मोग्धा
मुह् तृ—इट् अभाव,
मोह् तृ—पुगन्तलघूपधस्य च,
मोघ् तृ—वा द्रुहमुह०,
मोघ् धृ—झषस्तथो०,
मोग् धृ सु—झलां जश् झशि।

(16) मोढा
मुह् तृ—इट् अभाव, घत्व अभाव,
मोह् धृ—लघूपधगुण, झषस्तथो०,
मोद् धृ—हो ढः,
मोद् ढृ—ष्टुना ष्टुः, ढो ढे लोपः, सु।

(17) स्नोहिता
ष्णुह् → स्नुह्—धात्वादेः षः सः, नकार,
स्नुह् इट् तृ—इट् पक्ष, गुण।

(18) स्नोग्धा
स्नुह् तृ—पूर्ववत्, इट् अभाव,
स्नोघ् तृ—लघूपधगुण, वा द्रुहमुहष्णुह०,
स्नोघ् धृ—झषस्तथोर्धो०,
स्नोग् धृ सु—झलां जश् झशि।

(19) स्नोढा
स्नुह् तृच्—पूर्ववत्, इट् अभाव, घत्व अभाव,
स्नोह् धृ—गुण, झषस्तथो०,
स्नोद् धृ—हो ढः,
स्नोद् ढृ—ष्टुना ष्टुः, ढो ढे लोपः, सु।

(20) स्नेहिता
ष्णिह् → स्निह्—धात्वादेः षः सः, नकार,
स्निह् इट् तृ—'स्नोहिता' की तरह।

(21) स्नेग्धा
स्निह् तृच्—पूर्ववत्, 'स्नोग्धा' की तरह।

(22) स्नेढा
स्निह् तृ—'स्नोढा' की तरह।

क्रादि०—क्रादि नियम से लिट् में रधादि धातुओं से पर होने के कारण कुछ विद्वान् विकल्प चाहते हैं। दूसरे कहते हैं—पूर्व विधि का इट् निषेध के विधानसामर्थ्य से निषेध नियम के बलवान् होने से नित्य इट् होना चाहिए।

(23) ररन्धिव
रध् व—लिट्, वस्, परस्मैपदानां णल्०,
रन्ध् इव—'रधिजभोरचि' से नुम्, इट्,
र रन्ध् इव—द्वित्व, हलादिः शेषः।

(24) ररन्धिम
रध् म—पूर्ववत्।

(3325) निरः कुषः *46* (2560)

'निर्' इत्येवम्पूर्वात् कुष उत्तरस्य वलादेरार्धधातुकस्य वा इडागमो भवति। निष्कोष्टा, निष्कोषिता। निष्कोष्टुम्, निष्कोषितुम्। निष्कोष्टव्यम्, निष्कोषितव्यम्। निर इति किम्? कोषिता, कोषितुम्, कोषितव्यम्। 'निसः' इति वक्तव्ये 'निरः' इति निर्देशेन रेफान्तमुपसर्गान्तरमस्तीति ज्ञाप्यते। (तेन) तस्य हि निलयनमिति 'उपसर्गस्यायतौ' (8.2.19) इति लत्वं भवति। निसो हि रुत्वस्यासिद्धत्वाल्लत्वं न स्यात्।

अर्थ—निर् है पूर्व में जिसके, ऐसे कुष् धातु के अङ्ग से उत्तर वलादि आर्धधातुक को इट् विकल्प से होता है।

उदा० (1) निष्कोषिता
निर् कुष् तृच्—इट् हुआ,
निष् कोष् तृ—विसर्जनीय, 'इदुदुपधस्य' से षत्व, गुण,
निष् कोष् टा—सु।

(2) निष्कोष्टा
इट् अभाव पक्ष में।

(3) निष्कोषितुम्
निर् कुष् तुमुन्—इट्, पूर्ववत्, सु।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(4) निष्कोष्टुम्
इट् अभाव पक्ष।

(5) निष्कोषितव्यम्
निर् कुष् तव्यत् सु—पूर्ववत् इट्, गुण।

(6) निष्कोष्टव्यम्
इट् अभाव पक्ष।

निर०—निर् है पूर्व में जिसके, ऐसे कुष् से उत्तर वलादि आर्धधातुक को इट् होता है।

(7) कोषिता
कुष् तृ—नित्य इट्, गुण, सु।

(8) कोषितुम्
कुष् तुमुन्—पूर्ववत् इट्।

(9) कोषितव्यम्
नित्य इट्, सु।

निस०—'निस्' कहना चाहिए। इसके स्थान पर 'निर्' के निर्देश से ज्ञापित होता है कि रेफान्त उपसर्ग पृथक् है। उसका उपसर्गस्यायतौ से 'निलयन' आदि में लत्व होता है। कारण कि 'निस्' के सकार पर आदेशभूत रुत्व के असिद्ध होने से लत्व नहीं होता है।

(10) निलयनम्
निर् अय् ल्युट् सु।

(3326) इण्निष्ठायाम् *47* (3045)

निरः कुषो निष्ठायामिडागमो भवति। निष्कुषितः। निष्कुषितवान्। इड्ग्रहणं नित्यार्थम्। आरम्भो हि 'यस्य विभाषा' (7.2.15) इत्यस्य बाधकः, अन्यथा हि विकल्पार्थ एव स्याद्। अत्रैव नित्यमिडागमः, उत्तरत्र विकल्प एवेति।

अर्थ—'निर्' है पूव में जिसके, ऐसे कुष् धातु के अङ्ग से उत्तर निष्ठासंज्ञक प्रत्यय को इट् आगम होता है।

उदा० (1) निष्कुषितः
निर् कुष् क्त—इट्, सु।

(2) निष्कुषितवान्
क्तवतु—इट् हुआ पूर्ववत्।

इड्०—प्रकृत सूत्र में 'इट्' का अनुवर्त्तन सुलभ होने पर भी पुनः 'इट्' का ग्रहण विकल्प की निवृत्ति के लिए है।[1] विधान 'यस्य विभाषा' का बाधक है। अन्यथा विकल्प के लिए ही होता है। यहाँ नित्य इट् आगम होता है। उत्तर शास्त्र में विकल्प ही होता है।

(3327) तीषसहलुभरुषरिषः *48* (2340)

तकारादावार्धधातुके इषु, सह, लुभ, रुष, रिष–इत्येतेभ्यो वा इडागमो भवति। इषु–एष्टा, एषिता। 'इषु इच्छायाम्' (धा०पा० 1392)–इत्यस्यायं विकल्प इष्यते। यस्तु 'इष गतौ' (धा०पा० 1188) इति दैवादिकः, तस्य–प्रेषिता, प्रेषितुम्, प्रेषितव्यमिति नित्यं भवति। योऽपि 'इष आभीक्ष्ण्ये' (धा०पा० 1526) इति क्र्यादौ पठ्यते, तस्याप्येवमेव। तदर्थमेव 'तीषसह' (7.2.48) इति सूत्रे केचिदुदितमिषं पठन्ति। सह–सोढा, सहिता। लुभ–लोब्धा, लोभिता। रुष–रोष्टा, रोषिता। रिष–रेष्टा, रेषिता। तीति किम्? एषिष्यति।

अर्थ—इष्, सह, लुभ्, रुष् तथा रिष्—इन अङ्गों से उत्तर तकारादि आर्धधातुक को इट् आगम विकल्प से होता है।

'ति' पद को विभक्तिविपरिणाम से 'तः' इस प्रकार षष्ठ्यन्त बना कर तदादि विधि कर ली जाती है।

उदा० (1) एषिता
इष् इट् तृच्—लघूपधगुण, सु।

(2) एष्टा
इष् तृच्—गुण, ष्टुना ष्टुः, इट् का निषेध।

इषु०—धातुपाठ में इष् धातु का तीन स्थलों पर पाठ प्राप्त होता है—

(क) इषु इच्छायाम् (तुदा०पर०),
(ख) इष आभीक्ष्ण्ये (क्र्या०पर०),
(ग) इष गतौ (दि०पर०)।

'इषु इच्छायाम्' इस धातु से ही विकल्प होता है। 'इष गतौ' से नित्य इट् होता है। यथा—

(3) प्रेषिता
प्र इष् तृ—इट्, गुण, एङि पररूपम्, सु।

(4) प्रेषितव्यम्
प्र इष् तव्यत्—पूर्ववत्।

(5) प्रेषितुम्

1. न्यास 7.2.47

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्र इष् तुमुन्—पूर्ववत्।

योऽपि०—जो 'इष आभीक्ष्ण्ये' यह क्र्यादिगण में पठित है, उसे भी इसी प्रकार होता है। इसलिए 'तीषसह०' इस सूत्र में कुछ विद्वान् 'इषु' इस प्रकार उदित् पाठ स्वीकार करते हैं।

हरदत्त के अनुसार इष तथा सह विकरणान्त पठित हैं। 'इष' शविकरणान्त तथा सह शप् विकरणान्त है।[1] दैवादिक तथा क्रैयादिक धातुओं में औपदेशिक आकार अनुबन्ध है, विकरण नहीं। अतः 'सहचरिताऽसहचरितयोः सहचरितस्यैव ग्रहणम्' परिभाषा से अकार विकरण वाले 'सह' धातु के सहयोगवशात् अकार विकरण वाले 'इष्' तौदादिक धातु का ग्रहण होता है।

परन्तु महाभाष्य में एक वार्त्तिक[2] के द्वारा दैवादिक इष् धातु का प्रतिषेध किया गया है। हरदत्त की व्याख्या के अनुसार दैवादिक इष् में सूत्र की प्राप्ति ही नहीं है। तब वार्त्तिककार की वार्त्तिक व्यर्थ होकर ज्ञापित करती है कि प्रकृत सूत्र तीनों धातुओं में प्रवृत्त होता है। वार्त्तिक के द्वारा निषेध होने से शेष 'इष्' धातुओं (तौदादिक व क्रैयादिक) में सूत्र प्रवृत्त होता है। अतः 'इष्' के द्वारा केवल तौदादिक व क्रैयादिक इष् का ही ग्रहण होता है।

(6) सहिता
सह् इट् तृच् सु।

(7) सोढा
सह् तृच्—इट् का निषेध,
सोह् तृ—सहिवहोरोद०,
सोढ् धृ—हो ढः, झषस्तथो०, ष्टुना ष्टुः।

(8) लोभिता
लुभ् इट् तृ—लघूपधगुण,
लोभ् इ तृ सु—विभक्तिकार्य।

(9) लोब्धा
लुभ् तृ—इट् का निषेध, लघूपधगुण,
लोभ् धृ—झषस्तथो०,
लोब् धृ सु—झलां जश् झशि, सु।

(10) रोषिता
रुष् इ तृ—इट्,
रोष् इ तृ सु—लघूपधगुण।

(11) रोष्टा
रुष् तृ—इट् निषेध, गुण,
रोष् ट्टृ सु—ष्टुना ष्टुः।

(12) रेषिता
रिष् इ तृ—गुण।

(13) रेष्टा
रिष् तृ—इट् निषेध,
रेष् तृ—गुण, सु।

तीति०—तकारादि आर्धधातुक को इट् होता है।

(14) एषिष्यति
इष् स्य ति—'लृट् शेषे च', स्यतासी लृलुटोः, आर्धधातुक 'स्य' है, परन्तु तकारादि नहीं है,
इष् इ स्य ति—नित्य इट् हुआ, गुण, षत्व।

(3328) सनीवन्तर्धभ्रस्जदम्भुश्रिस्वृयूर्णुभरज्ञपिसनाम् *49* (2618)

इवन्तानाम् धातूनाम्, ऋधु, भ्रस्ज, दम्भु, श्रि, स्वृ, यू, ऊर्णु, भर, ज्ञपि, सन्–इत्येतेषां च सनि वा इडागमो भवति। इवन्तानाम्–दिदेविषति, दुद्यूषति। सिसेविषति, सुस्यूषति। ऋध्–अर्दिधिषति, ईर्त्सति। भ्रस्ज–बिभ्रज्जिषति, बिभ्रक्षति, बिभर्ज्जिषति, बिभर्क्षति। दम्भु–दिदम्भिषति, धिप्सति, धीप्सति। श्रि–उच्छिश्रयिषति, उच्छिश्रीषति। स्वृ–सिस्वरिषति, सुस्वूर्षति। यु–यियविषति, युयूषति। ऊर्णु–प्रोर्णुनविषति, प्रोर्णुनुविषति, प्रोर्णुनूषति। 'भर' इति भृञित्येतस्य भौवादिकस्य ग्रहणम्; शपा निर्देशात्। बिभरिषति, बुभूर्षति। ज्ञपि–जिज्ञपयिषति, ज्ञीप्सति। सन्–सिसनिषति, सिषासति। केचिदत्र 'भरज्ञपिसनितनिपतिदरिद्राणाम्' इति पठन्ति। तितनिषति, तितंसति, तितांसति। पिपतिषति, पित्सति। दिदरिद्रिषति, दिदरिद्रासति। सनीति किम्? देविता। भ्रष्टा।

अर्थ—'इव्' है अन्त में जिसके, ऐसे अङ्ग व ऋध्, भ्रस्ज्, दम्भ्, ति, स्वृ, यु, ऊर्णु, भृ, ज्ञपि तथा सन्—इन अङ्गों से उत्तर सन् प्रत्यय को इट् आगम विकल्प से होता है।

'सनि' पद को विभक्तिविपरिणाम के द्वारा 'सनः' इस प्रकार षष्ठ्यन्त बना लिया जाता है।

उदा० (क) इवन्तात्—

(1) दिदेविषति

1. पदम० 7.2.48
2. महा० 7.2.48

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दिव् इट् सन्—इट् हुआ, गुण, द्वित्व, ह्रस्वः,
दिदेविष—षत्व, धातुसंज्ञा,
दिदेविष शप् तिप्—शप; अतो गुणे।

(2) दुद्यूषति
दिव् स—इट् निषेध, 'हलन्ताच्च' से कित्त्व,
दि ऊठ् स—च्छ्वोः शूडनु०, इको यणचि,
दु द्यू ष—द्वित्व, हलादिः शेषः, ह्रस्वः, षत्व, धातुसंज्ञा,
दुद्यूष शप् तिप्—अतो गुणे।

(3) सिसेविषति
षिव् → सिव् सन्—धात्वादेः षः सः, इट् पक्ष,
सेविस—गुण, द्वित्व, हलादिः शेषः, ह्रस्वः, षत्व,
सिसेविष शप् ति—धातुसंज्ञा, अतो गुणे।

(4) सुस्यूषति
सिव् सन्—पूर्ववत्, इट् अभाव पक्ष,
स्यूठ् स—पूर्ववत् ऊठ्, यण्, द्वित्व, हलादि शेष,
सुस्यूष—ह्रस्वः, धातुसंज्ञा, तिप् आदि।

(ख) अन्येभ्यः—

(5) अर्दिधिषति
ऋध् इट् सन्—इट् पक्ष,
अर्धिष—लघूपधगुण, उरण् रपरः, षत्व, सन्यङों,
अर् धिष् धिष् अ—अजादेर्द्वितीयस्य, नन्द्राः संयो०,
अर् दिधिष् अ—हलादिः शेषः, अभ्यासे चर्च, धातुसंज्ञा,
अर्दि धिष शप् तिप्—अतो गुणे।

(6) ईर्त्सति
ऋध् सन्—इट् अभाव, सन्यङोः,
ऋ धस ध् स—अजादेर्द्वितीयस्य,
ऋ दध् स—हलादिः शेषः, अभ्यासे चर्च,
ऋ दिध् स—'सन्यतः' से इत्व,
ई र् दि ध् स—आप् ज्ञप्यृधामीत्, उरण् रपरः,
ईर् ध् स—अत्र लोपोऽभ्यासस्य,
ईर् त् स—खरि च, धातुसंज्ञा,
ईर् त्स शप् तिप्—अतो गुणे।

(7) बिभर्ज्जिषति
यहाँ इट् का विकल्प तथा रम् का विकल्प होने से चार रूप बनते हैं (इट् पक्ष, रम् पक्ष)।
भ्रस्ज् इट् सन्—इट् पक्ष, सन्यङोः,
ब भ्रस्ज् इ स—हलादिः शेषः, अभ्यासे चर्च,
बिभ्रस्ज् इ स—सनयतः,
बि भ रम् ज् इ स—भ्रस्जोरोपधयो रम० से रेफ व उपधा दोनों के स्थान पर[1],
बिभर्ज्ज् इ स—अचो रहाभ्यां द्वे,
बिभर्ज्ज् इष शप् तिप्—षत्व, धातुसंज्ञा, अतो गुणे।
भ्रस्ज् इ स—इस दशा में रम् करके भी रूप बनता है। यथा—
भ र् ज् इ स → ब भर्ज् इ स → बभर्ज्ज् इष शप् तिप्।

(8) बिभ्रज्जिषति
(इट् पक्ष रम् अभाव)
भ्रस्ज् इ सन्—इट् पक्ष, रम् अभाव, द्वित्व,
बि भ्रस्ज्—सन्यतः,
बि भ्रश् ज्—स्तोः श्चुना श्चुः,
बिभ्रज्ज् इ ष—झलां जश् झशि, षत्व, धातुसंज्ञा,
बिभ्रज्जिष शप् तिप्—अतो गुणे।

(9) बिभर्क्षति
(इट् अभाव, रम् पक्ष)
भ्रस्ज् सन्—इट् निषेध,
भर्ज् स—भ्रस्जोरोपधयो रम्०, द्वित्व,
बि भर्ज् स—सन्यतः,
बिभर्क् ष—चोः कुः, इण्कोः, धातुसंज्ञा,
बिभर्क्ष शप् तिप्—अतो गुणे।

(10) बिभ्रक्षति
भ्रस्ज् स—इट् अभाव, रम् अभाव,
बिभ्रस्ज् स—द्वित्व, अभ्यासकार्य,
बिभ्रज् स—स्कोः संयोगा०,
बिभ्रष् स—व्रश्चभ्रस्ज०,
बिभ्रक् स—षढोः कः सि, षत्व,
बिभ्रक्ष शप् तिप्—अतो गुणे।

(11) दिदम्भिषिति
दम्भ् इ सन्—इट् पक्ष, सन्यङोः,
दि दम्भिष—द्वित्व, अभ्यासकार्य, धातुसंज्ञा,
दि दम्भिष शप् तिप्—अतो गुणे।

(12) धिप्सति
दम्भ् सन्—इट् अभाव,

1. न्यास 7.2.49···रोपधयोरिति षष्ठीनिर्देशाद्रेफस्योपधायाश्च सकारस्य निवर्त्तकः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दिम्भ् स—दम्भ इच्च, हलन्ताच्च से सन् कित्,
दिभ् स—अनिदितां हल उप०,
दिप् स—खरि च,
धिप् स—एकाचो बशो०, द्वित्व,
दि धिप् स—हलादिः शेषः, अभ्यासे चर्च,
धिप्स शप् तिप्—अतो गुणे।

(13) धीप्सति
ईत् पक्ष में रूप बनता है।

(14) उच्छिश्रयिषति
श्रि इट् सन्—इट् हुआ,
शि श्रि इ स—सन्यङोः, हलादिः शेषः,
शि श्रयिस—सार्वधातुकार्धधातु०, अयादेश, षत्व, धातुसंज्ञा,
उद् शिश्रयिषति—अतो गुणे, शश्छोऽटि।

(15) उच्छिश्रीषति
इट् अभाव पक्ष में
श्रि सन्—'इको झल्' से कित्, गुण का निषेध, अज्झनगमां० से दीर्घ,
श्री स—सन्यङोः, ह्रस्वः,
शि श्रीष—षत्व, धातुसंज्ञा,
उच्छिश्रीषति—शेष पूर्ववत्।

(16) सिस्वरिषति
स्वृ इट् सन्—इट् हुआ,
सृ स्वरिस—सन्यङोः, हलादिः शेषः, गुण,
सि स्वरिष—उरत्, उरण् रपरः, हलादिः शेषः, सन्यतः, षत्व,
सिस्वरिष शप् तिप्—धातुसंज्ञा, लकार।

(17) सुस्वूर्षति
स्वृ सन्—इट् अभाव पक्ष,
स्वॄ स—अज्झनगमां०,
स्वुर् स—उदोष्ठ्यपूर्वस्य०,
स्वुर्ष—आदेशप्रत्यययोः,
स्वुर्ष् स्वुर्ष् अ—'सन्यङोः' से द्वित्व,
सु स्वुर्ष् अ—हलादिः शेषः,
सुस्वूर्ष शप् तिप्—'हलि च' से दीर्घ, धातुसंज्ञा, लकार।

(18) यियविषति
यु इट् सन्—इट्, सन्यङोः,
यु यो इ स—गुण,
यि यव् इ स—'ओः पुयण् ज्यपरे', अव् आदेश,
यि यविष् शप् तिप्—षत्व, धातुसंज्ञा, लकार।

(19) युयूषति
यु सन्—इट् अभाव,
यूस—अज्झनगमां०, द्वित्व, ह्रस्वः, षत्व,
युयूष—धातुसंज्ञा, लकार।

(20) प्रोर्णुनविषति
ऊर्णु सन्—इट्, सन्यङोः, अजादेर्द्वितीयस्य, न न्द्राः संयो०,
ऊर् नु नु इ स—सार्वधातुकार्धधातुक०, अव् आदेश,
ऊर्णु नविष—षत्व, णत्व, धातुसंज्ञा,
प्र ऊर्णु नविष शप् तिप्—अतो गुणे।

(21) प्रोर्णुनुविषति
ऊर्णु सन्—'विभाषोर्णोः' से सन् विकल्प से ङिद्वत्, इट्,
ऊर् नु नु व् इ स—'अचि श्नुधातु०' से उवङ्, पूर्ववत् णत्व, षत्व तथा लकार।

(22) प्रोर्णुनूषति
ऊर् नु नू स—इट् अभाव, अज्झनगमां० से दीर्घ, पूर्ववत् दीर्घ, द्वित्व, ह्रस्वः,
प्र ऊर् नु नू ष—षत्व, णत्व, लकार।

भर०—'भर' के द्वारा भौवादिक 'भृञ्' का ग्रहण होता है। 'भर' में शप् का निर्देश किया गया है। अतः—

(23) बिभरिषति
भृ इट् सन्—इट्, सन्यङोः, उरत्, उरण् रपरः, हलादिः शेषः,
भ भृ इ स—अभ्यासे चर्च, सन्यतः, गुण, षत्व, धातुसंज्ञा,
बिभरिष—लकार।

(24) बुभूर्षति
भृ सन्—इट् अभाव, अज्झनगमां० से दीर्घ,
भूर् स—उदोष्ठ्यपूर्वस्य, हलि च से दीर्घ, सन्यङोः,
भूर् भूर् स—हलादिः शेषः, ह्रस्वः, अभ्यासे चर्च, षत्व,
बुभूर्ष—धातुसंज्ञा, लकार।

(25) जिज्ञपयिषति
ज्ञा णिच्—अर्त्तिह्री० से पुक्,
ज्ञपि सन्—इट्, द्वित्व, हलादिः शेषः,
जिज्ञपयिष—गुण, अय् आदेश, सन्यतः, धातुसंज्ञा,
जिज्ञपयिष शप् तिप्—अतो गुणे।

(26) ज्ञीप्सति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जि ज्ञप् स—इट् अभाव—इस दशा में,
ज्ञीप् स—अत्र लोपोऽभ्यासस्य, आप् ज्ञप्यृ०,
ज्ञीप् स शप् तिप्—धातुसंज्ञा, कर्त्तरि शप्, अतो गुणे से पररूप हुआ।

(27) सिसनिषति
सन् इट् सन्—इट्,
स सनि स—द्वित्व, हलादिः शेषः,
सि सनिष—सन्यतः, षत्व, धातुसंज्ञा, लकार।

(28) सिषासति
सन् सन्—इट् अभाव,
स आ स—जनसनखनां० से आकार, अकः सवर्णे दीर्घः,
स सा स—सन्यङोः, ह्रस्वः,
सिषास—सन्यतः, षत्व, धातुसंज्ञा, लकार।

केचिद०—कुछ विद्वान् 'भरज्ञपिसनितनिपतिदरिद्राणाम्' इस प्रकार सूत्र का स्वरूप मानते हैं। जो सूत्र का इस प्रकार स्वरूप स्वीकार नहीं करते, उनके अनुसार 'तनिपतिदरिद्राणामुपसङ्ख्यानम्' वार्त्तिक का पाठ होना चाहिए।

(29) तितनिषति
तन् इट् सन्—इट् पक्ष में द्वित्व, सन्यतः से इकार तथा षत्व आदि होकर रूप बनता है।

(30) तितंसति
तन् सन्—इट् अभाव, द्वित्व, सन्यतः,
तितंस्·शप् तिप्—नश्चाऽपदान्त०, लकार।

(31) तितांसति
इट् अभाव पक्ष में 'तनोतेर्विभाषा' से विकल्प से दीर्घ होकर रूप बनता है।

(32) पिपतिषति
पत् इट् सन्—'तितनिषति' की तरह।

(33) पित्सति
पत् सन्—इट् अभाव, 'सनि मीमाघु०' से 'ईस्' आदेश,
पिस्त् स—स्कोः संयोगा०,
पि पित् स—द्वित्व, हलादिः शेषः, अभ्यासलोप,
पित्स शप् तिप्—अतो गुणे।

(34) दिदरिद्रिषति
दरिद्रा इट् सन्—इट् पक्ष में, सन्यङोः, एकाचो द्वे प्रथमस्य,
दि दरिद्रा इ स—सन्यतः, 'दरिद्रातेरार्धधा०' से आकारलोप,
दिदरिद्रिष शप् तिप्—षत्व, धातुसंज्ञा।

(35) दिदरिद्रासति
इट् अभाव पक्ष में षत्व नहीं होता है।

सनीति०—सन् प्रत्यय को इट् आगम विकल्प से होता है।

(36) देविता
दिव् इट् तृ—सन् परे नहीं है, पाक्षिक इट् नहीं हुआ, नित्य इट् हुआ, लघूपधगुण, सु।

(37) भ्रष्टा
भ्रस्ज् तृ—इट् नहीं हुआ, स्कोः संयोगाद्यो०,
भ्रष् तृ—व्रश्चभ्रस्ज०,
भ्रष् तृ सु—ष्टुना ष्टुः।

(3329) क्लिशः क्त्वानिष्ठयोः *50* (3049)

क्लिशः क्त्वानिष्ठयोर्वा इडागमो भवति। क्लिष्ट्वा, क्लिशित्वा। क्लिष्टः, क्लिष्टवान्। क्लिशितः, क्लिशितवान्। 'क्लिशू विबाधने' (धा०पा० 1523)–इत्यस्य क्त्वायां विकल्पः सिद्ध एव, निष्ठायां तु 'यस्य विभाषा' (7.2.15) इति प्रतिषेधः प्राप्नोति। 'क्लिश उपतापे' (धा०पा० 1162) इत्यस्य तु क्त्वायाम्, निष्ठायां च नित्यमिडागमः प्राप्नोति, तदर्थं क्त्वाग्रहणं क्रियते।

अर्थ—क्लिश् धातु के अङ्ग से उत्तर क्त्वा तथा निष्ठासंज्ञक प्रत्यय को इट् का आगम विकल्प से होता है।

उदा० (1) क्लिशित्वा
क्लिश् इट् क्त्वा—लशक्वतद्धिते, रलो व्युपधा० से पाक्षिक कित्त्व तथा 'मृडमृदगुध०' से नित्य कित्त्व,

(2) क्लिष्ट्वा
क्लिश् त्वा—इट् अभाव,
क्लिष् त्वा सु—व्रश्चभ्रस्ज०, ष्टुना ष्टुः।

(3) क्लिशितः
क्लिश् क्त—इट् हुआ।

(4) क्लिष्टः
इट् अभाव, 'क्लिष्ट्वा' की तरह।

(5) क्लिशितवान्
क्तवतु, इट्।

(6) क्लिष्टवान्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इट् अभाव।

क्लिशू०—'क्लिशू विबाधने—इसके ऊदित होने से स्वरतिसूतिसूयति० से इट् का विकल्प सिद्ध है। निष्ठा में 'यस्य विभाषा' से निषेध प्राप्त है। 'क्लिश उपतापे' इससे क्त्वा प्रत्यय तथा निष्ठा प्रत्यय में नित्य इट् प्राप्त है। इसलिए 'क्त्वा' का ग्रहण किया गया है।

(3330) पूङश्च *51* (3050)

पूङश्च क्त्वानिष्ठयोर्वा इडागमो भवति। पूत्वा, पवित्वा। सोमोऽतिपूतः, सोमोऽतिपवितः। पूतवान्, पवितवान्। 'श्युकः किति' (7.2.11) इति प्रतिषेधे प्राप्ते विकल्पो विधीयते।

अर्थ—पूङ् धातु के अङ्ग से उत्तर क्त्वा तथा निष्ठासंज्ञक प्रत्ययों को विकल्प से इट् आगम होता है।

उदा० (1) पवित्वा
पू इ क्त्वा—इट् पक्ष, पूङः क्त्वा च,
पो इ त्वा सु—गुण, अव्।

(2) पूत्वा
पू क्त्वा—इट् अभाव, सेट् क्त्वा के अकित् होने से यहाँ क्त्वा कित् हुआ, गुणनिषेध,

(3) पवितः
पू इ क्त—पूङः क्त्वा च,
पो इ त सु—पूर्ववत्।

(4) पूतः
पू क्त—इट् अभाव।

(5) पवितवान्
पू क्तवतु—इट्, शेष पूर्ववत्।

(6) पूतवान्
क्तवतु, इट् अभाव।

श्युक०—'श्युकः किति' से निषेध प्राप्त था। तब विकल्प कहा गया है।

(3331) वसतिक्षुधोरिट् *52* (3046)

वसतेः क्षुधेश्च क्त्वानिष्ठयोरिडागमो भवति। उषित्वा। उषितः। उषितवान्। क्षुधित्वा। क्षुधितः। क्षुधितवान्। 'वसति' इति विकरणनिर्देशः धातुनिर्देशार्थ एव। वस्तेस्तूदात्तत्वादेव भवितव्यमिटा। पुनरिड्ग्रहणं नित्यार्थम्।

अर्थ—वस् तथा क्षुध् धातुओं के अङ्गों से उत्तर क्त्वा तथा निष्ठासंज्ञक प्रत्ययों को इट् आगम होता है।

उदा० (क) क्त्वि—

(1) उषित्वा
वस् इ क्त्वा—इट्, 'न क्त्वा सेट्' से अकित् हुआ, 'मृडमृदगुध०' से कित्त्व, 'वचिस्वपियजादी०' से सम्प्रसारण,
उष् इ त्वा सु—'शासिवसिघसीनां०' से षत्व।

(2) क्षुधित्वा
क्षुध् इ क्त्वा—रलो व्युपधा० से पाक्षिक कित्त्व, लघूपधगुण का निषेध, सु।

(ख) निष्ठायाम्—

(3) उषितः
वस् क्त—पूर्ववत् इट्, सम्प्रसारण, षत्व, सु आदि होकर रूप बनता है।

(4) उषितवान्
वस् क्तवतु—पूर्ववत्।

(5) क्षुधितः
क्षुध् इट् क्त—पूर्ववत् गुण का निषेध।

(6) क्षुधितवान्
क्तवतु—पूर्ववत्।

वसति०—'वसति' में विकरण का निर्देश धातु के निर्देश के लिए है। यहाँ शप् का निर्देश होने से भौवादिक 'वस्' का ग्रहण होता है। वस् आदादिक उदात्तोपदेश है। अतः वहाँ इट् होता ही है।

पुनरि०—'इट्' पद का अधिकार होने पर भी प्रकृत सूत्र में 'इट्' का ग्रहण किया गया है, ताकि इट् नित्य हो।

(3332) अञ्चेः पूजायाम् *53* (3047)

अञ्चेः पूजायामर्थे क्त्वानिष्ठयोरिडागमो भवति। अञ्चित्वा जानु जुहोति। अञ्चिता अस्य गुरवः। 'उदितो वा' (7.2.56) इति क्त्वाप्रत्यये विकल्पः प्राप्तः, निष्ठायाम् 'यस्य विभाषा' (7.2.15) इति प्रतिषेधः प्राप्तः, तदर्थमिदं प्रारब्धम्। पूजायामिति किम्? उदक्तमुदकं कूपात्। उद्धृतमित्यर्थः।

अर्थ—पूजा अर्थ में वर्त्तमान अञ्च् धातु से उत्तर क्त्वा तथा निष्ठासंज्ञक प्रत्ययों को इट् आगम होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उदा० (1) अञ्चित्वा
अञ्च् इ क्त्वा सु—इट् हुआ।

(2) अञ्चितः
अञ्च् इ क्त सु—इट् हुआ। मतिबुद्धि। अनिदितां०।

उदितो०—'उदितो वा' से क्त्वा में इट् का विकल्प प्राप्त था। निष्ठा में 'यस्य विभाषा' से निषेध प्राप्त था। इसलिए यह विधान है।

पूजाया०—पूजा अर्थ में वर्त्तमान 'अञ्च्' धातु से उत्तर प्रत्यय को इट् होता है।

(3) उदक्तम् उदकम्
उद् अञ्च् क्त—इट् नहीं हुआ,
उद् अच् त—अनिदितां०,
उद् अक् त सु—कुत्व।

(3333) लुभो विमोहने *54* (3048)

लुभो विमोहनेऽर्थे वर्त्तमानात् क्त्वानिष्ठयोरिडागमो भवति। लुभित्वा, लोभित्वा। विलुभिताः केशाः। विलुभितः सीमन्तः। विलुभितानि पदानि। विमोहनम् = आकुलीकरणम्, तत्र क्त्वायां 'तीषसहलुभ' (7.2.48) इति विकल्पः, निष्ठायाम् 'यस्य विभाषा' (7.2.15) इति प्रतिषेधः प्राप्तः। विमोहन इति किम्? लुब्धो वृषलः। शीतेन पीडित इत्यर्थः। लुब्ध्वा, लुभित्वा, लोभित्वा। गार्ध्ये यथाप्राप्तमेव भवति॥

अर्थ—विमोहन अर्थ में वर्त्तमान् लुभ् धातु के अङ्ग से उत्तर क्त्वा तथा निष्ठासंज्ञक प्रत्ययों को इट् का आगम होता है।

उदा० (1) लुभित्वा
लुभ् इट् क्त्वा सु—कित् होने से गुणनिषेध।

(2) लोभित्वा
'रलो व्युपधा०' से पक्ष में कित्त्व होने से गुण हुआ है।

(3) विलुभिताः केशाः
वि लुभ् इ क्त—'जस्' विभक्ति।
इसी प्रकार विलुभितः सीमन्तः तथा विलुभितानि पदानि।

तत्र०—क्त्वा प्रत्यय में 'तीषसहलुभ०' से इट् का विकल्प प्राप्त था। निष्ठा में 'यस्य विभाषा' से इट् का निषेध प्राप्त था।

विमोह०—विमोहन अर्थ में ही सूत्रोक्त इट् आगम होता है।

(4) लुब्धः
लुभ् क्त—इट् नहीं हुआ,
लुभ् ध—झषस्तथो०,
लुब् ध सु—झलां जश् झशि।

(5) लुब्धा
लुभ् तृ सु—सभी कार्य 'लुब्ध' की तरह।

(6) लुभित्वा
इट्, गुणनिषेध।

(7) लोभित्वा
इट्, गुण।

गार्ध्ये०—गार्ध्य अर्थ में यथाप्राप्त होता है।

(3334) जॄव्रश्च्योः क्त्वि *55* (3327)

'जॄ' 'व्रश्चि'-इत्येतयोः क्त्वाप्रत्यये इडागमो भवति। जरित्वा, जरीत्वा। व्रश्चित्वा। 'जॄ' इत्येतस्य 'श्र्युकः किति' (7.2.11) इति प्रतिषेधः प्राप्तो व्रश्चेरूदित्त्वाद्विकल्पः। क्त्वाग्रहणं निष्ठानिवृत्त्यर्थम्।

अर्थ—जॄ तथा व्रश्च् धातुओं के अङ्ग से उत्तर क्त्वा प्रत्यय को इट् आगम होता है।

उदा० (1) जरित्वा
जॄ इ क्त्वा—गुण हुआ।

(2) जरीत्वा
'वृतो वा' से पक्ष में दीर्घ हुआ।

जॄ इत्ये०—'श्र्युकः किति' से 'जॄ' से उत्तर क्त्वा को इट् का निषेध प्राप्त था। 'व्रश्चू' धातु के ऊदित् होने से 'स्वरतिसूति-सूयति०' से पाक्षिक इट् प्राप्त था। प्रकृत सूत्र से नित्य इट् होता है।

'क्त्वा' का अधिकार होने पर भी पुनः 'क्त्वा' का ग्रहण 'निष्ठा' पद की निवृत्ति के लिए है।

(3335) उदितो वा *56* (3328)

उदितो धातोः क्त्वाप्रत्यये परतो वा इडागमो भवति। शमु-शमित्वा, शान्त्वा। तमु-तमित्वा, तान्त्वा। दमु-दमित्वा, दान्त्वा।

अर्थ—उकार है इत् जिसका, ऐसे धातु के अङ्ग से उत्तर क्त्वा प्रत्यय को इट् आगम विकल्प से होता है।

उदा० (1) शमित्वा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शमु → शम् इ क्त्वा—'सु' होकर रूप बनता है।

(2) शान्त्वा
शम् क्त्वा—इट् अभाव,
शाम् त्वा—अनुनासिकस्य क्विझलो०,
शान्त्वा सु—अनुस्वार, परसवर्ण।

(3) तमित्वा
तमु → तम् इ क्त्वा—पूर्ववत्।

(4) तान्त्वा
'शान्त्वा' की तरह।

(5) दमित्वा
दम् इ क्त्वा—'शमित्वा' की तरह।

(6) दान्त्वा
'शान्त्वा' की तरह।

(3336) सेऽसिचि कृतचृतच्छृदतृदनृतः *57* (2506)

सकारादावसिच्यार्धधातुके कृत, चृत, छृद, तृद, नृत्-इत्येतेभ्यो धातुभ्यो वा इडागमो भवति। कृत्-कर्त्स्यति। अकर्त्स्यत्। चिकृत्सति। कर्तिष्यति। अकर्तिष्यत्। चिकर्त्तिषति। चृत-चर्त्स्यति। अचर्त्स्यत्। चिचृत्सति। चर्तिष्यति। अचर्तिष्यत्। चिचर्तिषति। छृद-छर्त्स्यति। अच्छर्त्स्यत्। चिच्छृत्सति। छर्दिष्यति। अच्छर्दिष्यत्। चिच्छर्दिषति। तृद्-तर्त्स्यति। अतर्त्स्यत्। तितृत्सति। तर्दिष्यति। अतर्दिष्यत्। तितर्दिषति। नृत्-नर्त्स्यति। अनर्त्स्यत्। निनृत्सति। नर्तिष्यति। अनर्तिष्यत्। निनर्तिषति। से इति किम्? कर्तिता। असिचीति किम्? अकर्तीत्।

अर्थ—कृत्, चृत्, छृद्, तृद् तथा नृत्—इन अङ्गों से उत्तर सकारादि आर्धधातुक को इट् आगम विकल्प से होता है; परन्तु सिच् प्रत्यय को नहीं होता है।

'से' इस पद में सप्तमी है। सकार में अकार उच्चारणार्थ है। यहाँ षष्ठी के अर्थ में सप्तमी है।

'कृत्' के द्वारा 'कृती छेदने' (तौदादिक) तथा 'कृती वेष्टने' (रौधादिक)—इन दोनों धातुओं का ग्रहण होता है।

उदा० (क) कृतः—
(1) कर्त्तिष्यति
कृत् स्य तिप्—ल्रट् शेषे च, स्यतासी ल्लुटोः,
कर्त् इ स्य ति—इट्, गुण, षत्व।

(2) कर्त्स्यति
इट् अभाव, गुण पूर्ववत्।

(3) अकर्तिष्यत्
कृत् स्य त्—ल्रङ्, तिप्, इतश्च, स्यतासी ल्लृ०,
कृत् इ स्य त्—इट्, गुण, षत्व,
अकर्त् इष्यत्—अट्।

(4) अकर्त्स्यत्
कृत् स्य त्—पूर्ववत्, इट् अभाव,
अकर्त् स्यत्—शेष पूर्ववत्।

(5) चिकर्त्तिषति
कृत् इ सन्—इट्, 'सन्यङोः' से द्वित्व,
च कृत् इ स—उरत्, कुहोश्चुः,
चि कर्त्तिष—सन्यतः, गुण, अचो रहाभ्यां०, षत्व,
चिकर्त्तिष अ ति—धातुसंज्ञा, लकार।

(6) चिकृत्सति
चि कृत् स—इट् अभाव पक्ष, शेष पूर्ववत्। 'हलन्ताच्च' से कित्त्व होने से गुणनिषेध।

(ख) चृतः—
(7) चर्तिष्यति
चृत् इट् स्य ति—ल्रट्, स्य आदि,
चर्त् इ स्य ति—गुण,
चर्त् इष्य ति—अचो रहाभ्यां द्वे, षत्व।

(8) चर्त्स्यति
इट् अभाव, 'कर्त्स्यति' की तरह।

(9) अचर्तिष्यत्
चृत् इ स्य त्—लुङ् 'अकर्तिष्यत्' की तरह।

(10) अचर्त्स्यत्
'अकर्त्स्यत्' की तरह।

(11) चिचर्त्तिषति
चृत् इ सन्—'चिकर्त्तिषति' की तरह सभी कार्य होकर रूप बनता है।

(12) चिचृत्सति
चृत् सन्—इट् अभाव पक्ष में 'चिकृत्सति' की तरह सभी कार्य।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(ग) छृदः—
(13) छर्दिष्यति
छृद् स्य ति—'चर्त्तिष्यति' की तरह।

(14) छर्त्स्यति
'चर्त्स्यति' की तरह।

(15) अच्छर्दिष्यत्
छृद् इट् स्य त्—लृङ्, इट् आदि,
अच्छर्दिष्यत्—सभी कार्य 'अचर्त्तिष्यत्' की तरह। 'छे च' से 'तुक्' हुआ है।

(16) अच्छर्त्स्यत्
इट् अभाव पक्ष में 'अचर्त्स्यत्' की तरह। 'तुक्' पूर्ववत् होता है।

(17) चिच्छर्दिषति
छृद् इ सन्—द्वित्व, सन्यङोः, हलादिः शेषः, उरत्,
चि छृद् इ स—अभ्यासे चर्च, सन्यतः,
चिच्छर्दिष शप् तिप्—गुण, षत्व, छे च, धातुसंज्ञा, अतो गुणे।

(18) चिच्छृत्सति
इट् अभाव पक्ष में गुण नहीं होता है। खरि च।

(घ) तृदः—
(19) तर्दिष्यति
'छर्दिष्यति' की तरह।

(20) तर्त्स्यति
'छर्त्स्यति' की तरह।

(21) अतर्दिष्यत्
लृङ्, इट्, गुण, अट् आदि।

(22) अतर्त्स्यत्
'अकर्त्स्यत्' की तरह।

(23) तितर्दिषति
'चिचर्त्तिषति' की तरह।

(24) तितृत्सति
'चिकृत्सति' की तरह।

(ङ) नृतः—
(25) नर्त्तिष्यति
'कर्त्तिष्यति' की तरह।

(26) नर्त्स्यति
'कर्त्स्यति' की तरह।

(27) अनर्त्तिष्यत्
'अकर्त्तिष्यत्' की तरह।

(28) अनर्त्स्यत्
'अकर्त्स्यत्' की तरह।

(29) निनर्त्तिषति
'चिकर्त्तिषति' की तरह।

(30) निनृत्सति
सन्, इट् अभाव, द्वित्व, अभ्यासकार्य।

से इति०—सकारादि प्रत्यय को इट् विकल्प से होता है।

(3) कर्तिता
कृत् इट् तृ सु—सकारादि परे नहीं है, पाक्षिक इट् न होकर नित्य इट् हुआ।

असिची०—सिच् प्रत्यय को पाक्षिक इट् नहीं होता है।

(32) अकर्त्तीत्
कृत् त्—लुङ्, इतश्च,
कृत् इ स् ई त्—सिच्, ईट्, नित्य इट्, इट ईटि,
अ कर्त् इ ई त्—गुण, अकः सवर्णे दीर्घः, अट्।

(3337) गमेरिट् परस्मैपदेषु *58* (2401)

गमेर्धातोः सकारादेरार्धधातुकस्य परस्मैपदेष्विडागमो भवति। गमिष्यति। अगमिष्यत्। जिगमिषति। गमेरिति किम्? चेष्यति। इड्ग्रहणं नित्यार्थम्। परस्मैपदेष्विति किम्? संगंसीष्ट। संगंस्यते। संजिगंसते, संजिगंसिष्यते। अधिजिगांसते, अधिजिगांसिष्यते। गमेरिडादेशस्य 'अज्झनगमां सनि' (6.4.16) इति दीर्घत्वम्। 'से' इत्येवगन्तास्मि, गन्तास्वः, गन्तास्मः। आत्मनेपदेन समानपदस्थस्य गमेरयमिडागमो नेष्यते। अन्यत्र सर्वत्रैवेष्यते। कृत्यपि हि भवति, परस्मैपदलुकि च–सञ्जिगमिषिता, अधिजिगमिषिता व्याकरणस्य; जिगमिष त्वमिति। पदशेषकारस्य पुनरिदं दर्शनम्–गम्युपलक्षणार्थं परस्मैपदग्रहणम्, परस्मैपदेषु यो गमिरुपलक्षितस्तस्मात्सकारादेरार्धधातुकस्येड् भवति। तन्मतेन संजिगंसिता, अधिजिगंसिता व्याकरणस्य–इत्येव भवितव्यम्।

अर्थ—गम् धातु के अङ्ग से उत्तर सकारादि आर्धधातुक प्रत्यय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

को इट् का आगम होता है, यदि उस प्रत्यय से पर परस्मैपदसंज्ञक प्रत्यय हो।

उदा० (1) गमिष्यति
गम् स्य ति—लृट् शेषे च, स्यतासी लृ०,
गम् इ स्य ति—इट्,
गमिष्यति—आदेशप्रत्यययोः।

(2) अगमिष्यत्
गम् स्य त्—लृङ्, 'इतश्च' से इकारलोप, स्य,
गम् इ स्य त्—इट्,
अगमिष्यत्—षत्व, अट्।

(3) जिगमिषति
गम् सन्—गम् धातु परस्मैपदी है, 'पूर्ववत् सनः' से सन् प्रत्ययान्त गम् से परस्मैपद होता है। अतः यहाँ इट् हुआ,
ग गम् इ स—द्वित्व, हलादिः शेषः
जिगमिष—कुहोश्चुः, सन्यतः, षत्व, धातुसंज्ञा,
जिगमिष शप् तिप्—अतो गुणे।

गमे०—गम् धातु से उत्तर सकारादि को इट् होता है।

(4) चेष्यति
चि स्य ति—लृट्, स्यतासी०, सकारादि 'स्य' से पर परस्मैपदसंज्ञक 'तिप्' है, 'गम्' अङ्ग न होने से इट् नहीं हुआ,
चेष्यति—गुण, आदेशप्रत्यययोः।

परस्मै०—परस्मैपद प्रत्यय परे हो तो सकारादि आर्धधातुक को इट् होता है।

(5) सङ्क्षीष्ट
सम् गम् त—लिङ् 'समो गम्यृच्छिभ्याम्' से आत्मनेपद,
सम् गम् सीयुट् सुट् त—'वा गमः' से लिङ् विकल्प से किद्वत्, अनुबन्धलोप,
सम् गं सीय् स् त—सकारादि 'सीय्' से पर परस्मैपद प्रत्यय नहीं है, अतः इट् नहीं हुआ, (कित् पक्ष में 'अनुदात्तोपदेश०' से अनुनासिक लोप होकर 'सङ्क्षीष्ट' रूप बनता है), अकित् पक्ष में 'मोऽनुस्वारः' से अनुस्वार,
सम् गं षी ष् ट—यकारलोप, षत्व, षत्व, ष्टुत्व,
सङ्क्षींष्ट—अनुस्वार, परसवर्ण।

(6) सङ्क्ष्यते
सम् गम् स्य त—पूर्ववत् आत्मनेपद, लृट्, स्य, इट् नहीं हुआ,
सङ्क्ष्यते—शेष पूर्ववत्।

(7) सञ्जिगंसते
सम् गम् सन्—'समो गम्यृच्छिभ्याम्' से आत्मनेपद, सन्, इट् नहीं हुआ, सन्यङोः,
सम् जिगम् स—द्वित्व, कुहोश्चुः, सन्यतः,
सम् जिगंस—'मोऽनुस्वारः' से अनुस्वार,
सञ्जिगंस—अनुस्वार, 'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः' से परसवर्ण, धातुसंज्ञा, 'पूर्ववत् सनः' से आत्मनेपद,
सञ्जिगंस शप् त—अतो गुणे, टित आत्मनेपदानां०।

(8) सञ्जिगंसिष्यते
सञ्जिगंस—पूर्ववत् सभी कार्य, इट् की अप्राप्ति, धातुसंज्ञा, आत्मनेपद, लृट्, 'त' प्रत्यय,
सञ्जिगंस इ स्य त—स्य, वलादिक इट्, 'अतो लोपः' से अकारलोप, षत्व, एत्व।

(9) अधिजिगांसते
अधि इङ् स—'इङश्च' से 'गम्' आदेश,
अधिगगाम् स—'अज्झनगमां०' से दीर्घ, दीर्घ, द्वित्व, हलादिः शेषः, ह्रस्वः,
अधिजिगांस—कुहोश्चुः, सन्यतः, मोऽनुस्वारः, इङ् धातु आत्मनेपदी है, 'पूर्ववत् सनः' से 'अधिजिगांस' भी आत्मनेपदी है, अतः सकारादि (सन्) को इट् नहीं हुआ,
अधिजिगांस शप् त—धातुसंज्ञा, अतो गुणे।

(10) अधिजिगांसिष्यते
अधि जिगांस—पूर्ववत् इट् की अप्राप्ति,
अधिजिगांस इ स्य त—लृट्, स्य आदि होता है।

गमेरि०—इङ् के आदेशभूत गम् धातु को 'अज्झनगमां सनि' से दीर्घ होता है।

से इत्ये—सकारादि प्रत्यय को इट् होता है।

(11) गन्तास्मि
गम् मिप्—लुट्, स्यतासी लृलुटोः,
गम् तास् मिप—'तास्' से पर परस्मैपदसंज्ञक प्रत्यय 'मिप्' है, परन्तु 'तास्' सकारादि नहीं है, इट् नहीं हुआ,
गन्तास्मि—अनुस्वार, परसवर्ण।

(12) गन्तास्वः
गम् तास् वस्—लुट्, पूर्ववत्, इट् नहीं हुआ।

(13) गन्तास्मः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गम् तास् मस्—पूर्ववत् इट् नहीं हुआ।

आत्मने०—आत्मनेपद के साथ एक पद में स्थित 'गम्' का यह इट् आगम नहीं है। अन्यत्र सब स्थानों पर यह इष्ट है। कारण कि 'कृत्' परे रहते भी होता है तथा परस्मैपद प्रत्यय का लुक् होने पर भी यह होता है।

(14) सञ्जिगमिषिता
सम् गम् सन्—द्वित्वादि पूर्ववत्, इट्,
सञ्जिगमिष तृ—षत्व, धातुसंज्ञा, कृत्संज्ञक 'तृच्' प्रत्यय,
सञ्जिगमिष इ तृ सु—इट्, अकारलोप, सु।

(15) अधिजिगमिषिता
अधि इङ् सन्—गम् आदेश, पूर्ववत्,
अधि जिगमिष इ तृ—सभी कार्य पूर्ववत्।

(16) जिगमिष त्वम्
जिगमिष—धातुसंज्ञा, लोट्, सिप्,
जिगमिष सि—'सेर्ह्यपिच्च', 'अतो हेः' से लुक्

पदशेष०—परन्तु पदशेषकार का यह मत है कि गम् के उपलक्षण के लिए 'परस्मैपद' का ग्रहण है। परस्मैपद प्रत्यय परे रहते जो 'गम्' प्राप्त होता है, उससे परे रहते सकारादि आर्धधातुक प्रत्यय को 'इट्' आगम होता है। इसके अनुसार—संजिगंसिता, अधिजिगंसिता व्याकरणस्य—ऐसा होना चाहिए।

(3338) न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः *59* (2348)

वृतादिभ्यश्चतुर्भ्य उत्तरस्य सकारादेरार्धधातुकस्य परस्मैपदेषु इडागमो न भवति। वृत्–वर्त्स्यति। अवर्त्स्यत्। विवृत्सति। वृधू–वर्त्स्यति। अवर्त्स्यत्। विवृत्सति। शृधु–शर्त्स्यति। अशर्त्स्यत्। शिश्रृत्सति। स्यन्दू–स्यन्त्स्यति। अस्यन्त्स्यत्। सिस्यन्त्स्यति। 'चतुर्भ्यः' इति न वक्तव्यम्। वृद्ग्रहणं हि तत्र द्युतादिपरिसमाप्त्यर्थं क्रियते–कृपू सामर्थ्ये वृदिति, तदेव यदि वृतादिसमाप्त्यर्थमपि विज्ञायते, न किञ्चिदनिष्टं प्राप्नोति? तत्क्रियते स्यन्देरूदिल्लक्षणमन्तरङ्गमपि विकल्पं प्रतिषेधो यथा बाधेतेति। चतुर्ग्रहणे हि सति तात्पर्येण स्यन्दिः सन्निधापितो भवति। 'परस्मैपदेषु' इत्येव। वर्तिष्यते। वर्तिषीष्ट। अवर्तिष्यत। विवर्तिषते। *अत्राप्यात्मनेपदेन समानपदस्थेभ्यो वृतादिभ्य इडागम इष्यते*। अन्यत्र सर्वत्र प्रतिषेधः। कृत्यपि हि परस्मैपदलुकि च प्रतिषेधो भवति–विवृत्सिता, विवृत्स त्वमिति।

अर्थ—वृत् आदि चार धातुओं से उत्तर परस्मैपदपरक सकारादि आर्धधातुक प्रत्यय को इट् नहीं होता है।

उदा० (क) वृतः—
(1) वर्त्स्यति
वृत् स्य ति—ऌट्, स्यतासी०, 'वृद्भ्यः स्यसनोः' से परस्मै०, उदात्तोपदेश होने से नित्य इट् प्राप्त, निषेध हो गया,
वर्त् स्य ति—लघूपधगुण।

(2) अवर्त्स्यत्
वृत् स्य त्—ऌङ्, स्य, 'इतश्च' इकारलोप, प्राप्त नित्य इट् का निषेध,
अ वर्त् स्य त्—गुण, अट्।

(3) विवृत्सति
वृत् सन्—द्वित्व, हलादिः शेषः, उरत्, सन्यतः,
वि वृत् स—धातुसंज्ञा, वृद्भ्यः स्यसनोः,
वि वृ त् स शप् तिप्—अतो गुणे।

(ख) वृधः—
(4) वर्त्स्यति
वृध् स्य ति—वृद्भ्यः स्यसनोः, इट् निषेध,
वर्ध् स्य ति—गुण, खरि च।

(5) अवर्त्स्यत्
वृध् स्य त्—ऌङ्, वृद्भ्यः स्यसनोः, इट् निषेध, गुण,
अ वर्ध् स्यत्—खरि च, अट्।

(6) विवृत्सति
वृध् सन्—इट् निषेध, द्वित्व,
वि वृ त् स—'विवृत्सति' की तरह। 'खरि च' से चर्त्व।

(ग) शृधः—
(7) शर्त्स्यति
शृध् स्य ति—'वर्त्स्यति' की तरह, 'खरि च' से चर्त्व होता है।

(8) अशर्त्स्यत्
शृध् स्य त्—ऌङ्, शेष कार्य 'अवर्त्स्यत्' की तरह।

(9) शिश्रृत्सति
'विवृत्सति' की तरह।

उपर्युक्त तीनों धातु उदात्तोपदेश हैं। इनसे पर नित्य इट् प्राप्त था।

(घ) स्यन्दः—
(10) स्यन्त्स्यति
स्यन्द् स्य ति—'स्वरतिसूति०' से पाक्षिक इट्, निषेध हुआ,
स्यन्त् स्य ति—खरि च।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(11) अस्यन्तस्यत्
स्यन्द् स्य त्—ल्रङ्, पूर्ववत् इट् का निषेध,
अ स्यन्त् स्य त्—खरि च, अट्।

(12) सिस्यन्तसति
स्यन्द् सन्—वृद्भ्यः स्यसनोः, द्वित्व, पूर्ववत् इट् निषेध,
स स्यन्द् स—हलादिः शेषः,
सि स्यन्द् स—सन्यतः, खरि च, धातुसंज्ञा,
सिस्यन्त् स शप् तिप्—अतो गुणे।

चतुर्भ्य०—**चार** धातुओं से उत्तर को इट् होता है—ऐसा नहीं कहना चाहिए; कारण कि यहाँ 'वृत्' का ग्रहण द्युतादि धातुओं की परिसमाप्ति के लिए निर्देश है। यदि इसे ही वृतादि की समाप्ति के लिए निर्देश जान लिया जाता है तो कोई अनिष्ट प्राप्त नहीं होता। 'चतुर्' शब्द के ग्रहण का प्रयोजन यह है कि स्यन्द् धातु को 'स्वरतिसूति०' से प्राप्त अन्तरङ्ग विकल्प का भी निषेध हो जाय। 'चतुर्' पद का ग्रहण हो जाने पर उसकी प्रधानता से 'स्यन्द्' उपस्थापित होता है।

परस्मै०—**परस्मैपदपरक** सकारादि प्रत्यय को इट् नहीं होता है।

(13) वर्तिष्यते
वृत् स्य त्—कर्मवाच्य, ल्रट्, स्य,
वर्त् इ स्य त—सकारादि से पर परस्मैपदसंज्ञक प्रत्यय नहीं है, अतः इट् का निषेध नहीं होता है, गुण हुआ,
वर्तिष्य त—आदेशप्रत्यययोः, एत्व।

(14) वर्तिषीष्ट
वृत् सीयुट् सुट् त—लिङ्, 'सुट् तिथोः' आदि लगकर,
वर्त् इ सीय् स् त—अनुबन्धलोप, सकारादि 'सीय्' से पर 't' है, जो परस्मैपद नहीं है, अतः इट् का निषेध नहीं होता है, गुण,
वर्ति सी स् त—यकारलोप,
वर्ति षी ष् ट—षत्व, षत्व, ष्टुत्व।

(15) अवर्तिष्यत
वृत् स्य त्—पूर्ववत् इट् का निषेध नहीं हुआ,
अ वर्त् इ ष्य त—शेष पूर्ववत्, अट्।

(16) विवर्तिषते
वृत् सन्—धातोः कर्मणः०,
वृत् वृत् इट् सन्—इट्, अनुबन्धलोप, द्वित्व, हलादिः शेषः,
विवर्तिषते—उरत्, सन्यतः, धातुसंज्ञा, 't', शप्, अतो गुणे।

अत्राप्या०—यहाँ पर भी आत्मनेपद के साथ एक पद में स्थित वृत् आदि से इट् आगम इष्ट है। अन्यत्र सभी में निषेध होता है। कृत् प्रत्यय के परे रहते तथा परस्मैपद का लुक् होने पर—दोनों स्थितियों में निषेध होता है।

(16) विवृत्सिता
वृत् सन्—इट्, द्वित्व, अभ्यासकार्य,
विवृत्स इ तास् डा—टिलोप आदि।

(17) विवृत्सत्वम्
यहाँ इट् आगम का अभाव है।

(3339) तासि च क्लृपः *60* (2352)

कृप उत्तरस्य तासेः सकारादेश्चार्धधातुकस्य परस्मैपदेषु इडागमो न भवति। श्वः कल्प्ता। कल्प्स्यति। अकल्प्स्यत्। चिक्लृप्सति। 'परस्मैपदेषु' इत्येव। कल्पितासे। कल्पिष्यते। कल्पिषीष्ट। अकल्पिष्यत। चिकल्पिषते। 'क्लृपेरप्यात्मनेपदेन समानपदस्थस्य इडागम इष्यते।' अन्यत्र प्रतिषेधः। कृत्यपि हि परस्मैपदलुकि च प्रतिषेधो भवति–चिक्लृप्सिता, चिक्लृप्स त्वमिति।

अर्थ—कृप् धातु के अङ्ग से उत्तर परस्मैपदपरक तास् व सकारादि प्रत्यय को इट् का आगम नहीं होता है।

उदा० (1) कल्प्ता
कृप् तास् डा—'लुटि च क्लृपः', लुट्, तिप्, लुटः प्रथमस्य डारौरसः, स्यतासी०,
कृप् त् आ—चुटू, टि का लोप, 'स्वरति- सूति०' से पाक्षिक इट्, निषेध,
कल्प् ता—कृपो रो लः।

(2) कल्प्स्यति
कृप् स्य ति—पूर्ववत् इट् का निषेध,
कल्प् स्य ति—कृपो रो लः।

(3) अकल्प्स्यत्
ल्रङ्, पूर्ववत् इट् का निषेध।

(4) चिक्लृप्सति
क्लृप् सन्—पूर्ववत् इट् का निषेध,
क्ल क्लृप् स—द्वित्व, हलादिः शेषः,
कल् क्लृप् स—उरत्, उरण् रपरः,
चिक्लृप्स शप् ति—सन्यतः, कुहोश्चुः, धातुसंज्ञा, लकार।

परस्मै०—**परस्मैपदपरक** तास् तथा सकारादि प्रत्यय को इट् नहीं होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(5) कल्पितासे

कृप् तास् से—लुट्, थास्, थासः से, तास्, आत्मनेपदपरक 'तास्' प्रत्यय का इट् निषेध नहीं हुआ।

कल्प् इ तास् से—सकारलोप, कृपो रो लः।

(6) कल्पिष्यते

आत्मनेपद 'त' प्रत्यय परे है, सकारादि 'स्य' को इट् निषेध नहीं हुआ, शेष पूर्ववत्।

(7) कल्पिषीष्ट

कृप् सीयुट् सुट् त—पूर्ववत् इट् हुआ।

(8) अकल्पिष्यत

कृप् स्य त्—लृङ्, पूर्ववत्, इट्, कृपो रो लः,
अकल्पि ष्य त्—षत्व। अट्।

(9) चिकल्पिषते

कृप् सन्—पूर्ववत् इट्,
चि कृप् इ स—द्वित्व, उरत्, हलादिः शेषः, कुहोश्चुः, सन्यतः,
चिकल्प् इ ष—गुण, कृपो रो लः, षत्व, धातुसंज्ञा,
चि कल्पिष शप् त—अतो गुणे।

क्लृपे०—कृप् का भी आत्मनेपद से समानपदस्थ का इट् आगम इष्ट है। अन्यत्र निषेध ही होता है। कृत् प्रत्यय के परे रहते तथा परस्मैपद का लुक् होने पर निषेध होता है।

(10) चिक्लृप्सिता

तृच्—यहाँ इट् हुआ है।

(11) चिक्लृप्सत्वम्

त्व—इट् नहीं हुआ।

(3340) अचस्तास्वत्थल्यनिटो नित्यम् *61* (2294)

तासौ ये नित्यानिटो धातवोऽजन्ताः, तेभ्यस्तासाविव थलीडागमो न भवति। (पाता–पपाथा) याता–ययाथ। चेता–चिचेथ। नेता–निनेथ। होता–जुहोथ। अच इति किम्? भेत्ता–बिभेदिथ। तास्वदिति किम्? लूत्वा–लुलविथ। थलिति किम्? याता–ययिव। ययिम। अनिड्ग्रहणं नित्यमित्यनेन विशेषणार्थम्। नित्यग्रहणं किम्? विधोता, विधविता–विदुधविथ। तासि विभाषितेट्, थलि नित्यमिडागमो भवति। तास्वदिति वतिनिर्देशः किमर्थः? तासौ सतस्थलि प्रतिषेधार्थः। ये हि तासावसन् असत्त्वाच्च नित्यानिट् तस्य थलि प्रतिषेधो न भवति–जघसिथ। उवयिथ। उत्तरसूत्रेऽपि 'तास्वत्' इति वर्त्तते। अदादेशो हि घसिः, वेञादेशश्च वयिस्तासौ नास्ति।

अर्थ— उपदेश में जो अजन्त धातु तास् में नित्य अनिट् हो, उस धातु से उत्तर थल् प्रत्यय को उसी प्रकार इट् आगम नहीं होता, जिस प्रकार उसे तास् में इट् नहीं होता है।

'तास्वत्' पद में सप्तम्यन्त से 'वति' प्रत्यय है। अतः इस पद का अर्थ है—

जिस प्रकार तास् में (इट् नहीं होता है, उसी प्रकार थल् में न हो)। यदि किसी धातु का 'तास्' में प्रयोग नहीं होगा तो उससे पर थल् को इट् का निषेध प्रवृत्त नहीं होगा; यथा—

'लिट्यन्यतरस्याम्' के द्वारा लिट् में 'अद्' धातु को 'घस्लृ' आदेश होता है। यह आदेश 'तास्' में नहीं होता है। परिणामस्वरूप थल् में प्रकृत सूत्र के द्वारा निषेध नहीं होगा। द्र०—जघसिथ।

यह सूत्र क्रादि नियम से प्राप्त इट् का आंशिक अपवाद है। क्रादिनियम द्वारा 'कृ' आदि आठ धातुओं को छोड़ कर सभी अनिट् धातुओं से थल् में इट् प्राप्त होता है, परन्तु प्रकृत सूत्र के द्वारा उपदेश में जो अजन्त धातु, उससे निषेध कहा गया है।

उदा० (1) ययाथ

या थल्—लिट्, सिप्, परस्मैपदानां णलतुसुस्थल० से 'थल्', 'या' धातु उपदेश में अजन्त है, इसे तास् में इट् प्राप्त नहीं है, (यथा—या तास् डा → याता),

या या थ—इट् निषेध, द्वित्व, ह्रस्वः।

(2) चिचेथ

चि थल्—पूर्ववत् इट् निषेध,
चि चि थ—द्वित्व,
चिचेथ—गुण।

(3) निनेथ

णी → नी—णो नः,
नी थ—पूर्ववत् इट् निषेध,
नी नी थ—द्वित्व,
निनेथ—'ह्रस्वः' से अभ्यास को ह्रस्व, 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से गुण।

(4) जुहोथ

हु हु थ—पूर्ववत् इट् निषेध, द्वित्व,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जु हु थ—कुहोश्नुः, अभ्यासे चर्च,
जुहोथ—सार्वधातुकार्धधातुकयोः।

अच०—उपदेश में जो अजन्त धातु, उससे पर 'थल्' को इट् नहीं होता है।

(5) बिभेदिथ

भिद् थल्—पूर्ववत् 'थल्' प्रत्यय, 'भिद्' धातु तास् प्रत्यय में नित्य अनिट् है (यथा—भिद् तास् डा—भेत्ता), परन्तु यह उपदेश में अजन्त नहीं है,

भिद् भिद् इ थ—इट् हुआ, द्वित्व हुआ,
बि भिद् इ थ—हलादिः शेषः, अभ्यासे चर्च,
बि भेद् इ थ—पुगन्तलघूपधस्य च।

तास्व०—तास् प्रत्यय में नित्य अनिट् जो अजन्त धातु, उससे पर थल् को इट् नहीं होता है।

(6) लुलविथ

लू थल्—पूर्ववत् थल्, लू धातु उपदेश में अजन्त है; परन्तु वह क्त्वा में नित्य अनिट् है (लू क्त्वा—लूत्वा)।

लू लू इ थ—इट् हुआ, द्वित्व,
लु लो इ थ—ह्रस्वः, सार्वधातुकार्धधातु०, अवादेश।

थलीति०—उपदेश में जो अजन्त धातु, तास् में नित्य अनिट् हो, उससे पर **थल्** को इट् नहीं होता है।

(7) ययिव

या व—लिट्, वस्, 'परस्मैपदानां णलतुसुस्०' से 'व' आदेश, 'या' धातु उपदेश में अजन्त है, तास् में नित्य अनिट् है (या तास् डा—याता), परन्तु इससे पर थल् नहीं है, इट्-निषेध नहीं होता है।

या या इ व—द्वित्व, ह्रस्वः,
ययिव—अकारलोप।

(8) ययिम (पूर्ववत्)।

अनिड्०—'अनिट्' का ग्रहण 'नित्यम्' इसके विशेषण के लिए है।

नित्य०—'तास्' में जो नित्य अनिट्, इस अजन्त धातु से पर 'थल्' को इट् नहीं होता है।

(9) विधविता

धूञ् तिप्—लुट्,
धू तास् डा—लुटः प्रथमस्य डारौरसः, तास्, 'स्वरतिसूति०' से पाक्षिक इट्,
धू इ त् आ—टिलोप,
विधविता—गुण, अवादेश।

(10) विधोता

पक्ष में इट्-निषेध।

(11) विदुधविथ

धू थल्—'धू' उपदेश में अजन्त है, तास् में अनिट् है; परन्तु नित्य अनिट् नहीं है, 'थल्' में इट् का निषेध नहीं होता है।

धू धू इ थ—द्वित्व,
वि दु धो इ थ—ह्रस्वः, अभ्यासे चर्च, सार्वधातुकार्धधा०।

तासि०—तास् में पाक्षिक इट् होता है। अतः थल् को नित्य इट् होता है।

तास्व०—'तास्वत्' पद में 'वति' का निर्देश किसलिए है? तास् में अनिट् होने वाले का थल् में इट् निषेध हो जाय। कारण कि, तास् में जो धातु और न होने के कारण नित्य अनिट् है, उसे थल् में निषेध नहीं होता है।

(12) जघसिथ

अद् थल्—'घस्' आदेश,
घस् इट् थल्—इट् आगम, द्वित्व,
जघस् इ थ—अभ्यासकार्य।

(13) उवयिथ

वे इट् थल्—इट्,
उ वय् इ थ—सम्प्रसारण,
उवयिथ—रूप बना।

उत्तर०—उत्तरसूत्र में 'तास्वत्' का अनुवर्त्तन है। अद् के स्थान पर 'घस्' आदेश होता है। 'वेञ्' के स्थान पर 'वयि' होता है। ये तास् में नहीं होते हैं।

विशेष—'उपदेशे' पद का अपकर्षण अगले सूत्र से होता है। अतः उपदेश में जो अजन्त धातु तथा तास् में नित्य अनिट्, उससे पर 'थल्' को इट् का निषेध होता है।

(14) जहर्थ

हृ थल्—पूर्ववत् थल्, द्वित्व तथा गुण—इनकी युगपत् प्राप्ति, अच् परे नहीं है, 'द्विर्वचनेऽचि' की प्राप्ति नहीं हुई, अब नित्य कार्य होने के कारण तथा परकार्य होने के कारण प्रथम गुण होता है,

हर् थ—क्रादि नियम से इट् प्राप्त, 'हृ' तास् में नित्य अनिट् (हर्त्ता) है, चूँकि यह धातु उपदेश में अजन्त है, अतः इट् निषेध हुआ,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जहर्थ—द्वित्व, कुहोश्चुः, अभ्यासे चर्च। प्रकृत सूत्र में 'उपदेशे' पद का अनुवर्त्तन करने के कारण 'हर् थ' इस दशा में इट् का निषेध होता है। कारण कि 'हृ' धातु उपदेश में अजन्त है। भले ही इस समय अजन्त नहीं है।

द्र०—पदम० 7.2.61

उपदेशग्रहोऽप्यत्र वक्ष्यमाणोऽपकृष्यते।
गुणे नित्ये कृतेऽप्येष ऋदन्ते प्राप्नुयात् कथम्॥

(3341) उपदेशेऽत्वतः *62* (2295)

उपदेशे यो धातुरकारवान् तासौ नित्यानिट् तस्मात्तासाविव थलीडागमो न भवति। पक्ता–पपक्थ। यष्टा–इयष्ठ। शक्ता–शशक्थ। उपदेशे इति किम्? कर्ष्टा–चकर्षिथ। अत्वत इति किम्? भेत्ता–बिभेदिथ। तपरकरणं किम्? राद्धा–रराधिथ। तास्वदित्येव–जिघृक्षति। जग्रहिथ। नित्यमनिट इत्येव–अङ्क्ता, अञ्जिता–आनञ्जिथ।

अर्थ—उपदेश में ह्रस्व अकारवान् तथा तास् में नित्य अनिट् जो धातु, उससे पर थल् को इट् का निषेध होता है।

उदा० (1) पपक्थ

पच् थल्—लिट्, सिप्, परस्मैपदानां णल० से 'थल्',

प पच् थ—'पच' धातु उपदेश में अकारवान् है तथा तास् में नित्य अनिट् (पच् तास् डा—पक्ता) है, 'थल्' को इट् निषेध,

प प क् थ—द्वित्व, हलादिः शेषः, कुत्व।

(2) इयष्ट

यज् थल्—पूर्ववत् इट् का निषेध[1], द्वित्व,

य यज् थ—अभ्यास को सम्प्रसारण,

इ यज् थ—व्रश्चभ्रस्ज०,

इयष् ठ—ष्टुना ष्टुः।

(3) शशक्थ

शक् थल्—पूर्ववत् इट् निषेध।

उपदेश०—उपदेश में जो ह्रस्व अकारवान् तथा तास् में नित्य अनिट् जो धातु, उससे पर थल् को इट् नहीं होता है।

(4) चकर्षिथ

कृष् थल्—पूर्ववत् थल्, लघूपधगुण व द्वित्व की प्राप्ति, परकार्य व नित्य होने से गुण,

कर्ष् थ—क्रादि नियम से प्राप्त इट् का प्रकृत सूत्र से निषेध नहीं होता है, 'कर्ष्' यह अकारवान् है; परन्तु उपदेश में अकारवान् नहीं है,

चकर्ष् इ थ—द्वित्व, हलादिः शेषः, कुहोश्चुः।

(5) कर्ष्टा

कृष् तास् डा—'तास्' में नित्य अनिट् है,

कर्ष् त् आ—टिलोप, गुण, ष्टुत्व।

अत्वत०—ह्रस्व अकारवान् जो धातु, उससे पर 'थल्' को इट् नहीं होता है।

(6) बिभेदिथ

भिद् थ—पूर्ववत् थल्, भिद् धातु तास् में नित्य अनिट् है, परन्तु उपदेश में अकारवान् नहीं है,

भिद् इ थ—क्रादि से इट् हुआ,

बि भिद् इ थ—द्वित्व, हलादिः शेषः, अभ्यासे चर्च,

बिभेद् इ थ—लघूपधगुण।

(7) भेत्ता

भिद् तास् डा—'तास्' में नित्य अनिट्,

भेद् त् आ—टिलोप, लघूपधगुण, खरि च।

तपर०—ह्रस्व अकारवान् जो धातु, उससे पर 'थल्' को इट् नहीं होता है—

(8) रराधिथ

राध् थ—पूर्ववत् थल्, उपदेश में अकारवान् है; परन्तु ह्रस्व अकारवान् नहीं है, तास् में नित्य अनिट् है, अतः इट् का निषेध नहीं हुआ,

र राध् इ थ—द्वित्व, हलादिः शेषः, ह्रस्वः।

(9) राद्धा

राध् तास् डा—'तास्' में राध् धातु नित्य अनित्य है, टि का लोप,

राध् त् आ—झषस्तथो०, झलां जश् झशि।

राद् ध् आ—रूप बनता है।

तास्व०—तास् में नित्य अनिट् धातु से उत्तर 'थल्' को इट् नहीं होता है।

(10) जिघृक्षति

1. यज धातु तास् में नित्य अनिट् है। यथा—
यज् तास् डा—लुट्,
यज् त् आ—टिलोप,
यष् टा—व्रश्चभ्रस्ज०, ष्टुना ष्टुः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ग्रह् सन्—प्राप्त आर्धधातुक वलादिक इट् का 'सनिग्रहगुहोश्च' से निषेध,

जिघृक् ष—सम्प्रसारण, सन्यङोः, हो ढः, षढोः कः सि, सन्यतः,

जिघृक्ष शप् ति—धातुसंज्ञा, शप्, अतो गुणे।

(11) जग्रहिथ

ग्रह् थ—पूर्ववत् 'थल्', ग्रह् धातु सन् में नित्य अनिट् है, थल् में इट् निषेध नहीं हुआ,

ग्रह् इट् थ—द्वित्व,

ज ग्रह् इ थ—हलादिः शेषः, कुहोश्चुः।

नित्य०—तास् में जो नित्य अनिट्, उस धातु से उत्तर 'थल्' को इट् नहीं होता है।

(12) अञ्जिता

अञ्ज् तास् डा—लुट्, लुटः प्रथमस्य डारौरसः, अञ्जू धातु ऊदित् है, 'स्वरतिसूति०' से पाक्षिक इट् होता है, नित्य इट् नहीं होता। इट् पक्ष में,

अञ्ज् इ त् आ—टिलोप।

(13) अङ्क्ता

अञ्ज् त् आ—इट् अभाव पक्ष में,

अ ङ् क् ता—कुत्व, नकार को अनुस्वार, परसवर्ण।

(14) आनञ्जिथ

अञ्ज् थ—पूर्ववत् थल्, उपदेश में 'अञ्ज्' धातु ह्रस्व अकारवान् है, परन्तु तास् में नित्य अनिट् नहीं है, इट् निषेध नहीं हुआ,

अ अञ्ज् इ थ—द्वित्व, हलादिः शेषः, अत आदेः,

अ न् अञ्जिथ—तस्मान्नुड् द्विहलः।

(3342) ऋतो भारद्वाजस्य *63* (2296)

ऋकारान्ताद्धातोर्भारद्वाजस्याचार्यस्य मतेन तासाविव नित्यानिटस्थलि इडागमो न भवति। स्मर्त्ता-सस्मर्थ। ध्वर्त्ता-दध्वर्थ। 'सिद्धे सत्यारम्भो नियमार्थः' (का०प० 62)-ऋत एव भारद्वाजस्य, नान्येषां धातूनाम्। ययिथ। वविथ। पेचिथ। शेकिथ। तदयमर्थात्पूर्वयोर्योगयोर्विकल्पः। तपरकरणमृकारान्तस्य निवृत्त्यर्थम्। तथा हि सति विध्यर्थमेतत्स्यात्।

अर्थ—तास् में नित्य अनिट् जो ऋदन्त धातु, उससे पर थल् प्रत्यय को इट् आगम नहीं होता है, भारद्वाज ऋषि के मत में। यह विकल्प से निषेध करता है; परन्तु नियमसूत्र होने से नित्य इट् का निषेध होता है।

उदा० (1) स्मर्त्ता

स्मृ तास् डा—तास् में नित्य अनिट्,

स्मर् त् आ—गुण।

(2) सस्मर्थ

स्मृ थल्—पूर्ववत् थल्, इट् का निषेध,

स स्मृ थ—द्वित्व, उरत्, हलादिः शेषः,

स स्मर् थ—सार्वधातुकार्धधातु०।

(3) ध्वर्त्ता

ध्वृ तास् डा—नित्य अनिट्,

ध्वर् त् आ—अचो रहाभ्यां द्वे।

(4) दध्वर्थ

ध्वृ थल्—तास् में नित्य अनिट् होने से थल् को इट् नहीं हुआ,

द ध्वर् थ—द्वित्व, हलादिः शेषः, अभ्यासे चर्च।

(5) कर्त्ता

कृ तास् डा—'तास्' में अनिट्।

(6) चकर्थ

कृ थल्—पूर्ववत् इट् निषेध, द्वित्व, कुहोश्चुः।

सिद्धे०—यह नियमसूत्र है। यह नियम करता है कि तास् में नित्य अनिट् केवल ऋदन्त धातु से पर ही थल् को इट् का निषेध होता है; अन्य धातुओं से पर थल् को इट् होता है।

(7) ययिथ

या इट् थल्—एकाच उपदेशेऽनुदात्ता०, क्रादिनियम से इट् प्राप्त, अजन्त होने से 'अचस्तास्वत्०' से इट् का निषेध, भारद्वाज नियम से विकल्प से इट्,

य या इ थ—व्यपदेशिवद्भाव से इट् अजादि, आतो लोप इटि च।

(8) वविथ

वा इ थ—पूर्ववत् पाक्षिक इट्, द्वित्व,

व वा इ थ—आकारलोप।

(9) पेचिथ

पच् इ थ—एकाच उपदेशेऽनु०, क्रादि नियम से इट् प्राप्त, उपदेशेऽत्वतः से निषेध, भारद्वाज नियम से पाक्षिक इट्,

प पच् इ थ—द्वित्व, अत एकहल्मध्ये० से एत्व तथा अभ्यासलोप होता है। इट् अभाव पक्ष में 'पपक्थ' होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(10) शेकिथ

शक् इट् थल्—इट् पक्ष में 'अत एकहल्मध्ये०' से एत्व तथा अभ्यासलोप होता है, इट् अभाव पक्ष में द्वित्व होकर 'शशक्थ' बनता है।

तदय०—इस अर्थ के अनुसार पूर्व दोनों योगों (अचस्तास्वत्० तथा उपदेशेऽत्वतः) का विकल्प होता है।

तपर०—'ऋतः' पद में तकार तत्काल के ग्रहण के लिए है, ताकि दीर्घ ऋकारान्त की निवृत्ति हो जाय। ऐसा हो जाने पर यह विधि के लिए होता है।

विशेष—वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी में एक कारिका उपलब्ध होती है, जिसमें निम्नलिखित चार सूत्रों के विषय को संगृहीत कर दिया गया है। सूत्र ये हैं—

(क) कृसृभृवृस्तुद्रुस्रुश्रुवो लिटि (7.2.13)
(ख) अचस्तास्वत्थल्यनिटो नित्यम् (7.2.61)
(ग) उपदेशेऽत्वतः (7.2.62)
(घ) ऋतो भारद्वाजस्य (7.2.63)

पाठकों की सुविधा के लिए कारिका व उसकी व्याख्या नीचे दी जा रही है—

अजन्तोऽकारवान् वा यस्तास्यनिट् थलि वेडयम्।
ऋदन्त ईदृङ् नित्यानिट् क्राद्यन्यो लिटि सेड् भवेत्॥[1]

(क) अजन्तो''''वेडयम् अर्थात् तास् में नित्य अनिट् जो धातु अजन्त (परन्तु ऋकारान्त न हो) अथवा ह्रस्व अकारवान् है तो उससे पर थल् को विकल्प से इट् होता है।

अचस्तास्वत् थल्यनिटो० तथा उपदेशेऽत्वतः के द्वारा निषेध हुआ है तथा भारद्वाज के मत में इट् हुआ है। अतः विकल्प प्रवृत्त हुआ।

(ख) ऋदन्त''''नित्याऽनिट् अर्थात् तास् में नित्य अनिट् जो ऋदन्त धातु, उससे पर थल् को नित्य इट् का निषेध होता है।

यह निषेध अचस्तास्वत्० के द्वारा आचार्य पाणिनि के मत में तथा 'ऋतो भारद्वाजस्य' के द्वारा भारद्वाज के मत में प्रवृत्त होता है। तात्पर्य यह है कि यह निषेध सभी आचार्यों के मत में होने के कारण नित्य प्रवृत्त होता है।

(ग) क्राद्यन्यो लिटि सेड् भवेत् अर्थात् कृ, सृ, भृ, वृ, स्तु, द्रु, स्रु तथा श्रु—इन आठ को छोड़कर शेष सभी अनुदात्त धातु लिट् में सेट् होते हैं।

'कृसृभृवृस्तुद्रु०' के द्वारा 'कृ' आदि आठ धातुओं से ही लिट् में इट् नहीं होता है, शेष से हो जाता है।

ध्यान रहे कि उक्त क्रादिवर्जित धातु थल् के अतिरिक्त अन्यत्र लिट् में सेट् होते हैं। थल् में अचस्तास्वत्थल्य० तथा उपदेशेऽत्वतः के द्वारा इन शेष धातुओं से परे थल् को विकल्प से इट् होता है। कृ सृ आदि को लिट् में कहीं भी इट् नहीं होता है।

(3343) बभूथाततन्थजगृभ्मववर्थेति निगमे *64* (2527)

बभूथ, आततन्थ, जगृभ्म, ववर्थ–इत्येतानि निपात्यन्ते निगमविषये। निगमः = वेदः। बभूथ–'त्वं हि होता प्रथमो बभूथं' (तै०सं० 3.1.4.4)। बभूविथेति भाषायाम्। आततन्थ–'येनान्तरिक्षमुर्वतितन्थं' (ऋ० 3.22. 2)। आतेनिथेति भाषायाम। जगृभ्म–'जगृभ्मा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तम्' (ऋ० 10.47.1)। जगृहिमेति भाषायाम्। ववर्थ–'ववर्थ त्वं हि ज्योतिषा' ववरिथेति भाषायाम्। क्रादिसूत्राद् (7.2.13) एवास्य प्रतिषेधे सिद्धे नियमार्थं वचनम्–निगम एव, न भाषायामिति।

अर्थ—वेद के विषय में बभूथ, आततन्थ, जगृभ्म तथा ववर्थ—ये शब्द निपातनसिद्ध हैं।

उदा० (1) बभूथ (तै०सं० 3.1.4.4)

भू थल्—लिट्,

बभू थ—क्रादि नियम से प्राप्त इट् का निपातन से निषेध, द्वित्व, ह्रस्वः, 'भवतेरः' से अकार आदेश, 'अभ्यासे चर्च' से भकार के स्थान पर बकार।

(2) बभूविथ

लोक में इट् होता है।

(3) आततन्थ (ऋ० 3.22.2)

आ तन् थ—पूर्ववत् थल्, निपातन से इट् का निषेध,

आततन्थ—द्वित्व।

(4) आतेनिथ

आ तन् इ थ—लोक में इट्, द्वित्व, अभ्यासलोप, एत्व। थलि च सेटि।

1. वै०सि०कौ० सूत्र 2296

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(5) जगृम्भा (ऋ० 10.47.1)
ग्रह् म—लिट्, 'मस्' को 'म' आदेश, पूर्ववत् निपातन से इट् का निषेध,
गृह् म—'ग्रहिज्यावयि०' से सम्प्रसारण,
गृभ् म—'ह्मग्रहोर्भश्छन्दसि' से मकार,
जगृम्भ—द्वित्व, अभ्यासकार्य।

(6) जगृहिम
लोक में इट्, द्वित्व, अभ्यासकार्य।

(7) ववर्थ (ऋ० 1.91.12)
वृ थल्—पूर्ववत् इट् का निषेध,
ववर्थ—द्वित्व आदि।

(8) ववरिथ
लोक में इट् होकर रूप बनता है।

क्रादि०—क्रादि नियम से यहाँ इट् का निषेध सिद्ध ही था। इसके द्वारा नियम किया गया है कि वेद में ही वृञ् से उत्तर थल् को इट् का निषेध होता है; लोक में नहीं।

(3344) विभाषा सृजिदृशोः *65* (2404)

सृजि, दृशि-इत्येतयोस्थलि विभाषा इडागमो न भवति। सस्रष्ठ, ससर्जिथ। ददर्ष्ठ, ददर्शिथ।

अर्थ— अङ्गसंज्ञक सृज् तथा दृश् धातुओं से उत्तर थल् प्रत्यय को इट् आगम विकल्प से नहीं होता है।

यहाँ तौदादिक सृज् धातु का ग्रहण है। क्रादि नियम से नित्य इट् प्राप्त था।

उदा० (1) सस्रष्ठ
सृज् थल्—लिट्, सिप्, परस्मैपदानां णलतुसुस्०,
सृ सृज् थ—इट् अभाव, द्वित्व, हलादिः शेषः,
स सृज् थ—उरत्, उरण् रपरः, हलादिः शेषः,
स सृष् थ—व्रश्चभ्रस्ज०,
स सृ अम् ष् थ—'सृजिदृशोर्झल्य० से 'अम्' आगम,
स स्रष् ठ—इको यणचि, ष्टुना ष्टुः,

(2) ससर्जिथ
स सृज् इ थ—इट् पक्ष, पूर्ववत् द्वित्वादि,
ससर् ज् इ थ—पुगन्तलघूपधस्य च।

(3) ददर्ष्ठ
द दृश् थ—पूर्ववत् इट् अभाव, द्वित्व आदि,
द दृष् थ—व्रश्चभ्रस्ज०,
द द्रष् थ—सृजिदृशोर्झल्य०,
ददर्ष्ठ—ष्टुना ष्टुः।

(4) ददर्शिथ
द दृश् इ थ—इट् पक्ष, पूर्ववत् द्वित्वादि।

(3345) इडत्त्यर्तिव्ययतीनाम् *66* (2384)

अत्ति, अर्ति, व्ययति-इत्येतेषां थलीडागमो भवति। आदिथ। आरिथ। संविव्ययिथ। व्येञः 'न व्यो लिटि' (6.1.46) इत्यात्वप्रतिषेधः। अत्तिव्ययत्योः 'ऋतो भारद्वाजस्य' (7.2.63) इति नियमाद्विकल्पः। अर्त्तेरपि नित्यं प्रतिषेधः। अत्रेङ्ग्रहणं विस्पष्टार्थम्। विकल्पविधाने हि सति अत्तिव्ययतिग्रहणमनर्थकम्; प्रतिषेधविधाने चार्त्ति-ग्रहणमिति नित्योऽयं विधिरिङ्ग्रहणमन्तरेणापि शक्यते विज्ञातुम्।

अर्थ—अद्, ऋ तथा व्ये—इन अङ्गों से उत्तर 'थल्' प्रत्यय को इट् आगम होता है।

प्रकृत सूत्र से पूर्व 'निषेध' तथा 'विकल्प'—दोनों का अधिकार है, परन्तु यहाँ न तो निषेध है न ही विकल्प है।

उदा० (1) आदिथ
अद् थल्—लिट्, 'घस्' अभाव पक्ष में सिप्, थल् आदेश, 'एकाच उपदेशे०' से इट् का निषेध, क्रादि नियम से इट् प्राप्त, 'उपदेशेऽत्वतः' से इट् का निषेध, ऋतो भारद्वाजस्य' से पाक्षिक इट् की प्राप्ति, प्रकृत सूत्र से नित्य इट्,
अ अद् इ थ—द्वित्व, हलादिः शेषः,
आ अद् इ थ—'अत आदेः' 'अकः सवर्णे दीर्घः'।

(2) आरिथ
ऋ इ थ—पूर्ववत् थल्, एकाच उपदेशेऽनु०, अचस्तास्वत्० ऋतो भारद्वाजस्य, इडत्त्यर्तिव्ययतीनाम् आदि लगकर,
ऋ अर् इ थ—गुण, द्वित्व, रूपातिदेश, उरत्, उरण् रपरः,
अ अरिथ—दीर्घ, सवर्णदीर्घ।

(3) संविव्ययिथ
व्ये थल्—पूर्ववत् थल्, 'न व्यो लिटि' से आत्व का निषेध, इट्,
व्ये इ थ—द्वित्व, पूर्वोऽभ्यासः,
वि व्ये इ थ—'लिट्यभ्यासस्योभयेषाम्' से सम्प्रसारण,
सम् विव्यय् इ थ—एचोऽयवायावः।

व्येञः०—अद् तथा व्ये से उत्तर थल् को 'ऋतो भारद्वाजस्य'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

से पाक्षिक इट् होता है। 'ऋ' धातु से उत्तर थल् को नित्य इट् का निषेध होता है।

अत्रेड्०—प्रकृत सूत्र में इट् का अधिकार है, तदपि इट् का ग्रहण स्पष्टता के लिए किया गया है। विकल्प का विधान होने पर अद् तथा व्ये—इनका ग्रहण व्यर्थ है तथा निषेध का विधान होने पर 'ऋ' का ग्रहण व्यर्थ है। अतः यह विधि नित्य है—इस प्रकार का बोध इट् का ग्रहण के विना भी हो सकता है।

(3346) वस्वेकाजाद्घसाम् *67* (3096)

कृतद्विर्वचनानां धातूनामेकाचाम् आकारान्तानाम्, घसेश्च वसाविडागमो भवति। आदिवान्। आशिवान्। पेचिवान्। शेकिवान्। धात्वभ्यासयोरेकादेशे कृते एत्वाभ्यासलोपयोश्च कृतयोः कृतद्विर्वचना एते एकाचो भवन्ति। आत्–ययिवान्। तस्थिवान्। घस्–जक्षिवान्। सिद्धे सत्यारम्भो नियमार्थः–एकाजाद्घसामेव वसाविडागमो भवति, नान्येषाम्। बिभिद्वान्। चिच्छिद्वान्। बभूवान्। शिश्रिवान्। क्रादिनियमात्, प्रतिषेधाभावाच्च य इट् प्रसक्तः स नियम्यते। आद्ग्रहणमनेकाज्ग्रहणार्थम्। द्विर्वचने हि कृते इटि हि सति आतो लोपेन भवितव्यम्। दरिद्रातेस्तु कास्यनेकाज्ग्रहणं चुलुम्पाद्यर्थमित्यामा भवितव्यम्। दरिद्राञ्चकार। अथाप्याम्न क्रियते, तथापि च दरिद्रातेरार्धधातुके 'लोपः सिद्धश्च प्रत्ययविधौ' इति प्रागेव प्रत्ययोत्पत्तेराकारे लुप्ते इडागमस्य निमित्तं विहतमिति न इडागमो भवति, ददरिद्र्वानिति भवितव्यम्। घसेरपि यदि ग्रहणमिह न क्रियते, तदा द्विर्वचनात् परत्वाद् 'घसिभसोर्हलि च' (6.4.100) इति उपधालोपे कृते द्विर्वचनमेव न स्यात्; अनच्कत्वाद्। इह तु घसिग्रहणात् उपधालोपमपि परत्वादिडागमो बाधते। तत्र कृते 'गमहनजनखनघसाम्' (6.4.98) इत्युपधालोपः। स च 'द्विर्वचनेऽचि' (1.1.59) इति द्विर्वचने कर्तव्ये स्थानिवद्भवति। तेन जक्षिवान् इति सिद्ध्यति।

अर्थ—(द्विर्वचन कर लेने के पश्चात्) एकाच् धातु, आकारान्त धातु तथा घस् धातु से उत्तर 'वसु' प्रत्यय को इट् आगम होता है। 'वसु' के द्वारा लिट् के आदेशभूत 'क्वसु' का ग्रहण होता है।

उदा० (1) आदिवान्

अद् इ क्वसु—लिट्, 'लिटः क्वसुश्च' से 'क्वसु', 'लशक्वतद्धिते' से ककार की इत्संज्ञा, 'उपदेशेऽजनुना०' से उकार की इत्संज्ञा, इट्,

अ अद् इ वस्—द्वित्व, हलादिः शेषः,

आ अदि वस्—अत आदेः, अकः सवर्णे दीर्घः,

आदिवस् सु—विभक्तिकार्य। उगिदचां०, सान्तमहतः।

(2) आशिवान्

अश् इ वस्—पूर्ववत्,

आ अशि वस्—सभी कार्य पूर्ववत्,

आशिवस् सु—विभक्तिकार्य।

(3) पेचिवान्

पच् वस्—पूर्ववत्,

प पच् वस्—द्वित्व, अत एकहल्मध्ये० से एत्व तथा अभ्यासलोप, इट्,

पेचिवस् सु—विभक्तिकार्य।

(4) शेकिवान्

शक् वस्—'पेचिवान्' की तरह।

धात्वभ्या०—एकाच् दो स्थितियों में ही प्राप्त होता है—

(क) धातु तथा अभ्यास का एकादेश दीर्घ किया जाना। यथा—

अ अद् वस् → आ अद् वस् → आद् इ वस्

इस दशा में एकाच् होने पर इट् प्राप्त होता है।

(ख) एत्व तथा अभ्यासलोप की दशा में। यथा—

पच् पच् वस्—अब एत्व तथा अभ्यासलोप होकर 'पेच्' यह एकाच् बन जाता है। तब इट् होता है।

(5) ययिवान्

या वस्—लिट्, क्वसु आदेश,

या इ वस्—इट्,

य या इ वस्—द्वित्व, ह्रस्वः,

ययिवस् सु—आतो लोप इटि च, विभक्तिकार्य।

(6) तस्थिवान्

स्था इ वस्—पूर्ववत्,

था स्था इ वस्—द्वित्व, शर्पूर्वाः खयः,

त स्था इ वस्—ह्रस्वः, अभ्यासे चर्च,

तस्थिवस् सु—आतो लोप इटि च, विभक्तिकार्य।

(7) जक्षिवान्

अद् वस्—'लिट्यन्यतरस्याम्' से विकल्प से 'घस्' आदेश,

घस् इ वस्—घस् आदेश पक्ष में इट्, द्वित्व, गमहन० से उपधालोप, 'कुहोश्चुः', से झकार, 'अभ्यासे चर्च' से जकार,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ज घ्स् इ व स्—'खरि च' से ककार, षत्व,
जक्षिवस् सु—विभक्तिकार्य।

सिद्धे०—सूत्रोक्त सभी धातुओं से उत्तर लिट् को आदेशभूत क्वसु प्रत्यय को इट् आगम पूर्वतः प्राप्त था। तब प्रकृत सूत्र के द्वारा इट् विधान व्यर्थ होकर नियम करता है कि सूत्रोक्त धातुओं से ही उत्तर जो वसु प्रत्यय, उसे इट् आगम होता है, अन्य धातुओं से उत्तर वसु को नहीं।

इस प्रकार अन्य धातुओं से उत्तर क्वसु को जो इट् क्रादि नियम से प्राप्त था, उसकी व्यावृत्ति कर दी गई है। तब निम्नलिखित में इट् नहीं होता है।

(8) बिभिद्वान्
भिद् वसु—पूर्ववत् क्वसु, अनुबन्धलोप, इट् निषेध,
बिभिद् वस्—द्वित्व, अभ्यासे चर्च,
बिभिद्वस् सु—विभक्तिकार्य।

(9) चिच्छिद्वान्
छिद् वस्—'बिभिद्वान्' की तरह। 'छे च' से 'तुक्'।

(10) बभूवान्
भू वसु—इट् नहीं हुआ,
ब भू व स्—द्वित्व, भवतेरः, अभ्यासे चर्च,
बभूवस् सु—विभक्तिकार्य।

(11) शिश्रिवान्
श्रि वसु—पूर्ववत्, इट् निषेध,
शि श्रि वस् सु—हलादिः शेषः, विभक्तिकार्य।

क्रादि०—यहाँ क्रादि नियम से तथा निषेध प्राप्त न होने से जो इट् प्रसक्त होता है, उसका नियम किया जा रहा है। सूत्र में आकार का ग्रहण अनेकाच् के ग्रहण के लिए है। द्विर्वचन करने पर तथा इट् कर लेने पर आकार का लोप (आतो लोप इटि च) होना चाहिए।

(शङ्का) यदि ऐसा मानेंगे तो 'दरिद्रा' से उत्तर क्वसु को भी इट् प्राप्त होने लगेगा।

(समा०) 'दरिद्रा' धातु से उत्तर 'क्वसु' प्रत्यय को इट् आगम प्राप्त ही नहीं है। कारण कि, 'कास्यनेकाज्ग्रहणम्' इस वचन से 'दरिद्रा' से लिट् में 'आम्' होना चाहिए। उसके हो जाने पर 'आमः' से 'लि' का लुक् होना चाहिए। तब इट् किस प्रकार होगा ? यथा—

(12) दरिद्राञ्चकार
दरिद्रा लिट्—आम्,
दरिद्रा आम्—'आमः' से प्रत्यय लुक्,
दरिद्रा आम् कृ लिट्—कृञ्चाऽनुप्रयुज्यते०, लिट्,
दरिद्राञ्चकार—द्वित्व, अभ्यासकार्य, अनुस्वार, परसवर्ण।

दरिद्रा०—(शङ्का) दरिद्रा से 'आम्' न किया जाय तो इट् प्राप्त होता है।

(समा०) वस्तुतः प्रकृत सूत्र के द्वारा आकारान्त धातुओं से पर वसु को इट् का विधान किया गया है। आर्धधातुक प्रत्यय के परे रहते 'लोपः सिद्धश्च प्रत्ययविधौ' इस वचन से 'दरिद्रा' धातु से प्रत्यय की उत्पत्ति से पूर्व ही अकार का लोप हो जाता है। तब निमित्त का अभाव होने से इट् का आगम नहीं होता है।

अथा०—(शङ्का) सूत्र में 'आत्' पद का ग्रहण तो सार्थक है; परन्तु 'घस्' के ग्रहण की आवश्यकता नहीं है। घसि धातु को द्वित्व कर लेने पर 'घसिभसोर्हलि च' से उपधालोप होकर धातु एकाच् हो जाता है। इससे उत्तर इट् आगम स्वतः सिद्ध है। तब 'घसि' का ग्रहण व्यर्थ है।

(समा०) द्वित्व तथा उपधालोप (घसिभसोर्हलि च)—इन दोनों की युगपत् प्राप्ति होने पर परकार्य होने से प्रथम उपधालोप होता है। अच् के न रहने से द्विर्वचन प्राप्त नहीं होता। तब 'जक्षिवान्' रूप सिद्ध नहीं होता है। सूत्र में 'घसि' शब्द का ग्रहण होने पर उपधालोप के परकार्य होने पर भी इट् विधानसामर्थ्य से यह इट् आगम परकार्य (उपधालोप) का बाध कर लेता है। तब इट् कर लेने पर 'गमहनजनखनघसाम्' से उपधालोप होता है। 'द्विर्वचनेऽचि' से उस उपधालोप के स्थानिवत् होने से 'जक्षिवान्' रूप सिद्ध होता है।

(3347) विभाषा गमहनविदविशाम् *68*
(3099)

गम, हन, विद, विश–इत्येतेषां धातूनां वसौ विभाषा इडागमो भवति। गम–जग्मिवान्, जगन्वान्। 'मो नो धातोः' (6.2.62) इति नकारः। हन–जघ्निवान्, जघन्वान्। विद–विविदिवान्, विविद्वान्। विश–विविशिवान्, विविश्वान्। विशिना साहचर्यादिह विदेस्तौदादिकस्य लाभार्थस्य ग्रहणम्। ज्ञानार्थस्य तु नित्यं विविद्वानित्येव भवति। *दृशेश्चेति वक्तव्यम्* (म० भा०)। ददृशिवान्, ददृश्वान् (ऋ० 4.33.6)।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—गम्, हन्, विद् तथा विश्—इन अङ्गों से उत्तर वसु प्रत्यय को विकल्प से इट् आगम होता है।

उदा० (1) जग्मिवान्
गम् वस्—लिट्, क्वसु, अनुबन्धलोप,
गम् इ वस्—इट्,
ज गम् इ वस्—द्वित्व, कुहोश्चुः,
ज ग् म् इ व स्—'गमहनजन०' से उपधालोप,
जग्मिवस् सु—विभक्तिकार्य।

(2) जगन्वान्
गम् वस्—इट् अभाव पक्ष,
ज गम् वस्—द्वित्व, अभ्यासकार्य।
जगन्वस् सु—'मो नो धातोः' से नकार, विभक्तिकार्य।

(3) जघ्निवान्
हन् वस्—पूर्ववत्,
हन् इ वस्—इट्,
ज हन् इ वस्—द्वित्व, कुहोश्चुः, अभ्यासे चर्च,
ज घ्न् इ वस्—गमहनजन० से उपधालोप, 'अभ्यासाच्च' से कुत्व, विभक्तिकार्य।

(4) जघन्वान्
ज हन् वस्—सभी पूर्ववत्, इट् अभाव,
जघन्वस् सु—कुत्व, विभक्तिकार्य।

(5) विविदिवान्
विद् इ वस्—पूर्ववत् इट्,
वि विदिवस् सु—द्वित्व, हलादिः शेषः, विभक्तिकार्य।

(6) विविद्वान्
विद् वसु—पक्ष में इट् निषेध, शेष पूर्ववत्।

(7) विविशिवान्
विश् इ वस्—'विविदिवान्' की तरह।

(8) विविश्वान्
विश् वस्—इट् अभाव पक्ष, 'विविद्वान्' की तरह।

विशिना०—'विश्' के साहचर्य से यहाँ 'विद्' के द्वारा तौदादिक विद् धातु का ग्रहण होता है। ज्ञानार्थक विद् धातु से उत्तर क्वसु को नित्य इट् होता है। यथा—विविदवान्।

दृशेश्च०—दृश् धातु से उत्तर क्वसु प्रत्यय को इट् विकल्प से होता है।

(9) ददृशिवान्
दृश् वस्—पूर्ववत्,
दृश् इ वस्—इट्,
ददृश् इ वस्—द्वित्व, हलादिः शेषः, उरत्, उरण् रपरः, हलादिः शेषः, विभक्तिकार्य।

(10) ददृश्वान्
दृश् वस्—पक्ष में इट् नहीं हुआ, शेष पूर्ववत्।

(3348) सनिंससनिवांसम् *69* (3583)

सनोतेः, सनतेर्वा धातोः 'सनिंससनिवांसम्' इति निपात्यते। 'अञ्जित्वाग्ने सनिंससनिवांसम्' (आ०श्रौ० 1.3.4.16)। इडागम एत्वाभ्यासलोपाभावश्च निपात्यते। सनिङ्पूर्वादन्यत्र सेनिवांसमित्येव भवति। छन्दसीदं निपातनं विज्ञायते। भाषायां सेनिवांसमिति भवति।

अर्थ—'सनिंससनिवांसम्' पद का निपातन किया जाता है। यहाँ इडागम, एत्व अभाव, अभ्यासलोप अभाव—ये कार्य निपातन से होते हैं।

उदा० (1) सनिंससनिवांसम् (आ०श्रौ० 1.3.4.16)
सनिम् सन् वस्—लिट्, क्वसु, इट् आगम निपातन से,

सनिम् सन् सन् इ वस्—प्राप्त एत्व व अभ्यासलोप का निपातन से अभाव, हलादि शेष,

सनिंस सनिवस् अम्—'नश्चाऽपदान्तस्य झलि' से अनुस्वार, द्वितीया एकवचन, विभक्तिकार्य।

सनिङ्०—'सनिम्' के पूर्व में न रहने पर सूत्रोक्त कार्यों का निपातन नहीं होता है। तब 'सेनिवांसम्' रूप बनता है। यह निपातन वेद में ही होता है। अतः लोक में 'सेनिवांसम्' रूप बनेगा।

(3349) ऋद्धनोः स्ये *70* (2366)

ऋकारान्तानां धातूनां हन्तेश्च स्ये इडागमो भवति। करिष्यति। हनिष्यति। हरिष्यति। स्वरतेर्वेट्त्वाद्, 'ऋद्धनोः स्ये' (7.2.70) इत्येतद्भवति विप्रतिषेधेन-स्वरिष्यति। तपरकरणं विस्पष्टार्थम्।

अर्थ—ह्रस्व ऋकारान्त व हन्—इन अङ्गों से उत्तर 'स्य' प्रत्यय को इट् आगम होता है।

उदा० (1) करिष्यति
कृ तिप्—लृट् शेषे च,
कृ स्य ति—स्यतासी लृलुटोः, एकाच उपदेशेऽनु० से इट् का निषेध,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कृ इ स्य ति—प्रकृत सूत्र से इट्,
कर् इ ष्य ति—'सार्वधातुकार्धधा०' से गुण, आदेशप्रत्यययोः से षत्व।

(2) हरिष्यति[1]
ह्व तिप्—'करिष्यति' की तरह।

(3) हनिष्यति
हन् स्य तिप्—पूर्ववत्,
हन् इ स्य ति—प्रकृत सूत्र से इट्, षत्व।

स्वरते०—स्वृ से उत्तर इट् का विकल्प होने से 'स्य' को विप्रतिषेध के द्वारा प्रकृत सूत्र से इट् नित्य होता है। यथा—

(4) स्वरिष्यति
स्वृ इ स्य ति—यहाँ स्वरतिसूति० से पाक्षिक इट् प्राप्त था, विप्रतिषेध से नित्य हुआ।

तपर०—'ऋत्' में तपर स्पष्टता के लिए किया गया है। दीर्घ ऋकारान्त के उदात्त होने से उन्हें इट् प्राप्त ही है। अतः यह तपरकरण स्पष्टता के लिए है।

(3350) अञ्जेः सिचि *71* (2546)

अञ्जेः सिचि इडागमो भवति। आञ्जीत्, आञ्जिष्टाम्, आञ्जिषुः। सिचीति किम्? अङ्क्ता, अञ्जिता। ऊदित्वाद् विभाषा भवति।

अर्थ—'अञ्जू' अङ्ग से उत्तर 'सिच्' प्रत्यय को इट् का आगम होता है।

'सिचि' पद में षष्ठी के स्थान पर सप्तमी का प्रयोग है। 'अञ्जू' धातु ऊदित् है। अतः इससे उत्तर आर्धधातुक प्रत्यय को 'स्वरतिसूतिसूयति०' से पाक्षिक इट् की प्राप्ति थी। प्रकृत सूत्र से नित्य होता है।

उदा० (1) आञ्जीत्
अञ्ज् स् त्—लुङ्, तिप्, 'इतश्च' से इकारलोप, च्लि को सिच् आदेश,
अञ्ज् इ स् ई त्—इट्, अस्तिसिचोऽपृक्ते० से 'ईट्',
अञ्ज् इ ई त्—इट ईटि,
आ अञ्ज् ई त्—अकः सवर्णे दीर्घः, आडजादीनाम्, आटश्च।

हलन्तलक्षणा वृद्धि का 'नेटि' से निषेध।

(2) आञ्जिष्टाम्
अञ्ज् स् ताम्—लुङ्, तस् को 'ताम्' आदेश, सिच्,
अञ्ज् इ स् ताम्—इट्
आ अञ्जि ष् टाम्—आट्, षत्व, ष्टुत्व।

(3) आञ्जिषुः
अञ्ज् स् झि—पूर्ववत्,
अञ्ज् इ स् जुस्—इट्, सिजभ्यस्तविदिभ्य०,
आ अञ्जि ष् उस्—आट्, षत्व, चुटू।

सिची०—अञ्ज् अङ्ग से उत्तर सिच् को ही इट् होता है।

(4) अङ्क्ता
अञ्ज् तृ—'सिच्' नहीं है। अतः इट् नहीं हुआ।
अ न् क् तृ—'चोः कुः' से कुत्व, नकार को अनुस्वार,
अङ् क् तृ सु—परसवर्ण, विभक्तिकार्य।

(5) अञ्जिता
अञ्ज इ तृ—'स्वरतिसूतिसूयति०' से पाक्षिक इट् हुआ है।

(3351) स्तुसुधूञ्भ्यः परस्मैपदेषु *72* (2385)

स्तु, सु, धूञ्-इत्येतेभ्यः सिचि परस्मैपदे परत इडागमो भवति। अस्तावीत्। असावीत्। अधावीत्। परस्मैपदेष्विति किम्? अस्तोष्ट। असोष्ट। अधोष्ट, अधविष्ट।

अर्थ-स्तु, सु तथा धू—इन अङ्गों से उत्तर जो सिच्, उसे इट् आगम होता है, यदि उस सिच् से परे परस्मैपदसंज्ञक प्रत्यय हो।

स्तु तथा सु—ये धातु अनुदात्त हैं। अतः 'एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्' से अनिट् हैं। प्रकृत सूत्र से नित्य इट् होता है।

उदा० (1) अस्तावीत्
ष्टुञ् → स्तु ति—'धात्वादेः षः सः' से सकार, निमित्त के हट् जाने से नैमित्तिक की निवृत्ति हो गई, लुङ्,
स्तु इट् स् त्—'इतश्च' से इकारलोप, सिच्, इट्,
स्तु इ स् ई त्—अस्तिसिचोऽपृक्ते से 'ईट्',
स्तौ इ ई त्—इट ईटि, वृद्धि,
अ स्ताव् ई त्—एचोऽयवायावः, अकः सवर्णे दीर्घः, अट्।

(2) असावीत्

1. काशिका के सभी संस्करणों में 'हरिष्यति' प्रयोग 'हनिष्यति' के पश्चात् दिया गया है; परन्तु सूत्रोक्त कार्य की दृष्टि से यह 'हनिष्यति' से पूर्व होना चाहिए था।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

षु → सु त्—पूर्ववत् सकार, इतश्च,
सु इ स् ई त्—सभी कार्य पूर्ववत्,
सौ इ ई त्—सिच् लोप, वृद्धि,
अ साव् ई त्—सवर्णदीर्घ।

(3) अधावीत्
धू इट् स् ई त्—पूर्ववत् सभी कार्य,
धौ इ ई त्—सिच् लोप, वृद्धि,
अ धाव् ई त्—आव्, सवर्णदीर्घ, अट्।

परस्मै०—परस्मैपद प्रत्यय परे है जिसके, ऐसे सिच् को इट् आगम होता है।

(4) अस्तोष्ट
ष्टु → स्तु त—आत्मनेपद प्रत्यय हुआ,
स्तु स् त—सिच्,
स्तोष् त—सिच् से पर 'त' है, जो परस्मैपदसंज्ञक नहीं है, अतः इट् आगम नहीं हुआ, षत्व, सार्वधातुकार्ध० से गुण,
अस्तोष्ट—ष्टुना ष्टुः, अट्।

(5) असोष्ट
षु—पूर्ववत् इट् की अप्राप्ति।

(6) अधोष्ट
धू स् त—इस दशा में पूर्ववत् इट् का अभाव।

(7) अधविष्ट
धू स् त—पूर्ववत्,
धो इ स् त—'स्वरतिसूतिसूयति०' से इट् का विकल्प, अङ्ग को गुण,
अधविष्ट—अव्, अट्।

(3352) यमरमनमातां सक्च *73* (2377)

यम, रम, नम–इत्येतेषामङ्गानाम्, आकारान्तानां च सगागमो भवति परस्मैपदे सिचि, इडागमश्च। यम्–अयंसीत्, अयंसिष्टाम् अयंसिषुः। रम–व्यरंसीत्, व्यरंसिष्टाम्, व्यरंसिषुः। नम–अनंसीत्, अनंसिष्टाम्, अनंसिषुः। आकारान्तानाम्–अयासीत्, अयासिष्टाम्, अयासिषुः। यमादीनां हलन्तलक्षणा (7.2.3) वृद्धिः प्राप्ता सा 'नेटि' (7.2.4) इति प्रतिषिध्यते। परस्मैपदेष्वित्येव–आयंस्त, आरंस्त, अनंस्त।

अर्थ—परस्मैपदसंज्ञक प्रत्यय है परे जिसके, ऐसे सिच् के परे रहते अङ्गसंज्ञक यम्, रम्, नम् तथा आकारान्त शब्दों को 'सक्' आगम होता है तथा सिच् को इट् का आगम होता है।

'हलन्त्यम्' से सक् के ककार की इत्संज्ञा होती है। कित् होने से यह 'आद्यन्तौ टकितौ' से अङ्ग का अन्त्य अवयव होता है। 'सक्' में अकार उच्चारणार्थ है। इट् सिच् को होता है।[1] इसके टित् होने से इट् सिच् का आदि अवयव होता है।

उदा० (क) यमः—

(1) अयंसीत्
यम् त्—लुङ्, 'इतश्च' से इकारलोप,
यम् स् त्—च्लि, सिच् आदेश,
यम् स् इ स् ई त्—इट्, ईट्, सक् आगम,
यम् स् इ ई त्—इट ईटि,
यंस् ई त्—अकः सवर्णे दीर्घः, अनुस्वार,
अयंस् ई त्—अट्।

(2) अयंसिष्टाम्
यम् स् ताम्—तस् को 'ताम्' आदेश,
यम् सक् इ स् ताम्—सक्, इट्,
यंसि ष् ताम्—अनुस्वार, षत्व,
अ यंसिष् टाम्—ष्टुना ष्टुः, अट्।

(3) अयंसिषु
यम् सिच् झि—पूर्ववत् सिच्,
यम् सक् इट् स् जुस्—सिजभ्यस्तविदिभ्य०,
अ यंसिषुस्—पूर्ववत् अनुस्वार, षत्व, अट्।

(ख) रमः—

(4) व्यरंसीत्
वि रम् त्—'रमु, क्रीडायाम्' आत्मनेपदी धातु है, परन्तु 'वि' उपसर्गपूर्वक रम् धातु 'व्याङ्परिभ्यो रमः' से परस्मैपदी होता है, 'इतश्च' से इकारलोप,
वि रम् सक् इट् स् ई त्—पूर्ववत् सिच्, अस्तिसिचोऽपृ० से ईट्, इट् आगम, अङ्ग को सक् आगम,
वि रंस् इ ई त्—'इट ईटि' से सिच् का लोप, अनुस्वार,
व्य रंस् ई त्—अट्, 'इको यणचि' से यणादेश, सवर्णदीर्घ,

(5) व्यरंसिष्टाम्
वि रम् स् ताम्—प्र०पु० द्विवचन, 'ताम्' आदेश, सिच्,

1. न्यास 7.2.73 अत्र षष्ठीनिर्देशाद् यमादीनां सग् भवति, इट् पुनरार्धधातुकाधिकारात् सिच एव।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वि रम् स् इट् स् ताम्—सक्, इट्,
व्यरंस् इ ष् ताम्—अट्, यण्, अनुस्वार, षत्व,
व्यरंसिष्टाम्—ष्टुना ष्टुः।

(6) व्यरंसिषुः
वि रम् स् जुस्—पूर्ववत् लुङ्, झि, सिच्, 'सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च' से जुस्,
वि रम् सक् इट् स् उस्—सक्, इट्,
वि अ रंस् इषुस्—अट्, अनुस्वार, षत्व,
व्यरंसिषुस्—यण्।

(ग) नमः—
(7) अनंसीत्
नम् तिप्—'अयंसीत्' की तरह।

(8) अनंसिष्टाम्
नम् तस्—'अयंसिष्टाम्' की तरह।

(9) अनंसिषुः
नम् झि—'अयंसिषुः' की तरह।

(घ) आकारान्तस्य—
(10) अयासीत्
या तिप्—लुङ्,
या स् त्—इतश्च, च्लेः सिच्,
या सक् इट् स् ईट् त्—अस्तिसिचोऽपृ०, सक्, इट्,
या स् इ ई त्—इट ईटि,
अ यास् ई त्—अकः सवर्णे दीर्घः, अट्।

(11) अयासिष्टाम्
या स् ताम्—प्र०पु० द्विवचन, 'ताम्' आदेश, सिच्,
या सक् इट् स् ताम्—इट् तथा सक्,
यास् इ ष् ताम्—षत्व,
अयासिष् टाम्—ष्टुत्व, अट्।

(12) अयासिषुः
या स् जुस्—झि, सिच्, सिजभ्यस्तविदिभ्यश्च,
या सक् इट् स् उस्—सक्, इट्,
अ यासि ष् उस्—षत्व, अट्।

यमादी०—यम् आदि धातुओं की हलन्तलक्षणा वृद्धि प्राप्त होती है। 'नेटि' के द्वारा निषेध होता है।

परस्मै०—परस्मैपद प्रत्यय है परे जिसके, ऐसे सिच् के परे रहते सक् व इट् होते हैं।

(13) अयंस्त
यम् स् त—आत्मनेपद प्रत्यय हुआ, सिच्, सिच् से परे परस्मैपद प्रत्यय न होने से अङ्ग को सक् नहीं हुआ,
अयंस्त—अनुस्वार, अट्।

(14) अरंस्त
रम् स् त—पूर्ववत्।

(15) अनंस्त
नम् स् त—पूर्ववत्।

विशेष—'अयासीत्' आदि एकवचनान्त रूप सक् तथा इट् आगम के विना भी सिद्ध हो सकते हैं। सक् तथा इट् आगम 'अयासिष्टाम्' में चरितार्थ होते हैं।[1]

(3353) स्मिपूङ्रञ्वशां सनि *74* (2626)

स्मिङ्, पूङ्, ऋ, अञ्, अशू–इत्येतेषां धातूनां सनीडागमो भवति। सिस्मयिषते। पिपविषते। अरिरिषति। अञ्जिजिषति। अशिशिषते। ङकारग्रहणं पूङो मा भूत्। पुपूषति इत्येव तस्य भवति। अशेरूदितो ग्रहणादश्नोतेर्नित्यमिडागमोऽस्त्येव।

अर्थ—स्मि, पू, ऋ, अञ् तथा अश्—इन अङ्गों से उत्तर 'सन्' प्रत्यय को इट् आगम होता है।

उदा० (1) सिस्मयिषते
स्मिङ् सन्—ङित् होने से आत्मनेपदसंज्ञा, 'एकाच उपदेशेऽनु०' से इट् का निषेध, प्रकृत सूत्र से इट्,
स्मि स्मि इ स—द्वित्व,
सि स्मि इ स—हलादिः शेषः,
सि स्मे इ ष—सार्वधातुकार्धधा० से गुण, षत्व,
सिस्मयिष—अय्, धातुसंज्ञा, 'त' प्रत्यय,
सिस्मयिष शप् त—शप्, अतो गुणे।

(2) पिपविषते
पू इ स—'पूङ्' का ग्रहण होने से 'पूञ्' की निवृत्ति हो जाती है। उगन्त होने से 'सनि ग्रहगुहोश्च' से नित्य इट् निषेध प्राप्त, पूर्ववत् इट्।
पू पू इ स—द्वित्व,
पि पो इष—अङ्ग को गुण, 'ओः पुयण्ज्यपरे' से इकार,
पि पविष—अव्, धातुसंज्ञा,

1. न्यास० 7.2.73 द्विवचनबहुवचनयोर्युक्तमुदाहरणम्, अस्ति हि तत्र सगिटोः श्रुतौ विशेषः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पिपविष शप् त—पूर्ववत्।

(3) अरिरिषति

ऋ सन्—'ऋ गतिप्रापणयोः' (भ्वा०) तथा 'ऋ गतौ' (जु०)—दोनों का ग्रहण होता है,[1]

ऋ इ स—'सनि ग्रहगुहोश्च' से इट् प्रतिषेध, पूर्ववत् इट्,

अर् इ स—गुण, द्वित्व, अजादेर्द्वितीयस्य,

अ रि रि ष—षत्व, सनाद्यन्ता धातवः,

अरिरिष शप् ति—लट्, अतो गुणे।

(4) अञ्जिजिषति

अञ्ज् सन्—स्वरतिसूति० से वैकल्पिक इट्, प्रकृत सूत्र से इट्,

अन् ज् इ स—'न न्द्राः संयोगादयः' से नकार को द्वित्व का निषेध,

अन् जि जि ष—हलादिः शेषः, षत्व,

अञ्जिजिष—अनुस्वार, परसवर्ण, धातुसंज्ञा,

अञ्जिजिष शप् ति—लकारकार्य।

(5) अशिशिषते

अश् सन्—'स्वरतिसूति० से वैकल्पिक इट्,

अश् इ स—प्रकृत सूत्र से इट्, षत्व,

अ शिष् शिष् अ—सन्यङोः, अजादेर्द्वितीयस्य,

अशि शिष शप् त—हलादिः शेषः, धातुसंज्ञा, लकारकार्य।

ङकार०—'पूङ्' में ङकार अनुबन्ध का प्रयोजन यह है कि 'पूञ्' से उत्तर सन् प्रत्यय को इट् आगम नहीं होता है। यथा—

(6) पुपूषति

पूञ् सन्—'सनि ग्रहगुहोश्च' से इट् निषेध,

पू पू स—सन्यङोः,

पु पू ष—ह्रस्वः, षत्व, धातुसंज्ञा,

पुपूष शप् तिप्—अतो गुणे।

अशे०—सूत्र में ऊदित् अश् का ग्रहण होने से 'अश्' (स्वा०) से नित्य इट् होता है। यहाँ 'अशू व्याप्तौ' का ग्रहण है; 'अश भोजने' का नहीं।

(3354) किरश्च पञ्चभ्यः *75* (2611)

किरादिभ्यः पञ्चभ्यस्सनि इडागमो भवति। कृ–चिकरिषति। गृ–जिगरिषति। दृङ्–दिदरिषते। धृङ्–दिधरिषते। प्रच्छ–पिप्रच्छिषति। पञ्चभ्य इति किम्? सिसृक्षति। किरतिगिरत्योः 'इट् सनि वा' (7.2.41) इति विकल्पः प्राप्तः, 'वृतो वा' (7.2.38) इति च। *अस्येटो दीर्घत्वं नेच्छन्ति*।

अर्थ—कृ आदि पाँच धातुओं से उत्तर 'सन्' प्रत्यय को इट् आगम होता है। पाँच धातु ये हैं—

कृ, गृ, दृङ्, धृङ् तथा प्रच्छ।

उदा० (1) चिकरिषति

कृ इ स—सन्, अनुदात्त होने से 'एकाच उपदेशेऽनु०' से इट् का निषेध, प्रकृत सूत्र से इट्,

करिष—गुण, षत्व, सन्यङोः

चिकरिष—अभ्यास कार्य, कुहोश्चुः, सन्यतः, धातुसंज्ञा,

चिकरिष शप् ति—शप्, अतो गुणे।

(2) जिगरिषति

गृ इ स—पूर्ववत् इट्, द्वित्व,

जिगरिष—कुहोश्चुः, सन्यतः,

जिगरिष शप् तिप्—अतो गुणे।

(3) दिदरिषते

दृङ् इट् सन्—'सनि ग्रहगुहोश्च' से इट् का प्रतिषेध, प्रकृत सूत्र से इट् हुआ,

दर् इ स—गुण, पूर्ववत् द्वित्व,

दि दरिष—सन्यतः, धातुसंज्ञा,

दिदरिष शप् त—'पूर्ववत् सनः' से आत्मनेपद प्रत्यय।

(4) दिधरिषते

धृङ् सन्—'दिदरिषते' की तरह।

(5) पिपृच्छिषति

प्रच्छ् सन्—'रुदविद०' से सन् किद्वत्, 'ग्रहिज्या०' से सम्प्रसारण, 'छे च' से 'तुक्', इट्,

पृच्छ् पृच्छ् इ स—सन्यङोः, हलादिः शेषः,

पृ पृच्छ् इ ष—षत्व, उरत्, उरण् रपरः,

पि पृच्छिष शप् तिप्—सन्यंतः, अतो गुणे।

पञ्चभ्य०—कृ आदि पाँच धातुओं से उत्तर सन् को इट् होता है।

(6) सिसृक्षति

सृज् सन्—पूर्वोक्त पाँच धातुओं में परिगणन न होने से इट् नहीं होता है, इसके अतिरिक्त सामान्य लक्षण इट् भी नहीं होता है, एकाच उपदेशेऽनु०,

1. 'ऋ' के द्वारा ऋकारान्त अङ्ग का ग्रहण नहीं जानना चाहिए। कारण कि आगे कृ आदि धातुओं को इट् का विधान किया जायेगा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सृ सृज् स—'हलन्ताच्च' से कित्त्व, सन्यङोः, हलादिः शेषः,
सि सृज् स—उरत्, उरण् रपरः, हलादिः शेषः, सन्यतः,
सि सृक् ष—'चोः कुः' से कुत्व, 'व्रश्चभ्रस्ज०' से षकार, 'षढोः कः सि' से ककार, धातुसंज्ञा,
सिसृक्ष शप् ति—अतो गुणे।

किरति०—कृ तथा गृ धातु से 'इट् सनि वा' तथा 'वृतो वा' इस प्रकार इट् को दीर्घादेश का विकल्प होता है, परन्तु इसके इट् को दीर्घादेश इष्ट नहीं है।

(3355) रुदादिभ्यः सार्वधातुके *76* (2474)

रुदादिभ्य उत्तरस्य वलादेः सार्वधातुकस्य इडागमो भवति। रुद्–रोदिति। स्वप्–स्वपिति। श्वस्–श्वसिति। अन्–प्राणिति। जक्ष–जक्षिति। 'पञ्चभ्यः' इत्येव–जागर्त्ति। सार्वधातुक इति किम्? स्वप्ता। 'वलादेः' इत्येव–रुदन्ति।

अर्थ—रुद् आदि पाँच धातुओं से उत्तर वलादि सार्वधातुक को इट् आगम होता है।

रुद् आदि पाँच धातु ये हैं—
रुद्, स्वप्, श्वस्, अन् तथा जक्ष्।

'सार्वधातुके' पद सप्तम्यन्त है। यहाँ षष्ठी के स्थान पर सप्तमी हुई है। सप्तमी की अपेक्षा पञ्चमी का निर्देश बलवान् होता है। अतः रुद् आदि से उत्तर प्रत्यय को इट् होता है।

उदा० (1) रोदिति

रुद् तिप्—कर्त्तरि शप्, 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः' से शप् का लुक्,
रुद् इट् ति—'ति' वलादि सार्वधातुक है, इसे इट् हुआ,
रोद् इ ति—'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से गुण।

(2) स्वपिति
स्वप् इट् तिप्—पूर्ववत्।

(3) श्वसिति
श्वस् इ ति—पूर्ववत्।

(4) प्राणिति
प्र अन् इ ति—पूर्ववत् इट्,
प्राण् इ ति—अकः सवर्णे दीर्घः, 'अनितेः' से णत्व।

(5) जक्षिति
जक्ष् इ ति—पूर्ववत् इट्।

पञ्चभ्य०—रुद् आदि पाँच धातुओं से ही उत्तर सार्वधातुक वलादि को इट् होता है।

(6) जागर्त्ति
जागृ तिप्—शप्, शप् का लुक्, इट् नहीं हुआ
जागर् ति—गुण, अचो रहाभ्यां द्वे।

सार्वधा०—**सार्वधातुक** वलादि को इट् होता है।

(7) स्वप्ता
स्वप् तृ—यह वलादि है; परन्तु 'आर्धधातुकं शेषः' से आर्धधातुकसंज्ञक है, इट् नहीं हुआ,
स्वप् तृ सु—विभक्तिकार्य।

वलादेः—वलादि सार्वधातुक को ही इट् आगम होता है।

(8) रुदन्ति
रुद् झि—शप्, शप् का लुक्,
रुद् अन्ति—झोऽन्तः, 'अन्ति' की 'तिङ् शित् सार्वधातुकम्' से सार्वधातुक संज्ञा है; परन्तु इसके वलादि न होने से इसे इट् आगम नहीं हुआ।

(3356) ईशः से *77* (2439)

ईश उत्तरस्य 'से' इत्येतस्य सार्वधातुकस्य इडागमो भवति। ईशिषे। इशिष्व।

अर्थ—ईश् अङ्ग से उत्तर सार्वधातुक 'से' प्रत्यय को इट् आगम होता है। 'से' यह अविभक्तिक निर्देश है। 'सुपां सुलुक्०' से विभक्ति का लुक् हुआ है।[1] 'थासः से' से थास् विभक्ति के स्थान पर 'से' आदेश होता है।

(1) ईशिषे
ईश् थास्—लट्, थासः से, शप्, शप् का लुक्,
ईश् इट् से—आदेशप्रत्यययोः।

(2) ईशिष्व
ईश् थास्—लोट्, थासः से, पूर्ववत् शप् का लुक्।
ईश् से—सवाभ्यां वामौ, इट्,
ईश् इ स्व—आदेशप्रत्यययोः।

'एकदेशविकृतमनन्यवत्' परिभाषा के द्वारा 'स्व' को इट् होता है।

(3357) ईडजनोर्ध्वे च *78* (2440)

ईड, जन–इत्येताभ्यामुत्तरस्य 'ध्वे' इत्येतस्य, 'से'

1. न्यास० 7.2.77

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इत्येतस्य च सार्वधातुकस्य इडागमो भवति। ईडिध्वे। ईडिध्वम्। ईडिषे। ईडिष्व। जनिध्वे। जनिध्वम्। जनिषे। जनिष्व। 'जनी प्रादुर्भावे' (धा०पा० 1149)-इत्यस्य छान्दसत्वात् श्यनो लुक्, उपधालोपाभावश्च। 'जन जनने' (धा०पा० 1105)-इत्यस्यापि श्लुविकरणस्य ग्रहणमत्रेष्यते। तस्य कर्मव्यतिहारे-व्यतिजज्ञिषे, व्यतिजज्ञिष्व, व्यतिजज्ञिध्वे, व्यतिजज्ञिध्वम्-इति च भवति। ध्वेशब्दे ईशेरपि इडागम इष्यते। ईषिध्वे, ईषिध्वमिति। तदर्थं केचित्-'ईडिजनोः स्ध्वे च' इति सूत्रं पठन्ति। तत्र सकारादेः सेशब्दस्य सूत्र एवोपादानाच्चशब्दो भिन्नक्रम ईशेरनुकर्षणार्थो विज्ञायते। 'ईशीडिजनां सेध्वयोः' इत्येकमेव सूत्रं न पठितम्? विचित्रा हि सूत्रस्य कृतिः पाणिनेरिति। 'ध्वे' इति कृतटेरेत्वस्य ग्रहणात् लङि ध्वमि न भवितव्यमिटा। लोटि पुनरेकदेशविकृतस्यानन्यत्वाद् भवितव्यमिटा।

अर्थ—ईड् तथा जन्—इन अङ्गों से उत्तर सार्वधातुक 'ध्व' तथा 'से' को इट् आगम होता है।

उदा० (1) ईडिध्वे

ईड् ध्वम्—शप्, शप् का लुक्,
ईड् इट् ध्वम्—इट् आगम,
ईडिध्वे—टित आत्मनेपदानां टेरे।

(2) ईडिध्वम्

ईड् ध्वम्—लोट्, पूर्ववत् इट्,
ईडि ध्वम्—सवाभ्यां वाऽमौ।

(3) ईडिषे

ईड् थास्—लट्, थासः से, शप् का लुक्,
इड् इ से—इट्, षत्व।

(4) ईडिष्व

ईड् थास्—लोट्, 'से' आदेश,
ई ड् से—सवाभ्यां वाऽमौ,
ईड् इट् स्व—पूर्ववत् इट्, षत्व।

(5) जनिध्वे

जन् ध्वम्—लट्, इट्, टित आत्मनेपदानां०।

(6) जनिध्वम्

जन् ध्वम्—लोट्, 'बहुलं छन्दसि' से 'श्यन्' का लुक्,
जन् इ ध्वम्—पूर्ववत्।

(7) जनिषे

जन् थास्—लट्,
जन् से—थासः से,
जन् इ से—इट्, षत्व।

(8) जनिष्व

जन् थास्—थासः से,
जन् से—विकरण का लुक्,
जन् स्व—सवाभ्यां वाऽमौ,
जन् इ स्व—इट्, षत्व।

जनी०—जन् धातु से छान्दस होने से श्यन् का लुक् तथा उपधालोप का अभाव होता है। 'जन जनने' इस श्लुविकरण वाले धातु का ग्रहण भी यहाँ होता है। उसके कर्मव्यतिहार में रूप इस प्रकार होते हैं—

(9) व्यतिजज्ञिषे

वि अति जन् थास्—थासः से, द्वित्व, उपधालोप,
वि अति जज्न् से—श्चुत्व, यण्,
व्यति ज ज् ञ् इ से—इट्, षत्व।

(10) व्यतिजज्ञिष्व

पूर्ववत् द्वित्व, उपधालोप, श्चुत्व, इट् आदि।

(11) व्यतिजज्ञिध्वे

ध्वम्—पूर्ववत्।

(12) व्यतिजज्ञिध्वम्

ध्वम्—पूर्ववत् सभी कार्य।

ध्वेशब्दे०—ईश् से उत्तर 'ध्व' प्रत्यय को इट् आगम होता है।

(13) ईषिध्वे

ईश् ध्वम्—लट्, इट्, टित आत्मनेपदानां०।

(14) ईषिध्वम्

ईश् ध्वम्—लोट्, सवाभ्यां वाऽमौ, इट् आदि।

तदर्थं०—इसके लिए कुछ लोग 'इडिजनोः स्ध्वे च' ऐसा सूत्रपाठ मानते हैं। 'यस्मिन् विधिस्तदादावल्ग्रहणे' इस परिभाषा से सकारग्रहण में सकारादि 'से' शब्द का ग्रहण होता है। वह सकारादि शब्द सार्वधातुकसंज्ञक 'से' शब्द ही सम्भव है; अन्य कोई शब्द सम्भव नहीं है। 'स्व' शब्द भी सम्भव है—ऐसा नहीं है। 'एकदेशविकृतमनन्यवद् भवति' इस परिभाषा से 'स्व' भी 'से' ही माना जायेगा। अतः उसका ग्रहण भी होना चाहिए।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जो 'ईडजनोर्ध्वे च' इस प्रकार सूत्रपाठ करते हैं, वे लोग 'ईशः से' इस योग के अनुकर्षण के लिए चकार का पाठ मानते हैं। तब ईश् अङ्ग से पर 'ध्व' शब्द को भी इट् होता है।

ईशीडि०—(शङ्का) यदि ईश् से उत्तर ध्वम् को इट् आगम मानते हो तो प्रकृत सूत्र के स्थान पर 'ईशीडिजनां सेध्वयोः' इस प्रकार सूत्रपाठ होना चाहिए था। इस प्रकार पृथक् विभक्ति का उच्चारण नहीं करना चाहिए। चकार भी नहीं करना चाहिए।

(समा०) आचार्य पाणिनि की शैली विचित्र है। वे इसी प्रकार सूत्रपाठ चाहते हैं।

ध्वे इति०—'ध्वे' इस प्रकार जहाँ टि को एत्व होता है, वहाँ ही इट् होता है। अतः लङ् में 'ध्वम्' को इट् नहीं होना चाहिए। कारण कि वहाँ टि को एत्व नहीं होता; परन्तु लोट् में 'एकदेशविकृतमनन्यवद्०' परिभाषा से इट् होना चाहिए।

(3358) लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य *79* (2211)

'सार्वधातुके' इति वर्तते। सार्वधातुके यो लिङ् तस्य अनन्त्यस्य सकारस्य लोपो भवति। कः पुनरनन्त्यो लिङः सकारः? यो यासुट्-सुट्-सीयुटाम्। कुर्यात्, कुर्याताम्, कुर्युः। कुर्वीत, कुर्वीयाताम्, कुर्वीरन्। अनन्त्यस्येति किम्? कुर्युः, कुर्याः। 'सार्वधातुके' इत्येव-क्रियास्ताम्, क्रियासुः। कृषीष्ट, कृषीयास्ताम्, कृषीरन्।

अर्थ—सार्वधातुकसंज्ञक लिङ् प्रत्यय के अनन्त्य सकार का लोप होता है। लिङ् का अनन्त्य सकार क्या है? 'अनन्त्य' का अर्थ है—जो अन्त्य न हो। यासुट्, सुट् तथा सीयुट् का सकार अनन्त्य होता है।

उदा० (1) कुर्यात्
कृ तिप्—विधिलिङ्
कृ उ तिप्—इतश्च,
कृ उ यासुट् त्—यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो०, ये च,
कुर् यास् त्—अत उत् सार्वधातुके,
कुर्यात्—सकारलोप।

(2) कुर्याताम्
कृ यासुट् ताम्—'तस्' को 'ताम्' आदेश,
कुर् यास् ताम्—सकारलोप।

(3) कुर्युः
कृ झि—प्र०पु० बहुवचन,
कृ उ यासुट् झि—यासुट्,
कुर् यास् जुस्—झेर्जुस्, ये च।
कुर् या उस्—सकारलोप, उस्यपदान्तात्।

(4) कुर्वीत
कृ उ त—विधिलिङ्, आत्मनेपद,
कृ उ सीयुट् सुट् त—सुट् तिथोः,
कर् उ सीय् स् त—अत उत् सार्वधातुके,
कुर् उ सीय् त—सकारलोप,
कुर् उ ईय् त—सकारलोप,
कुर् वी य् त—लोपो व्योर्वलि।

(5) कुर्वीयाताम्
कृ उ सीयुट् सुट् आताम्—पूर्ववत्,
कुर् उ ईय् आताम्—सकारलोप,
कुर् वीय् आताम्—यण्।

(6) कुर्वीरन्
कृ उ सीय् झ—पूर्ववत्,
कुर् उ ई य् रन्—झस्य रन्, सकारलोप,
कुर्वीय् रन्—यकारलोप।

अनन्त्य—जो अन्त्य नहीं है, ऐसे सकार का लोप होता है।

(7) कुर्युः
कृ उ यासुट् झि—तनादिकृञ्भ्य०, यासुट् परस्मै०,
कुर् उ यास् जुस्—झेर्जुस्, गुण, अत उत् सार्वधा०,
कुर् या उस्—चुटू, अनन्त्य सकारलोप,
कुर्युस्—'उस्यपदान्तात्' से पररूप, सकार अन्त्य होने से इसका लोप नहीं होता है।

(8) कुर्याः
कृ उ यासुट् स्—सिप्, 'इतश्च' से इकारलोप, शेष पूर्ववत्,
कुर् या स्—गुण, अत उत् सार्व०, यासुट् के सकार का अनन्त्य होने से लोप; परन्तु सिप् के सकार का अनन्त्य न होने से लोप नहीं होता है।

सार्वधा०—सार्वधातुक लिङ् का जो अनन्त्य सकार, उसका लोप होता है।

(9) क्रियास्ताम्
कृ ताम्—आशीर्लिङ्, 'लिङाशिषि' से आर्धधातुक संज्ञा,
कृ यासुट् ताम्—पूर्ववत्,
क्रि यास् ताम्—'रिङ्शयग्लि० से 'रिङ्',

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्रियास्ताम्—सकार लिङ् का है, अनन्त्य है, परन्तु सार्वधातुक का नहीं है। अतः लोप नहीं हुआ।

(10) क्रियासुः
कृ यासुट् झि—'झेर्जुस्' से 'जुस्',
क्रि यास् उस्—चुटू, रिङ्शयग्लि०,
क्रियासुस्—आर्धधातुक संज्ञा होने से सकारलोप नहीं हुआ।

(11) कृषीष्ट
कृ सीयुट् सुट् त—आत्मनेपद, आर्धधातुक संज्ञा,
कृ सीय् स् त—अनुबन्धलोप,
कृषी स् त—यकारलोप, षत्व, अनन्त्य सकार का लोप नहीं हुआ,
कृषीष् ट—षत्व, ष्टुत्व।

(12) कृषीयास्ताम्
कृ सीयुट् आ सुट् ताम्—आताम्, आर्धधातुक संज्ञा, पूर्ववत् सीयुट् व सुट्,
कृ सीय् आस्ताम्—आर्धधातुक संज्ञा होने से सीयुट् व सुट् के अनन्त्य सकार का लोप नहीं हुआ,
कृषीयास्ताम्—षत्व।

(13) कृषीरन्
कृ सीयुट् झ—'झस्य रन्' से 'रन्',
कृ षीय् रन्—आर्धधातुक संज्ञा, अनन्त्य सकार का लोप नहीं हुआ, षत्व,
कृषी रन्—यकारलोप।

(3359) अतो येयः *80* (2212)

अकारान्तादङ्गादुत्तरस्य 'या' इत्येतस्य सार्वधातुकस्य 'इय्' इत्ययमादेशो भवति। पचेत्, पचेताम्, पचेयुरिति। अत्र 'उस्यपदान्तात्' (6.1.96) इति पररूपं बाधितम्। अत इति किम्? चिनुयात्। सुनुयात्। तपरकरणं किम्? यायात्। सार्वधातुक इत्येव-चिकीर्ष्यात्। ननु चातो लोपेनात्र भवितव्यम्, पचेदित्यत्रापि हि तर्हि 'अतो दीर्घो यञि' (7.3.101) इति दीर्घत्वेन भवितव्यम्; तदने-नावश्यं विध्यनन्तरं बाधितव्यम्, स यथैव दीर्घस्य बाधकः, एवमतो लोपस्यापि बाधकः स्यात्? स्यादेतदेवम्, यदि दीर्घः सार्वधातुके विधीयते। अथ तु तिङि विधीयते, तदा येन नाप्राप्तिन्यायेन दीर्घस्यैव बाधकः स्यात्, न पुनरतो लोपस्य। 'येयः' इत्यविभक्तिको निर्देशः। 'यः' इति वा षष्ठीनिर्देशे यलोपस्यासिद्धत्वमनाश्रित्यादुगुणः (6.1.87) कृतः, सौत्रत्वान्निर्देशस्येति। केचिद् अत्र-'अतो यासियः'-इति सूत्रं पठन्ति। तेषां सकारान्तः स्थानी, षष्ठीसमासश्च।

अर्थ—अकारान्त अङ्ग से उत्तर सार्वधातुकसंज्ञक 'या' प्रत्यय के स्थान पर 'इय्' आदेश होता है।
'या' के द्वारा 'यासुट्' का ग्रहण होता है।

उदा० (1) पचेत्
पच् शप् त्—विधिलिङ्, 'इतश्च' से इकारलोप, कर्त्तरि शप्,
पच् अ यासुत् त्—यासुट् परस्मैपदेषू०,
पच या त्—अनन्त्य सकार का लोप,
पच इय् त्—आद् गुणः, लोपो व्योर्वलि।

(2) पचेताम्
पच् शप् यासुट् ताम्—पूर्ववत्,
पच या ताम्—सकारलोप,
पच इ ताम्—इय् आदेश, यकारलोप।

(3) पचेयुः
पच् शप् झि—'झेर्जुस्' से 'जुस्', चुटू,
पच् अ यास् उस्—सकारलोप,
पच या उस्—'उस्यपदान्तात्' से प्राप्त पररूप का बाध होकर 'इय्' आदेश,
पचेय् उस्—आद्गुणः।

अत०—ह्रस्व अकारान्त अङ्ग से उत्तर जो 'या', उसे 'इय्' आदेश होता है।

(4) चिनुयात्
चि श्नु यासुट् तिप्—स्वादिभ्यः श्नुः, यासुट् परस्मैपदे०, इतश्च से इकारलोप, लशक्वतद्धिते,
चिनु यास् त—अनन्त्य सकार का लोप,
चिनु यात्—'चिनु' अङ्ग के अकारान्त न होने से इससे उत्तर 'या' को 'इय्' नहीं हुआ।

(5) सुनुयात्
षु → सु—धात्वादेः षः सः,
सु श्नु यासुट् त्—पूर्ववत्,
सुनुयात्—सकारलोप, पूर्ववत् 'इय्' आदेश अभाव।

तपर०—तपरकरण का प्रयोजन यह है कि **ह्रस्व** अकारान्त अङ्ग से उत्तर जो 'या' प्रत्यय, उसके स्थान पर 'इय्' होता है।

(6) यायात्
या यासुट् त्—इतश्च, यासुट्, शप् का लुक्,
या या त्—अनन्त्य सकार का लोप, अवर्णान्त अङ्ग 'या'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

है; परन्तु वह ह्रस्व अकारान्त नहीं है। अतः इससे पर 'या' प्रत्यय के स्थान पर 'इय्' नहीं होता है।

सार्वधा०—अकारान्त अङ्ग से उत्तर **सार्वधातुक** का जो 'या' प्रत्यय, उसके स्थान पर 'इय्' आदेश होता है।

(7) चिकीर्ष्यात्

कृ सन् → चिकीर्ष—द्वित्वादि कार्य होकर धातुसंज्ञा,

चिकीर्ष यासुट् ति—आशीर्लिङ्, इतश्च, यासुट्,

चिकीर्ष यास् त्—'लिङाशिषि' से आर्धधातुक संज्ञा, अनन्त्य सकार का लोप,

चिकीर्ष् या त्—'चिकीर्ष' ह्रस्व अकारान्त अङ्ग है, इससे उत्तर 'या' प्रत्यय है; परन्तु यह सार्वधातुक नहीं है, अतः 'इय्' आदेश नहीं है होता है, 'अतो लोपः' से अकारलोप।

ननु चातो०—(शङ्का) 'अतो लोपः' सूत्र नित्य है। 'चिकीर्ष या त्' इस दशा में 'अतो येयः' से पूर्व अकार का लोप होता है। तब 'चिकीर्ष् या त्' इस प्रकार अदन्त अङ्ग के न रहने से 'अतो येयः' की प्राप्ति नहीं हो सकेगी; अतः यहाँ 'सार्वधातुके' का अधिकार व्यर्थ है।

(समा०) परन्तु यह उचित नहीं है। 'अतो येयः' (7.2.80) यह सूत्र 'अतो लोपः' (7.2.48) तथा 'अतो दीर्घो यञि' (7.2.101) के मध्य में है। 'चिकीर्ष या त्' इस दशा में आशीर्लिङ् में नित्य होने से 'अतो लोपः' इयादेश का बाध कर देता है तथा विधिलिङ् (पच् अ या त्) में पर होने के कारण 'अतो दीर्घो यञि' सूत्र इयादेश का बाध कर देता है। तब 'मध्येऽपवादाः पूर्वान् विधीन् बाधन्ते' (परि०) के द्वारा इय् आदेश पूर्वविधि अर्थात् अकारलोप का बाध करता है। अतः 'चिकीर्ष या त्' इस दशा में अकारलोप का बाध होकर 'इय्' आदेश प्राप्त होता है। इसकी निवृत्ति के लिये 'सार्वधातुके' का अधिकार अनिवार्य है।

येय इत्य०—प्रकृत सूत्रस्थ 'येयः' पद अविभक्तिक निर्देश है। 'अतो या ङस् इयः' इस दशा में 'आतो लोपः' से 'आतः' इस प्रकार योगविभाग स्वीकार करके आकार का लोप होता है। 'अतो यस् इयः' यहाँ 'ससजुषो०' तथा 'भोभगोअघो०' सूत्र लगकर 'अतो यय् इयः' इस दशा में 'लोपः शाकल्यस्य' से यकार लोप से यकारलोप के असिद्ध रहने से 'आद् गुणः' की अप्राप्ति होकर 'अतो य इयः' रूप बनना चाहिए। अतः कुछ विद्वान् 'अतो या ङस् इयः' यहाँ 'सुपां सुलुक्०' से विभक्ति का लुक् करके गुणादेश करते हैं। अतः कहा है कि 'येयः' अविभक्तिक निर्देश है।

अथवा 'यः' यहाँ षष्ठी का निर्देश है। सौत्रत्वात् यलोप को सिद्ध मानकर गुणादेश हो गया है। काशिकाकार ने सविभक्तिक निर्देशपक्ष में भी समाधान प्रस्तुत किया है। 'अतो य इयः' इस पूर्वोक्त स्थिति में यकारलोप के असिद्ध रहने से गुणादेश की प्राप्ति सौत्र होने से होती है। कुछ विद्वान् 'अतो यासियः' ऐसा सूत्रपाठ मानते हैं। उनके अनुसार स्थानी सकारान्त 'यास्' है। षष्ठी समास है।

विशेष—'अतो येयः' सूत्र के विग्रह तथा स्वरूप के विषय में विद्वानों में कई मत दृष्टिगोचर होते हैं, जिनकी समीक्षा इस प्रकार है—

(क) अतो येयः—काशिकाकार आदि विद्वान् प्रकृत सूत्र का स्वरूप 'अतो येयः' इस प्रकार स्वीकार करते हैं। काशिकाकार ने प्रकृत सूत्र का 'अतो या इयः' इस प्रकार विग्रह मानकर अर्थ किया है। उनके अनुसार 'या' लुप्तषष्ठीक निर्देश है। 'या' का अभिप्राय है—जिसके सकार का लोप हो चुका है, ऐसा 'या' प्रत्यय। इस विग्रह को मानकर ही काशिकाकार 'यास्' के स्थान पर 'इय्' न करके लुप्त सकारवान् 'या' के स्थान पर 'इय्' आदेश करते हैं।

इस प्रकार अर्थ करने पर एक दोष प्रसक्त होता है। पच् शप् यासुट् झि—इस दशा में 'झि' को 'जुस्' आदेश, अनुबन्धों तथा सकार का लोप कर देने पर 'पच या उस्' स्थिति में 'अतो येयः' (7.2.80) से इय् आदेश तथा 'उस्यपदान्तात्' (6.1.93) से पररूप युगपत् प्राप्त होते हैं। 'इय्' आदेश परकार्य होने से प्रथम प्राप्त होता है; परन्तु 'या उस्' इस प्रकार पररूप कार्य केवल प्रत्यय पर आश्रित होने के कारण अन्तरङ्ग है और इय् आदेश अदन्त अङ्ग पर आश्रित होने से बहिरङ्ग है। अन्तरङ्ग होने से पररूप प्राप्त होता है। तब पररूप होकर 'पचायुः' अनिष्ट रूप प्राप्त होता है।

(ख) अतो या इयः—महर्षि पतञ्जलि[1] प्रभृति विद्वान् 'यास्' के स्थान पर 'इय्' आदेश मानते हैं। इस प्रकार 'पचेयुः' में कोई दोष प्रसक्त नहीं होता।

भट्टोजिदीक्षित प्रभृति विद्वान् 'या' के स्थान पर 'इय्' आदेश करते हैं[2]। द्र०—अतः परस्य सार्वधातुकाऽवयवस्य 'या' इत्यस्य 'इय्' स्यात्[3] इय इत्यत्राऽकार उच्चारणार्थः।[4]

1. महा० 7.2.82 अतो या इयः इत्यात्राकारग्रहणं पञ्चमीनिर्दिष्टम्।
2. उद्यो० 7.2.80 षष्ठ्या जातायाः सुलुक् इति लुकि रुत्वयत्व-यलोपेषु तस्याऽसिद्धत्वात् गुणाभावे 'अतो या इयः' इति रूपम्।
3. वै०सि०कौ० सूत्र 2212
4. तत्त्व० सूत्र 2212

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यद्यपि भट्टोजिदीक्षित ने महाभाष्यसम्मत अर्थ की ओर भी संकेत किया है। द्र०—तथापि 'यास्' इत्येतस्य 'इय्' इति व्याख्येयम्। एवं च सलोपस्याऽपवाद 'इय्' इत्यत्र तु सन्धिरार्षः।[1]

(3360) आतो ङितः *81* (2235)

आकारस्य ङिदवयवस्य अकारान्तादङ्गादुत्तरस्य सार्वधातुकस्य 'इय्' इत्ययमादेशो भवति। पचेते, पचेथे। पचेताम्, पचेथाम्। यजेते, यजेथे। यजेताम्, यजेथाम्। 'सार्वधातुकमपित्' (1.2.4) इत्यत्र न ङितीव ङिद्वदित्येवमङ्गीक्रियते, अपि तु ङित इव ङिद्वदिति। पूर्वसूत्रे एव उच्चुकुटिषतीति प्रसिद्ध्ये तथाङ्गीकरणम्। यदि गाङ्कुटादिसूत्रे (1.2.1) ङित इव ङिद्वद्भवतीत्येवमङ्गीक्रियते, तदा 'अनुदात्तङित आत्मनेपदम्' (1.3.12) इति आत्मनेपदं प्राप्नोतीति। आत इति किम्? पचन्ति, यजन्ति। पचन्ते, यजन्ते। ङित इति किम्? पचावहै, पचामहै। अत इत्येव-चिन्वाते, सुन्वाते। तपरकरणं किम्? मिमाते। मिमाथे।

अर्थ—अदन्त अङ्ग से पर सार्वधातुक ङित् का अवयव जो आकार, उसके स्थान पर 'इय' आदेश होता है।

लट्, लोट्, लङ् तथा विधिलिङ्—ये सार्वधातुक लकार हैं। इनके 'आताम्' व 'आथाम्' प्रत्यय 'सार्वधातुकमपित्' से ङिद्वत् होते हैं। विधिलिङ् में 'सीयुट्' के आ जाने से अदन्त अङ्ग के न रहने से इय् आदेश नहीं होता है।

उदा० (1) पचेते
पच् शप् आताम्—प्र०पु० द्विवचन,
पच इय् ताम्—आद् गुणः, यकारलोप,
पचेताम्—टित आत्मनेपदानां०।

(2) पचेथे
पच् शप् आथाम्—सभी कार्य पूर्ववत्।

(3) पचेताम्
पच् शप् आताम्—लोट्,
पच इय् ताम्—पूर्ववत् इय्, यकारलोप,
पचेताम्—आद् गुणः,
पचेते—टित आत्मनेपदानां०, आमेतः।

(4) पचेथाम्
पच् शप् आथाम्—लोट्, 'पचेताम्' की तरह।

(5) यजेते
यज् आताम्—लट्, 'पचेते' की तरह।

(6) यजेथे
यज् आथाम्—लट्, 'पचेथे' की तरह।

(7) यजेताम्
यज् आताम्—लोट्, 'पचेताम्' की तरह।

(8) यजेथाम्
यज् आथाम्—लोट्, 'पचेथाम्' की तरह।

(9) अपचेताम्*
पच् शप् आताम्—लङ्, पूर्ववत्।

(10) अपचेथाम्*
पच् शप् आथाम्—लङ्, पूर्ववत्।

सार्वधा०—'सार्वधातुकमपित्' यहाँ 'ङित् इव ङिद्वत्' स्वीकार किया जाता है; 'ङितीव ङिद्वत्' इस प्रकार नहीं। पूर्वसूत्र के प्रसंग में 'उच्चुकुटिषति' इसकी प्रसिद्धि के लिए ऐसा स्वीकार किया गया है। यदि 'गाङ्कुटादि०' इस सूत्र के प्रसङ्ग में 'ङित इव ङिद्वत्' इस प्रकार स्वीकार किया जाता है तो 'अनुदात्तङित आत्मनेपदम्' से आत्मनेपद प्राप्त होता है।

आत०—**आकार** के स्थान पर ही 'इय्' आदेश होता है।

(11) पचन्ति
पच् शप् झि—लट्, झोऽन्तः,
पच अन्ति—'पच' अकारान्त अङ्ग है, उससे पर 'अन्ति' है, जो सार्वधातुक तथा ङित् है, परन्तु इसका अवयव आकार न होने से 'इय्' आदेश नहीं होता है। 'अतो गुणे' से पररूप होता है।

(12) यजन्ति
यज् शप् अन्ति—पूर्ववत्,
यज अन्ति—पररूप।

(13) पचन्ते
पच् शप् झ—झोऽन्तः, सार्वधातुक संज्ञा, ङिद्वत्,
पच् अ अन्त—'इय्' नहीं हुआ, पररूप,
पचन्त—एत्व।

(14) यजन्ते
'पचन्ते' की तरह।

1. वै०सि०कौ० 2214

* उदाहरण (9) तथा (10) काशिका में प्रदर्शित नहीं हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ङित०—अदन्त अङ्ग से उत्तर ङित् सार्वधातुक का अवयव जो आकार, उसके स्थान पर 'इय्' होता है।

(15) पचावहै

पच् शप् वहि—लोट्, आड् उत्तमस्य पिच्च, सार्वधातुक संज्ञा,

पच आ वहि—अदन्त अङ्ग (पच) से उत्तर 'आवहि' का अवयव आकार है, सार्वधातुक संज्ञा है; परन्तु ङित् नहीं है; अतः 'इय्' नहीं होता है,

पचावहै—आत ऐ।

अत०—ह्रस्व अकारान्त अङ्ग से उत्तर ङित् सार्वधातुक 'आ' को 'इय्' होता है।

(16) चिन्वाते

चि आताम्—लट्, स्वादिभ्यः श्नुः, अनुबन्धलोप,

चि नु आताम्—'चिनु' अङ्ग अदन्त नहीं है। अतः इससे उत्तर सार्वधातुक ङित् (आताम्) के अवयव आकार को 'इय्' नहीं होता है,

चिनु आते—टित आत्मनेपदानां०, यण्।

(17) सुन्वाते

षु → सु आताम्—धात्वादेः षः सः, शेष पूर्ववत्।

तपर०—'आतः' पद में तपरकरण का प्रयोजन यह है कि निम्नलिखित स्थलों पर 'इय्' आदेश नहीं होता है—

(18) मिमाते

मा आताम्—शप्, जुहोत्यादिभ्यः श्लुः, श्लौ,

मा मा आताम्—द्वित्व,

मि म् आताम्—'भृञामित्' से अभ्यास को 'इत्', 'श्नाऽभ्यस्तयोरातः' से आकारलोप,

मिमाते—टित आत्मनेपदा०। यदि 'आतः' में तपरकरण नहीं होता तो परकार्य होने से इय् होने लगता।

(3361) आने मुक् *82* (3101)

आने परतोऽङ्गस्यातो मुगागमो भवति। पचमानः, यजमानः। अकारमात्रभक्तोऽयं मुक् अदुपदेशग्रहणेन गृह्यते इति 'अदुपदेशात्' इति लसार्वधातुकानुदात्तत्वं भवति। यद्येवम्, 'आतो ङितः' (7.2.81) इत्यमपि विधिः प्राप्नोति? तपरनिर्देशान्न भविष्यति। मुकि सत्यध्यर्धमात्रो भवति। लसार्वधातुकानुदात्तत्वमपि तर्हि न प्राप्नोति? नैष दोषः, उपदेशग्रहणं तत्र क्रियते। तेन उपदेशादूर्ध्वं सत्यपि कालभेदे भवितव्यम्। तथा च-पचावः, पचाम इत्यत्रापि भवति।

अर्थ—अङ्ग के ह्रस्व अकार को मुक् आगम होता है, 'आन' परे रहते। पूर्वशास्त्र से अनुवृत्त पञ्चम्यन्त 'अतः' को विभक्तिविपरिणाम के द्वारा षष्ठ्यन्त कर लिया जाता है। यहाँ ध्यातव्य है कि 'अतः' पद 'अङ्गस्य' का विशेषण नहीं है। इसे विशेषण मान लेने पर 'अदन्तस्याऽङ्गस्य मुगागमः स्याद् आने परतः' इस प्रकार सूत्रार्थ होता है। इस अर्थ का आश्रय करने पर स्वरदोष प्रसक्त होता है। अतः यहाँ आकार आगमी है; अङ्ग नहीं।

मुक् के ककार तथा उकार की इत्संज्ञा होती है। कित् होने से यह अन्त्य अवयव होता है।

(1) पचमानः

पच् शानच्—लट्, शानच्, लशक्वतद्धिते, हलन्त्यम्, तिङ् शित् सार्वधातुकम्, कर्तरि शप्, अनुबन्धलोप,

पच् अ आन—मुक्,

पच म् आन सु—अनुबन्धलोप, विभक्तिकार्य।

(2) यजमानः

यज् शानच्—'पचमानः' की तरह।

(3362) ईदासः *83* (3104)

आस उत्तरस्यानशब्दस्य ईकारादेशो भवति। आसीनो यजते। अत्र पञ्चम्याः परस्य षष्ठी कल्प्यते।

अर्थ—'आस्' अङ्ग से उत्तर जो 'आन्' उसके स्थान पर ईकार होता है। यह 'आदेः परस्य' परिभाषा से 'आन' के आकार को होता है।

उदा० (1) आसीनः

आस् शानच्—अनुबन्धलोप, शप्, शप् का लुक्,

आस् ई न सु—ईकार, सु।

(3363) अष्टन आ विभक्तौ *84* (371)

अष्टनो विभक्तौ परत आकारादेशो भवति। अष्टाभिः। अष्टाभ्यः। अष्टानाम्। अष्टासु। विभक्ताविति किम्? अष्टत्वम्। अष्टता। 'आ' इति व्यक्तिनिर्देशोऽयम्, आकृतिनिर्देशे तु नकारस्थानेऽनुनासिकाकारः स्यात्। विकल्पेनायमाकारो भवति, एतज्ज्ञापितम्-'अष्टनो दीर्घात्' (6.1.172) इति दीर्घग्रहणात्, 'अष्टाभ्य औश्' (7.1.21) इति च कृतात्वस्य निर्देशात्। तेनाष्टभिः, अष्टभ्य इत्यपि भवति। तदन्तविधिश्चात्रेष्यते-प्रिया अष्टौ येषां ते प्रियाष्टानः। प्रियाष्टौ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—अष्टन् अङ्ग को 'आ' आदेश होता है, विभक्ति परे रहते। अलोऽन्त्य परिभाषा से यह अन्त्य वर्ण के स्थान पर होता है। 'अष्टाभ्य औश्' के द्वारा जस् व शस् में आत्व का विकल्प होता है। शेष सभी विभक्तियाँ हलादि[1] हैं। अतः प्रकृत सूत्र के द्वारा विहित आकार आदेश हलादि विभक्तियों में होता है।

उदा० (1) अष्टाभिः
अष्टन् भिस्—आकार,
अष्ट आ भिस्—अकः सवर्णे दीर्घः।

(2) अष्टाभ्यः
अष्टन् भ्यस्—पूर्ववत्।

(3) अष्टानाम्
अष्टन् आम्—'ष्णान्ता षट्' से षट् संज्ञा, 'षट्चतुर्भ्यश्च' से 'नुट्' आगम,
अष्ट आ न् आम्—आकार, सवर्णदीर्घ।

(4) अष्टासु
अष्टन् सुप्—आकार, सवर्णदीर्घ।

विभक्ता०—विभक्तिसंज्ञक प्रत्यय के परे रहते ही आकार अन्तादेश होता है।

(5) अष्टत्वम्
अष्टन् त्व—नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य,
अष्टत्व सु—'त्व' की विभक्तिसंज्ञा न होने से आकार अन्तादेश नहीं हुआ।

(6) अष्टता
अष्टन् तल्—आकार नहीं हुआ, नकारलोप,
अष्टत टाप् सु—अजाद्यतष्टाप्।

आ इति०—सूत्रस्थ 'आ' पद में व्यक्तिनिर्देश है। इसे जाति-निर्देश मान लेने पर नकार के स्थान पर होने वाला आकार अन्तादेश 'स्थानेऽन्तरतमः' परिभाषा के द्वारा अनुनासिक 'आँ' होने लगेगा। अतः 'आ' यह आकृतिनिर्देश न होकर, व्यक्ति-निर्देश है।

यह आकार अन्तादेश विकल्प से प्रवृत्त होता है। इसमें 'अष्टनो दीर्घात्' सूत्र प्रमाण है। यदि आकार अन्तादेश नित्य होता तो 'अष्टनो दीर्घात्' सूत्र में 'दीर्घात्' पद की क्या आवश्यकता थी ? तब 'दीर्घात्' पद व्यर्थ होकर ज्ञापित करता है कि आकार अन्तादेश विकल्प से प्रवृत्त होता है। तब पक्ष में निम्नलिखित रूप भी होते हैं—

(7) अष्टभिः
अष्टन् भिस्—नकारलोप हुआ,
अष्टभिः—विसर्ग।

(8) अष्टभ्यः
अष्टन् भ्यस्—नकारलोप।

(9) अष्टसु
अष्टन् सुप्—नकारलोप।

विशेष—यहाँ ध्यातव्य है कि 'अष्टाभ्य औश्' के द्वारा जस् व शस् में विकल्प से आत्व होता है। शेष सभी विभक्तियाँ हलादि हैं। ष० बहुवचन में 'आम्' को 'नुट्' होकर हलादि विभक्ति बन जाती है।

'अङ्गाधिकारे तस्य तदुत्तरस्य च' इस परिभाषा से यहाँ तदन्त विधि भी होती है। भाव यह है कि अष्टन् शब्द के अन्त में रहने पर भी आकार अन्तादेश होता है। सूत्रस्थ 'अष्टनः' पद में 'अष्टानाम्' इस प्रकार बहुवचन का निर्देश होना चाहिए था, परन्तु यहाँ एकवचन का निर्देश किया गया है। इससे सूचित होता है कि यहाँ स्वरूप का ग्रहण होता है; अर्थ का नहीं। तब 'अष्टन्' शब्द के उपसर्जन होने पर भी अन्तादेश होता है। वहाँ पर भी पक्ष में प्रियाष्टा, प्रियाष्टानौ, प्रियाष्टानः रूप होते हैं।

(10) प्रियाऽष्टानः
प्रिया अष्टौ येषां ते—आत्व अभाव।

(11) प्रियाऽष्टौ
आत्वपक्ष।

(3364) रायो हलि *85* (286)

'रै' इत्येतस्य हलादौ विभक्तौ परत आकारादेशो भवति। राभ्याम्। राभिः। हलीति किम्? रायौ, रायः। विभक्ताविति किम्? रैत्वम्, रैता। 'मृजेर्वृद्धिः' (7.2.114) इत्यतः प्राग्विभक्त्यधिकारः।

अर्थ—'रै' अङ्ग को आकार (अन्तादेश) होता है, हलादि विभक्ति परे रहते। यह अन्तादेश होता है।

उदा० (1) राः
रै सु—विभक्ति संज्ञा, आकार आदेश,
रा स्—विसर्ग।

1. षष्ठी बहुवचन में 'आम्' को 'नुट्' आगम हो जाने से यह भी हलादि हो जाती है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(2) राभ्याम्
रै भ्याम्—आकार।

(3) राभिः
रै भिस्—आकार।

(4) राभ्यः (पूर्ववत्)।

(5) रासु
रै सुप्—पूर्ववत्।

हलीति०—हलादि विभक्ति के परे रहते 'रै' अङ्ग को आकार होता है।

(6) रायौ
रै औ—विभक्ति 'औ' परे है, जो हलादि नहीं है। अतः अङ्ग को आकार नहीं हुआ।
राय् औ—आय्।

(7) रायः
रै जस्—पूर्ववत् अन्तादेश नहीं हुआ।

विभक्ता०—विभक्ति के परे रहते आकार अन्तादेश होता है।

(8) रैत्वम्
रै त्व—'त्व' हलादि तो है, परन्तु इसकी विभक्तिसंज्ञा नहीं है। अतः आकार नहीं होता है,
रै त्व सु—विभक्तिकार्य।

(9) रैता
रै तल्—पूर्ववत् आकार अन्तादेश की अप्राप्ति,
रै त टाप् सु—अजाद्यतष्टाप्।

मृजे०—'मृजेर्वृद्धिः' इससे पूर्व 'विभक्तौ' का अधिकार है।

(3365) युष्मदस्मदोरनादेशे *86* (393)

युष्मदस्मदित्येतयोरनादेशे विभक्तौ परत आकारादेशो भवति। युष्माभिः। अस्माभिः। युष्मासु। अस्मासु। अनादेश इति किम्? युष्मत्। अस्मत्। 'हलि' इत्यधिकारादप्यत्र न स्यात्, उत्तरत्र त्वनादेशग्रहणेन प्रयोजनम्–'योऽचि' (7.2.89) इति, तदिहैव क्रियते।

अर्थ—युष्मद् तथा अस्मद्—इन अङ्गों को आकार (अन्तादेश) होता है;, अनादेश, हलादि विभक्ति के परे रहते।

उदा० (1) युष्माभिः
युष्मद् भिस्—अन्तादेश,
युष्म आ भिस्—आकार हुआ,
युष्माभिस्—अकः सवर्णे दीर्घः।

इसी प्रकार 'युवाभ्याम्'। यथा—
युव अद् भ्याम् → युवद् भ्याम् → युव आभ्याम्—सवर्ण दीर्घ।

(2) अस्माभिः
अस्मद् भिस्—आकार होता है।

इसी प्रकार—'आवाभ्याम्'।

(3) युष्मासु
युष्मद् सुप्—सप्तमी बहुवचन,
युष्म आ सु—आकार अन्तादेश,
युष्मासु—सवर्णदीर्घ।

(4) अस्मासु
अस्मद् सु—पूर्ववत्।

अनादेश०—अनादेश हलादि विभक्ति के परे रहते अन्तादेश होता है।

(5) युष्मत्
युष्मद् भ्यस्—'पञ्चम्या अत्' से 'अत्' हुआ,
युष्मद् अत्—अनादेश विभक्ति न होने से अन्तादेश नहीं हुआ,
युष्म् अत्—शेष लोपः।

(6) अस्मत्
अस्मद् भ्यस्—पूर्ववत्।

इसी प्रकार निम्नलिखित में अन्तादेश नहीं होता है—

(7) युष्मभ्यम्
युष्मद् भ्यस्—चतुर्थी बहुवचन,
युष्मद् भ्यम्—भ्यसो भ्यम्,
युष्म भ्यम्—आकार नहीं हुआ।

(8) अस्मभ्यम् (पूर्ववत्)।

हलि०—(शङ्का) प्रकृत सूत्र में 'हलि' पद का अनुवर्त्तन है। 'युष्मद् अत्' इस दशा में हलादि विभक्ति के न रहने से आकार अन्तादेश प्राप्त नहीं है। तब 'अनादेशे' पद की क्या आवश्यकता है? इसी प्रकार 'युष्मद् अभ्यम्' इस दशा में हलादि विभक्ति के न रहने से अन्तादेश अप्राप्त है। अतः 'अनादेशे' पद व्यर्थ है।

(समा०) वस्तुतः 'अनादेशे' पद का प्रयोजन 'योऽचि' सूत्र में है। उसके लिए यहाँ किया गया है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(3366) द्वितीयायां च *87* (390)

द्वितीयायां च परतो युष्मदस्मदोराकारादेशो भवति। त्वाम्, माम्। युवाम्, आवाम्। युष्मान्, अस्मान्। आदेशार्थं वचनम्।

अर्थ—युष्मद् तथा अस्मद्—इन अङ्गों को आकार (अन्तादेश) होता है, द्वितीया विभक्ति के परे रहते।

उदा० (1) त्वाम्
युष्मद् अम्—त्वमावेकवचने,
त्व अद् अम्—'अतो गुणे' से पररूप,
त्वद् अम्—अन्तादेश,
त्व आ अम्—सवर्णदीर्घ, अमि पूर्वः।

(2) माम्
अस्मद् अम्—पूर्ववत्,
म अद् अम्—त्वमावेकवचने,
मद् अम्—अतो गुणे,
म आ अम्—पूर्ववत्।

(3) युवाम्
युष्मद् अम्—द्वि० द्विवचन, औ, ङे प्रथमयोरम्,
युव अद् अम्—युवावौ द्विवचने,
युवद् अम्—अतो गुणे,
युव आ अम्—सवर्णदीर्घ, अमि पूर्वः।

(4) आवाम्
अस्मद् औ → अस्मद् अम्—पूर्ववत्,
आव अद् अम्—'आव' आदेश, पररूप,
आव आ अम्—अन्तादेश, सवर्णदीर्घ, अमि पूर्वः।

(5) युष्मान्
युष्मद् शस्—'ङे प्रथमयोरम्' से 'अम्' प्राप्त, 'शसो नः' से नकार,
युष्मद् न् स्—अन्तादेश,
युष्म आ न् स्—अकः सवर्णे दीर्घः,
युष्मान् स्—संयोगान्तस्य लोपः।

(6) अस्मान्
अस्मद् शस्—लशक्वतद्धिते,
अस्म आ न् स्—पूर्ववत्,
अस्मान्—पूर्ववत्।
आदेश के लिए यह विधान है।

(3367) प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम् *88* (387)

प्रथमायाश्च द्विवचने परतो भाषायां विषये युष्मदस्मदोराकारादेशो भवति। युवाम्, आवाम्। प्रथमाया इति किम्? युवयोः, आवयोः। द्विवचन इति किम्? त्वम्, अहम्, यूयम्, वयम्। भाषायामिति किम्? 'यु वं वस्त्राणि पीवसा वसाथे' (ऋ० 1.152.1)।

अर्थ—युष्मद् तथा अस्मद्—इन अङ्गों को आकार (अन्तादेश) होता है, प्रथमा का द्विवचन परे रहते, लोक में।

उदा० (1) युवाम्
युष्मद् औ—शेष कार्य 'युवाम्' की तरह पूर्ववत्।

(2) आवाम्
अस्मद् औ—पूर्ववत् 'आवाम्' की तरह।

प्रथमाया०—**प्रथमा** विभक्ति के द्विवचन के परे रहते ही अन्तादेश होता है।

(3) युवयोः
युष्मद् ओस्—'ओस्' द्विवचन है, परन्तु प्रथमा का नहीं है। अतः आकार आदेश नहीं होता है,
युव अद् ओस्—युवावौ द्विवचने,
युवद् ओस्—'अतो गुणे' से पररूप,
युवय् ओस्—'योऽचि' से यकार।

(4) आवयोः
अस्मद् ओस्—आकार नहीं हुआ,
आव अद् ओस्—'आव' आदेश,
आवद् ओस्—अतो गुणे,
आव य् ओस्—योऽचि।

द्विवचन०—प्रथमा के **द्विवचन** के परे रहते आकार होता है।

(5) त्वम्
युष्मद् सु—'सु' प्रथमा विभक्ति है, परन्तु द्विवचन नहीं है। अतः अङ्ग को आकार अन्तादेश नहीं हुआ,
त्व अद् अम्—त्वाहौ सौ, 'ङे प्रथमयोरम्' से 'अम्',
त्वद् अम्—'अतो गुणे' से पररूप तथा 'शेषे लोपः' से लोप युगपत् प्राप्त होते हैं। लोप परकार्य है; अतः पररूप को बाध कर प्रथम लोप प्राप्त हुआ। टिलोप अङ्गाधिकार में है तथा विभक्ति प्रत्ययसापेक्ष है; अतः बहिरङ्ग है। पररूप अन्तर्गत वर्णद्वय की

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपेक्षा रखता है, अतः अन्तरङ्ग है। अन्तरङ्ग बहिरङ्ग से बलवान् होता है; अतः लोप को बाध कर प्रथम पररूप हुआ।[1]

त्वद् अम्—'शेषे लोपः' लोप,
त्वम्—अमि पूर्वः।

(6) अहम्
अस्मद् सु—पूर्ववत् आकार की अप्राप्ति,
अह अद् सु—त्वाहौ सौ,
अहद् अम्—अतो गुणे, ङे प्रथमयोरम्,
अह अम्—शेषे लोपः, अमि पूर्वः।

(7) यूयम्
युष्मद् जस्—प्रथमा विभक्ति है; परन्तु द्विवचन नहीं है। अतः अङ्ग को आकार आदेश नहीं होता है,
युष्मद् अम्—ङे प्रथमयोरम्, स्थानिवद्भाव से 'अम्' आदेश भी जस् ही है,
यूय अद् अम्—यूयवयौ जसि,
यूयद् अम्—अतो गुणे,
यूय अम्—शेषे लोपः, अमि पूर्वः।

(8) वयम्
अस्मद् जस्—आकार अन्तादेश की अप्राप्ति,
अस्मद् अम्—ङे प्रथमयोरम्,
वयद् अम्—'वय' आदेश, पररूप,
वय अम्—शेषे लोपः, अमि पूर्वः।

भाषाया०—लोक में ही सूत्रोक्त आकार अन्तादेश होता है।

'प्रथमायाश्च द्विवचने' के स्थान पर 'औ प्रत्यये' ऐसा पाठ न करके आचार्य ने विचित्रता का प्रदर्शन किया है।[2]

(9) युवम् (ऋ० 1.152.1)

यह वैदिक प्रयोग है। प्रथमा के द्विवचन में आकार नहीं हुआ।

(3368) योऽचि *89* (392)

अजादौ विभक्तावनादेशे युष्मदस्मदोर्यकारादेशो भवति। त्वया, मया। त्वयि, मयि। युवयोः, आवयोः। अचीति किम्? युवाभ्याम्, आवाभ्याम्। 'युष्मदस्मदोरनादेशे' (7.2.86) इत्यत्र यदि 'हलि' (8.2.85) इत्यनुवर्त्तते, शक्यमकर्तुम् 'अचि' इत्येतत्? तत्क्रियते विस्पष्टार्थम्। अनादेश इत्येव–त्वद् गच्छति। मद् गच्छति।

अर्थ—युष्मद् तथा अस्मद्—इन अङ्गों को 'य्' आदेश होता है, अनादेश अजादि विभक्ति के परे रहते।

अलोऽन्त्य परिभाषा से यकार आदेश अन्त्य अल् को होता है। यकार में अकार उच्चारणार्थ है।

उदा० (1) त्वया,
युष्मद् टा—तृ० एकवचन, चुटू,
त्व अद् आ—त्वमावेकवचने,
त्वद् आ—अतो गुणे। 'आ' अनादेश अजादि विभक्ति है,
त्वय् आ—यकार।

(2) मया
अस्मद् टा—पूर्ववत्,
म अद् आ—त्वमावेकवचने,
मद् आ—अतो गुणे,
मय् आ—योऽचि।

(3) त्वयि
युष्मद् ङि—लशक्वतद्धिते,
त्वद् इ—त्वमावेकव०, अतो गुणे,
त्वय् इ—यकार आदेश।

(4) मयि
अस्मद् ङि → मद् इ → मय् ई—पूर्ववत्।

(5) युवयोः
युष्मद् ओस्—युवावौ द्विवचने,
युव अद् ओस्—अतो गुणे,
युव य् ओस—योऽचि।

(6) आवयोः
अस्मद् ओस्—युवावौ द्विव०, अतो गुणे।
आवद् ओस्—योऽचि।

अचीति०—अजादि अनादेश विभक्ति परे रहते यकार आदेश होता है।

(7) युवाभ्याम्
युष्मद् भ्याम्—युवावौ द्विव०,
युव अद् भ्याम्—अतो गुणे,
युवद् भ्याम्—'भ्याम्' विभक्ति अनादेश है, परन्तु अजादि नहीं है, अतः यकार आदेश नहीं होता है,

1. ध्यातव्य है कि लोप विभक्ति को निमित्त मानते हैं तथा पररूप अकार को। दोनों का आश्रय भिन्न-भिन्न है। अतः 'वार्णादाङ्गं बलीयः' परिभाषा भी लागू नहीं होती है।

2. न्यास० 7.2.88 'औ' इति वक्तव्ये 'प्रथमायाश्च द्विवचने' वैचित्र्यार्थम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

युव आ भ्याम्—युष्मदस्मदोर० से आकार,
युवा भ्याम्—अकः सवर्णे दीर्घः।

(8) आवाभ्याम्
अस्मद् भ्याम्—'युवाभ्याम्' की तरह।

युष्मद०—यदि 'युष्मदस्मदोरनादेशे' एवं 'हलि' पद का अनुवर्त्तन किया जाय तो यहाँ 'अचि' कहना व्यर्थ है। अतः 'अचि' का ग्रहण स्पष्टता के लिए है।

अनादेश०—अनादेश अजादि विभक्ति के परे रहते ही यकार अन्तादेश होता है।

(9) त्वद् गच्छति
युष्मद् भ्यस्—'पञ्चम्या अत्' से 'अत्' आदेश,
त्व अद् अत्—'त्व' आदेश,
त्वद् अत्—अतो गुणे,

त्व अत्—अनादेश विभक्ति न होने से यकार नहीं हुआ, 'शेषे लोपः' से लोप,
त्वत्—अतो गुणे।

(10) मद् गच्छति
पूर्ववत् सभी कार्य।

(3369) शेषे लोपः *90* (385)

शेषे विभक्तौ युष्मदस्मदोर्लोपो भवति। कश्च शेषः? यत्राकारो यकारश्च न विहितः।

पञ्चम्याश्च चतुर्थ्याश्च षष्ठीप्रथमयोरपि।
यान्यद्विवचनान्यत्र तेषु लोपो विधीयते॥

त्वम्, अहम्। यूयम्, वयम्। तुभ्यम्, मह्यम्। युष्मभ्यम्, अस्मभ्यम्। त्वत्, मत्। युष्मत्, अस्मत्। तव, मम। युष्माकम्, अस्माकम्। शेषग्रहणं विस्पष्टार्थम्। शेषे लोपे कृते स्त्रियां टाप् कस्मान्न भवति–त्वं ब्राह्मणी, अहं ब्राह्मणी? 'सन्निपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्य' (व्या०प० 12) 'अलिङ्गे वा युष्मदस्मदी' इति। केचितु शेषे लोपं टिलोपमिच्छन्ति। कथम्? वक्ष्यमाणादेशापेक्षः शेषः, ते चादेशा मपर्यन्तस्य (7.2.91) विधीयन्ते, तेन मपर्यन्ताद् योऽन्यः स शेष इति, तत्रायं लोप इति टिलोपो भवति।

अर्थ—शेष विभक्ति के परे युष्मद् और अस्मद् अङ्ग का लोप होता है। स्थानषष्ठी के अर्थ में अधिकरणत्व की विवक्षा से 'शेषे' पद में सप्तमी हुई है।

कश्च०—शेष क्या है? जहाँ आकार आदेश, यकार आदेश का विधान नहीं होता है, उसे 'शेष' कहा जाता है। 'शेषे' पद के अर्थ के विषय में दो मत हैं—

(क) 'शेषे' पद प्रकृति से सम्बद्ध है। इस मत के अनुसार युष्मद् तथा अस्मद् के मपर्यन्त भाग से आगे शेष भाग का लोप होता है। मपर्यन्त भाग से आगे 'अद्' शेष बचता है, जो युष्मद् और अस्मद् की 'टि' है। अतः इस मत के अनुसार इन अङ्गों की 'टि' का लोप होता है।

परन्तु उपर्युक्त कथन का आशय यह नहीं है कि युष्मद् तथा अस्मद् अङ्गों के मपर्यन्त आदेशों से अवशिष्ट भाग का लोप होता है। इस अर्थ में एक दोष प्रसक्त होता है। 'युष्मभ्यम्' तथा 'अस्मभ्यम्'—इन स्थलों पर प्रकृत सूत्र की प्राप्ति नहीं हो सकेगी। कारण कि, यहाँ मपर्यन्त भाग को कोई आदेश नहीं हुआ है।

(ख) 'शेषे' पद प्रत्यय से सम्बद्ध है। इसके अनुसार शेष विभक्तियों में युष्मद् तथा अस्मद अङ्गों का लोप होता है। अलोऽन्त्य परिभाषा से दकार का लोप होता है।

शास्त्र में युष्मदस्मदोरनादेशे, द्वितीयायाञ्च तथा प्रथमायाश्च द्विवचने भाषायाम्—इन सूत्रों के द्वारा आकार तथा यकार अन्तादेश का विधान किया गया है। इस अर्थ के अनुसार आत्व तथा यत्व के स्थलों को छोड़कर शेष स्थलों पर युष्मद् व अस्मद् अङ्गों के अन्त्य अल् अर्थात् दकार का लोप होता है।

पञ्चम्या०—काशिकाकार ने एक श्लोक में इन स्थलों का परिगणन कर दिया है। कारिका का अर्थ इस प्रकार है—

पञ्चमी, चतुर्थी, षष्ठी तथा प्रथमा विभक्तियों के एकवचन और बहुवचन में 'शेषे लोपः' से लोप होता है।

यहाँ ध्यातव्य है कि अन्त्य लोप पक्ष में 'अतो गुणे' से पररूप अथवा 'अमि पूर्वः' से पूर्वरूप होता है। टिलोपपक्ष में न पररूप होता है; न ही पूर्वरूप होता है।

(1) त्वम्, (2) अहम्—देखें सूत्र 7.2.94।
(3) यूयम्, (4) वयम्—देखें सूत्र 7.2.93।
(5) तुभ्यम्, (6) मह्यम्—देखें सूत्र 7.2.95।
(7) युष्मभ्यम्, (8) अस्मभ्यम्—देखें सूत्र 7.1.30।
(9) त्वत्, (10) मत्—देखें सूत्र 7.1.32।
(11) युष्मत्, (12) अस्मत्—देखें सूत्र 7.1.31।
(13) तव, (14) मम—देखें सूत्र 7.2.96।
(15) युष्माकम्, (16) अस्माकम्—देखें सूत्र 7.1.33।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शेष०—शेष पद का ग्रहण स्पष्टता के लिए है। 'शेषे लोपः' से लोप करने पर स्त्रीत्व की विवक्षा में टाप् क्यों नहीं होता है। यथा—त्वं ब्राह्मणी, अहं ब्राह्मणी।

'सन्निपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद् विघातस्य' अथवा 'अलिङ्गे वा युष्मदस्मदोः' इससे 'टाप्' नहीं होता है।

केचित्तु०—कुछ विद्वान् 'शेषे लोपः' से टि का लोप स्वीकार करते हैं। किस प्रकार ? शेष शब्द वक्ष्यमाण आदेशों की अपेक्षा रखता है। वे आदेश मपर्यन्त भाग को विहित हैं। तब मपर्यन्त से अतिरिक्त जो भाग है, वह 'शेष' कहलाता है। उसी का लोप होता है और यह 'टि' का लोप होता है।

(3370) मपर्यन्तस्य *91* (383)

'मपर्यन्तस्य' इत्ययमधिकारः। यदित ऊर्ध्वमनुक्रमिष्यामः 'मपर्यन्तस्य' इत्येवं तद्वेदितव्यम्। वक्ष्यति–'युवावौ द्विवचने' (7.2.92)। युवाम्, आवाम्। मपर्यन्तस्येति किम्? युवकामावकामिति साकच्कस्य मा भूत्'। 'त्वमावेकवचने' (7.2.97)। त्वया। मया। मपर्यन्तस्येति किम्? साकच्कस्य सर्वस्य मा भूत्। तथा च सति त्वमयोरकारस्य 'योऽचि' (7.2.89) इति यकारे कृतेऽनिष्टं रूपं स्यात्'। मन्तस्येत्येव सिद्धे, अस्मिन् यत्परिग्रहणं कृतम्, अवधिद्योतनार्थं तत्, मान्ते मा भूत् (म० भा०)। कदा? यदा ण्यन्तयोः क्विपि मान्तत्वं विद्यते युष्मदस्मदोः। स्थानिवत्त्वं च णेरत्र क्वौ लुप्तत्वान्न विद्यते।

अर्थ—यह अधिकार है। इससे आगे जो कहा जायेगा, वह सब मपर्यन्त को होता है। आगे कहा जायेगा—'युवावौ द्विवचने' आदि।

उदा० (1) युवाम्, (2) आवाम्

मपर्यन्त०—'मपर्यन्त' को ही ये कार्य होते हैं। तब अकच् युक्त 'युवकाम्' तथा 'अवकाम्'—इन स्थलों पर ये कार्य नहीं होते।

इसी प्रकार 'त्वमावेकवचने'।

(3) त्वया, (4) मया।

मपर्यन्त०—मपर्यन्त को ही ये कार्य होते हैं। तब अकच् युक्त को ये कार्य नहीं होते हैं। ऐसा होने पर 'त्व' और 'म' के आकार के स्थान पर 'योऽचि' से यकार करने पर अनिष्ट रूप प्राप्त होता है।

मान्तस्ये०—'मपर्यन्तस्य' के स्थान पर 'मान्तस्य' का पाठ करने में लाघव होता है; परन्तु 'पर्यन्त' शब्द का ग्रहण अवधि को द्योतित करने के लिए है। ताकि मान्त का न हो। कब ? जब णिजन्त युष्मद् व अस्मद् का क्विप् परे रहते मान्तता होती है। 'क्वौ लुप्तं न स्थानिवत्' इस वचन से क्विप् परे लुप्त होने से 'णि' का स्थानिवद्भाव नहीं होता है। अतः परे विभक्ति प्राप्त है। आदेश की प्रसक्ति वारण के लिए 'परि' का ग्रहण आवश्यक है।

(3371) युवावौ द्विवचने *92* (386)

'द्विवचने' इत्यर्थग्रहणम्। द्विवचने ये युष्मदस्मदी द्व्यर्थाभिधानविषये तयोर्मपर्यन्तस्य स्थाने युव, आव–इत्येतावादेशौ भवतः। युवाम्, आवाम्। युवाभ्याम्, आवाभ्याम्। युवयोः, आवयोः। यदा समासे द्व्यर्थे युष्मदस्मदी भवतः, समासार्थस्यान्यसंख्यत्वादेकवचनं बहुवचनं वा भवति, तदापि द्व्यर्थयोर्युष्मदस्मदोर्युवावौ भवतः, यदि 'त्वाहौ सौ' (7.2.94)–इत्येवमादिना आदेशान्तरेण न बाध्येते। अतिक्रान्तं युवाम् अतियुवाम्, अत्यावाम्। अतिक्रान्तान् युवाम् अतियुवान्, अत्यावान्। अतिक्रान्तेन युवाम् अतियुवया, अत्यावया। अतिक्रान्तैर्युवाम् अतियुवाभिः, अत्यावाभिः। अतिक्रान्तेभ्यो युवाम् अतियुवभ्यम्, अत्यावभ्यम्। अतिक्रान्ताद् युवाम् अतियुवत्, अत्यावत्। अतिक्रान्तेभ्यो युवाम् अतियुवत्, अत्यावत्। अतिक्रान्तानां युवाम् अतियुवाकम्, अत्यावाकम्। अतिक्रान्ते युवाम् अतियुवयि, अत्यावयि। अतिक्रान्तेषु युवाम् अतियुवासु, अत्यावासु। त्वहादीनां तु विषये परत्वात्त एव भवन्ति–अतिक्रान्तो युवाम् अतित्वम्, अत्यहम्। अतिक्रान्ता युवाम् अतियूयम्, अतिवयम्। अतिक्रान्ताय युवाम् अतितुभ्यम्, अतिमह्यम्। अतिक्रान्तस्य युवाम् अततव, अतिमम। यदा तु युष्मदस्मदी एकत्वबहुत्वयोर्वर्तेते, समासार्थस्तु द्वित्वे, तदा युवावौ न भवतः। अतिक्रान्तौ त्वाम् अतित्वाम्, अतिमाम्। अतिक्रान्तौ युष्मान् अतियुष्मान्, अत्यस्मान्। एवमुन्नेयम्।

अर्थ—'द्विवचने' से अर्थ का ग्रहण होता है। द्विवचन में युष्मद् और अस्मद् अङ्गों के मपर्यन्त भाग को क्रमशः 'युव' तथा 'आव' आदेश होते हैं, विभक्ति परे रहते।

उदा० (1) युवाम्

युष्मद् औ—'डे प्रथमयोरम्' से 'अम्' आदेश,

युष्मद् अम्—'युव' आदेश,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

युव अद् अम्—अतो गुणे,
युवद् अम्—आकार अन्तादेश,
युव आ अम्—सवर्णदीर्घ, अमि पूर्वः।

(2) आवाम्
अस्मद् औ—सभी कार्य पूर्ववत्।

(3) युवाभ्याम्
युष्मद् भ्याम्—द्विव० विभक्ति,
युवद् भ्याम्—पूर्ववत्,
युव आ भ्याम्—आकार, सवर्णदीर्घ।

(4) आवाभ्याम्
अस्मद् भ्याम्—शेष कार्य पूर्ववत्।

(5) युवयोः
युष्मद् ओस्—द्विव० विभक्ति,
युव अद् ओस्—पूर्ववत्,
युवद् ओस्—अतो गुणे,
युव य् ओस्—योऽचि।

(6) आवयोः
अस्मद् ओस्—पूर्ववत्।

यदा०—जब समास में युष्मद् व अस्मद् द्वयर्थ में होते हैं, समासार्थ का अन्यसंख्य होने से एकवचन या बहुवचन होता है, तब भी द्वि अर्थ वाले युष्मद् व अस्मद् को 'युव' तथा 'आव' होते हैं; यदि 'त्वाहौ सौ' इत्यादि अन्य आदेश के द्वारा वे बाधित न हों।

(7) अतियुवाम्
अतिक्रान्तं युवाम्—इस अर्थ में समास हुआ, 'युव' आदेश हुआ है।

(8) अत्याकम्
अतिक्रान्तम् आवाम्—यहाँ पूर्ववत् 'आव' आदेश हुआ है।

(9) अतियुवान्
अतिक्रान्तान् युवाम्—यहाँ 'युव' हुआ है। 'शसो नः' से नत्व।

(10) अत्यावान्
अतिक्रान्तान् आवाम्—'आव' हो गया।

(11) अतियुवया
अतिक्रान्तेन युवाम्—'युव' हुआ। 'योऽचि' से यकार। युष्मदस्मदोर०।

(12) अत्यावया
अतिक्रान्तेनाऽऽवाम्—पूर्ववत्।

(13) अतियुवाभिः
अतिक्रान्तैर्युवाम्—'युव' हुआ।

(14) अत्यावाभिः
अतिक्रान्तैरावाम्—'आव' हुआ।

(15) अतियुवभ्यम्
अतिक्रान्तेभ्यो युवाम्—'युव', 'भ्यसोभ्यम्'।

(16) अत्यावभ्यम्
अतिक्रान्तेभ्य आवाम्—पूर्ववत्।

(17) अतियुवत्
अतिक्रान्ताद् युवाम्—'युव' आदेश, 'एकवचनस्य च'।

(18) अत्यावत्
अतिक्रान्ताद् आवाम्—पूर्ववत्।

(19) अतियुवत्
अतिक्रान्तेभ्यो युवाम्—'युव', 'पञ्चम्या अत्'।

(20) अत्यावत्
अतिक्रान्तेभ्य आवाम्—पूर्ववत्।

(21) अतियुवाकम्
अतिक्रान्तानां युवाम्—युव, साम आकम्।

(22) अत्यावाकम्
अतिक्रान्तानाम् आवाम्—पूर्ववत्।

(23) अतियुवयि
अतिक्रान्ते युवाम्—'योऽचि' से यकार।

(24) अत्यावयि
अतिक्रान्ते आवाम्—पूर्ववत्।

(25) अतियुवासु
अतिक्रान्तेषु युवाम्—'युव' हुआ।

(26) अत्यावासु
अतिक्रान्तेष्वावाम्—पूर्ववत्।

त्वाहा०—त्व, अह आदि के विषय में तो पर होने से वे ही होते हैं।

(27) अतित्वम्
अतिक्रान्ते युवाम्—'युव' आदेश नहीं हुआ, 'त्वाहौ सौ' से 'त्व' हुआ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(28) अत्यहम्
अतिक्रान्त आवाम्—पूर्ववत्।

(29) अतियूयम्
अतिक्रान्ता यूयम्—'यूयवयौ०' से 'यूय' हुआ है। 'युव' आदेश नहीं हुआ।

(30) अतिवयम्
अतिक्रान्ता वयम्—पूर्ववत्।

(31) अतितुभ्यम्
अतिक्रान्ताय युवाम्—'युव' आदेश नहीं हुआ, 'तुभ्य' आदेश होता है।

(32) अतिमह्यम्
अतिक्रान्तायाऽऽवाम्—पूर्ववत्।

(33) अतितव
अतिक्रान्तस्य युवाम्—'युव' आदेश को बाध कर 'तवममौ०' से 'तव' आदेश होता है।

(34) अतिमम
अतिक्रान्तस्याऽऽवाम्—पूर्ववत्।

यदा तु०—जब युष्मद् और अस्मद् शब्द एकत्व तथा बहुत्व में वर्त्तमान होते हैं और समासार्थ द्वित्व में वर्त्तमान होता है तो 'युव' तथा 'आव' आदेश नहीं होते हैं; यथा—

(35) अतित्वाम्
अतिक्रान्तौ त्वाम्—'युव' आदेश नहीं हुआ, 'त्व' हुआ है।

(36) अतिमाम्
अतिक्रान्तौ माम्—पूर्ववत्।

(37) अतियुष्मान्
अतिक्रान्तौ युष्मान्—'युव' नहीं हुआ, 'शसो नः' से नकार होता है।

(38) अत्यस्मान्
अतिक्रान्तौ अस्मान्—पूर्ववत्।
इसी प्रकार अन्यत्र भी जानना चाहिए।

(3372) यूयवयौ जसि *93* (388)

युष्मदस्मदोर्मपर्यन्तस्य जसि परतो यूय, वय–इत्येतावादेशौ भवतः। यूयम्, वयम्। परमयूयम्, परमवयम्। अतियूयम्, अतिवयम्। तदन्तविधिरत्र भवति; 'अङ्गाधिकारे तस्य च तदुत्तरपदस्य च' (सीर०प० 77) इति।

अर्थ—युष्मद् और अस्मद्—इन अङ्गों के मपर्यन्त भाग के स्थान पर यथासंख्य 'यूय' तथा 'वय' आदेश होते हैं, जस् विभक्ति परे रहते।

उदा० (1) यूयम्
युष्मद् जस्—'ङे प्रथमयोरम्' से 'अम्' आदेश, स्थानिवद्भाव,
युष्मद् अम्—'यूय' आदेश, अतो गुणे,
यूयद् अम्—शेषे लोपः,
यूय् अम्—रूप बना।

अन्त्य लोपपक्ष में 'यूय अम्' इस दशा में 'अमि पूर्वः' से पूर्वरूप होता है।

(2) वयम्
अस्मद् जस्—अम् आदेश, वय आदेश,
वयद् अम्—पररूप,
वयम्—शेषे लोपः।

(3) परमयूयम्
यहाँ भी 'यूय' हुआ है।

(4) परमवयम्
'वय' आदेश हुआ।

(5) अतियूयम् (पूर्ववत्)।
(6) अतिवयम् (पूर्ववत्)।

अङ्ग०—'अङ्गाधिकारे तस्य च तदुत्तरपदस्य च' परिभाषा से तदन्तविधि होती है।

(3373) त्वाहौ सौ *94* (384)

युष्मदस्मदोर्मपर्यन्तस्य सौ परे त्व, अह–इत्येतावादेशौ भवतः। त्वम्, अहम्। परमत्वम्, परमाहम्। अतित्वम्, अत्यहम्।

अर्थ—युष्मद् और अस्मद्—इन अङ्गों को मपर्यन्त भाग के स्थान पर यथासंख्य 'त्व' तथा 'अह' आदेश होते हैं, 'सु' विभक्ति के परे रहते।

उदा० (1) त्वम्
युष्मद् सु—'ङे प्रथमयोरम्' से 'अम्' हुआ, स्थानिवद्भाव हुआ,
त्व अद् अम्—'त्व' हुआ, पररूप,
त्वद् अम्—शेषे लोपः।

(2) अहम्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अस्मद् सु—पूर्ववत्।

(3) परमत्वम्
पूर्ववत् 'त्व' आदेश।

(4) परमाऽहम्
पूर्ववत् 'अह' आदेश।

(5) अतित्वम्
तदन्त विधि होती है।

(6) अत्यहम् (पूर्ववत्)।

(3374) तुभ्यमह्यौ ङयि *95* (394)

युष्मदस्मदोर्मपर्यन्तस्य तुभ्य, मह्य-इत्येतावादेशौ भवतो ङयि परतः। तुभ्यम्, मह्यम्। परमतुभ्यम्, परममह्यम्। अतितुभ्यम्, अतिमह्यम्।

अर्थ—युष्मद् और अस्मद्—इन अङ्गों के मपर्यन्त भाग के स्थान पर यथासंख्य 'तुभ्य' तथा 'मह्य' आदेश होते हैं, 'ङे' विभक्ति परे रहते।

उदा० (1) तुभ्यम्
युष्मद् ङे—'ङे प्रथमयोरम्' से 'अम्' हुआ, स्थानिवद्भाव हुआ,
तुभ्य अद् अम्—'तुभ्य' आदेश,
तुभ्यद् अम्—अतो गुणे,
तुभ्य अम्—शेषे लोपः, अमि पूर्वः।
टिलोप पक्ष में (तुभ्य् अम्)।

(2) मह्यम्
अस्मद् ङे—पूर्ववत्।

(3) परमतुभ्यम्
तदन्त विधि होकर 'तुभ्य' आदेश होता है।

(4) परममह्यम् (पूर्ववत्)।

(5) अतितुभ्यम्
तदन्त विधि होती है।

(6) अतिमह्यम् (पूर्ववत्)।

(3375) तवममौ ङसि *96* (398)

युष्मदस्मदोर्मपर्यन्तस्य तव, मम-इत्येतावादेशौ भवतो ङसि परतः। तव, मम। परमतव, परममम। अतितव, अतिमम।

अर्थ—युष्मद् और अस्मद्—इन अङ्गों के मपर्यन्त भाग के स्थान पर यथासंख्य 'तव' तथा 'मम' आदेश होते हैं, ङस् विभक्ति के परे रहते।

उदा० (1) तव
युष्मद् ङस्—'त्वमावेकवचने' को बाध कर 'तव' आदेश,
तव अद् अस्—'अश्' आदेश,
तवद् अश्—पररूप, शेषे लोपः।

(2) मम
अस्मद् ङस्—पूर्ववत्।

(3) परमतव
तदन्त विधि होती है।

(4) परममम
तदन्त विधि होती है।

(5) अतितव
पूर्ववत् तदन्त विधि।

(6) अतिमम
तदन्त विधि होती है।

(3376) त्वमावेकवचने *97* (389)

'एकवचने' इत्यर्थनिर्देशः। एकवचने ये युष्मदस्मदी एकार्थाभिधानविषये तयोर्मपर्यन्तस्य स्थाने त्व, म-इत्येतावादेशौ भवतः। त्वाम्, माम्। त्वया, मया। त्वत्, मत्। त्वयि, मयि। यदा समासे एकार्थे युष्मदस्मदी भवतः, समासार्थस्य त्वन्यसंख्यत्वाद् द्विवचनं बहुवचनं वा भवति, तदापि त्वमावादेशौ भवतः। आदेशान्तराणां तु 'त्वाहौ सौ' (7.2.94)-इत्येवमादीनां विषये पूर्वविप्रतिषेधेन ते एवेष्यन्ते। अतिक्रान्तस्त्वामतित्वम्, अत्यहम्। अतिक्रान्तौ त्वाम् अतित्वाम्, अतिमाम्। अतिक्रान्तान् त्वाम् अतित्वान्, अतिमान्। अतिक्रान्ताभ्यां त्वाम् अतित्वाभ्याम्, अतिमाभ्याम्। अतिक्रान्तैस्त्वाम् अतित्वाभिः, अतिमाभिरिति। एवमाद्युदाहर्तव्यम्।

अर्थ—'एकवचने' यह अर्थ का निर्देश है। एकवचन में एकार्थ कथन के विषय में जो युष्मद् तथा अस्मद्, उनके मपर्यन्त भाग के स्थान पर यथासंख्य 'त्व' तथा 'म' आदेश होते हैं।

उदा० (1) त्वाम्
युष्मद् अम्—द्वितीया एकवचन,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

त्वद् अम्—'त्व', अतो गुणे,
त्व आ अम्—'द्वितीयायाञ्च' से अकार, अकः सवर्णे दीर्घः, अमि पूर्वः।

(2) माम्
अस्मद् अम्—पूर्ववत् 'म' आदेश, पररूप,
मद् अम्—आकार अन्तादेश, सवर्णदीर्घ, पूर्वरूप।

(3) त्वया
युष्मद् टा—'चुटू' से टकार की इत्संज्ञा,
त्वद् आ—'त्व' आदेश, पररूप,
त्व य् आ—योऽचि।

(4) मया
अस्मद् टा—'म' आदेश, पररूप,
मद् आ—यकार।

(5) त्वत्
युष्मद् ङसि—एकवचनस्य च, त्वमावेकवच०, अतो गुणे,
त्वद् अत्—शेषे लोपः।

(6) मत्
अस्मद् ङसि—पूर्ववत् 'अत्' आदेश,
मद् अत्—शेषे लोपः।

(7) त्वयि
युष्मद् ङि—'त्व' आदेश, पररूप,
त्वद् इ—'योऽचि' से यकार।
त्वय् इ—रूप बना।

(8) मयि
अस्मद् ङि—'म' आदेश,
मद् इ—यकार आदेश।

यदा०—जब समास में एकार्थ में युष्मद् तथा अस्मद् होते हैं, समास के अर्थ का अन्यसंख्य होने से द्विवचन तथा बहुवचन होता है तो भी 'त्व' तथा 'म' आदेश होते हैं। 'त्वाहौ सौ' इत्यादि अन्य आदेशों के विषय में पूर्वविप्रतिषेध से वे आदेश ही होते हैं।

(9) अतित्वम्
अतिक्रान्तस्त्वाम्—समास हुआ, 'त्व' आदेश, शेष कार्य 'त्वम्' की तरह।

(10) अत्यहम्श
अतिक्रान्तो माम्—पूर्ववत्।

(11) अतित्वाम्
अतिक्रान्तौ त्वाम्—त्व, आकार अन्तादेश आदि कार्य होते हैं।

(12) अतिमाम्
अतिक्रान्तौ माम्—पूर्ववत्।

(13) अतित्वान्
अतिक्रान्तान् त्वाम्—त्व हुआ, 'शसो नः' से नकार होकर रूप बनता है।

(14) अतिमान्
अतिक्रान्तान् माम्—पूर्ववत्।

(15) अतित्वाभ्याम्
अतिक्रान्ताभ्यां त्वाम्—समास, 'त्व' आदेश होकर रूप बनता है।

(16) अतिमाभ्याम्
अतिक्रान्ताभ्यां माम्—पूर्ववत्।

(17) अतित्वाभिः
अतिक्रान्तैस्त्वाम्—पूर्ववत् 'त्व' आदेश होकर रूप बनता है।

(18) अतिमाभिः
अतिक्रान्तैर्माम्—पूर्ववत्।

एवमु०—इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी जानने चाहिए।

(3377) प्रत्ययोत्तरपदयोश्च *98* (1373)

'एकवचने' इत्यनुवर्तते। प्रत्यये उत्तरपदे च परत एकवचने वर्तमानयोर्युष्मदस्मदोर्मपर्यन्तस्य त्व, म–इत्येतावादेशौ भवतः। तवायं त्वदीयः, मदीयः। अतिशयेन त्वं त्वत्तरः, मत्तरः। त्वामिच्छति त्वद्यति, मद्यति। त्वमिवाचरति त्वद्यते, मद्यते। उत्तरपदे–तव पुत्रः त्वत्पुत्रः, मम पुत्रो मत्पुत्रः। त्वं नाथोऽस्य त्वन्नाथः, अहं नाथोऽस्य मन्नाथः। एकवचन इत्येव–युष्माकमिदं युष्मदीयम्, अस्मदीयम्। युष्माकं पुत्रोऽस्माकम् पुत्रो युष्मत्पुत्रः अस्मत्पुत्रः। 'विभक्तौ' इत्यधिकारात् पूर्वयोगो विभक्तावेव। ततोऽन्यत्रापि प्रत्यये उत्तरपदे च यथा स्यादित्ययमारम्भः। ननु चात्राप्यन्तर्वर्तिनी विभक्तिरस्ति, तस्यामेवादेशौ भविष्यतः? नैवं शक्यम्; लुका तस्या भवितव्यम्। बहिरङ्गो लुक्, अन्तरङ्गावादेशौ, प्रथमं तौ भविष्यतः? एतदेव तह्यदिशवचनं ज्ञापकम्–'अन्तरङ्गानपि विधीन् बहिरङ्गोऽपि लुग्बाधते' (व्या०प० 128)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इति। तेन गोमान्प्रियोऽस्य गोमत्प्रिय इत्येवमादौ नुमादि लुका बाध्यते। एवं च सति 'त्वाहौ सौ' (7.9.94) इत्येवमादयोऽपि प्रत्ययोत्तरपदयोरादेशा न भवन्ति। त्वं प्रधानमेषां त्वत्प्रधानाः, मत्प्रधानाः। यूयं पुत्रा अस्य युष्मत्पुत्रः, अस्मत्पुत्रः। तुभ्यं हितं त्वद्धितम्, मद्धितम्। तव पुत्रस्त्वत्पुत्रः, मत्पुत्रः। अथ किमर्थमेषां त्वाहादीनां बाधनार्थमेतन्न विज्ञायते? लक्ष्यस्थित्यपेक्षया। ज्ञापकार्थं ह्येतस्मिन् बहुतरमिष्टं संगृह्यते।

अर्थ—'एकवचने' की अनुवृत्ति है। एकत्व अर्थ में वर्त्तमान युष्मद् और अस्मद्—इन अङ्गों के मपर्यन्त भाग के स्थान पर यथासंख्य 'त्व' तथा 'म' आदेश होते हैं, प्रत्यय व उत्तरपद के परे रहते।

(क) प्रत्यये—

(1) त्वदीयः
तव अयम्—इस अर्थ में 'छ' प्रत्यय हुआ,
युष्मद् छ—त्यदादीनि च, वृद्धाच्छः,
युष्मद् ईय—आयनेयी० से 'ईय' आदेश,
त्व अद् ईय—'त्व' आदेश,
त्वद् ईय—अतो गुणे, सु।

(2) मदीयः
ममाऽयम्—पूर्ववत्।

(3) त्वत्तरः
अतिशयेन त्वम्—इस अर्थ में,
युष्मद् तरप्—'द्विवचनविभज्योपपदे०' से 'तरप्',
त्व अद् तर—हलन्त्यम्, 'त्व' आदेश,
त्वद् तर—अतो गुणे, खरि च, सु।

(4) मत्तरः
अतिशयेनाऽहम्—पूर्ववत् 'तरप्',
अस्मद् तरप् → मद् तर → मत्तर सु।

(5) त्वद्यति
त्वामिच्छति—'सुप आत्मनः क्यच्' से 'क्यच्',
युष्मद् क्यच्—'त्व' आदेश,
त्व अद् क्यच्—'अतो गुणे' से पररूप,
त्वद् य ति—धातुसंज्ञा, शप्, पररूप।

(6) मद्यति
अस्मद् क्यच्—पूर्ववत्।

(7) त्वद्यते
त्वम् इवाऽऽचरति—कर्तुः क्यङ् सलोपश्च,
युष्मद् क्यङ्—लशक्वतद्धिते, हलन्त्यम्,
त्व अद् य—अतो गुणे, शेष पूर्ववत्।

(8) मद्यते
अहमिवाऽऽचरति—सभी कार्य पूर्ववत्।

(ख) उत्तरपदे—

(9) त्वत्पुत्रः
तव पुत्रः—समास हुआ,
युष्मद् ङस् पुत्र सु—सुप् लुक्,
त्वद् पुत्र—'त्व' आदेश, अतो गुणे,
त्वत्पुत्र सु—खरि च।

(10) मत्पुत्रः
मम पुत्रः—पूर्ववत्।

(11) त्वन्नाथः
त्वं नाथोऽस्य—समास, 'त्व' आदेश,
त्वद् नाथ—यरोऽनुनासिकेऽनु०,
त्वन्नाथ सु—विभक्तिकार्य।

(12) मन्नाथः
अहं नाथोऽस्य—पूर्ववत्।

एकवचन०—एकवचन में वर्त्तमान युष्मद् तथा अस्मद्—इन अङ्गों को सूत्रोक्त आदेश होते हैं।

(13) युष्मदीयम्
युष्माकम् इदम्—'त्वदीय' की तरह 'छ' हुआ,
युष्मद् छ—एकवचन का विषय न होने से 'त्व' आदेश नहीं हुआ,
युष्मद् ईय सु—'ईय' आदेश।

(14) अस्मदीयम्
अस्माकम् इदम्—पूर्ववत् 'म' आदेश की अप्राप्ति।

(15) युष्मत्पुत्रः
युष्माकं पुत्रः—एकवचन का विषय न होने से 'त्व' आदेश नहीं होता है,
युष्मद् पुत्र—खरि च, सु।

(16) अस्मत्पुत्रः
अस्माकं पुत्रः—'म' आदेश की अप्राप्ति।

विभक्तौ०—'विभक्तौ' इस पद का अधिकार होने से पूर्वयोग

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विभक्ति परे रहते ही होता है। उससे अतिरिक्त स्थलों पर अर्थात् प्रत्यय परे रहते और उत्तरपद परे रहते भी हो जाय—इसके लिए यह विधान है।

ननु०—यहाँ पर भी अन्तर्वर्त्तिनी विभक्ति है। उसके परे रहते भी ये आदेश होते हैं। यह सम्भव नहीं है। उसका लुक् होना चाहिए। लुक् बहिरङ्ग है, आदेश अन्तरङ्ग हैं। प्रथम आदेश ही होते हैं। ये आदेश ज्ञापन के लिए हैं कि बहिरङ्ग होते हुये भी लुक् विधि अन्तरङ्ग विधियों का बाध कर लेती है। निम्नलिखित स्थल पर नुम् आगम लुक् के द्वारा बाधित होता है—

(17) गोमत्प्रियः
गोमान् प्रियोऽस्य—समास,
गोमत् प्रिय—नुम् की प्राप्ति, लुक् के द्वारा बाध,
गोमत्प्रिय सु—विभक्तिकार्य।

एवं च०—ऐसा हो जाने पर तो प्रत्यय तथा उत्तरपद के परे रहते 'त्वाहौ सौ' इत्यादि के द्वारा 'त्व' आदि आदेश हो जाते हैं। यथा—

(18) त्वत्प्रधानाः
त्वं प्रधानम् एषाम्—समास,
युष्मद् प्रधान—उत्तरपद परे रहते 'त्व' आदेश,
त्वद् प्रधान—अतो गुणे,
त्वत् प्रधान जस्—खरि च।

(19) मत्प्रधानाः
अहं प्रधानम् एषाम्—पूर्ववत् 'म' आदेश।

(20) युष्मत्पुत्रः
यूयं पुत्रा अस्य—समास,
युष्मद् पुत्र—एकवचन का विषय न होने से 'त्व' नहीं हुआ,
युष्मत् पुत्र सु—खरि च।

(21) अस्मत् पुत्रः
वयं पुत्रा अस्य—समास,
अस्मद् पुत्र—पूर्ववत्।

(22) त्वद्धितम्
तुभ्यं हितम्—समास,
त्वद् हित—'त्व' आदेश, पररूप,
त्वद् धित—झयो होऽन्यतरस्याम्, सु।

(23) मद्धितम्
मह्यं हितम्—पूर्ववत् 'म' आदेश।

(24) त्वत्पुत्रः
तव पुत्रः—त्व आदेश, पररूप,
त्वद् पुत्र—खरि च, सु।

(25) मत्पुत्रः
मम पुत्रः—पूर्ववत्।

अथ०—त्व तथा अह—इनके बाध के लिए इसे क्यों न मान लिया जाय। लक्ष्य की स्थित की अपेक्षा से। इस ज्ञापक अर्थ में अत्यधिक इष्टों का संग्रह होता है।

(3378) त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ *99*

(298)

त्रि, चतुर्–इत्येतयोः स्त्रियां वर्तमानयोस्तिसृ, चतसृ–इत्येतावादेशौ भवतो विभक्तौ परतः। तिस्रः। चतस्रः। तिसृभिः। चतसृभिः। स्त्रियामिति किम्? त्रयः। चत्वारः। त्रीणि। चत्वारि। स्त्रियामिति चैतत् त्रिचतुरोरेव विशेषणम्, नाङ्गस्य। तेन यदा त्रिचतुःशब्दौ स्त्रियाम्, अङ्गं तु लिङ्गान्तरे, तदाप्यादेशौ भवत एव–प्रियास्तिस्रो ब्राह्मण्योऽस्य ब्राह्मणस्य–प्रियतिसा ब्राह्मण इति। प्रियतिस्रौ, प्रियतिस्रः। प्रियतिसृ ब्राह्मणकुलम्, प्रियतिसृणी, प्रियतिसृणि। प्रियचतस्रा, प्रियचतस्रौ, प्रियचतस्रः। प्रियचतसृ, प्रियचतसृणी, प्रियचतसृणि। 'नद्यृतश्च' (5.4.153) इति समासान्तो न भवति; विभक्त्याश्रयत्वेन तिसृभावस्य बहिरङ्गलक्षणत्वात्। यदा च त्रिचतुःशब्दौ लिङ्गान्तरे, स्त्रियामङ्गम्, तदा आदेशौ न भवतः–प्रियास्रयोऽस्याः, प्रियाणि त्रीणि वा अस्या ब्राह्मण्याः सा प्रियत्रिः, प्रियत्री, प्रियत्रयः। प्रियचत्वाः प्रियचत्वारौ, प्रियचत्वारः। *तिसृभावे संज्ञायां कन्युपसंख्यानं कर्त्तव्यम्* (म०भा०)। तिसृका नाम ग्रामः। *चतसर्याद्युदात्तनिपातनं कर्त्तव्यम्* (म०भा०)। चतस्रः पश्येत्यत्र 'चतुरः शसि' (6.1.137) इत्येष स्वरो मा भूत्। चतसृणामित्यत्र तु 'षट्त्रिचतुर्भ्यो हलादिः' (6.1.179) इत्येव स्वरो भवति। हलादिग्रहणसामर्थ्यान्निपातनस्वरो बाध्यते।

अर्थ—स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान 'त्रि' तथा 'चतुर्' अङ्गों को यथासंख्य 'तिसृ' व 'चतसृ' आदेश होते हैं, विभक्ति परे रहते।

उदा० (1) तिस्रः
त्रि जस्—'चुटू' से जकार की इत्संज्ञा,
तिसृ अस्—'ऋतो ङिसर्व०' से प्राप्त गुण को बाध कर 'अचि र ऋतः' से रेफ हुआ। इसी प्रकार 'शस्' में होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(2) चतस्रः
चतुर् जस्—चुटू,
चतसृ अस्—'चतसृ' आदेश, शेष पूर्ववत्।

(3) तिसृभिः
त्रि भिस्—स्त्रीत्व,
तिसृ भिस्—'तिसृ' आदेश।

(4) चतसृभिः
चतुर् भिस्—'चतसृ' आदेश,
चतसृ भिस्—विसर्ग।

स्त्रिया०—स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान त्रि व चतुर् के स्थान पर यथासंख्य 'तिसृ' व 'चतसृ' आदेश होते हैं।

(5) त्रयः (पुरुषाः)
त्रि जस्—स्त्रीत्व की विवक्षा न होने से 'तिसृ' आदेश नहीं हुआ,
त्रे अस्—गुण, 'जसि च'।
त्रय् अस्—एचोऽयवायावः।

(6) चत्वारः (पुरुषाः)
चतुर् जस्—पूर्ववत् 'चतसृ' की अप्राप्ति,
चतु आम् र् अस्—'चतुरनडुहोरामुदात्तः' से 'आम्',
चत्वार् अस्—यण्।

(7) त्रीणि (फलानि)
त्रि जस् (शस् वा)—स्त्रीलिङ्ग की विवक्षा न होने से 'तिसृ' नहीं हुआ,
त्रि शि—'जश्शसोः शिः' से 'शि', 'शि सर्वनामस्थानम्' से सर्वनामस्थानसंज्ञा, लशक्वतद्धिते,
त्रि न् इ—'नपुंसकस्य झलचः' से नुम् आगम, अनुबन्धलोप,
त्रीन् इ—नोपधायाः।

(8) चत्वारि (फलानि)
चतुर् शि—पूर्ववत्,
चतु आम् र् इ—'आम्' आगम,
चत्वारि—यण्।

स्त्रियामि०—'स्त्रियाम्' यह पद 'त्रिचतुरोः' का ही विशेषण है; अङ्ग का विशेषण नहीं है। अतः जब 'त्रि' तथा 'चतुर्' शब्द स्त्रीलिङ्ग में होते हैं, भले ही अङ्ग अन्य लिङ्ग में हो तो भी सूत्रोक्त (तिसृ, चतसृ) आदेश होते हैं। यथा—

(9) प्रियतिसा (ब्राह्मणः)
प्रियास्तिस्रो ब्राह्मण्योऽस्य ब्राह्मणस्य—समास,
प्रिया जस् त्रि जस्—सुप् का लुक्,
प्रिया तिसृ—'त्रि' शब्द स्त्रीलिङ्ग में है; परन्तु अङ्ग 'प्रियत्रि' पुंल्लिङ्ग में वर्त्तमान है, तदपि तिसृभाव हुआ,
प्रिया तिसृ सु—पुंवद्भाव,
प्रिय तिसृ सु—विभक्तिकार्य।

(10) प्रियतिस्रौ (ब्राह्मणौ)
प्रियास्तिस्रो ब्राह्मण्योऽनयोर्ब्राह्मणयोः—समास,
प्रिय तिसृ औ—पूर्ववत् सभी कार्य, प्रथमा द्विव०, यण् आदेश।

(11) प्रियतिस्रः (ब्राह्मणाः)
प्रियास्तिस्रो ब्राह्मण्य एषां ब्राह्मणानाम्—पूर्ववत्,
प्रियतिसृ जस्—गुण का बाध, अचि र ऋतः।

(12) प्रियतिसृ (ब्राह्मणकुलम्)
प्रियास्तिस्रो ब्राह्मण्योऽस्य ब्राह्मणकुलस्य—पूर्ववत्,
प्रियतिसृ सु—'स्वमोर्नपुंसकात्' से लुक्।

(13) प्रियतिसृणी (ब्राह्मणकुले)
प्रियास्तिस्रो ब्राह्मण्योऽनयोर्ब्राह्मणकुलयोः—समास,
प्रियतिसृ—पूर्ववत्,
प्रियतिसृ औ—'शी' आदेश, नुम् आदि।

(14) प्रियतिसॄणि (ब्राह्मणकुलानि)
प्रियास्तिस्रो ब्राह्मण्य एषां ब्राह्मणकुलानाम्—समास,
प्रियतिसृ जस्—पूर्ववत्, जश्शसोः शिः, नुम्, दीर्घ।

(15) प्रियचतस्रा (ब्राह्मणः)
प्रियाश्चतस्रो ब्राह्मण्योऽस्य ब्राह्मणस्य—'प्रियतिसा' की तरह सभी कार्य होते हैं।

(16) प्रियचतस्रौ (ब्राह्मणौ)
प्रियाश्चतस्रो ब्राह्मण्योऽनयोर्ब्राह्मणयोः—'प्रियतिस्रौ' की तरह सभी कार्य।

(17) प्रियचतस्रः
प्रियाश्चतस्रो ब्राह्मण्य एषां ब्राह्मणानाम्—'प्रियतिस्रः' की तरह।

(18) प्रियचतसृ (ब्राह्मणकुलम्)
प्रियाश्चतस्रो ब्राह्मण्योऽस्य ब्राह्मणकुलस्य—'प्रियतिसृ' की तरह, 'सु' का लोप।

(19) प्रियचतसृणी (ब्राह्मणकुले)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रियाश्चतस्रो ब्राह्मण्योऽनयोर्ब्राह्मणकुलयोः—'प्रियतिसृणी' की तरह सभी कार्य।

(20) प्रियचतसृणि

प्रियाश्चतस्रो ब्राह्मण्य एषां ब्राह्मणकुलानाम्—'प्रियतिसृणि' की तरह।

नद्यृत०—तिसृ व चतसृ आदेशों के विभक्ति आश्रित होने से ये बहिरङ्ग हैं। 'नद्यृतश्च' से समासान्त नहीं होता है।

यदा च०—जब त्रि तथा चतुर् शब्दों का अन्य लिङ्ग में प्रयोग हो तथा अङ्ग का स्त्रीलिङ्ग में प्रयोग हो तो 'तिसृ' व 'चतसृ' आदेश नहीं होते। यथा—

(21) प्रियत्रिः (ब्राह्मणी)

प्रियास्रयोऽस्या ब्राह्मण्याः—अङ्ग 'प्रियत्रि' स्त्रीलिङ्ग में वर्त्तमान है; परन्तु 'त्रि' शब्द अन्य लिङ्ग अर्थात् पुंल्लिङ्ग में वर्त्तमान है, अतः 'तिसृ' आदेश नहीं हुआ,

प्रियत्रि सु—विभक्तिकार्य।

इसी प्रकार—प्रियाणि त्रीण्यस्याः—इस विग्रह की दशा में भी 'तिसृ' नहीं होता है तथा पूर्ववत् 'प्रियत्रि' शब्द बनता है।

(22) प्रियत्री

प्रियास्रयोऽनयोर्ब्राह्मण्योः
प्रियाणि त्रीण्यनयोर्ब्राह्मण्योः } पूर्ववत् 'प्रियत्रि' बनता है। तब 'औ' विभक्ति में पूर्वसवर्णदीर्घ होता है।

(23) प्रियत्रयः

प्रियास्रय आसां ब्राह्मणीनाम्
प्रियाणि त्रीण्यासां ब्राह्मणीनाम् } पूर्ववत् 'प्रियत्रि' बना।
प्रिय त्रि जस्—गुण व अय् आदेश।

(24) प्रियचत्वाः

प्रियाश्चत्वारोऽस्या ब्राह्मण्याः
प्रियाणि चत्वारि अस्या ब्राह्मण्याः } 'प्रियत्रिः' की तरह कार्य होकर
प्रियचतुर् सु—चतुरनडुहोरामुदात्तः,
प्रियचत्वार् स्—'स्' का लोप, विसर्जनीय।

(25) प्रियचत्वारौ

प्रियाश्चत्वारोऽनयोर्ब्राह्मण्योः
प्रियाणि चत्वार्यनयोर्ब्राह्मण्योः } 'पूर्ववत् सभी कार्य होकर,
प्रियचतुर् औ—पूर्ववत् 'आम्' होता है।

(26) प्रियचत्वारः

प्रियाश्चत्वार आसां ब्राह्मणीनाम्
प्रियाणि चत्वार्यासां ब्राह्मणीनाम् } पूर्ववत् कार्य होकर,
प्रिय चतुर् जस्—'आम्' होता है।

तिसृ०—कन् प्रत्यय परे रहते संज्ञा के गम्यमान रहते 'त्रि' के स्थान पर 'तिसृ' होता है।

(27) तिसृका

त्रि कन्—'सञ्ज्ञायां कन्' से 'कन्',
तिसृ क टाप् सु—यह एक गांव की संज्ञा है।

चतसर्या०—चतसृ शब्द को आद्युदात्त होता है निपातन से। 'चतस्रः' यहाँ 'चतुरः शसि' से स्वर नहीं होता। 'चतसृणाम्' यहाँ 'षट् त्रिचतुर्भ्यो हलादिः' से ही स्वर होता है। 'हलादि' इस पद के विधानसामर्थ्य से निपातनस्वर का बाध होता है।

(3379) अचि र ऋतः *100* (299)

तिसृ, चतसृ-इत्येतयोर्ऋतः स्थाने रेफादेशो भवति अजादौ विभक्तौ परतः। तिस्रस्तिष्ठन्ति, तिस्रः पश्य। चतस्रस्तिष्ठन्ति, चतस्रः पश्य। प्रियतिस्र आनय, प्रियचतस्र आनय। प्रियतिस्रः स्वम्, प्रियचतस्रः स्वम्। प्रियतिस्रि निधेहि। प्रियचतस्रि निधेहि। पूर्वसवर्णोत्त्वङिसर्वनाम-स्थानगुणानामपवादः। परमपि हि ङिसर्वनामस्थानगुणं पूर्वविप्रतिषेधेन बाधते। अचीति किम्। तिसृभिः। चतसृभिः। 'ऋतः' इति किम्? तिसृचतस्रोः प्रतिपत्त्यर्थम्, अन्यथा हि तदपवादस्त्रिचतुरोरेवायमादेशो विज्ञायते।

अर्थ—तिसृ व चतसृ अङ्गों के ह्रस्व ऋकार के स्थान पर 'रेफ' आदेश होता है, अजादि विभक्ति परे रहते। रेफ में अकार उच्चारणार्थ है।

उदा० (1) तिस्रः

त्रि जस्—'त्रिचतुरोः स्त्रियां०' से 'तिसृ' आदेश,
तिसृ अस्—चुटू, रेफ आदेश।
त्रि शस्—पूर्ववत्।

(2) चतस्रः

चतुर् जस् → चतसृ अस्—रेफ आदेश।
इसी प्रकार 'शस्' में।

(3) प्रियतिस्रः

प्रिय तिसृ शस्—पूर्ववत्। 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' से प्राप्त दीर्घादेश का अपवाद है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(4) प्रियचतस्रः
प्रियचतसृ शस्—रेफ आदेश।

(5) प्रियतिस्रः स्वम्
ङस् में पूर्ववत् रेफ आदेश। 'ऋत उत्' से प्राप्त 'उत्' का अपवाद।

(6) प्रियचतस्रः स्वम्
प्रियचतसृ—रेफ आदेश।

(7) प्रियतिस्रि
प्रियतिसृ ङि—रेफ आदेश। 'ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः' से प्राप्त गुण का अपवाद है।

(8) प्रियचतस्रि
प्रियचतसृ इ—पूर्ववत् रेफ।

पूर्वसवर्ण०—इस प्रकार यह रेफ आदेश पूर्वसवर्णदीर्घ, उत्त्व, ङिलक्षण गुण तथा सर्वनामस्थानलक्षण गुण का अपवाद है। यद्यपि ङिलक्षण तथा सर्वनामस्थानलक्षण गुण पर कार्य है, तदपि पूर्वविप्रतिषेध से रेफ आदेश गुण का बाध करता है।

अचीति०—अजादि विभक्ति के परे रहते ही ह्रस्व ऋकार के स्थान पर रेफ होता है।

(9) तिसृभिः
त्रि भिस्—'त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ',
तिसृ भिस्—अजादि विभक्ति परे नहीं है, ऋकार के स्थान पर रेफ नहीं हुआ।

(10) चतसृभिः
चतुर् भिस्—पूर्ववत्।

ऋत०—ह्रस्व ऋकार के स्थान पर ही रेफ आदेश होता है; ताकि तिसृ तथा चतसृ के ऋकार के स्थान पर ही यह रेफ होता है, अन्यथा इसके अपवादभूत यह आदेश 'त्रि' तथा 'चतुर्' शब्दों के स्थान पर होने लगेगा।

(3380) जराया जरसन्यतरस्याम् *101* (227)

'जरा'-इत्येतस्य 'जरस्'-इत्ययमादेशो भवति अन्यतरस्यामजादौ विभक्तौ परतः। जरसा दन्ताः शीर्यन्ते, जरया दन्ताः शीर्यन्ते। जरसे त्वा परिदद्युः, जरायै त्वा परिदद्युः। 'अचि' इत्येव-जराभ्याम्, जराभिः। नुमो विधानात् जरसादेशो विप्रतिषेधेन। अतिजरांसि ब्राह्मणकुलानि। इहातिजरसं ब्राह्मणकुलं पश्येति लुग्न भवति; आनुपूर्व्या सिद्धत्वात्। अतिजर + अमिति स्थिते लुक् अम्भावः, जरस्भावः-इति त्रीणि कार्याणि युगपत्प्राप्नुवन्ति; तत्र लुक् तावदपवादत्वाद् अम्भावेन बाध्यते, अम्भावोऽपि परत्वाज्जरसादेशेन। न च पुनर्लुक्शास्त्रं प्रवर्त्तते; भ्रष्टावसरत्वादिति एवमेव भवति-अतिजरसं ब्राह्मणकुलं पश्येति। प्रथमैकवचने तृतीयाबहुवचने च अतिजरं ब्राह्मणकुलं तिष्ठति, अतिजरैरिति च भवितव्यमिति गोनर्दीयमतेन (म० भा०)। किं कारणम्? 'सन्निपातलक्षणो विधिर्निमित्तं तद्विघातस्य' (व्या० प०) इति। अन्ये तु-अनित्यत्वादस्याः परिभाषाया अतिजरसं ब्राह्मणकुलं तिष्ठति, अतिजरसैरित्येवं भवितव्यमिति मन्यते।

अर्थ—'जरा' अङ्ग के स्थान पर 'जरस्' आदेश विकल्प से होता है, अजादि विभक्ति के परे रहते। अनेकाल् होने से यह सर्वादेश है।

उदा० (1) जरसा
जरा टा—चुटू,
जरस् आ—'जरस्' आदेश।

(2) जरया
जरा आ—पक्ष में 'जरस्' नहीं हुआ,
जरे आ—अय्।

(3) जरसे
जरा ङे—'जरस्' हुआ। लशक्वतद्धिते।

(4) जरायै
जरा ङे—पक्ष में 'जरस्' नहीं हुआ,
जरा याट् ए—'याडापः' से 'याट्',
जरायै—वृद्धिरेचि।

अचि०—अजादि विभक्ति के परे रहते ही 'जरस्' आदेश होता है।

(5) जराभ्याम्
जरा भ्याम्—अजादि विभक्ति परे नहीं है, अतः 'जरस्' नहीं हुआ।

(6) जराभिः
जरा भिस्—पूर्ववत् 'जरस्' की अप्राप्ति।

नुमो०—नुम् के विधान से पूर्वविप्रतिषेध से 'जरस्' होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(7) अतिजरांसि

अतिक्रान्तं जराम्, तानि (ब्राह्मणकुलानि)—इस दशा में समास होकर,

अतिजरस् जस्—नुम् तथा जरस् आदेश युणपत् प्राप्त होते हैं, विप्रतिषेध से प्रथम 'जरस्' आदेश हुआ,

अतिजरस् शि—जश्शसोः शि,

अतिजर न् स् इ—नुम्, उपधादीर्घ, नश्चाऽपदान्तस्य०।

इहाति०—(शङ्का) 'अतिजरस् अम्' इस दशा में 'स्वमोर्नपुंसकात्' से 'अम्' विभक्ति का लुक् क्यों नहीं होता है ? आनुपूर्वी के सिद्ध होने से (लुक् नहीं होता है)।

अतिजर०—'अतिक्रान्तं जराम्' इस दशा में प्रादि समास हुआ, 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' से ह्रस्व (अति जर) हुआ, अब द्वितीया एकवचन प्रत्यय (अम्) आया। 'अतिजर अम्'—इस स्थिति में 'एकदेशविकृतमनन्यवद् भवति' परिभाषा का आश्रय करके ह्रस्व कर देने पर भी अम् का लुक्, 'अतोऽम्' से 'अम्' आदेश तथा 'जराया जरसन्यतरस्याम्' से 'जरस्' आदेश—ये तीन कार्य युगपत् प्राप्त होते हैं। तब लुक् का अपवाद होने से 'अतोऽम्' से विहित 'अम्' आदेश लुक् का बाध कर लेता है। जरस् आदेश के पर होने से जरस् आदेश के द्वारा अम्-भाव का बाध हो जाता है। अब जरस् आदेश कर लेने पर पुनः लुक् नहीं होता। कारण कि, एक बार बाध हो जाने पर लुक् शास्त्र पुनः प्रवृत्त नहीं हुआ करता; अन्यत्र कृतकार्य हो जाने से। अतः 'आम्' का लुक् नहीं होता है।

(8) अतिजरसम्

प्रक्रिया पीछे देखें।

प्रथमैक०—प्रथमा एकवचन में 'अतिजरम्', तथा तृतीया बहुवचन में 'अतिजरैः' प्रयोग महर्षि पतञ्जलि के मत में होने चाहिए। यहाँ क्या कारण है ? यहाँ सन्निपातलक्षण परिभाषा कारण है।

अन्ये०—अन्य लोग इसके अनित्य होने से 'अतिजरसम्' तथा 'अतिजरसैः' प्रयोग स्वीकार करते हैं।

विशेष—'पदाङ्गाधिकारे तस्य च तदन्तस्य च' (प०) अर्थात् पद और अङ्ग के अधिकार में जिसके स्थान पर जो आदेश-विधान किया जाता है, वह उस स्थानी को तथा तदन्त स्थानी को होता है।

पदस्य (8.1.16) से पदाधिकार चलता है, जो पा० 8.3.55 पर्यन्त जाता है। अङ्गस्य (6.4.1) यह अङ्गाधिकार प्रारम्भ होकर सप्तम अध्याय की समाप्तिपर्यन्त चलता है। उपर्युक्त परिभाषा का तात्पर्य यह है कि इन दोनों अधिकारों में जिसको जो आदेश हो, वह उसके स्थान पर तथा वह जिस समुदाय के अन्त में हो, उस समुदाय के स्थान पर भी होता है। यथा—प्रकृत सूत्र (7.2.101) अङ्गाधिकार के अन्तर्गत पढ़ा गया है। अतः इस परिभाषा द्वारा 'जरस्' आदेश 'जरा' शब्द के स्थान पर तो होगा ही; 'जरा' शब्द है अन्त में जिसके, ऐसे (निर्जर, दुर्जर आदि) शब्दों के स्थान पर भी होगा।

अब प्रश्न यह उठता है कि अनेकाल् होने से 'जरस्' शब्द सम्पूर्ण स्थानी (यथा—निर्जर या दुर्जर) के स्थान पर प्राप्त होता है।

परन्तु एक परिभाषा है—निर्दिश्यमानस्याऽऽदेशा भवन्ति अर्थात् जितने अंश का निर्देश किया गया हो उतने अंश के स्थान पर ही आदेश होता है। चूँकि प्रकृत सूत्र के द्वारा 'जरा' के स्थान पर 'जरस्' आदेश का विधान किया गया है तो निर्जर की दशा में जरस् आदेश सम्पूर्ण स्थानी (निर्जर) को न होकर 'जर' इस अंश के स्थान पर होगा।

यहाँ एक प्रश्न उपस्थित होता है कि जरस् आदेश जरा के स्थान पर होता है; परन्तु निर्जर प्रभृति शब्दों में तो 'जर' शब्द है, 'जरा' नहीं।

इसके समाधान के लिए एक अन्य परिभाषा उपस्थित होती है—एकदेशविकृतमनन्यवत् (प०) अर्थात् एक देश में विकार आ जाने पर भी अवयवी अन्य के समान नहीं हो जाता। लोक में देखा जाता है कि पूँछ कट जाने पर भी कुत्ते को कुत्ता ही कहा जाता है, गधा इत्यादि नहीं। इसी प्रकार 'जरा' शब्द विकृत होकर 'जर' हो गया है। अतः व्याकरण शास्त्र में उसे 'जरा' मानकर ही कार्य होगा। फलतः प्रकृत सूत्र के द्वारा 'निर्जर' प्रभृति शब्दों के 'जर' अंश को 'जरस्' आदेश निर्बाध हो जाता है।

जरा शब्द की रूपमाला

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	जरा	जरे, जरसौ	जराः, जरसः
द्वितीया	जराम्, जरसम्	जरे, जरसौ	जराः, जरसः
तृतीया	जरया जरसा	जराभ्याम्	जराभिः
चतुर्थी	जरायै, जरसे	जराभ्याम्	जराभ्यः
पञ्चमी	जरायाः जरसः	जराभ्याम्	जराभ्यः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

षष्ठी	जरायाः जरसः	जरयोः जरसोः	जराणाम्, जरसाम्
सप्तमी	जरायाम्, जरसि	जरयोः, जरसोः	जरासु
सम्बोधन	हे जरे	हे जरे, जरसौ	हे जराः, जरसः

निर्जर शब्द की रूपमाला

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	निर्जरः	निर्जरसौ	निर्जरसः
		निर्जरौ	निर्जराः
द्वितीया	निर्जरसम्	निर्जरसौ	निर्जरसः
	निर्जरम्	निर्जरौ	निर्जरान्
तृतीया	निर्जरसा	निर्जराभ्याम्	निर्जरैः
	निर्जरेण		
चतुर्थी	निर्जरसे	निर्जराभ्याम्	निर्जरेभ्यः
	निर्जराय		
पञ्चमी	निर्जरसः	निर्जराभ्याम्	निर्जरेभ्यः
	निर्जरात्		
षष्ठी	निर्जरसः	निर्जरसोः	निर्जरसाम्
	निर्जरस्य	निर्जरयोः	निर्जराणाम्
सप्तमी	निर्जरसि	निर्जरसोः	निर्जरेषु
	निर्जरे	निर्जरयोः	
सम्बोधन	हे निर्जर	हे निर्जरसौ	हे निर्जरसः
		हे निर्जरौ	हे निर्जराः

(3381) त्यदादीनामः *102* (265)

'त्यत्' इत्येवमादिनामकारादेशो भवति विभक्तौ परतः। त्यद्-स्यः, त्यौ, त्ये। तद्-सः, तौ, ते। यद्-यः, यौ, ये। एतद्-एषः, एतौ, एते। इदम्-अयम्, इमौ, इमे। अदस्-असौ, अमू, अमी। द्वि-द्वौ, द्वाभ्याम्। *द्विपर्यन्तानां त्यदादीनामत्वमिष्यते* (म० भा०)। इह न भवति-भवत्-भवान्। संज्ञोपसर्जनीभूतास्त्यदादयः पाठादेव पर्युदस्ता इतीह न भवति-त्यद्, त्यदौ, त्यदः। अतित्यद्, अतित्यदौ, अतित्यदः। त्यदादिप्रधाने तु शब्दे भवत्येव-परमसः, परमतौ, परमते।

अर्थ—त्यद् आदि शब्दों के स्थान पर अकार आदेश होता है, विभक्ति परे रहते। अलोऽन्त्य परिभाषा से अकार अन्त्य अल् के स्थान पर होता है। त्यदादिगण सर्वादिगण का एक उपगण है। महर्षि पतञ्जलि के अनुसार यह उपगण 'त्यद्' से लेकर 'द्वि' पर्यन्त माना जाता है। इस उपगण में निम्नलिखित आठ शब्द हैं—

(1) त्यद्, (2) तद्, (3) यद्, (4) एतद्, (5) इदम्, (6) अदस्, (7) एक, (8) द्वि।

उदा० (क) त्यदः—

(1) स्यः

त्यद् सु—अकार अन्तादेश,
त्य अ सु—'अतो गुणे' से पररूप,
त्य स्—'तदोः सः सावनन्त्ययोः' से सकार।

(2) त्यौ

त्यद् औ—अन्तादेश, पररूप, 'प्रथमयोः पूर्वसवर्णः' से प्राप्त पूर्वसवर्णदीर्घ का 'नादिचि' से निषेध,
त्य औ—वृद्धिरेचि।

(3) त्ये

त्यद् जस्—'जसः शी' से 'शी'
त्य अ ई—लशक्वतद्धिते, अन्तादेश, पररूप,
त्य ई—आद्गुणः।

(ख) तदः—

(4) सः

तद् सु → त अ स्—अन्तादेश,
त स्—पररूप, तकार को सकार।

(5) तौ

तद् औ—'त्यौ' की तरह।

(6) ते

तद् जस्—'त्ये' की तरह।

(ग) यदः—

(7) यः

यद् सु → य अस्—अन्तादेश,
य स्—पररूप।

(8) यौ

यद् औ—'तौ' की तरह।

(9) ये

यद् जस्—'त्ये' की तरह।

(घ) एतदः—

(10) एषः

एतद् सु → एत अ स्—अन्तादेश,
एतस्—पररूप, सकार, मूर्धन्य।

(11) एतौ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एतद् औ—'त्यौ' की तरह।

(12) एते
एतद् जस्—'त्ये' की तरह।

(ङ) इदमः—

(13) अयम्
इदम् सु—प्रक्रिया सूत्र पा० 7.2.111 पर देखें।

(14) इमौ
इदम् औ—अन्तादेश,
इद अ औ—पररूप,
इम औ—दश्च,
इमौ—वृद्धिरेचि।

(15) इमे
इदम् जस्—जसः शी, अन्तादेश,
इद अ शी—पररूप, लशक्वतद्धिते,
इद ई—आद् गुणः,
इमे—'दश्च' से मकार।

(च) अदसः—

(16) असौ
अदस् सु—प्रक्रिया पा० 7.2.106 पर देखिए।

(17) अमू
अदस् औ—अन्तादेश, पररूप,
अद औ—
अमु औ—अदसोऽसेर्दादुदोमः। प्रथमयोः पूर्वसवर्ण०।

(18) अमी
अदस् जस्—'शी' आदेश, त्यदादीनामः, अतो गुणे,
अद शी—लशक्वतद्धिते, आद्गुणः
अदे—अदसोऽसे० को बाध कर
अमी—एत ईद् बहुवचने।

(छ) द्विशब्दस्य—

(19) द्वौ
द्वि औ—अन्तादेश, पररूप।
द्व औ—'तौ' की तरह।

(20) द्वाभ्याम्
द्वि भ्याम्—अन्तादेश, पररूप,
द्व भ्याम्—सुपि च।

द्विपर्य०—द्विपर्यन्त त्यदादिगण की गणना करने से निम्नलिखित में अन्तादेश नहीं होता है—

(21) भवान्
भवत् सु—'उगिदचां०' से 'नुम्',
भवन्त् सु—'अत्वसन्तस्य चा०' से दीर्घ,
भवान्त् स्—हल्ङ्याब्भ्यो०, संयोगान्तस्य लोपः।

संज्ञोप०—संज्ञा तथा उपसर्जन के रूप में जो 'त्यद्' आदि हैं, उनके त्यदादिगण से बहिर्भूत होने से उनमें अन्तादेश नहीं होता है।

(22) त्यद्
त्यद् सु—हल्ङ्यादि लोप हुआ।

(23) त्यदौ
त्यद् औ—अन्तादेश नहीं हुआ।

(24) त्यदः
त्यद् जस्—अन्तादेश नहीं हुआ।

(25) अतित्यद्
त्यदम् अतिक्रान्तः—समास हुआ,
अतित्यद् सु—'त्यद्' के उपसर्जनीभूत होने से इसे अकार आदेश नहीं हुआ, हल्ङ्यादिलोप।

(26) अतित्यदौ
अतित्यद् औ—पूर्ववत्।

(27) अतित्यदः
अतित्यद् जस्—पूर्ववत्।

त्यदादि०—जहाँ त्यद् आदि शब्द प्रधान हैं, वहाँ अन्तादेश होता है।

(28) परमसः
परमश्चाऽसौ सः—यहाँ 'तद्' प्रधान है, अतः अन्तादेश होता है।

(29) परमतौ
परमतद् औ—पूर्ववत्।

(30) परमते
परमतद् जस्—अन्तादेश।

(3382) किमः कः *103* (342)

'किम्'-इत्येतस्य 'क'-इत्ययमादेशो भवति विभक्तौ परतः। कः, कौ, के। साकच्कस्याप्ययमादेशो भवति, तेनाकार एव किमो न विधीयते 'किमोऽत्' (5.3.12) इति।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—'किम्' अङ्ग के स्थान पर 'क' आदेश होता है, विभक्ति परे रहते। अनेकाल् होने से 'क' सर्वादेश है।

उदा० (1) कः
किम् सु → क स् → कः।
(2) कौ
किम् औ—किमः कः,
क औ—वृद्धिरेचि, प्रथमयोः पूर्व०, नादिचि, वृद्धिरेचि।
(3) के
किम् जस्—जसः शी, लशक्व०,
क शी—आद् गुणः।

साकच्०—अकच् सहित किम् को भी यह आदेश होता है। अतः किम् को अकार का आदेश नहीं किया जाता है। किमोऽत्। इस प्रकार।

(3383) कु तिहोः *104* (1954)

तकारादौ हकारादौ च विभक्तौ परतः किमित्येतस्य 'कु' इत्ययमादेशो भवति। कुतः। कुत्र। कुह। 'तिहोः' इतीकार उच्चारणार्थः।

अर्थ—'किम्' अङ्ग के स्थान पर 'कु' आदेश होता है, तकारादि व हकारादि विभक्ति के परे रहते।
'ति' में इकार उच्चारणार्थ है।

उदा० (1) कुतः
किम् तसिल्—पञ्चम्यास्तसिल्, प्राग्दिशो विभक्तिः, कु,
कु तस्—अनुबन्धलोप,
कुतस् सु—तद्धितश्चाऽसर्वावि०, अव्ययादाप् सुपः।
(2) कुत्र
किम् त्रल्—सप्तम्यास्त्रल्, 'कु' आदेश,
कु त्र सु—'सु' का लुक्।
(3) कुह
किम् ह—वा ह चच्छन्दसि, कु,
कुह सु—'सु' का लुक्।

(3384) क्वाति *105* (1960)

'अति' इत्येतस्यां विभक्तौ परतः किमित्येतस्य 'क्व'-इत्ययमादेशो भवति। क्व गमिष्यसि? क्व भोक्ष्यते? आदेशान्तरवचनमोर्गुणनिवृत्त्यर्थम्। 'किमो ड्वत्' इति प्रत्ययान्तरं न विधीयते, साकच्कार्थम्।

अर्थ—'किम्' अङ्ग के स्थान पर 'क्व' आदेश होता है, 'अत्' विभक्ति परे रहते।

उदा० (1) क्व
'कस्मिन्' इस अर्थ में,
किम् अत्—किमोऽत्,
क्व अ—भसंज्ञा, यस्येति च,
क्व् अ सु—लुक्।

आदेशा०—'ओर्गुणः' से प्राप्त गुण की निवृत्ति के लिए अन्य आदेश (क्व) का विधान किया है। 'किमो ड्वत्' से भी इष्ट-सिद्धि सम्भव थी, परन्तु अकच्युक्त 'किम्' के लिए 'अत्' यह प्रत्यय किया गया।

(3385) तदोः सः सावनन्त्ययोः *106* (381)

त्यदादीनां तकारदकारयोरनन्त्ययोः सकारादेशो भवति सौ परतः। त्यद्-स्यः। तद्-सः। एतद्-एषः। अदस्-असौ। अनन्त्ययोरिति किम्? हे स। सा।

अर्थ—त्यद् आदि शब्दों के अनन्त्य तकार व दकार के स्थान पर सकार होता है, 'सु' विभक्ति परे रहते।
'अनन्त्य' का अर्थ है—जो अन्त्य नहीं है।

उदा० (1) स्यः, (2) सः, (3) एषः।
सिद्धि पा०7.2.102 पर देखें।
(4) असौ
अदस् सु—'त्यदादीनामः' से अकार अन्तादेश, प्राप्त हुआ, इसे बाध कर,
अद औ—'अदस औ सुलोपश्च' से लोप तथा 'औ' आदेश,
अदौ—'अदसोऽसेर्दा० (8.2.80) से मत्व तथा उत्व प्राप्त होते हैं, परन्तु यह 'तदो सः०' (7.2.106) सूत्र की दृष्टि में असिद्ध है, अतः प्रवृत्त नहीं होता है। वृद्धिरेचि, सकार।

अनन्त्य०—अनन्त्य तकार व दकार के स्थान पर सकार होता है।
(5) हे स
हे तद् सु—इस दशा में 'हे त अस्' होकर 'हे सः' बनता है। यदि 'अनन्त्ययोः' का ग्रहण नहीं करेंगे तो परकार्य होने से अकार अन्तादेश को बाध कर 'तद्' के अन्त्य दकार के स्थान पर सकार हो जायेगा। तब 'हे तस् सु' यहाँ हल्ङ्यादि लोप होकर 'हे सः' अनिष्ट रूप बन जायेगा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(3386) अदस औ सुलोपश्च *107* (437)

अदसः सौ परतः सकारस्य औकारादेशो भवति सोश्च लोपो भवति। असौ। *औत्वप्रतिषेधः साकच्काद्वा वक्तव्यः सादुत्वं च* (म० भा०)। यदा चौत्वप्रतिषेधः, तदा सकारादुत्तरस्य उत्वं भवति। असुकः, असुकौ। *उत्तरपदभूतानां त्यदादीनामकृतसन्धीनामादेशा वक्तव्याः* (म० भा०) परमाहम्। परमायम्। परमानेन।

अदसः सोर्भवेदौत्वं किं सुलोपो विधीयते ?
ह्रस्वाल्लुप्येत सम्बुद्धिर्न हलः प्रकृतं हि तत्॥
आप एत्वं भवेत्तस्मिन्न झलीत्यनुवर्तनात्।
प्रत्ययस्थाच्च कादित्वं शीभावश्च प्रसज्यते॥
(म० भा०)

अर्थ—'अदस्' अङ्ग के स्थान पर 'औ' आदेश तथा इससे पर 'सु' का लोप होता है, 'सु' विभक्ति परे रहते।

अलोऽन्त्य परिभाषा से सकार के स्थान पर 'औ' होता है।

उदा० (1) असौ

सिद्धि पिछले सूत्र पर देखें।

औत्व०—अकच् युक्त अदस् को 'औ' आदेश विकल्प से होता है तथा सकार से पर उत्व होता है।

(2) असुकः

अदस् → अद् अकच् सु—औत्व नहीं हुआ, तदो सः०, असुक स्—उत्व हुआ,

(3) असुकौ

अद् अकच् सु—पक्ष में 'औ' होता है, 'तदोः सः साव०' से सकार,

असुकौ—सुलोप, उत्व।

उत्तरपद०—उत्तरपद में अकृत सन्धि वाले त्यद् आदि के स्थान पर आदेश होते हैं।

(4) परमाऽहम्, (5) परमाऽयम्, (6) परमाऽनेन।

यहाँ 'त्वाहौ सौ', 'इदोऽय् पुंसि', 'अनाप्यकः' इत्यादि से जो विभक्ति, उसके परे रहते ये आदेश होते हैं। ये बहिरङ्ग होते हैं। ये विभक्ति की उत्पत्ति से पूर्व ही होते हैं।

'अकः सवर्णे दीर्घः' से प्राप्त सवर्णदीर्घ अन्तरङ्ग होता है। अतः यह पूर्व होता है, पश्चात् आदेश होते हैं। तब परमहम्, परमयम्, परमनेन—ये अनिष्ट रूप होते हैं। इसलिए कहा गया है कि जिन्हें सन्धि नहीं की गई है, ऐसे उत्तरपदभूत त्यद् आदि शब्दों को आदेश होते हैं।

अदसः—(शङ्का) प्रकृत सूत्र के स्थान पर 'अदस औ' सूत्र से इष्टसिद्धि हो जाती है। 'सौ' की अनुवृत्ति प्राप्त है। 'अदसः' में पञ्चमी मान ली जाय। 'सौ' पद सप्तम्यन्त है। इस सप्तमी को षष्ठी में प्रकल्पित कर लेने पर सूत्रार्थ इस प्रकार होता है—

अदस् अङ्ग से उत्तर 'सु' के स्थान पर 'औ' आदेश होता है। इस प्रकार सूत्रपाठ में कोई दोष भी नहीं है। 'अदस् सु' इस दशा में 'सु' को 'औ' आदेश, 'अदस्' को अकार अन्तादेश तथा 'तदोः सः०' से सकार कर देने पर 'असौ' निर्बाध बन जाता है। तब 'अदस औ सुलोपश्च' में सुलोप के पाठ की क्या आवश्यकता है ?

ह्रस्वाल्लु०—(समा०) 'अदस औ' न्यास उचित नहीं है; क्योंकि 'हेऽसौ' इस स्थल पर ह्रस्व (अद) से उत्तर सम्बुद्धि (औ) का लोप प्राप्त होता है।

न हलः—यह दोष यहाँ प्रसक्त नहीं होता। कारण कि, सम्बुद्धि हल् का लोप होता है। 'औ' हल् नहीं है। अतः लोप का प्रसङ्ग ही नहीं है। तब 'हल्' का ग्रहण करना चाहिए; परन्तु यह तो प्रकृत ही है। 'हल्ङ्याब्भ्यः सुति०' इस सूत्र से हल् ग्रहण प्रकृत है ही। यद्यपि यहाँ प्रथमा का निर्देश है तथा यहाँ षष्ठ्यर्थ इष्ट है, तदपि 'तस्मादित्युत्तरस्य' परिभाषा से वह प्रथमान्त 'हल्' पद का षष्ठ्यन्त (हलः) इस प्रकार विभक्ति विपरिणत हो जायेगा।

आप एत्वं०—'अदस औ' योग की दशा में दूसरा दोष यह है कि स्त्रीलिङ्ग की विवक्षा में 'हेऽसौ ब्राह्मणी' रूप सिद्ध नहीं हो सकेगा। यथा—'हे अदस् सु' इस दशा में 'औ' आदेश तथा अकार अन्तादेश करने पर 'हे अद औ' यह स्थिति होती है। तब स्त्रीत्व में टाप् करने पर 'सम्बुद्धौ च' से एत्व होकर 'हे असे' ऐसा अनिष्ट रूप प्राप्त होता है।

न झली०—यह दोष भी प्रसक्त नहीं होता है। 'बहुवचने झल्येत्' से 'सम्बुद्धौ च' इस सूत्र में 'झल्येत्' पद का अनुवर्त्तन होने से झलादि सम्बुद्धि के परे रहते ही एत्व होता है। चूँकि 'अदा औ' इस दशा में 'औ' झलादि सम्बुद्धि नहीं है। अतः एत्व का प्रसङ्ग ही उपस्थित नहीं होता है।

प्रत्ययस्थाच्च०—'अदस औ' योग की दशा में तीसरा व चतुर्थ दोष इस प्रकार है—

'असकौ ब्राह्मणी' यहाँ अज्ञातादि अर्थों में 'अकच्' हुआ है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

टाप् करने पर 'प्रत्ययस्थात् कात् पूर्वस्य०' से पूर्व वर्ण (सकार-स्थ अकार) के स्थान पर इकार प्राप्त होता है।

इसके अतिरिक्त 'असौ ब्राह्मणी' यहाँ भी 'औङ आपः' से 'शी' आदेश प्राप्त होता है। परन्तु प्रकृति का 'औ' करने पर 'टाप्' होता ही नहीं है, इत्व की प्राप्ति नहीं है। अतः 'सु' के स्थान पर 'औ' आदेश नहीं किया जाता है। इसी प्रकार 'असौ ब्राह्मणी' में 'शी' होकर अनिष्ट रूप प्राप्त होता है। औत्व विधान-सामर्थ्य से आदेश अवश्य होता है। कारण कि 'औ' आदेश पुंल्लिङ्ग में चरितार्थ है। यह दोष पाक्षिक है। इस प्रकार प्रकृति को 'औ' यह अन्तादेश विधान उचित है।

(3387) इदमो मः *108* (343)

इदमः सौ परतो मकारोऽन्तादेशो भवति। इयम्। अयम्। इदमो मकारस्य मकारवचनं त्यदाद्यत्वबाधनार्थम्।

अर्थ— 'इदम्' अङ्ग के स्थान पर मकार आदेश होता है, 'सु' परे रहते।

अलोऽन्त्य परिभाषा से अन्त्य अल् (मकार) के स्थान पर मकार होता है।

उदा० (1) अयम्
इदम् सु—'त्यदादीनामः' को बाध कर मकार अन्तादेश,
अय् अम् स्—इदोऽय् पुंसि,
अयम्—हल्ङ्याब्भ्यो०।

(2) इयम्
इदम् सु—स्त्रीत्व में, यः सौ,
इयम् स्—हल्ङ्यादि लोप।

इदमो०—'इदम्' के मकार को पुनः मकार का विधान त्यदादि लक्षण अकार अन्तादेश के बाध के लिए है।

(3388) दश्च *109* (345)

इदमो दकारस्य स्थाने मकारादेशो भवति विभक्तौ परतः। इमौ, इमे। इमम्, इमौ, इमान्।

अर्थ—'इदम्' अङ्ग के मकार के स्थान पर दकार होता है, विभक्ति परे रहते।

उदा० (1) इमौ
इदम् औ—त्यदादीनामः,
इद अ औ—अतो गुणे,
इदौ—वृद्धिरेचि, मकार।

(2) इमे
इदम् जस्—अकार, शीभाव, लशक्वतद्धिते,
इद अ ई—पररूप,
इदे—आद् गुणः, मकार।

(3) इमम्
इदम् अम्—अकार, पररूप,
इद अम्—अमि पूर्वः,
इमम्—मकार।

(4) इमौ (पूर्ववत्)।

(5) इमान्
इदम् शस्—अकार,
इद अ अस्—पररूप, सवर्णदीर्घ,
इदास्—तस्माच्छसो नः पुंसि,
इमान्—मकार।

इह०—यहाँ 'सौ' का सम्बन्ध नहीं है। कारण कि, उत्तर सूत्र 'यः सौ' में 'सौ' का ग्रहण है।

(3389) यः सौ *110* (441)

इदमो दकारस्य यकारादेशो भवति सौ परतः। इयम्। उत्तरसूत्रे 'पुंसि' इति वचनात् स्त्रियामयं यकारः।

अर्थ—'इदम्' अङ्ग के दकार के स्थान पर यकार होता है, 'सु' परे रहते। यकार में अकार उच्चारणार्थ है।

उदा० (1) इयम्
इदम् सु—यकार,
इयम् स्—हल्ङ्यादि लोप।

उत्तर०—पुंल्लिङ्ग में 'सु' परे रहते 'इदोऽय् पुंसि' से 'इद्' भाग के स्थान पर 'अय्' होता है। अतः यहाँ दकार उपलब्ध नहीं होता है। तब प्रकृत सूत्र स्त्रीलिङ्ग में ही प्रवृत्त होता है।

(3390) इदोऽय् पुंसि *111* (344)

इदम इद्रूपस्य पुंसि सौ परतः 'अय्'-इत्ययमादेशो भवति। अयं ब्राह्मणः। पुंसीति किम्? इयं ब्राह्मणी।

अर्थ—पुंल्लिङ्ग में वर्त्तमान 'इदम्' अङ्ग के 'इद्' भाग के स्थान पर 'अय्' आदेश होता है, 'सु' विभक्ति परे रहते।

यह अनेकाल् होने से सर्वादेश है। 'अय्' के यकार की 'हलन्त्यम्' से इत् संज्ञा प्राप्त होती है, परन्तु प्रयोजनाभाव से

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इत्संज्ञा का निषेध होता है। विधानसामर्थ्य से यकार का लोप भी नहीं होता है।

उदा० (1) अयम्
इदम् सु—'अय्' आदेश,
अय् अम् स्—सुलोप।

पुंसी०—पुंल्लिङ्ग में ही यह 'अय्' होता है।

(2) इयम्
इदम् सु—'अय्' नहीं हुआ,
इयम् स्—सुलुक्।

(3391) अनाप्यकः *112* (346)

इदमोऽकारस्य इद्रूपस्य स्थाने 'अन' इत्ययमादेशो भवति आपि विभक्तौ परतः। अनेन। अनयोः। अक इति किम्? इमकेन। इमकयोः। 'अपि' इति प्रत्याहारः तृतीयैकवचनात्प्रभृति सुपः पकारेण।

अर्थ—ककाररहित 'इदम्' अङ्ग के 'इद्' भाग के स्थान पर 'अन्' आदेश होता है, तृतीयादि विभक्ति परे रहते।

'अक्' का अर्थ है—ककाररहित। 'अन्' अनेकाल् होने से सर्वादेश है। हलादि विभक्ति परे रहते अग्रिम सूत्र 'हलि लोपः' से लोप होता है। अतः प्रकृत सूत्र केवल अजादि तृतीयादि विभक्तियों में ही सावकाश है। अजादियों में भी यह केवल 'टा' तथ 'ओस्' में ही प्रवृत्त होता है।

उदा० (1) अनेन
इदम् टा—टाङसिङसा०,
इद अ इन—अकार, पररूप,
इद इन—'अन्' आदेश,
अन् अ इन—आद् गुणः।

(2) अनयोः
इदम् ओस्—अकार,
इद ओस्—पररूप,
अन् अ ओस्—'अन्' आदेश,
अने ओस्—'ओसि च' से एकार,
अनयोस्—'अय्' आदेश।

अक०—ककाररहित 'इदम्' के 'इद्' भाग को 'अन्' होता है। 'अव्ययसर्वनाम्नामकच्०' के द्वारा इदम् को 'अकच्' होकर 'इदकम्' ककारयुक्त रूप बनता है। इसके 'इद्' भाग को 'अन्' नहीं होता है। यथा—

(3) इमकेन
इदकम् टा—'इन' आदेश, अकार अन्तादेश, पररूप,
इमक इन—मकार हुआ, आद् गुणः।

(4) इमकयोः
इदकम् ओस्—अकार, 'ओसि च' से एत्व,
इमके ओस्—'अय्' आदेश।

आपि०—'टा' के 'आ' से लेकर 'सुप्' के पकारपर्यन्त 'आप्' प्रत्याहार बनता है।

(3392) हलि लोपः *113* (347)

हलादौ विभक्तौ परत इदमोऽककारस्य इद्रूपस्य लोपो भवति। आभ्याम्, एभिः। एभ्यः। एषाम्। एषु। 'नानर्थकेऽलोऽन्त्यविधिः' (व्या०प०) इति सर्वस्यायमिद्रूपस्य लोपः। अथ वा–नायमिल्लोपः। 'अनाप्यकः' (7. 2.112) इति अन्ग्रहणमनुवर्त्तते।

अर्थ—ककाररहित 'इदम्' अङ्ग के 'इद्' भाग का लोप होता है, तृतीयादि हलादि विभक्ति परे रहते।

तृतीयादि हलादि आठ विभक्तियाँ हैं—

(1) भ्याम्, (2) भिस्, (3) भ्याम्, (4) भ्यस्, (5) भ्याम्, (6) भ्यस्, (7) आम् (सुट् सहित) तथा (8) सुप्।

उदा० (1) आभ्याम्
इदम् भ्याम्—अकार,
इद अ भ्याम्—पररूप,
इद भ्याम्—'अनाप्यकः' से प्राप्त 'अन्' आदेश को बाध कर लोप हुआ,
अ भ्याम्—आद्यन्तवदेकस्मिन्, सुपि च।

(2) एभिः
इदम् भिस्—अकार, पररूप,
इद भिस्—'अनाप्यकः' को बाध कर लोप,
अ भिस्—व्यपदेशिवद्भाव से 'अतो भिस ऐस्' से 'ऐस्' प्राप्त हुआ, 'नेदमदसोरकोः' से निषेध,
एभिस्—बहुवचने झल्येत्।

(3) एभ्यः
इदम् भ्यस्—पूर्ववत्।

(4) एषाम्
इदम् आम्—अकार, पररूप,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इद आम्—आमि सर्वनाम्नः सुट्, आद्यन्तौ टकितौ,
इद स् आम्—अनुबन्धलोप,
अ स् आम्—हलि लोपः,
एसाम्—बहुवचने झल्येत्, आदेशप्रत्यययोः।

(5) एषु
इदम् सुप्—अकार, पररूप,
इद सु—हलि लोपः,
अ सु—बहुवचने झल्येत्,
ए सु—आदेशप्रत्यययोः।

नानर्थके०—अलोऽन्त्य परिभाषा से 'इद्' के अन्त्य अल् (दकार) का लोप प्राप्त होता है। परन्तु यहाँ एक परिभाषा प्रवृत्त होती है— 'नानर्थकेऽलोऽन्त्यविधिरनभ्यासविकारे' (परि०) अर्थात् अनर्थक की दशा में अलोऽन्त्य परिभाषा प्रवृत्त नहीं होती है। यदि अभ्यास का विकार अनर्थक हो तो यह परिभाषा अवश्य प्रवृत्त होती है।

समुदाय अर्थवान् होता है तथा एकदेश अनर्थक होता है। 'इदम्' समुदाय होने से सार्थक है तथा 'इद्' एकदेश होने से अनर्थक है। अलोऽन्त्य परिभाषा प्रवृत्त नहीं होती है। अतः सम्पूर्ण 'इद्' का लोप होता है।

अथवा०—अथवा यह 'इद्' का लोप नहीं है। 'अनाप्यकः' से 'अन्' ऐसा अनुवर्त्तन होता है। अतः 'अन्' का लोप होता है।

(3393) मृजेर्वृद्धिः *114* (2473)

'विभक्तौ' इति निवृत्तम्। मृजेरङ्गस्य इको वृद्धिर्भवति। मार्ष्टा, मार्ष्टुम्, मार्ष्टव्यम्। मृजेरिति धातुग्रहणमिदम्, धातोश्च कार्यमुच्यमानं धातुप्रत्यय एव वेदितव्यम्। तेन कंसपरिमृड्भ्याम्, कंसपरिमृड्भिरित्यत्र न भवति।

अर्थ—'विभक्तौ' का अनुवर्त्तन है। मृज् अङ्ग को (इक् के स्थान पर) वृद्धि आदेश होता है।

'इको गुणवृद्धी' के द्वारा 'इकः' पद उपस्थित होकर 'इक्' के स्थान पर यह वृद्धि आदेश होता है।

ऋकार के स्थान वाला वृद्धि आदेश 'उरण् रपरः' से रपर होता है।

उदा० (1) मार्ष्टा
मृज् तृ—धातोः ण्वुल्तृचौ, इट् का निषेध,
मार्ज् तृ—वृद्धि,
मार्ष् तृ—व्रश्चभ्रस्ज०,
मार्ष् टा—ष्टुना ष्टुः, सु।

(2) मार्ष्टुम्
मृज् तुमुन्—सभी कार्य पूर्ववत्,
मार्ष्टुम् सु—सुलुक्।

(3) मार्ष्टव्यम्
मृज् तव्यत्—पूर्ववत्,
मार्ष्टव्य सु—विभक्तिकार्य।

मृजे०—यद्यपि यहाँ 'प्रत्यये' इस पद का अधिकार प्राप्त नहीं है, तदपि 'धातु को विहित कार्य प्रत्यय के परे रहते ही होता है' इस परिभाषा के द्वारा प्रत्यय के परे रहते यह वृद्धि होती है। इसलिए निम्नलिखित में वृद्धि नहीं होती है—

(4) कंसपरिमृड्भ्याम्
कंसपरिमृज् भ्याम्—पद संज्ञा, व्रश्चभ्रस्ज०,
कंसपरिमृष् भ्याम्—'झलां जशोऽन्ते' से डकार।

(5) कंसपरिमृड्भिः (पूर्ववत्)।

(3394) अचो ञ्णिति *115* (254)

अजन्तस्याङ्गस्य ञिति णिति च वृद्धिर्भवति। ञिति-एकस्तण्डुलनिश्चायः। द्वौ शूर्पनिष्पावौ। कारः। हारः। णिति-गौः, गावौ, गावः। सखायौ, सखायः। जैत्रम्। यौत्रम्। च्यौत्नः। जयतेः, यौतेश्च 'उणादयो बहुलम्' (3.3.1) इति ष्ट्रन् प्रत्ययः। च्यवतेरपि त्नण्।

अर्थ—अजन्त अङ्ग को वृद्धि आदेश होता है, ञित् या णित् प्रत्यय परे रहते। अलोऽन्त्य परिभाषा से यह वृद्धि आदेश अन्त्य अल् के स्थान पर होता है। 'अचश्च' से अच् के स्थान पर ही वृद्धि होती है।

उदा० (क) ञिति—

(1) निश्चायः
निस् चि अ—'परिमाणाख्यायां सवभ्यः' से 'घञ्', लशक्वतद्धिते, हलन्त्यम्,
निस् चै अ—वृद्धि, आय् आदेश,
निश् चाय् अ सु—स्तोः श्चुना श्चुः।

(2) निष्पावौ
निस् पू घ—पूर्ववत् 'घञ्', वृद्धि,
निस् पाव् अ—आव्,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निः पाव—विसर्जनीय,
निष् पाव औ—'इदुदुपधस्य०' से षत्व।

(3) कारः
कृ घञ्—भाव में 'घञ्',
कार् अ—वृद्धि, उरण् रपरः, सु।

(4) हारः
हृ घञ्—पूर्ववत्।

(ख) णिति—

(5) गौः
गो सु—सुडनपुंसकस्य, गोतो णित्,
गौ स्—वृद्धि।

(6) गावौ
गो औ—पूर्ववत् वृद्धि, आव्।

(7) गावः
गो जस्—पूर्ववत् वृद्धि।

(8) सखायौ
सखि औ—सख्युरसम्बुद्धौ,
सखै औ—वृद्धि, आय् आदेश।

(9) सखायः
सखि जस्—पूर्ववत्।

(10) जैत्रम्
जि ष्ट्रन्—'सर्वधातुभ्यः ष्ट्रन्' (उणा० 4.159) से 'ष्ट्रन्' तथा बहुलता से णिद्वत्, वृद्धि, आय्।

(11) यौत्रम्
यु ष्ट्रन्—पूर्ववत्।

(12) च्यौत्नः
च्यु त्नण्—हलन्त्यम्,
च्यौ त्न—वृद्धि, सु।

(3395) अत उपधायाः *116* (2282)

अङ्गोपधाया अकारस्य स्थाने ञिति णिति च प्रत्यये वृद्धिर्भ-वति। पाकः, त्यागः, यागः। पाचयति, पाचकः। पाठयति, पाठकः। अत इति किम्? भेदयति, भेदकः। उपधाया इति किम्? चकासयति, तक्षकः।

अर्थ—अङ्ग की उपधा में जो ह्रस्व अकार, उसके स्थान पर वृद्धि आदेश होता है, ञित् तथा णित् प्रत्यय परे रहते।

उदा० (1) पाकः
पच् घञ्—भाव में,
पाच् अ—लशक्वतद्धिते, हलन्त्यम्, वृद्धि,
पाक् अ सु—कुत्व।

(2) त्यागः
त्यज् घञ्—पूर्ववत्।

(3) यागः
यज् घञ्—पूर्ववत्।

(4) पाचयति
पच् णिच्—चुटू, हलन्त्यम्, उपधावृद्धि,
पाच् इ—धातुसंज्ञा,
पाचि शप् तिप्—कर्तरि शप्, लशक्वतद्धिते, हलन्त्यम्,
पाचे अ ति—सार्वधातुकार्ध०, अय्।

(5) पाचकः
पच् ण्वुल्—ण्वुल्तृचौ, चुटू, हलन्त्यम्,
पाच् वु—उपधावृद्धि, युवोरनाकौ,
पाच् अक सु—सु।

(6) पाठयति
पठ् णिच्—'पाचयति' की तरह।

(7) पाठकः
पठ् ण्वुल्—'पाचकः' की तरह।

अत०—ह्रस्व अकार को ही वृद्धि आदेश होता है।

(8) भेदयति
भिद् णिच्—णित् प्रत्यय परे है, परन्तु उपधा में ह्रस्व अकार नहीं है, वृद्धि नहीं हुई,
भेदि—'पुगन्तलघूपधस्य च' से गुण,
भेदे शप् तिप्—शप्, सार्वधातुक गुण।

(9) भेदकः
भिद् ण्वुल्—पूर्ववत् वृद्धि की अप्राप्ति, गुण, सु।

उपधाया०—उपधा में जो ह्रस्व अकार, उसके स्थान पर वृद्धि होती है।

(10) चकासयति
चकास् णिच्—णित् परे है, परन्तु उपधा में अकार न होने से वृद्धि नहीं होती है,
चकासि शप् तिप्—गुण आदि।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(11) तक्षक:
तक्ष् ण्वुल्—युवोरनाकौ,
तक्ष् अक—णित् प्रत्यय परे है, उपधा में ककार है, अत: ह्रस्व अकार के न रहने से वृद्धि नहीं होती है,
तक्षक सु—वृद्धिकार्य।

(3396) तद्धितेष्वचामादे: *117* (1075)

तद्धिते ञिति णिति च प्रत्यये परतोऽङ्गस्याचामादेरच: स्थाने वृद्धिर्भवति। गार्ग्य:। वात्स्य:। दाक्षि:। प्लाक्षि:। णिति—औपगव:। कापटव:। त्वाष्ट्र:, जागत इत्यत्राचामादेर्वृद्धिरन्त्योपधालक्षणां वृद्धिं बाधते (म० भा०)।

अर्थ—अङ्ग के अचों में जो आदि अच्, उसके स्थान पर वृद्धि आदेश होता है, ञित् व णित् तद्धित प्रत्यय के परे रहते।
'अचाम्' पद में निर्धारण में षष्ठी है।

उदा० (1) गार्ग्य:
गर्गस्याऽपत्यम्—गर्गादिभ्यो यञ्,
गार्ग य—वृद्धि, सु।

(2) वात्स्य:
वत्सस्याऽपत्यम्—यञ्,
वत्स य—पूर्ववत्।

(3) दाक्षि:
दक्षस्याऽपत्यम्—'अत इञ्' से 'इञ्',
दाक्ष इ—आदिवृद्धि, सु।

(4) प्लाक्षि:
प्लक्ष इञ्—पूर्ववत्।

(5) औपगव:
उपगोरपत्यम्—'तस्याऽपत्यम्' से औत्सर्गिक 'अण्',
उपगु अण्—'ओर्गुण:' से गुण, आदि वृद्धि,
औपगो अ—अव्, सु।

(6) कापटव:
कपटु अण्—पूर्ववत्।

त्वाष्ट्र:०—'त्वाष्ट्र' तथा 'जागत' इन स्थलों पर आदि अच् को, उपधा को तथा अन्त्य अच को वृद्धि प्राप्त होती है; परन्तु आदि अच् को होने वाली वृद्धि उपधा को होने वाली वृद्धि तथा अन्त्य अच् को होने वाली वृद्धि—इन दोनों का बाध कर देती है।

(3397) किति च *118* (1076)

किति च तद्धिते परतोऽङ्गस्याचामादेरच: स्थाने वृद्धिर्भवति। 'नडादिभ्य: फक्' (4.1.99)—नाडायन:, चारायण:। 'प्राग्वहतेष्ठक्' (4.4.1)—आक्षिक:, शालाकिक:।

इति श्रीवामनविरचितायां काशिकायां वृत्तौ
सप्तमाऽध्यायस्य द्वितीय: पाद: ॥

अर्थ—अङ्ग के अचों में जो आदि अच्, उसे वृद्धि आदेश होता है, कित् तद्धित प्रत्यय परे रहते।

उदा० (1) नाडायन:
नडस्याऽपत्यम्—नडादिभ्य: फक्,
नड फक्—हलन्त्यम्, 'आयन्' आदेश,
नाड आयन् अ—आदिवृद्धि, यस्येति च,
नड् आयन सु—विभक्तिकार्य।

(2) चारायण:
चर फक्—पूर्ववत् आदिवृद्धि, 'आयन्' आदेश,
चार् आयन् अ सु—'अट्कुप्वाङ्नुम्०' से णत्व।

(3) आक्षिक:
अक्ष ठक्—प्राग्वहतेष्ठक्, तेन दीव्यतिखनति०,
आक्ष इक—ठस्येक:,
आक्ष् इक सु—यस्येति च।

(4) शालाकिक:
शलाका ठक्—पूर्ववत्।

इति पण्डितेश्वरचन्द्रविरचितायां काशिकाया: सोमलेखाऽऽख्यायां हिन्दीटीकायां
सप्तमाऽध्यायस्य द्वितीय: पाद: समाप्त:।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(3398) देविकाशिंशपादित्यवाड्दीर्घसत्र-श्रेयसामात् *1* (1439)

देविका, शिंशपा, दित्यवाट्, दीर्घसत्र, श्रेयस्–इत्येतेषामङ्गानामचामादेरचः स्थाने वृद्धिप्रसङ्गे आकारो भवति ञिति, णिति, किति, तद्धिते परतः। देविकायां भवमुदकं दाविकमुदकम्। देविकाकूले भवाः शालयो दाविकाकूलाः शालयः। पूर्वदेविका नाम प्राचां ग्रामः, तत्र भवः पूर्वदाविकः। 'प्राचां ग्रामनगराणाम्' (7.3.14) इत्युत्तरपदवृद्धिः, साप्याकार एव भवति। शिंशपा–शिंशपाया विकारश्चमसः शांशपश्चमसः। पलाशादिरयम्, तेन पक्षे अण्, अनुदात्तादिलक्षणो वा अञ्। शिंशपास्थले भवाः शांशपास्थलाः। पूर्वशिंशपा नाम प्राचां ग्रामः, तत्र भवः पूर्वशांशपः। दित्यवाट्–दित्यौह इदं दात्यौहम्। दीर्घसत्रे भवं दार्घसत्रम्। श्रेयस्–श्रेयसि भवं श्रायसम्। *वहीनरस्येद्वचनं कर्त्तव्यम्* (म०भा०)। वृद्धिविषयचामादेरचः स्थाने वहीनरस्य इकारादेशो भवति। वहीनरस्यापत्यं वैहीनरिः। केचित्तु विहीनरस्यैव वैहीनरिमिच्छन्ति।

अर्थ—वृद्धि का प्रसङ्ग होने पर देविका, शिंशपा, दित्यवाह, दीर्घसत्र तथा श्रेयस्—इन अङ्गों के अचों में जो आदि अच्, उसके स्थान पर आकार आदेश होता है; ञित्, णित् तथा कित् तद्धित प्रत्यय परे रहते।

उदा० (क) देविकायाः—

(1) दाविकम् (उदकम्)

देविकायां भवम्—'अण्' हुआ, 'प्राचां ग्रामनगराणां०' से वृद्धि प्राप्त,

दाविका अ—आकार, भसंज्ञा, यस्येति च,

दाविक् अ—सु।

(2) दाविकाकूलाः शालयः

देविकाकूले भवाः—प्रत्यय हुआ,

दाविकाकूल अ—आकार, जस् विभक्ति।

(3) पूर्वदाविकः

पूर्वदेविकायां भवः—'अण्' प्रत्यय, प्राचां ग्रामनगरा०,

पूर्वदाविक् अ—पूर्ववत् आकार, सु।

(ख) शिंशपायाः—

(4) शाशपः (चमसः)

शिंशपाया विकारः—'पलाशादिभ्यो वा' से विकल्प से प्रत्यय, 'अण्' पक्ष में,

शांशपा अ—आकार, यचि भम्, यस्येति च, सु।

पलाशादि०—यहाँ अनुदात्तादिलक्षण 'अञ्' भी होता है।

(5) शांशपास्थलाः

शिंशपास्थले भवाः—'तत्र भवः' से 'अण्',

शांशपस्थल अ—आकार,

शांशपास्थल जस्—विभक्तिकार्य।

(6) पूर्वशांशपः

पूर्वशिंशपायां भवः—'तत्र भवः' से 'अण्',

पूर्वशांशप अ सु—आकार।

(ग) दित्यवाहः—

(7) दात्यौहम्

दित्यौह इदम्—'तस्येदम्' से औत्सर्गिक 'अण्',

दित्यवाह् अ—आकार,

दात्यवाह् अ—ऊठ्,

दात्यौह् अ सु—वृद्धि।

(घ) दीर्घसत्रस्य—

(8) दार्घसत्रम्

दीर्घसत्रे भवम्—'अण्', आकार,

दार्घसत्र अ—सु।

(ङ) श्रेयसः—

(9) श्रायसम्

श्रेयसि भवम्—पूर्ववत्।

वहीनर०—वहीनर शब्द को इत् आदेश होता है; ञित्, णित् व कित् प्रत्यय के परे रहते।

(10) वैहीनरिः

वहीनरस्याऽपत्यम्—'अत इञ्' से 'इञ्', आकार प्राप्त हुआ,

विहीनर इ—इकार हुआ,

वैहीनर इ सु—आदिवृद्धि।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(3399) केकयमित्रयुप्रलयानां यादेरियः *2* (1144)

केकय, मित्रयु, प्रलय–इत्येतेषां यकारादेः 'इय'–इत्यमादेशो भवति तद्धिते ञिति, णिति, किति च परतः। केकयस्यापत्यं कैकेयः। 'जनपदशब्दात्क्षत्रियादञ्' (4.1.168) इत्यञ् प्रत्ययः। मित्रयुभावेन श्लाघते मैत्रेयिकया श्लाघते। 'गोत्रचरणाच्छ्लाघात्याकारतदवेतेषु' (5.1.134) इति वुञ्। लौकिकं हि तत्र गोत्रं गृह्यते। लोके च ऋषिशब्दः 'गोत्रम्' इत्यभिधीयते। प्रलय–प्रलयादागतं प्रालेयमुदकम्।

अर्थ—केकय, मित्रयु और प्रलय—इन अङ्गों के यकारादि भाग के स्थान पर 'इय' आदेश होता है; ञित्, णित् व कित् तद्धित परे रहते।

उदा० (1) कैकयः
केकयस्याऽपत्यम्—'जनपदशब्दात्क्ष०' से 'अञ्',
केक इय अ—'इय' आदेश,
कैकेय अ सु—आद् गुणः, आदिवृद्धि, भसंज्ञा।

(2) मैत्रेयिकया श्लाघते
मित्रयुभावेन श्लाघते—'गोत्रचरणाच्छ्लाघा०' से 'वुञ्',
मित्रयु वुञ्—युवोरनाकौ,
मित्र इय अक—इय, आद् गुणः,
मैत्रेयक—आदिवृद्धि, स्त्रीत्व में 'टाप्',
मैत्रेयिका टा—तृतीया एकवचन।

गोत्रचर०—'गोत्रचरणाच्छ्लाघा०' से 'वुञ्' होता है। यहाँ लौकिक गोत्र का ग्रहण होता है। लोक में ऋषि शब्द गोत्र कहा जाता है।

(3) प्रालेयम् उदकम्
प्रलयाद् आगतम्—'तत आगतः' से औत्सर्गिक 'अण्',
प्राल इय अ—'इय' आदेश, आदिवृद्धि,
प्रालेय अ सु—आद्गुणः।

(3400) न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच् *3* (1098)

यकारवकाराभ्यामुत्तरस्य अचामादेरचः स्थाने वृद्धिर्न भवति; ताभ्यां तु यकारवकाराभ्यां पूर्वमैजागमौ भवतो ञिति, णिति, किति च तद्धिते परतः यकारादैकारः, वकारादौकारः। व्यसने भवं वैयसनम्। व्याकरणमधीते वैयाकरणः। स्वश्वस्यापत्यं सौवश्वः। य्वाभ्यामिति किम्? नर्थस्यापत्यं नार्थिः। पदान्ताभ्यामिति किम्? यष्टिः प्रहरणमस्य याष्टीकः। यत इमे छात्त्रा याताः। प्रतिषेधवचनमैचोर्विषयप्रक्लृप्त्यर्थम्। इह मा भूद्–दाध्यश्विः, माध्वश्विरिति, न ह्यत्र य्वाभ्यामुत्तरस्य वृद्धिप्रसङ्गोऽस्ति। वृद्धेरभावात् प्रतिषेधोऽपि नास्तीत्यप्रसङ्गः। उत्तरपदवृद्धेरप्ययं प्रतिषेध इष्यते। पूर्वत्र्यलिन्दे भवः पूर्वत्रैयलिन्दः। यत्र तूत्तरपदसम्बन्धी यण्न भवति तत्र नेष्यते प्रतिषेधः–द्वे अशीती भृतो भूतो भावी वा द्व्याशीतिकः।

अर्थ—पदान्त यकार व पदान्त वकार से उत्तर अङ्ग के अचों में जो आदि अच्, उसके स्थान पर वृद्धि आदेश नहीं होता है; परन्तु उन यकार व वकार से पूर्व यथासंख्य 'ऐ' तथा 'औ' आगम होते हैं; ञित्, णित् व कित् तद्धित के परे रहते।

यकार से पूर्व ऐकार तथा वकार से पूर्व औकार होता है। शब्द के आदि में वि, सु अथवा नि—इनमें से कोई उपसर्गसंज्ञक शब्द या निपातसंज्ञक शब्द हो तथा यण् आदेश हुआ हो तो इस दशा में यकार तथा वकार पदान्त में होते हैं। 'वि' आदि की अव्ययसंज्ञा है तथा इनसे पर विभक्ति का लुक् होकर इनकी पदसंज्ञा होती है।

उदा० (1) वैयसनम्
व्यसने भवम्—'तत्र भवः' से 'अण्',
व्यसन अ—आदिवृद्धि का निषेध,
व् ऐ यसन अ सु—ऐच् आगम, भसंज्ञा, यस्येति च।

(2) वैयाकरणः
व्याकरणम् अधीते—'तदधीते तद्वेद' से 'अण्',
व् ऐ याकरण अ—पूर्ववत्।

(3) सौवश्वः
स्वश्वस्याऽपत्यम्—'तस्याऽपत्यम्' से 'अण्',
स् औ वश्व अ—'औ' आगम, भसंज्ञा,
सौवश्व सु—यस्येति च।

य्वाभ्या०—पदान्त **यकार** और **वकार** से उत्तर अचों में जो आदि अच्, उसे वृद्धि नहीं होती है।

(4) न्नार्थिः
नाऽर्थो यस्य सः—बहुव्रीहि समास,
न्नर्थ ईञ्—'न्नर्थस्याऽपत्यम्' इस अर्थ में 'अत इञ्' से 'इञ्' हुआ, हलन्त्यम्,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ञ्रार्थ् इ—ञित् तद्धित प्रत्यय (इञ्) परे है, परन्तु अचों में आदि अच् (अकार) न तो यकार से पर है, न ही वकार से पर है; अतः आदिवृद्धि का निषेध नहीं हुआ,

ञ्रार्थि सु—विभक्तिकार्य।

पदान्ता०—पदान्त में यकार व वकार से उत्तर अङ्ग के अचों में जो आदि अच्, उसे वृद्धि नहीं होती है।

(5) याष्टीकः

यष्टिः प्रहरणम् अस्य—सोऽस्य प्रहरणम्, शक्तियष्ट्योरीकक् से 'इकक्' हुआ, हलन्त्यम्,

याष्टि ईक—कित् तद्धित प्रत्यय 'इकक्' परे है, यकार से उत्तर अचों में आदि अच् आकार वर्त्तमान है, परन्तु यकार पदान्त में नहीं है, अतः आदि वृद्धि का निषेध नहीं होता है,

याष्टीक सु—विभक्तिकार्य।

(6) यातः

एति (= गच्छति)—इस अर्थ में,

इण् शतृ—लट्, शतृ आदेश, लशक्वतद्धिते, शप्, लुक्,

यत्—'इणो यण्' से यण् आदेश,

यत् अण्—'तस्येदम्' से 'अण्', आदि अच् अकार है, यह यकार से उत्तर है, परन्तु यकार पदान्त में नहीं है; अतः आदि-वृद्धि का निषेध नहीं होता है,

यात जस्—विभक्तिकार्य।

प्रतिषेध०—आदिवृद्धि-निषेध का विधान ऐच् आगम के विषय की व्यवस्था के लिए है अर्थात् जहाँ आदिवृद्धि का निषेध होता है, वहाँ पर ही 'ऐच्' आगम होता है। अतः निम्नलिखित में 'ऐच्' आगम नहीं होता है—

(7) दाध्यश्विः

दधि प्रियोऽश्वः—'शाकपार्थिवादीनां समास०' से समास,

दध्यश्व—इको यणचि,

दध्यश्व इ—तस्याऽपत्यम्, अत इञ् से 'इञ्',

दाध्यश्वि—'तद्धितेष्वचामादेः' से आदिवृद्धि होती है। चूँकि यहाँ आदिवृद्धि दकारोत्तरवर्त्ती अकार के स्थान पर हुई है, न कि यकार से उत्तर अकार के स्थान पर। यकार से उत्तर अकार के स्थान पर वृद्धि का प्रसङ्ग ही नहीं है तो निषेध भी नहीं होता है। निषेध का प्रसङ्ग न होने से 'ऐच्' भी नहीं होता है।

दाध्यश्वि सु—विसर्ग।

(8) माध्वश्विः

सभी कार्य पूर्ववत्।

उत्तरपद०—यह निषेध उत्तरपदवृद्धि का भी होता है।

(9) पूर्वत्रैयलिन्दः

पूर्वत्र्यलिन्दे भवः—'तत्र भवः' से 'अण्',

पूर्वत्र् ऐयलिन्द अ—'दिशोऽमद्राणाम्' से प्राप्त उत्तरपदवृद्धि का निषेध, ऐकार आगम, सु।

यत्र तूत्तर०—जहाँ उत्तरपदसम्बन्धी यण् नहीं होता है, वहाँ वृद्धि आदेश का निषेध नहीं होता है।

(10) द्व्याशीतिकः

द्वे अशीति भृतो भूतो भावी वा—यहाँ उत्तरपदसम्बन्धी यण् नहीं होता है।

द्व्यशीति इक—वृद्धि का निषेध नहीं होता है,

द्व्याशीतिक सु—यस्येति च।

(3401) द्वारादीनां च *4* (1386)

'द्वार'-इत्येवमादीनां ख्याभ्याम् उत्तरपदस्याचामादेरचः स्थाने वृद्धिर्न भवति, पूर्वौ तु ताभ्यामैजागमौ भवतः। द्वारे नियुक्तो दौवारिकः। द्वारपालस्येदं दौवारपालम्। तदादि-विधिश्चात्र भवति। स्वर-स्वरमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः सौवरः। सौवरोऽध्यायः। सौवर्यः सप्तम्य इति। व्य-ल्कशे भवः वैयल्कशः। स्वति-स्वस्तीत्याह सौव-स्तिकः। स्वर्-स्वर्भवः सौवः। *अव्ययानां भमात्रे टिलोपः*। स्वर्गमनमाह सौवर्गमनिकः। स्वाधाय इति केचित्पठन्ति, तदनर्थकम्। शोभनोऽध्याय इत्येतस्यां व्यु-त्पत्तौ तु पूर्वेणैव सिद्धम्। अथाप्येवं व्युत्पत्तिः क्रियते-स्वोऽध्यायः स्वाध्याय इति? एवमप्यत्रैव स्वशब्दस्यैव पाठात्सिद्धम्। तदादावपि हि वृद्धिरियं भवत्येव। स्म्य-कृत-स्म्यकृतस्यापत्यं स्फैयकृतः। स्वादुमृदुन इदं सौवादु-मृदवम्। श्वन्-शुन इदं शौवनम्। अणि 'अन्' (6. 4.168) इति प्रकृतिभावः। शुनो विकारो मांसं शौवम्। 'प्राणिरजतादिभ्योऽञ्' (4.3.154) इत्यञ्। श्वादंष्ट्रायां भवः शौवादंष्ट्रौ मणिः। स्वस्येदं सौवम्। स्वग्रामे भवः सौवग्रामिकः। अध्यात्मादित्वाट्ठञ् (वा०)। अपदान्तार्थो-ऽयमारम्भः। द्वार। स्वर। स्वाध्याय। व्यल्कश। स्वस्ति। स्वर्। स्म्यकृत। स्वादुमृदु। श्वन्। स्व-द्वारादिः।

अर्थ—द्वार आदि अङ्ग के यकार व वकार से उत्तर अचों में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जो आदि अच्, उसके स्थान पर वृद्धि नहीं होती है तथा यकार व वकार से पूर्व ऐ औ आगम होते हैं; ञित्, णित् व कित् तद्धित प्रत्यय परे रहते।

उदा० (1) दौवारिकः
द्वारे नियुक्तः—'तत्र नियुक्तः',
द्वार ठक्—'औ' आगम,
द् औ वार इक—ठस्येकः, सु।

(2) दौवारपालम्
द्वारपालस्येदम्—'तस्येदम्' से 'अण्',
द् औ वारपाल अ सु—पूर्ववत्।

तदादि०—यहाँ तदादिविधि हुई है।

(3) दौवारपालिकः (यह प्रयोग काशिका में नहीं है। हमने न्यास से लिया है)।
द्वारपाल ठक्—'रैवत्यादिभ्यष्ठक्' से 'ठक्',
दौ वारपाल् इक सु—औ, यस्येति च।

यहाँ कुछ विद्वान् 'द्वारपाल' शब्द का पाठ स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार 'प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्याऽपि ग्रहणम्' परिभाषा से 'द्वारपाली' शब्द का ग्रहण 'द्वारपाल' शब्द से हो जाता है।

(4) सौवरः
स्वरम् अधिकृत्य कृतो ग्रन्थः—'तद् अधिकृत्य कृतो ग्रन्थः',
स् औ वर् अ—'औ' आगम, सु।
इसी प्रकार—सौवरोऽध्यायः।

(5) सौवर्य्यः
स्वर् अण् → सौवरः,
सौवरी—स्त्रीत्व में 'टिड्ढाऽण्०' से 'ङीप्' होता है,
सौवर्यः—जस् विभक्ति, अचो रहाभ्यां द्वे।

(6) वैयल्कशः
व्यल्कशे भवः—'तत्र भवः' से 'अण्',
व् ऐ यल्कश् अ—'ऐ' आगम, सु।

(7) सौवस्तिकः
स्वस्तीत्याह—इस अर्थ में 'तदाहेति मा शब्दादिभ्य उपसङ्ख्यानम्' (वा०) से 'ठक्',
स् औ वस्ति इक—'औ' आगम, ठस्येकः,
सौवस्तिक—सु।

(8) सौवः
स्वर्भवः—तत्र भवः,
स्वर् अण्—'औ' आगम,
सौवर् अ सु—विभक्तिकार्य।

अव्यया०—अव्यय शब्दों का भसंज्ञामात्र में टिलोप होता है।

(9) सौवर्गमिकः
स्वर्गमनमाह—'आहौ प्रभूतादिभ्य उपसङ्ख्यानम्' से 'ठक्' हुआ,
स्वर्गमन ठक्—भसंज्ञामात्र में टिलोप,
स्वर्गम् इक सु—'औ' आगम।

स्वाध्याय०—कुछ विद्वान् 'स्वध्याय' ऐसा पाठ स्वीकार करते हैं। वह व्यर्थ है। 'शोभनोऽध्यायः' इस प्रकार विग्रह की दशा में पूर्वतः सिद्ध ही है। तब 'स्वोऽध्यायः' इस प्रकार विग्रह किया जाता है। यहाँ पर ही 'स्व' शब्द का पाठ होने से तदादि विधि होकर सिद्ध ही है। तब वृद्धि होती ही है।

(10) स्फैयकृतः
स्फ्यकृतस्याऽपत्यम्—'ऋष्यन्धकवृष्णि०' से 'अण्' हुआ,
स्फैयकृत अ—हलन्त्यम्, 'ऐ' आगम, सु।

(11) सौवादुमृदवम्
स्वादुमृदुन इदम्—अण्, 'औ' आगम,
सौवादुमृदु अ—'ओर्गुणः' से गुण,
सौवादुमृदो अ सु—अव्।

(12) शौवनम्
शुन इदम् → श्वन् अण् → शौवन् अ सु।

अणि अन्०—यहाँ 'अण्' करने पर 'अन्' से प्रकृतिभाव होता है।

(13) शौवम् (मांसम्)
शुनो विकारः—'प्राणिरजतादिभ्योऽञ्' से 'अञ्',
शौ वन् अ—'नस्तद्धिते' से टिलोप,
शौ व् अ सु—विभक्तिकार्य।

(14) शौवादंष्ट्रः (मणिः)
श्वादंष्ट्रायां भवः—'तत्र भवः, 'अन्येषामपि दृश्यते' से दीर्घ,
श्वादंष्ट्रा अण्—'औ' आगम, यस्येति च,
शौवादंष्ट्र सु—विभक्तिकार्य।

(15) सौवम्
स्वस्येदम्—पूर्ववत् 'अण्', 'औ' आगम, सु।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(16) सौवग्रामिकः

स्वग्रामे भवः—'औ' आगम, ठस्येकः। अध्यात्म आदि होने से 'ठक्' हुआ है।

अपदान्त०—यह विधान अपदान्त यकार व वकार के लिए है।

(3402) न्यग्रोधस्य च केवलस्य *5* (1543)

न्यग्रोधशब्दस्य केवलस्य यकारादुत्तरस्याचामादेरचः वृद्धिर्न भवति, तस्माच्च पूर्वमैकार आगमो भवति। न्यग्रोधस्य विकारो नैयग्रोधश्चमसः। केवलस्येति किम्? न्यग्रोधमूले भवाः शालयः न्यग्रोधमूला शालयः। 'न्यग्रोहयतीति न्यग्रोधः'–इति व्युत्पत्तिपक्षे नियमार्थम्, अव्युत्पत्तिपक्षे विध्यर्थम्।

अर्थ—केवल 'न्यग्रोध' इस अङ्ग के अचों में जो आदि अच्, उसके स्थान पर वृद्धि नहीं होती है; ञित्, णित् व कित् तद्धित परे रहते। अतः यकार से पूर्व ऐकार होता है।

उदा० (1) नैयग्रोधः (चमसः)

न्यग्रोधस्य विकारः—'अनुदात्तादेरञ्' से 'अञ्',

नैयग्रोध सु—'ऐ' आगम।

केवलस्ये०—केवल न्यग्रोध शब्द के अचों में जो आदि अच्, उसे वृद्धि नहीं होती है।

(2) न्याग्रोधमूलाः (शालयः)

न्यग्रोधमूले भवाः—'न्यग्रोध' केवल नहीं है, समस्त पद में है, अतः वृद्धि का निषेध नहीं होता है, तब 'ऐ' भी नहीं होता है।

न्याग्रोधमूल जस्—विभक्तिकार्य।

न्यग्रोहती०—'न्यग्रोध' शब्द को वृद्धि का निषेध पूर्वतः सिद्ध ही था। तब प्रकृत सूत्र के दो प्रयोजन हैं—

(क) नियमार्थ—न्यग्रोहयतीति न्यग्रोधः[1]—इस प्रकार विग्रह की दशा में प्रकृत सूत्र का पाठ नियमार्थ है। यह नियम करता है कि केवल न्यग्रोध शब्द को ही वृद्धि का निषेध होता है।

(ख) विध्यर्थ—अव्युत्पत्ति पक्ष में पदान्त में यकार के न रहने से 'न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां० की प्रवृत्ति नहीं होती है। इस दशा में प्रकृत सूत्र का पाठ विधि के लिए है।

(3403) न कर्मव्यतिहारे *6* (3217)

कर्मव्यतिहारे यदुक्तं तत्र भवति। प्रतिषेधागमयोरयं प्रतिषेधः। व्यावक्रोशी, व्यावलेखी, व्यावर्त्ती, व्यावहासी वर्त्तते। 'कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियाम्' (3.3.43) इति णच् प्रत्ययः, तदन्तात् 'णचः स्त्रियामञ्' (5.4.14)।

अर्थ—कर्मव्यतिहार अर्थ में, जो कहा गया है, वह नहीं होता है। पूर्व शास्त्र में वृद्धि का निषेध तथा ऐच् आगम का विधान है। अतः यहाँ निषेध और आगम—दोनों का प्रतिषेध कहा गया है।

कर्मव्यतिहार = क्रिया की अदला-बदली।

क्रिया की अदला बदली अर्थ गम्यमान हो तो आदिवृद्धि होती है तथा ऐच् आगम नहीं होता है।

उदा० (1) व्यावक्रोशी

वि अव क्रुश् णच्—भाव, कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियाम्, चुटू, हलन्त्यम्,

व्यवक्रोश् अ—इको यणचि, पुगन्तलघूपधस्य च,

व्यवक्रोश अञ्—णचः स्त्रियाम्, हलन्त्यम्,

व्यावक्रोश—'तद्धितेष्वचामादेः' से आदिवृद्धि प्राप्त, अङ्ग में पदान्त में यकार है, यकार से उत्तर अचों में आदि अच् आकार है, 'अञ्' ञित् प्रत्यय भी परे है, 'न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां०' से वृद्धि का निषेध तथा 'ऐ' आगम की प्राप्ति हुई,

व्यावक्रोशी सु—कर्मव्यतिहार अर्थ गम्यमान है, अतः वृद्धि-निषेध व ऐच् आगम का प्रतिषेध होकर आदिवृद्धि हुई, 'टिड्ढाऽण्०' से 'ङीप्', सु।

(2) व्यावलेखी

वि अव लिख्—पूर्ववत्।

(3) व्यावर्त्ती

वि अव वृत्—पूर्ववत्।

(4) व्यावहासी

वि अव हस्—पूर्ववत्, 'अत उपधायाः' से उपधा को वृद्धि होती है।

(3404) स्वागतादीनां च *7* (1549)

'स्वागत'–इत्येवमादीनां यदुक्तं तत्र भवति। स्वागत-

1. न्यञ्चतीति न्यक्। ऋत्विगादि से 'क्विन्' हुआ। 'नि अञ्च्' क्विन्— इस दशा में अनुनासिक लोप, सर्वापहार लोप तथा 'क्विन् प्रत्ययस्य कुः' से कुत्व होता है। न्यक्। न्यक् रुह् अच्—यहाँ पचादिलक्षण 'अच्', 'न्यङ्क्वादीनाञ्च' से धकार होता है। न्यक् रुध् अ। 'झलां जशोऽन्ते' से गकार तथा लघूपध गुण। न्यग् रोध् अ सु।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मित्याह स्वागतिकः। स्वध्वरेण चरति स्वाध्वरिकः। स्वङ्गस्यापत्यं स्वाङ्गिः। व्यङ्गस्यापत्यं व्याङ्गिः। व्यडस्यापत्यं व्याडिः। व्यवहारेण चरति व्यावहारिकः। व्यवहारशब्दोऽयं लौकिके वृत्ते वर्त्तते, न तु कर्मव्यतिहारे। स्वपतौ साधुः स्वापतेयः। द्वारादिषु स्वशब्दपाठादत्र प्राप्तिः। स्वागत। स्वध्वर। स्वङ्ग। व्यङ्ग। व्यवहार। स्वपति–स्वागतादिः।

अर्थ— जो पीछे कहा जा चुका है, वह 'स्वागत' आदि शब्दों से नहीं होता है। पूर्वशास्त्र में वृद्धि-निषेध तथा ऐच् आगम कहा गया है। अतः यहाँ इन दोनों का प्रतिषेध होता है।

उदा० (1) स्वागतिकः
शोभनम् आगतम्—स्वागतम्,
स्वागतम् इत्याह—'तदाहेत्यादौ प्रभूतादिभ्य उप०' (वा०) के द्वारा 'ठक्',
स्वागत ठक्—प्राप्त ऐच् आगम आदि का निषेध,
स्वागतिक सु—ठस्येकः।

(2) स्वाध्वरिकः
स्वध्वरेण चरति—'चरति' से 'ठक्',
स्वध्वर इक—पूर्ववत् वृद्धिनिषेध नहीं हुआ,
स्वाधर इक सु—यस्येति च।

(3) स्वाङ्गिः
स्वङ्गस्याऽपत्यम्—'अत इञ्',
स्वाङ्ग इ सु—पूर्ववत् वृद्धि।

(4) व्याङ्गिः
व्यङ्गस्याऽपत्यम्—'स्वाङ्गि' की तरह।

(5) व्याडिः
व्यडस्याऽपत्यम्—पूर्ववत्।

(6) व्यावहारिकः
व्यवहारेण चरति—'चरति' से 'ठक्' हुआ, 'व्यवहार' शब्द लौकिक आचरण अर्थ में वर्त्तमान है; कर्मव्यतिहार अर्थ गम्यमान नहीं है; अतः 'न कर्मव्यतिहारे' से सिद्ध नहीं था, शेष पूर्ववत्।

(7) स्वापतेयः
स्वपतौ साधुः—'पथ्यतिथिवसतिस्वपतेर्ढञ्' से 'ढञ्'
स्वपति ढञ्—हलन्त्यम्, 'आयनेय०' से 'एय्' आदेश,
स्वापत् एय—पूर्ववत् आदिवृद्धि, यस्येति च,
स्वापतेय—सु।

द्वारादि०—'स्वपति' शब्द में वकार पदान्त में नहीं है। वृद्धि-निषेध की प्राप्ति नहीं होती है। तब निषेध क्यों ?

(समा०) 'स्व' शब्द का द्वारादिगण में पाठ होने से वृद्धिनिषेध प्राप्त होता है; अतः प्रतिषेध कहा गया है।

(3405) श्वादेरिञि *8* (1560)

स्वादेरङ्गस्य इञि परतो यदुक्तं तन्न भवति। श्वभस्त्रस्यापत्यं श्वाभस्त्रिः। श्वादंष्ट्रिः। श्वन्शब्दो द्वारादिषु पठ्यते, तत्र च तदादिविधिर्भवतीत्येतदेव वचनं ज्ञापकम्। *इकारादिग्रहणं कर्त्तव्यं श्वागणिकाद्यर्थम्* (म० भा०)। श्वगणेन चरति श्वागणिकः। श्वायूथिकः। *तदन्तस्य चान्यत्रापि तद्धिते प्रतिषेध इष्यते।* श्वाभस्त्रेरिदं श्वाभस्त्रम्।

अर्थ—'इञ्' प्रत्यय परे रहते 'श्व' शब्द है आदि में जिसके, ऐसे अङ्ग के अचों में जो आदि अच्, उसके वृद्धि का निषेध नहीं होता है तथा ऐच् आगम भी नहीं होता है।

उदा० (1) श्वाभस्त्रि
श्वभस्त्रस्याऽपत्यम्—'अत इञ्' से 'इञ्',
श्वभस्त्र इ—वृद्धिनिषेध का निषेध,
श्वाभस्त्रि—सु।

(2) श्वादंष्ट्रिः
श्वदंष्ट्रस्याऽपत्यम्—पूर्ववत्।

श्वन्शब्दो०—द्वारादिगण में 'श्वन्' शब्द का पाठ है। वहाँ तदादिविधि होती है। यह ज्ञापकसिद्ध होता है।

इकारा०—श्वागणिक आदि में इकारादि प्रत्यय होता है।

(3) श्वागणिकः
श्वगणेन चरति—'चरति' से प्रत्यय,
श्वगण ठक्—आदिवृद्धि।

(4) श्वायूथिकः
श्वयूथेन चरति—पूर्ववत्।

तदन्तस्य०—तदन्त का अन्यत्र भी तद्धित प्रत्यय परे रहते निषेध होता है। यथा—

(5) श्वाभस्त्रम्
श्वाभस्त्रेरिदम्—'इञश्च' से 'अण्',
श्वाभस्त्रि अ सु—यस्येति च।

(3406) पदान्तस्यान्यतरस्याम् *9* (1561)

श्वादेरङ्गस्य पदशब्दान्तस्यान्यतरस्यां यदुक्तं तन्न भवति। श्वपदस्येदं श्वापदम्, शौवापदम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—'पद' शब्द है अन्त में जिसके तथा 'श्व' शब्द है अन्त में जिसके, ऐसे अङ्ग को पूर्वोक्त कार्य विकल्प से नहीं होता है। आदिवृद्धि व ऐच् आगम दोनों का विकल्प होता है।

उदा० (1) शौवापदम्
शुन इव पदं यस्य—श्वापदः—'शुनो दन्तदंष्ट्र०' (वा) से दीर्घ,
श्वपदस्येदम्—'तस्येदम्' से 'अण्',
शौवापद अ सु—'औ' आगम।

(2) श्वापदम्
पक्ष में 'औ' आगम नहीं हुआ।

(3407) उत्तरपदस्य *10* (1396)

'उत्तरपदस्य' इत्ययमधिकारः, 'हनस्तोऽचिण्णलोः' (7.3.32) इति प्रागेतस्मात् यदित ऊर्ध्वमनुक्रमिष्यामः, 'उत्तरपदस्य' इत्येवं तद्वेदितव्यम्। वक्ष्यति–'अवयवादृतोः' (7.3.11)। पूर्ववार्षिकम्। अपरवार्षिकम्। पूर्वहैमनम्। अपरहैमनम्'। यत्र पञ्चमीनिर्देशो नास्ति–'जे प्रोष्ठपदानाम्' (7.3.10) इत्येवमादौ, तदर्थमुत्तरपदाधिकारः। पञ्चमीनिर्देशेष्वपि विस्पष्टार्थम्, वृद्धेश्च व्यपदेशार्थम्। 'उत्तरपदवृद्धौ सर्वं च' (6.2.105) इत्युत्तरपदाधिकारे या वृद्धिरित्येवं विज्ञायते।

अर्थ—'उत्तरपदस्य' यह अधिकार है। 'हनस्तोऽचिण्णलोः' (7.3.32) से पूर्व-पूर्व जो कहा जायेगा, वह 'उत्तरपद' के स्थान पर होता है—ऐसा जानना चाहिए।
आगे कहा जायेगा—अवयवाद् ऋतोः। उदाहरण आगे देखें।

यत्र०—जहाँ 'जे प्रोष्ठपदानाम्' इत्यादि लक्षणों में पञ्चमी विभक्ति का निर्देश नहीं है, उसके लिए यह 'उत्तरपदस्य' ऐसा अधिकार है।

पञ्चमी०—जहाँ पञ्चमी का निर्देश है, वहाँ भी स्पष्टता के लिए तथा वृद्धि आदेश के लिए है। 'उत्तरपदवृद्धौ सर्वं च' इस प्रकार उत्तरपद के अधिकार में जो वृद्धि, उसका ज्ञान होता है।

(3408) अवयवादृतोः *11* (1397)

अवयववाचिन उत्तरस्य ऋतुवाचिन उत्तरपदस्याचामादेरचो वृद्धिर्भवति तद्धिते ञिति, णिति, किति च परतः। पूर्ववार्षिकम्। पूर्वहैमनम्। अपरवार्षिकम्। अपरहैमनम्। पूर्वं वर्षाणाम्, अपरं वर्षाणामित्येकदेशिसमासः। 'तत्र भवः' (4.3.53) इत्येतस्मिन्नर्थे वर्षाभ्यष्ठक्' (4.3.18) 'हेमन्ताच्च' (4.3.21), 'सर्वत्राण् च तलोपश्च' (4.3.22), इत्यणप्रत्ययः, तत्र 'ऋतोर्वृद्धिमद्विधौ अवयवात्' (म० भा०) इति तदन्तविधिः। अवयवादिति किम्? पूर्वासु वर्षासु भवं पौर्ववर्षिकम्। 'कालाट्ठञ्' (4.3.11) इति ठञ्। अवयवपूर्वस्यैव तदन्तविधिः, नान्यस्य।

अर्थ—अवयववाची, पूर्वपद से उत्तर, ऋतुवाची, उत्तरपद के अचों में जो आदि अच्, उसे वृद्धि आदेश होता है; ञित्, णित्, कित् तद्धित प्रत्यय के परे रहते।

उदा० (1) पूर्ववार्षिकम्
पूर्वं वर्षाणाम्—पूर्वापराधरोत्तर० से समास,
पूर्ववर्ष ठक्—तत्र भवः, वर्षाभ्यष्ठक्,
पूर्ववार्षिक सु—उत्तरपद को आदिवृद्धि।

(2) पूर्वहैमनम्
पूर्वहेमन् अण्—पूर्ववत् उत्तरपद को आदिवृद्धि।

(3) अपरवार्षिकम्
अपरवर्ष ठक्—पूर्ववत्।

(4) अपरहैमनम्
अपरहेमन् अण्—पूर्ववत्।

पूर्वं०—पूर्वं वर्षाणाम्, अपरं वर्षाणाम्—इस विग्रह की दशा में एकदेशि समास होता है। 'तत्र भवः' इस अर्थ में 'वर्षाभ्यष्ठक्' से 'ठक्' होता है। 'हेमन्ताच्च' से अण् प्रत्यय होता है।

अवयवा०—**अवयववाची** से उत्तर जो ऋतुवाची उत्तरपद, उसे आदिवृद्धि होती है।

(5) पौर्ववर्षिकम्
पूर्वासु वर्षासु भवम्—समास हुआ,
पूर्ववर्षा ठञ्—'पूर्व' शब्द अवयववाची नहीं है, कालवाची है, अतः उत्तरपद को आदिवृद्धि नहीं होती है।

काला०—यहाँ 'कालाट् ठञ्' से 'ठञ्' प्रत्यय हुआ है। अवयव हैं पूर्व में जिसके, ऐसे शब्द से ही तदन्त विधि होती है, अन्य से नहीं।

(3409) सुसर्वार्धाज्जनपदस्य *12* (1398)

सु, सर्व, अर्ध–इत्येतेभ्य उत्तरस्य जनपदवाचिन उत्तरपदस्याचामादेरचो वृद्धिर्भवति तद्धिते ञिति, णिति, किति च परतः। सुपाञ्चालकः। सर्वपाञ्चालकः। अर्धपाञ्चालकः। 'जनपदतदवध्योश्च', 'अवृद्धादपि बहुवचनविषयात्'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इति वुञ्। 'सुसर्वार्धदिक्शब्देभ्यो जनपदस्य' इति तदन्तविधिः।

अर्थ—सु, सर्व तथा अर्ध—इन शब्दों से उत्तर जो जनपदवाची उत्तर पद, उसके अचों में आदि अच् को वृद्धि आदेश होता है; ञित्, णित्, कित् तद्धित परे रहते।

उदा० (1) सुपाञ्चालकः
सुपञ्चाल—'कुगतिप्रादयः' से समास,
सुपञ्चाले जातः—अवृद्धादपि०,
सुपाञ्चाल सु—उत्तरपद आदिवृद्धि।

(2) सर्वपाञ्चालकः (पूर्ववत्)।

(3) अर्धपाञ्चालकः
पूर्ववत् उत्तरपद आदिवृद्धि।

जनपद०—जनपदतदवध्योश्च तथा अवृद्धादपि बहुवचन० से 'वुञ्' होता है। 'सुसर्वार्धदिक्शब्दे०' से तदन्त विधि होती है।

(3410) दिशोऽमद्राणाम् *13* (1399)

दिग्वाचिन उत्तरस्य जनपदवाचिनो मद्रवर्जितस्याचामादेरचो वृद्धिर्भवति तद्धिते ञिति, णिति, किति च परतः। पूर्वपाञ्चालकः। अपरपाञ्चालकः। दक्षिणपाञ्चालकः। पूर्ववत्तदन्तविधिः प्रत्ययश्च। दिश इति किम्? पूर्वः पञ्चालानां पूर्वपञ्चालः, तत्र भवः पौर्वपञ्चालकः। आपरपञ्चालकः। अमद्राणामिति किम्? पौर्वमद्रः। आपरमद्रः। 'मद्रेभ्योऽञ्' (4.2.108) इत्यञ्प्रत्ययः।

अर्थ—तद्धितसंज्ञक ञित्, णित्, कित् प्रत्यय के परे रहते दिशावाची शब्द से उत्तर जनपदवाची जो उत्तर पद, उसके अचों में जो आदि अच्, उसके स्थान पर वृद्धि आदेश होता है; परन्तु मद्र शब्द को यह वृद्धि नहीं होती है।

उदा० (1) पूर्वपाञ्चालकः
पूर्वेषु पञ्चालेषु भवः—'तद्धितार्थोत्तरपदसमा०' से समास,
पूर्वपञ्चाल वुञ्—उत्तरपद आदिवृद्धि, सु।

(2) अपरपाञ्चालकः
अपरपञ्चाल वुञ्—पूर्ववत्।

(3) दक्षिणपाञ्चालकः (पूर्ववत्)।

पूर्वव०—पूर्ववत् तदन्त विधि तथा प्रत्यय होते हैं।

दिश०—दिशावाची शब्द से उत्तर जनपदवाची शब्द को आदिवृद्धि होती है।

(4) पौर्वपञ्चालकः
पूर्वः पञ्चालानाम्—पूर्वपञ्चालः,

तत्र भवः—इस अर्थ में 'वुञ्' होता है। उत्तरपद को वृद्धि नहीं हुई। पूर्वपद को आदिवृद्धि हुई।

(5) आपरपञ्चालकः
पूर्ववत् पूर्वपद को आदिवृद्धि।

अमद्रा०—मद्र शब्द को आदिवृद्धि नहीं होती है।

(6) पौर्वमद्रः
पूर्वमद्र अञ्—उत्तरपद को आदिवृद्धि नहीं होती है।

(7) आपरमद्रः (पूर्ववत्)।

मद्रे०—'मद्रेभ्योऽञ्' से 'अञ्' प्रत्यय होता है।

(3411) प्राचां ग्रामनगराणाम् *14* (1400)

प्राचां देशे ग्रामनगराणां दिश उत्तरेषामचामादेरचो वृद्धिर्भवति तद्धिते ञिति, णिति, किति च परतः। ग्रामाणाम्–पूर्वेषुकामशम्यां भवः पूर्वैषुकामशमः। अपरैषुकामशमः। पूर्वकार्ष्णमृत्तिकः। अपरकार्ष्णमृत्तिकः। नगराणाम्–पूर्वस्मिन्पाटलिपुत्रे भवः पूर्वपाटलिपुत्रकः। अपरपाटलिपुत्रकः। पूर्वकान्यकुब्जः। अपरकान्यकुब्जः। ग्रामत्वादेव नगराणामपि ग्रहणे सिद्धे भेदेन यदुभयोरुपादानं तत्सम्बन्धभेदप्रतिपत्त्यर्थम्। दिक्पूर्वपदो हि समुदायः, पूर्वेषुकामशम्यादिः ग्रामनामधेयम्। पाटलिपुत्रादिः पुनरुत्तरपदमेव नगरमाह। तत्र ग्रामवाचिनामङ्गानामवयवस्य दिक्शब्दादुत्तरस्य च नगरवाचिनामुत्तरपदानामवयवस्य वृद्धिर्भवतीत्येवमभिसम्बन्धः क्रियते। इतरत्र तु दिश उत्तरेषां नगराणामित्येव। पूर्वैषुकामशमः–इत्येवमादिषु कृतायामुत्तरपदवृद्धौ एकादेशो भवतीति ज्ञापितम्। 'नेन्द्रस्य परस्य' (7.3.22) इति प्रतिषेधेन।

अर्थ—दिशावाची शब्द से उत्तर प्राच्य देश में जो ग्राम व नगरवाची शब्द, उनके आदि अच् को वृद्धि आदेश होता है; ञित्, णित्, कित् तद्धित परे रहते।

उदा० (क) ग्रामाणाम्—
(1) पूर्वैषुकामशमः
पूर्वा चाऽसाविषुकामशमी—'दिक्सङ्ख्ये० से समास,
पूर्वेषुकामशमी ञ—तत्र भवः, दिक्पूर्वपदादस०, चुटू,
पूर्वैषुकामशम् अ—'इषुकामशमी' को आदिवृद्धि।
पूर्वेषु कामशम्यां भवः—यह विग्रहान्तर है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(2) अपरैषुकामशमः (पूर्ववत्)।
(3) पूर्वकार्ष्णमृत्तिकः (पूर्ववत्)।
(4) अपरकार्ष्णमृत्तिकः (पूर्ववत्)।

(ख) नगराणाम्—
(5) पूर्वपाटलिपुत्रकः
पूर्वस्मिन् पाटलिपुत्रे भवः—उत्तरपद आदिवृद्धि।

(6) अपरपाटलिपुत्रकः (पूर्ववत्)।
(7) पूर्वकान्यकुब्जः (पूर्ववत्)।
(8) अपरकान्यकुब्जः (पूर्ववत्)।

ग्राम०—ग्राम होने से नगरों का भी ग्रहण हो जाता है। तब भेद के द्वारा जो दोनों का ग्रहण किया गया है, वह उनके सम्बन्ध के भेद के ज्ञान के लिए है। दिशावाची पूर्वपद समुदाय पूर्वेषुकामशमी आदि ग्रामों के नाम हैं। पाटलिपुत्र आदि उत्तरपद में नगरों को कहते हैं।

तत्र०—इनमें ग्रामवाची अङ्गसंज्ञक शब्दों के अवयव और दिशावाची से उत्तरपद के आदि अच् की वृद्धि होती है नगरवाची के उत्तरपद के अवयव आदि अच् की वृद्धि होती है—ऐसा सम्बन्ध किया जाता है। परन्तु अन्यत्र दिक् वाची से उत्तरवर्ती नगरवाचकों की आदिवृद्धि होती है।

पूर्वेषु०—पूर्वेषुकामशमः इत्यादि में उत्तरपदवृद्धि कर देने पर एकादेश होता है।

(3412) संख्यायाः संवत्सरसंख्यस्य च *15* (1752)

संख्याया उत्तरपदस्य संवत्सरशब्दस्य संख्यायाश्चाचामादेरचः स्थाने वृद्धिर्भवति तद्धिते ञिति, णिति, किति च परतः। द्वौ संवत्सरावधीष्टो भृतो भूतो भावी वा द्विसांवत्सरिकः। संख्यायाः–द्वे षष्टी अधीष्टी भृतो भूतो भावी वा द्विषाष्टिकः। द्विसाप्ततिकः। द्विष्ट्यादिशब्दो वर्षेषु संख्येयेषु वर्त्तमानः कालाधिकारविहितं प्रत्ययमुत्पादयति। 'परिमाणान्तस्य' (7.3.17) इत्येव सिद्धे संवत्सरग्रहणं परिणामग्रहणे कालपरिमाणस्याग्रहणार्थम्। तेन द्वैसमिकः, त्रैसमिकः–इत्युत्तरपदवृद्धिर्न भवति। द्विवर्षा त्रिवर्षा माणविकेति 'अपरिमाणबिस्ताचित' (4.1.22) इति पर्युदासो न भवति।

अर्थ—संख्यावाची शब्द से उत्तर संवत्सर और संख्यावाची अङ्ग के उत्तरपद के अचों में जो आदि अच्, उसे वृद्धि आदेश होता है; ञित्, णित्, कित् तद्धित के परे रहते।

उदा० (1) द्विसांवत्सरिकः
द्वौ संवत्सरावधीष्टो भृतो भूतो भावी वा—तद्धितार्थ में समास,
द्विसंवत्सर ठञ्—प्राग्वतीय अर्थ में,
द्विसांवत्सरिकः—ठस्येकः, सु।

(2) द्विषाष्टिकः
द्वे षष्टी अधीष्टो भृतो भूतो भावी वा—पूर्ववत्।
(3) द्विसाप्ततिकः (पूर्ववत्)।

द्विषष्टि०—द्विषष्टि आदि शब्दों से वर्ष तथा संख्येय अर्थों में वर्त्तमान होने से कालाधिकारविहित प्रत्यय होता है।

परिमा०—'परिमाणान्तस्य' से सिद्ध होने पर 'संवत्सर' का ग्रहण परिमाणग्रहण में कालपरिमाण का ग्रहण न हो—इसके लिए है। तब द्वैसमिकः तथा त्रैसमिकः—इनमें उत्तरपद को आदि वृद्धि नहीं होती है। द्विवर्षा, त्रिवर्षा—यहाँ 'अपरिमाणबिस्ताचित०' से पर्युदास नहीं होता है।

(3413) वर्षस्याभविष्यति *16* (1754)

संख्याया उत्तरस्य वर्षशब्दस्याचामादेरचो वृद्धिर्भवति तद्धिते ञिति, णिति, किति च परतः, स चेत्तद्धितो भविष्यत्यर्थे न भवति। द्वे वर्षे अधीष्टो भृतो भूतो वा द्विवार्षिकः। त्रिवार्षिकः। अभविष्यतीति किम्? यस्य त्रैवर्षिकं धान्यं निहितं भृत्यवृत्तये, अधिकं वापि विद्येत, स सोमं पातुमर्हति। त्रीणि वर्षाणि भावीति त्रैवर्षिकम्। अधीष्टभूतयोः 'अभविष्यति' इति प्रतिषेधो न भवति। गम्यते हि तत्र भविष्यत्ता, न तु तद्धितार्थः। द्वे वर्षे अधीष्टो भृतो वा कर्म करिष्यतीति द्विवार्षिको मनुष्यः।

अर्थ—तद्धित ञित्, णित्, कित् के परे रहते संख्या शब्द से उत्तर जो वर्ष शब्द, उसके आदि अच् के स्थान पर वृद्धि आदेश होता है, यदि प्रत्यय भविष्यत् अर्थ में न हो।

उदा० (1) द्विवार्षिकः
द्वे वर्षे अधीष्टो भृतो भूतो वा—समास,
द्वि वर्ष इक—ठस्येकः,
द्विवार्षिक सु—उत्तरपदवृद्धि।

(2) त्रिवार्षिकः (पूर्ववत्)।

अभाविष्य०—भविष्यत् अर्थ में प्रत्यय न हो तो उत्तरपद को आदिवृद्धि होती है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(3) त्रैवर्षिकम्
त्रिवर्ष—पूर्वपद को आदिवृद्धि हुई है।
त्रीणि वर्षाणि भावी इति।

अधीष्ट०—अधीष्ट और भूत अर्थों में 'अभविष्यति' इस प्रकार प्रतिषेध नहीं होता है। वहाँ भविष्यकालता गम्य हो रही है; तद्धितार्थ नहीं। यथा—
द्वे वर्षे अधीष्टो भृतो वा कर्म करिष्यति—द्विवार्षिको मनुष्यः।

(3414) परिमाणान्तस्यासंज्ञाशाणयोः *17* (1683)

परिमाणान्तस्याङ्गस्य संख्यायाः परं यदुत्तरपदं तस्याचामादेरचो वृद्धिर्भवति तद्धिते ञिति, णिति, किति च परतः, संज्ञायां विषये शाणे चोत्तरपदे न भवति। द्वौ कुडवौ प्रयोजनमस्य द्विकौडविकः। द्वाभ्यां सुवर्णाभ्यां क्रीतं द्विसौवर्णिकम्। 'विभाषा कार्षापणसहस्राभ्याम्' (5.1.29) इत्यत्र 'सुवर्णशतमानयोरुपसंख्यानम्' (वा०) इति लुको विकल्पः। द्वाभ्यां निष्काभ्यां क्रीतम् 'द्वित्रिपूर्वान्निष्काद्' (5.1.30)–द्विनैष्किकम्। असंज्ञाशाणयोरिति किम्? पाञ्चलोहितिकम्। पाञ्चकलापिकम्। पञ्च लोहित्यः परिमाणमस्य, पञ्च कलापानि परिमाणमस्येति विगृह्य 'तदस्य परिमाणम्' (5.1.57) इति योगविभागात्प्रत्ययः, तद्धितान्तश्चायं समुदायः संज्ञा। द्वाभ्यां शाणाभ्यां क्रीतं द्वैशाणम्। त्रैशाणम्। 'शाणाद्वा' (5.1.35) 'द्वित्रिपूर्वादण्च' (5.1.36) इत्यण्प्रत्ययः। 'असंज्ञाशाणकुलिजानाम्' इति केचित्पठन्ति। द्वे कुलिजे प्रयोजनमस्य द्वैकुलिजिकः।

अर्थ—तद्धित ञित्, णित्, कित् प्रत्यय के परे रहते संख्यावाची शब्द से उत्तर परिमाणवाची शब्द है अन्त में जिसके, ऐसे अङ्ग के उत्तरपद के आदि अच् को वृद्धि आदेश होता है, यदि संज्ञा गम्यमान हो अथवा शाण शब्द उत्तर पद में हो तो यह वृद्धि नहीं होती है।

उदा० (1) द्विकौडविकः
द्वौ कुडवौ प्रयोजनमस्य—समास,
द्वि कुडव ठञ्—प्राग्वतेष्ठञ्,
द्विकौडविक सु—उत्तरपदवृद्धि।

(2) द्विसौवर्णिकम्
द्वाभ्यां सुवर्णाभ्यां क्रीतम्—समास,
द्विसुवर्ण इक—उत्तरपदवृद्धि।

विभाषा०—'विभाषा कार्षापणसहस्राभ्याम्' यहाँ 'सुवर्णशतमानयोरुप०' (वा०) से लुक् का विकल्प होता है।

(3) द्विनैष्किकम्
द्वाभ्यां निष्काभ्यां क्रीतम्—'द्वित्रिपूर्वान्निष्काद्'।

असंज्ञा—संज्ञा गम्यमान हो तथा शाण शब्द उत्तरपद हो तो सूत्रोक्त वृद्धि आदेश नहीं होता है।

(4) पाञ्चलोहितिकम्
उत्तरपद को वृद्धि नहीं हुई। पञ्च लोहित्यः परिमाणम् अस्य।

(5) पाञ्चकलापिकम्
पूर्ववत्। पञ्च कलापानि परिमाणम् अस्य।

पञ्च०—पूर्ववत् विग्रह करके 'तदस्य परिमाणम्' इस प्रकार योग विभाग से प्रत्यय होता है। तद्धितान्त समुदाय संज्ञा है।

(6) द्वैशाणम्
द्वाभ्यां शाणाभ्यां क्रीतम्—'शाणाद्वा'। द्वित्रिपूर्वादण् च।

(7) त्रैशाणम्
पूर्ववत् उत्तरपद आदिवृद्धि का निषेध।

असंज्ञा०—कुछ विद्वान् 'असंज्ञाशाणकुलिजानाम्' ऐसा पाठ मानते हैं।

(8) द्वैकुलिजिकः
द्वे कुलिजे प्रयोजनमस्य।

(3415) जे प्रोष्ठपदानाम् *18* (1409)

'जे' इति जातार्थो निर्दिश्यते। तत्र यस्तद्धितो विहितस्तस्मिन् ञिति, णिति, किति च परतः प्रोष्ठपदानामुत्तरस्याचामादेरचो वृद्धिर्भवति। प्रोष्ठपदा नाम नक्षत्रम्, ताभिर्युक्तः काल (4.2.3) इत्यण्। तस्य 'लुबविशेषे' (4.2.4) इति लुप्। प्रोष्ठपदासु जातः–'ऋतुनक्षत्रेभ्योऽण्' (4.3.16) इत्यण्–प्रोष्ठपादो माणवकः। जे इति किम्? यदा प्रोष्ठपदो मेघो धरणीमभिवर्षति–प्रोष्ठपदासु भवः प्रौष्ठपदः। 'प्रोष्ठपदानाम्' इति बहुवचननिर्देशात् पर्यायोऽपि गृह्यते–भद्रपाद इति।

अर्थ—'जे' इसके द्वारा 'जात अर्थ' ऐसा निर्देश जानना चाहिए। 'जात' अर्थ में विहित जो तद्धितसंज्ञक ञित्, णित्, कित् प्रत्यय, उनके परे रहते प्रोष्ठ पद अङ्ग के उत्तरपद के आदि अच् को वृद्धि होती है।

उदा० (1) प्रोष्ठपादः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रोष्ठपदाभिर्युक्तः कालः—'नक्षत्रेण युक्तः कालः' से 'अण्',
प्रोष्ठपदा अण्—'लुबविशेषे' से लुप्,
प्रोष्ठपदासु जातः—तत्र जातः, ऋतुनक्षत्रेभ्योऽण्,
प्रोष्ठपदा अण्—उत्तरपद आदिवृद्धि।

जे इति०—जात अर्थ में विहित प्रत्यय के परे रहते ही सूत्रोक्त उत्तरपद आदिवृद्धि होती है।

(2) प्रोष्ठपदः
प्रोष्ठपदो मेघो धरणीमभिवर्षति—इस प्रकार।
प्रोष्ठपदासु भवः—उत्तरपद आदिवृद्धि नहीं हुई।

प्रोष्ठप०—'प्रोष्ठपदानाम्' इस प्रकार बहुवचननिर्देश से इसके पर्याय शब्दों का भी ग्रहण होता है।

(3) भद्रपादः
भद्रपदासु जातः—पूर्ववत्।

(3416) हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च *19* (1133)

हृद् भग, सिन्धु-इत्येवमन्तेऽङ्गे पूर्वपदस्योत्तरपदस्याचामादेरचो वृद्धिर्भवति तद्धिते ञिति, णिति, किति च परतः। सुहृदयस्येदं सौहार्दम्। सुहृदयस्य भावः सौहार्द्यम्। सुभगस्य भावः सौभाग्यम्। दौर्भाग्यम्। सुभगाया अपत्यं सौभागिनेयः। दौर्भागिनेयः। कल्याण्यादिषु (5.1.126) 'सुभगदुर्भग' इति पठ्यते। 'सुभग मन्त्रे' इत्युद्गात्रादिषु (5.1.129) पठ्यते, तत्रोत्तरपदवृद्धिर्नेष्यते-'महते सौभगाय; छन्दसि सर्वविधीनां विकल्पितत्वात् (पु०प० 35)। सक्तुप्रधानाः सिन्धवः सक्तुसिन्धवः, सक्तुसिन्धुषु भवः साक्तुसैन्धवः। पानसैन्धवः। सिन्धुशब्दः कच्छादिषु (4.2.133) पठ्यते, तेन तदन्तविधिरिष्यते इत्यणप्रत्ययः।

अर्थ—हृद्, भग, सिन्धु—शब्द हैं अन्त में जिसके, ऐसे अङ्गों के पूर्वपद तथा उत्तरपद दोनों के आदि अच् को वृद्धि आदेश होता है, तद्धित ञित्, णित्, कित् प्रत्यय परे रहते।

उदा० (1) सौहार्दम्
सुहृदयस्येदम्—'तस्येदम्' से 'अण्',
सुहृद् अण्—हृदयस्य हृल्ले०,
सौहार्द् अ—पूर्वपद, उत्तरपद आदिवृद्धि, सु।

(2) सौहार्द्यम्
सुहृदयस्य भावः—'गुणवचन०' से 'ष्यञ्',
सुहृद् ष्यञ्—षः प्रत्ययस्य, हलन्त्यम्, 'वा शोकष्यञ् रोगेषु' से 'हृद्' आदेश,
सौहार्द् य सु—उभयवृद्धि।

(3) सौभाग्यम्
सुभगस्य भावः—पूर्ववत् 'ष्यञ्',
सौभाग् य—उभयपदवृद्धि, सु।

(4) दौर्भाग्यम्
दुर्भगस्य भावः—पूर्ववत् ष्यञ्, उभयपदवृद्धि।

(5) सौभागिनेयः
सुभगाया अपत्यम्—तस्याऽपत्यम्, कल्याण्यादी०,
सुभग् इनङ् ढक्—अनुबन्धलोप, 'एय' आदेश,
सौभागिन् एय सु—उभयपदवृद्धि।

(6) दौर्भागिनेयः
दुर्भगाया अपत्यम्—पूर्ववत्।

कल्याण्या०—कल्याण्यादि में 'सुभगदुर्भग०' का पाठ है। 'सुभगमन्त्रे' का उद्गात्रादि में पाठ है। वहाँ उत्तरपदवृद्धि नहीं होती है। यथा—
महते सौभगाय
अथवा छन्दस् में सभी विधियों का विकल्प होता है।

(7) साक्तुसैन्धवः
सक्तुप्रधानाः सिन्धवः—सक्तुसिन्धवः,
सुक्तुसिन्धुषु भवः—अण्, कच्छादिभ्यश्च,
साक्तुसैन्धव सु—उभयपदवृद्धि, ओर्गुणः।

(8) पानसैन्धवः
पूर्ववत् अण्, उभयपदवृद्धि।

सिन्धु०—सिन्धु शब्द कच्छादिगण में पठित है। अतः तदन्त विधि तथा अण् प्रत्यय होता है।

(3417) अनुशतिकादीनां च *20* (1438)

'अनुशतिक'-इत्येवमादीनां चाङ्गानां पूर्वपदस्य चोत्तरपदस्य चाचामादेरचः स्थाने वृद्धिर्भवति तद्धिते ञिति, णिति, किति च परतः। अनुशतिकस्येदम् आनुशातिकम्। अनुहोडेन चरति आनुहौडिकः। अनुसंवरणे दीयते आनुसांवरणम्। अनुसंवत्सरे दीयते आनुसांवत्सरिकः। अङ्गारवेणुर्नाम कश्चित्, तस्यापत्यम् आङ्गारवैणवः। असिहत्य-तत्र भवं आसिहात्यम्। 'अस्यहत्य' इति केचित् पठन्ति, ततोऽपि विमुक्तादित्वादण् (5.2.61)। अस्य-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हत्यशब्दोऽस्मिन्नध्यायेऽस्ति आस्यहात्यः। 'अस्यहेतिः' इत्येवमपरे पठन्ति, अस्यहेतिः प्रयोजनमस्य आस्यहैतिकः। अत एव वचनादस्य समुदायस्य प्रातिपदिकत्वं विभक्तेश्चालुक्। वध्योग इति-विदादिरयम् (4.1.104), तस्यापत्यं वाध्यौगः। पुष्करसत्, अनुहरत्-एतौ बाह्वादिषु (4.1.96) पठ्येते। पौष्करसादिः, आनुहारतिः। कुरुकत-गर्गादिः (4.1.105), कौरुकात्यः। कुरुपञ्चाल-कुरुपञ्चालेषु भवः कौरुपाञ्चालः। 'जनपदसमुदायो जनपदग्रहणेन न गृह्यते' इति वुञ् न भवति। उदकशुद्धस्यापत्यम् औदकशौद्धिः। इहलोक, परलोक-तत्र भवः ऐहलौकिकः, पारलौकिकः। 'लोकोत्तरपदस्य' (वा०) इति ठञ्। सर्वलोक-तत्र विदितः सार्वलौकिकः। सर्वपुरुषस्येदं सार्वपौरुषम्। सर्वभूमेर्निमित्तं संयोग उत्पातो वा सार्वभौमः। प्रयोग-तत्र भवः प्रायौगिकः। परस्त्री-पारस्त्रैणेयः। 'कुलटाया वा' (4.1.127) इतीनङ्। *राजपुरुषात् ष्यञि* (ग०सू० 176)। राजपौरुष्यम्। ष्यञीति किम्? राजपुरुषस्यापत्यं राजपुरुषायणिः। 'उदीचां वृद्धादगोत्रात्' (4.1.157) इति फिञ्। शतकुम्भसुखशयनादयः-शतकुम्भे भवः शातकौम्भः। सौखशायनिकः। पारदारिकः। सूत्रनडस्यापत्यं सौत्रनाडिः। आकृतिगणश्चायमिष्यते। नेतेदमपि सिद्धं भवति-अभिगममर्हति आभिगामिकः। आधिदेवे भवमाधिदैविकम्। आधिभौतिकम्। चतस्र एव विद्याः चातुर्वैद्यम्। स्वार्थे ष्यञ्। अनुशतिक। अनुहोड। अनुसंवरण। अनुसंवत्सर। अङ्गारवेणु। असिहत्य। वध्योग। पुष्करसत्। अनुहरत्। कुरुकत। कुरुपञ्चाल। उदकशुद्ध। इहलोक। परलोक। सर्वलोक। सर्वपुरुष। सर्वभूमि। प्रयोग। परस्त्री। *राजपुरुषात् ष्यञि* (ग०सू० 176)। सूत्रनड—अनुशतिकादिः।

अर्थ—अनुशतिक आदि अङ्गों के पूर्वपद तथा उत्तरपद—दोनों पदों के आदि अच् के स्थान पर वृद्धि आदेश होता है; तद्धित ञित्, णित्, कित् प्रत्यय के परे रहते।

उदा० (1) आनुशातिकम्
अनुशतिकस्येदम्—'तस्येदम्' से 'अण्',
अनुशतिक अण्—उभयपदवृद्धि, सु।

(2) आनुहौडिकः
अनुहोडेन चरति—'चरति',
अनुहोड ठक्—ठस्येकः, उभयपदवृद्धि,
आनुहौडिक सु—सु।

(3) आनुसांवरणम्
अनुसंवरणे दीयते—'तत्र च दीयते कार्यं०',
अनुसंवरण अ—'अण्',
आनुसांवरण अ—सु।

(4) आनुसांवत्सरिकः
अनुसंवत्सरे दीयते—तत्र च दीयते०, बह्वचोऽन्तो०,
आनुसांवत्सर ठञ्—उभयपदवृद्धि,
आनुसांवत्सरिक सु—सु।

(5) अङ्गारवैणवम्
अङ्गारवेपोरपत्यम्—'तस्याऽपत्यम्',
आङ्गारवैणो अ—अण्, उभयपद वृद्धि, ओर्गुणः, सु।

(6) आसिहात्यम्
असिहात्य अण्—तत्र भवः,
आसिहात्य अ—उभयपदवृद्धि।

अस्यह०—'अस्यहत्य' कुछ विद्वान् इस प्रकार पाठ करते हैं। उससे भी 'विमुक्तादि' में पाठ होने से 'अण्' होता है। यथा—

(7) आस्यहात्यः
अस्यहत्य शब्दोऽस्मिन्नध्यायेऽस्ति—उभयपदवृद्धि।

अस्यहेति—कुछ विद्वान् 'अस्यहेति' इस प्रकार पाठ स्वीकार करते हैं। यथा—

(8) आस्यहैतिकः
अस्यहेतिः प्रयोजनम् अस्य—
आस्यहैति इक—उभयपदवृद्धि, सु।

अतएव०—इस वचन से ही इस समुदाय की प्रातिपदिक संज्ञा तथा विभक्ति का अलुक् होता है।

वध्योग०—'वध्योग' का बिदादि गण में पाठ है।

(9) वाध्यौगः
वध्योगस्याऽपत्यम्—अनृष्याऽनन्तर्ये बिदादिभ्योऽञ्,
वध्योग अञ्—उभयपदवृद्धि, सु।
पुष्करसत् तथा अनुहरत्—इनका बाह्वादिगण में पाठ है।

(10) पौष्करसादिः
पुष्करसतोऽपत्यम्—बाह्वादिभ्यश्च, इञ्,
पौष्करसात् इञ् सु—उभयपदवृद्धि।

(11) आनुहारतिः
अनुहरतोऽपत्यम्—पूर्ववत्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(12) कौरुकात्यः
कुरुकतस्याऽपत्यम्—गर्गादिभ्यो यञ्,
कौरुकात् य सु—उभयपदवृद्धि।

(13) कौरुपाञ्चालः
कुरुपञ्चाल अण्—तत्र भवः, उभयपदवृद्धि।

जन०—'जनपदतदवध्योश्च' से 'वुञ्' होना चाहिए था। 'जनपदसमुदायो जनपदग्रहणेन न गृह्यते' से 'वुञ्' नहीं होता है।

(14) औदकशौद्धिः
उदकशुद्धस्याऽपत्यम्—
औदकशौद्ध—उभयपदवृद्धि, सु।

(15) ऐहलौकिकः
इहलोके भवः—तत्र भवः, लोकोत्तरपदस्य,
इहलोक ठञ्—उभयपदवृद्धि, ठस्येकः, सु।

(16) पारलौकिकः
परलोक ठञ्—पूर्ववत्।

(17) सार्वलौकिकः
सर्वलोक ठञ्—तत्र विदितः, लोकसर्वलोकाट् ठञ्,
सार्वलौक इक—ठस्येकः, उभयपदवृद्धि, सु।

(18) सार्वपौरुषम्
सर्वपुरुषस्येदम्—'तस्येदम्' से 'अण्',
सार्वपौरुष अ सु—उभयपदवृद्धि।

(19) सार्वभौमः
सर्वभूमेर्निमित्तं संयोग उत्पातो वा—सर्वभूमिपृथिवीभ्याम०,
सर्वभूमि अण्—उभयपदवृद्धि, सु।

(20) प्रायोगिकः
प्रयोगे भवः—तत्र भवः।
प्रायोग इक—आदिवृद्धि, सु।

(21) पारस्त्रैणेयः
परस्त्री ढक्—स्त्रीभ्यो ढक्,
परस्त्रिनङ् एय—'एय' आदेश, 'कुलटाया वा' से 'इनङ्' आदेश,
पारस्त्रैण् एय सु—उभयपदवृद्धि, णत्व।

राजपु०—ष्यञ् परे रहते राजपुरुष शब्द को उभयपदवृद्धि होती है।

(22) राजपौरुष्यम्
राजपुरुष ष्यञ्—ब्राह्मणादि में पाठ होने से 'ष्यञ्' होता है,
राजपौरुष य सु—यस्येति च।

ष्यञीति०—ष्यञ् परे रहते ही राजपुरुष शब्द को उभयपदवृद्धि होती है।

(23) राजपुरुषायणिः
राजपुरुषस्याऽपत्यम्—उदीचां वृद्धादगोत्रात्,
राजपुरुष फिञ्—हलन्त्यम्, आयन आदेश,
राजपुरुष् आयनि सु—पूर्वपद आदिवृद्धि, यस्येति च।

(24) शातकौम्भः
शतकुम्भ अण्—उभयपदवृद्धि,
शातकौम्भ अ सु—विभक्तिकार्य।

(25) सौखशायनिकः
सुखशयन अण्—पूर्ववत्।

(26) पारदारिकः
परदार—पूर्ववत् उभयपदवृद्धि।

(27) सौत्रनाडिः
सूत्रनडस्याऽपत्यम्—अत इञ्, शेष पूर्ववत्।

आकृति०—यह आकृतिगण है। तब निम्नलिखित में भी सिद्ध होता है—

(28) आभिगामिकः
अभिगमम् अर्हति—'ढक्', उभयपदवृद्धि।

(29) आधिदैविकम्
अधिदेवे भवम्—'ठञ्', उभयपदवृद्धि।

(30) आधिभौतिकम्
अधिभूत—पूर्ववत्।

(31) चातुर्वैद्यम्
चतस्र एव विद्याः—'स्वार्थिको वक्तव्यश्चातुर्वर्ण्यादिसिद्ध्यर्थम्' से स्वार्थ में 'ष्यञ्'
चतुर् विद्य् य—उभयपदवृद्धि।

(3418) देवताद्वन्द्वे च *21* (1239)

देवताद्वन्द्वे च पूर्वपदस्योत्तरपदस्य चाचामादेरचः स्थाने वृद्धिर्भवति तद्धिते त्रिति, णिति, किति च परतः। आग्निमारुतीमनड्वाहीमालभेत्' (मै०2.5.7)। आग्नि-मारुतं कर्म। यो देवताद्वन्द्वः सूक्तहविःसम्बन्धी, तत्रायं विधिः। इह च न भवति–स्कन्दविशाखौ देवते अस्य स्कान्दविशाखः। ब्रह्मप्रजापती–ब्राह्मप्रजापत्यम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—देवतावाची द्वन्द्व समास में पूर्वपद व उत्तरपद के आदि अच् को वृद्धि आदेश होता है; तद्धित ञित्, णित्, कित् परे रहते।

उदा० (1) आग्निमारुतीम्
अग्निश्च मरुतश्च → अग्निमरुतौ—चार्थे द्वन्द्वः,
आग्निमारुत अ—तौ देवते अस्याः—इस विग्रह की दशा में 'साऽस्य देवता' से 'अण्', उभयपदवृद्धि,
आग्निमारुती—'इद् वृद्धौ' से 'इत्' 'टिड्ढाऽण्'० से 'ङीप्',
आग्निमारुतीम्—अम्, अमि पूर्वः।
इसी प्रकार—आग्निमारुतं कर्म।

यो देव०—सूक्त-हविसम्बन्धी जो देवताद्वन्द्व है, उसमें ही यह विधि होती है। अतः निम्नलिखित में नहीं होता है—

(2) स्कान्दविशाखः
स्कन्दश्च विशाखश्च—स्कन्दविशाखौ।
स्कन्दविशाखौ देवते अस्य—'तस्येदम्' से 'अण्',
स्कान्दविशाख अ—पूर्वपद को वृद्धि।

(6) ब्राह्मप्रजापत्यम्
ब्रह्मप्रजापती देवते अस्य—'दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरप०' से 'ण्य', पूर्ववत् पूर्वपद को आदिवृद्धि।

(3419) नेन्द्रस्य परस्य *22* (1240)

इन्द्रशब्दस्य परस्य यदुक्तं तन्न भवति। सौमेन्द्रः। आग्नेन्द्रः। परस्येति किम्? ऐन्द्राग्नमेकादशकपालं चरुं निर्वपेत्। इन्द्रशब्दे द्वावचौ–तत्र तद्धिते एकस्य 'यस्येति च' (6.4.148) इति लोपः, अपरस्य पूर्वेण सहैकादेश इत्यप्राप्तिरेव वृद्धेः, तदेदं प्रतिषेधवचनं ज्ञापकम्–बहिरङ्गमपि पूर्वोत्तरपदयोः पूर्वं कार्यं भवति, पश्चादेकादेश इति। तेन पूर्वैषुकामशम इत्यादि सिद्धं भवति।

अर्थ—देवतावाची द्वन्द्व समास में उत्तरपद में स्थित 'इन्द्र' शब्द के आदि अच् के स्थान पर वृद्धि आदेश नहीं होता है; ञित्, णित्, कित् तद्धित परे रहते।

उदा० (1) सौमेन्द्रः
सोमश्चेन्द्रश्च—चार्थे द्वन्द्वः,
सोमेन्द्रौ देवते अस्य—'देवताद्वन्द्वे च' से आनङ्, आद् गुणः, साऽस्य देवता,
सौमेन्द्र अ—उत्तरपदवृद्धि का निषेध।

(2) आग्नेन्द्रः
अग्निश्चेन्द्रश्च—अग्ना इन्द्र औ—अग्नेन्द्रौ—पूर्ववत् आनङ्, 'साऽस्य देवता' से 'अण्' हुआ,
अग्नेन्द्र अ सु—पूर्वपद को वृद्धि।

परस्ये०—उत्तरपद में स्थित 'इन्द्र' शब्द को आदिवृद्धि नहीं होती है।

(3) ऐन्द्राग्नम्
इन्द्रश्चाऽग्निश्च → इन्द्राग्नी—पूर्ववत्,
इन्द्राग्नी देवते अस्य—पूर्ववत् 'अण्',
ऐन्द्राग्न अम्—उत्तरपद आदिवृद्धि का निषेध नहीं हुआ।

इन्द्र०—'इन्द्र' शब्द में दो अच् हैं। इससे तद्धित करने पर एक अच् का 'यस्येति च' से लोप होता है। अन्य अच् का पूर्व के साथ एकादेश हो जाता है। तब वृद्धि का प्रसङ्ग ही नहीं उठता। तब इस प्रतिषेध-विधान की क्या आवश्यकता है?

(समा०) प्रकृत सूत्र के ज्ञापित होता है कि बहिरङ्ग होने पर भी प्रथम पूर्वपद व उत्तरपद में कार्य होता है, पश्चात् एकादेश होता है। तब 'पूर्वैषुकामशमः' इत्यादि प्रयोग सिद्ध होते हैं।

(3420) दीर्घाच्च वरुणस्य *23* (1241)

दीर्घादुत्तरस्य यदुक्तं तन्न भवति। ऐन्द्रावरुणम् (2.1.7)। मैत्रावरुणम्। दीर्घादिति किम्? 'अग्निवारुणीमनड्वाहीमालभेत' (कठ० 13.6)। अग्नेः–'ईदग्नेः सोमवरुणयोः' (6.3.37) इत्यस्यानङपवादस्य 'इद्वृद्धौ' (6.3.28) इति प्रतिषेधो विधीयते, तेन दीर्घात्परो न भवति।

अर्थ—तद्धितसंज्ञक ञित्, णित्, कित् परे रहते देवतावाची शब्दों के द्वन्द्व समास में दीर्घान्त शब्द से उत्तर जो 'वरुण' शब्द, ऐसे अङ्ग के उत्तरपद के आदि अच् को वृद्धि आदेश नहीं होता है।

उदा० (1) ऐन्द्रावरुणम्
इन्द्रश्च वरुणश्च → इन्द्रावरुणौ—पूर्ववत् 'आनङ्',
ते देवते अस्य—'अण्' हुआ,
ऐन्द्रावरुण सु—पूर्वपद को वृद्धि।

दीर्घादि०—दीर्घान्त शब्द से उत्तर 'वरुण' के आदि अच् को वृद्धि का निषेध होता है।

(2) अग्निवारुणीम्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अग्निवरुण अण्—'ईदग्नेः सोमवरुणयोः' से 'ईत्' प्राप्त हुआ, 'इद् वृद्धौ' से 'इत्' हुआ, चूँकि 'वरुण' शब्द दीर्घ शब्दान्त से पर नहीं है, अतः वृद्धिनिषेध नहीं हुआ,
अग्निवारुण ङीप् अम्—टिड्ढाऽण्०।

(3421) प्राचां नगरान्ते *24* (1431)

प्राचां देशे नगरान्तेऽङ्गे पूर्वपदस्योत्तरपदस्याचामादेरचो वृद्धिर्भवति तद्धिते ञिति, णिति, किति च परतः। सुह्मनगरे भवः सौह्मनागरः। पौण्ड्रनागरः। प्राचामिति किम्? मद्रनगरमुदक्षु, तत्र भवः माद्रनगरः।

अर्थ—तद्धितसंज्ञक ञित्, णित्, कित् प्रत्यय परे रहते प्राच्य देश में 'नगर' है अन्त में जिसके, ऐसे अङ्ग के पूर्व पद और उत्तर पद के आदि अच् के स्थान पर वृद्धि आदेश होता है।

उदा० (1) सौह्मनागरः
सुह्मनगरे भवः—'अण्',
सौह्मनागर सु—उभयपदवृद्धि।

(2) पौण्ड्रनागरः
पूर्ववत् 'अण्', उभयपदवृद्धि।

प्राचा०—प्राच्य देश में 'नगर' शब्द अन्त वाले अङ्ग को उभयपदवृद्धि होती है।

(3) माद्रनगरः
मद्रनगरे भवः—'नगर' शब्द अन्त में है, परन्तु यह प्राच्य देश में न होने से उभयपदवृद्धि नहीं हुई।

(3422) जङ्गलधेनुवलजान्तस्य विभाषितमुत्तरम् *25* (1432)

जङ्गल, धेनु, वलज-इत्येवमन्तस्याङ्गस्य पूर्वपदस्याचामादेरचो वृद्धिर्भवति, विभाषितमुत्तरम्=उत्तरपदस्य विभाषा भवति तद्धिते ञिति, णिति, किति च परतः। कुरुजङ्गलेषु भवं कौरुजङ्गलम्, कौरुजाङ्गलम्। वैश्वधेनवम्, वैश्वधैनवम्। सौवर्णवलजः, सौवर्णवालजः।

अर्थ—जङ्गल, धेनु, वलज—ये शब्द हैं अन्त में जिसके, ऐसे अङ्ग के पूर्व पद के आदि अच् को वृद्धि आदेश होता है तथा उत्तर पद के आदि अच् को विकल्प से वृद्धि आदेश होता है; तद्धित ञित्, णित्, कित् प्रत्यय के परे रहते।

उदा० (1) कौरुजङ्गलम्
कुरुजङ्गलेषु भवम्—पूर्वपद को आदिवृद्धि,
कौरुजङ्गल सु—विभक्तिकार्य।

(2) कौरुजाङ्गलम्
पक्ष में उत्तरपद को भी आदिवृद्धि हुई।

(3) वैश्वधेनवम्
विश्वधेनु अण्—पूर्वपद को आदिवृद्धि, उत्तरपदवृद्धि अभाव, 'ओर्गुणः' से गुण,
वैश्वधेनो अ सु—'अव्' आदेश।

(4) वैश्वधैनवम्
उभयपद वृद्धि होती है।

(5) सौवर्णवलजः
पूर्वपद को आदिवृद्धि होती है।

(6) सौवर्णवालजः
पक्ष में उत्तरपद को भी आदिवृद्धि होती है।

(3423) अर्धात्परिमाणस्य पूर्वस्य तु वा *26* (1684)

अर्धशब्दात्परस्य परिमाणवाचिन उत्तरस्याचामादेरचः स्थाने वृद्धिर्भवति, पूर्वस्य तु वा भवति तद्धिते ञिति, णिति, किति च परतः। अर्धद्रोणेन क्रीतमार्धद्रौणिकम्, अर्धद्रौणिकम्। आर्धकौडविकम्, अर्धकौडविकम्। परिमाणस्येति 'किम्'? अर्धक्रोशः प्रयोजनमस्यार्धक्रोशिकम्।

अर्थ—'अर्ध' शब्द से उत्तर परिमाणवाची उत्तर पद के आदि अच् को वृद्धि होती है तथा पूर्व पद को विकल्प से आदिवृद्धि होती है; तद्धित ञित्, णित्, कित् परे रहते।

(1) आर्धद्रौणिकम्
अर्धद्रोणेन क्रीतम्—'अर्धं नपुंसकम्' से समास,
अर्धद्रोण ठञ्—प्राग्वतेष्ठञ्, उभयपदवृद्धि।

(2) अर्धद्रौणिकम्
पक्ष में पूर्वपद को आदिवृद्धि का अभाव।

(3) आर्धकौडविकम्
उभयपद आदिवृद्धि।

(4) अर्धकौडविकम्
पक्ष में पूर्वपद को आदिवृद्धि का अभाव।

परिमाण०—परिमाणवाची उत्तर पद को आदिवृद्धि होती है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(5) आर्धक्रोशिकम्

अर्धक्रोश—उत्तरपद में परिमाणवाची नहीं है, अतः उत्तरपद को वृद्धि आदेश नहीं हुआ।

(3424) नातः परस्य *27* (1685)

अर्थात्परस्य परिमाणाकारस्य वृद्धिर्न भवति, पूर्वस्य तु वा भवति तद्धिते ञिति, णिति च परतः। अर्धप्रस्थिकः, आर्धप्रस्थिकः। अर्धकंसिकः, आर्धकंसिकः। अत इति किम्? आर्धकौडविकः। तपरकरणं किम्? इह मा भूत्–अर्धखार्यां भवा अर्धखारी। किं च स्यात्? अर्धखारी भार्या यस्य अर्धखारीभार्यः–'वृद्धिनिमित्तस्य च तद्धित-स्यारक्तविकारे' (6.3.39) इति पुंवद्भावप्रतिषेधो न स्यात्। यत्र हि तद्धिते वृद्धिः प्रतिषिध्यते, स वृद्धिनिमित्तं न भवतीति पुंवद्भावो न प्रतिषिध्यते, यथा–वैयाकरणी भार्या अस्य वैयाकरणभार्य इति।

अर्थ—'अर्ध' शब्द से उत्तर परिमाणवाची उत्तर पद के ह्रस्व अकार को आदिवृद्धि नहीं होती है, पूर्व पद को आदिवृद्धि विकल्प से होती ही है; तद्धित ञित्, णित्, कित् परे रहते।

उदा० (1) अर्धप्रस्थिकः

अर्धप्रस्थ—'अर्धं नपुसकम्' से समास, उत्तर पद को आदि वृद्धि का निषेध, पूर्व पद को आदिवृद्धि का अभाव।

(2) आर्धप्रस्थिकः

पक्ष में पूर्व पद को आदिवृद्धि हुई, उत्तर पद को पूर्ववत् निषेध।

(3) अर्धकंसिकः

पूर्ववत् उत्तर पद को आदिवृद्धि का निषेध, पूर्व पद को आदि-वृद्धि का अभाव।

(4) आर्धकंसिकः

उत्तर पद को आदिवृद्धि का निषेध यथावत् रहा, पूर्व पद को पाक्षिक आदिवृद्धि हुई।

अत०—ह्रस्व अकार के स्थान पर आदिवृद्धि का निषेध होता है।

(5) आर्धकौडविकः

उत्तर पद में आदि अच् में अकार न होने से वृद्धि का निषेध नहीं हुआ। पूर्व पद को आदिवृद्धि हुई।

तपर०—ह्रस्व अकार को ही आदिवृद्धि का निषेध होता है। अतः निम्नलिखित में निषेध नहीं होता है—

(6) अर्धखारी

अर्धखार्यां भवा—उत्तर पद में 'खारी' शब्द है, इसका आदि अच् आकार है, ह्रस्व अकार के न रहने से वृद्धिनिषेध नहीं हुआ।

(7) अर्धखारीभार्यः

अर्धखारी भार्या यस्य—यहाँ 'वृद्धिनिमित्तस्य च तद्धितस्या०' से पुंवद्भाव का निषेध नहीं होता है। तद्धित परे रहते वृद्धि का निषेध होता है; वह वृद्धि का निमित्त नहीं होता है। इसलिए पुंवद्भाव का निषेध नहीं होता है। यथा—

(8) वैयाकरणभार्यः

वैयाकरणी भार्याऽस्य—पुंवद्भाव हुआ।

(3425) प्रवाहणस्य ढे *28* (1129)

प्रवाहणस्य ढे परत उत्तरपदस्याचामादेरचो वृद्धिर्भवति पूर्वपदस्य वा भवति। प्रवाहणस्यापत्यं प्रावाहणेयः, प्रवाहणेयः। 'शुभ्रादिभ्यश्च' (4.1.123) इति ढक् प्रत्ययः।

अर्थ—'प्रवाहण' अङ्ग के उत्तर पद के आदि अच् को वृद्धि आदेश होता है तथा पूर्व पद को विकल्प से आदिवृद्धि होती है, तद्धितसंज्ञक 'ढ' प्रत्यय परे रहते।

उदा० (1) प्रावाहणेयः

प्रवाहणस्याऽपत्यम्—'प्र वह् णिच् ल्युट्' इस दशा में 'कृत्यल्युटो बहुलम्' से 'ल्युट्' होकर 'प्रवाहण' बनता है, 'णेर्विभाषा' से णत्व हुआ है,

प्रवाहण ढक्—शुभ्रादिभ्यश्च,

प्रावाहणेय सु—'एय' आदेश, सु।

(2) प्रवाहणेयः

पक्ष में पूर्व पद को वृद्धि नहीं हुई।

(3426) तत्प्रत्ययस्य च *29* (1130)

ढक्प्रत्ययान्तस्य प्रवाहणशब्दस्य तद्धितेषु परत उत्तर-पदस्याचामादेरचो वृद्धिर्भवति, पूर्वस्य तु वा। प्रवाह-णेयस्यापत्यं प्रावाहणेयिः, प्रवाहणेयिः। प्रावाहणेयकम्, प्रवाहणेयकम्। ब्राह्मतद्धितनिमित्ता वृद्धिर्ढाश्रयेण विकल्पेन बाधितुमशक्येति सूत्रारम्भः।

अर्थ—ढक् प्रत्ययान्त प्रवाहण अङ्ग के उत्तर पद के आदि अच् को वृद्धि आदेश होता है तथा पूर्व पद के आदि अच् को विकल्प से वृद्धि आदेश होता है; तद्धित ञित्, णित्, कित् परे रहते।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उदा० (1) प्रावाहणेयिः
प्रवाहणेयस्याऽपत्यम्—'अत इञ्' से 'इञ्' हुआ,
प्रवाहणेय इ—उत्तर पद को आदिवृद्धि, पूर्व पद को आदिवृद्धि हुई।

(2) प्रवाहणेयिः
उत्तर पद को आदिवृद्धि, पक्ष में पूर्व पद को आदिवृद्धि-अभाव।

(3) प्रावाहणेयकम्
प्रवाहणेय वुञ्—'गोत्रचरणाद् वुञ्',
प्रावाहणेय अक सु—युवोरनाकौ।

(4) प्रवाहणेयकम्
पक्ष में पूर्व पद को आदिवृद्धि का अभाव।

बाह्य०—बाह्य तद्धितनिमित्त वृद्धि 'ढ' प्रत्यय के आश्रय से विकल्प से बाध करने में अशक्य है। अतः यह विधान किया गया है।

(3427) नञः शुचीश्वरक्षेत्रज्ञकुशलनिपुणानाम् *30* (1460)

नञ उत्तरेषां शुचि, ईश्वर, क्षेत्रज्ञ, कुशल, निपुण–इत्येतेषामचामादेरचो वृद्धिर्भवति, पूर्वपदस्य वा भवति तद्धिते ञिति, णिति, किति च परतः। शुचि–आशौचम्, अशौचम्। ईश्वर–आनैश्वर्यम्, अनैश्वर्यम्। क्षेत्रज्ञ–आक्षैत्रज्ञ्यम्, अक्षैत्रज्ञ्यम्। कुशल–आकौशलम्, अकौशलम्। निपुण–आनैपुणम्, अनैपुणम्। अत्र केचिदाहुः–इयं पूर्वपदस्य वृद्धिरप्राप्तैव विभाषा विधीयते। 'न नञ्पूर्वात्तत्पुरुषात्' (5.1.121) इत्युत्तरो भावप्रत्ययः प्रतिषिध्यते, तत्र शुच्यादिभ्य एव प्रत्यये कृते पश्चान्नञ्समासे सति वृद्धिरनङ्गस्यापि वचनाद्भवतीति। तदपरे न मृष्यन्ते–भाववचनादन्योऽपि हि तद्धितो वृद्धिनिमित्तमपत्यादिष्वर्थेषु नञ्समासादेव विद्यते। बहुव्रीहेश्च नञ्समासाद्भाववचनोऽप्यस्ति, तत्राङ्गाधिकारोपमर्दनं न युज्यत इति अक्षेत्रज्ञानीश्वरौ तत्पुरुषावेव ब्राह्मणादिषु (5.1.124) पठ्येते, ततस्ताभ्यां भावे ष्यञ्भवति।

अर्थ—नञ् से उत्तर शुचि, ईश्वर, क्षेत्रज्ञ, कुशल तथा निपुण शब्द के आदि अच् को वृद्धि आदेश होता है तथा पूर्व पद के आदि अच् को विकल्प से वृद्धि आदेश होता है; तद्धित ञित्, णित्, कित् परे रहते।

उदा० (1) आशौचम्
नाऽस्य शुचयो विद्यन्ते—समास,
अशुचि अण्—इगन्ताच्च, नञ् (अ) से उत्तर 'शुचि' शब्द है, उत्तर पद को आदि वृद्धि, पूर्व पद को पाक्षिक आदिवृद्धि,
आशौच् अ सु—यस्येति च।

(2) अशौचम्
उत्तर पद को आदिवृद्धि, पूर्व पद को आदिवृद्धि का अभाव।

(3) आनैश्वर्यम्
अनीश्वर ष्यञ्—उत्तर पद आदिवृद्धि, पूर्व पद को पाक्षिक आदिवृद्धि।

(4) अनैश्वर्यम्
पक्ष में पूर्व पद को आदिवृद्धि नहीं हुई।

(5) आक्षैत्रज्ञ्यम्
'आनैश्वर्यम्' की तरह।

(6) अक्षैत्रज्ञ्यम्
'अनैश्वर्यम्' की तरह।

(7) आकौशलम्
'आशौचम्' की तरह।

(8) अकौशलम्
'अशौचम्' की तरह।

(9) आनैपुणम्
'आशौचम्' की तरह।

(10) अनैपुणम्
'अशौचम्' की तरह।

अत्र०—कुछ विद्वान् कहते हैं—यह पूर्वपद को आदिवृद्धि अप्राप्त है, इसका विकल्प कहा गया है। 'न नञ्पूर्वात्तत्पुरुषात्' से उत्तर भाव प्रत्यय का निषेध किया जाता है। जहाँ शुचि आदि शब्दों से ही प्रत्यय करने पर पश्चात् नञ् समास होने पर वृद्धि आदेश अनङ्ग को भी होता है, वचनसामर्थ्य से।

तदपरे०—अन्य विद्वान् ऐसा नहीं मानते। उनके अनुसार भाववचन से अतिरिक्त तद्धित प्रत्यय वृद्धिनिमित्त अपत्य आदि अर्थों में नञ् समास से उत्तर होता है। बहुव्रीहि नञ् समास से भाववचन भी है। यहाँ अङ्गाधिकार का उपमर्दन उपयुक्त नहीं है।

अक्षेत्र०—अक्षेत्रज्ञ तथा अनीश्वर—इन तत्पुरुषसंज्ञक शब्दों का ब्राह्मणादि गण में पाठ है। अतः उनसे भाव में 'ष्यञ्' होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(3428) यथातथयथापुरयोः पर्यायेण *31* (1789)

यथातथ, यथापुर-इत्येतयोर्नञ उत्तरयोः पर्यायेणाचामादेरचो वृद्धिर्भवति तद्धिते ञिति, णिति, किति च परतः। आयथातथ्यम्, अयाथातथ्यम्। आयथापुर्यम्, आयाथापुर्यम्। अयथातथ, अयथापुरेति ब्राह्मणादिषु नञ्समासावेतौ द्रष्टव्यौ। सूत्रे यथातथ-यथापुरशब्दौ तु 'यथाऽसादृश्ये' (2.1.7) इति अव्ययीभावसमासौ, तथा हि नपुंसकाश्रयं ह्रस्वत्वं कृतम्। भाष्ये तु यथा दर्शितम्-'अयथातथा भावः' (म० भा०) इति, तथा 'सुप्सुपा' इति समासो लक्ष्यते।

अर्थ—नञ् से उत्तर यथातथ तथा यथापुर—इन अङ्गों के पूर्व पद व उत्तर पद के आदि अच् के स्थान पर पर्यायेण वृद्धि होती है; तद्धित ञित्, णित्, कित् परे रहते।

पर्यायेण का अर्थ है कि एक पक्ष में पूर्व पद को आदिवृद्धि होती है तथा दूसरे पक्ष में उत्तर पद को आदिवृद्धि होती है।

उदा० (1) आयथातथ्यम्
अयथातथ ष्यञ्—ब्राह्मणादि होने से 'ष्यञ्',
आयथातथ्य सु—पूर्व पद को आदिवृद्धि।

(2) अयाथातथ्यम्
उत्तर पद को आदिवृद्धि।

(3) आयथापुर्यम्
अयथापुर ष्यञ्—पूर्व पद को आदिवृद्धि।

(4) अयाथापुर्यम्
उत्तर पद को आदिवृद्धि।

अयथा०—अयथातथ तथा अयथापुर—ये नञ् समास शब्द ब्राह्मणादि गण में हैं।

सूत्रे०—सूत्र में यथातथ, यथापुर शब्द 'यथाऽसादृश्ये' से अव्ययीभाव समास होकर गृहीत हैं। नपुंसकलक्षण ह्रस्वादेश किया गया है। भाष्य में इस प्रकार दर्शाया गया है—

अयथातथाभावः। 'सुप्सुपा' से समास है।

(3429) हनस्तोऽचिण्णलोः *32* (2574)

'तद्धितेषु' इति निवृत्तम्, तत्सम्बद्धम् 'किति' इत्यपि। 'ञ्णिति' इति वर्तते। हनस्तकारादेशो भवति ञ्णिति प्रत्यये परतः, चिण्णलौ वर्जयित्वा। घातयति। घातकः। साधुघाती। घातङ्घातम्। धातो वर्तते। अचिण्णलोरिति किम्? अघानि। जघान। धातोः कार्यमुच्यमानं धातोः प्रत्यये विज्ञायते। इह न भवति-वार्त्रघ्नम् (म० भा०) इतरदिति।

अर्थ—'तद्धितेषु' का अधिकार नहीं है। उससे सम्बद्ध 'किति' की भी निवृत्ति हो गई है। ञित् व णित् प्रत्यय परे रहते हन् अङ्ग के स्थान पर 'त' आदेश होता है, परन्तु चिण् व णल् के परे रहते नहीं होता है।

तकार में अकार उच्चारणार्थ है। अलोऽन्त्य परिभाषा से तकार 'हन्' अङ्ग के अन्त्य अल् 'नकार' के स्थान पर होता है।

उदा० (1) घातयति
हन् णिच्—चुटू, हलन्त्यम्,
हत् इ—तकार अन्तादेश,
घत् इ—हो हन्ते०,
घाति—अत उपधायाः, सनाद्यन्ता धातवः,
घाति शप् तिप्—कर्त्तरि शप्, लशक्वतद्धिते, हलन्त्यम्, सार्वधातुकार्धधातुकयोः, अय्।

(2) घातकः
हन् ण्वुल्—चुटू, हलन्त्यम्, युवोरनाकौ,
हत् अक—अन्तादेश,
घात् अक सु—पूर्ववत् अत उपधायाः, घकार।

(3) साधुघाती
साधु हन् णिनि—सुप्यजातौ णिनिस्ता०, अनुबन्धलोप,
साधु घात् इन् सु—शेष पूर्ववत्।

(4) घातङ्घातम्
हन् णमुल्—आभीक्ष्ण्ये णमुल् च, चुटू, उपदेशेऽजनु०, हलन्त्यम्,
घात् अम्—पूर्ववत् तकार, घकार, उपधावृद्धि,
घातङ्घातम्—आभीक्ष्ण्ये द्वे भवतः (वा०), अनुस्वार, परसवर्ण।

(5) घातो वर्त्तते
हन् घञ्—भाव अर्थ में, लशक्वतद्धिते, हलन्त्यम्,
घात् अ सु—शेष पूर्ववत्।

अचिण्ण०—चिण् व णल् परे रहते तकार अन्तादेश नहीं होता है।

(6) अघानि
हन् त—कर्म में लुङ्, च्लि, चिण् आदेश,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हन् चिण् त—अनुबन्धलोप, तकार आदेश नहीं हुआ,
घान् इ त—हो हन्ते०, अत उपधायाः,
अघानि—तकार का लोप, चिणो लुक्।

(7) जघान
हन् णल्—लिट्, तिप्, परस्मैपदानां णलतुस०, अनुबन्धलोप,
ह हन् अ—द्वित्व, हलादिः शेषः,
ज हान् अ—कुहोश्चुः, अभ्यासे चर्च, अत उपधायाः, 'णल्' परे होने से तकार अन्तादेश नहीं हुआ,
जघान् अ—अभ्यासाच्च।

धातोः—धातु से कहा जाता हुआ कार्य धातु से प्रत्यय परे रहते होता है। अतः निम्नलिखित में नहीं होता है—

(8) वार्त्रघ्नम्
वृत्रं हतवान्—इस अर्थ में,
वृत्र हन् क्विप्—ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप्, हलन्त्यम्, लशक्वत० उपदेशेऽजनुनासिक०, वेरपृक्तस्य।
वृत्रहन् अण्—तस्येदम्,
वार्त्रहन् अ—आदिवृद्धि,
वार्त्रघ्न् अ सु—'षपूर्वहन्धृतरा०' से अकारलोप।

(3430) आतो युक्चिण्कृतोः *33* (2761)

आकारान्तस्याङ्गस्य चिणि कृति ञ्णिति युगागमो भवति। अदायि। अधायि। कृति-दायः, दायकः। धायः, धायकः। चिण्कृतोरिति किम्? ददौ, दधौ। चौडिः, बालाकिः-बाह्वादित्वादिञ् (4.1.96)। ज्ञा देवता अस्य ज्ञः।

अर्थ—आकारान्त अङ्ग को 'युक्' आगम होता है, चिण् तथा ञित्, णित् कृत् प्रत्यय परे रहते। 'युक्' के ककार व उकार की इत्संज्ञा होती है। 'युक्' के कित् होने से यह अङ्ग का अन्त्य अवयव बनता है।

उदा० (1) अदायि
दा त—कर्म में लुङ्, च्लि,
दा चिण् त—चिण् आदेश, अनुबन्धलोप,
दा य् इ त—युक्, अनुबन्धलोप, चिणो लुक्,
अदायि—अट्।

(2) अधायि
धा त—पूर्ववत्।

(3) दायः
दा घञ्—भाव में, अनुबन्धलोप,
दा य् अ सु—युक्।

(4) दायकः
दा ण्वुल्—अनुबन्धलोप,
दा य् अक सु—युक्, युवोरनाकौ।

(5) धायः
'दायः' की तरह।

(6) धायकः
'दायकः' की तरह।

चिण्कृ०—चिण् तथा कृत् संज्ञक ञित् णित् परे रहते ही 'युक्' होता है।

(7) ददौ
दा णल्—लिट्, णल्,
दा औ—आत औ णलः, द्वित्व, युक् नहीं हुआ,
ददौ—ह्रस्वः, वृद्धिरेचि।

(8) दधौ
धा—पूर्ववत्,
द धा औ—अभ्यासे चर्च।

(9) चौडिः
चूडा इञ्—बाह्वादि गण में होने से 'इञ्',
चौड् इ सु—आदिवृद्धि, यस्येति च, युक् नहीं हुआ।

(10) बालाकिः
बलाका—पूर्ववत् सभी कार्य।

(11) ज्ञः
ज्ञा देवताऽस्य—'अण्' हुआ, 'युक्' नहीं हुआ।

(3431) नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्यानाचमेः *34* (2763)

उदात्तोपदेशस्य मान्तस्याङ्गस्याचमिवर्जितस्य चिणि कृति च ञ्णिति यदुक्तं तत्र भवति। किञ्चोक्तम्? 'अत उपधायाः' (7.2.116) इति वृद्धिः। अशमि, अतमि, अदमि। कृति खल्वपि-शमकः, तमकः, दमकः। शमः, तमः, दमः। उदात्तोपदेशस्येति किम्? यामकः, रामकः। कथमुद्यमोपरमौ? 'अड उद्यमे' (धा०पा० 358), 'यम उपरमे' (धा०पा० 985)-इति निपतनादनुगन्तव्यौ। उपदेशग्रहणं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किम्? शमी, दमी, तमीत्यत्र यथा स्यात्; इह मा भूत्-यामकः, रामक इति। मान्तस्येति किम्? चारकः, पाठकः। अनाचमेरिति किम्? आचामकः। *अनाचमिकमिवमीनामिति वक्तव्यम्*। आचामः। कामः। वामः। आम इति-चौरादिकस्य णिचि वृद्धौ सत्यां भवति। तत्र हि मित्त्वं नास्ति, 'नान्ये मितोऽहेतौ' (ग०सू० 177) इति। 'सूर्यविश्रामा भूमिः'-इत्येवमादिकं प्रयोगमन्याख्यमेव मन्यन्ते। चिण्कृतो-रित्येव-शशाम, ततान।

अर्थ—उपदेश में जो उदात्त तथा मकारान्त धातु, उसको वृद्धि आदेश नहीं होता है चिण् और कृत् संज्ञक ञित् या णित् के परे रहते; परन्तु आङ् पूर्वक चम् धातु को यह निषेध नहीं होता है।

'अत उपधायाः' से आदिवृद्धि होती है।

उदा० (1) अशमि
शम् चिण् त—कर्म में लुङ्, चिण् आदि,
अ शमि—वृद्धि नहीं हुई, चिणो लुक्।

(2) अतमि
तम् चिण् त—पूर्ववत्।

(3) अदमि
दम् चिण् त—पूर्ववत्।

(4) शमकः
शम् ण्वुल्—'अत उपधायाः' से प्राप्त वृद्धि नहीं हुई।

(5) तमकः
तम् ण्वुल्—पूर्ववत्।

(6) दमकः
दम् ण्वुल्—पूर्ववत्।

(7) शमः
शम् घञ्—भाव में, वृद्धि नहीं हुई।

(8) तमः (पूर्ववत्)।
(9) दमः (पूर्ववत्)।

उदात्तो०—उपदेश में जो उदात्त, ऐसी धातु को वृद्धि नहीं होती है।

(10) यामकः
यम् ण्वुल्—अनुबन्धलोप,

याम् अक—'यमु' धातु मकारान्त है, परन्तु उपदेश में उदात्त नहीं है, वृद्धिनिषेध नहीं हुआ, सु।

(11) रामकः (पूर्ववत्)।

कथमु०—उद्यम तथा उपरम शब्दों में वृद्धिनिषेध कैसे होता है? 'अड उद्यमे' तथा 'यम उपरमे' इस प्रकार निपातन से वृद्धिनिषेध जानना चाहिए।

उपदेश०—उपदेश में जो उदात्त, ऐसे धातु को वृद्धि नहीं होती है।

(12) शमी
शम् घिनुण्—लशक्वतद्धिते, उपदेशेऽजनु०, हलन्त्यम्,
शम् इन्—प्रत्ययस्वर करने पर धातु अनुदात्तस्वर होता है, यदि सूत्र में 'उपदेश' शब्द गृहीत न होता तो यहाँ वृद्धि का निषेध नहीं हो पायेगा,
शमिन् सु—विभक्तिकार्य।

(13) दमी (पूर्ववत्)।
(14) तमी (पूर्ववत्)।
(15) यामकः
वृद्धिनिषेध नहीं हुआ।

(16) रामकः (पूर्ववत्)।

मान्त०—मकारान्त जो धातु, उसे वृद्धिनिषेध होता है।

(17) चारकः
चर् ण्वुल्—अनुबन्धलोप, 'चर्' धातु उपदेश में उदात्त है; परन्तु मकारान्त नहीं है,
चार् अक सु—वृद्धिनिषेध नहीं हुआ।

(18) पाठकः (पूर्ववत्)।

अनाचमे०—आङ् पूर्वक् चम् धातु से वृद्धिनिषेध नहीं होता है।

(19) आचामकः
आ चम् ण्वुल्—'चम्' धातु मकारान्त है तथा उपदेश में उदात्त भी है, वृद्धिनिषेध प्राप्त हुआ, पर्युदासकथन से वृद्धि हुई,
आचाम् अक सु—सु।

अनाचमि०—आचम्, कम् तथा वम्—इनको वृद्धिनिषेध नहीं होता है।

(20) आचामः
आ चम् घञ्—वृद्धि हो गई है।

(21) कामः
कम् घञ्—वृद्धि हुई।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(22) वामः
पूर्ववत् वृद्धि।

'आमः' शब्द चौरादिक 'अम्' धातु से णिच् करके व णिज् लक्षण वृद्धि करके निष्पन्न होता है। यहाँ मित्त्व नहीं होता है।

(23) आमः
अम् णिच् अच्—'एरच्' से 'अच्',
आमि अ—णेरनिटि,
आम् अ सु—विभक्तिकार्य।

'विश्राम' आदि शब्द असाधु होते हैं।

चिण्कृ०—चिण् व कृत् संज्ञक ञित् णित् के परे रहते ही वृद्धि- निषेध होता है।

(24) शशाम
शम् णल्—णित् है; परन्तु कृत् संज्ञा नहीं है,
श शाम् अ—वृद्धि, द्वित्व, अभ्यासकार्य।

(25) ततान
पूर्ववत् वृद्धि।

(3432) जनिवध्योश्च *35* (2512)

जनि, वधि-इत्येतयोश्चिणि कृति च ञ्णिति यदुक्तं तन्न भवति। अजनि, जनकः, प्रजनः। अवधि, वधकः, वधः। वधिः प्रकृत्यन्तरं व्यञ्जनान्तोऽस्ति; तस्यायं प्रतिषेधो विधीयते। 'भक्षकश्चेन्न विद्येत वधकोऽपि न विद्यते'-इति हि प्रयोगो दृश्यते। वधादेशस्यादन्तत्वादेव वृद्धेरभावः। चिण्कृतोरित्येव-'जुजान गर्भं महिमानमिन्द्रम् (अथ० 3.10.12)।

अर्थ—जन्, वध्—इन अङ्गों को पूर्वोक्त कार्य नहीं होता है, चिण् तथा कृत् संज्ञक ञित् व णित् परे रहते।

पीछे वृद्धि आदेश कहा गया है। अतः यहाँ उसी का निषेध होता है।

उदा० (1) अजनि
जन् चिण् त—कर्म में लुङ्, चिण् आदि,
अजनि—'चिणो लुक्' से लुक्, 'अत उपधायाः' से प्राप्त वृद्धि का निषेध।

(2) जनकः
जन् ण्वुल्—पूर्ववत् वृद्धि-निषेध।

(3) प्रजनः
प्र जन् घञ्—भाव में 'घञ्' हुआ,
प्रजन् अ—प्राप्त वृद्धि का निषेध।

(4) अवधि
वध् चिण् त—'अजनि' की तरह।

(5) वधकः
वध् ण्वुल्—'जनकः' की तरह।

(6) वधः
वध् घञ्—'प्रजनः' की तरह।

वधि०—सूत्र में 'वधि' यह व्यञ्जनान्त अन्य प्रकृति का ग्रहण है। उसी को वृद्धि का निषेध होता है। यथा—वधकः। आदेशभूत 'वध' प्रकृति तो अदन्त है। अतः वृद्धि का स्वतः अभाव होता है।

चिण्कृ०—चिण् तथा कृत् संज्ञक ञित् व णित् प्रत्यय के परे रहते ही वृद्धि का निषेध होता है। यथा—

(7) जजान
वृद्धि हो गई है।

(3433) अर्त्तिह्वीव्लीरीक्नूयीक्ष्माय्यातां पुङ्णौ *36* (2570)

सर्वं निवृत्तम्, 'अङ्गस्य' इति वर्त्तते। अर्ति, ह्वी, व्ली, री, क्नूयी, क्ष्मायी-इत्येतेषामङ्गानामाकारान्तानां च पुगागमो भवति णौ परतः। अर्ति-अर्पयति। ह्वी-ह्वेपयति। व्ली-व्लेपयति। री-रेपयति। क्नूयी-क्नोपयति। क्ष्मायी-क्ष्मापयति। आकारान्तानाम्-दापयति, धापयति। अर्तीति 'ऋ गतिप्रापणयोः' (धा०पा० 937), 'ऋ गतौ' (धा० पा० 1099)-इति द्वयोरपि धात्वोर्ग्रहणम्। रीत्यपि-'री गतिरेषणयोः' (धा०पा० 1501), 'रीङ् श्रवणे' (धा० पा० 1139) इति। पुकः पूर्वान्तकरणम्-अदीदपदित्यत्रोपधाह्रस्वो यथा स्यादिति।

अर्थ—सभी अधिकृत पदों की निवृत्ति हो गई है। 'अङ्गस्य' का अधिकार है। ऋ, ह्वी, व्ली, री, क्नूयी, क्ष्मायी तथा आकारान्त—इन अङ्गों को 'पुक्' आगम होता है, 'णि' परे रहते।

'पुक्' के ककार की इत्संज्ञा होती है। उकार उच्चारणार्थ है।

उदा० (1) अर्पयति
ऋ णिच्—'पुक्' आगम,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्प् इ—पुगन्तलघूपधस्य च,
अर्पि शप् तिप्—सार्वधातुकार्धधातु०, एचोऽयवायावः।

(2) ह्रेपयति
ह्री णिच्—पूर्ववत् पुक्, लघूपधगुण।

(3) व्लेपयति
व्ली णिच्—पूर्ववत् पुक् आदि।

(4) रेपयति
री प् णिच्—पूर्ववत्।

(5) क्नोपयति
क्नूय् प् णिच्—'लोपो व्योर्वलि' से यकारलोप, शेष पूर्ववत्।

(6) क्ष्मापयति
क्ष्माय् णिच्—पूर्ववत् पुक्, यकारलोप।

(7) दापयति
दा णिच्—पूर्ववत् पुक्, शप् आदि।

(8) धापयति
'दापयति' की तरह।

रीत्यपि०—'ऋ' के द्वारा 'ऋ गतिप्रापणयोः' तथा 'ऋ गतौ'—दोनों का ग्रहण होता है। 'री' के द्वारा 'री गतिरेषणयोः' तथा 'रीङ् श्रवणे'—दोनों का ग्रहण होता है।

पुकः०—पुक् को प्रथम किया जाता है, ताकि निम्नलिखित में उपधा ह्रस्व हो जाय—

(9) अदीदपत्
दापि—धातुसंज्ञा, लुङ्, तिप्, 'इतश्च' से इकारलोप,
दाप् णि चङ् त्—च्लि, 'णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्त्तरि' से 'चङ्',
दप् अ त्—चुटू, हलन्त्यम्, 'णेरनिटि' से णिलोप, 'णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः' से उपधाह्रस्व, यदि 'पुक्' न किया जाता तो उपधा के न रहने से ह्रस्वत्व न हो पाता,
दाप् दप् अत्—'चङि' से द्वित्व, सन्वल्लघुनि चङ्परे, सन्यतः,
अदीदपत्—दीर्घो लघोः, अट्।

(3434) शाच्छासाह्वाव्यावेपां युक् *37* (2585)

गा, छा, सा, ह्वा, व्या, वे, पा–इत्येतेषामङ्गानां युगागमो भवति णौ परतः। शा–निशाययति। छा–अवच्छाययति। सा–अवसाययति। ह्वा–ह्वाययति। व्या–संव्याययति। वे–वाययति। पा–पाययति। पाग्रहणे 'पै ओवै शोषणे' (धा० पा० 921, 922)–इत्यस्यापीह ग्रहणमिच्छन्ति। 'पा रक्षणे' (धा०पा० 1057) इत्यस्य लुग्विकरणत्वान्न भवति। *लुगागमस्तु तस्य वक्तव्यः* (म०भा०)। पालयति। *धूञ्शीङोर्नुग्वक्तव्यः* (म०भा०)। धूनयति। प्रीणयति। एतेऽपि पूर्वान्ता एव क्रियन्ते, तेन न्यशीशयत्, अपीपलत्, अदूधुनत्, अपिप्रिणत्–इत्युपधाह्रस्वत्वं भवति। शाच्छासाह्वाव्यावेपां कृतात्वानां ग्रहणं पुकः प्राप्तिमाख्यातुम्। किमेतस्याख्याने प्रयोजनम्। एतस्मिन् प्रकरणे लक्षणप्रतिपदोक्तपरिभाषा (व्या०पा०) नास्तीत्युपदिश्यते। तेनाध्यापयति, जापयति–इत्येवमादि सिद्धं भवति।

अर्थ—शो, छो, षो, ह्वे, वे तथा पा—इन अङ्गों को 'युक्' आगम होता है, 'णि' परे रहते।

'युक्' के ककार की 'लशक्वतद्धिते' से इत्संज्ञा होती है। उकार मुखसुखार्थ है। 'युक्' कित् आगम होने से अङ्ग का अवयव होता है।

उदा० (1) निशाययति
नि शो णिच्—आदेच उपदेशेऽशिति,
नि शा इ—'अर्त्तिह्रीव्लीरी०' से 'पुक्' प्राप्त, इसका बाध करके 'युक्' हुआ,
नि शाय् इ—अनुबन्धलोप, सनाद्यन्ता धातवः,
निशायि शप् ति्—'सार्वधातुकार्धधातु०' से गुण।

(2) अवच्छाययति
अव छो णिच्—पूर्ववत् आत्व, युक्, लकार आदि,
अव त् छाय् इ अ ति—'छे च' से 'तुक्',
अवच्छाययति—स्तोः श्चुना श्चुः।

(3) अवसाययति
षो → अव सो—धात्वादेः षः सः,
अव सा य् इ शप् ति—शेष कार्य पूर्ववत्।

(4) ह्वाययति
ह्वे णिच्—पूर्ववत्।

(5) संव्याययति
व्ये णिच्—मकार को अनुस्वार होता है, शेष कार्य पूर्ववत्।

(6) वाययति
वे णिच्—पूर्ववत्।

(7) पाययति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पा णिच्—सभी कार्य पूर्ववत्।

पाग्रहणे०—'पा' का ग्रहण करने में 'पै ओवै शोषणे' इसका भी ग्रहण होता है—ऐसा कुछ विद्वान् स्वीकार करते हैं। विकरण का लुक् होने से 'पा' का ग्रहण नहीं होता है।

लुगाग०—'पा' धातु को णिच् परे रहते 'लुक्' आगम होता है।

(8) पालयति
पा णिच्—'लुक्' आगम, अनुबन्धलोप,
पा ल् इ शप् ति—धातुसंज्ञा, सार्वधातुकार्धधा०।

धूञ्भ्री०—णि परे रहते 'धू' तथा 'भ्री' धातुओं को 'नुक्' आगम होता है।

(9) धूनयति
धू नुक् णिच्—अनुबन्धलोप, शेष पूर्ववत्।

(10) भ्रीणयति
भ्री न् णिच्—'नुक्' आगम, शेष पूर्ववत्।

एतेऽपि०—ये सभी आगम (पुक्, युक्, लुक्, नुक्, जुक्) पूर्व ही होते हैं। अतः निम्नलिखित सिद्ध होते हैं—

(11) न्यशीशयत्
शा य् णिच्—युक्, धातुसंज्ञा, लुङ्,
शायि चङ् त्—चङ्, णिलोप, उपधाह्रस्व,
शि शय् अत्—'अदीदपत्' की तरह।

(12) अपीपलत्
पा ल् इ—लुङ्, चङ्, सभी कार्य पूर्ववत्,
पि पल् अ त्—णिलोप, ह्रस्व, द्वित्व, अभ्यासकार्य,
अपी पल् अ त्—सन्यतः, दीर्घो लघोः।

(13) अदूधुनत्
धूनि—धातुसंज्ञा, पूर्ववत् लुङ्, चङ्,
धु धु न् अ त्—णिलोप, ह्रस्व, द्वित्व,
दुधुनत्—अभ्यासे चर्च,
अदूधुनत्—दीर्घो लघोः, अट्।

(14) अपिप्रिणत्
भ्री न् णिच्—नुक्, धातुसंज्ञा, लुङ्, ति, इतश्च,
भ्रीणि चङ् त्—चङ्, णिलोप,
पि प्रिण् अ त्—ह्रस्व, द्वित्व, हलादिः शेषः,
अपि प्रिण् अ त्—अट्।

शाच्छा०—सूत्र में शा, छा—इस प्रकार आकार आदेश करके ग्रहण किया गया है, ताकि पुक् की प्राप्ति का ज्ञान हो सके। पुक् आगम के कथन का प्रयोजन क्या है ? इस प्रकरण में लक्षण प्रतिपदोक्त परिभाषा नहीं होता है—यह उपदेश किया जाता है। यथा—

(15) अध्यापयति
अधि इ णिच्—'हेतुमति च' से 'णिच्',
अधि आ प् इ—'अर्तिह्री०' से 'पुक्' अनुबन्धलोप, यण्, धातुसंज्ञा,
अध्यापि शप् तिप्—सार्वधातुकार्धधातु०, अय् आदेश,

(16) जापयति
जापि तिप्—धातुसंज्ञा, तिप्,
जापि शप् ति—शप्,
जापे शप् ति—सार्वधातुकार्धधातु०,
जाप् अय् अ ति—एचोऽयवायावः।

(3435) वो विधूनने जुक् *38* (2590)

'वा'-इत्येतस्य विधूननेऽर्थे वर्त्तमानस्य जुगागमो भवति णौ परतः। पक्षेणोपवाजयति। विधूनन इति किम्? आवापयति केशान्। किमर्थं सूत्रम्, 'वज गतौ' (धा०पा० 252) ण्यन्तस्य सिद्धत्वात्? वातेः पुग्मा भूदित्येवमर्थम्। 'पै ओवै शोषणे' (धा०पा० 921, 922) इत्यस्यैतद्रूपम्।

अर्थ—'विधूनन' अर्थ में वर्त्तमान 'वा' धातु को 'जुक्' आगम होता है, 'णि' परे रहते।

उदा० (1) उपवाजयति
उप वा णिच्—'जुक्' आगम, अनुबन्धलोप,
उप वा ज् इ—धातुसंज्ञा,
उपवाजि शप् तिप्—लकारकार्य।

विधूनन०—विधूनन अर्थ में वर्त्तमान 'वा' धातु को 'जुक्' आगम होता है।

(2) आवापयति केशान्
यहाँ 'कम्पन' अर्थ नहीं होने से 'जुक्' नहीं हुआ। आकारान्त अङ्ग को 'पुक्' आगम होता है।

किमर्थं०—प्रकृत सूत्र की आवश्यकता नहीं है। 'वज गतौ' धातु से णिच् करके 'उपवाजयति' रूप सिद्ध है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(समा०) 'वा' से 'पुक्' न हो—इसके लिए प्रकृत सूत्र का पाठ है। यह 'पै ओवै शोषणे' इस धातु का रूप है।

(3436) लीलोर्नुग्लुकावन्यतरस्यां स्नेहविपातने *39* (2591)

ली, ला–इत्येतयोरङ्गयोरन्यतरस्यां नुक्, लुक्–इत्येतावागमौ भवतो णौ परतः स्नेहविपातनेऽर्थे। घृतं विलाययति। विलीनयति घृतम्। विलालयति। विलापयति। ली + ई इतीकारः प्रश्लिष्यते, तत ईकारान्तस्यैव लुग्भवति, न तु कृतात्वस्य 'विभाषा लीयतेः' (6.1.51) इति। स्नेहविपातन इति किम्? जतु विलापयति। जटाभिरालापयते। 'ली' इति लीलीङोर्ग्रहणम्। 'ला' इति लातेः, कृतात्वस्य च लीयतेः।

अर्थ—स्नेह आदि द्रव्य को पिघलाने अर्थ में वर्त्तमान 'ली' तथा 'ला'—इन अङ्गों को यथासंख्य 'नुक्' तथा 'लुक्' आगम विकल्प से होते हैं, 'णि' परे रहते।

उदा० (1) विलीनयति
वि ली णिच्—'नुक्' हुआ, अनुबन्धलोप,
वि ली न् इ—धातुसंज्ञा,
विलीनि शप् तिप्—सार्वधातुक गुण, अय् आदेश।

(2) विलाययति
वि ली इ—पक्ष में 'नुक्' नहीं हुआ,
वि लै इ—अचो ञ्णिति, धातुसंज्ञा,
विलायि शप् तिप्—गुण, आय्।

(3) विलालयति
वि ला णिच्—'लुक्' आगम, अनुबन्धलोप,
विलालि—धातुसंज्ञा, लकारकार्य,
विलाल्य् अ ति—अय्।

(4) विलापयति
वि ला णिच्—पक्ष में 'लुक्' नहीं हुआ, 'पुक्' हुआ,
विलापि—धातुसंज्ञा,
विलापय् अ ति—अय्।

लीई०—ली (= ली ई) यहाँ ईकार प्रश्लिष्टरूपेण निर्दिष्ट है। इसका अभिप्राय यह है कि ईकारान्त 'ली' को ही 'नुक्' आगम होता है। 'विभाषा लीयतेः' के द्वारा 'ली' को विकल्प से आत्व होता है। जिस पक्ष में आत्व होता है, उस पक्ष में 'ली' धातु से 'नुक्' नहीं होता है। वहाँ विकल्प से 'लुक्' आगम ही होता है।

स्नेह०—**स्नेहविपातन** अर्थ में ही 'नुक्' तथा 'लुक्' आगम होते हैं।

(5) विलापयति जतु
यहाँ स्नेहादि का विपातन अर्थ नहीं है। 'पुक्' हुआ है।

(6) आलापयते जटाभिः
पूर्ववत् 'लुक्' आगम नहीं हुआ। 'पुक्' हुआ।

ली इति०—'ली' के द्वारा 'ली' तथा 'लीङ्' दोनों का ग्रहण है। 'ला' के द्वारा 'ला' धातु तथा आत्व किया गया 'ली' धातु—दोनों का ग्रहण है।

(3437) भियो हेतुभये षुक् *40* (2595)

'भी' इत्येतस्य हेतुभयेऽर्थे षुगागमो भवति णौ परतः। मुण्डो भीषयते। जटिलो भीषयते। अत्रापि भी + ई इतीकारप्रश्लेषः कृतात्वस्य षुग्निवृत्त्यर्थः। मुण्डो भापयते–इत्येवं हि तत्र भवति। हेतुभय इति किम्? कुञ्चिकयैनं भाययति। नात्र हेतुः प्रयोजको भयकारणम्, किं तर्हि? कुञ्चिका।

अर्थ—'हेतुभय' अर्थ में 'भी' अङ्ग को 'षुक्' आगम होता है, 'णि' परे रहते। 'षुक्' के ककार की इत्संज्ञा है। उकार उच्चारणार्थ है। स्वतन्त्र कर्त्ता के प्रयोजक को 'हेतु' कहते हैं। उससे होने वाला भय 'हेतुभय' कहलाता है।

उदा० (1) भीषयते मुण्डः
भी णिच्—'षुक्' आगम, अनुबन्धलोप,
भी ष् इ—धातुसंज्ञा,

भीषे शप् तिप्—सार्वधातुकगुण, 'अय्' आदेश, टित आत्मने०।

इसी प्रकार—जटिलो भीषयते।

अत्रापि०—यहाँ पर भी 'भी + ई' इस प्रकार ईकार का प्रश्लेष स्वीकार किया जाता है; ताकि आत्व किये गए 'भी' धातु से 'षुक्' की निवृत्ति हो जाय। यथा—

(2) भापयते मुण्डः
यहाँ आत्व हुआ, षुक् आगम नहीं हुआ, पुक् हुआ।

हेतुभय०—**हेतुभय** अर्थ में ही 'षुक्' होता है।

(3) भाययति
भी णिच्—यहाँ भय का कारण कुंचिका है, अतः 'षुक्' नहीं हुआ,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भै इ—'अचो ञ्णिति' से वृद्धि,
भायि शप् ति—धातुसंज्ञा, लकारकार्य।

(3438) स्फायो वः *41* (2597)

'स्फाय्' इत्येतस्याङ्गस्य वकारादेशो भवति णौ परतः। स्फावयति।

अर्थ—'स्फाय्' अङ्ग को वकार आदेश होता है, 'णि' परे रहते।

उदा० (1) स्फावयति
स्फाय् णि—वकार हुआ,
स्फावि—धातुसंज्ञा, शप् आदि,
स्फावे शप् ति—सार्वधातुकार्धधा०, अय्।

(3439) शदेरगतौ तः *42* (2598)

शदेरङ्गस्यागतावर्थे वर्तमानस्य तकारादेशो भवति णौ परतः। पुष्पाणि शातयति। अगताविति किम्? गाः शादयति गोपालकः।

अर्थ—'अगति' अर्थ में वर्त्तमान 'शद्' अङ्ग को तकार आदेश होता है, 'णि' परे रहते। अलोऽन्त्य परिभाषा से यह तकार दकार के स्थान पर होता है।

उदा० (1) शातयति
शद् णिच्—तकार अन्तादेश, अत उपधायाः,
शात् इ—धातुसंज्ञा,
शातय् अ ति—शप्, गुण, अय्।

अगता०—अगति अर्थ में वर्त्तमान 'शद्' अङ्ग को तकार आदेश होता है।

(2) शादयति गोपालकः गाः
यहाँ गति अर्थ है। अतः तकार अन्तादेश नहीं हुआ।

(3440) रुहः पोऽन्यतरस्याम् *43* (2599)

रुहेरङ्गस्यान्यतरस्यां पकारादेशो भवति णौ परतः। व्रीहीन् रोपयति, व्रीहीन् रोहयति।

अर्थ—'रुह्' अङ्ग को पकार आदेश विकल्प से होता है, 'णि' परे रहते। पकार में अकार उच्चारणार्थ है।

उदा० (1) रोपयति
रुह् णिच्—पकार हुआ,
रुपि—पुगन्तलघूपधस्य च, धातुसंज्ञा,
रोपि शप् ति—शप् आदि पूर्ववत्।

(2) रोहयति
पक्ष में पकार अन्तादेश नहीं हुआ।

(3441) प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्यात इदाप्य-सुपः *44* (463)

प्रत्ययस्थात्ककारात् पूर्वस्याकारस्य इकारादेशो भवति, आपि परतः, स चेदाप्सुपः परो न भवति। जटिलिका। मुण्डिका। कारिका। हारिका। एतिकाश्चरन्ति। प्रत्यय-ग्रहणं किम्? शक्नोतीति शका। स्थग्रहणं विस्पष्टार्थम्, ककारमात्रं प्रत्ययो नास्तीति सामर्थ्यात् प्रत्ययस्थस्य ग्रहणं शक्यते विज्ञातुम्। कादिति किम्? मण्डना। रमणा। पूर्वस्येति किम्? परस्य मा भूत्–पटुका। मृदुका। अत इति किम्? गोका। नौका। तपरकणं किम्? राका, धाका। आपीति किम्? कारकः, धारकः। अथ आपी-त्यनेन किं विशिष्यते? ककारः। यद्येवम्, कारिकेत्यत्रापि न प्राप्नोति, अकारेण व्यवहितत्वात्? एकादेशे कृते नास्ति व्यवधानम्। एकादेशः पूर्वविधौ स्थानिवद्भवतीति व्यव-धानमेव? वचनाद् व्यवधानमीदृशं यत्स्थानिवद्भावकृतमेकेन वर्णेन तदाश्रीयते। रथकट्यादिषु तु श्रुतिकृतमनेकेन वर्णेन व्यवधानमिति इत्त्वं न भवति। असुप इति किम्? बहवः परिव्राजका अस्यां मथुरायां बहुपरिव्राजका मथुरा। सुब-न्तादयं परिव्राजकशब्दात्पर आबिति प्रतिषेधो भवति। प्रसज्यप्रतिषेधश्चायम्, न पर्युदासः। पर्युदासे हि सति समुदायादसुबन्तात्पर आबित्त्वमत्र स्यादेव। अविद्यमानः सुप् यस्मिन् सोऽयमसुबिति–अयमपि नाश्रीयते। तथा हि सति बहुचर्मिकेत्यत्रापि न स्यात्। *मामकनरकयोरुप-संख्यानं कर्त्तव्यमप्रत्ययस्थत्वात्* (म० भा०)। मम इयं मामिका। नारिका। अणि ममकादेशः। 'केवलमामक' (4.1.30) इति नियमात् संज्ञाच्छन्दसोरीकारो नान्यत्र। तेनाणप्रत्ययान्तादपि टाब्भवति–नरान् कायतीति नरिका। 'आतोऽनुपसर्गे कः' इति कः प्रत्ययः। *प्रत्ययनिषेधे त्यक्त्यपोश्चोपसंख्यानम्* (7.3.46)। 'उदीचामातः स्थाने यकपूर्वायाः' इति विकल्पो मा भूदिति, दाक्षिणा-त्यिका। इहत्यिका।

अर्थ—'सुप्' से उत्तर नहीं है जो 'आप्', ऐसे 'आप्' के परे रहते प्रत्यय में स्थित ककार से पूर्व ह्रस्व अकार के स्थान पर इकार आदेश होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'आप्' के द्वारा स्त्रीलिङ्ग प्रत्ययों—टाप्, डाप्, चाप् का ग्रहण होता है।

उदा० (1) जटिलिका

जटिलक टाप्—'अजाद्यतष्टाप्' से 'टाप्' हुआ, चुटू, हलन्त्यम्,

जटिलिक आ—'आप्' से पर 'सुप्' नहीं है, प्रत्यय 'अक' में स्थित ककार से पूर्व ह्रस्व अकार के स्थान पर इकार,

जटिलिका सु—अकः सवर्णे दीर्घः।

(2) मुण्डिका

मुण्डक टाप्—पूर्ववत् इकार,

मुण्डिका सु—सवर्णदीर्घ।

(3) कारिका

कारक टाप्—पूर्ववत् इकार आदेश,

कारिका सु—विभक्तिकार्य।

(4) हारिका

हारक टाप्—'कारिका' की तरह।

(5) एतिकाः (पूर्ववत्)।

प्रत्यय०—प्रत्यय में स्थित ककार से पूर्व अकार को इकार होता है।

(6) शका

शक्नोति—शकः—पचादि 'अच्' होकर रूप बनता है।

शक टाप्—'अजाद्यतष्टाप्' से 'टाप्', ककार है, परन्तु वह प्रत्यय का नहीं है, अपितु धातु का है; अतः इससे पूर्व शकारोत्तरवर्ती अकार के स्थान पर इकार नहीं हुआ,

शका सु—सवर्णदीर्घ।

स्थग्रह०—स्थ का पाठ स्पष्टता के लिए है। ककारमात्र प्रत्यय नहीं होता है। इस सामर्थ्य से 'प्रत्यय में स्थित' इसका ग्रहण होता है।

कादिति०—ककार से पूर्व अकार को ही इकार होता है।

(7) मण्डना

मण्ड् ल्यु—नन्दि आदि में पाठ होने से 'ल्यु',

मण्डन टाप्—'अन' प्रत्यय है, चूँकि प्रत्ययस्थ ककार नहीं है, नकार है; अतः इससे पूर्व ह्रस्व अकार को इकार नहीं होता है।

मण्डना—सु हुआ।

(8) रमणा

रमण टाप्—पूर्ववत्।

पूर्वस्ये०—पूर्वस्थित अकार को ही इकार होता है। इसका भाव यह है कि ककार से उत्तर अकार को इकार नहीं होता है।

(9) पटुका

पटुका—यहाँ इकार नहीं हुआ।

(10) मृदुका

पूर्ववत् अकार नहीं हुआ।

अत०—ह्रस्व अकार के स्थान पर ही इकार होता है।

(11) गोका

गोक टाप्—प्रत्यय का ककार है, इससे पूर्व ह्रस्व अकार नहीं है, अतः इकार नहीं हुआ,

गोका सु—सवर्णदीर्घ।

(12) नौका

'गोका' की तरह।

तपर०—ह्रस्व अकार के स्थान पर ही इकार होता है।

(13) राका

राक टाप्—प्रत्यय का ककार है, ककार से पूर्व अवर्ण है; परन्तु ह्रस्व अवर्ण नहीं, दीर्घ अवर्ण है। अतः इकार नहीं होता है,

राका सु—सवर्णदीर्घ।

(14) धाका

'राका' की तरह।

आपीति०—आप् परे रहते ही ह्रस्व अकार के स्थान पर इकार होता है।

(15) कारकः

कृ ण्वुल्—कारक,

कारक सु—प्रत्यय का ककार है, उससे पर 'आप्' नहीं है; अतः ककार से पूर्व ह्रस्व अकार को इकार नहीं हुआ,

कारकः—विसर्ग।

(16) धारकः

'कारकः' की तरह।

अथ०—'आपि' पद के द्वारा किसकी विशेषता बताई जाती है। यदि ककार विशेषित होता है तो अकार का व्यवधान होने से 'कारिका' रूप सिद्ध नहीं हो सकेगा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एकादेश करने पर व्यवधान नहीं होता है। पूर्वविधि में एकादेश स्थानिवत् हो जाता है। अतः व्यवधान होता है। वचनसामर्थ्य से ऐसा व्यवधान जो स्थानिवत् किया गया है, एक वर्ण के द्वारा आश्रित होता है। रथकट्यादियों में श्रुतिकृत एक वर्ण के द्वारा व्यवधान होता है। अतः इत्त्व नहीं होता है।

असुपः०—सुप् से उत्तर नहीं है जो, ऐसे 'आप्' के परे रहते अकार को इकार होता है।

(17) बहुपरिव्राजका मथुरा

बहवः परिव्राजका अस्यां मथुरायाम्—इस विग्रह की दशा में समास होकर,

बहुपरिव्राजक टाप्—इकार नहीं हुआ।

यह प्रसज्य प्रतिषेध है, पर्युदास नहीं। पर्युदास होने पर असुबन्त समुदाय से पर 'आप्' है। अतः यहाँ इकार आदेश हो जायेगा। अविद्यमानः सुप् यस्मिन् सोऽसुप्—इस प्रकार विग्रह भी नहीं माना जा सकता। ऐसा होने पर 'बहुचर्मिका' यहाँ भी इकार नहीं हो सकेगा।

मामक०—मामक तथा नरक—इन शब्दों में भी ह्रस्व अकार को इकार होता है।

(18) मामिका

ममेयम्—'तस्येदम्' से 'अण्', 'तवकममकौ',

मामक टाप्—इकार हुआ, सु।

(19) नरिका

नर कै क—आतोऽनुपसर्गे कः, आदेच उपदेशे०,

नरक टाप् सु—इकार हुआ।

अणि०—'मामिका' यहाँ अण् करने पर 'ममक' होता है। अण् प्रत्यय होने से 'टिड्ढाऽण्०' से ङीप् प्राप्त होता है। 'केवलमामक०' इस सूत्र से ङीप् नहीं होता है। तब अण् प्रत्ययान्त 'मामक' से 'टाप्' ही होता है।

नरान् कायतीति—नरिका। 'क' प्रत्यय हुआ है।

प्रत्यय०—प्रत्यय के निषेध में त्यक् और त्यप् का ही निषेध होता है; ताकि 'उदीचामातः स्थाने यकपूर्वायाः' से विकल्प न हो।

(20) दाक्षिणात्यिका

दक्षिणस्यां दिशि भवा—इस अर्थ में,

दाक्षिणात्यक टाप्—दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यक्, टाप्,

दाक्षिणात्यिका सु—इकार।

(2) इहत्यिका

इह भवा—इस अर्थ में 'अव्ययात्त्यप्' से 'त्यप्',

इहत्यक टाप्—पूर्ववत् इकार।

(3442) न यासयोः *45* (464)

'या', 'सा'-इत्येतयोरिकारादेशो भवति। यका। सका। 'यासा' इति निर्देशोऽतन्त्रम्, यत्तदोरुपलक्षणमेतत्। इहापि प्रतिषेध इष्यते-यकांयकामथीमहे, तकांतकां पचामहे (म० भा०) इति। *यासयोरित्त्वप्रतिषेधे त्यकन उपसंख्यानम्* (म० भा०)। उपत्यका। अधित्यका। *पावकादीनां छन्दस्युपसंख्यानम्* (म० भा०)। 'हिरण्यवर्णाः शुचयः पावकाः' (अथ० 1.33.1)। यासु आलोमकाः। छन्दसीति किम्? पाविका। *आशिषि चोपसंख्यानम्* (म० भा)। जीवताद् = जीवका। नन्दताद् = नन्दका। भवताद् = भवका, *उत्तरपदलोपे चोपसंख्यानम्* (म० भा०) देवदत्तिका, देवका। यज्ञदत्तिका, यज्ञका। *छिपकादीनां चोपसंख्यानम्* (म० भा०)। क्षिपका। श्रुवका। *तारका ज्योतिष्युपसंख्यानम्* (म० भा०)। तारका। ज्योतिषीति किम्? तारिका दासी। *वर्णका तान्तव उपसंख्यानम्* (म० भा०)। वर्णका = प्रावरणभेदः। तान्तव इति किम्? वर्णिका भागुरी लौकायते। *वर्तका शकुनौ प्राचामुपसंख्यानम्* (म० भा०)। वर्तका शकुनिः। प्राचामन्यत्र उदीचां तु-वर्तिका। शकुनाविति किम्? वर्तिका भागुरी लौकायतस्य। *अष्टका पितृदैवत्ये*। अष्टका। पितृदैवत्य इति किम्? अष्टिका खारी। *वा सूतकापुत्रकावृन्दारकाणामुपसंख्यानम्* (म० भा०) सूतिका, सूतका। पुत्रिका, पुत्रका। वृन्दारिका, वृन्दारका।

अर्थ—सुप् से उत्तर नहीं है जो 'आप्', ऐसे 'आप्' के परे रहते प्रत्यय में स्थित ककार से पूर्व 'या' तथा 'सा' के ह्रस्व अकार के स्थान पर इकार आदेश नहीं होता है।

उदा० (1) यका

यद् → य अ—स्त्रीत्व की विवक्षा, त्यदादीनामः,

य टाप्—अतो गुणे, अजाद्यतष्टाप्,

य् अकच् आ—अव्ययसर्वनाम्ना०,

यक आ—इकार नहीं हुआ, सु।

(2) सका

तद् → त अ → त टाप्—पूर्ववत्,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स आ—तदोः सः सा०,
सक आ सु—अकच्, सवर्णदीर्घ।

यासा०—'यासा' यह निर्देश अनुचित है। यह यद् तथा तद् का उपलक्षण है। यहाँ पर भी निषेध होता है। यथा—
यकां यकाम् अधीमहे, सकां सकां पचामहे।

यासयो०—'या' तथा 'सा' के विषय में 'त्यकन्' का भी निषेध होता है।

(3) उपत्यका
उपत्यकन्—उपाधिभ्यां त्यकन्नासः, हलन्त्यम्,
उपत्यक टाप्—इकार आदेश प्राप्त हुआ, निषेध हो गया,
उपत्यका सु—सु।

(4) अधित्यका
पूर्ववत् इकार नहीं हुआ।

पावका०—वेद के विषय में 'पावक' आदि शब्दों में ककार से पूर्व अकार को इकार नहीं होता है।

(5) पावकः (शौ०सं० 1.33.1)
यहाँ इकार नहीं हुआ।

(6) अलोमका
पूर्ववत् इकार नहीं हुआ।

छन्दसी०—वेद के विषय में ही इकार आदेश का निषेध होता है।

(7) पाविका
लोक में इकार हो गया है।

आशिषि०—आशीर्वाद अर्थ में इकार नहीं होता है।

(8) जीवका जीवताद्
यहाँ अकार के स्थान पर इकार नहीं हुआ।

(9) नन्दका नन्दताद्
इकार नहीं हुआ।

(10) भवका भवताद् (पूर्ववत्)।

उत्तर०—उत्तरपद के लोप में इकार आदेश नहीं होता है।

(11) देवदत्तिका
देवदत्तक टाप्—इकार हो गया है।

(12) देवका
देवक टाप्—'अनजादौ च विभाषा०' से उत्तर पद का लोप, इकार आदेश नहीं हुआ,
देवका सु—सवर्णदीर्घ।

(13) यज्ञदत्तिका
इकार हो गया है।

(14) यज्ञका
उत्तरपद लोप होने से इकार नहीं होता है।

क्षिपका०—'क्षिपका' आदि शब्दों के अकार के स्थान पर इकार नहीं होता है।

(15) क्षिपका
क्षिपक टाप्—इकार आदेश प्राप्त है, निषेध हो गया।

(16) ध्रुवका (पूर्ववत्)।

तारका०—'ज्योतिष्' के विषय में 'तारक' शब्द के अकार को इकार नहीं होता है।

(17) तारका
तारक टाप्—इकार प्राप्त था, निषेध हो गया।

ज्योतिषी०—ज्योतिष् अर्थ में ही इकार का निषेध होता है।

(18) तारिका दासी
यहाँ 'ज्योतिष्' अर्थ नहीं है। इकार हो गया।

वर्णका०—तन्तुविकार अर्थ में 'वर्णका' शब्द में इकार आदेश नहीं होता है।

(19) वर्णका
वर्णक टाप्—इकार आदेश प्राप्त था, निषेध हो गया।

तान्तव०—तन्तुविकार अर्थ में इत्त्व का निषेध होता है।

(20) वर्णिका
यहाँ तन्तुविकार अर्थ नहीं है। इकार हो गया है।

वर्त्तका०—प्राग्देशीय विद्वानों के मत में 'पक्षी' अर्थ गम्यमान हो तो 'वर्त्तका' शब्द में इकार आदेश नहीं होता है।

(21) वर्त्तका (= बत्तख)
वर्त्तक टाप्—इत्त्व नहीं हुआ।

(22) वर्त्तिका
उदीच्य विद्वानों के मत में इकार होता है।

शकुना०—पक्षी अर्थ गम्यमान हो तो 'वर्त्तका' में इत्त्व का निषेध होता है।

(23) वर्त्तिका
यहाँ इकार आदेश हो गया है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अष्टका०—पितृदैवत्य नामक वैदिककार्यविशेष में 'अष्टका' शब्द में इकार आदेश नहीं होता है।

(24) अष्टका
यहाँ 'पितृदैवत्य' अर्थ इष्ट है। अतः इकार नहीं हुआ।

पितृदैव०—पितृदैवत्य अर्थ में ही इत्त्व का निषेध होता है।

(25) अष्टिका खारी
इकार होता है।

वा सूतका०—सूतका, पुत्रका तथा वृन्दारका—इन शब्दों के ह्रस्व अकार के स्थान पर इकार आदेश विकल्प से होता है।

(26) सूतिका
सूतक टाप्—इकार हुआ।

(27) सूतका
पक्ष में इत्त्व नहीं हुआ।

(28) पुत्रिका
इकार हुआ।

(29) पुत्रका
पक्ष में इकार नहीं हुआ।

(30) वृन्दारिका
इकार हो गया है।

(31) वृन्दारका
पक्ष में इकार नहीं हुआ।

(3443) उदीचामातः स्थाने यकपूर्वायाः *46* (465)

उदीचामाचार्याणां मतेन यकारपूर्वायाः ककारपूर्वायाश्चातः स्थाने योऽकारस्तस्यातः स्थाने इकारादेशो भवति। 'उदीचाम्'-ग्रहणं विकल्पार्थम्। इभ्यिका, इभ्यका। क्षत्रियिका, क्षत्रियका। ककारपूर्वायाः–चटकिका, चटकका। मूषिकिका, मूषिकका। आत इति किम्? सांकाश्ये भवा सांकाश्यिका। स्थानग्रहणमनुवादेऽपि स्थानसम्बन्धप्रतिपत्त्यर्थम्। 'आत' इत्यनेन ह्रत इति विशिष्यते। यकपूर्वाया इति किम्? अश्वा, अश्विका। 'यकपूर्वायाः' इति स्त्रीलिङ्गनिर्देशः–आतः स्त्रीप्रत्ययस्य प्रतिपत्त्यर्थम्। इह न भवति–शुभं यातीति शुभंयाः, शुभंयिका। भद्रं यातीति भद्रंयाः, भद्रंयिका। *यकपूर्वायाः धात्वन्तप्रतिषेधः* (म० भा०)। धात्वन्तयोर्यकारककारयोरस्य प्रतिषेधस्य प्रतिषेधो वक्तव्यः। सुनयिका। सुशयिका। सुपाकिका। सुशोकिका।

अर्थ—उदीच्य आचार्यों के मत में यकार तथा ककार हैं पूर्व में है जिस आकार के, ऐसे आकार के स्थान पर जो अकार आदेश होता है, प्रत्यय में स्थित ककार से पूर्व ऐसे अकार के स्थान पर इकार आदेश नहीं होता है, 'आप्' परे रहते; यदि वह 'आप्' प्रत्यय 'सुप्' से उत्तर न हो।

'उदीचाम्' का ग्रहण विकल्प के लिए है।

उदा० (1) इभ्यिका
इभ्या क—प्रागिवात् कः,
इभ्यक टाप्—'केऽणः' से ह्रस्व, स्त्रियाम्, अजाद्यत०,
इभ्यिका—अकार से पूर्व यकार है, इत्त्व, सु।

(2) इभ्यका
इकार आदेश नहीं हुआ।

(3) क्षत्रियिका
क्षत्रियक टाप्—पूर्ववत् इकार।

(4) क्षत्रियका
इकार का निषेध।

(5) चटकिका
चटका क—पूर्ववत् ह्रस्व,
चटकक टाप्—स्त्रियाम्, अकार से पूर्व ककार है, अतः अकार को इकार,
चटकिका—सु।

(6) चटकका
इकार नहीं हुआ।

(7) मूषिकिका
इकार हुआ।

(8) मूषिकका
इकार नहीं हुआ।

आत०—आकार के स्थान पर जो ह्रस्व अकार आदेश, ऐसे अकार को इकार होता है।

(9) साङ्काश्यिका
साङ्काश्यक टाप्—'धन्वयोपधाद् वुञ्' से 'वुञ्', 'टाप्' हुआ, यहाँ अकार है, उससे पूर्व यकार है, 'टाप्' प्रत्यय भी परे है, परन्तु वह अकार आकार के स्थान पर नहीं हुआ है। अतः इकार आदेश का निषेध नहीं हुआ,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

साङ्काश्यिका—सु।

स्थान०—आकार के स्थान पर लक्षणान्तर से विहित अकार का कथन 'अनुवाद' कहलाता है। अनुवाद अर्थ में स्थानग्रहण स्थान के सम्बन्ध के ज्ञान के लिए है। 'आतः' इस पद के द्वारा 'अतः' यह विशेषित होता है।

यकपूर्वा०—**यकार** तथा **ककार** से **पूर्व** आकार के स्थान पर इकार होता है।

(10) अश्विका
अश्वा क—अकार के स्थान पर अकार हुआ,
अश्व क—अकार से पूर्व न तो यकार है तथा न ही ककार है, अतः इकार-निषेध नहीं हुआ,
अश्विका सु—टाप्।

(11) अश्वा
यहाँ 'टाप्' हुआ, इकार नहीं हुआ।

यक०—'यकपूर्वायाः' यहाँ स्त्रीलिङ्ग का निर्देश है। 'आतः' इस प्रकार स्त्रीप्रत्यय के ज्ञान के लिए यह है। इसलिए निम्नलिखित में नहीं होता है—

(12) शुभंयाः
शुभम् या विच्—विजुपेच्छन्दसि, आतो मनिन्क्वनिब्०,
शुभम् या—सर्वापहार लोप,
शुभंया टाप् सु—अनुस्वार।

(13) शुभंयिका
शुभम् या क—'क' प्रत्यय, ह्रस्व,
शुभंयिक टाप्—टाप्, इकार हुआ, यहाँ इत्त्व का विकल्प प्राप्त होता है, स्त्रीलिङ्ग का निर्देश होने से विकल्प की निवृत्ति होती है।

(14) भद्रंयाः
भद्रं याति—'शुभंयाः' की तरह।

(15) भद्रंयिका
'शुभंयिका' की तरह।

यकपूर्वा०—'य' तथा 'क' से पूर्व जो अकार, ऐसे अकार को धात्वन्त के विषय में इकार-निषेध होता है।

(16) सुनयिका
णी → नी:—'णो नः' से नकार,
नी अच्—'एरच्' से 'अच्' हुआ, आर्धधातुक संज्ञा, 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से गुण, अय्।
शोभनो नयोऽस्याः—समास हुआ,
सुनया क—प्रागिवात्कः, केऽणः,
सुनयक टाप्—इत्त्व-निषेध नहीं हुआ, सु।

(17) सुशयिका
शी अच्—शेष कार्य 'सुनयिका' की तरह।

(18) सुपाकिका
पच् घञ्—'पाक' बना, शेष कार्य पूर्ववत्।

(19) सुशोकिका
शुच् घञ्—पूर्ववत्।

(20) अशोकिका
अविद्यमानः शोकोऽस्याः—बहुव्रीहि,
अशोका कप्—शेषाद् विभाषा,
अशोक क आ—'आपोऽन्यतरस्याम्' से ह्रस्व,

(3444) भस्त्रैषाजाज्ञाद्वास्वा नञ्पूर्वाणामपि *47* (466)

एषामातः स्थाने योऽकारस्तस्य इत्त्वं न भवति उदीचामाचार्याणां मतेन। भस्त्रा–भस्त्रका, भस्त्रिका; अभस्त्रका, अभस्त्रिका। एषा–एषका, एषिका। अजा–अजका, अजिका; अनजका, अनजिका। ज्ञा–ज्ञका, ज्ञिका, अज्ञका, अज्ञिका। द्वा–द्वके, द्विके। स्वा–स्वका, स्विका; अस्वका, अस्विका। एषाद्वे नञ्पूर्वे न प्रयोजयतः, किं कारणम्? तत्र हि सति यदि साकच्काभ्यां नञ्समासः, अथापि कृते नञ्समासे पश्चादकच्–उभयथापि समासाद् या विभक्तिरुत्पद्यते तस्यां सत्यां त्यदाद्यत्वे सति टापा भवितव्यम्, सोऽन्तर्वर्त्तिन्या विभक्त्या सुबन्तात्पर इति इत्त्वस्य प्राप्तिरेव नास्ति। तेन अनेषका, अद्वके–इत्येव नित्यं भवितव्यम्। स्वशब्दस्तु ज्ञातिधनाख्यायां नञ्पूर्वोऽपि प्रयोजयति। 'भस्त्रा'–इत्ययमभाषितपुंस्कः, तस्य 'अभाषितपुंस्काच्च' (7.3.48) इत्येव सिद्धे यदिह ग्रहणं तदुपसर्जनार्थम्–अविद्यमाना भस्त्रा यस्या अभस्त्रा, साल्या अभस्त्रका, अभस्त्रिका। अत्रोपसर्जनह्रस्वत्वे कृते पुनर्बहुव्रीहौ कृते भाषितपुंस्काद् यष्टाबुत्पद्यते तस्य 'केऽणः' (7.4.13) इति यो ह्रस्वः, नासावभाषितपुंस्काद्विहितस्यातः स्थाने भवति। 'नञ्पूर्वाणामपि' इत्यपिशब्दादन्यपूर्वाणां केवलानां च विधिरयमिष्यते। निर्भस्त्रिका, निर्भस्त्रका। बहुभस्त्रिका, बहुभस्त्रका–इत्येवमनयोरपी-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ष्यते। अत्र 'नञ्पूर्वाणाम्' इति वचनमनुवाद एव मन्द-बुद्धिप्रतिपत्त्यर्थः।

अर्थ—उदीच्य आचार्यों के मत में भस्त्रा, एषा, अजा, ज्ञा, द्वा तथा स्वा—ये शब्द नञ् पूर्वक अथवा अनञ् पूर्वक हों व इनके आकार के स्थान पर अकार आदेश हुआ हो तो प्रत्यय में स्थित ककार से पूर्व उस आदेशभूत अकार के स्थान पर इकार आदेश नहीं होता है, 'आप्' प्रत्यय परे रहते; यदि वह 'आप्' किसी सुप् प्रत्यय से परे न हो।

उदा० (1) भस्त्रका
भस्त्रा क—पूर्ववत् 'क', 'केऽणः' से ह्रस्व,
भस्त्रक टाप्—इत्त्व का निषेध, सु।

(2) भस्त्रिका
भस्त्रक टाप्—पक्ष में इत्त्व हुआ।

(3) अभस्त्रका
न भस्त्रा—नञ्पूर्वक 'भस्त्रा' शब्द, कप् ह्रस्व,
अभस्त्रक टाप्—इकार-निषेध।

(4) अभस्त्रिका
पक्ष में इकार।

(5) एषका
एषा क—ह्रस्व,
एषक टाप्—इत्त्व नहीं हुआ।

(6) एषिका
इकार हुआ है।

(7) अजका
अजा क—प्रागिवात्कः, केऽणः,
अजक टाप्—इत्त्व नहीं हुआ।

(8) अजिका
इत्त्व हो गया है।

(9) अनजका
अनजक—बहुव्रीहि समास, कप्, ह्रस्व,
अनजक टाप्—इत्त्व नहीं हुआ।

(10) अनजिका
इत्त्व हो गया।

(11) ज्ञका
ज्ञक टाप्—इत्त्व नहीं हुआ।

(12) ज्ञिका
इत्त्व हुआ है।

(13) अज्ञका
नञ्, बहुव्रीहि, कप् आदि, इत्त्व-निषेध।

(14) अज्ञिका
इत्त्व हुआ है।

(15) द्वके
इत्त्व नहीं हुआ।

(16) द्विके
पक्ष में इकार।

(17) स्वका
स्वा क—ह्रस्व, इत्त्व-निषेध।

(18) स्विका
इत्त्व हुआ है।

(19) अस्वका
नञ्, पूर्ववत् इत्त्व अभाव।

(20) अस्विका
इत्त्व हुआ है।

एषा द्वे०—'एषा' तथा 'द्वा'—इनका नञ् पूर्वक प्रयोग नहीं होता है। क्या कारण है। यदि ऐसा हो तो अकच् पूर्वक इन शब्दों से नञ् समास हो अथवा नञ् समास करने पर पश्चात् अकच् हो—इन दोनों अवस्थाओं में समास से जो विभक्ति उत्पन्न होती है, उसके होने पर त्यदादिलक्षण अकार अन्तादेश होने पर टाप् होना चाहिए। वह अन्तर्वर्त्तिनी विभक्ति अर्थात् सुबन्त से पर होने से 'असुपः' इस प्रकार निषेध होने के कारण इत्त्व की प्राप्ति ही नहीं होती है। तब 'अनेषका' तथा 'अद्वके' आदि प्रयोग नित्य होते हैं।

स्वशब्द०—स्व शब्द तो जाति तथा धन के अर्थ में नञ् पूर्वक भी प्रयुक्त होता है।

भस्त्रा०—'भस्त्रा' यह अभाषितपुंस्क है। उसके 'अभाषित-पुंस्काच्च' से सिद्ध होने पर इसका जो ग्रहण है, वह उपसर्जन के लिए है। यथा—

अविद्यमाना भस्त्रा यस्याः सा—अभस्त्रा।
साल्पा अभस्त्रका, अभस्त्रिका।

अत्रोप०—तब उपसर्जनलक्षण ह्रस्व आदेश करने पर पुनः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बहुव्रीहि समास करने पर भाषितपुंस्क से जो 'टाप्' की उत्पत्ति होती है, उसका 'केऽणः' से ह्रस्व होता है। यह अभाषितपुंस्क से विहित आकार के स्थान पर नहीं होता है।

नञ्पूर्वा०—'नञ्पूर्वाणामपि' यहाँ 'अपि' शब्द के ग्रहण से अन्यपूर्वक तथा केवल शब्दों को भी सूत्रोक्त विधि होती है। यथा—

(21) निर्भस्त्रिका
इकार हो गया। निर्गता भस्त्रा यस्याः।

(22) निर्भस्त्रका
पक्ष में इकार-नहीं हुआ।

(23) बहुभस्त्रिका
बह्व्यो भस्त्रा यस्याः सा—बहुव्रीहि, कप्, ह्रस्व,
बहुभस्त्रक टाप्—इकार, सु।

(24) बहुभस्त्रका
पक्ष में इकार नहीं हुआ।

(25) सुभस्त्रिका*
शोभना भस्त्रा यस्याः सा—पूर्ववत् समास, कप् आदि।

(26) सुभस्त्रका*
पक्ष में इत्त्व नहीं हुआ।

अत्र०—यहाँ 'नञ्पूर्वाणाम्' यह वचन अनुवाद में ही मन्दबुद्धि पाठकों के बोध के लिए है।

(3445) अभाषितपुंस्काच्च *48* (467)

अभाषितपुंस्काद्विहितस्यातः स्थाने योऽकारस्तस्योदीचामाचार्याणां मतेन इकारादेशो न भवति। खट्वका, खट्विका। अखट्वका, अखट्विका। परमखट्वका, परमखट्विका। बहुव्रीहौ यदा कपि ह्रस्वः क्रियते तदा भवितव्यमनेन विधिना। अत्राप्यभाषितपुंस्काद्विहितस्यातः स्थाने भवत्यकार इति। यदा तु अविद्यमाना खट्वा अस्याः अखट्वा, अल्पा अखट्वा अखट्विकेति, तदा न भवति। तथा अतिक्रान्ता खट्वामतिखट्वा, अल्पा अतिखट्वा अतिखट्विका।

अर्थ—उदीच्य आचार्यों के मत में नञ् पूर्व में है तथा नञ् पूर्व में नहीं है—दोनों स्थितियों में अभाषितपुंस्क शब्द के आकार के स्थान में अकार आदेश हो तो प्रत्यय में स्थित ककार से पूर्व यथोक्त (आदेशभूत) अकार के स्थान पर इकार आदेश नहीं होता है, 'आप्' परे रहते; यदि वह 'आप्' किसी 'सुप्' से उत्तर न हो।

उदा० (1) खट्वका
खट्वा क—ह्रस्व,
खट्वक आ—टाप्, इत्त्वनिषेध, सु।

(2) खट्विका
पक्ष में इकार होता है।

(3) अखट्वका
न खट्वा—नञ् समास,
अखट्वा क—ह्रस्व, इत्त्व का अभाव।

(4) अखट्विका
पक्ष में इत्त्व होता है।

(5) परमखट्वका
परमा चाऽसौ खट्वा—'सन्महत्०' से समास,
परमखट्वा क—पूर्ववत् ह्रस्व, इत्त्व का निषेध।

(6) परमखट्विका
परमखट्वक टाप्—इत्त्व होता है।

बहुव्रीहौ०—बहुव्रीहि में जब 'कप्' होकर ह्रस्व किया जाता है, तब यह विधि होनी चाहिए। यहाँ भी अभाषितपुंस्क से विहित आकार के स्थान पर अकार होता है।

यदा तु०—जब निम्नलिखित विग्रह होता है, तब नहीं होता है। यथा—
अविद्यमाना खट्वाऽस्याः अखट्वा
अल्पाऽखट्वा—अखट्विका।
अतिक्रान्ता खट्वाम्—अतिखट्वा,
अल्पाऽतिखट्वा—अतिखट्विका।

(3446) आदाचार्याणाम् *49* (468)

अभाषितपुंस्कादातः स्थाने योऽकारस्तस्याचार्याणामाकारादेशो भवति। खट्वाका, अखट्वाका परमखट्वाका।

अर्थ—नञ् पूर्व में है तथा नञ् पूर्व में नहीं है—दोनों स्थितियों में यदि अभाषितपुंस्क शब्द के आकार के स्थान पर अकार आदेश हो तो ककार से पूर्व स्थित उस (आदेशभूत) अकार के स्थान

* एतौ प्रयोगौ काशिकायां न प्रदर्शितौ—ईश्वरः।
द्र०—न्यास 7.3.47 आदिशब्देन सुभस्त्रका, सुभस्त्रिका।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पर आकार आदेश होता है, 'आप्' परे रहते; यदि वह 'आप्' किसी सुप् प्रत्यय से उत्तर न हो। यह उदीच्य आचार्यों के मत में होता है।

उदा० (1) खट्वाका
खट्वा क—ह्रस्व,
खट्वक टाप्—आकार आदेश, सु।

(2) अखट्वाका
न खट्वा—इस विग्रह की दशा में पूर्ववत् सभी कार्य।

(3) परमखट्वाका
परमा चाऽसौ खट्वा—बहुव्रीहि, शेष पूर्ववत्।

(3447) ठस्येकः *50* (1170)

अङ्गस्य निमित्तं यष्ठः, कश्चाङ्गस्य निमित्तम्? प्रत्ययः, तस्य प्रत्ययठस्य इक इत्ययमादेशो भवति। 'प्राग्वहतेष्ठक्' (4.4.1) आक्षिकः, शालाकिकः। 'लवणाट्ठञ्' (4.4.52), लावणिकः। ठगादिषु यदि वर्णमात्रं प्रत्ययः, उच्चारणार्थोऽकारः, तदा इहाप्यकार उच्चारणार्थः, वर्णमात्रं तु स्थानित्वेनोपादीयते। सङ्घातग्रहणे तु प्रत्ययेऽत्रापि सङ्घातग्रहणमेव। तत्र 'कणेष्ठः' (उणा० 108); कण्ठः–इत्येवमादीनामुणादीनाम् 'उणादयो बहुलम्' (3.3.1) इति न भवति। मथितं पण्यमस्य माथितिकः–इत्यत्र तु 'यस्येति च' (6.4.148) इति लोपे कृते 'इसुसुक्तान्तात्कः' (7.3.51) इति स्थानिवद्भावादिकस्य कादेशः प्राप्नोति; 'सन्निपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्य' (व्या०प०) इति न भवति। 'यस्येति च' (6.4.148) इति लोपस्य स्थानिवद्भावाद्वा। पूर्वस्मादपि हि विधौ स्थानिवद्भावः।

अर्थ—अङ्ग का निमित्त जो 'ठ', इस प्रत्यय के ठकार के स्थान पर 'इक' आदेश होता है।

'इक' अदन्त आदेश है।

उदा० (1) आक्षिकः
अक्ष ठक्—'प्राग्वहतेष्ठक्' से 'ठक्',
आक्ष् इक सु—ठस्येकः।

(2) शालाकिकः
शलाका—पूर्ववत्।

(3) लावणिकः
लवण ठञ्—लवणाट्ठञ्,
लावणिक सु—ठस्येकः, आदिवृद्धि।

ठगादि०—ठक्, ठञ् तथा ठन् के अन्त्य हल् (क्रमशः ककार, ञकार तथा नकार) की इत्संज्ञा निर्विवाद है; परन्तु ठकारस्थ अकार के विषय में दो मत हैं—

(क) वर्ण पक्ष—ठक् आदि में यदि वर्णमात्र (अर्थात् 'ठ्') को प्रत्यय स्वीकार करते हैं तो, अकार उच्चारणार्थ मानना चाहिए। तब यहाँ पर भी ('ठस्य' में ठकारोत्तरवर्त्ती) अकार उच्चारणार्थ मानना चाहिए। वर्णमात्र का स्थानिवद् होने से उपादान होता है।

(ख) संघातपक्ष—ठक् आदि में यदि संघात (अर्थात् 'ठ') का ग्रहण किया जाता है तो यहाँ (अर्थात् 'इक' आदेश के विषय में) भी संघात का ग्रहण होता है। तब 'इक' आदेश 'ठ् + अ' इस समग्र संघात के स्थान पर होता है।

कणेष्ठः—कण्ठः—इत्यादि उणादियों में 'उणादयो बहुलम्' से नहीं होता है।

मथितं०—मथितं पण्यम् अस्य—माथितिकः। यहाँ 'यस्येति च' से लोप कर देने पर 'इसुसुक्तान्तात्कः' से स्थानिवद्भाव होने से इक के स्थान पर 'क' आदेश प्राप्त होता है। 'सन्निपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्य' से नहीं होता है। 'यस्येति च' से लोप के स्थानिवद्भाव होने से होता है। पूर्वस्मात् अर्थात् पूर्व से उत्तर की विधि में स्थानिवद्भाव होता है।

(3448) इसुसुक्तान्तात् कः *51* (1221)

इस्, उस्–इत्येवमन्तानामुगन्तानां तान्तानां चाङ्गानामुत्तरस्य ठस्य 'क' इत्ययमादेशो भवति। इस्–सार्पिष्कः। उस्–धानुष्कः। याजुष्कः। उक्–नैषादकर्षुकः। शाबरजम्बुकः। मातृकम्। पैतृकम्। तान्तात्–औदश्वित्कः। शाकृत्कः। याकृत्कः। इसुसोः प्रतिपदोक्तयोर्ग्रहणादिह न भवति–आशिषा चरति आशिषिकः। उषा चरति औषिकः। *दोष उपसंख्यानम्*। दोर्भ्यां चरति दौष्कः।

अर्थ—इस् तथा उस् है अन्त में जिसके, उक् प्रत्याहार है अन्त में जिसके तथा तकार है अन्त में जिसके—ऐसे अङ्ग से उत्तर 'ठ्' के स्थान पर 'क' आदेश होता है।

उदा० (क) इस्—
(1) सार्पिष्कः

सर्पिष् ठक्—'तदस्य पण्यम्' से 'ठक्', 'सर्पिष्' में 'इस्' औणादिक प्रत्यय का है, षत्व के असिद्ध होने से यह 'इस्' ही है,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सार्पिष् क—आदिवृद्धि, 'क' आदेश, सु। 'इसुसोः सामर्थ्ये' से षत्व हुआ है।

(ख) उस्—

(2) धानुष्कः
धनुष् ठक्—पूर्ववत्। धनुः प्रहरणम् अस्य।

(3) याजुष्कः
यजुष् ठक्—पूर्ववत्।

(ग) उक्—

(4) नैषादकर्षुकः
निषादकर्ष्यां जातः—ओर्देशे ठञ्,
निषादकर्षु क सु—केऽणः।

(5) शाम्बरजम्बुकः (पूर्ववत्)।

(6) मातृकम्
मातुरागतम्—ऋतष्ठञ्,
मातृ क सु—इसुसुक्ता०।

(घ) तकारान्तात्—

(7) औदश्वित्कः
उदश्वित् ठक्—उदश्वितोऽन्यतरस्याम्,
औदश्वित् क—आदिवृद्धि, 'क' आदेश, सु।

(8) शाकृत्कः
शकृता संसृष्टे—ठक्,
शाकृत् क सु—पूर्ववत्।

(9) याकृत्कः
यकृत् ठक्—पूर्ववत्।

इसुसोः०—इस् तथा उस्—इनका प्रतिपदोक्त का ग्रहण होता है; लाक्षणिक इस् तथा उस का ग्रहण नहीं होता है।

(10) आशिषिकः
आशिषा चरति—यहाँ 'इस्' लाक्षिणक[1] है, अतः 'इसुसुक्ता०' से 'क' नहीं हुआ,
आशिष् इक—सु। 'शासिवसिघसीनां०' से षत्व होता है।

(11) औषिकः
उषा[2] चरति—सभी कार्य पूर्ववत्।

1. आ शास् क्विप्—इस दशा में 'शास इदङ्हलोः' से 'इदङ्' तथा 'शासः क्वावुपसङ्ख्यानम्' से इत्त्व होता है।

2. वस् क्विप्—सर्वापहारलोप, 'वचिस्वपियजा०' से सम्प्रसारण, 'सम्प्रसारणाच्च' से पूर्वरूप करके 'उस्' रूप बनता है, पूर्ववत् 'शासिवसिघसी०' से षत्व होता है।

दोष०—'दोष्' से पर 'ठ' को 'क' होता है।

(12) दौष्कः
दोर्भ्यां चरति—ठक्, क, आदिवृद्धि।

(3449) चजोः कु घिण्ण्यतोः *52* (2863)

चकारजकारयोः कवर्गादेशो भवति घिति ण्यति च प्रत्यये परतः। घिति—पाकः। त्यागः। रागः। ण्यति—पाक्यम्। वाक्यम्। रेक्यम्।

अर्थ—चकार तथा जकार के स्थान पर कवर्ग आदेश होता है, घित् तथा ण्यत् के परे रहते।

चकार में अकार उच्चारणार्थ है। घित् = जिसका घकार इत् है।

ध्यातव्य है कि यहाँ दो निमित्त (घित् तथा ण्यत्) हैं तथा दो ही कार्यी (चकार, जकार) हैं। तदपि यथासंख्य नियम प्रवृत्त नहीं होता है।[1]

उदा० (क) घिति—

(1) पाकः
पच् घञ्—भाव में प्रत्यय, लशक्वतद्धिते, हलन्त्यम्,
पाच् अ—अत उपधायाः,
पाक् अ—कुत्व, 'स्थानेऽन्तरतमः' से ककार, सु।

(2) त्यागः
त्यज् घञ्—पूर्ववत्,
त्याज् अ—पूर्ववत्,
त्याग् अ सु—'स्थानेऽन्तरतमः' से गकार।

(3) रागः
रञ्ज् घञ्—अनुनासिकलोप,
राग् अ सु—उपधावृद्धि, गकार।

(ख) ण्यति—

(4) पाक्यम्
पच् ण्यत्—ऋहलोर्ण्यत्, चुटू, हलन्त्यम्,
पाच् य—अत उपधायाः,
पाक् य सु—कुत्व, विभक्तिकार्य।

(5) वाक्यम्
वच् ण्यत्—पूर्ववत्।

1. न्यास 7.2.52 यथासङ्ख्यमिह न भवति।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(6) रेक्यम्
रिच् य—ण्यत्, अनुबन्धलोप,
रेक् य सु—पुगन्तलघूपधस्य च, कुत्व।

(3450) न्यङ्क्वादीनां च *53* (2864)

'न्यङ्कु'-इत्येवमादीनां कवर्गादेशो भवति। न्यङ्कुः-'नावञ्चेः' (उणा० 17) इति उप्रत्ययः। मद्गुः-'मिमस्जिभ्य उः' (उणा० 7) इति मस्जेरुप्रत्ययः। भृगुः-'प्रथिम्रदिभ्रस्जां सम्प्रसारणं सलोपश्च' (उणा० 28) इत्युप्रत्ययः। दूरेपाकः। फलेपाकः। दूरे पच्यते स्वयमेव, फले पच्यते स्वयमेव-पचाद्यच्, निपातनाद्वृद्धिः, 'तत्पुरुषे कृति बहुलम्' (6.3.14) इति सप्तम्या अलुक्। क्षणेपाकः-इत्यपि हि केचित् पठन्ति। दूरेपाकाः, फलेपाकाः-इति टाबन्तमपरेऽधीयते। उकारान्तावपरे-दूरेपाकुः, फलेपाकुरिति। तेषामुप्रत्ययो निपातनादेव। तक्रम्, वक्रमिति-तञ्चतेः, वञ्चतेश्च 'स्फायितञ्चिवञ्चि' (उणा० 108) इत्यादिना सूत्रेण रक्। व्यतिषङ्गः। व्यतिषजतीति पचाद्यच् (3.1. 134)। अनुषङ्गः। अवसर्गः। उपसर्गः। (मेघः)। श्वपाकः, मांसपाकः, कपोतपाकः, उलूकपाक इति-कर्मोपपदादण् (3।2।1) प्रत्ययः। संज्ञायाम्-मेघः। अर्घः। अवदाघः। निदाघः। अर्हतेर्घञ्-अर्घः। अवपूर्वस्य निपूर्वस्य च दहेः-अवदाघः। निदाघः। संज्ञाया अन्यत्र-अर्हः। अवदाहः। निदाहः। न्यग्रोधः, वीरुत्-इत्यत्र न्यक्पूर्वस्य रुहेः पचाद्यचि विपूर्वस्य क्विपि धकारो विधीयते। न्यग्रोहयतीति न्यग्रोधः। विरोहयतीति वीरुत्।

अर्थ—न्यङ्कु आदि शब्दों के चकार व जकार के स्थान पर कवर्ग आदेश होता है।

उदा० (1) न्यङ्कुः
नि अञ्च् उ—'नावञ्चेः' से 'उ',
नि अन् क् उ—कुत्व,
नि अङ् कु—अनुस्वार, परसवर्ण,
न्यङ्कु सु—इको यणचि।

(2) मद्गुः
मस्ज् उ—मिमस्जिभ्य उः,
मद्ग् उ—झलां जश् झशि, कुत्व, सु।

(3) भृगुः
भ्रस्ज् उ—'प्रथिम्रदिभ्रस्जां० से 'उ',
भृज् उ—सम्प्रसारण, सकारलोप,
भृग् उ सु—कुत्व।

(4) दूरेपाकः
कर्मकर्त्ता में पचादिलक्षण 'अच्' होता है। निपातन से वृद्धि। 'तत्पुरुषे कृति बहुलम्' से विभक्ति का अलुक्।

(5) फलेपाकः (पूर्ववत्)।
(6) क्षणेपाकः (पूर्ववत्)।

दूरेपा०—कुछ विद्वान दूरेपाकाः, फलेपाकाः—इस प्रकार टाप् प्रत्ययान्त पाठ भी मानते हैं। अन्य विद्वान् उकारान्त पाठ मानते हैं।

(7) दूरेपाकुः, (8) फलेपाकुः।

(9) तक्रम्
तञ्च् रक्—'स्फायितञ्चिवञ्चि०' से 'रक्',
तक् र सु—कुत्व।

(10) वक्रम्
वञ्च् रक्—पूर्ववत्।

(11) व्यतिषङ्गः
व्यतिषजति—पचादिलक्षण 'अच्'।

(12) अनुषङ्गः
अनु षञ्ज् अच्—पूर्ववत्।

(13) अवसर्गः
अव सृज् अच्—पचादिलक्षण 'अच्',
अव सर्ग् अ—लघूपधगुण, कुत्व।

(14) उपसर्गः
उप सृज् अच्—पूर्ववत्।

(15) मेघः
मिह् अच्—लघूपधगुण, कुत्व सु।

(16) श्वपाकः
श्वपच् अण्—पूर्ववत्। 'कर्मण्यण्' से 'अण्'।

(17) मांसपाकः (पूर्ववत्)।
(18) कपोतपाकः (पूर्ववत्)।
(19) उलूकपाकः
पूर्ववत् 'अण्'।

(20) मेघः, (21) निदाघः, (22) अवदाघः
'दह्' धातु से 'निदाघ' तथा 'अवदाघ' बनते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(23) अर्घः
अर्ह् घञ्—पूर्ववत् कुत्व।

संज्ञा अर्थ गम्यमान हो तो ये रूप होते हैं। संज्ञा से अतिरिक्त, (24) अर्हः, (25) अवदाहः, (26) निदाहः रूप बनते हैं।

(27) न्यग्रोधः
न्यक् रुह् अच्—हकार को धकार होता है।

(28) वीरुत्
वि रुह् क्विप्—सर्वापहार लोप,
वि रुध्—हकार को धकार, सु, लोप, पदसंज्ञा,
विरुत्—झलां जशोऽन्ते, वाऽवसाने।

(3451) हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु *54* (358)

हन्तेर्हकारस्य कवर्गादेशो भवति ञिति, णिति प्रत्यये परतो नकारे च। घातयति। घातकः। साधुघाती। धातङ्घातम्। घातो वर्तते। नकारे-घ्नन्ति। घ्नन्तु। अघ्नन्। ह इति किम्? अलोऽन्त्यस्य मा भूत्। हन्तेरिति किम्? प्रहारः। प्रहारकः। ञ्णित्प्रत्ययो हन्तेर्विशेषणम्। नकारो हकारस्य-नकारे अनन्तरस्य हन्तिहकारस्येति। तच्चानन्तर्यं श्रुतिकृतं सन्निपातकृतमाश्रीयते। स्थानिवद्भाव-शास्त्रकृतं तु यदनानन्तर्यं तदविघातकम्; वचनसामर्थ्यात्। यद्यपि सर्वैरेव ञ्णिन्नैर्हन्तिहकारो विशिष्यते, तथापि 'येन नाव्यवधानं तेन व्यवहितेऽपि वचनप्रामाण्यात्' (व्या०प०) इति ञ्णिति धात्ववयवेन व्यवहितेऽपि सति भवति। इह तु न भवति-हननमिच्छति हननीयति, हननीयतेर्ण्वुल्, हननीयक इति।

अर्थ—'हन्' अङ्ग के हकार के स्थान पर कवर्ग आदेश होता है; ञित्, णित् तथा नकार परे रहते।

'स्थानेऽन्तरतमः' से हकार के स्थान पर घकार होता है।

उदा० (1) घातः
हन् घञ्—अनुबन्धलोप,
हान् अ—अत उपधायाः,
हात् अ—हनस्तो०,
घात सु—घकार।

(2) घातयति
हन् णिच्—अनुबन्धलोप,
हात्—पूर्ववत् उपधावृद्धि, तकार,
घाति—घकार, धातुसंज्ञा, शप् आदि,
घाते शप् ति—सार्वधातुकार्धधा०, अय्।

(3) घातकः
हन् ण्वुल्—अनुबन्धलोप, शेष पूर्ववत्,
घात् अक सु—युवोरनाकौ।

(4) साधुघाती
साधु हन् णिनि—पूर्ववत् उपधावृद्धि, तकार, घकार,
साधुघतिन् सु—विभक्तिकार्य।

(5) घातङ्घातम्
हन् णमुल्—आभीक्ष्ण्ये णमुल्, अनुबन्धलोप,
घात् अम्—घत्व, तकार, उपधावृद्धि,
घातम् घातम्—द्विर्वचन, अनुस्वार, परसवर्ण।

(ग) नकारे—
(6) घ्नन्ति
हन् झि—'लट्, झोऽन्तः,
ह् न् अन्ति— 'गमहन०' से उपधालोप,
घ् न् अन्ति—घकार।

(7) घ्नन्तु
हन् झि—सभी कार्य पूर्ववत्, एरुः।

(8) अघ्नन्
हन् झि—लङ्, 'इतश्च' से इकारलोप, शेष कार्य पूर्ववत्, अट् आगम।

ह इति०—हकार के स्थान पर ही कुत्व होता है। तब अलोऽन्त्य परिभाषा से अन्त्य अल् (न्) को कुत्व नहीं होता।

हन्ते०—हन् अङ्ग के हकार को कुत्व होता है।

(9) प्रहारः
प्र ह घञ्—अनुबन्धलोप, ञित् प्रत्यय परे है, 'हन्' अङ्ग का हकार न होने से कुत्व नहीं होता है, 'अचो ञ्णिति' से वृद्धि, उरण् रपरः,
प्रहार् अ—सु।

(10) प्रहारकः
प्र ह ण्वुल्—अनुबन्धलोप, युवोरनाकौ,
प्र हार् अक—'हन्' का हकार न होने से कुत्व नहीं हुआ,
प्रहारक—सु।

ञ्णित्०—'ञ्णित् प्रत्ययः' यह 'हन्' का विशेषण है। नकार हकार का विशेषण है अर्थात् अव्यवहित नकार परे रहते 'हन्' के हकार के स्थान पर कुत्व होता है। यह अव्यवहितता श्रुतिकृत तथा सन्निपातकृत ही मानी जाती है। वचनसामर्थ्य से शास्त्र

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्थानिवद्भाव कृत जो अव्यवहितता होती है, वह अविघातक होती है।

यद्यपि०—यद्यपि 'ञ्णिन्नैः' इस समग्र पद के द्वारा हन् धातु का हकार विशेषित होता है। तथापि 'येन नाऽव्यवधानं तेन व्यवहितेऽपि०' से ञित् तथा णित् प्रत्यय के परे रहते तथा धातु के अवयव (अकार, नकार) से व्यवहित होने पर भी कुत्व हो जाता है। निम्नलिखित में कुत्व नहीं होता है—

(11) हननीयकः
हननम् इच्छति—'सुप आत्मनः क्यच्' से 'क्यच्',
हनन य—अनुबन्धलोप,
हननीय—धातुसंज्ञा, 'धातोः' के अधिकार में,
हननीय ण्वुल्—ण्वुल्तृचौ, अनुबन्धलोप,
हननीय अक सु—हन् अङ्ग के हकार को कुत्व नहीं हुआ।

(3452) अभ्यासाच्च *55* (2430)

अभ्यासादुत्तरस्य हन्तिहकारस्य कवगदिशो भवति। जिघांसति। जङ्घन्यते। अहं जघन। अभ्यासनिमित्ते प्रत्यये हन्तेरङ्गस्य योऽभ्यासस्तस्मादेवैतत् कुत्वम्। इह न भवति–हननीयितुमिच्छति जिहननीयिषति।

अर्थ—अभ्यास से उत्तर 'हन्' अङ्ग के हकार के स्थान पर कुत्व होता है।

उदा० (1) जिघांसति
हन् सन्—धातोः कर्मणः समानकर्तृ०,
हन् हन् स—सन्यङोः, पूर्वोऽभ्यासः,
ह हन् स—हलादिः शेषः,
ज हन् स—कुहोश्चुः, अभ्यासे चर्च,
जि हन् स—सन्वल्लघुनि०, सन्यतः,
जिघान् स—अभ्यासाच्च, 'अज्झनगमां' से दीर्घ,
जिघांस—नश्चाऽपदान्तस्य झलि, धातुसंज्ञा,
जिघांस शप् ति—अतो गुणे।

(2) जङ्घन्यते
हन् यङ्—धातोरेकाचो हलादे०,
ज हन् य—सन्यङोः, पूर्वोऽभ्यासः, हलादिः शेषः, कुहोश्चुः, अभ्यासे चर्च,
ज न् हन् य—नुगतोऽनुनासि०, अभ्यासाच्च,
जङ्घन्य—नश्चाऽपदा०, अनुस्वारस्य ययि०, धातुसंज्ञा,
जङ्घन्य शप् त—अनुदात्तङित आत्मनेपदम्, अतो गुणे।

(3) जघन अहम्
हन् णल्—लिट्, उ०पु० एकवचन, परस्मैपदानां णलतुसु०, चुटू, हलन्त्यम्,
ज ह न् अ—द्वित्व, अभ्यासकार्य,
जघन—णलुत्तमो वा, अणित् पक्ष।

अभ्यास०—अभ्यास का निमित्त जो प्रत्यय, उसके परे रहते हन् अङ्ग का जो अभ्यास, उससे उत्तर हन् के हकार को कुत्व होता है। अतः निम्नलिखित में कुत्व नहीं होता—

(4) जिहननीयिषति
हननम् आत्मन इच्छति—'सुप आत्मनः०'
हनन क्यच्—अनुबन्धलोप,
हननीय—धातुसंज्ञा,
हननीयितुम् इच्छति—धातोः कर्मणः समा०,
हननीय सन्—इट्, 'सन्यङोः' से द्वित्व,
जिहननीयिष—अभ्यासकार्य, कुहोश्चुः, अभ्यासे चर्च, सन्वल्लघुनि०, सन्यतः, यहाँ अभ्यास का निमित्त 'सन्' है, उसके परे रहते 'हन्' अङ्ग नहीं है, अपितु 'हननीय' शब्द है। जिसके परे रहते हन् अङ्ग है, वह 'ल्युट्' प्रत्यय है, जो अभ्यास का निमित्त नहीं है; अतः अभ्यास (जि) से उत्तर हकार को कुत्व नहीं हुआ है।
जिहननीयिषति—धातुसंज्ञा, शप्, अतो गुणे।

(3453) हेरचङि *56* (2531)

हिनोतेर्हकारस्याभ्यासादुत्तरस्य कवगदिशो भवति अचङि। प्रजिघीषति। प्रजेघीयते। प्रजिघाय। अचङीति किम्? प्राजीहयद् दूतम्। अचङीति शक्यमकर्तुम्। कथम्? चङ्यभ्यासनिमित्ते णौ हिनोतिरङ्गं भवति, तत्राभ्यासनिमित्ते प्रत्यये हेरङ्गस्येति विज्ञायमाने प्राप्तिरेव नास्ति? तत्क्रियते ज्ञापकार्थम्। एतज्ज्ञाप्यते–'हेरचङि' इति चङोऽन्यत्र हेर्ण्यधिकस्यापि कुत्वं भवतीति। तेन प्रजिघाययिषतीति सिद्धं भवति।

अर्थ—अभ्यास से उत्तर 'हि' अङ्ग के हकार के स्थान पर कुत्व होता है, यदि चङ् परे न हो।

उदा० (1) प्रजिघीषति
हि सन्—धातोः कर्मणः समान०,
हि स—'एकाच उपदेशेऽनुदा०' से इट् का निषेध, 'इको झल्' से सन् किद्वत्, 'सार्वधातुकार्धधातु०' से गुण प्राप्त, 'क्ङिति च' से गुण का निषेध,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ही स—'अज्झनगमां सनि' से दीर्घादेश,
जि ही स—सन्यङोः, ह्रस्वः, कुहोश्चुः अभ्यासे चर्च,
जिघीष—कुत्व, आदेशप्रत्यययोः, धातुसंज्ञा,
प्र जिघीष शप् ति—अतो गुणे।

(2) प्रजेघीयते
हि यङ्—
ही य—अकृत् सार्वधातु०,
हि ही य—सन्यङोः, पूर्वोऽभ्यासः, ह्रस्वः,
जि ही य—कुहोश्चुः, अभ्यासे चर्च,
जेघीय—गुणो यङ्लुकोः, हेरचङि, धातुसंज्ञा,
प्र जेघीयते—अनुदात्तङित आत्मने०, शप्।

(3) प्रजिघाय
हि णल्—लिट्, तिप्,
जि हाय् अ—अचो ञ्णिति, एचोऽयवायावः, द्वित्व, रूपातिदेश, कुहोश्चुः, अभ्यासे चर्च,
प्र जिघाय—हेरचङि।

अचङी०—चङ् परे हो तो कुत्व नहीं होता है।

(4) प्राजीहयद्
हि णिच्—अनुबन्धलोप, वृद्धि, आय्,
हायि—धातुसंज्ञा,
हाय् इ चङ् त्—लुङ्, 'णिश्री०' से चङ्,
हय् अ त्—णेरनिटि, णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः,
हि हयत्—चङि, णौ कृतं स्थानिवद्भवति,
जिहयत्—कुहोश्चुः, अभ्यासे चर्च, सन्वल्लघु०,
प्र अ जीहयत्—दीर्घो लघोः, अट्।

अचङी०—'अचङि' का ग्रहण व्यर्थ है। क्यों ? 'चङ्' अभ्यास का निमित्त है, 'हि' अङ्ग से 'णि' परे है। चूँकि अभ्यास के निमित्त प्रत्यय के परे रहते ही अभ्यास से उत्तर 'हि' अङ्ग को कुत्व होता है; अतः यहाँ कुत्व की प्राप्ति ही नहीं। इसलिये 'अचङि' पद व्यर्थ होकर ज्ञापित होता है कि 'हेरचङि' से 'चङ्' से अतिरिक्त स्थल पर भी 'हि' अङ्ग को कुत्व होता है। तब निम्नलिखित में कुत्व हो जाता है—

(5) प्रजिघायिषति
हि णिच्—चुटू, हलन्त्यम्,
हायि—धातुसंज्ञा,
हायि सन्—धातोः कर्मणः समान०,
हायि इट् स—आर्धधातुकस्येड् वलादेः, गुण, अय् आदेश,
जिहायिष—सन्यङोः, अभ्यास कार्य, कुत्व, धातुसंज्ञा,
प्रजिघायिषति—शप्, अतो गुणे।

'जिहायिष' इस दशा में अभ्यास का निमित्त 'सन्' प्रत्यय है, 'हि' अङ्ग से उत्तर सन् नहीं है; अपितु 'णि' प्रत्यय है, जो अभ्यास का निमित्त नहीं है। अतः 'हि' अङ्ग को कुत्व प्राप्त नहीं था। ज्ञापक से कुत्व होता है।

(3454) सन्लिटोर्जेः *57* (2331)

सनि लिटि च प्रत्यये जेरङ्गस्य योऽभ्यासस्तस्मादुत्तरस्य कवर्गादेशो भवति। जिगीषति। जिगाय। सन्लिटोरिति किम्? जेजीयते। जिनातेः सम्प्रसारणे कृते यद्यपि जिर्भवति, तथापि लाक्षणिकत्वात्तस्य ग्रहणं न भवति। जिज्यतुः, जिज्युः-इत्येव भवति।

अर्थ—अभ्यास से उत्तर 'जि' अङ्ग के स्थान पर कवर्ग आदेश होता है, सन् तथा लिट् प्रत्यय के परे रहते।

उदा० (1) जिगीषति
जि सन्—धातोः कर्मणः०,
जी स—अज्झनगमां सनि,
जि जी स—सन्यङोः, पूर्वोऽभ्यासः, ह्रस्वः,
जिगीष—कुत्व, आदेशप्रत्यययोः, धातुसंज्ञा,
जिगीष शप् ति—शप्, अतो गुणे।

(2) जिगाय
जि णल्—लिट्,
जै अ—अचो ञ्णिति,
जाय् अ—एचोऽयवायावः,
जि जाय् अ—द्वित्व, रूपातिदेश,
जि गाय् अ—कुत्व।

सन्लिटो०—सन् तथा लिट् परे रहते 'जि' अङ्ग को कुत्व होता है।

(3) जेजीयते
जि यङ्—'सन्यङोः' से द्वित्व,
जि जि य—पूर्वोऽभ्यासः,
जे जीय—गुणोः यङ्लुकोः, धातुसंज्ञा, 'जि' अङ्ग को कुत्व नहीं हुआ,
जेजीयते—शप्, अतो गुणे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जिनाते०—लक्षणप्रतिपदोक्त परिभाषा के द्वारा 'जि जये' का ही यहाँ ग्रहण होता है; क्रैयादिक 'जि' का ग्रहण नहीं होता। सम्प्रसारण करने पर 'जि' बनता है, उसके लाक्षणिक होने से यहाँ उसका ग्रहण नहीं होता है।

(4) जिज्यतुः
जि अतुस्—लिट्, प्र०पु० द्विवचन,
जि ज्यतुस्—द्वित्व, 'एरनेकाचो०' से यण्।

(5) जिज्युः
जि उस्—लिट्, प्र०पु० बहुवचन, शेष पूर्ववत्।

(3455) विभाषा चेः *58* (2525)

चिनोतेरङ्गस्य सन्लिटोरभ्यासादुत्तरस्य विभाषा कवर्गादेशो भवति। चिचीषति, चिकीषति। चिकाय, चिचाय। 'सन्लिटोः' इत्येव-चेचीयते।

अर्थ—अभ्यास से उत्तर 'चि' अङ्ग को कवर्ग आदेश विकल्प से होता है, सन् तथा लिट् परे रहते।

उदा० (1) चिचीषति
चि सन्—'अज्झनगमां०' से दीर्घ,
ची स—सन्यङोः,
चिचीष—ह्रस्वः, षत्व, धातुसंज्ञा,
चिचीषति—शप्, अतो गुणे।

(2) चिकीषति
अभ्यास से उत्तर 'चि' अङ्ग को कुत्व हो गया है।

(3) चिचाय
चि णल्—चुटू, हलन्त्यम्, अचो ञ्णिति, आय् आदेश,
चाय् अ—द्वित्व, रूपातिदेश,
चिचाय् अ—रूप बना।

(4) चिकाय
पक्ष में 'चि' अङ्ग को कुत्व हो गया है।

सन्लि०—सन् तथा लिट् के परे रहते ही 'चि' को कुत्व होता है।

(5) चेचीयते
चि यङ्—प्रत्यय,
चिचिय—द्वित्व,
चेचीय—गुणो यङ्लुकोः, अकृत् सार्वधातु०, धातुसंज्ञा, 'चि' अङ्ग को कुत्व नहीं हुआ,
चेचीयते—'त', शप्, अतो गुणे।

'चि' धातु की रूपमाला (लिट् लकार) नीचे दिखाई जा रही है—

परस्मैपद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	चिकाय	चिक्युतुः	चिक्युः
	चिचाय	चिच्यतुः	चिच्युः
मध्यम पुरुष	चिकयिथ	चिक्यथुः	चिक्य
	चिकेथ	चिच्यथुः	चिच्य
	चिचयिथ		
	चिचेथ		
उत्तम पुरुष	चिकाय, चिकय	चिक्यिव	चिक्यिम
	चिचाय, चिचय	चिच्यिव	चिच्यिम

आत्मनेपद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	चिक्ये	चिक्याते	चिक्यिरे
	चिच्ये	चिच्याते	चिच्यिरे
मध्यम पुरुष	चिक्यिषे	चिक्याथे	चिक्यिढ्वे
	चिच्यिषे	चिच्याथे	चिच्यिढ्वे
			चिक्यिध्वे
			चिच्यिध्वे
उत्तम पुरुष	चिक्ये	चिक्यिवहे	चिक्यिमहे
	चिच्ये	चिच्यिवहे	चिच्यिमहे

(3456) न क्वादेः *59* (2875)

कवगर्दिर्घातोश्चजोः कवगर्दिशो न भवति। कूजो। वर्त्तते खर्जः। गर्जः। कूज्यं भवता, खर्ज्यं गर्ज्यं भवता।

अर्थ—कवर्ग है आदि में जिसके, ऐसे अङ्ग के चकार व जकार के स्थान पर कवर्ग नहीं होता है।

उदा० (1) कूजः
कूज् अ—विभक्तिकार्य।

(2) खर्जः
खर्ज् अ सु—पूर्ववत्।

(3) गर्जः
गर्ज् अ सु—पूर्ववत्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(4) कूज्यम्
कूज् य सु—विभक्तिकार्य।
(5) खर्ज्यम् (पूर्ववत्)।
(6) गर्ज्यम् (पूर्ववत्)।
सर्वत्र 'चजोः कु घिण्ण्यतोः' से कवर्ग प्राप्त था।

(3457) अजिव्रज्योश्च *60* (2876)

अजि, व्रजि-इत्येतयोश्च कवर्गादिशो न भवति। समाजः। उदाजः। व्रजि-परिव्राजः। परिव्राज्यम्। 'अजेस्तु'-'अजेर्व्यघञपोः' (2.4.56) इति वीभावस्य विधानात् ण्यति नास्त्युदाहरणम्।

अर्थ—अज् तथा व्रज् अङ्गों के चकार व जकार के स्थान पर कवर्ग आदेश नहीं होता है।

उदा० (1) समाजः
सम् अज् घञ्—'समुदोरजः पशुषु' से 'घञ्', 'हलश्च'
सम् आज् अ—पूर्ववत् प्राप्त कुत्व का निषेध,
समाज सु—विभक्तिकार्य।

(2) उदाजः
उद् अज् घञ्—पूर्ववत्।

(3) परिव्राजः
परिव्रज् घञ्—पूर्ववत्।

(4) परिव्राज्यम्
परि व्रज् ण्यत्—कुत्व का निषेध।

अजेस्तु०—'अजेर्व्यघञपोः' से 'वी' आदेश का विधान होने से 'ण्यत्' परे रहते उदाहरण प्राप्त नहीं होता है।

(3458) भुजन्युब्जौ पाण्युपतापयोः *61* (2877)

भुज, न्युब्ज-इत्येतौ शब्दौ निपात्येते पाणौ, उपतापे च। भुज्यतेऽनेनेति भुजः = पाणिः। 'हलश्च' (3.3.121) इति घञ्। तत्र कुत्वाभावः गुणाभावश्च निपात्यते। 'उब्ज आर्जवे' (धा०पा० 1304), न्युब्जिताः शेरतेऽस्मिन्निति न्युब्जः। उपतापः = रोगः, तथैव घञि कुत्वाभावो निपात्यते। पाण्युपतापयोरिति किम्? भोगः, समुद्गः।

अर्थ—'हाथ' तथा 'रोग' अर्थों में यथासंख्य 'भुज' तथा 'न्युब्ज' शब्द निपातनसिद्ध हैं।

उदा० (1) भुजः
भुज्यतेऽनेनेति—'हलश्च' से 'घञ्', कुत्व नहीं हुआ।
भुज् अ—गुण का अभाव, सु।

(2) न्युब्जः
न्युब्जिताः शेरतेऽस्मिन्निति—पूर्ववत् 'घञ्' व कुत्व का अभाव।

पाण्युप०—हाथ तथा रोग—इन अर्थों में निपातन होता है।

(3) भोगः
भुज् घञ्—लघूपधगुण, कुत्व, सु।

(4) समुद्गः
सम् उब्ज् घञ्—कुत्व,
समुब्ग् अ—बकार को दकार,
समुद्ग—सु।

(3459) प्रयाजानुयाजौ यज्ञाङ्गे *62* (2878)

प्रयाज, अनुयाज-इत्येतौ निपात्येते यज्ञाङ्गे। पञ्च प्रयाजाः (आश्व०श्रौ० 1.4.2)। पञ्चानुयाजाः। त्वमग्ने प्रयाजानां पश्चात् त्वं पुरस्तात्। यज्ञाङ्गे इति किम्? प्रयागः। अनुयागः। प्रयाजानुयाजग्रहणं प्रदर्शनार्थम्-अन्यत्राप्येवम्प्रकारे कुत्वं न भवति। एकादशोपयाजाः (ऐ०ब्रा० 2.1.8), उपांशुयाजमन्तरा यजति, अष्टौ पत्नीसंयाजा भवन्ति (ऐ०ब्रा० 3.3.2) ऋतुयाजैश्चरन्ति (ऐ०ब्रा० 2.9.9)-इत्येवमादि सिद्धं भवति।

अर्थ—यज्ञकार अङ्ग—अर्थ गम्यमान हो तो 'प्रयाज' तथा 'अनुयाज' शब्द निपातनसिद्ध हैं।

उदा० (1) प्रयाजः
प्र यज् घञ्—अत उपधायाः, कुत्व प्राप्त,
प्रयाज् अ सु—निपातन से कुत्व का अभाव।

(2) अनुयाजः
अनु यज् घञ्—पूर्ववत्।

यज्ञाङ्ग०—यज्ञ का अङ्ग इस अर्थ में ही पूर्वोक्त शब्द निपातित हैं।

(3) प्रयागः
यहाँ कुत्व का अभाव नहीं हुआ।

(4) अनुयागः (पूर्ववत्)।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रयाजा०—प्रयाज तथा अनुयाज—इन शब्दों का ग्रहण प्रदर्शन के लिए है। अन्य स्थलों पर भी इसी प्रकार कुत्व नहीं होता है। यथा—

(5) उपयाजाः, (6) उपांशुयाजम्, (7) पत्नीसंयाजा, (8) ऋतुयाजैः।

(3460) वञ्चेर्गतौ *63* (2879)

वञ्चेरङ्गस्य गतौ वर्त्तमानस्य कवर्गादेशो न भवति। वञ्च्यं वञ्चयन्ति वणिजः। गताविति किम्? वङ्कं काष्ठम्। कुटिलमित्यर्थः।

अर्थ—वञ्च् अङ्ग के चकार के स्थान पर कवर्ग आदेश नहीं होता है, गति अर्थ हो तो।

उदा० (1) वञ्च्यम्
वञ्च् ण्यत्—गति अर्थ है, प्राप्त कुत्व का निषेध,
वञ्च्य सु—विभक्तिकार्य।

गताव०—गति अर्थ में ही सूत्रोक्त कुत्व का अभाव होता है।

(2) वङ्कं काष्ठम्
वञ्च् घञ्—'हलश्च' से 'घञ्',
वन्क् अ—अनुबन्धलोप, कुत्व हो गया, अनुस्वार, परसवर्ण,
वङ्कम्—सु।

(3461) ओक उचः के *64* (2880)

उचेर्धातोः के प्रत्यये 'ओकः' इति निपात्यते। किं पुनरत्र निपात्यते? कुत्वम्, गुणश्च। न्योकः शकुन्तः। न्योको गृहम्। कर्त्तरि इगुपधलक्षणः कः प्रत्ययः (3.1.135)। अधिकरणादौ तु कारकान्तरे 'घञर्थे कविधानाम्' (वा०) इति। किमर्थं पुनरयं घञ्येव न व्युत्पाद्यते? स्वरार्थमन्तोदात्तोऽयमिष्यते, घञि सत्याद्युदात्तः स्यात्। दिवौकसः, जलौकसः—इत्येवमादावप्यसुनि प्रत्यये 'उणादयो बहुलम्' (3.3.1) इति कुत्वं द्रष्टव्यम्।

अर्थ—'क' प्रत्यय परे रहते 'उच्' धातु से कुत्व होकर 'ओक' शब्द निपातनसिद्ध है। यहाँ कुत्व व गुणकार्यों का निपातन होता है।

उदा० (1) न्योकः
नि उच् क—इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः,
नि ओक् अ—गुण, कुत्व,
न्योक सु—यण्।
इसी प्रकार—न्योको वृक्षः।

कर्त्तरि०—कर्त्ता अर्थ में इगुपधलक्षण 'क' होता है। अधिकरण आदि अन्य कारक में 'घञर्थे कविधानम्' से प्रत्यय होता है।

किमर्थ०—तब क्यों न उक्त 'ओक' शब्द घञ् के अर्थ में व्युत्पादित किया जाता है? स्वर के लिए यह अन्तोदात्त इष्ट है। 'घञ्' करने पर आद्युदात्त हो जाता है।

दिवौ० (2) दिवौकसः
यहाँ पर भी 'असुन्' प्रत्यय करने पर 'उणादयो बहुलम्' से कुत्व होना चाहिए।

(3) जलौकसः (पूर्ववत्)।

(3462) ण्य आवश्यके *65* (2881)

ण्ये परतः आवश्यकेऽर्थे कवर्गो न भवति। अवश्यपाच्यम्। अवश्यवाच्यम्। अवश्यरेच्यम्। आवश्यके इति किम्? पाक्यम्। वाक्यम्। रेक्यम्।

अर्थ—'आवश्यक' अर्थ में वर्त्तमान अङ्ग के चकार व जकार के स्थान पर कवर्ग आदेश नहीं होता है, 'ण्य' प्रत्यय परे रहते।

उदा० (1) अवश्यपाच्यम्
अवश्यम् पच् ण्यत्—ऋहलोर्ण्यत्, कृत्याश्च, मयूरव्यंसका० से समास, अनुबन्ध।
अवश्यपाच् य—'अवश्यमः०' से मलोप, प्राप्त कुत्व का निषेध,
अवश्यपाच्य—सु।

(2) अवश्यवाच्यम्
अवश्यम् वच् ण्यत्—पूर्ववत्।

(3) अवश्यरेच्यम्
अवश्यम् रिच् ण्यत्—लघूपधगुण।

आवश्यक०—आवश्यक अर्थ में ही कुत्वनिषेध होता है।

(4) पाक्यम्
पच् ण्यत्—'अवश्य' अर्थ नहीं है, अतः कुत्वनिषेध नहीं हुआ।

(5) वाक्यम्
वच् ण्यत्—पूर्ववत्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(6) रेक्यम्
पूर्ववत् कुत्व, लघुपधगुण।

(3463) यजयाचरुचप्रवचर्चश्च *66* (2882)

यज, याच, रुच, पवच, ऋच-इत्येतेषां ण्ये परतः कवर्गादिशे न भवति। यज-याज्यम्। याच-याच्यम्। रुच-रोच्यम्। प्रवच-प्रवाच्यम्। ऋच-अर्च्यम्। ऋदुपधादपि ऋचेरत एव निपातनाद् ण्यद्भवति। प्रवचग्रहणं शब्दसंज्ञार्थम्। प्रवाच्यो नाम पाठविशेषोपलक्षितो ग्रन्थोऽस्ति। अपरे पुनराहुः-उपसर्गपूर्वस्य नियमार्थम्-प्रपूर्वस्यैव वचेरशब्दसंज्ञायां कुत्वप्रतिषेधो यथा स्यात्, अन्योपसर्गपूर्वस्य मा भूदिति। 'अविवाक्यमहः' इति पठन्ति, एतत्तु विशेष एवेष्यते-दशरात्रस्य यद् दशममहः। अन्यत्राविवाच्यमेव भवति। *ण्यति प्रतिषेधे त्यजेरुपसंख्यानम्* (म० भा०)। त्याज्यम्।

अर्थ—यज, याच, रुच, प्रवच तथा ऋच—इन अङ्गों के चकार व जकार के स्थान पर कवर्ग आदेश नहीं होता है, 'ण्य' परे रहते।

उदा० (1) याज्यम्
यज् ण्यत्—प्राप्त कुत्व का अभाव, चुटू, हलन्त्यम्,
याज्य सु—अत उपधायाः।

(2) याच्यम्
यच् ण्यत्—पूर्ववत्।

(3) रोच्यम्
रुच् ण्यत्—पुगन्तलघूपधस्य च, शेष पूर्ववत्।

(4) प्रवाच्यम्
प्र वच् ण्यत्—अत उपधायाः, कुत्वनिषेध।

(5) अर्च्यम्
ऋच् ण्यत्—लघूपधगण, शेष पूर्ववत्।

ऋदुप०—ऋच् धातु से 'ण्यत्' को बाध कर 'ऋदुपधाच्चाक्लृपि०' से 'क्यप्' होना चाहिए था, परन्तु निपातन से 'ण्यत्' ही होता है।

प्रवच०—'वचोऽशब्दसञ्ज्ञायाम्' इससे पूर्वतः कुत्व के निषेध प्राप्त होने पर 'प्रवच्' का यहाँ पाठ किसलिए है ?

'प्रवच' का ग्रहण शब्दसंज्ञा के लिए है। 'प्रवाच्य' नामक पाठ-विशेष से उपलक्षित ग्रन्थ का नाम है।

अपरे०—अन्य विद्वान् ऐसा कहते हैं—प्र पूर्वक 'वच्' का ग्रहण नियम के लिए है। यह नियम करता है कि अशब्द संज्ञा में प्र पूर्वक वच् से ही कुत्व का निषेध होता है; अन्य उपसर्ग-पूर्वक वच् से कुत्वनिषेध नहीं होता। यथा—

अविवाक्यमहः—ऐसा पाठ करते हैं। यह विशेष होता है। अन्यत्र 'अविवाच्यम्' ही होता है।

ण्यति०—त्यज् अङ्ग को कुत्व नहीं होता है, ण्यत् परे रहते।

(6) त्याज्यम्
त्यज् ण्यत्—अत उपधायाः, कुत्वनिषेध, सु।

(3464) वचोऽशब्दसंज्ञायाम् *67* (2883)

वचोऽशब्दसंज्ञायां ण्यति परतः कवर्गो न भवति। वाच्यमाह। अवाच्यमाह। अशब्दसंज्ञायामिति किम्? अवधुषितं वाक्यमाह।

अर्थ—शब्दसंज्ञा के विषय को छोड़कर अन्यत्र 'वच्' अङ्ग के चकार को कुत्व नहीं होता है, 'ण्य' परे रहते।

उदा० (1) वाच्यम्
वच् ण्यत्—कुत्वनिषेध,
वाच्य सु—अत उपधायाः।

(2) अवाच्यम्
नञ् वच् ण्यत्—पूर्ववत्।

अशब्द०—शब्दसंज्ञा के विषय को छोड़कर अन्यत्र कुत्व-निषेध होता है।

(3) वाक्यम् (अवधुषितम् आह)
यहाँ कुत्व हो गया है।

(3465) प्रयोज्यनियोज्यौ शक्यार्थे *68* (2884)

प्रयोज्य, नियोज्य-इत्येतौ शब्दौ शक्यार्थे निपात्येते। शक्यः प्रयोक्तुं प्रयोज्यः। शक्यो नियोक्तुं नियोज्यः। शक्यार्थ इति किम्? प्रयोग्यः, नियोग्यः।

अर्थ—'शक्य' अर्थ गम्यमान हो तो 'प्रयोज्य' तथा 'नियोज्य' शब्द निपातनसिद्ध हैं।

उदा० (1) प्रयोज्यः
शक्यः प्रयोक्तुम्—'ण्यत्' हुआ,
प्र युज् य—अनुबन्धलोप, लघूपधगुण, सु।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(2) नियोज्यः
शक्यो नियोक्तुम्—पूर्ववत् ण्यत्, कुत्वाभाव।

शक्यार्थे०—शक्य अर्थ में ही पूर्वोक्त शब्दों का निपातन होता है।

(3) प्रयोग्यः
प्र युज् ण्यत्—यहाँ शक्य अर्थ न रहने से कुत्वनिषेध नहीं हुआ,
प्रयोग् य—लघूपधगुण, सु।

(4) नियोग्यः
'प्रयोग्य' की तरह।

(3466) भोज्यं भक्ष्ये *69* (2885)

भोज्यं निपात्यते भक्ष्येऽभिधेये। भोज्य ओदनः। भोज्या यवागूः। इह भक्ष्यमभ्यवहार्यमात्रम्। भक्ष्य इति किम् ? भोग्यः कम्बलः।

अर्थ—'भक्ष्य' अर्थ में 'भोज्य' शब्द निपातनसिद्ध है।

उदा० (1) भोज्यः
भुज् ण्यत्—लघूपधगुण, कुत्वनिषेध,
भोज् य—सु।
इसी प्रकार—भोज्या यवागूः।

भक्ष्य०—भक्ष्य अर्थ में ही 'भोज्य' शब्द निपातित है।

(2) भोग्यः कम्बलः
यहाँ 'भक्ष्य' अर्थ न होने से कुत्वनिषेध नहीं हुआ। शेष पूर्ववत्।

(3467) घोर्लोपो लेटि वा *70* (3584)

घुसंज्ञकानां लेटि परतो वा लोपो भवति। 'दधद्रत्नानि दाशुषे। सोमो ददद् गन्धर्वाय (ऋ० 10.85.11)। न च भवति-यदग्निरग्नये ददात्। आडागमे सति लोपेऽपि ददादिति सिद्धं भवति। तत्र वावचनं विस्पष्टार्थम्। एषा हि कस्यचिदाशङ्का स्याद्-ददादित्येव नित्ये प्राप्ते लोप आरभ्यमाणो बाधत एवैतद्रूपमिति।

अर्थ—घुसंज्ञक अङ्ग का लोप विकल्प से होता है, लेट् प्रत्यय परे रहते। 'दाधाध्वदाप्' से घुसंज्ञा होती है।

उदा० (1) दधत्
धा तिप्—लिङर्थे लेट्,
धा अ त्—लेटोऽडाटौ, शप्, श्लुत्व, श्लौ,
द धा अ त्—ह्रस्वः, अभ्यासे चर्च,
दध् अ त्—अन्त्यलोप।

(2) ददत्
दा तिप्—'दधत्' की तरह।

(3) ददात्
यहाँ अन्त्य लोप नहीं होता है। 'सर्वे विधयश्छन्दसि विकल्प्यन्ते' से यहाँ लोप प्रवृत्त नहीं होता है।

आडागमे०—'लेटोऽडाटौ' से आट् आगम करने पर प्रकृत सूत्र से अन्त्य लोप कर लेने पर भी 'ददात्' सिद्ध हो जाता है। तब सूत्र में 'वा' ग्रहण की क्या आवश्यकता है ?

(समा०) 'वा' का ग्रहण स्पष्टता के लिए है। किसी को आशङ्का हो सकती है कि 'ददात्' यहाँ लोप के नित्य प्राप्त होने पर वचनसामर्थ्य से बाध कर लेता है। अतः स्पष्टता के लिए 'वा' का ग्रहण किया गया है।

विशेष—न्यास में 'ददन्' ऐसा प्रयोग दिखाया गया है। न्यासकार के अनुसार यह प्र०पु० बहुवचन का रूप है। न्यासकार के अनुसार इसका साधन इस प्रकार है—
दा झि—लिङर्थे लेट्, झोऽन्तः, इतश्च लोपः परस्मैप०,
दा अन्त्—लेटोऽडाटौ, शप्, जुहोत्यादिभ्यः श्लुः,
दा अ अन्त्—श्लौ, पूर्वोऽभ्यासः,
द दा अ अन्त्—ह्रस्वः,
द द् अ अन्त्—अन्त्यलोप,
ददन्—अतो गुणे, संयोगान्तस्य लोपः।

(3468) ओतः श्यनि *71* (2510)

ओकारान्तस्याङ्गस्य श्यनि परतो लोपो भवति। शो-निश्यति। छो-अवच्छ्यति। दो-अवद्यति। सो-अवस्यति।

अर्थ—ओकारान्त अङ्ग का लोप होता है, श्यन् परे रहते। अलोऽन्त्य परिभाषा से अन्त्य अल् (ओ) का लोप होता है।

उदा० (1) निश्यति
शो तिप्—लट्, शप् को बाध कर 'श्यन्'
शो य ति—अनुबन्धलोप,
नि श् य ति—अन्त्यलोप।

(2) अवच्छ्यति
छो ति—पूर्ववत्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अवच्छ्यति—छे तुक्, स्तोः श्चुना श्चुः।

(3) अवद्यति
अव दो तिप्—शप् को बाध कर 'श्यन्',
अव द् य ति—'ओ' का लोप।

(4) अवस्यति
षो → सो—धात्वादेः षः सः, शेष पूर्ववत्।

(3469) क्सस्याचि *72* (2337)

क्सस्याजादौ प्रत्यये लोपो भवति। अधुक्षाताम्। अधुक्षाथाम्। अधुक्षि। अचीति किम्? अधुक्षत्। अधुक्षताम्। ककारवत उपादानं किम्? इह मा भूत्-उत्सौ, उत्साः। वत्सौ, वत्साः।

अर्थ—'क्स' का लोप होता है, अजादि प्रत्यय परे रहते। अलोऽन्त्य परिभाषा से अन्त्य अल् का लोप होता है।

उदा० (1) अधुक्षाताम्
दुह् आताम्—लुङ्,
दुह् क्स आताम्—च्लि, 'शल इगुपधाद०,' से 'क्स',
दुह् स् आताम्—लशक्वतद्धिते, अन्त्यलोप,
दुघ् स् आताम्—दाऽऽदेर्धातोर्घः,
धुघ् स् आताम्—एकाचो बशो०,
धुक् ष् आताम्—खरि च, आदेशप्रत्यययोः,
अ धुक्षाताम्—अट्।

(2) अधुक्षाथाम्
दुह् आथाम्—पूर्ववत्।

(3) अधुक्षि
दुह् इ—उत्तम पुरुष एकवचन,
धुक् स् इ—क्स, पूर्ववत् अन्त्यलोप, धत्व, धत्व, चर्त्व,
अधुक्षि—अट्।

अचीति०—अजादि प्रत्यय परे रहते 'क्स' का लोप होता है।

(4) अधुक्षत्
दुह् तिप्—लुङ्,
दुह् क्स त्—इतश्च, क्स, अजादि प्रत्यय परे न रहने से अन्त्य लोप नहीं हुआ,
धुक् स त्—पूर्ववत् धत्व, धत्व, चर्त्व,
अ धुक्षत्—षत्व, अट्।

(5) अधुक्षताम्
दुह् ताम्—तस्, ताम् आदेश,
दुह् स ताम्—अन्त्य लोप नहीं हुआ,
अ धुक् स ताम्—शेष कार्य पूर्ववत्।

ककार०—सूत्र में 'क्सस्य' पद में ककारयुक्त 'क्स' के ग्रहण का प्रयोजन यह है कि ककाररहित का अन्त्यलोप न हो। यथा—

(6) उत्सौ
उत्स औ—अजादि प्रत्यय परे है, परन्तु 'क्स' न होने से लोप नहीं हुआ।

(7) उत्साः
उत्स जस्—पूर्ववत् अन्त्यलोप नहीं हुआ।

(8) वत्सौ
'उत्सौ' की तरह।

(9) वत्साः
'उत्साः' की तरह।

विशेष—प्राचीन व्याख्याकार (काशिकाकार आदि) यहाँ 'तङि' का अनुवर्त्तन स्वीकार नहीं करते, परन्तु अर्वाचीन व्याख्याकार यहाँ 'तङि' पद का अधिकार मानते हैं।[1] प्रथम पक्ष में निम्नलिखित दोष प्रसक्त होता है—

तद् दृश् क्स—दृशेः क्सश्च (वा०),
तद् दृश् स जस्—प्रथमा बहुवचन, काशिकाकार के मत में अन्त्यलोप प्राप्त होता है,
तद् दृश् स अस्—'तङि' का अधिकार मान लेने पर यहाँ अन्त्य लोप की प्राप्ति नहीं होगी।

अतः प्रकृत सूत्र में 'तङि' पद का अधिकार सार्थक प्रतीत होता है।

(3470) लुग्वा दुहदिहलिहगुहामात्मनेपदे दन्त्ये *73* (2365)

दुह, दिह, लिह, गुह-इत्येतेषामङ्गानामात्मनेपदे दन्त्यादौ परतः क्सस्य वा लुग्भवति। अदुग्ध, अधुक्षत। अदुग्धाः, अधुक्षथाः। अदुग्ध्वम्, अधुक्षध्वम्। अदुह्वहि, अधुक्षावहि। दिह-अदिग्ध, अधिक्षत। लिह-अलीढ, अलिक्षत। गुह-न्यगूढ, न्यधुक्षत। दुहादीनामिति किम्? व्यत्यपुक्षत।

1. वै०सि०कौ० सूत्र 2337 अजादौ तङि····।
द्र०—बाल०—अजादौ तङीत्येव क्वचित्पाठो दृश्यते।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आत्मनेपदे इति किम्? अधुक्षत्। दन्त्ये इति किम्? अधुक्षामहि। लोप इति वर्त्तमाने लुग्ग्रहणं सवदिशार्थम्, तच्च वह्यर्थम्। अन्यत्र त्वन्त्यस्यैव लोपे कृते 'झलो झलि' (8.2.26) इति सकारलोपेन सिद्ध्यति। स्थानिवद्भावोऽपि अकारलोपस्य नास्ति; 'पूर्वत्रासिद्धे न स्थानिवत्' (पु०वृ० 112) इति। दन्त्योष्ठ्योऽपि वकारो दन्त्य इति गृह्यते। यदि स न गृह्येत, ततस्तौग्रहणमेवात्र कृतं स्यात्।

अर्थ—दुह, दिह, लिह तथा गुह—इन अङ्गों से उत्तर 'क्स' का लुक् विकल्प से होता है, दन्त्यादि आत्मनेपद प्रत्यय परे रहते।

दन्त स्थान वाला वर्ण 'दन्त्य' कहलाता है। दन्त्य वर्ण है आदि में जिसके, उसे 'दन्त्यादि' कहते हैं। यह 'आत्मनेपदे' का विशेषण है। दन्त्यादि आत्मनेपद प्रत्यय चार ही हैं। यथा—त, थास्, ध्वम् तथा वहि।

उदा० (1) अदुग्ध
दुह् त—लुङ्, च्लि,
दुह् क्स त—शल इगुपधा०,
दुध् त—दन्त्यादि आत्मनेपद 'त' प्रत्यय परे हैं, 'क्स' का लुक् हुआ, दादेर्धातोर्धः, झषस्तथो०,
अदुग् ध—झलां जश् झशि, अट्।

(2) अधुक्षत
दुह् क्स त—इस दशा में लुक् नहीं हुआ,
दुघ् स त—अन्त्य लोप भी नहीं होता है, घत्व,
धुघ् स त—भष्त्व,
अ धुक् ष त—खरि च, षत्व, अट्।

(3) अदुग्धाः
दुह् थास्—म०पु० एकवचन, 'क्स', लुक् हुआ,
दुघ् थास्—दादेर्धातोर्धः,
अदुग्धाः—झषस्तथो०, जश्त्व, अट्।

(4) अधुक्षथाः
दुह् क्स थास्—पक्ष में 'क्स' का लुक् नहीं हुआ,
धुघ् स थास्—पूर्ववत् घत्व, भष्त्व,
धुक् स थास्—खरि च,
अधुक्षथाः—आदेशप्रत्यययोः, अट्।

(5) अदुग्ध्वम्
दुह् क्स ध्वम्—इस दशा में 'क्स' का लुक्,
दुघ् ध्वम्—घत्व,
दुग्ध्वम्—झलां जश् झशि,
अदुग्ध्वम्—अट्।

(6) अधुक्षध्वम्
दुह् क्स ध्वम्—पक्ष में 'क्स' का लुक् नहीं हुआ,
धुघ् स ध्वम्—घत्व, एकाचो बशो०,
धुक् स ध्वम्—खरि च,
अ धुक् ष ध्वम्—आदेशप्रत्यययोः।

(7) अदुह्वहि
दुह् क्स वहि—इस दशा में 'क्स' का लुक्,
अ दुह् वहि—अट् आगम।

(8) अधुक्षावहि
दुह् क्स वहि—पक्ष में लुक् नहीं हुआ,
धुघ् स वहि—घत्व, भष्त्व,
अ धुक्ष वहि—खरि च, षत्व, अट्, अतो दीर्घो यञि।

(9) अदिग्ध
दिह् क्स त—इस दशा में 'क्स' का लुक्,
दि घ् ध—घत्व, झषस्तथो०,
अ दिग् ध—झलां जश् झशि, अट्।

(10) अधिक्षत
दिह् क्स त—पक्ष में लुक् नहीं हुआ,
दिघ् स त—घत्व,
धिघ् स त—भष्त्व,
अ धिक् ष त—खरि च, षत्व, अट्।

(11) अलीढ
लिह् क्स त—इस दशा में 'क्स' का लुक्,
लिद् त—हो ढः,
लिद् ढ—ष्टुना ष्टुः,
अ लीढ—ढो ढे लोपः, ढ्रलोपे पूर्व०, अट्।

(11) अलिक्षत
लिह् क्स त—पक्ष में लुक् नहीं हुआ, हो ढः,
अ लिक् ष त—षढोः कः सि, षत्व, अट्।

(12) न्यगूढ
गुह् क्स त—इस दशा में 'क्स' का लुक्,
गुद् त—हो ढः, ष्टुना ष्टुः,
गुद् ढ—ढो ढे लोपः,
अ गू ढ—ढ्रलोपे पूर्वस्य०, अट्,

(13) न्यघुक्षत

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गुह् क्स त—पक्ष में लुक् नहीं हुआ,
गुद् स त—हो ढः, एकाचो बशो०,
घु क् स त—षढोः कः सि,
अ घुक् ष त—षत्व, अट्।

दुहादी०—दुह्, दिह्, लिह् तथा गुह्—इन अङ्गों से उत्तर 'क्स' का लोप होता है।

(14) व्यत्यरुक्षत

रुह् क्स त—दन्त्यादि आत्मनेपद प्रत्यय 'त' परे है, परन्तु दुह् 'आदि से उत्तर न होने से क्स' का लुक् नहीं हुआ,
वि अति रुक् ष त—चर्त्व, षत्व, अट्।

(15) व्यत्यपुक्षत (न्यासे प्रदर्शितः)

पुष् क्स त—लुक् नहीं हुआ,
पुक् स त—षढोः कः सि,
पु क् ष त—षत्व,
अपुक्षत—अट्।

आत्मने०—आत्मनेपद प्रत्यय परे रहते ही 'क्स' का लोप होता है।

(16) अधुक्षत्

दुह् क्स त्—तिप्, इतश्च, क्स, दन्त्यादि प्रत्यय 'त्' परे है, परन्तु वह आत्मनेपद नहीं है, परस्मैपद है। अतः 'क्स' का लुक् नहीं हुआ,
अ धुक् ष त्—घत्व, भष्त्व, षत्व, अट्।

दन्त्य०—दन्त्य प्रत्यय परे रहते ही 'क्स्' का लोप होता है।

(17) अधुक्षामहि

दुह् क्स महि—'दुह्' से उत्तर 'क्स' है, इससे पर 'महि' प्रत्यय है, जो आत्मनेपद तो है, परन्तु दन्त्यादि नहीं है; अतः क्स' का लुक् नहीं हुआ,
धुघ् स महि—दाऽऽदेर्धातो०, एकाचो बशो०,
अ धुक् षा महि—खरि च, षत्व, अतो दीर्घो ययि, अट्।

लोप०—यहाँ 'लोपः' का अधिकार प्राप्त होने पर भी 'लुक्' का ग्रहण क्यों किया गया है ?

(समा०) 'लुक्' ग्रहण से 'प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः' के द्वारा लुक् संज्ञा होकर सम्पूर्ण 'क्स' का लुक् हो जाता है। अब प्रश्न उठता है कि इस सर्वादेश का प्रयोजन क्या है ? इस सर्वादेश 'वहि' प्रत्यय (उ०पु०द्विवचन) के लिए है।

(शङ्का) जो भी दन्त्यादि आत्मनेपद प्रत्यय हैं, वे सभी झलादि हैं। तब अन्त्यलोप करने पर 'झलो झलि' के द्वारा सकार का लोप कर देने पर भी इष्टसिद्धि हो जाती है।

आक्षेप यह है कि अन्त्यलोप (अर्थात् अकार लोप) सकार लोप करने में 'अचः परस्मिन्०' से स्थानिवत् होता है। तब 'झलो झलि' प्रवृत्त नहीं होगा।

स्थानि०—'पूर्वत्राऽसिद्धम्' इस शास्त्र में स्थानिवद्भाव नहीं होता। अतः अकारलोप स्थानिवत् नहीं होता है। अतः अन्य के लिए 'लुक्' का ग्रहण नहीं है, केवल 'वहि' प्रत्यय के लिए है।

दन्त्यो०—'दन्त्ये' के स्थान पर 'तौ' का पाठ करने में लाघव होता है।

(समा०) ऐसा करने से 'वहि' प्रत्यय का ग्रहण नहीं हो पाता। अतः 'दन्त्ये' ऐसा पाठ किया गया है। दन्तोष्ठ्य वकार का भी 'दन्त्य' पद के द्वारा ग्रहण होता है।

(3471) शमामष्टानां दीर्घः श्यनि *74*

(2519)

शमादीनामष्टानां दीर्घो भवति श्यनि परतः। शम्–शाम्यति। तम्–ताम्यति। दम्–दाम्यति। श्रम्–श्राम्यति। भ्रम्–भ्राम्यति। क्षम्–क्षाम्यति। क्लम्–क्लाम्यति। मदी–माद्यति। अष्टानामिति किम्? अस्यति। श्यनीति किम्? भ्रमति। बभ्राम। 'वा भ्राश' (3.1.70) इति श्यनो विकल्पः।

अर्थ—शम् आदि आठ अङ्गों को दीर्घ होता है, 'श्यन्' प्रत्यय परे रहते।

'अचश्च' से इन अङ्गों के अच् को ही दीर्घ होता है। शमादि आठ धातु निम्नलिखित हैं—

शम्, तम्, दम्, श्रम्, भ्रम्, क्षम्, क्लम् तथा मद्।

उदा० (1) शाम्यति
शम् ति—लट्,
शम् श्यन् ति—शप् को बाध कर 'श्यन्',
शाम्य ति—दीर्घ।

(2) ताम्यति
तम् श्यन् ति—पूर्ववत्।

(3) दाम्यति
दम् श्यन् ति—पूर्ववत्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(4) भ्राम्यति
भ्रम् श्यन् ति—पूर्ववत्।

(5) श्राम्यति
श्रम् श्यन् तिप्—पूर्ववत्।

(6) क्षाम्यति
क्षम् श्यन् ति—पूर्ववत्।

(7) क्लाम्यति
क्लम् श्यन् ति—पूर्ववत्।

(8) माद्यति
मद् श्यन् ति—दीर्घ।

अष्टा०—सूत्रोक्त आठ अङ्गों को ही दीर्घ होता है।

(9) अस्यति
अस् श्यन् ति—दीर्घ नहीं हुआ। 'अस्' धातु शमादि आठ में पठित नहीं है।

श्यनीति०—श्यन् परे रहते ही शमादि को दीर्घ होता है।

(10) भ्रमति
भ्रम् शप् ति—'वा' भ्राशम्लाश०' से वैकल्पिक 'श्यन्', तब शप् पक्ष में दीर्घ नहीं हुआ।

(11) बभ्राम
भ्रम् णल्—लिट्, तिप्,

बभ्राम् अ—'अत उपधायाः' से वृद्धि, द्वित्व, हलादिः शेषः, ह्रस्व, अभ्यासे चर्च।

(3472) ष्ठिवुक्लम्याचमां शिति *75* (2320)

ष्ठिवु, क्लमि, आचम्-इत्येतेषां दीर्घो भवति शिति परतः। ष्ठीवति। क्लमु-क्लामति। आचामति। क्लमिग्रहणं शबर्थम्। चमेराङ्पूर्वस्य ग्रहणम्। इह मा भूत्-चमति, विचमति।

अर्थ—ष्ठिव्, क्लम् तथा आचम्—इन अङ्गों को दीर्घ होता है, शित् प्रत्यय परे रहते।

शित् = जिसका शकार इत् है।

उदा० (1) ष्ठीवति
ष्ठिव् शप् तिप्—कर्त्तरि शप्,
ष्ठीवति—दीर्घ।

(2) क्लामति
क्लम् शप् तिप्—दीर्घ पूर्ववत्।

(3) आचामति
आ चम् शप् ति—पूर्ववत्।

क्लमि०—'क्लम्' का पाठ शप् के लिए है। श्यन् परे रहते दीर्घ आदेश पूर्वसूत्र से ही सिद्ध था।

चमे०—आङ् पूर्वक चम् को ही दीर्घ होता है। अतः निम्नलिखित में दीर्घ नहीं होता—

(4) चमति, (5) विचमति।

(3473) क्रमः परस्मैपदेषु *76* (2322)

क्रमः परस्मैपदपरे शिति परतो दीर्घो भवति। क्रामति, क्रामतः, क्रामन्ति। परस्मैपदेष्विति किम्? आक्रमते आदित्यः। इह उत्क्राम, संक्राम-इति हेर्लुकि कृते 'न लुमताङ्गस्य' (1.1.66) इति प्रत्ययलक्षणप्रतिषेधाद्दीर्घो न प्राप्नोति? नैष दोषः; लुमताशब्देन लुप्ते यदङ्गं तस्य कार्ये स प्रतिषेधः। न च हौ क्रमिरङ्गम्, किं तर्हि? शपि।

अर्थ—'क्रम्' अङ्ग को दीर्घ होता है, शित् व परस्मैपद प्रत्यय परे रहते।

'वा भ्राशम्लाशभ्रमु०' के द्वारा 'क्रम्' को विकल्प से 'श्यन्' होता है। पक्ष में 'शप्' होता है। दोनों शित् प्रत्यय हैं।

उदा० (1) क्रामति
क्रम् शप् ति—शप्,
क्रामति—दीर्घ।

(2) क्रामतः
क्रम् तस्—शप्, दीर्घ।

(3) क्रामन्ति
क्रम् शप् झि—झोऽन्तः, दीर्घ।

परस्मै०—परस्मैपद प्रत्ययों में ही 'क्रम्' अङ्ग को दीर्घ होता है।

(4) आक्रमते
आ क्रम् शप् त—'आङ उद्गमने' से आत्मनेपद, शप् शित् है, परन्तु 'त' प्रत्यय परस्मैपद नहीं है; अतः दीर्घ नहीं हुआ, आक्रमते—टित आत्मनेपदा०।

इह०—उत्क्राम तथा सङ्क्राम—यहाँ 'हि' का लुक् करने पर 'न लुमताङ्गस्य' से प्रत्ययलक्षण का निषेध होने से दीर्घ नहीं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होता। यह दोष नहीं है। 'लुमत्' शब्द के द्वारा लुप्त होने पर जो अङ्ग, उसको कार्य करने में ही यह निषेध होता है। 'हि' परे रहते 'क्रम्' अङ्ग नहीं है। तब अङ्ग क्या है ? अङ्ग शप् परे रहते हैं।

(3474) इषुगमियमां छः *77* (2400)

इषु, गमि, यम-इत्येतेषां शिति परतश्छकारादेशो भवति। इच्छति। गच्छति। यच्छति। इषेरुदितो ग्रहणम्, इह मा भूत्-इष्यति, इष्णातीति। ये इषिमुदितं नाधीयते, इह च सूत्रे 'अचि'-इत्यनुवर्त्तयन्ति। तच्च प्रधानमज्ग्रहणं शितीत्यनेन विशेष्यते इति वर्णयन्ति। तथा च सति तदादिविधिर्न भवति। 'यस्मिन्विधिस्तदादावल्ग्रहणे' (व्या० प० 127)-इत्येतदपि विशेषणेनैवेष्यते, तेन इषाणेत्यत्र छत्वं न भवति। न ह्ययमजेव शिदिति।

अर्थ—इष्, गम् तथा यम्—इन अङ्गों को 'छ' आदेश होता है, शित् प्रत्यय परे रहते।

उदा० (1) इच्छति

इष् श तिप्—कर्त्तरि शप्, शप् को बाध कर 'तुदादिभ्यः शः' से 'श', लशक्वतद्धिते,

इछ् अ ति—'छे च' से 'तुक्',

इ त् छ अ ति—स्तोः श्चुना श्चुः।

(2) गच्छति

गम् शप् तिप्—पूर्ववत् 'छ्',

ग त् छ् अ ति—तुक्, श्चुत्व।

(3) यच्छति

यम् शप् ति—पूर्ववत् छकार, तुक्, श्चुत्व।

इषे०—सूत्र में उदित् 'इषु' का ग्रहण होने से 'इषु इच्छायाम्' का ही यहाँ ग्रहण होता है। इष गतौ (दिवा०) तथा इष आभीक्ष्ण्ये (क्र्या०) इन दोनों का ग्रहण नहीं होता।

ये०—जो व्याख्याकार यहाँ इषि धातु का उदित् पाठ स्वीकार नहीं करते हैं, वे 'अचि' पद का अधिकार मानते हैं। वे 'वह प्रधान अच् ग्रहण 'शिति' इससे विशेषित होता है'—ऐसा वर्णन करते हैं। ऐसा होने पर तदादि विधि नहीं होती है।

'यस्मिन् विधिस्तदादावल्ग्रहणे' यह परिभाषा विशेषण से ही होती है। तब 'इषाण' यहाँ छकार आदेश नहीं होता है। यह अच् ही शित् नहीं है।

(3475) पाघ्राध्मास्थाम्नादाण्दृश्यर्त्तिसर्त्तिशदसदां पिबजिघ्रधमतिष्ठमनयच्छपश्यर्च्छधौशीयसीदाः *78* (2360)

पा, घ्रा, ध्मा, स्था, म्ना, दाण्, दृशि, अर्ति, सर्ति, शद, सद-इत्येतेषां पिब, जिघ्र, धम, तिष्ठ, मन, यच्छ, पश्य, ऋच्छ, धौ, शीय, सीद-इत्येते आदेशा भवन्ति शिति परतः। पा-पिबति। घ्रा-जिघ्रति। ध्मा-धमति। स्था-तिष्ठति। म्ना-मनति। दाण्-यच्छति। दृशि-पश्यति। अर्त्ति-ऋच्छति। सर्ति-धावति। शद-शीयते। सद्-सीदति। पिबतेर्लघूपधगुणः प्राप्नोति, सः 'अङ्गवृत्ते पुनर्वृत्ताववविधिर्निष्ठितस्य' (व्या०प०) इति न भवति। अथ वा-अकारान्तोऽयमादेश आद्युदात्तो निपात्यते। सर्तेर्वेंगितायां गतौ धावादेशमिच्छन्ति। अन्यत्र-सरति, अनुसरतीत्येव भवति।

अर्थ—पा, घ्रा, ध्मा, स्था, म्ना, दाण्, दृशि, ऋ, सृ, शद् तथा षद्—इनके स्थान पर यथासंख्य पिब, जिघ्र, धम्, तिष्ठ, मन, यच्छ, पश्य, ऋच्छ, धौ, शीय तथा सीद आदेश होते हैं, शित् प्रत्यय परे रहते।

सभी आदेश अनेकाल् हैं। अतः सर्वादेश हैं।

विशेष—अधिकारप्राप्त 'शिति' पद में निम्नलिखित समास सम्भव हैं—

(क) शकार इद् यस्य सः (बहु०)।

(ख) इच्चाऽसौ शकारः (कर्म०)

बहुव्रीहि समासपक्ष में एक दोष प्रसक्त होता है। इस दशा में 'शिति' पद का अर्थ है—शकार है इत् जिसका, ऐसे प्रत्यय के परे रहते। इस प्रकार 'लिटस्तझयोरेशिरेच्' से लिट् में तकार के स्थान पर होने वाला 'एश्' आदेश भी शित् होता है। तब 'एश्' परे रहते भी 'पा' अङ्ग को 'पिब' आदेश प्राप्त होने लगेगा। यथा—

पा त—(कर्मवाच्य) लिट्,

पा एश्—इस दशा में 'पिब' प्राप्त होता है।

'शिति' पद में कर्मधारय पक्ष में कोई दोष नहीं है।

उदा० (1) पिबति

पा शप् तिप्—कर्त्तरि शप्, 'पिब' आदेश,

पिब अ तिप्—अनुबन्धलोप।

'पा' के द्वारा 'पा पाने' का ही ग्रहण होता है; 'पा रक्षणे' का नहीं। यहाँ दो प्रमाण हैं—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(क) लुग्विकरणाऽलुग्विकरणयोरलुग्विकरणस्यैव ग्रहणम् अर्थात् लुग्विकरण तथा अलुग्विकरण—इन दोनों का जहाँ विषय हो, वहाँ अलुग्विकरण धातु का ही ग्रहण होता है।

पा रक्षणे आदादिक धातु होने से इससे पर शप् विकरण लुक् होता है। पा पाने भौवादिक धातु है। इससे पर विकरण का लुक् नहीं होता। अतः यहाँ 'पा पाने' का ही ग्रहण होता है।

(ख) सूत्र में 'घ्रा' धातु का पाठ है, जो भौवादिक है। इसके साहचर्य से भौवादिक 'पा पाने' का ही ग्रहण होता है; आदादिक 'पा रक्षणे' का नहीं।

(ग) आदादिक 'पा रक्षणे' से उत्तर शप् का लुक् हो जाता है। तब कहीं भी शित् परे नहीं रहता है। अतः आदादिक 'पा' का यहाँ ग्रहण नहीं होता।

(2) जिघ्रति
जिघ्र् अ ति—शप्, 'जिघ्र्' आदेश।

(3) धमति
ध्मा शप् ति—'धम्' आदेश।

(4) तिष्ठति
ष्ठा → स्था—धात्वादेः षः सः, ठकार को थकार,
स्था शप् ति—कर्त्तरि शप्,
तिष्ठ् अ ति—'तिष्ठ्' आदेश।

(5) मनति
म्ना शप् ति—'मन्' आदेश।

(6) यच्छति
दा शप् ति—'यच्छ्' आदेश।

(7) पश्यति
दृश् शप् ति—'पश्य्' आदेश।

(8) ऋच्छति
ऋ शप् ति—'ऋच्छ्' आदेश।

ऋ धातु का भ्वादिगण तथा जुहोत्यादिगण—दो स्थानों पर पाठ प्राप्त होता है। यहाँ भौवादिक 'ऋ' का ही ग्रहण है।

(9) धावति
सृ शप् तिप्—शप्, अनुबन्धलोप, 'धौ' आदेश,
धौ अ ति—एचोऽयवायावः।

(10) शीयते
शद् शप् त—'शीय्' आदेश। 'शदेः शितः' से आत्मनेपद।

(11) सीदति
षद् → सद्—धात्वादेः षः सः,
सद् शप् ति—'सीद्' आदेश।

धातु में षद् धातु का तुदादिगण में तथा भ्वादिगण में—दो स्थलों पर पाठ प्राप्त होता है। तब वैषम्य होने से यथासंख्य भी नहीं हो सकेगा। वस्तुतः षद् धातु एक ही है। दो विकरणों के प्रयोजन के लिए इनका दो बार पाठ प्राप्त होता है।

पिबते०—'पिब अ ति' इस दशा में लघूपधगुण प्राप्त होता है, परन्तु 'अङ्गवृत्ते पुनर्वृत्ताविधिर्निष्ठितस्य' से गुण नहीं होता है।

अथवा०—अथवा 'पिंब' यह अकारान्त आद्युदात्त आदेश है। अतः गुण नहीं होता है।

'पिब' को छोड़कर शेष सभी आदेश हलन्त हैं, इनमें अकार मुखसुख के लिए है।

(3476) ज्ञाजनोर्जा *79* (2511)

ज्ञा, जन-इत्येतयोर्जादिशो भवति शिति परतः। जानाति। जायते। जनेर्दैवादिकस्य ग्रहणम्।

अर्थ—ज्ञा तथा जन् अङ्गों को 'जा' आदेश होता है, शित् प्रत्यय परे रहते। अनेकाल् होने से सर्वादेश होता है।

उदा० (1) जानाति
ज्ञा श्ना ति—शप् प्राप्त हुआ, 'क्र्यादिभ्यः श्ना' से 'श्ना' हुआ,
जा ना ति—'जा' आदेश, लशक्वतद्धिते।

(2) जायते
जन् श्यन् त—शप् को बाध कर 'श्यन्',
जा य त—'जा' आदेश, एत्व।
जने०—यहाँ दैवादिक 'जन्' का ग्रहण होता है।

(3477) प्वादीनां ह्रस्वः *80* (2558)

'पू'-इत्येवमादीनां ह्रस्वो भवति शिति परतः। प्वादयः क्र्यादिषु क्र्यादिषु पठ्यन्ते। 'पूञ् पवने' (धा०पा० 1483)-इत्यतः प्रभृति 'ब्ली गतौ वृत्' (धा०पा० 1504) इति यावत्केचिदिच्छन्ति, वृत्करणमेतल्ल्वादीनां प्वादीनां च परिसमाप्त्यर्थमिति। अपरे तु-ल्वादीनामेव परिसमाप्त्यर्थं वृत्करणमेतदिच्छन्ति, आगणान्ताः प्वादय इति। पूञ्-पुनाति। लूञ्-लुनाति। स्तृञ्-स्तृणाति।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

येषामागणान्ताः प्वादयः, तेषां जानातीत्यत्र ह्रस्वः प्राप्नोति, 'ज्ञाजनोर्जा' (7.3.79) इति दीर्घकरणसामर्थ्यान्न भवति। जनेरपि हि ज आदेशे सति 'अतो दीर्घो यञि' (7.3.101) इति दीर्घत्वेन-जायते इति सिद्ध्यति।

अर्थ—'पू' आदि धातुओं को ह्रस्व होता है, शित् परे रहते। 'अचश्च' के द्वारा इन अङ्गों के अच् को ह्रस्व होता है।

प्वाद०—क्र्यादिगण के अन्तर्गत 'पू' आदि धातुओं का पाठ प्राप्त होता है। 'पूञ् पवने' से लेकर 'प्ली गतौ' पर्यन्त 24 धातु प्वादि कहलाते हैं। अन्य विद्वान् लू आदि की समाप्ति तक मानते हैं। वे गण की समाप्ति तक प्वादिगण स्वीकार करते हैं।

उदा० (1) पुनाति
पू श्ना ति—ह्रस्व आदेश।

(2) लुनाति
लू श्ना ति—पूर्ववत्।

(3) स्तृणाति
स्तृ श्ना ति—ह्रस्व हुआ।

येषा०—जिन विद्वानों के मत में गण की समाप्तिपर्यन्त प्वादि उपगण माना जाता है, उनके मत में 'जानाति' यहाँ पर भी ह्रस्वादेश प्राप्त होता है। 'ज्ञाजनोर्जा' इस सूत्र से दीर्घकरणसामर्थ्य से ह्रस्व नहीं होता है। 'जन्' धातु से भी 'ज' आदेश होने पर 'अतो दीर्घो यञि' से दीर्घादेश होकर 'जायते' इत्यादि सिद्ध हो जाते हैं।

इस सूत्र से घटित उदाहरण काशिका में नहीं दिखाये गये हैं। पाठकों की सुविधा के लिए हम इन्हें यहाँ दिखा रहे हैं।

(4) कृणाति
कृ श्ना ति—ह्रस्व।

(5) वृणाति
वृ श्ना ति—पूर्ववत्।

(6) धुनाति
धू श्ना ति—ह्रस्वादेश।

(7) शृणाति
शृ श्ना ति—पूर्ववत्, णत्व।

(8) पृणाति
पृ श्ना ति—'शृणाति' की तरह।

(9) वृणाति
वृ श्ना ति—पूर्ववत्।

(10) भृणाति
भृ श्ना ति—ह्रस्व।

(11) मृणाति
मृ श्ना ति—ह्रस्व, णत्व।

(12) दृणाति
दृ श्ना ति—ह्रस्व, ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्।

(13) जृणाति
जृ श्ना ति—'दृणाति' की तरह।

(14) झृणाति
झृ श्ना ति—पूर्ववत्।

(15) धृणाति
धृ श्ना ति—पूर्ववत्।

(16) नृणाति
नृ श्ना ति—पूर्ववत्।

(17) कृणाति
कृ श्ना ति—पूर्ववत्।

(18) ऋणाति
ऋ श्ना ति—ह्रस्व।

(19) गृणाति
गृ श्ना ति—ह्रस्व।

(20) ज्यनाति
ज्या श्ना ति।

(21) रिणाति
री श्ना ति।

(22) लिनाति
ली श्ना ति—पूर्ववत्।

(23) व्लिनाति
व्ली श्ना ति।

(24) प्लिनाति

(3478) मीनातेर्निगमे *81* (3585)

मीनातेरङ्गस्य शिति प्रत्यये परतो ह्रस्वो भवति निगमविषये। प्रमिणन्ति व्रतानि। निगम इति किम्? प्रमीणाति।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—वेद के विषय में 'मी' अङ्ग को ह्रस्व होता है, शित् प्रत्यय पर रहते।

उदा० (1) मिनाति
मी श्ना ति—ह्रस्व।

(2) प्रमिणन्ति
प्र मी श्ना झि—झोऽन्तः,
प्र मि ना अन्ति—'हिनुमीना०' से णत्व तथा 'श्नाऽभ्यस्तयोरातः' से आकारलोप।

निगम०—वेद के विषय में ही 'मी' अङ्ग को ह्रस्व होता है।

(3) प्रमीणाति
लोक में ह्रस्व नहीं हुआ।

(3479) मिदेर्गुणः *82* (2346)

मिदेरङ्गस्येको गुणो भवति शिति प्रत्यये परतः। मेद्यति, मेद्यतः, मेद्यन्ति। शितीत्येव-मिद्यते।

अर्थ—'मिद्' अङ्ग को गुण होता है, शित् प्रत्यय परे रहते।

'इको गुणवृद्धी' से यह गुण 'मिद्' के इकार के स्थान पर होता है।

उदा० (1) मेद्यति
मिद् श्यन् ति—शप् को बाध कर श्यन्,
मेद् य ति—गुण, अनुबन्धलोप।

(2) मेद्यतः
पूर्ववत् गुण।

(3) मेद्यन्ति
मिद् य झि—झोऽन्तः, गुण।

शिति०—शित् परे रहते ही गुण होता है।

(4) मिद्यते
मिद् यक् त—कर्मवाच्य, सार्वधातुके यक्, गुण नहीं हुआ।

(3480) जुसि च *83* (2481)

जुसि च प्रत्यये परत इगन्तस्याङ्गस्य गुणो भवति। अजुहवुः। अबिभयुः। अबिभरुः। अथ चिनुयुः, सुनुयुरित्यत्र कस्मान्न भवति? अत्र द्वे डित्त्वे-सार्वधातुकाश्रयम्, यासुडाश्रयं च। तत्र नाप्राप्ते सार्वधातुकाश्रयडित्त्वनिमित्ते प्रतिषेधे जुसि गुण आरभ्यमाणस्तमेव बाधते। यासुडाश्रयडित्त्वनिमित्तं तु न बाधते, तत्र हि प्राप्ते चाप्राप्ते चारभ्यत इति।

अर्थ—'जुस्' परे रहते इगन्त अङ्ग को गुण होता है।

यहाँ स्थानी का निर्देश नहीं है। अतः 'इको गुणवृद्धी' परिभाषा से 'इकः' पद उपस्थित होता है।

उदा० (1) अजुहवुः
हु झि—लङ्,
हु हु झि—शप् को श्लु, 'श्लौ' से द्वित्व,
जु हु जुस्—सिजभ्यस्तविदि०, कुहोश्चुः, अभ्यासे चर्च,
जु हो जुस्—गुण,
अजुहवुस्—अव्, अट्।

(2) अबिभयुः
भी झि—प्र०पु० बहुवचन, जुस्,
बि भी जुस्—द्वित्व आदि पूर्ववत्,
बि भे उस्—गुण, अय्।

(3) अबिभरुः
भृ झि—लङ्, श्लु,
भृ भृ जुस्—द्वित्व,
बि भर् जुस्—भृञामित्,
अबिभरुः—अट्।

अथ०—चिनुयुः तथा सुनुयुः—यहाँ गुण क्यों नहीं होता है। यहाँ दो डित्त्व होते हैं—एक सार्वधातुकाश्रय तथा दूसरा यासुट् आश्रय। इनमें सार्वधातुक को आश्रित करने वाला डित्त्व निमित्त है, जिसका ऐसे प्रतिषेध की अवश्यप्राप्ति में जुस् पर रहते आरम्भ किया जाता हुआ गुण सार्वधातुकाश्रय डित्त्वनिमित्तक निषेध का ही बाध करता है; यासुट् को आश्रित डित्त्व का बाध नहीं करता है। कारण कि ऐसे डित्त्व में प्राप्त रहते और अप्राप्त रहते यह गुण आरम्भ किया जाता है।

भाव यह कि 'चिनुयुः' में प्राप्ति है तथा 'अजुहवुः' में अप्राप्ति है; कारण कि इसमें यासुट् नहीं है। अतः यासुट् आश्रित डित्त्व-निमित्तक निषेध का बाध नहीं करता; बल्कि यहाँ डित्त्व रहता ही है। अतः गुण का निषेध हो जाता है।

(4) चिनुयुः
चि झि—शप् को बाध कर श्नु, स्वादिभ्यः श्नुः,
चि श्नु यासुट् जुस्—यासुट् परस्मैपदे०, झेर्जुस्,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चिनु यास् उस्—अनुबन्धलोप,
चि नु युस्—उस्यपदान्तात्।

(3481) सार्वधातुकार्धधातुकयोः *84* (2168)

सार्वधातुके आर्धधातुके च प्रत्यये परत इगन्तस्याङ्गस्य गुणो भवति। तरति। नयति। भवति। आर्धधातुके–कर्त्ता, चेता, स्तोता। सार्वधातुकार्धधातुकयोरिति किम्? अग्नित्वम्। अग्निकाम्यति। यति हि प्रत्यये, सङीति वोच्येत, इहापि स्यात्।

अर्थ—इगन्त अङ्ग को गुण होता है, सार्वधातुक तथा आर्धधातुक प्रत्यय परे रहते।

'तिङ् शित् सार्वधातुकम्' से सार्वधातुक संज्ञा तथा 'आर्धधातुकं शेषः' से आर्धधातुक संज्ञा होती है।

उदा० (क) सार्वधातुके—
(1) भवति
भू ति—तिङ् शित् सार्व०, कर्त्तरि शप्,
भू अ ति—लशक्वतद्धिते, हलन्त्यम्,
भो अ ति—गुण, अव्।

(2) नयति
णी → नी—'णो नः' से नकार,
नी शप् तिप्—पूर्ववत्,
ने अ ति—गुण, अय्।

(3) तरति
तॄ शप् ति—पूर्ववत्।

(ख) आर्धधातुके—
(4) चेता
चि तृ—ण्वुल्तृचौ, आर्धधातुकं शेषः,
चे तृ—गुण,
चेता—सु।

(5) स्तोता
स्तु तृ—पूर्ववत्,
स्तो तृ सु—गुण।

(6) कर्त्ता
कृ तृ—पूर्ववत्, गुण, उरण् रपरः, सु। ऋदुशनस्०।

सार्वधातु०—सार्वधातुक तथा आर्धधातुक प्रत्यय के परे रहते ही गुण होता है।

(7) अग्नित्वम्
अग्नि त्व—तस्य भावस्त्व०, न सार्वधातुक संज्ञा और न ही आर्धधातुक संज्ञा है,
अग्नि त्व सु—गुण नहीं हुआ।

(8) अग्निकाम्यति
अग्नि काम्यच् तिप्—गुण नहीं हुआ।

यदि०—यदि केवल 'प्रत्यये' ऐसा कहा होता तो यहाँ भी गुण होता।

(3482) जाग्रोऽविचिण्णल्ङित्सु *85* (2480)

'जागृ'–इत्येतस्याङ्गस्य गुणो भवति अविचिण्णल्ङित्सु परतः। जागरयति। जागरकः। साधुजागरी। जागरंजागरम्। जागरो वर्त्तते। जागरितः। जागरितवान्। वृद्धिविषये, प्रतिषेधविषये च यथा स्यात्–इति जागर्त्तेरयं गुण आरभ्यते। तस्मिन् कृते या 'अत उपधायाः' (7.2.116) वृद्धिः प्राप्नोति, सा न भवति। यदि हि स्याद्, अनर्थक एव गुणः स्यात्, चिण्णलोश्च प्रतिषेधवचनमनर्थकम्। अविचिण्णल्ङित्स्विति किम्। 'जॄगॄस्तजागृभ्यः क्विन्' (उ०सू० 503)–जागृविः। चिण्–अजागारि। णल्–जजागार। ङित्–जागृतः, जागृथः। 'वि' इति केचिदिकारमुच्चारणार्थं वर्णयन्ति। क्वसावपि वकारादौ गुणो न भवति–जजागृवान्। कथमजागरुः, अहं जजागर इति, अत्र प्रतिषेधः प्राप्नोति? न; अप्रतिषेधात्। अविचिण्णल्ङित्स्विति पर्युदासोऽयम्। अथ वा–'जाग्रः' इति प्राप्तिरसावानन्तर्याद् विचिण्णल्ङित्सु प्रतिषिध्यते; या तु 'जुसि च' (7.3.83), 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' (7.3.84) इति च प्राप्तिः, सा न प्रतिषिध्यते।

अर्थ—जागृ अङ्ग को गुण होता है; वि, चिण्, णल् तथा ङित् से अतिरिक्त सार्वधातुक तथा आर्धधातुक प्रत्ययों के परे रहते।

'इको गुणवृद्धी' परिभाषा से ऋकार को गुण होता है।

उदा० (1) जागरयति
जागृ णिच्—अनुबन्धलोप,
जागरि—गुण, उरण् रपरः, धातुसंज्ञा,
जागरि शप् तिप्—गुण, अय्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(2) जागरकः
जागृ ण्वुल्—अनुबन्धलोप, गुण,
जागर् अक सु—युवोरनाकौ।

(3) साधुजागरी
साधु जागृ णिनि—ताच्छील्य अर्थ में णिनि,
साधु जागर् इन्—अनुबन्धलोप, गुण, उरण् रपरः,
साधु जागरिन्—सु।

(4) जागरं जागरम्
जागृ णमुल्—आभीक्ष्ण्ये णमुल्, अनुबन्धलोप,
जागर् अम्—गुण, उरण् रपरः, सु,
जागरम् जागरम्—द्विर्वचन।

(5) जागरः
जागृ घञ्—भाव में प्रत्यय,
जागर् अ—लशक्वतद्धिते, हलन्त्यम्, गुण,
जागर सु—विभक्तिकार्य।

(6) जागरितः
जागृ क्त—'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' से इट्,
जागृ इ त—प्राप्त गुण का निषेध,
जागर् इ त सु—प्रकृत सूत्र से गुण।

(7) जागरितवान्
क्तवतु, पूर्ववत्।

वृद्धि०—वृद्धि का विषय (णिच्, ण्वुल्, णिनि, णमुल्, घञ्) तथा निषेध का विषय (क्त, क्तवतु)—इन दोनों स्थलों पर गुण हो जाय—इसलिए 'जागृ' अङ्ग को यह गुण का विधान किया गया है। उसके कर लेने पर 'अत उपधायाः' से जो वृद्धि आदेश प्राप्त होता है, वह नहीं होता है। यदि वृद्धि आदेश कर दिया जाय तो गुणविधान व्यर्थ हो जाता है। इसके अतिरिक्त चिण् व णल् का प्रतिषेध करना भी निरर्थक हो जायेगा।

अविचि०—वि, चिण्, णल् तथा ङित् प्रत्ययों को छोड़कर शेष के परे रहते गुण होता है।

(8) जागृविः
जागृ क्विन्—'जृशृस्तजागृभ्यः क्विन्' से 'क्विन्',
जागृ वि—ककार, नकार की इत्संज्ञा और लोप,
जागृवि सु—गुण नहीं हुआ।

(9) अजागारि
जागृ चिण् त—चिण् भावकर्मणोः,
अ जागृ इ—अनुबन्धलोप, वृद्धि, अट्।

(10) जजागार
जागृ णल्—लिट्, गुणनिषेध,
जागार् अ—वृद्धि, द्वित्व,
जाग् जागार् अ—हलादिः शेषः, ह्रस्वः,
ज जागार् अ—रूप बना।

(11) जागृतः
जागृ तस्—लट्, सार्वधातुकमपित्, शप् का लुक्,
जागृत स्—गुण नहीं हुआ।

(12) जागृथः
जागृ थस्—पूर्ववत्।

वि इति०—कुछ विद्वान् 'वि' यहाँ इकार उच्चारणार्थ स्वीकार करते हैं। तब क्वसु परे रहते भी गुण नहीं होता है।

(13) जजागृवान्
जागृ क्वसु—लिट्, क्वसु,
ज जागृ वस्—गुणनिषेध, द्वित्व, हलादिः शेषः, ह्रस्वः,
जजागृ वस् सु—विभक्तिकार्य, उगिदचां०, सान्तमहतः०।

कथम०—अजागरुः तथा अहं जजागर—इन स्थलों पर गुण किस प्रकार होता है ? यहाँ तो गुणनिषेध प्राप्त होता है।

(समा०) निषेध प्राप्त नहीं होता है, प्रतिषेध न होने से। 'अविचिण्णल्०' इस प्रकार पर्युदास है।

अथवा०—अथवा 'जाग्रः' यह 'अनन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वा' से जो प्राप्त हुआ, वह 'विचिण्णल्०' से निषेध होता है। 'जुसि च' से तथा 'सार्वधातुकार्धधातु०' से जो गुण की प्राप्ति होती है, उसका प्रतिषेध नहीं होता है।

(14) अजागरुः
जागृ झि—शप् का लुक्, जुस्, सिजभ्यस्त०,
जाग जुस्—'जुसि च' से प्राप्त गुण का प्रकृत सूत्र से प्रसज्य-प्रतिषेधपक्ष में गुण का निषेध,
अजागर् उस्—परन्तु पर्युदासप्रतिषेधपक्ष में निषेध की प्राप्ति नहीं हुई।

(15) जजागर
जागृ णल्—उ०पु०एकवचन, णलुत्तमो वा, अणित्त्व पक्ष में 'सार्वधातुकार्धधातु०' से प्राप्त गुण का पूर्ववत् निषेध, पुनः गुण होकर,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ज जागर् अ—द्वित्व, अभ्यासकार्य।

(3483) पुगन्तलघूपधस्य च *86* (2189)

पुगन्तस्याङ्गस्य लघूपधस्य च सार्वधातुकार्धधातुकयोर्गुणो भवति। पुगन्तस्य-ब्लेपयति, ह्वेपयति, क्नोपयति। लघूपधस्य-भेदनम्, छेदनम्, भेत्ता, छेत्ता। प्रत्ययादेरङ्गावयवस्य हलोरानन्तर्ये सति लघूपधगुणो न व्यावर्त्यते-इति ज्ञापितमेतत् क्नुसनोः कित्करणेन। त्रसिगृधिधृषिक्षिपेः क्नुः' (3.2.140)। 'हलन्ताच्च' (1.2.10) इति।

संयोगे गुरुसंज्ञायां गुणो भेत्तुर्न सिध्यति।
विध्यपेक्षं लघोश्चासौ कथं कुण्डिर्न दुष्यति॥
धातोर्नुमः कथं रङ्गेः स्यन्दिश्रन्थ्योर्निपातनात्।
अनल्लोपशिदीर्घत्वे विध्यपेक्षे न सिध्यतः॥
अभ्यस्तस्य यदाहाचि लङर्थं तत्कृतं भवेत्।
क्नुसनोर्यत्कृतं कित्त्वं ज्ञापकं स्याल्लघोर्गुणे॥
(म० भा०)

उपधा चात्र इगेव गृह्यते, ततो भिनत्तीति गुणो न भवति। अपरे-पुकि अन्तः पुगन्तः; लघ्वी उपधा लघूपधा; पुगन्तश्च लघूपधा च पुगन्तलघूपधमिति सूत्रार्थं वर्णयन्ति।

अर्थ—पुगन्त तथा लघूपध अङ्गों को गुण आदेश होता है, सार्वधातुक तथा आर्धधातुक प्रत्यय परे रहते।

'इको गुणवृद्धी' से इक् के स्थान पर गुण होता है। 'अर्तिह्वीव्ली०' से 'पुक्' आगम होता है। यह जिस समुदाय का अन्तावयव होता है, उसे 'पुगन्त' अङ्ग कहा जाता है। लघूपध = जिसकी उपधा में लघु वर्ण है।

उदा० (क) पुगन्तस्य—

(1) व्लेपयति
व्ली णिच्—अर्तिह्वीव्ली०' से 'पुक्', अनुबन्धलोप,
व्ली प् इ—पुगन्त अङ्ग 'व्लीप्' को गुण।
व्लेपि शप् ति—धातुसंज्ञा, शप्, सार्वधातुकार्ध०, अय्।

(2) ह्वेपयति
ह्वीप् इ—पूर्ववत्, पुक् आदि,
ह्वेपि—गुण, शेष सभी कार्य पूर्ववत्।

(3) क्नोपयति
क्नूप् इ—णिच्, पुक्,
क्नोप् इ—गुण, सभी कार्य पूर्ववत्।

(ख) लघूपधस्य—

(4) भेदनम्
भिद् ल्युट्—अनुबन्धलोप, युवोरनाकौ,
भेद् अन—लघूपधगुण,
भेदन सु—विभक्तिकार्य।

(5) छेदनम्
छिद् ल्युट्—'भेदनम्' की तरह।

(6) भेत्ता
भिद् तृच्—ण्वुल्तृचौ,
भेद् तृ—गुण,
भेत् तृ सु—खरि च।

(7) छेत्ता
छिद् तृच्—'भेत्ता' की तरह।

प्रत्यया०—(शङ्का) प्रत्यय के आदि तथा अङ्ग के अवयव के हल् के आनन्तर्य होने पर 'संयोगे गुरु' से संयोगसंज्ञा होकर लघु संज्ञा के बाधित हो जाने पर गुण नहीं होना चाहिए।

(समा०) 'त्रसिगृधिधृषि०' से 'क्नु' को किद्वत् तथा 'हलन्ताच्च' से 'सन्' को किद्वत् किया गया है। इससे ज्ञापित होता है कि लघूपधगुण यहाँ व्यावृत नहीं होता है।

संयोगे०—अङ्ग के अन्त्य में जो हल् तथा प्रत्यय के आदि में जो हल्, इन दोनों की संयोगसंज्ञा होकर पूर्ववर्त्ती उपधा में जो वर्ण उसकी 'संयोगे गुरु' से गुरुसंज्ञा होती है। फलतः 'भिद् तृच्' इस दशा में लघूपध गुण प्राप्त नहीं होती है।

(समा०) लघूपध से जो सार्वधातुक और आर्धधातुक किये गये हैं, उनके परे रहते अङ्ग को यह गुण होता है। अतः 'भिद् तृच्' इस स्थिति में चूँकि प्रत्यय लघूपध से विहित है। अतः गुण निर्बाध हो जाता है। यहाँ ध्यातव्य है कि 'लघोः' पद का अर्थात् 'लघूपधात्' किया जाता है। 'छन्दोभङ्गभयात्' ऐसा लिखा गया है।

(शङ्का) 'इदितो नुम् धातोः' से अङ्गाधिकार में 'नुम्' आगम होता है। अतः पहले नुम् न करके प्रत्यय ही किया जाता है। चूँकि लघूपध से ही प्रत्यय हुआ है। अतः 'कुण्डिता' आदि में गुण क्यों नहीं होता है ?

धातोर्नुमः—(समा०) 'इदितो नुम् धातोः' में धातु ग्रहण का प्रयोजन यह है कि उपदेश अवस्था में ही (अर्थात् पूर्व) 'नुम्' होता है, पश्चात् प्रत्यय होता है। उपधा में इक् के न रहने से गुण नहीं होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(शङ्का) 'रञ्ज् घञ्' इस स्थल पर प्रथम नुम् कर देने पर उपधा-वृद्धि प्राप्त नहीं होती है। तब 'रागः' शब्द सिद्ध नहीं होता है।

(समा०) 'स्यन्दो जवे' तथा 'अवो दैधो०' के द्वारा 'स्यन्दः' तथा 'श्रथः' शब्दों में वृद्धि का निपातन किया गया है। पूर्वोक्त कथन से यहाँ वृद्धि प्राप्त ही नहीं है। तब यहाँ वृद्धि का निपातन व्यर्थ होकर ज्ञापित करता है कि 'रागः' आदि लक्ष्यों में वृद्धि होती है।

(शङ्का) विध्यपेक्ष गुणविधानपक्ष में अनल्लोप तथा शि को दीर्घादेश—ये कार्य सिद्ध नहीं हो पाते हैं अर्थात् 'लघोः' पद को षष्ठ्यन्त मानकर इसके द्वारा विधान विशेषित होता है—इस पक्ष में 'राज्ञः' इत्यादि स्थलों पर ही 'अल्लोपोऽनः' की प्रवृत्ति हो सकेगी तथा 'अस्थन् टा 'इस दशा में अनङ् पश्चात् होने वाला है। अतः अकारलोप नहीं हो सकेगा। इसी प्रकार 'सामन् इ' इस स्थल पर ही सर्वनामस्थानलक्षण दीर्घत्व हो पायेगा तथा 'कुण्डानि' आदि स्थलों पर 'नुम्' के पश्चात् होने के कारण दीर्घादेश नहीं हो सकेगा।

अभ्यस्त०—'नाऽभ्यस्तस्याऽचि' के द्वारा अजादि पित् सार्वधातुक प्रत्यय परे रहते अभ्यस्तसंज्ञक लघूपध को गुण का निषेध कहा है। प्रकृत सूत्र के 'नेनेक्ति' आदि स्थलों पर गुण-निषेध नहीं होता है। यदि पूर्वोक्त कथन के अनुसार 'भिद् तृच्' इस स्थल पर गुण प्राप्त नहीं है तो 'नेनेक्ति' में भी गुण प्रसक्त नहीं होता है। तब गुणनिषेध का अभाव क्यों ? तब अचि व्यर्थ होकर ज्ञापित करता है कि ऐसे विषय पर भी गुण होता है।

(शङ्का) 'णिजिर् धातु से लङ् लकार में प्रत्यय होकर 'अनेनेक्' रूप बनता है। चूँकि इससे पर अजादि पित् सार्वधातुक न होने से गुणप्रतिषेध होता है। अतः यहाँ 'अचि' पद का पूर्व ज्ञापित प्रयोजन नहीं माना जा सकता; अपितु 'अचि' पद के ग्रहण का फल यह है कि 'अनेनेक्' में गुणप्रतिषेध न हो।

(समा०) 'त्रसिगृधिधृषि०' के द्वारा 'क्नु' प्रत्यय को कित् किया गया है तथा 'हलन्ताच्च' से 'सन्' प्रत्यय को कित् किया गया है। ये दोनों कित् करण लघूपध गुण में ज्ञापक हैं। यदि 'भिद् तृ' यहाँ गुणनिषेध की प्राप्ति मान लें तो 'गृध् नु' तथा 'सिसृक्षति'—इन स्थलों पर गुण प्राप्त ही नहीं है। तब निषेध कैसा ? अतः कित् करण व्यर्थ होकर ज्ञापित करता है कि पूर्ववत् संयोग को मानकर लघूपध गुणनिषेध नहीं होता है।

उपधा०—यहाँ उपधा 'इक्' का ही ग्रहण होता है। तब 'भिनत्ति' यहाँ उपधा में 'इक्' के अप्राप्त रहने से गुण नहीं होता है। अन्य विद्वान् (इस प्रकार कहते हैं)—पुकि अन्तः—पुगन्तः। लघ्वी उपधा—लघूपधा। पुगन्तश्च लघूपधा च—पुगन्तलघूपधम्—इस प्रकार समाहार द्वन्द्व मानकर सूत्र का अर्थ करते हैं।

(3484) नाभ्यस्तस्याचि पिति सार्वधातुके *87* (2503)

अभ्यस्तसंज्ञकस्याङ्गस्य लघूपधस्याजादौ पिति सार्वधातुके गुणो न भवति। नेनिजानि, वेविजानि, परिवेविषाणि। अनेनिजम्, अवेविजम्, पर्यवेविषम्। अभ्यस्तस्येति किम् ? वेदानि। अचीति किम् ? नेनेक्ति। पिद्ग्रहणमुत्तरार्थम्। सार्वधातुक इति किम् ? निनेज। लघूपधस्येत्येव-जुहवानि। अजुहवम्। *बहुलं छन्दसीति वक्तव्यम्* (म० भा०)। जुजोषदिति यथा स्यात् (म० भा०)। पस्पशाते। चाकशीति। वावशीति। यङ्लुकि छान्दसमुपधाह्रस्वत्वं द्रष्टव्यम्। पस्पशाते-इत्यत्राभ्यासह्रस्वत्वं च। प्रकृत्यन्तराणां वा स्पशिकशिवशीनामेतानि रूपाणि।

अर्थ—अभ्यस्तसंज्ञक तथा लघूपध अङ्ग को गुण नहीं होता है, अजादि सार्वधातुक पित् प्रत्यय परे रहते।

उदा० (1) नेनिजानि

णिजिर्—'णो नः' से नकार, इर इत्संज्ञा वाच्या,

निज् मिप्—लोट्, उ०पु० एकवचन, मेर्निः, आङ् उत्तमस्य पिच्च,

निज् आ नि—शप्, श्लु, श्लौ,

नि निज् आ नि—हलादिः शेषः,

ने नि ज् आ नि—निजां त्रयाणां गुणः, 'उभेऽभ्यस्तम्' से अभ्यस्त संज्ञा, इससे पर 'आनि' है, जो अजादि पित् तथा सार्वधातुक है,

नेनिजानि—प्राप्त लघूपध गुण का निषेध।

(2) अनेनिजम्

णिजिर् मिप्—लङ्, अम् आदेश, शेष पूर्ववत्।

(3) वेविजानि

विजिर्—इर इत्संज्ञा वाच्या,

विज् मिप्—लोट्, शेष 'नेनिजानि' की तरह।

(4) अवेविजम्

विज् मिप्—लङ्, शेष 'अनेनिजम्' की तरह।

(5) परिवेविषाणि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विष्—लोट्, मिप्, पूर्ववत् गुण का निषेध।

(6) पर्यवेविषम्
विष्—लङ्, मिप्—शेष पूर्ववत्।

अभ्यस्त०—**अभ्यस्तसंज्ञक** अङ्ग को गुण का निषेध होता है।

(7) वेदानि
विद् मि—शप्, शप् का लुक्,
विद् आ नि—मेर्निः, आङ् उत्तमस्य पिच्च,
वेद् आनि—'आनि' अजादि, पित् तथा सार्वधातुक है, परन्तु इसके पर रहते 'विद्' अनभ्यस्त को गुण का निषेध नहीं हुआ,
वेदानि—गुण।

अचीति०—**अजादि** पित् सार्वधातुक परे रहते गुणनिषेध होता है।

(8) नेनेक्ति
णिजिर् → निज्—णो नः, इर इत्संज्ञा वाच्या,
निज् तिप्—लट्, शप्, श्लु,
नि निज् ति—द्वित्व, अभ्यास को गुण,
ने निज् ति—'ति' पित् तथा सार्वधातुक प्रत्यय है; परन्तु अजादि नहीं होने से इसके परे रहते अभ्यस्तसंज्ञक 'नेनिज्' अङ्ग को प्राप्त गुण का निषेध नहीं हुआ,
नेनेक् ति—गुण, चोः कुः।

पिद्—'पिति' पद उत्तर शास्त्र के लिए गृहीत है।

सार्वधा०—**सार्वधातुक**, अजादि, पित् परे रहते गुणनिषेध होता है।

(9) निनेज
णिजिर् → निज्—पूर्ववत्,
निज् णल्—लिट्, परस्मैपदानां०,
निनिज् अ—अनुबन्धलोप, द्वित्व, अभ्यस्तसंज्ञा, 'अ' अजादि तथा स्थानिवद्भाव से पित् है; परन्तु सार्वधातुक नहीं, अतः 'णल्' के परे रहते लघूपध गुण का निषेध नहीं हुआ,
निनेज् अ—गुण।

लघूपध०—पित्, अजादि व सार्वधातुक प्रत्यय परे रहते अभ्यस्त अङ्ग को **लघूपध** गुण का निषेध होता है।

(10) जुहवानि
हु मिप्—लोट्, मेर्निः,
हु हु नि—'श्लौ' से द्वित्व,
जु हु आट् नि—कुहोश्चुः, अभ्यासे चर्च, आङ् उत्तमस्य पिच्च,
जुहो आ नि—'आनि' अजादि, पित् तथा सार्वधातुक है, इसके परे रहते लघूपध गुण प्राप्त ही नहीं है, अपितु सार्वधातुकलक्षण इगन्त अङ्ग को गुण प्राप्त है, अतः निषेध नहीं हुआ,
जुहव् आनि—'अव्'।

(11) अजुहवम्
हु मिप्—लङ्, 'अम्' आदेश,
जु हु अम्—पूर्ववत् गुणनिषेध नहीं हुआ।
अ जुहो अम्—गुण, अव्, अट्।

बहुल०—वेद के विषय में अजादि, पित् तथा सार्वधातुक प्रत्यय के परे रहते अभ्यस्तसंज्ञक अङ्ग को लघूपधगुण का निषेध बहुलता से होता है।

(12) जुजोषत्
जुष् तिप्—लेट्, लेटोऽडाटौ,
जुष् अ त्—इतश्च लोपः परस्मैप०, 'तुदादिभ्यः शः' से 'श' विकरण, 'बहुलं छन्दसि' से श्लुभाव,
जु जुष् अ त्—'श्लौ' से द्वित्व, हलादिः शेषः,
जुजोषत्—बहुलता से गुणनिषेध नहीं हुआ।

(13) पस्पशाते
स्पश् यङ्—'यङोऽचि च' से लुक्,
प स्पश्—सन्यङोः, शर्पूर्वाः खयः,
पस्पाश्—दीर्घोऽकितः, धातुसंज्ञा,
पस्पाश् आ त—लेट्, आट्। व्यत्यय से 'आट्'।

(14) चाकशीति
काश् यङ्—पूर्ववत् यङ्लुक्,
च काश् ति—द्वित्व, अभ्यास को दीर्घ आदि।

(15) वावशीति
'चाकशीति' की तरह।

यङ्लुकि०—यङ्लुक् में उपधाह्रस्व छान्दस होता है तथा 'पस्पशाते' में अभ्यास ह्रस्वादेश।

प्रकृत्य०—अथवा ये रूप स्पश्, कश् तथा वश्—इन भिन्न प्रकृतियों से भी सिद्ध होते हैं।

(3485) भूसुवोस्तिङि *88* (2224)

भू, सू-इत्येतयोस्तिङि सार्वधातुके गुणो न भवति।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अभूत्, अभूः, अभूवम्। सुवै, सुवावहै, सुवामहै। सूते-र्लुग्विकरणस्येदं ग्रहणम्। सुवति-सूयत्योर्विकरणेन तिङो व्यवधानम्। विकरणस्यैव ङित्त्वाद् गुणाभावः सिद्धः। तिङीति किम्? भवति। 'सार्वधातुके' इत्येव-व्यतिभविषीष्ट। अथ बोभवीतीति यङ्लुकि गुणप्रतिषेधः कस्मान्न भवति। ज्ञापकात्। यदयं बोभूत्विति गुणाभावार्थं निपातनं करोति।

अर्थ—भू तथा सू—इन अङ्गों को पित्, सार्वधातुक तिङ् परे रहते गुण नहीं होता है।

उदा० (1) अभूत्
भू तिप्—लुङ्,
भू च्लि त्—च्लि लुङि, इतश्च,
भू सिच् त्—च्लेः सिच्, 'गातिस्थाघु०' से लोप,
भू त्—'त' पित् सार्वधातुक तिङ् परे है, 'सार्वधातुकार्ध०' से गुण प्राप्त,
अभूत्—प्रकृत सूत्र से निषेध, अट्।

(2) अभूः
भू सिप्—लुङ्, इतश्च।
अभूस्—शेष 'अभूत्' की तरह।

(3) अभूवम्
भू मिप्—लुङ्, तस्थस्थमिपां०,
भू व् अम्—भुवो वुग्०,
अभूवम्—गुणनिषेध।

(4) सुवै
षू → सू—धात्वादेः षः सः,
सू इ—लोट्, उ०पु० एकवचन, शप् का लुक्, टि को एत्व,
सू आ ए—आड् उत्तमस्य पिच्च, गुण प्राप्त, निषेध,
सुव् आ ए—'अचि श्नुधातु०' से उवङ् आदेश, 'आटश्च' से वृद्धि।

(5) सुवावहै
सू आट् वहि—पूर्ववत् सकार, लोट्, आट्, शप् का लुक्,
सू आ व हे—टित आत्मनेपदानां०,
सू आ वहै—एत ऐ, प्राप्त गुण का निषेध,
सुव् आवहै—उवङ्।

(6) सुवामहै
सू आट् महि—सभी कार्य 'सुवावहै' की तरह।

सूते०—लुक् विकरण वाले अर्थात् आदादिक 'षू' धातु का यहाँ ग्रहण होता है। तौदादिक तथा दैवादिक धातुओं के विषय में विकरण के द्वारा तिङ् का व्यवधान होता है। विकरणों के ङित् होने से गुण का निषेध सिद्ध ही है।

भावार्थ यह है कि 'सू' धातु का धातुपाठ में तीन स्थलों पर पाठ प्राप्त होता है। यथा—

(क) षू प्रेरणे (तुदा०),
(ख) षू (दिवा०),
(ग) षूङ् प्राणिगर्भविमोचने (अदा०)।

तुदादिगण में 'श' तथा दिवादिगण में 'श्यन्' विकरण प्राप्त होने हैं। दोनों शित् तथा अपित् हैं। शित् होने से 'तिङ्शित् सार्वधातुकम्' से सार्वधातुक संज्ञा होती है। 'सार्वधातुकमपित्' होने से ये ङिद्वत् होते हैं। इनके परे रहते 'क्ङिति च' से स्वतः गुणनिषेध होता है। अतः 'सू' के द्वारा केवल आदादिक 'सू' का ग्रहण होता है।

तिङी०—तिङ् सार्वधातुक के परे रहते सूत्रोक्त गुणनिषेध होता है।

(7) भवति
भू शप् ति—लट्, तिङ् शित् सार्वधातुकम्, कर्त्तरि शप्,
भो अ ति—लशक्वतद्धिते, हलन्त्यम्, 'शप्' परे है जो सार्वधातुक है परन्तु तिङ् नहीं है, गुणनिषेध नहीं हुआ,
भव् अ ति—अव् आदेश।

सार्वधा०—सार्वधातुक तिङ् परे रहते सूत्रोक्त गुणनिषेध होता है।

(8) व्यतिभविषीष्ट
भू त—आशीर्लिङ्, 'कर्त्तरि कर्मव्यतिहारे' से आत्मनेपद,
भू सीयुट् सुट् त—'लिङाशिषि' से आर्धधातुकसंज्ञा, सीयुट्, सुट् तिथोः,
भू इ सी स् त—इट्, अनुबन्धलोप, यकारलोप,
भवि षी स् त—गुण का निषेध नहीं हुआ, षत्व,
अभविषीष् ट—षत्व, ष्टुत्व, अट्।

अथ०—'बोभवीति' में यङ्लुक् में गुण का निषेध क्यों नहीं होता है।

(समा०) ज्ञापक से यह निषेध नहीं होता है। यह जो 'बोभूतु' यहाँ गुणाभाव के लिए निपातन करता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(3486) उतो वृद्धिर्लुकि हलि *89* (2443)

'सार्वधातुके', 'पिति' इति वर्त्तते। उकारान्तस्याङ्गस्य वृद्धिर्भवति लुकि सति हलादौ पिति सार्वधातुके। यौति, यौषि, यौमि। नौति, नौषि, नौमि। स्तौति, स्तौषि, स्तौमि। उत इति किम्? एति, एषि, एमि। लुकीति किम्? सुनोति, सुनोषि, सुनोमि। हलीति किम्? यवानि, रवाणि। 'पिति' इत्येव-युतः, रुतः। अपि स्तुयाद्राजानम्-इत्यत्र हि 'ङिच्च पित्र भवति' इति पित्त्वप्रतिषेधाद् वृद्धेरभावः। 'नाभ्यस्तस्य' (7.3.87) इत्येतदिहानुवर्त्तते-योयोति, रोरोति-इत्येवमाद्यर्थम्।

अर्थ—सार्वधातुके, पिति—इनका अनुवर्त्तन है। लुक् के विषय में ह्रस्व उकारान्त अङ्ग के स्थान पर वृद्धि आदेश होता है, हलादि पित्, सार्वधातुक प्रत्यय के परे रहते। लट्, लोट्, लङ् तथा विधिलिङ् सार्वधातुक लकार हैं। तिप्, सिप् तथा मिप्—ये पित् हलादि प्रत्यय हैं। विधिलिङ् में यासुट् ङित् होता है। अतः 'ङिच्च पित्र भवति' परिभाषा के द्वारा विधिलिङ् में पित् सार्वधातुक प्राप्त नहीं होता है। इस प्रकार लट्, लोट्, लङ्—इन लकारों में तिप्, सिप् तथा मिप् प्रत्ययों में ही यह सूत्र सावकाश है।

उदा० (1) यौति
यु ति—लट्, शप्, शप् का लुक्,
यौ ति—लुक् का विषय है, 'ति' पित् है, सार्वधातुक है तथा हलादि है, इसके परे रहते उकारान्त अङ्ग 'यु' को वृद्धि हुई।

(2) यौषि
यु सिप्—सभी कार्य पूर्ववत्,
यौ सि—षत्व।

(3) यौमि
यु मिप्—पूर्ववत्।

(4) नौति
नु ति—'यौति' की तरह।

(5) नौषि
'यौषि' की तरह।

(6) नौमि
'यौमि' की तरह।

(7) स्तौति
'नौति' की तरह।

(8) स्तौषि
'नौषि' की तरह।

(9) स्तौमि
'नौमि' की तरह।

उत्०—ह्रस्व उकारान्त अङ्ग को ही वृद्धि होती है।

(10) एति
इ ति—शप्, लुक्, 'तिप्' हलादि, पित् तथा सार्वधातुक है, लुक् का विषय भी है; परन्तु उकारान्त अङ्ग नहीं है,
ए ति—वृद्धि नहीं हुई, 'सार्वधातुकार्धधा०' से गुण।

(11) एषि
इ सिप्—'एति' की तरह।

(12) एमि
इ मिप्—'एति' की तरह।

लुकीति०—लुक् के विषय में ही सूत्रोक्त वृद्धि होती है।

(13) सुनोति
सु ति—लट्, शप् को बाध कर 'स्वादिभ्यः श्नुः' से 'श्नु',
सु नु ति—लशक्वतद्धिते,

सुनो ति—'सुनु' अङ्ग उकारान्त है, इससे पर हलादि, पित् व सार्वधातुक 'ति' है, परन्तु लुक् का विषय न होने से वृद्धि नहीं हुई, 'सार्वधातुकार्धधातु०' से गुण।

(14) सुनोषि
'सिप्' में पूर्ववत् वृद्धि की अप्राप्ति।

(15) सुनोमि
मिप्—पूर्ववत्।

हलीति०—हलादि, पित्, सार्वधातुक के परे रहते ही पूर्वोक्त वृद्धि होती है।

(16) यवानि
यु मिप्—लोट्, शप् का लुक्,
यु आ नि—मेर्निः, आड् उत्तमस्य०,

यो आ नि—लुक् का विषय है, 'आनि' पित् सार्वधातुक प्रत्यय है, 'यु' उकारान्त अङ्ग है; परन्तु 'आनि' प्रत्यय हलादि नहीं है; अतः वृद्धि नहीं हुई, 'सार्वधातुकार्धधातु०' से गुण।

(17) रवाणि
रु—पूर्ववत् 'नि', आट् आगम, वृद्धि की अप्राप्ति,
रो आ नि—गुण, णत्व।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पितीति०—हलादि, पित्, सार्वधातुक पित् परे रहते ही पूर्वोक्त वृद्धि आदेश होता है।

(18) सुतः

सु तस्—शप् का लुक्, 'तस्' हलादि तथा सार्वधातुक प्रत्यय है, 'सु' उकारान्त अङ्ग है, 'तस्' के पित् न होने से वृद्धि नहीं हुई,

सुतः—गुण भी नहीं हुआ।

(19) रुतः

रु तस्—पूर्ववत्।

अपि०—'अपि स्तुयाद् राजानम्' यहाँ 'ङिच्च पित्र भवति' इस नियम से 'यासुट्' के अपित् होने से वृद्धि नहीं हुई।

नाभ्य०—'नाऽभ्यस्तस्य' का भी यहाँ अनुवर्त्तन है। अतः निम्नलिखित में वृद्धि न हो—

(20) योयोति

यु—यङ्, यङ्लुक्,

यु यु ति—अभ्यास को गुण, अङ्ग को गुण।

(21) रोरोति

रु यङ्—यङ्लुक्,

रो रो ति—पूर्ववत्।

(3487) ऊर्णोतेर्विभाषा *90* (2449)

ऊर्णोतेर्विभाषा वृद्धिर्भवति हलादौ सार्वधातुके। प्रोर्णौति, प्रोर्णोति। प्रोर्णौषि, प्रोर्णोषि। प्रोर्णौमि, प्रोर्णोमि। 'हलि' इत्येव-प्रोर्णवानि।

अर्थ—ऊर्णु अङ्ग को विकल्प से वृद्धि आदेश होता है, हलादि पित् सार्वधातुक परे रहते।

उदा० (1) प्रोर्णौति

ऊर्णु तिप्—लट्, शप् का लुक्, वृद्धि नित्य प्राप्त,

प्र ऊर्णौ ति—हलादि व पित् सार्वधातुक 'तिप्' परे है, पाक्षिक वृद्धि होती है,

प्रोर्णौति—आद् गुणः।

(2) प्रोर्णोति

पक्ष में वृद्धि नहीं हुई, 'सार्वधातुकार्ध०' से गुण।

(3) प्रोर्णौषि

ऊर्णु सिप्—'प्रोर्णौति' की तरह।

(4) प्रोर्णोषि

पक्ष में गुण।

(5) प्रोर्णौमि

'प्रोर्णौति' की तरह।

(6) प्रोर्णोमि

पक्ष में गुण।

हलीति०—हलादि पित् सार्वधातुक परे रहते ही वृद्धि होती है।

(7) प्रोर्णवानि

प्र ऊर्णु आट् नि—मिप्, मेर्निः, आड् उत्तमस्य०, 'आनि' पित् व सार्वधातुक है, परन्तु हलादि नहीं है, अतः वृद्धि नहीं हुई।

प्रोर्णो आनि—गुण हुआ, अव्।

(3488) गुणोऽपृक्ते *91* (2448)

ऊर्णोतेर्धातोरपृक्ते हलि पिति सार्वधातुके गुणो भवति। प्रोर्णोत्। प्रोर्णोः। 'हलि' इति वर्तमाने यदपृक्तग्रहणं क्रियते, तेनैव ज्ञाप्यते-भवत्येषा परिभाषा 'यस्मिन्विधिस्तदादावल्ग्रहणे (व्या०प०) इति।

अर्थ—ऊर्णु अङ्ग को गुण होता है, अपृक्त, पित्, हलादि, सार्वधातुक प्रत्यय परे रहते।

लट् व लोट् में अपृक्त हलादि पित् प्राप्त नहीं है। विधि लिङ् में पित् उपलब्ध नहीं है। केवल लङ् में 'इतश्च' से लोप होकर प्र०पु० एकवचन तथा म०पु० एकवचन में ही अपृक्त हलादि पित् सार्वधातुक प्राप्त होता है।

उदा० (1) प्रोर्णोत्

प्र ऊर्णु तिप्—लङ्, इतश्च,

प्रोर्णो त्—गुण हुआ।

(2) प्रोर्णोः

सिप्—पूर्ववत्।

हलि०—प्रकृत सूत्र में 'हलि' पद का अनुवर्त्तन होने पर भी 'अपृक्ते' के ग्रहण से ज्ञापित होता है कि 'यस्मिन् विधिस्तदादा०' परिभाषा होती है।

(3489) तृणह इम् *92* (2545)

'तृणह' इत्येतस्याङ्गस्य इमागमो भवति हलि पिति सार्वधातुके। तृणेढि। तृणेक्षि। तृणेह्मि। अतृणेट्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वर्णाश्रयेऽप्यत्र प्रत्ययलक्षणमिष्यते। हलीति किम्? तृणहानि। 'पिति' इत्येव-तृण्ढः। 'तृणह'-इत्यागतश्नम्को गृह्यते, श्नमि कृते इमागमो यथा स्यादिति।

अर्थ—'तृह्' को श्नम् कर चुकने के पश्चात् 'तृणह्' इस अङ्ग को 'इम्' आगम होता है, हलादि, पित्, सार्वधातुक प्रत्यय परे रहते।

उदा० (1) तृणेढि
तृह् तिप्—रुधादिभ्यः श्नम्,
तृ श्नम् ह् ति—अनुबन्धलोप,
तृ न ह् ति—णत्व, ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्,
तृण इम् ह् ति—'इम्' आगम, मिदचोऽन्त्यात्परः,
तृणे द् ति—आद् गुणः, हो ढः,
तृणे द् धि—झषस्तथो०,
तृणे द् ढि—ष्टुना ष्टुः,
तृणे ढि—ढो ढे लोपः।

(2) तृणेक्षि
तृह् सिप्—पूर्ववत् श्नम्, इम्, ढत्व,
तृणेद् सि—षढोः कः सि,
तृणेक् षि—आदेशप्रत्यययोः।

(3) तृणेह् मि
तृह् मिप्—पूर्ववत्।

(4) अतृणेट्
तृ श्नम् ह् त्—लङ्, इतश्च, श्नम्,
तृणे द् त्—इम्, आद् गुणः, णत्व, ढत्व, हल्ङ्याब्भ्य०,
तृणेद्—झलां जशोऽन्ते, वाऽवसाने, अट्।

वर्णाश्रये०—यहाँ वर्णाश्रित भी प्रत्ययलक्षण होता है।

हलीति०—हलादि, पित्, सार्वधातुक परे रहते सूत्रोक्त 'इम्' होता है।

(5) तृणहानि
तृह् मि—लोट्,
तृ न ह् नि—श्नम्, मेर्निः,
तृ न ह् आ नि—आड् उत्तमस्य०,
तृणह् आ नि—ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्,
तृणहानि—'आनि' पित् तथा सार्वधातुक है, परन्तु हलादि नहीं है, अतः 'इम्' नहीं हुआ।

पिति०—पित् हलादि सार्वधातुक परे रहते 'इम्' होता है।

(6) तृण्ढः
'तृणु' यह प्रयोग काशिका में प्राप्त होता है; परन्तु न्यास तथा पदमञ्जरी—दोनों टीकाओं में 'तृण्ढः' प्रयोग व्याख्यात है।

तृह् तस्—लट्,
तृ श्नम् ह् तस्—श्नम्, अनुबन्धलोप,
तृ न् ह् तस्—श्नसोरल्लोपः,
तृ ण् द् तस्—हो ढः, नश्चाऽपदा०, अनुस्वार०,
तृण् द् धस्—झषस्तथो०,
तृण् द् ढस्—ष्टुना ष्टुः,
तृण् ढस्—ढो ढे लोपः।

तृणह०—'श्नम्' कर चुकने के पश्चात् 'तृह्' धातु के षष्ठी एकव० में 'तृणहः' रूप बनता है। अतः यहाँ कृत श्नस्क रूप का ही ग्रहण होता है। तब 'श्नम्' को कर चुकने के पश्चात् 'इम्' होता है। इसके दो प्रयोजन हैं—

(क) 'इम्' आगम 'श्नम्' का अपवाद नहीं है।
(ख) 'श्नम्' कर चुकने के पश्चात् 'इम्' आगम होता है।

(3490) ब्रुव ईट् *93* (2452)

'ब्रू'-इत्येतस्मादुत्तरस्य हलादेः पितः सार्वधातुकस्य ईडागमो भवति। ब्रवीति। ब्रवीषि। ब्रवीमि। अब्रवीत्। हलीत्येव-ब्रवाणि। पितीत्येव-ब्रूतः।

अर्थ— 'ब्रू' अङ्ग से उत्तर हलादि, पित्, सार्वधातुक को 'ईट्' आगम होता है।

टकार की इत्संज्ञा होती है।

उदा० (1) ब्रवीति
ब्रू ति—शप् का लुक्, हलादि, पित्, सार्वधातुक को 'ईट्' हुआ, 'आद्यन्तौ टकितौ' से आदि अवयव हुआ,
ब्रू ई ति—गुण, अव् आदेश।

(2) ब्रवीषि
ब्रू सिप्—पूर्ववत् ईट्, गुण, अव्।

(3) ब्रवीमि
ब्रू मिप्—पूर्ववत्।

(4) अब्रवीत्
ब्रू तिप्—लङ्, शप्, लुक्,
ब्रू ईट् त्—इतश्च, ईट् आगम,
अ ब्रो ई त्—गुण, अव्, अट्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हलीति०—हलादि पित् सार्वधातुक को 'ईट्' होता है।

(5) ब्रवाणि

ब्रू मि—लोट्, शप्, लुक्,

ब्रू आ नि—मेर्निः, 'आनि' पित् तथा सार्वधातुक तो है, परन्तु हलादि नहीं है,

ब्रो आ नि—'ईट्' नहीं हुआ, गुण, अव्।

पिती०—पित् हलादि सार्वधातुक को ही 'ईट्' होता है।

(6) ब्रूतः

ब्रू तस्—तस् हलादि व सार्वधातुक है, परन्तु पित् नहीं है। अतः 'ईट्' नहीं हुआ।

(3491) यङो वा *94* (2651)

यङ उत्तरस्य हलादेः पितः सार्वधातुकस्य ईडागमो भवति वा। शाकुनिको लालपीति। दुन्दुभिर्ववदीति। त्रिधा वद्धो वृषभो रोरवीति। महो देवो मर्त्यां आविवेश। (ऋ० 4.58.3)। न च भवति–वर्वर्त्ति, चर्कर्ति चक्रम्। हलादेः पितः सार्वधातुकस्य यङन्तादभाव इति यङ्लुगन्तस्योदाहरणम्।

अर्थ—यङ् से उत्तर हलादि पित् सार्वधातुक को ईट् आगम विकल्प से होता है।

उदा० (1) लालपीति

लप् यङ्—यङ्लुक्

लालप्—दीर्घोऽकितः,

लालप् ईट् ति—'ईट्'।

(2) वावदीति

वद् यङ्—पूर्ववत्।

(3) रोरवीति

रु यङ्—यङ्लुक्, यङोऽचि च,

रो रो ई ति—गुणो यङ्लुकोः।

(4) वर्वर्त्ति

वृ यङ्—यङ्लुक्,

वृ वृ ति—द्वित्व,

व वृ ति—'ऋतश्च' से 'रुक्' आगम,

वर् वृ ति—गुण, अचो रहाभ्यां द्वे।

(5) चर्कर्ति

कृ यङ्—पूर्ववत् यङ्लुक्, द्वित्व,

च र् कृ ति—कुहोश्चुः, रुक्,

चर्कर्त्ति—गुण, अचो रहाभ्यां द्वे।

हलादेः०—यङ् प्रत्ययान्त से सदा आत्मनेपद होता है। यहाँ हलादि पित् उपलब्ध नहीं है। अतः यहाँ यङ्लुक् के उदाहरण दिखाये गये हैं।

(3492) तुरुस्तुशम्यमः सार्वधातुके *95* (2444)

'तु' इति सौत्रोऽयं धातुः, 'रु शब्दे' (धा०पा० 1035), 'ष्टुञ् स्तुतौ' (धा०पा० 1044), 'शम उपशमे' (धा०पा० 1202), 'अम गत्यादिषु' (धा०पा० 455)–इत्येतेभ्यः परस्य सार्वधातुकस्य हलादेर्वा ईडागमो भवति। उत्तौति, उत्तवीति। उपरौति, उपरवीति। उपस्तौति, उपस्तवीति। शाम्यध्वम्, शमीध्वम्। अभ्यमति, अभ्यमीति। शम्यमोः 'बहुलं छन्दसि' (1.4.73) इति विकरणलुकि सति हलादिसार्वधातुकमनन्तरं सम्भवति। आपिशलाः–'तुरुस्तुशम्यमः सार्वधातुकासुच्छन्दसि' इति पठन्ति। तत्र सर्वेषामेव छन्दसि विषये विधिरयं भवति। 'सार्वधातुके'–इत्यनुवर्त्तमाने पुनः सार्वधातुकग्रहणमपिदर्थम्। स्तुवीत, शमीध्वमित्यत्रापि यथा स्यात् इति।

अर्थ—'तु' यह सौत्र धातु है। तु, रु, स्तु, शम् तथा अम्—इन अङ्गों से उत्तर हलादि सार्वधातुक को 'ईट्' आगम विकल्प से होता है।

उदा० (1) उत्तौति

उद् तु ति—शप्, लुक्, हलादि सार्वधातुक 'ति' को पाक्षिक 'ईट्' हुआ, इट् अभाव,

उद् तौ ति—उतो वृद्धिर्लुकि०,

उत् तौ ति—खरि च।

(2) उत्तवीति

उद् तु ई ति—'ईट्' पक्ष में,

उद् तो ई ति—गुण, खरि च।

(3) उपरौति

उप रु ति—'ईट्' अभाव, पूर्ववत् वृद्धि।

(4) उपरवीति

उप रु ई ति—'ईट्' पक्ष, गुण, अव्।

(5) उपस्तौति

उप स्तु ति—'ईट्' अभाव, वृद्धि।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(6) उपस्तवीति
ईट्, गुण।

(7) शाम्यध्वम्
शम् ध्वम्—'ईट्' अभाव।

(8) शमीध्वम्
शम् ई ध्वम्—'ईट्' पक्ष।

(9) अभ्यमति
अभि अम् ति—'ईट्' नहीं हुआ।

(10) अभ्यमीति
अभि अम् ई ति—'ईट्' हुआ।

शम्यमोः—शम् तथ अम् से अव्यवहित हलादि सार्वधातुक कैसे सम्भव होता है। शम् से 'श्यन्' होना चाहिए। अम् से 'शप्' किया जाता है।

(समा०) शम् तथा अम् से पर विकरण का लुक् 'बहुलं छन्दसि' से होता है।

आपि०—आपिशल व्याख्याकार 'तुरुस्तुशम्यमः सार्वधातुकासुच्छन्दसि' ऐसा पाठ स्वीकार करते हैं। वहाँ सभी को वेद के विषय में यह विधि होती है।

सार्वधा०—'सार्वधातुके' इसका अनुवर्त्तन होने पर भी पुनः 'सार्वधातुक' का ग्रहण अपित् के लिए है। यथा—

(11) स्तुवीत
स्तु त—लिङ्, 'त' अपित् हलादि सार्वधातुक है,
स्तु ईट् त—ईट्,
स्तुव् ई त—उवङ्।

(12) शमीध्वम्
शम् ध्वम्—लोट्,
शम् ई ध्वम्—'ईट्' हुआ।

(3493) अस्तिसिचोऽपृक्ते *96* (2225)

अस्तेरङ्गात् सिजन्ताच्च परस्यापृक्तस्य सार्वधातुकस्य ईडागमो भवति। अस्तेः-आसीत्। आसीः। सिजन्तात्-अकार्षीत्। असावीत्, अलावीत्। अपावीत्। अपृक्ते इति किम्? अस्ति। अकार्षम्। 'अहिभुवोरीटि प्रतिषेधः' इति स्थानिवद्भावप्रतिषेधः, तेनेह न भवति-आत्थ। अभूदिति।

अर्थ—'अस्' अङ्ग से उत्तर तथा सिजन्त अङ्ग से उत्तर अपृक्त हलादि सार्वधातुक को 'ईट्' आगम होता है।

'अस्' के द्वारा आदादिक 'अस्' का ग्रहण होता है।

उदा० (क) अस्तेः—

(1) आसीत्
अस् तिप्—लङ्, शप्, लुक्,
अस् ई त्—इतश्च, 'त्' की 'अपृक्त एकाल् प्रत्ययः' से अपृक्त संज्ञा,
आ असीत्—आड् अजादीनाम्, 'आटश्च' से वृद्धि।

(2) आसीः
अस् सिप्—पूर्ववत् इकारलोप, ईट्,
आ अस् ई स्—आटश्च।

(ख) सिजन्तात्—

(3) अकार्षीत्
कृ तिप्—लुङ्, इतश्च,
कृ स् त्—च्लि, सिच्, अनुबन्धलोप,
कृ स् ई त्—अपृक्त एकाल् प्रत्ययः, ईट्,
कार् सीत्—सिचि वृद्धिः परस्मै०,
अकार् षीत्—आदेशप्रत्यययोः, अट्।

(4) असावीत्
सु स् त—लुङ्, सिच्,
सु इ स् ई त्—आर्धधातुकस्येड्वलादेः, ईट्,
सौ इ ई त्—वृद्धि, 'इट ईटि' से सिच् का लोप,
अ साव् ईत्—सिच् लोप के सिद्ध होने से सवर्णदीर्घ, आव्, अट्।

(5) अलावीत्
लू तिप्—लुङ्, शेष पूर्ववत्।

(6) अपावीत्
पू तिप्—पूर्ववत्।

अपृक्त०—अपृक्त सार्वधातुक को 'ईट्' आगम होता है।

(7) अस्ति
अस् तिप्—लट्, शप्, शप् का लुक्, 'तिप्' सार्वधातुक है, परन्तु अपृक्तसंज्ञा न होने से 'ईट्' नहीं हुआ।

(8) अकार्षम्
कृ मिप्—लुङ्, 'अम्' आदेश
कृ स् अम्—सिच्, वृद्धि,
कार्स् अम्—'कार्स्' सिजन्त अङ्ग है, इससे उत्तर 'अम्'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सार्वधातुक है, परन्तु अपृक्त नहीं है, अतः 'ईट्' नहीं हुआ,
अकार्ष् अम्—षत्व, अट्।

आहि०—'आहिभुवोरीटि प्रतिषेधः' से स्थानिवद्भाव का निषेध होता है। अतः निम्नलिखित में नहीं होता है।

(9) आत्थ
ब्रू सिप्—'ब्रूवः पञ्चानामादित आहो०' से 'थल्',
आह् थ—हलन्त्यम्, स्थानिवद्भाव से 'आह्' हुआ तथा 'थल्' सार्वधातुक हुआ,
आ त् थ—ईट् प्राप्त, ईट् नहीं हुआ, आहस्थः, खरि च।

(10) अभूत्
भू स् त्—लुङ्, तिप्, इतश्च, सिप्,
भूत्—'भूस्' अङ्ग से उत्तर त् को 'ईट्' प्राप्त, ईट् नहीं हुआ,
'गातिस्था०' से सिच् लोप, अट्।

विशेष—काशिकासम्मत सूत्रार्थ में निम्नलिखित दो दोष प्रसक्त होते हैं—

(क) 'अभूत्' इस स्थल पर 'भू' को स्थानिवद्भाव से 'अस्' मानकर 'ईट्' की प्राप्ति होती है, परन्तु 'आहि भुवोरीटि प्रतिषेधः' (वा०) से निषेध होता है।

(ख) 'अपात्' (पा लुङ्) यहाँ 'गातिस्थाघु०' से सिच् प्रत्यय का लोप हुआ है। प्रत्ययलक्षण से अथवा स्थानिवद्भाव से 'ईट्' प्राप्त होता है।

उपर्युक्त दोनों दोषों के निवारण के लिए भट्टोजिदीक्षित ने प्रकृत सूत्र की व्याख्या निम्नलिखित प्रकार से की है। भट्टोजिदीक्षित के अनुसार 'अस्ति' पद में 'अस्' धातु का ग्रहण नहीं है, अपितु इसके द्वारा विभक्तिप्रतिरूपक 'अस्ति' अव्यय गृहीत होता है। 'अस्ति' अव्यय का अर्थ है—विद्यमान।

अस्तिसिचः—सिच् चाऽस् च—सिच स् (कुत्व व जश्त्व का अभाव सौत्रत्वात् है)। अस्ति (विद्यमानं) च तत् सिच स्—अस्ति सिचस्। 'सुपां सुलुक्०' से पञ्चमी विभक्ति का लुक् हुआ। सूत्रार्थ इस प्रकार है—

विद्यमानात् सिचोऽस्तेश्च परस्याऽपृक्तहल ईडागमः स्यात् अर्थात् विद्यमान सिच् से उत्तर तथा विद्यमान अस् से उत्तर अपृक्त हल् को 'ईट्' आगम होता है।

इस अर्थ के पक्ष में 'अस्' से निष्पन्न 'अभूत्' रूप में 'ईट्' प्राप्त नहीं होता है। कारण कि, यहाँ 'अस्' विद्यमान नहीं है। इसके अतिरिक्त 'भू' से निष्पन्न 'अभूत्' में सिच् के विद्यमान न रहने से भी 'इट्' की प्राप्ति नहीं होती है।

(3494) बहुलं छन्दसि *97* (3586)

अस्तिसिचोरपृक्तस्य सार्वधातुकस्य ईडागमो भवति बहुलं छन्दसि विषये। आप एवेदं सलिलं सर्वमाः। आसीदिति स्थाने आः क्रियापदम्। अहरेवासीन्न रात्रिः। (मै० 1.5.12) सिचः खल्वपि–गोभिरक्षाः (ऋ० 9. 107.9) प्रत्यञ्चमत्साः (ऋ० 10.28.4)। अभैषीर्मा पुत्रकेति च भवति; छान्दसत्वात्। माङ्योगेऽप्यडागमो भवति। अक्षाः, अत्सा इति। सिच इडभावश्च।

अर्थ—वेद के विषय में अस् तथा सिच् से उत्तर अपृक्त हलादि सार्वधातुक को बहुलता से 'ईट्' आगम होता है।

उदा० (1) आः
अस् तिप्—लङ्, इतश्च,
अस् त्—'ईट्' नहीं हुआ,
आ अस्—हल्ङ्याब्भ्यो०, आट्, आटश्च।

(2) आसीत्
अस् तिप्—लङ्, 'ईट्' हुआ,

(3) अक्षाः (ऋ० 9.107.9)
क्षर् तिप्—लुङ्, इतश्च,
क्षर् स् त्—सिच्, इट् का अभाव छान्दस होने से,
क्षार् स् त्—अतो ल्रान्तस्य,
अक्षार्—हल्ङ्याब्भ्यो०, रात्सस्य, खरवसानयोः०।

(4) अत्साः (ऋ० 10.28.4)
त्सर् त्—लुङ्, इतश्च,
त्सर् स् त्—सिच्,
अ त्सार् स्—पूर्ववत्, हल्ङ्यादिलोप, सकारलोप, अट्।

(5) अभैषीः
भी स् त्—लुङ् आदि पूर्ववत्,
भी स् ई त्—ईट्,
भै षीस्—सिचि वृद्धिः पर०, षत्व,
अभैषीः—अट्।

(3495) रुदश्च पञ्चभ्यः *98* (2475)

रुदादिभ्यः परस्य सार्वधातुकस्य हलादेरपृक्तस्य ईडागमो भवति। अरोदीत्, अरोदीः। अस्वपीत्, अस्वपीः। अश्वसीत्,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अश्वसीः । प्राणीत्, प्राणीः । अजक्षीत्, अजक्षीः । पञ्चभ्य इति किम्? अजागर्भवान्। 'अपृक्तस्य' इत्येव-रोदिति ।

अर्थ—पाँच रुद् आदि अङ्गों से उत्तर अपृक्त हलादि सार्वधातुक को 'ईट्' आगम होता है।

रुदादि पाँच ये हैं—

रुद्, स्वप्, श्वस्, अन् तथा जक्ष्।

उदा० (1) अरोदीत्

रुद् त्—लङ्, इतश्च, शप्, शप् का लुक्,

रुद् ई त्—ईट्,

रोदीत्—गुण,

अ रोदीत्—अट्।

(2) अरोदीः

रुद् सिप्—इतश्च,

रोद् ई स्—सभी पूर्ववत्।

(3) अस्वपीत्

स्वप् त्—लङ्, इतश्च,

स्वप् ई त्—ईट्,

अस्वपीत्—अट्।

(4) अस्वपीः

स्वप् सिप्—पूर्ववत्।

(5) अश्वसीत्

श्वस् तिप्—'अस्वपीत्' की तरह।

(6) अश्वसीः

श्वस् सिप्—'अश्वसीः' की तरह।

(7) प्राणीत्

अन् ईट् त्—तिप्, इतश्च, ईट्,

प्र अनीत्—'अनितेः' से णत्व।

(8) प्राणीः

प्र अन् सिप्—पूर्ववत्।

(9) अजक्षीत्

जक्ष् तिप्—पूर्ववत्।

(10) अजक्षीः

जक्ष् सिप्—पूर्ववत्।

पञ्चभ्य०—पाँच रुद् आदि अङ्गों से उत्तर हलादि अपृक्त को ईट् आगम होता है।

(11) अजागः

जागृ तिप्—'इतश्च', 'ईट्' नहीं हुआ,

जागर् त्—गुण, हल्ङ्याब्भ्यो०,

अजागः—अट्, विसर्ग।

अपृक्त०—अपृक्त हलादि सार्वधातुक को ही 'ईट्' होता है।

(12) रोदिति

रुद् तिप्—रुद् से उत्तर हलादि सार्वधातुक 'ति' है, परन्तु इसके अपृक्तसंज्ञक न होने से 'ईट्' नहीं हुआ,

रोद् इ ति—इट्, गुण।

(3496) अड् गार्ग्यगालवयोः *99* (2476)

रुदादिभ्यः पञ्चभ्यः परस्य अपृक्तस्य सार्वधातुकस्याडागमो भवति गार्ग्यगालवयोर्मतेन। अरोदत्, अरोदः। अस्वपत्, अस्वपः। अश्वसत्, अश्वसः। प्राणत्, प्राणः। अजक्षत्, अजक्षः। गार्ग्यगालवयोर्ग्रहणं पूजार्थम्।

अर्थ—गार्ग्य तथा गालव आचार्यों के मत में रुद् आदि पाँच धातुओं से उत्तर अपृक्त हलादि सार्वधातुक को अट् होता है।

उदा० (1) अरोदत्

रुद् तिप्—इतश्च,

अ रोद् अ त्—अट्, गुण।

(2) अरोदः

रुद् सिप्—पूर्ववत्।

(3) अस्वपत्

अट् आगम।

(4) अस्वपः

'सिप्' में 'अट्'।

(5) अश्वसत्

तिप्—पूर्ववत्।

(6) अश्वसः

'सिप्'—पूर्ववत्।

(7) प्राणत्

अन् तिप्—पूर्ववत्।

(8) प्राणः

प्र अन् सिप्।

(9) अजक्षत्

जक्ष् तिप्—पूर्ववत्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(10) अजक्षः
जक्ष् सिप्।

गार्ग्य०—गार्ग्य तथा गालव का ग्रहण सत्कार के लिए है।

(3497) अदः सर्वेषाम् *100* (2426)

'अद भक्षणे' (धा०पा० 1012)–अस्मादुत्तरस्यापृक्तस्य सार्वधातुकस्याडागमो भवति सर्वेषामाचार्याणां मतेन। आदत्। आदः। 'अपृक्तस्य' इत्येव–अत्ति। अत्सि।

अर्थ—'अद्' अङ्ग से उत्तर अपृक्त सार्वधातुक को 'अट्' आगम सभी आचार्यों के मत में होता है।

उदा० (1) आदत्
अद् त्—लङ्, इतश्च,
आ अद् अट् त्—आङ् अजादीनाम्,
आद् अत्—आटश्च।

(2) आदः
अद् स्—इतश्च,
आ अद् अ स्—आट्, अट्,
आद स्—आटश्च।

अपृक्त०—अपृक्त सार्वधातुक को ही 'अट्' होता है।

(3) अत्ति
अद् ति—'ति' सार्वधातुक है, परन्तु अपृक्त नहीं है, अतः 'अट्' आगम नहीं हुआ,
अत् ति—खरि च।

(4) अत्सि
अद् सि—पूर्ववत् 'अट्' अभाव।

(3498) अतो दीर्घो यञि *101* (2170)

अकारान्तस्याङ्गस्य दीर्घो भवति यञादौ सार्वधातुके परतः। पचामि, पचावः, पचामः। पक्ष्यामि, पक्ष्यावः, पक्ष्यामः। अत इति किम्? चिनुवः, चिनुमः। यञीति किम्? पचतः। पचथः। 'सार्वधातुके' इत्येव–अङ्गना, केशवः। केचिदत्र 'तिङि' इत्यनुवर्त्तयन्ति, तेषां भववानिति क्वसौ सार्वधातुकदीर्घो न भवति।

अर्थ—अदन्त अङ्ग को दीर्घ आदेश होता है, यञादि सार्वधातुक परे रहते। अलोऽन्त्य परिभाषा से अन्त्य अल् (अकार) के स्थान पर दीर्घ होता है।

उदा० (1) पचामि
पच् मि—तिङ् शित् सार्वधातुकम्, कर्त्तरि शप्,
पच् अ मि—'पच' अदन्त अङ्ग है, 'मि' यञादि सार्वधातुक परे है,
पचामि—दीर्घ।

(2) पचावः
पच् वस्—शप्, दीर्घ।

(3) पचामः
पच् मस्—पूर्ववत्।

(4) पक्ष्यामि
पच् मि—ऌट् शेषे च,
पच् स्य मि—स्यतासी ऌ०,
पक् स्य मि—कुत्व,
पक्ष्य मि—षत्व, दीर्घ।

(5) पक्ष्यावः
पच् वस्—ऌट्, पूर्ववत् 'स्य' आदि।

(6) पक्ष्यामः
पच् मस्—'पक्ष्यावः' की तरह।

अत०—अदन्त अङ्ग को दीर्घ होता है।

(7) चिनुवः
चि वस्—लट्, स्वादिभ्यः श्नुः,
चि श्नु वस्—लशक्वतद्धिते,
चिनु वस्—यञादि सार्वधातुक 'वस्' परे है, परन्तु 'चिनु' अदन्त अङ्ग नहीं है, अतः दीर्घ नहीं हुआ।

(8) चिनुमः
चि मस्—पूर्ववत्।

यञी०—यञादि सार्वधातुक परे रहते अदन्त अङ्ग को दीर्घ होता है।

(9) पचतः
पच् तस्—लट्, कर्त्तरि शप्,
पच् अ तस्—'पच' अदन्त अङ्ग है, 'तस्' सार्वधातुक है; परन्तु यञादि नहीं है, अतः दीर्घ नहीं हुआ।

(10) पचथः
पच् थस्—पूर्ववत् दीर्घाभाव।

सार्वधा०—सार्वधातुक यञादि परे रहते अदन्त अङ्ग को दीर्घ होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(11) अङ्गना

प्रशस्तान्यङ्गान्यस्याः सन्ति—इस अर्थ में, लोमादि०,

अङ्ग न—'अङ्ग' अदन्त अङ्ग है, 'न' यञादि प्रत्यय है, परन्तु सार्वधातुक नहीं है, अङ्ग को दीर्घ नहीं हुआ,

अङ्ग न टाप्—स्त्रियाम्, अजाद्यतष्टाप्, सु।

(12) केशवः

केशा यस्य सन्ति—'केशाद्वोऽन्यतर०' से 'व',

केशव—पूर्ववत् दीर्घ नहीं हुआ।

केचिद०—कुछ विद्वान् यहाँ 'तिङि' का अनुवर्त्तन करते हैं। उनके मत में 'भववान्' यहाँ सार्वधातुक दीर्घ नहीं होता है।

(13) भववान्

भू क्वसु—लिट्, लिटः०, 'छन्दस्युभयथा' से सार्वधातुक,

भू शप् वस्—कर्त्तरि शप्,

भव वस्—'सार्वधातुकार्धधातु०' से गुण, 'अव्' आदेश,

भव वस् सु—'भव' अदन्त अङ्ग है, 'वस्' यञादि सार्वधातुक है, परन्तु तिङ् नहीं है, अतः दीर्घ नहीं हुआ,

भववान् स् स्—नुम्, सान्तमहतः संयो०, हल्ङ्याब्भ्यो०, संयोगान्तस्य लोपः।

विशेष—1. 'अतः' पद में तपरकरण उत्तर शास्त्र के लिए है।[1] ताकि 'खट्वाभिः' इस स्थल पर अदन्त अङ्ग के न मिलने से बहुवचन झलादि सुप् 'भिस्' के परे रहते 'एत्' आदेश न हो।

2. पूर्व शास्त्र से 'अड्' आगम सुलभ था। अतः 'अतो दीर्घो यञि' के स्थान पर 'अतो यञि' पाठमात्र से इष्टसिद्धि हो जाती है। 'पच् शप् अट् वस्' इस स्थिति में 'अट्' विधानसामर्थ्य से 'अतो गुणे' की प्रवृत्ति भी नहीं होती है। तब सवर्णदीर्घ होकर 'पचावः' बनता है। 'अट्' विधानपक्ष में निम्नलिखित दोष प्रसक्त होते हैं—

(14) अधुक्षावहि

दुह् क्स वहि—लुङ्, 'शल इगुपधा०' से 'क्स',

दुघ् स वहि—दाऽऽदेर्धातो०,

धुघ् स वहि—एकाचो बशो०,

धुक् ष वहि—षढोः कः सि, षत्व, इस दशा में 'अट्' कर देने पर 'क्सस्याऽचि' से अन्त्य लोप प्राप्त होकर अनिष्ट रूप प्राप्त होता है।

अधुक्षावहि—अतो दीर्घो यञि।

1. पदम० 7.3.101 तपरकरणम् उत्तरार्थम्।

(15) अतिजराभ्याम्

यहाँ भी 'जरस्' भाव अनिष्ट रूप प्राप्त होता है। अतः 'अट्' आगम न करके दीर्घविधान किया है।

पुनः प्रश्न यह है कि 'दीर्घः' पद के स्थान पर 'आत्' पद का ग्रहण करने से भी लाघव होता है।

(समा०) 'आत्' विधान में निम्नलिखित दोष प्रसक्त होते हैं।[1]

अपाक्षी रोदनं देवदत्त, ननु पचामि भोः इत्यादि स्थलों पर अनन्त्यस्यापि प्रश्नाख्यानयोः से प्लुत प्राप्त होता है। अतः उसके कारण के लिए 'दीर्घः' पद उचित है।

(3499) सुपि च *102* (202)

'अतो दीर्घो यञि' (1.3.101) इत्यनुवर्त्तते। सुपि च यञादौ परतोऽकारान्तस्याङ्गस्य दीर्घो भवति। वृक्षाय। प्लक्षाय। वृक्षाभ्याम्। प्लक्षाभ्याम्। 'अतः' इत्येव-अग्निभ्याम्। 'यञि' इत्येव-वृक्षस्य। प्लक्षस्य।

अर्थ—'अतो दीर्घो यञि' का अनुवर्त्तन है। अदन्त अङ्ग को दीर्घ होता है, यञादि सुप् परे रहते।

यञादि सुप् सात हैं—

(1) भ्याम्, (2) भिस्, (3) य ('ङेर्यः' से प्राप्त आदेश), (4) भ्याम्, (5) भ्यस्, (6) भ्याम्, (7) भ्यस्।

उदा० (1) वृक्षाय

वृक्ष ङे—चतुर्थी एकवचन,

वृक्ष य—ङेर्यः, स्थानिवद्भाव से 'य' सुप् हुआ,

वृक्षा य—सुपि च।

(2) प्लक्षाय

प्लक्ष ङे—पूर्ववत्।

(3) वृक्षाभ्याम्

वृक्ष भ्याम्—यञादि सुप् 'भ्याम्' परे है,

वृक्षाभ्याम्—अदन्त अङ्ग 'वृक्ष' को दीर्घ।

(4) प्लक्षाभ्याम्

प्लक्ष भ्याम्—पूर्ववत्।

अत०—अदन्त अङ्ग को ही दीर्घ होता है।

(5) अग्निभ्याम्

अग्नि भ्याम्—'भ्याम्' यञादि सुप् है, परन्तु 'अग्नि' अदन्त अङ्ग नहीं है, दीर्घ नहीं हुआ।

1. न्यास० 7.2.101 आदिति वक्तव्ये दीर्घग्रहणम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(6) वायुभ्याम्
वायु भ्याम्—पूर्ववत्।

यञि०—यञादि सुप् परे रहते ही अदन्त अङ्ग को दीर्घ होता है।

(7) वृक्षस्य
वृक्ष ङस्—'टाङसिङसामिनात्स्याः' से 'स्य' आदेश, स्थानिवद्भाव से सुप्त्व धर्म हुआ, परन्तु इसके यञादि न होने से अदन्त अङ्ग 'वृक्ष' को दीर्घ नहीं हुआ।

(8) प्लक्षस्य
प्लक्ष ङस्—ष०एकवचन,
प्लक्ष स्य—'स्य' आदेश,
प्लक्षस्य—दीर्घ नहीं हुआ।

(3500) बहुवचने झल्येत् *103* (205)

बहुवचने झलादौ सुपि परतोऽकारान्तस्याङ्गस्य एकारादेशो भवति। वृक्षेभ्यः। प्लक्षेभ्यः। वृक्षेषु। प्लक्षेषु। बहुवचन इति किम्? वृक्षाभ्याम्। प्लक्षाभ्याम्। झलीति किम्? वृक्षाणाम्। सुपीत्येव-यजध्वम्। पचध्वम्।

अर्थ—अदन्त अङ्ग को एकार आदेश होता है, बहुवचन में झलादि प्रत्यय परे रहते।

अलोऽन्त्य परिभाषा से एकार आदेश अन्त्य अल् (अकार) के स्थान पर होता है।

बहुवचन में झलादि चार विभक्तियाँ हैं—
भिस्, भ्यस्, भ्यस् तथा सुप्।

उदा० (1) वृक्षेभ्यः
वृक्ष भ्यस्—'भ्यस्' बहुवचन विभक्ति है तथा झलादि है, अतः अदन्त अङ्ग 'वृक्ष' को एकार अन्तादेश हुआ।

(2) प्लक्षेभ्यः
प्लक्ष भ्यस्—पूर्ववत्।

(3) वृक्षेषु
वृक्ष सुप्—'सुप्' झलादि सुप् प्रत्यय है, एकार अन्तादेश, वृक्षेसु—आदेशप्रत्यययोः।

(4) प्लक्षेषु
प्लक्ष सुप्—पूर्ववत्।

बहुव०—बहुवचन झलादि सुप् में ही एकार आदेश होता है।

(5) वृक्षाभ्याम्
वृक्ष भ्याम्—'भ्याम्' झलादि सुप् तो है, परन्तु बहुवचन का प्रत्यय नहीं है, अतः 'वृक्ष' अदन्त अङ्ग को एकार नहीं हुआ।

(6) प्लक्षाभ्याम् (पूर्ववत्)।

झलीति०—झलादि बहुवचन सुप् प्रत्यय के परे रहते एकार आदेश होता है।

(7) वृक्षाणाम्
वृक्ष आम्—'ह्रस्वनद्यापो नुट्' से 'आम्' को 'नुट्' आगम,
वृक्ष नाम्—'नाम्' बहुवचन सुप् है परन्तु झलादि नहीं होने से अदन्त अङ्ग 'वृक्ष' को एकार नहीं हुआ,
वृक्षानाम्—'नामि' से दीर्घ तथा 'अट्कुप्वाङ्नुम्०' से णत्व।

सुपीति०—सुप् बहुवचन झलादि के परे रहते एकार होता है।

(8) यजध्वम्
यज् शप् ध्वम्—इस दशा में 'ध्वम्' झलादि बहुवचन प्रत्यय तो है, परन्तु सुप् नहीं, तिङ् है। अतः इसके परे रहते अदन्त अङ्ग 'यज्' को एकार नहीं होता है।

(9) पचध्वम्
पच् शप् ध्वम्—पूर्ववत्।

(3501) ओसि च *104* (207)

ओसि परतोऽकारान्तस्याङ्गस्य एकारादेशो भवति। वृक्षयोः स्वम्। प्लक्षयोः स्वम्। वृक्षयोर्निधेहि। प्लक्षयोर्निधेहि।

अर्थ—अकारान्त अङ्ग को एकार आदेश होता है, 'ओस्' विभक्ति परे रहते।

उदा० (1) वृक्षयोः
वृक्ष ओस्—ष०द्विवचन, एकार हुआ,
वृक्षे ओस्—एचोऽयवायावः।

(2) प्लक्षयोः (पूर्ववत्)।

(3) वृक्षयोः
वृक्ष ओस्—सप्तमी द्विवचन, पूर्ववत्।

(4) प्लक्षयोः
प्लक्ष ओस्—पूर्ववत्।

(3502) आङि चापः *105* (289)

'आङ्' इति पूर्वाचार्यनिर्देशेन तृतीयैकवचनं गृह्यते।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तस्मिन्नाङि परतश्चकारादोसि च आबन्तस्याङ्गस्यैकारादेशो भवति। खट्वया, मालया। खट्वयोः, मालयोः। बहुराजया, कारीषगन्ध्यया। बहुराजयोः, कारीषगन्ध्ययोः। आप इति पितो ग्रहणं किम्? कीलालपा ब्राह्मणेन। कीलालपोर्ब्राह्मणकुलयोः। 'ङ्याब्ग्रहणेऽदीर्घग्रहणम्' इति वचनादिह न भवति–अतिखट्वेन ब्राह्मणकुलेन॥

अर्थ—'आङ्' प्राचीन आचार्यों की संज्ञा है।[1] अतः 'आङ्' के द्वारा तृतीया एकवचन 'टा' का ग्रहण होता है।

'आप्' को एकार होता है, आङ् तथा ओस् के परे रहते। 'आप्' के द्वारा आबन्त अङ्ग का ग्रहण होता है।

उदा० (1) खट्वया

खट्वा आ—'आङ्' परे है, आबन्त अङ्ग 'खट्वा' को एकार अन्तादेश,

खट्वे आ—एचोऽयवायावः।

(2) मालया

माला आ—पूर्ववत्।

(3) खट्वयोः

खट्वा ओस्—'ओस्' परे है, आबन्त अङ्ग 'खट्वा' एकार अन्तादेश हुआ,

खट्वे ओस्—एचोऽयवायावः।

(4) मालयोः

माला ओस्—पूर्ववत्।

(5) बहुराजया

बहुराजन् डाप्—डाबुभाभ्यामन्यतर०,

बहुराजा आ—पूर्ववत् एकार, अय्।

(6) कारीषगन्ध्यया

करीषगन्धि अण्—तस्याऽपत्यम्,

कारीषगन्ध ष्यङ्—अणिञोरनार्षयोः,

कारीषगन्ध्य चाप्—यङश्चाप्, चुटू, हलन्त्यम्,

कारीषगन्ध्या आ—पूर्ववत् एकार अन्तादेश।

(7) बहुराजयोः

बहुराजा ओस्—एकार अन्तादेश।

(8) कारीषगन्ध्ययोः

कारीषगन्ध्या ओस्—एकार अन्तादेश।

1. पा० 7.3.119 आङो नाऽस्त्रियाम्।

आप०—'आपः' पद में पकार अनुबन्धपूर्वक निर्देश है, ताकि आबन्त अङ्ग को ही एकार अन्तादेश हो; आकारान्त अङ्ग को न हो। यथा—

(9) कीललपा (ब्राह्मणेन)

कीलालं पिबति—'आतो मनिन् क्वनिप्०' से 'विच्' हुआ,

कीलाल पा विच्—हलन्त्यम्, उपदेशेऽजनु० तथा वेरपृक्तस्य,

कीलालपा आ—'आ' विभक्ति परे है, परन्तु 'कीलालपा' आबन्त अङ्ग न होने से इसे एकार अन्तादेश नहीं हुआ,

कीलालप् आ—'आतो धातोः' से आकारलोप।

(10) कीलालपोः (ब्राह्मणकुलयोः)

कीलालपा ओस्—पूर्ववत् आकारलोप।

ङ्याब्०—'खट्वाम् अतिक्रान्तेन—अतिखट्वेन'। यहाँ 'अतिखट्वा' इसमें उपसर्जन संज्ञा तथा 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' से ह्रस्वादेश होता है। स्थानिवद्भाव से 'अतिखट्व' प्रातिपदिक 'अतिखट्वा' ही है। तब 'टा' विभक्ति में एत्व क्यों नहीं होता है?

(समा०) यहाँ दो मत है। प्रथम मत के अनुसार कुछ विद्वान् कहते हैं कि 'ङी' तथा 'आप्' के ग्रहण के विषय में 'दीर्घ' पद का ग्रहण करना चाहिए। तब इन्हें ह्रस्वादेश कर देने पर वे कार्य न हों, जो दीर्घ की दशा में प्राप्त थे।

दूसरे मत के अनुसार कुछ विद्वान् कहते हैं कि 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात्' इस सूत्र का योगविभाग करना चाहिए। अतः जहाँ शास्त्र में ङ्यन्त तथा आबन्त अङ्ग को कोई कार्य इष्ट हो, वहाँ दीर्घ अङ्ग को ही वह कार्य हो; ह्रस्व अङ्ग को न हो। तब 'अतिखट्वेन' में एकार नहीं हुआ।

(3503) सम्बुद्धौ च *106* (288)

'आपः' इति वर्त्तते। सम्बुद्धौ च परत आबन्तस्याङ्गस्य एत्वं भवति। हे खट्वे! हे बहुराजे! हे कारीषगन्ध्ये!।

अर्थ—'आपः' का अनुवर्त्तन है। आबन्त अङ्ग को एकार आदेश होता है, सम्बुद्धि परे रहते।

'एकवचनं सम्बुद्धिः' से प्रथमा एकवचन सम्बोधन की 'सम्बुद्धि' संज्ञा है।

उदा० (1) (हे) खट्वे

हे खट्वा सु—एकार आदेश,

हे खट्वे स्—एङ् ह्रस्वात् सम्बुद्धेः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(2) (हे) बहुराजे
हे बहुराजा सु—पूर्ववत्।

(3) (हे) कारीषगन्ध्ये
कारीषगन्ध्या सु—पूर्ववत्।

(3504) अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः *107* (267)

'सम्बुद्धौ' इति वर्त्तते। अम्बार्थानामङ्गानां नद्यन्तानां (च) ह्रस्वो भवति सम्बुद्धौ परतः। हे अम्ब! हे अक्क! हे अल्ल! नद्याः खल्वपि-हे कुमारि! हे शार्ङ्गरवि! हे ब्रह्मबन्धु! हे वीरबन्धु! *डलकवतीनां प्रतिषेधो वक्तव्यः* (म० भा०)। हे अम्बाडे! हे अम्बाले! हे अम्बिके! *छन्दसि वेति वक्तव्यम्*। हे अम्बाड, हे अम्बाडे! हे अम्बाल, हे अम्बाले! हे अम्बिक, हे अम्बिके! *ततो ह्रस्वो वा ङिसम्बुद्ध्योरिति वक्तव्यम्*। देवते भक्तिः, देवतायां भक्तिः। हे देवत, हे देवते!। छन्दस्येव ह्रस्वत्वमिष्यते। *मातॄणां मातच् पुत्रार्थमर्हति* (म० भा०)। मातॄणां मातजादेशो वक्तव्यः सम्बुद्धौ, पुत्राय पुत्रमभिधातुम्, कीदृशाय? अर्हते। मात्राव्यपदेशमर्हति श्लाघनीयत्वाद् यः पुत्रस्तदर्थम्। हे गार्गीमात! 'नद्यृतश्च' (5.4.153) इति समासान्तापवादो मातजादेशः। चित्करणमन्तोदात्तार्थम्।

अर्थ—'सम्बुद्धौ' का अनुवर्त्तन है। माता अर्थ वाले तथा नदीसंज्ञक अङ्ग को ह्रस्वादेश होता है, सम्बुद्धि परे रहते।

अलोऽन्त्य परिभाषा से ह्रस्वादेश अन्त्य अल् को होता है।

उदा० (1) (हे) अम्ब
हे अम्बास्—'माता' अर्थ वाला 'अम्बा' शब्द है।
हे अम्ब—ह्रस्वादेश, एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः।

(2) (हे) अक्क
हे अक्का सु—पूर्ववत्।

(3) (हे) अल्ल
हे अल्ला सु—पूर्ववत्।

(4) (हे) कुमारि
हे कुमारी सु—'यू स्त्र्याख्यौ नदी' से नदीसंज्ञा,
हे कुमारि स्—ह्रस्वादेश, एङ्ह्रस्वात्०।

(5) (हे) शार्ङ्गरवि
हे शार्ङ्गरवी सु—पूर्ववत्।

(6) (हे) ब्रह्मबन्धु
हे ब्रह्मबन्धू सु—पूर्ववत् ह्रस्वादेश, सु का लोप।

(7) (हे) वीरबन्धु
हे वीरबन्धू सु—पूर्ववत्।

डलक०—नदीसंज्ञक ड, ल, क वाले शब्दों को ह्रस्वादेश नहीं होता है, सम्बुद्धि परे रहते।

(8) (हे) अम्बाडे
हे अम्बाडा सु—ह्रस्व नहीं हुआ, 'सम्बुद्धौ च' से एत्व,
हे अम्बाडे स्—एङ्ह्रस्वात्०।

(9) (हे) अम्बाले
हे अम्बाला सु—पूर्ववत्।

(10) (हे) अम्बिके
हे अम्बिका सु—पूर्ववत्।

छन्दसि०—वेद के विषय में ड, ल, क वाले जो नदीसंज्ञक शब्द, उन्हें विकल्प से ह्रस्व नहीं होता है।

(11) (हे) अम्बाडे
ह्रस्व नहीं हुआ।

(12) (हे) अम्बाड
पक्ष में ह्रस्व हुआ।

(13) (हे) अम्बाले
ह्रस्व अभाव।

(14) (हे) अम्बाल
पक्ष में ह्रस्व।

(15) (हे) अम्बिके
ह्रस्वादेश नहीं हुआ।

(16) (हे) अम्बिक
पक्ष में ह्रस्व हो गया है।

ततो०—तल् प्रत्ययान्त शब्द को ह्रस्व आदेश विकल्प से होता है, ङि तथा सम्बुद्धि परे रहते।

(17) देवते
देवता ङि—'देव' से 'तल्' होकर 'देवता' बनता है,
देवत इ—ह्रस्व, लशक्वतद्धिते, आद् गुणः।

(18) देवतायाम्
पक्ष में ह्रस्व नहीं हुआ, 'याट्' आगम होकर।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(19) (हे) देवत
हे देवता सु—ह्रस्व,
हे देवत—एङ् ह्रस्वात्० ।

(20) (हे) देवते
हे देवता सु—ह्रस्व नहीं हुआ ।
वेद में ह्रस्वादेश होता है ।

मातृणां०—सम्बुद्धि परे रहते 'मातृ' शब्दों को 'मातच्' आदेश होता हैं, पुत्रार्थ अर्ह के लिए । पुत्र के लिए अर्थात् पुत्र को कहने के लिए । माता के बहाने से जिस पुत्र की प्रशंसा की जाय, उस पुत्र के कथन में 'मातच्' होता है ।

(21) (हे) गार्गीमात
हे गार्गीमातृ सु—हे गार्गीमातच् स्—सुलोप ।

नद्यृत०—यह 'नद्यृतश्च' से प्राप्त समासान्त का अपवाद 'मातच्' आदेश है । 'च्' अनुबन्ध अन्तोदात्त स्वर के लिए है ।

(3505) ह्रस्वस्य गुणः *108* (242)

'सम्बुद्धौ' इति वर्तते । ह्रस्वान्तस्याङ्गस्य गुणो भवति सम्बुद्धौ परतः । हे अग्ने ! हे वायो ! हे पटो । हे कुमारि, हे ब्रह्मबन्धु-इत्येवमादीनां ह्रस्वविधानसामर्थ्याद् गुणो न भवति । यदि गुण इष्टः स्यात्, 'अम्बार्थानां ह्रस्वः' इत्युक्त्वा 'नदीह्रस्वयोर्गुणः' इत्येव ब्रूयात् ।

अर्थ—'सम्बुद्धौ' का अनुवर्त्तन है । ह्रस्व स्वरान्त अङ्ग को गुण आदेश होता है, सम्बुद्धि परे रहते ।

उदा० (1) (हे) अग्ने
हे अग्नि स्—गुण, इको गुणवृद्धी,
हे अग्ने स्—एङ् ह्रस्वात् सम्बुद्धेः ।

(2) (हे) वायो
हे वायु सु—पूर्ववत् ।

(3) (हे) पटो
हे पटु सु—पूर्ववत् ।

हे कुमारि०—हे कुमारि, हे ब्रह्मबन्धु—इत्यादि स्थलों पर ह्रस्वविधानसामर्थ्य से गुण नहीं होता है । यदि यहाँ गुण इष्ट हो तो 'अम्बार्थानां ह्रस्वः' ऐसा पाठ करके 'नदीह्रस्वयोर्गुणः' ऐसा पाठ कर देते ।

(3506) जसि च *109* (241)

जसि परतो ह्रस्वान्तस्याङ्गस्य गुणो भवति । अग्नयः । वायवः । पटवः । धेनवः । बुद्धयः । *जसादिषु छन्दसि वावचनं प्राङ्णौ चङ्युपधाया ह्रस्व इत्येतस्मात्* (म० भा०) । इतः प्रकरणात् प्रभृति छन्दसि वेति वक्तव्यम् । किं प्रयोजनम् ? अम्बे, दर्वि, शतक्रत्वः, पश्चे, नृभ्यः, किकिदीव्या । अम्बे, अम्ब । पूर्णा दर्वि, पूर्णा दर्वे । अथा शतक्रत्वः, शतक्रतवः । पश्चे नृभ्यः, पशवे नृभ्यः । किकिदिव्या, किकिदीविना ।

अर्थ—ह्रस्व स्वरान्त अङ्ग को गुण होता है, 'जस्' परे रहते ।

उदा० (1) अग्नयः
अग्नि जस्—गुण, हुआ,
अग्ने अस्—एचोऽयवायावः ।

(2) वायवः
वायु जस्—गुण, अव् ।

(3) पटवः
पटु जस्—पूर्ववत् ।

(4) बुद्धयः
बुद्धि जस्—गुण, अय् ।

(5) धेनवः
धेनु जस्—पूर्ववत् ।

जसादि०—'णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः' (7.4.1) पर्यन्त वेद के विषय में सभी कार्य विकल्प से होते हैं, 'जस्' आदि परे रहते । इस प्रकरण से लेकर वेद के विषय में सभी कार्य विकल्प से होते हैं ।

(6) अम्बे
हे अम्बा सु—ह्रस्व नहीं हुआ ।

(7) अम्ब
हे अम्बा सु—ह्रस्व हुआ ।

(8) दर्वि
हे दर्वी सु—'अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः' से ह्रस्वः,
हे दर्वि स्—एङ् ह्रस्वात्० ।

(9) दर्वी
पक्ष में ह्रस्व नहीं हुआ ।

(10) शतक्रत्वः
शतक्रतु जस्—'जसि च' से प्राप्त गुण का अभाव,
शतक्रत्वस्—इको यणचि ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(11) शतक्रतवः
पक्ष में गुण।

(12) पश्वे
पशु ङे—'घेर्ङिति' से प्राप्त गुण का अभाव। यण्।

(13) पशवे
पशु ङे—गुण, अव्।

(14) किकिदीव्या
किकिदीवि टा—'आङो नाऽस्त्रियाम्' से प्राप्त 'ना' भाव का अभाव,
किकिदीव् आ—इको यणचि।

(15) किकिदीविना
पक्ष में 'ना' हुआ।

(3507) ऋतो ङिसर्वनामस्थानयोः *110* (275)

'गुणः' इति वर्त्तते। ऋकारान्तस्याङ्गस्य ङौ परतः सर्वनामस्थाने च गुणो भवति। ङौ–मातरि, पितरि, भ्रातरि, कर्तरि। सर्वनामस्थाने–कर्त्तारौ, कर्तारः। मातरौ, पितरौ, भ्रातरौ। तपरकणं मुखसुखार्थम्।

अर्थ—ऋन्दन्त अङ्ग के स्थान पर गुण आदेश होता है, ङि तथा सर्वनामस्थानसंज्ञक प्रत्यय परे रहते।

'सुडनपुंसकस्य' तथा 'शि सर्वनामस्थानम्'—इन दो सूत्रों से सर्वनामस्थानसंज्ञा कही गई है। 'सुडनपुंस०' से पुंल्लिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग में सु, औ, जस्, अम् तथा औट् की सर्वनामस्थानसंज्ञा होती है।

नपुंसकलिङ्ग में जस् व शस् के स्थान पर आदेशभूत 'शि' की सर्वनामस्थानसंज्ञा होती है। इस प्रकार कुल सात विभक्तियों की सर्वनामस्थानसंज्ञा होती है।

ऋतः = ह्रस्व ऋकारान्त के स्थान पर।

उदा० (क) ङौ—
(1) मातरि
मातृ ङि—लशक्वतद्धिते, गुण, उरण् रपरः,
मातर् इ—रूप बना।

(2) पितरि
पितृ ङि—पूर्ववत्।

(3) कर्तरि
कर्तृ ङि—पूर्ववत्।

(ख) सर्वनामस्थाने—
(4) कर्त्तारौ
कर्तृ औ—सुडनपुंसकस्य, गुण, उरण् रपरः,
कर्तर् औ—अप्तृन्तृच्०।

(5) कर्त्तारः
कर्तृ जस्—पूर्ववत्।

(6) मातरौ
मातृ औ—गुण।

(7) पितरौ
पितृ औ—गुण।

(8) भ्रातरौ
भ्रातृ औ—गुण।

तपर०—'ऋतः' में तपरकरण मुखसुखार्थ है।

(3508) घेर्ङिति *111* (245)

घ्यन्तस्याङ्गस्य ङिति प्रत्यये परतो गुणो भवति। अग्नये वायवे। अग्नेरागच्छति, वायोरागच्छति। अग्नेः स्वम्। वायोः स्वम्। घेरिति किम्? सख्ये, पत्ये। ङितीति किम्? अग्निभ्याम्। 'सुपि' इत्येव–पट्वी। कुरुतः।

अर्थ—घिसंज्ञक अङ्ग को गुण होता है, ङित् सुप् परे रहते। 'शेषो घ्यसखि' के द्वारा घिसंज्ञा कही गई है। ङित् विभक्तियाँ चार हैं—ङे, ङसि, ङस् तथा ङि।

उदा० (1) अग्नये
अग्नि ङे—लशक्वतद्धिते, गुण,
अग्ने ए—एचोऽयवायावः।

(2) वायवे
वायु ङे—गुण, अव्।

(3) अग्नेः
अग्नि ङसि—गुण, अनुबन्धलोप,
अग्ने अस्—ङसिङसोश्च,
अग्नेस्—विसर्ग।

(4) वायोः
वायु ङसि—गुण,
वायो अस्—पूर्वरूप।

(5) अग्नेः
अग्नि ङस्—पूर्ववत्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(6) वायोः
वायु ङस्—पूर्ववत्।
घेरिति०—घिसंज्ञक को ही गुण होता है।

(7) सख्ये
सखि ङे—'शेषो घ्यसखि' में 'असखि' इस प्रकार प्रतिषेध होने से घिसंज्ञा नहीं हुई,
सख्ये—गुण नहीं हुआ, इको यणचि।

(8) पत्ये
पति ङे—'पतिः समास एव'
पति ए—घिसंज्ञा न होने से गुण नहीं हुआ।
पत्ये—इको यणचि।
ङिति०—ङित् विभक्ति के परे रहते गुण होता है।

(9) अग्निभ्याम्
अग्नि भ्याम्—'अग्नि' की घिसंज्ञा है, परन्तु 'भ्याम्' ङित् विभक्ति नहीं है,
अग्निभ्याम्—गुण नहीं हुआ,
सुपी०—सुप् ङित् परे रहते ही गुण होता है।

(10) पट्वी
पटु ङीष्—स्त्रियाम्, वोतो गुणवचनात् से पाक्षिक 'ङीष्', ङीष् पक्ष में,
पटु ई—'पटु' की घिसंज्ञा है, 'ङीष्' ङित् प्रत्यय है, परन्तु सुप् नहीं है,
पट्वी—गुण नहीं हुआ, यण्, सु।

(11) कुरुतः
कृ तस्—तनादिकृञ्भ्य उः, तिङ् शित् सार्वधातुकम्,
कृ उ तस्—'सार्वधातुकमपित्' से 'तस्' ङिद्वत्,
कर् उ तस्—सार्वधातुकार्धधातु०, उरण् रपरः,
कुर् उ तस्—अत उत्सार्व०, 'तस्' ङित् है, परन्तु सुप् नहीं है। अतः गुण नहीं हुआ।

(3509) आण्नद्याः *112* (268)

नद्यन्तादङ्गादुत्तरस्य ङितः प्रत्ययस्याडागमो भवति। कुमार्यै, ब्रह्मबन्ध्वै। कुमार्याः, ब्रह्मबन्ध्वाः।

अर्थ—नदीसंज्ञक अङ्ग से उत्तर ङित् प्रत्यय को 'आट्' आगम होता है।

उदा० (1) कुमार्यै
कुमारी ङे—नदीसंज्ञा, लशक्वतद्धिते,
कुमारी आ ए—आट्,
कुमारी ऐ—आटश्च, इको यणचि।

(2) ब्रह्मबन्ध्वै
ब्रह्मबन्धू ए—पूर्ववत्।

(3) कुमार्याः
कुमारी ङस् (अथवा ङसि)—आट्,
कुमारी आ अस्—आटश्च, यण्।

(4) ब्रह्मबन्ध्वाः
ब्रह्मबन्धू ङस्—पूर्ववत् आट्, वृद्धि, यण्।

(3510) याडापः *113* (290)

आबन्तादङ्गादुत्तरस्य ङितः प्रत्ययस्य याडागमो भवति। खट्वायै। बहुराजायै। कारीषगन्ध्यायै। खट्वायाः। कारीषगन्ध्यायाः। बहुराजायाः। अतिखट्वाय-इत्यत्राकृते दीर्घे 'ङ्याब्ग्रहणे अदीर्घः' इति वचनाद्याडागमो न भवति, कृते तु लाक्षणिकत्वात्।

अर्थ—आप् प्रत्ययान्त अङ्ग से उत्तर ङित् सुप् को 'याट्' आगम होता है।

उदा० (1) खट्वायै
खट्वा ङे—लशक्वतद्धिते,
खट्वा याट् ए—याट्, वृद्धिरेचि।

(2) बहुराजायै
बहुराजा ङे—पूर्ववत्।

(3) कारीषगन्ध्यायै
कारीषगन्ध्या ङे—पूर्ववत्।

(4) खट्वायाः
खट्वा ङसि (अथवा ङस्)—याट्,
खट्वा या अस्—अकः सवर्णे दीर्घः।

(5) कारीषगन्ध्यायाः
ङस्—पूर्ववत् 'याट्'।

(6) बहुराजायाः
बहुराजा याट् अस्—पूर्ववत्।

अतिख०—(शङ्का) 'खट्वाम् अतिक्रान्ताय' इस अर्थ में समास, उपसर्जनसंज्ञा तथा ह्रस्वादेश होकर 'अतिखट्व ङे' यह स्थिति होती है। तब स्थानिवद्भाव से 'अतिखट्व' को आबन्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मानकर तथा 'ङेर्यः' से प्राप्त 'य' को ङित् मानकर 'याट्' प्राप्त होता है।

(समा०) सुपि च' से दीर्घ होने से पूर्व 'अतिखट्व य' इस स्थिति में 'याट्' आगम नहीं होता है। कारण कि ङी तथा आप् के ग्रहण में 'अदीर्घः' इस वचन से 'याट्' नहीं होता है।

'सुपि च' से दीर्घ कर चुकने के पश्चात् 'अतिखट्वा य' इस स्थिति में 'अतिखट्वा' यह लाक्षणिक आबन्त है। अतः 'याट्' नहीं होता है।

(3511) सर्वनाम्नः स्याड्ढ्रस्वश्च *114*

(291)

सर्वनाम्न आबदन्तादङ्गादुत्तरस्य ङितः प्रत्ययस्य स्याडागमो ह्रस्वश्च भवति। सर्वस्यै, विश्वस्यै, यस्यै, तस्यै, कस्यै, अन्यस्यै। सर्वस्याः, विश्वस्याः, यस्याः, तस्याः, कस्याः, अन्यस्याः। 'आपः' इत्येव-भवति। भवते।

अर्थ—आप् प्रत्ययान्त सर्वनामसंज्ञक अङ्ग से उत्तर ङित् सुप् को 'स्याट्' आगम होता है तथा (आबन्त) अङ्ग को ह्रस्वादेश होता है।

उदा० (1) सर्वस्यै
सर्वा ङे—लशक्वतद्धिते,
सर्व स्याट् ए—स्याट्, अङ्ग को ह्रस्वत्व,
सर्व स्यै—वृद्धिरेचि।

(2) विश्वस्यै
विश्वा ङे—पूर्ववत्।

(3) यस्यै
या ङे—पूर्ववत्।

(4) तस्यै
तद् → त अ → त टाप्—त्यदादीनामः, अतो गुणे, अजाद्यतष्टाप्,
ता ङे—स्याट्, अङ्ग को ह्रस्व।

(5) कस्यै
का ङे—पूर्ववत्।

(6) अन्यस्यै
अन्या ङे—पूर्ववत्।

(7) सर्वस्याः
सर्वा ङसि (ङस् वा)—लशक्वतद्धिते, स्याट्, ह्रस्व,
सर्व स्याट् अस्—अकः सवर्णे दीर्घः।

(8) विश्वस्याः
विश्वा ङसि—पूर्ववत्।

(9) यस्याः
या ङसि—पूर्ववत्।

(10) तस्याः
ता ङसि—पूर्ववत्।

(11) कस्याः
का ङसि—पूर्ववत्।

(12) अन्यस्याः
अन्या ङसि—पूर्ववत्।

आपः—आप् प्रत्ययान्त अङ्ग से उत्तर ङित् को 'स्याट्' आगम तथा अङ्ग को ह्रस्व होता है।

(13) भवति
भवत् ङि—ङित् सुप् परे है, परन्तु आबन्त अङ्ग न होने से 'स्याट्' नहीं हुआ।

(14) भवते
भवत् ङे—पूर्ववत्।

(3512) विभाषा द्वितीयातृतीयाभ्याम् *115*

(293)

द्वितीया, तृतीया-इत्येताभ्यामुत्तरस्य ङितः प्रत्ययस्य विभाषा स्याडागमो भवति, द्वितीयातृतीययोश्च ह्रस्वो भवति। द्वितीयस्यै, द्वितीयायै। तृतीयस्यै, तृतीयायै।

अर्थ—द्वितीया तथा तृतीया—इन अङ्गों से उत्तर ङित् सुप् को स्याट् आगम विकल्प से होता है तथा (स्याट् पक्ष में) 'द्वितीया' व 'तृतीया' अङ्गों को ह्रस्वादेश होता है।

उदा० (1) द्वितीयस्यै
द्वितीया ङे—लशक्वतद्धिते,
द्वितीय स्याट् ए—स्याट् तथा ह्रस्व,
द्वितीय स्यै—वृद्धिरेचि।

(2) द्वितीयायै
पक्ष में 'स्याट्' नहीं हुआ, तब अङ्ग को ह्रस्वादेश भी नहीं हुआ। 'याडापः' से 'याट्' हुआ।

(3) तृतीयस्यै
'द्वितीयस्यै' की तरह।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(4) तृतीयायै
'द्वितीयायै' की तरह।

(3513) ङेराम्नद्याम्नीभ्यः *116* (270)

नद्यन्तादाबन्तान्नीत्येतस्माच्चोत्तरस्य ङेरामित्ययमादेशो भवति। कुमार्याम्। गौर्याम्। ब्रह्मबन्ध्वाम्। धीबन्ध्वाम्। आपः-खट्वायाम्। बहुराजायाम्। कारीषगन्ध्यायाम्। नी-राजन्याम्। सेनान्याम्।

अर्थ—नदीसंज्ञक, आप् प्रत्ययान्त तथा नी—इन अङ्गों से उत्तर 'ङि' विभक्ति के स्थान पर 'आम्' आदेश होता है।

'आम्' के मकार की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा प्राप्त, 'न विभक्तौ तुस्माः' से निषेध।

उदा० (1) कुमार्याम्
कुमारी ङि—'आम्',
कुमारी आम्—इको यणचि।

(2) गौर्याम्
गौरी ङि—पूर्ववत्।

(3) ब्रह्मबन्ध्वाम्
ब्रह्मबन्धू ङि—पूर्ववत्।

(4) धीबन्ध्वाम्
धीबन्धू ङि—पूर्ववत्।

(5) खट्वायाम्
खट्वा ङि—आम्,
खट्वा याट् आम्—याडापः, अकः सवर्णे दीर्घः।

(6) बहुराजायाम्
बहुराजा ङि—पूर्ववत्।

(7) कारीषगन्ध्यायाम् (पूर्ववत्)।

(8) राजन्याम्
राजनी ङि—आम्,
राजन् य् आम्—यण्।

(9) सेनान्याम् (पूर्ववत्)।

(10) ग्रामण्याम्
ग्रामणी ङि—पूर्ववत्।

(3514) इदुद्भ्याम् *117* (297)

इकारोकाराभ्यां नदीसंज्ञकाभ्यामुत्तरस्य ङेरामादेशो भवति। कृत्याम्। धेन्वाम्।

अर्थ—नदीसंज्ञक ह्रस्व इकारान्त व उकारान्त से उत्तर 'ङि' के स्थान पर 'आम्' होता है।

उदा० (1) कृत्याम्
कृति ङि—नदीसंज्ञा, आम्, 'आण्नद्याः' से 'आट्' तथा 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' से 'नुट्' प्राप्त, पर होने से 'आट्'।
कृति आ आम्—यण्।

(2) धेन्वाम्
धेनु ङि—पूर्ववत्।

नदीसंज्ञा अभाव पक्ष में 'अच्च घेः' से 'कृतौ' तथा 'धेनौ' बनते हैं।

(3515) औत् *118* (256)

इदुद्भ्यामुत्तरस्य ङेरौकारादेशो भवति। यन्न नदीसंज्ञं नापि घिसंज्ञमिकारान्तम्, तदिहोदाहरणम्। सख्यौ। पत्यौ।

अर्थ—ह्रस्व इकारान्त तथा उकारान्त से उत्तर 'ङि' सुप् के स्थान पर 'औ' होता है।

जिसकी न तो नदीसंज्ञा है तथा न ही घिसंज्ञा है, ऐसे इकारान्त से उत्तर 'औ' होता है।

उदा० (1) सख्यौ
सखि ङि—'अकः सवर्णे दीर्घः' को बाध कर,
सखि औ—'औ' आदेश, यण्।

(2) पत्यौ
पति ङि—पूर्ववत्।
'औत्' में तकार तत्काल के ग्रहण के लिए है।

(3516) अच्च घेः *119* (247)

'औत्' इति वर्तते। घिसंज्ञकादुत्तरस्य ङेरौकारादेशो भवति, तस्य च घेरकारादेशो भवति। अग्नौ। वायौ। कृतौ। धेनौ। पटौ। अदिति तपरकरणं स्त्रियां टापो निवृत्त्यर्थम्। 'औदच्च घेः' इति येषामेकमेवेदं सूत्रम्, ते प्रधानशिष्टमिदुद्भ्यामौत्त्वं वर्णयन्ति-अन्वाचयशिष्टं घेरकार-मिति।

अर्थ—'औत्' का अनुवर्त्तन है। घिसंज्ञक अङ्ग से उत्तर 'ङि' के स्थान पर 'औ' आदेश होता है तथा अङ्ग को अकार आदेश होता है।

उदा० (1) अग्नौ
अग्नि ङि—लशक्वतद्धिते,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अग्न औ—वृद्धिरेचि।

(2) वायौ

वायु ङि—पूर्ववत्।

(3) कृतौ

कृति ङि—पूर्ववत्।

(4) धेनौ

धेनु ङि—पूर्ववत्।

(5) पटौ

पटु ङि—पूर्ववत्।

अदिति०—'अत्' में तपरकरण स्त्रीलिङ्ग में 'टाप्' की निवृत्ति के लिए है।

औदच्च०—जिनके मत में 'औदच्च घेः' इस प्रकार एक सूत्र है, वे इकार, उकार से उत्तरवर्त्ती प्रधान शिष्ट औत्व को कहते हैं तथा अन्वाचयशिष्ट 'घि' को अकार आदेश का विधान करते हैं।

(3517) आङो नाऽस्त्रियाम् *120* (244)

धेरुत्तरस्याङो नाभावो भवति अस्त्रियाम्। अग्निना। वायुना। पटुना। 'पुंसि' इति नोक्तम्; अमुना ब्राह्मण-कुलेन। अस्त्रियामिति किम्? कृत्या। धेन्वा।

इति श्रीवामनविरचितायां काशिकायां वृत्तौ
सप्तमाऽध्यायस्य तृतीयः पादः॥

अर्थ— घिसंज्ञक अङ्ग से उत्तर 'आङ्' के स्थान पर 'ना' आदेश होता है, परन्तु स्त्रीलिङ्ग में नहीं होता है। आङ् प्राचीन आचार्यों की संज्ञा है। द्र०—आङि चाऽऽपः।

इसके द्वारा तृतीया एकवचन 'टा' का ग्रहण होता है।

उदा० (1) अग्निना

अग्नि टा—'ना' आदेश।

(2) वायुना

वायु टा—पूर्ववत्।

(3) पटुना

पटु टा—'ना' आदेश।

पुंसि०—'आङो नाऽस्त्रियाम्' के स्थान पर 'आङो न पुंसि' पाठ में लाघव होता है। त्रपुणा तथा जतुना—इन स्थलों पर 'इकोऽचि विभक्तौ' से 'नुम्' आगम होकर रूप निर्बाध सिद्ध हो जाता है; परन्तु इस योग (आङो ना पुंसि) में निम्नलिखित दोष प्रसक्त होता है। यथा—

(4) अमुना

अदस् टा → अद अ टा—त्यदादीनाम् अः,

अद टा—अतो गुणे,

अमु टा—अदसोऽसेर्दादु दोमः,

अमु ना—यदि 'पुंसि' कहा जाता है तो नपुंसकलिङ्ग में 'मु' आदेश के असिद्ध होने से 'ना' भाव नहीं हो पाता है। नुम् का अभाव होने से 'अस्त्रियाम्' के योग में नपुंसक में भी 'ना' भाव निर्बाध होता है।

आस्त्रिया०—स्त्रीलिङ्ग में 'ना'भाव नहीं होता है।

(5) कृत्या

कृति टा—स्त्रीलिङ्ग होने से 'ना' नहीं हुआ,

कृत् य् आ—यण्।

(6) धेन्वा

धेनु टा—पूर्ववत्।

इति पण्डितेश्वरचन्द्रविरचितायां काशिकायाः सोमलेखाऽऽख्यायां हिन्दीटीकायां
सप्तमाऽध्यायस्य तृतीयः पादः समाप्तः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(3518) णौ चङ्युपधाया ह्रस्वः *1* (2314)

'अङ्गस्य' (6.4.1) इति वर्त्तते। चङ्परे णौ यदङ्गं तस्योपधाया ह्रस्वो भवति। अचीकरत्। अजीहरत्। अलीलवत्। अपीपवत्। अत्र द्विर्वचनोपधाह्रस्वत्वयोः प्राप्तयोः परत्वादुपधाह्रस्वत्वम्, तत्र कृते द्विर्वचनम्। इह तु–मा भवानटिटदिति नित्यत्वाद् द्वितीयस्य द्विर्वचनं प्राप्नोति, तथा सति ह्रस्वभाविनोऽङ्गस्याकारस्योपधात्वं विहतमिति ह्रस्वो न स्यात्? नैष दोषः, ओणेर्ऋदित्करणं ज्ञापकम्–नित्यमपि द्विर्वचनमुपधाह्रस्वत्वेन बाध्यत इति। णाविति किम्? 'चङ्युपधाया ह्रस्वः' इत्युच्यमाने, अलीलवदित्यत्र वचनसामर्थ्यादन्तरङ्गमपि वृद्धिमादेशं च बाधित्वा ह्रस्वः स्यात्। अदीदपदित्यत्र ह्रस्वत्वेन पुको बाधः स्यात्। अपीपचदित्येवमादौ तु नैव स्यात्। चङीति किम्? कारयति। हारयति। उपधाया इति किम्? अचकाङ्क्षत्। अवावाच्छत्। तदेतदुपधाग्रहणमुत्तरार्थमवश्यं कर्त्तव्यं तदिहापि ह्रस्वत्वं निवर्त्तयतीत्येवमर्थम्, 'येन नाव्यवधानम्' (व्या० प०) इत्येतन्नाश्रयितव्यमिति। *उपधाह्रस्वत्वे णेर्णिच्युपसंख्यानम्* (म० भा०)। वादितवन्तं प्रयोजितवान् अवीवदद्वीणां परिवादकेन। योऽसौ णौ णिलोपस्तस्य स्थानिवद्भावेनाग्लोपित्वादङ्गस्य ह्रस्वो न प्राप्नोति। ण्याकृतिनिर्देशात् सिद्धम्।

अर्थ—'अङ्गस्य' पद का अनुवर्त्तन है। 'चङ्' है परे जिससे, ऐसे णि प्रत्यय के परे रहते, अङ्ग की उपधा को ह्रस्व आदेश होता है।

उदा० (1) अचीकरत्

कृ णिच्—हेतुमति च,

कारि ल्—'अचो ञ्णिति' से तथा 'उरण् रपरः' से 'आर्' वृद्धि आदेश, धातुसंज्ञा, लुङ्,

कारि चङ् त्—तिप्, 'इतश्च' से इकारलोप, च्लि लुङि, 'णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्त्तरि०' से चङ्,

कार् अ त्—'णेरनिटि' से णि का लोप, प्रत्ययलक्षण मानकर उपधाह्रस्व (यहाँ द्वित्व तथा उपधाह्रस्व प्राप्त हैं, परन्तु परकार्य होने से प्रथम उपधाह्रस्व),

कृ कर् अ त्—पश्चात् द्वित्व, 'णौ कृतं स्थानिवद् भवति' से रूपातिदेश,

च कर् अत्—उरत्, उरण् रपरः, हलादिः शेषः, कुहोश्चुः,

चि करत्—सन्वल्लघुनि, सन्यतः,

अचीकरत्—दीर्घो लघोः, अट्।

(2) अजीहरत्

हर् अ त्—'हृ' धातु से णिच् आदि पूर्ववत् होकर इस दशा में द्वित्व, उरत्, हलादिः शेषः,

झ हरत्—कुहोश्चुः, अभ्यासे चर्च,

अजीहरत्—शेष पूर्ववत्।

(3) अजीलवत्

लावि चङ् त्—इस दशा में,

ल लव् अ त्—उपधाह्रस्व, द्वित्व,

अलीलवत्—शेष पूर्ववत्।

(4) अपीपठत्

पाठ् चङ् त्—पूर्ववत्, णिलोप,

प पठ् अ त्—उपधाह्रस्व, द्वित्व,

अपीपठत्—शेष पूर्ववत्।

अत्र०—इन स्थलों पर द्वित्व और उपधाह्रस्वत्व के युगपत् प्राप्त होने पर परकार्य होने से प्रथम उपधाह्रस्वत्व होता है। उसके कर लेने पर द्विर्वचन होता है। निम्नलिखित में नहीं होता है—

(5) आटिटत्

अट् णिच् चङ् त्—पूर्ववत्,

आ अट् इ अ त्—'टि' का द्वित्व,

आ टि टि अत्—'णेरनिटि' से णिलोप, उपधा में 'आ' न रहने से ह्रस्व नहीं होता है।

तथा०—वैसा होने पर ह्रस्व होने वाले अङ्ग के अकार के स्थान पर उपधाह्रस्वत्व का विधान किया गया है। तब ह्रस्वादेश न हो। यह दोष नहीं है। ओणृ धातु के ऋकार अनुबन्धयुक्त पाठ से ज्ञापित होता है कि उपधाह्रस्वत्व के द्वारा नित्य होने पर भी द्वित्व का बाध होता है।

णाविति०—**णि** प्रत्यय परे ही उपधाह्रस्व होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'चङ्युपधाया ह्रस्वः' ऐसा कहे जाने पर 'अलीलवत्' इस स्थल पर वचनसामर्थ्य से अन्तरङ्ग होने पर भी वृद्धि आदेश को बाध कर ह्रस्वादेश होता है। 'अदीदपत्' इस स्थल पर ह्रस्वादेश के द्वारा पुक् आगम का बाध होता है। 'अपीपचत्' यहाँ तो नहीं होता है।

(6) अदीदपत्

दा णिच् चङ् त्—यहाँ ह्रस्वत्व पहले कर लिया जाय तो पुक् आगम नहीं हो सकेगा, अतः 'पुक्' हुआ,

अदीदपत्—णिलोप, द्वित्व, सन्यतः, दीर्घो लघोः।

(7) अपीपचत्

पाचि चङ् त्—'अत उपधायाः' से उपधादीर्घ हुआ, यह आकार ह्रस्वभावी नहीं है, जब 'चङ्परक णि के परे रहते जो अङ्ग, उसकी उपधा को ह्रस्व होता है' ऐसा कहा जाता है तब 'पाच् इ' यहाँ ह्रस्व हो जाता है।

चङीति०—चङ्परक णि के परे रहते उपधाह्रस्वत्व होता है।

(8) कारयति

कृ णिच्—हेतुमति च, धातुसंज्ञा,

कारि ल्—अचो ञ्णिति, णि परे रहते उपधा को ह्रस्वादेश नहीं हुआ, कारण कि णि से पर चङ् नहीं है,

कारि शष् तिप्—कर्त्तरि शप्, गुण, अय् आदेश।

(9) हारयति (पूर्ववत्)।

उपधाया०—उपधा को ह्रस्व आदेश होता है।

(10) अचकाङ्क्षत्

काङ्क्ष् णिच् चङ् त्—पूर्ववत् णिच्, चङ् आदि होकर इस दशा में उपधा में अच् न रहने से ह्रस्वादेश प्राप्त नहीं है,

अचकाङ्क्षत्—द्वित्व, हलादिः शेषः, ह्रस्वः, कुहोश्चुः, अट्।

(11) अववाञ्छत्

वाञ्छ् इ अ त्—पूर्ववत् इस दशा में ह्रस्वादेश नहीं हुआ,

अ ववाञ्छत्—द्वित्व, हलादिः शेषः, ह्रस्वः, अट्।

तदेददु०—यह 'उपधा' पद का ग्रहण उत्तर शास्त्र के लिए अवश्य करना चाहिए। तब यहाँ भी ह्रस्वादेश निवर्त्तित होता है। अतः उपधाग्रहण किया गया है। अतः 'जिसका अवश्य व्यवधान रहता है, उसका व्यवधान नहीं माना जाता है'—इसका आश्रय नहीं करना चाहिए।

उपधा के ह्रस्व करने में णिच् परे रहते जो 'णि', उसके परे रहते ह्रस्व होता है।

(8) अवीवदत्

वादितवन्तं प्रयोजितवान्—इस अर्थ में 'हेतुमति च' से 'णिच्' हुआ, पुनः 'हेतुमति च' से 'णिच्' होकर 'वादि इ चङ् त्' इस दशा में 'णेरनिटि' से णिलोप ह्रस्व होकर द्वित्व होता है। व वद् अत्। 'सन्यतः' से इकार तथा 'दीर्घो लघोः' से दीर्घ होकर।

अवीवदत्—अट्।

(3519) नाग्लोपिशास्वृदिताम् *2* (2572)

अग्लोपिनामङ्गानां शासेरृदितां च णौ चङ्युपधाया ह्रस्वो न भवति। अग्लोपिनां तावत्–मालामाख्यत् अममालत्। मातरमाख्यत् अममातरत्। राजानमतिक्रान्तवान् अत्यरराजत्। लोमान्यनुमृष्टवान् अन्वलुलोमत्। अगेव यत्र केवलो लुप्यते तत्र स्थानिवद्भावादपि सिद्धम्, हलचोरादेशे तु न सिद्ध्यतीति तदर्थमेतद्वचनम्। अगेव यत्र केवलो लुप्यते तत्र स्थानिवद्भावादपि सिद्धम्, हलचोरादेशे तु न सिद्ध्यतीति तदर्थमेतद्वचनम्। शासेः–अशशासत्। ऋदिताम्–बाधृ, अबबाधत्; याचृ, अययाचत्; ढौकृ, अडुढौकत्।

अर्थ—अक् वर्ण (अ, इ, उ, ऋ, ऌ) का लोप हुआ है जिस अङ्ग में, उसकी, शास् धातु की तथा ऋदित् (= ऋकार है इत् जिसका) धातु की उपधा को ह्रस्वादेश नहीं होता है, चङ्परक णि प्रत्यय के परे रहते।

उदा० (क) अग्लोपिनः—

(1) अममालत्

मालाम् आख्यत्—इस अर्थ में,

माला णिच्—'तत्करोति तदाचष्टे' से णिच् हुआ,

माल् इ—णाविष्ठवत् प्राति०, तुरिष्ठेमेयस्सु आदि सूत्र लगकर 'मालि' अग्लोपी धातु हुआ,

मालि चङ् त्—लुङ्, चङ् पूर्ववत्, उपधाह्रस्वत्व नहीं हुआ, णिलोप, 'चङि' से द्वित्व,

अ ममालत्—हलादिः शेषः, ह्रस्वः, अट्।

(2) अममातरत्

मातरम् आख्यात्—पूर्ववत् णिच्, चङ्, अक् वर्ण का लोप होकर उपधाह्रस्वत्व नहीं हुआ,

अ ममातरत्—द्वित्व, अभ्यासकार्य, अट्।

(3) अत्यरराजत्

राजानम् अतिक्रान्तवान्—इस विग्रह के अनुसार प्रत्यय हुआ,

अति राजन् णिच्—प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे बहुलमिष्ठ० (ग०सू०),

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अति रराजत्—पूर्ववत्,
अत्यरराजत्—अट्, इको यणचि।

(4) अन्वलुलोमत्
लोमान्यनुमृष्टवान्—पूर्ववत्।

अगेव०—जहाँ केवल अक् का ही लोप होता है, वहाँ स्थानिवद्भाव से भी सिद्ध है। हल् तथा अच् के आदेश में सिद्ध नहीं होता है, इसके लिए यह विधान है।

(ख) शासः—

(5) अशशासत्
शास् इ चङ् त्—पूर्ववत् सभी कार्य, यहाँ उपधाह्रस्व नहीं हुआ,
श शास् अ त्—णिलोप, द्वित्व, अभ्यासकार्य,
अशशासत्—अट्।

(ग) ऋदितः—

(6) अबबाधत्
बाधृ → बाध् णि चङ् त्—इस दशा में,
अ बबाधत्—उपधाह्रस्व नहीं हुआ, णिलोप, द्वित्व, अट्।

(7) अययाचत्
याच् → याच् णि चङ् त्—पूर्ववत् उपधाह्रस्व नहीं हुआ।

(8) अडुढौकत्
ढौकृ → ढौक् णि चङ् त्—उपधाह्रस्व नहीं हुआ, णिलोप, द्वित्व,
ढौ ढौ क् अ त्—हलादिः शेषः, ह्रस्वः,
अडुढौकत्—अभ्यासे चर्च, अट्।

(3520) भ्राजभासभाषदीपजीवमीलपीडामन्यतरस्याम् *3* (2565)

भ्राज, भास, भाष, दीप, जीव, मील, पीड-इत्येतेषामङ्गानां णौ चङ्युपधाया ह्रस्वो भवत्यन्यतरस्याम्। भ्राज-अबिभ्रजत्, अबभ्राजत्। भास-अबभासत्, अबीभसत्। भाष-अबभाषत्, अबीभषत्। दीप-अदिदीपत्, अदीदिपत्। जीव-अजिजिवत्, अजीजिवत्। मील-अमिमीलत्, अमीमिलत्। पीड-अपिपीडत्, अपीपिडत्। भ्राजभ्रासोर्ऋदित्करणमपाणिनीयम्। *काण्यादीनां वेति वक्तव्यम्* (म० भा०)। अचकाणत्, अचीकणत्।

अर्थ—चङ् है परे जिसके, ऐसे णि के परे रहते अङ्गसंज्ञक भ्राज्, भास्, भाष्, दीप्, जीव्, मील् तथा पीड् की उपधा को ह्रस्वादेश विकल्प से होता है।

उदा० (1) अबिभ्रजत्
भ्राज् णिच् चङ् त्—णिच्, धातुसंज्ञा, लुङ्, चङ् आदि पूर्ववत्, उपधाह्रस्व,
भ्राज् अ त्—णिलोप, द्वित्व,
ब भ्रजत्—हलादिः शेषः, अभ्यासे चर्च,
अबिभ्रजत्—सन्वल्लघुनि०, सन्यतः, अट्।

(2) अबभ्राजत्
भ्राज् इ अ त्—इस दशा में पक्ष में उपधाह्रस्व नहीं हुआ,
अबभ्राजत्—द्वित्वादि।

(3) अबीभसत्
भास् णि चङ् त्—पूर्ववत्, उपधाह्रस्व,
भस् अत्—णिलोप, द्वित्व,
बभसत्—अभ्यासे चर्च,
अबीभसत्—पूर्ववत् सन्यतः, दीर्घो लघोः, अट्।

(4) अबभासत्
भास् णि चङ् त्—इस दशा में पक्ष में उपधाह्रस्व नहीं हुआ,
बभास् अ त्—णिलोप, द्वित्व, अभ्यास कार्य,
अबभासत्—अट्।

(5) अबीभषत्
भाष् णि चङ् त्—उपधाह्रस्व पक्ष,
अबीभषत्—'अबीभसत्' की तरह।

(6) अबभाषत्
भाष् णि चङ् त्—उपधाह्रस्व-अभाव पक्ष,
अबभाषत्—'अबभासत्' की तरह।

(7) अदीदिपत्
दीप् णि चङ् त्—उपधाह्रस्व पक्ष में,
दि दिप् अत्—णिलोप, द्वित्व, हलादिः शेषः,
अदीदिपत्—सन्वल्लघुनि०, सन्यतः, दीर्घो लघोः, अट्।

(8) अदिदीपत्
दि दीप् अ त्—उपधाह्रस्व अभाव पक्ष, णिलोप, द्वित्व, हलादिः शेषः, ह्रस्वः,
अदिदीपत्—अट्।

(9) अजीजिवत्
जीव् णिच् चङ् त्—उपधाह्रस्व पक्ष,
अजीजिवत्—'अदीदिपत्' की तरह।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(10) अजिजीवत्
'अदिदीपत्' की तरह।

(11) अमीमिलत्
उपधाह्रस्व पक्ष, 'अदीदिपत्' की तरह।

(12) अमिमीलत्
उपधाह्रस्व अभाव, 'अदिदीपत्' की तरह।

(13) अपीपिडत्
पीड्—उपधाह्रस्व पक्ष, 'अदीदिपत्' की तरह।

(14) अपिपीडत्
उपधाह्रस्व अभाव पक्ष, 'अदिदीपत्' की तरह।

भ्राज०—भ्राज व भ्रास को ऋदित् करण अपाणिनीय है।

काण्या०—काणि आदि धातुओं के अङ्ग को पूर्ववत् उपधाह्रस्वत्व विकल्प से होता है।

(15) अचीकणत्
काण् णि चङ् त्—उपधाह्रस्व पक्ष,
अचीकणत्—'अबीभसत्' की तरह। 'कुहोश्चुः' से चुत्व।

(16) अचकाणत्
काण् णि चङ् त्—उपधाह्रस्व अभाव,
अचकाणत्—'अबभासत्' की तरह।

(17) अवीवणत्
वाण् णि चङ् त्—उपधाह्रस्व,
अवीवणत्—'अबीभसत्' की तरह।

(18) अववाणत्
उपधाह्रस्व अभाव पक्ष, 'अबभासत्' की तरह।

(3521) लोपः पिबतेरीच्चाभ्यासस्य *4* (2587)

पिबतेरङ्गस्य णौ चङ्युपधायाः लोपो भवति अभ्यासस्येकारादेशो भवति। अपीप्यत्, अपीप्यताम्, अपीप्यन्। उपधालोपे कृते ओः पुयण्ज्यचनं (7.4.80) ज्ञापकम्–णौ स्थानिवद्भावस्येति। स्थानिवद्भावाद् द्विर्वचनम्।

अर्थ—चङ् है परे जिसके, ऐसे 'णि' के परे रहते 'पा पाने' अङ्ग की उपधा का लोप होता है तथा अभ्यास को 'ईत्' आदेश होता है।

उदा० (1) अपीप्यत्
पा णिच्—'हेतुमति च' से प्रत्यय,
पाय् इ—'शाच्छासाह्वा०' से 'युक्' आगम, अनुबन्धलोप, धातुसंज्ञा,
पायि चङ् त्—लुङ्, इतश्च, च्लि, चङ् पूर्ववत्,
पाय् अ त्—'णेरनिटि' से णिलोप,
प्य् अ त्—उपधालोप, 'चङि' द्वित्व, 'द्विर्वचनेऽचि' से रूपातिदेश होकर,
पा प्यत्—'ह्रस्वः' को बाध कर ईकार आदेश,
अपीप्यत्—अट्।

(2) अपीप्यताम्
पायि अ ताम्—'तस्' को 'ताम्' आदेश, शेष पूर्ववत्,
पा प्य् अ ताम्—द्वित्व,
अपीप्यताम्—ईत्व, अट्।

(3) अपीप्यन्
'झि' प्रत्यय, 'झोऽन्तः' से अन्तादेश, 'इतश्च' से इकारलोप, 'संयोगान्तस्य लोपः' से तकारलोप—इतना कार्य अधिक होता है। शेष सभी पूर्ववत्।

उपधा०—उपधा का लोप कर देने पर 'ओः पुयण्०' सूत्र ज्ञापक है—णि परे स्थानिवद्भाव का। स्थानिवद्भाव से द्वित्व होता है।

(3522) तिष्ठतेरित् *5* (2588)

तिष्ठतेरङ्गस्य णौ चङ्युपधायाः इकारादेशो भवति। अतिष्ठिपत्, अतिष्ठिपताम्, अतिष्ठिपन्।

अर्थ—चङ् है परे जिसके, ऐसे 'णि' के परे रहते 'स्था' अङ्ग की उपधा के स्थान पर इकार आदेश होता है।

उदा० (1) अतिष्ठिपत्
ष्ठा → स्था—धात्वादेः षः सः, निमित्ताऽपाये नैमित्तिकस्याऽपि० से ठकार को थकार,
स्थाप् णि चङ् त्—सभी कार्य पूर्ववत्, 'अर्तिह्वीव्ली०' से 'पुक्',
स्थाप् अत्—'णेरनिटि' से णिलोप,
स्थिप् अ त्—उपधा को इकार आदेश,
स्थिप् स्थिप् अ त्—द्वित्व,[1] हलादिः शेषः, शर्पूर्वाः खयः,

1. पदमञ्जरीकार यहाँ प्रथम द्वित्वकार्य करते हैं—
स्थापि चङ् त्—द्वित्व, शर्पूर्वाः खयः, ह्रस्वः, अभ्यासे चर्च,
त स्थाप् इ अ त्—धातु को इकार आदेश,
त स्थिप् इ अ त्—'णेरनिटि' से णिलोप, सन्यतः, दीर्घो लघोः आदि लगकर रूप बनता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ति स्थिपत्—अभ्यासे चर्च,
तिष् थिपत्—आदेशप्रत्यययोः,
अतिष्ठिपत्—ष्टुना ष्टुः, अट्।

(2) अतिष्ठिपताम्
तस् प्रत्यय, 'ताम्' आदेश, शेष कार्य पूर्ववत्।

(3) अतिष्ठिपन्
झि, 'झोऽन्तः' से 'अन्त्' आदेश, इतश्च, संयोगान्तस्य लोपः, आदि सूत्र लगकर 'स्थापि चङ् अन्' इस स्थिति में पूर्ववत् सभी कार्य होते हैं।

(3523) जिघ्रतेर्वा *6* (2589)

जिघ्रतेरङ्गस्य णौ चङ्युपधाया इकारादेशो वा भवति। अजिघ्रिपत्, अजिघ्रिपताम्, अजिघ्रिपन्। अजिघ्रपत्, अजिघ्रपताम्, अजिघ्रपन्।

अर्थ—चङ् है परे जिसके, ऐसे णि के परे रहते 'घ्रा' अङ्ग की उपधा के स्थान पर विकल्प से इकार आदेश होता है।

उदा० (1) अजिघ्रिपत्
घ्रा पुक् णिच्—'हेतुमति च' से 'णिच्' हुआ, 'अर्तिह्वीब्ली०' से 'पुक्' आगम, अनुबन्धलोप, धातुसंज्ञा,
घ्रापि चङ् त्—लुङ्, इतश्च, चङ्,
घ्रिप् अत्—'णेरनिटि' से णिलोप, द्वित्व,
अजिघ्रिपत्—हलादिः शेषः, कुहोश्चुः, अभ्यासे चर्च, अट्।

(2) अजिघ्रपत्
घ्रापि अ त्—इस दशा में पक्ष में इकार आदेश नहीं होता है, उपधाह्रस्व (णौ चङ्युपधाया०) व णिलोप होकर द्वित्व,
अजिघ्रपत्—सन्वल्लघुनि०, सन्यतः, अट्।

(3) अजिघ्रिपताम्
घ्रापि चङ् ताम्—'तस्' को 'ताम्', इस दशा में उपधा को इकार, णिलोप आदि करके,
अ जिघ्रिप् अ ताम्—अभ्यासकार्य, अट्।

(4) अजिघ्रपताम्
पक्ष में इकार नहीं हुआ, उपधा को पूर्ववत् ह्रस्व हुआ।

(5) अजिघ्रिपन्
झि प्रत्यय, झोऽन्तः, इतश्च, संयोगान्तस्य लोपः, उपधा को इकार आदेशपक्ष में रूप बनता है।

(6) अजिघ्रपन्
इकार आदेश अभाव पक्ष में उपधा को ह्रस्व होकर रूप बनता है।

(3524) उन्नृत् *7* (2567)

णौ चङ्युपधाया ऋवर्णस्य स्थाने वा ऋकारादेशो भवति। इररारामपवादः। इर्–अचिकीर्त्तत्, अचीकृतत्। अर्–अववर्त्तत्, अवीवृतत्। आर्–अममार्जत्, अमीमृजत्। वचनसामर्थ्यादन्तरङ्गा अपि इररारो बाध्यन्ते। तपरकरणं दीर्घेऽपि स्थानिनि ह्रस्व एव यथा स्यात्–अचीकृतदिति। न चायं भाव्यमानः, किन्तु आदेशान्तरनिवृत्त्यर्थं स्वरूपमेवैतद-भ्यनुज्ञायते।

अर्थ—चङ् है परे जिसके, ऐसे 'णि' के परे रहते अङ्गसंज्ञक शब्द की उपधा में वर्त्तमान ऋवर्ण के स्थान पर ऋकार आदेश विकल्प से होता है। यह इर्, अर् तथा आर् का उपवाद है।

उदा० (क) इर् आदेशः—
(1) अचीकृतत्
कृत् णिच्—हेतुमति च, धातुसंज्ञा,
कृत् इ चङ् त्—पूर्ववत् लुङ्, चङ् आदि, 'उपधायाश्च' से इकार आदेश प्राप्त, प्रकृत सूत्र से ऋकार,
कृत् इ अ त्—'णेरनिटि',
चकृत् अ त्—द्वित्व, उरत्, कुहोश्चुः,
अचीकृतत्—सन्यतः, दीर्घो लघोः।

(2) अचिकीर्त्तत्
कृत् इ अ त्—इस दशा में ऋकार आदेश अभाव पक्ष में 'उपधायाश्च' से इकार, उरण् रपरः,
किर्त् अ त्—णिलोप, द्वित्व, कुहोश्चुः,
अ चि कीर्त् अ त्—'उपधायाश्च' से दीर्घ, अचो रहाभ्यां द्वे, अट्।

(ख) अर् आदेशः—
(3) अवीवृतत्
वृत् णिच् चङ् त्—इस दशा में गुण प्राप्त, ऋकार हुआ, णिलोप,
वृ वृत् अ त्—द्वित्व, हलादिः शेषः, उरत्, उरण् रपरः, हलादिः शेषः,
अ वी वृतत्—सन्यतः, दीर्घो लघोः, अट्।

(4) अववर्त्तत्
वृत् णि चङ् त्—इस दशा में पक्ष में गुण, उरण् रपरः,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अ व वर्त् अत्—णिलोप, द्वित्व, हलादिः शेषः, अचो रहाभ्यां द्वे, अट्।

(ग) आर् आदेशः—

(5) अमीमृजत्

मृज् णिच् चङ् त्—इस दशा में 'मृजेर्वृद्धिः' से वृद्धि प्राप्त, प्रकृत सूत्र से ऋकार, णिलोप,

म मृज् अ त्—द्वित्व, हलादिः शेषः, उरत्, उरण् रपरः, हलादि शेष,

अमीमृजत्—सन्यतः, दीर्घो लघोः, अट्।

(6) अममार्जत्

मृज् णि चङ् त्—ऋकार आदेश अभाव पक्ष में वृद्धि, उरण् रपरः, णिलोप, द्वित्व,

अ म मार्ज् अ त्—हलादिः शेषः, ह्रस्वः, अट्।

वचन०—वचनसामर्थ्य से अन्तरङ्ग होने पर इर्, अर् तथा आर् आदेशों का बाध होता है। 'ऋत्' यहाँ तपर किया गया है। तब स्थानी दीर्घ ऋकार के स्थान पर भी ह्रस्व ऋकार होता है।

(7) अचीकृतत्

कृत् णि चङ् त् → कृत् कृत् णि अत्—हलादि शेष, उरत्, कुहोश्चुः आदि लगकर 'चकृतत्' हुआ। सन्यतः से इकार आदेश तथा दीर्घो लघोः से दीर्घ होता है।

यहाँ ऋ भाव्यमान नहीं है। अपितु अन्य आदेशों की निवृत्ति के लिए है।

(3525) नित्यं छन्दसि *8* (3586)

छन्दसि विषये णौ चङ्युपधाया ऋवर्णस्य स्थाने ऋकारादेशो भवति नित्यम्। अवीवृधत्पुरोडाशेन, अवीवृधताम्, अवीवृधन्।

अर्थ—चङ् है परे जिसके, ऐसे णि के परे रहते उपधाभूत ऋकार के स्थान पर नित्य ऋकार होता है, वेद के विषय में।

उदा० (1) अवीवृधत्

वृध् णिच् चङ् त्—इस दशा में लघूपधगुण प्राप्त, प्रकृत सूत्र से ऋकार आदेश, णिलोप,

व वृध् अ त्—द्वित्व, हलादिः शेषः, उरत्, उरण् रपरः, हलादिः शेषः,

अवीवृधत्—सन्यतः, दीर्घो लघोः, अट्।

(2) अवीवृधताम्

तस्, ताम् आदेश, शेष पूर्ववत्।

(3) अवीवृधन्

झि, झोऽन्तः, इतश्च, संयोगान्तस्य लोपः। शेष पूर्ववत्।

(3526) दयतेर्दिगि लिटि *9* (2388)

दयतेरङ्गस्य लिटि परतो दिगीत्ययमादेशो भवति। अवदिग्ये, अवदिग्याते, अवदिग्यिरे। दयतेरिति देङो (धा०पा० 1135) ग्रहणम्, न तु 'दय दाने' (धा०पा० 481)-इत्यस्य। तस्य हि लिट्याम्विहितः। दिग्यादेशेन द्विर्वचनस्य बाधनमिष्यते।

अर्थ—देङ् धातु के अङ्ग के स्थान पर 'दिगि' आदेश होता है, लिट् प्रत्यय परे रहते।

उदा० (1) अवदिग्ये

देङ् ल्—दिगि ल्—लिट्, वचनसामर्थ्य से द्वित्व नहीं हुआ, दिगि ए—'त' प्रत्यय, लिटस्तझयोरेशिरेच्

अव दिग्ये—'इको यणचि' को बाध कर इयङ् आदेश, इसे बाध कर 'एरनेकाच०' से यण्।

(2) अवदिग्याते

अव दिगि आताम्—प्र०पु० द्विव०, पूर्ववत् 'दिगि' आदेश, अवदिग्याते—टित आत्मनेपदानां टेरे।

(3) अवदिग्यिरे

अव दिगि इरे—झ, लिटस्तझयो०, शेष कार्य पूर्ववत्।

दयते०—'दयायासश्च' (3.1.37) के द्वारा 'दय' धातु को 'आम्' का विधान किया जा चुका है। अतः प्रकृत सूत्रस्थ 'दयतेः' पद के द्वारा 'देङ् रक्षणे' का ग्रहण होता है; 'दय' का नहीं। 'दिगि' इस आदेशविधानसामर्थ्य से यहाँ द्विर्वचन नहीं होता है।

(3527) ऋतश्च संयोगादेर्गुणः *10* (2379)

ऋकारान्तस्याङ्गस्य संयोगादेर्गुणो भवति लिटि परतः। स्वृ-सस्वरतुः, सस्वरुः। ध्वृ-दध्वरतुः, दध्वरुः। स्मृ-सस्मरतुः, सस्मरुः। ऋत इति किम्? चिक्षियतुः, चिक्षियुः। संयोगादेरिति किम्? चक्रतुः, चक्रुः। प्रतिषेधविषयेऽपि गुणो यथा स्यादित्ययमारम्भः। वृद्धिविषये तु पूर्वविप्रतिषेधेन वृद्धिरेवेष्यते। सस्वार। सस्मार। लिटीत्येव-स्मृतः। स्मृतवान्। *संयोगादेर्गुणविधाने संयो-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गोपधग्रहणं कृञर्थं कर्त्तव्यम्* (म०भा०)। सञ्चस्करतुः, सञ्चस्करुः-इति। अत्र हि 'पूर्वं धातुः साधनेन युज्यते पश्चादुपसर्गेण' (सीर०प० 128) इत्यत्र दर्शने लिटि कृते तदाश्रये च द्विर्वचने पश्चादुपसर्गयोगे सति 'अडभ्यास-व्यायेऽपि' (6.1.136) इति सुट् क्रियते। एवं च कृत्वा संस्कृषीष्ट, उपस्कृषीष्टेत्यत्र सुटो बहिरङ्गलक्षणस्यासिद्धत्वाद् 'ऋतश्च संयोगादेः' (7.2.43) इति इडागमो न भवति।

अर्थ—संयोग है आदि में जिसके, ऐसे ह्रस्व ऋकारान्त अङ्ग के स्थान पर गुण आदेश होता है, लिट् प्रत्यय परे रहते।

उदा० (1) सस्वरतुः
स्वृ अतुस्—लिट्, असंयोगाल्लिट् कित्, सार्वधातुकार्धधातु० से प्राप्त गुण का 'क्ङिति च' से निषेध, गुण,
स स्वर् अतुस्—द्वित्व, हलादिः शेषः।

(2) सस्वरुः
स्वृ उस्—लिट्, झि, उस् आदेश, पूर्ववत् आर्धधातुक गुण का निषेध, प्रकृत सूत्र से गुण,
सस्वर् उस्—द्वित्व, हलादिः शेषः।

(3) दध्वरतुः
ध्वृ अतुस्—इस दशा में पूर्ववत् गुण, द्वित्व,
द ध्वर् अतुस्—हलादिः शेषः, अभ्यासे चर्च।

(4) दध्वरुः
ध्वृ उस्—सभी कार्य पूर्ववत्।

(5) सस्मरतुः
स्मृ अतुस्—'सस्वरतुः' की तरह।

(6) सस्मरुः
'सस्वरुः' की तरह।

ऋत०—ह्रस्व ऋकारान्त अङ्ग के स्थान पर ही गुण होता है।

(7) चिक्षियतुः
क्षि अतुस्—'अतुस्' के कित् होने से आर्धधातुक गुण का निषेध, प्रकृत सूत्र की अप्राप्ति, द्वित्व,
चिक्षियतुः—कुहोश्चुः, इयङ्।

(8) चिक्षियुः
क्षि उस्—लिट्, झि, उस् आदेश, शेष सभी कार्य पूर्ववत् प्राप्त हैं।

संयोगा०—संयोग है आदि में जिसके, ऐसे ऋदन्त अङ्ग को गुण होता है।

(9) चक्रतुः
कृ अतुस्—'कृ' ऋदन्त अङ्ग है, संयोग आदि में नहीं है, प्रकृत गुण की अप्राप्ति, यणादेश, द्विर्वचनेऽचि से रूपातिदेश,
कृ क्रतुस्—उरत्, हलादिः शेषः, कुहोश्चुः।

(10) चक्रुः
कृ उस्—झि, उस् आदेश, पूर्ववत् द्वित्व, अभ्यास कार्य आदि होते हैं।

प्रतिषेध०—निषेध के विषय में भी गुण हो, इसके लिए यह विधान है। वृद्धि के विषय में पूर्वविप्रतिषेध से वृद्धि ही होती है।

(11) सस्वार[1]
स्वृ णल्—तिप्, परस्मैपदानां णलतु०, 'अचो ञ्णिति' से वृद्धि तथा प्रकृत गुण—दोनों प्राप्त हैं, पूर्वविप्रतिषेध से वृद्धि, द्वित्व, अभ्यासकार्य।

(12) सस्मार
'सस्वार' की तरह।

लिटि०—लिट् प्रत्यय के परे रहते ही गुण होता है।

(13) स्मृतः
स्मृ क्त—'त' लिट् नहीं है, प्रकृत गुण नहीं हुआ,
स्मृत सु—विभक्तिकार्य।

(14) स्मृतवान्
स्मृ क्तवतु—पूर्ववत्।

संयोगा०—यहाँ संयोगोपध का ग्रहण कृञ् धातु के लिए होता है।

(15) सञ्चस्करतुः
सम् कृ अतुस्—लिट्, परस्मैपदानां णलतुसुस्० से 'अतुस्',
सम् च कृ अतुस्—सुट्, अनुस्वार,
सं च स् कृ अतुस्—अनुस्वारस्य परसवर्णः, गुण।

(16) सञ्चस्करुः (पूर्ववत्)।

यहाँ धातु प्रथम साधन (= कर्त्ता आदि अर्थों में विहित प्रत्यय) के साथ युक्त होता है, पश्चात् उपसर्ग के साथ[2]—इस सिद्धान्त

---

1. यहाँ गुण, द्वित्व तथा वृद्धि ('अत उपधायाः') करके भी इष्ट-सिद्धि सम्भव है। यथा—स्वर् अ → सस्वर् अ → सस्वार।

2. 'धातुः पूर्वम् उपसर्गेण युज्यते' तथा 'पूर्वं धातुः साधनेन युज्यते पश्चादुपसर्गेण'—ये दो सिद्धान्त होते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

में लिट् करने पर तन्निमित्तक द्वित्व कार्य कर देने पर उपसर्ग का योग करने पर 'अडभ्यासव्यवाये०' से 'सुट्' होता है।

एवं च०—इसी प्रकार निम्नलिखित स्थलों पर बहिरङ्ग लक्षण वाले सुट् के असिद्ध हो जाने के कारण 'ऋतश्च संयोगादेः' की प्राप्ति नहीं होती है।

(17) संस्कृषीष्ट
सम् कृ सीयुट् सुट् त—लिङ्,
सम् स् कृ सीय् स् त—अनुस्वार, षत्व, ष्टुत्व।
(18) उपस्कृषीष्ट (पूर्ववत्)।

(3528) ऋच्छत्यृताम् *11* (2383)

ऋच्छतेरङ्गस्य, ऋ इत्येतस्य, ॠकारान्तानां च लिटि परतो गुणो भवति। ऋच्छ-आनर्च्छ, आनर्च्छतुः, आनर्च्छुः। ऋ-आरतुः, आरुः। ॠकारान्तानाम्-निचकरतुः, निचकरुः। निजगरतुः, निजगरुः। ऋच्छेरलघूपधत्वादप्राप्तो गुणो विधीयते, ॠतां तु प्रतिषिद्धः। वृद्धिविषये तु पूर्वविप्रतिषेधेन वृद्धिरेवेष्यते। निचकार। निजगार।

अर्थ—ऋच्छ् धातु, ऋ धातु तथा ऋदन्त धातु—इन अङ्गों के स्थान पर गुण आदेश होता है, लिट् प्रत्यय परे रहते।

'ऋताम्' में बहुवचन के निर्देश से यहाँ 'ऋ' का प्रश्लेष सूचित होता है। अन्यथा 'ऋच्छत्यृतोः' इस प्रकार द्विवचन का प्रयोग इष्ट था।

उदा० (1) आनर्च्छ
ऋच्छ् णल्—लिट्, णल् आदेश, उपधा में ऋकार न होने से लघूपधगुण प्राप्त नहीं था, प्रकृत गुण हुआ, 'इको गुणवृद्धी' से ऋकार के स्थान पर गुण हुआ,
अर्च्छ् अर्च्छ् अ—द्वित्व, हलादिः शेषः,
अ अर्च्छ् अ—अत आदेः से आकार, तस्मान्नुड् द्विहलः,
आ न् अर्च्छ् अ—अनुबन्धलोप।

(2) आनर्च्छतुः
ऋच्छ् अतुस्—पूर्ववत् गुण, द्वित्व, अभ्यासकार्य आदि।

(3) आनर्च्छुः
ऋच्छ् झि—परस्मैपदानां णलतुसु० से 'उस्' आदेश, शेष कार्य पूर्ववत्।

(4) आरतुः
ऋ अतुस्—लिट्, तस् के स्थान पर 'अतुस्', 'असंयोगाल्लिट् कित्' से किद्वत्, आर्धधातुक गुण प्राप्त, 'क्ङिति च' से निषेध, प्रकृत गुण,
अ अर् अतुस्—द्वित्व, हलादिः शेषः, अत आदेः,
आ अरतुस्—अकः सवर्णे दीर्घः।

(5) आरुः
ऋ उस्—'झ' को 'उस्' आदेश, शेष पूर्ववत्।

(6) निचकरतुः
कृ अतुस्—प्रकृत गुण, द्वित्व,
नि चकर् अतुस्—अभ्यासकार्य।

(7) निचकरुः
कृ उस्—झ, उस् आदेश, शेष कार्य पूर्ववत्।

(8) निजगरतुः
गृ अतुस्—प्रकृत गुण, द्वित्व,
नि जगर् अतुस्—कुहोश्चुः।

(9) निजगरुः
गृ उस्—प्रकृत गुण, पूर्ववत्।

ऋच्छे०—ऋच्छ् धातु में लघूपध न होने से गुण प्राप्त नहीं था, उसका विधान किया जाता है। ऋ तथा ऋदन्त से गुण 'क्ङिति च' से निषिद्ध है। वृद्धि के विषय में पूर्वविप्रतिषेध से वृद्धि ही होती है।

(10) निचकार
नि कृ णल्—वृद्धि, द्वित्व, अभ्यासकार्य।
(11) निजगार (पूर्ववत्)।

(3529) शॄदॄप्रां ह्रस्वो वा *12* (2495)

शॄ, दॄ, पॄ-इत्येतेषामङ्गानां लिटि परतो वा ह्रस्वो भवति। विशश्रतुः, विशश्रुः। विशशरतुः, विशशरुः। विदद्रतुः, विदद्रुः। विददरतुः, विददरुः। निपप्रतुः, निपप्रुः। निपपरतुः, निपपरुः। ह्रस्ववचनमित्त्वोत्त्वनिवृत्त्यर्थम्। केचिदेतत्सूत्रं प्रत्याचक्षते। 'आ पाके' (धा० पा० 1054), 'द्रा कुत्सायाम्' (धा०पा० 1054), 'प्रा पूरणे' (धा०पा० 1062)-इत्येतेषामनेकार्था धातव इति शॄदॄप्रामर्थे वर्त्तमानानाम्-विशश्रतुः, विशश्रुः, विदद्रतुः, विदद्रुः, निपप्रतुः निपप्रुः-इत्येतानि रूपाणि साधयन्ति। तथा च सति क्वसौ विशश्रिवानित्येतद्रूपं न स्यात्।

अर्थ—अङ्गसंज्ञक शॄ, दॄ तथा पॄ धातुओं को ह्रस्व आदेश विकल्प से होता है, लिट् प्रत्यय परे रहते।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उदा० (1) विशश्रतुः
वि शॄ अतुस्—ह्रस्व हुआ,
वि शॄ शॄ अतुस्—द्वित्व, उरत्, उरण् रपरः, हलादिः शेषः,
विशश्रतुस्—यण्।

(2) विशशरतुः
पक्ष में ह्रस्व नहीं हुआ, 'ऋच्छत्यृताम्' से गुण होकर रूप बना।

(3) विशश्रुः
वि शॄ उस्—झि, उस् आदेश, 'विशश्रतुः' की तरह।

(4) विशशरुः
पक्ष में ह्रस्व आदेश नहीं हुआ, 'विशशरतुः' की तरह।

(5) विदद्रतुः
वि दॄ अतुस्—ह्रस्व आदेश, शेष 'विशश्रतुः' की तरह।

(6) विददरतुः
पक्ष में ह्रस्व नहीं हुआ, 'ऋच्छत्यृताम्' से गुण।

(7) विदद्रुः
ह्रस्व, यण्।

(8) विददरुः
पक्ष में गुण, शेष 'विशशरुः' की तरह।

(9) निपप्रतुः
नि पॄ अतुस्—ह्रस्व, द्वित्व, अभ्यास कार्य आदि।

(10) निपपरतुः
नि पॄ अतुस्—पक्ष में ह्रस्व नहीं हुआ, 'उदोष्ठ्यपूर्वस्य' से प्राप्त उत्व को बाध कर 'ऋच्छत्यृताम्' से गुण,
नि प पर् अतुस्—द्वित्व, हलादिः शेषः।

(11) निपप्रुः
ह्रस्वपक्ष, द्वित्व, अभ्यासकार्य।

(12) निपपरुः
ह्रस्व अभाव पक्ष, 'निपपरतुः' की तरह।

ह्रस्व०—ह्रस्वविधान 'ऋत इद्०' से प्राप्त इकार आदेश तथा 'उदोष्ठ्यपूर्वस्य' से प्राप्त उकार आदेश के निवारण के लिए है। कुछ विद्वान् इस सूत्र का प्रत्याख्यान करते हैं। 'श्रा पाके, द्रा कुत्सायाम्, प्रा पूरणे—ये धातु अनेकार्थक होते हैं।' इस सिद्धान्त के अनुसार शॄ, दॄ तथा पॄ के अर्थ में वर्त्तमान हैं; विशश्रतुः, विशश्रुः, विदद्रतुः, विदद्रुः, निपप्रतुः, निपप्रुः रूप, इनकी सिद्धि होती है। अतः ह्रस्वविधान व्यर्थ है।

(समा०) क्वसु प्रत्यय परे रहे 'विशशृवान्' रूप सिद्ध नहीं होगा।

(3530) केऽणः *13* (834)

के प्रत्यये परतोऽणो ह्रस्वो भवति। ज्ञका। कुमारिका। किशोरिका। अण इति किम्? गोका। नौका। राका, धाकेत्यत्र 'उणादयो बहुलम्' (3.3.1) इति ह्रस्वो न भवति। 'न कपि' (7.4.14) इति प्रतिषेधसामर्थ्यात्कनोऽपि सानुबन्धकस्य ग्रहणमिह भवति।

अर्थ—अण् को ह्रस्व आदेश होता है, 'क' प्रत्यय परे रहते।

उदा० (1) कुमारिका
कुमारी कन् → कुमारि क—ह्रस्व,
कुमारिक टाप् सु—अजाद्यतष्टाप्।

(2) किशोरिका
किशोरी क—पूर्ववत्।

अण०—अण् के स्थान पर ही ह्रस्व आदेश होता है।

(3) गोका
गो क—'क' पर है, परन्तु पूर्व में 'अण्' नहीं होने से ह्रस्व नहीं हुआ,
गो क टाप् सु—विभक्तिकार्य।

(4) नौका
नौ क—पूर्ववत्।

राका०—(5) राका व (6) धाका—यहाँ 'उणादयो बहुलम्' से ह्रस्व नहीं होता है। 'न कपि' इससे निषेधसामर्थ्य से अनुबन्धयुक्त 'कन्' का भी ग्रहण होता है।

(3531) न कपि *14* (835)

कपि प्रत्यये परतोऽणो ह्रस्वो न भवति। बहुकुमारिकः। बहुवधूकः। बहुलक्ष्मीकः। 'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' (1.2.48) इत्ययमपि ह्रस्वः कपि न भवति। समासार्थे ह्युत्तरपदे कपि कृते पश्चात् कबन्तेन सह समासेन भवितव्यमिति स्त्रीप्रत्ययान्तसमासप्रातिपदिकं न भवति।

अर्थ—अण् को ह्रस्व आदेश नहीं होता है, कप् प्रत्यय परे रहते।

उदा० (1) बहुकुमारीकः
बहुकुमारी कप्—ह्रस्वादेश का निषेध।

(2) बहुवधूकः (पूर्ववत्)।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गोस्त्रि०—'गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य' से भी 'कप्' परे रहते ह्रस्वादेश नहीं होता है। समासार्थ उत्तरपद में कप् करने पर पश्चात् कबन्त के साथ समास होना चाहिए। अतः स्त्रीप्रत्ययान्त समास प्रातिपदिक नहीं होता है।

(3532) आपोऽन्यतरस्याम् *15* (892)

आबन्तस्याङ्गस्य कपि ह्रस्वो न भवत्यन्यतरस्याम्। बहुखट्वाकः, बहुखट्वकः। बहुमालाकः, बहुमालकः।

अर्थ—आबन्त अङ्ग को ह्रस्व आदेश विकल्प से नहीं होता है, कप् प्रत्यय नहीं होता है।

उदा० (1) बहुखट्वाकः
बहुखट्वा कप्—ह्रस्व नहीं हुआ।

(2) बहुखट्वकः
ह्रस्व हुआ।

(3) बहुमालाकः
ह्रस्व नहीं हुआ।

(4) बहुमालकः
ह्रस्व हुआ।

(3533) ऋदृशोऽङि गुणः *16* (2406)

ऋवर्णान्तानां दृशेश्च अङि परतो गुणो भवति। शकलाङ्गुष्ठकोऽकरत्। अहं तेभ्योऽकरं नमः। असरत्। आरत्। जरा। दृशेः-अदर्शत्, अदर्शताम्, अदर्शन्।

अर्थ—ऋवर्णान्त तथा दृश्—इन अङ्गों को गुण होता है, 'अङ्' परे रहते।

उदा० (1) अकरत्
कृ अङ् त्—लुङ्, कृमृदृरुहि० से 'अङ्' आदेश,
कर् अ त्—गुण, उरण् रपरः,
अकरत्—अट्।

(2) अकरम्
'मिप्' को 'अम्' आदेश, शेष पूर्ववत्।

(3) असरत्
सृ तिप्—लुङ्, 'इतश्च' से इकारलोप, सर्तिशास्त्य०,
सृ अङ् त्—प्रकृत गुण, उरण् रपरः,
अ सर् अत्—अट्।

(4) आरत्
ऋ अङ् त्—पूर्ववत्,
आ अर् अ त्—गुण, आडजादीनाम्।

(5) जरा
जृ अङ् → जर् अ—गुण,
जर टाप् सु—अजाद्यतष्टाप्।

(6) अदर्शत्
दृश् अङ् त्—'इरितो वा' से पाक्षिक अङ्,
अ दर्श् अ त्—गुण, अट्।

(7) अदर्शताम्
तस्, ताम् आदेश, शेष पूर्ववत्।

(8) अदर्शनम्
झि, झोऽन्तः, इतश्च, संयोगान्तस्य लोपः, शेष पूर्ववत्।

(3534) अस्यतेस्थुक् *17* (2520)

अस्यतेरङ्गस्य थुगागमो भवत्यङि परतः। आस्थत्, आस्थताम्, आस्थन्।

अर्थ—असु क्षेपणे धातु को 'थुक्' आगम होता है, 'अङ्' प्रत्यय परे रहते। ककार व उकार की इत्संज्ञा होती है।

उदा० (1) आस्थत्
अस् तिप्—लुङ्,
अस् अङ् त्—इतश्च, अस्यतिवक्ति०,
आ अस् थ् अत्—थुक् आगम, अनुबन्धलोप, आडजादीनाम्।

(2) आस्थताम्
तस्, ताम् आदेश, शेष पूर्ववत्।

(3) आस्थन्
झि, 'अन्त्' आदेश, इकारलोप, संयोगान्तलोप, शेष पूर्ववत्।

(3535) श्वयतेरः *18* (2421)

श्वयतेरङ्गस्याकारादेशो भवत्यङि परतः। अश्वत्, अश्वताम्, अश्वन्।

अर्थ—श्वि अङ्ग को अकार आदेश होता है, 'अङ्' प्रत्यय पर रहते।

उदा० (1) अश्वत्
श्वि अङ् त्—लुङ्, इकारलोप,
अ श्व अ त्—अतो गुणे, अट्।

(2) अश्वताम्
'ताम्' आदेश, शेष पूर्ववत्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(3) अश्नन्
झि, झोऽन्तः, पूर्ववत्।

(3536) पतः पुम् *19* (2355)

पतेरङ्गस्य पुमागमो भवत्यङि परतः। अपप्तत्, अपप्ताम्, अपप्तन्।

अर्थ—पत् अङ्ग को 'पुम्' आगम होता है, 'अङ्' प्रत्यय परे रहते।

उदा० (1) अपप्तत्
पत् अङ् त्—तिप्, इतश्च, पुषादिद्युता०,
प पुम् त् अत्—मकार व उकार की इत् संज्ञा,
अपप्तत्—अट्।

(2) अपप्ताम्
पत् अङ् ताम्—'तस्' को 'ताम्' आदेश,
प प् त् अताम्—'पुम्' आगम,
अपप्ताम्—अट्।

(3) अपप्तन्
'झि' प्रत्यय, पूर्ववत्।

(3537) वच उम् *20* (2454)

वचेरङ्गस्य अङि परत उमागमो भवति। अवोचत्, अवोचताम्, अवोचन्।

अर्थ—वच् अङ्ग को 'उम्' आगम होता है, 'अङ्' प्रत्यय परे रहते।

उद० (1) अवोचत्
वच् अङ् त्—पूर्ववत्,
व उम् च् अ त्—मकार की इत्संज्ञा, आद् गुणः,
अवोचत्—अट्।

(2) अवोचताम्
'तस्' को 'ताम्' आदेश, शेष पूर्ववत्।

(3) अवोचन्
झि, पूर्ववत् 'उम्' आगम।

(3538) शीङः सार्वधातुके गुणः *21* (2441)

शीङोऽङ्गस्य सार्वधातुके परतो गुणो भवति। शेते, शयाते, शेरते। सार्वधातुके इति किम्? शिश्ये।

अर्थ—शीङ् अङ्ग को गुण आदेश होता है, सार्वधातुक प्रत्यय परे रहते।

उदा० (1) शेते
शी त—तिङ् शित् सार्वधातुकम्, कर्तरि शप्, अदिप्रभृतिभ्यः शपः,
शेते—टित आत्मनेपदानां टेरे।

(2) शयाते
शी आताम्—पूर्ववत् शप् लुक्,
शे आताम्—गुण, अय्, एत्व।

(3) शेरते
शी झ—आत्मनेपदेष्वनतः, शीङो रुट्,
शे र् त—गुण, एत्व।

सार्वधा०—सार्वधातुक प्रत्यय परे रहते ही गुण होता है।

(4) शिश्ये
शी त—लिट्, लिटस्तझयोरे०,
शी शी ए—द्वित्व।
शि शी ए—ह्रस्वः,
शिश्ये—यण्।

(3539) अयङ् यि क्ङिति *22* (2649)

यकारादौ क्ङिति प्रत्यये परतः शीङोऽङ्गस्य 'अयङ्' इत्ययमादेशो भवति। शय्यते। शाशय्यते। प्रशय्य। उपशय्य। यीति किम्? शिश्ये। क्ङितीति किम्? शेयम्।

अर्थ—शीङ् अङ्ग को 'अयङ्' आदेश होता है, यकारादि कित् व ङित् प्रत्ययों के परे रहते।

उदा० (1) शय्यते
शी त—कर्मवाच्य, सार्वधातुकसंज्ञा, सार्वधातुके यक्,
शी य त—'हलन्त्यम्' से ककार की इत् संज्ञा,
श् अयङ् य त—अनुबन्धलोप,
शय् य ते—एत्व।

(2) शाशय्यते
शी यङ्—प्रत्यय हुआ,
श् अयङ् य—अयङ् आदेश,
शय् शय् य—सन्यङोः,
शा शय्य—हलादिः शेषः, दीर्घ, धातुसंज्ञा,
शाशय्य शप् त—अतो गुणे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(3) प्रशय्य
प्र शी क्त्वा—समास, समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्,
प्र शय् ल्यप् सु—अनुबन्धलोप।

(4) उपशय्य
उप शी क्त्वा—पूर्ववत्।

यीति०—यकारादि प्रत्यय के परे रहते 'अयङ्' आदेश होता है।

(5) शिश्ये
शी त → शी ए—लिट्,
शी शी ए—द्वित्व, ह्रस्वः,
शिश्ये—'त' प्रत्यय कित् है, परन्तु यकारादि नहीं है; अतः 'अयङ्' नहीं हुआ।

क्ङिती०—कित् व ङित् प्रत्ययों के परे रहते 'अयङ्' होता है।

(6) शेयम्
शी यत्—अचो यत्,
शे य—'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से गुण, सु। 'यत्' यकारादि तो है; परन्तु न कित् है और न ही ङित्।

(3540) उपसर्गाद्ध्रस्व ऊहतेः *23* (2702)

उपसर्गादुत्तरस्य ऊहतेरङ्गस्य ह्रस्वो भवति यकारादौ क्ङिति प्रत्यये परतः। समुह्यते। समुह्य गतः। अभ्युह्यते। अभ्युह्य गतः। उपसर्गादिति किम्? ऊह्यते। ऊहतेरिति किम्? समीह्यते। 'यि' इत्येव-समूहितम्। 'क्ङिति' इत्येव-समूह्योऽयमर्थः। 'अणः' इत्येव-आ + ऊह्यते = ओह्यते। समोह्यते।

अर्थ—उपसर्ग से उत्तर जो 'ऊह्' धातु का अङ्ग, उसे ह्रस्व आदेश होता है, यकारादि कित् व ङित् प्रत्ययों के परे रहते।

उदा० (1) समुह्यते
सम् ऊह् त—कर्मवाच्य, सार्वधातुके 'यक्',
सम् उह् य त—ह्रस्व, एत्व।

(2) समुह्य
सम् ऊह् क्त्वा—समास, समासेऽनञ्०,
सम् उह् ल्यप्—ह्रस्व, सु।

(3) अभ्युह्यते
अभि ऊह् त—पूर्ववत् 'यक्', ह्रस्व।

(4) अभ्युह्य
अभि ऊह् क्त्वा—ल्यप्, ह्रस्व।

उपसर्गा०—उपसर्ग से उत्तर 'ऊह्' को ह्रस्व होता है।

(5) ऊह्यते
ऊह् यक् त—कर्मवाच्य, यकारादि कित् परे है; परन्तु अङ्ग उपसर्ग से उत्तर नहीं है, ह्रस्व नहीं हुआ।

ऊहते०—ऊह् धातु को ही ह्रस्व होता है।

(6) समीह्यते
सम् ईह् य त—कर्मवाच्य, सार्वधातुके 'यक्', यकारादि कित् परे है, उपसर्ग से उत्तर अङ्ग है; परन्तु अङ्ग में ऊह् धातु नहीं है, ह्रस्व नहीं हुआ,
समीह्यते—एत्व।

यि०—यकारादि प्रत्यय के परे रहते ह्रस्व होता है।

(7) समूहितम्
सम् ऊह् क्त—लशक्वतद्धिते, उपसर्ग से उत्तर 'ऊह्' अङ्ग है, कित् प्रत्यय परे है; परन्तु यकारादि नहीं है। अतः ह्रस्व नहीं होता है,
समूह् इ त सु—आर्धधातुकं शेषः, आर्धधातुकस्येड्वलादेः, सु।

क्ङिति०—कित् व ङित् प्रत्ययों के परे रहते ह्रस्व होता है।

(8) अभ्यूह्य
अभि ऊह् यत्—यकारादि प्रत्यय परे है, परन्तु न तो कित् है तथा न ही ङित्। अतः ह्रस्व नहीं हुआ,
अभ्यूह्य सु—यण्।

अणः—अण् को ही ह्रस्व होता है।

(9) ओह्यते
आ ऊह्यते—आदगुणः,
ओह्यते—यहाँ ओकार के 'अण्' न होने से ह्रस्व नहीं होता है।

(10) समोह्यते
सम् आ ऊह्यते—पूर्ववत् ह्रस्व नहीं हुआ।

(3541) एतेर्लिङि *24* (2457)

एतेरङ्गस्योपसर्गादुत्तरस्य लिङि यकारादौ क्ङिति परतो ह्रस्वो भवति। उदियात्। समियात्। अन्वियात्। आशिषि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लिङि 'अकृत्सार्वधातुकयोः' (7.4.25) इति दीर्घत्वे कृते ह्रस्वोऽनेन भवति। उपसर्गादित्येव-ईयात्। 'अणः' इत्येव-आ + ईयात् = एयात्। समेयात्।

अर्थ—उपसर्ग से उत्तर जो इण् धातु का अङ्ग, उसे ह्रस्व होता है, कित् लिङ् परे रहते।

उदा० (1) उदियात्
इ त्—लिङ्, इतश्च, 'किदाशिषि' से कित्,
इ यासुट् त्—यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो०,
ई यास् त्—अकृत् सार्वधातुक० से दीर्घ,
उद् इयात्—उपसर्ग से उत्तर इण् को ह्रस्व हुआ।

(2) समियात्
सम् ईयात्—सभी कार्य पूर्ववत्, ह्रस्व।

(3) अन्वियात्
अनु ईयात्—पूर्ववत्।

आशिषि०—आशीर्लिङ् में अकृत् सार्वधातुक० से दीर्घ करने पर इससे ह्रस्व होता है।

उपसर्गा०—उपसर्ग से उत्तर इण् धातु को ह्रस्व होता है।

(4) ईयात्
ई लिङ्—पूर्ववत्,
ई यात्—उपसर्ग से उत्तर नहीं है। ह्रस्व नहीं हुआ।

अण०—अण् को ही ह्रस्व होता है।

(5) एयात्
आ ईयात्—'आद्गुणः' से गुणादेश हुआ। अब ह्रस्वादेश नहीं होता है।

(6) समेयात्
सम् आ ईयात्—पूर्ववत् ह्रस्वादेश नहीं होता है।

(3542) अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः *25* (2298)

अकृद्यकारे असार्वधातुकयकारे च क्ङिति परतोऽजन्तस्याङ्गस्य दीर्घो भवति। भृशायते। सुखायते। दुःखायते। चीयते, चेचीयते। स्तूयते, तोष्टूयते। चीयात्। स्तूयात्। अकृदिति किम्? प्रकृत्य। प्रहृत्य। परत्वाद्दीर्घत्वेन तुको बाधः स्यात्। असार्वधातुक इति किम्? चिनुयात्। सुनुयात्। 'क्ङिति' इत्येव-उरुया। धृष्णुया।

अर्थ—यकारादि कित् व ङित् प्रत्ययों के परे रहते अङ्ग को दीर्घ आदेश होता है, परन्तु कृत् संज्ञक व सार्वधातुकसंज्ञक कित् व ङित् के परे रहते दीर्घ नहीं होता है।

उदा० (1) भृशायते
भृश क्यङ्—कर्तुः क्यङ् सलोपश्च, अनुबन्धलोप,
भृशाय—यकारादि कित् परे है, दीर्घ हुआ, धातुसंज्ञा,
भृशाय शप् त—अतो गुणे।

(2) सुखायते
सुख क्यङ्—सुखादिभ्यः०,
सुखायते—पूर्ववत् दीर्घ।

(3) दुःखायते
दुःख क्यङ्—पूर्ववत्।

(4) चीयते
चि यक् त—कर्मवाच्य, सार्वधातुके यक्,
चीयते—एत्व।

(5) चेचीयते
चि यङ्—दीर्घ, 'सन्यङोः' से द्वित्व,
चि ची य—ह्रस्वः, गुणो यङ्लुकोः,
चे चीय शप् त—अतो गुणे।

(6) स्तूयते
स्तु यक् त—सार्वधातुके यत्,
स्तूयते—दीर्घ।

(7) तोष्टूयते
स्तु यङ्—दीर्घ, सन्यङोः, शर्पूर्वाः खयः,
तोष्टूयते—गुणो यङ्लुकोः, षत्व, ष्टुना ष्टुः, शप् आदि।

(8) चीयात्
चि त्—तिप्, लिङ्, इतश्च,
चि यास् त्—यासुट् परस्मै०, यकारादि ङित् परे है, अतः दीर्घ होता है,
चीयात्—सकारलोप।

(9) स्तूयात्
स्तु यासुट् त्—लिङ्, पूर्ववत् सभी कार्य।

अकृदिति०—कृत् संज्ञक (कित् व ङित्) के परे रहते दीर्घ नहीं होता है।

(10) प्रकृत्य
प्र कृ क्त्वा—समास, समासेऽनञ् पूर्वे०,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्र कृ ल्यप्—स्थानिवद्भाव से कित् हुआ, यकारादि कित् परे है; परन्तु कृत् संज्ञक होने से दीर्घ नहीं हुआ,
प्रकृत्य सु—ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्।

(11) प्रहृत्य
'प्रकृत्य' की तरह।

परत्वा०—पर होने से दीर्घादेश के द्वारा तुक् आगम का बाध होने लगेगा। **सार्वधातुक** कित् व ङित् प्रत्ययों के परे रहते दीर्घ नहीं होता है।

(12) चिनुयात्
चि त्—लिङ्, इतश्च, तिङ् शित् सार्वधा०,
चि श्नु यास् त्—शप् को बाध कर 'स्वादिभ्यः श्नुः' से श्नुः, यासुट् परस्मैपदे०, अनुबन्धलोप, सार्वधातुकमपित् से 'श्नु' ङिद्वत्,
चिनुयात्—ङित् है, परन्तु सार्वधातुक है। अतः 'श्नु' को दीर्घ नहीं हुआ।

(13) सुनुयात्
सुनु यात्—सभी कार्य पूर्ववत्, 'सुनु' अङ्ग को दीर्घ नहीं हुआ।

क्ङिती०—कित् व ङित् प्रत्ययों के परे रहते ही दीर्घ होता है।

(14) उरुया
उरु टा—सुपां सुलुक्० के द्वारा 'टा' विभक्ति के स्थान पर 'या' आदेश होता है।

(15) धृष्णुया
धृष्णु टा—पूर्ववत् 'या' हुआ।

(3543) च्वौ च *26* (2120)

च्विप्रत्यये परतोऽजन्तस्याङ्गस्य दीर्घो भवति। शुची-करोति। शुचीभवति। शुचीस्यात्। पटूकरोति। पटू-भवति। पटूस्यात्।

अर्थ—अजन्त अङ्ग को दीर्घ होता है, 'च्वि' प्रत्यय के परे रहते।

उदा० (1) शुचीकरोति
शुचि च्वि कृ—कृभ्वस्तियोगे,
शुची कृ उ तिप्—दीर्घ।

(2) शुचीभवति
शुचि च्वि भू—पूर्ववत् दीर्घ।

(3) शुचीस्यात्
शुचि च्वि अस् लिङ्—पूर्ववत् दीर्घ।

(4) पटूकरोति
पटु च्वि कृ—पूर्ववत् दीर्घ।

(5) पटूभवति
पूर्ववत् दीर्घ।

(6) पटूस्यात्
पूर्ववत् दीर्घ।

(3544) रीङ् ऋतः *27* (1234)

ऋकारान्तस्याङ्गस्य अकृद्यकारेऽसार्वधातुके यकारे च्वौ च परतः 'रीङ्'-इत्ययमादेशो भवति। मात्रीयति, मात्रीयते। पित्रीयति, पित्रीयते। चेक्रीयते। मात्रीभूतः। 'क्ङिति' इत्येतन्निवृत्तम्, तेनेहापि भवति-पितुरागतं पित्र्यम्। ऋत इति तपरकरणं किम्? चेकीर्यते। निजेगिल्यते।

अर्थ—ऋकारान्त जो अङ्ग, उसे 'रीङ्' होता है, यकारादि प्रत्यय तथा च्वि के परे रहते, परन्तु यकारादि कृत् व सार्वधातुक के परे रहते 'रीङ्' नहीं होता है।

उदा० (1) मात्रीयते
मातृ क्यङ्—रीङ्,
मात्रीय—धातुसंज्ञा,
मात्रीय शप् त—अतो गुणे।

(2) मात्रीयति
मातृ क्यच्—सुप आत्मनः क्यच्,
मात् री य—अनुबन्धलोप, रीङ् आदेश, धातुसंज्ञा,
मात्रीय शप् ति—अतो गुणे।

(3) पित्रीयते
पितृ क्यङ्—'मात्रीयते' की तरह।

(4) चेक्रीयते
कृ यङ्—यकारादि ङित् परे है, 'रीङ्' आदेश,
क्री य—सन्यङोः,
चेक्रीयते—हलादिः शेषः, कुहोश्चुः, गुण, शप्, अतो गुणे।

(5) मात्रीभूतः
मातृ च्वि भू—'रीङ्' हुआ, सर्वापहार लोप,
मात्रीभू क्त सु—क्त, विभक्तिकार्य।

क्ङिती०—किति व ङिति का अनुवर्त्तन नहीं है। अतः निम्नलिखित में होता है—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(6) पित्र्यम्
पित्री यत्—'अचो यत्', रीङ् हुआ,
पित्र् य—यस्येति च,
पित्र्य सु—विभक्तिकार्य।

ऋत०—ह्रस्व ऋकारान्त अङ्ग के स्थान पर 'रीङ्' आदेश होता है।

(7) चेकीर्यते
कृ यङ्—यकारादि परे है, परन्तु दीर्घ ऋकारान्त अङ्ग है, 'रीङ्' नहीं हुआ,
किर् य—ऋत इद् धातोः, उरण् रपरः,
कीर् य—हलि च,
चेकीर्य—द्वित्व, कुहोश्चुः, गुणो यङ्लुकोः, धातुसंज्ञा,
चेकीर्य शप् त—अतो गुणे।

(8) निजेगिल्यते
गृ यङ्—पूर्ववत्,
नि जेगिल् य—द्वित्व, कुहोश्चुः, गुणो यङ्लुकोः,
निजेगिल्य शप् त—अतो गुणे।

(3545) रिङ् शयग्लिङ्क्षु *28* (2367)

ऋकारान्तस्याङ्गस्य श, यक्-इत्येतयोर्लिङि च यकारादावसार्वधातुके परतः 'रिङ्' इत्ययमादेशो भवति। श-आद्रियते, आध्रियते। यक्-क्रियते, ह्रियते। लिङ्-क्रियात्, ह्रियात्। रिङ्वचनं दीर्घनिवृत्त्यर्थम्। 'असार्वधातुके' इत्येव-बिभृयात्। 'यि' इत्येव-कृषीष्ट, हृषीष्ट।

अर्थ—सार्वधातुकभिन्न (अर्थात् आर्धधातुक) यकारादि लिङ्, श तथा यक्—इनके परे रहते ऋकारान्त अङ्ग के स्थान पर 'रिङ्' आदेश होता है।

रिङ् के ङकार की 'हलन्त्यम्' से इत् संज्ञा होती है। 'यि' पद 'लिङि' का विशेषण है।[1] 'असार्वधातुके' पद भी 'लिङि' पद का विशेषण है। अतः 'बिभृयात्' में 'रिङ्' नहीं होता है।

उदा० (क) 'श' परे—

(1) आद्रियते
आ दृ त—शप् को बाधकर 'तुदादिभ्यः शः' से 'श',
आ दृ अ त—लशक्वतद्धिते, रिङ् आदेश,
आ द्रि अ त—यण् प्राप्त, 'अचि श्नुधातु०' से इयङ्,
आद्रिय् अ ते—एत्व।

(2) आध्रियते
आ धृ त—पूर्ववत्।

(ख) यकि—

(3) क्रियते
कृ यक् त—कर्मवाच्य, सार्वधातुके यक्,
क् रिङ् य त—रिङ्, एत्व।

(4) ह्रियते
ह्र त—पूर्ववत्।

(ग) लिङि—

(5) क्रियात्
कृ त्—लिङ्, इतश्च, आर्धधातुक संज्ञा, लिङाशिषि,
कृ यासुट् त्—यासुट् परस्मैपदेषू०, यकारादि आर्धधातुक लिङ् 'यासुट्' के परे रहते 'रिङ्' होता है,
क्रियात्—सकारलोप।

यहाँ 'अकृत् सार्वधातुकयोर्दीर्घः' से दीर्घ प्राप्त है। प्रकृत सूत्र में पूर्व सूत्र से 'रीङ्' का अधिकार होने पर भी 'रिङ्' आदेश के विधान से ज्ञापित होता है कि आचार्य को यहाँ दीर्घादेश इष्ट नहीं है; अन्यथा 'रिङ्' का विधान व्यर्थ हो जाता है।

(6) ह्रियात् (पूर्ववत्)।

असार्व०—सार्वधातुकभिन्न लिङ् के परे रहते ही 'रिङ्' होता है।

(7) बिभृयात्
भृ यासुट् त्—विधिलिङ्, इतश्च, यासुट् परस्मैपदे०,
भृ भृ यास् त्—शप् को श्लु, 'श्लौ' से द्वित्व,
बिभृयात्—सकारलोप।

यीत्येव०—यकारादि लिङ् परे रहते ही 'रिङ्' होता है।

(8) कृषीष्ट
कृ सीयुट् सुट् त—आशीर्लिङ्, आर्धधातुक संज्ञा, यहाँ लिङ् तो है परन्तु यकारादि नहीं है, 'रिङ्' नहीं हुआ।

(9) हृषीष्ट (पूर्ववत्)।

---

1. भृ सीयुट् सुट् त—इस दशा में 'भृ' अङ्ग को 'रिङ्' नहीं होता है, कारण कि 'सीयुट्' लिङ् तो परे है, परन्तु वह यकारादि नहीं है। अतः यकारादि व लिङ्—दोनों का होना आवश्यक है—
भृ षी ष् ट—यकारलोप, 'आदेशप्रत्यययोः' से षत्व तथा 'ष्टुना ष्टुः' से ष्टुत्व होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(3546) गुणोऽर्तिसंयोगाद्योः *29* (2380)

ऋतो यकि लिङि इति वर्त्तते। 'श' इत्यत्रासम्भवान्निवृत्तम्। गुणो भवत्यर्तेः संयोगादीनामृकारान्तानां यकि परतो लिङि च यकारादावसार्वधातुके। अर्यते, अर्यात्। स्मर्यते, स्मर्यात्। इह संस्क्रियते, संस्क्रियादिति सुटो बहिरङ्गलक्षणस्यासिद्धत्वाद्, अभक्तत्वाद्वा संयोगादित्वमङ्गस्य नास्तीति गुणो न प्रवर्त्तते। 'यि' इत्येव-स्वृषीष्ट। ध्वृषीष्ट। 'असार्वधातुके' इत्येव-इयृयात्।

अर्थ—ऋतः, यकि तथा लिङि०—इनका अनुवर्त्तन है। चूँकि तुदादिगण में न तो 'ऋ' धातु का पाठ है और न ही संयोगादि धातु का; अतः 'श' इसका सम्भव न होने से 'श' का अनुवर्त्तन नहीं है। यक् तथा यकारादि आर्धधातुक प्रत्ययों के परे रहते 'ऋ' धातु तथा संयोगादि ऋदन्त धातुओं को गुण आदेश होता है।

यहाँ भौवादिक तथा जौहोत्यादिक—दोनों 'ऋ' का ग्रहण होता है।

उदा० (क) ऋधातोः—

(1) अर्यते

ऋ त—कर्मवाच्य, सार्वधातुके यक्, क्ङिति च,

ऋ यक् त—प्रकृत गुण,

अर्यते—एत्व।

(2) अर्यात्

ऋ यासुट् त्—लिङ्, इतश्च, यासुट् परस्मैपदे०, यकारादि आर्धधातुक 'यास्' परे है, गुण,

अर्यास् त्—सकारलोप।

(ख) संयोगादेः—

(3) स्मर्यते

स्मृ यक् त—सार्वधातुके यक्,

स्मर् य ते—गुणे।

(4) स्मर्यात्

'अर्यात्' की तरह।

इह०—संस्क्रियते तथा संस्क्रियात्—इन स्थलों पर सुट् आगम के बहिरङ्गलक्षण के असिद्ध होने से अथवा अभक्त होने से अङ्ग का संयोगादित्व माना नहीं जा सकता। अतः गुण नहीं होता है।

(5) संस्क्रियते

सम् कृ यक् त—कर्मवाच्य, सार्वधातुके यक्,

सम् स् क्रि य त—सुट्, रिङ्,

संस्क्रियत—अनुस्वार।

(6) संस्क्रियात्

सम् कृ यासुट् त्—लिङ्, इकारलोप, यासुट्,

सम् स् क्रि यास्त्—सुट्, रिङ्,

सम् स् क्रियात्—सकारलोप,

संस्क्रियात्—अनुस्वार।

यि इत्ये०—यकारादि के परे रहते ही गुण होता है।

(7) स्वृषीष्ट

स्वृ सीयुट् सुट् त—लिङ्, अनुबन्धलोप, स्वृ' संयोगादि अङ्ग है, इससे पर आर्धधातुक लिङ् है; परन्तु यकारादि नहीं है,

स्वृषीष् ट—गुण नहीं हुआ, यकारलोप, षत्व, ष्टुत्व।

(8) ध्वृषीष्ट

पूर्ववत् गुण नहीं हुआ।

असार्व०—सार्वधातुक प्रत्यय परे रहते सूत्रोक्त गुण नहीं होता है।

(9) इयृयात्

ऋ यास् त्—लिङ्, इकारलोप, यासुट्, अनुबन्धलोप,

ऋ ऋ यास् त्—शप् को बाध कर श्लु, द्वित्व,

इर् ऋ यात्—लिङः सलोपो० सकारलोप, अर्त्तिपिपर्त्योश्च,

इयृयात्—अभ्यासस्याऽसवर्णे।

संयोगा०—संयोगादि ऋदन्त धातु को ही गुण होता है।

(10) क्रियात्

कृ यात्—लिङ्, इकारलोप, यासुट्, सकारलोप,

क्रि यात्—यकारादि आर्धधातुक लिङ् 'यात्' परे है; परन्तु 'कृ' संयोगादि ऋदन्त नहीं है, गुण नहीं हुआ, 'रिङ् शयग्लिङ्क्षु' से 'रिङ्' हुआ।

(3547) यङि च *30* (2633)

यङि च परतः, अर्त्तेः संयोगादेश्च ऋतो गुणो भवति। अरार्यते। सास्वर्यते। दाध्वर्यते। सास्मर्यते। अर्तेः 'अट्यर्त्यशूर्णोतीनामुपसंख्यानम्' (7.4.82) इति यङ्। 'न न्द्राः संयोगादयः' (6.1.3) इति द्विर्वचनप्रतिषेधो यकारस्य नेष्यते। *हन्तेर्हिंसायां यङि घ्नीभावो वक्तव्यः' (म० भा०)। जेघ्नीयते। हिंसायामिति किम्? जङ्घन्यते।

अर्थ—'ऋ' धातु तथा संयोगादि ऋदन्त अङ्ग को गुण होता है, यङ् प्रत्यय के परे रहते।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उदा० (1) अरार्यते
ऋ यङ्—धातोरेकाचो हलादे०, गुण,
अर्य—'सन्यङोः' से द्वित्व,
अर् अर्य → अरार्य—धातुसंज्ञा,
अरार्य शप् त—अतो गुणे।

(2) सास्वर्यते
स्वृ य → स्वर् य—पूर्ववत् गुण,
सस्वर् य—द्वित्व, 'दीर्घोऽकितः' से दीर्घ,
सास्वर्य—धातुसंज्ञा, शेष पूर्ववत्।

(3) दाध्वर्यते
ध्वृ य—पूर्ववत् गुण, द्वित्व, हलादिः शेषः,
दाध्वर्य—अभ्यासे चर्च, 'दीर्घोऽकितः' से दीर्घ,
दाध्वर्य शप् त—शेष पूर्ववत्।

(4) सास्मर्यते
स्मृ यङ्—पूर्ववत् गुण द्वित्व, दीर्घ आदि।

अर्त्ते०—'ऋ' धातु से 'अट्यर्त्यशूर्णोतीं०' (वा०) से यङ् होता है। 'न न्द्राः संयोगादयः' से यकार को द्वित्व का निषेध प्राप्त नहीं होता है।

हन्ते०—हिंसा अर्थ में वर्त्तमान हन् धातु को 'घ्नी' आदेश होता है, यङ् परे रहते।

(5) जेघ्नीयते
हन् यङ्—'घ्नी' आदेश,
घ्नी घ्नी य—द्वित्व, हलादिः शेषः, कुहोश्चुः, अभ्यासे चर्च, गुणो यङ्लुकोः,
जेघ्नीय शप् त—धातुसंज्ञा, अतो गुणे।

हिंसा०—हिंसा अर्थ में 'घ्नी' आदेश होता है।

(6) जङ्घन्यते
हन् यङ्—सन्यङोः,
जहन् य—द्वित्व, हलादिः शेषः, कुहोश्चुः, अभ्यासे चर्च,
जन् हन् य—'नुगतोऽनुनासि०' से 'नुक्', 'अभ्यासाच्च' से कुत्व,
जन् घन्य—अनुस्वार, परसवर्ण, धातुसंज्ञा, शप् आदि।

(3548) ई घ्राध्मोः *31* (2648)

'घ्रा', 'ध्मा'–इत्येतयोर्यङि परत ईकारादेशो भवति। जेघ्रीयते। देध्मीयते।

अर्थ—घ्रा तथा ध्मा—इन अङ्गों को ईकार आदेश होता है, यङ् प्रत्यय परे रहते।

उदा० (1) जेघ्रीयते
घ्रा यङ्—ईकार आदेश,
घ्री य—द्वित्व, हलादिः शेषः, कुहोश्चुः, अभ्यासे चर्च,
जेघ्रीय—गुणो यङ्लुकोः से गुण, लकारकार्य।

(2) देध्मीयते
ध्मा → ध्मी य—पूर्ववत्,
देध्मीयते—द्वित्व, हलादिः शेषः, अभ्यासे चर्च, शेष पूर्ववत्।

(3549) अस्य च्वौ *32* (2118)

'ई' इति वर्तते। अवर्णान्तस्याङ्गस्य च्वौ परत ईकारादेशो भवति। शुक्लीभवति, शुक्लीस्यात्। खट्वीकरोति, खट्वीस्यात्।

अर्थ—'ई' का अनुवर्त्तन है। अवर्णान्त अङ्ग को ईकार आदेश होता है, च्वि परे रहते।

'अस्य' यहाँ अकार के तपर न होने से इसके द्वारा सभी सवर्णों का ग्रहण होता है।

उदा० (1) शुक्लीकरोति
शुक्ल च्वि कृ—कृभ्वस्तियोगे,
शुक्ली कृ तिप्—लकारकार्य।

(2) शुक्लीभवति
शुक्ल च्वि भू—पूर्ववत्।

(3) शुक्लीस्यात्
शुक्ल च्वि अस्—पूर्ववत्।

(4) खट्वीकरोति
खट्वा च्वि कृ—पूर्ववत् ईकार।

(5) खट्वीभवति
पूर्ववत् ईकार।

(6) खट्वीस्यात् (पूर्ववत्)।

(3550) क्यचि च *33* (2658)

'अस्य' इति वर्त्तते। क्यचि परतोऽवर्णान्तस्याङ्गस्य ईकारादेशो भवति। पुत्रीयति। घटीयति। खट्वीयति। मालीयति। 'अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः' (7.4.25) इत्यस्यापवादः। पृथग्योगकरणमुत्तरार्थम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—'अस्य' का अनुवर्त्तन है। अवर्णान्त अङ्ग को ईकार आदेश होता है, क्यच् प्रत्यय परे रहते।

उदा० (1) पुत्रीयति
पुत्र क्यच्—सुप आत्मनः क्यच्, अनुबन्धलोप,
पुत्रीय—ईकार, धातुसंज्ञा,
पुत्रीय शप् तिप्—अतो गुणे।

(2) घटीयति
घट क्यच्—पूर्ववत्।

(3) खट्वीयति
खट्वा क्यच्—ईकार आदेश, धातुसंज्ञा,
खट्वीय शप् तिप्—लकारकार्य।

(4) मालीयति
माला क्यच्।

अकृत्०—यह 'अकृत् सार्वधातुकयोः' का अपवाद है। पृथक् योग उत्तर शास्त्र के लिए है।

(3551) अशनायोदन्यधनाया बुभुक्षा-पिपासागर्धेषु *34* (2661)

अशनाय, उदन्य, धनाय–इत्येतानि निपात्यन्ते, बुभुक्षा, पिपासा, गर्ध–इत्येतेष्वर्थेषु। अशनायेति–अशनशब्दस्यात्वं क्यचि निपात्यते। अशनायतीति भवति, बुभुक्षा चेत्। अशनीयतीत्येवान्यत्र। उदन्येति–उदकशब्दस्य उदन्नादेशो निपात्यते। उदन्यतीति भवति, पिपासा चेत्। उदकीयतीत्येवान्यत्र। धनायेति–धनशब्दस्यात्वं निपात्यते। धनायतीति भवति, गर्धश्चेत्। धनीयतीत्येवान्यत्र।

अर्थ—बुभुक्षा, पिपासा और गर्ध अर्थों में यथासंख्य अशनाय, उदन्य और धनाय शब्द निपातनसिद्ध हैं।

अशन शब्द को क्यच् प्रत्यय परे रहते निपातन से आत्व होता है।

उदा० (1) अशनायति
(2) अशनीयति।
अन्यत्र 'क्यचि च' से ईकार होता है।

उदन्येति०—क्यच् परे रहते उदक् शब्द के स्थान पर 'उदन्' आदेश होता है।

(3) उदन्यति।
(4) अन्यत्र 'उदकीयति' बनता है।

धन०—धन शब्द को आत्व आदेश निपातन से होता है, क्यच् परे रहते।

(5) धनायति।
(6) धनीयति।

(3552) नच्छन्दस्यपुत्रस्य *35* (3588)

छन्दसि विषये पुत्रवर्जितस्यावर्णान्तस्याङ्गस्य क्यचि यदुक्तं तन्न भवति। किं चोक्तम्? दीर्घत्वम्, ईत्वं च। मित्रंयुः (मै० 2.6.12)। संस्वेदयुः (मै० 4.12.2) देवाञ्जिगाति सुम्नयुः (ऋ० 3.27.1)। अपुत्रस्येति किम्? पुत्रीयन्तः सुदानवः। *अपुत्रादीनामिति वक्तव्यम्* (म० भा०)। जनीयन्तोऽन्वग्रवः।

अर्थ—वेद के विषय में क्यच् परे रहते अवर्णान्त अङ्ग को ईकार आदेश होता नहीं होता है; परन्तु 'पुत्र' शब्द को यह निषेध नहीं होता है।

उदा० (1) मित्रयुः (मै०सं० 2.6.12)
मित्र क्यच्—सुप आत्मनः क्यच्,
मित्र य—'क्यचि च' से प्राप्त ईकार तथा 'अकृत् सार्वधातुक०' से प्राप्त दीर्घादेश का निषेध,
मित्रयु सु—धातुसंज्ञा, 'उ' प्रत्यय। क्याच्छन्दसि।

(2) संस्वेदयुः
पूर्ववत् ईकार व दीर्घादेश का निषेध।

(3) सुम्नयुः (पूर्ववत्)।

अपुत्र०—पुत्र शब्द को सूत्रोक्त निषेध नहीं होता है।

(4) पुत्रीयन्तः (ऋ० 7.96.4)
पुत्र क्यच्—क्यचि च, धातुसंज्ञा,
पुत्रीय शतृ—शप्,
पुत्रीयन्तस्—जस्, नुम् आदि।

अपुत्रा०—पुत्रादि शब्दों को सूत्रोक्त निषेध नहीं होता है।

(5) जनीयन्तः
जन क्यच्—सभी कार्य 'पुत्रीयन्तः' की तरह।

(3553) दुरस्युर्द्रविणस्युर्वृषण्यति रिषण्यति *36* (3589)

दुरस्युः, द्रविणस्युः, वृषण्यति, रिषण्यति–इत्येतानि छन्दसि निपात्यन्ते। दुष्टशब्दस्य क्यचि दुरस्भावो निपा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

त्यते। अवियोना दुरस्युः। दुष्टीयतीति प्राप्ते। द्रविणशब्दस्य द्रविणस्भावो निपात्यते। 'द्रविणस्युर्विपन्यया (ऋ० 6.16.34) द्रविणीयतीति प्राप्ते। वृषशब्दस्य वृषण्भावो निपात्यते। वृषण्यति (ऋ० 9.5.6)। वृषीयतीति प्राप्ते। रिष्टशब्दस्य रिषण्भावो निपात्यते। रिषण्यति (ऋ० 2.23.12)। रिष्टीयतीति प्राप्ते।

अर्थ—वेद के विषय में दुरस्यु, द्रविणस्यु, वृषण्यति तथा रिषण्यति—ये शब्द निपातनसिद्ध हैं।

दुष्ट०—क्यच् परे रहते दुष्ट शब्द के स्थान पर 'दुरस्' आदेश होता है।

उदा० (1) दुरस्युः (क०सं० 2.5)
दुष्ट क्यच्—दुरस् य—धातुसंज्ञा,

(2) दुष्टीयति—अन्यत्र।

द्रविण०—क्यच् परे रहते द्रविण शब्द के स्थान पर 'द्रविणस्' आदेश होता है।

(3) द्रविणस्युः (ऋ० 6.16.35)
द्रविण क्यच्—द्रविणस् य—धातुसंज्ञा, शेष पूर्ववत्।

(4) द्रविणीयति—अन्यत्र।

वृष०—क्यच् परे रहते वृष शब्द के स्थान पर 'वृषन्' आदेश होता है।

(5) वृषण्यति (ऋ० 9.5.6)
वृष क्यच् → वृषन् य—धातुसंज्ञा।

(6) वृषीयति—अन्यत्र।

रिष्ट०—क्यच् परे रहते रिष्ट शब्द के स्थान पर 'रिषन्' आदेश होता है।

(7) रिषण्यति (ऋ० 2.23.12)।
(8) रिष्टीयति—अन्यत्र।

(3554) अश्वाघस्यात् *37* (3590)

अश्व, अघ-इत्येतयोः क्यचि परतश्छन्दसि विषये आकारादेशो भवति। अश्वायन्तो मघवन् (ऋ० 7.32.23)। सा त्वा वृका अधायवो विदन् (काठ० 7.2.39)। एतदेवात्त्ववचनं ज्ञापकम्-'नच्छन्दस्यपुत्रस्य' (7.4.35) इति दीर्घप्रतिषेधो भवतीति।

अर्थ—वेद के विषय में क्यच् प्रत्यय परे रहते अश्व तथा अघ—इन अङ्गों को आकार आदेश होता है।

यह 'क्यचि च' का अपवाद है।

उदा० (1) अश्वायति
अश्व क्यच् → अश्वा य—आकार अन्तादेश,
अश्वाय—धातुसंज्ञा, लट् लकार।

(2) अश्वायन्तः (ऋ० 7.32.23)
अश्वाय शतृ → अश्वायत्—कर्तरि शप्, अतो गुणे,
अश्वायत् जस्—नुम्।

(3) अघायवः
अघ क्यच् → अघाय—पूर्ववत्,
अघाय उ → अघायु—क्याच्छन्दसि,
अघायवस्—जस् विभक्ति, गुण, अव्।

एतदेवा०—अश्व तथा अघ शब्दों को आकार अन्तादेश का विधान ज्ञापित करता है कि 'न च्छन्दस्य पुत्रस्य' से 'अकृत् सार्वधातुकयोः' से प्राप्त दीर्घादेश का निषेध होता है।

अश्व क्यच्—इस दशा में यदि 'अकृत्सार्वधातुकयोः' से दीर्घ हो जाता है तो प्रकृत सूत्र व्यर्थ होकर ज्ञापित करता है कि 'अकृत् सार्व०' से प्राप्त दीर्घादेश का 'न च्छन्दस्य०' से निषेध होता है। तब प्रकृत सूत्र से आकार अन्तादेश होकर 'अश्वायति' रूप बनता है।

(3555) देवसुम्नयोर्यजुषि काठके *38* (3591)

देव, सुम्न-इत्येतयोः क्यचि परत आकारादेशो भवति काठके यजुषि। देवायन्तो यजमानाय (काठ० 7.2.9)। सुम्नायन्ता हवामहे (काठ० 8.17.76)। यजुषीति किम्? देवाञ्छिगाय सुम्नयुः (ऋ० 3.27.1)। काठक इति किम्? सुम्नयुरिदमासीत् (तै० 2.5.712)।

अर्थ—यजुर्वेद की काठक संहिता के विषय में क्यच् प्रत्यय परे रहते देव और सुम्न अङ्गों को आकार आदेश होता है।

उदा० (1) देवायन्तः
देव क्यच् → देवाय—धातुसंज्ञा,
देवाय शतृ → देवायत्—शप्, पररूप,
देवायत् जस्—नुम्।

(2) सुम्नायन्तः (काठ० सं० 8.17)
सुम्न क्यच् → सुम्नाय—धातुसंज्ञा,
सुम्नाय शतृ—जस्—शप्, अतो गुणे, नुम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

काठके०—काठक संहिता के विषय में ही सूत्रोक्त आकार होता है।

(3) सुम्नयुः (ऋ० 3.27.1)
आकार आदेश नहीं हुआ।

(3556) कव्यध्वरपृतनस्यर्चि लोपः *39* (3592)

कवि, अध्वर, पृतना–इत्येतेषामङ्गानां क्यचि परतो लोपो भवति ऋचि विषये। कव्यन्तः सुमनसः। अध्वर–अध्वर्यन्तः। पृतना–पृतन्यन्तस्तिष्ठन्ति।

अर्थ—ऋङ्मन्त्र के विषय में अङ्गसंज्ञक कवि, अध्वर तथा पृतना का लोप होता है, क्यच् प्रत्यय के परे रहते।

उदा० (1) कव्यन्तः
कवि क्यच् → कव्य—धातुसंज्ञा,
कव्य शतृ जस्—शप्, पररूप, नुम्।

(2) अध्वर्यन्तः
अध्वर क्यच्—अकारलोप, शेष 'कव्यन्तः' की तरह।

(3) पृतन्यति (ऋ० 9.53.3)
पृतना क्यच् → पृतन्य—धातुसंज्ञा,
पृतन्य शप् तिप्—अतो गुणे।

(3557) द्यतिस्यतिमास्थामित्ति किति *40* (3074)

द्यति, सति, मा, स्था–इत्येतेषामङ्गानामिकारादेशो भवति तकारादौ किति प्रत्यये परतः। द्यति–निर्दितः, निर्दितवान्। स्यति–अवसितः, अवसितवान्। मा–मितः, मितवान्। स्था–स्थितः, स्थितवान्। तीति किम्? अवदाय। कितीति किम्? अवदाता।

अर्थ—अङ्गसंज्ञक दो, षो, मा तथा स्था—इनको इकार आदेश होता है, तकारादि कित् प्रत्यय परे रहते।

उदा० (1) निर्दितः
दो क्त → द् इ त्—इकार अन्तादेश,
निर् दित सु—विभक्तिकार्य।

(2) निर्दितवान्
क्तवतु—शेष पूर्ववत्।

(3) अवसितः
षो → सो—धात्वादेः षः सः,
अव सो क्त—इकार, सु।

(4) अवसितवान्
क्तवतु—पूर्ववत्।

(5) मितः
मा क्त—मित सु।

(6) मितवान्
मा क्तवतु—पूर्ववत्।

(7) स्थितः
स्था क्त—स्थित सु।

(8) स्थितवान्
क्तवतु—पूर्ववत्।

तीति०—तकारादि प्रत्यय परे रहते इकार आदेश होता है।

(9) अवदाय
अव दो क्त्वा—समास, ल्यप् आदेश, स्थानिवद्भाव से कित्,
अव दा ल्यप्—कित् प्रत्यय परे है, परन्तु तकारादि नहीं है, अतः इकार नहीं होता है, आदेच उपदेशेऽशिति।

कीति०—कित् प्रत्यय के परे रहते इकार होता है।

(10) अवदाता
अव दो तृच्—तकारादि परे है परन्तु वह कित् नहीं है, अतः इकार नहीं हुआ,
अव दा तृ सु—आदेच उपदेशेऽशिति।

(3558) शाच्छोरन्यतरस्याम् *41* (3075)

शा, छा–इत्येतयोरन्यतरस्यामिकारादेशो भवति तकारादौ किति। शा–निशितम्, निशातम्। निशितवान्, निशातवान्। छा–अवच्छितम्, अवच्छातम्। अवच्छितवान्, अवच्छातवान्। *श्यतेरित्वं व्रते नित्यमिति वक्तव्यम्। (म० भा०)। संशितो ब्राह्मणः। संशितव्रत इत्यर्थः। व्यवस्थितविभाषाविज्ञानात् सिद्धम्।

देवव्रातो गलो ग्राह इतियोगे च सद्विधिः।
मिथस्ते न विभाष्यन्ते गवाक्षः संशितव्रतः॥
(म० भा०)

अर्थ—अङ्गसंज्ञक शो तथा छो—इन शब्दो को इकार आदेश विकल्प से होता है, तकारादि कित् प्रत्यय परे रहते।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उदा० (1) निशितम्
नि शो क्त—इकार अन्तादेश,
नि शि त सु—विभक्तिकार्य।

(2) निशातम्
नि शो क्त—इकार अभाव पक्ष में 'आदेच उपदेशेऽशिति' से अकार होता है।

(3) निशितवान्
नि शो क्तवतु—पूर्ववत्।

(4) निशातवान्
क्तवतु—पूर्ववत्।

(5) अवच्छितम्
अव छो क्त—इकार,
अव छि त—'छे च' से 'तुक्',
अव त् छित—स्तोः श्चुना श्चुः,
अवच्छित सु—विभक्तिकार्य।

(6) अवच्छातम्
अव छो क्त—इकार अभाव पक्ष में आकार, तुक् पूर्ववत्, श्चुत्व, सु।

(7) अवच्छितवान्
क्तवतु—इकार पूर्ववत्।

(8) अवच्छातवान्
क्तवतु, इकार अभाव, तुक् आदि।

श्यते०—व्रत अर्थ में 'शो' को नित्य इकार होता है।

(9) संशितः
सम् शो क्त—इकार,
सम् शि त सु—अनुस्वार।

व्यवस्थि०—व्यवस्थित विभाषा मानकर भी यह प्रयोग सिद्ध किया जा सकता है।

देव०—देवत्रात, गल, ग्राह, इति के योग में सत् संज्ञक (अर्थात् शतृ व शानच्) विधि, गवाक्ष तथा संशितव्रत—इनमें परस्पर विकल्प नहीं होता है।

(10) देवत्रातः
त्रैङ् (पालने) क्त—'क्तिच् क्तौ च संज्ञायाम्' से क्त,
त्रात्—'नुदविदोन्दत्राघ्रा०' से तकार को नकार नहीं हुआ,
देव त्रात सु—समास।

(11) त्रातम्, (12) त्राणम्
संज्ञा के विषय से अन्यत्र विकल्प होता है।

(13) गलः
गृ अच्—पचाद्यिगण मानकर,
गर् अ—'अचि विभाषा' से लत्व प्राण्यङ्ग अर्थ में नित्य होता है,
गल सु—विभक्तिकार्य।

(14) गरः—अन्यत्र लत्व नहीं होता है।

(15) ग्राहः
ग्रह् ण—जलचर अर्थ में 'विभाषा ग्रहः' से 'ण',
ग्राह् अ सु—अत उपधायाः।

(16) ग्रहः
अन्यत्र 'ण' नहीं होता है।

इसी प्रकार 'इति' के योग में शतृ व शानच् नहीं होते हैं—
वर्षति इति धावति तथा हन्ति इति पलायते।

यहाँ 'लक्षणहेत्वोः क्रियायाः' से शतृ शानच् नहीं होते हैं। कारण कि 'नन्वोर्विभाषा' से 'विभाषा' पद का अधिकार है।

(17) गवाक्षः
गो अक्ष—'अवङ् स्फोटायनस्य' से अवङ् नित्य होता है, परन्तु गो प्राणी के अङ्ग अर्थ में अवङ् न होकर 'गोऽक्षम्' बनता है। अन्यत्र विकल्प होता है। यथा—गवाऽक्षम् तथा गोऽक्षम्।

इसी प्रकार 'व्रत' अर्थ में नित्य इकार होकर 'संशित' रूप बनता है। अन्य अर्थ में विकल्प होकर 'निशितम्' तथा 'निशातम्' बनते हैं। भाव यह है कि देवत्रात, त्राण; गल, गर; ग्राह, ग्रह—ये विकल्प भिन्न-भिन्न विषयों में अन्वाख्यात हैं।

(3559) दधातेर्हिः *42* (3076)

दधातेरङ्गस्य 'हि' इत्ययमादेशो भवति तकारादौ किति प्रत्यये परतः। हितः। हितवान्। हित्वा।

अर्थ—'धा' अङ्ग को 'हि' आदेश होता है, तकारादि कित् प्रत्यय परे रहते। अनेकाल् होने से 'हि' सर्वादेश होता है।

उदा० (1) हितः
धा क्त—तकारादि कित् परे है, 'घुमास्था०' से ईकार प्राप्त,
हि त—इकार को बाध कर 'हि' होता है,
हि त सु—विभक्तिकार्य।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(2) हितवान्
धा क्तवतु—पूर्ववत्।

(3) हित्वा
धा क्त्वा → हि त्वा सु।

(3560) जहातेश्च क्त्वि *43* (3331)

जहातेरङ्गस्य 'हि' इत्ययमादेशो भवति क्त्वाप्रत्यये परतः। हित्वा राज्यं वनं गतः। हित्वा गच्छति। जहातेर्निर्देशाज्जिहीतेर्न भवति–हात्वा।

अर्थ—ओहाक् अङ्ग के स्थान पर 'हि' आदेश होता है, क्त्वा प्रत्यय परे रहते।

उदा० (1) हित्वा
हा क्त्वा → हि त्वा सु—प्राप्त ईकार का बाध होता है।

जहाते०—'जहाते' इस प्रकार निर्देश होने से धातु को 'हि' आदेश नहीं होता है। यथा—

(2) हात्वा
हा क्त्वा → हात्वा सु।

(3561) विभाषा छन्दसि *44* (3593)

जहातेरङ्गस्य विभाषा 'हि' इत्ययमादेशो भवति छन्दसि विषये क्त्वाप्रत्यये परतः। हित्वा शरीरं यातव्यम्। (तै०ब्रा० 2.5.6.5) हात्वा।

अर्थ—वेद के विषय में ओहाक् अङ्ग को विकल्प से 'हि' आदेश होता है, क्त्वा प्रत्यय परे रहते।

उदा० (1) हित्वा
हा क्त्वा → हि त्वा—'हि' आदेश पक्ष।

(2) हात्वा
'हि' आदेश अभाव पक्ष।

(3562) सुधित वसुधित नेमधित धिष्व धिषीय च *45* (3594)

सुधित, वसुधित, नेमधित, धिष्व, धिषीय–इत्येतानि छन्दसि विषये निपात्यन्ते। तत्र सुधित, वसुधित, नेमधित–इति सु-वसु-नेमपूर्वस्य दधातेः क्त्वाप्रत्यये इत्त्वमिडागमो वा प्रत्ययस्य निपात्यते। 'गर्भं माता सुधितम्' (ऋ०वे० 10.27.16) सुहितमिति प्राप्ते। 'वसुधितमग्नौ जुहोति'। वसुहितमिति प्राप्ते। 'नेमधिता बाधन्ते' (ऋ० 10.93.13) नेमहिता इति प्राप्ते। धिष्वेति–लोण्मध्यमैकवचने दधातेरित्त्वमिडागमो वा प्रत्ययस्य द्विर्वचनाभावश्च निपात्यते। 'धिष्व स्तोमम्' (ऋ० 8.33.15) धत्स्वेति प्राप्ते। धिषीयेति–आशीर्लिङ्यात्मनेपदोत्तमैकवचने दधातेरित्त्वमिडागमो वा प्रत्ययस्य निपात्यते। 'धीषीय' (तै० 1.6.4.4)। धासीयेति प्राप्ते।

अर्थ—वेद के विषय में सुधित, वसुधित, नेमधित, धिष्व तथा धिषीय शब्द निपातनसिद्ध हैं।

उदा (1) सुधितम् (ऋ० 10.27.16)
सुधा क्त → सु ध् इ त—विभक्तिकार्य।

(2) वसुधितम्
वसु धा क्त → वसु ध् इ त—पूर्ववत्। विशेषणं विशेष्येण०।

(3) नेमधितम् (—ताः ऋ० 10.93.13)
नेम धा क्त—पूर्ववत्।

(4) धिष्व

लोण्म०—लोट् मध्यम पुरुष एकवचन में धातु को इकार आदेश अथवा प्रत्यय को इट् का आगम होता है। 'श्लौ' से प्राप्त द्विर्वचन का निपातन से अभाव होता है।

(5) धिषीय

आशी०—आशीर्लिङ् आत्मनेपद एकवचन में धातु को इकार आदेश अथवा प्रत्यय को इट् आगम होता है।

(3563) दो दद् घोः *46* (3070)

'दा'–इत्येतस्य घुसंज्ञकस्य 'दद्' इत्ययमादेशो भवति तकारादौ किति प्रत्यये परतः। दत्तः। दत्तवान्। दत्तिः। द इति किम्? धातः। धातवान्। धेट एतद्रूपम्। घोरिति किम्? 'दाप् लवने' (धा०पा० 1060)। दातं बर्हिः। 'दैप् शोधने' (धा०पा० 925)। अवदातं मुखम्। अयमादेशस्थान्त इष्यते। एवं ह्युक्तम्–

तान्ते दोषो दीर्घत्वं स्याद्दान्ते दोषो निष्ठानत्वम्।
धान्ते दोषो धत्वप्राप्तिस्थान्तेऽदोषस्तस्थात्मान्तम्॥
(म०भा०)

यदि तु 'दस्ति' इति तकारादौ दीर्घत्वम्, तदा तान्तेऽप्यदोषः। दान्तधान्तयोरपि 'सन्निपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्य' (व्या०प०) इति नत्वधत्वे न भविष्यत इति न दोषः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अवदत्तं विदत्तं च प्रदत्तं चादिकर्मणि।
सुदत्तमनुदत्तं च निदत्तमिति चेष्यते॥
(म० भा०)

'अच उपसर्गात्तः' (7.4.47) इति प्राप्ते निपात्यन्ते। अनुपसर्गा वा एते अवादयः क्रियान्तरविषया वेदितव्याः।

अर्थ—घुसंज्ञक 'दा' धातु के स्थान पर 'दद्' आदेश होता है, कित् तकारादि परे रहते।

अनेकाल् होने से सर्वादेश होता है।

(1) दत्तः
दा क्त → दद् त—'खरि च' से चर्त्व,
दत्त सु—विभक्तिकार्य।

(2) दत्तवान्
दा क्तवतु—पूर्ववत्।

(3) दत्तिः
दा क्तिन्—पूर्ववत्।

द इति०—दा के स्थान पर ही 'दद्' होता है।

(4) धातः
धेट् → धा क्त—'दद्' नहीं हुआ।

(5) धातवान्
क्तवतु—'दद्' नहीं हुआ।

घोरिति०—घुसंज्ञक दा के स्थान पर ही 'दद्' होता है।

(6) दातम्
दाप् क्त—'दाधाघ्वदाप्' से दाप् की घुसंज्ञा का निषेध होता है,
दा त सु—'दद्' नहीं हुआ।

(7) अवदातम्
दैप् क्त—यहाँ भी 'दद्' नहीं होता है।

तान्ते०—प्रकृत सूत्र के पदविच्छेद के अनुसार विधीयमान आदेश का चार प्रकार का स्वरूप सम्भव है—

(क) तान्त—दः दत् घोः।
(ख) दान्त—दः दद् घोः।
(ग) धान्त—दः दध् घो।
(घ) थान्त—दः दथ् घोः।

इस आदेश के स्वरूप के विषय में काशिका में निम्नलिखित कारिका प्राप्त होती है। द्र०—

तान्ते दोषो दीर्घत्वं स्याद्, दान्ते दोषो निष्ठानत्वम्।
धान्ते दोषो धत्वप्राप्तिस्, थान्तेऽदोषस्तस्मात्थान्तः॥[1]

(क) तान्ते दोषो दीर्घत्वं स्यात्—अर्थात् यदि विधीयमान आदेश का स्वरूप तान्त ('दत्') मान लिया जाय तो 'विदत्तम्' इस दशा में 'दस्ति' सूत्र के द्वारा दीर्घादेश अनिष्ट रूप प्राप्त होता है।

ध्यान रहे कि 'दस्ति' सूत्र का दो प्रकार से अर्थ किया जाता है; यथा—

1. 'दा' धातु के स्थान पर विहित तकारान्त उत्तरपद परे रहते इगन्त उपसर्ग को दीर्घ होता है।

2. 'दा' धातु के स्थान पर विहित तकारादि उत्तर पद परे रहते इगन्त उपसर्ग को दीर्घ होता है।

इस प्रकार प्रथम अर्थ की दशा में 'विदत्तम्' में दीर्घादेश प्राप्त होता है।

काशिकाकार इस दोष का परिहार करते हुए 'दस्ति' सूत्र का अर्थ इस प्रकार करते हैं—

'दा' धातु के स्थान पर विहित तकारादि उत्तर पद के परे रहते उपसर्ग के इक् को दीर्घ होता है।

'विदत्तम्' में तकारादि उत्तरपदकेन रहने से दीर्घ आदेश (अनिष्ट रूप) प्राप्त नहीं होगा।[2]

(ख) दान्ते दोषो निष्ठानत्वम् अर्थात् यदि विधीयमान आदेश का स्वरूप दान्त (दद्) मानते हैं तो 'दद् त' इस दशा में 'रदाभ्यां निष्ठातो०' के द्वारा नत्व होकर अनिष्ट रूप बनता है।

काशिकाकार ने इस दोष का परिहार सन्निपातलक्षण परिभाषा के द्वारा कर दिया है।[3]

(ग) धान्ते दोषो धत्वप्राप्तिः अर्थात् यदि विधीयमान आदेश का स्वरूप धान्त (दध्) मानते हैं तो 'दध्त' इस दशा में 'झषस्तथोर्धोऽधः' के द्वारा तकार के स्थान पर धकार होकर अनिष्ट रूप बनता है।

काशिकाकार ने इस दोष का परिहार भी सन्निपातलक्षण परिभाषा के द्वारा कर दिया है।[4]

1. काशि० 7.4.46
2. काशि० 7.4.46 यदि तु दस्ति इति तकारादौ····।
3. काशि० 7.4.46 इति नत्वधत्वे न भविष्यतः।
4. काशि० 7.4.46····इति नत्वधत्वे न भविष्यतः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(घ) थान्तेऽदोषस्तस्मात् थान्तः—अर्थात् यदि विधीयमान आदेश का स्वरूप थान्त (दथ्) स्वीकार करते हैं तो कोई दोष नहीं है। सार यह है कि विधीयमान आदेश के पूर्वोक्त चारो स्वरूपों में से उसे किसी भी प्रकार (तान्त, थान्त, दान्त, धान्त) का मान लें, कहीं कोई दोष प्रसक्त नहीं होता है।

अवदत्तम्०—'अच् उपसर्गात्तः' से प्राप्त होने पर कारिकोक्त शब्दों का निपातन किया जाता है।

(6) अवदत्तम्, (7) विदत्तम्, (8) प्रदत्तम्, (9) सुदत्तम्, (10) अनुदत्तम् तथा (11) निदत्तम्—ये आदि कर्म में होते हैं। न्यासकार के अनुसार सभी शब्दों का 'आदि कर्म में' निपातन माना गया है। हरदत्त केवल 'प्रदत्तम्' के साथ ही 'आदिकर्म में' का सम्बन्ध स्वीकार करते हैं। 'च' के द्वारा पक्ष में यथाप्राप्त (अच उपसर्गात्तः से तकार होकर) रूप भी होते हैं। यथा—

(12) अवत्तम्, (13) वीत्तम्, (14) प्रत्तम्, (15) सूत्तम्, (16) अनुत्तम्।

'अच उपसर्गात्तः' से तकार आदेश के प्राप्त होने पर यह निपातन किया जाता है अथवा 'अव' आदि 'दा' धातु के प्रति उपसर्ग ही नहीं है। अपितु गम् आदि से बोध्य अन्य क्रियाविषयक ही जानना चाहिये।

(3564) अच उपसर्गात्तः *47* (3078)

अजन्तादुपसर्गादुत्तरस्य 'दा'-इत्येतस्य घुसंज्ञकस्य 'त' इत्ययमादेशो भवति तकारादौ किति। प्रत्तम्, अवत्तम्, नीत्तम्, परीत्तम्। अच इति किम्? निर्दत्तम्। दुर्दत्तम्। उपसर्गादिति किम्? दधि दत्तम्। मधु दत्तम्। 'घोः' इत्येव-अवदातं मुखम्। उपसर्गादिति पञ्चमीनिर्देशादादेरलः प्राप्नोति? तत्र समाधिमाहुः-'अचः' इत्येतद् द्विरावर्तयितव्यम्, तत्रैकं पञ्चम्यन्तम् उपसर्गविशेषणार्थम्, अपरमपि षष्ठ्यन्तं स्थानिनिर्देशार्थमित्याकारस्य स्थाने तकारो भवति। द्वितकारो वा संयोगोऽयमादिश्यते, सोऽनेकाल्त्वात् सर्वस्य भविष्यति। 'अपो भि' (7.4.48) इत्यत्र पञ्चम्यन्तम् 'अचः' इत्यनुवर्त्तते, तेन पकारमात्रस्य भविष्यति। *द्यतेरित्वादचस्त इत्येतद्भवति विप्रतिषेधेन* (म० भा०)। अवत्तम्। 'प्रत्तं जुहोति' (मै० 1.6.9)।

अर्थ—तकारादि कित् प्रत्यय परे रहते अजन्त उपसर्ग से उत्तर घुसंज्ञक 'दा' धातु के अङ्ग के स्थान पर तकार आदेश होता है। तकार में अकार उच्चारणार्थ है।

उदा० (1) प्रत्तम्
प्र दा क्त → प्र त् त सु।

(2) अवत्तम्
अव दा क्त → अव त् त सु।

(3) नीत्तम्
नि दा क्त → नि त्त सु—उपसर्ग को दीर्घ।

(4) परात्तम्
परा दा क्त—पूर्ववत्।

अच०—अजन्त उपसर्ग से उत्तर 'दा' को तकार आदेश होता है।

(5) निर्दत्तम्
निर् दा क्त—अजन्त उपसर्ग न होने से तकार न होकर 'दद्' आदेश हुआ,
निर् दद् त—खरि च,
निर् द्दत् त—अचो रहाभ्यां द्वे, सु।

उपसर्ग०—उपसर्ग से उत्तर 'दा' को तकार आदेश होता है।

(6) दधिदत्तम्—'दधि' अजन्त है, परन्तु उपसर्ग नहीं है। अतः इससे उत्तर 'दा' को तकार नहीं हुआ।
(7) मधुदत्तम्—पूर्ववत्।

घोरित्येव०—घुसंज्ञक दा के स्थान पर ही तकार होता है।

(8) अवदात्तम्
अव दैप् (शोधने) क्त—'आदेच उपदेशेऽशिति' से आकार हुआ, घुसंज्ञक न होने से तकार नहीं हुआ,
अव दा त सु—विभक्तिकार्य।

उपसर्गा०—'उपसर्गात्' इस प्रकार पञ्चमी का निर्देश होने से आदि अल् के स्थान पर आदेश प्राप्त होता है।

(समा०) सूत्र में 'अचः' पद का दो बार आवर्त्तन करना चाहिए। प्रथम 'अचः' पद 'उपसर्गात्' का विशेषण बनता है तथा द्वितीय 'अचः' पद के द्वारा स्थानी का निर्देश जानना चाहिए। तब सूत्रार्थ इस प्रकार होता है—

अजन्त उपसर्ग से उत्तर 'दा' के अच् के स्थान पर तकार होता है, तकारादि कित् प्रत्यय परे रहते।

द्वितकारो०—अथवा दो तकार वाले संयोग को आदेश किया जा रहा है और यह अनेकाल् होने से सम्पूर्ण स्थानी 'दा' के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्थान पर (त्त) होता है। अगले सूत्र 'अपो भि' में 'अचः' इस पञ्चम्यन्त पद का अनुवर्त्तन होता है। तब 'तस्मादित्युत्तरस्य' परिभाषा के द्वारा पकारमात्र के स्थान पर आदेश होता है।

द्यतेरि०—दो धातु के इत्व आदेश की अपेक्षा विप्रतिषेध से अच् का तकार आदेश होता है।

(9) अवत्तम्
अव दा क्त → अव त् त सु।

(3565) अपो भि *48* (442)

'अप्'-इत्येतस्याङ्गस्य भकारादौ प्रत्यये परतः 'त्त' इत्ययमादेशो भवति। अद्भिः। अद्भ्यः। भीति किम्? अप्सु। *स्ववःस्वतवसोर्मास उषसश्च तकारादेश इष्यते छन्दसि भकारादौ* (म०भा०)। स्ववद्भिः। 'स्वतवद्भिः'। 'माद्भिष्ट इन्द्रो वृत्रहा'। 'समुषद्भिरजायथाः' (ऋ० 1.6. 3)।

अर्थ—'अप्' अङ्ग को तकार आदेश होता है, भकारादि प्रत्यय के परे रहते।

उदा० (1) अद्भिः
अप् भिस्—तकार आदेश, पदसंज्ञा,
अत् भिस्—झलां जशोऽन्ते,
अद् भिस्—रूप बनता है।

(2) अद्भ्यः
अप् भ्यस्—पूर्ववत्।

भीति०—भकारादि प्रत्यय परे रहते तकार आदेश होता है।

(3) अप्सु
अप् सुप्—सप्तमी एकवचन, हलन्त्यम्,
अप्सु—तकार नहीं हुआ।

स्ववः स्व०—वेद के विषय में भकारादि प्रत्यय परे रहते स्ववस्, स्वत वस्, मास् तथा उषस् को तकार आदेश होता है।

(4) स्ववद्भिः
स्वतवस् भिस्—तकार हुआ,
स्वतवद् भिस्—झलां जशोऽन्ते।

(5) स्वतवद्भिः (मा०सं० 24.16)
स्वतवस् भिस्—पूर्ववत्।

(6) माद्भिः (ऋ० 2.24.5)
मास् भिस्—पूर्ववत्।

(7) समुषद्भिः (ऋ० 1.6.3)
समुषस् भिस्—पूर्ववत्।

(3566) सः स्यार्धधातुके *49* (2342)

सकारान्तस्याङ्गस्य सकारादावार्धधातुके परतस्तकारादेशो भवति। वत्स्यति, अवत्स्यत्। विवत्सति। जिघत्सति। स इति किम्? वक्ष्यति। सीति किम्? घासः। वासः। आर्धधातुक इति किम्? आस्से। वस्से।

अर्थ—सकारान्त अङ्ग को तकार आदेश होता है, सकारादि आर्धधातुक परे रहते।

उदा० (1) वत्स्यति
वस् तिप्—लृट् शेषे च, स्यतासी लृ०,
वस् स्य ति—'हलन्त्यम्' से पकार की इत्संज्ञा,
वत्स्यति—तकार अन्तादेश।

(2) अवत्स्यत्
वस् स्यत्—लृङ्, 'इतश्च' से इकारलोप, स्यतासी लृ०,
अ वत्स्यत्—तकार, अट्।

(3) विवत्सति
वस् सन्—धातोः कर्मणः समानकर्तृका०,
वत् स—तकार, सन्यङोः,
व वत्स—हलादिः शेषः,
विवत्स शप् ति—सन्यतः, धातुसंज्ञा, शप्, अतो गुणे।

(4) जिघत्सति
अद् सन्—लुङ्सनोर्घस्लृ,
घस् स—तकार, सन्यङोः,
घ घत्स—हलादिः शेषः, कुहोश्चुः, अभ्यासे चर्च,
जिघत्स—सन्यतः, लकारकार्य।

स इति०—सकारान्त अङ्ग को तकार होता है।

(5) वक्ष्यति
वच् स्य ति—लृट्, स्य, इट् का निषेध,
वक् स्य ति—सकारादि आर्धधातुक (स्य) परे है; परन्तु सकारान्त अङ्ग नहीं है, तकार नहीं हुआ,
वक् ष्य ति—आदेशप्रत्यययोः।

सीति०—सकारादि आर्धधातुक रहते तकार हाता है।

(6) घासः
घस् घञ्—'घञ्' आर्धधातुक है; परन्तु सकारादि नहीं है, इसके परे रहते सकारान्त अङ्ग को तकार नहीं होता है,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

घास् अ—अत उपधायाः, सु।

(7) वासः

वस् घञ्—पूर्ववत् तकार की अप्राप्ति।

आर्धधा०—**आर्धधातुक** सकारादि परे रहते सकारान्त अङ्ग को तकार होता है।

(8) आस्से

आस् थास्—लट्, म०पु० एकवचन, तिङ् शित् सार्वधातुकम्, 'थासः से' से 'से' हुआ,

आस् से—'आस्' सकारान्त अङ्ग है, सकारादि 'से' परे है; परन्तु यह आर्धधातुक नहीं है, अतः तकार नहीं हुआ।

(9) वस्से

वस् थास् → वस् से—पूर्ववत् तकार की अप्राप्ति।

(3567) तासस्त्योर्लोपः *50* (2191)

तासेरस्तेश्च सकारस्य सकारादौ प्रत्यये परतः लोपो भवति। तासेः-कर्तासि। कर्तासे। अस्तेः-त्वमसि। व्यतिसे। अस्तेरकारसकारयोर्लुप्तयोः 'से' इति प्रत्ययमात्रमेतत्पदम्, तेन 'सात्पदाद्योः' (8.3.111) इति षत्वं न भवति।

अर्थ— अङ्गसंज्ञक तास् तथा अस् के सकार का लोप होता है, सकारादि प्रत्यय परे रहते।

उदा० (क) तासेः—

(1) कर्तासि

कृ सिप्—लुट्, स्यतासी०,

कृतास् सि—आर्धधातुकं शेषः, सार्वधातुकार्धधा०,

कर् ता सि—सकारलोप, अचो रहाभ्यां द्वे।

(2) कर्तासे

कृ तास् थास्—पूर्ववत्, थासः से,

कर् तास् से—गुण,

कर्ता से—अचो रहाभ्यां द्वे, सकारलोप।

(ख) अस्तेः—

(3) असि

अस् सिप्—लट्, म०पु० एकवचन,

अ सि—सकारलोप।

(4) व्यतिसे

वि अति अस् से—'थास्' को 'से' आदेश, 'श्नसोरल्लोपः' से अकारलोप,

वि अति स् से—सकारलोप।

अस्ते०—अस् धातु के अकार और सकार का लोप कर देने पर 'से' यह प्रत्ययमात्र अवशेष रहता है। अतः 'सात्पदाद्योः' से षत्व नहीं होता है।

(3568) रि च *51* (2192)

रेफादौ च प्रत्यये परतः तासस्त्योः सकारस्य लोपो भवति। कर्तारौ, कर्तारः।अध्येतारौ, अध्येतारः। अस्तेर्लिटि-व्यतिरे।

अर्थ—तास् और अस् के सकार का लोप होता है, रेफादि प्रत्यय के परे रहते।

उदा० (1) कर्तारौ

कृ तस्—लुट्, लुटः प्रथमस्य डारौरसः, तास्,

कृ तास् रौ—गुण,

कर् तास् रौ—अचो रहाभ्यां द्वे, सकारलोप।

(2) कर्तारः

कृ तास् रस्—झि, लुटः प्रथमस्य डारौरसः, तास्,

कर् तास् र स्—गुण, अचो रहाभ्यां०,

कर् ता रस्—सकारलोप।

(3) अध्येतारौ

अधि इ तास् रौ—'तस्' को पूर्ववत् 'रौ' आदेश, तास्,

अधि ए ता रौ—गुण, इको यणचि, सकारलोप।

(4) अध्येतारः

अधि इ तास् रस्—'झि' को 'रस्' आदेश, तास्,

अध्ये ता रस्—गुण, यण्, सकारलोप।

(5) व्यतिरे

वि अति अस् झ—लिटस्तझयो०' से 'इरेच्' तथ 'इरयोरे०' से 'रे',

वि अति अस् रे—'श्नसोरल्लोपः' से अकारलोप, प्रकृत सूत्र से सकारलोप

व्यति रे—यण्।

(3569) ह एति *52* (2250)

तासस्त्योः सकारस्य हकारादेशो भवति एति परतः। कर्तहि। अस्तेः-व्यतिहे।

अर्थ—तास् और अस्—इन अङ्गों के सकार के स्थान पर हकार होता है, एकार परे रहते।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उदा० (1) कर्त्ताहे
कृ तास् इट्—लृट्, उ०पु० एकवचन तास्,
कर् त्तासे—सार्वधातुकार्धधातु०, टित आत्मने०, अचो रहाभ्यां०,
कर् त्ताहे—हकार।

(2) व्यतिहे
वि अति अस् इट्—उ०पु० एकवचन,
व्यति असे—इको यणचि, टित आत्मने०,
व्यति से—श्नसोरल्लोपः, हकार हुआ।

(3570) यीवर्णयोर्दीधीवेव्योः *53* (2488)

यकारादाविवर्णादौ च परतो दीधीवेव्योर्लोपो भवति। यकारादौ-आदीध्य गतः। आवेव्य गतः। आदीध्यते। आवेव्यते। इवर्णादौ-आदीधिता। आवेविता। लिङि-आदीधीत। आवेवीत। यीवर्णयोरिति किम्? आदीध्यनम्। आवेव्यनम्।

अर्थ—दीधीङ् तथा वेवीङ् अङ्ग का लोप होता है, यकारादि तथा इकारादि प्रत्ययों के परे रहते।
यी = यि + इ। 'यि' में इकार मुखसुखार्थ है।

उदा० (क) यकारादौ—
(1) आदीध्य
आ दीधी क्त्वा—समासेऽनञ्पूर्वे०,
आ दी धी ल्यप्—अनुबन्धलोप, अन्त्य अल् लोप,
आदीध् य सु—विभक्तिकार्य।

(2) आवेव्य
आ वेवी क्त्वा—क्त्वा को ल्यप् आदेश,
आ वेव् ल्यप्—ईकारलोप।

(3) आदीध्यते
आ दीधी यक् त—कर्मवाच्य, सार्वधातुके यक्,
आ दीध् य ते—अन्त्यलोप।

(4) आवेव्यते
आवेवी यक् त—पूर्ववत्,
आ वेव् य त—अन्त्यलोप।

(ख) इकारादौ—
(5) आदीधिता
आ दीधी तृच्—आर्धधातुक संज्ञा,
आ दीधी इ तृ—आर्धधातुकस्येड्वलादेः,
आ दी ध् इ तृ—सु।

(6) आवेविता
आ वेवी इट् तृ—पूर्ववत्,
आ वेव् इ तृ—सु।

(7) आदीधीत
आङ् दीधी सीयुट् त—सकारलोप,
आ दीधी ई य् त—यकारलोप।

(8) आवेवीत
आङ् वेवी सीयुट् त—सभी कार्य पूर्ववत्।

यीवर्ण०—यकारादि तथा इकारादि प्रत्ययों के परे रहते लोप होता है।

(9) आदीध्यनम्
आ दीधी ल्युट्—लशक्वतद्धिते, हलन्त्यम्, युवोरनाकौ,
आ दी ध् य् अन—अन्त्यलोप नहीं हुआ, इको यणचि से यण् आदेश।

(10) आवेव्यनम्
आवेवी ल्युट्—पूर्ववत् 'अन्' आदेश,
आवेव् यन सु—अन्त्यलोप नहीं हुआ।

(3571) सनि मीमाघुरभलभशकपतपदामच इस् *54* (2623)

सनि प्रत्यये सकारादौ परतो मी, मा, घु, रभ, लभ, शक, पत, पद-इत्येतेषामङ्गानामचः स्थाने इसित्ययमादेशो भवति। 'मी' इति मीनातिमिनोत्योर्ह्रस्वयोरपि ग्रहणमिष्यते। मित्सति। प्रमित्सति। 'मा' इति गामादाग्रहणेष्वविशेषः। मित्सते। अपमित्सते। घु-दित्सति, धित्सति। रभ-आरिप्सते। लभ-आलिप्सते। शक-शिक्षति। पत-पित्सति। पद-प्रपित्सते। सनीति किम्? दास्यति। 'सीं' इत्येव-पिपतिषति। *'तनिपतिदरिद्राणामुपसंख्यानम्* (का०वा०) इति पतेरिडागमविकल्पः। *सनि राधो हिंसायामच इस्वक्तव्यः*। प्रतिरित्सति। हिंसायामिति किम्? आरिरात्सति।

अर्थ—मी, मा, घुसंज्ञक धातु, रभ्, लभ्, शक्, पत् तथा पद्—इन अङ्गों के अच् के स्थान पर 'इस्' आदेश होता है, सकारादि सन् प्रत्यय परे रहते।

सकारादि सन् का अभिप्राय है—सन्, जिसे इट् का आगम न हुआ हो।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'मी' के द्वारा क्रैयादिक 'मी' तथा सौवादिक 'मी'—दोनों का ग्रहण होता है।

उदा० (1) मित्सति
मीञ् सन्—इट् का निषेध,
म् इस् स—'इस्' आदेश,
मित् स → मिमित्स—सः स्यार्धधा०, अत्र लोपोऽभ्या० लकार।

(2) प्रमित्सति
प्र मी सन्—पूर्ववत् सभी कार्य होकर रूप बनता है।

मा इति०—'मा' के द्वारा मा, माङ् तथा मेङ्—तीनों का ग्रहण होता है। 'मेङ्' को 'आदेच उपदेशेऽशिति' से आकार होता है।

(3) मित्सते
मा सन्—'इस्' आदेश, तकार आदेश पूर्ववत्,
मि मित्स—द्वित्व, अत्र लोपोऽभ्यास०,
मित्स शप् त—धातुसंज्ञा, लकार।

(4) अपमित्सते
अप मित्सते—पूर्ववत्।

(5) दित्सति
दा सन् → दिस् स → दित्स—पूर्ववत्,
दि दित्स—द्वित्व, अभ्यासलोप,
दित्स शप् तिप्—अतो गुणे।

(6) धित्सति
धा सन्—'दित्सति' की तरह।

(7) आरिप्सते
आ रभ् सन् → आ रिस् भ् स—'इस्' हुआ,
आ रिस् प् स—'खरि च' से चर्त्व, 'स्कोः संयोगा०' से सकारलोप,
आ रि रिप्स → आरिप्स—अभ्यासलोप, धातुसंज्ञा, लकार।

(8) आलिप्सते
आ लभ् सन् → आ लिप् स—पूर्ववत्,
आ लि लिप्स—अभ्यासलोप, धातुसंज्ञा,
आ लिप्स शप् त—अतो गुणे।

(9) शिक्षति
शक् सन् → शिस् क् स—'इस्' आदेश, सकारलोप,
शिक् ष → शि शिक्ष् अ—आदेशप्रत्यययोः, अभ्यासलोप,
शिक्ष शप् ति—अतो गुण।

(10) पित्सति
पत् सन् → पिस् त् स—'इस्', सकारलोप, स्कोः संयोगा०,
पि पित्स—द्वित्व, अभ्यासलोप, धातुसंज्ञा,
पित्स शप् तिप्—अतो गुणे।

(11) प्रपित्सते
प्र पद् सन्—पूर्ववत् 'इस्', सकारलोप, द्वित्व, अभ्यासलोप,
प्र पित्स—धातुसंज्ञा,
प्र पित्स शप् त—अतो गुणे।

सनीति०—सन् प्रत्यय के परे रहते ही 'इस्' आदेश होता है।

(12) दास्यति
दा स्य ति—लृट्, स्य, सकारादि 'स्य' प्रत्यय परे है; परन्तु सन् परे नहीं है, 'इस्' आदेश नहीं हुआ।

सीत्येव०—सकारादि सन् के परे रहते ही 'इस्' आदेश होता है।

(13) पिपतिषति
पत् इ सन्—सन् परे है; परन्तु वह सकारादि नहीं है, 'इस्' नहीं हुआ,
प पत् इ स—द्वित्व, हलादिः शेषः,
पि पन्नि स—सन्यतः,
पिपतिष—आदेशप्रत्यययोः, धातुसंज्ञा,
पिपतिष शप् तिप्—तिप्, शप्, अनुबन्धलोप, 'अतो गुणे' से पररूप।

सनि०—हिंसा अर्थ में राध् अङ्ग के अच् के स्थान पर 'इस्' होता है, सन् परे रहते।

(14) प्रतिरित्सति
प्रति राध् सन्—'इस्', 'खरि च' से चर्त्व, 'स्कोः संयोगा०' से सकारलोप,
प्रति रि रित्स—द्वित्व, अभ्यासलोप, धातुसंज्ञा,
प्रति रित्स शप् ति—अतो गुणे।

हिंसाया०—हिंसा अर्थ में ही 'इस्' आदेश होता है।

(15) आरिरात्सति
आ राध् सन्—हिंसा अर्थ नहीं है, 'इस्' नहीं हुआ, 'खरि च', द्वित्व,
आ रा रात् स—हलादिः शेषः, ह्रस्वः, सन्यतः, धातुसंज्ञा,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आ रि रात्स शप् ति—'अतो गुणे' से पररूप।

(3572) आप्ज्प्यृधामीत् *55* (2619)

आप्, ज्रपि, ऋध-इत्येतेषामङ्गानामच ईकारादेशो भवति सनि सकारादौ परतः। आप्-ईप्सति। ज्रपि-ज्रीप्सति। ऋध्-ईर्त्सति। ज्रपेर्द्वावचौ, तत्र णेः पूर्वविप्रतिषेधेन लोपः, इतरस्य त्वीत्त्वम्। 'सनि' इत्येव-प्राप्स्यति। सीत्येव-जिज्ञपयिषति। अर्दिधिषति। 'सनीवन्तर्ध' (7.2.49) इति ज्रपेः, ऋधेश्चेटो विकल्पः।

अर्थ—आप्, ज्रप् तथा ऋध् अङ्गों के अच् के स्थान पर ईकार आदेश होता है, सकारादि सन् परे रहते।

उदा० (1) ईप्सति
आप सन् → ईप् स—ईकार आदेश,
ई ईप्स—द्वित्व, अभ्यासलोप, धातुसंज्ञा,
ईप्स शप् ति—अतो गुणे।

(2) ज्रीप्सति
ज्रप् सन् → ज्रीप् स—ईकार,
ज्रीप्स—द्वित्व, अभ्यासलोप, लकारकार्य।

(3) ईर्त्सति
ऋध् सन् → ईर् ध् स—ईकार, उरण् रपरः, खरि च,
ई ईर्त्स—द्वित्व, अकः सवर्णे दीर्घः,
ईर्त्स—धातुसंज्ञा,
ईर्त्स शप् तिप्—अतो गुणे।

ज्रपे०—'ज्रपि' में दो अच् हैं। पूर्वविप्रतिषेध से प्रथम णि-लोप होता है। पश्चात् दूसरे अच् के स्थान पर ईकार आदेश होता है।

सनीत्ये०—सन् परे रहते ईकार होता है।

(4) प्राप्स्यति
प्र आप् ति—'ल्ट् शेषे च',
प्र आप् स्य ति—स्यतासी ल्ट०, सकारादि प्रत्यय (स्य) परे है, परन्तु सन् परे नहीं है, अतः ईकार नहीं हुआ।

सीत्येव०—सकारादि सन् परे रहते ईकार होता है।

(5) जिज्ञपयिषति
ज्रप् इ इट् सन्—'सनीवन्तर्धभ्रस्ज०' से पाक्षिक इट्, इट् पक्ष में सन् के सकारादि न रहने से ज्रप् को ईकार नहीं होता है,
ज ज्रपयिष—द्वित्व, हलादिः शेषः, षत्व,
जिज्ञपयिष—सन्यतः, धातुसंज्ञा,
जिज्ञपयिष शप् ति—अतो गुणे।

(6) अर्दिधिषति
ऋध् इ सन्—पूर्ववत् सन् में पाक्षिक इट्, सन् के सकारादि न रहने से ऋध् को ईकार नहीं होता है,
अर्धिष—गुण, षत्व, द्वित्व,
अर् धिष् धिष् अ—अजादेर्द्वितीयस्य, हलादिः शेषः, अभ्यासे चर्च,
अर् दिधिष—अचो रहाभ्यां द्वे, धातुसंज्ञा आदि,
अर् द् दिधिष शप् ति—अतो गुणे।

सनीव०—सनीवन्तर्ध० से ज्रपि व ऋधि से इट् का विकल्प होता है।

(3573) दम्भ इच्च *56* (2621)

दम्भेरच इकारादेशो भवति, चकारादीच्च सनि सकारादौ परतः। धीप्सति, धिप्सति। 'सि' इत्येव-दिदम्भिषति।

अर्थ—दम्भ् अङ्ग के अच् के स्थान पर इकार तथा ईकार आदेश पर्यायेण होते हैं, सकारादि सन् परे रहते।

उदा० (1) धिप्सति
दम्भ् सन्—'दम्भ इच्च' से इकार,
दिम्भ् स—'हलन्ताच्च' से सन् प्रत्यय किद्वत्,
दिभ् स—'अनिदितां हल उपधाया०' से अनुनासिकलोप,
धिभ् स—'एकाचो बशो० से धकार,
धिप् स—'खरि च' से चर्त्व,
धि धिप् स—द्वित्व, अभ्यासलोप,
धिप्स अ ति—धातुसंज्ञा, शप्, अतो गुणे।

(2) धीप्सति
दम्भ् सन् → दीम्भ् स—ईकार आदेश,
दीभ् स—शेष कार्य 'धिप्सति' की तरह।

सीत्येव०—सकारादि सन् परे रहते इकार व ईकार होते हैं।

(3) दिदम्भिषति
दम्भ् सन्—इट्,
दम्भिष—षत्व, संन् के सकारादि न रहने से इकार और ईकार नहीं होते हैं, सन्यङोः,
दम्भ् दम्भ् इष—हलादिः शेषः,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

द दम्भिष—'सन्यतः' से इकार,
दि दम्भिष—धातुसंज्ञा,
दिदम्भिष शप् ति—अतो गुणे।

(3574) मुचोऽकर्मकस्य गुणो वा *57* (2624)

मुचोऽकर्मकस्य गुणो वा भवति सनि सकारादौ परतः। 'हलन्ताच्च' (1.2.10) इति कित्त्वप्रतिषेधो विकल्प्यते। मोक्षते वत्सः स्वयमेव, मुमुक्षते वत्सः स्वयमेव। अकर्मकस्येति किम्? मुमुक्षति वत्सं देवदत्तः। कर्मकर्त्तरि मुचिरकर्मको भवति, कर्मविशेषस्याविवक्षितत्वाद्वा।

अर्थ—अकर्मक मुच् धातु के अङ्ग को गुण आदेश विकल्प से होता है, सकारादि सन् परे रहते। 'हलन्ताच्च' से कित्त्व का प्रतिषेध विकल्प से होता है।

उदा० (1) मोक्षते
मुच् स—गुण,
मोच् सन्—कुत्व, आदेशप्रत्यययोः,
मो मोक्ष—द्वित्व, अभ्यासलोप,
मोक्ष शप् त—अतो गुणे।

(2) मुमुक्षते
मुच् स—गुण अभाव पक्ष, कुत्व, षत्व,
मुमुक्ष—द्वित्व, शप् आदि।

अकर्म०—अकर्मक मुच् को ही गुण होता है।

(3) मुमुक्षति वत्सं देवदत्तः
कर्मकर्त्ता में ही मुच् धातु अकर्मक होता है। अतः यहाँ अकर्मक न होने से सन् परे रहते गुण नहीं हुआ।

(3575) अत्र लोपोऽभ्यासस्य *58* (2620)

यदेतत्प्रकान्तम्-'सनि मीमा' (7.4.54) इत्यादि 'मुचोऽकर्मकस्य' (7.4.57) इति यावत्, अत्राभ्यासलोपो भवति। तथैवोदाहृतम्। 'अभ्यासस्य' इत्येतच्चाधिकृतं वेदितव्यमध्यायपरिसमाप्तेः। इत उत्तरं यद्वेक्ष्यामोऽभ्यासस्येत्येवं तद्वेदितव्यम्। वक्ष्यति-'ह्रस्वः' (7.4.59) डुढौकिषते। तुत्रौकिषते। 'सनि मीमाघुरभलभशकपतपदामच इस् अभ्यासलोपश्च' इत्येवं सिद्धे यद् 'अत्र' ग्रहणमिह क्रियते तद्विषयावधारणार्थम्-अत्रैवाभ्यासलोपो भवति, सन्वद्भावविषये न भवति। अमीमपत्। अदीदपत्। 'सन्वल्लघुनि चङ्परे' (7.4.93) इति प्राप्नोति। सर्वस्याभ्यासस्यायं लोप इष्यते, तदर्थमेव केचिद् 'अत्र' ग्रहणं वर्णयन्ति। 'नानर्थकेऽलोऽन्त्यविधिः' इत्यपरे सर्वस्य कुर्वन्ति।

अर्थ—'सनि मीमा०' से लेकर 'मुचोऽकर्म्म०' पर्यन्त इस प्रकरण में सन् परे रहते जो-जो कार्य विहित हैं, वहाँ वहाँ अभ्यास का लोप होता है। उदाहरण दिये जा चुके हैं। अध्याय की समाप्ति पर्यन्त 'अभ्यासस्य' पद का अधिकार जानना चाहिए। इसका भाव यह है कि इससे आगे जो कार्य कहा जायेगा, वह अभ्यास के स्थान पर होता है—ऐसा जानना चाहिए।

आगे कहा जायेगा—ह्रस्वः। उदाहरण आगे देखिये।

सनि०—'सनि मीमाघुरभलभशकपतपदामच इस् अभ्यासलोपश्च' से सिद्ध रहने पर जो 'अत्र' पद का ग्रहण विषय के अवधारण के लिए है। यथा—यहाँ पर ही अभ्यास का लोप होता है तथा सन्वद्भाव के विषय में अभ्यास का लोप नहीं होता है। अमीमपत् तथा अदीदपत्—इन स्थलों पर 'सन्वलघुनि चङ् परे' से सन्वत् होकर अभ्यास का लोप प्राप्त होता है; परन्तु प्रकरण न होने से लोप नहीं होता है।

(3576) ह्रस्वः *59* (2180)

ह्रस्वो भवत्यभ्यासस्य। डुढौकिषते, तुत्रौकिषते। डुढौके, तुत्रौके। अडुढौकत्, अतुत्रौकत्। *अभ्यासस्यानचि* (म० भा०)। अभ्यासस्य यदुच्यते अनचि तद्भवतीति वक्तव्यम्। चराचरः। चलाचलः। पतापतः। वदावदः। 'हलादिः शेषो' (7.4.60) न भवति।

अर्थ—अङ्ग के अभ्यास को ह्रस्व आदेश होता है। यह अच् के स्थान पर होता है। 'पूर्वोऽभ्यासः' से अभ्याससंज्ञा होती है।

उदा० (1) डुढौकिषते
ढौक् सन्—आर्धधातुकस्येड्वलादेः,
ढौक् ढौक् इ स—द्वित्व, हलादिः शेषः,
ढौ ढौक् इ स—ह्रस्वः, अभ्यासे चर्च,
डु ढौकिष—आदेशप्रत्यययोः, धातुसंज्ञा,
डुढौकिष शप् त—अतो गुणे।

(2) तुत्रौकिषते
त्रौक् इट् सन्—पूर्ववत् इट्, द्वित्व,
तौ त्रौक् इ स—हलादिः शेषः, ह्रस्वः,
तुत्रौकिष—आदेशप्रत्यययोः, धातुसंज्ञा,
तुत्रौकिष शप् त—अतो गुणे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(3) डुढौके
ढौक् ए—लिट्, त, लिटस्तझयो०,
ढौ ढौक् ए—द्वित्व, हलादिः शेषः,
डु ढौके—अभ्यासे चर्च, ह्रस्वः।

(4) तुत्रौके
त्रौक् ए—पूर्ववत् एश् आदेश,
तौ त्रौक् ए—द्वित्व, हलादिः शेषः,
तु त्रौक् ए—ह्रस्वः।

(5) अडुढौकत्
ढौक् णिच् लुङ्—तिप्, 'इतश्च' से इकारलोप, चङ्, अनुबन्धलोप,
ढौक् इ अ त्—'णेरनिटि' से णिलोप, 'चङि' से द्वित्व,
ढौ ढौक् अ त्—हलादिः शेषः,
डु ढौकत्—ह्रस्वः,
अडुढौकत्—अट्।

(6) अतुत्रौकत्
त्रौक् णिच् चङ् त्—पूर्ववत्,
तौ त्रौक् अ त्—णिलोप, द्वित्व, हलादिः शेषः,
तु त्रौकत्—ह्रस्वः,
अतुत्रौकत्—अट्।

अभ्यास०—अच् परे न हो तो अभ्यास को ह्रस्व आदि होता है।

(7) चराचरः
चर् यङ्—'वा चरिचलि०' से अभ्यास को 'आक्'
चर् आ चर् अ सु—अभ्यासलोप, ह्रस्वादि शेष आदि कार्य नहीं होते हैं।

(8) चलाचलः
चल् यङ्—पूर्ववत्।
(9) पतापतः (पूर्ववत्)।
(10) वदावदः
वद् यङ्—पूर्ववत्।

(3577) हलादिः शेषः *60* (2179)

अभ्यासस्य हलादिः शिष्यते, अनादिर्लुप्यते। जग्लौ। मम्लौ। पपाच। पपाठ। आट, आटतुः, आटुः। आदिशेषनिमित्तोऽयमनादेर्लोपो विधीयते, तत्र अभ्यासजातेराश्रयणात् क्वचिदपि वर्त्तमानो हलादिरनादेः सर्वत्र निवृत्तिं करोति। अपरे तु ब्रुवते–शेषशब्दोऽयं निवृत्त्या विशिष्टमवस्थानमाह। तदवस्थानमुक्तितो यद्यपि प्रधानम्, अविधेयत्वात्तु तदप्रधानम्, निवृत्तेरेव तु विधेयत्वात्प्रधानम्। तत्रायमर्थोऽस्य जायते–अभ्यासस्यानादेर्हलो निवृत्तिर्भवतीति। सा किमित्यादेरविधेयां सतीमनिवृत्तिमपेक्षिष्यत इति।

अर्थ—अङ्ग के अभ्यास का आदि में जो हल्, वह शेष रहता है तथा जो आदि में नहीं है, उसका लोप होता है।

'हलादिः पद का दो प्रकार से विग्रह सम्भव है—

(क) हलाम् आदिः (ष०तत्पु०)। इसकी दशा में 'अक्ष् णल्—अक् अक्ष अ' इस प्रकार अभ्यास का ककार शेष रहता है और अनिष्ट रूप बनता है। कारण कि ककार हलों में आदि है। अतः ष० तत्पु० मानना उचित नहीं है।

(ख) हल् चाऽसावादिश्च (कर्म०)। इस दशा में 'आदि' शब्द का पूर्वनिपात होकर 'आदिहल्' ऐसा सूत्र पाठ होना चाहिए था।

इससे सिद्ध होता है कि 'हलादिः' समस्त पद नहीं है।
उदा० (1) जग्लौ
ग्लै → ग्ला ल्—'आदेच उपदेशेऽशिति' से आकार,
ग्ला णल्—'परस्मैपदानां णलतुसुस्०' से 'णल्' आदेश,
ग्ला ग्ला औ—आत औ णलः, द्वित्व,
ग ग्ला औ—हलादिः शेषः, कुहोश्चुः,
जग्लौ—वृद्धिरेचि।

(2) मम्लौ
म्लै → म्ला णल्—पूर्ववत्,
म म्ला औ—हलादिः शेषः, वृद्धिरेचि।

(3) पपाच
पच् अ—लिट्, णल्, अनुबन्धलोप,
पच् पच् अ—द्वित्व, हलादिः शेषः,
प पाच् अ—अत उपधायाः।

(4) पपाठ
पठ् णल्—लिट्, णल्,
प पाठ् अ—पूर्ववत्।

(5) आट
अट् णल्—लिट्, पूर्ववत्, चुटू, हलन्त्यम्,
अ अट् अ—द्वित्व, हलादिः शेषः,
आ अट् अ—'अत आदेः' से दीर्घ,
आट् अ—'अकः सवर्णे दीर्घः'।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(6) आटतुः

अट् अतुस्—लिट्, प्र०पु० द्विवचन,

अ अट् अतुस्—पूर्ववत् द्वित्व, हलादिः शेष, अभ्यास को दीर्घ।

(7) आटुः

अट् उस्—लिट् प्र०पु० बहुवचन,

अ अट् उस्—शेष पूर्ववत्।

आदि०—आदि शेष निमित्त है जिसका, ऐसे अनादि हल् के लोप का विधान है। इनमें अभ्यास जाति के आश्रयण से कहीं भी वर्त्तमान आदि हल् सर्वत्र अनादि हल् का लोप कर देता है।

अपरे०—अन्य विद्वानों के अनुसार यह 'शेष' शब्द लोप के द्वारा विशिष्ट अवस्थान को कहता है। वह अवस्थान यद्यपि शब्दव्यापार से प्रधान है तथा विधेय न होने से गौण होता है। लोप का ही विधेय होने से प्रधान होता है। अतः इसका आशय यह है कि अभ्यास के अनादि हल् का लोप होता है। वह आदि की विधेय होती हुई भी लोपाभाव की अपेक्षा किस प्रकार करेगी ?

इसका सार यह है कि यदि अभ्यास के आदि में हल् है तो वह शेष रहता है और यदि आदि में अच् है तो वह भी शेष अवश्य रहता है। तब आदि से अतिरिक्त हल् का लोप होता है। चूँकि 'अक्ष् अक्ष् अ' इस दशा में अभ्यास के आदि में अच् अकार है। अतः वह शेष रहता है। अनादि हल् वर्णों (क्, ष्) का लोप हो जाता है।

(3578) शर्पूर्वाः खयः *61* (2259)

अभ्यासस्य शर्पूर्वाः खयः शिष्यन्ते, अन्ये हलो लुप्यन्ते। चुश्ञ्योतिषति। तिष्ठासति। पिस्पन्दिषते। शर्पूर्वा इति किम् ? पपाच। खय इति किम् ? सस्नौ। *खर्पूर्वाः खय इति वक्तव्यम्* (म०भा०)। उचिच्छिषतीत्यत्र उच्छेरन्तरङ्गत्वात्तुकि कृते द्विर्वचनम्, तत्र हलादिः शेषे सत्यभ्यासे तकारः श्रूयेत।

अर्थ—अभ्यास में शर् वर्ण है पूर्व में जिसके, ऐसा खय् वर्ण शेष रहता है, अन्य हल् वर्णों का लोप होता है। शर् प्रत्याहार में श, ष, स्—ये तीन वर्ण हैं। खय् प्रत्याहार में वर्गीय द्वितीय और प्रथम अक्षर ही होते हैं।

यहाँ 'आदिः' पद का अधिकार है।

उदा० (1) चुश्ञोतिषति

श्ञुत् सन्—धातोः कर्मणः समा०, आर्धधातुकस्येड्०,

श्ञुत् इ स—द्वित्व, पूर्वोऽभ्यासः,

श्ञुत् श्ञुत् इ स—शर् (शकार) पूर्व में है, अतः खय् वर्ण (चकार) शेष रहा, अन्य हल् वर्णों का लोप, लघूपधगण, लकार-कार्य।

(2) तिष्ठासति

ष्ठा → स्था—धात्वादेः षः सः, निमित्त (षकार) की निवृत्ति हो जाने पर नैमित्तिक (ठकार) की निवृत्ति, सन् हुआ,

स्था स्था स—इट् का निषेध, द्वित्व, पूर्वोऽभ्यासः, अभ्यास में शर् (सकार) पूर्व में है, उससे पर खय् वर्ण (थकार) शेष रहा, 'ह्रस्वः' से ह्रस्वादेश,

थ स्था स—'अभ्यासे चर्च' से तकार,

त स्था स—'सन्यतः' से इकार,

ति ष् था स—'आदेशप्रत्यययोः' से षत्व,

तिष्ठास शप् ति—'ष्टुना ष्टुः' से ठकार, लकारकार्य।

(3) पिस्पन्दिषते

स्पन्द सन्—आर्धधातुक संज्ञा, वलादिक इट्, षत्व,

स्पन्द् स्पन्द् इष—द्वित्व, पूर्ववत् पकार शेष रहा, शेष हल् वर्णों का लोप,

पिस्पन्दिषते—सन्यतः आदि पूर्ववत्।

शर्पूर्वा०—शर् है पूर्व में जिसके, ऐसा खय् वर्ण शेष रहता है।

(4) पपाच

पच् णल्—लिट्, तिप्, अनुबन्धलोप, द्वित्व,

पच् पच् अ—अभ्यास में खय् वर्ण (चकार) है, परन्तु उससे पूर्व शर् वर्ण नहीं है। अच् है, अतः चकार शेष नहीं रहा, 'हलादिः शेषः' से आदि हल् (पकार) शेष रहा, शेष हल् (चकार) का लोप हुआ, 'अत उपधाया' से उपधावृद्धि होकर रूप बनता है।

खय०—अभ्यास में शर्पूवक खय् वर्ण ही शेष रहता है।

(5) सस्नौ

स्ना अ—लिट्, णल्, अनुबन्धलोप, द्वित्व,

स्ना स्ना अ—अभ्यास में शर् (सकार) पूर्व में है, परन्तु उससे उत्तर नकार है, जो खय् वर्ण नहीं है; अतः नकार शेष नहीं रहा, 'हलादिः शेषः' से सकार शेष रहा, 'आत औ णलः' आदि।

खर्पूवा०—अभ्यास में खर् वर्ण है पूर्व में जिसके, ऐसा खय् वर्ण शेष रहता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(6) उचिच्छिषति

उच्छ् सन्—धातो० कर्मणः समान०, अन्तरङ्ग होने से प्रथम तुक् होता है, 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः से इट्,

उच्छि ष—सन्यङोः' से तथा 'अजादेर्द्वितीयस्य' से द्वित्व हुआ,

उ च्छिष् च्छिष् अ—'हलादिः शेषः' को बाध कर 'शर्पूर्वाः खयः' तथा प्रकृत वार्त्तिक के द्वारा लोप होकर,

उ चि च्छिष् शप् ति—अतो गुणे।

अन्तरङ्ग होने से प्रथम तुक् हुआ, तब द्वित्व हुआ, तब 'हलादिः शेषः' से अभ्यास में तकार का श्रवण होने लगेगा। प्रकृत वार्त्तिक से लोप हो गया।

(3579) कुहोश्चुः *62* (2245)

अभ्यासस्य कवर्गहकारयोश्चवर्गादिशो भवति। चकार। चखान। जगाम। जघान। हकारस्य-जहार। जिहीर्षति। जहौ।

अर्थ—अभ्यास के कवर्ग तथा हकार के स्थान पर चवर्ग आदेश होता है।

स्थानी छः (क, ख, ग, घ, ङ, ह) हैं तथा आदेश पाँच (च, छ, ज, झ, ञ) हैं। अतः यथासंख्य परिभाषा प्रवृत्त नहीं होती है।

तब 'स्थानेऽन्तरतमः' से आदेश होना चाहिए। चूँकि सभी स्थानी कण्ठ्य हैं तथा आदेश तालव्य हैं। अतः स्थानकृत आन्तर्य सम्भव नहीं। इसके अतिरिक्त हकार का आभ्यन्तर यत्न ईषद् विवृत तथा कवर्ग के वर्णों का स्पृष्ट स्पृष्ट है।

फलतः पारिशेष्यात् बाह्य प्रयत्न के द्वारा आदेश होता है। यथा—क् (विवार, श्वास, अघोष, अल्प प्राण) के स्थान पर च् (विवार, श्वास, अघोष, अल्पप्राण) होता है।

ख् (विवार, श्वास, अघोष, महाप्राण) के स्थान पर छ् (विवार, श्वास, अघोष, महाप्राण) होता है।

ग् (संवार, नाद, घोष, अल्पप्राण) के स्थान पर ज् (संवार, नाद, घोष, अल्प्रपाण) होता है।

घ् (संवार, नाद, घोष, महाप्राण) के स्थान पर झ् (संवार, नाद, घोष, महाप्राण) होता है।

ङ् (संवार, नाद, घोष, अल्पप्राण) के स्थान पर ञ् (संवार, नाद, घोष, अल्पप्राण) होता है।

ह् (संवार, नाद, घोष महाप्राण) के स्थान पर झ् (संवार, नाद, घोष, महाप्राण) होता है।

उदा० (1) चखान

खन् अ—लिट्, णल्, चुटू, हलन्त्यम्,
खन् खन् अ—द्वित्व, हलादिः शेषः,
ख खन् अ—'कुहोश्चुः' से छ्कार, चकार।
च खान् अ—अत उपधायाः।

(2) जगाम

गम् अ—पूर्ववत्,
ग गम् अ—द्वित्व, हलादिः शेषः,
ज गाम् अ—कुहोश्चुः, अत उपधायाः।

(3) जघान

हन् अ—पूर्ववत्,
ह हन् अ—हलादिः शेषः,
झ हन् अ—कुहोश्चुः,
ज हन् अ—अभ्यासे चर्च,
ज हान् अ—अत उपधायाः,
ज घान् अ—'हो हन्ते०' से कुत्व।

(4) जहार

ह्र अ—पूर्ववत्,
ह्र ह्र अ—उरत्, उरण् रपरः,
हर् ह्र अ—हलादिः शेषः,
ह ह्र अ—कुहोश्चुः, अभ्यासे चर्च,
ज हार् अ—अचो ञ्णिति।

(5) जिहीर्षति

ह्र सन्—इट् का निषेध, 'अज्झनगमां०' से दीर्घ,
ह्र स—'ऋत इद् धातोः' से इकार,
झि हिर् स—उरण् रपरः, द्वित्व, कुहोश्चुः,
जि हिर् स—अभ्यासे चर्च,
जिहीर्ष—दीर्घ, षत्व, धातुसंज्ञा,
जिहीर्ष शप् तिप्—अतो गुणे।

(6) जहौ

हा णल्—लिट्, णल्, द्वित्व,
झ हा णल्—ह्रस्वः, कुहोश्चुः,
ज हा औ—अभ्यासे चर्च, आत औ णलः, वृद्धिरेचि।

(3580) न कवतेर्यङि *63* (2641)

कवतेरभ्यासस्य यङि परतश्चुर्न भवति। कोकूयते उष्ट्रः। कोकूयते खरः। 'कवतेः' इति विकरणनिर्देशः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कौतेः कुवतेश्च निवृत्त्यर्थः। तयोश्चुत्वमेव भवति–चोकूयते। यङीति किम्? चुकुवे।

अर्थ—कुङ् अङ्ग के अभ्यास को चुत्व नहीं होता है, यङ् परे रहते।

उदा० (1) कोकूयते
कु यङ्—सन्यङोः,
कु कु य → कोकुय—गुणो यङ्लुकोः,
कोकूय शप् त—अकृत् सार्वधातु०, अतो गुणे।

कोकूयते०—इसी प्रकार 'कोकूयते खरः' होता है। 'कवतेः' पद में शप् का निर्देश होने से कुङ् के द्वारा भौवादिक 'कु' का ग्रहण होता है। तब आदादिक तथा तौदादिक 'कु' की निवृत्ति हो जाती है। उनके अभ्यास को चुत्व होता है।

(2) चोकूयते
कु यङ्—सभी कार्य पूर्ववत्, अभ्यास को चुत्व होता है।

यङीति०—यङ् परे रहते ही चुत्व का निषेध होता है।

(3) चुकुवे
कु त—लिट्, लिटस्तझयोरेश०,
कु ए—द्वित्व,
कु कु ए—पूर्वोऽभ्यासः, यङ् परे नहीं है, चुत्वनिषेध नहीं हुआ,
चुकुव् ए—उवङ् आदेश।

(3581) कृषेश्छन्दसि *64* (3595)

कृषेश्छन्दसि विषये यङि परतोऽभ्यासस्य चुर्न भवति। करीकृष्यते यज्ञकुणपः। छन्दसीति किम्? चरीकृष्यते कृषीवलः।

अर्थ—वेद के विषय में कृष् अङ्ग के अभ्यास को चुत्व नहीं होता है, यङ् प्रत्यय परे रहते।

उदा० (1) करीकृष्यते
कृष् यङ्—द्वित्व,
कृष् कृष् य—पूर्वोऽभ्यासः, हलादिः शेषः,
कृ कृष् य—उरत्, उरण् रपरः, हलादिः शेषः,
क कृष् य—'रीगृदुपधस्य' से 'रीक्' आगम।
करीकृष्य शप् त—अतो गुणे।

छन्दसी०—वेद में ही कृष् अङ्ग के अभ्यास में चुत्व का निषेध होता है।

(2) चरीकृष्यते
क कृष् य—पूर्ववत्, इस दशा में लोक में चुत्व होता है,
च री कृष् य—शेष पूर्ववत्।

(3582) दाधर्ति दर्धर्ति दर्धर्षि बोभूतु तेतिक्तेऽलर्ष्यापनीफणत्संसनिष्यदत् करिक्रत्कनिक्रदद्धरिभ्रद्दविध्वतोदविद्युतत्तरित्रतः सरीसृपतं वरीवृजन्मर्मृज्यागनीगन्तीति च *65* (3596)

दाधर्ति, दर्धर्ति, दर्धर्षि, बोभूतु, तेतिक्ते, अलर्षि, आपनीफणत्, संसनिष्यदत्, करिक्रत्, कनिक्रदत्, भरिभ्रत्, दविध्वतः, दविद्युतत्, तरित्रतः, सरीसृपतम्, वरीवृजत्, मर्मृज्य, आगनीगन्ति–इत्येतानि अष्टादश छन्दसि विषये निपात्यन्ते। दाधर्ति दर्धर्ति दर्धर्षीति–धारयतेः, धृङो वा श्लौ यङ्लुकि वा अभ्यासस्य दीर्घत्वं णिलोपश्च। दाधर्त्ति। एवं दर्धति (ऋ० 5.84.3)–श्लौ रुगभ्यासस्य निपात्यते। तथा दर्धर्षीति। अत्र च यल्लक्षणेनानुपपन्नं तत्सर्वं निपातनात्सिद्धम्। बोभूत्विति–भवतेर्यङ्लुगन्तस्य लोटि गुणाभावो निपात्यते। नैतदस्ति प्रयोजनम्; अत्र 'भसुवोस्तिङि' (7.3.88) इति गुणाभावः सिद्धः? ज्ञापनार्थं तर्हि निपातनमेतत्। ज्ञापयति–अन्यत्र यङ्लुगन्तस्य गुणप्रतिषेधो न भवतीति। 'बोभोति, बोभवीति' (ऋ० 3.53.8)। तेतिक्ते (ऋ० 4.23.7) तिजेर्यङ्लुगन्तस्यात्मनेपदं निपात्यते। यङो ङित्त्वात् प्रत्ययलक्षणेनात्मनेपदं सिद्धमेव? ज्ञापनार्थं तु आत्मनेपदनिपातनम्–'अन्यत्र यङ्लुगन्तादात्मनेपदं न भवति'। अलर्षीति–इयर्तेर्लटि सिपि अभ्यासस्य हलादिः शेषापवादो रेफस्य लत्वं निपात्यते। सिपा निर्देशोऽतन्त्रम्, तिप्यपि दृश्यते–'अलर्ति दक्षः' (ऋ० 8.48.8)। आपनीफणदिति (ऋ० 4.40.4)–फणतेराङ्पूर्वस्य यङ्लुगन्तस्य शतर्यभ्यासस्य नीग्नि-पात्यते। संसनिष्यददिति (मै० 1.11.2)–स्यन्देः संपूर्वस्य यङ्लुक्, शतर्यभ्यासस्य निक्, धातुसकारस्य षत्वं निपात्यते। न चास्य सम्पूर्वता तन्त्रम्, अन्यत्रापि हि दृश्यते–आसनिष्यददिति। करिक्रदिति (ऋ० 1.131.3)–करोतेर्यङ्लुगन्तस्य शतरि चुत्वाभावः, अभ्यासककारस्य रिगागमो निपात्यते। कनिक्रददिति (ऋ० 1.128.3)–क्रन्देर्लुङि च्लेरङादेशो द्विर्वचनमभ्यासस्य चुत्वाभावो निगागमश्च निपात्यते। तथा चास्य हि विवरणं कृतम्। अक्रन्दीदिति भाषायाम्। भरिभ्रदिति (ऋ० 10.45.7)–

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बिभर्त्तर्यङ्लुगन्तस्य शतरि 'भृञामित्' इति इत्त्वाभावो जश्त्वाभावोऽभ्यासस्य रिगागमो निपात्यते। दविध्वत इति–ध्वरतेर्यङ्लुगन्तस्य शतरि जसि रूपमेतत्। अत्राभ्यासस्य विगागम ऋकारलोपश्च निपात्यते। 'दविध्वतो रश्मयः सूर्यस्य' (ऋ० 4.13.4)। दविद्युतदिति (ऋ० 6.16.45)–द्युतेर्यङ्लुगन्तस्य शतरि अभ्यासस्य सम्प्रसारणाभावः, अत्वम्, विगागमश्च निपात्यते। तरित्रत इति–तरतेः शतरि श्लौ षष्ठ्येकवचनेऽभ्यासस्य रिगागमो निपात्यते। सरीसृपतमिति–सृपेः शतरि श्लौ द्वितीयैकवचनेऽभ्यासस्य रीगागमो निपात्यते। वरीवृजदिति (ऋ० 7.24.4)–वृजेः शतरि श्लौ रीगागमो निपात्यतेऽभ्यासस्य। मर्मृज्येति–मृजेर्लिटि णलि अभ्यासस्य रुगागमो धातोश्च युगागमो निपात्यते। ततः 'मृजेर्वृद्धिः' (7.2.114) न भवति; अलघूपधत्वात्। लघूपधगुणे प्राप्ते वृद्धिरारभ्यते। आगनीगन्तीति–आङ्पूर्वस्य गमेर्लटि श्लौ अभ्यासस्य चुत्वाभावो नीगागमश्च निपात्यते। 'वक्ष्यन्ती वेदागनीगन्ती कर्णम्' (ऋ० 16.75.3)। इतिकरणमेवम्प्रकाराणामन्येषामप्युपसंग्रहार्थम्।

अर्थ—वेद में दाधर्त्ति, दर्द्धर्त्ति, दर्द्धर्षि, बोभूतु, तेतिक्ते, अलर्षि, आपनीफणत्, संसनिष्यदत्, कनिक्रत्, कनिक्रदत्, भरिभ्रत्, दविध्वतः, दविद्युतत्, तरित्रतः, सरीसृपतम्, वरीवृजत्, मर्मृज्य तथा आगनीगन्ति—ये अट्ठारह शब्द निपातनसिद्ध हैं।

उदा० (1) दाधर्त्ति

धृ णि → धारि—वृद्धि, धातुसंज्ञा,
धारि शप् तिप्—शप् को श्लु हुआ, 'श्लौ' से द्वित्व, णिलुक्,
धर् धर् ति—हलादिः शेषः, अभ्यासे चर्च,
दा धर् ति—निपातन से अभ्यास को दीर्घ, अचो रहाभ्यां द्वे।

धारय०—यह रूप धारि (धृ णिच्) अथवा धृञ् से होता है। 'श्लौ' से द्वित्व, णिलोप तथा अभ्यासदीर्घ—ये कार्य होते हैं।

(2) दर्द्धर्त्ति

धृ णिच्—पूर्ववत् णिलोप, 'बहुलं छन्दसि' से शप् को श्लु,
धृ धृ ति—उरत्, हलादिः शेषः, अभ्यासे चर्च,
द धर् ति—गुण,
दर् धर् ति—निपातन से अभ्यास को 'रुक्' आगम,
दर् ध् धर् त् ति—अचो रहाभ्यां० से धकार को द्वित्व, पुनः तकार को द्वित्व,
दर्द्धर् ति—झलां जश् झशि।

श्लौ०—यहाँ श्लुत्व तथा अभ्यास को रुक् आगम निपातन से होते हैं।

(3) दर्द्धर्षि (ऋ० 5.84.3)

धृ णिच् शप् सिप्—सभी कार्य पूर्ववत्।

यत्र०—यहाँ जो लक्षण के द्वारा नहीं कहा गया है, वह सब निपातन से सिद्ध जानना चाहिए।

(4) बोभूतु

भू यङ्—यङ्लुक्, द्वित्व, पूर्वोऽभ्यासः,
बुभू—अभ्यासे चर्च, ह्रस्वः, अभ्यास को गुण,
बोभूतु—लोट्, ति, एरुः।

भवते०—यहाँ यङ्लुक् में लोट् प्र०पु० एकवचन में गुण के अभाव का निपातन है। यह प्रयोजन नहीं है। यहाँ 'भूसुवोस्तिङि' के द्वारा गुण का निषेध सिद्ध है। तब निपातन करना व्यर्थ है।

(समा०) वस्तुत ज्ञापन के लिए यहाँ निपातन किया गया है। इससे ज्ञापक सिद्ध होता है कि यङ्लुक् से अन्यत्र गुण का प्रतिषेध नहीं होता है।

(5) बोभोति, (6) बोभवीति।

(7 तेतिक्ते

तिज् यङ्—पूर्ववत् यङ्लुक्, द्वित्व,
ति तिज्—हलादिः शेषः,
ते तिक् ति—अभ्यास को गुण, कुत्व, चोः कुः, खरि च,
ते तिक् त—निपातन से एत्व।

तिजे०—तिज् के यङ्लुक् में आत्मनेपद का निपातन है।

(शंका) यङ् ङित् प्रत्यय है। अतः 'अनुदात्तङित आत्मनेपदम्' से प्रत्ययलक्षण से आत्मनेपद सिद्ध ही है। तब निपातन व्यर्थ है।

(समा०) यह आत्मनेपद का निपातन ज्ञापन के लिए है। ज्ञापित होता है कि अन्यत्र यङ्लुक् से आत्मनेपद नहीं होता है।

(8) अलर्षि (ऋ० 8.1.7)

ऋ (जु०) सिप्—शप्, श्लु, 'श्लौ' से द्वित्व,
ऋ ऋ सि—उरत्, उरण् रपरः, 'हलादिः शेषः' से रेफ का लोप प्राप्त हुआ, निपातन से रेफ के अनादि न होने पर भी वह शेष रहा,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर् अर् सि—सार्वधातुकार्ध० से गुण,
अल् अर् षि—निपातन से लत्व, षत्व।

इयर्ति०—ऋ धातु से सिप्, अभ्यास का रेफ 'हलादिः शेषः' अपवादस्वरूप शेष रहा, निपातन से रेफ को लत्व। सिप् विभक्ति के द्वारा निर्देश उचित नहीं है। तिप् प्रत्यय का रूप भी उपलब्ध होता है। यथा—

(9) अलर्त्ति दक्षः।

(10) आपनीफणत् (ऋ० 4.40.4)
आङ् फण् यङ्—यङ्लुक्, द्वित्व,
आ प फण्—हलादिः शेषः, अभ्यासे चर्च, निपातन से 'नीक्',
आ पनीफण्—धातुसंज्ञा, लट्,
आ पनीफण् शतृ—लट् को शतृ आदेश, शप्, अतो गुणे। सु।

फणते०—आङ् पूर्वक फण् धातु से यङ्लुक्, अभ्यास को निपातन से 'नीक्' आगम तथा शतृ होकर रूप बनता है।

(11) संसनिष्यदत्
सम् स्यन्द्—पूर्ववत् यङ्लुक्, निक् आगम, 'अनिदितां०' से अनुनासिकलोप, अनुस्वार, षत्व, धातुसंज्ञा,
संसनिष्यद्—पूर्ववत् शतृ।

स्यन्देः०—सम् पूर्वक स्यन्द् धातु से यङ्लुक् में, निपातन से निक् आगम व धातु को षत्व, शतृ आदि होते हैं। सम् उपसर्ग के योग में दिखाया जाना उचित नहीं है। कारण कि सम् से अन्य उपसर्ग के योग में भी ये कार्य दिखाई पड़ते हैं।

(12) आसनिष्यत्

(13) करिक्रत्
कृ यङ्—पूर्ववत् यङ्लुक्,
क कृ—द्वित्व, रिक् आगम, 'कुहोश्चुः' से प्राप्त चुत्व का निपातन से अभाव,
करिकृ शतृ—पूर्ववत्।

करोते०—कृ धातु के यङ्लुक् में अभ्यास के चुत्व का निपातन से अभाव तथा अभ्यास को रिक् आगम होता है।

(14) कनिक्रदत् (ऋ० 1.128.3)
क्रन्द् लुङ्—निपातन से च्लि को अङ् व द्वित्व हुआ,
क्रन्द् क्रन्द् अङ् त्—हलादिः शेषः, निपातन से कुत्व का अभाव,
क क्रन्द् अ त्—निपातन से 'नुक्' आगम,
क नि क्रदत्—अनुनासिकलोप।

क्रन्देर्लु०—क्रन्द् धातु से लुङ् में च्लि को अङ् आदेश, द्वित्व, अभ्यास को चुत्व का अभाव, निक् का आगम—ये निपातन से होते हैं।

(15) अक्रन्दीत्—लोक में होता है।

(16) भरिभ्रत् (ऋ० 2.4.4)
भृ—पूर्ववत् यङ् लुक्,
भ भृत्—अभ्यास को निपातन से 'रिक्' आगम, 'अभ्यासे चर्च' से जश्त्व (बकार) प्राप्त, निपातन से अभाव,
भरिभ्रत्—पूर्ववत् शतृ, सु।

बिभर्ते०—भृ धातु से यङ्लुक् में अभ्यास को 'रिक्' आगम, जश्त्व का अभाव व इत्व का अभाव निपातन से होते हैं।

(17) दविध्वतः (ऋ० 4.13.4)
ध्वृ यङ्—पूर्ववत् यङ्लुक्,
द ध्वृ—अभ्याससंज्ञा, उरत्, उरण् रपरः, अभ्यासे चर्च,
द विक् ध्व् शतृ जस्—निपातन से ऋकार का लोप तथा विक् आगम, शतृ, शप् आदि।

दविध्व०—ध्वृ धातु के यङ्लुक् में शतृ करके जस् विभक्ति में रूप बनता है। यहाँ अभ्यास को 'विक्' आगम तथा धातु के ऋकार का लोप निपातन से होता है।

(18) दविद्युतत् (ऋ० 7.10.1)
द्युत् यङ्—पूर्ववत् 'विक्' आगम होता है।

दविद्युत०—द्युत् धातु के यङ्लुक् में शतृ प्रत्यय हुआ है। द्युतिस्वाप्यो० से प्राप्त सम्प्रसारण का निपातन से अभाव, अकार आदेश तथा विक् आगम निपातन से होते हैं।

(19) तरित्रतः (ऋ० 4.40.3)
तॄ शतृ—लट्, शतृ आगम, शप्, श्लुत्व, द्वित्व,
तॄ तॄ अत्—उरत्, हलादिः शेषः,
त रिक् त्रत्—रिक् आगम,
तरित्रत् ङस्—लशक्वतद्धिते।

तरित्रत०—तॄ धातु से शतृ में श्लुत्व, अभ्यास को 'रिक्' आगम निपातन से होकर षष्ठी एकवचन में रूप बनता है।

(20) सरीसृपतम्
सृप् शतृ—शप्, श्लुत्व, द्वित्व,
सृ सृप् अत्—उरत्, हलादिः शेषः,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सरी सृपत् अम्—'रिक्' आगम।

सरीसृ०—सृप् धातु से शतृ करने पर श्लुत्व हुआ, अभ्यास को 'रीक्' आगम करके द्वितीया एकवचन में रूप बनता है।

(21) वरीवृजत् (तै० ब्रा० 2.4.3.6)
वृज् शतृ—पूर्ववत् श्लुत्व, रीक् आगम।

वरीवृज०—वृज् धातु से शतृ में श्लुत्व हुआ, अभ्यास को 'रीक्' आगम होता है।

(22) मर्मृज्य
मृज् णल्—लिट्, द्वित्व,
म मृज् अ—उरत्, हलादिः शेषः,
मर् मृज् युक् अ—रुक् आगम, युक् आगम।

मर्मृज्ये०—मृज् धातु से लिट् में णल् करने पर द्वित्व, अभ्यासकार्य, अभ्यास को रुक् आगम तथा अङ्ग को युक् आगम होता है। लघूपध के न रहने से 'मृजेर्वृद्धिः' से वृद्धि नहीं होती है। लघूपध गुण प्राप्त होने पर वृद्धि होती है।

(23) आगनीगन्ति (ऋ० 6.75.3)
आङ् गम् ति—लट्, शप्, 'बहुलं छन्दसि' से श्लुभाव,
आ ग गम् ति—चुत्व अभाव, नीक् आगम,
आगनीगन्ति—अनुस्वार, परसवर्ण।

आगनी०—आङ् पूर्वक गम् धातु से लट्, तिप्, श्लु, द्वित्व करने पर 'कुहोश्चुः' से प्राप्त चुत्व का निपातन का अभाव तथा अभ्यास को नीक् आगम होते हैं।

इतिकरण अन्य लक्ष्यों के उपसंग्रह के लिए है।

(3583) उरत् *66* (2244)

ऋवर्णान्तस्याभ्यासस्याकारादेशो भवति। ववृते, ववृधे, शशृधे। नर्नर्त्ति, नरिनर्त्ति, नरीनर्ति–इत्येवमादौ 'अभ्यास-विकारेषु अपवादो नोत्सर्गान्विधीन्बाधते (व्या०प०) इत्युरदत्वे कृते रुगादय आगमाः क्रियन्ते।

अर्थ—ऋवर्णान्त अभ्यास के स्थान पर अकार आदेश होता है। यह 'उरण् रपरः' से रपर होता है।

उदा० (1) ववृते
वृत् त—लिट्, लिटस्तझयोरे०,
वृत् ए—लिटि धातोरनभ्या० से द्वित्व,
वृ त् वृत् ए—पूर्वोऽभ्यासः, हलादिः शेषः,
वृ वृत् ए—उरत्, उरण् रपरः, हलादिः शेषः,
व वृत् ए—गुणनिषेध।

(2) ववृधे
वृध् त—'ववृते' की तरह।

(3) नर्नर्त्ति
नृत् यङ्—यङ्लुक्, द्वित्व, उरत्, रपरः,
न नृत्—हलादिः शेषः,
नर् नर्ति—अङ्ग को गुण, अभ्यास को 'रुक्', 'रुग्रिकौ च लुकि'।

(4) नरिनर्त्ति
नृ नृत्—पूर्ववत्, यङ्लुक्, द्वित्व,
न नृत्—उरत्, हलादिः शेषः,
न रिक् नर्त् ति—'रुग्रिकौ च लुकि' से 'रिक्', अङ्ग को गुण।

(5) नरीनर्त्ति
न नृत्—पूर्ववत् उरत्, हलादिः शेषः आदि होकर,
न रीक् नृत् ति—रीक् आगम, अङ्ग को गुण,

इत्येव०—इत्यादि अभ्यासविकार के स्थलों पर अपवाद उत्सर्ग विधियों का बाध नहीं करता है। तब 'उरत्' से अकार आदेश करने पर रुक् आदि आगम किये जाते हैं।

(3584) द्युतिस्वाप्योः सम्प्रसारणम् *67* (2344)

द्युति, स्वापि–इत्येतयोरभ्यासस्य सम्प्रसारणं भवति। विदिद्युते। व्यदिद्युतत्। विदिद्योतिषते। विदिद्युतिषते। विदेद्युत्यते। स्वापेः–सुष्वापयिषति। स्वापिपर्यन्तो गृह्यते, तस्याभ्यासनिमित्तेन प्रत्ययेनानन्तर्ये सति सम्प्रसारणमिष्यते। इह न भवति–स्वापयतेर्ण्वुल् स्वापकः, तस्मात् क्यचि स्वापकीयति, स्वापकीयतेः सन्–सिष्वापकीयिषति।

अर्थ—द्युति तथा स्वापि अङ्गों के अभ्यास को सम्प्रसारण होता है। 'इग्यणः सम्प्रसारणम्' से यण् के स्थान पर इक् होते हैं।

उदा० (1) विदिद्युते
वि द्युत् त—लिट्, लिटस्तझयो०,
वि दि द्युत् एश्—द्वित्व, सम्प्रसारण।

(2) व्यदिद्युतत्
द्युत् तिप्—लुङ्, च्लि, चङ्, इतश्च,
वि दि द्युत् अ त्—द्वित्व, सम्प्रसारण, अट्, यण्।

(3) विदिद्योतिषते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

द्युत् सन्—सन्, आर्धधातुक संज्ञा, आर्धधातुकस्येड् वलादेः,
विद्युत् द्युत् इ ष—षत्व, द्वित्व, पूर्वोऽभ्यासः,
वि द् इ उत् द्युत् इष—सम्प्रसारण, सम्प्रसारणाच्च,
वि दि द्युत् इष—हलादिः शेषः, पुगन्तलघूपधस्य च,
विदिद्योतिष शप् त—धातुसंज्ञा, अतो गुणे।

(4) विदेद्युत्यते
वि द्युत् यङ्—पूर्ववत् द्वित्व, सम्प्रसारण,
वि दि द्युत् य—धातुसंज्ञा, गुणो यङ्लुकोः,
विदि द्युत्य शप् त—अतो गुणे।

(5) सुष्वापयिषति
स्वप् णिच् → स्वापि सन्—अत उपधायाः,
स्वापि इट् स—आर्धधातुकस्येड्वलादेः,
स्वप् स्वापि इष—द्वित्व ('णौ कृतं स्थानिवद् भवति—पा०सू० 1.1.57. वा० से अद्विर्वचननिमित्तक 'णि' के 'इ' के परे रहते भी रूपातिदेश होकर 'स्वप् स्वापि' इस प्रकार द्वित्व होता है)—
सु अप् स्वापि इष—सम्प्रसारण, सम्प्रसारणाच्च,
सुष्वापि इष शप् तिप्—षत्व, गुण, अय् आदेश, अतो गुणे।

स्वापि०—'स्वापि' के द्वारा णिच् प्रत्ययान्त का ग्रहण होता है। उसके अभ्यास के निमित्त प्रत्यय के आनन्तर्य होने पर भी सम्प्रसारण होता है। निम्नलिखित में सम्प्रसारण नहीं होता है—

(6) स्वापकीयति
स्वप् णिच् → स्वापि—धातुसंज्ञा,
स्वापि ण्वुल्—चुटू, हलन्त्यम्, युवोरनाकौ,
स्वापक—'णेरनिटि' से णिलोप,
स्वापक क्यच्—'सुप आत्मनः क्यच्' से 'क्यच्',
स्वापकीय अ ति—धातुसंज्ञा, शप्, अतो गुणे,

(7) सिष्वापकीयिषति
स्वापकीय सन्—आर्धधातुकस्येड्वलादेः,
स्वापकीय इ स—'सन्यङोः' से द्वित्व, सम्प्रसारण नहीं हुआ।
सा स्वापकीय् इष—षत्व, हलादिः शेषः, ह्रस्वः,
सिष्वापकीयिष—सन्यतः, षत्व, धातुसंज्ञा,
सिष्वापकीयिष शप् तिप्—अतो गुणे।

(3585) व्यथो लिटि *68* (2353)

व्यथेर्लिटि परतोऽभ्यासस्य सम्प्रसारणं भवति। विव्यथे, विव्यथाते, विव्यथिरे। हलादिशेषेण यकारस्य निवृत्तौ प्राप्तायां सम्प्रसारणं क्रियते, यकारस्य 'न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणम्' (6.1.37) इति प्रतिषिध्यते। लिटीति किम्? वाव्यथ्यते।

अर्थ—व्यथ् अङ्ग के अभ्यास को सम्प्रसारण होता है, लिट् परे रहते।

उदा० (1) विव्यथे
व्यथ् त—लिट्; लिटस्तझ०,
विव्यथ् एश्—द्वित्व, सम्प्रसारण।
(2) विव्यथाते
व्यथ् आताम्—लिट्, शेष पूर्ववत्।
(3) विव्यथिरे
व्यथ् झ—लिट्, लिटस्तझयोरे०,
व्यथ् व्यथ् इरेच्—द्वित्व,
विथ् व्यथ् इरे—सम्प्रसारण,
वि व्यथ् इरे—हलादिः शेषः।

हलादिः—'हलादिः शेषः' से हलादि शेष करने पर यकार का सम्प्रसारण होता है। 'न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणम्' से वकार के सम्प्रसारण का निषेध होता है।

लिटी०—लिट् परे रहते व्यथ् के अभ्यास को सम्प्रसारण होता है।

(2) वाव्यथ्यते
व्यथ् यङ्—सन्यङोः,
व व्यथ् य—हलादिः शेषः, लिट् परे नहीं होने से सम्प्रसारण नहीं हुआ,
वा व्यथ्य—अभ्यास को दीर्घ, धातुसंज्ञा,
वा व्यथ्य शप् त—अतो गुणे।

(3586) दीर्घ इणः किति *69* (2456)

इणोऽङ्गस्य योऽभ्यासस्तस्य दीर्घो भवति किति लिटि परतः। ईयतुः। ईयुः। 'इणो यण्' (6.4.81) इति यणादेशे कृते स्थानिवद्भावाद् (6.4.81) द्विर्वचनम्। कितीति किम्? इयाय। इयथिथ।

अर्थ—इण् अङ्ग का जो अभ्यास, उसके स्थान पर दीर्घ आदेश होता है, कित् लिट् के परे रहते।

उदा० (1) ईयतुः
इण् अतुस्—'असंयोगाल्लिट् कित्' से किद्वत्,
इ इ अतुस्—द्वित्व, आर्धधातुक गुण का निषेध,
ई इ अतुस्—अभ्यास को दीर्घ,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ई य् अतुस्—'अकः सवर्णे दीर्घः' से 'ई इ' इस स्थल पर सवर्णदीर्घ की प्राप्ति, परन्तु 'वार्णाद् आङ्गं बलीयः' परिभाषा से सवर्णदीर्घ का बाध होकर 'इणो यण्' से यणादेश।

(2) ईयुः
इ उस्—द्वित्वादि पूर्ववत्,
ई इ उस्—अभ्यास को दीर्घ, 'इणो यण्' यणादेश,
ई य् उस्—पूर्ववत्।

इणो०—'इणो यण्' से यण् करने पर स्थानिवद्भाव से द्विर्वचन होता है।[1]

कितीति०—कित् लिट् परे रहते अभ्यास को दीर्घ होता है।

(3) इयाय
इ णल्—लिट्, परस्मैपदानां णलतुसुस्०,
इ इ अ—अचो ञ्णिति,
इ आय् अ—एचोऽयवायावः,
इय् आय् अ—लिट् कित् नहीं है। अतः दीर्घ नहीं हुआ।

(4) इयथिथ
इ थल्—सिप्, परस्मैपदानां णलतुसु०,
इ इट् थ—इट् हुआ,
इ इ इ थ—द्वित्व, अभ्यास को दीर्घ नहीं हुआ,
इ ए इ थ—अङ्ग को गुण,
इय् अय् इ थ—एचोऽयवायावः, इयङ् आदेश।

(3587) अत आदेः *70* (2248)

अभ्याससस्यादेरकारस्य दीर्घो भवति लिटि परतः। 'अतो गुणे' (6.1.97) पररूपत्वस्यापवादः। आट, आटतुः आटुः। आदेरिति किम्? पपाच। पपाठ।

अर्थ—अङ्ग के अभ्यास के आदि में जो ह्रस्व अकार, उसे दीर्घादेश होता है, लिट् प्रत्यय के परे रहते।

यह 'अतो गुणे से प्राप्त पररूप का अपवाद है।

उदा० (1) आट
अट् णल्—लिट्,
अ अट् अ—द्वित्व, हलादिः शेषः,
आ अट् अ—अभ्यास को दीर्घ, सवर्णदीर्घ।

(2) आटतुः
अट् अतुस्—सभी कार्य पूर्ववत्।

(3) आटुः
अट् उस्—पूर्ववत्।

आदेरि०—अभ्यास का आदि जो ह्रस्व अकार, उसे दीर्घ होता है।

(4) पपाच
पच् णल्—द्वित्व,
प पच् अ—हलादिः शेषः,
प पाच् अ—'अत उपधायाः' से उपधावृद्धि, अभ्यास में अकार है, परन्तु आदि में नहीं है, अतः दीर्घ नहीं हुआ।

(5) पपाठ
पठ् णल्—'पपाच' की तरह।

विशेष—लिटि का अनुवर्त्तन होने से 'अरर्त्ति' में दीर्घ नहीं होता है। यथा—
ऋ यङ्—सन्यङोः,
अर् अर् य—यङ्लुक्, दीर्घ नहीं हुआ,
अर् अर् ति—धातु संज्ञा, लट्,
अरर् त् ति—अचो रहाभ्यां०।

(3588) तस्मान्नुड् द्विहलः *71* (2288)

तस्मादतोऽभ्यासाद्दीर्घीभूतादुत्तरस्य द्विहलोऽङ्गस्य नुडागमो भवति। आनङ्ग, आनङ्गतुः, आनङ्गुः। आनञ्ज, आनञ्जतुः, आनञ्जुः। द्विहल इति किम्? आट, आटतुः, आटुः। ऋकारैकदेशो रेफो हल्ग्रहणेन गृह्यते। तेनेहापि द्विहलोऽङ्गस्य नुडागमो भवति–आनृधतुः, आनृधुः।

अर्थ—दीर्घीभूत अभ्यास के आकार से उत्तर दो हल् वाले अङ्ग को 'नुट्' आगम होता है, लिट् प्रत्यय के परे रहते।

उदा० (1) आनङ्ग
अगि → अङ्ग् अ—इदितो नुम् धातोः, अनुस्वार, परसवर्ण, णल्,
अ अङ्ग् अ—अनुबन्धलोप, द्वित्व, हलादि शेष,
आ अङ्ग् अ—'अत आदेः' से दीर्घ,
आ न् अङ्ग—नुट्, अनुबन्धलोप।

(2) आनङ्गतुः
अङ्ग् अतुस्—पूर्ववत्।

(3) आनङ्गुः

1. इ अतुस् → य् अतुस् → इ य् अतुस् → ई य् अतुस्—यह प्रक्रिया महाभाष्यानुसारी है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अञ्ज् उस्—पूर्ववत्।

(4) आनञ्ज

अञ्ज् णल्—पूर्ववत् नुट्।

(5) आनञ्जतुः

अञ्ज् अतुस्—पूर्ववत् नुट्।

(6) आनञ्जुः

पूर्ववत् नुट्।

द्विहल०—दो हल् वाले अङ्ग को 'नुट्' आगम होता है।

(7) आट

अट् णल्—द्वित्व,

अ अट् अ—हलादिः शेषः,

आ अट् अ—'अत आदेः' से दीर्घ, दो हल् न होने से नुट् आगम नहीं हुआ,

आट् अ—सवर्णदीर्घ।

(8) आटतुः

आ अट् अतुस्—सभी कार्य पूर्ववत्,

आट् अतुस्—नुट् नहीं हुआ।

(9) आटुः (पूर्ववत्)।

ऋकारै०—ऋकार के एकदेश रेफ का हल् के द्वारा ग्रहण होता है। अतः निम्नलिखित स्थल पर द्विहल् को नुट् होता है—

(10) आनृधतुः

ऋध् अतुस्—द्वित्व,

ऋ ऋध्—द्वित्व, हलादिः शेषः,

अ ऋध्—उरत्, हलादि शेष, अत आदेः,

आ न् ऋध् अतुस्—नुट्, अङ्ग को लघूपधगुण का निषेध।

(11) आनृधुः

ऋध् उस्—पूर्ववत् 'नुट्' हुआ।

(3589) अश्नोतेश्च *72* (2533)

अश्नोतेश्च दीर्घीभूतादभ्यासादुत्तरस्य नुडागमो भवति। व्यानशे, व्यानशाते, व्यानशिरे। 'अश्नोतेः' इति विकरण-निर्देशो अश्नोतेर्मा भूदिति–आश, आशतुः, आशुः।

अर्थ—दीर्घीभूत अभ्यास के आकार से उत्तर अश् अङ्ग को 'नुट्' आगम होता है।

उदा० (1) व्यानशे

अश् त—लिटस्तझयोरे०,

अ अश् ए—द्वित्व, हलादिः शेषः,

वि आ न् अश् ए—अत आदेः, नुट्।

(2) व्यानशाते

अश् आताम्—पूर्ववत् नुट्।

(3) व्यानशिरे

वि अश् झ—'इरेच्' आदेश,

अश्नोते०—'अश्नोति' इस प्रकार 'श्नु' विकरण का निर्देश होने से यहाँ अश् के द्वारा स्वादिगणी 'अश्' का ग्रहण होता है; क्र्यादिगणी 'अश्' का नहीं।

(4) आश

अश् णल्—लिट्

अ अश् अ—हलादिः शेषः,

आ अश् अ—अतः आदेः, क्र्यादिगणी होने से नुट् नहीं होता है।

(5) आशतुः

अश् अतुस्—पूर्ववत् 'नुट्' की अप्राप्ति।

(6) आशुः (पूर्ववत्)।

(3590) भवतेरः *73* (2181)

भवतेरभ्यासस्याकारादेशो भवति लिटि परतः। बभूव बभूवतुः, बभूवुः। 'भवतेः' इति धातुनिर्देशादिहापि भवति–अनुबभूवे कम्बलो देवदत्तेन। 'लिटि' इत्येव–बुभूषति। बोभूयते।

अर्थ—भू अङ्ग के अभ्यास को अकार आदेश होता है, लिट् प्रत्यय परे रहते।

उदा० (1) बभूव

भू णल्—लिट्, तिप्, णल्,

भूव् अ—अनुबन्धलोप, वुक्,

भु भूव् अ—द्वित्व, हलादिः शेषः, ह्रस्वः,

बभूव—भवतेरः, अभ्यासे चर्च।

(2) बभूवतुः

भू अतुस्—लिट्, भुवो वुग् लुङ्० से 'वुक्',

भूव् भूव् अतुस्—द्वित्व, हलादिः शेषः,

भु भूव् अतुस्—ह्रस्वः, भवतेरः, अभ्यासे चर्च,

बभूव अतुस्—'असिद्धवदत्राभात्' से 'वुक्' असिद्ध, 'अचि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्नुधातु०' से उवङ् प्राप्त, 'वुग्युटावुवङ्यणोः सिद्धौ भवतः (6.4.22 वा०) से 'वुक्' सिद्ध, उवङ् की निवृत्ति।

(3) बभूवुः
भू उस्—'झि' को 'उस्' आदेश,
भु भूव् उस्—पूर्ववत् वुक्, द्वित्व, हलादि शेष, ह्रस्वः, अकार,
ब भू व् उस्—अभ्यासे चर्च।

(4) बभूवे
भू त—कर्मवाच्य,
भू भूव् ए—लिटस्तझयो०, वुक्, द्वित्व, ह्रस्वः, भवतेरः,
बभूव् ए—अभ्यासे चर्च।

भवते०—'भवतेः' इस प्रकार कर्तृ का निर्देश होने से निम्नलिखित में अकार होता है—

(5) अनुबभूवे कम्बलो देवदत्तेन। यङ्लुक् का उदाहरण है।

लिटी०—लिट् प्रत्यय परे रहते ही अभ्यास को अकार आदेश होता है।

(6) बुभूषति
भू सन्—इट् का निषेध, 'इको झल्' से सन् कित्, आर्धधातुक गुण प्राप्त, निषेध,
भू भू स—सन्यङोः,
भु भूष—षत्व, ह्रस्वः, लिट् परे न रहने से अभ्यास को अकार नहीं होता है,
बुभूष शप् तिप्—अभ्यासे चर्च, अतो गुणे।

(7) बोभूयते
भू यङ्—सार्वधातुकार्धधातु० से प्राप्त गुण का निषेध,
भु भूय—'सन्यङोः' से द्वित्व, ह्रस्व, लिट् परे न होने से अकार आदेश नहीं हुआ।
बुभूय—अभ्यासे चर्च,
बोभूय—गुणो यङ्लुकोः, धातुसंज्ञा,
बोभूय शप् त—अतो गुणे।

लिट् की रूपमाला

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०पु०	बभूव	बभूवतुः	बभूवुः
म०पु०	बभूविथ	बभूवथुः	बभूव
उ०पु०	बभूव	बभूविव	बभूविम

विशेष—'भवतेः' में 'भू' अनुकरणपरक शब्द है; फलतः 'अस्तेर्भूः' से विहित 'भू' चौरादिक 'भू' और कृञ्चाऽनुप्र० से अनुप्रयुक्त 'भू'—इन सभी में यह सूत्र प्रवृत्त होता है।

(3591) ससूवेति निगमे *74* (3597)

'ससूव' इति निपात्यते। सूतेर्लिटि परस्मैपदं वुगागमः, अभ्यासस्य चात्वं निपात्यते। ससूव स्थविरं विपश्चिताम् (ऋ० 4.18.10) सुषुवे इति भाषायाम्।

अर्थ—वेद में 'ससूव' शब्द निपातनसिद्ध है।

उदा० (1) ससूव
षू → सू ति—धात्वादेः षः सः, लिट्,
सू वुक् णल्—निपातन से 'वुक्' आगम,
सूव् सूव् अ—द्वित्व,
ससूव् अ—हलादिः शेषः, अभ्यास को निपातन से अकार।

(2) सुषुवे
लोक में रूप बनता है।
सू त—ए, द्वित्व,
सू सू ए—अङ्ग को उवङ् आदेश, ह्रस्वः।

(3592) णिजां त्रयाणां गुणः श्लौ *75* (2502)

णिजादीनां त्रयाणामभ्यासस्य गुणो भवति श्लौ सति। णिजिर्–नेनेक्ति। विजिर्–वेवेक्ति। विष्ल्–वेवेष्टि। त्रिग्रहणमुत्तरार्थम्। एषां हि वृत्करणं समाप्त्यर्थं पठ्यत एवेति। श्लाविति किम्? निनेज।

अर्थ—णिजिर् आदि तीन धातुओं के अभ्यास के स्थान पर गुण होता है, श्लु परे रहते। 'इको गुणवृद्धी' के द्वारा इक् के स्थान पर गुण आदेश होता है। लट्, लोट्, लङ् तथा विधिलिङ्—इन लकारों में शप् विकरण होता है। शप् के स्थान पर श्लु होता है।

उदा० (1) नेनेक्ति
णिजिर् → निज्—णो नः, इर इत्संज्ञा वाच्या,
निज् निज् ति—लट्, शप्, श्लु, द्वित्व,
नि निज् ति—हलादिः शेषः,
ने निज् ति—अभ्यास को गुण,
ने नेज् ति—पुगन्तलघूपधस्य च,
नेनेक् ति—चोः कुः।

(2) वेवेक्ति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विजिर् → विज् ति—'इर्' की इत्संज्ञा,
विज् विज् ति—शप्, श्लु, पूर्ववत्।

(3) वेवेष्टि
विश् ति—शप्, श्लु,
विविश् ति—द्वित्व, हलादिः शेषः,
वे वेश् ति—अभ्यास को गुण, पुगन्तलघूपधस्य च,
वे वेष् टि—षकार, ष्टुना ष्टुः।

पाठकों के अभ्यास के लिए उपर्युक्त चारो लकारों में निज् धातु की सम्पूर्ण रूपमाला नीचे दिखाई जा रही है। इसी प्रकार विज् तथा विश् धातुओं के विषय में भी जानना चाहिए।

णिजिर् धातु

परस्मैपद

लट् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०पु०	नेनेक्ति	नेनिक्तः	नेनिजति
म०पु०	नेनेक्षि	नेनिक्थः	नेनिक्थ
उ०पु०	नेनेज्मि	नेनिज्वः	नेनिज्मः

लोट् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०पु०	नेनेक्तु-नेनिक्तात्	नेनिक्ताम्	नेनिजतु
म०पु०	नेनिग्धि-नेनिक्तात्	नेनिक्तम्	नेनिक्त
उ०पु०	नेनिजानि	नेनिजाव	नेनिजाम

लङ् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०पु०	अनेनेक्-अनेनेग्	अनेनिक्ताम्	अनेनिजुः
म०पु०	अनेनेक्-अनेनेग्	अनेनिक्तम्	अनेनिक्त
उ०पु०	अनेनिजम्	अनेनिज्व	अनेनिज्म

विधिलिङ् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०पु०	नैनिज्यात्	नेनिज्याताम्	नेनिज्युः
म०पु०	नेनिज्याः	नेनिज्यातम्	नेनिज्यात
उ०पु०	नेनिज्याम्	नेनिज्याव	नेनिज्याम

आत्मनेपद

लट् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०पु०	नेनिक्ते	नेनिजाते	नेनिजते
म०पु०	नेनिक्षे	नेनिजाथे	नेनिग्ध्वे
उ०पु०	नेनिजे	नेनिज्वहे	नेनिज्महे

लोट् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०पु०	नेनिक्ताम्	नेनिजाताम्	नेनिजताम्
म०पु०	नेनिक्ष्व	नेनिजाथाम्	नेनिग्ध्वम्
उ०पु०	नेनिजै	नेनिजावहै	नेनिजामहै

लङ् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०पु०	अनेनिक्त	अनेनिजाताम्	अनेनिजत
म०पु०	अनेनिक्थाः	अनेनिजाथाम्	अनेनिग्ध्वम्
उ०पु०	अनेनिजि	अनेनिज्वहि	अनेनिज्महि

विधिलिङ् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०पु०	नेनिजीत	नेनिजीयाताम्	नेनिजीरन्
म०पु०	नेनिजीथाः	नेनीजीयाथाम्	नेनिजध्वम्
उ०पु०	नेनिजीय	नेनिजीवहि	नेनिजीमहि

त्रिग्रहण०—'त्रि' का ग्रहण उत्तर शास्त्र के लिए है। निज् आदि में वृत्करण समाप्ति अर्थ में पठित है।

श्लावि०—श्लु में ही अभ्यास को गुण होता है।

(4) निनेज
निज् णल्—लिट्, णल् आदेश,
नि निज् अ—द्वित्व, हलादिः शेषः,
नि नेज् अ—'पुगन्तलघूपधस्य च' से लघूपधगुण, श्लु परे न रहने से अभ्यास को गुण नहीं हुआ।

(3593) भृञामित् *76* (2496)

भृञादीनां त्रयाणामभ्यासस्येकारादेशो भवति श्लौ सति। भृञ्-बिभर्ति। माङ्-मिमीते। ओहाङ्-जिहीते। 'त्रयाणाम्' इत्येव-जहाति। 'श्लौ' इत्येव-बभार।

अर्थ—भृञ् आदि तीन धातुओं के अभ्यास को ह्रस्व इकार आदेश होता है, श्लु परे रहते।

अलोऽन्त्य परिभाषा से इकार आदेश अन्त्य अल् के स्थान पर होता है।

उदा० (1) बिभर्ति
भृ शप् ति—लट्, श्लु,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भृ भृ ति—द्वित्व,
भर् भृ ति—उरत्, उरण् रपरः,
ब भृ ति—हलादिः शेषः, अभ्यासे चर्च,
बि भर् ति—अभ्यास को इकार, अङ्ग को गुण, अचो रहाभ्यां द्वे।

(2) मिमीते
मा त—शप्, श्लु,
मा मा त—द्वित्व,
म मा त—ह्रस्वः,
मि मा त—अभ्यास को इकार,
मि मी त—ई हल्यघोः, एत्व।

(3) जिहीते
हा त—शप्, श्लु,
ह हा त—द्वित्व, ह्रस्वः,
ज हा त—कुहोश्चुः अभ्यासे चर्च,
जि ही त—अभ्यास को इकार, ई हल्यघोः,
जि ही ते—टित आत्मनेपदानां०।

त्रयाणा०—तीन धातुओं के अभ्यास को ही इकार होता है।

(4) जहाति
हा ति—शप्, श्लु,
ज हा ति—पूर्ववत्, पूर्वोक्त तीन धातुओं में 'हा' धातु नहीं है, अतः अभ्यास को इकार नहीं हुआ।

श्लौ०—श्लु परे रहते ही अभ्यास को इकार होता है।

(5) बभार
भृ णल्—लिट्, द्वित्व,
भृ भृ अ—उरत्, उरण् रपरः, हलादिः शेषः,
ब भृ अ—अभ्यासे चर्च, श्लु परे न रहने से अभ्यास को इकार नहीं हुआ,
ब भार् अ—अचो ञ्णिति।

सूत्रोक्त तीनों धातुओं की सम्पूर्ण रूपमाला लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ्—इन चार लकारों में पाठकों की सुविधा के लिए नीचे दिखाई जा रही है—

भृञ्
परस्मैपद
लट् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०पु०	बिभर्ति	बिभृतः	बिभ्रति
म०पु०	बिभर्षि	बिभृथः	बिभृथ
उ०पु०	बिभर्मि	बिभृवः	बिभृमः

लोट् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०पु०	बिभर्तु-बिभृतात्	बिभृताम्	बिभ्रतु
म०पु०	बिभृहि-बिभृतात्	बिभृतम्	बिभृत
उ०पु०	बिभराणि	बिभराव	बिभराम

लङ् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०पु०	अबिभः	अबिभृताम्	अबिभरुः
म०पु०	अबिभः	अबिभृतम्	अबिभृत
उ०पु०	अबिभरम्	अबिभृव	अबिभृम

विधिलिङ् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०पु०	बिभृयात्	बिभृयाताम्	बिभृयुः
म०पु०	बिभृयाः	बिभृयातम्	बिभृयात
उ०पु०	बिभृयाम्	बिभृयाव	विभृयाम

आत्मनेपद
लट् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०पु०	बिभृते	बिभ्राते	बिभ्रते
म०पु०	बिभृषे	बिभ्राथे	बिभृध्वे
उ०पु०	बिभ्रे	बिभृवहे	बिभृमहे

लोट् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०पु०	बिभृताम्	बिभ्राताम्	बिभ्रताम्
म०पु०	बिभृष्व	बिभ्राथाम्	बिभृध्वम्
उ०पु०	बिभरै	बिभरावहै	बिभरामहै

लङ् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०पु०	अबिभृत	अबिभ्राताम्	अबिभ्रत
म०पु०	अबिभृथाः	अबिभ्राथाम्	अबिभृध्वम्
उ०पु०	अबिभ्रि	अबिभृवहि	अबिभृमहि

विधिलिङ् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०पु०	बिभ्रीत	बिभ्रीयाताम्	बिभ्रीरन्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

म०पु०	बिभ्रीथाः	बिभ्रीयाथाम्	बिभ्रीध्वम्
उ०पु०	बिभ्रीय	बिभ्रीवहि	बिभ्रीमहि

माङ्
आत्मनेपद
लट् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०पु०	मिमीते	मिमाते	मिमते
म०पु०	मिमीषे	मिमाथे	मिमीध्वे
उ०पु०	मिमे	मिमीवहे	मिमीमहे

लोट् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०पु०	मिमीताम्	मिमाताम्	मिमताम्
म०पु०	मिमीष्व	मिमाथाम्	मिमीध्वम्
उ०पु०	मिमै	मिमावहै	मिमामहै

लङ् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०पु०	अमिमीत	अमिमाताम्	अमिमत
म०पु०	अमिमीथाः	अमिमाथाम्	अमिमीध्वम्
उ०पु०	अमिमि	अमिमीवहि	अमिमीमहि

विधिलिङ् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०पु०	मिमीत	मिमीयाताम्	मिमीरन्
म०पु०	मिमीथाः	मिमीयाथाम्	मिमीध्वम्
उ०पु०	मिमीय	मिमीवहि	मिमीमहि

ओहाङ्
आत्मनेपद
लट् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०पु०	जिहीते	जिहाते	जिहते
म०पु०	जिहीषे	जिहाथे	जिहीध्वे
उ०पु०	जिहे	जिहीवहे	जिहीमहे

लोट् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०पु०	जिहीताम्	जिहाताम्	जिहताम्
म०पु०	जिहीष्व	जिहाथाम्	जिहीध्वम्
उ०पु०	जिहै	जिहावहै	जिहामहै

लङ् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०पु०	अजिहीत	अजिहाताम्	अजिहत
म०पु०	अजिहीथाः	अजिहाथाम्	अजिहीध्वम्
उ०पु०	अजिहि	अजिहीवहि	अजिहीमहि

विधिलिङ् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०पु०	जिहीत	जिहीयाताम्	जिहीरन्
म०पु०	जिहीथाः	जिहीयाथाम्	जिहीध्वम्
उ०पु०	जिहीय	जिहीवहि	जिहीमहि

(3594) अर्तिपिपर्त्योश्च *77* (2493)

अर्ति, पिपर्ति-इत्येतयोरभ्यासस्येकारादेशो भवति श्लौ। इयर्ति धूमम्। पिपर्ति सोमम्।

अर्थ—ऋ तथा पॄ अङ्गों के अभ्यास को इकार आदेश होता है, श्लु परे रहते। इकार आदेश अलोऽन्त्य परिभाषा से अन्त्य अल् को होता है।

उदा० (1) इयर्त्ति
ऋ ति—शप्, श्लु,
ऋ ऋ ति—द्वित्व,
इर् ऋ ति—'उरत्' को बाध कर इकार आदेश, उरण् रपरः,
इ ऋ ति—हलादिः शेषः,
इ अर् ति—सार्वधातुकार्धधातु० से गुण,
इय् अर् ति—इयङ् आदेश, अचो रहाभ्यां द्वे।

(2) पिपर्त्ति
पॄ ति—शप् श्लु,
पॄ पॄ ति—ऋत इद्धातोः को बाध कर द्वित्व,
पिर् पॄ ति—अभ्यास को इकार, उरण् रपरः,
पि पॄ ति—हलादिः शेषः,
पि पर् ति—सार्वधातुकार्धधा०, अचो रहाभ्यां द्वे।

न्यास के अनुसार परकार्य होने से प्रथम गुण होता है; पश्चात् द्वित्व होता है।[1] यथा—

पॄ ति → पर् ति → पर् पर् ति → प पर् ति → पि पर् ति।

1. न्यास० 7.4.77

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(3595) बहुलं छन्दसि *78* (3598)

छन्दसि विषयेऽभ्यासस्य श्लौ बहुलमिकारादेशो भवति। पूर्णां विवष्टि (ऋ० 7.16.11)-वशेरेतद्रूपम्। तथा वचेः-'जनिमा विवक्ति' (ऋ० 1.97.9)। सचेः-वत्सं न माता सिषक्ति (ऋ० 1.38.8)। जिघर्ति सोमम्। न च भवति-ददातीत्येवं ब्रूयात्। जजनमिन्द्रं (मै० 1.9.1) माता यद्वीरं दधनन्थनिष्टा (ऋ० 10.73.1)।

अर्थ—श्लु परे रहते अभ्यास को बहुलता से इकार आदेश होता है, वेद के विषय में।

उदा० (1) विवष्टि (ऋ० 7.16.11)
वश् ति—शप्, श्लु,
व वश् ति—द्वित्व, हलादिः शेषः,
वि वश् ति—अभ्यास को इकार,
वि वष् टि—व्रश्चभ्रस्ज० षकार, ष्टुत्व।

(2) विवक्ति (ऋ० 9.97.7)
वच् ति—शप्, श्लु,
व वच् ति—द्वित्व, हलादिः शेषः,
वि वक् ति—अभ्यास को इकार, चोः कुः।

(3) सिषक्ति (ऋ० 1.38.8)
षच् → सच् ति—धात्वादेः षः सः, शप्, श्लु,
स सच् ति—द्वित्व, हलादिः शेषः,
सिसक् ति—अभ्यास को इकार, चोः कुः।

(4) जिघर्त्ति
घृ ति—पूर्ववत् श्लु, द्वित्व, उरत्, हलादिः शेषः,
ज घृ ति—कुहोश्चुः, अभ्यासे चर्च,
जिघर् ति—इकार, गुण।

(5) ददाति
दा ति—शप्, श्लु,
द दा ति—ह्रस्वः, 'बहुलम्' ग्रहण से इकार नहीं हुआ।

(6) जजनम् (मै०सं० 1.9.1)
जन् मि—लुङ् अम् आदेश, शप्, श्लु,
जजन् अम्—इकार नहीं हुआ, 'बहुलं छन्दस्यमाङ्०' से अट् को अभाव।

(7) दधनम् (ऋ० 10.73.1)
धन् अम्—सभी कार्य 'जजनम्' की तरह, 'अभ्यासे चर्च' से दकार।

(3596) सन्यतः *79* (2317)

सनि परतोऽकारान्ताभ्यासस्येकारादेशो भवति। पिपक्षति। यियक्षति। तिष्ठासति। पिपासति। सनीति किम्। पपाच। अत इति किम्? लुलूषति। तपरकरणं किम्? पापचिषते।

अर्थ—अकारान्त अभ्यास के स्थान पर इकार आदेश होता है, सन् परे रहते।

उदा० (1) पिपक्षति
पच् सन्—इट् का निषेध,
पपच् स—द्वित्व, हलादिः शेषः, चोः कुः,
पिपक् स—अभ्यास को इकार, षत्व, धातुसंज्ञा,
पिपक्ष शप् तिप्—अतो गुणे।

(2) यियक्षति
यज् सन्—पूर्ववत् इट् निषेध, द्वित्व,
य यज् स—हलादिः शेषः, व्रश्चभ्रस्ज० से षकार,
य यष् स—'षढोः कः सि' से ककार, षत्व,
यियक् ष—अभ्यास को इकार, धातुसंज्ञा,
यियक्ष शप् ति—अतो गुणे।

(3) तिष्ठासति
ष्ठा → स्था—धात्वादेः षः सः, निमित्त के हट जाने पर नैमित्तिक की निवृत्ति,
स्था स्था सन्—सन्, इट् का निषेध, द्वित्व,
त स्था स—ह्रस्वः, शर्पूर्वाः खयः,
तिष्ठा स—इकार, षत्व, ष्टुत्व, धातुसंज्ञा, लकारकार्य।

(4) पिपासति
प पा सन्—इट् निषेध, द्वित्व, ह्रस्वः,
पिपास अ ति—इकार, अतो गुणे।

सनीति०—सन् परे रहते ही अभ्यास को इकार होता है।

(5) पपाच
पच् णल्—लिट्, द्वित्व,
प पच् अ—हलादिः शेषः, अभ्यास में अकार है, परन्तु सन् परे न रहने के कारण इकार नहीं होता है,
प पाच् अ—अत उपधायाः।

अत०—ह्रस्व अकार के स्थान पर इकार होता है।

(6) लुलूषति
लू सन्—इट् निषेध, द्वित्व,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लुलूष—ह्रस्वः, सन् परे है परन्तु अभ्यास में ह्रस्व अकार नहीं है, इकार नहीं हुआ, षत्व,

लुलूष शप् ति—अतो गुणे।

तपर०—ह्रस्व अकार के स्थान पर ही इकार होता है।

(7) पापचिषते

पच् यङ्—द्वित्व, सन्यङोः, हलादिः शेषः,

पा पच् य—अभ्यास को दीर्घ, धातुसंज्ञा,

पापच्य इट् सन्—सन्, आर्धधातुकस्येड् वलादेः,

पापच् य् इ स—अकारलोप, मकारलोप, सन् परे है, अभ्यास में अवर्ण तो है, परन्तु ह्रस्व अकार नहीं है, अतः इकार आदेश नहीं होता है, षत्व,

पापचिष शप् त—धातुसंज्ञा, अतो गुणे।

(3597) ओः पुयण्ज्यपरे *80* (2577)

'सनि' इति वर्तते, 'इत्' इति च। उवर्णान्ताभ्यासस्य पवर्गे यणि जकारे चावर्णपरे परत इकारादेशो भवति सनि प्रत्यये परतः। पवर्गेऽपरे-पिपविषते, पिपावयिषति। बिभावयिषति। यण्यपरे-यियविषति। यियावयिषति। रिरावयिषति। लिलावयिषति। ज्यपरे-'जु' इति सौत्रोऽयं धातुः, जिजावयिषति। एतदेव 'पुयण्ज्यपरे' इति वचनं ज्ञापकम्-अद्विर्वचननिमित्तेऽपि णौ स्थानिवद्भवतीति। ओरिति किम्? पापच्यते। सन्-पापचिषते। पुयण् जीति किम्। अवनुनावयिषति। जुहावयिषति। अपर इति किम्? बुभूषति।

अर्थ—सनि तथा इत्—इनका अनुवर्त्तन है। सन् परे रहते अङ्ग का जो अवयव अभ्यास, उसमें जो उकार, उसके स्थान पर इकार आदेश होता है; यदि पवर्ग, यण् तथा जकार परे हों तथा इन वर्णों से परे अकार हो।

'अपरे' पद 'पुयण्ज्' का विशेषण है।

उदा० (क) पवर्गपरे—

(1) पिपविषते

पू सन्—'स्मिपूङ्र०' से इट्,

पू इट् स—सार्वधातुकार्धधातु० से गुण, एचोऽयवायावः से 'अव्',

पविष—षत्व, 'सन्यङोः' से द्वित्व,

पू पविष—'द्विर्वचनेऽचि' से रूपातिदेश,

पु पविष—ह्रस्वः, 'पु' अभ्यास है, इसमें उकार है, इससे पर पवर्ग (पकार) है, पवर्ग से अकार है, अङ्ग से पर सन् रहते अभ्यास के उकार के स्थान पर इकार,

पिपविष शप् ति—अतो गुणे।

(2) बिभावयिषति

भू णिच् → भावि—अचो ञ्णिति, एचोऽयवायावः, सनाद्यन्ता धातवः,

भावि इट् सन्—आर्धधातुकस्येड् वलादेः,

भू भावि इ स—द्वित्व, द्विर्वचनेऽचि से रूपातिदेश,

बु भावि इ स—ह्रस्वः, अभ्यासे चर्च,

बि भावय् इ ष—अभ्यास के उकार के स्थान पर इकार, सार्वधातुकार्धधातु० से गुण, अय्, षत्व,

बिभावयिष शप् तिप्—अतो गुणे।

(ख) यण्परे—

(3) यियविषति

यु सन्—इट्, सार्वधातुकार्धधातु० से गुण,

यविष—अव्, षत्व,

यु यविष—द्वित्व, रूपातिदेश,

यियविष—उकार के स्थान पर इकार, धातुसंज्ञा,

यियविष शप् तिप्—अतो गुणे।

(4) यियावयिषति

यु णिच् → यावि—धातुसंज्ञा,

यावि इट् सन्—आर्धधातुकस्येड् वलादेः,

यावयिष—सार्वधातुकार्धधा० से गुण, अय्, षत्व,

यु यावयिष—द्वित्व, रूपातिदेश, इकार,

यियावयिष शप् ति—धातुसंज्ञा, अतो गुणे।

(5) रिरावयिषति

रु णिच् → रावि सन्—पूर्ववत् सभी कार्य।

(6) लिलावयिषति

लू णिच् → लावि सन्—पूर्ववत्।

(ग) जपरे—

(7) जिजावयिषति

जु णिच्—यह सौत्र धातु है, अचो ञ्णिति, आव्,

जावि सन्—धातुसंज्ञा, सन्, इट्,

जावयिष—गुण, अय्, षत्व, द्वित्व,

जु जावयिष—'द्विर्वचनेऽचि' से रूपातिदेश, अभ्यास में उकार है, इससे पर जकार है, इससे पर अवर्ण है, अङ्ग से पर सन् है, अतः उकार को इकार हुआ,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जिजावयिष अ ति—धातुसंज्ञा, अतो गुणे।

एतदेव०—'पुयण्ज्यपरे' यह वचन ज्ञापक है कि द्विर्वचन का निमित्त न होने पर भी णि परे रहते स्थानिवद्भाव होता है। इसका सार इस प्रकार है।

(शङ्का) 'भू णिच्' — इस दशा में अन्तरङ्ग होने से वृद्धि आदेश तथा आव् आदेश होकर 'भावि' बनता है। तब सन् में इट् होकर 'भावयिष' होता है। णि द्विर्वचन का निमित्त नहीं है। अतः इसके परे रहते वृद्धि आदेश का स्थानिवद्भाव प्राप्त नहीं है। अब अकारान्त का द्विर्वचन होगा, वकारान्त का नहीं। इसके परिणामस्वरूप अभ्यास में उवर्णान्तता के प्राप्त न होने से इकार आदेश नहीं हो सकेगा।

(समा०) यदि णि को निमित्त मान कर प्राप्त वृद्धि आदेश को स्थानिवद्भाव नहीं मानेंगे तो अवर्णपरक पु, यण् तथा जकार सम्भव ही नहीं है। तब प्रकृत सूत्र में 'पुयण् ज्यपरे' पाठ व्यर्थ हो कर ज्ञापित करता है कि भले ही 'णि' प्रत्यय द्विर्वचन का निमित्त न हो, तदपि उस 'णि' के परे रहते प्राप्त वृद्धि आदेश आदि स्थानिवत् होता है। स्थानिवद्भाव होने पर अभ्यास में 'भू' इस प्रकार रहता है। इसके उकार के स्थान पर इकार हो जाता है।

ओरिति०—अभ्यास में जो उकार, उसके स्थान पर इकार होता है।

(8) पापच्यते

यहाँ उकार नहीं होने से इकार नहीं हुआ।

(9) पापचिषते

पच् यङ्—सन्यङोः,

पापच्य सन्—हलादिः शेषः, अभ्यास को दीर्घ, धातुसंज्ञा,

पापच्य् इ स—इट्, अकारलोप,

पापचिष—यकारलोप, षत्व, अभ्यास में उकार नहीं है, इससे पर पकार है, इससे पर अकार भी है। अतः इकार नहीं हुआ,

पापचिष शप् त—अतो गुणे।

पुयण्जीति०—अवर्ण है परे जिसके, ऐसे पवर्ग, यण् वर्ण तथा जकार के परे रहते अभ्यास में जो उकार, उसके स्थान इकार होता है।

(10) अवनुनावयिषति

नु णिच्—अचो ञ्णिति, आव्,

नावि इट् सन्—धातुसंज्ञा, आर्धधातुकस्येड्०,

नु नावयिष—गुण, अय्, षकार, द्वित्व, रूपातिदेश,

अव नुनावयिष शप् तिप्—अभ्यास में उकार है, उससे पर पवर्ग, यण् वर्ण तथा जकार नहीं है, उनसे पर अकार है, अतः उकार के स्थान पर इकार नहीं होता है, अतो गुणे।

(11) जुहावयिषति

हु णिच् → हावि—धातुसंज्ञा,

हावि इट् सन्—गुण, अय्, षत्व,

जु हावयिष—द्वित्व, रूपातिदेश, कुहोश्चुः, अभ्यासे चर्च, यहाँ पूर्ववत् अभ्यास के उकार के स्थान पर इकार नहीं होता है,

जुहावयिष शप् तिप्—अतो गुणे।

अपरे०—अवर्ण है परे जिसके, ऐसे पवर्ग, यण्, जकार के परे रहते अभ्यास के उकार के स्थान पर इकार होता है।

(12) बुभूषति

भू सन्—इट् का निषेध,

बुभूष—सन्यङोः, ह्रस्वः, अभ्यासे चर्च, षत्व, धातुसंज्ञा,

बुभूष शप् तिप्—अभ्यास में उकार है, उससे पर पवर्ग मकार है, परन्तु पवर्ग से पर अवर्ण नहीं है, अतः उकार के स्थान पर इकार नहीं होता है, अतो गुणे।

(3598) स्रवतिशृणोतिद्रवतिप्रवतिप्लवतिच्यवतीनां वा *81* (2578)

स्रवति, शृणोति, द्रवति, प्रवति, प्लवति, च्यवति-इत्येतेषामभ्यासस्य ओरवर्णपरे यणि वा इकारादेशो भवति सनि परतः। सिस्रावयिषति, सुस्रावयिषति। शृणोति-शिश्रावयिषति, शुश्रावयिषति। द्रवति-दिद्रावयिषति, दुद्रावयिषति। प्रवति-पिप्रावयिषति, पुप्रावयिषति। प्लवति-पिप्लावयिषति, पुप्लावयिषति। च्यवति-चिच्यावयिषति, चुच्यावयिषति। वचनसामर्थ्यादेकेन वर्णेन यणो व्यवधानमाश्रीयते। पूर्वसूत्रेण त्वनन्तर एव यणि भवितव्यमित्यप्राप्तविभाषेयम्। 'अपरे' इत्येव-सुस्रूषति। शुश्रूषते।

अर्थ—सन् परे रहते जो सु, श्रु, द्रु, प्रु, प्लु तथा च्यु अङ्ग, उसके अवयव अभ्यास के उकार के स्थान पर इकार आदेश विकल्प होता है, यदि उससे पर अवर्णपरक पवर्ग, यण् वर्ण और जकार हो।

उदा० (1) सिस्रावयिषति

स्रु णिच् → स्रावि—वृद्धि, आव्, धातुसंज्ञा,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्रावि इट् सन्—गुण, अय्, षत्व,

सु स्रावयिष—द्वित्व, रूपातिदेश, अभ्यास में उकार है, उससे पर यण् वर्ण रेफ है, रेफ से पर अवर्ण है, उकार तथा रेफ के मध्य सकार का व्यवधान है, तदपि वचनसामर्थ्य से इकार होता है,

सिस्रावयिषति—शप् आदि।

(2) सुस्रावयिषति
पक्ष में इकार नहीं होता है।

(3) शिश्रावयिषति
श्रु णिच् → श्रावि—पूर्ववत्,
श्रावि इट् सन् → श्रावयिष—पूर्ववत्,
शुश्रावयिष—रूपातिदेश, उकार के स्थान पर इकार,
शिश्रावयिष शप् तिप्—अतो गुणे।

(4) शुश्रावयिषति
पक्ष में इकार नहीं होता है।

(5) दिद्रावयिषति
द्रु णिच् → द्रावि इट् सन्—पूर्ववत्,
दुद्रावयिष—रूपातिदेश, इकार आदेश, धातुसंज्ञा,
दिद्रावयिष शप् तिप्—अतो गुणे।

(6) दुद्रावयिषति
पक्ष में इकार नहीं हुआ।

(7) पिप्रावयिषति
प्रु णिच् → प्रावि इट् सन्—पूर्ववत् सभी कार्य,
पुप्रावयिष—उकार के स्थान पर इकार होता है।

(8) पुप्रावयिषति
पक्ष में इकार नहीं हुआ।

(9) पिप्लावयिषति
प्लु—'पिप्रावयिषति' की तरह।

(10) पुप्लावयिषति
पक्ष में 'पुप्रावयिषति' की तरह।

(11) चिच्यावयिषति
च्यु—पूर्ववत् सभी कार्य। उकार को इकार।

(12) चुच्यावयिषति
पक्ष में इकार नहीं हुआ।

वचन०—वचनसामर्थ्य से यण् का एक वर्ण का व्यवधान होने पर भी इकार आदेश हो जाता है। पूर्व सूत्र के द्वारा अव्यवहित यण् में होना चाहिए—अतः यह अप्राप्त विभाषा है।

अपर०—अवर्ण है परे जिसके, ऐसे यण् वर्ण के परे रहते अभ्यास के उकार के स्थान पर इकार होता है।

(13) सुस्रूषति
स्रु सन्—'अज्झनगमां सनि' से दीर्घ,
सुस्रूष—द्वित्व, हलादिः शेषः, ह्रस्वः, षत्व, अभ्यास में उकार है, उससे पर व्यवधानयुक्त यण् वर्ण रेफ है; परन्तु उससे पर अवर्ण नहीं है, अतः अभ्यास के उकार के स्थान पर इकार नहीं होता है,
सुस्रूष शप् ति—अतो गुणे।

(14) शुश्रूषते
श्रु सन्—सभी कार्य पूर्ववत्।

(3599) गुणो यङ्लुकोः *82* (2630)

यङि, यङ्लुकि च इगन्तस्याभ्यासस्य गुणो भवति। चेचीयते। लोलूयते। यङ्लुकि-जोहवीति। 'यङो वा' (7.3.94) इतीड्विकल्पः। चोक्रुशीति।

अर्थ—यङ् और यङ्लुक् के परे रहते अभ्यास को गुण आदेश होता है। 'इको गुणवृद्धी' से इक् के स्थान पर यह गुण होता है।

(1) चेचीयते
चि यङ्—सन्यङोः
चि चि य—द्वित्व,
चे चीय—अभ्यास को गुण, अकृत् सार्वधातु० से दीर्घ,
चेचीय शप् त—अतो गुणे।

(2) लोलूयते
लू यङ्—द्वित्व,
लु लू य—ह्रस्वः,
लोलूय—पूर्ववत् गुण, धातुसंज्ञा,
लोलूय शप् त—अतो गुणे।

(3) जोहवीति
हु यङ्—यङ् का लुक्,
जु हु—प्रत्ययलक्षण से द्वित्व, कुहोश्चुः, अभ्यासे चर्च,
जो हु ति—अभ्यास को गुण,
जो हो ई ति—गुण, अव्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यङो वा—'यङो वा' से पाक्षिक ईट् होता है। 'सार्वधातुकार्ध-धातुकयोः' से 'उ' का गुण होता है। अव् आदेश होकर रूप बनता है।

(4) चोक्रुशीति
क्रुश् यङ्—यङ्लुक्, द्वित्व,
चोक्रुश्—कुहोश्चुः, अभ्यास को गुण,
चोक्रुश् ईट् ति—धातुसंज्ञा, ईट्।

(3600) दीर्घोऽकितः *83* (2632)

अकितोऽभ्यासस्य दीर्घो भवति यङि यङ्लुकि च। पापच्यते। पापचीति। यायज्यते। यायजीति। अकित इति किम्? यंयम्यते। यंयमीति। रंरम्यते। रंरमीति। ननु चात्रापवादत्वान्नुकि कृतेऽभ्यासस्यानजन्तत्वादेव दीर्घत्वं न भविष्यति? एवं तर्हि 'अकितः' इत्यनेनैतज्ज्ञाप्यते–'अभ्यासविकारेष्वपवादा नोत्सर्गान् विधीन्बाधन्ते' (व्या० प०) इति। किमेतस्य ज्ञापने प्रयोजनम्? डोढौक्यते इत्यत्र 'दीर्घोऽकितः' इत्यनेन सन्ध्यक्षरह्रस्वो न बाध्यते; अचीकरदित्यत्र 'दीर्घो लघोः' (7.4.94) इत्यनेन सन्वदित्वं न बाध्यते; मान्प्रभृतीनां दीर्घेण सनीत्वं न बाध्यते–मीमांसते; 'ई च गणः' (7.4.97) इतीत्वेन हलादिशेषो न बाध्यते–अजीगणत्।

अर्थ—कित् से भिन्न जो अभ्यास, उसे दीर्घ होता है, यङ् व यङ्लुक् परे रहते।

उदा० (1) पापच्यते
पच् यङ्—द्वित्व, सन्यङोः,
प पच् य—हलादिः शेषः,
पापच्य—अभ्यास को दीर्घ, धातुसंज्ञा,
पापच्य शप् त—अतो गुणे।

(2) पापचीति
पापच्—पूर्ववत्, यङ्, यङ्लुक्, द्वित्वादि, अभ्यासदीर्घ,
पापच् ई ति—'ई' हुआ।

(3) यायज्यते
यज्—'पापच्यते' की तरह।

(4) यायजीति
यज्—'पापचीति' की तरह।

अकित०—किद् भिन्न अभ्यास को दीर्घ होता है।

(5) यंयम्यते
यम् यङ् → य यम् य—'सन्यङोः' से द्वित्व,
यन् यम्य—'नुगतोऽनुनासि०' से 'नुक्' आगम,
यंयम्य—नश्चाऽपदान्तस्य० से अनुसार, अभ्यास के कित् होने से दीर्घ नहीं हुआ,
यंयम्य शप् त—धातुसंज्ञा, लकार।

(6) यंयमीति
यङ्लुक् होकर पूर्ववत् दीर्घादेश की अप्राप्ति।

(7) रंरम्यते
रम्—'ययंम्यते' की तरह।

(8) रंरमीति
'यंयमीति' की तरह।

ननु०—'य नुक् यम् य' इस दशा में अपवाद होने से नुक् आगम कर देने पर अभ्यास के अजन्त न रहने से दीर्घादेश प्राप्त नहीं होता है। तब सूत्र में 'अकितः' पद के पाठ से ज्ञापित होता है कि अभ्यास के विकारों के विषय में अपवाद उत्सर्ग विधियों का बाध नहीं करते हैं। इस ज्ञापन का क्या प्रयोजन है?

डोढौक्य०—'डोढौक्यते' इस दशा में 'दीर्घोऽकितः' से सन्ध्यक्षर ह्रस्व का बाध नहीं होता। 'अचीकरत्' यहाँ 'दीर्घो लघोः' के द्वारा सन्वत् इत्व आदेश का बाध नहीं होता है। प्रथम इत्व; पश्चात् दीर्घ होता है। मान् से स्वार्थिक सन् द्वित्व होने पर 'ममान् स' यहाँ दीर्घ तथा इत्व के प्राप्त होने पर प्रथम इत्व होता है। 'अजीगणत्' में 'गण् णिच् चङ् त्' इस दशा में 'ई च गणः' के द्वारा हलादि शेष का बाध नहीं होता है। हलादि शेष के पश्चात् ईत्व, श्चुत्व होते हैं।

(9) डोढौक्यते
ढौक् यङ्—द्वित्व, हलादिः शेषः,
डु ढौक् य—ह्रस्वः, अभ्यासे चर्च,
डोढौक्य शप् त—अभ्यास को गुण, धातुसंज्ञा, अतो गुणे।

(10) अचीकरत्
कृ णिच् → कार् इ—धातुसंज्ञा,
कार् इ चङ् त्—लुङ्, इतश्च, 'णिश्रिद्रुस्रु०' से चङ्,
कर् अ त्—'णेरनिटि' से णिलोप, 'चङि' से द्वित्व तथा 'णौ चङ्युपधाया०' से उपधाह्रस्वत्व की प्राप्ति, परकार्य होने से प्रथम उपधा को ह्रस्वादेश,
कृ कर् अत्—पश्चात् द्वित्व, 'णौ कृतं स्थानिवद् भवति' (वा०) से रूपातिदेश,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

च करत्—उरत्, उरण् रपरः, हलादिः शेषः, कुहोश्चुः,
चिकरत्—सन्वल्लघुनि०, 'सन्यतः' से इकार,
अचीकरत्—'दीर्घो लघोः, अट्।

(11) मीमांसते
मान् सन्—'मान्बध्दान्शान्भ्यो०' से स्वार्थ में 'सन्',
म मान् स—'सन्यङोः' से द्वित्व, हलादिः शेषः, ह्रस्वः,
मि मांस—'सन्यतः' से इकार,
मीमांस शप् ते—अभ्यास को दीर्घ, धातुसंज्ञा, अतो गुणे।

(12) अजीगणत्
गण् णिच्—स्वार्थ में णिच्, धातुसंज्ञा,
गण् इ चङ् त्—लुङ्, इतश्च, चङ्,
ग गण् अ त्—णिलोप, 'चङि' से द्वित्व, हलादिः शेषः,
ज गणत्—कुहोश्चुः, ई च गणः,
अजीगणत्—अट्।

(3601) नीग्वञ्चुस्रंसुध्वंसुभ्रंसुकसपतपद-स्कन्दाम् *84* (2642)

वञ्चु, स्रंसु, ध्वंसु, भ्रंसु, कस, पत, पद, स्कन्द-इत्येतेषामभ्यासस्य नीगागमो भवति यङि यङ्लुकि च। अञ्चु-वनीवच्यते। वनीवञ्चीति। स्रंसु-सनीस्रस्यते। सनीस्रंसीति। ध्वंसु-दनीध्वस्यते। दनीध्वंसीति। भ्रंसु-बनीभ्रस्यते। बनीभ्रंसीति। कस-चनीकस्यते। चनीकसीति। पत-पनीपत्यते। पनीपतीति। पद-पनीपद्यते। पनीपदीति। स्कन्द-चनीस्कद्यते। चनीस्कन्दीति।

अर्थ—वञ्च्, स्रंस्, ध्वंस्, भ्रंस्, कस्, पत्, पद्, स्कन्द्—इन अङ्गों के अभ्यास को 'नीक्' आगम होता है, यङ् और यङ्लुक् परे रहते।

ककार की 'हलन्त्यम्' से इत्संज्ञा होती है। 'आद्यन्तौ टकितौ' से यह अभ्यास का अन्त्य अवयव बनता है।

उदा० (1) वनीवच्यते
वञ्च् चङ्—'अनिदितां हल०' से अनुनासिकलोप,
व वच् य—द्वित्व, हलादिः शेषः, नीक्,
वनीवच्य—धातुसंज्ञा, लकारोत्पत्ति।

(2) वनीवञ्चीति
वञ्च्—यङ् का लुक्, पूर्ववत् द्वित्वादि,
वनीवञ्च् ई ति—धातुसंज्ञा।

(3) सनीस्रस्यते
स्रंस् यङ्—स नीक् स्रस् य शप् त—पूर्ववत्।

(4) सनीसंस्रीति
यङ्लुक् में रूप बनता है।

(5) दनीध्वस्यते
ध्वंस् यङ्—अनुनासिकलोप,
द ध्वस् य—द्वित्व, हलादिः शेषः, अभ्यासे चर्च,
दनीध्वस्य—धातुसंज्ञा, शप् आदि।

(6) दनीध्वंसीति
यङ्लुक् में नीक् हुआ, अनुनासिकलोप का अभाव।

(7) बनीभ्रस्यते
भ्रंस् यङ्—'दनीध्वस्यते' की तरह।

(8) बनीभ्रंसीति
यङ्लुक् में 'दनीध्वंसीति' की तरह।

(9) चनीकस्यते
कस् यङ्०—द्वित्व, हलादिः शेषः,
च कस् य—कुहोश्चुः,
चनीकस्य—नीक्, धातुसंज्ञा, शप् आदि।

(10) चनीकसीति
यङ्लुक् में पूर्ववत् 'नीक्' आगम।

(11) पनीपत्यते
पत् यङ्—पूर्व 'नीक्' होता है।

(12) पनीपतीति
यङ्लुक् में 'नीक्'।

(13) पनीपद्यते
पद्—'पनीपत्यते' की तरह।

(14) पनीपदीति
यङ्लुक् में 'पनीपतीति' की तरह।

(15) चनीस्कद्यते
स्कन्द यङ्—'अनिदितां हल०' से अनुनासिकलोप,
स्कद् स्कद् य—द्वित्व, शर्पूर्वाः खयः,
क स्कद् य—कुहोश्चुः,
चनीस्कद् य—नीक् आगम, धातुसंज्ञा,
चनीस्कद् य शप् त—अतो गुणे।

(16) चस्कन्दीति
स्कन्द् यङ्—यङ् का लुक्, अनुनासिकलोप का अभाव, शेष कार्य पूर्ववत्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(3602) नुगतोऽनुनासिकान्तस्य *85* (2643)

अनुनासिकान्तस्याङ्गस्य योऽभ्यासस्तस्याकारान्तस्य नुगागमो भवति यङ्यङ्लुकोः परतः। तन्तन्यते। तन्तनीति। जङ्गम्यते। जङ्गमीति। यंयम्यते। यंयमीति। रंरम्यते। रंरमीति। नुगित्येतदनुस्वारोपलक्षणार्थं द्रष्टव्यम्। स्थानिना ह्यादेशो लक्ष्यते। तेन यंयम्यते-इत्येवमादावझल्परत्वेऽप्यनुस्वारो भवति। *पदान्तवच्चेति वक्तव्यम्* (म० भा०)। 'वा पदान्तस्य' (8.4.59) इति परसवर्णविकल्पो यथा स्यादिति। अत इति किम्? तेतिम्यते। तपरकरणं तु भूतपूर्वस्यापि दीर्घस्य निवृत्त्यर्थम्-बाभाम्यते। अनुनासिकान्तस्येति किम्? पापच्यते।

अर्थ—अनुनासिकान्त अङ्ग का जो अकारान्त अभ्यास, उसको नुक् आगम होता है, यङ् और यङ्लुक् परे रहते।

उकार व ककार की इत् संज्ञा है। कित् होने से नुक् आगम अभ्यास का अन्त्य अवयव बनता है।

उदा० (1) तन्तन्यते
तन् यङ्—'सन्यङोः' से द्वित्व,
त तन् य—हलादिः शेषः,
त न् तन्य—नुक्, अनुबन्धलोप, धातुलोपः,
तन्तन्यते—शप्, पररूप।

(2) तन्तनीति
यङ्लुक् में पूर्ववत् सभी कार्य।

(3) जङ्गम्यते
गम् यङ् → जगम् य—पूर्ववत् द्वित्वादि, कुहोश्चुः,
ज न् गम्य—नुक्, अनुस्वार, परसवर्ण,
जङ्गम्य शप् त—धातुसंज्ञा, अतो गुणे।

(4) जङ्गमीति
जगम्—यङ् का लुक्, द्वित्व, कुहोश्चुः,
जङ्गमीति—नुक् आदि पूर्ववत्।

(5) यंयम्यते
यम् यङ्—द्वित्व, नुक् आदि।

(6) यंयमीति
यङ्लुक्, नुक्, अनुस्वार।

(7) रंरम्यते
रम्—द्वित्व, नुक् आदि।

(8) रंरमीति
यङ्लुक् में।

नुगित्ये०—'नुक्' यह अनुस्वार के उपलक्षणार्थ है। स्थानी के द्वारा आदेश लक्षित होता है। अतः 'यंयम्यते' इस स्थल पर झल् के परे न रहने पर भी अनुस्वार होता है।

पदान्त०—नुक् आगम के स्थान पर होने वाला अनुस्वार पदान्तवत् होता है। 'वा पदान्तस्य' के द्वारा परसवर्ण विकल्प से होता है।

अत इति०—**ह्रस्व अकारान्त** अभ्यास को ही 'नुक्' आगम होता है।

(9) तेतिम्यते
तिम् यङ्—'सन्यङोः' से द्वित्व,
ति तिम् य—हलादिः शेषः, अभ्यास के अकारान्त न होने से 'नुक्' आगम नहीं होता है।
तेतिम्य—'गुणो यङ्लुकोः' से गुण, धातुसंज्ञा,
तेतिम्य शप् त—अतो गुणे।

तपर०—'अतः' में तपरकरण भूतपूर्व दीर्घ आकार की निवृत्ति के लिए है।

(10) बाभाम्यते
भाम् यङ्—सन्यङोः,
भाम् य—अभ्यासकार्य,
बाभाम्य शप् त—अतो गुणे।

अनुना०—**अनुनासिकान्त** अङ्ग के अकारान्त अभ्यास को 'नुक्' आगम होता है।

(11) पापच्यते
पच् यङ्—द्वित्व, हलादिः शेषः,
पापच् य—अभ्यास को दीर्घ, 'पापच्' अङ्ग अनुनासिकान्त नहीं है, अतः अभ्यास को 'नुक्' नहीं हुआ,
पापच्य शप् त—अतो गुणे।

(3603) जपजभदहदशभञ्जपशां च *86* (2638)

जप, जभ, दह, दश, भञ्ज, पश-इत्येतेषामभ्यासस्य नुगागमो भवति यङ्यङ्लुकोः परतः। जञ्जप्यते। जञ्जपीति। जभ-जञ्जभ्यते। जञ्जभीति। दह-दन्दह्यते। दन्दहीति। दश-दन्दश्यते। दन्दशीति। 'दश'-इति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दन्शिरयं नकारलोपार्थमेव निर्दिष्टः। तेन यङ्लुक्यपि नकारलोपो भवति। भञ्ज–बम्भज्यते। बम्भञ्जीति। 'पश' इति सौत्रो धातुः–पम्पश्यते। पम्पशीति।

अर्थ—जप् जभ्, दह्, दश्, भञ्ज् तथा पश्—इन अङ्गों के अभ्यास को 'नुक्' आगम होता है, यङ् व यङ्लुक् परे रहते।

उदा० (1) जञ्जप्यते
जप् यङ्—द्वित्व, हलादिः शेषः, नुक्,
ज न् जप् य—नश्चाऽपदान्तस्य० से अनुस्वार, परसवर्ण,
जञ्जप्य शप् त—धातुसंज्ञा, अतो गुणे।

(2) जञ्जपीति
जप् यङ्—यङ् का लुक्, शेष कार्य पूर्ववत्।

(3) जञ्जभ्यते
जभ् यङ्—'जञ्जप्यते' की तरह।

(4) जञ्जभीति
यङ्लुक्—'जञ्जपीति' की तरह।

(5) दन्दह्यते
दह् यङ्—'जञ्जप्यते' की तरह।

(6) दन्दहीति
यङ्लुक्—'जञ्जपीति' की तरह।

(7) दन्दश्यते
दंश् यङ्—अनुनासिकलोप, नुक् आदि पूर्ववत्।

(8) दन्दशीति
दंश् यङ्—यङ् का लुक्, अनुनासिकलोप, शेष पूर्ववत्।

दश०—प्रकृत सूत्र में 'दश' इस प्रकार अनुनासिकरहित पाठ का प्रयोजन यह है कि अनुनासिक का लोप होता है। इस प्रकार यङ्लुक् में भी नकारलोप होता है।

(9) बम्भज्यते
भञ्ज् यङ्—पूर्ववत् द्वित्व, नुक् आदि,
बन् भज्य—अभ्यासे चर्च,
बम्भज्य शप् त—नश्चाऽपदान्तस्य झलि, अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः, धातुसंज्ञा, अतो गुणे।

(10) बम्भञ्जीति
यङ्लुक्, अनुनासिकलोप का अभाव।

(11) पम्पश्यते
पश् यङ्—'पश' सौत्र धातु है, नुक्, शेष पूर्ववत्।

(12) पम्पशीति
यङ्लुक्, नुक् आदि।

(3604) चरफलोश्च *87* (2636)

चर, फल–इत्येतयोरभ्यासस्य नुगागमो भवति यङ्-यङ्लुकोः परतः। चञ्चूर्यते। चञ्चूरीति। पम्फुल्यते। पम्फुलीति।

अर्थ—चर् तथा फल्—इन अङ्गों के अभ्यास को 'नुक्' आगम होता है, यङ् व यङ्लुक् के परे रहते।

'फल्' के द्वारा त्रिफला विशरणे तथा फल निष्पत्तौ—दोनों का ग्रहण होता है।

उदा० (1) चञ्चूर्यते
चर् यङ्—'सन्यङोः' से द्वित्व,
च चर् य—हलादिः शेषः,
च न् चर् य—नुक्, अनुस्वार, परसवर्ण, उकार, दीर्घ,
चञ्चूर्य शप् त—धातुसंज्ञा।

(2) चञ्चूरीति
यङ्लुक्—पूर्ववत् नुक्, अनुस्वार, परसवर्ण आदि होकर रूप बनता है।

(3) पम्फुल्यते
फल् यङ्—द्वित्व, हलादिः शेषः,
प न् फल् य—अभ्यासे चर्च, नुक्, अनुस्वार, परसवर्ण,
पम्फुल्य शप् त—उकार, धातुसंज्ञा, पररूप।

(4) पम्फुलीति
यङ्लुक्, शेष पूर्ववत्।

(3605) उत्परस्यातः *88* (2637)

चरफलोरभ्यासात्परस्यात उकारादेशो भवति यङ्यङ्-लुकोः परतः। चञ्चूर्यते। चञ्चूरीति। पम्फुल्यते। पम्फुलीति। परस्येति किम्? अभ्यासस्य मा भूत्। अत इति किम्? अलोऽन्त्यस्य मा भूत्। उदिति तपरकरणम्–चञ्चूर्ति, पम्फुलीति इत्यत्र लघूपधगुणनिवृत्त्यर्थम्। दीर्घ-स्यासिद्धत्वादिह लघुत्वं न निवर्तते।

अर्थ—चर् तथा फल् धातुओं के अभ्यास से पर जो अकार, उसके स्थान पर उकार होता है, यङ् तथा यङ्लुक् परे रहते।

उदा० (1) चञ्चूर्यते
चर् यङ्—सन्यङोः,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चर् चर् य—हलादिः शेषः,
चन् चुर् य—अभ्यास को आगम, उकार,
चञ्चूर्य—अनुस्वार, परसवर्ण, धातुसंज्ञा।

(2) चञ्चूरीति
यङ्लुक् में रूप।

(3) पम्फुल्यते
फल् यङ्—पूर्ववत्।

(4) पम्फुलीति
यङ्लुक्।

परस्य०—अभ्यास से पर जो ह्रस्व अकार, उसे उकार आदेश होता है। अतः अभ्यास के अकार को उकार नहीं होता है।

अत०—ह्रस्व अकार के स्थान पर ही होता है। अतः अलोऽन्त्य परिभाषा से अन्त्य अल् को उकार नहीं होता है।

उदिति०—'उत्' में तपरकरण का प्रयोजन यह है कि लघूपध गुण की निवृत्ति हो जाती है। दीर्घ के असिद्ध होने से यहाँ लघुत्व की निवृत्ति नहीं होती है।

(5) चञ्चूर्ति
चर्—द्वित्व, नुक् पूर्ववत्,
चन् चुर्—उत्व,
चञ्चूर् ति—दीर्घ, अचो रहाभ्यां द्वे।

(6) पम्फुलीति
लघूपध गुण प्राप्त था।

(3606) ति च *89* (3037)

तकारादौ प्रत्यये परतश्चरफलोरकारस्य उकारादेशो भवति। चरणं चूर्तिः। ब्राह्मणश्चूर्तिः। प्रफुल्तिः। प्रफुल्लाः सुमनसः। 'यङ्यङ्लुकोः', 'अभ्यासस्य'–इति चानुवर्त्तमानमपि वचनसामर्थ्यादिह नाभिसम्बध्यते।

अर्थ—चर् तथा फल्—इन अङ्गों के अकार के स्थान पर उकार आदेश होता है, तकारादि प्रत्यय परे रहते।

(1) चूर्तिः
चर् क्तिन्—स्त्रियां क्तिन्,
चुर् ति—उत्व,
चूर्ति सु—दीर्घ, अचो रहाभ्यां द्वे।

(2) प्रफुल्तिः
प्र फल् क्तिन्—पूर्ववत्,
प्र फुल् ति—उत्व, सु।

यङ्०—यद्यपि यहाँ 'यङ्यङ्लुकोः' तथा 'अभ्यासस्य०' इनका अधिकार है, तदपि इनका यहाँ वचनसामर्थ्य से सम्बन्ध नहीं है।

(3607) रीगृदुपधस्य च *90* (2644)

ऋदुपधस्याङ्गस्य योऽभ्यासस्तस्य रीगागमो भवति यङ्यङ्लुकोः परतः। वरीवृत्यते। वरीवृध्यते। वरीवृतीति। वरीवृधीति। नरीनृत्यते। नरीनृतीति। *रीगृत्वत इति वक्तव्यम्* (म०भा०)। इहापि यथा स्यात्-वरीवृश्च्यते। परीपृच्छ्यते। वरीवृश्चीति। परीपृच्छीति।

अर्थ—ह्रस्व ऋकार है उपधा में जिसके, ऐसे अङ्ग के अभ्यास को 'रीक्' आगम होता है, यङ् तथा यङ्लुक् परे रहते।

उदा० (1) वरीवृत्यते
वृत् यङ्—'धातोरेकाचो०' से 'यङ्', वृत् ऋदुपध धातु,
वृ वृत् य—सन्यङोः, हलादिः शेषः,
व वृत् य—उरत्, उरण् रपरः, हलादिः शेषः,
व रीक् वृत्य—रीक् आगम, धातुसंज्ञा, त, शप्,
वरीवृत्य अ त—अतो गुणे।

(2) वरीवृध्यते
वृध् यङ्—पूर्ववत्।

(3) नरीनृत्यते
नृत् यङ्—धातोरेकाचो०
नृ नृत् य—सन्यङोः, हलादिः शेषः,
न री नृत् य—उरत्, हलादिः शेषः, रीक्,
नरीनृत्य शप् त—अतो गुणे।

(4) वरीवृतीति
वृत् यङ्—यङ् का लुक्,
वरी वृत्—पूर्ववत् 'रीक्' आदि,
वरीवृत् ई ति—ईट्।

(5) वरीवृधीति
वृध् यङ्—'वरीवृतीति' की तरह।

(6) नरीनृतीति
नृत् यङ्—'वरीवृतीति' की तरह।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रीगृत्व०—ह्रस्व ऋकारवान् का जो अभ्यास, उसे 'रीक्' आगम होता है। अतः यहाँ भी होता है।

(7) वरीवृश्च्यते
व्रश्च् यङ्—'धातोरेकाचो हलादेः०' से 'यङ्', सम्प्रसारण,
वृश्च् य—'व्रश्च्' धातु ऋदुपध नहीं है, परन्तु सम्प्रसारण होकर यह ऋकारवान् हो जाता है,
व वृश्च् य—द्वित्व, हलादिः शेषः, 'रीक्' हुआ,
वरीवृश्च्य शप् त—अतो गुणे।

(8) परीपृच्छ्यते
पूर्ववत् 'रीक्' हो गया है।

(9) वरीवृश्चीति
व्रश्च् यङ्—यङ् का लुक्,
व री वृश्च्—शेष कार्य पूर्ववत्,
वरी वृश्च् ई ति—ईट्।

(10) परीपृच्छीति
पूर्ववत् यङ्लुक्।

'ऋदुपधस्य च' के स्थान पर 'रीगृत्वतः' का पाठ करने में लाघव होता है। परन्तु ऐसा न करके आचार्य ने विचित्रता के लिए 'ऋदुपधस्य च' पाठ किया है।[1]

'ऋदुपधस्य च' में 'ऋत्' पद में तकार अनुबन्ध सन्देह के लिए है। उकार परे रहते यणादेश करने पर सन्देह होता है कि ऋकारोपध के स्थान पर होता है अथवा रेफोपध के स्थान पर।[1]

(3608) रुग्रिकौ च लुकि *91* (2652)

यङ्लुकि ऋदुपधस्याङ्गस्य योऽभ्यासस्तस्य रुग्रिकावागमौ भवतश्चकाराद्रीक्च। नर्नर्ति, नरिनर्ति, नरीनर्ति। वर्वर्ति, वरिवर्ति, वरीवर्ति। उकार उच्चारणार्थः। *मर्मृज्यते मर्मृज्यमानास इत्युपसंख्यानम्* (म०भा०)। मर्मृज्यते। मर्मृज्यमानासः।

अर्थ—ह्रस्व ऋकार है उपधा में जिसके, ऐसे अङ्ग का जो अभ्यास, उसे रुक्, रिक् तथा रीक् आगम होते हैं।

उदा० (1) नर्नर्ति
नृत् यङ्—यङ् का लुक्,
न नृत्—द्वित्व, अभ्यास कार्य,
न र् न र्ति—रुक्, ककार व उकार का लोप, उपधा को गुण, तिप्।

(2) नरिनर्त्ति
न नृत्—पूर्ववत्,
नरि नर्त्—'रीक्' आगम, उपधा गुण,
नरिनर्त् ति—धातुसंज्ञा।

(3) नरीनर्त्ति
'रीक्' आगम हुआ है।

(4) नर्नृतीति[1]
पक्ष में 'ईट्' होता है। 'रुक् आगम। लघूपध गुण अभाव।

(5) नरिनृतीति[1]
रिक् आगम, ईट्।

(6) नरीनृतीति[1]
'रीक्' आगम, ईट्।

(7) वर्वर्त्ति
वृत्—'नर्नर्त्ति' की तरह।

(8) वरिवर्त्ति
वृत्—'नरिनर्त्ति' की तरह।

(9) वरीवर्त्ति
'नरीनर्त्ति' की तरह।

उकार०—'रुक्' में उकार उच्चारणार्थ है।
मर्मृज्य०—मर्मृज्यते तथा मर्मृज्यमानासः निपातनसिद्ध हैं।

(10) मर्मृज्यते
मृज् यङ्—सन्यङोः,
म मृज् य—द्वित्व, हलादिः शेषः, उरत्, हलादि शेष,
मर् मृज्य—निपातन से 'रुक्' आगम, धातुसंज्ञा,
मर्मृज्य शप् त—अतो गुणे।

(11) मर्मृज्यमानासः
म मृज् य—पूर्ववत्,
म र् मृज्य—निपातन से 'रुक्' आगम, धातुसंज्ञा,
मर्मृज्य शानच्—लट्, शानच् आदेश,
मर्मृज्य म् आन—हलन्त्यम्, लशक्वतद्धिते, आने मुक्,
मर्मृज्यमान जस्—प्रातिपदिक संज्ञा, चुटू,
मर्मृज्यमान असुक् अस्—आज्जसेरसुक्।

(3609) ऋतश्च *92* (2653)

ऋकारान्तस्याङ्गस्य योऽभ्यासस्तस्य रुग्रिकावागमौ

1. न्यास० 7.4.90

1. काशिकायां न प्रदर्शितम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भवतो रीक्च यङ्लुकि। चर्कर्त्ति, चरिकर्ति, चरीकर्ति। जर्हर्ति, जरिहर्ति, जरीहर्ति। तपरकणं किम्? किरतेः-चाकर्ति।

किरतिं चर्करीतान्तं पचतीत्यत्र यो नयेत्।
प्राप्तिज्ञं तमहं मन्ये प्रारब्धस्तेन संग्रहः॥
(म०भा०)।

तत्रेयं प्राप्तिः-तपरकरणसामर्थ्यादङ्गविशेषणम् 'ऋतः' इत्येतत्, तथा चाप्राप्तिः किरतेः रुगादीनामिति।

अर्थ—ऋकारान्त अङ्ग का जो अभ्यास, उसको रुक्, रिक् तथा रीक् आगम पर्यायेण होते हैं, यङ्लुक् में।

उदा० (1) चर्कर्त्ति
कृ यङ्—धातेरेकाचो हलादेः क्रिया०,
कृ कृ य—द्वित्व, यङ् का लुक्,
च कृ—उरत्, हलादिः शेषः, कुहोश्चुः,
च र् कर्—अभ्यास को 'रुक्', अङ्ग को गुण,
चर्कर्ति—धातुसंज्ञा, तिप्।

(2) चरिकर्ति
च कृ—पूर्ववत्,
च रि कर्—'रिक्' आगम, गुण,
चरिकर्ति—तिप्।

(3) चरीकर्ति
'रीक्' आगम।

(4) जर्हर्ति
हृ यङ्—धातोरेकाचो०, यङ्लुक्,
हृ हृ—द्वित्व,
हृ हृ—उरत्, हलादिः शेषः,
ज हृ—कुहोश्चुः, अभ्यासे चर्च,
ज र् हर्—'रुक्' आगम, अङ्ग को गुण,
जर्हर्ति—तिप्।

(5) जरिहर्ति
'रिक्' आगम।

(6) जरीहर्ति
रीक् आगम।

तपर०—ह्रस्व ऋकारान्त अङ्ग के अभ्यास को ही रुक् आदि आगम होते हैं।

(7) चाकर्ति
कृ यङ्—ह्रस्व ऋकारान्त धातु है, अतः अभ्यास को 'रुक्' आदि नहीं होते हैं,
चकर्—यङ्लुक्, गुण, दीर्घोऽकितः,
चाकर् ति—तिप्।

किरति०—'किरति' गृ आदि दीर्घ ऋकार का, 'चर्करीतम्' यङ्लुगन्त धातु का तथा 'पचति' लट् लकार का उपलक्षण है। अतः जो विद्वान् किरति को चर्करीतं व पचति तक सिद्ध कर देता है, वह प्राप्ति का ज्ञाता है। उस व्यक्ति ने साधु शब्दों का संग्रह किया है—ऐसा मानना चाहिए।

भाव यह है कि जो व्यक्ति दीर्घ ऋकारान्त (कृ व गृ) धातुओं के यङ्लुक् में रूप बना सके (अर्थात् रुक्, रिक् व रीक् आगम कहाँ-कहाँ होते हैं—यह जानता हो) तथा लट् लकार के रूप (चाकर्ति आदि) बना सके, वह वस्तुतः विद्वान् है।

यहाँ यह प्राप्ति है—'ऋतः' यहाँ तपरकरण के सामर्थ्य से यह अङ्ग का विशेषण बनता है। दीर्घ ऋकारान्त अङ्ग अर्थात् कृ आदि के अभ्यास को रुक् आदि आगमों की अप्राप्ति है।

(3610) सन्वल्लघुनि चङ्परेऽनग्लोपे *93* (2316)

लघुनि धात्वक्षरे परतो योऽभ्यासस्तस्य चङ्परे णौ परतः सनीव कार्यं भवति अनग्लोपे। 'सन्यतः' (7.4.79) इत्युक्तम्, चङ्परेऽपि यथा-अचीकरत्। अपीपचत्। 'ओः पुयण्ज्यपरे' (7.4.80) इत्युक्तम्, चङ्परेऽपि तथा-अपीपवत्। अलीलवत्। अजीजवत्। 'स्रवतिश्रृणोतिद्रवतिप्रवतिप्लवतिच्यवतीनां वा' (7.4.81) इत्युक्तम्, चङ्परेऽपि तथा-असिस्रवत्, असुस्रवत्। अशिश्रवत्, अशुश्रवत्। अद्रिदवत्, अदुद्रवत्। अप्रिपवत्, अपुप्रवत्। अपिप्लवत्, अपुप्लवत्। अचिच्यवत्, अचुच्यवत्। लघुनीति किम्? अततक्षत्। अररक्षत्। जागरयतेः-अजजागरत्। अत्र केचिद् गशब्दं लघुमाश्रित्य सन्वद्भावमिच्छन्ति, सर्वत्रैव लघोरानन्तर्यमभ्यासेन नास्तीति व्यवधानेऽपि वचनप्रामाण्याद्भवितव्यम्? तदसत्; 'येन नाव्यवधानं तेन व्यवहितेऽपि वचनप्रामाण्यात्' (व्या०प०) इत्येकेन व्यवधानमाश्रीयते, न पुनरनेकेन। यद्येवम्, कथमचिक्षणदिति? आचार्यप्रवृत्तिर्ज्ञापयति-भवत्येवञ्जातीयकानामित्त्वमिति। यदयं तद्बाधनार्थं स्मरत्यादीनामत्वं विदधाति। चङ्पर इति किम्? अहं पपच। परग्रहणं किम्? चङ्येव केवले मा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भूत्–अचकमत। अनग्लोप इति किम्? अचकथत्। दृषदमाख्यातवान् अददृषत्। वादितवन्तं प्रयोजितवान् अवीवददित्यत्र योऽसौ णौ णेर्लोपः, नासावग्लोप इत्याश्रीयते, किं कारणम्? 'चङ्परे' इति णिजातेर्निमित्तत्वेनाक्षेपात् ततोऽन्यस्याको लोपः परिगृह्यते। मीमादीनामत्र ग्रहणात् 'सन्वद्भावेनाभ्यासलोपो न भवति' इत्युक्तम्। किञ्च–सन्वदिति सनाश्रयं कार्यमतिदिश्यते, न च लोपः सनमेवापेक्षते किं तर्हि? इस्भावाद्यपि; तदभावाद् अमीमपदित्यादावभ्यासलोपो न भविष्यति।

अर्थ—चङ् है परे जिसके, ऐसे णि के परे रहते तथा लघुसंज्ञक धात्वक्षर के परे रहते जो अभ्यास, वह सन्वत् होता है, यदि अक् का लोप न हुआ हो। भाव यह है कि ऐसे अभ्यास को वे सभी कार्य होते हैं, जो सन् परे रहते होते हैं।

'सन्यतः' आदि कहे जा चुके हैं; यथा—

उदा० (1) अचीकरत्
कृ णिच्—अचो ञ्णिति,
कार् इ लुङ्—धातुसंज्ञा, लुङ्,
कार् इ चङ् त्—'इतश्च' से इकारलोप, च्लि को चङ्,
कर् अ त्—'णेरनिटि' से णिलोप, णौ चङ्युपधाया०,
कृ कर् अ त्—'चङि' से द्वित्व, रूपातिदेश,
क कर् अ त्—उरत्, उरण् रपरः, हलादिः शेषः,
चि कर् अ त्—कुहोश्चुः, सन्वद्भाव, सन्यतः,
अ चीकरत्—दीर्घो लघोः, अङ्ग को अट् आगम।

(2) अपीपचत्
पाच् इ चङ् त्—'अत उपधायाः' से उपधावृद्धि तथा पूर्ववत् चङ् आदि, चुटू, हलन्त्यम्,
पच् अ त्—णिलोप, उपधाह्रस्व,
प पचत्—द्वित्व, हलादिः शेषः,
अपीपचत्—शेष पूर्ववत्।

ओः पुयण्०—'ओः पुयण्ज्यपरे' कहा जा चुका है; यथा—

(3) अपीपवत्
पु णिच्—'हेतुमति च' से णिच्, चुटू, हलन्त्यम्,
पाव् इ—'अचो ञ्णिति' से वृद्धि,
पाव् इ अ त्—पूर्ववत् चङ्,
पू पव् अत्—णिलोप, उपधाह्रस्व, द्वित्व, रूपातिदेश,
पु पवत्—ह्रस्वः,
अपीपवत्—ओः पुयण्ज्यपरे।

(4) अलीलवत्
लू—'अपीपवत्' की तरह।

(5) अजीजवत्
जू—'अपीपवत्' की तरह।

स्रवति०—'स्रवतिशृणोतिद्रवति०' कहा जा चुका है; यथा—

(6) असिस्रवत्
स्रु इ—णिच्, अनुबन्धलोप,
स्रावय् इ चङ् त्—चङ् आदि,
स स्रव् अ त्—णिलोप, उपधाह्रस्व, द्वित्व, हलादिः शेषः,
सि स्रवत्—सन्वद्भाव, सन्यतः,
असिस्रवत्—अट्।

(7) असुस्रुवत्
स्रु णिच्—पक्ष में,
स्रु स्रुव् अ त्—पूर्ववत् चङ्, द्वित्व आदि,
अ सु स्रुव् अत्—हलादिः शेषः, अट्।

(8) अशिश्रवत्
श्रु णिच्—हेतुमति च,
श्रावय् इ चङ् त्—पूर्ववत्,
श श्रव् अ त्—णिलोप, उपधाह्रस्व, द्वित्व, हलादिः शेषः,
शिश्रवत्—सन्वद्भाव, सन्यतः,
अशिश्रवत्—अट्।

(9) अशुश्रवत्
श्रु णिच्—पूर्ववत् धातुसंज्ञा, चङ्,
शु श्रवत्—द्वित्व, हलादि शेष,
अशुश्रवत्—अट्।

(10) अदिद्रवत्
द्रु णिच्—णिच्, वृद्धि, चङ्,
द्रव् अ त्—णिलोप, उपधाह्रस्व,
द द्रवत्—'चङि' से द्वित्व, हलादिः शेषः,
अदिद्रवत्—सन्वद्भाव, सन्यतः, अट्।

(11) अदुद्रवत्
द्रु णिच्—पूर्ववत्, धातुसंज्ञा,
दु द्रव् अ त्—चङ्, द्वित्व,
अदुद्रवत्—अट्।

(12) अपिप्रवत्
प्रु णिच्—'अदिद्रवत्' की तरह।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(13) अपुप्रवत्
पक्ष में प्रु णिच्—'अदुद्रवत्' की तरह।

(14) अचिच्यवत्
च्यु णिच्—'अदिद्रवत्' की तरह।

(15) अचुच्यवत्
पक्ष में 'अदुद्रवत्' की तरह।

लघुनी०—**लघुसंज्ञक** वर्ण के परे रहते ही अभ्यास को सन्वद्भाव होता है।

(16) अततक्षत्
तक्ष णिच् चङ् त्—पूर्ववत्,
त तक्ष् अ त्—णिलोप, द्वित्व, हलादिः शेषः, चङ्परक णि परे है, परन्तु 'संयोगे गुरु' से अकार की गुरुसंज्ञा होती है, तब लघुवर्ण के न रहने से अभ्यास को सन्वद्भाव नहीं हुआ,
अततक्षत्—अट्।

(17) अररक्षत्
रक्ष णिच्—पूर्ववत् सन्वद्भाव नहीं हुआ।

(18) अजजागरत्
जागृ णिच् चङ् त्—पूर्ववत्,
ज जागर् अ त्—पूर्ववत् द्वित्वादि, जकारोत्तरवर्त्ती आकार की 'दीर्घश्च' से गुरुसंज्ञा,
अजजागरत्—सन्वद्भाव नहीं हुआ।

अत्र०—यहाँ कुछ विद्वान् 'ग' शब्द को लघु मानकर सन्वद्भाव स्वीकार करते हैं। सर्वत्र (अचीकरत् आदि में) अभ्यास से लघु वर्ण का आनन्तर्य (अर्थात् व्यवधान) नहीं है। कारण कि (ककार आदि) कोई न कोई व्यञ्जन तो रहता ही है। अतः इस वचनसामर्थ्य से व्यवधान में भी सन्वद्भाव होना चाहिए। इस प्रकार 'अजीजागरत्' बनता है।

परन्तु यह मत उचित नहीं है। 'जिसका अवश्य व्यवधान होता है, उसके द्वारा व्यवधान में भी वचनसामर्थ्य से कार्य किया जाता है'—इस परिभाषा से केवल एक वर्ण का व्यवधान मान्य है; अनेक वर्णों का नहीं। भाव यह है कि 'अचीकरत्' में एक वर्ण का व्यवधान होने से सन्वद्भाव हुआ है तथा 'अजजागरत्' में तीन वर्णों का व्यवधान होने से सन्वद्भाव नहीं हुआ।

यद्येवम्०—यदि ऐसा है तो 'अचिक्षणत्' में सन्वद्भाव कैसे होता है। अतः आचार्य पाणिनि की प्रवृत्ति से ज्ञापित होता है कि जातीय वालों को इत्व होता है।

यदि सन्वद्भाव के विषय में वर्णसमुदाय के व्यवधान को नहीं माना जाता है तो 'क्षण्' धातु से णिच् व चङ् आदि होकर 'अचिक्षणत्' रूप नहीं बन पायेगा। वस्तुतः क्षण् आदि के समान जो संयोगादि हैं, वे जातीय हैं। इसका अर्थ यह है कि 'क्षण् की तरह'। यदि इनको इत्व न होता तो इसके बाध के लिए 'अत्स्मृदृत्वरप्रथम्रद०' से आत्त्व के विधान की क्या आवश्यकता थी। अतः प्रकृत आत्वविधान व्यर्थ होकर ज्ञापित करता है कि क्षण् की जातीय धातु के अभ्यास को इत्त्व हो जाता है।

चङ्परे०—**चङ् है परे** जिसके, ऐसे णि के परे रहते अभ्यास को सन्वद्भाव होता है।

(19) पपच (अहम्)
पच् णल्—लिट्, परस्मैपदानां णलतुसुस्०, 'णलुत्तमो वा' से पाक्षिक णिद्वद्भाव,
प पच् अ—अणित् पक्ष, अनुबन्धलोप, द्वित्व, हलादिः शेषः,
पपच—चङ् परे नहीं है, सन्वद्भाव नहीं हुआ।

पर०—'पर' शब्द का ग्रहण है, ताकि केवल चङ् **परे** रहते ही होता है।

(20) अचीकमत, अचकमत
कम् णि त—लुङ्, आर्धधातुकं शेषः, 'आयादय आर्धधातुके वा' से 'णिङ्' विकल्प से हुआ, णिङ् पक्ष,
काम् इ चङ् त—'अत उपधायाः' से उपधावृद्धि, 'च्लेः सिच्' से 'सिच्' प्राप्त, 'णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्त्तरि०' से 'चङ्',
काम् अ त—चुटू, हलन्त्यम्, 'एरनेकाचः०' को बाध कर 'णेरनिटि' से णिलोप,
कम् अ त—'णौ चङ्युपधाया०' से उपधाह्रस्व,
ककम् अ त्—'चङि' से द्वित्व, हलादिः शेषः,
चकमत—कुहोश्चुः, सन्वल्लघुनि०,
चिकमत—सन्यतः,
अचीकमत—दीर्घो लघोः। णिङ् अभाव पक्ष में 'अचकमत' बनता है।

अनग्०—यदि **अक्** का **लोप** न हुआ हो तो सन्वद्भाव होता है।

(21) अचकथत्
कथ णिच्—'कथ' धातु चुरादिगणीय अदन्त है, 'सत्यापपाश०' से स्वार्थिक णिच्,
कथ् णिच् चङ् त्—पूर्ववत्,
च कथ् अ त्—'णेरनिटि' से णिलोप, द्वित्व, कुहोश्चुः,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अचकथत्—अक् (अवर्ण) का लोप हुआ है, सन्वद्भाव नहीं हुआ, अट्।

(22) अददृषत्

दृषदम् आख्यातवान्—'तत्करोति तदाचष्टे' से 'णिच्',

दृषद् णिच् चङ् त्—अनुबन्धलोप, चङ्,

दृष् अ त्—'णाविष्ठवत् कार्यं प्रातिपदिकस्य' से इष्ठवद्भाव, टिलोप,

ददृषत्—द्वित्व, अभ्यासकार्य,

अददृषत्—अट्।

वादित०—वादितवन्तं प्रयोजितवान्—अवीवदत्। यहाँ णि परे रहते जो णिलोप होता है, वह अग्लोप नहीं है। क्या कारण है ? 'चङ्परे' इस प्रकार गो बलीवर्द्दन्याय से णि जाति का निमित्त होने से आक्षेप होता है। अतः अन्य अग्लोप का यहाँ ग्रहण होता है। यहाँ मी मा आदि के ग्रहण से 'सन्वद्भाव से अभ्यासलोप होता है'—ऐसा कहा गया है।

किञ्च०—'सन्वत्०' इस प्रकार सन् प्रत्ययलक्षण कार्यों का अतिदेश किया जाता है तथा लोप सन् की अपेक्षा नहीं रखता है। किस प्रकार ? 'इस् होना' आदि की भी अपेक्षा रखता है। इसका भाव यह है कि जहाँ इस् आदेश भी हो, वहीं सन् में लोप होता है। चूँकि 'अमीमपत्' में यह 'इस् होना' नहीं होता है। अतः अभ्यास का लोप नहीं होता है।

(3611) दीर्घो लघोः *94* (2318)

दीर्घो भवति लघोरभ्यासस्य लघुनि णौ चङ्परे-ऽनग्लोपे। अचीकरत्। अजीहरत्। अलीलवत्। अपीपचत्। लघोरिति किम् ? अबिभ्रजत्। 'लघुनि' इत्येव-अततक्षत्। अररक्षत्। 'चङि' इत्येव-अहं पपच। 'परे' इत्येव-अचकमत। 'अनग्लोपे' इत्येव-अचकथत्।

अर्थ—लघुसंज्ञक वर्ण परे हो तथा चङ् है परे जिससे, ऐसा णि परे हो तो लघुसंज्ञक अभ्यास को दीर्घादेश होता है, परन्तु अग्लोप होने पर नहीं होता है।

उदा० (1) अचीकरत्

कृ णिच् चङ् त्—प्रक्रिया पिछले सूत्र पर देखें।

(2) अजीहरत्

हृ णिच्—हेतुमति च, वृद्धि,

हार् इ चङ् त्—धातुसंज्ञा, 'इतश्च' से इकारलोप, चङ्,

हर् अ त्—णिलोप, उपधाह्रस्व, द्वित्व,

ज हर् अ त्—उरत्, हलादिः शेषः, कुहोश्चुः, अभ्यासे चर्च, अजीहरत्—सन्वद्भाव, सन्यतः, दीर्घो लघोः।

(3) अलीलवत्

लू णिच्—पिछले सूत्र पर देखें,

लि लव् अत्—पिछले सूत्र पर,

अलीलवत्—दीर्घ हुआ, अट्।

(4) अपीपचत्

प पच् अ त्—णिच, उपधादीर्घ, चङ्, णिलोप, उपधाह्रस्व, द्वित्व, हलादि शेष,

पि पचत्—सन्वद्भाव, सन्यतः,

अपीपचत्—दीर्घो लघोः।

लघो०—लघुसंज्ञक अभ्यास को दीर्घादेश होता है।

(5) अबिभ्रजत्

भ्रज् णिच्—हेतुमति च, 'अत उपधायाः' से उपधावृद्धि,

भ्राज् इ चङ् त्—तिप् इतश्च, 'णिश्रिद्रुस्रु०' से चङ्,

भ्रज् अ त्—णेरनिटि, उपधाह्रस्व, 'चङि' से द्वित्व,

ब भ्रजत्—हलादिः शेषः, अभ्यासे चर्च,

बिभ्रजत्—सन्वद्भाव, 'सन्यतः' से इकार आदेश,

अ बिभ्रज् अत्—चङ्परक णि परे है, लघुसंज्ञक वर्ण (अकार) परे है, परन्तु अभ्यास में लघुसंज्ञक वर्ण नहीं है, अतः 'दीर्घो लघोः' की प्राप्ति नहीं हुई, अट्।

लघुनि०—लघुसंज्ञक वर्ण परे रहते लघु अभ्यास को दीर्घ आदेश होता है।

(6) अततक्षत्

त तक्ष् अ त्—णि, चङ्, णिलोप, द्वित्व, हलादि शेष आदि कार्य होकर,

अततक्षत्—सन्वद्भाव नहीं हुआ, तकारोत्तरवर्त्ती अकार की संयोगे गुरु' से गुरुसंज्ञा है। अतः लघु वर्ण के परे न रहते सन्वद्भाव नहीं हुआ।

(7) अररक्षत्

रक्ष्—पूर्ववत् सन्वद्भाव नहीं हुआ।

चङी०—चङ् परे रहते ही लघु अभ्यास को दीर्घ होता है।

(8) अहं पपच

पच् णल्—लिट्, तिप् को णल् आदेश, 'णलुत्तमो वा' से अणित् पक्ष में,

पपच् अ—अभ्यास को दीर्घ नहीं हुआ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परे०—चङ् परे रहते ही लघु अभ्यास को दीर्घ होता है।

(9) अचकमत

कम्—पीछे देखें।

अनग्लो०—जहाँ अक् वर्ण का लोप न हुआ हो, वहाँ लघु अभ्यास को दीर्घ होता है।

(10) अचकथत्

कथ—चौरादिक अदन्त धातु है। अक् वर्ण (अकार) का लोप होने से सन्वद्भाव तथा लघुसंज्ञक अभ्यास को दीर्घ—इन दोनों कार्यों का अभाव। शेष प्रक्रिया पिछले सूत्र पर देखें।

(3612) अत्स्मृदृत्वरप्रथम्रदस्तॄस्पशाम् *95* (2566)

स्मृ, दृ, त्वर, प्रथ, म्रद, स्तृ, स्पश–इत्येतेषामभ्यासस्य 'अत्' इत्ययमादेशो भवति चङ्परे णौ परतः। स्मृ–असस्मरत्। दृ–अददरत्। त्वर–अतत्वरत्। प्रथ–अपप्रथत्। म्रद–अमम्रदत्। स्तृ–अतस्तरत्। स्पश–अपस्पशत्। सन्वद्भावादित्त्वं प्राप्तमनेन बाध्यते। तपरकरणसामर्थ्यादति कृते 'दीर्घो लघोः' (7.4.94) इत्येतदपि न भवति–अददरत्।

अर्थ—चङ् है परे जिसके, ऐसे णि के परे रहते स्मृ, दृ, त्वर्, प्रथ्, म्रद्, स्तृ तथा स्पश्—इन अङ्गों के अभ्यास के स्थान पर ह्रस्व अकार आदेश होता है।

उदा० (1) असस्मरत्

स्मृ णिच्—'हेतुमति च' से 'णिच्',

स्मार् इ—'अचो ञ्णिति' से वृद्धि,

स्मार् इ चङ् त्—लुङ्, इतश्च, चङ्,

स्मर् अ त्—णेरनिटि, णौ चङ्युपधाया०,

सस्मरत्—'चङि' से द्वित्व, हलादिः शेषः,

असस्मरत्—अभ्यास को ह्रस्व अकार, अभ्यास के लघुसंज्ञक न रहने से 'दीर्घो लघोः' की प्राप्ति नहीं हुई, अट्।

(2) अददरत्

दृ णिच्—पूर्ववत् चङ् आदि होकर अभ्यास को अकार आदेश होता है।

(3) अतत्वरत्

त्वर्—पूर्ववत् णिच्, चङ् आदि होकर,

त त्वर् अ त्—अभ्यास को ह्रस्व अकार, अभ्यास में लघु वर्ण न रहने से 'दीर्घो लघोः' की प्रवृत्ति नहीं हुई।

(4) अपप्रथत्

प्रथ्—'अतत्वरत्' की तरह।

(5) अमम्रदत्

म्रद्—'अतत्वरत्' की तरह।

(6) अतस्तरत्

स्तृ—'अददरत्' की तरह। 'शर्पूर्वाः खयः' से तकार शेष रहा।

(7) अपस्पशत्

स्पश्—'अतत्वरत्' की तरह। 'शर्पूर्वाः खयः' अधिक है।

सन्वद्०—सन्वद्भाव से प्राप्त इत्त्व प्रकृत सूत्र के द्वारा बाधित हो जाता है।

तपर०—'अत्' पद में तपरकरणसामर्थ्य से ह्रस्व अकार आदेश कर देने पर 'दीर्घो लघोः' से अभ्यास को दीर्घ नहीं होता है। **द्र०**—अददरत्।

(3613) विभाषा वेष्टिचेष्ट्योः *96* (2583)

वेष्टि, चेष्टि–इत्येतयोरभ्यासस्य विभाषा 'अत्' इत्ययमादेशो भवति चङ्परे णौ परतः। अववेष्टत्। अविवेष्टत्। अचचेष्टत्, अचिचेष्टत्। अभ्यासह्रस्वत्वे कृते अत्त्वं पक्षे भवति।

अर्थ—चङ् है परे जिसके, ऐसे णि के परे रहते वेष्ट् व चेष्ट्—इन अङ्गों के अभ्यास को ह्रस्व अकार आदेश विकल्प से होता है।

उदा० (1) अववेष्टत्

वेष्ट् णिच् चङ् त्—णिच्, लुङ् आदि होकर, अनुबन्धलोप,

वि वेष्ट् अत्—णिलोप, द्वित्व, हलादिः शेषः, ह्रस्वः,

ववेष्टत्—अभ्यास को ह्रस्व अकार।

(2) अविवेष्टत्

वि वेष्टत्—पूर्ववत्, पक्ष में ह्रस्व अकार नहीं हुआ,

अविवेष्टत्—लघुसंज्ञक वर्ण के परे न रहने पर 'दीर्घो लघोः' प्राप्त नहीं हुआ।

(3) अचचेष्टत्

चेष्ट्—'अववेष्टत्' की तरह अभ्यास को ह्रस्व अकार हुआ।

(4) अचिचेष्टत्

'अविवेष्टत्' की तरह 'अत्' अभाव पक्ष।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अभ्यास०—'ह्रस्वः' से अभ्यास को ह्रस्वादेश कर देने पर पक्ष में ह्रस्व अकार होता है।

(3614) ई च गणः *97* (2573)

गणेरभ्यासस्य ईकारादेशो भवति चङ्परे णौ परतः, चकारादच्च। अजीगणत्, अजगणत्।

इति श्रीवामनविरचितायां काशिकायां वृत्तौ
सप्तमाऽध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥7॥

अर्थ—चङ् है परे जिसके, ऐसे णि के परे रहते 'गण्' अङ्ग के अभ्यास को 'ईकार' तथा ह्रस्व अकार आदेश होते हैं।

उदा० (1) अजीगणत्
गण् णिच् चङ् त्—स्वार्थ में णिच्, धातुसंज्ञा, लुङ् आदि,
ज गण् अत्—णिलोप, द्वित्व, कुहोश्चुः,
अजीगणत्—ई च गणः, अट्।

(2) अजगणत्
ज गणत्—इस दशा में पक्ष में अभ्यास को ह्रस्व अकार हुआ।

इति पण्डितेश्वरचन्द्रविरचितायां काशिकायाः सोमलेखाऽऽख्यायां हिन्दीटीकायां
सप्तमाऽध्यायस्य चतुर्थः पादः समाप्तः।

समाप्तश्चाऽयं सप्तमोऽध्यायः ॥7॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ
अष्टमाऽध्यायस्य प्रथमः पादः

(3615) सर्वस्य द्वे *1* (2139)

'सर्वस्य' इति च 'द्वे' इति चैतदधिकृतं वेदितव्यम्। इत उत्तरं यद्वक्ष्यामः 'पदस्य' (8.1.16) इत्यतः प्राक् 'सर्वस्य द्वे भवतः' इत्येवं तद्वेदितव्यम्। वक्ष्यति-'नित्यवीप्सयोः' (8.1.4) इति, तत्र सर्वस्य स्थाने द्वे भवतः। के द्वे भवतः? ये शब्दतश्चार्थतश्चोभयथान्तरतमे। एकस्य पचतिशब्दस्य द्वौ पचतिशब्दौ भवतः-पचतिपचति। ग्रामोग्रामो रमणीयः। यदा तु 'द्विःप्रयोगो द्विर्वचनम्', तदा स एव पचतिशब्दो द्विरावर्त्तते, तस्य द्वे आवृत्ती भवतः। सर्वस्येति किम्? विस्पष्टार्थम्। अथ पदस्येत्येव कस्मान्नोच्यते? नैवं शक्यम्, इह हि न स्यात्-प्रपचति, प्रपचतीति। इह द्रोग्धा, द्रोढा-इति घत्वढत्वयोरसिद्धत्वादकृतयोरेव तयोर्द्विर्वचनं प्राप्नोति, तत्र पश्चाद्विकल्पे सत्यनिष्टमपि स्यात्-द्रोग्धा द्रोढा, द्रोढा द्रोग्धेति। तस्माद्वक्तव्यमेतत्-'पूर्वत्रासिद्धीयमद्विर्वचने' (पु०प०) इति। 'सर्वस्य' इत्येतदेव वा कृतं सर्वकार्यप्रतिपत्त्यर्थं द्रष्टव्यम्।

अर्थ—'सर्वस्य' तथा 'द्वे'—ये दोनों अधिकार हैं। 'पदस्य' (8.1.16) से पूर्व-पूर्व यहाँ से आगे जो कुछ कहा जायेगा, वह 'सम्पूर्ण को द्वित्व होता है'—ऐसा जानना चाहिए।

'नित्यवीप्सयोः' आगे कहा जायेगा। वहाँ सम्पूर्ण के स्थान पर द्वित्व होता है। किनको द्वित्व होता है? जो शब्द तथा अर्थ—दोनों प्रकार से अन्तरतम हों। एक 'पचति' शब्द का द्वित्व 'पचति पचति' इस प्रकार होता है। इसी प्रकार—ग्रामो ग्रामो रमणीयः।

यदा०—दो बार प्रयोग को द्विर्वचन कहते हैं। तब उस 'पचति' शब्द की दो बार आवृत्ति होती है। उसकी दो आवृत्ति होती है।

सर्वस्ये०—सम्पूर्ण को ही द्वित्व होता है। यह स्पष्टता के लिए कहा गया है। 'पदस्य' ऐसा क्यों नहीं कहा गया? यह उचित नहीं था। तब निम्नलिखित में द्वित्व न हो पाता—

प्रपचति प्रपचति। द्रोग्धा द्रोढा।

यहाँ 'दाऽऽदेर्धातोर्घः' से घत्व, 'हो ढः' से ढत्व—इन दोनों के असिद्ध होने से उनके न रहते द्वित्व प्राप्त होता है। पश्चात् विकल्प होने पर अनिष्ट रूप भी होता है—

द्रोग्धा द्रोढा, द्रोढा द्रोग्धा।

तब 'पूर्वत्राऽसिद्धीयमद्विर्वचने' ऐसा कहना चाहिए।

सर्वस्य—'सर्वस्य' यह समस्त कार्य के ज्ञान के लिए है।

(3616) तस्य परमाम्रेडितम् *2* (83)

तस्य द्विरुक्तस्य यत्परं शब्दरूपं तदाम्रेडितसंज्ञं भवति। चौर चौर३ वृषल वृषल३ दस्यो दस्यो३ घातयिष्यामि त्वा, बन्धयिष्यामि त्वा। आम्रेडितप्रदेशाः-'आम्रेडितं भर्त्सने' (8.2.95) इत्येवमादयः।

अर्थ—जो द्वित्व कहा जा चुका है, उसके पर शब्द रूप की 'आम्रेडित' संज्ञा होती है। यथा—

उदा० (1) चौर चौर चौर।

(2) वृषल वृषल वृषण, त्वां घातयिष्यामि।

यहाँ 'वाक्यादेरामन्त्रितस्य' से द्वित्व हुआ है। तब प्रथम 'चौर' शब्द से उत्तर 'चौर' शब्द की आम्रेडित संज्ञा होती है। इसी प्रकार 'वृषल' शब्द की उक्त संज्ञा होती है।

(3617) अनुदात्तं च *3* (3670)

अनुदात्तं च तद्भवति यदाम्रेडितसंज्ञम्। भुङ्क्तेभुङ्क्ते। पशूनपशून्।

अर्थ—आम्रेडितसंज्ञक शब्द अनुदात्त होता है।

उदा० (1) भुङ्क्ते भुङ्क्ते

'भुजोऽनवने' से आत्मनेपद होता है। प्रकृतिस्वर प्राप्त होने पर अनुदात्त हुआ।

(2) पशून् पशून्

दृश् कु—'अर्जिदृशि०' से 'कु' प्रत्यय,

पशु शस्—प्रथमयोः पूर्वस०, तस्माच्छसो नः पुंसि,

पशून्—प्रत्ययस्वर से अन्तोदात्त है,

पशून् पशून्—नित्यवीप्सयोः। पर 'पशून्' शब्द को अनुदात्त।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(3618) नित्यवीप्सयोः *4* (2140)

नित्ये चार्थे वीप्सायां च यद्वर्तते तस्य द्वे भवतः। केषु नित्यता? तिङ्क्षु नित्यता, अव्ययकृत्सु च। कुत एतत्? अभीक्ष्ण्यमिह नित्यता। अभीक्ष्ण्यं च क्रियाधर्मः। यां क्रियां कर्त्ता प्राधान्येनानुपरमन्करोति तन्नित्यम्। पचति-पचति। जल्पतिजल्पति। भुक्त्वाभुक्त्वा व्रजति। भोजं-भोजं व्रजति। लुनीहिलुनीहि इत्येवायं लुनाति। क्त्वाणमुलोर्लोटश्च द्विर्वचनापेक्षायामेव पौनःपुन्यप्रकाशने शक्तिः। यङ् तु तन्निरपेक्षः प्रकाशयति-पुनःपुनः पचति पापच्यत इति। यदा तु तत्र द्विर्वचनं तदा क्रियासमभिहारे पौनःपुन्यं द्रष्टव्यम्-पापच्यतेपापच्यत इति। अथ केषु वीप्सा? सुप्सु वीप्सा। का पुनर्वीप्सा? व्याप्तिविशेषविषया प्रयोक्तुरिच्छा वीप्सा। का पुनः सा? नानावाचिनामधिकरणानां क्रिया-गुणाभ्यां युगपत्प्रयोक्तुर्व्याप्तुमिच्छा वीप्सा। नानाभूतार्थवाचिनां शब्दानां यान्यधिकरणानि वाच्यानि तेषां क्रिया-गुणाभ्यां युगपत्प्रयोक्तुमिच्छा वीप्सा। ग्रामोग्रामो रमणीयः। जनपदोजनपदो रमणीयः। पुरुषःपुरुषो निधनमुपैति। यत्तिङन्तं नित्यतया प्रकर्षेण च युक्तं ततः कृतद्विर्वचनात् प्रकर्षप्रत्यय इष्यते-पचतिपचतितरामिति। इह तु आढ्यतरमाढ्यतरमानयेति प्रकर्षयुक्तस्य वीप्सायोग इष्यते।

अर्थ—नित्य अर्थ में तथा वीप्सा में जो वर्त्तमान, उस सम्पूर्ण को द्वित्व होता है। नित्यता किन-किन में होती है? तिङ् शब्दों तथा कृत् प्रत्ययान्त अव्यय में नित्यता होती है। यह किस प्रकार है? 'अभीक्ष्ण्य' नित्यता कहलाती है। क्रिया का धर्म आभीक्ष्ण्य है। जिस क्रिया को कर्त्ता प्रधान रूप से करता है, वह नित्य है।

उदा० (1) पचति पचति
यहाँ द्वित्व हुआ।

(2) जल्पति जल्पति (पूर्ववत्)।

(3) भुक्त्वा भुक्त्वा व्रजति
भुज् क्त्वा—आभीक्ष्ण्ये णमुल् च, कृदतिङ्, क्त्वातोसुन्०,
भुक्त्वा भुक्त्वा—पूर्ववत्।

(4) भोजं भोजम्
भुज् णमुल्—आभीक्ष्ण्ये णमुल् च, शेष पूर्ववत्। कृन्मेजन्तः।

(5) लुनीहि लुनीहि इत्येवाऽयं लुनाति
लू लोट्—क्रियासमभिहारे,
लु नी हि —ई हल्यघोः, द्वित्व।

क्त्वा—क्त्वा, णमुल् तथा लोट्—इनके द्वित्व की अपेक्षा में ही पुनः-पुनः प्रकाशन करने में शक्ति होती है। 'यङ्' प्रत्यय तो उससे निरपेक्ष है। यथा—पुनः-पुनः पचति—पापच्यते। जब वहाँ भी द्वित्व होता है, तब क्रियासमभिहार में पौनःपुन्य दृष्टिगोचर होता है—पापच्यते पापच्यते।

अथ०—वीप्सा किन-किन में होती है? सुबन्त शब्दों में वीप्सा होती है। 'वीप्सा' किसे कहते हैं? प्रयोग करने वाले की व्याप्ति-विशेषविषयक इच्छा ही 'वीप्सा' है। यह क्या होती है? अनेकवाची कारकों को क्रिया तथा गुण के द्वारा प्रयोग कर्त्ता की व्याप्त करने के लिए जो इच्छा होती है, वह 'वीप्सा' कहलाती है।

नाना०—अनेक अर्थवाची शब्दों के जो वाच्य कारक हैं, उनको क्रिया तथा गुण के द्वारा युगपत् प्रयोग करने की इच्छा ही 'वीप्सा' है। यथा—

(6) ग्रामो ग्रामो रमणीयः।
(7) जनपदो जनपदो रमणीयः।
(8) पुरुषः पुरुषो निधनमुपैति।

यत्तिङन्त०—जो तिङन्त शब्द नित्यता से तथा प्रकर्ष गुण से युक्त है, उससे द्वित्व करने पर प्रकर्षसूचक प्रत्यय भी होता है। यथा—

(9) पचति पचतितराम्
यहाँ 'तरप्' हुआ है।

इह०—आढ्यतरम् आढ्यतरम् आनय—इस स्थल पर प्रकर्ष-युक्त शब्द का वीप्सायोग होता है।

(3619) परेर्वर्जने *5* (2141)

परीत्येतस्य वर्जनेऽर्थे द्वे भवतः। परिपरि त्रिगर्तेभ्यो वृष्टो देवः। परिपरि सौवीरेभ्यः। परिपरि सर्वसेनेभ्यः। वर्जनम्=परिहारः। वर्जन इति किम्? ओदनं परिषिञ्चति। *परेर्वर्जनेऽसमासे वेति वक्तव्यम्* (म०भा०)। परिपरि त्रिगर्त्तेभ्यो वृष्टो देवः, परि त्रिगर्त्तेभ्यः। समासे तु तेनैवोक्तत्वाद्वर्जनस्य नैव भवति-परित्रिगर्त्तं वृष्टो देव इति।

अर्थ—'वर्जन' अर्थ में वर्त्तमान 'परि' को द्वित्व होता है।

उदा० (1) परि परि त्रिगर्तेभ्यो वृष्टो देवः
'अपपरी वर्जने' से 'परि' की कर्मप्रवचनीय संज्ञा, 'पञ्चम्यपाङ् परिभिः' से पञ्चमी। द्वित्व।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(2) परि परि सौवीरेभ्यः (पूर्ववत्)।
(3) परि परि सर्वसेनेभ्यः (पूर्ववत्)।

वर्जन०—वर्जन अर्थ में वर्त्तमान 'परि' को द्वित्व होता है।

(4) ओदनं परिषिञ्चति
यहाँ 'परि' वर्जन अर्थ में वर्त्तमान नहीं है। द्वित्व नहीं हुआ।

परेर्व०—वर्जन अर्थ में वर्त्तमान 'परि' शब्द को असमास की दशा में द्वित्व विकल्प से होता है।

(5) परि परि त्रिगर्त्तेभ्यः
द्वित्व हुआ।

(6) परि त्रिगर्त्तेभ्यः
पक्ष में द्वित्व नहीं हुआ।

समासे०—समास में कथन न होने से द्वित्व नहीं होता है।

(7) परित्रिगर्त्तम्
समास हुआ, द्वित्व नहीं हुआ।

(3620) प्रसमुपोदः पादपूरणे *6* (3599)

प्र, सम्, उप, उत्-इत्येतेषां पादपूरणे द्वे भवतो द्विर्वचनेन चेत्पादः पूर्यते। प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे (ऋ० 7.8.4)। संसमिद्युवसे वृषन् (ऋ० 10.191.1) उपोपमे परामृश (ऋ० 1.126.7)। किं नोदुदुहर्षसे दातवाउ (ऋ० 4.21.9)। पादपूरण इति किम्? प्रदेवं देव्या धिया (ऋ० 10.176.2)। सामर्थ्याच्छन्दस्येवैतद्विधानम्। भाषायामनर्थकं स्यात्; प्रयोगाभावात्।

अर्थ—पाद पूरण करने में प्र, सम्, उप तथा उद्—इनको द्वित्व होता है।

भाव यह है कि इन शब्दों को द्वित्व करने पर यदि पादपूर्त्ति होती हो, तो इन्हें द्वित्व होता है।

उदा० (1) प्रप्राऽयमग्निर्भरतस्य शृण्वे
पादपूर्त्ति के लिए 'प्र' को द्वित्व हुआ है।

(2) संसमिद्युवसे वृषन्
पूर्ववत् 'सम्' को द्वित्व।

(3) उपोपमे परामृश
पूर्ववत् 'उप' को द्वित्व।

(4) किं नोदुदुहर्षसे दातवाउ

पादपूर०—पादपूर्त्ति की दशा में ही प्र आदि को द्वित्व होता है।

(5) प्रदेवं देव्या धिया
यहाँ पादपूर्त्ति इष्ट नहीं है। अतः द्वित्व नहीं हुआ।

सामर्थ्यवशात् वेद में ही यह विधान होता है। प्रयोग के अभाव से लोक में अनर्थक होता है।

(3621) उपर्यध्यधसः सामीप्ये *7* (2142)

उपरि, अधि, अधस्-इत्येतेषां द्वे भवतः सामीप्ये विवक्षिते। सामीप्यम्=प्रत्यासत्तिः कालकृता, देशकृता च। उपर्युपरि दुःखम्। उपर्युपरि ग्रामम्। अध्यधि ग्रामम्। अधोऽधो नगरम्। सामीप्य इति किम्? उपरि चन्द्रमाः। इह कस्मान्न भवति—उपरि शिरसो घटं धारयति? औत्तराधर्यमेव विवक्षितं न सामीप्यमिति द्विर्वचनं न भवति।

अर्थ—सामीप्य विवक्षित हो तो उपरि, अधि तथा अधस्—इनको द्वित्व होता है।

सामीप्य कालकृत व देशकृत—दो प्रकार से होती है।

उदा० (1) उपर्युपरि दुःखम्
सामीप्य अर्थ में द्वित्व हुआ।

(2) उपर्युपरि ग्रामम् (पूर्ववत्)।

(3) अध्यधि ग्रामम्
पूर्ववत् 'अधि' को द्वित्व।

(4) अधोऽधो नगरम्
'अधस्' को द्वित्व।

सामीप्य०—सामीप्य अर्थ में ही 'उपरि' आदि को द्वित्व होता है। यथा—उपरि चन्द्रमाः। यहाँ 'सामीप्य' अर्थ इष्ट नहीं है। अतः द्वित्व नहीं हुआ।

इह०—निम्नलिखित स्थल पर द्वित्व क्यों नहीं होता है। यथा—

उपरि शिरसो घटं धारयति

यह औत्तराधर्य अर्थ विवक्षित है; सामीप्य अर्थ नहीं। अतः द्वित्व नहीं हुआ।

(3622) वाक्यादेरामन्त्रितस्यासूयासम्मति-कोपकुत्सनभर्त्सनेषु *8* (2143)

एकार्थः पदसमूहः=वाक्यम्। वाक्यादेरामन्त्रितस्य द्वे भवतः असूया-सम्मति-कोप-कुत्सन-भर्त्सनेषु यदि तद्वाक्यं भवति। तत्र परगुणानामसहनम्=असूया। पूजा=

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सम्मतिः । कोपः = क्रोधः । निन्दनम् = कुत्सनम् । अपकारशब्दैर्भयोत्पादनम् = भर्त्सनम् । एते च प्रयोक्तृधर्माः, नाभिधेयधर्माः । असूयायां तावत्–माणवक३ माणवक अभिरूपक३ अभिरूपक रिक्तं ते आभिरूप्यम् । सम्मतौ–माणवक३ माणवक अभिरूपक३ अभिरूपक शोभनः खल्वसि । कोपे–माणवक३ माणवक, अविनीतक३ अविनीतक इदानीं ज्ञास्यसि जाल्म । कुत्सने–शक्तिके३ शक्तिके, यष्टिके३ यष्टिके रिक्ता ते शक्तिः । भर्त्सने–चौर चौर वृषल वृषल३ घातयिष्यामि त्वा, बन्धयिष्यामि त्वा । असूयादिषु 'स्वरितमाम्रेडितेऽसूयासम्मतिकोपकुत्सनेषु' (8.2.103) इति पूर्वपदस्य प्लुतः । भर्त्सने तु 'आम्रेडितं भर्त्सने' (8.2.95) इत्याम्रेडितस्यैव प्लुतः । वाक्यादेरिति किम् ? अन्तस्य मध्यस्य च मा भूत्–शोभनः खल्वसि माणवक । आमन्त्रितस्येति किम् ? उदारो देवदत्तः । असूयादिष्विति किम् ? देवदत्त गामभ्याज शुक्लाम् ।

अर्थ—एकार्थ पदसमूह को 'वाक्य' कहते हैं । वाक्य के आदि में वर्त्तमान आमन्त्रितसंज्ञक को द्वित्व होता है; असूया, सम्मति, कोप, कुत्सन तथा भर्त्सन आदि अर्थों में ।

दूसरों के गुणों को सहन न कर पाना 'असूया' है । सम्मति का अर्थ 'पूजा' है । कोप का अर्थ 'क्रोध' है । कुत्सन का अर्थ 'निन्दा' है । अपकारजनक शब्दों के द्वारा भय उत्पन्न करना 'भर्त्सन' कहलाता है । ये सभी प्रयोक्ता के धर्म हैं; अभिधेय के नहीं हैं ।

उदा० (1) माणवक३ माणवक
अभिरूपक३ अभिरूपक रिक्तं ते अभिरूप्यम्
यहाँ 'साऽऽमन्त्रितम्' से आमन्त्रितसंज्ञा हुई । द्वित्व हुआ ।

(2) माणवक३ माणवक, अभिरूपक३ अभिरूपक शोभनः खल्वसि
सम्मति अर्थ में पूर्ववत् द्वित्व हुआ ।

(3) माणवक३ माणवक
अविनीतक३ अविनीतक इदानीं ज्ञास्यसि जाल्म
यहाँ कोप अर्थ इष्ट है ।

(4) शक्तिके३ शक्तिके
यष्टिके यष्टिके, रिक्ता ते शक्तिः—
यहाँ कुत्सत अर्थ अभिप्रेत है ।

(5) चौर३ चौर
वृषल३ वृषल घातयिष्यामि त्वा, बन्धयिष्यामि त्वा—
यहाँ भर्त्सन अर्थ है ।

असूया०—असूया आदि अर्थों में 'स्वरितमाम्रेडिते०' से पूर्व पद को प्लुत होता है । भर्त्सन अर्थ में 'भर्त्सने' के द्वारा आम्रेडितसंज्ञक को ही प्लुत होता है ।

वाक्यादे०—वाक्य के आदि में वर्त्तमान जो आमन्त्रितसंज्ञक, उसे द्वित्व होता है । तब अन्त में स्थित तथा मध्य में स्थित को नहीं होता है । यथा—
शोभनः खल्वसि माणवक—
यहाँ द्वित्व नहीं हुआ ।

आमन्त्रि०—आमन्त्रितसंज्ञक को ही द्वित्व होता है । यथा—
उदारो देवदत्तः
यहाँ सम्मति अर्थ अभिप्रेत है, परन्तु आमन्त्रित संज्ञा न होने से द्वित्व नहीं हुआ ।

असूया०—असूयादि अर्थों में ही आमन्त्रितसंज्ञक को द्वित्व होता है । देवदत्त गामभ्याज शुक्लाम्—यहाँ देवदत्त आमन्त्रितसंज्ञक है तथा वाक्य के आदि में वर्त्तमान है, परन्तु असूया आदि अर्थ नहीं हैं । अतः द्वित्व नहीं हुआ ।

(3623) एकं बहुव्रीहिवत् *9* (2144)

एकमित्येतच्छब्दरूपं द्विरुक्तं बहुव्रीहिवद्भवति । बहुव्रीहिवत्त्वे प्रयोजनम्–सुब्लोपपुंवद्भावौ । एकैकमक्षरं पठति । एकैकयाऽऽहुत्या जुहोति । सर्वनामसंज्ञाप्रतिषेधस्वरसमासान्ताः समासाधिकारविहिते बहुव्रीहौ विज्ञायन्ते । तेनातिदेशिके बहुव्रीहौ न भवन्ति । एकैकस्मै–'न बहुव्रीहौ' (1.1.29) इति प्रतिषेधो न भवति; बहुव्रीहिरेव यो बहुव्रीहिरिति विज्ञानात् । नन, सुसु–'नञ्सुभ्याम्' (6.2.172) इत्यन्तोदात्तत्वं न भवति । ऋक्ऋक्, पूःपूः–'ऋक्पूः' (5.4.74) इति समासान्तो न भवति ।

अर्थ—द्विर्वचन किया गया जो एक शब्द, वह बहुव्रीहि के समान होता है ।

बहुव्रीहि के समान होने के दो प्रयोजन हैं—
(क) सुप् का लोप,
(ख) पुंवद्भाव ।

उदा० (1) एकैकम् अक्षरं पठति
वीप्सा अर्थ में 'नित्यवीप्सयोः' से द्वित्व, बहुव्रीहिवत् होने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

से समास, अतिदेश होकर 'सुपो धातुप्राति०' के द्वारा सुप् का लुक् तथा 'अतोऽम्' से 'अम्' हुआ है।

(2) एकैकयाऽऽहुत्या जुहोति
पूर्ववत् समास व सुप् का लुक् होता है।

सर्वनाम०—समास अधिकार में विहित बहुव्रीहि में जो सर्वनाम संज्ञा का निषेध, स्वर तथा समासान्त कार्य, वे सभी यहाँ नहीं होते हैं। यथा—

(3) एकैकस्मै
एकैक ङे—'न बहुव्रीहौ' से प्राप्त निषेध नहीं होता है, 'सर्वनाम्नः स्मै' से 'स्मै' होता है।

बहुव्रीहे०—बहुव्रीहि ही बहुव्रीहि होता है। नन, सुसु—यहाँ 'नञ्सुभ्याम्' से अन्तोदात्तता नहीं होती है। इसी प्रकार ऋक् ऋक् तथा पूः पूः इन स्थलों पर 'ऋक्पू०' की प्राप्ति नहीं होती है।

(3624) आबाधे च *10* (2145)

आबाधनमाबाधः = पीडाप्रयोक्तृधर्मः, नाभिधेयधर्मः; तत्र वर्त्तमानस्य द्वे भवतः, बहुव्रीहिवच्चास्य कार्यं भवति। गतगंतः। नष्टनंष्टः। पतितपंतितः। गतगंता। नष्टनंष्टा। पतितपंतिता। प्रियस्य चिरगमनादिना पीड्यमानः कश्चिदेवं प्रयुङ्क्ते प्रयोक्ता।

अर्थ—'आबाध' का अर्थ है—आबाधन। यह आबाधन प्रयोग कर्त्ता का धर्म है; अभिधेय का धर्म नहीं है। आबाधन अर्थ में वर्त्तमान को द्वित्व होता है तथा बहुव्रीहि के समान इसे कार्य होता है।

उदा० (1) गतगतः
गतः गतः—सु का लुक् हुआ,
'गतगता' इस स्थल पर बहुव्रीहिवत् होकर पुंवद्भाव होता है।

(2) नष्टनष्टः
नष्टो नष्टः—सु लुक्।
नष्टनष्टा—पुंवद्भाव।

(3) पतितपतितः
पूर्ववत् सुलुक्।
'पतितपतिता' में पुंवद्भाव।

प्रियस्य०—प्रिय व्यक्ति के चिरगमन आदि के द्वारा पीडित किया जाता हुआ कोई इस प्रकार प्रयोग करता है।

(3625) कर्मधारयवदुत्तरेषु *11* (2146)

इत उत्तरेषु द्विर्वचनेषु कर्मधारयवत्कार्यं भवतीत्येतद्वेदितव्यम्। कर्मधारयत्वे प्रयोजनम्–सुब्लोपपुंवद्भावान्तोदात्तत्वानि (म०भा०)। सुब्लोपः–पटुपटुः। मृदुमृदुः। पण्डितपण्डितः। पुंवद्भावः–पटुपट्वी। मृदुमृद्वी। कालककालिका। कोपधाया अपि हि कर्मधारयवद्भावात् 'पुंवत्कर्मधारय' (6.2.42) इति पुंवद्भावो भवति। अन्तोदात्तत्वम्–पटुपटुः। पटुपट्वी। समासान्तोदात्तत्वमनेनैव विधीयत इति परत्वादाम्रेडितानुदात्तत्वं बाध्यते। अधिकारेणैव सिद्धे यद् 'उत्तरेषु' इति वचनं तद्विस्पष्टार्थम्।

अर्थ—यहाँ से आगे द्विर्वचन के स्थलों पर कर्मधारय के समान कार्य होता है—ऐसा जानना चाहिए।

कर्मधारयवत् करने के ये प्रयोजन हैं—
सुप् का लोप, पुंवद्भाव तथा अन्तोदात्त।

उदा० (1) पटुपटुः
पटुः पटुः—कर्मधारयवत् हुआ, 'सुपो धातुप्राति०' से सुप् का लुक्,
पटुपटु सु—विभक्तिकार्य।

(2) पण्डितपण्डितः
पूर्ववत् 'सु' लुक्।

(3) पटुपट्वी
पट्वी पट्वी—पुंवद्भाव हुआ।

(4) मृदुमृद्वी (पूर्ववत्)।

(5) कालककालिका
कालिका कालिका—पुंवद्भाव।

कोपधा०—कोपध 'कालिका' शब्द को भी कर्मधारयवत् होने से 'पुंवत् कर्मधारय०' से पुंवद्भाव होता है।

(6) पटुपटुः
अन्तोदात्त हुआ।

(7) पटुपट्वी
पूर्ववत् अन्तोदात्त।

अन्तोदा०—समासलक्षण अन्तोदात्तता का इसके द्वारा ही विधान होता है। तब पर होने से आम्रेडितलक्षण अनुदात्तस्वर का बाध होता है।

अधिकारे०—'कर्मधारयवत्' यह अतिदेश कार्य उत्तर शास्त्र में अधिकारवशात् स्वतः प्राप्त होता है, तदपि स्पष्टता के लिए 'उत्तरेषु' का पाठ है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(3626) प्रकारे गुणवचनस्य *12* (2147)

प्रकारः–भेदः, सादृश्यं च। तदिह सादृश्यं प्रकारो गृह्यते। प्रकारे वर्तमानस्य गुणवचनस्य द्वे भवतः। पटु-पटु। मृदुमृदु। पण्डितपण्डितः। अपरिपूर्णगुण इत्यर्थः। परिपूर्णगुणेन न्यूनगुणस्योपमाने सत्येवं प्रयुज्यते। जातीयरोऽनेन द्विर्वचनेन बाधनं नेष्यते। पटुजातीयः। मृदुजातीयः–इत्यपि हि भवति। तत्कथम्? वक्ष्यमाणमन्यतरस्यांग्रहणमुभयोः शेषो विज्ञायते। प्रकार इति किम्? पटुर्देवदत्तः। गुणवचनस्येति किम्? अग्निर्माणवकः। गौर्वाहीकः। यद्यप्यत्राग्निशब्दः, गोशब्दश्च मुख्यार्थसम्बन्धादवधृतभेदं तैक्ष्ण्यजाड्यादिकमर्थान्तरे गुणविशेषमेव प्रतिपादयितुं प्रवृत्तः, तथापि सर्वदा गुणवचनो न भवतीति न द्विरुच्यते। *आनुपूर्व्ये द्वे भवत इति वक्तव्यम्* (म० भा०)। मूलेमूले स्थूलाः। अग्रेऽग्रे सूक्ष्माः। ज्येष्ठंज्येष्ठं प्रवेशय। *स्वार्थे अवधार्यमाणेऽनेकस्मिन् द्वे भवत इति वक्तव्यम्* (म० भा०)। अस्मात् कार्षापणादिह भवद्भ्यां माषंमाषं देहि। स्वार्थ एतद् द्विर्वचनम्, न वीप्सायाम्। अत्र हि द्वावेव माषौ दीयेते, न सर्वे कार्षापणसम्बन्धिनो माषाः, तेन वीप्सा न विद्यते। अवधार्यमाण इति किम्? अस्मात् कार्षापणादिह भवद्भ्यां माषमेकं देहि, द्वौ माषौ देहि, त्रीन्वा माषान् देहि। अनेकस्मिन्निति किम्? अस्मात् कार्षापणादिह भवद्भ्यां माषमेकं देहि। *चापले द्वे भवत इति वक्तव्यम्* (म० भा०)। सम्भ्रमेण प्रवृत्तिः = चापलम्। अहिरहिः बुध्यस्व बुध्यस्व। नावश्यं द्वावेव शब्दौ प्रयोक्तव्यौ, किं तर्हि? यावद्भिः शब्दैः सोऽर्थोऽवगम्यते तावन्तः प्रयोक्तव्याः–अहिरहिरहिः बुध्यस्वबुध्यस्वबुध्यस्व इति। *क्रियासमभिहारे द्वे भवत इति वक्तव्यम्* (म० भा०)। स भवान् लुनीहिलुनीहीत्येवायं लुनाति। *आभीक्ष्ण्ये द्वे भवत इति वक्तव्यम्* (म० भा०)। भुक्त्वाभुक्त्वा व्रजति। भोजं भोजं व्रजति। 'नित्य' (8.1.4) इत्येव सिद्धम् इति तन्नोक्तम्। *डाचि द्वे भवतः इति वक्तव्यम्* (म० भा०)। पटपटाकरोति। पटपटायते। अव्यक्तानुकरणडाजन्तस्य द्विर्वचनमिष्यते। इह न भवति–द्वितीयाकरोति, तृतीयाकरोति। तदर्थं केचिद् 'डाचि बहुलम्' इति पठन्ति। *पूर्वप्रथमयोरर्थातिशयविवक्षायां द्वे भवत इति वक्तव्यम्* (म० भा०)। पूर्वपूर्वं पुष्यन्ति। प्रथमंप्रथमं पच्यन्ते। आतिशायिकोऽपि दृश्यते–पूर्वत्तरं पुष्यन्ति। प्रथमतरं पच्यन्त इति। *डतरडतमयोः समसम्प्रधारणयोः स्त्रीनिगदे भावे द्वे भवत इति वक्तव्यम्* (म० भ०)। उभाविमावाढ्यौ। कतराकतरा अनयोराढ्यता। सर्व इमे आढ्याः। कतमाकतमा एषामाढ्यता। डतरडतमाभ्यामन्यत्रापि हि दृश्यते–उभाविमावाढ्यौ। कीदृशीकीदृशी अनयोराढ्यता। तथा स्त्रीनिगदाद्भावादन्यत्रापि हि दृश्यते–उभाविमावाढ्यौ। कतरः कतरोऽनयोर्विभव इति। *कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नो द्वे भवत इति वक्तव्यम्* (म० भा०)। *समासवच्च बहुलम्*। *यदा न समासवत्प्रथमैकवचनं तदा पूर्वपदस्य*। अन्यमन्यमिमे ब्राह्मण भोजयन्ति। अन्योऽन्यमिमे ब्राह्मणा भोजयन्ति। अन्योऽन्यस्य ब्राह्मणा भोजयन्ति। इतरेतरं भोजयन्ति। इतरेतरस्य भोजयन्ति। *स्त्रीनपुंसकयोरुत्तरपदस्य चाभावो वक्तव्यः* (म० भा०)। अन्योऽन्यामिमे ब्राह्मण्यौ भोज्यतः। अन्योऽन्यं भोजयतः। इतरेतरां भोजयतः। इतरेतरं भोजयतः। अन्योऽन्यामिमे ब्राह्मणकुले भोजयतः। अन्योऽन्यमिमे ब्राह्मणकुले भोजयतः। इतरेतरामिमे ब्राह्मणकुले भोजयतः। इतरेतरमिमे ब्राह्मणकुले भोजयतः।

अर्थ—भेद और सादृश्य को 'प्रकार' कहते हैं। यहाँ सादृश्य अर्थ लिया गया है।

प्रकार अर्थ में वर्त्तमान गुणवाची शब्द को द्वित्व होता है।

उदा०—(1) पटुपटु

गुणवाची 'पटु' शब्द को द्वित्व हुआ।

(2) मृदुमृदुः (पूर्ववत्)।

(3) पण्डितपण्डितः (पूर्ववत्)।

अपरिपूर्ण०—अपरिपूर्ण गुण—यह अर्थ है। परिपूर्ण गुण के द्वार न्यून गुण का उपमान होने पर ही प्रयुक्त होता है।

इस द्विर्वचन के द्वार जातीयर् का बाध नहीं होता है।

(4) पटुजातीयः

'जातीयर्' प्रत्यय हुआ है।

(5) मृदुजातीयः (पूर्ववत्)।

तत्कथम्०—यह किस प्रकार होता है। वक्ष्यमाण 'अन्यतरस्याम्' पद का ग्रहण दोनों में शेष होता है।

प्रकार०—प्रकार अर्थ में वर्त्तमान गुणवाची को द्वित्व होता है। यथा—

पटुर्देवदत्तः—यहाँ द्वित्व नहीं हुआ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गुणवच०—**गुणवाची** शब्द को ही प्रकार अर्थ में द्वित्व होता है। यथा—अग्निर्माणवकः, गौर्वाहीकः।

यहाँ 'अग्नि' तथा 'गो' शब्द गुणवाची नहीं हैं। यद्यपि यहाँ 'अग्नि' तथा 'गो' शब्द मुख्यार्थ सम्बन्धवशात् भेद को धारण किये हुए तीक्ष्णता व जड़ता आदि गुणविशेष को अन्य अर्थ में प्रतिपादित करने के लिए प्रवृत्त हुए हैं, तथापि ये सर्वथा गुणवाची नहीं हैं। अतः द्वित्व नहीं होता है।

आनुपूर्व्ये०—आनुपूर्वी में द्वित्व होता है। यथा—

(6) मूले मूले स्थूलाः
द्वित्व हुआ है।

(7) अग्रेऽग्राः स्थूलाः
पूर्ववत् द्वित्व।

(8) ज्येष्ठं ज्येष्ठं प्रवेशय
पूर्ववत् द्वित्व।

स्वार्थे०—अवधार्यमाण स्वार्थ में द्वित्व होता है। यथा—
अस्मात् कार्षापणादिह भवद्भ्यां माषंमाषं देहि।
यह द्वित्व स्वार्थ में है; वीप्सा अर्थ में नहीं है। यहाँ दो माष ही दिये जाते हैं; कार्षापण से सम्बन्धित सभी माष नहीं। अतः वीप्सा अर्थ वर्त्तमान नहीं है।

अवधा०—**अवधार्यमाण** में ही द्वित्व होता है। यथा—
अस्मात् कार्षापणाद् इह भवद्भ्यां माषम् एकं देहि, द्वौ माषौ देहि, त्रीन् माषान् देहि
यहाँ अवधार्यमाण न होने से द्वित्व नहीं हुआ।

अनेक०—**एक** अर्थ में द्वित्व नहीं होता है। यथा—
अस्मात् कार्षापणाद् इह भवद्भ्यां माषम् एकं देहि
यहाँ द्वित्व नहीं हुआ।

चापले०—चलपता अर्थ में द्वित्व होता है। यथा—

(9) अहिरहिः, (10) बुध्यस्व बुध्यस्व।

यहाँ शब्दों का दो बार पाठ नहीं हो। क्यों ? जितने शब्दों के द्वारा अर्थ का बोध होता है, उतने शब्दों का प्रयोग करना चाहिए। यथा—

अहिरहिरहिः, बुध्यस्व बुध्यस्व बुध्यस्व।

क्रिया०—क्रियासमभिहार अर्थ में द्वित्व होता है। यथा—

(10) स भवान् लुनीहि लुनीहीत्येवाऽयं लुनाति।

आभीक्ष्ण्ये०—आभीक्ष्ण्य अर्थ में द्वित्व होता है।

(12) भुक्त्वा भुक्त्वा व्रजति
(13) भोजं भोजं व्रजति

नित्य०—'नित्य इत्येव सिद्धम्' यह कहा जा चुका है।
डाचि०—डाच् प्रत्यय परे रहते द्वित्व होता है।

(14) पटपटाकरोति—पटपटायते।

अव्यक्ता०—अव्यक्तानुकरणलक्षण 'डाच्' प्रत्ययान्त को द्वित्व होता है। अतः निम्नलिखित में द्वित्व नहीं होता है—

(15) द्वितीयाकरोति
'द्वितीय' शब्द अव्यक्तानुकरण नहीं है। अतः 'डाच्' परे रहते द्वित्व नहीं हुआ।

(16) तृतीयाकरोति (पूर्ववत्)।

तदर्थ०—इसलिए ही कुछ विद्वान् 'डाचि बहुलम्' यह पाठ करते हैं।

पूर्व०—पूर्व तथा प्रथम शब्दों को अर्थातिशय की विवक्षा में द्वित्व होता है।

(17) पूर्वं पूर्वं पुष्प्यन्ति
द्वित्व हुआ।
(18) प्रथमं प्रथमं पच्यन्ते (पूर्ववत्)।

आतिशा०—पक्ष में आतिशयिक भी उपलब्ध होता है। 'सर्वस्य द्वे' से द्वित्व का विधान है। यहाँ 'विभाषा' का अधिकार होने से विकल्प से द्वित्व होता है। जब द्वित्व नहीं होता तो पक्ष में आतिशयिक भी रहता है। यथा—
पूर्वतरं पुष्प्यन्ति, प्रथमतरं पच्यन्ते।

डतर०—समान सम्प्रधारणा वाले डतर व डतम प्रत्ययान्त शब्दों को स्त्रीनिगद भाव में द्वित्व होता है।

(19) कतरा कतरा अनयोराढ्यता
उभाविमावाढ्यौ—यहाँ 'कतरा' में 'किंयत्तदोः' से 'डतरच्' हुआ है। द्वित्व हुआ।

(20) कतमा कतमा एषामाढ्यता
यहाँ 'वा बहूनां जाति०' से 'डतमच्' हुआ है। द्वित्व हुआ।

डतर०—डतर-डतम प्रत्ययान्त से अन्यत्र भी द्वित्व उपलब्ध होता है। यथा—
उभाविमावाढ्यौ, कीदृशी कीदृशी अनयोराढ्यता।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तथा०—स्त्रीनिगद भाव से अन्यत्र भी द्वित्व प्राप्त होता है। यथा—

उभाविमावाढ्यौ। कतरः कतरोऽनयोर्विभवः।

कर्मव्यतिहार अर्थ में सर्वनाम को द्वित्व होता है। बहुलता से समास की तरह होता है। जिस पक्ष में समास नहीं होता है, उस पक्ष में पूर्व पद को प्रथमा एकवचन होता है।

(21) अन्यम् अन्यम् इमे ब्राह्मणा भोजयन्ति
समास नहीं हुआ।

(22) अन्योऽन्यम् इमे ब्राह्मणा भोजयन्ति।
समास हुआ।

(23) अन्योऽन्यस्य ब्राह्मणा भोजयन्ति।
पूर्ववत्। षष्ठ्यन्त का समास।

(24) इतरेतरं भोजयन्ति।
समास हुआ।

(25) इतरेतरस्य भोजयन्ति।
षष्ठ्यन्त का समास।

स्त्रीनपुं०—स्त्रीलिङ्ग तथा नपुंसक लिङ्ग में जो सर्वनाम शब्द कर्मव्यतिहार अर्थ में वर्तमान है, उसके उत्तर पद को विकल्प से 'आम्' आदेश होता है।

(26) अन्योऽन्याम् इमे ब्राह्मण्यौ भोजयतः
'अन्याम्' का द्विर्वचन, विभक्ति को 'आम्' आदेश, पूर्व पद को बहुलता से ह्रस्वादेश।

(27) अन्योऽन्यं भोजयतः
उत्तर पद को भी पूर्ववत् ह्रस्वादेश।

(28) इतरेतरां भोजयतः
समासवद्भाव होने पर सर्वनाम शब्द को पुंवद्भाव होकर 'टाप्' की निवृत्ति हो जाती है।

(29) इतरेतरं भोजयतः
समास।

(30) अन्योऽन्याम् ब्राह्मणकुले भोजयतः
नपुंसक लिङ्ग का रूप है। पूर्ववत् उत्तर पद को 'आम्' हुआ है।

(31) इतरेतरामिमे ब्राह्मणकुले भोजयतः
नपुंसकलिङ्ग में।

(32) इतरेतरमिमे ब्राह्मणकुले भोजयतः (पूर्ववत्)।

(3627) अकृच्छ्रे प्रियसुखयोरन्यतरस्याम् *13* (2148)

प्रिय, सुख-इत्येतयोरन्यतरस्यां द्वे भवतः अकृच्छ्रे द्योत्ये। कृच्छ्रम् = दुःखम्, तदभावोऽकृच्छ्रम्। प्रियप्रियेण ददाति। सुखसुखेन ददाति। प्रियेण ददाति। सुखेन ददाति। अखिद्यमानो ददातीत्यर्थः। अकृच्छ्र इति किम्। प्रियः पुत्रः। सुखो रथः।

अर्थ—अकृच्छ्र अर्थ गम्यमान हो तो प्रिय तथा सुख—इन शब्दों को विकल्प से द्वित्व होता है।

उदा० (1) प्रियप्रियेण ददाति
प्रियेण प्रियेण—सुप् का लुक्,
प्रियप्रिय टा—टाङसिङसामिनात्०।

(2) सुखसुखेन ददाति
सुखेन सुखेन—पूर्ववत्।

(3) प्रियेण ददाति
पक्ष में द्वित्व नहीं हुआ।

(4) सुखेन ददाति
पक्ष में द्वित्व नहीं हुआ।

अकृच्छ्रे—अकृच्छ्र अर्थ में ही द्वित्व होता है।
प्रियः पुत्रः, सुखो रथः
द्वित्व नहीं हुआ।

(3628) यथास्वे यथायथम् *14* (2149)

यो य आत्मा यद्यदात्मीयं तत्तद्यथास्वं तस्मिन् यथायथमिति निपात्यते। यथाशब्दस्य द्विर्वचनं नपुंसकलिङ्गता च निपात्यते। ज्ञाताः सर्वे पदार्था यथायथम्। यथास्वभावमित्यर्थः। सर्वेषां तु यथायथं यथात्मीयमित्यर्थः।

अर्थ—'यथायथम्' शब्द निपातनसिद्ध है। 'यथा' शब्द को द्वित्व तथा उसे नपुंसकलिङ्गता—ये कार्य निपातन से होते हैं।

उदा० (1) यथायथम्
यथा यथा—ह्रस्वो नपुंसके०,
यथायथ सु—विभक्तिकार्य।

(3629) द्वन्द्वं रहस्यमर्यादावचनव्युत्क्रमणयज्ञपात्रप्रयोगाभिव्यक्तिषु *15* (2150)

'द्वन्द्वम्' इति द्विशब्दस्य द्विर्वचनं पूर्वपदस्याम्भावः अत्वं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चोत्तरपदस्य निपात्यते रहस्य, मर्यादावचन, व्युत्क्रमण, यज्ञपात्र-प्रयोग, अभिव्यक्ति-इत्येतेषु अर्थेषु। तत्र रहस्यं द्वन्द्वशब्दवाच्यम्, इतरे विषयभूताः। द्वन्द्वं मन्त्रयन्ते। मर्यादावचने-मर्यादा = स्थित्यनतिक्रमः। आचतुरं हीमे पशवो द्वन्द्वं मिथुनायन्ते। मात्रा पुत्रेण मिथुनं गच्छति, पौत्रेण, तत्पुत्रेणापीति मर्यादार्थः। व्यत्क्रमणे-द्वन्द्वं व्युत्क्रान्ताः। व्युत्क्रमणम् = भेदः, पृथगवस्थानम्। द्विवर्गसम्बन्धेन पृथगवस्थिता द्वन्द्वं व्युत्क्रान्ता इत्युच्यन्ते। यज्ञपात्रप्रयोगे-द्वन्द्वं न्यञ्चि यज्ञपात्राणि प्रयुनक्ति धीरः। अभिव्यक्तौ-द्वन्द्वं नारदपर्वतौ। द्वन्द्वं संकर्षणवासुदेवौ। द्वावप्यभिव्यक्तौ साहचर्येणेत्यर्थः। अन्यत्रापि द्वन्द्वमित्येतद् दृश्यते, तदर्थं योगविभागः कर्त्तव्यः। द्वन्द्वं युद्धं वर्त्तते। द्वन्द्वानि सहते धीरः। 'चार्थे द्वन्द्व' (2.2.29) इति।

अर्थ—रहस्य, मर्यादावचन, व्युत्क्रमण, यज्ञपात्र, प्रयोग तथा अभिव्यक्ति—इन अर्थों में 'द्वन्द्व' शब्द निपातनसिद्ध है। यहाँ 'द्वि' शब्द को द्वित्व, पूर्व पद को 'अम्' आदेश तथा उत्तर पद को अकार—ये कार्य निपातन से होते हैं।

रहस्य द्वन्द्व शब्दवाच्य है; अन्य विषयभूत हैं।

उदा० (1) द्वन्द्वं मन्त्रयन्ते
द्वि औ द्वि औ—समासवत्, सुप् का लुक्,
द्वि द्वि—पूर्व पद को 'अम्' आदेश तथा उत्तर पद को अकार,
द्वम् द्व सु—अनुस्वार, परसवर्ण।

(2) आचतुरं हीमे पशवो द्वन्द्वं मिथुनायन्ते

'आङ्मर्यादाभि०' से अव्ययीभाव हुआ। 'अव्ययीभावे शरत्०' से समासान्त 'टच्' हुआ।

(3) द्वन्द्वं व्युत्क्रान्ताः
वयुत्क्रमण = भेद, पृथक् अवस्थान। द्विवर्ग के सम्बन्ध से पृथक् अवस्थित द्वन्द्व व्युत्क्रान्त हैं।

(4) द्वन्द्वं न्यञ्चि यज्ञपात्राणि
यज्ञपात्र-प्रयोग में 'द्वन्द्व' हुआ।

(5) द्वन्द्वं नारदपर्वतौ
अभिव्यक्ति में 'द्वन्द्व' शब्द।
इसी प्रकार 'द्वन्द्वं सङ्कर्षणवासुदेवौ।

अन्यत्र०—अन्य स्थलों पर भी 'द्वन्द्वम्' शब्द दृष्टिगोचर होता है। अतः योगविभाग करना चाहिए। यथा—

द्वन्द्वं युद्धं वर्त्तते, द्वन्द्वानि सहते वीरः, चार्थे द्वन्द्वः। इत्यादि।

(3630) पदस्य *16* (401)

'पदस्य' इत्ययमधिकारः प्रागपदान्ताधिकारात् (8.3.55)। यदित ऊर्ध्वमनुक्रमिष्यामः पदस्येत्येवं तद्वेदितव्यम्। वक्ष्यति-'संयोगान्तस्य लोपः' (8.2.23)। पचन्। यजन्। पदस्येति किम्? पचन्तौ। यजन्तौ। वक्ष्यमाणवाक्यापेक्षया 'पदस्य' इत्यधिकृतस्य षष्ठ्यर्थव्यवस्था द्रष्टव्या-क्वचित् स्थानषष्ठी, क्वचिदवयवषष्ठी।

अर्थ—यह अधिकार है। 'अपदान्तस्य मूर्धन्यः' (8.3.55) से पूर्व तक यह अधिकार चलता है। यहाँ से लेकर जो कहा जायेगा, वह 'पद' के स्थान पर होता है—ऐसा जानना चाहिए। आगे कहा जायेगा—संयोगान्तस्य लोपः। उदाहरण आगे देखें।

वक्ष्यमा०—वक्ष्यमाण वाक्य के आपेक्ष से 'पदस्य' इस अधिकृत शब्द की षष्ठ्यर्थ व्यवस्था होती है। यथा—कहीं स्थानषष्ठी जाननी चाहिए तथा कहीं अवयवषष्ठी।

(3631) पदात् *17* (402)

पदादित्ययमधिकारः प्राक् 'कुसने च सुप्यगोत्रादौ' (8.1.69) इत्येतस्माद्। यदित ऊर्ध्वमनुक्रमिष्यामः पदादित्येवं तद्वेदितव्यम्। वक्ष्यति-'आमन्त्रितस्य' (8.1.19)। आमन्त्रितस्य पदात्परस्यानुदात्तादेशो भवतीति। पचसि देवदत्त। पदादिति किम्? देवदत्त पचसि।

अर्थ—यह अधिकार है, जो 'कुत्सने च सुप्य०' (8.1.69) से पूर्व तक चलता है। यहाँ से आगे जो कहा जायेगा, वह 'पद से उत्तर' को होता है—ऐसा जानना चाहिए। आगे 'आमन्त्रितस्य' आदि सूत्रों का पाठ किया जायेगा। इसका अर्थ है कि पद से उत्तर आमन्त्रितसंज्ञक को अनुदात्त आदेश होता है। यथा—पचति देवदत्त।

पदादि०—'पदात्' इस प्रकार इसलिए कहा गया है कि 'देवदत्त पचसि' यहाँ न हो।

(3632) अनुदात्तं सर्वमपादादौ *18* (403)

'अनुदात्तम्' इति च, 'सर्वम्' इति च; 'अपादादौ' इति च-एतत्त्रयमधिकृतं वेदितव्यमापादपरिसमाप्तेः। इत उत्तरं यद्वक्ष्यामः 'अनुदात्तं सर्वमपादादौ' इत्येवं तद्वेदितव्यम्। वक्ष्यति-'आमन्त्रितस्य च' (8.1.19) इति। पचसि देवदत्त। अपादादाविति किम्? यत्ते नियतं रजसं मृत्यो अनवधृष्यम् (अथ० 8.2.10)। 'बहुवचनस्य वस्नसौ'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(8.1.21)। ग्रामो वः स्वम्। जनपदो नः स्वम्। अपादाविति किम्?

रुद्रो विश्वेश्वरो देवो युष्माकं कुलदेवता।
स एव नाथो भगवानस्माकं शत्रुमर्दनः॥

पादग्रहणेनात्र ऋक्पादः, श्लोकपादश्च गृह्यते। सर्वग्रहणं सर्वमनूद्यमानं विधीयमानं चानुदात्तं यथा स्यादिति। तेन युष्मदस्मदादेशानामपि वाक्यभेदेनानुदात्तत्वं विधीयते। युष्मदस्मदादेशाश्च सर्वत्र सुबन्तस्य पदस्य यथा स्युः–यत्रापि स्वादिपदं पदसंज्ञं भवति। ग्रामो वां दीयते। जनपदो नौ दीयते।

अर्थ—इस पाद की समाप्तिपर्यन्त अनुदात्तम्, सर्वम् तथा अपादादौ—इन तीन पदों का अधिकार चलता है। यहाँ से आगे जो कहा जायेगा, वहाँ इन तीनों का अधिकार उपस्थित होता है—ऐसा जानना चाहिए। आगे 'आमन्त्रितस्य च' इत्यादि सूत्रों का पाठ किया जायेगा।

उदा० (1) पचसि देवदत्त
यहाँ अनुदात्त हुआ।

अपादा०—पाद के आदि में यह नहीं होता है। यथा—
यत्ते नियतं रजसं भृत्यो अनवधृष्यम्।
इसी प्रकार आगे कहा जायेगा—'बहुवचनस्य वस्नसौ'।

(3) ग्रामो वः स्वम्
'वस्' आदेश हुआ।

(4) जनपदो नः स्वम्
'नस्' आदेश हुआ।

अपादा०—पाद के आदि में ये आदेश नहीं होते हैं। यथा—

रुद्रो विश्वेश्वरो देवो युष्माकं कुलदेवता।
स एव नाथो भगवानस्माकं शत्रुमर्दनः॥

यहाँ 'युष्माकम्' तथा 'अस्माकम्' शब्द पाद के आदि में वर्तमान हैं। अतः इनके स्थान पर प्राप्त यथासंख्य 'वस्' तथा 'नस्' आदेश नहीं होते हैं।

पाद०—'पाद' शब्द से ऋक्पाद तथा श्लोकपाद—दोनों का ग्रहण होता है। 'सर्वम्' पद का ग्रहण करने से कहा जाता हुआ तथा विधीयमान सभी को अनुदात्त होता है। अतः युष्मद् व अस्मद् आदेशों को भी वाक्यभेद से अनुदात्त स्वर का विधान किया जाता है।

युष्मद०—युष्मद् तथा अस्मद् आदेश सम्पूर्ण सुबन्त पद के स्थान पर हों। जहाँ भी सु आदि प्रत्यय होकर पदसंज्ञा होती है। यथा—

ग्रामो वां दीयते। जनपदो नौ दीयते।

(3633) आमन्त्रितस्य च *19* (3654)

आमन्त्रितस्य पदस्य पदात्परस्यापादादौ वर्त्तमानस्य सर्वस्यानुदात्तो भवति। पचसि देवदत्त। आमन्त्रिताद्युदात्तत्वे प्राप्ते वचनम्। *समानवाक्ये निघातयुष्मदस्मदादेशा वक्तव्याः* (म०भा०)। इह मा भूवन्–अयं दण्डो हरानेन, ओदनं पच तव भविष्यति, ओदनं पच मम भविष्यति। इह च यथा स्यात्–इह देवदत्त माता ते कथयति। नद्यास्तिष्ठति कूले। शालीनां ते ओदनं दास्यामि इति। आमन्त्रितान्तं तिङन्तं युष्मदस्मदादेशाश्च यस्मात्पराणि न तेषां सामर्थ्यमिति तदाश्रया निघातयुष्मदस्मदादेशा न स्युः, 'समर्थः पदविधिः' (2.1.1) इति वचनात्।

अर्थ—पद से उत्तर पदसंज्ञक, आमन्त्रितसंज्ञक जो पाद के आदि में वर्त्तमान नहीं है, उस सम्पूर्ण को अनुदात्त होता है।

उदा० (1) पचसि देवदत्त।
(2) पचसि यज्ञदत्त।

आम०—आमन्त्रित को आद्युदात्त प्राप्त होने पर यह विधान है।

समान०—समान वाक्य में निघात (अर्थात् सर्वानुदात्त) युष्मद् व अस्मद् आदेश होते हैं। अतः यहाँ नहीं होते हैं। यथा—
अयं दण्डो, हराऽनेन, औदनं पच तव भविष्यति—
यहाँ एकवाक्य में न होने से नहीं होता है।
इसी प्रकार—ओदन पच मम भविष्यति।

इह च०—निम्नलिखित में होता है—
(3) इह देवदत्त माता ते कथयति।
(4) शालीनां ते ओदनं दास्यामि।

आमन्त्रि०—आमन्त्रिन्त तिङन्त तथा युष्मद् व अस्मद् के आदेश जिससे पर होते हैं, उनकी सामर्थ्य नहीं होती है। अतः तदाश्रय युष्मद् व अस्मद् आदेश निघात नहीं होते हैं। 'समर्थः पदविधिः' कहा गया है।

(3634) युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वान्नावौ *20* (404)

युष्मद्-अस्मद्–इत्येतयोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्यथा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संख्यं वाम्, नौ–इत्येतावादेशौ भवतस्तौ चानुदात्तौ। 'पदस्य पदादनुदात्तं सर्वमपादादौ' इति सर्वमिह सम्बध्यते। ग्रामो वां स्वम्। जनपदो नौ स्वम्। ग्रामो वां दीयते। जनपदो नौ दीयते। ग्रामो वां पश्यति। जनपदो नौ पश्यति। एकवचनबहुवचनान्तयोरादेशान्तरविधानाद् द्विवचनान्तयोरेतावादेशौ विज्ञायेते। षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोरिति किम्? ग्रामे युवाभ्यां कृतम्। स्थग्रहणं श्रूयमाणविभक्त्यर्थम्। इह मा भूत्–इति युष्मत्पुत्र इति।

अर्थ—षष्ठी, चतुर्थी तथा द्वितीया में स्थित युष्मद् व अस्मद्—इन शब्दों के स्थान पर यथासंख्य 'वाम्' तथा 'नौ' आदेश होते हैं और ये अनुदात्त होते हैं।

यहाँ पदस्य, पदात्, अनुदात्तम्, सर्वम्, अपादादौ—इन सबका अनुवर्त्तन है।

उदा० (1) ग्रामो वां स्वम्
युवयोः के स्थान पर 'वाम्' हुआ।

(2) जनपदो नौ स्वम्
आवयोः के स्थान पर 'नौ' हुआ।

(3) ग्रामो वां दीयते
चतुर्थी में 'वाम्' हुआ।

(4) जनपदो नौ दीयते
चतुर्थी में 'नौ' आदेश।

(5) गामो वां पश्यति
'युवाम्' के स्थान पर।

(6) जनपदो नौ पश्यति
'आवाम्' के स्थान पर 'नौ' हुआ।

एकवच०—एकवचन में 'ते मयावेकवचनस्य' से ते, मे तथा बहुवचन में 'बहुवचनस्य वस्नसौ' सूत्र से वस् तथा नस्—इस प्रकार अन्य आदेशों का विधान होने से द्विवचनान्त युष्मद् व अस्मद् शब्दों को ये आदेश (वाम्, नौ) होते हैं।

षष्ठी—षष्ठी, चतुर्थी तथा द्वितीया—इन विभक्तियों में ही 'वाम्' तथा 'नौ' आदेश होते हैं। यथा—
ग्रामे युवाभ्यां कृतम्।

युवाभ्याम् पाद के आदि में स्थित नहीं है, द्विवचन का रूप है, परन्तु तृतीया विभक्ति का रूप होने से इसके स्थान पर 'वाम्' नहीं हुआ।

स्थ०—'स्थ' शब्द का ग्रहण श्रूयमाण विभक्ति के लिए है। अतः निम्नलिखित में नहीं होता है—
युष्मत्पुत्रः।

(3635) बहुवचनस्य वस्नसौ *21* (405)

बहुवचनान्तयोर्युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयास्थयोर्यथासंख्यं वस्, नस्–इत्येतावादेशौ भवतः। ग्रामो वः स्वम्। जनपदो नः स्वम्। ग्रामो वो दीयते। जनपदो नो दीयते। ग्रामो वः पश्यति। जनपदो नः पश्यति।

अर्थ—षष्ठी, चतुर्थी तथा द्वितीया में स्थित, अपादादि में वर्त्तमान बहुवचनान्त युष्मद् तथा अस्मद् शब्दों के स्थान पर 'वस्' तथा 'नस्' आदेश होते हैं और वे अनुदात्त होते हैं।

उदा० (1) ग्रामो वः स्वम्
'युष्माकम्' के स्थान पर।

(2) जनपदो नः स्वम्
'अस्माकम्' के स्थान पर।

(3) ग्रामो वो दीयते
चतुर्थी विभक्ति।

(4) जनपदो नो दीयते
चतुर्थी विभक्ति।

(5) ग्रामो वः पश्यति
'युष्मान्' के स्थान पर।

(6) जनपदो नः पश्यति
'अस्मान्' के स्थान पर।

(3636) तेमयावेकवचनस्य *22* (406)

युष्मदस्मदोरेकवचनान्तयोः षष्ठीचतुर्थीस्थयोर्यथासंख्यं ते, मे–इत्येतावादेशौ भवतः। ग्रामस्ते स्वम्। ग्रामो मे स्वम्। ग्रामस्ते दीयते। ग्रामो मे दीयते। द्वितीयान्तस्यादेशान्तरविधानसामर्थ्यात्षष्ठीचतुर्थ्योरेवायं योगः।

अर्थ—षष्ठी, चतुर्थी तथा द्वितीया में स्थित, जो पादादि में वर्त्तमान नहीं हैं, ऐसे एकवचनान्त युष्मद् तथा अस्मद् शब्दों के स्थान पर 'ते' तथा 'मे' आदेश होते हैं और वे अनुदात्त होते हैं।

उदा० (1) ग्रामस्ते स्वम्
'तव' के स्थान पर।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(2) ग्रामो मे॒ स्वम्
'मम' के स्थान पर।

(3) ग्रामस्ते॒ दीयते
'तुभ्यम्' के स्थान पर।

(4) ग्रामो मे॒ दीयते
'मह्यम्' के स्थान पर।

द्वितीया०—द्वितीयान्त युष्मद् तथा अस्मद् शब्दों के स्थान पर 'त्वा' तथा 'मा' आदेशों के विधानसामर्थ्य से यहाँ षष्ठी तथा चतुर्थी विभक्तियों के उदाहरण दिखाये जा रहे हैं।

(3637) त्वामौ द्वितीयायाः *23* (407)

'एकवचनस्य' इति वर्तते। द्वितीयाया यदेकवचनं तदन्तयो-र्युष्मदस्मदोर्यथासंख्यं त्वा, मा–इत्येतावादेशौ भवतः। ग्रामस्त्वा॒ पश्यति। ग्रामो मा॒ पश्यति।

अर्थ—'एकवचनस्य' का अनुवर्त्तन है। द्वितीया विभक्ति में स्थित, जो पाद के आदि में वर्त्तमान नहीं हैं, ऐसे एकवचनान्त युष्मद् तथा अस्मद् शब्दों के स्थान पर यथासंख्य 'त्वा' तथा 'मा' आदेश होते हैं और वे अनुदात्त होते हैं।

उदा० (1) ग्रामस्त्वा॒ पश्यति
'त्वाम्' के स्थान पर।

(2) ग्रामो मा॒ पश्यति
'ग्राम्' के स्थान पर।

(3638) न चवाहाहैवयुक्ते *24* (408)

च, वा, ह, अह, एव–एभिर्युक्ते युष्मदस्मदोर्वान्नावादयो न भवन्ति। पूर्वेण प्रकरणेन प्राप्ताः प्रतिषिद्ध्यन्ते। ग्रामस्तव च स्वम्, ग्रामो मम च स्वम्, युवयोश्च स्वम्, आवयोश्च स्वम्; युष्माकं च स्वम्; अस्माकं च स्वम्। ग्रामस्तुभ्यं च दीयते, ग्रामो मह्यं च दीयते; युवाभ्यां च दीयते, आवाभ्यां च दीयते; युष्मभ्यं च दीयते, अस्मभ्यं च दीयते। ग्रामस्त्वां च पश्यति, ग्रामो मां च पश्यति; युवां च पश्यति, आवां च पश्यति; युष्मांश्च पश्यति, अस्मांश्च पश्यति। वा–ग्रामस्तव वा स्वम्, ग्रामो मम वा स्वम्; युवयोर्वा स्वभ्, आवयोर्वा स्वम्; युष्माकं वा स्वम्, अस्माकं वा स्वम्। ग्रामस्तुभ्यं वा दीयते, ग्रामो मह्यं वा दीयते; युवाभ्यां वा दीयते, आवाभ्यां वा दीयते; युष्मभ्यं वा दीयते, अस्मभ्यं वा दीयते। ग्रामस्त्वां वा पश्यति, ग्रामो मां वा पश्यति; युवां वा पश्यति, आवां वा पश्यति; युष्मान् वा पश्यति, अस्मान्वा पश्यति। ह–ग्रामस्तव ह स्वम्, ग्रामो मम ह स्वम्; युवयोर्ह स्वम्, आवयोर्ह स्वम्; युष्माकं ह स्वम्, अस्माकं ह स्वम्। ग्रामस्तुभ्यं ह दीयते, गामो मह्यं ह दीयते; युवाभ्यां ह दीयते, आवाभ्यां ह दीयते; युष्मभ्यं ह दीयते, अस्मभ्यं ह दीयते। ग्रामस्त्वां ह पश्यति, ग्रामो मां ह पश्यति। युवां ह पश्यति, आवां ह पश्यति; युष्मान् ह पश्यति, अस्मान् ह पश्यति। अह–ग्रामस्तवाह स्वम्, ग्रामो ममाह स्वम्; युवयोरह स्वम्, आवयोरह स्वम्; युष्माकमह स्वम्, अस्माकमह स्वम्, ग्रामस्तुभ्यमह दीयते, ग्रामो मह्यमह दीयते; युवाभ्यामह दीयते, आवाभ्यामह दीयते; युष्मभ्यामह दीयते, अस्मभ्यमह दीयते। ग्रामस्त्वामह पश्यति, ग्रामो मामह पश्यति, युवामह पश्यति, आवामह पश्यति, युष्मानह पश्यति, अस्मानह पश्यति। एव–ग्रामस्तवैव स्वम्, ग्रामो ममैव स्वम्; युवयोरेव स्वम्, आवयोरेव स्वम्; युष्माकमेव स्वम्, अस्माकमेव स्वम्; ग्रामस्तुभ्यमेव दीयते, ग्रामो मह्यमेव दीयते; युवाभ्यामेव दीयते, आवाभ्यामेव दीयते; युष्मभ्यमेव दीयते, अस्मभ्यमेव दीयते। ग्राम-स्त्वामेव पश्यति, ग्रामो मामेव पश्यति; युवामेव पश्यति, आवामेव पश्यति; युष्मानेव पश्यति, अस्मानेव पश्यति। युक्तग्रहणं साक्षाद्योगप्रतिपत्त्यर्थम्। युक्तयुक्ते प्रतिषेधो न भवति। ग्रामश्च ते स्वम्, नगरं च मे स्वम्।

अर्थ—च, वा, ह, अह तथा एव—इन शब्दों से युक्त होने पर युष्मद् तथा अस्मद् शब्दों के स्थान पर विहित वाम् तथा नौ आदि आदेश नहीं होते हैं।

उदा० **(क) चशब्देन युक्ते—**

1. ग्रामस्तव च स्वम्।	2. ग्रामो मम च स्वम्।
3. युवयोश्च स्वम्।	4. आवयोश्च स्वम्।
5. युष्माकं च स्वम्।	6. अस्माकं च स्वम्।
7. ग्रामस्तुभ्यं च दीयते।	8. ग्रामो मह्यं च दीयते।
9. युवाभ्यां च दीयते।	10. आवाभ्यां च दीयते।
11. युष्मभ्यं च दीयते।	12. अस्मभ्यं च दीयते।
13. ग्रामस्त्वां च पश्यति।	14. ग्रामो मां च पश्यति।
15. युवां च पश्यति।	16. आवां च पश्यति।
17. युष्मांश्च पश्यति।	18. अस्मांश्च पश्यति।

(ख) वाशब्देन युक्ते—

19. ग्रामस्तव वा स्वम्।	20. ग्रामो मम वा स्वम्।
21. युवयोर्वा स्वम्।	22. आवयोर्वा स्वम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

23. युष्माकं वा स्वम्। 24. अस्माकं वा स्वम्।
25. ग्रामस्तुभ्यं वा दीयते। 26. ग्रामो मह्यं वा दीयते।
27. युवाभ्यां वा दीयते। 28. आवाभ्यां वा दीयते।
29. युष्मभ्यं वा दीयते। 30. अस्मभ्यं वा दीयते।
31. ग्रामस्त्वा वा पश्यति। 32. ग्रामो वा मां पश्यति।
33. युवां वा पश्यति। 34. आवां वा पश्यति।
35. युष्मान् वा पश्यति। 36. अस्मान्वा पश्यति।

(ग) हशब्देन युक्ते—

37. ग्रामस्तव ह स्वम्। 38. ग्रामो मम ह स्वम्।
39.युवयोर्ह स्वम्। 40. आवयोर्ह स्वम्।
41.युष्माकं ह स्वम्। 42. अस्माकं ह स्वम्।
43.ग्रामस्तुभ्यं ह दीयते। 44. ग्रामो मह्यं ह दीयते।
45.युवाभ्यां ह दीयते। 46. आवाभ्यां ह दीयते।
27.युष्मभ्यं ह दीयते। 48. अस्मभ्यं ह दीयते।
49.ग्रामस्त्वां ह दीयते। 50. ग्रामो मां ह पश्यति।
51.युवां ह पश्यति। 52. आवां ह पश्यति।
53.युष्मान् ह पश्यति। 54. अस्मान् ह पश्यति।

(घ) अहशब्देन युक्ते—

55.ग्रामस्तवाह स्वम्। 56. ग्रामो ममाह स्वम्।
57.युवयोरह स्वम्। 58. आवयोरह स्वम्।
59.युष्माकमह स्वम्। 60. अस्माकमह स्वम्।
61.ग्रामस्तुभ्यमह दीयते। 62. ग्रामो मह्यमह दीयते।
63.युवाभ्यामह दीयते। 64. आवाभ्यामह दीयते।
65.युष्मभ्यमह दीयते। 66. अस्मभ्यमह दीयते।
67.ग्रामस्त्वामह पश्यति। 68. ग्रामो मामह पश्यति।
69.युवामह पश्यति। 70. आवामह पश्यति।
71.युष्मानह पश्यति। 72. अस्मानह पश्यति।

(ङ) एवशब्देन युक्ते—

73.ग्रामस्तवैव स्वम्। 74. ग्रामो ममैव स्वम्।
75.युवयोरेव स्वम्। 76. आवयोरेव स्वम्।
77.युष्माकमेव स्वम्। 78. अस्माकमेव स्वम्।
79.ग्रामस्तुभ्यमेव दीयते। 80. ग्रामो मह्यमेव दीयते।
81.युवाभ्यामेव दीयते। 82. आवाभ्यामेव दीयते।
83.युष्मभ्यमेव दीयते। 84. अस्मभ्यमेव दीयते।
85.ग्रामस्त्वामेव पश्यति। 86. ग्रामो मामेव पश्यति।
87.युवामेव पश्यति। 88. आवामेव पश्यति।
89.युष्मानेव पश्यति। 90. अस्मानेव पश्यति।

यहाँ एकवचन में ते, मे आदेश, द्विवचन में वाम्, नौ आदेश तथा बहुवचन में वस्, नस् आदेश प्राप्त थे।

युक्त०—सूत्र में 'युक्त' शब्द का ग्रहण साक्षात् योग के ज्ञान के लिए है। तब निम्नलिखित में प्रतिषेध नहीं होता है—

(91) ग्रामश्च ते स्वम्, (92) नगरं च मे स्वम्।

(3639) पश्यार्थैश्चानालोचने *25* (409)

पश्यार्थाः = दर्शनार्थाः, दर्शनम् = ज्ञानम्, आलोचनम् = चक्षुर्विज्ञानम्। तैः पश्यार्थैरनालोचने वर्तमानैर्युक्ते युष्मदस्मदोर्वान्नावादयो न भवन्ति। ग्रामस्तव स्वं समीक्ष्यागतः, ग्रामो मम स्वं समीक्ष्यागतः, ग्रामस्तुभ्यं दीयमानं समीक्ष्यागतः, ग्रामो मह्यं दीयमानं समीक्ष्यागतः, ग्रामस्त्वां समीक्ष्यागतः, ग्रामो मां समीक्ष्यागतः। अनालोचन इति किम्? ग्रामस्त्वा पश्यति, ग्रामो मा पश्यति। *पश्यार्थैर्युक्तयुक्तेऽपि च प्रतिषेध इष्यते*। तथा चैवोदाहृतम्।

अर्थ—अनालोचन अर्थ में वर्त्तमान पश्यार्थ शब्दों से युक्त युष्मद् और अस्मद् शब्दों के स्थान पर विहित 'वाम्' तथा 'नौ' आदि आदेश नहीं होते हैं।

उदा० (1) ग्रामस्तव स्वं समीक्ष्यागतः
'ते' आदेश प्राप्त था।

(2) ग्रामो मम स्वं समीक्ष्यागतः
'मे' प्राप्त था।

(3) ग्रामस्तुभ्यं दीयमानं समीक्ष्यागतः
'ते' प्राप्त था।

(4) ग्रामो मह्यं दीयमानं समीक्ष्यागतः
'मे' प्राप्त था।

(5) ग्रामस्त्वां समीक्ष्यागतः
'त्वा' प्राप्त था।

(6) ग्रामो मां समीक्ष्यागतः
'मा' आदेश प्राप्त था।

अनालो०—**आलोचन** अर्थ में ही 'वाम्' आदि आदेशों का निषेध होता है।

(7) ग्रामस्त्वा पश्यति
'त्वा' आदेश हुआ।

(8) ग्रामो मा पश्यति
'मा' आदेश हुआ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(3640) सपूर्वायाः प्रथमाया विभाषा *26* (410)

विद्यमानपूर्वात् प्रथमान्तात् पदादुत्तरयोर्युष्मदस्मदोर्विभाषा वाऽऽवादयो न भवन्ति। ग्रामे कम्बलस्ते स्वम्, ग्रामे कम्बलस्तव स्वम्, ग्रामे कम्बलो मे स्वम्, ग्रामे कम्बलो मम स्वम्। ग्रामे कम्बलस्ते दीयते, ग्रामे कम्बलस्तुभ्यं दीयते; ग्रामे कम्बलो मे दीयते, ग्रामे कम्बलो मह्यं दीयते। ग्रामे छात्रास्त्वा पश्यन्ति, ग्रामे छात्रास्त्वां पश्यन्ति; ग्रामे छात्रा मा पश्यन्ति, ग्रामे छात्रा मां पश्यन्ति। सपूर्वाया इति किम्? कम्बलस्ते स्वम्, कम्बलो मे स्वम्। प्रथमाया इति किम्? कम्बलो ग्रामे ते स्वम्। कम्बलो ग्रामे मे स्वम्। *युस्मदस्मदोर्विभाषा अनन्वादेश इति वक्तव्यम्* (म० भा०)। इह मा भूत्–अथो ग्रामे कम्बलस्ते स्वम्, अथो ग्रामे कम्बलो मे स्वम्। अपर आह–*सर्व एव वाऽऽवादयोऽनन्वादेशे विभाषा वक्तव्याः* (म० भा०)। कम्बलस्ते स्वम्, कम्बलस्तव स्वम्; कम्बलो मे स्वम्, कम्बलो मम स्वम्। अनन्वादेश इति किम्? अथो कम्बलस्ते स्वम्, अथो कम्बलो मे स्वम्। न तर्हीदानीमिदं वक्तव्यम्–'सपूर्वायाः प्रथमायाः विभाषा' इति? वक्तव्यं च। किं प्रयोजनम्? अन्वादेशार्थम्, अन्वादेशे हि विभाषा यथा स्यात्। अथो ग्रामे कम्बलस्ते स्वम्, अथा ग्रामे कम्बलस्तव स्वम्; अथो ग्रामे कम्बलो मे स्वम्, अथो ग्रामे कम्बलो मम स्वम्।

अर्थ—विद्यमान् पूर्व प्रथमान्त पद से उत्तर युष्मद् तथा अस्मद् शब्दों के स्थान पर 'वाम्' तथा 'नौ' आदि आदेश विकल्प से नहीं होते हैं।

उदा० (1) ग्रामे कम्बलस्ते स्वम्
'ते' हुआ है।

(2) ग्रामे कम्बलस्तव स्वम्
आदेश नहीं हुआ।

(3) ग्रामे कम्बलो मे स्वम्
'मे' हुआ।

(4) ग्रामे कम्बलो मम स्वम्
आदेश अभाव पक्ष।

(5) ग्रामे कम्बलस्ते दीयते
'ते' आदेश पक्ष।

(6) ग्रामे कम्बलस्तुभ्यं दीयते
आदेश अभाव।

(7) ग्रामे कम्बलो मे दीयते
आदेश पक्ष।

(8) ग्रामे कम्बलो मह्यं दीयते
आदेश अभाव।

(9) ग्रामे छात्रास्त्वा पश्यन्ति
आदेश पक्ष।

(10) ग्रामे छात्रास्त्वां पश्यन्ति
आदेश अभाव।

(11) ग्रामे छात्रा मा पश्यन्ति
आदेश पक्ष।

(12) ग्रामे छात्रा मां पश्यन्ति
आदेश अभाव पक्ष।

सपूर्वा०—विद्यमान पूर्व प्रथमान्त पद से उत्तर 'वाम्' आदि आदेश विकल्प से नहीं होते हैं।

(13) कम्बलस्ते स्वम्

प्रथमान्त 'कम्बलः' शब्द से पूर्व कोई पद नहीं है। अतः पाक्षिक आदेश नहीं हुआ, नित्य हुआ।

(14) कम्बलो मे स्वम् (पूर्ववत्)।

प्रथमा०—विद्यमानपूर्व प्रथमान्त पद से उत्तर 'वाम्' आदि आदेश विकल्प से नहीं होते हैं।

(15) कम्बलो ग्रामे ते स्वम्

'ग्रामे' पद सपूर्व है, परन्तु प्रथमान्त नहीं है। अतः इससे उत्तर पाक्षिक आदेश नहीं हुआ।

(16) कम्बलो ग्रामे मे स्वम् (पूर्ववत्)।

युष्मद०—अन्वादेश से अन्य स्थलों पर युष्मद् व अस्मद् के स्थान पर विकल्प से 'वाम्' आदि आदेश होते हैं। अतः निम्नलिखित में विभाषा नहीं होती है—

(17) अथो ग्रामे कम्बलस्ते स्वम्।
(18) अथो ग्रामे कम्बलो मे स्वम्।

अपर०—दूसरे कहते हैं कि सभी 'वाम्' तथा 'नौ' आदि आदेश विकल्प से होते हैं, अन्वादेश से अन्यत्र।

(19) कम्बलस्ते स्वम्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आदेश हुआ।

(20) कम्बलस्तव स्वम्
आदेश अभाव।

(21) कम्बलो मे स्वम्।
आदेश पक्ष।

(22) कम्बलो मम स्वम्
आदेश अभाव।

अनन्वा०—अन्वादेश से अन्यत्र ही विभाषा होती है।

(23) अथो कम्बलस्ते स्वम्
नित्य आदेश।

(24) अथो कम्बलो मे स्वम्
नित्य आदेश।

न तर्हि०—तब 'सपूर्वायाः प्रथमायाः विभाषा' इस प्रकार नहीं कहना चाहिए। अवश्य कहना चाहिए। क्या प्रयोजन है? अन्वादेश के लिए यह पाठ करना चाहिए। अन्वादेश में विभाषा हो जाय।

(25) अथो ग्रामे कम्बलस्ते स्वम्।
(26) अथो ग्रामे कम्बलस्तव स्वम्।
(27) अथो ग्रामे कम्बलो मे स्वम्।
(28) अथो ग्रामे कम्बलो मम स्वम्।

(3641) तिङो गोत्रादीनि कुत्सनाभीक्ष्णययोः *27* (3934)

तिङन्तात्पदात्पराणि गोत्रादीनि कुत्सने आभीक्ष्ण्ये चार्थे वर्तमानानि अनुदात्तानि भवन्ति। पचति गोत्रम्। जल्पति गोत्रम्। आभीक्ष्ण्ये-पचतिपचति गोत्रम्। जल्पतिजल्पति गोत्रम्। ब्रुव-पचति ब्रुवम्। जल्पति ब्रुवम्। जल्पतिजल्पति ब्रुवम्। पचतिपचति ब्रुवम्। 'ब्रुवः'-इति ब्रुवः कन्निपातनाद्, वच्यादेशाभावश्च। गोत्र। ब्रुव। प्रवचन। प्रसहन। प्रकथन। प्रत्ययन। प्रचक्षण। प्राय। विचक्षण। अवचक्षण। स्वाध्याय। भूयिष्ठ। *वा नाम* (ग०सू० 178)। नामेत्येतद्वा निहन्यते। पक्षे आद्युदात्तमेव भवति-पचति नाम, पठति नामं। तिङ इति किम्? कुत्सितं गोत्रम्। गोत्रादीनीति किम्? पचति पापम्। कुत्सनाभीक्ष्णययोरिति किम्? खनति गोत्रं समेत्य कूपम्। कुत्सनाभीक्ष्णयग्रहणं च पाठविशेषणं द्रष्टव्यम्। तेनान्यत्रापि गोत्रादिग्रहणेन कुत्सनाभीक्ष्णययोरेव कार्यं भवति (म० भा)।

अर्थ—कुत्सन तथा आभीक्ष्ण्य अर्थों में वर्त्तमान जो तिङन्त पद, उससे उत्तर गोत्रादि शब्द अनुदात्त होते हैं।

उदा० (1) पचति गोत्रम्
अनुदात्त हुआ।

(2) जल्पति गोत्रम् (पूर्ववत्)।
(3) पचतिपचति गोत्रम्
आभीक्ष्ण्य अर्थ में द्वित्व हुआ है।

(4) जल्पतिजल्पति गोत्रम् (पूर्ववत्)।
(5) पचति ब्रुवम्
अनुदात्त हुआ।

(6) जल्पति ब्रुवम् (पूर्ववत्)।
(7) पचतिपचति ब्रुवम्
'आभीक्ष्ण्य' में।

(8) जल्पतिजल्पति ब्रुवम् (पूर्ववत्)।

ब्रुवः०—'ब्रुवः' यह निपातन से 'कन्' हुआ। वच् आदेश का अभाव निपातन से हुआ है।

नामेत्ये०—'नाम' शब्द विकल्प से सर्वानुदात्त होता है।

(9) पचति नाम
अनुदात्त हुआ।
(10) पचति नामं
पक्ष में आद्युदात्त।

तिङ०—तिङन्त पद से उत्तर गोत्र आदि शब्द अनुदात्त होते हैं।

कुत्सितं गोत्रम्—यहाँ 'नाम' तिङन्त से उत्तर नहीं है। अतः अनुदात्त नहीं हुआ।

गोत्रादी०—तिङन्त पद से उत्तर **गोत्र** आदि शब्दों को अनुदात्त होता है।

(11) पचति पापम्
'पचति' इस तिङन्त से उत्तर 'पाप' शब्द है। इसे अनुदात्त नहीं हुआ।

कुत्सना०—**कुत्सना** तथा **आभीक्ष्ण्य** अर्थों में ही गोत्र आदि शब्दों को अनुदात्त होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(12) खनति गोत्रं समेत्य कूपम्

तिङन्त पद 'खनति' है। इससे उत्तर 'गोत्र' शब्द है; परन्तु न तो कुत्सन अर्थ है; न ही आभीक्ष्ण्य अर्थ है। अतः अनुदात्त नहीं हुआ।

कुत्सना०—कुत्सन तथा आभीक्ष्ण्य शब्दों का ग्रहण पाठ-विशेषण जानना चाहिए। तब अन्यत्र भी गोत्र-ग्रहण से कुत्सन तथा आभीक्ष्ण्य अर्थों में कार्य नहीं होता है।

(3642) तिङ्ङतिङः *28* (3935)

तिङन्तं पदमतिङन्तात् पदात्पदात् परमनुदात्तं भवति। देवदत्तः पचति। यज्ञदत्तः पचति। तिङिति किम्? नील-मुत्पलम्। शुक्लं वस्त्रम्। अतिङ इति किम्? भवति पचति।

अर्थ—अतिङन्त पद से उत्तर तिङन्त पद को अनुदात्त होता है।

उदा० (1) देवदत्तः पचति

'देवदत्तः' अतिङन्त पद है। इससे उत्तर 'पचति' तिङन्त पद को अनुदात्त होता है।

(2) यज्ञदत्तः पचति

पूर्ववत् अनुदात्त।

तिङिति०—अतिङन्त पद से उत्तर तिङन्त पद को अनुदात्त होता है।

(3) नीलम् उत्पलम्

'नीलम्' अतिङन्त पद है। इससे उत्तर 'उत्पलम्' सुबन्त पद है। इसके तिङन्त न होने से अनुदात्त नहीं हुआ। 'नब् विषयस्यानि०' से आद्युदात्त हुआ।

(4) शुक्लं वस्त्रम्

पूर्ववत् अनुदात्त नहीं हुआ।

अतिङ०—अतिङन्त पद से उत्तर तिङन्त पद को अनुदात्त होता है।

(5) भवति पचति

'पचति' तिङन्त पद है, जो तिङन्त 'भवति' से उत्तर है। अतः अनुदात्त नहीं हुआ।

(3643) न लुट् *29* (3936)

पूर्वेणातिप्रसक्ते प्रतिषेधः आरभ्यते। लुडन्तं तिङन्तं नानुदात्तं भवति। श्वः कर्त्ता। श्वः कर्तारौ। मासेन कर्तारः। तासेः परस्य लसार्वधातुकस्यानुदात्तत्वे सति सर्वतासिरे-वोदात्तः। यत्र तु टिलोपः, तत्रोदात्तनिवृत्तिस्वरो भवति।

अर्थ—पूर्व सूत्र के द्वारा अतिप्रसक्त होने पर प्रतिषेध का विधान किया जा रहा है। लुट् प्रत्ययान्त तिङन्त अनुदात्त नहीं होता है।

उदा० (1) श्वः कर्त्ता

कृ तास् डा—टिलोप आदि होकर 'कर्त्ता' बनता है। इसे अनुदात्त नहीं हुआ।

(2) श्वः कर्तारौ (पूर्ववत्)।

(3) मासेन कर्तारः (पूर्ववत्)।

तासेः—तास् से पर लसार्वधातुक के अनुदात्त होने पर सर्वतासि ही उदात्त होता है। जहाँ टि का लोप होता है, वहाँ उदात्त निवृत्तिस्वर होता है।

(3644) निपातैर्यद्यदिहन्तकुविन्नेच्चेच्चण्कच्चिद्यत्रयुक्तम् *30* (3937)

'न' इति वर्तते। यत्, यदि, हन्त, कुवित्, नेत्, चेत्, चण्, कच्चित्, यत्र-इत्येतैर्निपातैर्युक्तं तिङन्तं नानुदात्तं भवति। यत्करोति, यत्पचति। यदि करोति, यदि पचति। हन्त करोति, हन्त पचति। कुवित्-कुवित्करोति, कुवित्पचति। नेत्-नेज्जिह्मायन्तो नरकं पताम (ऋ०खि० 3.22)। चेत्-स चेद् भुङ्क्ते। स चेदधीते। चण्-णिद्विशिष्टोऽयं चेदर्थे वर्तते। अयं च मरिष्यति। अयं चेन्मरिष्यतीत्यर्थः। समुच्चयादिषु तु यश्चशब्दस्तेन योगेन विधिरयं न भवति। कच्चित् कच्चिद् भुङ्क्ते। कच्चि-दधीते। यत्र यत्र भुङ्क्ते। यत्राधीते। निपातैरिति किम्? यत्कूजति शकटम्। गच्छत्कूजति शकटमित्यर्थः। इण शतरि रूपमेतत्। युक्तमिति किम्? यत्र क्वं च ते मनो दक्षं दधस उत्तरम् (ऋ० 6.16.17)।

अर्थ—'न' का अनुवर्त्तन है। यत्, यदि, हन्त, कुवित्, नेत्, चेत्, चण्, कच्चित् तथा यत्र—इन निपातों से युक्त तिङन्त पद अनुदात्त नहीं होता है।

उदा० (1) यत्करोति

'यत्' से युक्त होने के कारण अनुदात्त नहीं हुआ। मध्योदात्त।

(2) यत्पचति

अनुदात्त नहीं हुआ। 'पच्' को धातुस्वर हुआ।

(3) यदि करोति

अनुदात्त नहीं हुआ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(4) यदि पचति
अनुदात्त नहीं हुआ

(5) हन्त करोति
अनुदात्त नहीं हुआ।

(6) हन्त पचति
अनुदात्त नहीं हुआ।

(7) कुवित् करोति
अनुदात्त नहीं हुआ।

(8) कुवित् पचति
अनुदात्त नहीं हुआ।

(9) नोज्जिह्मायन्तो नरकं पताम (पूर्ववत्)।

(10) स चेद् भुङ्क्ते।
अनुदात्त हुआ।

(11) स चेद् अधीते
अनुदात्त हुआ।

चण्०—णित् विशिष्ट यह चण् 'अव्यय' 'चेत्' अर्थ में होता है।

(12) अयं च मरिष्यति
अनुदात्त नहीं हुआ।

समुच्च०—समुच्चयादि में जो 'च' शब्द, उसके योग से यह विधि नहीं होती है।

(13) कच्चित् कच्चिद् भुङ्क्ते
यहाँ नहीं हुआ।

(14) कच्चिद् अधीते (पूर्ववत्)।

(15) यत्र यत्र भुङ्क्ते (पूर्ववत्)।

(16) यत्राऽधीते (पूर्ववत्)।

निपातै०—निपातसंज्ञक यद् आदि शब्दों से युक्त तिङन्त को अनुदात्त नहीं होता है।

(17) यत्कूजति शकटम्
'यत्' निपात नहीं है। अतः इससे उत्तर तिङन्त पद 'कूजति' को अनुदात्तस्वर का निषेध नहीं हुआ। इण् धातु से शतृ प्रत्यय करने पर 'यत्' शब्द बनता है।

युक्तमि०—युक्त होने पर ही तिङन्त पद को अनुदात्त नहीं होता है।

(18) यत्र क्व च ते मनो दक्षं।

(3645) नह प्रत्यारम्भे *31* (3938)

'नह' इत्येतेन युक्ते प्रत्यारम्भे तिङन्तं नानुदात्तं भवति। चोदितस्यावधीरणे उपालिप्सया प्रतिषेधयुक्तः प्रत्यारम्भः क्रियते। नह भोक्ष्यसे। नहाध्येष्यसे। प्रत्यारम्भ इति किम्? नह वै तस्मिंश्च लोके दक्षिणामिच्छन्ति।

अर्थ—प्रत्यारम्भ में 'नह' शब्द से युक्त होने पर तिङन्त पद अनुदात्त नहीं होता है।

उदा० (1) नह भोक्ष्यसे
'स्य' प्रत्ययस्वर से उदात्त हुआ।

(2) नहाध्येष्यसे
अनुदात्त नहीं हुआ।

प्रत्यारम्भ में ही अनुदात्त स्वर को निषेध होता है।

(3) नह वै तस्मिंश्च लोके दक्षिणाम् इच्छन्ति
यहाँ नहीं हुआ।

(3646) सत्यं प्रश्ने *32* (3939)

'सत्यम्' इत्यनेन युक्तं तिङन्तं नानुदात्तं भवति प्रश्ने। सत्यं भक्ष्यसे। सत्यमध्येष्यसे। प्रश्न इति किम्? सत्यं वक्ष्यामि नानृतम् (अथ० 4.9.7)।

अर्थ—प्रश्न अर्थ में 'सत्यम्' शब्द से युक्त होने पर तिङन्त पद को अनुदात्त स्वर नहीं होता है।

उदा० (1) सत्यं भोक्ष्यसे
यहाँ नहीं हुआ।

(2) सत्यम् अध्येष्यसे (पूर्ववत्)।

प्रश्न०—प्रश्न अर्थ में ही यह निषेध होता है।

(3) सत्यं वक्ष्यामि नाऽनृतम्
यहाँ प्रश्न नहीं है। अतः निषेध नहीं हुआ।

(3647) अङ्गाप्रातिलोम्ये *33* (3940)

'अङ्ग' इत्यनेन युक्तं तिङन्तमप्रातिलोम्ये गम्यमाने नानुदात्तं भवति। अङ्ग कुरु। अङ्ग पचं। अङ्ग पठं। अप्रातिलोम्य इति किम्? अङ्ग कूज वृषल3 इदानीं ज्ञास्यसि जाल्म। कूजनमनभिमतमसौ कुर्वन्प्रतिलोमो भवति।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—प्रातिलोम्य अर्थ से अन्यत्र अङ्ग शब्द से युक्त तिङन्त पद अनुदात्त होता है।

उदा० (1) अङ्ग कुरु,
उकार प्रत्ययस्वर से उदात्त है।

(2) अङ्ग पचं
धातुस्वर से आद्युदात्त है।

(3) अङ्ग पठं (पूर्ववत्)।

अप्राति०—अप्रातिलोम्य अर्थ में ही अङ्ग शब्द को अनुदात्त नहीं होता है।

(4) अङ्ग कूज वृषल इदानीं ज्ञास्यसि जाल्म
यहाँ अमर्ष अर्थ में होने से अनुदात्त नहीं हुआ।

(3648) हि च *34* (3941)

'हि' इत्यनेन युक्तं तिङन्तमप्रातिलोम्ये नानुदात्तं भवति। स हि कुरु। स हि पचं। स हि पठं। 'अप्रातिलोम्ये' इत्येव-स हि कूज वृषल इदानीं ज्ञास्यति जाल्म।

अर्थ—प्रातिलोम अर्थ से अन्यत्र 'हि' शब्द से युक्त तिङन्त पद अनुदात्त होता है।

उद० (1) स हि कुरु
अनुदात्त नहीं हुआ।

(2) स हि पच
अनुदात्त नहीं हुआ।

(3) स हि पठ
अनुदात्त नहीं हुआ।

अप्राति०—अप्रातिलोम्य अर्थ में ही अनुदात्त का निषेध होता है।

(4) स हि कूज वृषल इदानीं ज्ञास्यसि जाल्म
यहाँ नहीं हुआ।

(3649) छन्दस्यनेकमपि साकाङ्क्षम् *35* (3942)

'हि च' इति वर्तते। छन्दसि विषये हि-युक्तं तिङन्तं साकाङ्क्षमनेकमपि नानुदात्तं भवति, एकमपि। कदाचिद्-एकम्, कदाचिदनेकमित्यर्थः। तत्रानेकं तावत्-अनृतं हि मतो वदति, पाप्मा एनं विपुनाति। तिङन्तद्वयमप्येतत्र निहन्यते। एकं खल्वपि-अग्निर्हि अग्ने उदजयत्। तिङन्तद्वयमपि हिशब्दयुक्तमेतत्। तत्रैकमुदजयदित्यादिरुदात्तम्, अपरमनुदात्तम्। अजाह्यग्नेरजनिष्ट गर्भात् सा वा अपश्यज्जनितारमग्ने (तै० 4.2.10.4)। अजनिष्टेत्याद्युदात्तम् अपश्यदित्यनुदात्तम्।

अर्थ—'हि' का अनुवर्त्तन है। वेद के विषय में 'हि' शब्द से युक्त तिङन्त पद साकांक्ष अनेक हो चाहे एक हो, अनुदात्त नहीं होता है। कभी एक तिङन्त होता है, कभी अनेक होते हैं।

उदा० (1) अनृतं हि मत्तो वदति, पाप्मा एवं विपुनाति
यहाँ दो तिङन्त हैं। दोनों को अनुदात्त नहीं होता है।

(2) अग्निर्हि अग्ने उदजयत्
यहाँ एक तिङन्त है। अनुदात्त नहीं हुआ। उदजयत् आद्युदात्त हुआ। दूसरा अनुदात हुआ।

(3) अजा ह्यग्नेरजनिष्ट गर्भम्, सा वा अपश्यज्जनितारमग्रे।
अजनिष्टा आद्युदात्त हुआ तथा अपश्यत् अनुदात्त।

(3650) यावद्यथाभ्याम् *36* (3943)

'यावत्', 'यथा'-इत्येताभ्यां युक्तं तिङन्तं नानुदात्तं भवति। यावद् भुङ्क्ते। यथा भुङ्क्ते। यावदधीते। यथाधीते। देवदत्तः पचंति यावत्। देवदत्तः पचंति यथा। परेणापि योगे भवति प्रतिषेधः।

अर्थ—यावत् तथा यथा—इन शब्दों से युक्त तिङन्त पद अनुदात्त नहीं होता है।

उदा० (1) यावद् भुङ्क्ते
अनुदात्त-निषेध।

(2) यथा भुङ्क्ते (पूर्ववत्)।
(3) यावद् अधीते (पूर्ववत्)।
(4) यथाऽधीते (पूर्ववत्)।
(5) देवदत्तः पचति यावत्
पर योग होने पर भी अनुदात्त नहीं होता है।
(6) देवदत्तः पचति यथा (पूर्ववत्)।

(3651) पूजायां नानन्तरम् *37* (3944)

'यावत्', 'यथा'-इत्येताभ्यां युक्तमनन्तरं तिङन्तं पूजायां विषये नानुदात्तं न भवति। किं तर्हि? अनुदात्तमेव। यावत्पचति शोभनम्। यथा पचति शोभनम्। यावत् करोति चारु। यथा करोति चारु। पूजायामिति किम्?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यावद् भुङ्क्ते। यथा भुङ्क्ते। अनन्तरमिति किम्? यावद्देवदत्तः पचति शोभनम्। यथा देवदत्तः करोतिं चारु। पूर्वेणात्र निघातः प्रतिषिध्यते।

अर्थ—पूजा के विषय में यावत् तथा यथा—इन शब्दों से युक्त अनन्तर तिङन्त शब्द अनुदात्त होता है।

उदा० (1) यावत् पचति शोभनम्
अनुदात्त हुआ।

(2) यथा पचति शोभनम् (पूर्ववत्)।

(3) यावत् करोति चारु (पूर्ववत्)।

(4) यथा करोति चारु (पूर्ववत्)।

पूजा०—पूजा अर्थ में ही अनुदात्त-निषेध नहीं होता है।

(5) यावद् भुङ्क्ते
पूजा अर्थ नहीं है। अनुदात्त-निषेध हुआ।

(6) यथा भुङ्क्ते (पूर्ववत्)।

अनन्त०—अनन्तर होने पर ही अनुदात्त होता है।

(7) यावद् देवदत्तः पचति शोभनम्
पूजा अर्थ है; परन्तु 'यावत्' व तिङन्त पद 'पचति' का अनन्तर योग नहीं है। अनुदात्त-निषेध नहीं हुआ।

(8) यथा देवदत्तः करोति चारु (पूर्ववत्)।

(3652) उपसर्गव्यपेतं च *38* (3945)

यावद्यथाभ्यां युक्तं उपसर्गव्यपेतं च पूजायां विषये नानुदात्तं न भवति, किं तर्हि? अनुदात्तमेव भवति। पूर्वमनन्तरमित्युक्तम्, उपसर्गव्यवधानार्थोऽयमारम्भः। यावत् प्रपचति शोभनम्। यथा प्रपचति शोभनम्। यावत्प्रकरोति चारु। यथा प्रकरोति चारु। अनन्तरमित्येव-यावद्देवदत्तः प्रपचति। यथा विष्णुमित्रः प्रकरोति चारु।

अर्थ—पूजा अर्थ में वर्त्तमान यावत् तथा यथा शब्दों से युक्त उपसर्ग से व्यवहित तिङन्त पद को अनुदात्त-निषेध नहीं होता है, अर्थात् अनुदात्त नहीं होता है। पूर्व सूत्र के द्वारा अनन्तर योग की स्थिति में निषेध किया गया था, यह उपसर्ग का व्यवधान होने पर प्रतिषेध-विधान किया जा रहा है।

उदा० (1) यावत् प्रपचति शोभनम्
यहाँ 'प्र' का व्यवधान होने से पूर्व सूत्र की प्रवृत्ति नहीं थी। अनुदात्त-निषेध नहीं हुआ।

(2) यथा प्रपचति शोभनम् (पूर्ववत्)।

(3) यावत् प्रकरोति चारु (पूर्ववत्)।

(4) यथा प्रकरोति चारु (पूर्ववत्)।

अनन्त०—अनन्तर योग में ही यह होता है।

(5) यावद् देवदत्तः प्रपचति
'प्रपचति' तथा 'यावत्' में व्यवधान है।

(6) यथा विष्णुमित्रः प्रकरोति चारु (पूर्ववत्)।

(3653) तुपश्यपश्यताहैः पूजायाम् *39* (3946)

तु, पश्य, पश्यत, अह-इत्येतैर्युक्तं तिङन्तं नानुदात्तं भवति पूजायां विषये। तु-माणवकस्तु भुङ्क्ते शोभनम्। पश्य-पश्य माणवको भुङ्क्ते शोभनम्। पश्यत-पश्यत माणवको भुङ्क्ते शोभनम्। अह-अह माणवको भुङ्क्ते शोभनम्। पूजायामिति किम्? पश्य मृगो धावति। 'पूजायाम्' इति वर्तमाने पुनः 'पूजायाम्' इत्युच्यते निघात-प्रतिषेधार्थम्। तद्धि प्रतिषेधस्य प्रतिषेधेन सम्बद्धमिति।

अर्थ—पूजा के विषय में तु, पश्य, पश्यत तथा अह—इन शब्दों से युक्त तिङन्त अनुदात्त नहीं होता है।

उदा० (1) माणवकस्तु भुङ्क्ते शोभनम्
'तु' का योग है।

(2) पश्य माणवको भुङ्क्ते शोभनम् (पूर्ववत्)।

(3) पश्यत माणवको भुङ्क्ते शोभनम् (पूर्ववत्)।

(4) अह माणवको भुङ्क्ते शोभनम् (पूर्ववत्)।

पूजा०—पूजा अर्थ में ही यह प्रतिषेध होता है।

(5) पश्य मृगो धावति
यहाँ पूजा नहीं है।

पूजा०—'पूजायाम्' का अधिकार प्राप्त होने पर भी पुनः 'पूजायाम्' का ग्रहण निघात के निषेध के लिए है। वह प्रतिषेध के प्रतिषेध से सम्बद्ध है।

(3654) अहो च *40* (3947)

'अहो'-इत्यनेन युक्तं तिङन्तं नानुदात्तं भवति पूजायां विषये। अहो देवदत्तः पचति शोभनम्। अहो विष्णुमित्रः करोति चारु। पृथग्योगकरणमुत्तरार्थम्।

अर्थ—पूजा के विषय में 'अहो' शब्द से युक्त तिङन्त पद अनुदात्त नहीं होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उदा० (1) अहो देवदत्तः पचति शोभनम्
पूजा अर्थ है, 'अहो' से युक्त है। निघात-प्रतिषेध हुआ।

(2) अहो विष्णुमित्रः करोति चारु (पूर्ववत्)।

पृथग् योग उत्तर शास्त्र के लिए है।

(3655) शेषे विभाषा *41* (3948)

'अहो' इत्यनेन युक्तं तिङन्तं शेषे विभाषा नानुदात्तं भवति। कश्च शेषः? यदन्यत्पूजायाः। कटमहो करिष्यसि। मम गेहमेष्यसि। असूयावचनमेतत्। 'पूजायाम्'-इत्यस्य चानुकृष्टत्वादनधिकारे सिद्धे शेषवचनं विस्पष्टार्थम्।

अर्थ—शेष अर्थों में 'अहो' शब्द से युक्त तिङन्त पद को विकल्प से अनुदात्त नहीं होता है।

पूजा से अतिरिक्त 'शेष' कहलाता है।

उदा० (1) कटमहो करिष्यसि

पूजा अर्थ नहीं है। 'अहो' से युक्त तिङन्त पद 'करिष्यसि' पद है। अनुदात्त-निषेध हुआ।

(2) कटमहो करिष्यसि
पक्ष में अनुदात्त-निषेध नहीं हुआ।

(3) मम गेहम् एष्यसि
यह असूयावचन है। अनुदात्त-निषेध।

(4) मम गेहम् एष्यसि
पक्ष में अनुदात्त-निषेध का प्रतिषेध।

पूजाया०—'पूजायाम्' इसका पूर्वत्र अनुकृष्ट होने से अनधिकार की दशा में सिद्ध होने पर 'शेषे' का ग्रहण स्पष्टता के लिए है।

(3656) पुरा च परीप्सायाम् *42* (3949)

'पुरा'-इत्यनेन युक्तं तिङन्तं परीप्सायामर्थे विभाषा नानुदात्तं भवति। परीप्सा=त्वरा। अधीष्व माणवक। पुरा विद्योतते विद्युत्। पुरा स्तनयति स्तनयित्नुः। पुराशब्दोऽत्र भविष्यदासत्तिं द्योतयति। परीप्सायामिति किम्? नडेन स्म पुराधीयते। अत्र भूतकालविप्रकर्षं पुराशब्दो द्योतयति। ऊर्णया स्म पुराधीयते।

अर्थ—परीप्सा अर्थ में 'पुरा' शब्द से युक्त तिङन्त पद विकल्प से अनुदात्त नहीं होता है।

'परीप्सा' त्वरा को कहते हैं।

उदा० (1) अधीष्व माणवक, पुरा विद्योतते विद्युत्
अनुदात्त-निषेध।

(2) पुरा विद्योतते विद्युत्
निषेध नहीं हुआ।

(3) पुरा स्तनयति स्तनयित्नुः
निघात-निषेध।

(4) पुरा स्तनयति स्तनयित्नुः
निघात-निषेध नहीं हुआ।

परीप्सा०—परीप्सा अर्थ में ही विकल्प से निघात-प्रतिषेध होता है।

(5) नडेन स्म पुराऽधीयते

'पुरा' का योग है, 'अधीयते' तिङन्त पद है, परन्तु त्वरा अर्थ नहीं है। अतः पाक्षिक निषेध नहीं हुआ।

(6) ऊर्णया स्म पुराऽधीयते (पूर्ववत्)।

(3657) नन्वित्यनुज्ञैषणायाम् *43* (3950)

'ननु' इत्यनेन युक्तं तिङन्तं नानुदात्तं भवति अनुज्ञैषणायां विषये। अनुज्ञाया एषणा=प्रार्थना, अनुज्ञैषणा। अनुज्ञा-प्रार्थनेत्यर्थः। ननु करोमि भोः। (ननु गच्छामि भोः।) अनुजानीष्व माम्, करणं प्रतीत्यर्थः। अनुज्ञैषणायामिति किम्? अकार्षीः कटं देवदत्त? ननु करोमि भोः। पृष्टप्रतिवचनमेतत्, नानुज्ञैषणा।

अर्थ—अनुज्ञैषणा अर्थ में 'ननु' शब्द से युक्त तिङन्त पद अनुदात्त नहीं होता है।

अनुज्ञा की प्रार्थना 'अनुज्ञैषणा' कहलाती है।

उदा० (1) ननु करोमि भोः
निघात-प्रतिषेध।

(2) ननु गच्छामि भोः (पूर्ववत्)।

अनुज्ञै०—अनुज्ञैषणा अर्थ में ही निघात-प्रतिषेध होता है।

(3) अकार्षीः कटं देवदत्त, ननु करोमि भोः
यहाँ अनुज्ञा की एषणा नहीं है; अपितु प्रश्न का प्रतिवचन है।

(3658) किं क्रियाप्रश्नेऽनुपसर्गमप्रतिषिद्धम् *44* (3951)

'किम्'-इत्येतत्क्रियाप्रश्ने यदा वर्तते तदानेन युक्तं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तिङन्तमनुपसर्गमप्रतिषिद्धं नानुदात्तं भवति। किं देवदत्तः पचति, आहोस्विद् भुङ्क्ते। किं देवदत्तः शेते, आहोस्विदधीते। अत्र केचिदाहुः–पूर्वं किंयुक्तमिति तन्न निहन्यते। उत्तरं तु न किंयुक्तमिति तन्निहन्यत एवेति। अपरे त्वाहुः–यद्यप्येकस्याख्यातस्य समीपे किंशब्दः श्रूयते, तथापि सर्वस्य संशयविषयस्य तेन योग इति, उभयत्र प्रतिषेधेन भवितव्यमिति। क्रियाग्रहणं किम्? साधनप्रश्ने मा भूत्–किं देवदत्त ओदनं पचति आहोस्विच्छाकमिति। प्रश्न इति किम्? किमधीते देवदत्तः। क्षेपे किंशब्दोऽयम्, न प्रश्ने। अनुपसर्गमिति किम्? किं देवदत्तः प्रपचति, आहोस्वित्प्रकरोति। अप्रतिषिद्धमिति किम्? किं देवदत्तो न पठति, आहोस्विन्न करोति।

अर्थ—जब 'किम्' शब्द क्रियाप्रश्न में वर्त्तमान हो तो इससे युक्त, अप्रतिषिद्ध, उपसर्ग से रहित तिङन्त पद अनुदात्त नहीं होता है।

उदा० (1) किं देवदत्तः पचति, आहोस्विद् भुङ्क्ते

'किम्' शब्द क्रियाप्रश्न में वर्त्तमान है, 'भुङ्क्ते' तिङन्त पद उपसर्गरहित है। निघात-प्रतिषेध हुआ।

(2) किं देवदत्तः शेते, आहोस्विद् अधीते (पूर्ववत्)।

अत्र०—यहाँ कुछ विद्वान् कहते हैं कि पूर्व तिङन्त पद 'पचति' किम् शब्द से युक्त है। अतः निघात-निषेध होता है, परन्तु उत्तर तिङन्त पद 'भुङ्क्ते' किम् शब्द से युक्त नहीं है। अतः निघात होता है।

अपरे०—अन्य विद्वान् कहते हैं कि यद्यपि एक तिङन्त पद के समीप 'किम्' शब्द का श्रवण होता है, तथापि सम्पूर्ण संशय विषय का उसके साथ योग होता है, अतः दोनों तिङन्त पदों को निघात-निषेध होता है।

क्रिया०—क्रियाप्रश्न की दशा में ही निघात-निषेध होता है। तब साधन के प्रश्न की दशा में निषेध नहीं होता।

(3) किं देवदत्त ओदनं पचति, आहोस्विच् छाकम्

यहाँ 'पचन' क्रिया के विषय में प्रश्न नहीं है, साधनरूप 'ओदन' के विषय में प्रश्न है। निघात-निषेध नहीं हुआ।

प्रश्न०—प्रश्न की दशा में ही निघात-निषेध होता है।

(4) किमधीते देवदत्तः ?

यहाँ 'किम्' शब्द प्रश्न अर्थ में नहीं है, अपितु निन्दा अर्थ में है। अतः निघात-निषेध नहीं हुआ।

अनुप०—उपसर्गरहित तिङन्त पद को निघात-निषेध होता है।

(5) किं देवदत्तः प्रपचति, आहोस्वित् प्रकरोति

यहाँ क्रिया के विषय में प्रश्न है, 'किम्' शब्द का योग है, परन्तु 'प्रकरोति' तिङन्त पद उपसर्गयुक्त है। निघात-निषेध नहीं हुआ।

अप्रति०—निषेधरहित होने पर ही निघात-निषेध होता है।

(6) किं देवदत्तो न पठति, आहोस्विन्न करोति

क्रिया के विषय में प्रश्न है, 'किम्' शब्द का योग है, 'करोति' तिङन्त पद अनुपसर्ग है, परन्तु 'न' का योग होने से अप्रतिषिद्ध नहीं है। अतः निघात-निषेध नहीं हुआ।

(3659) लोपे विभाषा *45* (3952)

किमो लोपे क्रियाप्रश्ने तिङन्तमनुपसर्गमप्रतिषिद्धं विभाषा नानुदात्तं भवति। क्व चास्य लोपः? यत्र गम्यते चार्थः, न च प्रयुज्यते किंशब्दः। देवदत्तः पचति आहोस्वित्पठति? विनैव किमा प्रश्नोऽवगम्यते। प्राप्तविभाषेयं किमर्थेन योगात्। पूर्ववत् प्रत्युदाहरणानि।

अर्थ—क्रिया के सम्बन्ध में प्रश्न की दशा में तथा किम् शब्द के लोप की दशा में अनुपसर्ग, अप्रतिषिद्ध, तिङन्त पद को अनुदात्त-निषेध विकल्प से होता है।

'किम्' शब्द का लोप कहाँ होता है ? जहाँ इसके अर्थ की प्रतीति हो, परन्तु 'किम्' शब्द का प्रयोग न हो।

उदा० (1) देवदत्तः पचति ? आहोस्वित् पठति

क्रिया के विषय में प्रश्न है, 'किम्' शब्द के प्रयोग के विना ही प्रश्न अर्थ गम्यमान है।

'किम्' शब्द के अर्थ के योग से यह प्राप्त विभाषा है। प्रत्युदाहरण पूर्ववत् जानने चाहिए।

(3660) एहिमन्ये प्रहासे लट् *46* (3953)

'एहिमन्ये'–इत्यनेन युक्तं लङन्तं नानुदात्तं भवति प्रहासे। प्रकृष्टो हासः प्रहासः = क्रीडा। एहि मन्ये ओदनं भोक्ष्यसे, न हि भोक्ष्यसे, भुक्तः सोऽतिथिभिः। एहि मन्ये रथेन यास्यसि, न हि यास्यसि, यातस्तेन पिता। प्रहास इति किम्? एहि मन्यसे ओदनं भोक्ष्ये इति। सुष्ठु मन्यसे। साधु मन्यसे। 'गत्यर्थलोटा लट्' (8.1.51) इत्येव सिद्धे सत्यारम्भो नियमार्थः–एहिमन्येयुक्ते प्रहास एव यथा स्यात्,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्यथा मा भूदिति–एहि मन्यसे ओदनं भोक्ष्य इति। 'एहिमन्ये' इत्युत्तमोपादानमतन्त्रम्। प्रहास एव हि मन्यते-रुत्तमो विहितः, ततोऽन्यत्र मध्यम एव भवति। तत्रानेन नियमेन निवृत्तिः क्रियते–एहि ओदनं भोक्ष्य इति।

अर्थ—'एहि मन्ये' का योग होने पर लृट् प्रत्ययान्त तिङन्त शब्द अनुदात्त नहीं होता है, प्रहास अर्थ में।

उदा० (1) एहि मन्ये आदेनं भोक्ष्यसे, न हि भोक्ष्यसे, भुक्तः सोऽतिथिभिः।

यहाँ 'एहि मन्ये' का योग है। 'भोक्ष्यसे' लृट् प्रत्ययान्त पद है। 'प्रहास' अर्थ गम्यमान है। अनुदात्त नहीं हुआ।

(2) एहि मन्ये रथेन यास्यसि, न हि यास्यसि, यातस्तेन पिता। (पूर्ववत्)।

प्रहास०—प्रहास अर्थ में ही निघात-प्रतिषेध होता है।

(3) एहि मन्यसे ओदनं भोक्ष्ये, सुष्ठु मन्यसे।

यहाँ प्रहास अर्थ नहीं है। अतः निघात-प्रतिषेध नहीं होता।

गत्यर्थ०—यह 'गत्यर्थलोटा लृट्' से ही सिद्ध है। तब नियमार्थ विधान किया गया है। यह नियम करता है कि 'एहि मन्ये' पद से युक्त होने पर प्रहास अर्थ में ही निघात-प्रतिषेध होता है, अन्यत्र नहीं होता है। यथा—

एहि मन्यसे ओदनं भोक्ष्ये।

एहि०—'एहि मन्ये' इस प्रकार उत्तम पुरुष का उपादान अनुचित है। प्रहास अर्थ में ही 'मन्' धातु से उत्तम पुरुष विहित है। इससे अन्य स्थल पर तो मध्यम पुरुष ही होता है। तब इस नियम से निवृत्ति की जाती है। यथा—

एहि मन्यसे ओदनं भोक्ष्ये।

(3661) जात्वपूर्वम् *47* (3954)

'जातु' इत्येतदविद्यमानपूर्वं तेन युक्तं तिङन्तं नानुदात्तं भवति। जातु भोक्ष्यसे। जातु करिष्यामि। अपूर्वमिति किम्? कटं जातु करिष्यति।

अर्थ—पूर्व में नहीं है विद्यमान जिसके, ऐसे 'जातु' शब्द से युक्त होने पर तिङन्त पद निघात नहीं होता है।

उदा० (1) जातु भोक्ष्यसे

'जातु' का योग है। 'भोक्ष्यसे' तिङन्त पद है। अनुदात्त-प्रतिषेध हुआ।

(2) जातु करिष्यामि (पूर्ववत्)।

अपूर्व०—नहीं है पूर्व में जिसके, ऐसे 'जातु' शब्द से युक्त होने पर ही तिङन्त पद को निघात-प्रतिषेध होता है।

(3) कटं जातु करिष्यति

'जातु' शब्द से युक्त 'करिष्यति' को निघात-प्रतिषेध नहीं हुआ, क्योंकि जातु शब्द से पूर्व 'कटम्' पद विद्यमान है।

(3662) किंवृत्तं च चिदुत्तरम् *48* (3955)

किमो वृत्तं किंवृत्तम्। किंवृत्तग्रहणेन तद्विभक्त्यन्तं प्रतीयात्, डतरडतमौ च प्रत्ययौ। तत्किंवृत्तं चिदुत्तर-मविद्यमानपूर्वं यत्तेन युक्तं नानुदात्तं भवति। कश्चिद् भुङ्क्ते। कश्चिद्भोजयति। कश्चिदधीते केनचित्करोति। कस्मैचिद्ददाति। कतरश्चित्करोति। कतमश्चिद् भुङ्क्ते। चिदुत्तरमिति किम्? को भुङ्क्ते। अपूर्वमित्येव–देवदत्तः किञ्चित्पठति।

अर्थ—'किम्' का वृत्त 'किंवृत्त' कहलाता है। 'किंवृत्त' के द्वारा तद्विभक्त्यन्त शब्द तथा डतर व डतम प्रत्ययों की प्रतीति होती है। 'चित्' शब्द है उत्तर में जिसके तथा कोई पद विद्यमान नहीं है पूर्व में जिसके, ऐसे किंवृत्त से युक्त होने पर निघात-प्रतिषेध होता है।

उदा० (1) कश्चिद् भोजयति

निघात का निषेध हुआ।

(2) कश्चिद् अधीते (पूर्ववत्)।

(3) केनचित् करोति (पूर्ववत्)।

(4) कस्मैचिद् ददाति (पूर्ववत्)।

(5) कतरश्चित् करोति (पूर्ववत्)।

(6) कतमश्चिद् भुङ्क्ते (पूर्ववत्)।

चिदुत्त०—चित् है उत्तर में जिसके, ऐसे किंवृत्त का योग होने पर निघात-प्रतिषेध होता है।

(7) को भुङ्क्ते

'कः' पद से उत्तर 'चित्' नहीं है। निघात-प्रतिषेध नहीं हुआ।

अपूर्व०—पूर्व में विद्यमान नहीं है जिसके, ऐसे किंवृत्त से युक्त होने पर ही निघात-प्रतिषेध होता है।

देवदत्तः किञ्चित् पठति

'किम्' से उत्तर 'चित्' शब्द है; परन्तु इससे पूर्व 'देवदत्तः' पद विद्यमान है। निघात-प्रतिषेध नहीं हुआ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(3663) आहोउताहो चानन्तरम् *49* (3956)

निघातप्रतिषेधोऽनुवर्तते। 'अपूर्वम्' इति च। आहो, उताहो-इत्येताभ्यामपूर्वाभ्यां युक्तमनन्तरं तिङन्तं नानुदात्तं भवति। आहो भुङ्क्ते। उताहो भुङ्क्ते। आहो पठति। उताहो पठति। अनन्तरमिति किम्? 'शेषे विभाषा' (8.1.50) वक्ष्यति। 'अपूर्वम्' इत्येव-देवदत्त आहो भुङ्क्ते। देवदत्त उताहो भुङ्क्ते।

अर्थ—निघात का प्रतिषेध होता है—इसका अनुवर्त्तन है। 'अपूर्वम्' पद भी अनुवृत्त है।

पूर्व में कोई पद विद्यमान नहीं है जिनके, ऐसे आहो तथा उताहो—इन शब्दों से अव्यवहित युक्त होने पर तिङन्त पद को निघात का प्रतिषेध होता है।

उदा० (1) आहो भुङ्क्ते

'आहो' से पूर्व कोई पद विद्यमान नहीं है। 'आहो' से अव्यवहित तिङन्त पद 'भुङ्क्ते' का योग है। निघात-प्रतिषेध हुआ।

(2) उताहो भुङ्क्ते (पूर्ववत्)।
(3) आहो पठति (पूर्ववत्)।
(4) उताहो पठति (पूर्ववत्)।

अनन्तर०—अव्यवहित तिङन्त पद को निघात का प्रतिषेध होता है। व्यवहित होने पर 'शेषे विभाषा' आगे कहा जायेगा।

अपूर्वम्०—विद्यमान नहीं है पूर्व में जिसके, ऐसे आहो तथा उताहो से युक्त होने पर तिङन्त पद अनुदात्त नहीं होता है।

(5) देवदत्त आहो भुङ्क्ते

'आहो' से पूर्व 'देवदत्तः' पद है। इससे युक्त होने पर 'भुङ्क्ते' इस तिङन्त पद को निघात-प्रतिषेध नहीं हुआ।

(6) देवदत्त उताहो भुङ्क्ते (पूर्ववत्)।

(3664) शेषे विभाषा *50* (3957)

'आहो', 'उताहो'-इत्येताभ्यां युक्तं तिङन्तं नानुदात्तं शेषे विभाषा भवति। कश्च शेषः? यदन्यदनन्तरात्। आहो देवदत्तः पचति, पचति। उताहो देवदत्तः पचति, पचति। आहो देवदत्तः पठति, पठति, उताहो देवदत्तः पठति, पठति।

अर्थ—शेष स्थलों पर आहो व उताहो—इन शब्दों से युक्त होने पर तिङन्त पद को अनुदात्त-निषेध विकल्प से होता है। शेष क्या है? अनन्तर से जो अन्य है, उसे 'शेष' कहेंगे। भाव यह है कि 'आहो' तथा 'उताहो' से व्यवहित तिङन्त पद को अनुदात्त-निषेध विकल्प से होता है।

उदा० (1) आहो देवदत्तः पचति

'आहो' शब्द से तिङन्त पद 'पचति' युक्त है। अतः विकल्प से अनुदात्त-निषेध हुआ।

(2) आहो देवदत्तः पचति
पक्ष में अनुदात्त हुआ।

(3) उताहो देवदत्तः पचति
अनुदात्त-निषेध।

(4) उताहो देवदत्तः पचति
पक्ष में निघात।

(5) आहो देवदत्तः पठति
निघात-निषेध।

(6) आहो देवदत्तः पठति
निघात हुआ।

(7) उताहो देवदत्तः पठति
निघात-निषेध।

(8) उताहो देवदत्तः पठति
निघात हुआ।

(3665) गत्यर्थलोटा लृण्न चेत्कारकं सर्वान्यत् *51* (3958)

गमिना समानार्था गत्यर्थाः, गत्यर्थानां लोट् गत्यर्थलोट्, तेन। गत्यर्थलोटा युक्तं लृङन्तं तिङन्तं नानुदात्तं भवति, न चेत्कारकं सर्वमन्यद्भवति। यत्रैव कारके कर्तरि कर्मणि वा लोट्, तत्रैव यदि लृडपि भवतीत्यर्थः। कर्तृकर्मणी एवात्र तिङन्तवाच्ये कारकग्रहणेन गृह्येते, न करणादि कारकान्तरम्। आगच्छ देवदत्त ग्रामं द्रक्ष्यस्येनम्। आगच्छ देवदत्त ग्राममोदनं भोक्ष्यसे। उह्यन्तां देवदत्तेन शालयः, तेनैव भोक्ष्यन्ते। उह्यन्तां देवदत्तेन शालयः, यज्ञदत्तेन भोक्ष्यन्ते। गत्यर्थग्रहणं किम्? पच देवदत्त ओदनं भोक्ष्यसे एनम्। लोटेति किम्? आगच्छेर्देवदत्त ग्रामं द्रक्ष्यस्येनम्। लृडिति किम्? आगच्छ ग्रामं पश्यस्येनम्। न चेत्कारकं सर्वान्यदिति किम्? आगच्छ देवदत्त ग्रामं पिता ते ओदनं भोक्ष्यते। उह्यन्तां देवदत्तेन शालयः सक्तवस्तेन पास्यन्ते।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सर्वग्रहणं किम्? आगच्छ देवदत्त ग्रामं त्वं चाहं च द्रक्ष्याव एनम्–इत्यत्रापि निघातप्रतिषेधो यथा स्यात्। लडन्तवाच्ये हि सर्वस्मिन् कारकेऽन्यस्मिन् भवितव्यम्। इह तु यल्लोडन्तस्य कारकं तच्चान्यच्च लडन्तेनोच्यते इति।

अर्थ—गम् के समानार्थक गत्यर्थक कहलाते हैं। गत्यर्थक का लोट् गत्यर्थलोट् हुआ। उस गत्यर्थलोट् से युक्त लट् प्रत्ययान्त तिङन्त अनुदात्त नहीं होता है, यदि कारक सम्पूर्ण अन्य न हो।

'सर्वान्यत्' का अर्थ यह है कि जिस कारक में लोट् प्रत्ययान्त शब्द हो, उसी कारक में लट् प्रत्ययान्त शब्द हो।

उदा० (1) आगच्छ देवदत्त ग्रामं द्रक्ष्यस्येनम्

'आगच्छ' गत्यर्थ लोट् है। इससे युक्त लट् प्रत्ययान्त 'द्रक्ष्यसि' है। निघात नहीं हुआ।

(2) आगच्छ देवदत्त, ग्रामम् ओदनं भोक्ष्यसे (पूर्ववत्)।

(3) उह्यन्तां देवदत्तेन शालयः, तेनैव भोक्ष्यन्ते (पूर्ववत्)।

(4) उह्यन्तां देवदत्तेन शालयः, यज्ञदत्तेन भोक्ष्यन्ते (पूर्ववत्)।

गत्यर्थ०—गत्यर्थक लोट् से युक्त होने पर ही तिङन्त को निघात-निषेध होता है।

(5) पच देवदत्तौदनं, भोक्ष्यस एनम्

'पच' लोट् प्रत्ययान्त है, परन्तु गत्यर्थक लोट् नहीं है। अतः इससे युक्त लट् प्रत्ययान्त 'भोक्ष्यसे' तिङन्त पद को निघात-निषेध नहीं हुआ।

लोटेति०—गत्यर्थक लोट् से युक्त होने पर ही तिङन्त पद को निघात-निषेध होता है।

(6) आगच्छेर्देवदत्त ग्रामं द्रक्ष्यस्येनम्

'द्रक्ष्यसि' लट् प्रत्ययान्त पद है। 'आगच्छेः' पद गत्यर्थक तो है, परन्तु लोट् प्रत्ययान्त नहीं है। अतः इससे युक्त होने पर तिङन्त 'द्रक्ष्यसि' को निघात-निषेध नहीं हुआ।

लडिति०—लट् प्रत्ययान्त तिङन्त को ही निघात-निषेध होता है।

(7) आगच्छ देवदत्त ग्रामं पश्यस्येनम्

'पश्यसि' लट् प्रत्ययान्त नहीं है। अतः इसे निघात-निषेध नहीं हुआ।

न चेत् कारकं०—यदि लोट् प्रत्ययान्त तथा लट् प्रत्ययान्त शब्द एक ही कारक में हों तो लट् प्रत्ययान्त को अनुदात्त होता है।

(8) आगच्छ देवदत्त ग्रामं, पिता ते ओदनं भोक्ष्यते

गत्यर्थक लोट् 'आगच्छ' से लट् प्रत्ययान्त 'भोक्ष्यते' तिङन्त पद युक्त है, परन्तु अन्य कारक होने से निघात-निषेध नहीं हुआ।

(9) उह्यन्तां देवदत्तेन शालयः, सक्तवस्तेन पास्यन्ते (पूर्ववत्)।

सर्वग्रह०—सर्व का ग्रहण किया गया है, ताकि निम्नलिखित में न हो—

(10) आगच्छ देवदत्त ग्रामं त्वं चाऽहं च द्रक्ष्याव एनम्

यहाँ पर भी निघात-प्रतिषेध होता है।

(3666) लोट् च *52* (3959)

लोडन्तं तिङन्तं गत्यर्थलोटा युक्तं नानुदात्तं भवति, न चेत्कारकं सर्वान्यद्भवति। लोडन्तयोरेकं कारकं यदि भवतीत्यर्थः। आगच्छ देवदत्त ग्रामं पश्य। आव्रज विष्णुमित्र ग्रामं शाधि। आगम्यतां देवदत्तेन, ग्रामो दृश्यतां यज्ञदत्तेन। 'गत्यर्थानाम्' इत्येव–पच देवदत्त ओदनं भुङ्क्ष्वेनम्। 'लोटा' इत्येव–आगच्छेर्देवदत्त ग्रामं पश्यैनम्। 'न चेत्कारकं सर्वान्यत्' इत्येव–आगच्छ देवदत्त ग्रामं पश्यत्वेनं यज्ञदत्तः। सर्वग्रहणानुवृत्तेस्त्विह भवत्येव–आगच्छ देवदत्त ग्रामं त्वं चाहं च पश्याव। पृथग्योगकरणमुत्तरार्थम्।

अर्थ—गत्यर्थक लोट् से युक्त लोट् प्रत्ययान्त तिङन्त को निघात का निषेध होता है, यदि दोनों का कारक भिन्न न हो।

उदा० (1) आगच्छ देवदत्त ग्रामं पश्य

'आगच्छ' गत्यर्थक लोट् है। 'पश्य' लोट् प्रत्ययान्त है। इससे युक्त तिङन्त 'पश्य' को निघात-निषेध हुआ।

(2) आव्रज विष्णुमित्र ग्रामं शाधि (पूर्ववत्)।

(3) आगम्यतां देवदत्तेन, ग्रामो दृश्यतां यज्ञदत्तेन (पूर्ववत्)।

गत्यर्था०—गत्यर्थक लोट् से युक्त लोट् प्रत्ययान्त तिङन्त को निघात-निषेध होता है।

(4) पच देवदत्तौदनं भुङ्क्ष्वैनम्

'पच' लोट् प्रत्ययान्त पद है, 'भुङ्क्ष्व' लोट् प्रत्ययान्त तिङन्त है। परन्तु 'पच' गत्यर्थक नहीं है। अतः निघात-निषेध नहीं हुआ।

लोटा०—गत्यर्थक लोट् से युक्त लोट् प्रत्ययान्त तिङन्त को निघात-निषेध होता है।

(5) आगच्छेर्देवदत्त ग्रामं पश्यैनम्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'आगच्छेः' गत्यर्थक पद है, परन्तु लोट् प्रत्ययान्त नहीं है। अतः इससे युक्त लोट् प्रत्ययान्त 'पश्य' तिङन्त को निघात-निषेध नहीं हुआ।

न चेत्कारकं०—यदि कारक सम्पूर्ण अन्य न हो। यथा—

(6) आगच्छ देवदत्त ग्रामं, पश्यत्वेनं यज्ञदत्तः

'आगच्छ' गत्यर्थक लोट् है। इससे युक्त 'पश्यतु' लोट्प्रत्ययान्त तिङन्त है, परन्तु अन्यत् कारक होने से 'पश्यतु' को निघात-निषेध नहीं हुआ।

सर्वग्रह०—'सर्व' शब्द का अनुवर्त्तन होने से यहाँ निषेध होता है।

(7) आगच्छ देवदत्त ग्रामं त्वं चाऽहं च पश्याव।

पृथग्यो०—प्रकृत सूत्र का पृथक् पाठ उत्तर शास्त्र के लिए है।

(3667) विभाषितं सोपसर्गमनुत्तमम् *53* (3960)

सर्वं पूर्वमनुवर्तते। प्राप्तविभाषेयम्। लोडन्तं सोपसर्गमुत्तमवर्जितं गत्यर्थलोटा युक्तं तिङन्तं विभाषितं नानुदात्तं भवति, न चेत्कारकं सर्वान्यद्भवति। आगच्छ देवदत्त ग्रामं प्रविश। आगच्छ देवदत्त ग्रामं प्रशाधि। सोपसर्गमिति किम्? आगच्छ देवदत्त ग्रामं पश्य। अनुत्तममिति किम्? आगच्छानि देवदत्त ग्रामं प्रविशानि।

अर्थ—सम्पूर्ण अधिकार पूर्ववत् है। यह प्राप्त विभाषा है। गत्यर्थक लोट् प्रत्ययान्त से युक्त उत्तम पुरुष से रहित लोट् प्रत्ययान्त सोपसर्ग तिङन्त विकल्प से अनुदात्त नहीं होता है, यदि कारकभिन्न न हो तो।

उदा० (1) आगच्छ देवदत्त, ग्रामं प्रविश
अनुदात्त-निषेध हुआ।

(2) आगच्छ देवदत्त ग्रामं प्रविश
पक्ष में अनुदात्त हुआ।

(3) आगच्छ देवदत्त ग्रामं प्रशाधि
अनुदात्त-निषेध।

(4) आगच्छ देवदत्त ग्रामं प्रशाधि
पक्ष में अनुदात्त।

सोपसर्ग०—सोपसर्ग लोट् प्रत्ययान्त तिङन्त को निघात-प्रतिषेध होता है।

(5) आगच्छ देवदत्त, ग्रामं पश्य

'आगच्छ' इस लोट् प्रत्ययान्त से युक्त 'पश्य' यह लोट् प्रत्ययान्त तिङन्त है, परन्तु सोपसर्ग न होने से विकल्प नहीं हुआ।

अनुत्त०—उत्तम पुरुष के प्रयोग को छोड़कर निघात-प्रतिषेध विकल्प से होता है।

(6) आगच्छानि देवदत्त, ग्रामं प्रविशानि

उत्तम पुरुष का प्रयोग होने से निघात-प्रतिषेध का विकल्प नहीं हुआ।

(3668) हन्त च *54* (3961)

पूर्वं सर्वमनुवर्तते गत्यर्थलोटं वर्जयित्वा। 'हन्त'-इत्यनेन युक्तं लोडन्तं सोपसर्गमुत्तमवर्जितं विभाषितं नानुदात्तं भवति। हन्त प्रविंश प्रविश। हन्त प्रशांधि प्रशाधि। सोपसर्गमित्येव-हन्त कुरु। 'निपातैर्यद्यदिहन्त' (8.1.30) इति नित्यमत्र निघातप्रतिषेधो भवति। अनुत्तममित्येव-हन्त प्रभुञ्जावहै। हन्त प्रभुञ्जामहै।

अर्थ—'गत्यर्थलोटा' पद का छोड़कर सभी अधिकार पूर्ववत् हैं।

'हन्त' शब्द से युक्त लोट् प्रत्ययान्त, उत्तम पुरुष को छोड़कर शेष सोपसर्ग तिङन्त को विकल्प से निघात-प्रतिषेध होता है।

उदा० (1) हन्त प्रविश
अनुदात्त-निषेध हुआ।

(2) हन्त प्रविश
अनुदात्त हुआ।

(3) हन्त प्रशाधि
अनुदात्त-प्रतिषेध।

(4) हन्त प्रशाधि
अनुदात्त हुआ।

सोपसर्ग०—सोपसर्ग तिङन्त को ही विकल्प से निघात-प्रतिषेध होता है।

(5) हन्त कुरु
यहाँ 'निपातैर्यद्यदिहन्त' से नित्य निघात-प्रतिषेध होता है।

अनुत्तम०—उत्तम पुरुष के प्रयोग को छोड़कर निघात-प्रतिषेध होता है।

(6) हन्त प्रभुञ्जावहै

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत्तम पुरुष का प्रयोग है। निघात-प्रतिषेध का विकल्प नहीं हुआ।

(7) हन्त प्रभुञ्जामहै (पूर्ववत्)।

(3669) आम एकान्तरमामन्त्रित-मनन्तिके *55* (3962)

आम उत्तरमेकपदान्तरमामन्त्रितान्तमनन्तिके नानुदात्तं भवति। आम् पचसि देवदत्त३। आम् भो देवदत्त३। 'भोः' इत्यामन्त्रितान्तमपि 'नामन्त्रिते समानाधिकरणे सामान्यवचनम्' (8.1.73) इति नाविद्यमानवद्भवति। आम इति किम्? शाकं पचसि देवदत्त३। एकान्तरमिति किम्? आम् प्रपचसि देवदत्त३। आमन्त्रितमिति किम्? आम् पचति देवदत्तः। अनन्तिक इति किम्? आम देवदत्तः। *आम एकान्तरमामन्त्रितं यत्तस्य एकश्रुतेरनुदात्तस्य च प्रतिषेध इष्यते* (म० भा०)। तदुभयमनेन क्रियत इति केचिदाहुः। प्लुतोदात्तः पुनरसिद्धत्वान्न प्रतिषिध्यते। अपरेषां दर्शनम्-'अनन्तिक इत्यनेन यन्न दूरं न सन्निकृष्टं तत् परिगृह्यते। तेनास्मिन्नेकश्रुतेः प्राप्तिरेव नास्ति। प्लुतोदात्तोऽपि नोदाहर्तव्यः' इति।

अर्थ—दूर अर्थ में आम् से उत्तर जो एकपदान्तर आमन्त्रित संज्ञक, उसे निघात नहीं होता है।

उद० (1) आम् पचसि, देवदत्त३
निघात-प्रतिषेध।

(2) आम् भोः देवदत्त३ (पूर्ववत्)।

भोः इत्या०—'भोः' यह आमन्त्रित होते हुए भी 'नाऽऽमन्त्रिते समानाधिकरणे०' से अविद्यमानवत् नहीं होता है।

आम०—आम् से उत्तर आमन्त्रितसंज्ञक को अनुदात्त नहीं होता है।

(3) शाकं पचसि, देवदत्त३

यहाँ 'आम्' नहीं है। अतः प्रतिषेध नहीं हुआ।

एकान्त०—एकपदान्तर आमन्त्रित को ही निघात-निषेध होता है।

(4) आम् प्रपचसि देवदत्त३

यहाँ 'आम्' से उत्तर आमन्त्रित संज्ञक पद है, परन्तु अनेक पदों का अन्तर है। अतः निषेध नहीं हुआ।

आमन्त्रि०—आमन्त्रितसंज्ञक पद को ही निषेध होता है।

(5) आम् पचति देवदत्तः

'आम्' है, एकपदान्तर है, परन्तु 'देवदत्तः' की आमन्त्रित संज्ञा नहीं है। अतः निघात-प्रतिषेध नहीं हुआ।

अनन्तिक०—दूर अर्थ में वर्त्तमान आमन्त्रितसंज्ञक को निघात-प्रतिषेध होता है।

(6) आम् देवदत्तः
निघात-प्रतिषेध नहीं हुआ।

आम०—आम् से उत्तर एकपदान्तर जो आमन्त्रितसंज्ञक पद, उसको एकश्रुति तथा अनुदात्त का प्रतिषेध होता है। कुछ विद्वान् कहते हैं कि दोनों ही किये जाते हैं। प्लुत उदात्त का निषेध नहीं होता है; असिद्ध होने से।

अपरेषा०—दूसरे विद्वान् कहते हैं कि 'अनन्तिके' के द्वारा जो न दूर है और न ही निकट है—उसका ग्रहण होता है। तब इसमें एकश्रुति की प्राप्ति ही नहीं होती है। अतः प्लुत उदात्त का भी उदाहरण नहीं देना चाहिए।

(3670) यद्धितुपरं छन्दसि *56* (3963)

'आमन्त्रितम्'-इत्येतदस्वरितत्वान्नानुवर्तते। 'तिङ्' इति वर्तत एव। यत्परं हिपरं तुपरं च तिङन्तं छन्दसि नानुदात्तं भवति। यत्परं तावत्-गवां गोत्रमुदसृजोयदङ्गिरः (ऋ० 2.23.18)। हिपरम्-इन्दवो वामुशन्ति हि (तै०सं० 1.4.4.1)। तुपरम्-आख्यास्यामि तु ते। 'निपातैर्यद्यदिहन्त' (8.1.30) इति 'हि च' (8.1.34) इति, 'तुपश्यपश्यताहै' (8.1.39) इति च निघातप्रतिषेधे सिद्धे वचनमिदं नियमार्थम्-एभिरेव परैर्योगे प्रतिषेधो भवति, नान्यैरिति। इह न भवति-जाये स्वो रोहावैहि। एहीत्यनेन गत्यर्थलोटा युक्तस्य 'रोहाव' इत्येतस्य लोडन्तस्य निघातो भवत्येव।

अर्थ—स्वरित का निर्देश न होने से 'आमन्त्रितम्' इसका अनुवर्त्तन नहीं होता है। 'तिङ्' का अनुवर्त्तन है। यत्, हि तथा तु—ये शब्द हैं परे जिसके, ऐसा तिङन्त पद वेद के विषय में अनुदात्त नहीं होता है।

(क) यत्परम्—
उदा० (1) गवां गोत्रमुदसृजोऽयमङ्गिरः
अनुदात्त-निषेध।

(ख) हिपरम्—
(2) इन्दवो वामुशन्ति हि (पूर्ववत्)।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(ग) तुपरम्—
(3) आख्यास्यामि तु ते
अनुदात्त-निषेध।

निपातै०—यद्यपि 'निपातैर्यद्यदिहन्तः' से, 'हि च' से तथा 'तुपश्यपश्यताहै' से निघात-प्रतिषेध सिद्ध ही था। अतः यह नियम के लिए विधान किया गया है। यह नियम करता है कि यत्, हि तथा तु—इनके ही परे रहते निघात का प्रतिषेध होता है, अन्य शब्दों के परे रहते नहीं होता। अतः निम्नलिखित में निषेध नहीं होता है—

जाये स्वो रोहावैहि—यहाँ 'एहि' गत्यर्थ लोट् है। इससे युक्त 'रोहाव' इस लोट् प्रत्ययान्त पद को निघात होता है।

(3671) चनचिदिवगोत्रादितद्धिताम्रेडिते-ष्वगतेः *57* (3964)

चन, चिद्, इव, गोत्रादि, तद्धित, आम्रेडित–इत्येतेषु परतः अगतेरुत्तरं तिङन्तं नानुदात्तं भवति। चन–देवदत्तः पचंति चन। चित्–देवदत्तः पचंति चित्। इव–देवदत्तः पचंतीव। गोत्रादि–देवदत्तः पचंति गोत्रम्। देवदत्तः पचंति ब्रुवम्। देवदत्तः पचंति प्रवचनम्। इहापि गोत्रादयः कुत्सनाभीक्ष्णययोरेव गृह्यन्ते। तद्धित–देवदत्तः पचंति-कल्पम्। देवदत्तः पचंतिरूपम्। अनुदात्तस्तद्धित इहोदाहरणम्, अन्यत्र तद्धितस्वरेण तिङ्स्वरो बाध्यते–पचतिदेश्यः। आम्रेडित–देवदत्तः पचंति पचति। अगतेरिति किम्? देवदत्तः प्रपचति चन। अत्रागतिग्रहणे, 'सगतिरपि तिङ्' इत्यत्र च उपसर्गग्रहणं द्रष्टव्यम्। इह मा भूत्–शुक्लीकरोतिं चन। यत्काष्ठं शुक्लीकरोतिं। यत्काष्ठं कृष्णीकरोतिं।

अर्थ—यदि गतिसंज्ञक शब्द से उत्तर तिङन्त पद न हो तो उस तिङन्त को अनुदात्त नहीं होता है, चन, चिद्, इव, गोत्र आदि शब्द, तद्धितप्रत्यय तथा आम्रेडितसंज्ञक—इनके परे रहते।

उदा० (क) चनपरे—
(1) देवदत्तः पचंति चन
निघात-प्रतिषेध हुआ।

(ख) चित्परे—
(2) देवदत्तः पचंति चित् (पूर्ववत्)।

(ग) इवपरे—
(3) देवदत्तः पचंतीव (पूर्ववत्)।

(घ) गोत्रादिशब्दपरे—
(4) देवदत्तः पचंति गोत्रम्
निघात-निषेध।

(5) देवदत्तः पचंति ब्रुवम्
निघात-निषेध।

(6) देवदत्तः पचंति प्रवचनम् (पूर्ववत्)।

इहापि०—यहाँ भी गोत्र आदि शब्दों का कुत्सन तथा आभीक्ष्ण्य अर्थों में ही ग्रहण होता है।

(ङ) तद्धितप्रत्ययपरे—
(7) देवदत्तः पचंतिकल्पम्
'कल्पप्' प्रत्यय हुआ है।

(8) देवदत्तः पचंतिरूपम्
'रूप' तद्धित प्रत्यय है।

अनुदात्त०—यहाँ अनुदात्त तद्धित उदाहरण है। अन्यत्र तद्धितस्वर के द्वारा तिङ् स्वर का बाध होता है।

(9) पचतिदेश्यः

(च) आम्रेडितशब्दपरे—
(10) देवदत्तः पचंति पचति
'तस्य परम् आम्रेडितम्' से आम्रेडित संज्ञा होती है।

अगते०—गतिसंज्ञक से उत्तर तिङन्त को निघात-निषेध होता है।

(11) देवदत्तः प्रपचति चन
'चन' परे है, 'पचति' तिङन्त पद है, 'प्र' की गति संज्ञा है। गतिसंज्ञक शब्दसे पर होने से निघात-निषेध नहीं हुआ।

अत्राग०—यहाँ 'अगति' पद के ग्रहण के विषय में 'सगतिरपि तिङ्' यहाँ उपसर्ग ग्रहण भी जानना चाहिए। यहाँ नहीं होता है।

(12) शुक्लीकरोतिं चन, (13) यत्काष्ठं शुक्लीकरोतिं, (14) यत्काष्ठं कृष्णीकरोतिं।

(3672) चादिषु च *58* (3965)

चादिषु च परतः तिङन्तमगतेः परं नानुदात्तं भवति। चादयः 'नचवाहाहैवयुक्ते' (8.1.24) इत्यत्र ये निर्दिष्टाः, त इह परिगृह्यन्ते। चशब्दे तावत्–देवदत्तः पचंति च खादंति च। वा–देवदत्तः पचंति वा खादंति वा। ह–देवदत्तः पचंति ह खादंति ह। अह–देवदत्तः पचंत्यह खादंत्यह। एव–देवदत्तः पचंत्येव खादंत्येव। 'अगतेः' इत्येव–देवदत्तः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रपचंति च प्रखादुति च। प्रथमस्यात्र तिङन्तस्य 'चवायोगे प्रथमे'(7.1.59) इति निघातः प्रतिषिद्ध्यते एव। परं तु निहन्यते।

अर्थ—गतिसंज्ञक से अतिरिक्त शब्द से उत्तर जो तिङन्त पद, उसे अनुदात्त नहीं होता है, 'च' आदि शब्दों के परे रहते।

'न चवाहाहैवयुक्ते' यहाँ जिनका निर्देश है, उनका ही यहाँ 'चादि' के द्वारा ग्रहण होता है।

उदा० (1) देवदत्तः पचति च खादति च
यहाँ निघात-प्रतिषेध होता है।

(2) देवदत्तः पचति वा खादति वा (पूर्ववत्)।
(3) देवदत्तः पचति ह खादति ह (पूर्ववत्)।
(4) देवदत्तः पचत्यह, खादत्यह।
निघात-प्रतिषेध।

(5) देवदत्तः पचत्येव, खादत्येव (पूर्ववत्)।

अगतेः—गतिभिन्न शब्द से उत्तर तिङन्त शब्द को अनुदात्त-निषेध होता है।

(6) देवदत्तः प्रपचति च प्रखादति च
'प्र' की गति संज्ञा है। अतः निषेध नहीं हुआ।

प्रथम०—प्रथम तिङन्त पद 'प्रपचति' का यहाँ 'चवायोगे प्रथमा' से निघात का प्रतिषेध होता ही है। द्वितीय तिङन्त 'प्रखादति' को सर्वानुदात्त होता है।

(3673) चवायोगे प्रथमा *59* (3966)

'अगतेः' इति पूर्वसूत्रे चानुकृष्टमित्यत्र नानुवर्तते। च, वा–इत्येताभ्यां योगे प्रथमा तिङ्विभक्तिर्नानुदात्ता भवति। गर्दभाँश्च कालयंति, वीणां च वादयति। गर्दभान्वा कालयंति, वीणां वा वादयति। योगग्रहणं पूर्वाभ्यामपि योगे निघातप्रतिषेधो यथा स्यादिति। प्रथमाग्रहणम्–द्वितीयादेस्तिङन्तस्य मा भूदिति। चवायोगो हि द्विसमुच्चये विकल्पे च सति भवति, स चानेकस्य धर्म इति।

अर्थ—'अगतेः' यह पूर्व सूत्र में अनुवृत्त है तथा यहाँ इसका अनुवर्त्तन नहीं होता है। च तथा वा—इनके योग में तिङ् विभक्ति प्रथमा को अनुदात्त नहीं होता है।

उदा० (1) गर्दभांश्च कालयति, वीणां च वादयति

चित् स्वर से लकार में अकार उदात्त है। अतः मध्योदात्त हुआ। द्वितीय पद को सर्वानुदात्त हुआ।

(2) गर्दभान्वा कालयति, वीणां वा वादयति

योग०—सूत्र में 'योग' शब्द का ग्रहण है, ताकि पूर्व शब्दों के योग में भी निघात का निषेध हो जाय।

प्रथमा०—सूत्र में 'प्रथमा' का ग्रहण है, ताकि द्वितीयादि तिङन्त को यह निषेध न हो।

चवा०—च, वा—इनका योग दो के समुच्चय में तथा विकल्प होने पर होता है। वह अनेक का धर्म है।

(3674) हेति क्षियायाम् *60* (3967)

'ह' इत्यनेन युक्ता प्रथमा तिङ्विभक्तिर्नानुदात्ता भवति क्षियायां गम्यमानायाम्। क्षिया = धर्मव्यतिक्रमः आचारभेदः। स्वयं ह रथेन यातिं3 उपाध्यायं पदातिं गमयति। स्वयं हौदनं भुङ्क्ते3 उपाध्यायं सक्तून्पाययति। प्रथमस्य तिङन्तस्यात्र निघातः प्रतिषिध्यते। 'क्षियाशीःप्रैषेषु तिङाकाङ्क्षम्' (8.2.104) इति च प्लुतो भवति।

अर्थ—क्षिया अर्थ गम्यमान हो तो 'ह' इस शब्द से युक्त प्रथमा तिङ् विभक्ति अनुदात्त नहीं होती है। आचारभेद को 'क्षिया' कहते हैं।

उदा० (1) स्वयं ह रथेन याति3, उपाध्यायं पदातिं गमयति
निघात-निषेध।

(2) स्वयं हौदनं भुङ्क्ते3, उपाध्यायं सक्तून् पाययति (पूर्ववत्)।

प्रथम०—यहाँ प्रथम तिङन्त पद को निघात का निषेध होता है। 'क्षियाशीःप्रैषेषु तिङाकाङ्क्षम्' से प्लुत होता है।

(3675) अहेति विनियोगे च *61* (3968)

'अह' इत्यनेन युक्ता प्रथमा तिङ्विभक्तिर्नानुदात्ता भवति विनियोगे गम्यमाने। चशब्दात् क्षियायां च। नानाप्रयोजनो नियोगः = विनियोगः। त्वमह ग्रामं गच्छ। त्वमहारण्यं गच्छ। क्षियायाम्–स्वयमह रथेन यातिं3 उपाध्यायं पदातिं गमयति। स्वयमहौदनं भुङ्क्तें3। उपाध्यायं सक्तून्पाययति। पूर्ववन्निघातप्रतिषेधः, प्लुतश्च।

अर्थ—विनियोग अर्थ गम्यमान हो तो 'अह' इस शब्द से युक्त प्रथमा तिङ् विभक्ति अनुदात्त नहीं होती है। चकार के पाठ से 'क्षिया' अर्थ में भी निघात-निषेध होता है।

अनेक प्रयोग वाला नियोग 'विनियोग' कहलाता है।

उदा० (1) त्वमह ग्रामं गच्छ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुदात्त-निषेध। विनियोग अर्थ है।

(2) त्वमहाऽरण्यं गच्छ (पूर्ववत्)।

(3) स्वयमह रथेन याति3, उपाध्यायं पदातिं गमयति 'क्षिया' अर्थ में अनुदात्त-निषेध।

(4) स्वयमहौदनं भुङ्क्ते3, उपाध्यायं सक्तून् पाययति (पूर्ववत्)।

पूर्ववत् निघात-प्रतिषेध तथा प्लुत होता है।

(3676) चाहलोप एवेत्यवधारणम् *62* (3969)

चलोपे अहलोपे प्रथमा तिङ्विभक्तिर्नानुदात्ता भवति। एवेत्येतच्चेदवधारणार्थं प्रयुज्यते, क्व चास्य लोपः? यत्रार्थो गम्यते, न च प्रयुज्यते, तत्र लोपः। तत्र चशब्दः समुच्चयार्थः, अहशब्दः केवलार्थ इति-समानकर्तृके चलोपः, नानाकर्तृके अहलोपः। चलोपे-देवदत्त एव ग्रामं गच्छंतु, स देवदत्त एवारण्यं गच्छतु। ग्रामं चारण्यं च गच्छत्वित्यर्थः। अहलोपे-देवदत्त एव ग्रामं गच्छंतु यज्ञदत्त एवारण्यं गच्छतु। ग्रामं केवलमरण्यं केवलमित्यर्थः। अवधारणमिति किम्? देवदत्तः क्वेव भोक्ष्यते। अनवक्लृप्तावयमेवशब्दः। न क्वचिद्भोक्ष्यत इत्यर्थः। 'एवे चानियोगे' (का०वा०) इति पररूपम्।

अर्थ—'च' का लोप होने पर तथा 'अह' का लोप होने पर ही प्रथमा तिङ् विभक्ति अनुदात्त नहीं होती है, यदि 'एव' पद का अवधारण अर्थ में प्रयोग है तो इसका लोप कहाँ होता है? जहाँ अर्थ का ज्ञान होता है तथा उस शब्द का प्रयोग नहीं होता है, वहाँ लोप जानना चाहिए।

'च' शब्द समुच्चयवाची है तथा 'अह' शब्द केवलवाची है। इस प्रकार समानकर्तृक में ही चकार का लोप होता है तथा नानाकर्तृक में 'अह' का लोप होता है।

उदा० (1) देवदत्त एव ग्रामं गच्छतु, स देवदत्त एवाऽरण्यं गच्छतु

यहाँ 'च' का लोप हुआ है, परन्तु उसके अर्थ का ज्ञान होता है।

(2) देवदतत एव ग्रामं गच्छतु, यज्ञदत्त एवाऽरण्यं गच्छतु

यहाँ 'अह' का लोप है, परन्तु अर्थ का ज्ञान हो रहा है।

अवधा०—अवधारण अर्थ में ही निघात-प्रतिषेध होता है। यथा—

देवदत्तः क्वैव भोक्ष्यते—यहाँ अनवक्लृप्ति अर्थ में 'एव' शब्द का प्रयोग है। इसका अर्थ है—'कहीं नहीं खायेगा'। 'एवे चानियोगे' से पररूप हुआ है।

(3677) चादिलोपे विभाषा *63* (3970)

चादयः 'नचवाहाहैवयुक्ते' (8.1.24) इति सूत्रनिर्दिष्टा गृह्यन्ते, तेषां लोपे प्रथमा तिङ्विभक्तिर्नानुदात्ता भवति विभाषा। चलोपे-शुक्ला व्रीहयो भवन्ति, भवन्ति। श्वेता गा आज्याय दुहन्ति दुहन्ति। भवन्तीत्येतद्विकल्पेन न निहन्यते। वालोपे-व्रीहिभिर्यजेत यजेत। यवैर्यजेत। यजेत। एवं शेषेष्वपि यथादर्शनमुदाहार्यम्।

अर्थ—चादि के द्वारा 'न चवाहाहैवयुक्ते' सूत्र से निर्दिष्ट अशब्दों का ग्रहण होता है। चादि का लोप होने पर प्रथमा तिङ् विभक्ति विकल्प से अनुदात्त नहीं होती है।

उदा० (1) शुक्ला व्रीहयो भवन्ति

निघात-प्रतिषेध। पक्ष में निघात।

(2) श्वेता गा आज्याय दुहन्ति

पूर्ववत्। पक्ष में निघात।

भवन्ती०—भवन्ति तथा दुहन्ति—इनको विकल्प से निघात नहीं होता है।

(3) व्रीहिभिर्यजेत (पूर्ववत्)।

(4) यवैर्यजेत (पूर्ववत्)।

(3678) वैवावेति च च्छन्दसि *64* (3971)

'वै', 'वाव'-इत्येताभ्यां युक्ता प्रथमा तिङ्विभक्तिर्विभाषा नानुदात्ता भवति छन्दसि विषये। अहंवैदे वानामासीत्। रात्रिरसुराणामासीत् (तै०सं० 1.5.9.2)। बृहस्पतिर्वै देवानां पुरोहित आसीत्। शण्डामर्कावसुराणाम् (तै०सं० 6.4.10.1)। वाव-अयं वाव हस्त आसीत्। नेतर आसीत्।

अर्थ—वेद के विषय में 'वै' तथा 'वाव' शब्दों से युक्त प्रथमा तिङ् विभक्ति विकल्प से अनुदात्त नहीं होती है।

उदा० (1) अहर्वै देवानामासीत्

निघात-प्रतिषेध।

(2) रात्रिरसुराणामासीत् (पूर्ववत्)।

(3) बृहस्पतिर्वै देवानां पुरोहित आसीत् (पूर्ववत्)।

(4) अयं वाव हस्त आसीत् (पूर्ववत्)।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(3679) एकान्याभ्यां समर्थाभ्याम् *65* (3972)

'एक', 'अन्य'–इत्येताभ्यां समर्थाभ्यां युक्ता प्रथमा तिङ्विभक्तिर्विभाषा नानुदात्ता भवति छन्दसि विषये। प्रजामेका जिन्वति। ऊर्जमेकां रक्षति (अपा० 8. 9.13)। जिन्वतीत्येतत्पक्षे न निहन्यते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति। अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति (ऋ० 1.164. 120)। अत्तीत्येतत्पक्षे न निहन्यते। समर्थाभ्यामिति किम्? एको देवानुपातिष्ठत्। एक इति संख्यापदमेतद् अन्यार्थे न वर्त्तते। एकशब्दस्य व्यवस्थार्थं च समर्थग्रहणम्; व्यभिचारित्वात्तस्य।

अर्थ—वेद के विषय में 'एक' तथा 'अन्य'—इन समर्थों से युक्त प्रथमा तिङ् विभक्ति विकल्प से अनुदात्त नहीं होती है।

उदा० (1) प्रजामेका जिन्वति
निघात नहीं हुआ। पक्ष में निघात हुआ।

(2) ऊर्जमेका रक्षति
अनुदात्त नहीं हुआ।

(3) तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति (पूर्ववत्)।

(4) अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति
निघात-प्रतिषेध।

समर्था०—सूत्रोक्त समर्थों से युक्त प्रथमा तिङ् विभक्ति को निघात-प्रतिषेध होता है।

(5) एको देवानुपातिष्ठत्
यहाँ नहीं हुआ।

एक०—'एक' यह संख्यापद है। यह अन्य अर्थ में विद्यमान नहीं है। एक शब्द की व्यवस्था के लिए 'समर्थ' शब्द का ग्रहण है, उसके व्यभिचारी होने से।

(3680) यद्वृत्तान्नित्यम् *66* (3973)

'प्रथमा', 'छन्दसि' इति निवृत्तम्। निघातप्रतिषेध इत्येव। यदो वृत्तं यद्वृत्तम्, यत्र पदे यच्छब्दो वर्तते तत्सर्वं यद्वृत्तम्। इह वृत्तग्रहणेन तद्विभक्त्यन्तं प्रतीयात्। डतरडतमौ च प्रत्ययौ इत्येतन्नाश्रीयते। तस्माद्यद्वृत्तादुत्तरं तिङन्तं नानुदात्तं भवति नित्यम्। यो भुङ्क्ते। यं भोजयति। येन भुङ्क्ते। यस्मै ददाति। यत्कामास्ते जुहुमः (ऋ० 10.121.10) यद्भ्यङ् वायुर्वाति (तै०सं० 5.5. 1.1)। यद्वायुः पवते। पञ्चमीनिर्देशेऽप्यत्र व्यवहिते कार्यमिष्यते। *यथाकाम्ये वेति वक्तव्यम्* (म०भा०)। यत्र क्वचन यजन्ते।

अर्थ—प्रथमा, छन्दसि—इन अधिकारों की निवृत्ति हो चुकी है। निघात-निषेध—इसका ही यहाँ अनुवर्त्तन है। 'यद्' का वृत्त यद्वृत्त कहलाता है। जहाँ पद में 'यत्' शब्द वर्त्तमान है, वह सब 'यद्वृत्त' कहलाता है। यहाँ वृत्त ग्रहण के द्वारा तद्विभक्त्यन्त का ज्ञान होता है। यहाँ डतर व डतम—इन प्रत्ययों का आश्रय नहीं किया जाता। अतः यद्वृत्त से उत्तर जो तिङन्त पद, वह नित्य निघात-निषेध होता है।

उदा० (1) यो भुङ्क्ते, (2) यं भोजयति, (3) येन भुङ्क्ते, (4) यस्मै ददाति, (5) यत्कामास्ते जुहुमः, (6) यद्भ्यङ् वायुर्वाति, (7) यद् वायुः पवते। सर्वत्र निघात-निषेध हुआ है।

पञ्चमी०—पञ्चमी का निर्देश होने पर भी यहाँ व्यवधान होने पर कार्य होता है।

यथाका०—यथाकाम्य अर्थ में विकल्प से होता है।

(3681) पूजनात्पूजितमनुदात्तं काष्ठादिभ्यः *67* (3974)

पूजनेभ्यः काष्ठादिभ्य उत्तरपदं पूजितमनुदात्तं भवति। काष्ठ–काष्ठाध्यापकः। काष्ठाभिरूपकः। दारुण–दारुणाध्यापकः। दारुणाभिरूपकः। असमातापुत्र–अमातापुत्राध्यापकः। अयुत–अयुताभिरूपकः। अयुताध्यापकः। अद्भुत–अद्भुताध्यापकः। अनुक्त–अनुक्ताध्यापकः। भृश–भृशाध्यापकः। घोर–घोराध्यापकः। परम–परमाध्यापकः। सु–स्वध्यापकः। अति–अत्यध्यापकः। *मलोपश्च*। इति वार्त्तिककारमतम्। मयूरव्यंसकादित्वात् समासः, समासे चैतदनुदात्तत्वम्। समासान्तोदात्तत्वापदवाद इष्यते। दारुणमध्यापक इत्येवमादिषु न भवति। 'मलोपश्च' इत्येनेनाप्ययमेव विषय आख्यायते। यत्र विभक्तेरभावान्मकारो न श्रूयते तत्रानुदात्तत्वमिति। असमासे हि मलोपो नैवेष्यते। दारुणमधीते दारुणमध्यापक इति। पूजनादित्येव पूजितपरिग्रहे सिद्धे पूजितग्रहणमनन्तरपूजितप्रतिपत्त्यर्थम्। एतदेव ज्ञापकम्–इह प्रकरणे पञ्चमीनिर्देशेऽपि नानान्तर्यमाश्रीयते इति। तथा च 'यद्वृत्तान्नित्यम्' (8.1.66) इत्यत्रोदाहृतम्। 'अनुदात्तम्' इति वर्तमाने पुनरनुदात्तग्रहणं प्रतिषेधनिवृत्त्यर्थम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—पूजनवाची काष्ठ आदि शब्दों से उत्तर पूजित शब्द को अनुदात्त होता है।

उदा० (1) काष्ठाऽध्यापकः
अनुदात्त हुआ।
(2) काष्ठाऽभिरूपकः (पूर्ववत्)।
(3) दारुणाऽध्यापकः (पूर्ववत्)।
(4) दारुणाऽभिरूपकः (पूर्ववत्)।
(5) अमातापुत्राऽध्यापकः (पूर्ववत्)।
(6) अयुताऽभिरूपकः (पूर्ववत्)।
(7) अयुताऽध्यापकः (पूर्ववत्)।
(8) अद्भुताऽध्यापकः (पूर्ववत्)।
(9) अनुक्ताऽध्यापकः (पूर्ववत्)।
(10) भृशाऽध्यापकः (पूर्ववत्)।
(11) घोराऽध्यापकः (पूर्ववत्)।
(12) परमाऽध्यापकः (पूर्ववत्)।
(13) स्वध्यापकः (पूर्ववत्)।
(14) अत्यध्यापकः (पूर्ववत्)।

मकार०—मकार-लोप होता है। यह वार्त्तिककार का मत है। मयूरव्यंसकादि से समास हुआ है। समास में यह अनुदात्त स्वर होता है।

समासा०—समासान्तोदात्त स्वर का अपवाद होता है। 'दारुणमध्यापकः' यहाँ इन स्थलों पर नहीं होता है। 'मलोपश्च' इसके द्वारा भी इसी विषय का आख्यान होता है। जहाँ विभक्ति के अभाव से मकार का श्रवण नहीं होता, वहाँ अनुदात्त स्वर होता है।

असमा०—समास न होने पर मकार का लोप नहीं होता है। दारुणमधीते—दारुणमध्यापकः।

पूजना०—'पूजनात्' इसके द्वारा ही पूजित परिग्रह के सिद्ध होने पर 'पूजित' शब्द का ग्रहण अनन्तर पूजित के ज्ञान के लिए है। यह ज्ञापक सिद्ध होता है कि इस प्रकरण में पञ्चमी के द्वारा निर्देश होने पर भी अनेक व्यवधानों का आश्रय किया जाता है। यह 'यद्वृत्तान्नित्यम्' यहाँ उदाहृत है।

अनुदा०—'अनुदात्तम्' पद के वर्त्तमान रहने पर भी पुनः 'अनुदात्त' का ग्रहण निषेध की निवृत्ति के लिए है।

(3682) सगतिरपि तिङ् *68* (3975)

सगतिरगतिरपि पूजनेभ्यः काष्ठादिभ्य परं पूजितं तिङन्तमनुदात्तं भवति। यत्काष्ठं पचति। यत्काष्ठं प्रपचति। यद्दारुणं पचति। यद्दारुणं प्रपचति। 'तिङ्ङतिङः' (8.1.28) इति निघातस्य 'निपातैर्यद्यदिहन्त' (8.1.30) इति प्रतिषेधे प्राप्ते पुनर्विधानम्। सगतिग्रहणाच्च गतिरपि निहन्यते। गतिग्रहणेन चात्रोपसर्गग्रहणमिष्यते। इह न भवति–यत्काष्ठं शुक्लीकरोति। यत्काष्ठं कृष्णीकरोति।

अर्थ—पूजन काष्ठ आदि शब्दों से उत्तर गतिपूर्वक तथा गतिरहित—इन दोनों अवस्थाओं में पूजित तिङन्त पद अनुदात्त होता है।

उदा० (1) यत्काष्ठं पचति
गतिरहित का प्रयोग।
(2) यत्काष्ठं प्रपचति
गतिसहित।
(3) यद् दारुणं पचति
अगति का उदाहरण।
(4) यद् दारुणं प्रपचति
सगति का उदाहरण।

तिङ्०—'तिङ्ङतिङः' से निघात का 'निपातैर्यद्यदिहन्त' से निषेध प्राप्त होने पर पुनः विधान किया गया है। 'सगति' के ग्रहण से अगति को भी निघात होता है।

गति०—गतिग्रहण के द्वारा यहाँ उपसर्गग्रहण होता है। यहाँ नहीं होता है।
यत्काष्ठं शुक्लीकरोति। यत्काष्ठं कृष्णीकरोति।

(3683) कुत्सने च सुप्यगोत्रादौ *69* (3976)

'पदात्' इति निवृत्तम्। 'सगतिरपि तिङ्' इति वर्तते। कुत्सने च सुबन्ते गोत्रादिवर्जिते परतः सगतिरपि तिङ् अगतिरप्यनुदात्तो भवति। पचति पूति, प्रपतति पूति। पचति मिथ्या, प्रपचति मिथ्या। कुत्सने इति किम्? पचंति शोभनम्। सुपीति किम्? पचंति क्लिश्नाति। अगोत्रादाविति किम्? पचंति गोत्रम्। पचंति ब्रुवम्। पचति प्रवचनम्। *क्रियाकुत्सन इति वक्तव्यम्* (म० भा०)। कर्तुः कुत्सने मा भूत्–पचंति पूतिर्देवदत्तः। प्रपचति पूतिः। *पूतिश्च चानुबन्धो भवतीति वक्तव्यम्* (म० भा०)। तेनायं चकारानुबन्धकत्वादन्तोदात्तो भवति। *विभाषितं चापि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बह्वर्थमनुदात्तं भवतीति वक्तव्यम्* (म०भा०)। पचन्ति पूतिः पचन्ति पूतिः। प्रपचन्ति पूतिः प्रपचन्ति पूतिः। 'सुपि कुत्सने क्रियाया मलोप इष्टोऽतिङीति चोक्तार्थम्। पूतिश्च चानुबन्धो विभाषितं चापि बह्वर्थम्' (म०भा०)।

अर्थ—'पदात्' इस अधिकार की निवृत्ति हो गई है। 'सगतिरपि तिङ्' का अनुवर्त्तन है। कुत्सन अर्थ में सगति तथा अगति—दोनों अवस्थाओं में तिङन्त पद अनुदात्त होता है, सुबन्त पद के परे रहते; परन्तु गोत्रादि के परे रहते नहीं होता है।

उदा० (1) पचति पूति
अनुदात्त हुआ।

(2) प्रपचति पूति
अनुदात्त हुआ।

(3) पचति मिथ्या (पूर्ववत्)।
(4) प्रपचति पूति (पूर्ववत्)।

कुत्सने०—कुत्सन अर्थ में ही तिङन्त को अनुदात्त होता है।

(5) पचति शोभनम्
अनुदात्त नहीं हुआ।

सुपी०—सुबन्त परे रहते ही तिङन्त को अनुदात्त होता है।

(6) पचति क्लिश्नाति
तिङन्त से परे सुबन्त नहीं है। अतः अनुदात्त नहीं हुआ।

अगोत्रा०—गोत्र आदि शब्दों के परे रहते अनुदात्त नहीं होता है।

(7) पचति गोत्रम्
अनुदात्त नहीं हुआ।

(8) पचति ब्रुवम् (पूर्ववत्)।
(9) पचति प्रवचनम् (पूर्ववत्)।

क्रिया०—क्रिया के कुत्सन अर्थ में अनुदात्त होता है। कर्त्ता के कुत्सन में अनुदात्त नहीं होता। यथा—

(10) पचति पूतिर्देवदत्तः।
(11) प्रपचति पूतिः।

पूतिश्च०—'पूति' 'च्' अनुबन्ध वाला होता है। 'च्' अनुबन्ध वाला होने से यह अन्तोदात्त होता है।

विभा०—बह्वर्थ जो तिङन्त, वह विकल्प से अनुदात्त होता है।

(12) पचन्ति पूति। (13) प्रपचन्ति पूति।

प्रकृत सूत्र पर पठित वार्तिकों को काशिकाकार ने निम्नलिखित कारिका में निबद्ध कर दिया है। कारिका का अर्थ इस प्रकार है—

सुपि०—सुबन्त पद परे रहते तिङन्त को अनुदात्त होता है।

क्रिया०—क्रिया का निन्दा अर्थ गम्यमान रहते तिङन्त को अनुदात्त होता है।

मलोप०—मकार का लोप होता है।

पूतिश्च०—पूति शब्द 'च्' अनुबन्ध वाला होता है।

विभाषितं०—बहुत्व अर्थ में तिङन्त पद विकल्प से अनुदात्त होता है।

(3684) गतिर्गतौ *70* (3977)

गतिर्गतौ परतोऽनुदात्तो भवति। अभ्युद्धरति। समुदानयति। अभिसम्पर्याहरति। गतिरिति किम्? देवदत्तः प्रपचति। गताविति किम्? आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः (ऋ० 3.45.1)। याहीत्येतत्प्रति क्रियायोगादाङित्येष गतिः। तस्य गतावित्येतस्मिन्नसति गतिरित्यनाश्रितपरनिमित्तकमनुदात्तत्वं स्यात्।

अर्थ—गति परे रहते गतिसंज्ञक शब्द अनुदात्त होता है।

उदा० (1) अभ्युद्धरति
अभि शब्द को प्रातिपदिक स्वर से अन्तोदात्त स्वर प्राप्त था।

(2) समुदानयति
यहाँ भी आद्युदात्त स्वर प्राप्त था।

(3) अभिसम्पर्याहरति
अनुदात्त हुआ।

गति०—गतिसंज्ञक को ही अनुदात्त होता है।

(4) देवदत्तः प्रपचति
अनुदात्त नहीं हुआ।

गताव०—गति परे रहते ही अनुदात्त होता है।

(5) आमन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि
यहाँ अनुदात्त नहीं हुआ।

याही०—'याहि' इसके प्रति क्रियायोग से 'आङ्' यह गतिसंज्ञक है। उसके गति न होने से 'गतिः' इस प्रकार अनाश्रित परनिमित्तक अनुदात्त हो जाय।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(3685) तिङि चोदात्तवति *71* (3978)

'गतिः' इति वर्त्तते। तिङन्ते उदात्तवति परतो गतिरनुदात्तो भवति। यत्प्रपचति। यत्प्रकरोति। 'तिङ्ग्रहणमुदात्तवतः परिमाणार्थम्' (म०भा०); अन्यथा हि यं प्रति गतिः, तत्रानुदात्तो भवतीति धातावेवोदात्तवति स्यात्; प्रत्यये न स्यात्–यत्प्रकरोतीति। 'यत्क्रियायुक्ताः प्रादयस्तेषां तं प्रति गत्युपसर्गसंज्ञे भवतः' (जै०प०) इति तिङन्ते धातुमेव प्रति गतिसंज्ञा। आमन्ते तर्हि न प्राप्नोति–प्रपचतितमाम् प्रपचतितरामिति? अत्र केचिदामन्तेन गतेः समासं कुर्वन्ति; तेषामव्ययपूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वे सत्यक्रियमाणेऽपि तिङ्ग्रहणे परमनुदात्तवद्भवतीति गतिनिघातो नैव सिद्ध्यति। अथ तरबन्तस्य गतिसमासः? एवमपि सतिशिष्टत्वादाम एव स्वरे सति गतेः 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' (6.1.158) इत्येवानुदात्तत्वं सिद्धम्। येषाम् 'गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक्सुबुत्पत्तेः' (पु०प०) इत्यनेन वचनेन कृदन्तेनैव प्राक्सुबुत्पत्तेः समासो भवति, नान्येन' इति दर्शनम्, तेषामेवंविधे विषये समासेन नैव भवितव्यमिति। पृथक् स्वरप्रवृत्तौ सत्यामनेन निघातेन प्रयोजनमस्ति, तदर्थं यत्नः कर्तव्यः। उदात्तवतीति किम्? प्रपंचति। प्रकंरोति।

अर्थ—'गतिः' का अधिकार है। अनुदात्तवान् तिङन्त पद के परे रहते गतिसंज्ञक शब्द अनुदात्त होता है।

उदा० (1) यत्प्रपचति
गति 'प्र' अनुदात्त हुआ।
(2) यत्करोति (पूर्ववत्)।

तिङ्०—उदात्तवान् के परिमाण के लिए तिङ् का ग्रहण है। अन्यथा जिसके प्रति गति है, वहाँ अनुदात्त होता है। अतः उदात्तवान् धातु परे हो तथा प्रत्यय परे न हो। यथा—यत् प्रकरोति।

जिस क्रिया से युक्त प्रादि होते हैं, उनकी उसके प्रति गति तथा उपसर्गसंज्ञा होती है। इस प्रकार तिङन्त परे रहते धातु के प्रति गतिसंज्ञा होती है।

आमन्ते—आम् के अन्त में रहते यह प्राप्त नहीं होता। यथा—प्रपचतितराम्, प्रपचतितमाम्। कुछ विद्वान् आमन्त के साथ गति का समास करते हैं। उनके मत में अव्यय पूर्वपद प्रकृति स्वर होने पर न किये जाने पर भी तिङ् का ग्रहण होने पर द्वितीय अनुदात्तवान् होता है—इस प्रकार गतिसंज्ञक शब्द को सर्वानुदात्त सिद्ध नहीं होता है।

अथ०—यहाँ तरप् प्रत्ययान्त शब्द को गतिसमास होता है? इसी प्रकार भी सतिशिष्ट होने से आम् का ही स्वर होने पर गतिसंज्ञक शब्द का 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' से ही अनुदात्तं होता है।

येषाम्०—जिनका 'गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः' इस वचन के द्वारा कृदन्त के साथ सुप् की उत्पत्ति से पूर्व समास होता है, अन्य के साथ नहीं—यह मत है। उनके इस प्रकार के विषय में समास नहीं होना चाहिए। पृथक् स्वर की प्रवृत्ति होने पर इस निघात से प्रयोजन है। अतः यत्न करना चाहिए।

उदात्त०—उदात्तवान् के परे रहते ही गति को अनुदात्त होता है।

(4) प्रपचति, (5) प्रकरोति
यहाँ अनुदात्त नहीं हुआ।

(3686) आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवत् *72* (412)

आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवद्भवति, तस्मिन् सति यत्कार्यं तन्न भवति, असति यत्तद्भवति। कानि पुनरविद्यमानवत्त्वे प्रयोजनानि? आमन्त्रित–तिङ्निघातयुष्मदस्मदादेशाभावाः। देवदत्त, यज्ञदत्तेत्यत्रामन्त्रितस्य पदात्परस्ये(8.1.19)ति निघातो न भवति। षाष्ठिकामन्त्रिताद्युदात्तत्वं (6.1.198) भवति; देवदत्त पचंसीत्यत्र 'तिङ्ङतिङः' (8.1.28) इति निघातो न भवति; देवदत्त तव ग्रामः स्वम्, देवदत्त मम ग्रामः स्वम्–इत्येवमादिषु युष्मदस्मदादेशा न भवन्ति। पूजायामनन्तरप्रतिषेधः प्रयोजनम्–यावद्देवदत्त पचसीत्यत्रापि 'पूजायां नानन्तरम्' (8.1.30) इत्येव प्रतिषेधो भवति। 'जात्वपूर्वम्' (8.1.47) इत्येतद्–देवदत्त जातु पचसीत्यत्रापि भवति। 'आहो उताहो चानन्तरम् (8.1.49) इति–आहो देवदत्त पचंसि उताहो देवदत्त पचंसीत्यत्रापि भवति। 'आम एकान्तरमामन्त्रितमनन्तिके' (8.1.55) इति–आम् भोः पचंसि देवदत्त इत्यत्रापि भवति। आमन्त्रितमिति किम्? देवदत्तः पचति। पूर्वमिति किम्? देवदत्त इत्येतस्यामन्त्रिताद्युदात्तत्वे कर्तव्ये नाविद्यमानवद्भवति। पूर्वत्वं च परापेक्षं भवतीति परस्यैव कार्ये स्वनिमित्ते, अन्यनिमित्ते वा तदविद्यमानवद्भवति, न तु स्वकार्ये। देवदत्त पचंसीत्यत्रापि ह्यामन्त्रिताद्युदात्तत्वं भवत्येव। इह–इमं मे गङ्गे यमुने (ऋ० 10.75.5) इति गङ्गेशब्दः पूर्वमामन्त्रितम्, ततः परस्य यमुनेशब्दस्यानुदात्तत्वे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कर्तव्ये स्वयमविद्यमानवत्त्वान्निमित्तं न भवति। मेशब्दस्य निमित्तभावं न प्रतिबध्नाति।

अर्थ—पूर्व आमन्त्रितसंज्ञक शब्द अविद्यमान के समान होता है अर्थात् उसके होने पर जो कार्य होता है, वह न हुए के समान होता है।

कानि०—अविद्यमानवत् होने के क्या-क्या प्रयोजन हैं? इसके प्रयोजन आमन्त्रित, तिङ्, निघात तथा युष्मद् व अस्मद् शब्दों को आदेश करना है।

देवदत्त यज्ञदत्त—इस प्रकार आमन्त्रितसंज्ञक शब्द को 'पदात् परस्य' से सर्वानुदात्त नहीं होता। षाष्ठिक आमन्त्रित आद्युदात्त ही होता है।

देवदत्त०—देवदत्त, पचसि? यहाँ 'तिङ्ङतिङः' से निघात नहीं होता। देवदत्त, तव ग्रामः स्वम्, देवदत्त मम ग्रामः स्वम्—इन स्थलों पर युष्मद्-अस्मद् को आदेश नहीं होते। पूजा में अनन्तर प्रतिषेध भी प्रयोजन है। यथा—

यावद् देवदत्त पचसि—इस स्थल पर 'पूजायां नानन्तरम्' से ही निषेध होता है। 'जात्वपूर्वम्' से यहाँ होता है—देवदत्त जातु पचसि।

'आहो उताहो चाऽनन्तरम्' से यहाँ होता है—

आहो देवदत्त पचसि, उताहो देवदत्त पचसि।

'आम एकान्तरम् आमन्त्रितम् अनन्तिके' से निम्नलिखित में होता है—आम् भो पचसि देवदत्त।

आमन्त्रि०—आमन्त्रितसंज्ञक शब्द ही अविद्यमानवत् होता है। देवदत्तः पचति

यहाँ अविद्यमानवत् नहीं हुआ।

पूर्वमि०—पूर्व ही होता है। 'देवदत्त' इसके आमन्त्रितलक्षण आद्युदात्त किये जाने में अविद्यमानवत् नहीं होता है। पूर्वता परापेक्ष होती है। अतः पर के स्थान पर ही कार्य स्वनिमित्त होने पर अथवा अन्यनिमित्त होने पर अविद्यमानवत् होता है; न कि स्वकार्य में।

देवदत्त पचसि—इस स्थल पर भी आमन्त्रितलक्षण आद्युदात्त स्वर होता ही है।

इह०—इमं मे गङ्गे यमने—यहाँ 'गङ्गे' शब्द पूर्व आमन्त्रित है। तब पर आमन्त्रित शब्द 'यमुने' को अनुदात्त स्वर किये जाने में स्वयं अविद्यमानवत् का निमित्त नहीं होता है। 'मे' शब्द का निमित्तभाव नहीं होता है।

(3687) नामन्त्रिते समानाधिकरणे सामान्यवचनम् *73* (413)

अविद्यमानवत्त्वस्य प्रतिषेधः। आमन्त्रितान्ते समानाधिकरणे परतः पूर्वमामन्त्रितान्तं सामान्यवचनं नाविद्यमानवद्भवति, किं तर्हि? विद्यमानवदेव। अग्ने गृहपते। माणवक जटिलकाध्यापक। पूर्वस्य विद्यमानवत्त्वात्परमनुदात्तमेव भवति। आमन्त्रित इति किम्? देवदत्त पचसि। समानाधिकरण इति किम्? देवदत्त पण्डित यज्ञदत्त। अत्र यज्ञदत्तविशेषणं पण्डितशब्दः; न पूर्वेण समानाधिकरणः। सामान्यवचनमिति किम्? पर्यायेषु मा भूत्-'अघ्न्ये देवि सरस्वति ईडे काव्ये विहव्ये। एते पर्यायाः। एवं ह्युक्तम्-'एतानि ह्यघ्न्ये नामानीति' (वा०सं० 8.43)।

अर्थ—अविद्यमानवद्भाव का निषेध कहा जा रहा है। आमन्त्रितान्त समानाधिकरण के परे रहते पूर्व आमन्त्रितान्त सामान्यवचन अविद्यमानवत् नहीं होता। किस प्रकार होता है? वह विद्यमानवत् होता है।

उदा० (1) अग्ने गृहपते

(2) माणवक जटिलकाऽध्यापक

यहाँ पूर्व के विद्यमानवत् होने से पर को अनुदात्त ही होता है।

आमन्त्रि०—आमन्त्रितसंज्ञक शब्द के परे रहते ही होता है।

(3) देवदत्त पचसि

यहाँ आमन्त्रित शब्द परे नहीं है।

समाना०—समानाधिकरण होने पर अविद्यमानवत् निषेध होता है।

(3) देवदत्त पण्डित यज्ञदत्त

यहाँ यज्ञदत्त का विशेषण 'पण्डित' शब्द है तथा पूर्व के द्वारा समानाधिकरण नहीं है। अतः अविद्यमानवत् निषेध नहीं हुआ।

सामान्य०—सामान्यवचन ही विद्यमानवत् होता है। पर्याय में नहीं होता है।

(4) अघ्न्ये देवि सरस्वति ईडे काव्ये विहव्ये—

ये सभी पर्याय शब्द हैं।

(3688) विभाषितं विशेषवचने बहुवचनम् *74* (3655)

पूर्वेणाविद्यमानवत्त्वे प्रतिषिद्धे विकल्प उच्यते। विशेष-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वचने समानाधिकरणे आमन्त्रितान्ते परतः पूर्वमामन्त्रितं बहुवचनान्तं विभाषितमविद्यमानवद्भवति। देवाः शरण्याः देवाः शरण्याः। ब्राह्मणा वैयाकरणाः, ब्राह्मणा वैयाकरणाः। सामान्यवचनाधिकारादेव विशेषवचन इति सिद्धे विशेषवचनग्रहणं विस्पष्टार्थम्। बहुवचनमिति किम्? माणवक जटिलक। नित्यमेतद्विद्यमानवदेव।

इति श्रीवामनविरचितायां काशिकायां वृत्ता-
वष्टमाऽध्यायस्य प्रथमः पादः॥

अर्थ—पूर्व सूत्र के द्वारा अविद्यमानवद्भाव का निषेध होने पर विकल्प कहा जा रहा है।

विशेषवचन समानाधिकरण आमन्त्रितान्त के परे रहते बहुवचनान्त पूर्व आमन्त्रितसंज्ञक विकल्प से अविद्यमानवत् होता है।

उदा० (1) देवाः शरण्याः
विकल्प से विद्यमानवत् हुआ।

(2) ब्राह्मणा वैयाकरणाः (पूर्ववत्)।

सामान्य०—'सामान्यवचनम्' इस अधिकार से ही विशेषवचन को यह सिद्ध होने पर 'विशेषवचन' का ग्रहण स्पष्टता के लिए है।

बहुव०—**बहुवचनान्त** ही विद्यमानवद् विकल्प से होता है।

(3) माणवक जटिलक
यहाँ विद्यमानवद्भाव नित्य होता है।

इति पण्डितेश्वरचन्द्रविरचितायां काशिकायाः सोमलेखाऽऽख्यायां हिन्दीटीकायाम्
अष्टमाऽध्यायस्य प्रथमः पादः समाप्तः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(3689) पूर्वत्रासिद्धम् *1* (12)

'पूर्वत्रासिद्धम्' इत्यधिकारोऽयमा अध्यायपरिसमाप्तेः। यदित ऊर्ध्वमनुक्रमिष्यामः 'पूर्वत्रासिद्धम्' इत्येवं तद्वेदितव्यम्। तत्र येयं सपादसप्ताध्याय्यनुक्रान्ता एतस्यामयं पादोनोऽध्यायोऽसिद्धो भवति। इत उत्तरं चोत्तर उत्तरो योगः पूर्वत्र पूर्वत्रासिद्धो भवति = असिद्धवद्भवति। सिद्धकार्यं न करोतीत्यर्थः। तदेतदसिद्धत्ववचनमादेशलक्षणप्रतिषेधार्थम्, उत्सर्गलक्षणभावार्थं च। अस्मा उद्धर, द्वा अत्र, द्वा आनय, असा आदित्यः–इत्यत्र व्यलोपस्यासिद्धत्वात् 'आद्गुणः' (6.1. 87) इति, 'अकः सवर्णे दीर्घः' (6.1.101) इति च न भवति। अमुष्मै, अमुष्मात्, अमुष्मिन्–इति उत्वस्यासिद्धत्वात् स्मायादयो भवन्ति।

शुष्किका शुष्कजङ्घा च क्षामिमानौजढत्तथा।
मतोर्वत्वे झलां जश्त्वे गुडलिण्मान्निदर्शनम्॥

शुष्किकेति–अत्र 'शुषः कः' (8.2.51) इत्यस्यासिद्धत्वाद् 'उदीचामातः स्थाने यकपूर्वायाः' (7.3.46) इत्येतन्न भवति। शुष्कजङ्घेति–'न कोपधायाः' (6.3.37) इति पुंवद्भावप्रतिषेधो न भवति। क्षामिमानिति–क्षामस्यापत्यं क्षामिः, क्षामो वा अस्यास्तीति क्षामिः, क्षामी वा यस्यास्तीति क्षामिमान्। 'क्षायो मः' (8.2.53) इत्यस्यासिद्धत्वात् 'मादुपधायाश्च' (8.2.9) इति वत्वं न भवति। औजढदिति–वहेर्निष्ठायामूढस्तमाख्यदिति णिच्, तदन्ताल्लुङ्; 'चङि' (6.1.11) इति द्विर्वचने कर्त्तव्ये ढत्वधत्वष्टुत्वढलोपानामसिद्धत्वाण्णौ च यष्टिलोपः, तस्य स्थानिवद्भावाद् ह्त इत्येतद् द्विरुच्यते। 'अनग्लोपे' (7.4.93) इति प्रतिषेधात्सन्वदित्त्वं नास्ति, तेन औजढदिति भवति। औजिढत् इत्येतत्तु क्तिन्नन्तस्य ऊढिशब्दस्य भवति। गुडलिण्मानिति–गुडलिहोऽस्य सन्ति इति मतुप्, तत्र ढत्वजश्त्वयोरसिद्धत्वाद् 'झयः' (8.2.10) इति वत्वं न भवति। येऽत्र षष्ठीनिर्देशाः, पञ्चमीनिर्देशाश्च; तेषाम् 'षष्ठी स्थानेयोगा' (1.1. 49), 'तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य' (1.1.66) 'तस्मादित्युत्तरस्य' (1.1.67) इति च कर्तव्ये नासिद्धत्वं भवति; 'कार्यकालं हि संज्ञापरिभाषम्' इति पूर्वत्वमासां परिभाषाणां नास्तीति। 'विप्रतिषेधे परम्' इत्येषा तु परिभाषा येन पूर्वेण लक्षणेन सह स्पर्द्धते, परं लक्षणं तत्प्रति तस्यासिद्धत्वान्न प्रवर्तते। तथा च विस्फोर्यम्, अवगोर्यमिति गुणः परेण 'हलि च' (8.2.77) इति दीर्घत्वेन न बाध्यते। अपवादस्य तु परस्यापि उत्सर्गे कर्त्तव्ये वचनप्रामाण्यादसिद्धत्वं न भवति। तेन दोग्धा, दोग्धुमित्यत्र घत्वस्यासिद्धत्वाद् 'हो ढः' (8.2.31) इति न भवति।

अर्थ—अष्टम अध्याय की समाप्तिपर्यन्त 'पूर्वत्राऽसिद्धम्' यह अधिकार है। इससे आगे जो कहा जायेगा, वह पूर्व के प्रति असिद्ध होता है। यहाँ पर जो सपाद सप्ताध्यायी का प्रवचन किया जा चुका है, उसके प्रति यह पादोन अध्याय (अर्थात् त्रिपादी) असिद्ध होता है।

इससे आगे भी उत्तर-उत्तर योग होता है अर्थात् त्रिपादी में भी पूर्व के प्रति पर शास्त्र असिद्ध रहता है। भाव यह है कि सिद्ध के समान कार्य नहीं होता है।

तदेतत्०—यह असिद्धवचन आदेश लक्षणनिषेध के लिए तथा उत्सर्गलक्षण भाव के लिए होता है।

उदा० (1) अस्मा उद्धर
अस्मै उद्धर—एचोऽयवायावः,
अस्माय् उद्धर—'लोपः शाकल्यस्य' (8.3.19),
अस्मा उद्धर—'आद्गुणः' प्राप्त हुआ।

(2) द्वा अत्र
द्वौ अत्र—एचोऽयवायावः,
द्वाव् अत्र—लोपः शाकल्य०,
द्वा अत्र—'अकः सवर्णे दीर्घः' (6.1.97) प्राप्त।

(3) द्वा आनय
द्वौ आनय—पूर्ववत् वकारलोप, 'अकः सवर्णे दीर्घः' की प्राप्ति।

(4) असा आदित्यः
असौ आदित्यः—पूर्ववत्।

इत्यत्र—इन स्थलों पर वकार, यकारलोप के असिद्ध होने से 'आद्गुणः' से प्राप्त गुण तथा 'अकः सवर्णे दीर्घः' से प्राप्त सवर्णदीर्घ नहीं होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इसी प्रकार अमुष्मै, अमुष्मात्, अमुष्मिन्—इन स्थलों पर उत्व के असिद्ध होने से 'स्मै' आदि आदेश नहीं होते हैं।

शुष्किका शुष्कजङ्घा च क्षामिमानौजढत्तथा।
मतोर्वत्त्वे झलां जश्त्वे गुडलिण्मान्निदर्शनम्॥

इस कारिका का अर्थ इस प्रकार है।

शुष्कि०—'शुष् क्त' इस दशा में 'शुषः कः' से 'क' आदेश हुआ। स्त्रियाम्, अजाद्यतष्टाप् से 'टाप्' हुआ। 'प्रागिवात्कः' से अज्ञात अर्थ में 'क' हुआ।

'शुष्का क' अब 'केऽणः' से ह्रस्वादेश हुआ। तब पूर्ववत् 'टाप्' तथा 'प्रत्ययस्थात् कात् पूर्व०' से इत्त्व होकर 'शुष्किका' बनता है। 'उदीचाम्' से पाक्षिक इत्त्व नहीं होता। यहाँ 'शुषः कः' (8.2.51) असिद्ध है।

शुष्क०—'शुष्कजङ्घा' यहाँ 'न कोपधायाः' से पुंवद्भावनिषेध नहीं होता।

शुष्के जङ्घे अस्याः—बहुव्रीहि समास हुआ। शुषः कः' के असिद्ध रहने से 'न कोपधायाः' से पुंवद्भाव का निषेध नहीं हुआ।

क्षामि०—'क्षै क्त' इस दशा में 'आदेच उपदेशे०' तथा 'क्षायो मः' से 'क्षा म' यह स्थिति बनती है। अब 'क्षामस्याऽपत्यम्' इस अर्थ में 'अत इञ्' से 'इञ्' करके अथवा 'अत इनिठनौ' से 'इनि' प्रत्यय करके क्षामो (क्षामी वा) अस्याऽस्ति—इस विग्रह के अनुसार 'मतुप्' होता है। तब 'मादुपधायाश्च' से प्राप्त वत्त्व के प्रति 'क्षायो मः' (8.2.53) के असिद्ध रहने से यह वत्त्व नहीं होता है।

औजढ०—'वह् क्त' इस दशा में सम्प्रसारण, 'हो ढः' से ढकार होकर 'उद्त' हुआ। 'झषस्तथोर्धो०' से तकार को धकार, 'ष्टुना ष्टुः' से धकार को ढकार हुआ। उद्ढ। 'ढो ढे लोपः' से पूर्व ढकार का लोप तथा 'ढ्रलोपे पूर्वस्य०' से दीर्घ होकर 'ऊढ' बनता है। 'तमाचष्टे' इस अर्थ में 'णिच्' हुआ, 'णाविष्ठवत् कार्यं प्रातिपदिकस्य' से इष्ठवद्भाव होकर टिलोप हुआ। लुङ् आया। 'णिश्रि०' से 'चङ्' हुआ। 'चङि' से द्विर्वचन प्राप्त हुआ। तब ढत्व (8.2.13), धत्व (8.2.40), ष्टुत्व (8.4.40) तथा ढलोप (8.3.13) के असिद्ध होने से णि में जो टि का लोप हुआ, उसके स्थानिवद्भाव से 'हत' इस द्वितीय एकाच् को द्वित्व हुआ। अभ्यास-कार्य, 'कुहोश्चु' से चुत्व तथा 'अभ्यासे चर्च' से जश्त्व होकर 'औजढत्' बनता है। 'अनग्लोपे' इस पद के द्वारा प्रतिषेध होने से सन्वल्लक्षण इत्त्व नहीं होता है। क्तिन् प्रत्ययान्त 'ऊढि' शब्द से 'औजिढत्' बनता है।

गुडलि०—गुडं लेढि—गुडलिह्। क्विप् प्रत्यय, सर्वापहारलोप तथा विभक्तिकार्य। गुडलिहोऽस्य सन्ति—इस अर्थ में मतुप् हुआ, पूर्ववत् ढत्व, जश्त्व के असिद्ध रहने से 'झयः' से प्राप्त वत्व नहीं होता है।

उदा० (1) अस्मा उद्धर। (2) द्वा अत्र। (3) द्वा आनय। (4) असा आदित्यः। (5) अमुष्मै। (6) अमुष्मात्। (7) अमुष्मिन्। (8) शुष्किका। (9) शुष्कजङ्घा। (10) क्षामिमान्। (11) ऊढः। (12) ऊढिः। (13) औजढत्। (14) औजिढत्। (15) गुडलिट्। (16) गुडलिण्मान्।

येऽत्र०—यहाँ जो षष्ठी का निर्देश है, सप्तमी का निर्देश है तथा पञ्चमी का निर्देश है। वहाँ क्रमशः षष्ठी स्थानेयोगा, तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य तथा तस्मादित्युत्तरस्य—इन परिभाषाओं की प्रवृत्ति में असिद्धभाव नहीं होता है। 'कार्यकालं हि संज्ञापरिभाषम्' इस प्रकार इन परिभाषाओं का पूर्वत्व तो होता नहीं है। इसी प्रकार 'विप्रतिषेधे परं कार्यम्' यह परिभाषा जिन पूर्वलक्षण के साथ विप्रतिषेध करती है, परलक्षण उसके प्रति उसके असिद्ध होने से प्रवृत्त नहीं होता है।

तथा च०—विस्फोर्यम्, अवगोर्यम्—यहाँ 'पुगन्तलघूप०' से प्राप्त गुण का 'हलि च' (8.2.77) से विहित दीर्घादेशरूप पर कार्य के द्वारा बाध नहीं होता है। अपवादरूप परकार्य को भी उत्सर्ग करने में वचनप्रामाण्यवशात् असिद्धभाव नहीं होता है। तब दोग्धा तथा दोग्धुम्—इन स्थलों पर घत्व के असिद्ध होने से 'हो ढः' से ढकार नहीं होता है।

(17) विस्फोर्यम्
वि स्फुर् ण्यत्—ऋहलोर्ण्यत्, अनुबन्धलोप,
वि स्फोर् य सु—गुण, विभक्तिकार्य।

(18) अवगोर्यम्
अव गुर् ण्यत्—पूर्ववत्।

(19) दोग्धा
दुह् तृच्—ण्वुल्तृचौ,
दुघ् तृ—दाऽऽदेर्धातोर्घः,
दुघ् धृ—झषस्तथोर्धो०,
दोघ् धृ—आर्धधातुकं शेषः, पुगन्तलघूपध०,
दोग् धृ सु—झलां जश् झशि।

(20) दोग्धुम्
दुह् तुमुन्—सभी कार्य पूर्ववत्,
दोग् धुम् सु—अव्ययसंज्ञा, सुलुक्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(3690) नलोपः सुप्स्वरसंज्ञातुग्विधिषु कृति *2* (353)

नलोपः पूर्वत्रासिद्धो भवति सुब्विधौ, स्वरविधौ, संज्ञाविधौ, तुग्विधौ च कृति। विधिशब्दोऽयं प्रत्येकमभिसम्बध्यमानः स्वरसंज्ञातुकां विधेयत्वात्तैः कर्मषष्ठीयुक्तैर्भावसाधनोऽभिसम्बध्यते। सुपा तु सम्बन्धसामान्यवचनषष्ठ्यन्तेन कर्मसाधनः। तेन सुपः स्थाने यो विधिः, सुपि च परभूते, सर्वोऽसौ सुब्विधिरिति सर्वत्रासिद्धत्वं भवति। सुब्विधौ तावत्–राजभिः, तक्षभिरित्यत्र नलोपस्यासिद्धत्वाद् 'अतो भिस ऐस्' (7.1.9) इति न भवति। राजभ्याम्, तक्षभ्याम्, राजसु, तक्षस्विति–'सुपि च' (7.3.102) इति, 'बहुवचने झल्येत्' (7.3. 103) इति दीर्घत्वम्, एत्त्वं च न भवति। स्वरविधौ–राजवतीत्यत्र नलोपस्यासिद्धत्वात् 'अन्तोऽवत्याः' (6.1. 220) इति न भवति। पञ्चार्मम्, दशार्ममिति–अत्र नलोपस्यासिद्धत्वाद् 'अर्मे चावर्णं द्व्यच्त्र्यच्' (6.2.90) इति पूर्वपदस्याद्युदात्तत्वं न भवति। पञ्चदण्डी–इत्यत्र नलोपस्यासिद्धत्वात् 'इगन्ते द्विगौ' (6.2.29) इति पूर्वपदप्रकृतिस्वरो न भवति। संज्ञाविधौ–पञ्च ब्राह्मण्यः, दश ब्राह्मण्य इति नलोपस्यासिद्धत्वाद् 'ष्णान्ता षट्' (1.1.24) इति षट्संज्ञा भवति, ततश्च 'न षट्स्वस्रादिभ्यः' (4.1.10) इति टापः प्रतिषेधो भवति। तदेतत्प्रयोजनं कथं भवति? यदि 'प्रतिकार्यं संज्ञाप्रवृत्तिः' इत्येतद्दर्शनम्। या हि जश्शसोर्लुगर्था षट्संज्ञा प्रवृत्ता, तया स्त्रीप्रत्ययप्रतिषेधो न क्रियत इति सा पुनः प्रवर्तयितव्येति। तुग्विधौ–वृत्रहभ्याम्, वृत्रहभिरिति नलोपस्यासिद्धत्वाद् 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' (6.1.71) इति तुग्न भवति। अत्र केचित्–'सन्निपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्य' (व्या०प०) इति तुकं प्रति नलोपस्यानिमित्तत्वाद् बहिरङ्गलक्षणेन वाऽसिद्धत्वात्तुग्विधिग्रहणमनर्थकमिति प्रतिपन्नाः तु तत् क्रियते परिभाषाद्वयस्यानित्यत्वं ज्ञापयितुम्। कृतीति किम्? वृत्रहच्छत्रम्, वृत्रहच्छाया–'छे च' (6.1.73) इति तुग्भवति। अत्र 'सिद्धे सत्यारम्भो नियमार्थः' (कात० प०)–एतेष्वेव नलोपोऽसिद्धो भवति, नान्यत्र। तेन राजीयति, राजायते, राजाश्वः–इति ईत्वम्, दीर्घत्वम्, एकादेशश्च सिद्धो भवति।

अर्थ—सुप् विधि, स्वरविधि, संज्ञाविधि, तथा कृत् प्रत्यय तुक् विधि—इनमें नकार का लोप असिद्ध होता है।

'विधि' शब्द का प्रत्येक के साथ सम्बन्ध है। अतः स्वर, संज्ञा तथा तुक् के विधेय होने से, कर्म व षष्ठी से युक्त उनके द्वारा भावसाधन भी अभिसम्बद्ध होता है। सुप् के द्वारा सम्बन्ध सामान्य वचन षष्ठ्यन्त के द्वारा कर्मसाधन (सम्बद्ध होता है)। अतः सुप् के स्थान पर जो विधि तथा सुप् के परभूत रहते—यह सब सुब्विधि कहलाती है। अतः सर्वत्र (नलोप) असिद्ध होता है।

उदा० (क) सुब्विधौ—

(1) राजभिः

राजन् भिस्—पदसंज्ञा, नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य,

राज भिस्—'अतो भिस ऐस्' से 'ऐस्' आदेश प्राप्त हुआ, परन्तु सुब्विधि में नलोप के असिद्ध होने से अदन्त अङ्ग के न रहने से 'ऐस्' नहीं हुआ।

(2) तक्षभिः

तक्षन् भिस्—पूर्ववत्।

(3) राजभ्याम्

राजन् भ्याम्—यहाँ नकारलोप होकर 'सुपि च' से दीर्घादेश प्राप्त हुआ, नलोप के असिद्ध रहने से नहीं हुआ।

(4) तक्षभ्याम् (पूर्ववत्)।

(5) राजसु

राजन् सु—नकारलोप होकर 'बहुवचने झल्येत्' से एत्त्व प्राप्त हुआ, नलोप के असिद्ध रहने से एत्त्व नहीं हुआ।

(6) तक्षसु

पूर्ववत् एत्त्व नहीं हुआ।

(ख) स्वरविधौ—

राज०—'राजवती' इस स्थल पर नलोप के असिद्ध होने से 'अन्तोऽवत्याः' से स्वर प्राप्त नहीं हुआ।

(7) राजवती

राजन् मतुप्—अनुबन्धलोप,

राज वत्—नलोपः प्रातिपदि०, मादुपधाया०,

राजवत् ङीप्—उगितश्च, 'अन्तोऽवत्याः' से अन्तोदात्त स्वर प्राप्त हुआ, परन्तु नलोप के असिद्ध होने से प्रातिपदिकस्वर से आद्युदात्त हुआ।

पञ्चार्म०—पञ्चार्मम्, दशार्मम्—इन स्थलों पर 'अर्मे चावर्णं०' से पूर्व पद को प्राप्त आद्युदात्त स्वर नलोप के असिद्ध होने से नहीं होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इसी प्रकार 'पञ्चदण्डी' इस स्थल पर 'इगन्तकालकपा०' से पूर्व पद को प्राप्त प्रकृतिस्वर नलोप के असिद्ध होने से नहीं होता है।

(8) पञ्चार्मम्

'दिक्सङ्ख्ये संज्ञायाम्' से समास, नकारलोप हुआ, पूर्व पद को 'अर्मे चाऽवर्णम्' से आद्युदात्त स्वर प्राप्त हुआ, परन्तु नलोप के असिद्ध होने से नहीं हुआ। तब समासलक्षण अन्तोदात्त स्वर हुआ।

(9) दुशार्मम्

पूर्ववत् अन्तोदात्त स्वर।

(10) पञ्चदुण्डी

पञ्चानां दण्डिनां समाहारः—'तद्धितार्थोत्तरपद०' से समास,

पञ्च दण्डिन्—समाहार अर्थ में द्विगु, 'स नपुंसकम्' से नपुंसक लिङ्ग, नकारलोप,

पञ्चदण्डी—'इगन्त कालकपाल०' से पूर्व पद को प्रकृतिस्वर प्राप्त होता है। नलोप के असिद्ध होने से नहीं हुआ, समासलक्षण अन्तोदात्त स्वर हुआ।

पञ्च ब्रा०—पञ्च ब्राह्मण्यः, दश ब्राह्मण्यः—इन स्थलों पर नलोप के असिद्ध होने से 'ष्णान्ता षट्' से षट् संज्ञा होती है। तब 'न षट्स्वस्रादिभ्यः' से 'टाप्' का निषेध होता है। यह प्रयोजन कैसे होता है ? यदि 'प्रतिकार्यं संज्ञाप्रवृत्तिः' यह मत है। यह जो जस् तथा शस् की लुगर्थ षट् संज्ञा प्रवृत्त है, उसके द्वारा स्त्रीप्रत्यय का निषेध नहीं किया जाता। अतः उसको पुनः प्रवृत्त करना चाहिए।

(ग) संज्ञाविधौ—

(11) पञ्च ब्राह्मण्यः

पञ्चन्—नकारलोप हुआ,

पञ्च—अजाद्यतष्टाप् तथा स्त्रियाम् से 'टाप्',

पञ्च टाप्—नलोप के असिद्ध होने से षट्संज्ञा होकर 'टाप्' का लुक् होता है।

विशेष—यहाँ दो मत हैं—

(क) यावन्ति संज्ञाकार्याणि तत्रैकैव संज्ञा प्रवर्त्तते अर्थात् एक ही संज्ञा से अनेक संज्ञाकार्य हो जाते हैं।

(ख) यावन्ति संज्ञाकार्याणि तावत्य एव संज्ञाः प्रवर्त्तन्ते अर्थात् जितने भी संज्ञाकार्य हैं, उतनी ही संज्ञायें प्रवृत्त होती हैं।

प्रथम मत में इसका प्रयोजन नहीं है। पूर्वप्रवृत्त जिस संज्ञा के द्वारा 'षड्भ्यो लुक्' से जस् व शस् का लुक् रूप कार्य किया है, उसी संज्ञा के द्वारा 'टाप्' का प्रतिषेध होता है।

अतः द्वितीय मत में इसका प्रयोजन है। जिसे जस् व शस् की लुगर्थ जो षट् संज्ञा प्रवृत्त है, उसके द्वारा स्त्रीप्रत्यय का लुक् नहीं होता है। अतः उसकी पुनः प्रवृत्ति करनी चाहिए।

तुग्विधौ०—तुग् विधि में। वृत्रहभ्याम् तथा वृत्रहभिः—इन स्थलों पर 'ह्रस्वस्य पिति०' से प्राप्त तुक् आगम नलोप के असिद्ध होने से नहीं होता है। कुछ विद्वान् कहते हैं—

'सन्निपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्य' इस परिभाषा से तुक् के प्रति नलोप के निमित्त न रहने से बहिरङ्गलक्षण के द्वारा विकल्प से असिद्ध होने से 'तुक् विधि' का ग्रहण व्यर्थ है। अतः परिभाषाद्वय की अनित्यता ज्ञापित करने के लिए यह किया जाता है।

(घ) तुग्विधौ—

(12) वृत्रहभ्याम्

वृत्रं हतवान्—'ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु क्विप्' से क्विप् हुआ,

वृत्रहन् क्विप्—सर्वापहारलोप, प्रातिपदिक संज्ञा,

वृत्रहन् भ्याम्—पदसंज्ञा, नलोप,

वृत्रह भ्याम्—'ह्रस्वस्य पिति०' से तुक् आगम प्राप्त हुआ, नलोप के असिद्ध होने से नहीं हुआ।

(13) वृत्रहभिः

पूर्ववत् तुक् नहीं हुआ।

कृतीति०—कृत् परे रहते जो तुक् आगमविधि, उसमें नलोप असिद्ध होता है।

(14) वृत्रहच्छत्रम्

वृत्रहन् छत्र—समास, नलोप,

वृत्रह त् छत्र—'छे च' से 'तुक्' हुआ, यह तुक् कृत् परे रहते नहीं है, अपितु छकार परे रहते हुआ है, अतः नलोप असिद्ध नहीं हुआ।

वृत्रह च् छत्र सु—स्तोः श्चुना श्चुः।

(15) वृत्रहच्छाया (पूर्ववत्)।

अत्र०—यहाँ सर्वत्र 'पूर्वत्राऽसिद्धम्' से नलोप असिद्ध सिद्ध ही था, तब नियमार्थ यह विधान किया गया है। यह नियम करता है कि सूत्रोक्त सुब् आदि विधियों में ही असिद्ध होता है, अन्यत्र नहीं। अतः निम्नलिखित स्थलों पर क्रमशः ईत्व, दीर्घादेश तथा एकादेश होता है—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(16) राजीयति

राजानम् आत्मन इच्छति—सुप् आत्मनः क्यच्,

राजन् क्यच्—नकारलोप,

राजीय—नकारलोप के सिद्ध रहने से 'क्यचि च' से ईत्व हुआ, धातुसंज्ञा,

राजीय शप् ति—अतो गुणे।

(17) राजायते

राजन् क्यङ्—कर्तुः क्यङ् सलोपश्च,

राज य—अनुबन्धलोप, नकारलोप,

राजाय—नलोप के सिद्ध रहने से 'अकृत् सार्वधातु०' से दीर्घादेश हुआ, धातुसंज्ञा,

राजाय शप् त—अतो गुणे, टित आत्मनेपदा०।

(18) राजाऽश्वः

राजन् अश्व—समास, नलोप के सिद्ध रहने से 'अकः सवर्णे दीर्घः' से सवर्णदीर्घ,

राजाऽश्व सु—विभक्तिकार्य।

(3691) न मु ने *3* (439)

मुभावो नाभावे कर्तव्ये नासिद्धो भवति। किं तर्हि? सिद्ध एव। अमुना। मुभावस्यासिद्धत्वाद् घिलक्षणो नाभावो न स्यात्। कृते तु नाभावे सुभावस्यासिद्धत्वात् 'सुपि च' (7.3.102) इति दीर्घत्वं यत्प्राप्नोति, तत् 'सन्निपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्घिघातस्य' (व्या०प०) इति न भवति। अथ वा–योगद्वयमिदमुभयार्थं तन्त्रेणोच्चारितम्। अथ वा–ने परतो यत्प्राप्नोति तस्मिन्कर्तव्ये मुभावो नासिद्ध इत्येष एवात्र सूत्रार्थः। ने तु कर्तव्ये मुभावस्य यत्सिद्धत्वं तदर्थतः संगृहीतम्। तेनात्र मुभावस्य सिद्धत्वान्नाभावश्च भवति, दीर्घत्वं च न भवति। * एकादेशस्वरोऽन्तरङ्गः सिद्धो वक्तव्यः * (म० भा०)। किं प्रयोजनम्? * अयायावेकादेशशतृस्वरैकाननुदात्तसर्वानुदात्तार्थम् * (म० भा०)। वृक्ष इदम्, प्लक्ष इदम्। अत्र प्रातिपदिकान्तसप्तम्येकवचनयोरुदात्तानुदात्तयोरेकादेशः, स 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' (8.2.5) इत्युदात्तः, तस्य सिद्धत्वं वक्तव्यम्। आन्तर्यतः अयादेश उदात्तो यथा स्यात्। आय्-कुमार्या इदम्। कथमिदमुदाहरणम्? यदि 'उदात्तयणो हल्पूर्वात्' इत्युदात्तत्वे कृते विभक्तेः 'आटश्च' (6.1.90) एकादेशः, तदा भवतीदमुदाहरणम्। अथ तु कृते तत्रैकादेशे 'उदात्तयणो हल्पूर्वात्' (6.1.174) इति स्वरः? तदा नैतदस्य प्रयोजनं भवति। आव्–वृक्षाविंदम्, प्ल्–क्षाविंदम्। एकादेशस्वरः–गाङ्गेऽनूप इति गाङ्गेशब्दे एकारः 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' (8.2.5) इत्युदात्तः, तस्य सिद्धत्वाद् यः पुनः 'एङः पदान्तादति' (6.1.109) इति एकादेशः स 'एकादेश उदात्तेनोदात्तः' (7.2.5) इति, अतः 'स्वरितो वाऽनुदात्ते पदादौ' (8.2.6) इत्येतद्भवति। शतृस्वरः–तुदती। नुदती। 'अनुपदेशात्' (6.1.186) इति लसार्वधातुकानुदात्तत्वे कृते एकादेशः, तदुदात्तस्य सिद्धत्वात् 'शतुरनुमो नद्यजादी' (6.1.173) 'अन्तोदात्तात्' इत्येष स्वरो भवति। 'अनुमः' (6.1.173) इति प्रतिषेधो ज्ञापकः–एकादेशस्वरः शतृस्वरे सिद्ध इति। न हि सनुम्कं शत्रन्तं किञ्चिदेकादेशस्वरमन्तरेणान्तोदात्तमस्ति। एकानुदात्त–तुदन्ति। लिखन्ति। एकादेशस्वरस्य सिद्धत्वात्, तेन 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' (6.1.158) इति वर्ज्यमानता भवति। सर्वानुदात्तः–ब्राह्मणास्तुदन्ति, ब्राह्मणा लिखन्ति। एकादेशस्वरस्य सिद्धत्वात् कृते तस्मिन् 'तिङ्ङतिङः' (8.1.27) इति निघातो भवति। 'अन्तरङ्गे' इति वचनाद्विरङ्गस्यासिद्धत्वमेव–पचतीतिं, प्रपचतीतिं। * संयोगान्तस्य लोपो रोरुत्वे सिद्धो वक्तव्यः *। किं प्रयोजनम्? 'हरिवो मेदिनं त्वा।' हरिव इति मतुबन्तमेतत्; तत्र 'छन्दसीरः' (8.2.15) इति वत्वे, संयोगान्तस्य लोपे च कृते 'मतुवसो रु सम्बुद्धौ छन्दसि' (8.3.1) इति रुत्वम्, तस्य संयोगान्तस्य लोपस्यासिद्धत्वाद् 'हशि च' (6.1.114) इत्युत्वं न प्राप्नोति। *सिज्लोप एकादेशे सिद्धो वक्तव्यः* (म० भा०)। अलावीत्। अपावीत्। 'इट ईटि' इति सिज्लोपस्य सवर्णदीर्घत्वं भवति। *निष्ठादेशः षत्वस्वरप्रत्ययविधीड्विधिषु सिद्धो वक्तव्यः* (म० भा०)। वृक्णः, वृक्णवान्। निष्ठादेशस्य सिद्धत्वात् झलीति षत्वं न भवति। कुत्वं तु प्रत्यसिद्ध एवेति तद्भवति। स्वरप्रत्ययविधीड्विधिषु क्षीबशब्द उदाहियते। तत्र च निपातनमनेकथा समाश्रीयते–यदा क्षीबेर्निष्ठायामिटि कृते इत्शब्दलोपो निपात्यते, तदा क्षीब इति संज्ञायामित्शब्दलोपस्यासिद्धत्वात् 'निष्ठा च द्व्यजनात्' (6.1.205) इत्येष स्वरो न प्राप्नोति; क्षीबे तरति क्षीबिक इति द्व्यज्लक्षणष्ठञ् प्राप्नोतिः यदा तु तकारलोपो निपात्यते, तदा तस्यासिद्धत्वादिडागमः प्राप्नोति। * प्लुतविकारस्तुग्विधौ छे सिद्धो वक्तव्यः * (म० भा०)। अग्ना3 इच्छत्रम्। पटा3 उच्छत्रम्। प्लुतविकारस्यासिद्धत्वात् 'छे च'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(6.1.73) इति ह्रस्वलक्षणो नित्यस्तुग् न प्राप्नोति। * श्नुत्वं धुटि सिद्धं वक्तव्यम् * (म० भा०)। 'श्नुतिर् क्षरणे' (धा०पा० 41)-इत्ययं धातुः तकारादिः पठ्यते, तस्य श्नुत्वस्यासिद्धत्वाद् अट्श्नोतति, रट्श्नोतति इति 'डः सि धुट्' (8.3.29) इति प्राप्नोति। अटतीत्यड्, रटतीति रड्-क्विबन्तोऽयम्। किमर्थं पुनरयं सकारादिः पठ्यते? इह मधु श्नोततीति मधुश्नुत्-क्विबन्तः, मधुश्नुतमाचष्टे इति णिच्-मधुश्नयति, मधुश्नयतेः पुनः क्विपि कृते संयोगादित्वात् सलोपः, संयोगान्तत्वाद् यलोपः, चकारस्य कुत्वम्-मधुगिति सिद्धम्। शकारादौ पुनरेतस्मिन् संयोगान्तलोपेन यकारचकारयोर्लुप्तयोः शकारस्य षत्वे सति मधुडिति स्यात्। * अभ्यासजश्त्वचर्त्वे एत्वतुकोः सिद्धे वक्तव्ये * (म० भा०)। बभणतुः। बभणुः। अभ्यासजश्त्वस्यासिद्धत्वाद् 'अनादेशादेः' (6.4.120) इत्येत्त्वं प्राप्नोति। छिदेः-बिचिच्छित्सति, उच्छेः-उचिच्छिषतीति अभ्यासादेशस्यासिद्धत्वात् 'छे च' (6.1.73) इति तुग्न प्राप्नोति। * द्विर्वचने परसवर्णत्वं सिद्धं वक्तव्यम् * (म० भा०)। सयँय्यन्ता, सवँव्वत्सुरः, यलँल्लोकम्, तलँल्लोकमिति परसवर्णस्यासिद्धत्वाद् 'यरः' (8.4.47) इति द्विर्वचनं न स्यात्। * पदाधिकारश्चेल्लत्वधत्वढत्वनत्वरुत्वषत्वणत्वानुनासिकछत्वानि सिद्धानि वक्तव्यानि (म० भा०) *। लत्वम्-गलो गलः। गरो गरः। धत्वम्-द्रोग्था, द्रोग्धा। ढत्वम्-द्रोढा, द्रोढा। नत्वम्-नुन्नः। रुत्वम्-अभिनोऽभिनः। अभिनदभिनत्। षत्वम्-मातुष्ष्वसा, मातुष्ष्वसा। मातुःस्वसा, मातुःस्वसा। पितुष्ष्वसा, पितुष्ष्वसा। पितुःस्वसा, पितुःस्वसा। णत्वम्-माषवापाणि, माषवापाणि। माषवापानि, माषवापानि। अनुनासिक-वाङ्नयनम्, वाङ्नयनम्। वाग्नयनम्, वाग्नयनम्। छत्वम्-वाक्छयनम्, वाक्छयनम्। वाक्शयनम्, वाक्शयनम्। लत्वादीनां विकल्पितानामसिद्धत्वात् कृते द्विर्वचने सत्युपरिष्टाद्विकल्पे सति गरोगलः, गलोगरः-इत्येवं रूपमपि द्विरुक्तं स्यात्। तदेतत्सर्वम् 'न मु ने' इति योगविभागेन साध्यते। 'न' इत्येतावदनिष्टे विषये पूर्वत्रासिद्धस्य प्रतिषेधार्थम्। ततः 'मु ने' इति, 'न' इत्येतदनुवर्तते।

अर्थ—मुभाव तथा नाभाव करने में असिद्ध नहीं होता है। तो क्या होता है? सिद्ध ही होता है।

यहाँ मुभाव के असिद्ध होने से घिलक्षण 'ना' (आङो नाऽस्त्रियाम्) आदेश नहीं होता है। 'ना' आदेश करने पर मुभाव के असिद्ध होने से 'सुपि च' से जो दीर्घादेश प्राप्त होता है, वह 'सन्निपातलक्षणो विधिरनिमित्तं०' से नहीं होता है।

उदा० (1) अमुना
अदस् टा—त्यदादीनाम् अः,
अद अ टा—अतो गुणे,
अद आ—अदसोऽसेर्दा०,
अमुना—आङो नाऽस्त्रियाम्।

अथ०—अथवा योगद्वय उभयार्थ पठित है।

अथवा०—अथवा 'न' परे रहते जो प्राप्त होता है, उसके करने में 'मु' आदेश असिद्ध नहीं होता है—यह सूत्रार्थ है। 'न' परे रहते जो कर्त्तव्य है, उसमें 'मु' आदेश का जो सिद्ध होना है, वह अर्थतः संगृहीत है। अतः यहाँ 'मु'भाव के सिद्ध रहने से 'ना' आदेश होता है तथा दीर्घादेश होता है।

अयाया०—अय्, आय्, आव्, एकादेश स्वर, शतृ स्वर, एकाननुदात्त तथा सर्वानुदात्त के लिए यह विधान है।

एकादेश०—एकादेश स्वर अन्तरङ्ग सिद्ध होता है। इसका क्या फल है?

(2) वृक्ष इदम्
वृक्षे इदम्—एचोऽयवायावः' से 'अय्',
वृक्ष इदम्—'लोपः शाकल्यस्य' से यलोप।

(3) प्लक्ष इदम् (पूर्ववत्)।

अत्र०—यहाँ प्रातिपदिकान्त सप्तमी एकवचन उदात्त व अनुदात्त का एकादेश है, वह 'एकादेश उदात्तेनो०' से उदात्त होता है। वह सिद्ध होता है। आन्तरतम्य से अय् आदेश उदात्त हो जाय।

आय्०—कुमार्या इदम्।

यह उदाहरण कैसे है? 'उदात्त यणो०' से यदि उदात्तस्वर करने पर विभक्ति का और आट् का 'आटश्च' से एकादेश होता है तो यह उदाहरण होता है। वहाँ एकादेश करने पर 'उदात्तयणो०' से स्वर होता है। तब इसका प्रयोजन नहीं है।

आव्०—वृक्षाविदम्, प्लक्षाविदम्—'आव्' के उदाहरण हैं।

एकादेश०—गाङ्गेऽनूपः यहाँ 'गाङ्गे' शब्द में एकार 'एकादेश उदात्तेनो०' से उदात्त होता है। उसके सिद्ध होने से जो 'एङः पदान्तादति' से एकादेश होता है, वह 'एकादेश उदात्तेनो०' तथा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'स्वरितो वाऽनुदा०' से होता है।

शतृस्वर०—तुदती, नुदती—यहाँ 'अदुपदेशात्' से लसार्वधातुक अनुदात्त करने पर एकादेश होता है। तब उदात्त के सिद्ध होने से 'शतुरनुमो०' तथा 'अन्तोदात्तात्' इससे स्वर होता है। 'अनुमः' यह प्रतिषेध यहाँ ज्ञापक है कि एकादेश स्वर शतृ स्वर में सिद्ध होता है। नुम् सहित शतृ प्रत्ययान्त एकादेश स्वर के विषय में अन्तोदात्त नहीं होता है।

एकाननु०—तुदन्ति, लिखन्ति—एकादेश स्वर के सिद्ध होने से। उससे 'अनुदात्तं पदमेक०' से वर्ज्यमानता होती है।

सर्वानु०—ब्राह्मणास्तुदन्ति, ब्राह्मणा लिखन्ति—एकादेश स्वर के सिद्ध होने से उसके करने पर 'तिङ्ङतिङः' से निघात होता है। 'अन्तरङ्गे' इस प्रकार पाठ से बहिरङ्ग असिद्ध ही होता है। यथा—पचति, प्रपचति।

संयोग—संयोगान्त का लोप 'रु' को 'उ' आदेश करने में सिद्ध होता है। इसका क्या फल है ? 'हरिवः' यह मतुप् प्रत्ययान्त है। यहाँ 'छन्दसीरः' से वकार आदेश करने पर तथा संयोगान्त का लोप करने पर 'मतुवसो०' से रुत्व होता है। तब उस संयोगान्त लोप के असिद्ध होने से 'हशि च' से प्राप्त उत्व नहीं होता है (यह उत्व करना ही प्रयोजन है)।

(4) हरिवः
हरि मतुप्—अनुबन्धलोप,
हरि वत्—छन्दसीरः,
हरि वन् त् सु—सु, नुम्,
हरिवन्त्—हल्ङ्याब्भ्यो०,
हरिवन्—संयोगान्तस्य लोपः,
हरि व रु—वन उपसङ्ख्यानम्, उत्व, हशि च,
हरि व उ—आद् गुणः।

सिज्लोप०—एकादेश करने में सिच् का लोप सिद्ध होता है।

अलावीत्, अपावीत्—यहाँ 'इट ईटि' से सिच् का लोप होकर उसके सिद्ध रहते 'अकः सवर्णे दीर्घः' से दीर्घ होता है।

(5) अलावीत्
लू तिप्—लुङ्, 'इतश्च' से इकारलोप,
लू स् त्—च्लि लुङि, च्लेः सिच्, अनुबन्धलोप,
लू इ स् ई त्—आर्धधातुकस्येड्०, अस्तिसिचो०,
लाव् इ ई त्—वृद्धि, इट ईटि,
अलावीत्—अकः सवर्णे दीर्घः, अट्।

(6) अपावीत् (पूर्ववत्)।

निष्ठादेश०—षत्व, स्वर, प्रत्यय विधि तथा इड् विधि—इनमें निष्ठा आदेश सिद्ध होता है।

वृक्णः, वृक्णवान्—यहाँ निष्ठादेश के सिद्ध रहने से 'झलि' से षत्व नहीं होता है। कुत्व तो प्रत्यसिद्ध होता ही है। अतः वह हो जाता है।

स्वर, प्रत्यय विधि तथा इड् विधि में 'क्षीब' शब्द का उदाहरण दिया जाता है। यहाँ अनेक प्रकार से निपातन का आश्रय किया जाता है। जब क्षीब् से निष्ठा करने पर इट् करने पर इत् शब्द-लोप का निपातन किया जाता है, तब 'क्षीब' इस प्रकार संज्ञा में इत् शब्दलोप के असिद्ध होने से 'निष्ठा च द्व्य०' से स्वर प्राप्त नहीं होता है।

क्षीबे तरति—क्षीबिकः। यहाँ द्व्यज् लक्षण ठन् प्राप्त नहीं होता है। जब तकारलोप का निपातन किया जाता है, तब उसके असिद्ध रहने से इट् का आगम प्राप्त होता है।

(7) वृक्णः
व्रश्च् क्त—'ग्रहिज्यावयि०' से सम्प्रसारण,
वृश्च् त—चोः कुः,
वृक् न—ओदितश्च,
वृक् ण सु—अट्कुप्वा०।

(8) वृक्णवान्
व्रश्च् क्तवतु—पूर्ववत्।

प्लुत०—'छ' परे रहते तुक् विधि में प्लुतविकार सिद्ध होता है।

निम्नलिखित स्थलों पर प्लुतविकार के असिद्ध होने से 'छे च' से ह्रस्वलक्षण नित्य तुक् प्राप्त नहीं होता है—

(9) अग्ना3 इच्छत्रम्
अग्नि सु—ह्रस्वस्य गुणः, एङ् ह्रस्वात्०,
अग्ने३—'एचोऽप्रगृह्यस्यादूराद्०' से पूर्वार्ध को अकार आदेश हुआ, 'पदान्ताद् वा' से विकल्प से प्राप्त होता है, नित्य 'तुक्' नहीं होता है।

(10) पटा3 उच्छत्रम्—पूर्ववत्।

श्चुत्वं०—धुट् में श्चुत्व सिद्ध होता है। श्च्युतिर् यह सकारादि धातु पठित है। इसके श्चुत्व के असिद्ध होने से 'अट्श्च्योतति' तथा 'रट्श्च्योतति' यहाँ 'डः सि धुट्' से 'धुट्' प्राप्त होता है। अटतीति अट् तथा रटतीति रट्—यहाँ क्विप् प्रत्यय हुआ है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किमर्थं०—सकारादि पाठ किसलिए किया गया है ? ताकि 'मधुश्च्यति' में क्यप् करने पर संयोगादि होने से सकार का लोप होता है तथा संयोगान्त होने से यलोप होता है। चकार को कुत्व होकर 'मधुड्' सिद्ध होता है।

शकारादि में पुनः संयोगान्त लोप के द्वारा यकार व चकार का लोप होने पर शकार के स्थान पर षकार होने पर 'मधुड्' होता है।

(11) अट्श्योतति
अटतीति—इस अर्थ में 'क्विप्' हुआ,
अट् क्विप्—सर्वापहारलोप,
अट् सु—विभक्तिकार्य,
अट्श्योतति—चूँकि 'श्च्युतिर्' धातु सकारादि पठित है, इसे श्चुत्व हुआ है, अब 'ङ सि धुट्' से 'धुट्' आगम प्राप्त हुआ, परन्तु श्चुत्व के सिद्ध रहने से सकारादि के न रहने से 'धुट्' नहीं हुआ।

(12) रट्श्योतति
रटतीति—रट्, शेष कार्य पूर्ववत्।

(13) मधुश्च्युत्
मधु श्योतति—इस अर्थ में, क्विप्, सर्वापहारलोप,
मधुश्च्युत् सु—हल्ङ्यादि लोप।

(14) मधुग्
मधुश्च्युतम् आचष्टे—'तत्करोति तदाचष्टे' से 'णिच्',
मधुश्च्युत् णिच्—'णाविष्ठवत् प्रातिपदिकस्य' से णिलोप,
मधुश्च्युत्—टिलोप, श्चुत्व के असिद्ध होने से 'स्कोः संयोगाद्योः०' से संयोगादि सकार का लोप, 'संयोगान्तस्य लोपः' से यकारलोप,
मधुश्च् → मधुच्—'चोः कुः' से कुत्व,
मधुग्—वाऽवसाने।

(15) मधुड्
मधुश्च्—पूर्ववत् सभी कार्य,
मधुश्—'संयोगान्तस्य लोपः' से यकारलोप, यकार का लोप होने पर चकार संयोगान्त हुआ, चकार का संयोगान्त लोप हुआ,
मधुष्—'व्रश्चभ्रस्ज०' से षत्व,
मधुड्—'झलां जशोऽन्ते' से डकार।

अभ्यास०—एत्व तथा तुक् करने में अभ्यास को आदेशभूत जश्त्व तथा चर्त्व सिद्ध होते हैं।

'बभणतुः' तथा बभणुः—इन स्थलों पर अभ्यास के स्थान पर 'अभ्यासे चर्च' से आदेशभूत जश्त्व (बकार) के असिद्ध होने से 'अनादेशाऽऽदेः' से एत्त्व प्राप्त होता है।

विचिच्छित्सति तथा उचिच्छिषति—इन स्थलों पर अभ्यास के स्थान पर आदेशभूत चर्त्व के असिद्ध होने से 'छे च' से 'तुक्' प्राप्त नहीं होता है।

(16) बभणतुः
भण् अतुस्—लिट्, तस्, अतुस् आदेश,
ब भण् अतुस्—द्वित्व, हलादिः शेषः, अभ्यासे चर्च, बकार के असिद्ध होने से 'अत एकहल्मध्ये' से अभ्यासलोप तथा एत्व प्राप्त हुआ, प्रकृत वार्त्तिक से बकार के सिद्ध होने से एत्व नहीं हुआ।

(17) बभणुः
भण् उस्—लिट्, झि, 'उस्' आदेश, शेष पूर्ववत्।

(18) विचिच्छित्सति
छिद् सन्—धातोः कर्मणः समान०,
छि छिद् स—द्वित्व, हलादिः शेषः,
चि छिद् स—अभ्यासे चर्च, खरि च,
वि चि छित्स—'छे च' से 'तुक्', स्तोः श्चुना श्चुः,
वि चिच्छित्स—अभ्यास के स्थान पर चर्त्व (च) के असिद्ध रहने से उसके परे रहते 'छे च' से 'तुक्' प्राप्त हुआ, परन्तु प्रकृत वार्त्तिक से तुक् नहीं हुआ,
विचिच्छित्सति—धातुसंज्ञा, शप्, अतो गुणे।

(19) उचिच्छिषति
उछ् इ सन्—अन्तरङ्ग होने से प्रथम 'तुक्', इट् आगम,
उ त्छि च्छि स—अजादेर्द्वितीयस्य,
उ चि च्छि स—'शपूर्वाः खयः' से छकार शेष रहा, 'अभ्यासे चर्च' से चर्त्व,
उचिच्छिष—चर्त्व के असिद्ध रहने से अभ्यास के परे रहते 'छे च' से 'तुक्' प्राप्त हुआ, प्रकृत वार्त्तिक से चर्त्व के सिद्ध रहते 'तुक्' नहीं हुआ, षत्व, धातुसंज्ञा, शेष पूर्ववत्।

द्विर्वच०—द्वित्व करने में परसवर्ण सिद्ध होता है। निम्नलिखित स्थलों पर परसवर्ण के असिद्ध होने से 'यरः' से द्विर्वचन नहीं होता है।

(20) सयँय्यन्ता
सम् यन्ता—मोऽनुस्वारः,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संयन्ता—'अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः' से परसवर्ण प्राप्त हुआ, आन्तरतम्य से सानुनासिक हुआ,

सयँ् यन्ता—'अनचि च' से द्वित्व प्राप्त नहीं हुआ, परन्तु प्रकृत वार्त्तिक से परसवर्ण के सिद्ध होने पर द्वित्व हुआ,

सयँ् य्यन्ता—पक्ष में द्वित्व नहीं हुआ।

(21) सवँ्व्वत्सरः
सम् वत्सरः—सभी कार्य पूर्ववत्।

(22) यलँ्ल्लोकम्
यम् लोकम्—पूर्ववत्।

(23) तलँ्ल्लोकम्
तम् लोकम्—पूर्ववत्।

पदाधि०—यदि पदाधिकार हो तो लत्व, घत्व, ढत्व, नत्व, रुत्व, षत्व, णत्व, अनुनासिक तथा छत्व—ये सिद्ध होते हैं।

(24) गलो गलः
यहाँ लत्व हुआ है। यह सिद्ध है।

(25) द्रोग्धा द्रोग्धा
द्रुह् तृ—'दाऽऽदेर्धातोर्धः' से 'घ' आदेश,
द्रोघ् तृ—लघूपध गुण,
द्रोग् धृ—झषस्तथो०, झलां जश् झशि, सु।

(26) नुन्नः नुन्नः
नुद् क्त—'नुदविद०' से नकार।

(27) अभिनोऽभिनः
भिद् सिप्—लङ्, 'रुधादिभ्यः श्नम्' से 'श्नम्',
भि न द् स्—अनुबन्धलोप 'इतश्च' से इकारलोप,
भिनद्—हल्ङ्याब्भ्यो०,
अ भिनर्—'दश्च' से 'रु',
अभिनोऽभिनः—अतो रोरप्लुताद०, आद् गुणः।

(28) अभिनद् अभिनत्
पक्ष में 'रु' नहीं हुआ।

(29) मातुष्ष्वसा, मातुःस्वसा
मातुः स्वसा—'मातःपितुर्भ्याम् अन्य०' से विकल्प से षत्व।

(30) पितुष्ष्वसा, पितुःस्वसा (पूर्ववत्)।

(31) माषवापाणि माषवापानि
माषवापानि—'प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु' से पाक्षिक णत्व।

(32) वाङ्नयनम्, वाग्नयनम्
वाच् नयन—समास, कुत्व,
वाक् नयन—यरोऽनुनसिकेऽनुनासि०।

(33) वाक्छयनम् वाक्शयनम्
'शश्छोऽटि' से पाक्षिक छत्व हुआ।

लत्वादी०—विकल्पित लत्व आदि के असिद्ध होने से द्विर्वचन करने पर पुनः विकल्प होने पर गरो गलः, गलो गरः—इस प्रकार रूप को द्वित्व होता है। यह सब 'न मु ने' का योगविभाग से सिद्ध हो जाता है। 'न' अनिष्ट विषय में यह पूर्वत्राऽसिद्ध के निषेध के लिए है। द्वितीय योग 'मु ने' ऐसा है। यहाँ 'न' का अनुवर्त्तन है।

(3692) उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य *4* (3657)

उदात्तयणः स्वरितयणश्च परस्यानुदात्तस्य स्वरित आदेशो भवति। उदात्तयणः—कुमार्यौ, कुमार्यः। उदात्तनिवृत्तिस्वरेणायमीकार उदात्तः, तस्य स्थाने यणादेशः स उदात्तयण्, तस्मात् परस्यानुदात्तस्य स्वरित आदेशो भवति। स्वरितयणः—सकृल्ल्व्यांशा। खलप्व्यांशा। सकृल्लू, खलपू—इति कृत्स्वरेणान्तोदात्तौ, तयोः 'ओः सुपि' (8.3.16) इति यणादेशः स उदात्तयण्, ततः परस्य सप्तम्येकवचनस्य स्वरितत्वम्, तस्य यणादेशः स्वरितयण्, तस्मात्स्वरितयणः परस्य आशाशब्दाकारस्यानुदात्तस्य स्वरितो भवति। ननु च सप्तम्येकवचनस्य यदुदात्तयण इति स्वरितत्वम्, तदसिद्धं यणादेशे, तत्कथमयं स्वरितयण् भवति? आश्रयात् सिद्धत्वं भविष्यति। यद्येवम्, 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' (8.4.66) इति एतस्याप्याश्रयात्सिद्धत्वं प्राप्नोति, ततश्च दध्याशेत्यत्रापि स्वरितः स्यात्? तस्मादयमेव यण्स्वरो यणादेशे सिद्धो वक्तव्यः। केचित्तु ब्रुवते—उदात्तात्स्वरितयणोऽपि परस्यानुदात्तस्य स्वरितत्वं दृश्यते। तथा च तैत्तिरीयके शाखान्तरे पठ्यते—'यास्ते विश्वाः समिधः सन्त्यग्ने (तै० 3.5.5.3) इति। 'अग्ने' इत्ययमकारः स्वरितः पठ्यते। तथा ब्राह्मणेऽपि—'दध्याशयती'(तै०ब्रा० 1.7.6.5)'त्याकारः स्वरितः पठ्यते' इति। यथा तु वात्तिकं भाष्यं च, तथा उदात्तात्स्वरितयणः परस्यानुदात्तस्यानेन स्वरितत्वं न भवतीति स्थितम्। तथा च भाष्ये स्वरितयण्ग्रहणमिदं प्रत्याख्यायते। 'सकृल्ल्व्यांशे'-त्येवादावुदात्तयण इत्येव स्वरितस्य सिद्धत्वात्। स्वरितयण्व्यवधानमव्यवधानमेव, 'स्वरविधौ व्यञ्जनमविद्यमानवत्'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(व्या०प०) इति। तत्तु क्रियते–पूर्वस्मादपि विधौ स्थानिवद्भावाद् व्यवधानमस्ति, स्वरदीर्घयलोपेषु च लोपाजादेशस्य स्थानिवद्भावः प्रतिषिध्यते इति। उदात्तस्वरितयोरिति किम्? बैदी आशा बैद्याशा। शार्ङ्गरव्याशा। अनुदात्तयणादेशोऽयम्। अनुदात्तस्येति किम्? कुमार्यर्त्रं। किं शो शोर्यत्रं। अत्रेत्ययमाद्युदात्तो लित्स्वरेण।

अर्थ—उदात्त यण् तथ स्वरित यण् से उत्तर अनुदात्त के स्थान पर स्वरित आदेश होते हैं।

उदा० (क) उदात्तयणः—

(1) कुमार्यौ

कुमारी औ—यण् होकर रूप बनता है, उदात्तनिवृत्तिस्वर से ईकार उदात्त है, उसके स्थान पर यण् आदेश हुआ है, वह उदात्तयण् है, उससे पर अनुदात्त के स्थान पर स्वरित आदेश होता है।

(ख) स्वरितयणः—

(2) सकृल्ल्व्याशा

सकृल्लू आशा—यण् हुआ, 'सकृल्लू' यह कृत् स्वर से अन्तोदात्त है, इसे 'रोः सुपि' से यण् हुआ, यह उदात्तयण् हुआ, इससे पर सप्तमी एकवचन को स्वरित स्वर होता है। उसके स्थान पर जो यण् होता है, वह स्वरितयण् हुआ, उस स्वरित यण् से उत्तर 'आशा' शब्द के आकार अनुदात्त के स्थान पर स्वरित हुआ।

(3) खलप्वाशा

खलपू आशा—पूर्ववत्।

ननु च०—'सप्तमी एकवचन के स्थान पर जो उदात्त यण् से उत्तर'—उसके स्थान पर स्वरित होता है। तब यणादेश होने पर यह स्वरितयण् किस प्रकार होता है? आश्रय से सिद्धभाव होता है।

यद्येव०—यदि ऐसा है तो 'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः' से इसके आश्रय से सिद्धभाव प्राप्त होता है। तब 'दध्याशा' यहाँ भी स्वरित होता है। इसलिए यह यण् स्वर यणादेश में सिद्ध होता है।

केचित्तु०—कुछ विद्वान् कहते हैं कि उदात्त स्वरितयण् से भी उत्तर अनुदात्त के स्थान पर स्वरित होता है। तैत्तिरीय शाखा में पाठ प्राप्त होता है—

यास्ते विश्वाः समिधः सन्त्यग्ने।

'अग्ने' यह अकार स्वरित पठित है। इसी प्रकार तैत्तिरीय ब्राह्मण ग्रन्थ में भी प्राप्त होता है—

दध्याशयतोत्याकारः स्वरितः पठ्यते।

यथा तु०—जिस प्रकार वार्त्तिक और भाष्य है, उसी प्रकार उदात्त स्वरित यण् से उत्तर अनुदात्त के स्थान पर स्वरित नहीं होता है। भाष्य में 'स्वरित यण्' ग्रहण का प्रत्याख्यान किया जाता है। कारण कि 'सकृल्ल्व्याशा' इत्यादि स्थलों पर 'उदात्तयण् से उत्तर' इस प्रकार स्वरित के स्थान पर सिद्ध है। स्वरित यण् व्यवधान और अव्यवधान—दोनों दशाओं में 'स्वरविधौ व्यञ्जनमविद्यमानवत्' इस प्रकार।

तत्तु०—यह किया जाता है। पूर्व से भी विधि में स्थानिवद्भाव से व्यवधान होता है। स्वर, दीर्घ तथा यलोप—इनमें लोप अजादेश के स्थानिवद्भाव का निषेध किया जाता है।

उदात्त०—उदात्त यण् तथा स्वरित यण् से पर को ही स्वरित होता है।

बैदी आशा—बैद्याशा। शार्ङ्गरव्याशा—यहाँ अनुदात्तयण् आदेश है। अतः स्वरित नहीं हुआ।

अनुदा०—अनुदात्त के स्थान पर स्वरित होता है।

कुमार्यर्त्र, किशोर्यत्र—यहँ लित् स्वर से आद्युदात्त है। अतः स्वरित नहीं हुआ।

(3693) एकादेश उदात्तेनोदात्तः *5* (3658)

उदात्तेन सहानुदात्तस्य य एकादेशः स उदात्तो भवति। 'अनुदात्तस्य' इति वर्तते। अग्नी। वायू। वृक्षैः। प्लक्षैः। उदात्तेनेति किम्? पचन्ति। यजन्ति। लसार्वधातुकानुदात्तत्वे कृते द्वयोरनुदात्तयोरयमेकादेशः, पररूपे कर्तव्ये स्वरितस्यासिद्धत्वात्।

अर्थ—उदात्त के साथ अनुदात्त का जो एकादेश होता है, वह उदात्त होता है। 'अनुदात्तस्य' का अधिकार है।

उदा० (1) अग्नी

अग्नि औ—पूर्वसवर्ण हुआ है। 'औ' अनुदात्त है। 'अग्नि' अन्तोदात्त है। उदात्त के साथ अनुदात्त का एकादेश उदात्त हुआ।

(2) वायू

वायु औ—पूर्ववत्।

(3) वृक्षैः

वृक्ष भिस्—'अतो भिस ऐस्' से 'ऐस्' आदेश, 'वृद्धिरेचि' से एकादेश, यह उदात्त हुआ।

(4) प्लक्षैः

प्लक्ष भिस्—पूर्ववत्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उदात्ते०—उदात्त के साथ अनुदात्त का जो एकादेश, वह उदात्त होता है।

(5) पचन्ति

पच् शप् अन्ति—'झि' को 'झोऽन्तः' से 'अन्त' आदेश, अतो 'गुणे' से पररूप,

पच् अन्ति—यहाँ उदात्त के साथ एकादेश न होने से एकादेश उदात्त नहीं हुआ।

(6) यजन्ति (पूर्ववत्)।

लसार्व०—यहाँ लसार्वधातुक अनुदात्त करने पर दोनों अनुदात्तों का यह एकादेश है। पररूप करने में स्वरित के असिद्ध होने से।

(3694) स्वरितो वाऽनुदात्ते पदादौ *6* (3659)

अनुदात्ते पदादौ उदात्तेन सह य एकादेशः स स्वरितो वा भवत्युदात्तो वा। सु + उत्थितः = सूत्थितः सूत्थितः। वि + ईक्षते = वीक्षते वीक्षते। वसुकः + असि = वसुकोऽसि वसुकोऽसि। सूत्थित इति-सुशब्दः 'सुः पूजायाम्' (1.4.94) इति कर्मप्रवचनीयः, तस्य प्रादित्वात्समासे सति अव्ययपूर्वपदप्रकृतिस्वरत्वेनाद्युदात्तः; शेषमनुदात्तमिति चानुदात्ते पदादावेकादेशो भवति। वीक्षते, वसुकोऽसीति-अत्रापि 'तिङ्ङतिङः' (8.1.27) इति निघाते कृतेऽनुदात्ते पदादावेकादेशः। स्वरितग्रहणं विस्पष्टार्थम्। उदात्ते हि विकल्पिते तस्मिन्नसत्यान्तर्यत एव स्वरितो भविष्यतीति। अनुदात्त इति किम्? देवदत्तोऽत्र। पदादाविति किम्? वृक्षौ। वृक्षाः।

अर्थ—पदादि अनुदात्त परे रहते उदात्त के साथ जो एकादेश, वह विकल्प से स्वरित अथवा उदात्त होता है।

उदा० (1) सूत्थितः

सु उत्थितः—'अकः सवर्णे दीर्घः' से एकादेश।

सूत्थित०—सु शब्द की 'सुः पूजायाम्' से कर्मप्रवचनीयसंज्ञा है। उसके प्रादि होने से समास होने पर अव्यय पूर्वपद प्रकृतिस्वर होने से आद्युदात्त होता है। शेष अनुदात्त है। इस प्रकार पदादि अनुदात्त के परे रहते एकादेश होता है।

वीक्षते०—वि ईक्षते तथा वसुकः असीति—यहाँ पर भी 'तिङ्ङतिङः' से निघात कर देने पर पदादि अनुदात्त के परे रहते एकादेश होता है।

स्वरित०—'स्वरित' का ग्रहण स्पष्टता के लिए है। उदात्त का विकल्प कर देने पर उसके न होने पर आन्तर्यतया स्वरित ही होता है।

अनुदात्त०—अनुदात्त परे रहते ही सूत्रोक्त कार्य होता है।

देवदत्तोऽत्र—यहाँ नहीं हुआ। 'अत्र' शब्द त्रल् प्रत्ययान्त है। लित् स्वर से आद्युदात्त हुआ।

पदादा०—पदादि अनुदात्त परे रहते ही एकादेश विकल्प से उदात्त होता है।

वृक्षौ—वृक्ष औ—यहाँ अनुदात्त परे है, परन्तु वह पदादि नहीं है।

वृक्षाः—वृक्ष अस्—पूर्ववत्।

(3695) नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य *7* (353)

'पदस्य' इति वर्तते। प्रातिपदिकस्य पदस्य योऽन्त्यो नकारस्तस्य लोपो भवति। राजा। राजभ्याम्। राजभिः। राजता। राजतरः। राजतमः। प्रातिपदिकग्रहणं किम्? अहन्नहिम्। अन्तग्रहणं किम्? राजानौ, राजनः। प्रातिपदिकग्रहणमसमस्तमेव 'सुपां सुलुक्' (7.1.38) इति षष्ठ्या लुका निर्दिष्टम्। * अह्नो नलोपप्रतिषेधो वक्तव्यः * (म० भा०)। अहः। अहोभ्याम्। अहोभिः। 'रोऽसुपि' (8.2.69), 'अहन्' (8.2.66)-इति रेफरुत्वयोरसिद्धत्वात् नलोपः प्राप्नोति, सावकाशं तदुभयं सम्बुद्धौ-हेऽहः, हे दीर्घाहो निदाघेति? तत्र समाधिमाहुः-अहन्निति रुविधो यदुपादीयते प्रथमैकवचनान्तमकृतकलोपं तदावर्त्ययते, तत्रैकयाऽऽवृत्त्या तदेव रूपं नलोपाभावार्थमन्वाख्यायते, द्वितीययापि तस्य रुर्विधीयते।

अर्थ—'पदस्य' का अनुवर्त्तन है।

उदा० (1) राजा

राजन् सु—उपधादीर्घ,

राजान् स्—हल्ङ्याब्भ्यो० से लोप,

राजा—नकारलोप।

(2) राजभ्याम्

राजन् भ्याम्—पदसंज्ञा, नकारलोप।

(3) राजभिः

राजन् भिस्—नकारलोप।

(4) राजता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजन् तल्—नकारलोप, टाप्,
राजता—सु।

(5) राजतरः
राजन् तरप्—हलन्त्यम्,
राजतर सु—नलोप।

(6) राजतमः (पूर्ववत्)।

प्रातिप०—प्रातिपदिक के नकार का लोप होता है।

(7) अहन्नहिम्
हन् तिप्—लङ्, 'इतश्च' से इकारलोप, शप् का लुक्,
ह न् त्—हल्ङ्याब्भ्यो०,
अ हन्—अट्, 'सुप्तिङन्तं पदम्' से पदसंज्ञा है, परन्तु प्रातिपदिक न होने से नकारलोप नहीं हुआ।

अन्तग्र०—प्रातिपदिक के अन्त में जो नकार, उसका लोप होता है।

(8) राजानौ
राजन् औ—उपधादीर्घ,
राजान् औ—पदसंज्ञा है, 'राजन्' प्रातिपदिक है; परन्तु नकार अन्त में न होने से इसका लोप नहीं हुआ।

(9) राजानः
राजन् जस्—पूर्ववत्।

प्राति०—उसका 'पदस्य' ऐसा सामानाधिकरण विशेषण है। यदि असमस्त ही प्रातिपदिक ग्रहण है तो षष्ठी के द्वारा श्रवण प्राप्त होता है। 'सुपां सुलुक्०' इसके द्वारा जो षष्ठी के द्वारा लुक् है, उस लुक् के द्वारा प्रातिपदिक ग्रहण निर्दिष्ट है। अतः षष्ठी का प्रसङ्ग नहीं होता है।

अह्नो०—अहन् के नलोप का निषेध होता है।

(10) अहः
अहन् सु—स्वमोर्नपुंस०, नकारलोप का निषेध,
अ ह र्—'रोऽसुपि' से रेफ, विसर्जनीय।

(11) अहोभ्याम्
अहन् भ्याम्—पदसंज्ञा, नलोपनिषेध,
अह उ भ्याम्—'अहन्' से 'रु', 'हशि च' से उत्व,
अहोभ्याम्—आद् गुणः।

(12) अहोभिः
अहन् भिस्—पूर्ववत्।

रोऽसु०—अब शङ्का होती है कि प्राप्तिपूर्वक निषेध हुआ करता है; यहाँ पर तो रेफ तथा रुत्व कर देने पर नकार अभाव से नलोप की प्राप्ति ही नहीं है। तब निषेध कैसा ? रेफ और रुत्व दोनों सावकाश हैं। अतः लोप नहीं होता; अन्यथा इनका विधान व्यर्थ हो जाता है।

'रोऽसुपि' के द्वारा विहित रेफ तथा 'अहन्' के द्वारा विहित 'रु' के असिद्ध होने से नकार प्राप्त होता है। सम्बुद्धि में दोनों सावकाश हैं। यथा—हेऽहः, हे दीर्घाहो निदाघ।

सम्बुद्धि में 'न ङिसम्बुद्ध्योः' से नलोप का निषेध किया जाता है। 'वा नपुंसकानाम्' से पक्ष में नलोप-निषेध होता है। अतः यहाँ रेफादेश सावकाश है। 'हे दीर्घाऽहो निदाघ' यहाँ पुंल्लिङ्ग अन्य पदार्थ में बहुव्रीहि हुआ है। सम्बुद्धि का हल्ङ्यादि लोप हुआ है। लोप होने पर प्रत्ययलक्षण से सुप्परता नहीं है। अतः 'रोऽसुपि' लक्षण प्रवृत्त नहीं होता है। 'अहन्' से रुत्व ही होता है।

तत्र०—'अहन्' इस प्रकार रुत्वविधि में जिसका ग्रहण किया जाता है, उसी का आवर्त्तन होता है—ऐसा कहने में 'अहन्' इस सूत्र के द्वारा केवल रुत्व आदेश का ही विधान नहीं किया जाता; अपितु आवृत्तिन्याय से 'अहन्' इस शब्दस्वरूप का अन्वाख्यान किया जाता है।

'अहन्' इस प्रकार रुत्वविधि में जो प्रथमैकवचनान्त तथा अकृतलोप का ग्रहण किया जाता है, तब उसी का आवर्त्तन होता है। तब एक आवृत्ति के उसी रूप का अन्वाख्यान नलोप के अभाव के लिए किया जाता है। द्वितीय आवृत्ति के द्वारा उसके स्थान पर 'रु' आदेश का विधान किया जाता है।

भाव यह है कि यदि यहाँ 'अहन्' इसके द्वारा आदेशमात्र का विधान किया जाता है तो आदेश सम्बन्ध में षष्ठी होनी चाहिए; प्रथमा नहीं। प्रथमा के द्वारा ग्रहण किया जाता हुआ कृत नकार-लोप का ग्रहण किया जाय, नकारलोप लक्षण के भाव से। ऐसा नहीं किया गया है। अतः प्रथमान्त अकृत नकारलोप का ग्रहण समाप्त होता है। तब 'अहन्' इस स्वरूप का नलोप के अभाव के लिए अन्वाख्यान किया जाता है। ताकि 'नलोपः प्राति०' से नलोप न हो।

(3696) न ङिसम्बुद्ध्योः *8* (352)

ङौ परतः सम्बुद्धौ च नकारलोपो न भवति। आर्द्रे चर्मन् (तै० 7.5.93)। लोहिते चर्मन् (तै० 24.2)।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'सुपां सुलुक्' (7.1.39) इति ङेर्लुक्। सम्बुद्धौ–हे राजन्। हे तक्षन्। एतस्मादेव नलोपप्रतिषेधवचनाद् 'अप्रत्ययः' (1.2.45) इति प्रत्ययलक्षणेन प्रातिपदिकसंज्ञा न प्रतिषिध्यते–इति ज्ञाप्यते; भसंज्ञा च न भवतीति। तथा च–राज्ञः पुरुषो राजपुरुष इत्यत्र नलोपश्च भवति, अल्लोपश्च न भवति। *ङावुत्तरपदे प्रतिषेधस्य प्रतिषेधो वक्तव्यः* (म० भा०)। चर्मणि तिला अस्य चर्मतिलः। हे राजन् वृन्दारक–इत्यत्र समुदायार्थसम्बोधनम्, न पूर्वपदार्थसम्बोधनं प्रतीयत इति सम्बुद्ध्यन्तं पूर्वपदं नैव समस्यते। *वा नपुंसकानामिति वक्तव्यम्* (म० भा०)। हे चर्मन्, हे चर्म।

अर्थ—ङि तथा सम्बुद्धि के परे रहते नकारलोप नहीं होता है।

उदा० (1) चर्मन्

चर्मन् ङि—'सुपां सुलुक्०' से 'ङि' का लुक्,

चर्मन्—'नलोपः प्राति०' से नलोप प्राप्त, निषेध हुआ।

इसी प्रकार—लोहिते चर्मन्।

(2) हे राजन्

हे राजन् सु—'हल्ङ्याब्भ्यो०' से 'सु' का लोप,

हे राजन्—नलोप प्राप्त हुआ, तब निषेध।

एतस्मा०—इस नलोप-निषेधवचन से 'अप्रत्ययः' इस प्रकार प्रत्ययलक्षण से प्रातिपदिक संज्ञा का निषेध नहीं होता है—ऐसा ज्ञापित होता है तथा भसंज्ञा भी नहीं होती। यथा—

राज्ञः पुरुषः—राजपुरुषः। यहाँ नलोप होता है तथा अकार लोप नहीं होता। प्रातिपदिक संज्ञा होने से नकारलोप होता है तथा भसंज्ञा न होने से 'अल्लोपोऽनः' की प्रवृत्ति नहीं होती।

भाव यह है कि यदि प्रत्ययलक्षण से प्रातिपदिक संज्ञा का निषेध होता तो 'न ङिसम्बु०' से नलोप के निषेध की क्या आवश्यकता है? अतः प्रकृत सूत्र के द्वारा विहित नलोप-निषेध व्यर्थ होकर ज्ञापित करता है कि प्रत्ययलक्षण के द्वारा प्रातिपदिक संज्ञा का निषेध नहीं होता है।

इस प्रतिषेध-वचन से दूसरा ज्ञापक सिद्ध होता है कि भसंज्ञा भी नहीं होती है।

ङावुत्तर०—उत्तरपद में 'ङि' परे रहते नलोप-निषेध का निषेध होता है। यथा—

चर्मणि तिला अस्य—चर्मतिलः।

हे राजवृन्दारक—यहाँ समुदायार्थ सम्बोधन है। पूर्वपदार्थ सम्बोधन प्रतीत नहीं होता है। अतः सम्बुद्ध्यन्त पूर्व पद का समास नहीं होता। यहाँ 'हे राजन् हे वृन्दारक' इस प्रकार विग्रह की दशा में 'वृन्दारकनागकुञ्जरैः' से समास करने पर नलोप प्राप्त नहीं था।

वा नपुं०—ङि तथा सम्बुद्धि परे रहते नपुंसक लिङ्गों के नकार का लोप विकल्प से होता है।

(3) हे चर्मन्

हे चर्मन् सु—'चर्मन्' नपुंसक लिङ्ग है,

हे चर्मन्—नलोप नहीं हुआ।

(4) हे चर्म

पक्ष में नलोप हुआ।

(3697) मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः *9* (1897)

मतोरिह कार्यित्वेनोपादानात् सामर्थ्यलब्धं प्रातिपदिकं तत् 'मात्' इति मकारावर्णाभ्यां विशिष्यते। मकारावर्णविशिष्टया चोपधया–इत्ययमर्थो भवति। मकारान्ताद् मकारोपधादवर्णान्तादवर्णोपधाच्चोत्तरस्य मतोः 'व' इत्ययमादेशो भवति, यवादिभ्यस्तु परतो न भवति। मकारान्तात्–किंवान्। शंवान्। मकारोपधात्–शमीवान्। दाडिमीवान्। अवर्णान्तात्–वृक्षवान्। प्लक्षवान्। खट्वावान्। मालावान्। अवर्णोपधात्–पयस्वान्। यशस्वान्। भास्वान्। मादुपधायाश्चेति किम्? अग्निमान्। वायुमान्। अयवादिभ्य इति किम्? यवमान्। दल्मिमान्। ऊर्मिमान्। यव, दल्मि, ऊर्मि, भूमि, कृमि, क्रुञ्च, वशा, दाक्षा–एतेषां 'मादुपधायाश्च' (8.2.9) इति प्राप्नोति। ध्रजि, ध्वजि, सञ्जि–इत्येतेषां 'छन्दसीरः' (8.2.15) इति। हरित्, ककुत्, गरुत्–इत्येतेषां 'झयः' (8.2.10) इति। इक्षु, मधु, द्रुम, मण्ड, धूम–इत्येतेषां 'संज्ञायाम्' (8.2.11) इति। आकृतिगणश्च यवादिः। अकृतवत्वो मतुब् यवादिषु द्रष्टव्यः। यस्य सति निमित्ते मतुपो वत्वं न दृश्यते स यवादिषु द्रष्टव्यः। इह नृमत इदं नार्मतमिति बहिरङ्गलक्षणत्वादवर्णोपधस्य मतुपो वत्वं न भवति।

अर्थ—यहाँ 'मतुप्' का कार्यी के रूप में ग्रहण है। इसके ग्रहण से सामर्थ्यलब्ध प्रातिपदिक 'मात्' (अर्थात् मकार व अकार) से विशेषित होता है। 'मकार तथा अकारविशिष्ट उपधा से' ऐसा अर्थ होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मकारान्त से, मकारोपध से, अवर्णान्त से तथा अवर्णोपध से उत्तर 'मतुप्' के स्थान पर 'व्' आदेश होता है, परन्तु 'यव' आदि से उत्तर को यह आदेश नहीं होता होता है।

मकार व अकारविशिष्ट उपधा के स्थान पर 'व्' आदेश कहा गया है। अतः 'उपधायाश्च' यहाँ न हो। भाव यह है कि उपधासंज्ञक मकार तथा अकार के स्थान पर ही यह आदेश होता है।

उदा० (क) मकारान्तात्—

(1) किंवान्

किमस्याऽस्तीति—इस अर्थ में,

किम् मतुप्—मकारान्त प्रातिपदिक 'किम्' से उत्तर 'मतुप्' के मकार के स्थान पर वकार,

किम् वत्—अनुबन्धलोप,

किंवत् सु—अनुस्वार,

किंवान्—'उगिदचां०' से 'नुम्', हल्ङ्याब्भ्यो०, संयोगान्तस्य लोपः, अत्वसन्तस्य०।

(2) शंवान्

शम् मतुप्—पूर्ववत्।

(ख) मकारोपधात्—

(3) शमीवान्

शमी मतुप्—उपधा में मकार है, वकार आदेश,

शमीवत् सु—विभक्तिकार्य।

(4) दाडिमीवान् (पूर्ववत्)।

(ग) अवर्णान्तात्—

(5) वृक्षवान्

वृक्ष मतुप्—'वृक्ष' प्रातिपदिक के अन्त में अकार है, 'मतुप्' के मकार को वकार हुआ,

वृक्ष वत्—सु।

(6) प्लक्षवान्

प्लक्ष मतुप्—पूर्ववत्।

(7) खट्वावान्

खट्वा मतुप्—प्रातिपदिक 'खट्वा' के अन्त में दीर्घ अवर्ण है, शेष पूर्ववत्।

(8) मालावान्

माला मतुप्—पूर्ववत्।

(घ) अवर्णोपधात्—

(9) पयस्वान्

पयस् मतुप्—अवर्ण उपधा में है, 'मतुप्' के मकार के स्थान पर अकार हुआ।

पयस्वत् सु—पूर्ववत्।

(10) यशस्वान्

यशस् मतुप्—पूर्ववत्।

(11) भास्वान्

भास् मतुप्—उपधा में दीर्घ अवर्ण है, वकार हुआ,

भास् वत् सु—पूर्ववत्।

मादुपधा०—मकारान्त, अकारान्त, मोपध, अवर्णोपध— इनसे उत्तर 'मतुप्' के मकार के स्थान पर वकार होता है।

(12) अग्निमान्

अग्नि मतुप्—'अग्नि' प्रातिपदिक के न तो अन्त में मकार या अवर्ण है; न ही इसकी उपधा में मकार या अवर्ण है। अतः 'मतुप्' के मकार को वकार आदेश नहीं हुआ,

अग्नि मत् सु—अनुबन्ध लोप, विभक्तिकार्य।

(13) वायुमान्

वायु मतुप्—पूर्ववत्।

अयवा०—यव आदि प्रातिपदिकों से उत्तर 'मतुप्' के मकार को वकार नहीं होता है।

(14) यवमान्

यव मतुप्—'यव' अवर्णान्त है, इससे उत्तर 'मतुप्' के मकार को वकार प्राप्त था।

(15) दल्मिमान्

दल्मि मतुप्—उपधा में मकार होने से वकार आदेश प्राप्त था।

(16) ऊर्मिमान्

'दल्मिमान्' की तरह।

यवादि गण मूल में देखें।

यव०—यव, दल्मि, ऊर्मि, भूमि, कृमि, क्रुञ्च वशा तथा द्राक्षा—इन शब्दों को 'मादुपधायाश्च' से वकार प्राप्त था। ध्रजि, ध्वजि, सञ्जि—इन्हें 'छन्दसीरः' से प्राप्त था। हरित्, ककुत् तथा गरुत्—इन शब्दों को 'झयः' से वकार प्राप्त था। इक्षु, मधु, द्रुम्, मण्ड तथा धूम—इन शब्दों को 'संज्ञायाम्' से वकार प्राप्त था। यवादिगण एक आकृतिगण है।

अकृत०—(आकृतिगण कथन का भाव यह है कि) जिस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शब्द से उत्तर 'मतुप्' को मकार को वकार नहीं किया गया है, उसे यवादि गण में जानना चाहिए। जिस शब्द में 'मतुप्' के मकार को वकार आदेश का निमित्त होने पर भी वत्व दृष्टिगोचर नहीं होता है, उसे यवादिगण में जानना चाहिए।

इह०—नृमत इदम्—नार्मतम्—यहाँ बहिरङ्गलक्षण होने से अवर्णोपध के मतुप् को वत्व नहीं होता है।

(17) नार्मतम्
नरोऽस्य सन्ति—इस अर्थ में,
नृमत्—मतुप्,
नृमत् अण्—तस्येदम्,
नार्मत् अ—आदिवृद्धि।

(3698) झयः *10* (1898)

झयन्तादुत्तरस्य मतोः 'व' इत्ययमादेशो भवति। अग्निचित्वान् ग्रामः। उदश्वित्वान्योषः। विद्युत्त्वान्बलाहकः। इन्द्रो मरुत्वान् (आ०श्रौ० 8.16.1)। दृषद्वान् देशः।

अर्थ—झयन्त प्रातिपदिक से उत्तर 'मतुप्' के मकार को वकार होता है।

उदा० (1) अग्निचित्वान्
अग्निचित् मतुप्—अन्त में झय् वर्ण (तकार) है, 'मतुप्' के मकार को वकार हुआ,
अग्निचित्वत् सु—विभक्तिकार्य।

(2) उदश्वित्वान्
पूर्ववत् वत्व।

(3) विद्युत्वान्
विद्युत् मतुप्—पूर्ववत्।

(4) मरुत्वान् (पूर्ववत्)।

(5) दृषद्वान् (पूर्ववत्)।

(3699) संज्ञायाम् *11* (1899)

संज्ञायां विषये मतोः 'व' इत्ययमादेशो भवति। अहीवती। कपीवती। ऋषीवती। मुनीवती।

अर्थ—संज्ञा गम्यमान हो तो 'मतुप्' के मकार के स्थान पर वकार आदेश होता है।

उदा० (1) अहीवती
अहि मतुप्—'नद्यां मतुप्' से 'मतुप्' हुआ तथा 'शरादीनाञ्च' से दीर्घ।

(2) कपीवती
कपि मतुप्—पूर्ववत्।

(3) ऋषीवती
ऋषि मतुप्—पूर्ववत्।

(4) मुनीवती
मुनि मतुप्—पूर्ववत्।

(3700) आसन्दीवदष्ठीवच्चक्रीवत्कक्षीवद्रुमण्वच्चर्मण्वती *12* (1900)

आसन्दीवद्, अष्ठीवत्, चक्रीवत्, कक्षीवत्, रुमण्वत्, चर्मण्वती—इत्येतानि संज्ञायां निपात्यन्ते। षत्वं पूर्वेणैव सिद्धम्, आदेशार्थानि निपातनानि। आसन्दीवदिति—आसनशब्दस्यासन्दीभावो निपात्यते। आसन्दीवान् ग्रामः। आसन्दीवदहिस्थलम्। आसनवानित्येवान्यत्र। अपरे त्वाहुः—आसन्दीशब्दोऽपि प्रकृत्यन्तरमेवास्ति। तथा चोक्तम्—अदुम्बरी राजासन्दी भवतीति, तस्य 'संज्ञायाम्' (8.2.11) इति वत्वेन सिद्धम्, आसन्दीवदित्येतत्प्रपञ्चार्थमिह पठ्यते। अष्ठीवदिति—अस्थ्नोऽष्ठीभावः। अष्ठीवानिति शरीरैकदेशसंज्ञा। अस्थिमानित्येवान्यत्र। चक्रीवदिति—चक्रशब्दस्य चक्रीभावो निपात्यते। चक्रीवान् राजा। चक्रवानित्येवान्यत्र। 'चक्रीवन्ति सदोहविर्धानानि भवन्ति'—(कात्या० श्रौ० सू० 24.3.26) इत्येतत्तु छान्दसत्वाद् अनुगन्तव्यम्। कक्षीवदिति—कक्ष्यायाः सम्प्रसारणं निपात्यते। कक्षीवान्नाम ऋषिः। कक्ष्यावानित्येवान्यत्र। रुमण्वदिति—लवणशब्दस्य रुमण्भावो निपात्यते। लवणवानित्येवान्यत्र। अपरे त्वाहुः—रुमन्निति प्रकृत्यन्तरमस्ति, तस्यैतन्निपातनं नलोपाभावार्थम्, णत्वार्थं च। मतोर्वा नुडर्थमिति। चर्मण्वतीति—चर्मणो नलोपाभावः, णत्वं च निपात्यते। मतोर्वा नुडर्थम्। चर्मण्वती नाम नदी। चर्मवतीत्येवान्यत्र।

अर्थ—संज्ञा के विषय में आसन्दीवत्, अष्ठीवत्, चक्रीवत्, कक्षीवत्, रुमण्वत् तथा चर्मण्वती—ये शब्द निपातनसिद्ध हैं।

वत्व तो पूर्व सूत्र से ही सिद्ध है। निपातन आदेश के लिए किया है।

आस०—आसन्दीवत्—'आसन' शब्द को 'आसन्दी' आदेश निपातन से होता है। अन्यत्र 'आसनवान्' होता है।

अपरे०—दूसरे विद्वान् कहते हैं कि 'आसन्दी' अन्य प्रकृति है। उसको वकार आदेश संज्ञा में सिद्ध ही है। कुछ 'आसन्दीवत्' का पाठ प्रपञ्च के लिए स्वीकार करते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अष्ठी०—अष्ठीवत्—अस्थि शब्द के स्थान पर 'अष्ठी' आदेश होता है। 'अष्ठीवान्' यह शरीर के एक भाग की संज्ञा है।

चक्री०—चक्रीवत्—'चक्र' शब्द के स्थान पर 'चक्री' आदेश होता है; अन्यत्र 'चक्रवान्' होता है। 'चक्रीवन्ति' इत्यादि प्रयोग छान्दस होने से साधु हैं।

कक्षी०—कक्षीवत्—'कक्ष्या' शब्द को निपातन से सम्प्रसारण होता है; अन्यत्र 'कक्ष्यावान्' बनता है।

रुमण्वत्—'लवण' शब्द के स्थान पर 'रुमण्' आदेश होता है।

संज्ञा से अतिरिक्त 'लवणवान्' होता है।

अपरे०—अन्य विद्वान् कहते हैं कि 'रुमन्' एक प्रकृति है। उसे निपातन से नलोप नहीं होता है तथ णत्व होता है। यहाँ 'पदान्तस्य' से णत्व-निषेध प्राप्त था।

मतोर्वा०—यहाँ एक अन्य मत भी प्रदर्शित किया है। इसके अनुसार 'रुमन्' प्रकृति को न तो नलोप अभाव की आवश्यकता है; न ही णत्व की। अपितु निपातन से 'मतुप्' को 'नुट्' आगम होता है। टित् होने से यह 'मतुप्' का आदि अवयव होता है। तब 'रुमन्' न् मत्' इस दशा में 'नलोपः प्राति०' से प्रथम नकार का लोप हुआ, तब द्वितीय नकार के पदान्त में न रहने से इसे णत्व निर्बाध हो जाता है।

चर्मण्व०—चर्मण्वती—यहाँ नलोप का निषेध तथा णत्व—ये दो कार्य निपातन से होते हैं अथवा पूर्ववत् 'मतुप्' को 'नुट्' आगम होता है। संज्ञा से अन्यत्र 'चर्मवती' होता है।

उदा० (1) आसन्दीवान्, (2) आसनवान्। (3) अष्टीवान्, (4) अस्थिमान्। (5) चक्रीवान्, (6) चक्रवान्। (7) कक्षीवान्, (8) कक्ष्यावान्। (9) रुमण्वान्, (10) लवणवान्। (11) चर्मण्वती, (12) चर्मवती।

(3701) उदन्वानुदधौ च *13* (1901)

'उदन्वान्' इत्युदकशब्दस्य मतावुदन्भावो निपात्यते उदधावर्थे संज्ञायां च विषये। उदन्वान्नाम ऋषिः, यस्यौदन्वतः पुत्रः। उदधौ–उदन्वान्। यस्मिन्नुदकं धीयते स एवमुच्यते। उदधाविति किम्? उदकवान् घट इत्यत्र तु दधात्यर्थो न विवक्ष्यते, किं तर्हि? उदकसत्तासम्बन्धसामान्यम्।

अर्थ—संज्ञा के विषय में 'उदधि' अर्थ गम्यमान रहते 'उदन्वान्' शब्द निपातनसिद्ध है। 'मतुप' परे रहते 'उदक' शब्द को 'उदन्' आदेश होता है।

उदन्वान् नाम ऋषि था। उसका पुत्र 'औदन्वत' था।

उदा० (1) उदन्वान्
उदकं धीयतेऽस्मिन्—अधिकरण अर्थ,
उदक मतुप्—'उदन्' आदेश, वत्व।

(2) औदन्वतः
उदन्वतोऽपत्यम्—'तस्याऽपत्यम्' से 'अण्',
औदन्वत् अ—आदिवृद्धि, सु।

उदधा०—उदधि अर्थ में ही 'उदन्वान्' होता है।

(3) उदकवान् घटः
यहाँ 'उदधि' अर्थ नहीं है। 'उदन्' आदेश नहीं हुआ।

(3702) राजन्वान्सौराज्ये *14* (1902)

'राजन्वान्' इति निपात्यते सौराज्ये गम्यमाने। शोभनो राजा यस्मिन्निति स राजन्वान् देशः। राजवन्ती पृथ्वी। राजवानित्येवान्यत्र।

अर्थ—'सौराज्य' गम्यमान रहते 'राजन्वान्' शब्द निपातनसिद्ध है।

उदा० (1) राजन्वान्
शोभनो राजा यस्मिन्—नकारलोप का अभाव निपातन से हुआ,
राजन् वत् सु—वत्व, विभक्तिकार्य।

(2) राजन्वती पृथिवी
राजन्वत्—पूर्ववत्,
राजन्वत् ङीप्—'उगितश्च' से 'ङीप्'।

(3703) छन्दसीरः *15* (3600)

छन्दसि विषये इवर्णान्ताद्रेफान्ताच्चोत्तरस्य मतोर्वत्वं भवति। (काठ० 11.1) इवर्णान्तात्तावत्–'त्रिवती याज्यानुवाक्या भवति'। 'हरिवो मे॒दिं॑नं त्वा।' (तै०सं० 4.7.14.4) 'अधिपतिवती जुहोति।' 'चरुरग्निवानिव।' आरेवानेतु मा विशत्। 'रयेर्मतौ' (का०वास०) इति सम्प्रसारणम्। 'सर॒स्वती॒वान् भा॑रती॒वान्' (मै० 3.10.6) दधीवाँश्चरुः। 'छन्दसि सर्वे विधयो विकल्प्यन्ते' (पु०प० 35) इतीह न भवति–सप्तर्षिमन्तम्, ऋषिमान्, ऋतीमान्, सूर्यं ते द्यावापृथिवीमन्तमिति। रेफान्तात्–गोर्वान्। धूर्वान्। आशीर्वान्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—वेद के विषय में इवर्णान्त तथा रेफान्त प्रातिपदिक से उत्तर 'मतुप्' के मकार के स्थान पर वकार होता है।

उदा० (क) इवर्णान्तात्—

(1) त्रिवती
त्रि मतुप्—वत्व हुआ,
त्रिवत् ङीप् सु—विभक्तिकार्य।

(2) हरिवः
'न मु ने' सूत्र पर सिद्धि देखें।

(3) अधिपतिवतः
अधिपति मतुप्—वकार आदेश।

(4) अग्निवान्
अग्नि मतुप्—पूर्ववत्।

(5) रेवान्
रयि मतुप्—'रयेर्मतौ बहुलम्' से सम्प्रसारण,
र इ इ मत्—सम्प्रसारणाच्च,
रे मत्—आद् गुणः, वत्व, विभक्तिकार्य।

(6) सरस्वतीवान्
पूर्ववत् वकार।

(7) भारतीवान् (पूर्ववत्)।

(8) दधीवान् (पूर्ववत्)।

छन्दसि०—वेद में सभी विधियाँ विकल्प से प्रवृत्त होती हैं। अतः निम्नलिखित स्थलों पर वत्व नहीं होता है—

(9) सप्तर्षिमन्तम्, (10) ऋषिमान्, (11) ऋतीमान्, (12) द्यावापृथिवीमन्तम्।

(ख) रेफान्तात्—

(13) गीर्वान्
गृ क्विप्—
गिर्—सर्वापहारलोप, 'ऋत इद्धातोः' से इकार, 'उरण् रपरः' से रपर,
गिर् मतुप्—वत्व, दीर्घ,
गीर् वत्—सु।

(14) धूर्वान्
धुर्व् क्विप्—पूर्ववत्, 'क्विप्' का सर्वापहारलोप,
धुर्—'राल्लोपः' से वकारलोप,
धुर् मतुप्—पूर्ववत् वत्व, दीर्घ।

(15) आशीर्वान्
आ शास् क्विप्—सर्वापहारलोप,
आ शिस्—शास इदङ्हलोः, आशासः क्वावुपसङ्ख्यानम् (वा०),
आशिस् मतुप्—ससजुषो रु, वत्व,
आशीर् वत् सु—दीर्घादेश।

(3704) अनो नुट् *16* (3601)

'छन्दसि' इति वर्तते। अनन्तादुत्तरस्य मतोर्नुडागमो भवति छन्दसि विषये। 'अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायः।' (ऋ० 10.71.7) 'अस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति।' (ऋ० 1.164.4) अक्षण्वता लाङ्गलेन। शीर्षण्वती (अ०वे० 10.1.2)। मूर्धन्वती (तै० 2.6.2.2)। नुटोऽसिद्धत्वात्तस्य च वत्वं न भवति, ततः परस्य च भवति।

अर्थ—'छन्दसि' की अनुवृत्ति है। वेद के विषय में 'अन्' अन्त वाले प्रातिपदिक से उत्तर 'मतुप्' प्रत्यय को 'नुट्' आगम होता है।

उदा० (1) अक्षण्वन्तः
अक्षन् मतुप्—'छन्दस्यपि दृश्यते' से 'अनङ्',
अक्ष न् मत्—'नलोपः प्राति०' से नलोप, नुट् आगम,
अक्षण् वत्—णत्व, वत्व, जस्।

(2) अस्थन्वन्तम्
अस्थि—पूर्ववत् 'अनङ्' आदेश,
अस्थन् मतुप्—णत्व को छोड़कर शेष सभी कार्य पूर्ववत्।

(3) शीर्षण्वती
शीर्षन् नुट् मतुप्—'शीर्षश्छन्दसि' से निपातन, नुट्, णत्व आदि, शेष कार्य पूर्ववत्।

(4) मूर्धन्वती (पूर्ववत्)।

नुटो०—'अक्षन् न् मतुप्' इत्यादि स्थलों पर प्रथम नकार का लोप होकर 'अक्ष नमत्' यह स्थिति बनती है। अब शङ्का होती है कि 'मादुपधायाश्च०' सूत्र से विहित वत्व आदेश अव्यवहित नकार के स्थान पर होना चाहिए, न कि मकार के स्थान पर।

(समा०) 'अनो नुट्' (8.2.16) से विहित 'नुट्' आगम 'मादुपधायाश्च०' (8.2.9) की दृष्टि में असिद्ध है। अतः वकार आदेश मकार के स्थान पर ही होता है।

(3705) नाद् घस्य *17* (3602)

नकारान्तादुत्तरस्य घसञ्ज्ञकस्य नुडागमो भवति छन्दसि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषये। सुपथिन्तरः। दस्युहन्तमः। * भूरिदाव्नस्तुड् वक्तव्यः * (म० भा०)। * भूरिदावत्तरः * (ऋ० 8.5.39)। * ईद्रथिनः * (म० भा०)। रथिन ईकारान्तादेशो घ परतः। रथीतरः (ऋ० 1.84.5)। रथशब्दादेव वा मत्वर्थीयोऽयमीकारः 'छन्दसीवनिपौ' इति।

अर्थ—नकारान्त प्रातिपदिक से उत्तर जो घसंज्ञक प्रत्यय, उसे 'नुट्' आगम होता है, वेद के विषय में।

'तरप्तमपौ घः' से घसंज्ञा होती है।

उदा० (1) सुपथिन्तरः

शोभनः पन्थाः—प्रादि समास, 'न पूजनात्०' से निषेध होने से 'ऋक्पूरब्धूः०' से समासान्त भी नहीं होता है,

सुपथिन् तरप्—'नुट्' हुआ,

सुपथिन् तरप्—प्रथम नकार का लोप, सु।

(2) दस्युहन्तमः

दस्युं हतवान्—इस अर्थ में 'क्विप्' हुआ,

दस्युहन् तमप्—पूर्ववत्।

भूरिदा०—भूरिदावन् शब्द से उत्तर घसंज्ञक प्रत्यय को 'तुट्' आगम होता है।

(3) भूरिदावत्तरः

भूरिदावन् तरप्—'तुट्', नकारलोप,

भूरिदाव त् तर सु—विभक्तिकार्य।

ईद्रथिन०—घसंज्ञक प्रत्यय परे रहते 'रथिन्' शब्द को ईकार आदेश होता है।

(4) रथीतरः

रथिन् तरप् → रथि ई तर सु।

रथश०—अथवा यह 'रथ' शब्द से 'छन्दसी वनिपौ' से मत्वर्थीय ईकार हुआ है।

(3706) कृपो रो लः *18* (2350)

कृपेर्धातो रेफस्य लकारादेशो भवति। 'रः' इति श्रुतिसामान्यमुपादीयते। तेन यः केवलो रेफो यश्च ऋकारः, तयोर्द्वयोरपि ग्रहणम्। 'लः' इत्यपि सामान्यमेव; ततोऽयं केवलस्य रेफस्य स्थाने लकारादेशो विधीयते। ऋकारस्याप्येकदेशविकारद्वारेण लृकारः। एवं च 'लुटि च क्लृपः' (1.3.93) इत्येवमादयो निर्देशा उपपद्यन्ते। कल्प्ता, कल्प्तारौ, कल्प्तारः। क्लृप्तः। क्लृप्तवान्। कृपा इत्येतत् 'क्रपेः सम्प्रसारणं च' (ग०सू०36) इति भिदादिषु पाठाद्भवति, तस्य हि कृतसम्प्रसारणस्य लाक्षणिकत्वात् इह कृप इति ग्रहणं नास्ति। कृपण-कृपीटकर्पूरादयोऽपि क्रपेरेव द्रष्टव्याः। 'उणादयो बहुलम्' (3.3.1) इति वा कृपेरेव लत्वाभावः। * बालमूल-लघ्वसुरालमङ्गुलीनां वा रो लमापद्यत इति वक्तव्यम् * (म० भा०)। बालुः बारः। मूलम्, मूरम्। लघु, रघु। असुरः, असुलः। अलम्, अरम्। अङ्गुलिः, अङ्गुरिः। * कपिलकादीनां संज्ञाछन्दसोर्वा रो लमापद्यत इति वक्तव्यम् * (म० भा०)। कपिरकः, कपिलकः। तिल्पिलीकम्, तिर्पिरीकम्। लोमानि, रोमाणि। पांशुरम्, पांशुलम्। कर्म, कल्म। शुक्रः, शुक्लः। रलयोरेकत्वस्मरणमिति केचित्। किमिदमेकत्वस्मरणमिति? समानविषयत्वमेव तयोः स्मर्यत इत्यर्थः।

अर्थ—'कृप्' धातु के रेफ के स्थान पर लकार आदेश होता है। 'र' यह श्रुतिसामान्य गृहीत है। अतः जो केवल रेफ तथा जो ऋकार, उन दोनों का यहाँ ग्रहण होता है। 'ल' यह भी सामान्य रूप से गृहीत है। तब यह केवल रेफ के स्थान पर लकार आदेश का विधान किया जाता है।

ऋकार०—ऋकार के स्थान पर भी एकदेश विकार के द्वारा लृकार होता है। इस प्रकार 'लुटि च क्लृपः' इत्यादि निर्देश उपपन्न होते हैं।

उदा० (1) कल्प्ता

कृप् तिप्—लुट्,

कृप् तास् डा—लुटः प्रथमस्य०, स्यतासी०,

कल्प् त् आ—टिलोप, गुण, लत्व।

यह रूप 'तृच्' प्रत्यय में भी बनता है।

(2) कल्प्तारौ

कृप् तस्—'रौ' आदेश, शेष पूर्ववत्।

(3) कल्प्तारः

कृप् झि—'रस्' आदेश, शेष पूर्ववत्।

(4) क्लृप्तः

कृप् क्त सु—लत्व।

(5) क्लृप्तवान्

क्तवतु में रूप बनता है।

कृपा०—'कृपा' यहाँ 'क्रपेः सम्प्रसारणं च' से भिदादिगण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

में पाठ होने से होता है। सम्प्रसारण कर देने पर उसके लाक्षणिक होने से यहाँ उस 'कृप्' का ग्रहण नहीं होता।

कृपण०—कृपण, कृपीट, कर्पूर आदि शब्द 'क्रप्' से ही निष्पन्न हैं अथवा 'उणादयो बहुलम्' से 'कृप्' को लत्व का अभाव हुआ है। यथा—

(6) कृपणः
कृप् क्वुन्—बहुलवचनात् लत्वाऽभाव।
कृपण सु—णत्व।

(7) कृपीटः
कृप् कीटन्—'कृतृकृपिभ्यः कीटन्' से 'कीटन्',
कृप् ईट सु—अनुबन्धलोप।

(8) कर्पूरः
कृप् ऊर—खर्जिपिञ्जादिभ्य ऊरोलचौ,
कर्प् ऊर सु—गुण।

बाल०—बाल, मूल, लघु, असुर, अलम् तथा अङ्गुलि—इन शब्दों के रेफ के स्थान पर विकल्प से लत्व होता है।

(9) बालः (लत्व पक्ष)।
(10) बारः (लत्व अभाव पक्ष)।
(11) मूलम् (लत्व)।
(12) मूरम् (लत्व अभाव)।
(13) लघु (लत्व)।
(14) रघु (लत्व अभाव)।
(15) असुरः (लत्व अभाव)।
(16) असुलः (लत्व)।
(17) अलम् (लत्व)।
(18) अरम् (लत्व अभाव)।
(19) अङ्गुलिः (लत्व)।
(20) अङ्गुरिः (लत्व अभाव)।

कपिलका०—संज्ञा तथा वेद के विषय में कपिलक आदि शब्दों के रेफ के स्थान पर विकल्प से लत्व होता है।

(21) कपिरकः (लत्व अभाव)
(22) कपिलकः (लत्व)।
(23) तिल्पिलीकम् (लत्व)।
(24) तिर्पिलीकम् (लत्व अभाव)।
(25) लोमानि (लत्व)।
(26) रोमाणि (लत्व अभाव)।
(27) पांशुरम् (लत्व अभाव)।
(28) पांशुलम् (लत्व)।
(29) कर्म (लत्व अभाव)।
(30) कल्म (लत्व)।
(31) शुक्रः (लत्व अभाव)।
(32) शुक्लः (लत्व)।

रलयो०—कुछ विद्वान् इसे रेफ व लकार का अभेद स्वीकार करते हैं। यह अभेद क्या है ? रेफ और लकार का समान विषय होना अभेद है।

(3707) उपसर्गस्यायतौ *19* (2326)

अयतौ परत उपसर्गस्य यो रेफस्तस्य लकार आदेशो भवति। प्लायते। पलायते। अत्र योऽयमेकादेशः, तस्य स्थानिवद्भावादयतेः, उपसर्गस्य च विभागे सति यद्ययतिग्रहणं रेफस्य विशेषणम्, तदा 'येन नाव्यवधानं तेन व्यवहितेऽपि वचनप्रामाण्यात्' (व्या०प०) इति एकेन वर्णेन व्यवधानेऽपि सति लत्वं भवति। तथा च पल्ययते इत्यत्रापि भवति। उपसर्गविशेषणे त्वयतिग्रहणे सिद्धमेवैतत्सर्वं प्रतेरपि तु व्यवहितेऽपि प्राप्नोति। तत्र केषाञ्चिद्दर्शनं भवितव्यमेव प्लत्ययत इति। प्रथमपक्षदर्शनाभिनिविष्टास्तु प्रत्ययत इत्येव भवतीति मन्यन्ते। अपरे तु प्रतिशब्दोपसृष्टस्यायतेः प्रयोगमेव नेच्छन्ति। निस्, दुस्-इत्येतयोस्तु रुत्वस्यासिद्धत्वाल्लत्वेन नैव भवितव्यम्। निरयणम्। दुरयणम्।

अर्थ—अय् धातु के परे रहते उपसर्ग का जो रेफ, उसके स्थान पर लकार होता है।

उदा० (1) प्लायते
प्र अयते—इस दशा में लत्व, सवर्णदीर्घ।

(2) पलायते
परा अयते—पूर्ववत्।

अत्र०—यहाँ दो पक्ष सम्भव हैं—

(क) प्रथम पक्ष—अयति ग्रहण रेफ का विशेषण होता है,

(ख) द्वितीय पक्ष—अयति ग्रहण उपसर्ग का विशेषण होता है।

प्रथम पक्ष के अनुसार सूत्रार्थ इस प्रकार होता है—

अय् धातु के परे रहते जो रेफ उपसर्ग में स्थित, उसके स्थान पर लकार आदेश होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

द्वितीय पक्ष के अनुसार सूत्रार्थ इस प्रकार होता है—

अय् धातु के परे रहते जो उपसर्ग, उस उपसर्ग का जो रेफ, उसके स्थान पर लकार आदेश होता है।

(शङ्का) प्रथम पक्ष के अनुसार प्लायते तथा परायते—इन स्थलों पर लत्व नहीं हो सकेगा। उसके करने में 'अचः परस्मिन् पूर्वविधौ' से स्थानिवद्भाव होना चाहिए। तब प्रकृति तथा उपसर्ग का विभाग होने पर अवर्ण का व्यवधान होने से रेफ से अय् धातु की परता सम्भव नहीं है।

(समा०) यहाँ पर जो एकादेश है, उसके स्थानिवद्भाव से अय् धातु तथा उपसर्ग का विभाग होने पर जब अय् धातु को रेफ का विशेषण स्वीकार करते हैं, तब जिसके द्वारा अव्यवधान नहीं है, उसके द्वारा व्यवधान होने पर भी वचनप्रामाण्य से एक वर्ण का व्यवधान होने पर भी लकार आदेश होता है। तब निम्नलिखित में लत्व होता है—

(3) पल्ययते
परि अयते—यण्, लत्व।

उपसर्ग०—उपसर्ग विशेषण पक्ष में यह सब सिद्ध ही है। तब 'प्रति' के रेफ को व्यवधान होने पर भी लकार प्राप्त होता है। यहाँ कुछ विद्वानों का मत होना चाहिए। यथा—

(4) प्लत्ययते
प्रति अयते—यण्, लत्व।

प्रथम०—प्रथम पक्ष के समर्थक विद्वान् यहाँ लत्व आदेश, स्वीकार नहीं करते। वे 'प्रत्ययते ही होता है' ऐसा मानते हैं।

निस्०—निस् तथा दुस्—इनके सकार के स्थान पर 'ससजुषो रुः' से 'रु' होता है। इस 'रु' आदेश के असिद्ध होने से लत्व नहीं होना चाहिए। यथा—

(5) निरयणम्
निस् अयन → निर् अयन सु—णत्व।

(6) दुरयणम्
दुस् अयन्—पूर्ववत्।

(3708) ग्रो यङि *20* (2639)

'गृ' इत्येतस्य धातो रेफस्य लकार आदेशो भवति यङि परतः। निजेगिल्यते, निजेगिल्येते, निजेगिल्यन्ते। भावगर्हायां ग्रो यङ्विहितः। केचित्–'ग्रः' इति गिरतेर्गृणातेश्च सामान्येन ग्रहणमिच्छन्ति। अपरे तु गिरतेरेव न गृणातेः। गृणातेर्हि यङेव नास्ति; अनभिधानादिति। यङीति किम्? निगीर्यते।

अर्थ—'गृ' इस धातु के रेफ के स्थान पर लकार होता है, यङ् परे रहते।

उदा० (1) निजेगिल्यते
गृ यङ्—'ऋत इद्धातोः' से इत्त्व, उरण् रपरः,
गिर् य—सन्यङोः,
गिर् गिर् य—हलादिः शेषः,
गि गिर् य—कुहोश्चुः,
जे गिर् य—गुणो यङ्लुकोः,
निजेगिल्यते—लत्व, धातुसंज्ञा, शप्, अतो गुणे।

(2) निजेगिल्येते
'आताम्' में रूप बनता है।

(3) निजगिल्यन्ते
'झ' में रूप बनता है।

भावगर्हा०—भावगर्हा अर्थ में गृ धातु से 'यङ्' विहित है।

केचित्०—कुछ विद्वान् 'ग्र' पद के द्वारा तौदादिक गृ तथा क्रैयादिक गृ दोनों का ग्रहण चाहते हैं। अन्य विद्वान् तौदादिक गृ धातु का ग्रहण स्वीकार करते हैं तथा क्रैयादिक धातु का नहीं। अभिधान न होने से क्रैयादिक 'गृ' धातु से यङ् होता ही नहीं है।

यङी०—यङ् परे रहते ही 'गृ' धातु के रेफ को लकार होता है।

(4) निगीर्यते
गृ यक् त—कर्मवाच्य, 'त', सार्वधातुके यक्,
गिर् यत—इकार, रपरत्व,
निगीर्यते—दीर्घ, लत्व नहीं हुआ।

(3709) अचि विभाषा *21* (2541)

अजादौ प्रत्यये परतो ग्रो रेफस्य विभाषा लकारादेशो भवति। निगिरति, निगिलति। निगरणम्, निगलनम्। निगारकः, निगालकः। इयं तु व्यवस्थितविभाषा। तेन 'गल' इति प्राण्यङ्गे नित्यं लत्वं भवति; 'गर' इति विषे नित्यं न भवति। निगार्यते, निगाल्यत इति। णिलोपस्य स्थानिवद्भावाद् 'अचि विभाषा' इति लत्वविकल्पः। 'पूर्वत्रासिद्धे न स्थानिवत्' (पु०वृ० 112) इति एतदपि सापवादमेव; 'तस्य दोषः संयोगादिलोपलत्वणत्वेषु' (म०

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भा०) इति। अन्तरङ्गत्वाद्वा कृते लत्वविकल्पे णिलोपो भविष्यति। गिरौ, गिर इत्यत्र 'धातोः स्वरूपग्रहणे तत्प्रत्यये कार्यविज्ञानम्' इति लत्वं न भवति। गिरतिर्वा लत्वविधावधिकृतः; गृणातेरेतद्रूपम्।

अर्थ—गृ धातु के रेफ के स्थान पर लकार आदेश विकल्प से होता है, अजादि प्रत्यय परे रहते।

उदा० (1) निगिलति
नि गिरति—लत्व हुआ।

(2) निगिरति
लत्व का अभाव।

(3) निगलनम्
नि गृ ल्युट्—युवोरनाकौ,
नि गर् अन—लत्व, णत्व, सु।

(4) निगरणम्
लत्व का अभाव।

(5) निगालकः
नि गृ ण्वुल्—चुटू, हलन्त्यम्, युवोरनाकौ,
नि गृ अक—अचो ञ्णिति, उरण् रपरः,
नि गार् अक—लत्व, सु।

(6) निगारकः
लत्व का अभाव।

इयं तु०—यह व्यवस्थित विभाषा है। अतः 'प्राणी का अङ्ग' अर्थ में 'गल' में नित्य लत्व होता है तथा विष अर्थ में 'गर' में नित्य लत्व का अभाव होता है। निम्नलिखित में णिलोप का स्थानिवद्भाव होने से 'अचि विभाषा' से लत्व का विकल्प होता है।

(7) निगाल्यते
नि गृ णिच्—हेतुमति च, अनुबन्धलोप,
नि गार् इ—वृद्धि, धातुसंज्ञा,
निगार् य त—कर्मवाच्य, सार्वधातुके यक्, णिलोप, अब अजादि (णि) का स्थानिवद्भाव हुआ, प्रकृत सूत्र से लत्व हुआ,
निगाल् य ते—टित आत्मनेपदानां०।

(8) निगार्यते
पक्ष में लत्व नहीं हुआ।

(9) गलः
व्यवस्थित विभाषा होने से प्राण्यङ्ग अर्थ में नित्य लत्व।

(10) गरः
विष अर्थ में नित्य लत्व अभाव।

पूर्वत्रा०—'पूर्वत्राऽसिद्धे न स्थानिवत्' से यह भी सापवाद ही होता है 'तस्य दोषः संयोगादिलोपलत्वणत्वेषु' से। अथवा अन्तरङ्ग होने से लत्व का विकल्प करने पर णिलोप हो जायेगा। गिरौ तथा गिरः—इन स्थलों पर 'धातोः स्वरूपग्रहणे तत्प्रत्यये कार्यविज्ञानम्' से लत्व नहीं होता है। अथवा 'गिरति' यह लत्व विधि में अधिक है। यह क्रैयादिक 'गृ' का रूप है।

(3710) परेश्च घाङ्कयोः *22* (3262)

परि इत्येतस्य यो रेफस्तस्य घशब्देऽङ्कशब्दे च परतो विभाषा लकार आदेशो भवति। परिघः, पलिघः। पर्यङ्कः, पल्यङ्कः। घ इति स्वरूपग्रहणमत्रेष्यते, न तरप्तमपौ इति। * योगे चेति वक्तव्यम् * (म०भा०)। परियोगः, पलियोगः।

अर्थ—'परि' इस शब्द का जो रेफ, उसके स्थान पर लकार आदेश विकल्प से होता है, घशब्द तथा अङ्क शब्द परे रहते।

उदा० (1) परिघः
परि हन् अप्—हकारलोप, घकार-निपातन से;
परि घ् अ—सु, लत्व अभाव पक्ष।

(2) पलिघः
लत्व पक्ष।

(3) पर्यङ्कः
परि अङ्क् अच्—पचादिलक्षण अच् अथवा 'हलश्च' से 'घञ्', पर्यङ्क सु—यण्, लत्व अभाव पक्ष।

(4) पल्यङ्कः
लत्व पक्ष।

घ इति०—'तरप्तमपौ घः' से तरप् तथा तमप् की भी घसंज्ञा होती है। 'स्वं रूपं शब्दस्य०' से स्वरूपग्रहण का निषेध होता है। अतः घरूप में ही लत्व का उदाहरण क्यों दिया जा रहा है। ऐसा माना जाता है कि 'अङ्क' इससे असंज्ञा शब्द के साहचर्य से 'घ' इस असंज्ञा शब्द का ही ग्रहण होता है। अतः 'घ' के द्वारा यहाँ स्वरूप का ग्रहण होता है; तरप् व तमप् का नहीं।

योगे०—'योग' शब्द परे रहते 'परि' के रेफ का विकल्प से लत्व होता है।

(5) परियोगः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लत्व का अभाव।

(6) पलियोगः

लत्व।

(3711) संयोगान्तस्य लोपः *23* (54)

संयोगान्तस्य पदस्य लोपो भवति। गोमान्। यवमान्। कृतवान्। हृतवान्। इह श्रेयान्, भूयान्—इति रुत्वं परमप्यसिद्धत्वात् संयोगान्तस्य लोपं न बाधते। जश्त्वे तु नाप्राप्ते तदारभ्यत इति तस्य बाधकं भवति–यशः, पय इति। दध्यत्र, मध्वत्र–इत्यत्र तु यणादेशस्य बहिरङ्ग-लक्षणस्यासिद्धत्वात् संयोगान्तलोपो न भवति।

अर्थ—संयोगान्त पद का लोप होता है।

अलोऽन्त्य परिभाषा से संयोगसंज्ञक के अन्त्य अल् का लोप होता है।

उदा० (1) गोमान्

गो मतुप्—अनुबन्धलोप,

गोमन् त् सु—नुम्, हल्ङ्यादि लोप, संयोगान्तलोप,

गोमान् त्—'अत्वसन्तस्य०' से उपधादीर्घ।

(2) यवमान्

यव मतुप्—पूर्ववत्।

(3) कृतवान्

कृतवत्—पूर्ववत्।

(4) हृतवान्

हृ क्तवतु—पूर्ववत्।

श्रेयान्०—श्रेयान् तथा भूयान्—इन स्थलों पर रुत्व परकार्य है; परन्तु उसके असिद्ध होने से यह संयोगान्त लोप का बाध नहीं करता है।

(5) श्रेयान्

प्रशस्य ईयसुन्—प्रशस्यस्य श्रः,

श्र ईयस्—अनुबन्धलोप, आद्गुणः,

श्रेयस् सु—हल्ङ्यादिलोप,

श्रेयन् स्—नुम्, 'ससजुषो रुः' (8.2.66) से रुत्व तथा 'संयोगान्तस्य लोपः' (8.2.23) से संयोगान्त लोप युगपत् प्राप्त होते हैं। परकार्य होने से रुत्व प्रथम प्राप्त होता है, परन्तु इसके असिद्ध होने से संयोगान्त लोप होता है,

श्रेयान्—उपधादीर्घ।

(6) भूयान्

बहु ईयसुन्—बहोर्लोपो भू च बहोः,

भू यस्—ईकारलोप, 'भू' आदेश,

भूयस् सु—पूर्ववत्।

जश्त्वे०—जश्त्व में अप्राप्त न रहने पर यह विधान है। अतः रुत्व जश्त्व का बाधक होता है। भाव यह है कि पर रुत्व के असिद्ध होने से यदि रुत्व संयोगान्त लोप का बाधक नहीं होता तो यह जश्त्व का भी बाधक नहीं होना चाहिए। तब 'यशः' आदि स्थलों पर जश्त्व ही होना चाहिए; रुत्व नहीं। वस्तुतः संयोगान्त लोप के प्राप्त होने पर तथा अप्राप्त होने पर रुत्व का विधान है। यह लोप 'श्रेयान्' इत्यादि स्थलों पर प्राप्त है तथा 'यशः' आदि स्थलों पर अप्राप्त है। अतः रुत्व इसका बाध नहीं करता है। जश्त्व में सर्वत्र प्राप्त होने पर ही विधान है। अतः बाधक लक्षण योग से रुत्व जश्त्व का बाध कर लेता है।

(7) यशः

यशस् सु—हल्ङ्याब्भ्यो०,

यशः—रुत्व तथा जश्त्व युगपत् प्राप्त होते हैं। रुत्व जश्त्व का बाध कर लेता है।

(8) पयः

पयस् सु—पूर्ववत्।

दध्यत्र०—दध्यत्र आदि स्थलों पर बहिरङ्ग लक्षण यण् आदेश के असिद्ध होने से संयोगान्त लोप नहीं होता है। यहाँ यणादेश दो पदों पर आश्रित होने से बहिरङ्ग है तथा संयोगान्तलोप एक-पदाश्रित है; अतः अन्तरङ्ग है।

(9) दध्यत्र

दधि अत्र—इको यणचि,

दध्य् अत्र—संयोगान्त लोप नहीं हुआ।

(10) मध्वत्र (पूर्ववत्)।

पदस्य के अधिकार का फल यह है कि गोमन्तौ, गोमन्तः इत्यादि स्थलों पर संयोगान्त लोप न हो।[1]

(3712) रात्सस्य *24* (280)

संयोगान्तपदस्य यो रेफस्तस्मादुत्तरस्यान्तस्य सकारस्य लोपो भवति। गोभिरक्षाः। प्रत्यङ्ङंमत्साः (ऋ० 10.28.4)। क्षरतेः, त्सरतेश्च लुङि सिचश्छान्दसत्वादीडभावः; 'बहुलं छन्दसि' (7.3.97) इति वचनात्। दीर्घे सति रूपमेतत्। मातुः; पितुरिति–'ऋत उत्' (6.1.111) इति

1. न्यास।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत्त्वे कृते रपरत्वे च सति 'रात्सस्य' इति सलोपः। सिद्धे सत्यारम्भो नियमार्थः–रात्सस्यैव लोपो भवति, नान्यस्येति। ऊर्जेः—क्विप्, ऊर्क्। मृजेर्लङि–अमार्ट् (न्यर्माट्)।

अर्थ—संयोगान्त पद का जो रेफ, उससे उत्तर सकार का लोप होता है। 'संयोगान्त पद' यह रेफ का विशेषण है तथा रेफ सकार का विशेषण है। भाव यह है कि संयोगान्त पद का अवयव जो रेफ, उससे उत्तर जो सकार, उस अलोऽन्त्य का लोप होता है।

उदा० (1) अक्षाः
क्षर् ति—लुङ्, इतश्च,
क्षर् स् त्—सिच्, 'अतो ल्रान्तस्य' से वृद्धि,
क्षार् स् त्—'बहुलं छन्दसि' से ईट् का अभाव,
क्षार् स्—हल्ङ्याब्भ्यो०,
अक्षाः—रात्सस्य, विजर्सनीय।

(2) अत्साः
त्सर् तिप्—पूर्ववत् सभी कार्य।

क्षरतेः०—क्षर् तथा त्सर् धातुओं से लुङ् हुआ। छान्दस होने से 'बहुलं छन्दसि' से 'सिच्' को ईट् का अभाव, दीर्घ होकर रूप बनता है।

मातुः०—मातुः, पितुः—इन स्थलों पर 'ऋत् उत्' से उत्त्व करने पर 'रात्सस्य' से सकारलोप होता है।

(3) पितुः
पितृ ङस्—ऋत उत्, उरण् रपरः,
पितुर् स्—रात्सस्य।

(4) मातुः (पूर्ववत्)।

सिद्धे०—पूर्वसूत्र (संयोगान्तस्य लोपः) से सिद्ध होना ही है। अतः यह नियमार्थ विधान है। यह नियम करता है कि रेफ से उत्तर सकार का ही लोप होता है; अन्य वर्ण का नहीं। यथा—

(5) ऊर्क
ऊर्ज् क्विप्—'भ्राजभ्रास०' से 'क्विप्',
ऊर्ज्—हलन्त्यम्, उपदेशेऽजनु०, लशक्वतद्धिते, तस्य लोपः, वेरपृक्तस्य आदि लगकर सर्वापहारलोप,
ऊर्ज् सु—प्रातिपदिक संज्ञा, सु, हल्ङ्यादिलोप,
ऊर्ज्—संयोगान्तलोप प्राप्त, प्रकृत सूत्र से जकार का लोप नहीं हुआ,
ऊर्क्—'चोः कुः' से गकार, 'वाऽवसाने' से चर्त्व।

(6) अमार्ट्
मृज् तिप्—लङ्, कर्त्तरि शप्, अदिप्रभृतिभ्यः शपः,
मृज्—'इतश्च' से इकारलोप, हल्ङ्यादिलोप,
मार्ज्—'मृजेर्वृद्धिः' से वृद्धि, उरण् रपरः,
मार्ष्—'व्रश्चभ्रस्ज०' से वकार,
मार्ड्—'झलां जशोऽन्ते' से डकार,
अ मार्ट्—'वाऽवसाने' से पाक्षिक चर्त्व।

विशेष—यहाँ रेफ से ही उत्तर सकार का लोप होता है। इस प्रकार विपरीत नियम की आशङ्का नहीं करनी चाहिए।[1] उरस् प्रभृति में 'पुमान्' को संयोगान्त लोप करके 'पुम्स्' शब्द का पाठ है। विपरीत नियम की दशा में उसका संयोगान्तलोप उपपन्न नहीं होता। इससे ज्ञात होता है कि 'रादेव सस्य' इस प्रकार विपरीत नियम नहीं होता है।

(3713) धि च *25* (2249)

धकारादौ प्रत्यये परतः सकारस्य लोपो भवति। अलविध्वम्, अलविद्ध्वम्। अपविध्वम्, अपविद्ध्वम्। यद्यत्र सकारलोपो न स्यात्, सिचः षत्वे जश्त्वे च 'विभाषेटः' (8.3.79) इति मूर्धन्याभावपक्षेऽपि न धकारः श्रूयेत। इतः प्रभृति सिचः सकारस्य लोप इष्यते। इह न भवति–चक्राद्धि पलितं शिर इति। तथा पयो धावती-त्येवमादावपि न भवति। सग्धिः (वा०सं० 19.9) बब्धामिति (नि० 5.12) छान्दसो वर्णलोपः। भाष्यका-रस्त्वाह–चकाधीत्येव भवितव्यमिति। तेन पयो धावती-त्येवमादौ यत्नान्तरमास्थेयम्।

धि सकारे सिचो लोपश्चकाद्धीति प्रयोजनम्।
आशाध्वं तु कथं जश्त्वं सकारस्य भविष्यति॥

सर्वमेवं प्रसिद्धं स्याच्छ्रुतिश्चापि न भिद्यते।
लुङश्चापि न मूर्धन्ये ग्रहणं सेटि दुष्यति॥

घसिभसोर्न सिध्येत तस्मात्सिज्ग्रहणं न तत्।
छान्दसो वर्णलोपो वा यथेष्कर्त्तारमध्वरे॥ (म० भा०)

निष्कर्त्तारमध्वरस्येत्येवं प्राप्ते।

अर्थ—सकार का लोप होता है, धकारादि प्रत्यय परे रहते।

उदा० (1) अलविध्वम्
लू स् ध्वम्—लुङ्, सिच्,
लो इ स् ध्वम्—इट्, गुण, सार्वधातुकार्धधा०,

1. न्यास० 8.2.24

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अ लवि ध्वम्—एचोऽयवायावः, धि च, अट्।

(2) अलविढ्वम्
पक्ष में 'विभाषेटः' से मूर्धन्य।

(3) अपविध्वम्
पू—'अलविध्वम्' की तरह।

(4) अपविढ्वम्
'अलविढ्वम्' की तरह।

यद्यत्र०—यदि यहाँ सकारलोप न हो तो सिच् को 'आदेशप्रत्यययोः' षत्व करके उसे 'झलां जश् झशि' से जश्त्व 'डकार' होता है। अलविस् ध्वम् → अलविष् ध्वम् → अलविड्ध्वम्। अब इस स्थिति में 'ष्टुना ष्टुः' से ष्टुत्व होकर 'विभाषेटः' के मूर्धन्य अभाव पक्ष में धकार का श्रवण नहीं होगा। यथा—
अलविड् ढ्वम्।

इतः०—यहाँ से लेकर सिच् के सकार का लोप होता है। 'अचि विभाषा' से 'विभाषा' पद का अनुवर्त्तन होने से यह व्यवस्थित विभाषा होती है। निम्नलिखित में नहीं होता है—

(5) चकाद्धि
चकास् सि—लोट्, शप् का लुक्,
चकास् हि—सेर्ह्यपिच्च,
चकास् धि—हुझल्भ्यो हेर्धिः, सकारलोप नहीं हुआ,
चकाद् धि—झलां जश् झशि।

(6) पयो धावति
पयस् धावति—ससजुषो रुः, सकारलोप नहीं हुआ,
प य उ धावति—हशि च, आद् गुणः।

सग्धिः०—यदि यहाँ से आगे सिच् का लोप ही इष्ट है तो 'सग्धि' तथा बब्धाम्—इन स्थलों पर 'झलो झलि' से सकारलोप प्राप्त नहीं होता है।

(समा०) वस्तुतः यहाँ छान्दस वर्णलोप होता है।

(7) सग्धिः
अद् क्तिन्—'बहुलं छन्दसि' से 'घस्लृ',
घस् ति—लशक्वतद्धिते, हलन्त्यम्,
घ् स् ति—'घसिभसोर्हलि च' से उपधालोप,
घ् ति—'बहुलं छन्दसि' से सकार का छान्दस लोप,
घ् धि—झषस्तथो०, झलां जश् झशि।
समाना ग्धिः—विशेषणसमास,
स ग्धि सुः—समानस्य च्छन्दसि।

(8) बब्धाम्
भस् तस्—लोट्, लोटो लङ्वत्, 'ताम्' आदेश,
भस् शप् ताम्—कर्त्तरि शप्, जुहोत्यादिभ्यः श्लुः, 'श्लौ' से द्वित्व,
भस् भस् ताम्—हलादिः शेषः, अभ्यासे चर्च,
ब भस् ताम्—'घसिभसो०' से उपधालोप,
ब भ्स् ताम्—सकारलोप पूर्ववत्,
ब भ् धाम्—'झषस्तथो०' से धकार,
बब्धाम्—झलां जश् झशि।

भाष्यकार०—भाष्यकार करहते हैं कि 'चकाधि' होना चाहिए। 'पयो धावति' इन स्थलों पर यत्नान्तर का आश्रय करना चाहिए। अर्थात् यहाँ व्यवस्थित विभाषा का आश्रय करना चाहिए।

धिसकारे०—धकारादि प्रत्यय परे रहते सकार का लोप होता है। वह लोप सिच् के सकार का होता है। यहाँ 'चकाद्धि' प्रयोजन है। धकारादि परे रहते सिच् के सकार का लोप इष्ट होने से 'चकास् धि'—इस दशा में सकार का लोप नहीं हुआ। यही प्रयोजन है। यदि सिच् के सकार का लोप ही इष्ट है तो 'आशाध्वम्' सिद्ध नहीं हो सकेगा (सम्पूर्ण प्रक्रिया नीचे देखें)।

(समा०) सकार के स्थान पर जश्त्व दकार करके 'आशाध्वम्' सिद्ध हो जायेगा। यथा—

(9) आशाध्वम्
आ शास् ध्वम्—लोट्, शप् का लुक्,
आशास् ध्वे—'टित आत्मनेपदानां०',
आशास् ध्वम्—'सावाभ्यां वामौ' से 'अम्', धकारादि प्रत्यय परे रहते सिच् के सकार का ही लोप इष्ट है तो यहाँ सकार का लोप प्राप्त नहीं होता है,
आशा द् ध्वम्—'झलां जश् झशि' से दकार।

सर्वमेवं०—यदि सकार के स्थान पर जश्त्व होता है तो सकारलोप की क्या आवश्यकता है ? क्योंकि सकारलोप के विना भी जश्त्व करके सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं।

इस पर आक्षेप है कि सकारलोप न करने के पक्ष में 'अनचि च' से सकार को द्वित्व करने पर तथा दोनों सकारों के स्थान पर जश्त्व करने पर दकारद्वय का श्रवण होता है। अतः सकारलोप आवश्यक है। यहाँ श्रुतिभेद नहीं होता है। व्यञ्जन से उत्तर एक या अनेक हल् की श्रुति के प्रति विशेष नहीं होता है। अतः सकारलोप की आवश्यकता नहीं है।

इसके अतिरिक्त 'इणः षीध्वं लुङ्लिटां०' से मूर्धन्य करने में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'लुङ्' का ग्रहण नहीं करना चाहिए। अच्योढ्वम् तथा अप्लोढ्वम् इत्यादि स्थलों पर षत्व, जश्त्व तथा ष्टुत्व के द्वारा ही मूर्धन्य आदेश सिद्ध है। अतः 'लुङ्' की आवश्यकता नहीं है। यथा—

(10) अच्योढ्वम्
च्यु ध्वम्—लुङ्,
च्यु स् ध्वम्—सिच्,
च्यो ष् ध्वम्—सार्वधातुकार्ध०, आदेशप्रत्यययोः,
च्योड् ध्वम्—'झलां जश् झशि' से डकार,
अच्योड्ढ्वम्—'ष्टुना ष्टुः' से ढकार।

(11) अप्लोढ्वम्
प्लु ध्वम्—पूर्ववत् सभी कार्य।

इस पर आक्षेप है कि यदि मूर्धन्य विधि 'लुङ्' का ग्रहण नहीं किया जायेगा तो 'विभाषेटः' से मूर्धन्य आदेश प्राप्त नहीं होगा। तब पूर्ववत् षत्व आदि करने पर 'अलविध्वम्' इस प्रकार नित्य होता है। 'अलविढ्वम्' होता ही नहीं है। अतः उत्तर प्रयोग के लिए 'लुङ्' का ग्रहण करना चाहिए। 'अलविढ्वम्' इसकी सिद्धि के लिए 'धि च' से सकारलोप कहना चाहिए। सकार लोप के न होने पर यह सिद्ध नहीं होता है। अतः यह जो कहा गया है कि 'सवमेवं प्रसिद्धं स्यात्'। यह अयुक्त है। 'धि च' इसके किये जाने पर 'चकाद्धि' न हो; अतः 'सिच्' का ग्रहण करना चाहिए—यह मत प्रतिष्ठापित हुआ।

घसिभसो०—इसमें एक अन्य दोष इस प्रकार प्रसक्त होता है—

'सग्धि' तथा 'बब्धाम्' यहाँ घस् तथा भस् का सकार लोप सिद्ध नहीं होता है। यद्यपि सिच् ग्रहण किये जाने पर घस् तथा भस् के सकार का लोप 'झलो झलि' से नहीं हो पायेगा, तथापि छान्दस वर्ण का लोप होता है। तब ये रूप सिद्ध होते हैं। यहाँ छान्दस वर्ण का लोप कहाँ होता है ? जिस प्रकार अध्वर विषय के प्रयोग में 'इष्कर्तारमध्वरस्य' यहाँ छान्दस वर्णलोप होता है। उसी प्रकार सग्धि तथा बब्धाम्—यहाँ भी छान्दस वर्णलोप होता है। यहाँ 'वा' शब्द अन्य उपपत्ति को सूचित करता है। यह अन्य उपपत्ति इस प्रकार है—

'सग्धि' घस् धातु का रूप नहीं है; तो किसका है ? 'षघ हिंसायाम्' का 'सग्धि' रूप है। यहाँ अर्थभेद होता है तथा स्वरभेद होता है। प्रथम व्युत्पत्ति के अनुसार 'समानादन' यह अर्थ होता है। समासस्वर से यह अन्तोदात्त होता है।

'षध' धातु से 'क्तिन्' करने पर यह हिंसार्थक होता है। नित् स्वर से आद्युदात्त होता है।

इसी प्रकार 'बब्धाम्' भस् का रूप नहीं है। तो किसका रूप है ? बंध् (बन्धन अर्थ में) धातु से लोट् लकार में प्र०पु० द्विवचन का 'तस्' होकर, उसे 'ताम्' आदेश होता है। 'व्यत्ययो बहुलम्' से 'शप्' विकरण का लुक् होता है। 'अनिदिताम्०' से अनुनासिक लोप होने पर 'झषस्तथो०' से तकार को धकार होकर 'बध् धाम्' यह स्थिति बनती है। तब 'व्यत्ययो बहुलम्' से धातु के धकार के स्थान पर बकार करने पर 'बब्धाम्' बनता है। इस प्रकार सिच् का ग्रहण किये जाने पर यदि घस् तथा भस् धातुओं से क्रमशः 'सग्धि' तथा 'बब्धाम्' रूप निष्पन्न नहीं होते हैं तो भी कोई अनिष्ट नहीं होता है।

(3714) झलो झलि *26* (2281)

झल उत्तरस्य सकारस्य झलि परतो लोपो भवति। अभित्त, अभित्थाः। अच्छित्त। अच्छित्थाः। अवात्ताम्, अवात्त–इत्यत्र वा सिचः सकारलोपस्यासिद्धत्वात् 'सस्यार्धधातुके' (7.4.49) इति सकारस्य तकारः। झल इति किम्? अमंस्त। अमंस्थाः। झलीति किम्? अभित्साताम्। अभित्सत। अयमपि सिच एव लोपः, तेनेह न भवति–सोमसुत् स्तोता। दृषत्स्थानमिति।

अर्थ—झल् से उत्तर सकार का लोप होता है, झल् वर्ण परे रहते।

उदा० (1) अभित्त
भिद् त—लुङ्,
भिद् स् त—सिच्, सिच् का लोप,
अ भित् त—खरि च, अट्।

(2) अभित्थाः
भिद् थास्—पूर्ववत् सिच्, सिच् लोप,
अ भित् थास्—खरि च, अट्।

(3) अच्छित्त
छिद् त—पूर्ववत् सभी कार्य, अट्, 'छे च' से 'तुक्',
अ त् छित् त—स्तोः श्चुना श्चुः, खरि च।

(4) अच्छित्थाः
छिद् थास्—पूर्ववत्।

अवात्ताम्०—अवात्ताम्, अवात्त—यहाँ सिच् के सकारलोप के असिद्ध होने से 'सः स्यार्धधातुके' से सकार के स्थान पर तकार होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(5) अवात्ताम्
वस् तस्—लुङ्, ताम्,
वस् स् ताम्—सिच्, 'वदव्रज०' से वृद्धि,
वास् ताम्—सिच् का लोप, सकार को तकार,
अ वात् ताम्—अट्।

(6) अवात्त
वस् थ—लुङ्, 'त' आदेश,
वस् स् त—सिच्, शेष पूर्ववत्,
अवात्त—अट्।

झल०—झल् वर्ण से उत्तर सकार का लोप होता है, झल् वर्ण परे रहते।

(7) अमंस्त
मन् त—लुङ्, सिच्,
मन् स् त—सकार से पर झल् वर्ण है, परन्तु यह सकार झल् वर्ण से पर नहीं है, अतः सकारलोप नहीं हुआ,
अमंस्त—अट्, नश्चाऽपदान्त०।

(8) अमंस्थाः
मन् थास्—लुङ्,
मन् स् थास्—सिच्, पूर्ववत् सिच् लोप अभाव,
अ मंस्थाः—अट्।

झलीति०—झल् वर्ण परे रहते झल् से उत्तर सकार का लोप होता है।

(9) अभित्साताम्
भिद् आताम्—लुङ्,
भित् स् आताम्—सिच्, खरि च, सिच् लोप अभाव,
अ भित्स् आताम्—अट्।

(10) अभित्सत
भिद् झ—लुङ्,
भिद् स् अत् अ—'आत्मनेपदेष्वनतः' से 'अत्' सिच्,
अ भित्सत—खरि च।

अयम०—यह भी सिच् का ही लोप होता है। अतः निम्नलिखित में नहीं होता है—

(11) सोमसुत् स्तोता
यहाँ सकार का लोप नहीं होता है।

(12) दृषत् स्थानम् (पूर्ववत्)।

(3715) ह्रस्वादङ्गात् *27* (2369)

ह्रस्वान्तादङ्गादुत्तरस्य लोपो भवति झलि परतः। अकृत, अकृथाः। अहृत, अहृथाः। ह्रस्वादिति किम्? अच्योष्ट। अप्लोष्ट। अङ्गादिति किम्? अलाविष्टाम्। अलाविषुः। 'झलि' इत्येव-अकृषाताम्। अकृषत। अयमपि सिच एव लोपः, तेनेह न भवति-द्विष्टराम्, द्विष्टमामिति। सुजन्ताद् द्विशब्दात्तरप्तमपौ, अद्रव्यप्रकर्षे आतिशयिकः आम् प्रत्ययः।

अर्थ—ह्रस्व वर्णान्त अङ्ग से उत्तर लोप होता है, झल् वर्ण परे रहते।

उदा० (1) अकृत
कृ त—लुङ्,
कृ स् त—सिच्,
अ कृ त—सकारलोप, अट्।

(2) अकृथाः
कृ थास्—लुङ्, सिच्,
कृ स् थास्—पूर्ववत् सिच् लोप,
अ कृथास्—अट्।

(3) अहृत
हृ त—पूर्ववत्।

(4) अहृथाः
हृ थास्—'अकृथाः' की तरह।

ह्रस्वादि०—**ह्रस्व वर्णान्त** अङ्ग से उत्तर लोप होता है, झल् पर रहते।

(5) अच्योष्ट
च्यु त—लुङ्, सिच्, 'सार्वधातुकार्धधा०' से गुण,
अ च्यो स् त—ह्रस्व अङ्ग न होने से 'स्' का लोप नहीं हुआ।

(6) अप्लोष्ट
प्लु त—पूर्ववत्।

अङ्गादि०—अङ्गसंज्ञक से उत्तर लोप होता है, झल् परे रहते।

(7) अलाविष्टाम्
लू इ स् ताम्—लुङ्, ताम् आदेश, सिच्, इट्,
लाव् इ स् ताम्—वृद्धि, सकार ह्रस्व वर्ण (इकार) से पर है, परन्तु 'लावि' की अङ्गसंज्ञा नहीं है, सलोप नहीं हुआ,
अलाविष् टाम्—षत्व, ष्टुत्व।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(8) अलाविषुः
पूर्ववत् सकारलोप अभाव।
'सिजभ्यस्तविदिभ्यः' से 'जुस्' आदेश।

झलि०—झल् वर्ण परे रहते लोप होता है।

(9) अकृषाताम्
कृ आताम्—लुङ्,
कृ स् आताम्—सिच्, 'कृ' इस ह्रस्वान्त अङ्ग से उत्तर 'स्' है, परन्तु इससे परे 'झल्' वर्ण नहीं है, अतः सकार का लोप नहीं हुआ, 'उश्च' से किद्वत्, गुणनिषेध,
अ कृष् आताम्—षत्व, अट्।

(10) अकृषत
कृ झ—पूर्ववत्।

अयम०—यह भी सिच् का ही लोप है। अतः निम्नलिखित में नहीं होता है—

(11) द्विष्टराम्
द्विस्तराम्—द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच्, अतिशायन अर्थ में 'तरप्', 'किमेत्तिङ्' से 'आम्', अनुबन्धलोप,
द्वि स् तराम्—ह्रस्व अङ्ग 'द्वि' से उत्तर सकार है, उससे पर झल् वर्ण (तकार) है, सिच् का सकार नहीं है। अतः लोप नहीं हुआ,
द्विष् तराम्—'ह्रस्वात् तादौ तद्धिते' से मूर्धन्य, ष्टुना ष्टुः।

(12) द्विष्टमाम्
द्वि स् तमाम्—पूर्ववत्।

सुजन्ता०—यहाँ 'सुच्' प्रत्ययान्त द्वि शब्द से तरप् तथा तमप् हुआ है। अद्रव्यप्रकर्ष अर्थ में आतिशयिक 'आम्' प्रत्यय होता है।

(3716) इट ईटि *28* (2266)

इट उत्तरस्य सकारस्य लोपो भवति ईटि परतः। अदेवीत्। असेवीत्। अकोषीत्। अमोषीत्। इट इति किम्? अकार्षीत्। अहार्षीत्। ईटीति किम्? अलाविष्टाम्। अलाविषुः।

अर्थ—इट् से उत्तर सकार का लोप होता है, 'ईट्' परे रहते।

उदा० (1) अदेवीत्
दिव् ति—लुङ्, 'इतश्च' से इकारलोप,
दिव् स् त्—च्लेः सिच्,
दिव् इ स् ई त्—आर्धधातुकस्येड् वलादेः, अस्तिसिचोऽ०,
दिव् इ ई त्—इट् ईटि,
देव् ई त्—पुगन्तलघूप०, अकः सवर्णे दीर्घः,
अ देवीत्—अट्।

(2) असेवीत्
सेव् इ स् ई त्—पूर्ववत्,
अ सेवीत्—सकारलोप, अट्।

(3) अकोषीत्
कुष् इ स् ई त्—पूर्ववत्,
अ कुष् इ ई त्—सिच् लोप, सवर्णदीर्घ,
अ कोष् ई त्—लघूपधगुणं, अट्।

(4) अमोषीत्
मुष्—'अकोषीत्' की तरह।

इट इति०—इट् से उत्तर सकार का लोप होता है।

(5) अकार्षीत्
कृ तिप्—लुङ्, इतश्च,
कृ स् त्—सिच्,
कृ स् ई त्—अस्तिसिचो०, इट् से उत्तर न होने से लोप नहीं हुआ, वृद्धि,
अ कार् ष् ई त्—षत्व, अट्।

(6) अहार्षीत्
हृ त्—पूर्ववत्।

ईटीति०—ईट् परे रहते ही सकार का लोप होता है।

(7) अलाविष्टाम्
लू स् ताम्—लुङ्, तस्, 'ताम्' आदेश, सिच्,
लौ इ स् ताम्—इट्, वृद्धि, अपृक्तसंज्ञक प्रत्यय के परे न होने से 'ईट्' नहीं हुआ, 'ईट्' परे नहीं रहने से सकार का लोप नहीं हुआ,
लाव् इष् ताम्—एचोऽयवायावः, षत्व,
अ लाविष् टाम्—ष्टुत्व, अट्।

(8) अलाविषुः
लू स् झि—लुङ्, सिच्,
लू इ स् जुस्—'जुस्' आदेश,
अ लाव् इषुः—शेष कार्य पूर्ववत्।

(3717) स्कोः संयोगाद्योरन्ते च *29* (380)

पदस्यान्ते यः संयोगः, झलि परतो वा संयोगः, तदाद्योः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सकारककारयोर्लोपो भवति। लस्जेः-लग्नः, लग्नवान्, साधुलक्। मस्जेः-मग्नः। ककारस्य, तक्षेः-तट्। तष्टः, तष्टवान्। काष्ठतट्। * झलि सङ्गीति वक्तव्यम् * किमिदं सङ्गीति? सनः सप्रभृति महिङो ङकारेण प्रत्याहारः। इह मा भूत्—काष्ठशक्स्थातेति। थकारे झलि ककारस्य संयोगादेर्लोपः प्राप्नोति। तदत्र शकेः क्विबन्तस्य प्रयोग एव नास्तीत्याह-'काष्ठशगेव नास्ति, कुतोऽयं काष्ठशकि तिष्ठेत्' इति। वास्यर्थम्, काक्यर्थम्-इत्यत्रापि बहिरङ्ग-लक्षणस्य यणादेशस्यासिद्धत्वात् संयोगादिलोपो न भवति। स्कोरिति किम्? नर्नर्ति। वर्वर्ति। संयोगाद्योरिति किम्? पयःशक्।

अर्थ—पद के अन्त में जो संयोग, झल् वर्ण परे रहते जो संयोग, उसके आदि में जो सकार व ककार, उनका लोप होता है।

उदा० (क) सकारस्य—

(1) लग्नः

ओलस्जी → लस्ज्—अनुबन्धलोप,

लस्ज् क्त—निष्ठा, लशक्वतद्धिते,

लज् त—सकार व जकार का संयोग पद का अवयव है, इससे उत्तर झल् वर्ण (तकार) है, इस संयोग के आदि में जो सकार, उसका लोप हुआ,

लज् न—'ओदितश्च' से नकार, 'श्वीदितो निष्ठायाम्' से इट् का निषेध,

लग् न—'चोः कुः' से कुत्व, सु।

(2) लग्नवान्

लस्ज् क्तवतु—पूर्ववत्।

(3) साधुलक्

साधु लज्जते—'क्विप्' हुआ,

साधु लस्ज् क्विप्—सर्वापहारलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा,

साधु लस्ज् स्—हल्ङ्यादिलोप,

साधुलज्—पदान्त में सकार व जकार का संयोग, उसके आदि में जो सकार, उसका लोप हुआ,

साधुलग्—कुत्व पूर्ववत्।

(4) मग्नः

टुमस्जो → मस्ज्—अनुबन्धलोप,

मस्ज् क्त—'एकाच उपदेशेऽनु०' से इट् निषेध,

मस् न् ज् त—'मस्जिनशोर्झलि' से 'नुम्', 'मिदचोऽन्त्यात् परः' से अकार से पर 'नुम्' प्राप्त हुआ, 'मस्जेरन्त्यात् पूर्वो नुम०' से सकार से उत्तर हुआ,

मस्ज् त—'अनिदिताम्०' से अनुनासिकलोप, सकारलोप,

मज् त—नकार,

मग् न—चोः कुः, सु।

(ख) ककारस्य—

(5) तट्

तक्षू → तक्ष्—

तक्ष् क्विप्—सर्वापहारलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सु,

तक्ष् स्—हल्ङ्यादि लोप,

तक्ष्—पदान्त में ककार व षकार का संयोग है, इसके आदि में जो ककार, उसका लोप हुआ,

तष्—झलां जशोऽन्ते,

तड्—वाऽवसाने।

(6) तष्टः

तक्ष् क्त—'स्वरतिसूति०' से विकल्प से इट् प्राप्त हुआ, 'यस्य विभाषा' से निषेध,

तक्ष् त—झल् (तकार) परे रहते ककार व षकार का जो संयोग, उसके आदि ककार का लोप,

तष् त—ष्टुना ष्टुः, सु।

(7) तष्टवान्

तक्ष् क्तवतु—पूर्ववत्।

(8) काष्ठतट्

काष्ठं तक्षति—'क्विप्' हुआ, सर्वापहारलोप,

काष्ठतक्ष् सु—'सु' का लुक्,

काष्ठ त ष्—ककारलोप,

काष्ठ तड्—झलां जशोऽन्ते।

काष्ठतट्—वाऽवसाने।

झलो०—झल् परे रहते, सङ् परे रहते संयोगादि ककार व सकार का लोप होता है। यह सङ् क्या है, 'सन्' के सकार से लेकर 'महिङ्' के ङकार पर्यन्त 'सङ्' प्रत्याहार बनता है। अतः निम्नलिखित में लोप नहीं हुआ—

(9) काष्ठशक्स्थाता

काष्ठ शक् क्विप्—अन्येभ्योऽपि दृश्यते, सर्वापहारलोप,

काष्ठ शकि स्थाता—'सप्तमी' से समास,

काष्ठशक्स्थाता—'क्स्' का संयोग है। इससे पर झल् थकार है। संयोगादि ककार का लोप नहीं हुआ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तदत्र०—वस्तुतः यहाँ क्विप् प्रत्ययान्त शब्द नहीं है। 'काष्ठशक्' यह नहीं है तो 'काष्ठशकि तिष्ठेत्' इस प्रकार कैसे होगा ? इस प्रकार भाष्यकार ने प्रकृत वार्त्तिक का प्रत्याख्यान कर दिया है।

(10) वाक्स्थाता (यह प्रयोग न्यास में प्रदर्शित है)
वाच् स्थाता—कुत्व हुआ,
वाक्स्थाता—'क्स्' का संयोग है, इससे पर झल् (थकार) है, संयोगादि ककार का लोप प्राप्त होता है, परन्तु संयोगादि लोप के प्रति कुत्व के असिद्ध होने से लोप नहीं होता है।

निम्नलिखित स्थलों पर संयोगादि सकार का लोप बहिरङ्गलक्षण यण् आदेश के असिद्ध होने से नहीं होता है।

(11) वास्यर्थम्; (13) काक्यर्थम्।

स्कोरि०—संयोगादि सकार तथा ककार का ही लोप होता है।

(12) नर्नर्त्ति
नृत् यङ्—यङ्लुक्, गुणो यङ्लुकोः,
न नर्त्—रुग्रिकौ च लुकि, अनुबन्धलोप, धातुसंज्ञा,
नर् नर्त् ति—रेफ तथा तकार का संयोग, झल् तकार परे है, संयोगादि रेफ का लोप नहीं हुआ, कारण कि आदि में न तो सकार है तथा न ही ककार है।

(13) वर्वर्त्ति
वृत् यङ्—पूर्ववत्।

संयोगा०—संयोगादि सकार व ककार का लोप होता है।

(14) पयःशक्
पयस् शक् क्विप्—सर्वापहार लोप, परन्तु केवल 'शक्' से क्विप् हुआ करता है, उपपदसहित 'शक्' से नहीं होता है।

(3718) चोः कुः *30* (378)

चवर्गस्य कवर्गादिशो भवति झलि च परतः, पदान्ते च। पक्ता, पक्तुम्, पक्तव्यम्, ओदनपक्। वक्ता, वक्तुम्, वक्तव्यम्, वाक्। क्रुञ्चेत्यत्र सडीति, वचनाद् ञकारस्य चकारे झलि कुत्वं न भवति, 'युजिक्रुञ्चां च' (3.2.59) इति निपातनाद्वा। नकारोपधो वा धातुरयं रेफरहितश्च 'कुञ्च कौटिल्याल्पीभावयोः' (धा०पा० 186) इति पठ्यते। नकारलोपे हि निकुचित इति दृश्यते। 'युजिक्रुञ्चां च' (3.2.59) इति तस्यैव रेफोऽधिकः, नकारस्य लोपाभावश्चेति निपात्यते। तत्रानुस्वारस्य, परसवर्णस्य चासिद्धत्वात् ञकार एव नास्तीति कुत्वं न भविष्यति।

अर्थ—चवर्ग के स्थान पर कवर्ग आदेश होता है, झल् वर्ण परे रहते तथा पदान्त में।

उदा० (क) झलि—

(1) पक्ता
मृच् पच्—ण्वुल्तृचौ,
पक् तृ—चोः कुः, सु।

(2) पक्तुम्
पच् तुमुन्—अनुबन्धलोप,
पक् तुम्—कुत्व,
पक्तुम् सु—विभक्तिकार्य।

(3) पक्तव्यम्
पच् तव्यत्—हलन्त्यम्,
पक् तव्य—कुत्व,
पक्तव्य—सु।

(4) वक्ता
वच् तृच्—'पक्ता' की तरह।

(5) वक्तुम्
वच् तुमुन्—'पक्तुम्' की तरह।

(6) वक्तव्यम्
वच् तव्यत्—'पक्तव्यम्' की तरह।

(ख) पदान्ते—

(7) ओदनपक्
ओदनं पचति—'क्विप्', सर्वापहारलोप,
ओदनपच् सु—प्रातिपदिक संज्ञा, 'सु' का लोप,
ओदनपच्—प्रत्ययलक्षण से पदसंज्ञा,
ओदनपक्—चोः कुः।

(8) वाक्
वाच् सु—सुलोप,
वाक्—पूर्ववत् कुत्व।

'क्रुञ्चा' यहाँ झल् वर्ण (चकार) परे रहते चवर्गीय वर्ण (ञकार) के स्थान पर कुत्व नहीं होता है। यहाँ क्रुञ्च् यह रेफसहित तथा ञकारोपध धातु है। कुछ विद्वान् रेफरहित नकारोपध 'कुञ्च्' स्वीकार करते हैं। 'झलि सडीति न वक्तव्यम्' से कुत्व नहीं होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कुछ विद्वानों के अनुसार 'युजिक्रुञ्चां च' में निपातन होने से कुत्व का अभाव होता है।

'कुञ्च कौटिल्याल्पीभावनयोः' इस प्रकार रेफरहित तथा नकारोपध धातु का पाठ भी है। नकारलोप होने पर 'निकुचित' आदि रूप बनते हैं। 'युजिक्रुञ्चां च' में निपातन से उस 'कुञ्च्' धातु में रेफ का अधिक संयोग है तथा नकार के लोप का अभाव है। तब अनुस्वार तथा परसवर्ण के असिद्ध होने से ञकार ही नहीं है। तब कुत्व किस प्रकार होगा ?

(3719) हो ढः *31* (324)

हकारस्य ढकारादेशो भवति झलि परतः, पदान्ते च। सोढा, सोढुम्, सोढव्यम्। जलाषाट्। वोढा, वोढुम्, वोढव्यम्। प्रष्ठवाट्। दित्यवाट्।

अर्थ—हकार के स्थान पर ढकार आदेश होता है, झल् वर्ण परे रहते तथा पदान्त में।

उदा० (1) सोढा
सह् तृच्—ण्वुल्तृचौ, हलन्त्यम्,
सद् तृ—हो ढः, 'तीषसह०' से इट् विकल्प,
सद् धृ—'झषस्तथो०' से धकार,
सद् ढृ—ष्टुना ष्टुः' से ढकार,
सढृ—'ढो ढे लोपः' से ढकारलोप,
सोढा—'सहिवहोरोद्०' से ओत्व, विभक्तिकार्य।

(2) सोढुम्
सह् तुमुन्—अनुबन्धलोप,
सद् धुम्—हो ढः, झषस्तथो०,
स ढुम्—ष्टुना ष्टुः, ढो ढे लोपः,
सो ढुम्—सहिवहोरो०, सु, सुलोप।

(3) सोढव्यम्
सह् तव्यत्—तव्यत्तव्याऽनीयरः,
सो ढव्य—पूर्ववत् सभी कार्य,
सोढव्य सु—अतोऽम्।

(4) तुराषाट् (पदमञ्जरीसम्मतः पाठः)
तुर सह्—'छन्दसि सहः' से 'ण्विः',
तुर सह् ण्वि—'चुटू' से णकार की तथा 'उपदेशेऽजनु०' से इकार की इत्संज्ञा, इनका लोप,
तुर सह् व्—अपृक्त एकाल्०, वेरपृक्तस्य, सु, सुलोप,
तुरा साह्—प्रत्ययलक्षण से पदसंज्ञा, 'अन्येषामपि दृश्यते' से पूर्व पद को दीर्घ, 'अत उपधायाः' उपधावृद्धि,
तुरा साढ्—हो ढः,
तुराषाट्—झलां जशोऽन्ते, वाऽवसाने, 'सहेः साडः सः' से षत्व।

(5) जलाषाट् (न्याससम्मतः पाठः)
जलं सहते—भजो ण्विः, छन्दसि सहः,
जल सह् ण्वि—पूर्ववत् सर्वापहारलोप, उपपद समास,
जला साह्—अन्येषामपि दृश्यते, अत उपधायाः,
जला षाट्—हो ढः, झलां जशोऽन्ते, वाऽवसाने, सहेः साडः सः इत्यादि।

(6) वोढा
वह् तृच्—पूर्ववत् ढकार, तकार को धकार,
वढ् धृ—ष्टुत्व, 'सहिवहोरो०' से ओत्व, ढकारलोप,
वोढा—विभक्तिकार्य।

(7) वोढुम्
वह् तुमुन्—'सोढुम्' की तरह।

(8) वोढव्यम्
वह् तव्यत्—'सोढव्यम्' की तरह।

(9) प्रष्ठवाट्
प्रष्ठ वह् ण्वि—'वहश्च' से 'ण्वि',
प्रष्ठ वह्—पूर्ववत् सर्वापहारलोप,
प्रष्ठ वाह् सु—'अत उपधायाः' से उपधावृद्धि, सुलोप,
प्रष्ठ वाढ्—प्रत्ययलक्षण से पदसंज्ञा, हो ढः,
प्रष्ठवाट्—झलां जशोऽन्ते, वाऽवसाने।

विशेष—'चोः कुः' (8.2.30) तथा 'हो ढः' (8.2.31)—इन दो सूत्रों के स्थान पर 'चुहोः कुढौ' इस प्रकार पाठ करने से लाघव होता है, परन्तु ऐसा करने से निम्नलिखित दोष प्रसक्त होता है।

'चुहोः कुढौ' इस योग की दशा में 'झलि' तथा 'अन्ते' इन पदों का अनुवर्त्तन होकर इसका अर्थ होगा—चवर्ग के स्थान पर कवर्ग आदेश होता है, झल् वर्ण परे रहते तथा हकार के स्थान पर ढकार होता है, पदान्त में। इस प्रकार पदान्त में कुत्व की अप्राप्ति तथा झल् परे रहते ढत्व की अप्राप्ति होती है। अतः यथासंख्य नियम के निवारण के लिए पृथक् योग किया गया है।

(3720) दादेर्धातोर्धः *32* (325)

दकारादेर्धातोर्हकारस्य घकारादेशो भवति झलि परतः,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पदान्ते च। दग्धा, दग्धुम्, दग्धव्यम्। काष्ठधक्। दोग्धा, दोग्धुम्, दोग्धव्यम्। (काष्ठधुक्।) गोधुक्। दादेरिति किम्? लेढा, लेढुम्, लेढव्यम्। गुडलिट्। 'धातोः' इति दादिसमानाधिकरणमेतन्न, किं तर्हि? तद्विशेषणमवयव-षष्ठ्यन्तम्–धातोरवयवो यो दादिः शब्दस्तदवयवस्य हकारस्येति। किं कृतं भवति? अधोगित्यत्रापि घकारः सिद्धो भवति। कथं दोग्धा, दोग्धुमिति? व्यपदेशिव-द्भावात्। अथ वा–धातूपदेशे यो दादिरित्येवं विज्ञायते। तथा च–दामलिहमिच्छति–दामलिह्यति, दामलिह्यतेः क्वि-प्रत्ययः–दामलिडित्यत्रापि न भवति।

अर्थ—दकारादि जो धातु, उसके हकार के स्थान पर घकार होता है, झल् वर्ण परे रहते तथा पदान्त में।

उदा० (1) दग्धा
दह् तृ—हकार को घकार,
दध् तृ—झषस्तथो०,
दघ् धृ—झलां जश् झशि,
दग्धृ सु—विभक्तिकार्य।

(2) दग्धुम्
दह् तुमुन्—अनुबन्धलोप,
दग् धुम्—पूर्ववत् घकार, धकार, जश्त्व,
दग्धुम् सु—विभक्तिकार्य।

(3) दग्धव्यम्
दह् तव्य—पूर्ववत् घकार, धकार,
दघ् धव्य—जश्त्व, सु।

(4) काष्ठधक्
काष्ठं दहति—इस अर्थ में 'क्विप्',
काष्ठ दह् सु—सर्वापहारलोप, सुलोप, पदसंज्ञा,
काष्ठ दघ्—घकार,
काष्ठ धघ्—'एकाचो बशो०' से धकार,
काष्ठधक्—झलां, जशोऽन्ते, वाऽवसाने।

(5) दोग्धा
दुह् तृच्—'दग्धा' की तरह।

(6) दोग्धुम्
दुह् तुमुन्—'दग्धुम्' की तरह।

(7) दोग्धव्यम्
दुह् तव्यत्—'दग्धव्यम्' की तरह।

(8) काष्ठधुक्[1]
काष्ठ दुह् क्विप्—प्रत्यय का सर्वापहारलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा,
काष्ठ दुह् सु—हल्ङ्यादिलोप, प्रत्ययलक्षण से पदसंज्ञा,
काष्ठदुघ्—दाऽऽदेर्धातोर्धः,
काष्ठ धुग्—'एकाचो बशो०' से धकार, 'झलां जशोऽन्ते' से गकार,
काष्ठधुक्—वाऽवसाने।

दादे०—दकारादि धातु के हकार के स्थान पर घकार होता है।

(9) लेढा
लिह् तृच्—हकार से पर झल् वर्ण (तकार) है, परन्तु धातु के आदि में दकार नहीं है, अतः हकार के स्थान पर घकार नहीं हुआ,
लिढ् तृ—'हो ढः' से ढकार,
लिढ् धृ—'झषस्तथो०' से धकार,
लिढ् ढृ—'ष्टुना ष्टुः' से ढकार, 'पुगन्तलघूप०' से लघूपध-गुण,
लेढा—ढो ढे लोपः, सु।

(10) लेढुम्
लिह् तुमुन्—पूर्ववत् ढकार, धकार, ढकार, गुण,
लेढ् ढुम्—ढो ढे लोपः, सु, विभक्तिकार्य।

(11) लेढव्यम्
लिह् तव्यत्—पूर्ववत् लघूपधगुण, ढकार,
लेढ् तव्य—धकार, ढकार, ढो ढे लोपः,
लेढव्य सु—विभक्तिकार्य।

(12) गुडलिट्
गुडं लेढि—क्विप्,
गुड् लिह्—सर्वापहारलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा,
गुड लिह् सु—हल्ङ्यादि लोप, पदसंज्ञा,
गुड लिड्—हो ढः, झलां जशोऽन्ते,
गुडलिट्—वाऽवसाने।

धातोः—यद्यपि 'दादेः' यह 'धातोः' का समानाधिकरण नहीं है। यहाँ अवयव अर्थ में षष्ठी है। तब इसका अर्थ इस प्रकार होता है—

1. काशिका में यहाँ 'काष्ठधक्' प्रयोग प्रदर्शित है। वस्तुतः यहाँ 'कामधुक्' जैसे प्रयोग उपयुक्त प्रतीत होते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धातु का अवयव जो दकारादि शब्द, उसके अवयवभूत हकार के स्थान पर (घकार आदेश होता है)।

इससे क्या लाभ होता है ? ऐसा मानने से 'अधोक्' इस स्थल पर घकार सिद्ध होता है।

(13) अधोक्

दुह् तिप्—लङ्, 'इतश्च' से इकार लोप, कर्त्तरि शप्, 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः' से 'शप्' का लुक्,

दुह् त्—'पुगन्तलघूपधस्य च' से लघूपधगुण,

दोह् त्—'हल्ङ्याब्भ्यो०' से लोप, प्रत्ययलक्षण से पदसंज्ञा,

दोह्—प्रकृत सूत्र से घकार,

दोघ्—'एकाचो बशो०' से घकार, 'झलां जशोऽन्ते' से गकार,

धोग्—वाऽवसाने, अट्।

कथं०—तब दोग्धा, दोग्धुम्—इत्यादि रूप किस प्रकार सिद्ध होते हैं ? व्यपदेशिवद्भाव से ये रूप सिद्ध हैं।

धातु का अवयव जो दकारादि शब्द, उसके अवयवभूत हकार को घकार होता है—ऐसा हो जाने पर उपर्युक्त स्थलों पर उसका अवयव हकार न होने से घकार आदेश प्राप्त नहीं होता है। हकार जिस समुदाय का अवयव है, वह धातु का ही है तथा हकार अवयव नहीं है।

(समा०) यह हकार व्यपदेशिवद्भाव से धातु का दकारादि अवयव है।

अथ०—(पूर्वोक्त दोष का प्रकारान्तर से समाधान दिया गया है)—अथवा धातु-उपदेश काल में जो दादि हो, उसे हकार को घकार होता है। यथा 'दामलिह्' धातु से 'क्विप्' प्रत्यय होकर 'दामलिट्' यहाँ भी नहीं होता है।

(14) दामलिट्

दाम लेढि—क्विप्, सर्वापहारलोप,

दामलिह् सु—विभक्तिकार्य,

दामलिहमिच्छति—सुप आत्मनः क्यच्,

दामलिह् य—अनुबन्धलोप, धातुसंज्ञा,

दामलिह्य क्विप्—सर्वापहारलोप,

दामलिह्—पूर्ववत्।

(3721) वा द्रुहमुहष्णुहष्णिहाम् *33* (327)

द्रुह, मुह, ष्णुह, ष्णिह–इत्येतेषां धातूनां हकारस्य वा घकारादेशो भवति झलि परतः, पदान्ते च। द्रुह्–द्रोग्धा, द्रोढा। मित्रध्रुक्, मित्रध्रुट्। मुह्–उन्मोग्धा, उन्मोढा। उन्मुक्, उन्मुट्। स्नुह्–उत्स्नोग्धा, उत्स्नोढा। उत्स्नुक्, उत्स्नुट्। स्निह्–स्नेग्धा, स्नेढा। स्निक्, स्निट्। द्रुहेर्दादित्वाद् घत्वं नित्यं प्राप्तम्, इतरेषामप्राप्तमेव घत्वं विकल्प्यते।

अर्थ—द्रुह, मुह, ष्णुह तथा ष्णिह—इन धातुओं के हकार के स्थान पर घकार आदेश विकल्प से होता है, झल् वर्ण परे रहते तथा पदान्त में।

उदा० (क) द्रुहः—

(1) द्रोग्धा

द्रुह् तृच्—हलन्त्यम्, 'हो ढः' से हकार के स्थान पर ढकार प्राप्त हुआ, 'दाऽऽदेर्धातोर्धः' से हकार को घकार प्राप्त हुआ,

द्रुघ् तृ—प्रकृत सूत्र से विकल्प से घकार,

द्रुघ् धृ—'झषस्तथो०' से धकार,

द्रुग् धृ—झलां जश् झशि,

द्रोग् धृ—'पुगन्तलघूप० से गुण,

द्रोग् धा—सु।

(2) द्रोढा

द्रुह् तृ—घकार अभाव पक्ष,

द्रुढ् तृ—हो ढः,

द्रोढ् ढृ—पूर्ववत् लघूपधगुण तथा धकार, 'ष्टुना ष्टुः' से ढकार,

द्रोढा—ढो ढे लोपः, सु।

(3) मित्रध्रुक्

मित्राय द्रुह्यति—क्विप् प्रत्यय, सर्वापहारलोप,

मित्रद्रुह् सु—प्रातिपदिकसंज्ञा, हल्ङ्यादि लोप, पदसंज्ञा,

मित्रद्रुघ्—पाक्षिक घकारादेश,

मित्रध्रुघ्—एकाचो बशो०,

मित्रध्रुक्—'झलां जशोऽन्ते' से गकार, 'वाऽवसाने' से चर्त्व।

(4) मित्रध्रुट्

मित्र द्रुह्—पूर्ववत्,

मित्र द्रुढ्—घकार अभाव पक्ष में 'हो ढः' से ढकार,

मित्र ध्रुढ्—भष्भाव,

मित्रध्रुट्—'झलो जशोऽन्ते' से जश्त्व, वाऽवसाने।

(ख) मुहः—

(5) उन्मोग्धा

उन्मुह् तृच्—'हो ढः' को बाध कर विकल्प से घकार,

उन्मुघ् धृ—'झषस्तथो०' से धकार,

उन्मोघ् धृ—लघूपधगुण,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उन्मोग् धृ सु—झलां जश् झशि, विभक्तिकार्य।

(6) उन्मोढा

उन्मुह् तृ—धकार अभाव पक्ष में 'हो ढः' से ढकार, पूर्ववत् तकार को धकार, ष्टुत्व से ढकार,

उन्मुद् ढृ—लघूपधगुण, ढो ढे लोपः,

उन्मोढा—सु।

(7) उन्मुक्

उन्मुह् सु—हल्ङ्यादि लोप, पदसंज्ञा,

उन्मु घ्—पाक्षिक घकारादेश,

उन्मुक्—झलां जशोऽन्ते, वाऽवसाने।

(8) उन्मुट्

उन्मुह्—पूर्ववत् पद संज्ञा,

उन्मुद्—धकार अभाव पक्ष में 'हो ढः' से ढकार,

उन्मुट्—झलां जशोऽन्ते, वाऽवसाने।

(ग) ष्णुहः—

(9) उत्स्नोग्धा

ष्णुह् → स्नुह्—'धात्वादेः षः सः' से सकार, निमित्त (षकार) के हट जाने पर नैमित्तिक (णकार) की निवृत्ति हो गई,

उद् स्नुह् तृ—'हो ढः' को बाध कर पाक्षिक घकार,

उद् स्नुघ् धृ—झषस्तथो०,

उत् स्नोघ् धृ—'खरि च' से तकार, लघूपधगुण,

उत् स्नोग् धृ सु—झलां जश् झशि, विभक्तिकार्य।

(10) उत् स्नोढा

उद् स्नुह् तृच्—पूर्ववत्,

उत् स्नोह् तृ—लघूपधगुण,

उत् स्नोद् धृ—धकार अभाव पक्ष में 'हो ढः' से ढकार, 'झषस्तथो०,

उत् स्नो ढृ सु—ष्टुना ष्टुः, ढो ढे लोपः, विभक्तिकार्य।

(11) उत्स्नुक्

उद् स्नुह्—सु, हल्ङ्यादि लोप, पदसंज्ञा,

उत् स्नुघ्—'खरि च' से तकार, 'हो ढः' को बाध कर पाक्षिक घकार,

उत् स्नुक्—झलां जशोऽन्ते, वाऽवसाने।

(12) उत् स्नुट्

उद् स्नुह्—पूर्ववत् पदसंज्ञा,

उत् स्नुद्—खरि च, घकार आदेश अभाव पक्ष में 'हो ढः' से ढकार,

उत् स्नुट्—झलां जशोऽन्ते, वाऽवसाने।

(घ) ष्णिहः—

(13) स्नेग्धा

ष्णिह् → स्निह्—पूर्ववत्,

स्निह् तृच्—लघूपधगुण, 'हो ढः' को बाध कर पाक्षिक घकार आदेश,

स्नेघ् तृ—'झषस्तथो०' से धकार,

स्नेघ् धृ—झलां जश् झशि,

स्नेग् धा—सु।

(14) स्नेढा

स्निह् तृच्—घकार अभाव पक्ष, लघूपधगुण,

स्नेद् तृ—हो ढः,

स्नेद् ढृ—झषस्तथो०, ष्टुना ष्टुः,

स्नेढा—ढो ढे लोपः, सु।

(15) स्निक्

स्निह्—सु, हल्ङ्यादिलोप, पदसंज्ञा,

स्निघ्—'हो ढः' को बाध कर पाक्षिक घकार,

स्निग्—झलां जशोऽन्ते,

स्निक्—वाऽवसाने।

(16) स्निट्

स्निह्—पूर्ववत् पद संज्ञा,

स्निद्—घकार अभाव पक्ष में—हो ढः,

स्निट्—झलां जशोऽन्ते, वाऽवसाने।

द्रुहे०—दकारादि 'द्रुह्' धातु को 'दाऽऽदेर्धातोर्घः' से हकार के स्थान पर घकार आदेश नित्य प्राप्त था। इसे विकल्प कह दिया है। मुह्, ष्णुह् तथा ष्णिह्—इन धातुओं को घत्व प्राप्त नहीं था। इनके हकार को अप्राप्त घकार विकल्प कहा है। अतः यह प्राप्ताप्राप्त विभाषा है।

(3722) नहो धः *34* (440)

नहो हकारस्य धकारादेशो भवति झलि परे पदान्ते च। नद्धम्, नद्धुम्, नद्धव्यम्। उपानत्। परीणत्।

अर्थ—नह् धातु के हकार के स्थान पर धकार आदेश होता है, झल् वर्ण परे रहते तथा पदान्त में।

उदा० (1) नद्धम्

नह् क्त—'लशक्वतद्धिते' से ककार की इत्संज्ञा,

न ध् त—'हो ढः' को बाध कर धकार,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

न ध् ध—'झषस्तथो०' से धकार,
न द् ध—'झलां जश् झशि' से दकार, सु।

(2) नद्धुम्
नह् तुमुन्—अनुबन्धलोप,
नद् धुम्—पूर्ववत् सभी कार्य, प्रातिपदिकसंज्ञा,
नद्धम् सु—लोप।

(3) नद्धव्यम्
नह् तव्यत्—सभी कार्य पूर्ववत्।

(4) उपानत्
उपानह् सु—'नहिवृति०' से दीर्घ हुआ है, प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, सु का लोप,
उपानध्—पदसंज्ञा, धकार,
उपानत्—झलां जशोऽन्ते, वाऽवसाने।

(5) परीणत्
परि नह् → परीणह्—पूर्ववत् दीर्घ, णत्व, हकार को धकार, जश्त्व, चर्त्व।

(3723) आहस्थः *35* (2451)

आहो हकारस्य थकारादेशो भवति झलि परतः। इदमात्थ। किमात्थ? आदेशान्तरकरणम्-'झषस्त-थोर्धो-ऽधः' (8.2.40) इत्यस्य निवृत्त्यर्थम्। 'झलि' इत्येव-आह, आहतु, आहुः। ह्मग्रहोर्भश्छन्दसि हस्येति वक्तव्यम्। गर्दभेन सम्भरति (तै०सं० 5.1.5.5)। ग्रभीता। जभ्रिरे। उद्ग्राभं च निग्राभं च ब्रह्मा देवा अवीवृधन् (तै०सं० 1.1.13.1)।

अर्थ—'आह्' के हकार के स्थान पर थकार आदेश होता है, झल् वर्ण परे रहते।

उदा० (1) आत्थ
ब्रू सिप्—लट्,
आह् थल्—'ब्रुवः पञ्चानामादितः०' से प्रकृति को 'आह्' आदेश तथा प्रत्यय को 'थल्',
आथ् थ—थकार,
आत्थ—'खरि च' से तकार।

आदेशा०—हकार को थकार आदेश होकर 'खरि च' से चर्त्व होता है। यदि 'आहनहोर्धः' इस प्रकार सूत्र का पाठ होता तो लाघव होता है तथा धकार को पूर्ववत् चर्त्व भी निर्बाध हो जाता है, परन्तु आचार्य ने ऐसा न करके 'झषस्तथो०' से प्राप्त धकार की निवृत्ति के लिए धकार के स्थान थकार इस प्रकार आदेशान्तर का विधान किया है। 'आह्' के हकार के स्थान पर यदि धकार आदेश किया जाता तो 'आध् थ' इस दशा में 'झषस्तथो०' से थकार को धकार होकर अनिष्ट रूप की प्राप्ति होती है।

झलि०—झल् वर्ण परे रहते 'आह्' के हकार को थकार होता है।

(2) आह
आह् णल्—लट्, तिप्, झल वर्ण परे न होने से हकार को थकार नहीं हुआ।

(3) आहतुः
आह् अतुस्—पूर्ववत्।

(4) आहुः
पूर्ववत् थकार नहीं हुआ।

ह्मग्रहो०—वेद के विषय में 'ह्म' तथा 'ग्रह्' धातुओं के हकार के स्थान पर भकार होता है।

(5) सम्भरति
सम् ह्म ति—लट्, शप्, गुण,
सम् भर् अ ति—भकार।

(6) ग्रभीता
ग्रह् तृच्—इट्, भकार,
ग्रह् इ तृ—ग्रहोऽलिटि दीर्घः,
ग्रभीता—सु।

(7) जभ्रिरे
ह्म झ—भकार,
भृ इरेच्—लिटस्तझयो०,
ज भ्रिरे—द्वित्व, अभ्यासकार्य,

(8) उद्ग्राभम्
उद् ग्रह् घञ्—'हलश्च' से 'घञ्' हुआ, अनुबन्धलोप,
उद् ग्राभ् अ—अत उपधायाः, भकार,
उद् ग्राभम्—सु।

(9) निग्राभम्
नि ग्रह् घञ्—पूर्ववत्।

(3724) व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयजराजभ्राज-च्छशां षः *36* (294)

व्रश्च, भ्रस्ज, सृज, मृज, यज, राज, भ्राज-इत्येतेषाम्,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

छकारान्तानाम्, शकारान्तानां च षकार आदेशो भवति झलि परतः, पदान्ते च। व्रश्च-व्रष्टा, व्रष्टुम्, व्रष्टव्यम्। मूलवृट्। भ्रस्ज-भ्रष्टा, भ्रष्टुम्, भ्रष्टव्यम्। धानाभृट्। सृज-स्रष्टा, स्रष्टुम्, स्रष्टव्यम्। रज्जुसृट्। मृज-मार्ष्टा, मार्ष्टुम्, मार्ष्टव्यम्। कंसपरिमृट्। यज-यष्टा, यष्टुम्, यष्टव्यम्। उपयट्। राज्-सम्राट्। स्वराट्। विराट्। भ्राज-विभ्राट्। राजभ्राजोः पदान्तार्थं ग्रहणम्, झलादिराभ्यामिटा पर्यवपद्यते। केचित्तु-राष्टिः, भ्राष्टिरिति क्तिन्नन्तमिच्छन्ति। छकारान्तानाम्-प्रच्छ-प्रष्टा, प्रष्टुम्, प्रष्टव्यम्। शब्दप्राट्। 'च्छ्वो शूडनुनासिके च' (6.4.19) इत्यत्र 'क्ङिति' इत्यनुवर्त्तते-इति छग्रहणमिह क्रियते। शकारान्तानाम्-लिश्-लेष्टा, लेष्टुम्, लेष्टव्यम्। लिट्। विश्-वेष्टा, वेष्टुम्, वेष्टव्यम्। विट्।

अर्थ—व्रश्च, भ्रस्ज्, सृज, मृज्, यज्, राज् तथा भ्राज्—इन अङ्गों के स्थान पर, छकारान्त अङ्गों के स्थान पर तथा शकारान्त अङ्गों के स्थान पर षकार आदेश होता है, झल् परे रहते तथा पदान्त में।

उदा० (क) व्रश्चः—

(1) व्रष्टा
व्रश्च् तृच्—षकार,
व्र स् ष् तृ—'स्कोः संयोगा०' से सकारलोप, ऊदित होने से पक्ष में इट् का अभाव,
व्र ष् टा—ष्टुना ष्टुः, सु।

(2) व्रष्टुम्
व्रश्च् तुमुन्—अनुबन्धलोप,
व्रष् टुम्—पूर्ववत्, विभक्ति।

(3) व्रष्टव्यम्
व्रश्च् तव्यत्—पूर्ववत् सभी कार्य।

(4) मूलवृट्
मूलं वृश्चति—मूलवृट्
मूल व्रश्च् क्विप्—सर्वापहारलोप,
मूल वृट्—सु, सुलोप, पदसंज्ञा, षकार, 'झलां जशोऽन्ते' से डकार, 'वाऽवसाने' से चर्त्व, 'ग्रहिज्या०' से सम्प्रसारण।

(ख) भ्रस्जः—

(5) भ्रष्टा
भ्रस्ज् तृच्—षकार,
भ्र स् ष् तृ—सकारलोप,
भ्रष् तृ—ष्टुना ष्टुः, सु।

(6) भ्रष्टुम्
भ्रस्ज् तुमुन्—सभी कार्य पूर्ववत्।

(7) भ्रष्टव्यम्
भ्रस्ज् तव्यत्—षकार, सकारलोप,
भ्रष् तव्य—ष्टुना ष्टुः, सु।

(8) धानाभृट्
धानाभ्रस्ज्—सम्प्रसारण, षकार,
धानाभृष्—'झलां जशोऽन्ते' से डकार, 'वाऽवसाने' से चर्त्व।

(ग) सृजः—

(9) स्रष्टा
सृज् तृच्—षकार,
सृ ष् तृ—'सृजिदृशोर्झल्य०' से 'अम्' आगम,
सृ अम् ष् तृ—मिदचोऽन्त्यात् परः,
स्रष् तृ—इको यणचि, ष्टुना ष्टुः,
स्रष्टा—सु।

(10) स्रष्टुम्
सृज् तुमुन्—अनुबन्धलोप,
सृ अम् ज् तुम्—पूर्ववत्,
स्रष् तुम्—यण्, ष्टुत्व, सु।

(11) स्रष्टव्यम्
सृज् तव्यत्—पूर्ववत् सभी कार्य।

(12) रज्जुसृट्
पूर्ववत् षकार, 'झलां जशोऽन्ते' से डकार, 'वाऽवसाने' से चर्त्व, सम्प्रसारण।

(घ) मृजः—

(13) मार्ष्टा
मृज् तृच्—षकार,
मार्ष् तृ—'मृजेर्वृद्धिः' से वृद्धि, उरण् रपरः,
मार्ष् टा—ष्टुत्व, सु।

(14) मार्ष्टुम्
मृज् तुमुन्—षत्व, वृद्धि,
मार्ष् तुम्—ष्टुत्व, सु।

(15) मार्ष्टव्यम्
मृज् तव्यत्—षकार, वृद्धि,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मार्ष् तव्य—ष्टुत्व, सु।

(16) कंसपरिमृट्
सम्प्रसारण, षकार, 'झलां जशोऽन्ते' से डकार, चर्त्व।

(ङ) यजः—

(17) यष्टा
यज् तृच्—षकार, हलन्त्यम्,
यष् तृ—ष्टुत्व, सु।

(18) यष्टुम्
यज् तुमुन्—पूर्ववत् षकार, ष्टुत्व, सु।

(19) यष्टव्यम्
यज् तव्यत्—षकार,
यष् तव्य—ष्टुत्व, सु।

(20) उपयट्
उप यज् विच्—'विजुपे छन्दसि' से 'विच्',
उप यज्—सर्वापहारलोप, प्रातिपदिकसंज्ञा, सु, सुलोप,
उपयष्—पदसंज्ञा, षकार,
उपयड्—झलां जशोऽन्ते,
उपयट्—वाऽवसाने।

(च) राजः—

(21) सम्राट्

सम्राज् सु—'मो राजि समः क्वौ' से मकार को मकार, सुलोप, प्रत्ययलक्षण से पदसंज्ञा,

सम्राष्—षकार,
सम्राड्—'झलां जशोऽन्ते' से डकार,
सम्राट्—वाऽवसाने।

(22) स्वराट्
स्वराज्—सभी कार्य पूर्ववत्।

(23) विराट्
विराज्—पूर्ववत्।

राज०—प्रकृत सूत्र में राज् तथा भ्राज् धातुओं का पदान्त के लिए ही ग्रहण है। कारण कि, इन धातुओं से पर इट् का व्यवधान होने से झल् वर्ण परे सम्भव नहीं है। अतः यहाँ इनके पदान्त में ही उदाहरण दिखाये गये हैं। कुछ विद्वान् झल् परे रहते राष्टिः तथा भ्राष्टिः आदि उदाहरण प्रदर्शित करते हैं। यथा—

(24) राष्टिः
राज् क्तिन्—'गुरोश्च हलः' से अकार प्राप्त हुआ, 'क्तिन्नाबादिभ्यः' से 'क्तिन्' प्रत्यय, अनुबन्धलोप,
राज् ति—आर्धधातुक वलादिक इट् प्राप्त, 'तितुत्रतथ०' से इट् निषेध,
राष् ति—षकार, ष्टुत्व, सु।

(25) भ्राष्टिः
भ्राज् ति—पूर्ववत्,
भ्राष् ति—षकार, ष्टुत्व, सु।

(छ) छकारान्तस्य—

(26) प्रष्टा
प्रच्छ् तृच्—षकार,
प्रष् तृ—ष्टुत्व,
प्रष्टा—सु।

(27) प्रष्टुम्
प्रच्छ् तुमुन्—पूर्ववत् षकार,
प्रष् तुम्—ष्टुत्व, सु।

(28) प्रष्टव्यम्
प्रच्छ् तव्यत्—पूर्ववत्।

(29) शब्दप्राट्
शब्दं पृच्छति—इस अर्थ में समास,
शब्द प्रच्छ् क्विप्—'क्विब्वचि०' से 'क्विप्', सर्वापहारलोप, दीर्घ,
शब्द प्राच्छ् सु—सुलोप, पदसंज्ञा,
शब्द प्राष्—षकार, 'झलां जशोऽन्ते' से डकार, 'वाऽवसाने' से चर्त्व।

च्छ्वो०—'च्छ्वोः शूडनुनासिके च' यहाँ 'क्ङिति' का अनुवर्त्तन है। अतः यहाँ छकार का ग्रहण किया जाता है।

यहाँ शंका है कि 'च्छ्वोः शूडनुना०' सूत्र से 'च्छ्' के स्थान पर शकार होता है। उस शकार को प्रकृत सूत्र के द्वारा षकार सिद्ध ही है। तब पृथक् छकार का ग्रहण व्यर्थ है।

(समा०) 'च्छ्वोः शूडनुनासि०' में 'क्ङिति' का अनुवर्तन है। अतः प्रकृत सूत्र में (अकित् व अङित् के लिए) छकार का ग्रहण किया गया है। अन्यथा पृष्टः तथा प्रष्टा आदि रूप सिद्ध न हो सकेंगे।

विशेष—कुछ विद्वान् प्रकृत सूत्र में छकार का ग्रहण व्यर्थ मानते हैं।[1] उनके अनुसार 'च्छ्वोः शूडनु०' में 'क्ङिति' का

1. न्यास 8.2.36.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुवर्तन नहीं होता है। तब 'द्युभ्याम्' इत्यादि 'ऊठ्' आदेश करने पर किस प्रकार होता है ? 'दिव उत्' सूत्र में तपरकरण से मात्राकाल हो जायेगा। अतः 'च्छशां षः' यहाँ 'च्छ' का ग्रहण नहीं करना चाहिए।

(ज) शकारान्तस्य—

(30) लेष्टा
लिश् तृच्—लघूपधगुण,
लेष् तृ—षकार,
लेष् टा—ष्टुना ष्टुः, सु।

(31) लेष्टुम्
लिश् तुमुन्—लघूपधगुण, षकार,
लेष् तुम्—ष्टुत्व, सु।

(32) लेष्टव्यम्
लिश् तव्यत्—पूर्ववत् सभी कार्य।

(33) लिट्
लिश् सु—प्रातिपदिक संज्ञा, सु, सुलोप, पदसंज्ञा,
लिष्—षकार,
लिड्—झलां जशोऽन्ते, वाऽवसाने।

(34) वेष्टा
विश् तृच्—'लेष्टा' की तरह।

(35) वेष्टुम्
विश् तुमुन्—'लेष्टुम्' की तरह।

(36) वेष्टव्यम्
विश् तव्यत्—'वेष्टव्यम्' की तरह।

(37) विट्
विश्—'लिट्' की तरह।

(3725) एकाचो बशो भष् झषन्तस्य ध्वो *37* (326)

धातोरवयवो य एकाच् झषन्तः तदवयवस्य बशः स्थाने भष् आदेशो भवति झलि सकारे ध्वशब्दे च परतः पदान्ते च। अत्र चत्वारो बशः स्थानिनः, भषादेशाश्चत्वार एव; तत्र संख्यातानुदेशे प्राप्ते डकारस्य स्थानिनोऽभावाद् ढकारादेशो न भवति? आन्तर्यतो व्यवस्था विज्ञास्यते। बुध्–भोत्स्यन्ते। अभुद्ध्वम्। अर्थभुत्। गुह्–निघोक्ष्यते। न्यघूढ्वम्। पर्णधुट्। दुह्–धोक्ष्यते। अधुग्ध्वम्। गोधुक्। अजर्घाः–गृधेर्यङ्लुगन्तस्य लङि सिपि लघूपधगुणे कृते सिपो हल्ङ्यादिलोपे च धातोरवयवस्यैकाचो बशः स्थाने भष्भावः, ततो धकारस्य जश्त्वम्, 'दश्च' (8.2.75) इति रुत्वम्, 'रो रि' (8.3.14) इति पूर्वरिफस्य लोपः, 'ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः' (6.3.111) इति दीर्घत्वम्। गर्दभयतेरप्रत्ययः–गर्धप्। एकाचः इति किम्? दामलिहमिच्छति दामलिह्यति, दामलिह्यतेरप्रत्ययः, दामलिट्। असत्येकाज्ग्रहणे, 'धातोः' इत्येतद् बशो विशेषणं स्यात्। बश इति किम्? क्रुध–क्रोत्स्यति। झषन्तस्येति किम्? दास्यति। स्ध्वोरिति किम्? बोद्धा, बोद्धुम्, बोद्धव्यम्। धकारस्य वकारोपसृष्टस्य ग्रहणं किम्? दादद्धि। 'दध धारणे' (धा०पा० 8) इत्येतस्य यङ्लुकि लोटि 'हुझल्भ्यो हेर्धिः' (6.4.101) इति धिभावे सत्येतद्भवति।

अर्थ—धातु का अवयव जो एकाच्, झषन्त, उसके अवयवभूत बश् वर्ण के स्थान पर भष् वर्ण होता है, झल्, सकार तथा ध्व—इनके परे रहते तथा पदान्त में।

अत्र०—स्थानी बश् (ब, ग, ड, द) चार वर्ण हैं तथा आदेश भष् (भ, घ, ढ, ध) भी चार वर्ण हैं। अतः यथासंख्यता प्राप्त होती है, परन्तु स्थानी डकार सम्भव नहीं है, अतः आदेश ढकार नहीं होता है। आन्तर्य से व्यवस्था होती है।

उदा० (1) भोत्स्यन्ते
बुध् झ—ल्रट् शेषे च,
बुध् स्य अन्त—स्यतासी०, झोऽन्तः,
भुध् स्य अन्त—भष् भाव,
भोध् स्य अन्त—लघूपधगुण,
भोत् स्य अन्त—'खरि च' से चर्त्व,
भोत् स्यन्ते—अतो गुणे, टित आत्मनेपदा०।

(2) अभुत्सत
बुध् त—पूर्ववत् भष् भाव तथा चर्त्व।

(3) अभुद्ध्वम् (यह न्यास व पदमञ्जरी में है)
बुध् ध्वम्—लुङ्,
बुध् स् ध्वम्—'धि च' से सकारलोप,
भुध् ध्वम्—भष् भाव, 'लिङ्सिचावा०' से किद्वत् होने से गुणाभाव,
अ भुद् ध्वम्—अट्।

(4) अर्थभुत्
अर्थ बुध् क्विप्—सर्वापहारलोप,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ बुध् सु—सुलोप, पदसंज्ञा,
अर्थ भुध्—भष् भाव,
अर्थ भुत्—झलां जशोऽन्ते, वाऽवसाने।

(5) निघोक्ष्यते
गुह् स्य त—पूर्ववत् ल्रट्, स्य,
गुद् स्य त—'हो ढः' से ढकार,
गोद् स्य त—पुगन्तलघूपधस्य च,
घोद् स्य त—भष् भाव,
घोक् स्यात—षढोः कः सि,
अघोक्षते—आदेशप्रत्यययोः, टित आत्मने०।

(6) न्यघूढ्वम्
गुह् ध्वम्—लुङ्,
गुह् स् ध्वम्—सिच्, 'धि च' से सकारलोप,
गुद् ध्वम्—हो ढः,
घुद् ध्वम्—भष् भाव,
घुद् द्वम्—ष्टुना ष्टुः,
घु द्वम्—ढो ढे लोपः,
अघूढ्वम्—ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः, अट्।

(7) पर्णघुट्
पर्ण गुह् क्विप्—सर्वापहारलोप,
पर्ण गुह् सु—सुलोप, पदसंज्ञा,
पर्ण गुद्—हो ढः,
पर्ण घुद्—भष् भाव,
पर्ण घुड्—झलां जशोऽन्ते,
पर्णघुट्—वाऽवसाने।

(8) धोक्ष्यते
दुह् स्य त—ल्रट्, स्य,
दुघ् स्य त—दाऽऽदेर्धातोर्धः,
दोघ् स्य त—पुगन्तलघूपधस्य च,
धोघ् स्य त—भष् भाव,
धोक् ष्य त—खरि च, आदेशप्रत्यययोः,
धो क् ष्य ते—टित आत्मनेपदा०।

(9) अधुग्ध्वम्
दुह् ध्वम्—लुङ्, सिच्,
दुह् स् ध्वम्—'धि च' से सकारलोप,
दुघ् ध्वम्—दाऽऽदेर्धातो०,
धुघ् ध्वम्—भष् भाव,
धुग् ध्वम्—झलां जश् झशि, अट्।

(10) गोधुक्
गोदुह् सु—सुलोप, पदसंज्ञा,
गोदुघ्—दाऽऽदेर्धातो०,
गो धुघ्—भष् भाव,
गोधुक्—झलां जशोऽन्ते, वाऽवसाने।

अजर्घाः०—अजर्घाः 'इस स्थल' पर 'गृध्' धातु से यङ्लुक् होकर लङ् लकार में 'सिप्' हुआ। लघूपधगुण करने पर 'सिप्' का हल्ङ्यादि लोप होने पर धातु के अवयव एकाच् बश् के स्थान पर भष् आदेश होता है। तब धकार के स्थान पर जश्त्व होता है। 'दश्च' से रुत्व आदेश होता है। 'रो रि' से पूर्व रेफ का लोप तथा 'ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः' से दीर्घादेश होता है।

(11) अजर्घाः
सिद्धि ऊपर दिखाई जा चुकी है। यहाँ 'कुहोश्चुः' से चुत्व, तथा 'रुग्रिकौ च लुकि' से 'रुक्' होता है।

(12) गर्धप्
गर्दभ णिच्—'तत्करोति तदाचष्टे' से,
गर्दभ्—'णाविष्ठवत् प्रातिपदिकस्य' से टिलोप, सु, सुलोप,
गर्धप्—भष् भाव, झलां जशोऽन्ते, वाऽवसाने।

एकाच०—एकाच् जो झषन्त, उसके अवयव बश्, उसके स्थान पर भष् आदेश होता है।

(13) दामलिट्
दामलिहम् इच्छति—सुप आत्मनः क्यच्,
दामलिह्य—धातुसंज्ञा, अप्रत्यय,
दामलिह्—हो ढः,
दामलिढ्—एकाच् नहीं है, झषन्त है, पदान्त में है; अतः बश् वर्ण दकार के स्थान पर भष वर्ण धकार नहीं हुआ,
दामलिट्—झलां जशोऽन्ते, वाऽवसाने।

बश्०—बश् के स्थान पर ही भष् आदेश होता है।

(14) क्रोत्स्यति
क्रुध् स्य ति—ल्रट् शेषे च, स्यतासी ल्लुटोः, सकार परे है, 'क्रुध्' एकाच् तथा झषन्त है, परन्तु ककार बश् वर्ण नहीं है, अतः भष् आदेश नहीं हुआ।
क्रोध् स्य ति—लघूपधगुण, खरि च।

झषन्त०—एकाच् झषन्त का अवयव जो बश्, उसके स्थान पर भष् होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(15) दास्यति

दा स्य ति—सकार परे है, 'दा' एकाच् है, परन्तु झषन्त नहीं है, अतः इसके अवयव बस् (दकार) को भष् (धकार) नहीं होता है।

स्ध्वोः—सकार तथा ध्व परे रहते बश् को भष् होता है।

(16) बोद्धा

बुध् तृ—लघूपधगुण,

बोध् धृ—झषस्तथो०, 'बोध्' एकाच् झषन्त है, परन्तु इससे पर न तो सकार है तथा न ही 'ध्व' शब्द है। अतः बश् (बकार) को भष् (भकार) नहीं होता है,

बोद् धृ सु—झलां जश् झशि।

(17) बोद्धुम्

बुध् तुमुन्—पूर्ववत् लघूपधगुण, तकार को धकार तथा धकार को जश्त्व, सु।

(18) बोद्धव्यम्

बुध् तव्यत्—पूर्ववत्।

धकार०—'ध्व' शब्द परे रहते 'बश्' को 'भष्' होता है। भाव यह है कि वकार से उपसृष्ट धकार (अर्थात् ध्व) के परे रहते ही बश् को भष् होता है।

(19) दादद्धि

दध०—यहाँ भष् भाव नहीं हुआ। 'दीर्घोऽकितः' से दीर्घ। 'दध' धारणे' से यङ्लुक् में लोट् म०पु० एकवचन का 'सिप्' हुआ। 'सेर्ह्यपिच्च' से 'हि' तथा 'हुझल्भ्यो हेर्धिः' से धि हुआ है।

(3726) दधस्तथोश्च *38* (2501)

'दध' इति दधातिः कृतद्विर्वचनो निर्दिश्यते। तस्य झलन्तस्य बशः स्थाने भष् आदेशो भवति तकारथकारयोः परतः, चकारात् स्ध्वोश्च परतः। धत्तः। धत्थः। धत्से। धत्स्व। धद्ध्वे। धद्ध्वम्। वचनसामर्थ्यादातो लोपस्य स्थानिवद्भावो न भवति, अभ्यासजश्त्वस्य चासिद्धत्वम्। तथोरिति किम्? आनन्तर्यात् स्ध्वोरेव विज्ञायेत। चकारस्तयोरनुवृत्त्यर्थः। 'झषन्तस्य' इत्येव–दधाति।

अर्थ—'दध' यह द्वित्व करके 'धा' का रूप है। झषन्त 'दध' के 'बश्' वर्ण के स्थान पर 'भष्' वर्ण आदेश होता है, तकार व थकार के परे रहते तथा सकार व ध्व शब्द के परे रहते। 'दध धारणे' का यहाँ ग्रहण नहीं है। वहाँ 'शप्' का व्यवधान होता है।

उदा० (1) धत्तः

धा तस्—शप्, जुहोत्यादिभ्यः श्लुः,

द धा तस्—'श्लौ' से द्वित्व, ह्रस्वः, अभ्यासे चर्च,

दध् तस्—'श्नाऽभ्यस्तयोरातः',

धध् तस्—भष् भाव,

धत् तस्—खरि च।

(2) धत्थः

धा थस्—पूर्ववत् द्वित्वादि,

द ध् थस्—आकारलोप,

ध त् थस्—भष् भाव, खरि च।

(3) धत्से

धा थास्—थासः से,

धा से—'श्लौ' से द्वित्व, ह्रस्वः,

द धा से—अभ्यासे चर्च,

ध धा से—भष् भाव,

ध ध् से—आकारलोप,

धत् से—खरि च।

(4) धत्स्व

धा स्व—सवाभ्यां वाऽमौ,

द धा स्व—पूर्ववत्, भष् भाव,

ध त् स्व—आकारलोप, खरि च।

(5) धद्ध्वम्

धा ध्वम्—लोट्, शप्, श्लु,

द धा ध्वम्—द्वित्व, अभ्यासकार्य,

ध ध् ध्वम्—आकारलोप,

ध द् ध्वे—झलां जश् झशि, सवाभ्यां वाऽमौ।

वचन०—वचनसामर्थ्य से आकारलोप का स्थानिवद्भाव नहीं होता है। अभ्यास का जश्त्व भी असिद्ध नहीं होता है।

तथो०—तकार व थकार के परे रहते ही बश् को भष् आदेश होता है।

आनन्तर्य से सकार तथा ध्व शब्द का ज्ञान होता है। चकार के द्वारा उनका अनुवर्त्तन होता है।

झष०—झषन्त का अवयव बश्, उसे भष् होता है।

(6) दधाति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धा ति—शप्, श्लु, द्वित्व,
द धा ति—ह्रस्वः, अभ्यासे चर्च, तकार परे है परन्तु 'दधा' झषन्त नहीं है, भष् भाव नहीं हुआ।

(3727) झलां जशोऽन्ते *39* (84)

झलां जश आदेशा भवन्ति पदस्यान्ते वर्तमानानाम्। वागत्र। श्वलिडत्र। अग्निचिदत्र। त्रिष्टुबत्र। अन्तग्रहणं झलीत्येतस्य निवृत्त्यर्थम्। वस्ता। वस्तव्यम्।

अर्थ—पदान्त में वर्त्तमान झल् वर्णों के स्थान पर जश् वर्ण आदेश होते हैं।

उदा० (1) वागत्र
वाक् अत्र—झल् (ककार) के स्थान पर जस् (गकार),
वाग् अत्र—रूप बना।

(2) श्वलिडत्र
श्वलिट् अत्र—पूर्ववत्।

(3) अग्निचिदत्र
अग्निचित् अत्र—पूर्ववत्।

(4) त्रिष्टुबत्र
त्रिष्टुप् अत्र—पूर्ववत्।

अन्त०—'अन्ते' पद का अधिकार स्वतः प्राप्त होने पर भी पुनः 'अन्ते' का ग्रहण अनुवृत्तिलभ्य 'झलि' पद की निवृत्ति के लिए है।

(5) वस्ता
वस् तृच्—यहाँ जश्त्व नहीं हुआ।

(6) वस्तव्यम्
वस् तव्यत्—जश्त्व नहीं हुआ।

(3728) झषस्तथोर्धोऽधः *40* (2280)

झष उत्तरयोस्तकारथकारयोः स्थाने धकार आदेशो भवति, दधातिं वर्जयित्वा। लब्धा। लब्धुम्। लब्धव्यम्। अलब्ध। अलब्धाः। दुह-दोग्धा। दोग्धुम्। दोग्धव्यम्। अदुग्ध। अदुग्धाः। लिह-लेढा। लेढुम्। लेढव्यम्। अलीढ। अलीढाः।बुध-बोद्धा। बोद्धुम्। बोद्धव्यम्। अबुद्ध। अबुद्धाः। अधः इति किम्? धत्तः। धत्थः।

अर्थ—झष् से उत्तर जो तकार व थकार, उनके स्थान पर धकार होता है, परन्तु 'धा' धातु को धकार आदेश नहीं होता है।

उदा० (1) लब्धा
लभ् तृच्—धकार,
लभ् धृ—झलां जश् झशि,
लब् धृ सु—विभक्तिकार्य।

(2) लब्धुम्
लभ् तुमुन्—अनुबन्धलोप, धकार,
लब् धुम् सु—पूर्ववत्।

(3) लब्धव्यम्
लभ् तव्यत्—धकार,
लब् धव्य सु—जश्त्व।

(4) अलब्ध
लभ् त—लुङ्,
लभ् स् त—सिच्, 'झलो झलि' से सकारलोप,
लभ् त—धकार,
अ लब् ध—जश्त्व, अट्।

(5) अलब्धाः
लभ् थास्—पूर्ववत् सलोप,
अ लब् धास्—धकार, जश्त्व, अट्।

(6) दोग्धा
दुह् तृ—पुगन्तलघूप०, दाऽऽदेर्धातोर्धः,
दोघ् धृ—झषस्तथो०, सु।

(7) दोग्धुम्
दुह् तुमुन्—अनुबन्धलोप, पुगन्तलघूप०,
दोघ् तुम्—दाऽऽदेर्धातो०,
दोघ् धुम्—झषस्तथो०,
दोग् धुम् सु—झलां जश् झशि।

(8) दोग्धव्यम्
दुह् तव्यत्—लघूपधगुण, घकार,
दोघ् तव्य—धकार,
दोग् धव्य सु—जश्त्व।

(9) अदुग्ध
दुह् स् त—लुङ्, सिच्,
दुघ् ध—धत्व, धत्व, सकारलोप,
अ दुग् ध—जश्त्व, अट्।

(10) अदुग्धाः
दुह् थास्—लुङ्,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दुघ् स् थास्—धत्व, धत्व, सिच्,
दु घ् धास्—सिच् लोप,
अ दुग् धास्—जश्त्व, अट्।

(11) लेढा
लिह् तृच्—हो ढः, पुगन्तलघूप०,
लेढ् तृ—झषस्तथो०, ष्टुत्व,
लेढृ सु—ढो ढे लोपः।

(12) लेढुम्
लिह् तुमुन्—अनुबन्धलोप,
लेढ् तुम्—लघूपधगुण, हो ढः,
लेढ् ढुम्—झषस्तथो०, ष्टुत्व, ढलोप, सु।

(13) लेढव्यम्
लिह् तव्यत्—हो ढः, पुगन्तलघूप०,
लेढ् तव्य—झषस्तथो०, ष्टुत्व,
ले ढव्य सु—ढलोपः।

(14) अलीढ
लिह् क्त—लशक्वतद्धि०, पूर्ववत् गुण, ढत्व, धत्व,
लिढ् ढ—ष्टुना ष्टुः, ढलोप,
लिढ सु—ढ्रलोपे पूर्वस्य०, अट्।

(15) अलीढाः
लिह् थास्—हो ढः,
लिढ् धास्—झषस्तथो०,
लिढ् स् धास्—सिच्, सलोप, ष्टुत्व,
लिढ् ढास्—ढो ढे लोपः,
अलीढाः—ढ्रलोपे पूर्वस्य०, अट्।

(16) बोद्धा
बुध् तृच्—लघूपधगुण,
बोध् धृ—झषस्तथो०,
बोद् धृ सु—झलां जश् झशि, सु।

(17) बोद्धुम्
बुध् तुमुन्—गुण,
बोध् तुम्—धत्व,
बोध् धुम्—जश्त्व, सु।

(18) बोद्धव्यम्
बुध् तव्य—गुण,
बोध् धव्य—झषस्तथो०,
बोध् धव्य सु—झलां जश् झशि।

(19) अबुद्ध
बुध् त—लुङ्,
बुध् ध—झषस्तथो०,
बुध् स् ध—सिच्,
अ बुद् ध—सलोप, जश्त्व, अट्।

(20) अबुद्धाः
बुध् थास्—लुङ्,
बुध् स् धास्—धत्व, सिच्,
बुध् धास्—सलोप,
अ बुद् धास्—झलां जश् झशि।

अध०—धा धातु को छोड़कर धकार होता है।

(21) धत्तः
द धा तस्—शप् को श्लु, द्वित्व, ह्रस्वः, अभ्यासे चर्च,
दध् तस्—'धा' धातु का झषन्त 'दध्' है। अतः धकार नहीं हुआ। आकारलोप, भष् भाव, खरि च।

(22) धत्थः
द धा थस्—पूर्ववत्,
ध ध् थास्—श्नाऽभ्यस्तयो०, एकाचो बशो०, खरि च।

(3729) षढोः कः सि *41* (295)

षकारढकारयोः ककारादेशो भवति सकारे परतः। षकारस्य, पिष्-पेक्ष्यति। अपेक्ष्यत्। पिपक्षति। ढकारस्य, लिह्-लेक्ष्यति। अलेक्ष्यत्। लिलिक्षति। सीति किम्? पिनष्टि। लेढि।

अर्थ—षकार तथा ढकार के स्थान पर ककार आदेश होता है, सकार परे रहते।

उदा० (क) षकारस्य—
(1) पेक्ष्यति
पिष् ति—ल्ट् शेषे च,
पिष् स्य ति—स्यतासी ल्०,
पेक् स्य ति—लघूपधगुण, ककार,
पेक् ष्य ति—षकार।

(2) अपेक्ष्यत्
पिष् त्—लङ्, 'इतश्च' से इकारलोप,
पेष् स्य त्—लघूपधगुण,
पेक् स्य त्—ककार,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अ पेक् ष्य त्—षत्व, अट्।

(3) पिपिक्षति
पिब् सन्—'हलन्ताच्च' से किद्वत्, गुणनिषेध,
पि पिब् स—सन्यङोः, हलादिः शेषः,
पि पिक् स—षकार,
पि पि क्ष—षत्व, धातुसंज्ञा,
पि पिक्ष शप् ति—अतो गुणे।

(ख) ढकारस्य—

(4) लेक्ष्यति
लिह् स्य ति—ल्रट्, स्य,
लेढ् स्य ति—लघूपधगुण, हो ढः,
लेक् स्य ति—ककार, षत्व।

(5) अलेक्ष्यत्
लिह् स्य त्—ल्रङ्, इतश्च,
लेढ् स्य त्—लघूपधगुण, ढकार,
लेक् स्य त्—ककार,
अ लेक् ष्य त्—षत्व, अट्।

(6) लिलिक्षति
लिह् सन्—हलन्ताच्च, गुणनिषेध,
लि लिह् स—हलादिः शेषः, हो ढः,
लि लिढ् स—ककार,
लि लिक् ष—षत्व, धातुसंज्ञा,
लि लिक्ष शप् तिप्—अतो गुणे।

सीति०—सकार परे रहते ही ककार होता है।

(7) पिनष्टि
पिष् ति—'कर्त्तरि शप्' को बाध कर, रुधादिभ्यः श्नम्,
पि श्नम् ष् ति—मिदचोऽन्त्यात् परः, अनुबन्धलोप,
पिनष् ति—षकार से पर तकार है, परे सकार न होने से षकार को ककार नहीं हुआ,
पिनष् टि—ष्टुना ष्टुः।

(8) लेढि
लिह् ति—हो ढः,
लेढ् ति—पुगन्तलघूपधस्य च, ढकार से परे सकार नहीं है, अतः ककार नहीं हुआ,
लेढ् धि—झषस्त०,
लेढि—ष्टुत्व, ढलोप।

(3730) रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः *42* (3016)

रेफदकाराभ्यामुत्तरस्य निष्ठातकारस्य नकार आदेशो भवति पूर्वस्य च दकारस्य। रेफान्तात्तावत्–आस्तीर्णम्। विस्तीर्णम्। विशीर्णम्। निगीर्णम्। अवगूर्णम्। दकारात्–भिन्नः, भिन्नवान्। छिन्नः, छिन्नवान्। रदाभ्यामिति किम्? कृतः, कृतवान्। 'र' इत्यत्र रश्रुतिसामान्यं नोपादीयते, किं तर्हि? व्यञ्जनमात्रम्। रेफसामान्यनिर्देशेऽपि सति रेफात्परा याऽज्भक्तिस्तद्व्यवधानान्नत्वं न भवति। निष्ठेति किम्? कर्त्ता, हर्ता। त इति किम्? चरितम्। मुदितम्। पूर्वस्येति किम्? परस्य मा भूत्–भिन्नवद्धयाम्। भिन्नवद्भिः। इह कृतस्यापत्यं कार्तिरिति वृद्धेर्बहिरङ्गलक्षणाया असिद्धत्वात् नत्वे कर्त्तव्ये रेफस्यासिद्धत्वम्।

अर्थ—रेफ तथा दकार से उत्तर निष्ठा के तकार के स्थान पर नकार आदेश होता है तथा पूर्व दकार के स्थान पर नकार होता है।

उदा० (क) रेफात्—

(1) आस्तीर्णम्
स्तृ क्त—लशक्वतद्धिते,
स्तिर् त—ऋत इद् धातोः, उरण् रपरः,
स्तीर् त—'हलि च' से दीर्घ, 'श्र्युकः किति' से इट् निषेध,
आ स्तीर् ण—नकार, रषाभ्यां नो०, सु।

(2) विस्तीर्णम्
स्तृ क्त—पूर्ववत्।

(3) विशीर्णम्
शृ क्त—पूर्ववत् इत् आदेश, दीर्घ, इट् निषेध,
शीर् त—नकार, णत्व,
वि शीर् ण सु—विभक्तिकार्य।

(4) निगीर्णम्
गृ क्त—पूर्ववत् सभी कार्य।

(5) अवगूर्णम्
गुर् क्त—'श्वीदितो निष्ठायाम्' से इट् निषेध,
गुर् न—नकार,
गूर् ण—हुलि च, रषाभ्यां नो०,
अवगूर्ण सु—विभक्तिकार्य।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(ख) दकारात्—

(6) भिन्नः
भिद् क्त—लशक्वत०, गुणनिषेध,
भिन् न—नकार,
भिन्न सु—विभक्तिकार्य।

(7) भिन्नवान्
भिद् क्तवतु—पूर्ववत्।

(8) छिन्नः
छिद् क्त—पूर्ववत्।

(9) छिन्नवान्
छिद् क्तवतु—पूर्ववत्।

रदाभ्या०—रेफ व दकार से उत्तर निष्ठा को नकार होता है।

(10) कृतः
कृ क्त—निष्ठा का तकार है, यह न तो रेफ से उत्तर है तथा न ही दकार से उत्तर है, नकार नहीं हुआ,
कृत सु—विभक्तिकार्य।

(11) कृतवान्
कृ क्तवतु—पूर्ववत्।

र इत्यत्र०—सूत्रस्थ 'र' के द्वारा रेफश्रुति मात्र का ग्रहण नहीं होता है तो किसका ग्रहण होता है ? रेफ व्यञ्जनमात्र का। रेफ सामान्य का निर्देश होने पर भी रेफ से उत्तर जो अच् भक्ति, उसके व्यवधान से नकार आदेश नहीं होता है।

निष्ठेति०—निष्ठा के तकार को नकार होता है।

(12) कर्त्ता
कृ तृच्—आर्धधातुकं शेषः, सार्वधातुकार्धधा० से गुण,
कर् तृ—रेफ से उत्तर तकार है, परन्तु वह निष्ठा का नहीं है, अतः नकार नहीं हुआ।
कर्तृ सु—अचो रहाभ्यां द्वे, विभक्तिकार्य।

(13) हर्त्ता
हृ तृच्—पूर्ववत्।

त इति०—तकार के स्थान पर नकार होता है।

(14) चरितम्
चर् क्त—इट्,
चरि त—नकार नहीं हुआ, सु।

(15) मुदितम्
मुद् क्त—इट्, नकार नहीं हुआ।

पूर्वस्ये०—रेफ तथा दकार से उत्तर तकार को नकार होता है। पूर्व दकार के स्थान पर नकार होता है, ताकि पर (दकार) को नकार न हो।

(16) भिन्नवद्भ्याम्
पर दकार के स्थान पर नकार नहीं हुआ।

(17) भिन्नवद्भिः (पूर्ववत्)।

इह०—यहाँ 'कृतस्याऽपत्यम्' इस अर्थमें 'कार्त्तिदः' बनता है। बहिरङ्ग लक्षण वृद्धि के असिद्ध होने से नकार आदेश करने में रेफ असिद्ध होता है।

(3731) संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः *43* (3017)

संयोगादेर्यो धातुराकारान्तो यण्वान् तस्मादुत्तरस्य निष्ठातकारस्य नकारादेशो भवति। प्रद्राणः, प्रद्राणवान्। म्लानः, म्लानवान्। संयोगादेरिति किम्? यातः, यातवान्। आत इति किम्? च्युतः, च्युतवान्। प्लुतः, प्लुतवान्। धातोरिति किम्? निर्यातः। निर्वातः। यण्वत इति किम्? स्नातः, स्नातवान्।

अर्थ—संयोग है आदि में जिसके, ऐसा आकारान्त तथा यण्-वान् धातु, उससे उत्तर निष्ठा के तकार के स्थान पर नकार आदेश होता है।

उदा० (1) प्रद्राणः
प्र द्रा क्त—'द्रा' संयोगादि तथा अकारान्त धातु है, रेफ से युक्त होने से यण्वान् है,
प्र द्रा न—तकार को नकार, कृत्यचः,
प्रद्राण—सु।

(2) प्रद्राण वान्
प्र द्रा क्तवतु—पूर्ववत्।

(3) म्लानः
म्लै क्त—आदेच उपदेशेऽशिति,
म्ला त—नकार, सु।

(4) म्लानवान्
म्लै क्तवतु सु—पूर्ववत्।

संयोगा०—संयोगादि जो धातु, उससे उत्तर तकार को नकार होता है।

(5) यातः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

या क्त—लशक्वतद्धिते,
या त—आकारान्त धातु है, यण्वान् है; परन्तु संयोगादि नहीं है, अतः तकार को नकार नहीं हुआ, सु।

(6) यातवान्
या क्तवतु—पूर्ववत्।

आत०—आकारान्त, संयोगादि, यण्वान् धातु से उत्तर तकार को नकार होता है।

(7) च्युतः
च्यु क्त—'च्यु' धातु यण्वान् तथा संयोगादि है, परन्तु आकारान्त नहीं है,
च्युत सु—तकार को नकार नहीं हुआ।

(8) च्युतवान्
च्यु क्तवतु—पूर्ववत्।

(9) प्लुतः
प्लु क्त—पूर्ववत्।

(10) प्लुतवान्
प्लु क्तवतु—पूर्ववत्।

धातो०—धातु से उत्तर तकार को नकार होता है।

(11) निर्यातः
निर् या क्त—'र्‌य्' यह संयोग है। आकारान्त धातु है; परन्तु संयोग धातु का अंग नहीं है। अतः नत्व नहीं हुआ,
निर् या त सु—विभक्तिकार्य।

(12) निर्वातः
निर् वा क्त—पूर्ववत् नत्व का निषेध।

यण्वत०—यण्वान्, संयोगादि तथा आकारान्त धातु से उत्तर तकार को नकार होता है।

(13) स्नातः
स्ना क्त—'स्ना' आकारान्त तथा संयोगादि है, परन्तु यण्वान् नहीं है। अतः नत्व नहीं हुआ।

(14) स्नातवान्
स्ना क्तवतु—पूर्ववत्।

(3732) ल्वादिभ्यः *44* (3018)

'लूञ् छेदने' (धा०पा० 1484)—इत्येतत्प्रभृति 'वृ वरणे' (धा०पा० 1487) इति यावत् वृत्करणेन समापिता ल्वादयो गृह्यन्ते। तेभ्य उत्तरस्य निष्ठातकारस्य नकारादेशो भवति। लूनः, लूनवान्। धूनः, धूनवान्। जीनः, जीनवान्। *ऋकारल्वादिभ्यः क्तिन्निष्ठावद्भवतीति वक्तव्यम्*। कीर्णिः। गीर्णिः। शीर्णिः। लूनिः। पूनिः। *दुग्वोर्दीर्घश्चेति वक्तव्यम्*। दु—आदूनः। गु—विगूनः। *पूञो विनाश इति वक्तव्यम्*। पूना यवाः। विनष्टा इत्यर्थः। विनाश इति किम्? पूतं धान्यम्। *सिनोतेर्ग्रासकर्मकर्तृकस्येति वक्तव्यम्*। सिनो ग्रासः स्वयमेव। ग्रासकर्मकर्तृकस्येति किम्? सिता पाशेन सूकरी। ग्रासोऽपि यदा कर्मैव भवति न कर्मकर्ता, तदा न भवति—सितो ग्रासो देवदत्तेनेति।

अर्थ—यहाँ 'लूञ् छेदने' धातु से लेकर 'वृ वरणे' धातु तक सभी धातुओं का ग्रहण होता है। उक्त धातुओं से उत्तर निष्ठा के तकार के स्थान पर नकार आदेश होता है।

उदा० (1) लूनः
लू क्त—तकार को नकार,
लून—प्रातिपदिक संज्ञा,
लूनः—सु।

(2) लूनवान्
लू क्तवतु—पूर्ववत्।

(3) धूनः
धू क्त—पूर्ववत्।

(4) धूनवान्
धू क्तवतु—पूर्ववत्।

(5) जीनः
ज्या क्त—लशक्वत०,
जि न—'ग्रहिज्या०' से सम्प्रसारण,
जी न—'हलः' से दीर्घ,
जीन सु—विभक्तिकार्य।

(6) जीनवान्
ज्या क्तवतु—पूर्ववत्।

ऋकार०—ऋकारान्त तथा ल्वादि धातुओं से उत्तर क्तिन् प्रत्यय निष्ठा के समान होता है।

(7) कीर्णिः
कृ क्तिन्—अनुबन्धलोप,
किर् ति—ऋत इद्धातोः,
कीर् नि—दीर्घ, अतिदेश होने से नत्व,
कीर् णि सु—णत्व।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(8) गीर्णः
गृ क्तिन्—पूर्ववत्।

(9) शीर्णः
शॄ क्तिन्—पूर्ववत्।

(10) लूनिः
लू क्तिन्—अनुबन्धलोप, नकार, सु।

(11) पूनिः
पू क्तिन्—क्लिशः क्त्वानिष्ठयोः, पूङश्च, शेष पूर्ववत्।

दुग्वो०—दु तथा गु धातुओं से परे निष्ठासंज्ञक प्रत्यय के तकार के स्थान पर नकार होता है तथा प्रकृति को दीर्घादेश होता है।

(12) आदूनः
आ दु क्त—लशक्वतद्धिते,
आ दू न—दीर्घत्व, नत्व,
आदूनः—सु।

(13) विगूनः
वि गु क्त—पूर्ववत्।

पूञो०—विनाश अर्थ में वर्त्तमान पूञ् धातु से उत्तर निष्ठा के तकार को नकार होता है।

(14) पूनाः (यवाः)

विनाश०—विनाश अर्थ में ही तकार को नकार होता है।

(15) पूतं धान्यम्
पू क्त—ककार की इत्संज्ञा,
पू त—नत्व नहीं हुआ,
पूत सु—विभक्तिकार्य।

सिनोते०—ग्रास के कर्मकर्त्ता की विवक्षा में 'षिञ् बन्धने' धातु से उत्तर निष्ठा के तकार को नकार होता है।

(16) सिनः (ग्रासः)
षिञ् → सि—हलन्त्यम्, धात्वादेः षः सः,
सि क्त—नकार, सु।

ग्रास०—कर्मकर्त्ता अर्थ में ही षिञ् से उत्तर तकार को नकार होता है।

सिता पाशेन सूकरी
सि क्त—यहाँ कर्मकर्त्ता अर्थ नहीं है, तकार को नकार नहीं हुआ,
सित टाप् सु—अजाद्यतष्टाप्।

ग्रासो०—'ग्रास' भी जब कर्मकर्ता न होकर कर्म ही होता है, तब तकार को नकार नहीं होता है। यथा—

सितो ग्रासो देवदत्तेन।

(3733) ओदितश्च *45* (3019)

ओकारेतो धातोरुत्तरस्य निष्ठातकारस्य नकारादेशो भवति। ओलस्जी (धा०पा० 1317)–लग्नः, लग्नवान्। ओविजी (धा०पा० 1315) उद्विग्नः, उद्विग्नवान्। 'ओप्यायी वृद्धौ' (धा०पा० 488)–आपीनः, आपीनवान्। स्वादय ओदितः (दिवादिगण)। षूङ्–सूनः, सूनवान्। दूङ्–दूनः, दूनवान्। दीङ्–दीनः, दीनवान्। डीङ्–डीनः, डीनवान्। धीङ्–धीनः, धीनवान्। मीङ्–मीनः, मीनवान्। रीङ्–रीणः, रीणवान्। लीङ्–लीनः, लीनवान्। व्रीङ्–व्रीणः, व्रीणवान्।

अर्थ—दीर्घ ओकार है इत् जिसका, ऐसे धातु से उत्तर निष्ठा के तकार के स्थान पर नकार आदेश होता है।

उदा० (1) लग्नः
ओलस्जी क्त—अनुबन्धलोप,
लस्ज् त—
लग् त—सकारलोप 'स्कोः०' कुत्व,
लग् न—नत्व, सु।

(2) लग्नवान्
लस्ज् क्तवतु—पूर्ववत्।

(3) उद्विग्नः
ओ विजी → विज्—अनुबन्धलोप,
विज् क्त—ककार की इत्संज्ञा,
विग् त—कुत्व,
उद् विग् न—नत्व।

(4) उद्वान्
उद् विज् क्तवतु—पूर्ववत्।

(5) आपीनः
ओप्यायी क्त—अनुबन्धलोप,
आ पी न—प्यायः पी, नकार आदेश, सु।

(6) आपीनवान्
प्याय् क्तवतु—पूर्ववत्।

स्वादय०—'सु' आदि धातु ओदित् हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(7) सूनः
षूङ् क्त—धात्वादेः षः सः, हलन्त्यम्, लंशक्व०,
सून—नत्व,
सूनः—सु।

(8) सूनवान्
सू क्तवतु—पूर्ववत्।

(9) दूनः
दूङ् क्त—लशक्व०, हलन्त्यम्,
दून—नत्व, सु।

(10) दूनवान्
दू क्तवतु—पूर्ववत्।

(11) दीनः
दीङ् क्त—अनुबन्धलोप,
दीन—नत्व।

(12) दीनवान्
दी क्तवतु—पूर्ववत्।

(13) डीनः
डीङ् क्त—पूर्ववत्।

(14) डीनवान्
डी क्तवतु—पूर्ववत्।

(15) धीनः
धीङ् क्त—पूर्ववत्।

(16) धीनवान्
धी क्तवतु—पूर्ववत्।

(17) मीनः
मीङ् क्त—पूर्ववत्।

(18) मीनवान्
मी क्तवतु—पूर्ववत्।

(19) रीणः
रीङ् क्त—पूर्ववत्।

(20) रीणवान्
री क्तवतु—नत्व।

(21) लीनः
लीङ् क्त—नकार आदेश।

(22) लीनवान्
ली क्तवतु—पूर्ववत्।

(23) व्रीणः
व्रीङ् क्त—पूर्ववत्।

(24) व्रीणवान्
व्री क्तवतु—पूर्ववत्।

(3734) क्षियो दीर्घात् *46* (3015)

क्षियो धातोर्दीर्घादुत्तरस्य निष्ठातकारस्य नकारादेशो भवति। क्षीणाः क्लेदाः। क्षीणो जाल्मः। क्षीणस्तपस्वी। क्षियः 'निष्ठायामण्यदर्थे' (6.4.60), 'वाऽऽक्रोशदैन्ययोः' (6.4.61) इति दीर्घत्वं भवति। दीर्घादिति किम्? 'अक्षितमसि मामेक्षेष्ठाः'। अक्षितमिति क्तप्रत्ययो भावे, भावश्च ण्यदर्थ इति दीर्घाभावः। ह्रस्वस्यापि हि धात्वनुकरणस्य इह इयङा निर्देशः। क्षियः 'निष्ठायामण्यदर्थे' (6.4.60) इत्यत्र दीर्घग्रहणं क्रियते। 'विपराभ्यां जेः' (1.3.19) इत्येवमादौ तु धातुत्वमनुकार्यगतं सदप्यविवक्षितत्वात् जिरूपसामान्यानुकरणं द्रष्टव्यम्।

अर्थ—दीर्घीभूत 'क्षि' धातु से उत्तर निष्ठा के तकार को नकार आदेश होता है।

विशेष ग्रहण न होने से यहाँ 'क्षि क्षये' तथा 'क्षि निवासगत्योः' दोनों का ग्रहण होता है।

उदा० (1) क्षीणाः (क्लेदाः)
क्षि क्त—'क्तोऽधिकरणे च' से कर्त्ता अर्थ में निष्ठा,
क्षी न—'निष्ठायामण्यदर्थे' से दीर्घ, नकार,
क्षीण जस्—णत्व।

(2) क्षीणो जाल्मः
पूर्ववत् नकार।

(3) क्षीणस्तपस्वी
'वाऽऽक्रोशदैन्ययोः' से दीर्घादेश।

दीर्घा०—दीर्घीभूत क्षि से उत्तर तकार को नकार होता है।

(4) अक्षितम्
क्षि क्त—यहाँ नकार नहीं हुआ। 'क्त' प्रत्यय भाव अर्थ में है, भाव ण्यदर्थ है। अतः दीर्घ नहीं हुआ।

ह्रस्व०—सूत्र में ह्रस्व क्षि धातु को इयङ् आदेश करके 'क्षियः' इस प्रकार निर्देश किया गया है। क्षि धातु का 'निष्ठायामण्यदर्थे' यहाँ दीर्घ ग्रहण किया जाता है।

विपरा०—'विपराभ्यां जेः' इत्यादि लक्षणों में धातु के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुकार्यगत होते हुए भी विवक्षित न होने से 'जि' इस प्रकार रूपसामान्य का अनुकरण जानना चाहिए।

(3735) श्योऽस्पर्शे *47* (3021)

श्यायतेरुत्तरस्य निष्ठातकारस्यास्पर्शे नकार आदेशो भवति। शीनं घृतम्। शीनं मेदः। शीना वसा। अस्पर्श इति किम्? शीतं वर्तते। शीतो वायुः। शीतमुदकम्–इत्यत्र गुणभूतोऽपि स्पर्शो नत्वप्रतिषेधस्य सम्प्रसारणस्य च निमित्तं भवति। गुणे च स्पर्शे प्रतिषेधोऽयम्, न रोगे, तेन प्रतिशीन इत्यत्र नत्वं भवत्येव।

अर्थ—स्पर्श अर्थ से भिन्न अर्थ में वर्त्तमान 'श्यैङ् गतौ' धातु से उत्तर निष्ठा के तकार के स्थान पर नकार होता है।

उदा० (1) शीनम् (घृतम्)

श्यैङ् क्त—'हलन्त्यम्' से ङकार की इत्संज्ञा, 'लशक्वतद्धिते' से ककार की इत्संज्ञा,

शि न—नकार 'द्रवमूर्त्तिस्प०' से सम्प्रसारण,

शीन सु—'हलः' से दीर्घ,

इसी प्रकार शीनं मेदः तथा शीना वसा।

अस्पर्शे०—स्पर्श अर्थ में तकार को नकार नहीं होता है।

(2) शीतः (वायुः)

श्यै त—स्पर्श अर्थ है, नकार नहीं हुआ,

शीत सु—सम्प्रसारण, दीर्घत्व।

शीतमु०—'शीतम् उदकम्'—यहाँ स्पर्श गुणभूत है। अतः यह नकारनिषेध व सम्प्रसारण का निमित्त होता है।

गुणे०—स्पर्श के गुणभूत होने पर ही यह निषेध प्रवृत्त होता है; 'रोग' में नहीं। अतः 'प्रतिशीन' में नकार होता ही है।

(3) प्रतिशीनः

प्रति श्यै क्त—सम्प्रसारण, दीर्घत्व, नकार।

(3736) अञ्चोऽनपादाने *48* (3024)

अञ्चतेरुत्तरपदस्य निष्ठातकारस्य नकारादेशो भवति न चेदपादानं तत्र भवति। समक्नौ शकुनेः पादौ। तस्मात्पशवो न्यक्नाः। अनपादान इति किम्? उदक्तमुदकं कूर्यात्। व्यक्तमित्येतदञ्चेः रूपम्।

अर्थ—यदि अपादान न हो तो अञ्च् धातु से उत्तर निष्ठा के तकार के स्थान पर नकार आदेश होता है।

उदा० (1) समक्नौ शकुनेः पादौ

सम् अञ्च् क्त—'स्वरति०' से इट् का विकल्प, 'यस्य विभाषा' से इट् निषेध, लशक्वतद्धि०,

सम् अच् त—'अनिदिताम्०' से अनुनासिकलोप,

सम् अक् न—नकार, कुत्व,

समक्न औ—प्रातिपदिक संज्ञा, वृद्धिरेचि।

अनपा०—अपादान में सूत्रोक्त नकार नहीं होता है।

(2) उदक्तमुदकं कूपात्

उद् अञ्च् क्त—अपादान अर्थ है, नकार नहीं हुआ,

उद् अक् त—अनुनासिकलोप, कुत्व,

उदक्त सु—अतोऽम्।

(3737) दिवोऽविजिगीषायाम् *49* (3028)

दिव उत्तरस्य निष्ठातकारस्य नकारादेशो भवति अविजिगीषायामर्थे। आद्यूनः। परिद्यूनः। अविजिगीषायामिति किम्? द्यूतं वर्तते। विजिगीषया हि तत्राक्षपातनादि क्रियते।

अर्थ—विजिगीषा अर्थ से अन्यत्र दिव् से उत्तर निष्ठा के तकार के स्थान पर नकार होता है।

उदा० (1) आद्यूनः

दिव् क्त—लशक्वतद्धिते,

दिव् न—नकार,

द्यून सु—'च्छ्वोः शूडनु०' से 'ऊठ्' आदेश, यण्।

(2) परिद्यूनः

परि दिव् क्त—पूर्ववत्।

अविजि०—विजिगीषा अर्थ से अन्यत्र दिव् से उत्तर तकार को नकार होता है।

(3) द्यूतम्

दिव् क्त—विजिगीषा अर्थ है, नकार नहीं हुआ,

दि ऊ त सु—पूर्ववत् सम्प्रसारण।

(3738) निर्वाणोऽवाते *50* (3029)

'निर्वाणः' इति निस्पूर्वाद् वातेरुत्तरस्य निष्ठातकारस्य नकारो निपात्यते, न चेद्वाताधिकरणो वात्यर्थो भवति। निर्वाणोऽग्निः। निर्वाणः प्रदीपः। (एष) निर्वाणो भिक्षुः। अवात इति किम्? निर्वातो वातः। निर्वातं वातेन। निर्वाणः प्रदीपो वातेन–इत्यत्र तु प्रदीपाधिकरणो वात्यर्थः, वातस्तु तस्य करणमिति भवत्येव नत्वम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—निस् पूर्वक 'वा' धातु से उत्तर निष्ठा के तकार को नकार आदेश निपातन से होकर 'निर्वाण' शब्द निष्पन्न होता है, 'वात' अर्थ से अन्यत्र।

उदा० (1) निर्वाणोऽग्निः
निस् वा क्त—नकार,
निर् वा न सु—णत्व।

अवात०—वात अर्थ से अन्यत्र 'निर्वाण' शब्द होता है।

(2) निर्वातः वातः
यहाँ तकार को नकार नहीं हुआ।

निर्वाण०—'निर्वाणः प्रदीपो वातेन' इस स्थल पर प्रदीप अधिकरण है। 'वात' तो करण है। अतः नकार होता है।

(3739) शुषः कः *51* (3030)

शुषेर्धातोरुत्तरस्य निष्ठातकारस्य ककारादेशो भवति। शुष्कः, शुष्कवान्।

अर्थ—शुष् धातु से उत्तर निष्ठा के तकार को ककार होता है।

उदा० (1) शुष्कः
शुष् क्त—ककार आदेश, सु।

(2) शुष्कवान्
शुष् क्तवतु—पूर्ववत्।

(3740) पचो वः *52* (3031)

पचेर्धातोरुत्तरस्य निष्ठातकारस्य वकारादेशो भवति। पक्वः, पक्ववान्।

अर्थ—पच् धातु से उत्तर निष्ठा के तकार के स्थान पर वकार होता है।

उदा० (1) पक्वः
पच् क्त—लशक्वतद्धिते,
पक् व सु—चोः कुः, वकार।

(2) पक्ववान्
पच् क्तवतु—पूर्ववत्।

(3741) क्षायो मः *53* (3032)

क्षै-धातोरुत्तरस्य निष्ठातकारस्य मकारादेशो भवति। क्षामः, क्षमवान्।

अर्थ—क्षै धातु से उत्तर निष्ठा के तकार को मकार होता है।

उदा० (1) क्षामः
क्षै क्त—आकार,
क्षा म—मकार, सु।

(2) क्षामवान्
क्षै क्तवतु—पूर्ववत्।

(3742) प्रस्त्योऽन्तरस्याम् *54* (3034)

प्रपूर्वात् स्त्यायतेरुत्तरस्य निष्ठातकारस्यान्यतरस्यां मकारादेशो भवति। प्रस्तीमः, प्रस्तीमवान्। प्रस्तीतः, प्रस्तीतवान्। यदा मत्वं नास्ति, तदा 'संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः' (8.2.43) इत्यस्य पूर्वत्रासिद्धत्वात् सम्प्रसारणं प्रथमं क्रियते, तत्र कृते निमित्तव्याघातान्नत्वं न भवति।

अर्थ—प्रपूर्वक स्त्यै धातु से उत्तर निष्ठा के तकार के स्थान पर मकार आदेश विकल्प से होता है।

उदा० (1) प्रस्तीमः
प्र स्त्यै क्त—'स्त्यः प्रपूर्वस्य' से सम्प्रसारण, 'हलः' से दीर्घ,
प्र स्ती त—मकार,
प्रस्तीमः—सु।

(2) प्रस्तीतः
पक्ष में मकार अभाव।

(3) प्रस्तीमवान्
प्र स्त्यै क्तवतु—पूर्ववत्।

(4) प्रस्तीतवान्
पक्ष में मकार अभाव।

यदा०—(शंका) मत्व अभाव पक्ष में 'संयोगादे०' से नकार होना चाहिए।

(समा०) जब मत्व नहीं होता है, तब 'संयोगादेरातो धातोर्यण्वतः' के 'पूर्वत्राऽसिद्धम्' से असिद्ध होने से प्रथम सम्प्रसारण किया जाता है। उसके करने पर निमित्त का व्याघात होने से नकार आदेश नहीं होता है।

(3743) अनुपसर्गात् फुल्लक्षीबकृशोल्लाघाः *55* (3035)

फुल्ल, क्षीब, कृश, उल्लाघ-इत्येते निपात्यन्ते, न चेदुपसर्गादुत्तरा भवन्ति। फुल्ल इति-'ञिफला विशरणे'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(धा०पा० 516) इत्येतस्माद्धात्तोरुत्तरस्य निष्ठातकारस्य लकारो निपात्यते। उत्वमिडभावश्च सिद्ध एव। क्तवत्वन्तस्याप्येतल्लत्वमिष्यते। फुल्लः, फुल्लवान् इति। क्षीब-कृशोल्लाघा इति-क्षीब(धा०पा० 382)-कृशि(धा० पा० 1252)भ्यामुत्पूर्वाच्च लाघेः (धा०पा० 112) क्तप्रत्ययस्य तलोप इडभावश्च निपात्यते। कृते वा इटि इच्छब्दलोपः। क्षीबः। कृशः। उल्लाघः। अनुपसर्गादिति किम्? प्रफुल्लाः सुमनसः। प्रक्षीबितः। प्रकृशितः। प्रोल्लाघितः। लाघेरुदोऽन्य उपसर्गः प्रतिषिध्यते। *उत्फुल्लसम्फुल्लयोरिति वक्तव्यम्*। उत्फुल्लः। सम्फुल्लः। परिकृश इत्यत्र यः परिशब्दः स क्रियान्तरयोगात् कृशिं प्रत्यनुपसर्ग एव-परिगतः कृशः = परिकृश इति।

अर्थ—उपसर्ग से उत्तर न हों तो फुल्ल, क्षीब, कृश तथा उल्लाघ—ये शब्द निपातनसिद्ध हैं।

'ञिफला विशरणे' धातु से उत्तर निष्ठा के तकार को निपातन से लकार होता है। उत्व तथा इट् का अभाव सिद्ध ही है। क्त तथा वतु प्रत्ययान्त को भी यह लत्व होता है। यथा—

उदा० (1) फुल्लः। (2) फुल्लवान्।

क्षीब् धातु से उत्तर 'त' का लोप तथा इट् का अभाव निपातन से होकर 'क्षीब' बनता है। अथवा इट् कर देने पर इत् शब्द का लोप होता है।

इसी प्रकार 'कृश' शब्द होता है।

उद् उपसर्गपूर्वक लाघ् धातु से क्त प्रत्यय होकर तकारलोप तथा इट् का अभाव होता है।

(3) क्षीबः, (4) कृशः, (5) उल्लाघः।

अनुप०—उपसर्ग पूर्व में न हों तो 'क्षीब' आदि निपातनसिद्ध हैं।

(6) प्रफुल्लाः सुमनसः
प्र फुल् क्त—लकार नहीं हुआ,
प्रफुल्ल जस्—विभक्तिकार्य।

(7) प्रक्षीबितः (पूर्ववत्)।

(8) प्रकृशितः
इट् हो गया।

(9) प्रोल्लाघितः
प्र उद् लाघ् क्त—तकारलोप नहीं हुआ। इट् हुआ।

लाघे०—'उद्' उपसर्ग से अतिरिक्त उपसर्ग से उत्तर 'लाघ्' से परे 'त' का लोप नहीं होता है।

उत्फु०—(10) उत्फुल्लः! (11) सम्फुल्लः।

ये निपातनसिद्ध हैं।

परिकृश०—'परिकृश' यहाँ जो 'परि' शब्द है, वह अन्य क्रिया के योग से 'कृश' धातु के प्रति उपसर्ग नहीं है। यथा—

परिगतः कृशः—परिकृशः।

(3744) नुदविदोन्दत्राघ्राह्रीभ्योऽन्यरस्याम् *56* (3038)

नुद, विद, उन्दी, त्रा, घ्रा, ह्री—इत्येतेभ्य उत्तरस्य निष्ठातकारस्य नकार आदेशो भवति अन्यतरस्याम्। नुद-नुन्नः, नुत्तः। विद-विन्नः, वित्तः। उन्द-समुन्नः, समुत्तः। त्रा-त्राणः, त्रातः। घ्रा-घ्राणः, घ्रातः। ह्री-ह्रीणः, ह्रीतः। 'ह्री' इत्येतस्याप्राप्तं नत्वम्, इतरेषां नित्यं प्राप्तं विकल्प्यते। 'विद विचारणे' (धा०पा० 1451) इत्यस्य विदेरिह ग्रहणमिष्यते। एवं ह्युक्तम्—

वेत्तेस्तु विदितो निष्ठा विद्यतेर्विन्न इष्यते।
विन्तेर्विन्नश्च वित्तश्च भोगवित्तश्च विन्दतेः॥ इति।

अर्थ—नुद्, विद्, उन्द्, त्रा, घ्रा तथा ह्री—इनसे उत्तर निष्ठा के तकार को नकार विकल्प से होता है।

उदा० (1) नुन्नः
नुद् क्त—तकार को नकार,
नुन् न—दकार को नकार, सु।

(2) नुत्तः
नुद् त—पक्ष में नकार नहीं हुआ,
नुत् त सु—खरि च।

(3) विन्नः
विद् क्त—'नुन्न' की तरह।

(4) वित्तः
'नुत्त' की तरह।

(5) समुन्नः
सम् उन्द् क्त—'अनिदिताम्०' से अनुनासिकलोप,
सम् उद् न—पूर्ववत् नकार।

(6) समुत्तः
सम् उन्द् क्त—पक्ष में नकार अभाव।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(7) त्राणः
त्रै क्त—आकार, नकार,
त्राण सु—णत्व।

(8) त्रातः
नकार अभाव पक्ष।

(9) घ्राणः
घ्रा क्त—नकार, णत्व।

(10) घ्रातः
नकार अभाव पक्ष।

(11) ह्रीणः
ह्री क्त—नत्व, णत्व, सु।

(12) ह्रीतः
नकार अभाव पक्ष।

ह्री०—'ह्री' से उत्तर तकार को नकार अप्राप्त था तथा शेष नुद् आदि से उत्तर तकार को नकार नित्य प्राप्त था। अतः यह प्राप्ताप्राप्त विभाषा है।

विद०—यहाँ 'विद विचारणे' इसका ग्रहण है। इसी आशय को निम्नलिखित कारिका में विस्तरेण समझाया गया है।

वेत्ते० 'विद ज्ञाने' धातु से निष्ठा में इट् होकर 'विदितः' रूप बनता है। इसे नित्य इट् होता है। इट् का व्यवधान होने से तकार को नकार नहीं होता। 'विद सत्तायाम्' धातु से उत्तर निष्ठा के तकार को 'एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्' से इट् का निषेध होकर 'रदाभ्यां निष्ठातो०' से नित्य नकार होने से 'विन्नः' रूप बनता है।

विन्ते०—'विद विचारणे' धातु से उत्तर निष्ठा के तकार को इट् का निषेध होने से प्रकृत सूत्र के द्वारा विकल्प से नकार होकर 'विन्नः' तथा 'वित्तः'—ये दो रूप बनते हैं। 'विद् लाभे' धातु को 'शे मुचादीनाम्' से नुम् होकर 'विन्दति' रूप बनता है। कारिका में इसका निर्देश होने से यहाँ 'विद् लाभे' धातु गृहीत होता है। इस धातु से योग में तथा प्रत्यय में 'वित्तः' शब्द बनता है। तब 'भोगे वित्तो—भोगवित्तः' यहाँ सप्तमी इस प्रकार योगविभाग से समास होता है। भोग तथा प्रत्यय से अन्यत्र 'विन्नः' ही होता है।

(3745) न ध्याख्यापॄमूर्च्छिमदाम् *57* (3040)

ध्या, ख्या, पॄ, मूर्च्छि, मद-इत्येतेषां निष्ठातकारस्य नकारादेशो न भवति। ध्यातः, ध्यातवान्। ख्यातः, ख्यातवान्। पूर्त्तः, पूर्त्तवान्। मूर्त्तः, मूर्त्तवान्। मत्तः, मत्तवान्। 'रदाभ्याम्' (8.2.42), 'संयोगादेः' (8.2.43) इति च प्राप्तः प्रतिषिद्ध्यते।

अर्थ—ध्या, ख्या, पॄ, मूर्च्छ् तथा मद्—इनसे उत्तर निष्ठा के तकार को नकार नहीं होता है।

उदा० (1) ध्यातः
ध्यै क्त—आकार,
ध्या त—'संयोगादे०' से नकारादेश प्राप्त,
ध्यात सु—नत्व का निषेध।

(2) ध्यातवान्
ध्यै क्तवतु—पूर्ववत्।

(3) ख्यातः
ख्या[1] क्त—पूर्ववत् प्राप्त नकार आदेश का निषेध।

(4) ख्यातवान्
ख्या क्तवतु—पूर्ववत्।

(5) पूर्त्तः
पॄ क्त—लशक्वतद्धिते, 'श्रुकः किति' से इट् निषेध,
पूर् त—'उदोष्ठ्यपूर्वस्य' से उकार आदेश, दीर्घ, 'रदाभ्यां०' से प्राप्त नत्व का निषेध,
पूर् त् त सु—अचो रहाभ्यां द्वे, सु।

(6) पूर्त्तवान्
पॄ क्तवतु—पूर्ववत्।

(7) मूर्त्तः
मूर्च्छ् क्त—राल्लोपः, 'ओदितश्च' से इट् निषेध,
मू र् त् त सु—अचो रहाभ्यां द्वे।

(8) मूर्त्तवान्
मूर्च्छ् क्तवतु—पूर्ववत्।

(9) मत्तः
मद् क्त—'रदाभ्यां निष्ठातो०' से प्राप्त नकार का निषेध,
मत् त सु—खरि च 'श्वीदितो निष्ठायाम्' से इट् निषेध।

(10) मत्तवान्
मद् क्तवतु—पूर्ववत्।

1. 'ख्या' के द्वारा 'ख्या प्रकथने' तथा 'चक्षिङः ख्याञ्'—इन दोनों का ग्रहण होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यहाँ 'रदाभ्याम्०' तथा 'संयोगादे०' से प्राप्त नत्व का निषेध किया जाता है।

(3746) वित्तो भोगप्रत्यययोः *58* (3041)

'वित्त'-(धा०पा० 1433) इति विदेर्लाभार्थादुत्तरस्य क्तस्य नत्वाभावो निपात्यते भोगे प्रत्यये चाभिधेये। वित्तमस्य बहु। धनमस्य बह्वित्यर्थः। धनं हि भुज्यत इति भोगोऽभिधीयते। प्रत्यये-वित्तोऽयं मनुष्यः। प्रतीयत इति प्रत्ययः। भोगप्रत्यययोरिति किम्? विन्नः।

अर्थ—भोग तथा प्रत्यय अभिधेय हो तो विद् लाभे धातु से उत्तर निष्ठा के तकार को नकार का निषेध होकर 'वित्त' शब्द निपातित किया जाता है।

उदा० (1) वित्तम् (अस्य बहु)
विद् क्त—नत्व का अभाव। 'भोग' अर्थ है।

(2) वित्तोऽयं मनुष्यः
यहाँ प्रत्यय अर्थ है।

भोग०—भोग तथा प्रत्यय अर्थों में ही 'वित्त' शब्द निपातित है।

(3) विन्नः
नत्व का निषेध नहीं हुआ।

(3747) भित्तं शकलम् *59* (3042)

'भित्तम्' इति निपात्यते शकलं चेत्तद्भवति। भित्तं तिष्ठति। भित्तं प्रपतति। शकलपर्यायोऽयम्। अत्र भिदिक्रिया शब्दव्युत्पत्तेरेव निमित्तम्। भिदिक्रियाविवक्षायां हि शकलविषये भिन्नं भित्तमित्येव भवति।

अर्थ—शकल अर्थ में 'भित्त' शब्द निपातनसिद्ध है।

उदा० (1) भित्तम्
भिद् क्त—शकल अर्थ में प्राप्त नत्व का निषेध,
भित् त सु—खरि च।
इसी प्रकार—भित्तं प्रपतति।

अत्र०—यहाँ भिद् क्रिया शब्द व्युत्पत्ति का निमित्त है। भिद् क्रिया की विवक्षा में ही शकल विषय में 'भिन्न' 'भित्त' होता है।

(3748) ऋणमाधमर्ण्ये *60* (3043)

'ऋणम्' इति 'ऋ' (धा०पा० 961) इत्येतस्माद्धातोरुत्तरस्य निष्ठातकारस्य नकारो निपात्यते, आधमर्ण्यविषये। अधम ऋणे-अधमर्णः, एतस्मादेव निपातनात्सप्तम्यन्तेनोत्तरपदेन समासः, तद्भाव आधमर्ण्यम्। यद्येवम्, उत्तमर्ण इति न सिध्यति? नैष दोषः, कालान्तरदेयविनिमयोपलक्षणार्थं चेदमुपात्तम्। तेन उत्तमर्ण इत्यपि हि भवति। ऋणं ददाति। ऋणं धारयति। आधमर्ण्ये इति किम्? ऋतं वक्ष्यामि नानृतम्।

अर्थ—आधमर्ण्य विषय में 'ऋ' धातु से उत्तर निष्ठा के तकार को नकार होकर 'ऋण' शब्द निपातित किया जाता है।

अधम ऋणे अधमर्णः—इस प्रकार इस निपातन से ही सप्तम्यन्त उत्तर पद से समास होता है। अधमर्ण का भाव 'आर्धमर्ण्य' कहलाता है। यदि ऐसा है तो 'उत्तमर्ण' शब्द सिद्ध नहीं होता। यहाँ दोष नहीं है। कालान्तर में देय के विनिमय के उपलक्षणार्थ यह उपात्त है। तब 'उत्तमर्ण' ही होता है।

उदा० (1) ऋणम्
ऋ क्त—नत्व प्राप्त नहीं था, निपातन से हुआ है,
ऋण सु—णत्व।

आधम०—आधमर्ण्य के विषय में ही यह निपातन होता है।

(2) ऋतम् (= सत्य)
यहाँ नत्व नहीं हुआ।

(3749) नसत्तनिषत्तानुत्तप्रतूर्तसूर्तगूर्तानि छन्दसि *61* (3603)

नसत्त, निषत्त, अनुत्त, प्रतूर्त, सूर्त, गूर्त-इत्येतानि छन्दसि विषये निपात्यन्ते। नसत्त-निषत्तेति-सदेर्नञ्पूर्वान्निपूर्वाच्च नत्वाभावो निपात्यते। नसत्तमञ्जसा। नसन्नमिति भाषायाम् 'निषत्तः'। (ऋ० 1.58.3)। निषण्ण इति भाषायाम्। अनुत्तमिति-उन्देर्नञ्पूर्वस्य निपातनम्। 'अनुत्तमा ते मघवन्' (ऋ० 1.165.9) अनुन्नमिति भाषायाम्। प्रतूर्तमिति-'त्वरतेः', 'तुर्वी' इत्येतस्य वा निपातनम्। प्रतूर्तं वाजिनम्'। (तै० 4.1.2.1)। प्रतूर्णमिति भाषायाम्। सूर्तमिति 'सृ' इत्येतस्य उत्वं निपात्यते। सूर्ता गावः। सृता गाव इति भाषायाम्। गूर्तमिति-'गुरी' इत्येतस्य नत्वाभावो निपात्यते। 'गूर्ता अमृतस्य' (वा०सं० 6.34)। गूर्णमिति भाषायाम्।

अर्थ—वेद में नसत्त, निषत्त, अनुत्त, प्रतूर्त, सूर्त तथा गूर्त शब्दों का निपातन किया जाता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नञ् पूर्वक सद् से क्त के 'त' में नत्व का अभाव निपातन से होता है। इसी प्रकार निपूर्वक सद् से 'त' में नकार आदेश का निपातन से अभाव होता है।

नञ् पूर्वक उन्द् से उत्तर 'त' को नत्व का अभाव निपातन से होता है। प्रपूर्वक त्वर् अथवा तुर्व् धातु से उत्तर तकार को नत्व नहीं होता है।

'सूर्त्त' में 'सृ' धातु से उत्व का निपातन किया जाता है। 'गूर्त्तम्' में गुर् धातु से नत्व अभाव का निपातन किया जाता है।

उदा० (1) नसत्तम्
नञ् सद् क्त सु।

(2) नसन्नम्
लोक में नत्व।

(3) निषत्तः
नि सद् क्त—'सदिरप्रतेः' से षत्व।

(4) निषण्णः
नि सद् क्त—लोक में नत्व।

(5) अनुत्तमा
न उन्द् क्त—नत्व अभाव। टाप्, सु।

(6) अनुन्नम्
लोक में नत्व।

(7) प्रतूर्त्तम्
प्र त्वर् क्त—'ज्वरत्वर०' से उपधा को उत्व,
प्र तू र् त् त—राल्लोपः, दीर्घ, अचो रहाभ्यां द्वे।

(8) प्रतूर्णम्
लोक में नत्व।

(9) सूर्तम्
सृ क्त—पूर्ववत्।

(10) सृतः
लोक में है।

(11) गूर्त्तम्
गुर् क्त—नत्व अभाव, दीर्घ।

(12) गूर्णम्
नत्व हुआ।

(3750) क्विन्प्रत्ययस्य कुः *62* (377)

'पदस्य' (8.1.16) इति वर्त्तते। क्विन्प्रत्ययस्य सर्वत्र पदान्ते कुत्वमिष्यते। क्विन्प्रत्ययो यस्माद्धातोः स क्विन्प्रत्ययः, तस्य पदस्यालोऽन्त्यस्य कवर्गादिशो भवति। 'स्पृशोऽनुदके क्विन्' (3.2.58)। घृतस्पृक्। हलस्पृक्। मन्त्रस्पृक्। 'क्विनः कुः' इति वक्तव्ये प्रत्ययग्रहणं कृतम्–बहुव्रीहिविज्ञानार्थम् (म० भा०)। क्विन्प्रत्ययो यस्माद्विहितस्तस्मादन्यस्मिन्नपि प्रत्यये कुत्वं यथा स्यात्–मा नो अस्राक्। मा नो अद्राक्। सृजिदृशिभ्यां हि क्विन्विहितः, तयोर्लुङि कुत्वमेतत्। माङ्योगेऽपि छान्दसत्वादडागमः। ईट् च न भवति–'बहुलं छन्दसि' (7.3.97) इति। तथा दृग्भ्याम् दृग्भिरिति–क्विबन्तस्यापि दृशेः कुत्वं भवति। एवं च सति रज्जुसृड्भ्यामित्यत्रापि कुत्वं प्राप्नोति। अथ तु नेष्यते ? प्रतिविधानं कर्तव्यमिति।

अर्थ—'पदस्य' का अनुवर्त्तन है। क्विन् प्रत्यय को पदान्त में सर्वत्र (लोक में तथा वेद में) कुत्व होता है। जिस धातु से क्विन् प्रत्यय होता है, वह क्विन् प्रत्यय होता है। उस पद के अन्त्य अल् के स्थान पर कवर्ग आदेश होता है।

उदा० (1) घृतस्पृक्
घृतस्पृश् क्विन्—'स्पृशोऽनुदके क्विन्' से 'क्विन्,
घृतस्पृश् सु—सर्वापहार लोप, प्रातिपदिक संज्ञा,
घृतस्पृश्—सुलोप, पद संज्ञा,
घृतस्पृख्—कुत्व,
घृतस्पृग्—झलां जशोऽन्ते,
घृतस्पृक्—वाऽवसाने।

(2) हलस्पृक्
हलस्पृश्—पूर्ववत्।

(3) मन्त्रस्पृक् पूर्ववत्।

क्विनः०—'क्विनः कुः' कहने में लाघव होता है। परन्तु प्रत्यय का ग्रहण किया गया है। इससे बहुव्रीहि का ज्ञान होता है। ताकि जिससे क्विन् प्रत्यय विहित हो तथा उससे अन्य प्रत्यय होने पर भी कुत्व हो जाय।

(4) (मा नो) अस्राक्
सृज् तिप्—लुङ्, 'इतश्च' से इकारलोप,
सृ अम् ज् स् त्—सिच्, 'सृजिदृशो०' से 'अम्', यण्,
स्राज् स् त्—'वदव्रज०' से वृद्धि, सकारलोप,
स्राज् त्—हल्ङ्याब्भ्यो०,
अ स्राक्—अट्, पदसंज्ञा, कुत्व, चर्त्व।

(5) (मा नो) अद्राक्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दृश् त्—'इतश्च' से इकारलोप,
दृ अम् श् स् त्—पूर्ववत् 'अम्' आदि सभी कार्य।

सृजि०—सृज् तथा दृश् धातुओं से क्विन् विहित है। उनसे लुङ् में कुत्व होता है। माङ् के योग में भी छान्दस होने से 'अट्' आगम होता है। 'बहुलं छन्दसि' से 'ईट्' नहीं होता।

तथा०—इसी प्रकार 'दृग्भ्याम्' तथा 'दृग्भिः'—इन स्थलों पर भी क्विन् प्रत्ययान्त दृश् को कुत्व होता है। ऐसा होने पर 'रज्जुसृड्भ्याम्' यहाँ पर भी कुत्व प्राप्त होता है।

अथ०—यहाँ कुत्व अनिष्ट है। अतः प्रतिविधान करना चाहिए।

(6) दृग्भ्याम्
दृश् क्विन्—सर्वापहारलोप,
दृश् भ्याम्—पदसंज्ञा, कुत्व, जश्त्व।

(7) दृग्भिः (पूर्ववत्)।

(8) रज्जुसृड्भ्याम्
रज्जुसृज्—क्विन्, सर्वापहार लोप,
रज्जुसृज् भ्याम्—पदसंज्ञा, जश्त्व।

यहाँ कुत्व प्राप्त था। उत्तर सूत्र 'नशेर्वा' में जो 'वा' का ग्रहण है, वह दोनों सूत्रों (क्विन् प्रत्ययस्य कुः, नशेर्वा) में गृहीत है। अतः यह व्यवस्थित विभाषा होकर 'रज्जुसृड्भ्याम्' में कुत्व नहीं हुआ।

(3751) नशेर्वा *63* (431)

'पदस्य' इति वर्तते। नशेः पदस्य वा कवर्गादिशो भवति। 'सा वै जीवनगाहुतिः, सां वैं जीवनडांहुति (मै० 1.4.13)। नशेरयं सम्पदादित्वाद् भावे क्विप्। जीवस्य नाशो जीवनक्, जीवनट्। षत्वे प्राप्ते कुत्वविकल्पः।

अर्थ—'पदस्य' का अनुवर्तन है। पदान्त में नश् को कवर्ग आदेश विकल्प से होता है।

उदा० (1) जीवनग्
जीवनश्—सु, सुलोप, पदसंज्ञा,
जीवनख्—कुत्व,
जीवनग्—झलां जशोऽन्ते, वाऽवसाने।

(2) जीवनड्
जीवनश्—पक्ष में कवर्ग आदेश नहीं हुआ,
जीवनष्—'व्रश्चभ्रस्ज०' से षकार,
जीवनड्—झलां जशोऽन्ते, वाऽवसाने।

नशेरयं०—सम्पद् आदि होने से नश् से भाव में 'क्विप्' होता है। यथा—जीवस्य नाशो—जीवनग्,-ट्। षत्व प्राप्त होने पर कुत्वविकल्प होता है।

(3752) मो नो धातोः *64* (341)

मकारान्तस्य धातोः पदस्य नकारादेशो भवति। प्रशान्। प्रतान्। प्रदान्। 'शमितमिदमादीनां क्विप्', 'अनुनासिकस्य क्विझलोः क्ङिति' (6.4.15) इति दीर्घत्वम्। नत्वस्यासिद्धत्वान्नलोपो न भवति। म इति किम्? भित्। छित्। धातोरिति किम्? इदम्। किम्। 'पदस्य' इत्येव–प्रतामौ। प्रतामः।

अर्थ—मकारान्त धातु को नकार आदेश होता है, पदान्त में है।

उदा० (1) प्रशान्
प्र शम् क्विप्—'शमितपि०' से 'क्विप्' 'अनुनासिकस्य क्वि०' से दीर्घत्व, सर्वापहार लोप, प्रातिपदिक संज्ञा,
प्रशाम् सु—'हल्ङ्याब्भ्यो०' से लोप,
प्रशान्—नत्व।

नत्व०—नत्व के असिद्ध होने से 'नलोपः प्राति०' अप्राप्त होता है।

(2) प्रतान्
प्र तम् क्विप्—सभी कार्य पूर्ववत्।

(3) प्रदान्
प्र दम् क्विप्—पूर्ववत्।

म—इति० मकारान्त धातु को नकार होता है।

(4) भित्
भिद् क्विप्—सर्वापहार लोप,
भिद् सु—सुलोप, धातु मकारान्त नहीं है। अतः नत्व नहीं हुआ।
भित्—वाऽवसाने।

(5) छित्
छिद् क्विप्—पूर्ववत्।

धातो०—धातु के मकार को नकार होता है।

(6) इदम्
इदम्—पद संज्ञा है, अन्त में मकार है, परन्तु धातु न होने से नकार आदेश नहीं हुआ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(7) किम् (पूर्ववत्)।

पदस्य०—पदसंज्ञक धातु के मकार को नकार होता है।

(8) प्रतामौ
प्रताम् औ—पदसंज्ञा न होने से मकार को नकार नहीं हुआ।

(9) प्रतामः
प्रताम् अस्—पूर्ववत्।

(3753) म्वोश्च *65* (2309)

मकारवकारयोश्च परतः मकारान्तस्य धातोर्नकारादेशो भवति। अगंन्म तमसः पारम् (वै०सं० 12.73)। अगन्व। गमेर्लङि 'बहुलं छन्दसि' (2.4.73) इति शपो लुक्। जगन्वान्। 'विभाषा गमहनजनविदविशाम्' (7.2.68) इति क्वसाविडागमस्याभावः। अपदान्तार्थ आरम्भः।

अर्थ—मकारान्त धातु को नकार आदेश होता है, मकार तथा वकार परे रहते।

उदा० (1) अगन्म
गम् मस्—'गम्' धातु मकारान्त है। मकार परे है। मकार को नकार हुआ। 'स उत्तमस्य' से सकारलोप,
अगन्म—अट्।

(2) अगन्व
गम् वस्—सभी कार्य पूर्ववत्।

गमे०—गम् धातु से लङ् लकार में 'बहुलं छन्दसि' से शप् का लुक् होता है।

(3) जगन्वान्
गम् क्व सु—लिट्, 'क्वसु' आदेश,
ज गम् वस्—लशक्वतद्धिते, उपदेशेऽजनुना०, द्वित्व, कुहोश्चुः,
जगन् वस् सु—नकार, प्रातिपदिकसंज्ञा,
जगन्वस्—सुलोप,
जगन्व न् स्—नुम्, संयोगान्तस्य लोप,
जगन्वन्—'सान्तमहतः०' से उपधादीर्घ,
जगन्वान्—'विभाषा गमहनजन०' से इट् निषेध।
यह अपदान्त के लिए विधान है।

(3754) ससजुषो रुः *66* (162)

सकारान्तस्य पदस्य 'सजुष्' इत्येतस्य च रुर्भवति। सकारान्तस्य-अग्निरत्र। वायुरत्र। सजुषः-सजूर्ऋतुभिः (मै० 2.8.1)। सजूर्देवेभिः (ऋ० 7.34.15)। जुषेः क्विपि सपूर्वस्य रूपमेतत्।

अर्थ—सकारान्त पद के स्थान पर तथा 'सजुष्' शब्द के स्थान पर 'रु' आदेश होता है।

उदा० (क) सकारान्तस्य—
(1) अग्निरत्र
अग्निस् अत्र—'रु' हुआ,
अग्निर् अत्र—अनुबन्धलोप।

(2) वायुरत्र
वायुस् अत्र—पूर्ववत्।

(ख) सजुषः—
(3) सजूः
सह जुषते—क्विप्, उपपद समास,
सजुष्—'सहस्य सः सञ्ज्ञायाम्' से 'स' आदेश, सर्वापहार लोप,
सजु रु—सु, सुलोप, रुत्व,
सजूर्—'वोरुपधायाः' से दीर्घ।
इसी प्रकार—सजूर्देवेभिः।

(3755) अवयाः श्वेतवाः पुरोडाश्च *67* (3416)

अवयाः, श्वेतवाः, पुरोडाः-इत्येते निपात्यन्ते। अवपूर्वस्य यजेः, श्वेतपूर्वस्य वहेः, पुरस्पूर्वस्य दाशतेः 'मन्त्रे श्वेतवहोक्थशस्पुरोडाशो ण्विन्' (3.2.71), 'अवे यजः' (3.2.72) इति ण्विनि कृते 'श्वेतवहादीनां डस्पदस्य' (का०वा) इति डस्प्रत्यये निपातनान्येतानि। किमर्थं तर्हि नि-पातनम्, यावता पूर्वेणैव रुः सिद्धः, दीर्घत्वमपि 'अत्वसन्तस्य चाधातोः' (6.4.14) इति? सम्बुद्धौ दीर्घार्थमेते निपात्यन्ते। 'अत्वसन्तस्य चाधातोः' (6.4.14) इत्यत्र हि 'असम्बुद्धौ' इति वर्त्तते। हे अवयाः (वा०सं० 3.46)। हे श्वेतवाः। हे पुरोडाः (ऋ० 3.28.2)। चकारोऽनुक्तसमुच्चयार्थः। हे उक्थशाः (तै० 3.2.9.1)।

अर्थ—अवयाः, श्वेतवाः तथा पुरोडाः—ये निपातनसिद्ध हैं।

उदा० (1) अवयाः। (2) श्वेतवाः। (3) पुरोडाः।

अव०—अवपूर्वक यज् धातु से 'मन्त्रे श्वेत०' 'अवे यजः'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

से 'ण्विन्' होता है। हलन्त्यम्, चुटू, उपदेशेऽजनुनासिक०, वेरपृक्तस्य आदि लगकर सर्वापहार लोप, प्रातिपदिक संज्ञा तथा सु का लोप, तब 'श्वेतवहादीना०' से 'डस्' प्रत्यय (अव यज् डस्) होता है। डित् होने से टिलोप, विभक्तिकार्य होकर—अवयाः।

श्वेतपूर्वक वह धातु से 'मन्त्रे श्वेतवहो०' से पूर्ववत् 'ण्विन्', उसका सर्वापहार लोप, सुलोप (श्वेतवह्)। पूर्ववत् डस् प्रत्यय तथा टिलोप होता है।

पुरस् दाश् से पूर्ववत् 'ण्विन्' आदि होकर 'पुरोदाश् डस्' इस स्थिति में दकार को डकार, टिलोप होता है।

किमर्थं०—पूर्व सूत्र से रुत्व के सिद्ध होने पर निपातन किसलिए किया जा रहा है। 'अत्वसन्तस्य०' से दीर्घत्व भी सिद्ध है।

(समा०) सम्बुद्धि में दीर्घत्व के लिए यह निपातन किया गया है।

'अत्वसन्तस्य०' की प्रवृत्ति तो सम्बुद्धि से अन्यत्र ही होती है। यथा—हे अवयाः, हे श्वेतवाः, हे पुरोडाः।

चकारो०—सूत्रस्थ चकार के द्वारा अनुक्त समुच्चय का अनुकर्षण होता है।

(4) (हे) उक्थशाः
उक्थ शंस् ण्विन्—पूर्ववत्,
उक्थ शंस्—सर्वापहार लोप, सु, डस् आदि होकर रूप बनता है।

(3756) अहन् *68* (443)

'अहन्' इत्येतस्य पदस्य रुर्भवति। अहोभ्याम्। अहोभिः। नलोपमकृत्वा निर्देशो ज्ञापकः-नलोपाभावो यथा स्यादिति। दीर्घाहा निदाघः, हे दीर्घाहोऽत्रेति। अहन्-हन् (धा०पा० 1037)-इत्यत्र तु लाक्षणिकत्वादहन्-शब्दस्य रुर्न भवति। *अह्नो रुविधौ रूपरात्रिरथन्तरेषूपसङ्ख्यानं कर्त्तव्यम्*। (का०वा)। अहोरूपम्। अहोरात्रः। अहोरथन्तरम्। 'रोऽसुपि' (8.2.69) इत्यस्यापवादो रुत्वमुपसङ्ख्यायते। अपर आह-सामान्येन रेफादौ रुत्वं भवति। अहो रम्यम्। अहो रत्नानीति।

अर्थ—पदसंज्ञक 'अहन्' को 'रु' आदेश होता है।

उदा० (1) अहोभ्याम्
अहन् भ्याम्—पदसंज्ञा, रु,
अह रु भ्याम्—उत्व, आद्गुणः।

(2) अहोभिः
अहन् भिस्—पूर्ववत्।

नलोप०—नकार का लोप न करके किये गये निर्देश से ज्ञापित होता है कि नलोप का अभाव होता है। यथा—

(3) दीर्घाहा निदाघः
दीर्घ अहन्—बहुव्रीहि समास, सुलोप,
दीर्घाऽह रु—अकः सवर्णे दीर्घः, रुत्व,
दीर्घाहार्—रुत्व के असिद्ध होने से 'सर्वनामस्थाने०' से दीर्घत्व, 'भोभगो०' से यकार,
दीर्घाहाय्—हलि सर्वेषाम्।

(4) (हे) दीर्घाहोऽत्र
पूर्ववत् सभी कार्य, 'अतो रोरप्लु०' से उत्व तथा 'आद् गुणः' से गुण एकादेश होता है।

अहन्०—'अहन्' यहाँ लाक्षणिक होने से 'अहन्' शब्द को रुत्व नहीं होता। हन् धातु से लङ् में तिप् करके 'अहन्' शब्द बनता है।

अह्नो०—रूप, रात्रि तथा रथन्तर शब्दों के परे रहते 'अहन्' शब्द को रुत्व होता है।

(5) अहोरूपम्
अहन् रूप—षष्ठी समास,
अह रु रूप—रुत्व, उत्व, हशि च,
अहोरूप सु—आद् गुणः।

(6) अहोरात्रः
अहश्च रात्रिश्च—चार्थे द्वन्द्वः,
अहन् रात्रि—'अहस्सर्वैकदेश०' से अच् समासान्त,
अहन् रात्र—रुत्व आदि।

(7) अहोरथन्तरम्
अहन् रथन्तर—असमास अथवा षष्ठी समास।

रोऽसु०—'रोऽसुपि' इसका यह अपवाद है, जो यहाँ विधान है।

अपर०—अन्य विद्वान् कहते हैं कि सामान्य से ही रेफादि परे रहते रुत्व होता है।

(8) अहोरम्यम्
अहन् रम्य—रुत्व, उत्व,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अह उ रम्य—आद् गुणः, सु।

(9) अहोरत्नानि (पूर्ववत्)।

(3757) रोऽसुपि *69* (172)

'अहन्' इत्येतस्य रेफादेशो भवत्यसुपि परतः। अहर्ददाति। अहर्भुङ्क्ते। असुपीति किम्? अहोभ्याम्। अहोभिः। ननु चात्रापि प्रत्ययलक्षणेन सुबस्ति-अहर्ददाति, अहर्भुङ्क्ते इति? नैतदस्ति; उक्तमेतत्-'अह्नो रविधौ लुमता लुप्ते प्रत्ययलक्षणं न भवति' (म०भा०) इति। नायमहःशब्दः सुप्परो भवति। यत्र तु लोपशब्देन लुप्यते तत्र प्रत्ययलक्षणं भवत्येव, यथा-हे दीर्घाहोऽत्र, दीर्घाहो निदाघ इति। अत्र हि 'हल्ङ्याब्भ्यः' (6.1.68) इति लोपेन प्रत्ययस्य निवृत्तिः।

अर्थ—सुप् परे न हो तो 'अहन्' को रेफ आदेश होता है। अलोऽन्त्य परिभाषा से रेफ आदेश अन्त्य अल् नकार के स्थान पर होता है।

उदा० (1) अहर्ददाति
अहन् ददाति—रेफ हुआ।

(2) अहर् भुङ्क्ते
पूर्ववत् रेफ।

असुपी०—सुप् को छोड़कर अन्य के परे रहते ही रेफ होता है।

(3) अहोभ्याम्
अहन् भ्याम्—पदसंज्ञा, सुप् परे है, रेफ नहीं हुआ, 'अहन्' से रुत्व हुआ है।

(4) अहोभिः (पूर्ववत्)।

ननु०—'अहर्ददाति' इत्यादि स्थलों पर भी प्रत्ययलक्षण से सुप् परे है। अतः रेफ नहीं होना चाहिए।

(समा०) यहाँ सुप् नहीं है। यह कहा गया है—अहन् के स्थान पर रेफविधि में लुमान् के द्वारा लुप्त होने पर प्रत्ययलक्षण नहीं होता है। अतः यह 'अहन्' शब्द सुप्-पर नहीं है।

यत्र तु०—जहाँ लोप शब्द के द्वारा लोप होता है, वहाँ पर ही प्रत्ययलक्षण होता है। यथा—

हे दीर्घाहोऽत्र, दीर्घाहनिदाघः इत्यादि।

यहाँ 'हल्ङ्याब्भ्यः०' के द्वारा लोप से प्रत्यय की निवृत्ति होती है।

(3758) अम्नरूधरवरित्युभयथा छन्दसि *70* (3604)

अम्नस्, ऊधस्, अवस्०-इत्येतेषां छन्दसि विषये उभयथा भवति-रुर्वा, रेफो वा। अम्नस्-अम्नं एव (मै० 1.6.10)-अम्नरेव। ऊधस्-ऊध एव (कठ० 7.5.29)। ऊधर् एव (ऋ० 10.100.11)। अवस्-अवरेव, अव एव (अथ० 20.25.2)। यदा रुत्वं तदा 'भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि' (8.3.17) इति यकारः। *छन्दसि भाषायां च विभाषा प्रचेतसो राजन्युपसङ्ख्यानं कर्त्तव्यम्* (म०भा०)। प्रचेता राजन् (ऋ० 1.24.14)। प्रचेतो राजन् (ऋ० 1.24.15)। *अहरादीनां पत्यादिषूपसंस्थानं कर्तव्यम्* (म०भा०)। अहर्पतिः। अहःपतिः। गीर्पतिः। गीःपति। धूर्पतिः। धूःपतिः। विसर्जनीयबाधनार्थमत्र पक्षे रेफस्यैव रेफो विधीयते।

अर्थ—वेद के विषय में अम्नस्, ऊधस् तथा अवस्—इन शब्दों के स्थान पर दोनों प्रकार से होता है अर्थात् रेफ आदेश तथा रु आदेश दोनों पर्यायेण होते हैं।

अलोऽन्त्य परिभाषा से ये आदेश अन्त्य अल् (सकार) के स्थान पर होते हैं।

उदा० (1) अम्न एव
अम्नस् एव—'भोभगो०' से यकार,
अम्नय् एव—लोपः शाकल्यस्य,
अम्न एव—यलोप के असिद्ध होने से 'वृद्धिरेचि' की प्राप्ति नहीं हुई।

(2) अम्नरेव
अम्नस् एव—रेफ हुआ।

(3) ऊध एव
ऊधस् एव—पूर्ववत् 'रु', यकार, यलोप।

(4) ऊधरेव
ऊधस् एव—रेफ आदेश।

(5) अव एव
अवस् एव—'रु' आदेश।

(6) अवरेव
रेफ आदेश।

यदा०—जब रुत्व होता है, तब 'भोभगो०' के द्वारा यकार होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

छन्दसि०—वेद में तथा लोक में राजन् शब्द परे रहते प्रचेतस् शब्द को विकल्प से रेफ आदेश होता है।

(7) प्रचेता राजन्
प्रचेतस् राजन्—रेफ,
प्रचेतर् राजन्—'रो रि' से रेफलोप,
प्रचेत राजन्—'ढ्रलोपे पूर्वस्य०' से दीर्घ।

(8) प्रचेतो राजन्
प्रचेत रु राजन्—पक्ष में रुत्व,
प्रचेत उ राजन्—हशि च, आद् गुणः।

अहरा०—पति आदि शब्दों के परे रहते अहन् आदि शब्दों को विकल्प से रेफ आदेश होता है।

(9) अहर्पतिः
अहन् पति—षष्ठी समास,
अहर् पति—रोऽसुपि, वार्त्तिक से पाक्षिक रेफ, सु।

(10) अहःपतिः
अह र् पति—विसर्जनीय, पक्ष में उपध्मानीय।

(11) गीर्पतिः
गृ क्विप्—सम्पदादि होने से क्विप्, सर्वापहार लोप,
गिर्—ऋत इद् धातोः, उरण् रपरः,
गिर् पति—दीर्घ,
गीर् प् पति—अचो रहाभ्यां द्वे।

(12) गीःपतिः
पक्ष में विसर्ग हुआ।

(13) धूर्पतिः
धुर्व् क्विप्—सर्वापहार लोप,
धूर्—राल्लोपः,
धूर् पति—दीर्घ, पूर्ववत्।

(14) धूःपतिः
पक्ष में विसर्ग।

विसर्ग०—विसर्जनीय के बाध के लिए पक्ष में रेफ के स्थान पर रेफ का विधान किया जाता है।

(3759) भुवश्च महाव्याहृते *71* (3605)

'भुवस्'-इत्येतत् महाव्याहृतेश्छन्दसि विषये उभयथा भवति-रुर्वा, रेफो वा। भुवरित्यन्तरिक्षम्, भुव इत्यन्तरिक्षम्। महाव्याहृतेरिति किम्? भुवो विश्वस्य भुवनेषु यज्ञियः (ऋ० 10.50.4)। 'भुवः' इत्येतदव्यमन्तरिक्षवाचि महाव्याहृतिः।

अर्थ—वेद के विषय में महाव्याहृति 'भुवस्' को दोनों प्रकार से आदेश होता है।

उदा० (1) भुवरिति
भुवस् इति—रेफ।

(2) भुव इति
भुवस् इति—रु,
भुव रु इति—यकार,
भुव इति—लोपः शाकल्यस्य।

महाव्या०—महाव्याहृति के 'भुवस्' को रेफ तथा रुत्व होता है।

(3) भुवो विश्वस्य
भुवस् विश्वस्य—'भुवस्' महाव्याहृति का नहीं है। अतः दोनों आदेश नहीं होते हैं,
भुव रु विश्वस्य—रुत्व,
भुव उ विश्वस्य—उत्व, आद् गुणः।

भुव०—'भुवस्' यह अव्यय अन्तरिक्षवाची महाव्याहृति है।

(3760) वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः *72* (334)

'ससजुषोः' (8.2.66) इत्यतः 'स' इति वर्तते, तेन सम्भवाद्व्यभिचाराच्च वसुरेव विशेष्यते, न स्रंसुध्वंसु, व्यभिचाराभावाद्, असम्भवाच्च नानडुह्शब्दः। वस्वन्तस्य पदस्य सकारान्तस्य, स्रंसु, ध्वंसु, अनडुह्-इत्येतेषां च दकारादेशो भवति। वसु-विद्वद्भ्याम्, विद्वद्भिः। पपिवद्भ्याम्, पपिवद्भिः। स्रंसु-उखास्रद्भ्याम्, उखास्रद्भिः। ध्वंसु-पर्णध्वद्भ्याम्, पर्णध्वद्भिः। अनुडुह्-अनडुद्भ्याम्, अनडुद्भिः। स इत्येव-विद्वान्, पपिवान्। नकारस्य न भवति। रुत्वे नाप्राप्ते इदमारभ्यत इति तद्बाध्यते। संयोगान्तलोपस्तु नैवमिति तेनैतदेव दत्वं बाध्यते। अनडुहोऽपि ढत्वमनेन बाध्यते। नुमस्तु विधानसामर्थ्यान्न भवति-अनड्वान्, हे अनड्वन्निति। 'पदस्य' इत्येव-विद्वांसौ, विद्वांसः।

अर्थ—'ससजुषोः' से 'सः' का अनुवर्त्तन है। उसके द्वारा सम्भव होने से तथा व्यभिचार से 'वसु' ही विशेषित होता है; व्यभिचार के अभाव से स्रंसु व ध्वसुं नहीं। असम्भव होने से

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'अनडुह्' शब्द भी विशेषित नहीं होता है। वसु है अन्त में जिसके, ऐसे सकारान्त पद के स्थान पर तथा स्रंस्, ध्वंस् व अनडुह्—इनके स्थान पर दकार आदेश होता है।

उदा० (क) वस्वन्तस्य—

(1) विद्वद्भ्याम्
विद् वसु—विदेः शतुर्वसुः,
विद् वस्—प्रातिपदिक संज्ञा,
विद् वस् भ्याम्—सुप् विभक्ति, पद संज्ञा,
विद् वद् भ्याम्—सकार को दकार।

(2) विद्वद्भिः
विद्वस् भिस्—पूर्ववत्,
विद्वद् भिस्—दकार।

(3) पपिवद्भ्याम्
पा (पाने अथवा रक्षणे) क्वसु—लिट् को 'क्वसु' आदेश,
प पिवस्—द्वित्व, 'वस्वेकाजाद्०' से इट्, 'आतो लोप इटि च' से आकारलोप, प्रातिपदिक संज्ञा, पदसंज्ञा,
पपिवस् भ्याम्—सकार को दकार।

(4) पपिवद्भिः
पपि वस् भिस्—पूर्ववत्।

(ख) स्रंसोः—

(5) उखास्रद्भ्याम्
उखया स्रंसते—क्विप्,
उखास्रंस् क्विप्—सर्वापहारलोप, 'अनिदिताम्०' से अनुनासिकलोप,
उखास्रस् भ्याम्—प्रातिपदिक संज्ञा, सुप् विभक्ति, पदसंज्ञा, दकार आदेश।

(6) उखास्रद्भिः
उखास्रस्—पूर्ववत्,
उखास्रस् भिस्—दकार।

(7) पर्णध्वद्भ्याम्
पर्णानि ध्वंसते—पूर्ववत् क्विप्, सर्वापहार लोप,
पर्णध्वस्—अनुनासिकलोप, प्रातिपदिक संज्ञा,
पर्णध्वस् भ्याम्—पदसंज्ञा,
पर्णध्वद् भ्याम्—दकार।

(8) पर्णध्वद्भिः
पर्णध्वस् भिस्—पूर्ववत्,
पर्णध्वद् भिस्—दकार।

(घ) अनडुहः—

(9) अनडुद्भ्याम्
अनडुह्—प्रातिपदिक संज्ञा,
अनडुह् भ्याम्—पद संज्ञा,
अनडुद् भ्याम्—दकार।

(10) अनडुद्भिः
अनडुह् भिस्—पूर्ववत्।

स इत्येव०—सकारान्त के स्थान पर ही दकार होता है।

(11) विद्वान्
विद् वस् सु—नुम् आगम,
विद् व न् स् स्—अनुबन्धलोप, हल्ङ्याब्भ्यो०,
विद् व न् स्—संयोगान्तस्य लोपः,
विद् वान्—उपधादीर्घ, सकार न होने से दकार नहीं हुआ।

नकार०—नकार के स्थान पर दकार नहीं होता है। जब रुत्व का बाध होता है तो संयोगान्त लोप का भी बाध इसके द्वारा होना चाहिए।

(समा०) 'यस्मिन्नाऽप्राप्ते यो विधिरारभ्यते स तस्य बाधको भवति' इस परिभाषा से रुत्व के अप्राप्त न होने पर इसका विधान किया जाता है। अतः उसका ही बाध होता है; संयोगान्त लोप का नहीं। अतः इससे दकार आदेश का बाध होता है।

ध्यातव्य है कि रुत्व सर्वत्र प्राप्त होता है तथा संयोगान्त लोप सर्वत्र प्राप्त नहीं होता। संयोगान्त लोप तो 'विद्वान्' यहाँ ही प्राप्त होता है; 'विद्वद्भ्याम्' इत्यादि स्थलों पर प्राप्त नहीं होता है। अतः उसके द्वारा दत्व का बाध होता है तथा संयोगान्त लोप करने में दत्व के असिद्ध होने से दत्व के द्वारा संयोगान्त लोप का बाध नहीं होता है।

अनडु०—अनडुह् को ढत्व का बाध भी इससे होता है।

'हो ढः' इसका अपवाद दत्व है। तब 'सावनडुहः' यहाँ पर भी दत्व नुम् का बाधक होना चाहिए।

(समा०) 'सावनडुहः' के द्वारा प्रतिपद नुम् का विधान किया जाता है। यदि उसका बाध दत्व के द्वारा हो जाता है तो नुम् विधान व्यर्थ हो जाता है। अतः विधानसामर्थ्य से नुम् का बाधक दत्व नहीं होता है।

(12) अनड्वान्
अनडुह् सु—'चतरनडुहोराम्०' से 'आम्',

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनडु आम् ह् स्—सावनडुहः, नुम्,
अनड् वा न् ह् स्—यण्, हल्ङ्याब्भ्यो०,
अनड् वान् ह्—संयोगान्तस्य लोपः।

(13) (हे) अनड्वन्
हे अनडुह् सु—अम् सम्बुद्धौ,
हे अनडु अम् ह् स्—शेष पूर्ववत्।

पदस्य०—पदसंज्ञक को ही दकार आदेश होता है। अतः 'विद्वांसौ' तथा 'विद्वांसः' में दकार नहीं होता है।

(3761) तिप्यनस्ते *73* (2484)

तिपि परतः सकारान्तस्य पदस्य अनस्तेर्दकार आदेशो भवति। अचकाद् भवान्। अन्वशाद् भवान्। तिपीति किम्? चकास्तेः क्विप्, चकाः। अनस्तेरिति किम्। आप एवेदं सलिलं सर्वमाः। आ इत्यस्तेर्लङि तिपि 'बहुलं छन्दसि' (7.3.97) इति ईड् न कृतः।

अर्थ—पदसंज्ञक सकार के स्थान पर दकार होता है, तिप् परे रहते, परन्तु 'अस्' को दत्व नहीं होता है।

उदा० (1) अचकाद्
चकास् तिप्—लङ्, शप्, अदिप्रभृतिभ्यः शपः,
चकास् त्—'इतश्च' से इकारलोप,
चकास्—हल्ङ्याब्भ्यो०,
अचकाद्—दत्व, अट्।

(2) अन्वशाद्
अनु शास् ति—पूर्ववत्, शप् लुक्, हल्ङ्यादि लोप,
अनु शास्—दत्व, अट्,
अनु अशाद्—यण्।

तिपीति०—तिप् परे रहते ही दत्व होता है।

(3) चकाः
चकास् क्विप्—सर्वापहार लोप,
चकास् सु—प्रातिपदिक संज्ञा, सु, सुलोप,
चकास्—पदसंज्ञा, 'तिप्' परे न रहने से सकार को दकार नहीं हुआ है,
चकाः—रु, विसर्जनीय।

आ इत्य०—'आः' यह अस् धातु के लङ् में तिप् करके तथा 'बहुलं छन्दसि' से 'ईट्' का अभाव करके रूप बनता है।

(4) आः
अस् तिप्—लङ्, इतश्च, शप् का लुक्,
अस् त्—'अस्तिसिचोऽपृक्ते' से 'ईट्' प्राप्त हुआ, 'बहुलं छन्दसि' से ईट् का अभाव,
आ अस्—हल्ङ्यादिलोप, आडजादीनाम्,
आस्—आटश्च, रुत्व, विसर्ग।

(3762) सिपि धातो रुर्वा *74* (2485)

सिपि परतः सकारान्तस्य पदस्य धातो 'रुः' इत्ययमादेशो भवति, दकारो वा। अचकात्त्वम्, अचकात्वम्। अन्वशास्त्वम्, अन्वशात्त्वम्। धातुग्रहणं चोत्तरार्थं रुग्रहणं च।

अर्थ—पदसंज्ञक सकारान्त धातु को 'रु' आदेश तथा दकार आदेश होता है, सिप् परे रहते।

उदा० (1) अचकास्त्वम्
चकास् सिप्—लङ्, इतश्च, शप् का लुक्,
चकास् स्—हल्ङ्यादि लोप,
अ चकास्—अट्, सकार को 'रु', विसर्जनीय तथा पुनः 'विसर्जनीयस्य सः' से सकार।

(2) अचकात्त्वम्
पक्ष में दकार, 'खरि च' से तकार।

(3) अन्वशास्त्वम्
शास् सिप्—पूर्ववत् इतश्च, शप् लुक्,
अनु अट् शास् स्—सकारलोप, शेष कार्य पूर्ववत्।

(4) अन्वशात्त्वम्
पक्ष में दकार होता है।

धातु०—'धातोः' तथा 'रुः' इनका ग्रहण उत्तर शास्त्र के लिए है।

(3763) दश्च *75* (2468)

दकारान्तस्य धातोः पदस्य सिपि परतो रुर्भवति, दकारो वा। अभिनत्त्वम्, अभिनस्त्वम्। अच्छिनत्त्वम्, अच्छिनस्त्वम्।

अर्थ—पदसंज्ञक दकारान्त धातु के स्थान पर रुत्व तथा दकार आदेश होता है, सिप् परे रहते।

उदा० (1) अभिनत् त्वम्
भिद् सिप्—लङ्, शप् को बाध कर 'श्नम्',
भि न द् स्—अनुबन्धलोप, इतश्च,
भिनद्—हल्ङ्यादिलोप,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अ भिनद्—दत्व, खरि च, अट्।

(2) अभिनस् त्वम्
अ भि न द्—पूर्ववत्,
अभिन रु—रु, विसर्ग, 'विसर्जनीयस्य सः' से सकार आदेश।

(3) अच्छिनत् त्वम्
छि न द् स्—पूर्ववत् 'श्नम्', इतश्च,
छि न द्—हल्ङ्यादि लोप,
अच् छिनत्—दत्व, खरि च, अट्, 'छे च' से 'तुक्', श्चुत्व।

(4) अच्छिनस् त्वम्
छि न द्—पूर्ववत् सभी कार्य,
अच् छिनस्—शेष कार्य 'अभिनस्' की तरह।

(3764) वोरुपधाया दीर्घ इकः *76* (433)

रेफवकारान्तस्य धातोः पदस्य उपधाया इको दीर्घो भवति। गीः। धूः। पूः। आशीः। वकारग्रहणमुत्तरार्थम्। उपधाग्रहणं किम्? अबिभर्भवान्–अभ्यासेकारस्य मा भूत्। इक इति किम्? अत्रैव प्रत्युदाहरणे भशब्दाकारस्य मा भूत्। 'धातोः' इत्येव–अग्निः, वायुः। 'पदस्य' इत्येव–गिरौ, गिरः।

अर्थ—रेफान्त तथा वकारान्त पदसंज्ञक धातु की उपधा में जो इक् वर्ण, उसे दीर्घ आदेश होता है।

उदा० (1) गीः
गृ क्विप्—सर्वापहार लोप,
गिर्—ऋत इद्धातोः, उरण् रपरः,
गिर् सु—प्रातिपदिक संज्ञा, हल्ङ्यादि लोप,
गीर्—उपधादीर्घ, विसर्ग।

(2) धूः
धूर्व्—क्विप्, सर्वापहारलोप,
धुर्—रल्लोपः, प्रातिपदिक संज्ञा,
धुर् सु—सुलोप, पदसंज्ञा,
धूर्—दीर्घ, विसर्जनीय।

(3) पूः
पुर् सु—पूर्ववत्,
पूर्—दीर्घ।

(4) आशीः
आशिस् सु—पूर्ववत् सभी कार्य।

वकार०—सूत्र में वकार का ग्रहण उत्तर शास्त्र के लिए है।

उपधा०—उपधा में जो इक् वर्ण, उसे दीर्घ होता है।

(5) अबिभर् भवान्
भृ तिप्, लङ्, शप्, जुहोत्यादिभ्यः श्लुः, गुण,
भर् ति—'श्लौ' से द्वित्व, रूपातिदेश,
भृ भर् ति—उरत्, उरण् रपरः,
भ भर् ति—हलादिः शेषः, अभ्यासे चर्च,
ब भर् ति—भृञामित्,
बि भर् त्—इतश्च,
अ बिभर्—हल्ङ्यादिलोप, 'अबिभर्' रेफान्त पदसंज्ञक है, परन्तु उपधा में इक् वर्ण नहीं है। अतः उपधादीर्घ नहीं हुआ।

इक इति०—उपधा में जो **इक्** वर्ण, उसे ही दीर्घ होता है। पूर्व प्रत्युदाहरण 'अबिभर्' में अकार की उपधासंज्ञा है, जो इक् वर्ण नहीं है। अतः इसे दीर्घ नहीं हुआ।

धातो०—धातु की उपधाभूत इक् को दीर्घ होता है।

(6) अग्निः
अग्नि सु—इस दशा में 'ससजुषो रुः' से 'रु' हुआ,
अग्नि र्—रेफान्त तथा पदसंज्ञक है, उपधा में इक् वर्ण भी है, परन्तु धातु नहीं है। अतः इक् को दीर्घ नहीं हुआ।

(7) वायुः
वायु सु—पूर्ववत्।

पदस्य०—पदसंज्ञक की उपधा इक् को दीर्घ होता है।

(8) गिरौ
गिर् औ—'गिर्' रेफान्त व धातु है; इसकी उपधा में इक् वर्ण है, परन्तु इसकी पदसंज्ञा न होने से इक् को दीर्घ नहीं हुआ।

(9) गिरः
गिर् जस्—पूर्ववत्।

(3765) हलि च *77* (354)

हलि च परतः रेफवकारान्तस्य धातोरुपधाया इको दीर्घो भवति। आस्तीर्णम्। विस्तीर्णम्। विशीर्णम्। अवगूर्णम्। वकारान्तस्य–दीव्यति। सीव्यति। 'धातोः' इत्येव–दिवमिच्छति दिव्यति। चतुर इच्छति चतुर्यति। 'इकः' इत्येव–स्मर्यते। भव्यम्। अपदान्तार्थोऽयमारम्भः।

अर्थ—रेफान्त तथा वकारान्त धातु की उपधाभूत इक् वर्ण को दीर्घ आदेश होता है, हल् वर्ण परे रहते।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उदा० (1) आस्तीर्णम्
आ स्तृ क्त—ऋत इद्धातोः, उरण् रपरः,
आ स्तिर् त—हलि च, नत्व,
आ स्तीर् न—णत्व, सु।

(2) विस्तीर्णम्
वि स्तृ क्त—पूर्ववत्।

(3) विशीर्णम्
शृ क्त—पूर्ववत्।

(4) दीव्यति
दिव् तिप्—शप् को बाध कर 'दिवादिभ्यः श्यन्' से 'श्यन्' हुआ,
दिव् य ति—लशक्वतद्धिते, हलन्त्यम्,
दीव् य ति—हलि च।

(5) सीव्यति
षिव् → सिव्—धात्वादेः षः सः,
सिव् तिप्—पूर्ववत् श्यन्।

धातोः—धातु की उपधा को ही दीर्घ होता है।

(6) दिव्यति
दिवम् इच्छति—सुप आत्मनः क्यच्,
दिव् य—धातुसंज्ञा, 'दिव्' वकारान्त है, उपधा में इक् वर्ण है, परन्तु धातु नहीं है। अतः दीर्घ आदेश नहीं हुआ,
दिव्य शप् ति—अतो गुणे।

(7) चतुर्यति
चतुर इच्छति—पूर्ववत् दीर्घ आदेश नहीं हुआ।

इकः—उपधा में जो इक् वर्ण, उसे दीर्घ होता है।

(8) स्मर्यते
स्मृ त—कर्मवाच्य, सार्वधातुक संज्ञा, सार्वधातुके यक्,
स्मृ य त—'गुणोर्त्तिसंयो०' से गुण,
स्मर्य त—'स्मृ' रेफान्त धातु है, परन्तु उपधा में 'इक्' वर्ण न होने से दीर्घ नहीं हुआ,
स्मर्य ते—टित आत्मनेपदा०।

अपदा०—यह पदान्त से अन्यत्र के लिए विधान है।

(3766) उपधायां च *78* (2265)

'हलि' इत्यनुवर्त्तते। धातोरुपधाभूतौ यौ रेफवकारौ हल्परौ तयोरुपधाया इको दीर्घो भवति। हुर्छा-हूर्छिता। मुर्छा-मूर्छिता। उर्वी-ऊर्विता। धुर्वी-धूर्विता। 'हलि' इत्येव-चिरि, जिरि, चिरिणोति। जिरिणोति। इह कस्मान्न भवति-'री गतौ' (धा०पा० 1501) रिर्यतुः, रिर्युः, 'वी गत्यादिषु' (धा०पा० 1049) विव्यतुः, विव्युरिति? यणादेशस्य स्थानिवत्त्वात् असिद्धत्वाच्च बहिरङ्गलक्षणत्वेन हल्परौ रेफवकारौ न भवतः। चतुर्यिता-इत्यत्रापि बहिरङ्गलक्षणत्वादतो लोपस्य (6.4.48) धातोरुपधाभूतो रेफो न भवति। प्रतिदीव्ना-इत्यत्र तु 'हलि च' (8.2.77) इति दीर्घत्वम्, दीर्घविधौ लोपाजादेशस्य स्थानिवद्भावप्रतिषेधात्। 'असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे' (व्या०प०) इत्येतत्तु नाश्रयितव्यम्। 'उणादयोऽव्युत्पन्नानि प्रातिपदिकानि' (है० प०) इति जिघ्रिः, किर्योः, गिर्योरित्येवमादिषु दीर्घो न भवति।

अर्थ—'हलि' का अनुवर्त्तन है। धातु की उपधा में जो रेफ तथा वकार, उनसे पर हल् वर्ण हो तो उनकी उपधा में इक् वर्ण को दीर्घ आदेश होता है।

उदा० (1) हूर्छिता
हुर्छ् तृच्—इट् हुआ,
हुर्छ् इ तृ—धातु की उपधा में रेफ है, रेफ से परे हल् वर्ण (छकार) है, रेफ की उपधा में इक् वर्ण (उकार) है,
हूर्छ् इ तृ सु—दीर्घ आदेश।

(2) मूर्छिता
मुर्छ इ तृ—पूर्ववत्।

(3) ऊर्विता
उर्व् इ तृ—इट् हुआ,
ऊर्व् इ तृ सु—दीर्घ, विभक्तिकार्य।

(4) धूर्विता
धुर्व् इ तृ—इट्,
ऊर्व् इ तृ—पूर्ववत् दीर्घ आदेश।

हलि०—हल् परे है जिस रेफ तथा वकार के, उनकी उपधाभूत इक् वर्ण को दीर्घत्व होता है।

(5) चिरिणोति
चिरि श्नु ति—लट्, स्वादिभ्यः श्नुः, अनुबन्धलोप,
चिरि नु ति—रेफ उपधा में है परन्तु हल् परक नहीं है। अतः रेफ की उपधाभूत इक् वर्ण (इकार) को दीर्घ आदेश नहीं हुआ,
चिरि णो ति—गुण, णत्व।

(6) जिरिणोति (पूर्ववत्)।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इह०—(शंका) रिर्यतुः, रिर्युः, विव्यतुः तथा विव्युः—इन स्थलों पर दीर्घत्व क्यों नहीं होता है।

(समा०) यण् आदेश के स्थानिवत् होने से तथा असिद्ध होने से बहिरंग लक्षण से रेफ तथा वकार हल्पर नहीं होते हैं (अतः दीर्घ आदेश नहीं होता है)।

(7) रिर्यतुः
री अतुस्—लिट्, तस्, 'परस्मैपदानां णलतुसुस्०' से 'अतुस्' आदेश,
रि री अतुस्—द्वित्व, 'ह्रस्वः' से ह्रस्वादेश, 'एरनेकाच०' से यण्,
रि र् यतुस्—'रि र् य' यहाँ रेफ हल् परक है, अतः इसकी उपधाभूत इकार को दीर्घ प्राप्त होता है।

(8) रिर्युः
री उस्—'झि' को 'उस्' आदेश, शेष पूर्ववत्।

(9) विव्यतुः
वी अतुस्—पूर्ववत् 'अतुस्' आदेश, द्वित्व,
वि व्य् अतुस्—ह्रस्व, यण्, पूर्ववत् इक् (इकार) को दीर्घ प्राप्त हुआ।

(10) विव्युः
वी उस्—'झि' को 'उस्', शेष पूर्ववत्।

चतुर्यि०—चतुर्यिता—यहाँ पर भी ह्रस्व अकार के लोप के बहिरंगलक्षण होने से धातु का उपधाभूत रेफ नहीं होता है। अतः दीर्घ नहीं हुआ।

(11) चतुर्यिता
चतुर् क्यच्—पूर्ववत्,
चतुर्य् इ तृ—धातुसंज्ञा, तृच्, इट्, 'अतो लोपः' से अकार-लोप, उपधा रेफ से उत्तर हल् है, रेफ की उपधाभूत इक् वर्ण (उकार) को दीर्घत्व प्राप्त हुआ,
चतुर्यिता—पूर्ववत् दीर्घ नहीं हुआ।

प्रतिदी०—'प्रतिदीव्ना' यहाँ 'हलि च' से दीर्घ हुआ है। दीर्घ-विधि में लोप तथा अजादेश के स्थानिवत् भाव का निषेध होता है। अतः 'अन्तरंग के विषय में बहिरंग असिद्ध होता है'—इस परिभाषा का आश्रय नहीं करना चाहिए।

(12) प्रतिदीव्ना
प्रति दिव् कनिन्—'कनिन् युवृषितक्षि', अनुबन्धलोप,
प्रति दिव् अन् टा—'अल्लोपोऽनः' से अकारलोप, चुट्,
प्रति दिव् न् आ—'अचः परस्मिन् पूर्व०' से अकारलोप स्थानिवत् हुआ, अतः धातु वकारान्त न होने से 'हलि च' से दीर्घ नहीं हो सका। तब पूर्वोक्त परिभाषा प्रवृत्त होकर 'हलि च' की प्रवृत्ति हुई।

उणाद०—उणादि अव्युत्पन्न प्रातिपदिक हैं—अतः निम्न-लिखित में दीर्घ आदेश नहीं होता है।

(13) जिव्रिः
जॄष् क्रिन्—'जीर्यतेः क्रिन् रश्च०', लशक्वतद्धिते, हलन्त्यम्,
जिर् रि—ऋृत इद्धातोः, उरण् रपरः,
जिव् रि—वकार आदेश, यहाँ वकारान्त धातु है, वकार से पर हल् वर्ण (रेफ) है, 'हलि च' से दीर्घत्व प्राप्त था।

(14) किर्योः
कृ कि—भुजेः किच्च, कृगृशॄपॄकुटि०,
किर् इ—ऋृत इद्धातोः, उरण् रपरः,
किरि ओस्—प्रातिपदिक संज्ञा, इको यणचि,
किर् य् ओस्—'हलि च' से दीर्घत्व प्राप्त था।

(15) गिर्योः
गृ कि—पूर्ववत् सभी कार्य।

(3767) नभकुर्छुराम् *79* (1629)

रेफवकारान्तस्य भस्य कुर्, छुर्-इत्येतयोश्च दीर्घो न भवति। धुरं वहति धुर्यः। धुरि साधुर्धुर्यः। कुर्-कुर्यात्। छुर्-छुर्यात्। दिव्यम्। रेफवकाराभ्यां भविशेषणं किम्? प्रतिदीव्ना। प्रतिदीव्ने।

अर्थ—रेफान्त तथा वकारान्त भ के स्थान पर, कुर् तथा छुर्—इनके स्थान पर दीर्घ आदेश नहीं होता है।

उदा० (1) धुर्यः
धुरं वहति—'धुरो यड्ढकौ' से 'यत्',
धुर् य—हलन्त्यम्, 'हलि च' से प्राप्त दीर्घादेश का निषेध,
धुर्य सु—विभक्तिकार्य,
इसी प्रकार—धुरि साधुर्धुर्यः।

(2) कुर्यात्
क तिप्—लिङ्, इतश्च,
कृ उ यास् त्—तनादिकृञ्भ्य उः, यासुट् परस्मैपदे०,
कर् उ यास् त्—अत उत् सार्वधा०,
कुर् यास्त्—लिङः सलोपो०,
कुर्यात्—रूप बना।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(3) छुर्यात्

छुर् ति—आशीर्लिङ्, 'इतश्च' से इकारलोप,

छुर् यासुट् त्—यासुट् परस्मैपदेषू०, 'हलि च' से दीर्घ आदेश प्राप्त था, निषेध हुआ,

छुर् यास्त्—सकारलोप।

रेफव०—रेफान्त तथा वकारान्त—ये दोनों 'भ' के विशेषण हैं।

(4) प्रतिदीव्ना

यहाँ दीर्घ आदेश का निषेध नहीं हुआ। सिद्धि पा० 8.2.78 पर देखिये।

(5) प्रतिदीव्ने

प्रति दिवन् ङे—पूर्ववत् दीर्घत्व।

(3768) अदसोऽसेर्दादु. दो मः *80* (419)

अदसोऽसकारान्तस्य वर्णस्य दात्परस्य उवर्णादिशो भवति दकारस्य च मकारः। अमुम्, अमू, अमून्। अमुना। अमूभ्याम्। 'भाव्यमानेनाप्युकारेण सवर्णानां ग्रहणमिष्यते' (पु०प०)–इत्येकमात्रिकस्य मात्रिकः, द्विमात्रिकस्य द्विमात्रिक आदेशो भवति। असेरिति किम्? अद इच्छति अदस्यति। *अदसोऽनोत्र इति वक्तव्यम्* (म०भा०)। ओकाररेफयोरपि प्रतिषेधो यथा स्यादिति। अदोऽत्र। अदः कुलम्। तदर्थं केचित्सूत्रं वर्णयन्ति–अः सेर्यस्य सोऽयमसिः–यत्र सकारस्य अकारः क्रियत इति, तेन त्वदाद्यत्वविधाने एतद् अन्यत्र न भवितव्यमेवेति। अद्र्यादेशे कथम्?

अदसोऽद्रेः पृथङ्मुत्वं केचिदिच्छन्ति लत्ववत्।
केचिदन्त्यसदेशस्य नेत्येकेऽसेर्हि दृश्यते॥
(म०भा०)।

यैः 'असेः' इति सकारस्य प्रतिषेधः क्रियते, 'अनन्त्यविकारेऽन्त्यसदेशस्य' (व्या०प०) इति च परिभाषा नाश्रीयते; तेषामुभयोरपि मुत्वेन भवितव्यम्–अमुमुयङ्, अमुमुयञौ, अमुमुयञ इति; यथा–चलीक्लृप्यत इति लत्वम्। ये तु परिभाषामाश्रयन्ति, तेषामन्त्यसदेशस्यैव भवितव्यम्–अदमुयङ्, अदमुयञौ, अदमुयञ इति। येषां तु 'त्यदाद्यत्वविषय एव मुत्वेन भवितव्यम्' इति दर्शनम्, तेषामत्र न भवितव्यम्–अदद्र्यङ्, अदद्र्यञौ, अदद्र्यञ इति। दादिति किम्? अलोऽन्त्यस्य मा भूत्–अमुया, अमुयोः।

अर्थ—जो सकारान्त नहीं है, ऐसे अदस् के दकार से पर वर्ण के स्थान पर उवर्ण आदेश होता है तथा दकार के स्थान पर मकार होता है।

उदा० (1) अमुम्

अदस् अम्—त्यदादीनाम् अः,
अद अ अम्—अतो गुणे,
अदम्—अमि पूर्वः,
अमुम्—मुत्व।

(2) अमू

अदस् औ—त्यदादीनाम् अः, अतो गुणे,
अद औ—वृद्धिरेचि, प्रथमयोः पूर्व०, नादिचि, वृद्धिरेचि,
अदौ—उत्व, मत्व,
अमू—रूप बना।

(3) अमून्

अदस् शस्—लशक्वतद्धिते, त्यदादीनामः, अतो गुणे,
अद अस्—पूर्वसवर्ण,
अदास्—तस्माच्छसो०,
अमून्—उत्व, मत्व।

(4) अमुना

अदस् टा—त्यदादीनाम् अः, अतो गुणे,
अद टा—उत्व, मत्व,
अमुना—घिसंज्ञा, आङो नाऽस्त्रियाम्।

(5) अमूभ्याम्

अदस् भ्याम्—त्यदादीनाम् अः, अतो गुणे,
अद भ्याम्—सुपि च,
अदा भ्याम्—उत्व, मत्व,
अमूभ्याम्—रूप बना।

भाव्य०—भाव्यमान उकार के द्वारा भी सवर्णों का ग्रहण होता है। इस परिभाषा के द्वारा एकमात्रिक के स्थान पर एकमात्रिक आदेश होता है तथा द्विमात्रिक के स्थान पर द्विमात्रिक आदेश होता है।

असे०—असकारान्त को ही सूत्रोक्त कार्य होता है।

(6) अदस्यति

अद इच्छति—'क्यच्' हुआ,
अदस् य—उत्व, मत्व नहीं हुआ,
अदस्य शप् तिप्—अतो गुणे।

अदसो०—जहाँ ओकार, सकार व रेफ विद्यमान न हों, ऐसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अदस् को होता है। इसका भाव है कि ओकार तथा रेफ का भी प्रतिषेध होता है।

(7) अदोऽत्र
यहाँ ओकार है। अतः नहीं हुआ।

(8) अदः कुलम्
यहाँ रेफ है। उसे विसर्जनीय हुआ है। अतः निषेध हुआ।

तदर्थं०—इसके लिए कुछ विद्वान् सूत्र की व्याख्या इस प्रकार करते हैं—

अः सेर्यस्य सोऽयमसि अर्थात् जहाँ सकार के स्थान पर अकार किया जाता है। अतः त्यदादि विधान में यह अन्यत्र नहीं होना चाहिए।

अद्र्ग्या०—अद्रि आदेश में किस प्रकार होता है ? पृथक् मुत्व होता है अथवा अद्रि आदेश के विषय में होता ही नहीं है।

अदसो०—कुछ विद्वान् अद्रि आदेश के पृथक् मुत्व स्वीकार करते हैं। चकार के ग्रहण के विना भी इसके अर्थ का ज्ञान होता है। यह लत्व की तरह होता है। जिस प्रकार 'चलीक्लृप्यत' इस स्थल पर 'कृपो रो लः' से धातु के रेफ के स्थान पर तथा 'री' शब्द के स्थान पर अर्थात् दोनों के स्थान पर लत्व स्वीकार करते हैं, उसी प्रकार अदस् के स्थान पर तथा अद्रि के स्थान पर मुत्व होता है।

केचिद०—अद्रि आदेश इकारान्त है। कुछ विद्वान् इसके स्थान पर उत्व स्वीकार करते हैं। यह अद्रि आदेश का सम्बन्धी दकार तथा रेफ है। अन्य विद्वान् चाहते हैं कि जब अदस् के स्थान पर अद्रि आदेश किया जाता है, तब मुत्व नहीं होना चाहिए।

असेर्हि०—अः सेर्यस्य सोऽयमसिः, तस्याऽसेः। 'हि' शब्द 'यस्मात्' अर्थ में है। जिससे सकार के स्थान पर जिस अदस् को अकार आदेश होता है, उसके स्थान पर मुत्व दिखाई देता है। जिसे अद्रि आदेश किया जा चुका है, ऐसे अदस् के सकार के स्थान पर अत्व नहीं होता। यहाँ विभक्ति से पर निमित्त का अभाव है। उससे उसके स्थान पर मुत्व नहीं होना चाहिए।

यैः०—जो विद्वान् 'असे' इस प्रकार सकार का निषेध करते हैं तथा 'अनन्त्यविकारेऽन्त्यसदेशस्य' परिभाषा का आश्रय नहीं करते हैं; उनके मत में दोनों को ही मुत्व होना चाहिए। यथा—

अमुमुयङ्, अमुमुयञौ, अमुमुयञः।

जिस प्रकार 'चलीक्लृप्यत' में लत्व होता है।

ये तु०—जो परिभाषा का आश्रय करते हैं, उनके मत में अन्त्य सदेश को ही होना चाहिए। यथा—

अदमुयङ्, अदमुयञौ, अदमुयञः।

येषां०—जिनके मत में 'त्यदाद्यत्व के विषय में ही मुत्व होना चाहिए' ऐसा है, उनके मत में यहाँ नहीं होना चाहिए—

अदद्र्यङ्, अदद्र्यञौ, अदद्र्यञः।

दादि०—दकार से पर वर्ण के स्थान पर उत्व होता है। तब अलोऽन्त्य परिभाषा से अन्त्य अल् के स्थान पर नहीं होता है।

(9) अमुया
अदस् टा—त्यदादीनामः, टाप्,
अद आ टा—अतो गुणे, चुटू, हलन्त्यम्,
अद आ—यदि सूत्र में 'दात्' का ग्रहण न होता तो 'आङि चापः' से एत्व करने पर अय् आदेश होकर अलोऽन्त्य परिभाषा से यकार के स्थान पर ही उत्व होता।

(10) अमुयोः
अदस् → अद् आ—त्यदादीनामः, टाप्, अतो गुणे,
अदा ओस्—'ओसि च' से एत्व होकर पूर्ववत् यकार के स्थान पर उत्व प्राप्त था, परन्तु 'दात्' ग्रहण से नहीं हुआ।

(3769) एत ईद्बहुवचने *81* (438)

अदसो दकारादुत्तरस्य एकारस्य ईकारादेशो भवति, दकारस्य च मकारो बहुवचने = बहूनामर्थानामुक्तौ। अमी। अमीभिः। अमीभ्यः। अमीषाम्। अमीषु। 'बहुवचने' इत्यर्थनिर्देशोऽयम्, पारिभाषिकस्य हि बहुवचनस्य ग्रहणे- अमी इत्यत्र न स्यात्।

अर्थ—अदस् शब्द के दकार से उत्तर एकार के स्थान पर ईकार आदेश होता है तथा दकार के स्थान पर मकार आदेश होता है, बहुत्व की विवक्षा में।

उदा० (1) अमी
अदस् जस्—जसः शी, लशक्वत०, त्यदादीना०, अतो गुणे,
अदे—ईत् तथा मत्व,
अमी—रूप बना।

(2) अमीभिः
अदस् भिस्—अकार अन्तादेश, पररूप,
अद भिस्—बहुवचने झल्येत्,
अदे भिस्—एत ईद्०,
अमी भिस्—विसर्ग।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(3) अमीभ्यः
अदस् भ्यस्—अकार, पररूप,
अदे भ्यस्—बहुवचने झल्येत्,
अमी भ्यस्—ईत्।

(4) अमीषाम्
अदस् आम्—त्यदादीनाम् अः,
अद आम्—अतो गुणे,
अद स् आम्—आमि सर्वनाम्नः सुट्, अनुबन्धलोप,
अदे साम्—बहुवचने झल्येत्,
अमी साम्—ईत्, आदेशप्रत्यययोः।

(5) अमीषु
अदस् सुप्—त्यदादीनाम् अः, अतो गुणे,
अद सु—बहुवचने झल्येत्,
अदे सु—एत ईद्०,
अमी सु—आदेशप्रत्यययोः।

बहुव०—'बहुवचने' यह अर्थनिर्देश है। पारिभाषिक बहुवचन के ग्रहण में। 'अमी' यहाँ नहीं होता है।

'ईत्' में तकार मुखसुख के लिए है।[1]

(3770) वाक्यस्य टेः प्लुतः उदात्तः *82* (93)

अधिकारोऽयम्। वाक्यस्य टेरिति, प्लुत इति च, उदात्त इति च–एतत्त्रयमप्यधिकृतं वेदितव्यमापादपरिसमाप्तेः। यदित ऊर्ध्वमनुक्रमिष्यामो वाक्यस्य टेः, प्लुतः, उदात्तः–इत्येवं तद्वेदितव्यम्। वक्ष्यति–'प्रत्यभिवादेऽशूद्रे' (8.2.83) अभिवादये देवदत्तोऽहम्, भो आयुष्मानेधि देवदत्त3। पदाधिकारोऽनुवर्तत एव। वाक्यग्रहणमनन्तस्य पदस्य प्लुतनिवृत्त्यर्थम्। टिग्रहणं व्यञ्जनान्तस्यापि टेरचः प्लुतो यथा स्यात्–अग्निचि3दिति।

अर्थ—यह अधिकार है। इस पाद की समाप्तिपर्यन्त वाक्यस्य टेः, प्लुतः, उदात्तः—इन तीनों का अधिकार जानना चाहिए। यहाँ से आगे जो भी कहा जायेगा, वहाँ 'वाक्य की टि को प्लुत होता है तथा वह उदात्त होता है' ऐसा जानना चाहिए।

आगे कहा जायेगा—प्रत्यभिवादेऽशूद्रे।

उदाहरण तत् तत् सूत्रों पर देखिये।

पदा०—'पद' का अधिकार तो है ही।

वाक्य०—सूत्र में 'वाक्य' का ग्रहण 'अनन्त्य पद को प्लुतत्व न हो'—इसके लिए है। 'टि' का ग्रहण करने से व्यञ्जनान्त के भी अच् को प्लुत आदेश हो जाता है। यथा—

अग्निचि3दिति।

(3771) प्रत्यभिवादेऽशूद्रे *83* (94)

प्रत्यभिवादो नाम यदभिदवाद्यमानो गुरुराशिषं प्रयुङ्क्ते, तत्राशूद्रविषये यद्वाक्यं वर्त्तते तस्य टेः प्लुत उदात्तो भवति। अभिवादये देवदत्तोऽहम्, भो आयुष्मानेधि देवदत्त3। अशूद्र इति किम्? अभिवादये तुषजकोऽहम्, भो आयुष्मानेधि तुषजक। *स्त्रियामपि प्रतिषेधो वक्तव्यः* (म० भा०)। अभिवादये गार्ग्यहम्, भो आयुष्मती भव गार्गि। असूयकेऽपि केचित् प्रतिषेधमिच्छन्ति–अभिवादये स्थाल्यहं भोः, आयुष्मानेधि स्थालिन्। यावच्च तस्यासूयकत्वं न ज्ञायते, तावदेव प्रत्यभिवादवाक्यम्। तस्मिंस्त्वसूयकत्वेन निर्ज्ञाते प्रत्यभिवाद एव नास्ति, कुतः प्लुतः। तथा चोक्तम्–असूयकस्त्वं जाल्म, न त्वं प्रत्यभिवादनमर्हसि, भिद्यस्व वृषल स्थालिन्निति (म० भा०)। अभिवादनवाक्ये यत् सङ्कीर्तितं नाम, गोत्रं वा, तद् यत्र प्रत्यभिवादनवाक्यान्ते प्रयुज्यते तत्र प्लुतिरिष्यते। इह न भवति–देवदत्त कुशल्यसि। देवदत्त आयुष्मानेधीति। *भोराजन्यविशां वेति वक्तव्यम्* (म० भा०)। भो अभिवादये देवदत्तोऽहम्, आयुष्मानेधि देवदत्त भो3:, आयुष्मानेधि देवदत्त भोः। राजन्य–अभिवादये इन्द्रवर्माहं भोः, आयुष्मानेधीन्द्रवर्म3न्, आयुष्मानेधीन्द्रवर्मन्। विश्–अभिवादये इन्द्रपालितोऽहं भोः, आयुष्मानेधीन्द्रपालित3, आयुष्मानेधीपालित।

अर्थ—अभिवादन किया जाता हुआ गुरु जो आशीर्वचन का प्रयोग करता है, वह प्रत्यभिवाद कहलाता है। यदि शूद्र का विषय न हो तो प्रत्यभिवाद का जो वाक्य, उसकी टि को प्लुत आदेश होता है और वह उदात्त होता है।

उदा० (1) भो आयुष्मानेधि देवदत्त3।

शिष्य ने अभिवादन किया—अभिवादयेऽहम्,

गुरु ने प्रत्यभिवादन किया। यहाँ देवदत्त की टि को प्लुत हुआ।

अशूद्र०—शूद्र का विषय न होने पर ही टि को प्लुत आदेश होता है।

(2) भो आयुष्मानेधि तुषजक।

1. न्यास० 8.2.81.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तुषजक शूद्र है। इसके प्रत्यभिवादन में टि को प्लुत आदेश नहीं हुआ।

स्त्रिया०—स्त्री के विषय में भी टि को प्लुतत्व नहीं होता है।

(3) भो आयुष्मती भव, गार्गि।

स्त्री ने अभिवादन किया—अभिवादये गार्ग्यहम्।

उसके प्रत्यभिवाद में 'गार्गी' की टि को प्लुत नहीं हुआ।

असूय०—असूयक के विषय में भी टि को प्लुत नहीं होता है।

अभिवादन—अभिवादये स्थाल्यहम्।

प्रत्यभिवाद—आयुष्मानेधि स्थालिन्।

यावच्च०—जब तक उसके असूयकत्व का ज्ञान नहीं होता; तब तक ही प्रत्यभिवाद वाक्यं होता है। उसके असूयकत्व का ज्ञान होने पर प्रत्यभिवाद ही नहीं रहता है। तब प्लुत कैसा ?

कहा भी गया है—दुष्ट तुम असूयक हो, अतः तुम्हें अभिवादन नहीं किया जाना चाहिए।

अभिवा०—अभिवादनवाक्य में जिस नाम अथवा गोत्र का वाक्य के अन्त में प्रयोग किया जाता है, उसे प्लुत आदेश होता है। अतः निम्नलिखित में नहीं होता है।

देवदत्त, कुशल्यसि ?

देवदत्त, आयुष्मान् एधि।

भो रा०—भोः, राजन्य तथा वैश्य के प्रत्यभिवाद में विकल्प से प्लुत होता है। यथा—

अभिवादन—भो अभिवादये देवदत्तोऽहम्।

प्रत्यभिवाद—आयुष्यमानेधि देवदत्त भोः3।

आयुष्मानेधि देवदत्त भोः।

अभिवादन—अभिवादये इन्द्रवर्माऽहं भोः।

प्रत्यभिवाद—आयुष्मानेधि इन्द्रवर्म3न्।

आयुष्मानेधि इन्द्रवर्मन्।

अभिवादन—अभिवादये इन्द्रपालितोऽहं भोः।

प्रत्यभिवाद—आयुष्मानेधीन्द्रपालित3।

आयुष्मानेधीन्द्र पालित।

(3772) दूराद्धूते च *84* (95)

दूराद्धूते यद्वाक्यं वर्तते तस्य टेः प्लुतो भवति स चोदात्तः। आह्वानम्-हूतम्, शब्देन सम्बोधनम्। आगच्छ भो माणवक देवदत्त3। आगच्छ भो माणवक यज्ञदत्त3। दूरं यद्यप्यपेक्षाभेदादनवस्थितम्, तथापि हूतापेक्षं यत्तदाश्रीयते इति यत्र प्राकृतात् प्रयत्नाद्यत्नविशेष आश्रीयमाणे शब्दः श्रूयते, तद् दूरम्। हूतग्रहणं च सम्बोधनमात्रोपलक्षणार्थं द्रष्टव्यम्। तेन यत्राप्याह्वानं नास्ति, तत्रापि प्लुतिर्भवति-सक्तून्पिब देवदत्त3। पलायस्व देवदत्त3 इति। अस्याश्च प्लुतेरेकश्रुत्या समावेश इष्यते। दूरादिति किम् ? आगच्छ भो माणवक देवदत्त। दूरादाह्वाने वाक्यस्यान्ते यत्र सम्बोधनपदं भवति तत्रायं प्लुत इष्यते। तेनेह न भवति-देवदत्त आगच्छ।

अर्थ—दूर से बुलाने में जो वाक्य वर्त्तमान होता है, उसकी टि को प्लुत होता है तथा वह उदात्त होता है।

शब्द के द्वारा सम्बोधन 'हूत' कहलाता है।

उदा० (1) आगच्छ भो माणवक देवदत्त3।

(2) आगच्छ भो माणवक यज्ञदत्त3।

दूरं०—दूर यद्यपि अपेक्षा के अभेद से अनवस्थित होता है, तथापि जो हूत अपेक्ष होता है, उसका आश्रय किया जाता है। जहाँ प्राकृत प्रयत्न से आश्रीयमाण यत्नविशेष में शब्द का श्रवण होता है, वह 'दूर' कहलाता है।

हूत०—'हूत' शब्द का ग्रहण सम्बोधनमात्र के उपलक्षण के लिए है। अतः जहाँ पर आह्वान नहीं है, वहाँ पर भी प्लुत आदेश होता है। यथा—

सक्तून् पिब देवदत्त3।

पलायस्व देवदत्त3।

अस्या०—इस प्लुति का एकश्रुति के द्वारा समावेश होता है।

दूरा०—दूर से आह्वान करने पर ही प्लुत आदेश होता है।

आगच्छ भो माणवक देवदत्त—यहाँ प्लुत नहीं हुआ।

दूरादा०—दूर से बुलाने में वाक्य के अन्त में जहाँ सम्बोधन पद होता है, वहाँ पर ही यह प्लुत होता है। अतः यहाँ नहीं होता है।

देवदत्त आगच्छ।

(3773) हैहेप्रयोगे हैहयोः *85* (96)

हैहेप्रयोगे दूराद्धूते यद्वाक्यं वर्त्तते तत्र हैहयोरेव प्लुतो भवति। है3 देवदत्त, हे3 देवदत्त। देवदत्त है3, देवदत्त हे3। पुनर्हैहयोर्ग्रहणमनन्त्ययोरपि यथा स्यात्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—है तथा हे शब्दों के प्रयोग में दूर से बुलाने में जो वाक्य वर्त्तमान है, वहाँ 'है' तथा 'हे' शब्दों को प्लुत होता है।

उदा० (1) है3 देवदत्त।
(2) देवदत्त है3।
(3) हे3 देवदत्त।
(4) देवदत्त हे3।

'है' तथा 'हे' शब्दों के दो बार प्रयोग होने से अन्त्य तथा अनन्त्य दोनों स्थितियों में प्लुत होता है।

(3774) गुरोरनृतोऽनन्त्यस्याप्येकैकस्य प्राचाम् *86* (97)

'प्रत्यभिवादेऽशूद्रे' (8.2.94)–इत्येवमादिना यः प्लुतो विहितः, तस्यैवायं स्थानिविशेष उच्यते। ऋकारवर्जितस्य गुरोरनन्त्यस्य, अपिशब्दादन्त्यस्यापि टेरेकैकस्य सम्बोधने वर्तमानस्य प्लुतो भवति प्राचामाचार्याणां मतेन। दे३वदत्त, देव॒द३त्त। देव॒दत्त३। य३ज्ञदत्त, य॒ज्ञद३त्त, य॒ज्ञदत्त३। गुरोरिति किम्? वकारात्परस्य मा भूत्। अनृत इति किम्? कृ॒ष्ण॒मि॒३त्र कृ॒ष्ण॒मि॒त्र३। एकैकग्रहणं पर्यायार्थम्। प्राचामिति ग्रहणं विकल्पार्थम्। आयुष्मानेधि देवदत्त। तदनेन यदेतदुच्यते–'सर्व एव प्लुतः साहसमनिच्छता विभाषा कर्त्तव्यः' (म०भा०) इति, तदुपपन्नं भवति।

अर्थ—'प्रत्यभिवादेऽशूद्रे' इसके द्वारा जो प्लुत आदेश का विधान किया गया है, उसका ही यह स्थानी विशेष है। ऋकार-वर्जित अनन्त्य तथा अन्त्य सम्बोधन में वर्त्तमान जो गुरुसंज्ञक, उसको प्रत्येक को प्लुत आदेश होता है, प्राच्य आचार्यों के मत में।

उदा० (1) दे३वदत्त। (2) देवद३त्त। (2) देवदत्त३।
(4) य३ज्ञदत्त। (5) यज्ञद३त्त। (6) यज्ञदत्त३।

गुरो०—गुरुसंज्ञक को ही प्लुत आदेश होता है। अतः वकार से पर को प्लुत नहीं होता है।

अनृत०—ऋकारवर्जित को ही प्लुत होता है।

(7) कृ॒ष्ण॒मि३त्र। (8) कृ॒ष्ण॒मि॒त्र३।
ऋकार की गुरु संज्ञा है, परन्तु प्लुत नहीं होता है।

एकैक०—'एकैक' का ग्रहण होने से पर्यायेण प्लुत आदेश होता है।

प्राचा०—'प्राचाम्' पद का ग्रहण विकल्प के लिए है।

'आयुष्मानधि देवदत्त'। इसके द्वारा जो कहा जाता है कि 'सभी को प्लुत है।' यह उपपन्न हो जाता है।

(3775) ओमभ्यादाने *87* (3706)

अभ्यादानम्–प्रारम्भः। तत्र य ओम् शब्दः तस्य प्लुतो भवति। ओ३म् अ॒ग्निमी॑ळे पु॒रोहि॑तम् (ऋ० 1.1.1)। अभ्यादाने इति किम्? ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत (छा०उ० 1.1.1)।

अर्थ—प्रारम्भ को अभ्यादान कहते हैं। प्रारम्भ में जो 'ओम्' शब्द, उसे प्लुत आदेश होता है।

उदा० (1) ओ३म् अग्निमीडे पुरोहितम्।

अभ्या०—प्रारम्भ में ही 'ओम्' को प्लुत होता है।

(2) ओमित्येकाक्षरम्
प्लुत नहीं हुआ।

(3776) ये यज्ञकर्मणि *88* (3607)

'ये' इत्येतस्य यज्ञकर्मणि प्लुतो भवति। ये३ यजामहे। यज्ञकर्मणीति किम्? 'ये यजामह॒ इति॒ पञ्चाक्षरम्' (तै० 1.6.11.1)–इति स्वाध्यायकाले मा भूत्। ये यजामहे–इत्यत्रैवायं प्लुत इष्यते। इह हि न भवति–ये दे॑वासो दिव्येकाद॑श॒स्थ (ऋ० 1.139.91) इति।

अर्थ—यज्ञकर्म में 'ये' पद प्लुत होता है।

उदा० (1) ये३ यजामहे।

यज्ञ०—यज्ञकर्म में ही 'ये' प्लुत होता है।

(2) ये यजामहे इति पञ्चाक्षरम्
प्लुत नहीं हुआ। स्वाध्यायकाल में 'ये' प्रयुक्त है।

ये०—'ये यजामहे' यहाँ पर ही प्लुत आदेश होता है। अतः निम्नलिखित में नहीं होता है—

ये देवासो दिव्येकादशस्थः।

(3777) प्रणवष्टेः *89* (3608)

'यज्ञकर्मणि' इति वर्तते। यज्ञकर्मणि टेः प्रणव आदेशो भवति। क एष प्रणवो नाम? पादस्य वा, अर्धर्चस्य वान्त्यमक्षरमुपसंगृह्य तदाद्यक्षरशेषस्य स्थाने त्रिमात्रमो-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कारम्, ओङ्कारं वा विदधति तं प्रणवमित्याचक्षते (म० भा०)। अपां रेतांसि जिन्वतो३म् (ऋ० 8.44.16)। देवान् जिगाति सुम्नयो३म् (ऋ० 3.27.1)। टिग्रहणं सर्वादेशार्थम्। ओकारः सर्वादेशो यथा स्यात्, व्यञ्जनान्ते अन्त्यस्य मा भूदिति। 'यज्ञकर्मणि' इत्येव-अपां रेतांसि जिन्वति (ऋ० 8.44.16)।

अर्थ—'यज्ञकर्म में' इसका अनुवर्त्तन है। यज्ञकर्म में 'टि' को प्रणव आदेश होता है।

यह प्रणव आदेश क्या होता है ? पाद को होता है अथवा अर्धर्च को होता है ? अन्त्य अक्षर का उपसंग्रह करके आद्यक्षर शेष के स्थान पर तीन मात्रा वाला ओकार अथवा ओंकार होता है, उसे प्रणव कहते हैं।

उदा० (1) अपां रेतांसि जिन्वतो३म्।
(2) देवान् जिगाति सुम्नयो३म्।

टि०—'टि' का ग्रहण सर्वादेश के लिए है; ताकि ओकार सर्वादेश हो जाय तथा व्यञ्जनान्त होने पर अन्त्य के स्थान पर न हो।

यज्ञ०—यज्ञकर्म में ही टि को प्रणव आदेश होता है।

अपां रेतांसि जिन्वति
वेदपाठ के अवसर पर प्रणव आदेश नहीं हुआ।

(3778) याज्यान्तः *90* (3609)

याज्या नाम ये याज्याकाण्डे पठ्यन्ते मन्त्राः, तेषामन्त्यो यष्टिः स प्लवते यज्ञकर्मणि। स्तोमैर्विधेमाग्नये३ (ऋ० 8.43.11)। जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाह३म् (तै० 4.4.4.1)। अन्तग्रहणं किम्? याज्या नाम ऋचः काश्चिद्वाक्यसमुदायरूपाः, तत्र यावन्ति वाक्यानि तेषां सर्वेषां टेः प्लुतः प्राप्नोति। सर्वान्त्यस्यैवेष्यते, तदर्थमन्तग्रहणम्।

अर्थ—याज्या काण्ड में जो मन्त्र पठित हैं, वे 'याज्या' कहलाते हैं। उनका जो अन्त्य टि भाग है, उसे प्रणव आदेश होता है, यज्ञकर्म में।

उदा० (1) स्तोमै विधेमाग्नये३।
(2) जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहा३म्।

अन्त०—अन्त्य का ग्रहण किया गया है। याज्या नामक कुछ ऋचायें वाक्यसमुदायरूप हैं। अतः जितने वाक्य हैं, उन सभी की 'टि' को प्लुत होता है। इसके लिए 'अन्त' का ग्रहण है।

(3779) ब्रूहिप्रेष्यश्रौषड्वौषडावहानामादेः *91* (3610)

ब्रूहि, प्रेष्य, श्रौषट्, वौषट्, आवह-इत्येतेषामादेः प्लुतो भवति यज्ञकर्मणि। अग्नयेऽनुब्रू३हि (श०ब्रा० 2.5.3.12)। प्रेष्य-अग्नये गोमयान्प्रे३ष्य। श्रौषट्-अस्तु श्रौ३षट् (तै० 1.6.11.1)। वौषट्-सोमस्याग्ने व्रीहि वौ३षट् (ऐ०ब्रा० 4.5.4.6)। आवह-अग्निमा३वह (तै०ब्रा० 3.5.1.2) 'आवह देवान्यजमानाय' (तै०ब्रा० 3.5.3.2)-इत्येवमादावयं प्लुतो न भवति; 'सर्वे विधयश्छन्दसि विकल्प्यन्ते' (पु०प०) इति।

अर्थ—यज्ञकर्म में ब्रूहि, प्रेष्य, श्रौषट्, वौषट् तथा आवह—इनके आदि को प्लुत आदेश होता है।

उदा० (1) अग्नयेऽनुब्रू३हि।
(2) अग्नये गोमयान् प्रे३ष्य।
(3) अस्तु श्रौ३षट्।
(4) सामस्याग्ने व्रीहि३ वौ३ षट्।
(5) अग्निमा३वह।

आवह०—आवह देवान्यजमानाय—इत्यादि स्थलों पर प्लुत नहीं होता है। वेद में सभी विधियाँ विकल्प से प्रवृत्त होती हैं।

(3780) अग्नीत्प्रेषणे परस्य च *92* (3611)

अग्नीधः प्रेषणम्-अग्नीत्प्रेषणम्, तस्मादेवादेः प्लुतो भवति परस्य च। आ३श्रा३वय (तै० 1.6.11.2)। ओ३श्रा३वय। अत्रैवायं प्लुत इष्यते। तेनेह न भवति-'अग्नीदग्नीन्विहर बर्हिस्तृणीहीति' (तै० 6.3.1.2)। तदर्थं केचिद्वक्ष्यमाणं 'विभाषा' (८.2.93) इत्यभिसम्बध्नन्ति, सा च व्यवस्थितविभाषेति। अपर आह-'सर्व एव प्लुतः साहसमनिच्छता विभाषा विज्ञेयः' (म० भा०) इति। इह तु-उद्धर३ उद्धर, अभिहर३ अभिहर इति छान्दसः प्लुतव्यत्ययः। 'यज्ञकर्मणि' इत्येव-ओश्रावय।

अर्थ—अग्नीध् का प्रेषण अग्नीत्प्रेषण कहलाता है। उसके आदि को तथा पर को प्लुत आदेश होता है।

उदा० (1) आ३श्रा३वय।
(2) ओ३श्रा३वय।

अत्रैवा०—यहाँ पर ही यह प्लुत आदेश होता है। अतः निम्नलिखित में नहीं होता है—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अग्नीदग्नीन् विहर बर्हिस्तृणीहि।

इसके लिए कुछ विद्वान् आगे कहे जाने वाले 'विभाषा' पद का सम्बन्ध मानते हैं और वह व्यवस्थित विभाषा है।

अन्य विद्वान् कहते हैं कि यहाँ विभाषा होती है।

इह०—निम्नलिखित में छान्दस प्लुत का व्यत्यय है—

उद्धर३ उद्धर।
अभिहर३ अभिहर।

यज्ञ०—यज्ञकर्म में ही यह प्लुत आदेश होता है।

ओश्रावय—यहाँ नहीं होता है।

(3781) विभाषा पृष्टप्रतिवचने हेः *93* (3612)

पृष्टप्रतिवचने विभाषा हेः प्लुतो भवति। अकार्षीः कटं देवदत्त? अकार्षं हि३, अकार्षं हि। अलावीः केदारं देवदत्त? अलाविषं हि३, अलाविषं हि। पृष्टप्रतिवचने इति किम्? कटं करिष्यति हि। हेरिति किम्? करोमि ननु।

अर्थ—पृष्ट के प्रतिवचन में 'हि' को प्लुत आदेश विकल्प से होता है।

उदा० (1) प्रश्न—अकार्षीः कटं देवदत्त?
प्रतिवचन—अकार्षं हि३। अकार्षं हि।

(2) प्रश्न—अलावीः केदारं देवदत्त?
प्रतिवचन—अलाविषं हि३। अलाविषं हि।

पृष्ट०—पृष्ट के प्रतिवचन में ही प्लुत होता है।

(3) प्रश्न—कटं करिष्यति हि
पृष्ट का प्रतिवचन नहीं है। अतः प्लुत नहीं हुआ।

हेरिति०—'हि' को ही प्लुत होता है।

(4) करोमि ननु
'ननु' प्लुत नहीं हुआ।

(3782) निगृह्यानुयोगे च *94* (3613)

स्वमतात्प्रच्यावनं निग्रहः। अनुयोगः-तस्य मतस्याविष्करणम्। तत्र निगृह्यानुयोगे यद्वाक्यं वर्त्तते तस्य टेः प्लुतो भवति विभाषा। 'अनित्यः शब्द' इति केनचित्प्रतिज्ञातम्, तमुपालिप्सुरुपपत्तिभिर्निगृह्य, साभ्यसूयमनुयुङ्क्ते-'अनित्यः शब्द इत्यात्थ३, अनित्यः शब्द इत्यात्थ।' अद्य श्राद्धमित्यात्थ३, अद्य श्राद्धमित्यात्थ। अद्यामावास्येत्यात्थ३, अद्यामावास्येत्यात्थ। अद्य अमावास्येत्येवं वादी युक्त्या प्रच्याव्य स्वमतादेवमनुयुज्यते।

अर्थ—अपने मत से प्रच्यावन 'निग्रह' कहलाता है। उस मत का आविष्करण 'अनुयोग' कहलाता है। निगृह्य तथा अनुयोग में जो वाक्य वर्त्तमान है, उसकी 'टि' को प्लुत विकल्प से होता है।

कुछ विद्वानों ने 'अनित्यः शब्दः' ऐसा कहा है। उसे उपालम्भ देने का इच्छुक व्यक्ति उपपत्तियों के द्वारा निग्रह करके अभ्यसूया के साथ अनुयुक्त करता है—

उदा० (1) अनित्यः शब्द इत्यात्थ३—प्लुत हुआ।
अनित्यः शब्द इत्यात्थ—प्लुत नहीं हुआ।

इसी प्रकार—

(2) अद्य श्राद्धमित्यात्थ३।
अद्य श्राद्धमित्यात्थ।

(3) अद्यामावास्येत्यात्थ३।
अद्यामावास्येत्यात्थ।

(3783) आम्रेडितं भर्त्सने *95* (3614)

'वाक्यादेरामन्त्रितस्य' (8.1.8) इति भर्त्सने द्विर्वचनमुक्तम्, तस्याम्रेडितं प्लवते। चौरंचौर३, वृषंलवृषल३, दस्योदस्यो३, घातयिष्यामि त्वा बन्धयिष्यामि त्वा। *भर्त्सने पर्यायेणेति वक्तव्यम्*। चौर३चौर। चौरंचौर३। तदर्थमाम्रेडितग्रहणं द्विरुक्तोपलक्षणार्थं वर्णयन्ति।

अर्थ—'वाक्यादेरामन्त्रितस्य' से भर्त्सन अर्थ में द्वित्व कहा है। उस आम्रेडितसंज्ञक को प्लुत होता है।

उदा० (1) चौर चौर३।
(2) वृषल वृषल३।
(3) दस्यो दस्यो३।

भर्त्सने०—भर्त्सन अर्थ में पर्यायेण प्लुत होता है।

(4) चौर३ चौर।
(5) चौर चौर३।

तदर्थ०—इसलिए 'आम्रेडित' का ग्रहण द्वित्व का उपलक्षण के लिए मानते हैं।

(3784) अङ्गयुक्तं तिङाकाङ्क्षम् *96* (3615)

'अङ्ग' इत्यनेन युक्तं तिङन्तमाकाङ्क्षं भर्त्सने प्लवते। अङ्ग कूज३, अङ्ग व्याहर३, इदानीं ज्ञास्यसि जाल्म।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तिङिति किम्? अङ्ग देवदत्त, मिथ्या वदसि। आकाङ्क्षमिति किम्? अङ्ग पच। नैतदपरमाकाङ्क्षति। 'भर्त्सने' इत्येव–अङ्गाधीष्व, ओदनं ते दास्यामि।

अर्थ—भर्त्सन अर्थ में 'अङ्ग' शब्द से युक्त आकांक्ष तिङन्त पद को प्लुत आदेश होता है।

उदा० (1) अङ्ग कूज३।

(2) अङ्ग व्याहर३।
इदानीं ज्ञास्यसि जाल्म।

तिङि०—तिङन्त पद को ही प्लुत होता है।

(3) अङ्ग देवदत्त, मिथ्या वदसि
प्लुत नहीं हुआ।

आका०—आकांक्ष तिङन्त पद को ही प्लुत होता है।

(4) अङ्ग पच
यहाँ नहीं हुआ।

भर्त्सन०—भर्त्सन अर्थ में ही प्लुत होता है।

(5) अङ्गाऽधीष्व ओदनं ते दास्यामि
भर्त्सन अर्थ न होने से प्लुत नहीं हुआ।

(3785) विचार्यमाणानाम् *97* (3616)

प्रमाणेन वस्तुपरीक्षणम्–विचारः, तस्य विषये विचार्यमाणानां वाक्यानां टेः प्लुतो भवति। होतव्यं दीक्षितस्यं गृहा३इ (तै० 6.1.4.5)। होतव्यं न होतव्यमिति विचार्यते। तिष्ठेद्यूपा३इ। अनुप्रहरेद्यूपा३इ। यूपे तिष्ठेद्, यूपे अनुप्रहरेदिति विचार्यते।

अर्थ—प्रमाण के द्वारा वस्तु का परीक्षण 'विचार' कहलाता है। उसके विषय में विचार्यमाण वाक्यों की टि को प्लुत आदेश होता है।

उदा० (1) होतव्यं दीक्षितस्य गृहा३इ।
होतव्यम्, अथवा न होतव्यम्—इस प्रकार विचार किया जाता है।

(2) तिष्ठेद् यूपा३इ।
पूर्ववत्।

(3) अनुप्रहरेद् यूपा३इ।
पूर्ववत्।

(3786) पूर्वं तु भाषायाम् *98* (3617)

भाषायां विषये विचार्यमाणानां पूर्वमेव प्लवते। अहिर्नु३ रज्जुर्नु। लोष्टो नु३ कपोतो नु३। प्रयोगापेक्षं पूर्वत्वम्। इह भाषाग्रहणात् पूर्वयोगश्छन्दसि विज्ञायते।

अर्थ—लोक में विचार्यमाण वाक्यों को पूर्व को प्लुत होता है।

उदा० (1) अहिर्नु३, रज्जुर्नु३।

(2) लोष्टो नु३, कपोतो नु३।

पूर्वपरता प्रयोग पर आश्रित है। यहाँ 'भाषा' का ग्रहण होने से पूर्वयोग वेद के विषय में जानना चाहिए।

(3787) प्रतिश्रवणे च *99* (3618)

प्रतिश्रवणम् = अभ्युपगमः, प्रतिज्ञानम्, श्रवणाभिमुख्यं च। तत्राविशेषात् सर्वस्य ग्रहणम्। प्रतिश्रवणे यद्वाक्यं वर्तते तस्य टेः प्लुतो भवति। गां मे देहि भोः, अहं ते ददामि३। नित्यः शब्दो भवितुमर्हति३। देवदत्त भोः किमात्थ३।

अर्थ—प्रतिश्रवण = अभ्युपगम, प्रतिज्ञान। प्रतिश्रवण में जो वाक्य वर्त्तमान है, उसकी टि प्लुत होती है।

उदा० (1) गां मे देहि भोः
अहं ते ददामि३।

(2) नित्यः शब्दो भवितुमर्हति
देवदत्त भोः किमात्थ३।

(3788) अनुदात्तं प्रश्नान्ताभिपूजितयोः *100* (3619)

अनुदात्तः प्लुतो भवति प्रश्नान्ते, अभिपूजिते च। अगमं३ः पूर्वा३न् ग्रामा३न् अग्निभूता३इ, पटा३उ? अग्निभूते, पटो–इत्येतयोः प्रश्नान्ते वर्त्तमानयोरनुदात्तः प्लुतो भवति। 'अगमः' इत्येवमादीनां तु 'अनन्त्यस्यापि प्रश्नाख्यानयोः' (8.2.105) इति स्वरितः प्लुतो भवति। अभिपूजिते–शोभनः खल्वसि माणवक३।

अर्थ—प्रश्नान्त तथा अभिपूजित में अनुदात्त प्लुत होता है।

उदा० (1) अगम३ः पूर्वा३न्, ग्रामा३न्, अग्निभूता३इ, पटा३उ?

गम् सिप्—लुङ्, इतश्च,
गम् अ स्—'पुषादिद्युता०' से 'अङ्' आदेश,
अगमः—विसर्जनीय।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अग्निभूते—'ह्रस्वस्य गुणः' से सम्बुद्धि में गुण हुआ है।

पटो—पूर्ववत्।

अग्नि०—अग्निभूते तथा पटो—इनका अनुदात्त प्लुत होता है, प्रश्नान्त में। 'अगमः' इसका 'अनन्त्यस्याऽपि प्रश्नाख्यानयोः' से स्वरित प्लुत होता है।

अभिपू०—अभिपूजित अर्थ में—शोभनः खल्वसि माणवक-3।

(3789) चिदिति चोपमार्थे प्रयुज्यमाने *101* (3620)

'अनुदात्तम्' इति वर्त्तते। 'चित्'-इत्येतस्मिन्निपाते उपमार्थे प्रयुज्यमाने वाक्यस्य टेरनुदात्तः प्लुतो भवति। प्लुतोऽप्यत्र विधीयते, न गुणमात्रम्। अग्निचिद्भाया३त्। राजचिद्भाया३त्। अग्निरिव भायात्, राजेव भायादित्यर्थः। उपमार्थे इति किम्? कथञ्चिदाहुः। प्रयुज्यमान इति किम्? अग्निर्माणवको भायात्।

अर्थ—'अनुदात्तम्' का अनुवर्त्तन है। 'चित्' निपात के उपमा के अर्थ में प्रयुज्यमान रहते वाक्य की टि को अनुदात्त प्लुत होता है।

यहाँ प्लुत का विधान किया जाता है; गुणमात्र नहीं।

उदा० (1) अग्निचिद् भाया३ त्।

(2) राजचिद् भाया३त्।

उपमा अर्थ में है। अतः प्लुत हुआ।

उपमा०—उपमा अर्थ में ही सूत्रोक्त प्लुत होता है।

(3) कथञ्चिद् आहुः

यहाँ प्लुत नहीं हुआ।

प्रयुज्य०—प्रयुज्यमान रहते ही प्लुत होता है।

(4) अग्निर्माणवको भायात्

यहाँ नहीं हुआ।

(3790) उपरिस्विदासीदिति च *102* (3621)

'अनुदात्तम्' इति वर्त्तते। 'उपरिस्विदासीत्'-इत्येतस्य टेरनुदात्तः प्लुतो भवति। अधःस्विदासी३त्। उपरिस्विदासी३त् (तै०ब्रा० 2.8.95)। अधःस्विदासीत्-इत्यत्र 'विचार्यमाणानाम्' (8.2.97) इत्युदात्तः प्लुतः। उपरिस्विदासीत्-इत्यत्र तु अनेनानुदात्तः।

अर्थ—'अनुदात्तम्' का अनुवर्त्तन है। 'उपरिस्विदासीत्' इसकी टि अनुदात्त प्लुत होती है।

उदा० (1) अधःस्विद् आसी३त्।

(2) उपरिस्विद् आसी३त्।

अधः०—अधःस्विद्० यहाँ 'विचार्यमाणानाम्' से उदात्त प्लुत होता है। उपरिस्विद्० यहाँ अनुदात्त प्लुत होता है।

(3791) स्वरितमाम्रेडितेऽसूयासम्मतिकोपकुत्सनेषु *103* (3622)

स्वरितः प्लुतो भवति आम्रेडिते परतः असूयायाम्, सम्मतौ, कोपे, कुत्सने च गम्यमाने। 'वाक्यादेरामन्त्रितस्यासूयासम्मतिकोपकुत्सनभर्त्सनेषु' (8.1.8) इति द्विर्वचनमुक्तम्, तत्रायं प्लुतविधिः। असूयायां तावत्-माणवक३माणवक अभिरूपक३अभिरूपक, रिक्तं ते आभिरूप्यम्। सम्मतौ-माणवक३माणवक अभिरूपक३-अभिरूपक, शोभनः खल्वसि। कोपे-माणवक३माणवक अविनीतक३अविनीतक, इदानीं ज्ञास्यसि जाल्म। कुत्सने-शाक्तीक३शाक्तीक, याष्टीक-3याष्टीक, रिक्ता ते शक्तिः। *असूयादिषु वावचनं कर्त्तव्यम्* (म०भा०)। माणवक माणवक-इत्येवमाद्यपि यथा स्यात्।

अर्थ—असूया, सम्मति, कोप तथा कुत्सन अर्थ गम्यमान हों तो स्वरित प्लुत होता है, आम्रेडित परे रहते।

'वाक्यादेरामन्त्रित०' से द्विर्वचन कहा जा चुका है। वहाँ ही यह प्लुतविधि होती है।

उदा० (1) माणवक३ माणवक
अभिरूपक३ अभिरूपक } रिक्तं ते आभिरूप्यम्।

असूया अर्थ में प्लुत हुआ।

(2) माणवक३ माणवक
अभिरूपक३ अभिरूपक } शोभनः खल्वसि।

सम्मति अर्थ में प्लुत हुआ।

(3) माणवक३ माणवक
अविनीतक३ अविनीतक } इदानीं ज्ञास्यसि जाल्म।

कोप अर्थ में प्लुत है।

(4) शाक्तीक३ शाक्तीक
याष्टीक३ याष्टीक } रिक्ता ते शक्तिः।

कुत्सन अर्थ में प्लुत।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

असूया०—असूया आदि अर्थों में प्लुत आदेश विकल्प से होता है।

(3792) क्षियाशीःप्रैषेषु तिङाकाङ्क्षम् *104* (3623)

'स्वरित' इति वर्तते। क्षिया आचारभेदः, आशीः प्रार्थनाविशेषः, शब्देन व्यापारणम् प्रैषः-एतेषु गम्यमानेषु तिङन्तमाकाङ्क्षं यत्तस्य स्वरितः प्लुतो भवति। आकाङ्क्षतीत्याकाङ्क्षम्, तिङन्तमुत्तरपदमाकाङ्क्षतीत्यर्थः। क्षियायां तावत्-स्वयं रथेन यातिं3 उपाध्यायं पदातिं गमयतीति। स्वयं ओदनं ह भुङ्क्तें3 उपाध्यायं सक्तून् पाययति। पूर्वमत्र तिङन्तमुत्तरपदमाकाङ्क्षतीति साकाङ्क्षं भवति। आशिषि-सुतांँश्च लप्सीष्टं3 धनं च तात। छन्दोऽध्येषीष्टं3 व्याकरणं च भद्र। प्रैषे-कटं कुरुं3 ग्रामं च गच्छ। यवान् लुनीहिं3 सक्तूंश्च पिब। आकाङ्क्षमिति किम्? दीर्घं ते आयुरस्तु। अग्नीन्विहर।

अर्थ—'स्वरितः' का अनुवर्त्तन है। 'क्षिया' का अर्थ है—आचारभेद। 'आशीः' प्रार्थनाविशेष को कहते हैं। शब्द के द्वारा व्यापारण 'प्रैष' कहलाता है। क्षिया, आशीर्वाद तथा प्रैष अर्थों के गम्यमान रहते जो आकांक्ष तिङन्त पद, उसको स्वरित प्लुत होता है।

उदा० (1) स्वयं रथेन यातिं3 उपाध्यायं पदातिं गमयति।
(2) स्वयम् ओदनं ह भुङ्क्तें3 उपाध्यायं सक्तून् पाययति।

पूर्वम०—यहाँ पूर्व तिङन्त पद उत्तर पद की आकांक्षा करता है; अतः साकांक्ष हुआ।
(3) सुतांँश्च लप्सीष्टं3 धनं च तात।
(4) छन्दोऽध्येषीष्टं3 व्याकरणं च भद्र।
(5) कटं कुरुं3 ग्रामं च गच्छ।
(6) यवान् लुनीहिं3 सक्तूंश्च पिब।
यहाँ प्रेरण अर्थ है।
आका०—आकांक्ष तिङन्त पद को ही प्लुत होता है।
(7) दीर्घं ते आयुस्तु।
(8) अग्नीन् विहर
यहाँ तिङन्त पद आकांक्ष न होने से प्लुत नहीं हुआ।

(3793) अनन्त्यस्यापि प्रश्नाख्यानयोः *105* (3624)

पदस्येति वर्तते, स्वरितमिति च। अनन्त्यस्यापि अन्त्यस्यापि पदस्य टेः प्लुतो भवति प्रश्ने, आख्याने च। अगमं3ः पूर्वां3न् ग्रामां3न् अग्निभूतां३इ। पटां३उ। सर्वेषामेव पदानामेष स्वरितः प्लुतः। अन्त्यस्य 'अनुदात्तं प्रश्नान्ताभिपूजितयोः' (8.2.100) इति अनुदात्तोऽपि पक्षे भवति। आख्याने-अगमं3ः पूर्वां3न् ग्रामां3न् भोः3।

अर्थ—पदस्य, स्वरितम्—इनका अनुवर्त्तन है। प्रश्न तथा आख्यान अर्थों में अनन्त्य का तथा अन्त्य का—दोनों स्थितियों में पद की टि को प्लुत होता है।

उदा० (1) अगम3ः पूर्वा3न् ग्रामा3न् अग्निभूता3इ।

सर्वेषा०—सभी पदों को स्वरित तथा प्लुत हुआ है। अन्त्य को प्लुत आदेश 'अनुदात्तं प्रश्नान्ता०' से होता है तथा पक्ष में अनुदात्त भी होता है।

(2) अगमः3 पूर्वा3न् ग्रामा3न् भो3इ :
यहाँ आख्यान अर्थ में प्लुत हुआ है।

(3794) प्लुतावैच इदुतौ *106* (3625)

दूराद्धूतादिषु प्लुतो विहितः, तत्र ऐचः प्लुतप्रसङ्गे तदवयवभूताविदुतौ प्लुतौ। ऐ3तिकायन। औ3पमन्यव। अत्र यदेवर्णोवर्णयोः अवर्णस्य च समविभागः, तदा इदुतौ द्विमात्रावनेन प्लुतौ क्रियेते। 'प्लुतौ' इति हि क्रियानिमित्तोऽयं व्यपदेशः-इदुतौ प्लवेते, वृद्धिं गच्छत इत्यर्थः। तावती च सा प्लुतिर्भवति, यया तावेचौ त्रिमात्रौ सम्पद्येते। यदा त्वर्धमात्रावर्णस्याध्यर्धमात्रा इवर्णोवर्णयोः, तदा तावर्धतृतीयमात्रौ क्रियेते इति। भाष्ये तूक्तम्-'इष्यते एव चतुर्मात्रः प्लुतः' (म० भा०) इति। तत्कथम्? समप्रविभागपक्षे इदुतोरनेन त्रिमात्रः प्लुतो विधीयते।

अर्थ—दूर से आह्वान आदि में जो प्लुत का विधान किया गया है, वहाँ ऐच् वर्ण के स्थान पर प्लुत का प्रसंग उपस्थित होने पर उसके अवयवभूत इकार व उकार को प्लुत आदेश होता है।

उदा० (1) ऐ3तिकायन।
'गुरोरनृतो०' से प्लुत हुआ है। इकार को प्लुत हुआ।
(2) औ3पमन्यव (पूर्ववत्)।

अत्र०—यहाँ जब इवर्ण, उवर्ण तथा अवर्ण का सम विभाग होता है, तब द्विमात्रिक इकार व उकार प्लुत होते हैं।

प्लुतौ०—'प्लुतौ' यह क्रियानिमित्त व्यपदेश है। इत् तथा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत् को प्लुत होता है। वह प्लुति उतनी होती है, जिसके द्वारा ये ऐच् वर्ण तीन मात्रा वाले होते हैं।

भाष्ये०—भाष्य में कहा गया है। 'प्लुत चार मात्राओं का होता है'। यह किस प्रकार होता है। सम प्रविभाग पक्ष में इसके द्वारा इकार व उकार त्रिमात्रिक प्लुत होता है। एक मात्रा पूर्व अकार की मिलकर कुल चार मात्रायें होती हैं।

(3795) एचोऽप्रगृह्यस्यादूराद्धूते पूर्वस्यार्ध-स्यादुत्तरस्येदुतौ *107* (3626)

एचोऽप्रगृह्यस्यादूराद्धूते प्लुतविषयस्यार्धस्याकार आदेशो भवति, च स प्लुतः, उत्तरस्येकारोकारावादेशौ भवतः। विषयपरिगणनं कर्तव्यम्–प्रश्नान्ताभिपूजितविचार्यमाण-प्रत्यभिवादयाज्यान्तेतिष्वति वक्तव्यम्* (म०भा०)। प्रश्नान्ते–अगम३: पूर्वास३न् ग्रामा३न् अग्निभूता३इ। पटा३उ। अभिपूजिते–भद्रं करोषि माणवक३ अग्नि-भूता३इ। पटा३उ। विचार्यमाणे–होतव्यं दीक्षितस्य गृहा-३इ (तै० 6.1.4.5)। प्रत्यभिवादे–आयुष्मानेधि अग्नि-भूता३इ। पटा३उ। याज्यान्ते–उक्षान्नाय वशान्नाय सोम-पृष्ठाय वेधसे। स्तोमैर्विधेमाग्नया३इ (ऋ० 8.43.11)। सोऽयमाकारः प्लुतो यथाविषयमुदात्तः, अनुदात्तः, स्वरितो वेदितव्यः। इदुतौ पुनरुदात्तावेव भवतः। परिगणनं किम्? विष्णुभूते विष्णुभूते३ घातयिष्यामि त्वा। अगच्छ भो माणवक विष्णुभूते३। परिगणने च सति 'अदूराद्धूते' इति न वक्तव्यम्। पदान्तग्रहणं तु कर्त्तव्यम्। इह मा भूत्–भद्रं करोषि गौरिति। अप्रगृह्यस्येति किम्? शोभने खलु स्तः खट्वे३। *आमन्त्रिते छन्दसि प्लुतविकारोऽयं वक्त-व्यः* (म०भा०)। अग्ना३इ पत्नी व३: (वा०सं० 8.10)।

अर्थ—'दूर से आह्वान' विषय को छोड़कर अन्यत्र प्लुत-विषयक अप्रगृह्य एच् वर्ण के पूर्व अर्ध के स्थान पर ह्रस्व अकार प्लुत आदेश होता है तथा उत्तर अर्ध के स्थान पर ह्रस्व इकार अथवा ह्रस्व उकार आदेश होता है।

इन विषयों का परिगणन करना चाहिए। यथा—

प्रश्नान्त, अभिपूजित, विचार्यमाण, प्रत्यभिवाद तथा याज्यान्त में प्लुत होता है।

उदा० (क) प्रश्नान्ते—

(1) अगम३: पूर्वा३न् ग्रामा३न् अग्निभूता३इ।

(ख) अभिपूजिते—

(2) भद्रं करोषि माणवक३ अग्निभूता३इ।

(ग) विचार्यमाणे—

(3) होतव्यं दीक्षितस्य गृहा३इ।

(घ) प्रत्यभिवादे—

(4) आयुष्मानेधि अग्निभूता३इ।

(ङ) याज्यान्ते—

(5) उक्षान्नाय ..... विधेमाऽग्नया३इ।

सोऽय०—यह आकार प्लुत यथाविषय उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित जानना चाहिए। ह्रस्व इकार तथा उकार पुनः उदात्त ही होते हैं।

परिग०—परिगणन किसलिए करना चाहिए? इसका प्रयोजन यह है कि विष्णुभूते विष्णुभूते३ घातयिष्यामि त्वा।

परिगणन होने पर 'अदूराद्धूते' यह नहीं कहना चाहिए।

पदान्त०—'पदान्त' का ग्रहण करना चाहिए, ताकि यहाँ न हो—

भद्रं करोषि गौरिति।

अप्रगृ०—अप्रगृह्य को ही सूत्रोक्त प्लुत आदेश होता है।

(6) शोभने खलुस्तः खट्वे३।

आम०—यह प्लुतविकार वेद में आमन्त्रित में होता है। यथा—

(7) आग्ना३इ। (8) पत्नीव३:।

(3796) तयोर्य्वावचि संहितायाम् *108* (3627)

तयोरिदुतोर्यकारवकारादेशौ भवतोऽचि संहितायां विषये। 'संहितायाम्' इत्येतच्चाधिकृतम्। इत उत्तरमाध्या-यपरिसमाप्तेर्यद्वक्ष्यामः 'संहितायामि'त्येवं तद्वेदितव्यम्। अग्ना३याशा। पटा३वाशा। अग्ना३यिन्द्रम्। पटा३वुद-कम्। अचीति किम्? अग्ना३इ। पटा३उ। संहिता-यामिति किम्? अग्ना३ इ इन्द्रम्। पटा ३उ उदकम्। इदुतोरसिद्धत्वात् 'इको यणचि' (6.1.77) इति न प्राप्नो-तीत्ययमारम्भः। अथापि कथञ्चित्तयोः सिद्धत्वं स्याद्? एवमपि सवर्णदीर्घत्वनिवृत्त्यर्थम् (8.1.101), शाकलनि-वृत्त्यर्थं (6.1.127) च वक्तव्यमेतत्। अथापि तन्निवृत्यर्थं यत्नान्तरमस्ति? तथापि यण्स्वरनिवृत्त्यर्थमिदमारभ्यते।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यणादेशस्यासिद्धत्वात् 'उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य' (8.2.4) इत्येष स्वरो न भवति।

किन्तु यणा भवतीह न सिद्धं
ख्याविदुतोर्यदयं विदधाति।
तौ च मम स्वरसन्धिषु सिद्धौ
शाकलदीर्घविधी तु निर्वर्त्यौ ॥1॥

इक् तु यदा भवति प्लुतपूर्व-
स्तस्य यणं विदधात्यपवादम्।
तेन तयोश्च न शाकलदीर्घौ
यण्स्वरबाधनमेव तु हेतुः ॥2॥

इति श्रीवामनविरचितायां काशिकायां वृत्ता-
वष्टमाऽध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥

अर्थ—अच् परे रहते उन इकार तथा उकार के स्थान पर यथासंख्य यकार तथा वकार आदेश होते हैं, संहिता के विषय में।

संहिता०—'संहितायाम्' यह पद अधिकृत है। इससे आगे अध्याय की समाप्ति पर्यन्त जो कहा जायेगा, वह सब संहिता के विषय में होता है—ऐसा जानना चाहिए।

उदा० (1) अग्ना3याशा
उकार को आकार परे रहते यकार हुआ।

(2) पटा3वाशा
उकार को वकार हुआ।

(3) अग्ना3यिन्द्रम्
इकार को यकार हुआ।

(4) पटा3वुदकम्
वकार हुआ है।

अची०—अच् परे रहते ही यकार व वकार होते हैं।

(5) अग्ना3इ।
अच् परे नहीं होने से यकार नहीं हुआ।

(6) पटा3उ
वकार नहीं हुआ।

संहिता०—संहिता के विषय में ही यकार, वकार होते हैं।

(7) अग्ना3इ इन्द्रम्
यहाँ यकार नहीं हुआ।

(8) पटा3उ उदकम्
वकार नहीं हुआ।

इदुतो०—ह्रस्व इकार तथा ह्रस्व उकार के असिद्ध होने से 'इको यणचि' से यण् प्राप्त नहीं है। इसलिए यह विधान किया गया है। हो सकता है, ये किसी प्रकार सिद्ध हो जायँ ? तब सवर्णदीर्घ की निवृत्ति के लिए यह जानना चाहिए अथवा शाकल की निवृत्ति के लिए है। परन्तु इसकी निवृत्ति के लिए अन्य उपाय है ? तथापि यण् तथा स्वर की निवृत्ति के लिए यह विधान है। यण् आदेश के असिद्ध होने से 'उदात्तस्वरितयो०' से स्वर नहीं होता है।

किन्तु०—क्या 'अग्ना3याशा' इत्यादि स्थलों पर यणादेश की प्रवृत्ति नहीं होती है, जिसकी सिद्धि के लिए आचार्य को इकार तथा उकार के स्थान पर यकार तथा वकार का विधान करना पड़ा।

वस्तुतः यहाँ यणादेश प्राप्त नहीं होता है। कारण कि, यण् आदेश करने में इकार तथा उकार आदेश असिद्ध होते हैं। जब इक् प्लुतपूर्वक होता है, तब उसको यह आदेश होता है। तब 'इकः प्लुतपूर्वस्य यणादेशो वक्तव्यः शाकलदीर्घनिवृत्त्यर्थम्' ऐसा पाठ करने पर शाकल तथा दीर्घविधि में यण् आदेश अपवाद करता है। इस कारण से उन ह्रस्व इकार तथा ह्रस्व उकार के स्थान पर शाकल तथा दीर्घविधि नहीं होते हैं।

उन इकार व उकार के स्थान पर शाकल तथा दीर्घविधि की निवृत्ति में प्रयोजन होने में अन्य प्रयोजन है। यणादेश को आश्रित स्वर यण् स्वर ही होता है। उसके बाध के लिए हेतु कारण है। यह किसका कारण है ? यण् स्वर का बाध ही सूत्रारम्भ का प्रयोजन है।

इति पण्डितेश्वरचन्द्रविरचितायां काशिकायाः सोमलेखाऽऽख्यायां हिन्दीटीकायाम्
अष्टमाऽध्यायस्य द्वितीयः पादः समाप्तः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अष्टमाऽध्यायस्य तृतीयः पादः

(3797) मतुवसो रु सम्बुद्धौ छन्दसि *1*
(3628)

'संहितायाम्' इति वर्त्तते। मत्वन्तस्य वस्वन्तस्य च पदस्य 'रुः' इत्ययमादेशो भवति सम्बुद्धौ परतः छन्दसि विषये। मत्वन्तस्य तावत्–इन्द्र॑ मरुत्व इ॒ह पा॑हि॒ सोम॒म् (तै० 1.4.18.1)। हरिवो मेदि॑नं त्वा (तै० 4.7.14.4)। मरुतोऽस्य सन्ति, हरयोऽस्य सन्ति–इति मतुप्, सुप्तकारयोर्हल्ङ्यादिलोपे (6.1.68) संयोगान्तस्य लोपे (8.2.23) च कृते नकारस्य रुर्भवति। वस्वन्तस्य खल्वपि–मीढ्व॑स्तो॒काय॒ तन॑याय मृलक (ऋ० 2.33.14) इन्द्र साह्वः। क्वसोर्निपातनम् 'दाश्वान् साह्वान् मीढ्वांश्च' (6.1.12) इति। मतुवसोरिति किम्? ब्रह्मन्स्तोष्यामः। सम्बुद्धाविति किम्? य॑ ए॒वं वि॒द्वा॑न॒ग्निम॑मुप॒तिष्ठते॒ (मै० 1.5.7)। छन्दसीति किम्? हे गोमन्। हे पपिवन्। *वन उपसंख्यानं कर्त्तव्यम्*। 'यस्वा॒यन्तं व॑सुना प्रातरित्वः' (ऋ० 1.115.2)। इणः प्रातः पूर्वस्य छन्दसि क्वनिप्। *विभाषा भवद्भगवदघतामोच्चावस्य*। छन्दसि भाषायां च भवद्, भगवद्, अघवद्–इत्येतेषां विभाषा रुर्वक्तव्यः, अवशब्दस्य च ओकारादेशः। सामान्येन छन्दसि भाषायां चेदं वचनम्। भवत्–हे भोः, हे भवन्। भगवद्–हे भगोः, हे भगवन्। अघवत्–हे अघोः, हे अघवन्। निपातन-विज्ञानाद्वा सिद्धम्। अथ वा–भो इत्येवमादयो निपाता द्रष्टव्याः। असम्बुद्धावपि द्विवचनबहुवचनयोरपि दृश्यन्ते। भो देवदत्तयज्ञदत्तौ। भो देवदत्तयज्ञदत्तविष्णुमित्राः। तथा स्त्रियामपि च दृश्यन्ते–भो ब्राह्मणि इत्यादि। संहिताधिकारः उत्तरत्रोपयुज्यते, यत्र भिन्नपदस्थौ निमित्तनिमित्तिनौ–'नश्छव्यप्रशान्' (8.3.7) इति।

अर्थ—'संहितायाम्' का अनुवर्त्तन है। वेद के विषय में मत्वन्त तथा वस्वन्त पदसंज्ञक के स्थान पर 'रु' आदेश होता है, सम्बुद्धि परे रहते।

उदा० (1) मरुत्वः
मरुतोऽस्य सन्ति—मतुप्, अनुबन्धलोप, वकार,
मरुत्वत्—प्रातिपदिक संज्ञा, सु, हल्ङ्यादि लोप,
मरुत्व न् त्—नुम्, संयोगान्तस्य लोपः, नकार को रुत्व।

(2) हरिवः
हरयोऽस्य सन्ति—पूर्ववत् सभी कार्य।

(3) मीढ्वः
'दाश्वान् साह्वान् मीढ्वान्' इससे निपातन होता है। तब सकार को 'रु' होता है।

मतु०—मत्वन्त तथा वस्वन्त को ही 'रु' आदेश होता है।

(4) ब्रह्मन्
यहाँ रुत्व नहीं हुआ।

सम्बु०—सम्बुद्धि परे रहते ही रुत्व होता है।

(5) विद्वान् अग्निम् आधत्ते
सम्बुद्धि परे नहीं है। रुत्व नहीं हुआ।

छन्दसी०—वेद में ही यह 'रु' आदेश होता है।

(6) हे गोमन्
लोक में रुत्व नहीं हुआ।

(7) हे पपिवन्
यहाँ नहीं हुआ।

वन०—वन् प्रत्ययान्त को रुत्व होता है। निरनुबन्धक 'वन्' असम्भव है। अतः 'वन्' के द्वारा 'क्वनिप्' तथा 'वनिप्' प्रत्ययों का ग्रहण होता है। मतुप् अर्थ में 'क्वनिब्वनिपौ च्छन्दसि वक्तव्यौ' से प्राप्त औपसंख्यानिक क्वनिप् तथा वनिप् प्रत्ययों का भी ग्रहण होता है।

(8) प्रातरित्वः
प्रातर् इण् क्वनिप्—आतो मनिन्क्व०, अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते,
प्रातरि त् वन्—ह्रस्वस्य पिति कृति०, सु, सुलोप,
प्रातरित्वर्—रुत्व, विसर्ग।

विभाषा०—वेद में तथा लोक में भवद्, भगवद् तथा अघवद्—इन शब्दों को विकल्प से 'रु' आदेश होता है तथा अव शब्द को 'ओ' आदेश होता है।

यह वेद तथा लोक दोनों में सामान्य विधान है।

(1) हे भोः, हे भवन्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(2) हे भगोः, हे भगवन्।
(3) हे अघोः, हे अघवन्।

निपात०—निपात विज्ञान से यह सिद्ध है। अथवा 'भो' इत्यादि निपात हैं। असम्बुद्धि में भी और द्विवचन, बहुवचन में भी ये उपलब्ध होते हैं।

भो देवदत्तयज्ञदत्तौ।
भो देवदत्तयज्ञदत्तविष्णुमित्राः।

तथा०—स्त्रीलिंग में भी उपलब्ध होते हैं। यथा—
भो ब्राह्मणि।

संहिता०—उत्तरशास्त्र में 'संहितायाम्' का अधिकार है; जहाँ निमित्त तथा निमित्ती भिन्नपदस्थ हों—नश्छव्यप्रशान्।

(3798) अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा *2* (136)

अधिकारोऽयम्। इत उत्तरं यस्य स्थाने रुर्विधीयते ततः 'पूर्वस्य तु वर्णस्य वाऽनुनासिको भवति'–इत्येतदधिकृतं वेदितव्यम्, यदित उर्ध्वमनुक्रमिष्यामस्तत्र। वक्ष्यति–'समः सुटि' (8.3.5)। सँस्कर्ता, सँस्कर्तुम्, सँस्कर्तव्यम्। 'अत्र' ग्रहणं रुणा सह सन्नियोगप्रतिपत्त्यर्थम्। अधिकार-परिमाणापरिग्रहे हि सति 'ढो ढे लोपः' (8.3.13) इत्यत्रापि पूर्वस्यानुनासिक आशङ्क्येत।

अर्थ—यह अधिकार है। इससे आगे जिसके स्थान पर रुत्व का विधान किया जाता है, वहाँ 'पूर्व वर्ण के स्थान विकल्प से अनुनासिक होता है' ऐसा जानना चाहिए।

आगे कहा जायेगा—समः सुटि।

उदा० (1) सँस्कर्ता। (2) सँस्कर्तुम्। (3) सँस्कर्तव्यम्।

इनकी सिद्धि आगे देखें।

'अत्र' पद का ग्रहण 'रु' के साथ सन्नियोग के ज्ञान के लिए किया गया है। अधिकार की परिमाण इयत्ता का ज्ञान न होने पर 'ढो ढे लोपः' यहाँ पर भी पूर्व वर्ण के स्थान पर अनुनासिक की आशंका बनी रहती है।

(3799) आतोऽटि नित्यम् *3* (3632)

अटि परतो रोः पूर्वस्याकारस्य स्थाने नित्यमनुनासिकादेशो भवति। 'दीर्घादटि समानपादे' (8.3.9) इति रुत्वं वक्ष्यति, ततः पूर्वस्यातोऽनुनासिकविकल्पे प्राप्ते, नित्यार्थं वचनम्। महाँ अंसि (ऋ० 3.46.2)। महाँ इन्द्रो य ओजसा (ऋ० 8.6.1)। देवाँ अच्छा दीद्यत् (ऋ० 3.1.1)। केचिदनुस्वारमधीयते, स च्छान्दसो व्यत्ययो द्रष्टव्यः। आत इति किम्? 'ये वा वनस्पतीँरनु' (वा०सं० 13.7)। अटीति किम्? भवांश्चरति, भवांश्लाघयति। नित्यग्रहणं विस्पष्टार्थम्।

अर्थ—'रु' से पूर्व जो आकार, उसके स्थान पर नित्य अनुनासिक आदेश होता है, अट् परे रहते। 'दीर्घादटि समानपादे' से रुत्व कहा जायेगा। उससे पूर्व आकार के स्थान पर विकल्प से अनुनासिक प्राप्त होने पर नित्य अनुनासिकत्व प्राप्ति के लिए विधान है।

उदा० (1) महाँ असि
महान् असि—दीर्घादटि समानपादे,
महा रु असि—अनुनासिकत्व,
महाँ रु असि—यकार आदेश,
महाँ य् असि—यलोप।

(2) महाँ इन्द्रः
महान् इन्द्रः—पूर्ववत्।

(3) देवाँ अच्छादीव्यत्

केचिद०—कुछ विद्वान् यहाँ अनुस्वार का पाठ करते हैं। वह छान्दस व्यत्यय मानना चाहिए।

आत०—आकार के स्थान पर ही अनुनासिक होता है।

(4) वनस्पतीरनु
वनस्पती स् अनु—ससजुषो रुः,
वनस्पती रु अनु—अट् वर्ण परे है, 'रु' भी है परन्तु 'रु' से पूर्व आकार न होने से अनुनासिक नहीं हुआ,
वनस्पतीर् अनु—उकारलोप।

अटी०—अट् परे रहते ही आकार को अनुनासिक होता है।

(5) भवांश्चरति
भवान् चरति—'नश्छव्यप्रशान्' से 'रु',
भवा रु चरति—'रु' से पूर्व दीर्घ आकार है; परन्तु परे अट् वर्ण न होने से आकार को अनुनासिक नहीं हुआ,
भवांश्चरति—खरवसानयो०, विसर्जनीयस्य सः, स्तोः श्चुना०।

(6) भवांश्लाघयति
भवान् श्लाघयति—पूर्ववत् आकार को अनुनासिक नहीं हुआ।

नित्य०—'नित्य' का ग्रहण स्पष्टता के लिए है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(3800) अनुनासिकात्परोऽनुस्वारः *4* (137)

अन्यशब्दोऽत्राध्याहर्त्तव्यः। तदपेक्षया चेयम् 'अनुनासिकात्' इति पञ्चमी। अनुनासिकादन्यो यो वर्णः रोः पूर्वः, यस्यानुनासिको न कृतः, ततः परोऽनुस्वार आगमो भवति। वक्ष्यति-'सम सुटि' (8.3.5)। संस्कर्ता, संस्कर्तुम्, संस्कर्तव्यम्। 'पुमः खय्यम्परे' (8.3.6)-पुंस्कामा। 'नश्छव्यप्रशान्' (8.3.7)। भवांश्चरति। केचित्तु परशब्दमेवान्यार्थं वर्णयन्ति। अनुनासिकात्परः = अनुनासिकादन्योऽनुस्वारो भवति। यस्मिन्पक्षेऽनुनासिको नास्ति तत्रानुस्वारागमो भवति। स तु कस्यागमो भवति? रोः पूर्वस्यैवेति वर्तते, व्याख्यानादादेशो न भवति।

अर्थ—यहाँ अन्य शब्द का अध्याहार करना चाहिए। उसकी अपेक्षा से 'अनुनासिकात्' यहाँ पञ्चमी है। अनुनासिक से पर 'रु' से पूर्व अन्य जो वर्ण, जिसे अनुनासिक आदेश न किया गया है, उससे पर अनुस्वार आगम होता है।

आगे कहा जायेगा—समः सुटि।

उदा० (1) संस्कर्त्ता। (2) संस्कर्त्तव्यम्।
आगे कहा जायेगा—पुमः खय्यम्परे।

(3) पुंस्कामा
आगे कहा जायेगा—नश्छव्यप्रशान्।

(4) भवांश्चरति
उदाहरणों की सिद्धि आगे तत् तत् सूत्र पर देखिये।

केचि०—कुछ विद्वान् तो 'पर' शब्द की ही अन्यवाची व्याख्या करते हैं। अनुनासिकात् परः अर्थात् अनुनासिकाद् अन्यः। इस प्रकार अनुनासिक से अतिरिक्त अनुस्वार हुआ। जिस पक्ष में अनुनासिक नहीं होता है, वहाँ अनुस्वार का आगम होता है। वह किसका आगम होता है? 'रु' से पूर्व आगम होता है। व्याख्यान से आदेश नहीं होता है।

(3801) समः सुटि *5* (135)

रुर्वर्त्तते। 'सम्'-इत्येतस्य रुर्भवति सुटि परतः संहितायां विषये। सँस्कर्ता, सँस्कर्तुम्, सँस्कर्तव्यम्, संस्स्कर्त्ता, संस्स्कर्तुम्, संस्स्कर्तव्यम्। अत्र रोर्विसर्जनीये कृते 'वा शरि' (8.3.66) इति पक्षे विसर्जनीय एव प्राप्नोति। व्यवस्थितविभाषा द्रष्टव्या। तेनात्र नित्यं सकार एव भवति। अस्मिन्नेव सूत्रे सकारादेशो वा निर्दिश्यते-'समः स्सुटि' इति द्विसकारको निर्देशः। सम इति किम्? उपस्कर्ता। सुटीति किम्? संकृतिः। कश्चिदाह-*सम्पुङ्कानां सो वक्तव्यः*। रुविधौ ह्यनिष्टप्रसङ्गः। संस्स्कर्ता। पुंस्कामा, कांस्कामानिति।

अर्थ—'रु' का अनुवर्त्तन है। संहिता के विषय में 'सम्' इसके स्थान पर 'रु' आदेश होता है, सुट् परे रहते।

उदा० (1) सँस्कर्त्ता
सम् कर्त्तृ—'सम्पर्युपेभ्यः करोतौ' से 'सुट्' आगम,
सम् स् कर्त्तृ—अनुबन्धलोप,
सँ रुस् कर्त्तृ—समः सुटि, अत्रानुनासि,
सँः स्कर्त्तृ—खरवसानयो०, विसर्जनीयस्य सः, वा शरि,
सँ स् स्कर्त्तृ—'सम्पुङ्कानां०' से नित्य सकार,
सँ स्कर्त्तृ सु—'समो वा लोपमेके' पक्ष में एक सकार।

(2) सँस्कर्तुम्
सम् कर्तुम्—'रु',
सँ रु कर्तुम्—अनुनासिक,
सँस् कर्तुम्—विसर्जनीय, सकार।

(3) सँस्कर्त्तव्यम्
सम् कर्तव्यम्—पूर्ववत् सभी कार्य।

(4) संस्स्कर्त्ता
स रु स्कर्त्तृ—इस दशा में,
सं र् स्कर्त्तृ—अनुनासिक अभाव पक्ष में अनुस्वार,
संः स्कर्त्तृ—खरवसानयो०,
संस्स्कर्त्तृ सु—विसर्ग को सकार।

(5) संस्स्कर्तुम्
तुमुन्, 'संस्स्कर्त्ता' की तरह 'अनुस्वार'।

(6) संस्स्कर्त्तव्यम्
तव्यत्, 'संस्स्कर्त्ता' की तरह।

अत्र०—यहाँ 'रु' के स्थान पर विसर्जनीय करने पर 'वा शरि' से पक्ष में विसर्जनीय ही प्राप्त होता है। यहाँ व्यवस्थित विभाषा होती है। अतः यहाँ नित्य सकार ही होता है।

अस्मि०—इसी सूत्र में सकार आदेश का निर्देश किया जाता है। 'समः स्सुटि' इस प्रकार द्विसकार का निर्देश है।

सम०—सम् को 'रु' आदेश होता है।

(7) उपस्कर्त्ता
उप स् कर्त्तृ—यहाँ सुट् परे है, परन्तु 'सम्' न होने से 'रु' आदेश नहीं हुआ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुटीति०—सुट् परे रहते ही 'रु' होता है।

(8) संकृतिः

सम् कृति—सुट् परे नहीं है। अतः 'सम्' को 'रु' आदेश नहीं हुआ,

संकृति सु—अनुस्वार हुआ।

कश्चिदा०—कोई कहता है—सम्, पुम् तथा कान्—इन्हें 'रु' आदेश होता है। रुविधि में अनिष्ट प्रसंग।

(9) संस्कर्त्ता

सम् कृ तृच्—सम्परिभ्यां करोतौ० से सुट्, अंग को गुण, अचो रहाभ्यां द्वे,

सम् स्कर्तृ—'समः सुटि' से 'रु',

सरु स्कर्तृ—'अत्राऽनुनासिकः पूर्वस्य०' से पाक्षिक अनुनासिक, अनुनासिक अभाव पक्ष में,

संर् स्कर्तृ—खरवसानयो० से विसर्जनीय,

संः स्कर्तृ—'विसर्जनीयस्य सः' को बाध कर 'वा शरि' से पाक्षिक सकार की प्राप्ति, 'सम्पुङ्कानां सो०' से नित्य सकार,

संस्स्कर्तृ—सु।

(10) पुंस्कामा

पुम् कामा—पुमः खय्यम्परे,

पुरु कामा—अनुनासिक अभाव पक्ष में अनुनासिकात् परो०

पुर् कामा—विसर्ग,

पुंस् कामा—सम्पुङ्कानां०।

(11) कांस्कान्

कान् कान्—तस्य परमाम्रेडितम्,

कारु कान्—'कानाम्रेडिते' से 'रु',

कांर् कान्—अनुनासिक अभाव पक्ष में अनुनासिकात् परो०,

कांस् कान्—विसर्जनीय, सम्पुङ्कानां सो०।

(3802) पुमः खय्यम्परे *6* (139)

पुमित्येतस्य रुर्भवति अम्परे खयि परतः। पुँस्कामा, पुंस्कामा। पुँस्पुत्रः, पुंस्पुत्रः। पुँस्फलम्, पुंस्फलम्। पुँश्चली, पुंश्चली। पुंस्कामेत्यत्र विसर्जनीयस्य 'कुप्वोः ≍ क ≍ पौ च' (8.3.37) इति प्राप्नोति। तस्मादत्र सकार एवादेशो वक्तव्यः। द्विसकारकनिर्देशपक्षे तु पूर्वस्मादेव सूत्रात् 'स' इत्यनुवर्तते। रुत्वं त्वनुवर्तमानमपि नात्राभिसम्बध्यते, सम्बन्धानुवृत्तिस्तस्येति। खयीति किम्? पुंदासः। पुंगवः। अम्पर इति किम्? पुंक्षीरम्। पुंक्षुरम्। परग्रहणं किम्? पुमाख्यः। पुमाचारः।

अर्थ—खय् वर्ण है परे जिसके, ऐसे अम् के परे रहते 'पुम्' के स्थान पर 'रु' होता है।

उदा० (1) पुँस्कामा

पुम् कामा—पुमः खय्यम्परे०,

पुरु कामा—अत्राऽनुनासिक०,

पुँर् कामा—विसर्जनीय, 'विसर्जनीयस्य सः' व जिह्वामूलीय को बाध कर,

पुँस् कामा—सम्पुङ्कानां सो वक्तव्यः।

(2) पुंस्कामा

पुम् कामा—'रु' आदेश,

पुरु कामा—अनुस्वार,

पुंर् कामा—विसर्जनीय सकार।

(3) पुँस्पुत्रः

पुम् पुत्र—'रु' आदेश,

पुरु पुत्र—अनुनासिक,

पुँर् पुत्र—विसर्जनीय, विसर्जनीयस्य सः,

पुँस् पुत्र—उपध्मानीय, सम्पुङ्कानां सो०, सु।

(4) पुंस्पुत्रः

पु रु पुत्र—अनुनासिक अभाव पक्ष में अनुस्वार हुआ,

पुंर् पुत्र—विसर्जनीय, 'विसर्जनीयस्य सः' को बाध कर उपध्मानीय,

पुंस् पुत्र सु—सम्पुङ्कानां सो०।

(5) पुँस्फलम्

पुम् फल—पुमः खय्यम्परे,

पुरु फल—अत्राऽनुनासिक०,

पुँ र् फल—विसर्जनीय, विसर्जनीयस्य सः, उपध्मानीय,

पुँस् फल सु—सम्पुङ्कानां०।

(6) पुंस्फलम्

पुं र् फल—अनुनासिक अभाव पक्ष, अनुस्वार,

पुंः फल—विसर्जनीय, शेष पूर्ववत्,

पुंस् फल सु—सम्पुङ्काना०।

(7) पुँश्चली

पुम् चली—'रु' आदेश,

पुरु चली—अनुनासिक आदेश,

पुँर् चली—खरवसानयो० विसर्जनीयस्य सः,

पुँस् चली—स्तोः श्चुना श्चुः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(8) पुंश्चली

पुंर् चली—अनुनासिक अभाव पक्ष में अनुस्वार,

पुंस् चली—विसर्जनीय, सकार,

पुंश् चली—श्चुत्व।

पुंस्का०—'पुंस्कामा' इस स्थल पर विसर्जनीय के स्थान पर जिह्वामूलीय प्राप्त होता है। अतः यहाँ सकार आदेश ही होता है।

द्विसकार०—द्विसकार के निर्देश पक्ष में पूर्व सूत्र से ही 'स' का अनुवर्त्तन होता है।

रुत्व०—'रु' का अनुवर्त्तन होने पर भी उसका यहाँ सम्बन्ध नहीं है।

खयी०—खय् है परे जिसके, ऐसे पुम् को 'रु' होता है।

(9) पुंदासः

पुम् दास—'पुम्' से परे दकार है जो 'खय्' वर्ण नहीं है, इससे परे 'अम्' वर्ण आकार है, 'रु' नहीं हुआ,

पुं दास सु—अनुस्वार।

(10) पुङ्गवः

पुम् गव—पूर्ववत् रुत्व नहीं हुआ,

पुंगव—अनुस्वार,

पुङ्गव सु—परसवर्ण।

अम्पर०—अम् है परे जिसके, ऐसे खय् के परे रहते 'रु' होता है।

(11) पुंक्षीरः

पुम् क्षीर—पुग् से पर खय् वर्ण ककार है, परन्तु इससे परे षकार है जो अम् नहीं है, रुत्व नहीं हुआ,

पुं क्षीर सु—अनुस्वार।

(12) पुंक्षुरः

पुम् क्षुर—पूर्ववत्।

पर०—अम् परक खय् परे रहते पुम् को 'रु' होता है।

(13) पुम् आख्यः

पुम् आख्य—पुम् से उत्तर खय् वर्ण (खकार) है तथा उससे पर अम् वर्ण (यकार) है, परन्तु खकार अव्यवहित पर नहीं है,

पुम् आख्य सु—रुत्व नहीं हुआ।

(14) पुमाचारः

पुम् आचार—पूर्ववत्।

(3803) नश्छव्यप्रशान् *7* (140)

'अम्परे' इति वर्तते। नकारान्तस्य पदस्य प्रशान्वर्जितस्य रुर्भवति अम्परे छवि परतः। भवाँश्छादयति, भवांश्छादयति। भवाँश्चिनोति, भवांश्चिनोति। भवाँष्टीकते, भवांष्टीकते। भवाँस्तरति, भवांस्तरति। छवीति किम्? भवान्करोति। अप्रशानिति किम्? प्रशाञ्छादयति। प्रशाञ् चिनोति। 'अम्परे' इत्येव–भवान् त्सरुकः।

अर्थ—'अम्परे' का अनुवर्त्तन है। अम् वर्ण है परे जिसके, ऐसे छव् वर्ण के परे रहते नकारान्त पदसंज्ञक के स्थान पर 'रु' आदेश होता है, परन्तु प्रशान् को 'रु' नहीं होता है।

उदा० (1) भवांश्छादयति

भवान् छादयति—'भवान्' नकारान्त है, पदसंज्ञा है, इससे पर छव् वर्ण (छकार) है, इससे पर अम् वर्ण (आकार) है,

भवा रुँ छादयति—अलोऽन्त्य परिभाषा से नकार के स्थान पर 'रु' हुआ,

भवासुँ छादयति—सकार,

भवाँश्छादयति—स्तोः श्चुना श्चुः।

(2) भवांश्छादयति

पक्ष में अनुस्वार।

(3) भवाँश्चिनोति

भवान् चिनोति—पूर्ववत् सभी कार्य।

(4) भवांश्चिनोति

पक्ष में अनुस्वार।

(5) भवाँष्टीकते

भवान् टीकते—पूर्ववत् सभी कार्य,

भवाँस् टीकते—ष्टुना ष्टुः।

(6) भवांष्टीकते

पक्ष में अनुस्वार।

(7) भवाँस्तरति

भवान् तरति—पूर्ववत्।

(8) भवांस्तरति

पक्ष में अनुस्वार।

छवीति०—अम् परक छव् परे रहते 'रु' होता है।

(9) भवान् करोति

भवान् करोति—भवान् नकारान्त है, इसकी पदसंज्ञा है, इससे पर ककार है जो छव् नहीं है, इससे पर अम् अकार है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भवान्करोति—रुत्व नहीं हुआ।

अप्रशा०—प्रशान् को रुत्व नहीं होता है।

(10) प्रशाञ्छादयति

प्रशान् छादयति—प्रशान् नकारान्त है, पदसंज्ञक है, इससे पर छव् (छकार) है, इससे पर अम् (आकार) है,

प्रशाञ् छादयति—'अप्रशान्' इस प्रकार पर्युदास होने के कारण रुत्व नहीं हुआ, 'स्तोः श्चुना श्चुः' से श्चुत्व हुआ।

अम्परे०—अम् परक छव् परे रहते 'रु' होता है।

(11) भवान् त्सरुकः

भवान् त्सरुकः—भवान् नकारान्त है, पदसंज्ञक है, इससे पर छव् वर्ण तकार है, परन्तु इससे पर सकार है जो अम् वर्ण नहीं है, रुत्व नहीं हुआ।

भवान् त्सरुक—सु।

(3804) उभयथर्क्षु *8* (3630)

पूर्वेण नित्ये प्राप्ते विकल्पः क्रियते। नकारान्तस्य पदस्य छवि परतः अम्परे उभयथा ऋक्षु भवति-रुर्वा, नकारो वा। तस्मिंस्त्वा दधाति। तस्मिन्त्वा दधाति। ऋक्षिवति किम्? ताँस्त्वं खादु सुखादितान् (वा०सं० 11.78)।

अर्थ—पूर्व सूत्र के द्वारा नित्य प्राप्त होने पर विकल्प किया जा रहा है। ऋचाओं के विषय में अम् परक छव् के परे रहते नकारान्त पद के स्थान पर दोनों प्रकार से होता है अर्थात् रुत्व तथा नत्व दोनों होता है।

उदा० (1) तस्मिंस्त्वा दधाति

नकार को रुत्व हुआ, विसर्जनीय, सकार।

(2) तस्मिन्त्वा दधाति

पक्ष में नकार।

ऋक्षिवति०—ऋचाओं के विषय में ही विकल्प से रुत्व होता है।

(3) तांस्त्वं

यहाँ ऋचा का विषय नहीं है। विकल्प नहीं हुआ।

(3805) दीर्घादटि समानपादे *9* (3631)

'नः' इत्यनुवर्तते। दीर्घादुत्तरस्य पदान्तस्य नकारस्य रुर्भवत्यटि परतस्तौ चेन्निमित्तनिमित्तिनौ समानपादे भवतः। 'ऋक्षु' इति प्रकृतत्वाद् ऋक्पाद इह गृह्यते। परिधींरति (ऋ० 9.107.19)। देवाँ अच्छा दीद्यत् (ऋ० 3.1.1)। महाँ इन्द्रो य ओजसा (8.6.1)। दीर्घादिति किम्? अहन्नहिम् (ऋ०1.32.1)। अटीति किम्? इभ्यान्क्षत्रियान्। समानपाद इति किम्? यातुधानानुपस्पृशः। 'उभयथा' इत्येव-आदित्यान् हवामहे (ऋ० 8.67.1)।

अर्थ—'न' के स्थान पर होता है—इसका अनुवर्तन है। अट् परे रहते दीर्घ वर्ण से उत्तर जो पदान्त नकार, उसके स्थान पर 'रु' होता है, यदि निमित्त और निमित्ती दोनों समानपाद में हों। 'ऋक्षु' के प्रकृत रहने से यहाँ ऋक्पाद का ही ग्रहण होता है।

उदा० (1) परिधीँ रति।

परिधीन् रति—समान पाद है, दीर्घ वर्ण (आकार) से उत्तर पदान्त नकार है,

परिधी रुँ रति—'रु' हुआ, लोप।

(2) देवां अच्छादीव्यत्

देवान् अच्छादीव्यत्—'रु' हुआ, यकार,

देवां य् अच्छादीव्यत्—यलोप।

(3) महां इन्द्रो

महान् इन्द्रः—पूर्ववत् यलोप।

दीर्घादि०—दीर्घ वर्ण से उत्तर पदान्त नकार को 'रु' होता है।

(4) अहन्नहिम्

अहन् अहिम्—समान पाद है, नकारान्त है, पदसंज्ञक है; परन्तु नकार दीर्घ वर्ण से उत्तर नहीं है,

अहन् न् अहिम्—रुत्व नहीं हुआ, ङमो ह्रस्वादचि०।

अटीति०—अट् परे रहते 'रु' होता है।

(5) इभ्यान् क्षत्रियान्

इभ्यान् क्षत्रियान्—समान पाद है, दीर्घ वर्ण से उत्तर नकारान्त है, पदसंज्ञक है, परन्तु इससे पर ककार है जो अट् वर्ण नहीं है। रुत्व नहीं हुआ।

समानपा०—समानपाद में ही रुत्व होता है।

(6) यातुधानानुपस्पृश

यातुधानान् उपस्पृश—दीर्घ वर्ण (आकार) से पर नकार है, पदसंज्ञा है, अट् परे है, परन्तु असमान पाद है। रुत्व नहीं हुआ।

उभयथा०—रुत्व नथा नकार दोनों होते हैं।

(7) आदित्यान् हवामहे

आदित्यान् हवामहे—पक्ष में नकार हुआ है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(3806) नॄन्पे *10* (141)

'नॄन्' इत्येतस्य नकारस्य रुर्भवति पशब्दे परतः। अकार उच्चारणार्थः। नॄँः पाहि। नॄंः पाहि। नॄँःप्रीणीहि। नॄंः प्रीणीहि। पे इति किम्? नॄन् भोजयति। उभयथेत्यपि केचिदनुवर्तयन्ति, नॄन्पाहीत्यपि यथा स्यात्।

अर्थ—'प' परे रहते 'नॄन्' के नकार को 'रु' आदेश होता है। पकार में अकार उच्चारणार्थ है।

उदा० (1) नॄँः पाहि
नॄन् पाहि—'रु' आदेश,
नॄ रु पाहि—'अत्राऽनुनासिक०' से अनुनासिक, खरवसानयो०,
नॄँः पाहि—विसर्जनीयस्य सः, उपध्मानीय।

(2) नॄंः पाहि
पक्ष में अनुस्वार होता है।

(3) नॄँः प्रीणीहि
नॄन् प्रीणीहि—'रु',
नॄ रु प्रीणीहि—अनुनासिक,
नॄँ र् प्रीणीहि—विसर्जनीय,
नॄँः प्रीणीहि—उपध्मानीय।

(4) नॄंः प्रीणीहि
पक्ष में अनुस्वार हुआ।

पे इति० पकार परे रहते ही रुत्व होता है।

(5) नॄन् भोजयति
पकार परे नहीं है। रुत्व नहीं हुआ।

उभय०—कुछ विद्वान् यहाँ 'उभयथा' का अनुवर्त्तन स्वीकार करते हैं। अतः 'नॄन् पाहि' भी होता है।

(3807) स्वतवान् पायौ *11* (3633)

'स्वतवान्' इत्येतस्य नकारस्य रुर्भवति पायुशब्दे परतः। 'स्वतवाँः पायुरग्नेः' (ऋ० 4.2.6)।

अर्थ—'पायु' शब्द परे रहते 'स्वतवान्' के नकार को 'रु' होता है।

उदा० (1) स्वतवाँः पायुरग्ने
स्वतवान् पायुरग्ने—रुत्व हुआ, अनुनासिक, विसर्जनीय।

(3808) कानाम्रेडिते *12* (143)

कानित्येतस्य नकारस्य रुर्भवति आम्रेडिते परतः। कांस्कानामन्त्रयते। कांस्कान्भोजयति। अस्य कस्कादिषु पाठो द्रष्टव्यः। तेन 'कुप्वोः ≍ क ≍ पौ च' (8.3.37) इति न भवति। 'समः सुटि' (8.3.5) इत्यतो वा सकारोऽनुवर्तते, स एवात्र विधीयते। पूर्वेषु योगेषु सम्बन्धानुवृत्त्या गतस्य रोरत्रानभिसम्बन्धः। आम्रेडित इति किम्? कान् कान्पश्यति। एकोऽत्र कुत्सायाम्।

अर्थ—आम्रेडित परे रहते 'कान्' के नकार को 'रु' होता है।

उदा० (1) काँस्कान् आमन्त्रयते
कान् कान्—'रु',
कारु कान्—अनुनासिक, विसर्जनीय,
काँस् कान्—सकार।

(2) कांस्कान् भोजयति (पूर्ववत्)।

अस्य०—इसका कस्कादि में पाठ होना चाहिए। अतः 'कुप्वोः ≍ क' से नहीं होता है।

समः०—अथवा 'समः सुटि' से सकार का अनुवर्त्तन है। उसी का यहाँ विधान किया जाता है।

पूर्वेषु०—पूर्व के योगों में सम्बन्ध की अनुवृत्ति से गत 'रु' का यहाँ सम्बन्ध नहीं है।

आम्रे०—आम्रेडित परे रहते ही नकार को 'रु' होता है।

कान् कान् पश्यति
आम्रेडित परे न होने से रुत्व नहीं हुआ।

(3809) ढो ढे लोपः *13* (2335)

ढकारस्य ढकारे लोपो भवति। सत्यपि पदाधिकारे तस्यासम्भवादपदान्तस्य ढकारस्यायं लोपो विज्ञायते। लीढम्। उपगूढम्। ह्रुत्वस्यात्र सिद्धत्वमाश्रयाद् द्रष्टव्यम्। श्लिड्ढौकते-इत्यत्र तु जश्त्वे कृते कार्यं नास्तीति लोपाभावः। न च ढलोपे जश्त्वापवादो विज्ञातुं शक्यते; तस्य हि लीढादिर्विषयः सम्भवति। तत्र हि श्रुतिकृतमानन्तर्यमस्ति। शास्त्रकृतं तु यदा नानन्तर्यं ह्रुत्वस्यासिद्धत्वेन प्राप्तम्, तत्तु सूत्रकरणसामर्थ्याद्बाध्यते। श्लिड्ढौकते-इत्यत्र तु न श्रुतिकृतमानन्तर्यम्, न शास्त्रकृतमिति अविषयोऽयं ढलोपस्य।

अर्थ—ढकार परे रहते ढकार का लोप होता है। यहाँ 'पदस्य' इसका अधिकार होने पर भी उसके असम्भव होने से अपदान्त ढकार का यह लोप जानना चाहिए।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उदा० (1) लीढम्
लिह् क्त—निष्ठा प्रत्यय,
लिढ् त—हो ढः,
लिढ् ध—झषस्तथो०, ष्टुना ष्टुः,
लि ढ—ढलोप, ढ्रलोपे पूर्वस्य०, सु।

(2) उपगूढम्
उप गुह् क्त—हो ढः,
उप गुढ् ध—झषस्तथो०,
उप गुढ् ढ—ष्टुना ष्टुः, ढलोप,
उप गूढ सु—ढ्रलोपे पूर्वस्य०।

ष्टुत्व०—ष्टुत्व का सिद्ध के आश्रय से जानना चाहिए। 'श्वलिड् ढौकते' यहाँ जश्त्व करने पर कार्य नहीं है। अतः लोप नहीं हुआ। ढकार का लोप जश्त्व का अपवाद नहीं हो सकता। उसका 'लीढ' आदि विषय सम्भव होता है।

तत्र हि०—यहाँ श्रुतिकृत आनन्तर्य है। यहाँ शास्त्रकृत आनन्तर्य ष्टुत्व के असिद्ध होने से नहीं होता है, उसका सूत्र के विधानसामर्थ्य से बाध हो जाता है। 'श्वलिड् ढौकते' में श्रुतिकृत आनन्तर्य नहीं है तथा शास्त्रकृत भी नहीं है। अतः ढलोप का अविषय है।

(3810) रो रि *14* (173)

रेफस्य रेफे परतो लोपो भवति। नीरक्तम्। दूरक्तम्। अग्नी रथः। इन्दू रथः। पुना रक्तं वासः। प्राता राजक्रयः। 'पदस्य' इत्यत्र विशेषणे षष्ठी, तेन अपदान्तस्यापि रेफस्य लोपो भवति। जर्गृधेः-अजर्घाः। पास्पर्धेः-अपास्पा इति।

अर्थ—रेफ परे रहते रेफ का लोप होता है।

उदा० (1) नीरक्तम्
निस् रक्त—ससजुषो०,
निर् रक्त—रो रि,
नी रक्त सु—ढ्रलोपे०।

(2) दूरक्तम्
दुस् रक्त—पूर्ववत्,
दुर् रक्त—रो रि,
दू रक्त सु—ढ्रलोपे०।

(3) अग्नीरथः
अग्निस् रथ—'रु',
अग्नि रथ—रो रि,
अग्नी रथ—ढ्रलोपे०।

(4) इन्दू रथः
इन्दुस् रथ—'रु',
इन्दुर् रथ—रो रि,
इन्दू रथ—ढ्रलोपे०।

(5) पुना रक्तम्
पुनर् रक्त—रो रि,
पुन रक्त—ढ्रलोपे पूर्वस्य०,
पुना रक्त सु—विभक्तिकार्य।

(6) प्राता राजक्रयः
प्रातर् राजक्रयः—रो रि,
प्रात राजक्रय—ढ्रलोपे०,
प्राता राजक्रय सु—सु।

पदस्य०—'पदस्य' यहाँ विशेषण में षष्ठी है। अतः पदान्त रेफ का भी लोप होता है।

(7) अजर्घाः
गृध् यङ्—'धातोरेकाचो०' से 'यङ्',
गृध्—यङ् का लुक्, 'सन्यङोः' से द्वित्व,
जर्गृध्—हलादिः शेषः, कुहोश्चुः, 'रुग् रिकौ च०' से 'रुक्' आगम,
जर् गर्ध् स्—लङ्, इतश्च, लघूपधगुण,
जर्गर्ध्—हल्ङ्याब्भ्यो०, सुप्तिङन्तं पदम्,
जर्घर्ध्—एकाचो बशो०, 'झलां जशोऽन्ते' से दकार,
जर्घर् र्—'दश्च' से 'रु', रो रि, ढ्रलोपे पूर्वस्य०।

(8) अपास्पा
स्पर्द्ध् यङ्—सन्यङोः,
प स्पर्द्ध् य—शर्पूर्वाः खयः,
पा स्पर्द्ध् य—दीर्घोऽकितः, 'यङोऽचि च' से लुक्,
पा स्पर्द्ध् सिप्—लङ्, इतश्च, 'चर्करीतञ्च' में पाठ होने से शप् का लुक्, हल्ङ्याब्भ्यो०,
पा स्पर्ध्—झलां जशोऽन्ते, दश्च, रेफलोप, दीर्घत्व।

(3811) खरवसानयोर्विसर्जनीयः *15* (76)

'र' इति वर्तते। रेफान्तस्य पदस्य खरि परतोऽवसाने च विसर्जनीयादेशो भवति। वृक्षश्छादयति। प्लक्षश्छादयति। वृक्षस्तरति। प्लक्षस्तरति। अवसाने-वृक्षः। प्लक्षः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

खरवसानयोरिति किम्? अग्निर्नयति। वायुर्नयति। इह नृकुट्यां भवः नार्कुटः, नृपतेरपत्यं नार्पत्यः-इति वृद्धेर्बहिरङ्गलक्षणत्वात्तदाश्रयस्य रेफस्य 'असिद्धं बहिरङ्गम्' (व्या०प०) इत्यसिद्धत्वाद् विसर्जनीयो न भवति।

अर्थ—'रः' का अनुवर्त्तन है। पद के अन्त में जो रेफ उसे विसर्जनीय होता है, खर् परे रहते तथा अवसान में।

उदा० (1) वृक्षश्छादयति
वृक्षस् छादयति—ससजुषो०,
वृक्षरु छादयति—खरवसान०,
वृक्षः छादयति—विसर्जनीयस्य०,
वृक्षस् छादयति—स्तोः श्चुना०,
वृक्षश् छादयति—रूप बना।

(2) प्लक्षश्छादयति
प्लक्षस् छादयति—पूर्ववत्।

(3) वृक्षस्तरति
वृक्षस् तरति—पूर्ववत्।

(4) प्लक्षस्तरति (पूर्ववत्)।

(5) वृक्षः
वृक्ष सु → वृक्ष स् → वृक्षर् → वृक्षः।

(6) प्लक्षः (पूर्ववत्)।

खरव०—खर् परे रहते तथा अवसान में विसर्जनीय होता है।

(7) अग्निर्नयति
अग्निस् नयति—ससजुषो०,
अग्निर् नयति—खर् परे नहीं है।

(8) वायुर्नयति
वायुस् नयति—पूर्ववत्।

इह०—निम्नलिखित स्थलों पर वृद्धि के बहिरंगलक्षण होने से तदाश्रय रेफ के 'असिद्धं बहिरङ्गम्' से असिद्ध होने से विसर्जनीय नहीं होता है।

(9) नार्कुटः
नृकुट्यां भवः—आदिवृद्धि, उरण् रपरः,
नार् कुट् अण्—विभक्तिकार्य।

(10) नार्पत्यः
नृपतेरपत्यम्—पूर्ववत्।

(3812) रोः सुपि *16* (339)

'रु'-इत्येतस्य रेफस्य सुपि परतो विसर्जनीयादेशो भवति। पयःसु। यशःसु। सर्पिःषु। 'सुपि'-इति सप्तमीबहुवचनं गृह्यते। 'सिद्धे सत्यारम्भो नियमार्थः' (कात्या० परि०)-रोरेव सुपि विसर्जनीयादेशः, नान्यस्य। गीर्षु। धूर्षु।

अर्थ—'रु' के रेफ को विसर्जनीय आदेश होता है, सुप् परे रहते।

उदा० (1) पयःसु
पयस् सु—ससजुषो०,
पय रु सु—विसर्जनीय,
पयःसु—रूप सिद्ध।

(2) यशःसु
यशस् सु—पूर्ववत्।

'सुपि'—'सुपि' के द्वारा सप्तमी बहुवचन का ग्रहण होता है। इसके सिद्ध रहते यह विधान नियमार्थ है। यह नियम करता है कि 'रु' के रेफ को ही सुप् परे रहते विसर्जनीय आदेश होता है, अन्य को नहीं।

(3) गीर्षु
गिर् सु—वोरुपधायाः० से दीर्घ,
(4) धूर्षु—पूर्ववत्।

(3813) भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि *17* (167)

भोर्, भगोर्, अघोर्-इत्येवम्पूर्वस्य अवर्णपूर्वस्य च रोः रेफस्य यकारादेशो भवति अशि परतः। भो अत्र। भगो अत्र। अघो अत्र। भो ददाति। भगो ददाति। अघो ददाति। अवर्णपूर्वस्य-क आस्ते, कय् आस्ते। ब्राह्मणा ददति। पुरुषा ददति। भोभगोअघोअपूर्वस्येति किम्? अग्निरत्र। वायुरत्र। अश्ग्रहणं किम्? वृक्षः। प्लक्षः। नैतदस्ति; 'संहितायाम्' (8.2.108) इत्यनुवर्तते? तर्हि अस्ग्रहणमुत्तरार्थम्। 'हलि सर्वेषाम्' (8.3.22) इत्ययं लोपः अशि हलि यथा स्यात्, इह मा भूत्-वृक्षं वृश्चतीति वृक्षवृट्, तमाचष्टे यः स वृक्षवयति, वृक्षवयतेरप्रत्ययः-वृक्षव् करोति। अथ तत्रैव अश्ग्रहणं कस्मान्न कृतम्? उत्तरार्थम्, 'मोऽनुस्वारः' (8.3.23) इति हल्मात्रे यथा स्यात्। 'व्योर्लघुप्रयत्नतरः शाकटायनस्य' (8.3.18),

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'लोपः शाकल्यस्य' (8.3.19) इत्येतच्च वृक्षव् करोतीत्यत्र मा भूदित्यश्ग्रहणम्। 'रोः' इत्येव-प्रातरत्र। पुनरत्र।

अर्थ—भोर्, भगोर् तथा अघोर्—ये हैं पूर्व में जिसके तथा अवर्ण है पूर्व में जिसके, ऐसे 'रु' के रेफ के स्थान पर यकार होता है, अश् परे रहते।

उदा० (1) भो अत्र
भोस् अत्र—ससजुषो०
भो रु अत्र—यकार,
भो य् अत्र—यलोप।

(2) भगो अत्र
भगोस् अत्र—रु,
भगो रु—यकार, यलोप।

(3) अघो अत्र
अघोस् अत्र—पूर्ववत्।

(4) भो ददाति
भोस् ददाति—रुत्व, यकार,
भोय् ददाति—यलोप।

(5) भगो ददाति
भगोस् ददाति—पूर्ववत्।

(6) अघो ददाति
अघोस् ददाति—पूर्ववत्।

(7) क आस्ते
कस् आस्ते—रुत्व,
कय् आस्ते—यकार,
क आस्ते—यलोप।

(8) ब्राह्मणा ददति
ब्राह्मणास् ददति—रुत्व,
ब्राह्मणा रु ददति—यत्व,
ब्राह्मणाय् ददति—यकारलोप।

(9) पुरुषा वदति (पूर्ववत्)।

भोभगो०—भोस् आदि के पूर्व में रहते यकार होता है।

(10) अग्निरत्र
यहाँ यकार नहीं हुआ।
(11) वायुरत्र—पूर्ववत्।

अश्०—अश् परे रहते यकार होता है।

(12) वृक्षः
वृक्षस् → वृक्ष रु → वृक्षः,
अश् परे न रहने से यकार नहीं हुआ।

(13) प्लक्षः—पूर्ववत्।

नैतद०—ऐसा नहीं है। 'संहितायाम्' का अनुवर्त्तन है। 'अश्' का ग्रहण उत्तर शास्त्र के लिए है। 'हलि सर्वेषाम्' से यह लोप होता है। अश् तथा हल् परे रहते भी हो जाय। निम्नलिखित में नहीं होता है—

(14) वृक्षवृट्
वृक्षं वृश्चति—क्विप्,
वृक्ष व्रश्च् क्विप्—सर्वापहारलोप,
वृक्ष वृश्च्—'ग्रहिज्यावयि०' से सम्प्रसारण,
वृक्ष वृच्—स्कोः संयोगा० से सकारलोप,
वृक्ष वृष्—सु, सुलोप, 'व्रश्चभ्रस्ज०' से षकार,
वृक्षवृड्—झलां जशोऽन्ते,
वृक्षवृट्—वाऽवसाने।

(15) वृक्षवयति
वृक्षवृचम् आचष्टे—'तत्करोति तदाचष्टे' से णिच्,
वृक्षवृच् णिच्—'णाविष्ठवत् प्रातिपदि०' से इष्ठवद्भाव,
वृक्षव् इ—टिलोप, धातुसंज्ञा,
वृक्षवयति—लकार, शप् आदि।

(16) वृक्षव् करोति
वृक्षवय् णिच् क्विप्—'वृक्षवय्' धातु से 'णिच्' हुआ, क्विप्,
वृक्षव् णिच्—'क्विप्' का सर्वापहारलोप, 'णेरनिटि' से णिलोप,
वृक्षव् करोति—इस स्थल पर 'अश्' का ग्रहण होने से ककार परे रहते वकार का लोप नहीं होता, 'लोपो व्योर्वलि' से लोप नहीं होता है, अन्यथा 'अश्' का ग्रहण अनर्थक हो जाता है।

अथ तत्रै०—वहाँ पर ही 'अश्' ग्रहण क्यों नहीं किया गया ?

(समा०) उत्तरशास्त्र के लिए है। ताकि 'मोऽनुस्वार' से हल्मात्र में हो जाय। 'व्योर्लघुप्रयत्नतरः शाकटायनस्य', 'लोपः शाकल्यस्य' से 'वृक्षव् करोति'—यहाँ न हो; इसके लिए 'अश्' का ग्रहण है।

'रोः'—'रु' के स्थान पर जो रेफ, उसके स्थान पर यकार होता है।

(17) प्रातरत्र

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रातर् अत्र—रेफ है, परे 'अश्' भी है; परन्तु 'रु' का रेफ न होने से यकार नहीं हुआ।

(18) पुनरत्र—पूर्ववत्।

(3814) व्योर्लघुप्रयत्नतरः शाकटायनस्य *18* (168)

वकारयकारयोर्भोभगोअघोअवर्णपूर्वयोः पदान्तयोर्लघुप्रयत्नतर आदेशो भवति अशि परतः शाकटायनस्याचार्यस्य मतेन। भोयत्र, भो अत्र। भगोयत्र, भगो अत्र। अघोयत्र, अगो अत्र। क आस्ते, कयास्ते। अस्मायुद्धर, अस्मा उद्धर। असावादित्यः, असा आदित्यः। द्वावत्र, द्वा अत्र। द्वावायन, द्वा आनय। लघुप्रयत्नतरत्वम् = उच्चारणे स्थानकरणशैथिल्यम्। स्थानम् = ताल्वादि। करणम् = जिह्वामूलादि। तयोरुच्चारणे शैथिल्यम् = मन्दप्रयत्नता।

अर्थ—शाकटायन आचार्य के मत में भो, भगो, अघो तथा अवर्ण—ये हैं पूर्व में जिसके, ऐसे पदान्त वकार तथा यकार के स्थान पर लघुप्रयत्नतर आदेश होता है, अश् परे रहते।

उदा० (1) भगोयत्र।
(2) भगो अत्र—पक्ष में।
(3) अघोयत्र।
(4) अगो अत्र—पक्ष में।
(5) क आस्ते।
(6) कयास्ते—पक्ष में।
(7) अस्मायुद्धर।
(8) अस्मा उद्धर—पक्ष में।
(9) असावादित्यः।
(10) असा आदित्यः—पक्ष में।
(11) द्वावत्र।
(12) द्वा अत्र—पक्ष में।
(13) द्वावानय
(14) द्वा आनय—पक्ष में।

लघु०—लघुप्रयत्नतर उच्चारण में स्थानकरण की शिथिलता को कहते हैं। तालु आदि उच्चारणस्थान हैं। जिह्वामूल आदि करण हैं। उनके उच्चारण में शिथिलता मन्दप्रयत्नता कहलाती है।

(3815) लोपः शाकल्यस्य *19* (67)

वकारयकारयोः पदान्तयोरवर्णपूर्वयोर्लोपो भवति शाकल्यस्याचार्यस्य मतेनाशि परतः। क आस्ते, कयास्ते। काक आस्ते, काकयास्ते। अस्मा उद्धर, अस्मायुद्धर। द्वावत्र, द्वा अत्र। असावादित्यः, असा आदित्यः। शाकल्यग्रहणं विभाषार्थम्। तेन यदापि लघुप्रयत्नतरो न भवत्यादेशः, तदापि व्योः पक्षे श्रवणं भवति।

अर्थ—शाकल्य आचार्य के मत में अपूर्वक पदान्त वकार तथा यकार का लोप होता है, 'अश्' परे रहते।

उदा० (1) क आस्ते
कस् → क रु आस्ते—ससजुषो०,
कय् आस्ते—भोभगो०,
क आस्ते—यलोप। यलोप के असिद्ध होने से सवर्णदीर्घ नहीं हुआ।

(2) कयास्ते
पक्ष में यकार का लोप नहीं हुआ।

(3) काक आस्ते
काकस् आस्ते—यलोप।

(4) काकयास्ते
पक्ष में यलोप अभाव।

(5) अस्मा उद्धर
अस्मै उद्धर—एचोऽयवायावः,
अस्माय् उद्धर—यलोप,
अस्मा उद्धर—यलोप के असिद्ध होने से गुणादेश नहीं हुआ।

(6) अस्माय् उद्धर
यलोप अभाव।

(7) द्वा अत्र
द्वौ अत्र—एचोऽयवायावः,
द्वाव् अत्र—वलोप।

(8) द्वावत्र
वलोप अभाव पक्ष।

(9) असा आदित्यः
असौ आदित्यः—एचोऽयवायावः,
असाव् आदित्यः—वलोप।

(10) असावादित्यः
वलोप अभाव।

शाकल्य०—शाकल्य का ग्रहण विकल्प के लिए है। अतः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जब लघुप्रयत्नतर आदेश नहीं होता है, तब भी वकार यकार के पक्ष में श्रवण होता है।

(3816) ओतो गार्ग्यस्य *20* (169)

ओकारादुत्तरस्य यकारस्य लोपो भवति गार्ग्यस्याचार्यस्य मतेन अशि परतः। भो अत्र। भगो अत्र। भो इदम्। भगो इदम्। नित्यार्थोऽयमारम्भः। गार्ग्यग्रहणं पूजार्थम्। योऽयमलघुप्रयत्नस्य विकल्पेन लोपः क्रियते सोऽनेन निवर्त्यते। लघुप्रयत्नतरस्तु भवत्येव यकारः। भो अत्र, भोयत्र। भगो अत्र, भगोयत्र। अघो अत्र, अघोयत्र। केचित्तु सर्वमेव यकारमत्र नेच्छन्ति।

अर्थ—गार्ग्य आचार्य के मत में ओकार से उत्तर यकार का लोप होता है, अश् वर्ण परे रहते।

उदा० (1) भो अत्र
यकार, यकारलोप।

(2) भगो अत्र—पूर्ववत्।
(3) भो इदम्—पूर्ववत्।
(4) भगो इदम्—पूर्ववत्।

नित्या०—यह नित्य के लिए विधान है। 'गार्ग्य' का ग्रहण सत्कार के लिए है। यह जो अलघुप्रयत्न का विकल्प से लोप किया जाता है, वह इसके द्वारा निवृत्त हो जाता है। लघुप्रयत्नतर यकार तो होता ही है। यथा—

भो अत्र, भोयत्र।
भगो अत्र, भगोयत्र।
अघो अत्र, अघोयत्र।
कुछ सब यकार को यहाँ स्वीकार नहीं करते हैं।

(3817) उञि च पदे *21* (170)

अवर्णपूर्वयोः व्योः पदान्तयोर्लोपो भवति उञि च पदे परतः। 'सं उ एकविंशंवर्तनिः' (मै० 2.7.20)। स उ एकाग्निः। पद इति किम्? तन्त्र उतम्, तन्त्रयुतम्। वेञः सम्प्रसारणे कृते उञिति भूतपूर्वेण अकारेण शक्यते प्रतिपत्तुमिति। अथ 'उञ्' इत्येवंरूपो निपातः प्रतिपदोक्तोऽस्ति? तदा लाक्षणिकत्वाद् वेञादेशस्य ग्रहणमिह नास्ति, उत्तरार्थं पदग्रहणं क्रियते।

अर्थ—अवर्णपूर्वक पदान्त वकार तथा यकार का लोप होता है, उञ् पद परे रहते।

उदा० (1) स उ एकविंशतिः
सः उ—पूर्ववत् यकार आदेश,
स उ—लोप।

(2) स उ एकाग्निः—पूर्ववत्।

पद०—पद में ही वकार तथा यकार का लोप होता है।

(3) तन्त्र उतम्।
(4) तन्त्रयुतम्।

यहाँ नित्य लोप नहीं हुआ। पाक्षिक हुआ। 'वचिस्वपि०' के द्वारा सम्प्रसारण होकर 'उतम्' रूप सिद्ध होता है।

अथ०—'उञ्' यह इस प्रकार का निपात प्रतिपदोक्त है। अतः यहाँ वेञ् धातु के स्थान पर आदेशस्वरूप प्राप्त लाक्षणिक का ग्रहण नहीं है। 'पद' का ग्रहण उत्तर शास्त्र के लिए है।

(3818) हलि सर्वेषाम् *22* (171)

हलि परतो भोभगोअघोअपूर्वस्य यकारस्य पदान्तस्य लोपो भवति सर्वेषामाचार्याणां मतेन। भो हसति। भगो हसति। अघो हसति। भो याति। भगो याति। अघो याति। वृक्षा हसन्ति। सर्वेषांग्रहणं शाकटायनस्यापि लोपो यथा स्यात्, लघुप्रयत्नतरो मा भूदिति।

अर्थ—भोः, भगोः, अघोः तथा अवर्ण है पूर्व में जिसके, ऐसे पदान्त यकार का लोप सभी आचार्यों के मत में होता है, हल् वर्ण परे रहते।

उदा० (1) भो हसति
भोस् हसति—रुत्व,
भोरु हसति—यकार,
भोय् हसति—यलोप।

(2) भगो हसति
भगोस् हसति—पूर्ववत्।

(3) अघो हसति
अघोस् हसति—पूर्ववत्।

(4) भो याति—पूर्ववत्।
(5) भगो याति
यकारलोप।

(6) अघो याति
पूर्ववत् यलोप।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(7) वृक्षा हसन्ति
वृक्षास् हसन्ति—रुत्व,
वृक्षारु हसन्ति—यकार आदेश, अवर्णपूर्वक यकार का हल् (हकार) परे रहते लोप हो गया।
सर्वेषा०—'सर्वेषाम्' का ग्रहण होने से शाकटायन के मत में भी लोप होता है। तब लघुप्रयत्नतर नहीं होता है।

(3819) मोऽनुस्वारः *23* (122)

मकारस्य पदान्तस्यानुस्वार आदेशो भवति हलि परतः। कुण्डं हसति। वनं हसति। कुण्डं याति। वनं याति। हलीत्येव-त्वमत्र, किमत्र। पदान्तस्येत्येव-गम्यते, रम्यते।

अर्थ—हल् वर्ण परे रहते पदान्त मकार के स्थान पर अनुस्वार आदेश होता है।

उदा० (1) कुण्डं हसति
कुण्डम् हसति—अनुस्वार।
(2) वनम् हसति (पूर्ववत्)।
(3) कुण्डं याति
कुण्डम् याति—हल् (यकार) परे है।
(4) वनं याति
वनम् याति—पूर्ववत्।
हली०—हल् परे रहते ही अनुस्वार होता है।
(5) त्वमत्र
त्वम् अत्र—अनुस्वार नहीं हुआ।
(6) किमत्र
किम् अत्र—पूर्ववत्।
पदान्त०—पदान्त मकार के स्थान पर ही अनुस्वार होता है।
(7) गम्यते
गम् त—कर्मवाच्य, लट्,
गम् यक् त—सार्वधातुक संज्ञा, सार्वधातुके यक्, हलन्त्यम्,
गम् य त—पदान्त में नहीं होने से मकार को अनुस्वार नहीं हुआ,
गम्यते—टित आत्मनेपदानां०
(8) रम्यते
रम् त—पूर्ववत्।

(3820) नश्चापदान्तस्य झलि *24* (123)

नकारस्य मकारस्य चापदान्तस्यानुस्वारादेशो भवति झलि परतः। पयांसि। सर्पींषि। धनूंषि। मकारस्य-आक्रंस्यते। आचिक्रंस्यते। अधिजिगांसते। अपदान्तस्येति किम्? राजन्भुङ्क्ष्व। झलीति किम्? रम्यते। गम्यते।

अर्थ—अपदान्त नकार तथा मकार को अनुस्वार होता है, झल् वर्ण परे रहते।

उदा० (क) नकारस्य—
(1) पयांसि
पयस् जस्—जश्शसोः शिः,
पयस् शि—शि सर्वनामस्थानम्, लशक्वतद्धिते,
पय न् स् इ—नपुंसकस्य झलचः,
पयान स् इ—'सान्तमहतः संयो०' से उपधादीर्घ, अपदान्त में नकार है, झल् वर्ण सकार परे है, अतः अनुस्वार हुआ।
(2) यशांसि
यशस् जस्—पूर्ववत्।
(3) सर्पींषि
सर्पिस् जस्—पूर्ववत् 'शि', नुम्,
सर्पिन् स् इ—उपधादीर्घ, अनुस्वार,
सर्पींषि—षत्व।
(4) धनूंषि (पूर्ववत्)।

(ख) मकारस्य—
(5) आक्रंस्यते
आ क्रम् त—लृट् शेषे च, 'आङ उद्गमने' से आत्मनेपद,
आ क्रम् स्य त—स्यतासी ललुटोः,
आक्रंस्यते—अनुस्वार, एत्व।
(6) आचिक्रंसते
आ क्रम् सन्—धातोः कर्मणः समा०, आङ उद्गमने,
आ क क्रम् स—सन्यङोः, हलादिः शेषः, कुहोश्चुः,
आ चि क्रम् स—सन्यतः, पूर्ववत् सनः,
आचिक्रं स—अनुस्वार, धातुसंज्ञा,
आचिक्रंस त—शप्, अतो गुणे, एत्व।
(7) अधिजिगांसते
अधि इङ् सन्—'इङश्च' से 'गम्' आदेश,
अधि गाम् स—'अज्झनगमां०' से दीर्घ,
अधि ग गाम् स—सन्यङोः, हलादिः शेषः, ह्रस्वः,
अधि जि गाम् स—कुहोश्चुः, सन्यतः,
अधिजिगांस—अनुस्वार, धातुसंज्ञा, शेष पूर्ववत्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपदान्त—नकार तथा मकार के स्थान पर अनुस्वार होता है।

(8) राजन् भुङ्क्ष्व

राजन्—पदसंज्ञा, पदान्त में नकार होने से अनुस्वार नहीं हुआ।

झल् परे रहते ही अनुस्वार होता है।

(9) रम्यते

रम् यक् त—कर्मवाच्य, सार्वधातुके यक्,

रम्यते—अपदान्त में मकार है, परन्तु परे झल् नहीं है, अतः अनुस्वार नहीं हुआ।

(10) गम्यते

पूर्ववत् अनुस्वार नहीं हुआ।

(3821) मो राजि समः क्वौ *25* (126)

समो मकारस्य मकार आदेशो भवति राजतौ क्विप्प्रत्ययान्ते परतः। सम्राट्। साम्राज्यम्। मकारस्य मकारवचनमनुस्वारनिवृत्त्यर्थम्। राजीति किम्? संयत्। सम इति किम्? किंराट्। क्वाविति किम्? संराजिता। संराजितुम्। संराजितव्यम्।

अर्थ—क्विप् प्रत्ययान्त राज् धातु के परे रहते सम् के मकार के स्थान पर मकार होता है।

उदा० (1) सम्राट्

सम् राज् क्विप्—'सत्सूद्विष०' से क्विप्,

सम् राज्—सर्वापहार लोप, अनुस्वार प्राप्त हुआ, मकार को मकार हुआ,

सम्राज् सु—प्रातिपदिक संज्ञा, सुलोप, पदसंज्ञा,

सम्राड्—'व्रश्चभ्रस्ज०' से षकार, झलां जशोऽन्ते,

सम्राट्—वाऽवसाने।

(2) साम्राज्यम्

सम्राज् ष्यञ्—पूर्ववत् 'सम्' के मकार को मकार हुआ, ब्राह्मणादि गण में पाठ होने से 'ष्यञ्',

साम्राज् य—अनुबन्धलोप, आदिवृद्धि, सु।

मकार के स्थान पर मकार का विधान अनुस्वार की निवृत्ति के लिए है।

राज् परे रहते ही मकार को मकार होता है।

(3) संयत्

सम् यत्—सम् पूर्वक यम् से क्विप्, 'अनुदात्तोप०' से मकार-लोप, 'ह्रस्वस्य पिति०' से 'तुक्', 'राज्' परे नहीं है, 'मोऽनुस्वारः' से अनुस्वार हुआ।

सम् के मकार को ही मकार होता है।

(4) किंराट्

किम् राज्—क्विप्, सर्वापहारलोप,

किंराज्—क्विप् प्रत्ययान्त 'राज्' परे है, परन्तु किम् का मकार नहीं है, अतः मकार आदेश नहीं हुआ, अनुस्वार हुआ;

किंराज् सु—सुलोप, पदसंज्ञा, शेष कार्य 'सम्राट्' की तरह।

क्विप् प्रत्ययान्त परे रहते ही मकार को मकार होता है।

(5) संराजिता

सम् राजिता—क्विप् प्रत्ययान्त 'राज्' परे न रहते मकार को मकार नहीं हुआ, 'मोऽनुस्वारः' से अनुस्वार।

(6) संराजितुम् (पूर्ववत्)।

(7) संराजितव्यम् (पूर्ववत्)।

(3822) हे मपरे वा *26* (127)

हकारे मकारपरे परतो मकारस्य वा मकार आदेशो भवति। किम् ह्लयति, किं ह्लयति। कथम् ह्लयति, कथं ह्लयति। *यवलपरे यवला वा*। यवलपरे हकारे मकारस्य यवला यथासंख्यं वा भवन्तीति वक्तव्यम्। किय्ँ ह्यः, किं ह्यः। किव्ँ ह्लयति, किं ह्लयति। किल्ँ ह्लादयति, किं ह्लादयति।

अर्थ—मकार है परे जिसके, ऐसे हकार के परे रहते मकार के स्थान पर मकार आदेश विकल्प से होता है।

उदा० (1) किं ह्लयति

किम् ह्लयति—हकार से परे मकार है, ऐसे हकार के परे रहते मकार को मकार हुआ, पक्ष में मकार नहीं हुआ, 'मोऽनुस्वारः' से अनुस्वार।

(2) किम् ह्लयति

पक्ष में मकार को मकार हुआ।

(3) कथं ह्लयति

अनुस्वार हुआ।

(4) कथम् ह्लयति

मकारपक्ष।

यवल०—यकारपरक, वकारपरक तथा लकारपरक हकार के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परे रहते मकार के स्थान पर यथासंख्य यकार, वकार तथा लकार आदेश विकल्प से होते हैं।

(5) किय्ँ ह्यः

किम् ह्यः—हकार से परे यकार है, इस हकार के परे रहते मकार के स्थान पर यकार हुआ, 'स्थानेऽन्तरतमः' से 'य्ँ' हुआ।

(6) किं ह्यः

पक्ष में यकार नहीं हुआ। 'मोऽनुस्वारः' से अनुस्वार हुआ।

(7) किव्ँ ह्लयति

किम् ह्लयति—वकारपरक हकार परे है, मकार को 'स्थानेऽन्तरतमः' से 'व्ँ' आदेश हुआ।

(8) किं ह्लयति

अनुस्वार हुआ।

(9) किल्ँ ह्लादयति

किम् ह्लादयति—मकार के स्थान पर 'ल्ँ' आदेश।

(10) किं ह्लादयति

अनुस्वार।

(3823) नपरे नः *27* (129)

नकारपरे हे परतः मकारस्य वा नकारादेशो भवति। किन् ह्नुते, किं ह्नुते। कथन् ह्नुते, कथं ह्नुते।

अर्थ—नकार है परे जिससे, ऐसे हकार के परे रहते मकार के स्थान पर विकल्प से नकार होता है।

उदा० (1) किन् ह्नुते

किम् ह्नुते—नकारपरक हकार परे है, मकार के स्थान पर नकार हुआ।

(2) किं ह्नुते

पक्ष में नकार नहीं हुआ। 'मोऽनुस्वारः' से अनुस्वार।

(3) कथन् ह्नुते

कथम् ह्नुते—नकार आदेश।

(4) कथं ह्नुते

नकार अभाव। मोऽनुस्वार।

(3824) ङ्णोः कुक्टुक् शरि *28* (130)

ङकारणकारयोः पदान्तयोः कुक्, टुक्-इत्येतावागमौ वा भवतः शरि परतः। प्राङ्क् शेते, प्राङ् शेते। प्राङ्क् षष्ठः, प्राङ् षष्ठः। प्राङ्क् साये, प्राङ् साये। णकारस्य-वण्ट् शेते, वण् शेते। पूर्वान्तकरणम्-प्राङ्क् छेते इत्यत्र छत्वार्थम्। 'शश्छोऽटि' (8.4.63) इति हि पदान्ताज्झय इति तद्विज्ञायते। इह मा भूत्-'पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन्' (वा०सं० 1.28)। प्राङ्क् साय इत्यत्रापि 'सात्पदाद्योः' (8.3.111) इति षत्वप्रतिषेधार्थं च। वण्ट् साय इत्यत्र च 'न पदान्ताट्टोरनाम्' (8.4.42) इति ष्टुत्वप्रतिषेधार्थम्।

अर्थ—पदान्त ङकार तथा णकार को विकल्प से (यथासंख्य) कुक् तथा टुक् आगम होते हैं, शर् वर्ण परे रहते।

कुक् तथा टुक् आगम कित् हैं। अतः अन्त में होते हैं।

उदा० (1) प्राङ्क् शेते

प्राङ्—'क्विन् प्रत्ययस्य कुः' से कुत्व हुआ है,
प्राङ् शेते—शर् (शकार) परे है, 'कुक्' हुआ,
प्राङ्क् शेते—अनुबन्धलोप।

(2) प्राङ् शेते

पक्ष में 'कुक्' नहीं हुआ।

(3) प्राङ्क् षष्ठः

प्राङ् षष्ठः—कुक् हुआ,
प्राङ् क् षष्ठः—अनुबन्धलोप।

(4) प्राङ् षष्ठः

'कुक्' नहीं हुआ।

(5) प्राङ् क् साये

प्राङ् साये—पूर्ववत् 'कुक्' हुआ।

(6) प्राङ् साये

'कुक्' नहीं हुआ।

(7) वण्ट् शेते

वण् शेते—'टुक्' हुआ, अनुबन्धलोप।

(8) वण् शेते

'टुक्' नहीं हुआ।

पूर्वान्त०—'प्राङ्क् छेते' यहाँ 'शश्छोऽटि' से छत्व करने के लिए पूर्वान्तकरण है। 'शश्छोऽटि' से पदान्त झय् से पर होता है। अतः यहाँ नहीं होता है—

(9) पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन्।

'प्राङ्क् साये' इस स्थल पर भी 'सात्पदाद्योः' से षत्वनिषेध के लिए है। 'वण् ट् साये' यहाँ 'न पदान्ताट्टोरनाम्' से ष्टुत्व के निषेध के लिए है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(3825) डः सि धुट् *29* (131)

डकारान्तात् पदादुत्तरस्य सकारादेः पदस्य वा धुडागमो भवति। श्वलिट्त्साये, श्वलिट् साये, मधुलिट्त्साये, मधुलिट् साये। परादिकरणम् 'न पदान्ताट्टोरनाम्' (8.4.42) इति ष्टुत्वप्रतिषेधार्थम्।

अर्थ—डकारान्त पद से उत्तर सकारादि पद को 'धुट्' आगम विकल्प से होता है।

उदा० (1) श्वलिट्त् साये

श्वलिट् साये—'धुट्' हुआ, टित् होने से आदि अवयव होता है,

श्वलिट् ध् साये—अनुबन्धलोप,

श्वलिट् त् साये—खरि च।

(2) श्वलिट् साये

'धुट्' नहीं हुआ।

(3) मधुलिट् त् साये

पूर्ववत् 'धुट्' हुआ।

(4) मधुलिट् साये

'धुट्' नहीं हुआ।

परादिकरण 'न पदान्ताट्टोरनाम्' से ष्टुत्व-प्रतिषेध के लिए है।

(3826) नश्च *30* (132)

नकारान्तात्पदादुत्तरस्य सकारस्य वा धुडागमो भवति। भवान्त्साये, भवान्साये, महान्त्सायेः महान्साये। धुटश्चर्त्वस्य चासिद्धत्वात् 'नश्छव्यप्रशान्' (8.3.7) इति रुत्वं न भवति।

अर्थ—नकारान्त पद से उत्तर सकार को 'धुट्' आगम विकल्प से होता है।

उदा० (1) भवान् त् साये

भवान् साये—पूर्ववत् 'धुट्' हुआ,

भवान् ध् साये—अनुबन्धलोप,

भवान् त् साये—खरि च।

(2) भवान् साये

'धुट्' नहीं हुआ।

(3) महान् त् साये

महान् साये—'धुट्' हुआ, खरि च।

(4) महान् साये

'धुट्' नहीं हुआ।

'धुट्' के चर्त्व के असिद्ध होने से 'नश्छव्यप्रशान्' से नकार को रुत्व नहीं होता है।

(3827) शि तुक् *31* (133)

नकारस्य पदान्तस्य शकारे परतो वा तुगागमो भवति। भवाञ्छेते। पूर्वान्तकरणं छत्वार्थम्। यद्येवम्, कुर्वञ्छेते इत्यत्र नकारस्यापदान्तत्वाण्णत्वं प्राप्नोति? तत्र समाधिमाहुः—'स्तोः श्चुना श्चुः' (8.4.40) इत्यत्र योगविभागः क्रियते—णत्वप्रतिषेधार्थम्, 'स्तोः श्चुना' णकारो न भवतीति, ततः 'श्चुः' इति।

अर्थ—पदान्त नकार को 'तुक्' आगम विकल्प से होता है, शकार परे रहते।

उदा० (1) भवाञ्छेते

भवान् शेते—सकार परे है, नकार को 'तुक्',

भवान् त् शेते—अनुबन्धलोप,

भवा ञ् च् शेते—'स्तोः श्चुना श्चुः', से तकार को चकार, नकार को ञकार,

भवाञ् च् छेते—'शश्छोऽटि' से पाक्षिक छकार। जहाँ छकार नहीं होता है, वहाँ 'भवाञ् च् शेते' बनता है। तुक् अभाव पक्ष में 'भवाञ् शेते' बनता है।

पूर्वान्त०—पूर्व को अन्त अवयव करने का प्रयोजन यह है कि छत्व हो जाय। यदि ऐसा है तो 'कुर्वञ् च्छेते' यहाँ पर भी छकार के अपदान्त होने से णत्व प्राप्त होता है। इसका समाधान इस प्रकार करते हैं—

'स्तोः श्चुना श्चुः' यहाँ योगविभाग किया जाता है। णत्व के निषेध के लिए है। 'स्तोः श्चुना' से णकार नहीं होता है। इसके पश्चात् 'श्चुः' होता है।

(3828) ङमो ह्रस्वादचि ङमुण्नित्यम् *32* (134)

ह्रस्वात्परो यो ङम् तदन्तात्पदादुत्तरस्याचो ङमुडागमो भवति नित्यम्। ङणनेभ्यो यथासंख्यं ङणना भवन्ति। ङकारान्तान् ङुट्—प्रत्यङ्ङास्ते। णकारान्ताण्णुट्—वण्णास्ते। वण्णवोचते। नकारान्तान्नुट्—कुर्वन्नास्ते, कुर्वन्नवोचत्। कृषन्नास्ते, कृषन्नवोचत्। ङम इति किम्? त्वमास्से। ह्रस्वादिति किम्? प्राङास्ते। भवानास्ते। अचीति किम्? प्रत्यङ्करोति। इह परमदण्डिनौ, परमदण्डिनेति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'उत्तरपदत्वे चापदादिविधौ' (परि०) इति प्रत्ययलक्षण-प्रतिषेधादुत्तरपदस्य पदत्वं नास्तीति ङमुण्न भवति। अथ वा-'उञि च पदे' (8.3.21) इत्यतः सप्तम्यन्तम् 'पदे' इत्यनुवर्त्तते, तेन अजादौ पदे ङमुड् भवति।

अर्थ—ह्रस्व वर्ण से उत्तर जो 'ङम्' तदन्त पद से उत्तर अच् को नित्य 'ङमुट्' आगम होता है। ङकार, णकार तथा नकार से उत्तर को यथासंख्य ङुट्, णुट् तथा नुट् आगम होते हैं।

उदा० (क) ङुट्—

(1) प्रत्यङ्ङास्ते
प्रत्यङ् आस्ते—'ङुट्' आगम हुआ,
प्रत्यङ् ङ् आस्ते—अनुबन्धलोप।

(ख) णुट्—

(2) वण्णास्ते
वण् आस्ते—'णुट्' आगम,
वण् ण् आस्ते—अनुबन्धलोप।

(3) वण्णवोचत्
वण् अवोचत्—पूर्ववत्।

(ग) नुट्—

(4) कुर्वन्नास्ते
कुर्वन् आस्ते—'नुट्' आगम,
कुर्वन् न् आस्ते—अनुबन्धलोप।

(5) कुर्वन्नवोचत्
कुर्वन् अवोचत्—पूर्ववत्।

(6) कृषन्नास्ते
कृषन् आस्ते—पूर्ववत् 'नुट्'।

(7) कृषन्नवोचत्
कृषन् अवोचत्—पूर्ववत्।

ङम इति०—ङमन्त से उत्तर अच् को आगम होता है।

(8) त्वम् आस्से
ह्रस्व वर्ण अकार से पर मकार है, जो ङम् नहीं है। अतः इससे उत्तर अच् आकार को आगम नहीं हुआ।

ह्रस्वा०—ह्रस्व वर्ण से उत्तर ङम्, तदन्त से उत्तर अच् को आगम होता है।

(9) प्राङ् आस्ते
ङकार 'ङम्' वर्ण है। तदन्त 'प्राङ्' से उत्तर अच् है; परन्तु ङकार ह्रस्व वर्ण से उत्तर नहीं है। अतः उत्तर अच् को आगम नहीं हुआ।

(10) भवानास्ते
भवान् आस्ते—पूर्ववत् आगम नहीं हुआ।

अचीति०—अच् को ही आगम होता है।

(11) प्रत्यङ्करोति
प्रत्यङ् करोति—ह्रस्व वर्ण अकार से उत्तर 'ङम्' वर्ण (ङकार) है, तदन्त 'प्रत्यङ्' पद से उत्तर ककार है, जो अच् नहीं है। अतः आगम नहीं हुआ।

इह०—निम्नलिखित स्थलों पर 'उत्तरपदत्वे चापदादिविधौ' से प्रत्ययलक्षणनिषेध से उत्तर पद का पदत्व नहीं होता है। अतः 'ङमुट्' नहीं होता है।

(12) परमदण्डिनौ। (13) पदमदण्डिना।

अथवा०—अथवा 'उञि च पदे' यहाँ से सप्तम्यन्त 'पदे' का अनुवर्त्तन है। अतः अजादि पद में 'ङमुट्' आगम होता है।

(3829) मय उञो वो वा *33* (108)

मय उत्तरस्य उञो वा वकारादेशो भवति अचि परतः। शमु अस्तु वेदिः, शम्वस्तु वेदिः (वा०सं० 23.44.)। तद्वस्य परेतः। किम्वावपनम् तदु अस्य परेतः, किमु आवपनम्। प्रगृह्यत्वादुञः प्रकृतिभावे प्राप्ते वकारो विधीयते। तस्यासिद्धत्वाद्धलीति 'मोऽनुस्वारः' (8.3.23) न भवति।

अर्थ—मय् से उत्तर 'उञ्' के स्थान पर वकार आदेश विकल्प से होता है, अच् परे रहते।

उदा० (1) शम्वस्तु
शम् उ अस्तु—वकार हुआ,
शम् व् अस्तु—रूप बना।

(2) शमु अस्तु
पक्ष में वकार नहीं हुआ है।

(3) तद्वस्य
वकार हुआ।

(4) तदु अस्य
वकार नहीं हुआ।

(5) किम्वा वपनम्
किमु आवपनम्—वकार हुआ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(6) किमु आवपनम्
वकार नहीं हुआ।

प्रगृह्य०—उञ् के प्रगृह्यसंज्ञक होने से प्रकृतिभाव के प्राप्त होने पर वकार आदेश का विधान किया जाता है। उसके असिद्ध होने से हल् के परे न रहने से 'मोऽनुस्वारः' से अनुस्वार की प्राप्ति नहीं होती है।

(3830) विसर्जनीयस्य सः *34* (138)

'खरि' इत्यनुवर्त्तते। विसर्जनीयस्य सकार आदेशो भवति खरि परतः। वृक्षश्छादयति। प्लक्षश्छादयति। वृक्षष्ठकारः। प्लक्षष्ठकारः। वृक्षस्थकारः। प्लक्षस्थकारः। वृक्षश्चिनोति। प्लक्षश्चिनोति। वृक्षष्टीकते। प्लक्षष्टीकते। वृक्षस्तरति। प्लक्षस्तरति।

अर्थ—'खरि' का अनुवर्त्तन है। 'खर्' परे रहते विसर्जनीय के स्थान पर सकार आदेश होता है।

उदा० (1) वृक्षश्छादयति
वृक्षः छादयति—'खर्' (छकार) परे है,
वृक्षस् छादयति—सकार,
वृक्षश् छादयति—स्तोः श्चुना श्चुः।

(2) प्लक्षश्छादयति
प्लक्षः छादयति—पूर्ववत्।

(3) वृक्षष्ठकारः
वृक्षः ठकारः—'खर्' (ठकार) परे है,
वृक्षस् ठकारः—सकार,
वृक्षष् ठकारः—ष्टुना ष्टुः।

(4) प्लक्षष्ठकारः (पूर्ववत्)।

(5) वृक्षस्थकारः
वृक्षः थकारः—'खर्' (थकार) परे है,
वृक्षस् थकारः—सकार।

(6) प्लक्षस्थकारः (पूर्ववत्)।

(7) वृक्षश्चिनोति
वृक्षः चिनोति—सकार,
वृक्षस् चिनोति—स्तोः श्चुना श्चुः।

(8) प्लक्षश्चिनोति (पूर्ववत्)।

(9) वृक्षष्टीकते
वृक्षः टीकते—सकार,
वृक्षस् टीकते—ष्टुना ष्टुः।

(10) प्लक्षष्टीकते (पूर्ववत्)।

(11) वृक्षस्तरति
वृक्षः तरति—सकार।

(12) प्लक्षस्तरति (पूर्ववत्)।

(3831) शर्परे विसर्जनीयः *35* (150)

शर्परे खरि परतो विसर्जनीयस्य विसर्जनीयादेशो भवति। शशः क्षुरम्। पुरुषः क्षुरम्। अद्भिः प्सातम्। वासः क्षौमम्। पुरुषः त्सरुः। 'घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम्' (ऋ० 10.10.3.1) 'न' इति वक्तव्ये विसर्जनीयस्य विसर्जनीयादेशविधानं विकारनिवृत्त्यर्थम्; तेन जिह्वामूलीयोपध्मानीयौ न भवतः।

अर्थ—शर् परक खर् परे रहते विसर्जनीय के स्थान पर विसर्जनीय होता है।

उदा० (1) शशःक्षुरम्
शशः क्षुरम्—विसर्जनीय से पर 'खर्' (ककार) है, उससे पर 'शर्' (षकार) वर्ण है,
शशः क्षुरम्—विसर्जनीय होता है।

(2) पुरुषःक्षुरम् (पूर्ववत्)।

(3) अद्भिः प्सातम्
पूर्ववत् विसर्जनीय को विसर्जनीय हुआ।

(4) वासः क्षौमम् (पूर्ववत्)।

(5) पुरुषः त्सरुः
पूर्ववत् विसर्जनीय।

(6) घनाघनः क्षोभणः (पूर्ववत्)।

न इति०—'न' कहना चाहिए था। विसर्जनीय के स्थान पर विसर्जनीय आदेश का विधान विकार की निवृत्ति के लिए है। अतः जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय नहीं होते हैं।

(3832) वा शरि *36* (151)

विसर्जनीयस्य विसर्जनीयादेशो वा भवति शरि परे। वृक्षःशेते, वृक्षश्शेते। प्लक्षःशेते, प्लक्षश्शेते। वृक्षःषण्डे, वृक्षष्षण्डे। वृक्षःसाये, वृक्षस्साये। *खपरे शरि वा लोपो वक्तव्यः*। वृक्षा स्थातारः, वृक्षाः स्थातारः, वृक्षास्स्थातारः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—विसर्जनीय के स्थान पर विसर्जनीय आदेश विकल्प से होता है, शर् परे रहते।

उदा० (1) वृक्षः शेते
वृक्षः शेते—शर् (शकार) परे है, विसर्जनीय हुआ।

(2) वृक्षश्शेते
वृक्षस् शेते—पक्ष में विसर्जनीय नहीं हुआ, 'विसर्जनीयस्य सः' के द्वारा सकार,
वृक्षश् शेते—स्तोः श्चुना श्चुः।

(3) प्लक्षःशेते
विसर्जनीय हुआ।

(4) प्लक्षश्शेते
पक्ष में सकार, श्चुत्व।

(5) वृक्षःषण्डे
विसर्जनीय हुआ।

(6) वृक्षष्षण्डे
पक्ष में विसर्जनीय नहीं हुआ, सकार, ष्टुत्व।

(7) वृक्षःसाये
विसर्जनीय।

(8) वृक्षस्साये
पक्ष में विसर्जनीय का अभाव।

खपरे०—खर् है परे जिसके, ऐसे शर् के परे रहते विसर्ग का लोप विकल्प से होता है।

(9) वृक्षा स्थातारः
वृक्षाः स्थातारः—खर् (थकार) परे है, खर् परक शर् (सकार) के परे रहते लोप हुआ।

(10) वृक्षाः स्थातारः
पक्ष में लोप नहीं हुआ।

(11) वृक्षास्स्थातारः
लोप अभाव पक्ष में विसर्जनीय के स्थान पर 'वा शरि' से विकल्प से विसर्जनीय हुआ। विसर्जनीय अभाव पक्ष में सकार हुआ।

(3833) कुप्वोः ≍क≍पौ च *37* (142)

कवर्गपवर्गयो परतो विसर्जनीयस्य यथासंख्यं ≍क≍प इत्येतावादेशौ भवतः, चकाराद्विसर्जनीयश्च। वृक्ष≍करोति, वृक्षः करोति। वृक्ष≍खनति, वृक्षः खनति। वृक्ष≍पचति, वृक्षः पचति, वृक्ष≍फलति, वृक्षः फलति। कपा-वुच्चारणार्थौ। जिह्वामूलीयोपध्मानीयावेतावादेशौ। 'विस-र्जनीयस्य सः' (8.3.34) इत्येतस्मिन्नाप्राप्ते इदमारभ्यते इत्येतस्य बाधकम्। 'शर्परे विसर्जनीयः' (8.3.35) इत्येतत्तु न बाध्यते–वासः क्षौमम्, अद्भिः प्सातम्। 'पूर्व-त्रासिद्धे नास्ति विप्रतिषेधोऽभावादुत्तरस्य' इति 'शर्परे विसर्जनीय' (8.3.35) इत्येतदेव भवति। केचित्तु एतदर्थं योगविभागं कुर्वन्ति–'कुप्वोः', शर्परयोः विसर्जनीयस्य विसर्जनीय आदेशो भवति किमर्थमिदम्? '≍क≍पौ च' इति वक्ष्यति–तद्बाधनार्थमिति।

अर्थ—कवर्ग तथा पवर्ग के परे रहते विसर्जनीय के स्थान पर यथासंख्य जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय आदेश होते हैं एवं विसर्जनीय भी होता है।

उदा० (1) वृक्ष≍करोति
वृक्षः करोति—जिह्वामूलीय।

(2) वृक्षः करोति
विसर्जनीय हुआ।

(3) वृक्ष≍खनति
जिह्वामूलीय।

(4) वृक्षः खनति
विसर्जनीय।

(5) वृक्ष≍पचति
उपध्मानीय।

(6) वृक्षः पचति
विसर्जनीय।

(7) वृक्षः≍फलति
उपध्मानीय।

(8) वृक्षः फलति
विसर्जनीय।

कपा०—'क' तथा 'प' उच्चारणार्थ हैं। ये आदेश जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय हैं।

विसर्ज०—'विसर्जनीयस्य सः' से सकार प्राप्त होने पर यह विधान किया गया है। अतः यह इसका बाधक है। 'शर्परे विसर्जनीयः' इसका बाध नहीं होता है। यथा—

वासः क्षौमम्, अद्भिः प्सातम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'पूर्वत्राऽसिद्धे नास्ति विप्रतिषेधेऽभावादुत्तरस्य' से 'शपरे विसर्जनीयः' से यह ही होता है।

केचित्तु०—कुछ विद्वान इसके लिए योगविभाग करते हैं—

'कुप्वोः' इस प्रकार एक योग हुआ। शर् परक विसर्जनीय के स्थान पर विसर्जनीय आदेश होता है। यह किसलिए है ?

'≍क≍पौ च' यह दूसरा योग हुआ। उसके बाध के लिए है।

(3834) सोऽपदादौ *38* (152)

सकार आदेशो भवति विसर्जनीयस्य कुप्वोरपदाद्योः परतः पाशकल्पककाम्येषु। 'याप्ये पाशप्' (5.3.57)–पयस्पाशम्। 'ईषदपरिसमाप्तौ कल्पप्' (5.3.67)–पयस्कल्पम्, यशस्कल्पम्। 'प्रागिवात्कः' (5.3.70)–पयस्कम्, यशस्कम्। 'काम्यच्च' (3.1.9)–पयस्काम्यति। यशस्काम्यति। अपदादाविति किम् ? पय≍कामयते। पय≍पिबति। *सोऽपदादावित्यनव्ययस्येति वक्तव्यम्*। इह मा भूत्–प्रातः कल्पम्। पुनः कल्पमिति। *रोः काम्ये नियमार्थम्*। रोरेव काम्ये, नान्यस्येति नियमार्थं वक्तव्यम्। पयस्काम्यति। यशस्काम्यति। इह मा भूत्–गीः काम्यति। धूः काम्यति। *उपध्मानीयस्य कवर्गे परतः सकार आदेशो भवतीति वक्तव्यम्*। किं प्रयोजनम् ? 'उब्जिरुपध्मानीयोपधः पठ्यते' इति दर्शने अभ्युद्गः, समुद्ग इति यथा स्यात्।

अर्थ—अपदादि कवर्ग तथा पवर्ग के परे रहते विसर्जनीय के स्थान पर सकार आदेश होता है, पाश, कल्पक तथा काम्य शब्दों के परे रहते।

उदा० (1) पयस्पाशम्
याप्ये पाशप्। सकार हुआ।

(2) पयस्कल्पम्
ईषदपरिसमाप्तौ कल्पप्। सकार।

(3) यशस्कल्पम् (पूर्ववत्)।

(4) पयस्कम्
प्रागिवात्कः। सकार।

(5) यशस्कम् (पूर्ववत्)।

(6) पयस्काम्यति
'काम्यच्च' से 'काम्यच्' हुआ।

(7) यशस्काम्यति (पूर्ववत्)।

अपदा०—अपदादि में ही सकार होता है।

(8) पय≍कामयते
पयः कामयते—पदादि में ककार है। सकार नहीं हुआ।

(9) पय≍पिबति (पूर्ववत्)।

सोऽपदा०—अपदादि में जो कल्प आदि शब्द, उनके परे रहते अव्यय के विसर्ग को सकार आदेश नहीं होता है।

(10) प्रातःकल्पम्
सकार नहीं हुआ।

(11) पुनःकल्पम्
सकार नहीं हुआ।

रोः काम्ये०—'रु' के स्थान पर ही सकार होता है, काम्य शब्द परे रहते; अन्य को नहीं। यह नियमार्थ विधान है।

(12) पयस्काम्यति
पयः काम्यति—सकार हुआ।

(13) यशस्काम्यति (पूर्ववत्)।

निम्नलिखित में नहीं होता है—

(14) गीः काम्यति
'रु' का विसर्जनीय नहीं है। अतः सकार नहीं होता है।

(15) धूः काम्यति (पूर्ववत्)।

उपध्मा०—कवर्ग परे रहते उपध्मानीय के स्थान पर सकार आदेश होता है। इसका क्या प्रयोजन है ? उब्ज् धातु का उपध्मानीयोपध पाठ है।

इस मत में अभ्युद्गः तथा समुद्गः इत्यादि रूप सिद्ध होते हैं।

(16) अभ्युद्गः
उब्ज् घञ्—'हलश्च', उपध्मानीय के स्थान पर सकार करने पर, जश्त्व से दकार,
उद् ज् अ—'चजोः कुः घि०' से कुत्व,
अभि उद् ग् अ सु—यण्।

(17) समुद्गः (पूर्ववत्)।

(3835) इणः षः *39* (153)

'अपदादौ' इति वर्त्तते। इण उत्तरस्य विसर्जनीयस्य षकारादेशो भवति कुप्वोरपदाद्योः परतः, पाशकल्पककाम्येषु। पाश–सर्पिष्पाशम्। यजुष्पाशम्। कल्प–

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सर्पिष्कल्पम्, यजुष्कल्पम्। क–सर्पिष्कम्, यजुष्कम्। काम्य–सर्पिष्कामयति, यजुष्कामयति। 'अपदादौ' इत्येव–अग्निः करोति, वायुः करोति। अग्निः पचति, वायुः पचति। 'कुप्वोः' इत्येव–सर्पिस्ते, यजुस्ते। इत उत्तरम् 'सः' इति, 'इणः षः' इति च वर्तते; तत्र इणः परो यो विसर्जनीयस्तस्य षकारो भवति, अन्यस्य सकारो भवति।

अर्थ—'अपदादौ' का अनुवर्त्तन है। इण् से उत्तर विसर्जनीय के स्थान पर षकार आदेश होता है, अपदादि पाश, कल्पक तथा काम्य शब्दों के परे रहते।

उदा० (1) सर्पिष्पाशम्
सर्पिः पाश—सकार प्राप्त था। षकार हुआ।

(2) यजुष्कल्पम्
यजुः कल्पः—पूर्ववत्।

(3) सर्पिष्कम् (पूर्ववत्)।

(4) यजुष्कम् (पूर्ववत्)।

(5) सर्पिष्काम्यति
सर्पिः काम्यति—पूर्ववत्।

(6) यजुष्काम्यति (पूर्ववत्)।

अपदा०—अपदादि में ही होता है।

अग्निः करोति, वायुः करोति—यहाँ ककार पदादि में वर्तमान है। अतः षकार नहीं हुआ।
अग्निः पचति, वायुः पचति—पूर्ववत्।

कुप्वोः—कवर्ग तथा पवर्ग के परे रहते ही षकार होता है।

सर्पिस्ते, यजुस्ते—यहाँ कवर्ग अथवा पवर्ग परे नहीं है। अतः षकार नहीं हुआ।

इत उत्तर०—इससे आगे 'सः' 'इणः षः' इनका अनुवर्त्तन है। जो विसर्जनीय उसके स्थान पर षकार होता है, अन्य के स्थान पर सकार होता है।

(3836) नमस्पुरसोर्गत्योः *40* (154)

नमस्, पुरस्–इत्यतयोर्गतिसंज्ञकयोर्विसर्जनीयस्य सकारादेशो भवति कुप्वोः परतः। नमस्कर्ता। नमस्कर्तुम्। नमस्कर्तव्यम्। गत्योरिति किम्? पूः, पुरौ, पुरः करोति।

अर्थ—गतिसंज्ञक नमस् व पुरस् शब्दों के विसर्जनीय के स्थान पर सकार आदेश होता है, कवर्ग तथा पवर्ग के परे रहते।

उदा० (1) नमस्कर्त्ता
नमः कर्त्ता—सकार हुआ।

(2) नमस्कर्त्तुम् (पूर्ववत्)।

(3) नमस्कर्त्तव्यम् (पूर्ववत्)।

गत्यो०—गतिसंज्ञक नमस् तथा पुरस् के विसर्जनीय के स्थान पर ही सकार होता है।

(4) पूः
पुर् की गतिसंज्ञा नहीं है। इसको सकार नहीं हुआ।

(3837) इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य *41* (155)

इकारोपधस्य उकारोपधस्य चाप्रत्ययस्य विसर्जनीयस्य षकार आदेशो भवति कुप्वोः परतः। निर्दुर्बहिराविश्चतुर्सप्रादुस्। निस्–निष्कृतम्, निष्पीतम्। दुस्–दुष्कृतम्, दुष्पीतम्। बहिस्–बहिष्कृतम्, बहिष्पीतम्। आविस्–आविष्कृतम्, आविष्पीतम्। चतुर्–चतुष्कृतम्, चतुष्कपालम्। चतुष्कण्टकम्, चतुष्कलम्। प्रादुस्–प्रादुष्कृतम्, प्रादुष्पीतम्। अप्रत्ययस्येति किम्? अग्निः करोति, वायुः करोति। मातुः करोति, पितुः करोति। अत्र 'रात्सस्य' (8.2.24) इति सकारलोपे कृते रेफस्य यो विसर्जनीयः, तस्याप्रत्ययविसर्जनीयत्वात् षत्वं प्राप्नोति? कस्कादिषु (8.3.48) तु भ्रातुष्पुत्रग्रहणं ज्ञापकम्–'एकादेशनिमित्तत्वात् षत्वप्रतिषेधस्य' (म० भा०)। *पुम्मुहुसोः प्रतिषेधो वक्तव्यः*। पुंस्कामा। मुहुस्कामा। नैष्कुल्यम्, दौष्कुल्यम्, दौष्पुरुष्यम्। नि३ष्कुलम्, दु३ष्कुलम्। दु३ष्पु-रुषः। बहिरङ्गलक्षणयोर्वृद्धिप्लुतयोरसिद्धत्वात् षत्वं प्रवर्त्तते।

अर्थ—इकार उपधा वाले, उकार उपधा वाले शब्द का जो विसर्जनीय, यदि वह प्रत्यय का न हो तो उसके स्थान पर षकार आदेश होता है, कवर्ग तथा पवर्ग के परे रहते।

उदा० (क) इदुपधस्य—
(1) निष्कृतम्
निस्—इदुपध है। इसके विसर्जनीय को षकार हुआ।

(2) निष्पीतम् (पूर्ववत्)।

(3) आविष्कृतम्
आविस्—इदुपध है। षकार हुआ।

(4) आविष्पीतम् (पूर्ववत्)।

(5) बहिष्कृतम्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पूर्ववत् षकार।

(6) बहिष्पीतम् (पूर्ववत्)।

(ख) उदुपधस्य—

(7) दुष्कृतम्
दुस्—उदुपध है। विसर्जनीय को षकार हुआ।

(8) दुष्पीतम् (पूर्ववत्)।

(9) चतुष्कृतम्
चतुष्—उदुपध है।

(10) चतुष्कपालम् (पूर्ववत्)।

(11) चतुष्कण्टकम् (पूर्ववत्)।

(12) चतुष्कलम् (पूर्ववत्)।

(13) प्रादुष्कृतम्
षकार हुआ।

(14) प्रादुष्पीतम्
पूर्ववत् षकार।

अप्रत्यय०—जो **प्रत्यय का नहीं** हो, ऐसे विसर्जनीय के स्थान पर षकार होता है।

(15) अग्निः करोति
अग्निस्—इदुपध है परन्तु इसका विसर्जनीय 'सु' का है, जो प्रत्यय है। अतः षकार नहीं हुआ।
इसी प्रकार—वायुः करोति।

मातुः—मातुः करोति, पितुः करोति—इन स्थलों पर 'रात्सस्य' से सकार का लोप करने पर रेफ के स्थान पर जो विसर्जनीय होता है, प्रत्यय का न होने से उसके स्थान पर षकार आदेश प्राप्त होता है। कस्कादिगण में 'भ्रातुष्पुत्र' शब्द का पाठ ज्ञापक है कि एकादेश का निमित्त होने से षत्व का प्रतिषेध होता है।

पुम्मु०—पुम् तथा मुहुस् के विसर्जनीय के स्थान पर षकार नहीं होता है।

(16) पुंस्कामा
यहाँ षकार नहीं हुआ। 'पुमः खय्यम्परे' से 'रु', उसे विसर्जनीय।

(17) मुहुश्च स्कामा (पूर्ववत्)।

(18) नैष्कुल्यम्
निष्कुल ष्यञ्—आदिवृद्धि। षकार हुआ है।

(19) दौष्पुरुष्यम्
पूर्ववत् षकार हुआ।

(20) नि३ष्कुलम्
'गुरोरनृत०' से प्लुत आदेश। ह्रस्व इकार उपधा में न रहने से प्राप्त नहीं था।

(21) दु३ष्कुलम् (पूर्ववत्)।

(22) दु३ष्पुरुषः (पूर्ववत्)।

बहिर०—बहिरंगलक्षण वृद्धि तथा प्लुत आदेशों के असिद्ध होने से षत्व प्रवृत्त होता है।

(3838) तिरसोऽन्यतरस्याम् *42* (156)

तिरसो विसर्जनीयस्यान्यतरस्यां सकारादेशो भवति कुप्वोः परतः। तिरस्कर्ता। तिरस्कर्तुम्। तिरस्कर्तव्यम्। तिरःकर्ता। तिरःकर्तुम्। तिरःकर्त्तव्यम्। 'गतेः' इत्येव- तिरः कृत्वा काण्डं गतः।

अर्थ—तिरस् के विसर्जनीय के स्थान पर सकार आदेश विकल्प से होता है; कवर्ग तथा पवर्ग परे रहते।

उदा० (1) तिरस्कर्त्ता
तिरस् कर्त्तृ—ससजुषो रुः, खरवसानयो०,
तिरः कर्त्तृ सु—सकार।

(2) तिरःकर्त्ता
पक्ष में सकार नहीं हुआ।

(3) तिरस्कर्त्तव्यम्
सकारपक्ष।

(4) तिरःकर्त्तव्यम्
सकार अभाव।

गतेः—गतिसंज्ञक तिरस् के विसर्जनीय को सकार होता है।

(5) तिरःकृत्वा काण्डं गतः
सकार नहीं हुआ।

(3839) द्विस्त्रिश्चतुरिति कृत्वोऽर्थे *43* (157)

'षः' इति सम्बध्यते। द्विस्, त्रिस्, चतुर्-इत्येतेषां कृत्वोऽर्थे वर्त्तमानानां विसर्जनीयस्य षकार आदेशो भवति अन्यतरस्यां कुप्वोः परतः। द्विष्करोति, द्विःकरोति। त्रिष्करोति, त्रिःकरोति। चतुष्करोति, चतुःकरोति। द्विष्पचति, द्विःपचति। त्रिष्पचति, त्रिःपचति। चतुष्पचति, चतुःपचति। कृत्वोऽर्थ इति किम्। चतुष्कपालम्, चतुष्कण्टकम्। पूर्वेण नित्यं षत्वं भवति। 'इदुदुपधस्य'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(8.3.41)–इत्यस्यानुवृत्तौ सत्यां कृत्वोऽर्थविषयेण च पदेन विसर्जनीये विशेष्यमाणे 'द्विस्त्रिश्चतुरिति' शक्यमकर्त्तुम्।

कृत्वसुजर्थे षत्वं ब्रवीति कस्माच्चतुष्कपाले मा।
षत्वं विभाषया भूत्ननु सिद्धं तत्र पूर्वेण ॥1॥

सिद्धे ह्ययं विधत्ते चतुरः षत्वं यदापि कृत्वोऽर्थे।
लुप्ते कृत्वोऽर्थीये रेफस्य विसर्जनीयो हि ॥2॥

एवं सति त्विदानीं द्विस्त्रिश्चतुरित्यनेन किं कार्यम्।
अन्यो हि नेदुदुपधः कृत्वोऽर्थः कश्चिदप्यस्ति ॥3॥

अक्रियमाणे ग्रहणे विसर्जनीयस्तदा विशेष्येत।
चतुरो न सिध्यति तथा रेफस्य विसर्जनीयो हि ॥4॥

तस्मिंस्तु क्रियमाणे युक्तं चतुरो विशेषणं भवति।
प्रकृतं पदं तदन्तं तस्यापि विशेषणं न्याय्यम् ॥5॥

एवं तु क्रियमाणे द्विस्त्रिश्चतुर्ग्रहणे चतुःशब्दस्य कृत्वोऽर्थेऽपि वर्त्तमानस्य पूर्वेणैव नित्यं षत्वं स्यात्। पूर्वत्रासिद्धेः नास्ति प्रतिषेधः; अभावादुत्तरस्य (जै०प० 67)।

अर्थ—'षः' का सम्बन्ध है। कृत्व अर्थ में वर्त्तमान द्विस्, त्रिस् तथा चतुर् शब्दों के विसर्जनीय के स्थान पर षकार आदेश विकल्प से होता है, कवर्ग तथा पवर्ग परे रहते।

उदा० (1) द्विष्करोति
द्विस् करोति—'द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच्' से 'सुच्' हुआ,
द्विः करोति—रुत्व, विसर्जनीय, षकार।

(2) द्विः करोति
पक्ष में षकार नहीं हुआ।

(3) त्रिष्करोति
त्रिस् करोति—पूर्ववत् षकार।

(4) त्रिः करोति
षकार अभाव।

(5) चतुष्करोति
चतुस् करोति—सुच्, रुत्व,
चतुः करोति—विसर्जनीय, षत्व।

(6) चतुः करोति
षकार नहीं हुआ।

(7) द्विष्पचति
द्विस् पचति—पूर्ववत् षकार।

(8) द्विः पचति
षकार अभाव।

(9) त्रिष्पचति
पकार हुआ।

(10) त्रिः पचति
षकार अभाव।

(11) चतुष्पचति
षकार।

(12) चतुः पचति
षकार अभाव।

कृत्वो०—कृत्व अर्थ में वर्त्तमान द्विस् आदि शब्दों के विसर्जनीय को षत्व होता है।

(13) चतुष्कपालम्
चत्वारि कपालान्यस्य—समास हुआ,
चतुर् कपाल—'खरवसानयो०' से विसर्जनीय,
चतुः कपाल—कृत्व अर्थ में 'चतुर्' नहीं है। अतः षत्व का विकल्प नहीं हुआ, 'इदुदुपधस्य०' से नित्य षत्व हुआ।

(14) चतुष्कण्टकम्
चत्वारि कण्टकानि यस्य—पूर्ववत् नित्य षत्व।

इदुदु०—'इदुदुपधस्य०' इसका अनुवर्त्तन होने पर कृत्व के अर्थ के विषय से तथा पद से विसर्जनीय के विशेषित होने पर 'द्विस्त्रिश्चतुरिति' का पाठ उचित नहीं है।

कारिकाओं का अर्थ इस प्रकार है—

कृत्व०—कृत्वसुच् अर्थ में विसर्जनीय के स्थान पर षकार आदेश का विकल्प किसलिए कहा गया है?

(समा०) 'चतुष्कपाल' आदि स्थलों पर षत्व का विकल्प न हो—इसलिए कृत्वसुच् अर्थ में षत्व का विकल्प कहा गया है। यदि ऐसा न कहा जाता तो 'चतुष्कपाल' में भी षत्व का विकल्प प्राप्त होता है।

इस पर शंका है कि भले ही षत्व का विकल्प हो जाता, परन्तु पूर्व सूत्र के द्वारा षत्व का श्रवण नित्य हो जायेगा। जब इससे षत्व नहीं होता है, तब भी पूर्व सूत्र 'इदुदुपधस्य०' से 'चतुष्कपाल' में षत्व सिद्ध है।

सिद्धे ह्ययं०—'इदुदुपधस्य' के द्वारा नित्य षत्व के प्राप्त होने पर यह षत्व के विकल्प का विधान करता है। उसके अप्राप्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

न रहने पर अप्राप्ति न्याय से यह इसका बाधक न हो। 'पूर्व सूत्र के द्वारा षत्व सिद्ध है' यह जो कहा गया है, उसका निराकरण हो गया है। अतः विभाषा की निवृत्ति के लिए कृत्वसुच् अर्थ का ग्रहण है।

यह भले ही हो। कृत्वसुच् के अर्थ की विवक्षा में 'सुच्' प्रत्यय करने पर, उसके स्थान पर जब विसर्जनीय होता है, तब पूर्व सूत्र से प्राप्त नहीं होता है। यहाँ 'अप्रत्ययस्य' से निषेध होता है। अतः जो कहा गया कि—'सिद्धे ह्ययं विधत्ते' यह उपपन्न नहीं होता है। तब इस विकल्प के द्वारा नित्य षत्व कैसे बाधित हो ?

यदापि०—'सिद्धे ह्ययं विधत्ते चतुरः षत्वम्' इसका सम्बन्ध 'चतुर्' के साथ है। इसका अर्थ इस प्रकार होता है—न केवल जब कृत्व अर्थ वृत्ति वाला चतुर् शब्द हो, तब ही पूर्व सूत्र के द्वारा प्राप्त होने पर इस षत्वविकल्प का विधान करता है, अपितु जब कृत्व अर्थ होता है, तब भी यह षत्वविकल्प का विधान करता है।

लुप्ते०—जब 'रात्सस्य' के द्वारा कृत्वोऽर्थीय के लुप्त हो जाने पर अप्रत्यय रेफ के स्थान पर विसर्जनीय होता है, तब कृत्वोऽर्थ में भी पूर्व सूत्र के द्वारा नित्य षत्व प्राप्त होने पर इस षत्वविकल्प का विधान करता है। इस प्रकार कृत्वोऽर्थ में तथा अकृत्वोऽर्थ में सर्वत्र पूर्व सूत्र के द्वारा षत्व के प्राप्त न होने पर विकल्प का विधान है। अतः उसका बाधक होगा। इस प्रकार कृत्वोऽर्थ का ग्रहण न होने की दशा में 'चतुष्कपाल' में षत्व का विकल्प प्रसक्त होता है। अतः उसकी निवृत्ति के लिए कृत्व के अर्थ का ग्रहण किया गया है।

एवं०—यदि कृत्व अर्थ का ग्रहण किया जाता है तो 'द्विस्त्रिश्चतुर्' इसके ग्रहण की क्या आवश्यकता है ? यह योग उचित नहीं है।

(समा०) यदि 'द्विस्०' का योग नहीं होगा तो 'पञ्चकृत्वः करोति' इत्यादि स्थलों पर भी षत्वविकल्प होने लगेगा। अतः 'द्विस्त्रिश्चतुर्' इस योग के द्वारा इसकी निवृत्ति हो जाती है।

अन्यो०—'इदुदुपधस्य' का अनुवर्त्तन है। 'कृत्वोऽर्थे' कहा जा रहा है। कृत्व अर्थ में द्विस् आदि से अतिरिक्त कोई इदुदुपध शब्द विद्यमान नहीं है। अतः इस सामर्थ्य से द्विस् आदि को भी हो जायेगा; अन्य को नहीं। अतः द्विस् आदि का ग्रहण व्यर्थ है।

अक्रियमाणे०—यदि 'द्विस्' आदि का ग्रहण न किया जाय तो विसर्जनीय के प्रकृत होने से कृत्व के अर्थ के ग्रहण से वह ही विशेषित होता है। अर्थात् कृत्व के अर्थ में जो विसर्जनीय वर्त्तमान है—ऐसा।

(शङ्का) परन्तु ऐसा अर्थ करने पर क्या दोष है ?

चतुरो०—ऐसा करने पर 'चतुर्' शब्द को षत्व का विकल्प प्राप्त नहीं होता है। किस कारण ? कारण कि 'चतुर् सुच्' इस स्थिति में 'रात्सस्य' से सुच् के सकार का लोप होने पर प्रकृति के अवयवभूत रेफ के स्थान पर विसर्जनीय होता है, इस विसर्जनीय को षत्वविकल्प सिद्ध नहीं है। यह दोष है।

तस्मिंस्तु०—(शङ्का) इसके करने पर (अर्थात् द्विस् त्रिस् चतुर् इस योग के कर लेने पर) भी यह दोष प्रसक्त होता ही है।

(समा०) 'द्विस्' आदि के ग्रहण किये जाने पर कृत्वोऽर्थ का ग्रहण 'चतुर्' शब्द का विशेषण न्याय्य होता है। कृत्वोऽर्थ के लुप्त हो जाने पर भी चतुर् शब्द कृत्व के अर्थ में वर्त्तमान रहता है; अतः द्विस् आदि के उपादीयमान रहते यह दोष नहीं होता है।

प्रकृतं—पद की तदन्तता विसर्जनीय के द्वारा विशेष्य होने से प्राप्त होती है। यह व्याप्तिन्याय से प्राप्त होता है। विसर्जनीय के विशेषित किये जाने पर सर्वत्र चतुर् शब्द के षत्व का विकल्प सिद्ध नहीं होता तथा पद के विशेषित किये जाने पर यह होता है। तब इस प्रकार कहेंगे—कृत्व के अर्थ में जो पद वर्त्तमान है। पद के विशेषित किये जाने पर चतुर् शब्द को षत्व सिद्ध होता है। कृत्वोऽर्थ के लुप्त हो जाने पर भी 'चतुर्' यह पद कृत्वोऽर्थ में वर्त्तमान रहता है। अतः प्रकृत सूत्र में 'द्विस्' आदि के ग्रहण की आवश्यकता नहीं है।

एवं०—'द्विस्' आदि का ग्रहण किये जाने पर कृत्व के अर्थ में वर्त्तमान 'चतुर्' शब्द को पूर्व सूत्र के द्वारा नित्य षत्व हो जायेगा। पूर्वत्राऽसिद्ध में निषेध भी नहीं है; उत्तर शास्त्र का अभाव होने से।

(3840) इसुसोः सामर्थ्ये *44* (158)

'षः' इति सम्बद्ध्यते। इस्, उस्–इत्येतयोर्विसर्जनीयस्यान्यतरस्यां षकारादेशो भवति सामर्थ्ये कुप्वोः परतः। सर्पिष्करोति, सर्पिः करोति। यजुष्करोति, यजुः करोति।

सामर्थ्य इति किम् ? तिष्ठतु सर्पिः पिब त्वमुदकम्।

सामर्थ्यमिह व्यपेक्षा; न पुनरेकार्थीभावः, उभयं वा॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—'षः' यहाँ सम्बन्ध है। इस् तथा उस् का जो विसर्जनीय, उसके स्थान पर षकार आदेश विकल्प से होता है, कवर्ग तथा पवर्ग परे रहते।

उदा० (1) सर्पिष्करोति
सर्पिः करोति—षकार हुआ।

(2) सर्पिः करोति
पक्ष में षकार नहीं हुआ।

(3) यजुष्करोति
पूर्ववत् षकार।

(4) यजुः करोति
षत्व नहीं हुआ।

सामर्थ्य०—सामर्थ्य होने पर ही षत्वविकल्प होता है।

(5) तिष्ठतु सर्पिः पिब त्वमुदकम्
यहाँ सामर्थ्य नहीं है। अतः षत्व नहीं हुआ।

यहाँ व्यपेक्षा सामर्थ्य का आश्रय किया जाता है; एकार्थीभाव का नहीं तथा उभय भी नहीं। अतः समास में षत्वविकल्प नहीं होता है। यथा—

परम सर्पिःकुण्डिका।

(3841) नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्य *45* (159)

'इसुसोः' इति वर्तते। समासविषये इसुसोर्विसर्जनीयस्यानुत्तरपदस्थस्य नित्यं षत्वं भवति कुप्वोः परतः। सर्पिष्कुण्डिका। धनुष्कपालम्। सर्पिष्यानम्। धनुष्फलम्। अनुत्तरपदस्थस्येति किम्? परमसर्पिकुण्डिका। परमधनुःकपालम्। पूर्वसूत्रेण विकल्पोऽप्यत्र न भवति। एतदेव 'अनुत्तरपदस्थस्य' इति वचनं ज्ञापकम्–इसुसोः 'प्रत्ययग्रहणे यस्मात्स विहितस्तदादेः' (पु०प०) इत्ययं नियमो न भवति। तेन वाक्येऽपि–परमसर्पिष्करोति, परमसर्पिः करोति, 'इसुसोः सामर्थ्ये:' (8.3.44) इत्येतद् भवति। व्यपेक्षा च तत्र सामर्थ्यमाश्रितमिति समासे न भवति।

अर्थ—'इसुसोः' का अनुवर्त्तन है। समास के विषय में इस् तथा उस् का विसर्जनीय, जो उत्तर पद में स्थित नहीं है, उस विसर्जनीय के स्थान पर नित्य षत्व होता है, कवर्ग तथा पवर्ग परे रहते।

उदा० (1) सर्पिष्कुण्डिका
सर्पिषः कुण्डिका—षष्ठी समास, सुप् लोप,
सर्पिः कुण्डिका—विसर्जनीय, षत्व।

(2) धनुष्कपालम्
पूर्ववत् षत्व।

(3) सर्पिष्यानम्
पूर्ववत् षकार आदेश।

(4) धनुष्फलम्
षत्व हुआ है।

अनुत्तर०—विसर्जनीय उत्तर पद में स्थित न हो तो षत्व होता है।

(5) परमसर्पिःकुण्डिका
परमसर्पिस्—'सन्महत्०' से कर्मधारय समास,
परम सर्पि स् कुण्डिका—षष्ठी समास, परम शब्द की अपेक्षा से 'सर्पिस्' शब्द उत्तरपद हुआ, इसमें स्थित होने से विसर्जनीय को षत्व नहीं हुआ।

(6) परमधनुःकपालम्
पूर्ववत् षत्व अभाव।

पूर्व सूत्र में यहाँ षत्व का विकल्प भी नहीं होता।

एतदेव०—'अनुत्तरपदस्थस्य' यह वचन ज्ञापक है कि प्रत्यय के ग्रहण में जिससे वह विहित है, तदादि को होता है—यह नियम इस् तथा उस् से नहीं होता है। तव वाक्य में भी 'इसुसोः सामर्थ्ये' से षत्व होता है। यथा—

परमसर्पिष्करोति, परमसर्पिःकरोति।

जहाँ व्यपेक्षा सामर्थ्याश्रित है, वहाँ समास में नहीं होता है।

(3842) अतः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वनव्ययस्य *46* (160)

अकारादुत्तरस्य अनव्ययविसर्जनीयस्य समासेऽनुत्तरपदस्थस्य नित्यं सकारादेशो भवति कृ, कमि, कंस, कुम्भ, पात्र, कुशा, कर्णी–इत्येतेषु परतः। कृ–अयस्कारः। पयस्कारः। कमि–अयस्कामः। पयस्कामः। कंस–अयस्कंसः। पयस्कंसः। कुम्भ–अयस्कुम्भः। पयस्कुम्भः। अयस्कुम्भी, पयस्कुम्भीत्यत्रापि भवति; 'प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणं भवति' (व्या०प०) इति। पात्र–अयस्पात्रम्। पयस्पात्रम्। अयस्पात्री। पयस्पात्री। कुशा–अयस्कुशा। पयस्कुशा। कर्णी–अयस्कर्णी। पयस्कर्णी। शुनस्कर्ण इत्ययं तु कस्कादिषु द्रष्टव्यः। अत इति किम्?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गी:कार:। धू:कार:। तपकरणं किम्? भा:करणम्। भाष्कर इत्ययं तु कस्कादिषु द्रष्टव्य:। अनव्ययस्येति किम्? श्व:कार:। पुन:कार:। 'समासे' इत्येव-यश: करोति। यश: कामयते। 'अनुत्तरपदस्थस्य' इत्येव-परमपय:कार। परमपय:काम:।

अर्थ—अवर्ण से उत्तर अव्ययवर्जित विसर्जनीय जो समास में उत्तर पद में स्थित नहीं है, के स्थान पर नित्य सकार आदेश होता है; कृ, कमि, कंस, कुम्भ, पात्र, कुशा तथा कर्णी—इन शब्दों से परे रहते।

उदा० (क) कृपरत:—

(1) अयस्कार:

अयस् कृ अण्—'कर्मण्यण्' से 'अण्', हलन्त्यम्,

अय: कार् अ—'अचो ञ्णिति' से वृद्धि, विसर्जनीय, सकार।

(2) पयस्कार:

पयस् कृ अण्—पूर्ववत्।

(ख) कमि परत:—

(3) अयस्काम:

अयस् कम् अण्—'आयादय आर्धधातुके वा' से पाक्षिक 'णिङ्', णिङ् अभाव पक्ष,

अयस् काम सु—अत उपधाया:, शेष कार्य पूर्ववत्।

(4) पयस्काम:

पयस् कम् अण्—पूर्ववत्।

(ग) कंसपरत:—

(5) अयस्कंस:

अयस् कंस—षष्ठी समास,

अय: कंस—रुत्व, विसर्जनीय,

अयस्कंस सु—सकार।

(6) पयस्कंस: (पूर्ववत्)।

(घ) कुम्भपरत:—

(7) अयस्कुम्भ:

अयसो विकार: कुम्भ:—'शाकपार्थिवादीना०' से मध्यमपद-लोपी समास; षष्ठी समास भी सम्भव है,

अयस् कुम्भ—पूर्ववत् सकार।

(8) पयस्कुम्भ: (पूर्ववत्)।

(9) अयस्कुम्भी

अयस्कुम्भ ङीष्—'षिद्गौरादिभ्यश्च' से 'स्त्रियाम्' के अधिकार में 'ङीष्' हुआ,

अयस्कुम्भी सु—अकारलोप।

प्रातिपदिक का ग्रहण करने में लिंगविशिष्ट का भी ग्रहण होता है।

(10) पयस्कुम्भी (पूर्ववत्)।

(ङ) पात्रपरत:—

(11) अयस्पात्रम्

अयस् पात्र—षष्ठी समास,

अय: पात्र—रुत्व, विसर्जनीय, सकार, सु।

(12) पयस्पात्रम् (पूर्ववत्)।

(13) अयस्पात्री

अयस्पात्र ङीष्—'पात्र' शब्द 'ष्ट्रन्' प्रत्ययान्त है, 'षिद् गौरादिभ्यश्च' से 'ङीष्' होता है,

अयस्पात्र् ई सु—अनुबन्धलोप, अकारलोप।

(14) पयस्पात्री (पूर्ववत्)।

(च) कुशापरत:—

(15) अयस्कुशा

अयस् कुश टाप्—पूर्ववत् विसर्जनीय को सकार, यहाँ अयो-विकार विवक्षित नहीं है, अत: जानपदादि सूत्र से 'ङीष्' नहीं होता है, सु।

(16) पयस्कुशा (पूर्ववत्)।

(छ) कर्णीपरत:—

(17) अयस्कर्णी

अय इव कर्णावस्या:—समास हुआ,

अयस्कर्ण ङीष्—'नासिकोदर०' से 'ङीष्',

अयस्कर्णी सु—विभक्तिकार्य।

(18) पयस्कर्णी (पूर्ववत्)।

शुन०—(शङ्का) सूत्र में ईकारान्त 'कर्णी' शब्द का ग्रहण होने से 'शुनस्कर्ण' में विसर्जनीय को सकार किससे होता है?

(समा०) 'शुनस्कर्ण' शब्द का पाठ कस्कादिगण में होने से सकार होता है।

अत:—ह्रस्व अकार से उत्तर विसर्जनीय के स्थान पर ही सकार होता है।

(19) गी:कार:

गीर् कार—'खरवसानयो०' से विसर्जनीय हुआ, 'कार' परे है; परन्तु ह्रस्व अकार से पर न होने से विसर्जनीय के स्थान पर सकार नहीं हुआ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(20) धूःकारः

धूर् कार—पूर्ववत्।

तपर०—ह्रस्व अकार से उत्तर विसर्जनीय को सकार होता है।

(21) भाः करणम्

भास् करण—विसर्जनीय, करण शब्द परे है, विसर्जनीय से पूर्व अवर्ण है परन्तु ह्रस्व नहीं है, सकार नहीं हुआ,

भाः करण सु—अतोऽम्।

भास्कर०—'भास्कर' शब्द का कस्कादि गण में पाठ होने से सकार हुआ है।

अनव्य०—अव्ययवर्जित का जो विसर्जनीय, उसके स्थान पर सकार होता है।

(22) श्वः कारः

श्वस् कार—विसर्जनीय, ह्रस्व अकार से उत्तर विसर्जनीय है, इससे पर 'कार' शब्द है परन्तु विसर्जनीय अव्यय का है, सकार नहीं हुआ।

(23) पुनःकारः (पूर्ववत्)।

समासे०—समास में ही विसर्जनीय को सकार होता है।

(24) यशःकरोति। (25) यशःकामयते।

इन स्थलों पर समास न होने से विसर्जनीय को सकार नहीं हुआ।

अनुत्तर०—उत्तर पद में विसर्जनीय स्थित हो तो सकार नहीं होता है।

(26) परमपयःकारः

'पयस्' शब्द उत्तर पद है। इसके विसर्ग को सकार नहीं होता है।

(27) परमपयःकामः

पूर्ववत् पयस् उत्तर पद में विसर्जनीय स्थित है। इससे पर 'काम' शब्द है, तदपि सकार नहीं हुआ।

(3843) अधःशिरसी पदे *47* (161)

अधस्, शिरस्–इत्येतयोर्विसर्जनीयस्य समासेऽनुत्तरपदस्थस्य सकार आदेशो भवति पदशब्दे परतः। अधस्पदम्। शिरस्पदम्। अधस्पदी। शिरस्पदी। 'समासे' इत्येव–अधःपदम्। 'अनुत्तरपदस्थस्य' इत्येव–परमशिरःपदम्। अधस्पदमिति मयूरव्यंसकादित्वात् (2.1.72) समासः।

अर्थ—समास में अधस् तथा शिरस्—इन शब्दों के विसर्जनीय को सकार होता है, 'पद' परे रहते, यदि विसर्जनीय उत्तर पद में न हो।

उदा० (1) अधस्पदम्

अधस् पद—समास, रुत्व, विसर्जनीय,

अधस् पद—सकार, सु।

(2) शिरस्पदम् (पूर्ववत्)।

(3) अधस्पदी

स्त्रीत्व में।

(4) शिरस्पदी (पूर्ववत्)।

समासे०—समास में ही विसर्जनीय को सकार होता है।

(5) अधःपदम्

समास न होने से सकार नहीं हुआ।

अनुत्तर०—उत्तर पद में स्थित विसर्जनीय को सकार नहीं होता है।

(6) परमशिरःपदम्

'शिरस्' शब्द उत्तर पद में स्थित है। इसके विसर्जनीय को सकार नहीं हुआ।

'अधस्पदम्' में मयूरव्यंसकादि से समास होता है।

(3844) कस्कादिषु च *48* (144)

'कस्क'–इत्येवमादिषु च विसर्जनीयस्य सकारः, षकारो वा यथायोगमादेशो भवति कुप्वोः परतः। कस्कः। कौतस्कुतः 'कुत आगतः' (4.3.74) इत्यण्। भ्रातुष्पुत्रः। शुनस्कर्णः। सद्यस्कालः। सद्यस्क्रीः। क्रीणातेरयं सम्पदादित्वात् (का०वा०) क्विप्प्रत्ययः, तत्र भवः क्रतुः–साद्यस्क्रः। कांस्कान्–'कानाम्रेडिते' (8.3.12) इति रुत्वमत्र। सर्पिष्कुण्डिका, धनुष्कपालम्, बर्हिष्पूलम्, यजुष्पात्रमित्येषां पाठः–उत्तरपदस्थस्यापि षत्वं यथा स्यादिति। परमसर्पिःफलमित्येवमादिप्रत्युदाहरणादिति पारायणिका आहुः। भाष्ये, वृत्तौ 'नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्य' (8.3.45) इत्यत्र परमसर्पिः कुण्डिकेत्येतदेव प्रत्युदाहरणम्। अयस्काण्डः। मेदस्पिण्डः। अविहितलक्षणोपचारः कस्कादिषु द्रष्टव्यः।

अर्थ—'कस्क' आदि शब्दों में विसर्जनीय के स्थान पर यथायोग सकार तथा षकार आदेश होता है, कवर्ग तथा पवर्ग परे रहते।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उदा० (1) कस्कः
किम् सु—किमः कः,
कस् कस्—वीप्सा अर्थ में द्विर्वचन,
कः कस्—विसर्जनीय, सकार।

(2) कौतस्कुतः
किम् तसिल्—पञ्चम्यास्तसिल्,
कु तस्—हलन्त्यम्, उपदेशेऽजनु०, 'कु तिहोः' से 'कु' आदेश,
कुतस् कुतस्—वीप्सा अर्थ में द्विर्वचन,
कुतस् कुतस् अण्—'तत आगतः' अर्थ में अण्, आदिवृद्धि,
कौतस् कुत् अ—'अव्ययानां भमात्रे०' से टिलोप,
कौतः कुत—विसर्जनीय, सकार,
कौतस्कुतः—प्रातिपदिक संज्ञा, सु।

(3) भ्रातुष्पुत्रः
भ्रातुस् पुत्र—समास, 'ऋतो विद्यायोनि०' से अलुक्,
भ्रातुष् पुत्र—विसर्जनीय, षकार, सु।

(4) शुनस्कर्णः
शुनस् कर्ण—संज्ञा अर्थ में 'षष्ठ्या आक्रोशे' से अलुक्,
शुनः कर्ण—विसर्जनीय, सकार, सु।

(5) सद्यस्कालः
पूर्ववत् सकार।

(6) सद्यस्क्रीः (पूर्ववत्)।
सम्पदादि होने से क्री धातु से क्विप् प्रत्यय होता है।

(7) साद्यस्क्रः
सद्यस्क्री—'तत्र भवः' अर्थ में प्रत्यय हुआ।

(8) कांस्कान्
'कानाम्रेडिते' से यहाँ रुत्व होता है।

(9) सर्पिष्कुण्डिका। (10) धनुष्कपालम्। (11) बर्हिष्पूलम्। (12) यजुष्पात्रम्—इन शब्दों का पाठ है, ताकि उत्तर पदस्थ विसर्जनीय के स्थान पर भी सकार हो जाय।

(13) परमसर्पिःफलम्
यह प्रत्युदाहरण है। सकार नहीं हुआ।

भाष्य तथा वृत्ति में 'नित्यं समासेऽनुत्तर०' इसका प्रत्युदाहरण 'परमसर्पिःकुण्डिका' दिखाया है।

(14) अयस्काण्डः। (15) मेदस्पिण्डः।
कस्कादि गण के आकृतिगण होने से यहाँ सकार होता है।

(3845) छन्दसि वाऽप्राम्रेडितयोः *49*
(3634)

छन्दसि विषये विसर्जनीयस्य वा सकारादेशो भवति कुप्वोः परतः, प्रशब्दमाम्रेडितं च वर्जयित्वा। अयःपात्रम्, अयस्पात्रम्। विश्वतः पात्रम्, विश्वतस्पात्रम्। उरुणःकारः, उरुणस्कारः। अप्राम्रेडितयोरिति किम्? 'अग्निः प्रविद्वान्' (अथ० 5.26.1)। 'पुरुषः पुरुषस्परि' (मै० 2.7.15.214)। 'सूर्यरश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात्' (ऋ० 10.139.1)। 'स नः पावकः'–(ऋ० 1.12.10) इत्येवमादिषु 'सर्वे विधयश्छन्दसि विकल्प्यन्ते' (पु०प०) इति सत्वं न भवति।

अर्थ—वेद के विषय में विसर्जनीय के स्थान पर सकार आदेश विकल्प से होता है, कवर्ग तथा पवर्ग परे रहते; परन्तु 'प्र' शब्द तथा आम्रेडित संज्ञक शब्द के परे रहते नहीं होता है।

उदा० (1) अयस्पात्रम्
सकार हुआ।

(2) अयः पात्रम्
पक्ष में सकार नहीं हुआ।

(3) विश्वतस्पात्रम्
सकार आदेश।

(4) विश्वतः पात्रम्
सकार अभाव।

(5) उरुणस्कारः
सकार हुआ।

(6) उरुणः सकारः
सकार नहीं हुआ।

अप्राम्रे०—'प्र' शब्द तथा आम्रेडितसंज्ञक के परे रहते सकार नहीं होता है।

(7) अग्निः प्रविद्वान्
सकार नहीं हुआ।

(8) पुरुषः पुरुषः परि
द्वितीय 'पुरुष' शब्द की 'तस्य परमाम्रेडितम्' से आम्रेडित संज्ञा हुई, इसके परे रहते सकार नहीं हुआ।

सूर्य०—'सर्वे विधयश्छन्दसि विकल्प्यन्ते' से निम्नलिखित स्थलों पर सकार नहीं होता है।

सूर्यरश्मिहरिकेशः पुरस्तात्। स नः पावकः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(3846) कः करत्करतिकृधिकृतेष्वनदितेः *50* (3635)

कः, करत्, करति, कृधि, कृत-इत्येतेषु परतः अनदितेर्विसर्जनीयस्य सकारादेशो भवति छन्दसि विषये। कः-विश्वतस्कः। करत्-विश्वतस्करत्। करति-पयस्करति। कृधि-'उरुणस्कृधि' (ऋ० 8.75.11)। कृत-सदस्कृतम्। अनदितेरिति किम्? 'यथा नो अदितिः करत्' (ऋ० 1.43.2)।

अर्थ—वेद में यदि अदिति शब्द का विसर्जनीय न हो तो उसके स्थान पर सकार आदेश होता है, कः, करत्, करति, कृधि तथा कृत शब्दों के परे रहते।

उदा० (1) विश्वतस्कः
विश्वतस् क—विसर्जनीय, सकार।

(2) विश्वतस्करत्
विश्वतः करत्—विसर्जनीय।

(3) पयस्कारः
पयः कारः—पूर्ववत्।

(4) उरुणस्कृधि
उरुणः कृधि—विसर्जनीय।

(5) सदस्कृतम्
सदः कृतम्—पूर्ववत्।

अनदिते०—अदिति शब्द के विसर्जनीय को सकार नहीं होता है।

(6) अदितिःकरत्
विसर्जनीय नहीं हुआ।

(3847) पञ्चम्याः परावध्यर्थे *51* (3636)

'छन्दसि' इत्येव। पञ्चमीविसर्जनीयस्य सकारादेशो भवति परौ परतः अध्यर्थे। 'दिवस्परि प्रथमं जज्ञे' (ऋ० 10.45.1)। 'अग्निर्हिमवतस्परि' (अथ० 4.9.9)। 'दिवस्परि' (ऋ० 1.121.10)। महस्परि। पञ्चम्या इति किम्? 'अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुम्' (ऋ० 6.75.14)। पराविति किम्? 'एभ्यो वा एतल्लोकेभ्यः प्रजापतिः समैरयत्।' अध्यर्थ इति किम्? 'दिवः स्पृथिव्याः पर्योज उद्भृतम्' (ऋ० 6.47.27)। अत्र परिः सर्वतोभावे, अध्यर्थः उपरिभावः।

अर्थ—वेद के विषय में 'अधि' के अर्थ में वर्त्तमान जो 'परि' शब्द, उसके परे रहते पञ्चमी के विसर्ग को सकार होता है।

उदा० (1) दिवस्परि (ऋ० 10.45.1)
दिवः परि—'दिवः' पञ्चम्यन्त पद है। 'परि' अधि के अर्थ में है। सकार हो गया है।

(2) हिमवतस्परि (अथ० 4.9.9)
पूर्ववत्।

पञ्चम्या०—पञ्चमी के विसर्ग को ही सकार होता है।

(3) भोगैः पर्येति (ऋ० 6.75.14)
यहाँ विसर्ग को सकार नहीं हुआ।

पराविति० परि शब्द परे रहते सकार होता है।

(4) एभ्यो वा एतल्लोकेभ्यः प्रजापतिः समैरयत्
यहाँ नहीं हुआ।

अध्यर्थे—अधि अर्थ में जो 'परि' शब्द, उसके परे रहते सकार होता है।

(5) दिवः पृथिव्याः पर्योज (ऋ० 6.47.27)
'पृथिव्याः' पञ्चम्यन्त है। इससे परे 'परि' शब्द है। परन्तु 'परि' शब्द सर्वतोभाव अर्थ में है। विसर्जनीय को सकार नहीं हुआ।

(3848) पातौ च बहुलम् *52* (3637)

पातौ च धातौ परतः पञ्चमीविसर्जनीयस्य बहुलं सकार आदेशो भवति छन्दसि विषये। 'दिवस्पातु' (ऋ० 10.158.1)। राज्ञस्पातु। न च भवति-परिषदः पातुः।

अर्थ—वेद के विषय में संहिता में 'पा' धातु के परे रहते पञ्चमी के विसर्ग को बहुलता से सकार होता है।

उदा० (1) दिवस्पातु
सकार हुआ।

(2) राज्ञस्पातु
सकार हुआ।

(3) परिषदः पातु
सकार नहीं हुआ।

(3849) षष्ठ्याः पतिपुत्रपृष्ठपारपदपयस्पोषेषु *53* (3638)

षष्ठीविसर्जनीयस्य सकारादेशो भवति पति, पुत्र, पृष्ठ,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पार, पद, पयस्, पोष-इत्येतेषु परतः छन्दसि विषये। 'वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये' (ऋ० 10.81.7)। 'पुत्र-दिवस्पुत्राय सूर्याय' (ऋ० 10.37.1)। पृष्ठ-दिवस्पृष्ठे धावमानं सुपर्णम् (अथ० 13.2.37)। पार-'अगन्म तमसस्पारम्' (वा०सं० 12.73)। पद-इलस्पदे समिध्यसे (ऋ० 10.191.1)। पयस्-'सूर्यं चक्षुर्दिवस्पयः'। पोष-'रायस्पोषं यजमानेषु धत्तम्' (ऋ० 10.122.8)। षष्ठ्या इति किम्? मनुः पुत्रेभ्यो दायं व्यभजत्।

अर्थ—वेद के विषय में पति, पुत्र, पृष्ठ, पार, पद, पयस् और पोष शब्दों के परे रहते षष्ठी के विसर्ग को सकार होता है।

उदा० (1) वाचस्पतिम् (ऋ० 10.81.7)
सकार हुआ।

(2) दिवस्पुत्राय (ऋ० 10.37.1)
दिवः पुत्राय।

(3) दिवस्पृष्ठे (शौ०सं० 13.2.37)
दिवः पृष्ठे।

(4) तलसस्पारम् (भा०सं० 12.73)
तलसः पारम्।

(5) इडस्पदे (ऋ० 10.191.1)
इडः पदे।

(6) दिवस्पयः
दिवः पयः।

(7) रायस्पोषम् (ऋ० 8.59.7)
रायः पोषम्।

षष्ठी के विसर्ग को ही सकार होता है।
मनुः पुत्रेभ्यः—सकार नहीं हुआ।

(3850) इडाया वा *54* (3639)

इडायाः षष्ठीविसर्जनीयस्य वा सकार आदेशो भवति पत्यादिषु परतश्छन्दसि विषये। इडायास्पतिः, इडायाः पति। 'इडायास्पुत्रः' (ऋ० 3.29.3), इडायाः पुत्रः। इडायास्पृष्ठम्, इडायाः पृष्ठम्। इडायास्पारम्, इडायाः पारम्। 'इडायास्पदम्' (वा०सं० 4.22), इडायाः पदम् (तै०सं० 1.2.51)। इडायास्पयः, इडायाः पयः। इडायास्पोषम्, इडायाः पोषम्।

अर्थ—वेद के विषय में पति, पुत्र, पृष्ठ, पार, पद, पयस् और पोष शब्द परे रहते 'इडा' के षष्ठी विभक्ति के विसर्ग को विकल्प से सकार होता है।

उदा० (1) इडायास्पतिः
सकार हुआ।

(2) इडायाः पतिः
पक्ष में सकार अभाव।

(3) इडायास्पुत्रः
सकार।

(4) इडायास्पुत्रः
सकार अभाव।

(5) इडायास्पृष्ठम्
सकार आदेश।

(6) इडायाः पृष्ठम्
सकार आदेश अभाव।

(7) इडायास्पारम्
सकार आदेश।

(8) इडायाः पारम्
सकार अभाव।

(9) इडायास्पदम्
सकार हुआ।

(10) इडायाः पदम्
सकार अभाव।

(11) इडायास्पदः
सकार हुआ।

(12) इडायाः पदः
सकार अभाव।

(13) इडायास्पोषम्
सकार आदेश।

(14) इडायाः पोषम्
सकार अभाव।

(3851) अपदान्तस्य मूर्धन्यः *55* (210)

पदाधिकारो निवृत्तः। 'अपदान्तस्य' इति, 'मूर्धन्यः' इति चैतदधिकृतं वेदितव्यमापादपरिसमाप्तेः। वक्ष्यति-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'आदेशप्रत्यययोः' (8.3.59)। सिषेव। सुष्वाप। अग्निषु। वायुषु। अपदान्तस्येति किम्? अग्निस्तत्र, वायुस्तत्र। 'ष' इत्येव सिद्धे मूर्धन्यग्रहणं ढकारार्थम्-अकृढ्वम्, चकृढ्वे।

अर्थ—पदाधिकार की निवृत्ति हो गई है। जो पदान्त में नहीं है, उसके स्थान पर मूर्धन्य आदेश होता है—यह अधिकार जानना चाहिए। यह अधिकार पाद की समाप्ति (पा० 8.3.119) पर्यन्त चलता है। आगे कहा जायेगा—आदेशप्रत्यययोः।

उदा० (1) सिषेव
सेव् णल्—लिट्, तिप्, णल् आदेश,
से सेव् अ—द्वित्व, हलादिः शेषः,
सि सेव् अ—ह्रस्वः, मूर्धन्य हुआ।

(2) सुष्वाप
ष्वप् → स्वप्,
स्वप् णल्—द्वित्व,
सु स्वाप् अ—सम्प्रसारण, अत उपधायाः,
सु ष्वाप् अ—मूर्धन्य आदेश।

(3) अग्निषु
अग्नि सुप्—मूर्धन्य।

(4) वायुषु (पूर्ववत्)।

अपदान्त०—जो पदान्त में नहीं है, उसे मूर्धन्य आदेश होता है।

(5) अग्निस्तत्र
पदान्त में विसर्जनीय है। इसके सकार को मूर्धन्य नहीं हुआ।

(6) वायुस्तत्र (पूर्ववत्)।

ष इत्ये०—'षः' के द्वारा ही सिद्ध होने पर भी 'मूर्धन्य' का ग्रहण उत्तर शास्त्र के लिए है। यथा—

अकृढ्वम्, चकृढ्वे।

(3852) सहेः साडः सः *56* (335)

सहेर्धातोः साड्रूपस्य यः सकारस्तस्य मूर्धन्य आदेशो भवति। जलाषाट्। तुराषाट्। पृतनाषाट्। सहेरिति किम्? सह डेन वर्तते सडः, तस्यापत्यं साडिः। साड्ग्रहणं किम्? यत्रास्यैतद्रूपं तत्र यथा स्यात्, इ मा भूत्-जलासाहम्। तुरासाहम्। स इति किम्? आकारस्य मा भूत्।

अर्थ—सह् धातु का जो साड्रूप, उसके सकार के स्थान पर मूर्धन्य आदेश होता है।

उदा० (1) जलाषाट्
जलं सहते—भजो ण्विः, छन्दसि सहः,
जल सह् ण्वि—चुटू, उपदेशेऽजनु०, अपृक्त एकाल्०, वेरपृक्तस्य,
जल साह्—'अत उपधायाः' से उपधावृद्धि,
जलासाड्—'अन्येषामपि दृश्यते' से दीर्घ, सु, हल्ङ्याब्भ्यो०, पदसंज्ञा, हो ढः, झलां जशोऽन्ते,
जलाषाट्—मूर्धन्य, वाऽवसाने।

(2) तुराषाट्
तुर सह् ण्वि—पूर्ववत् सर्वापहार लोप,
तुराषाढ्—सभी कार्य पूर्ववत्।

(3) पृतनाषाट्
पृतना सह्—पूर्ववत् मूर्धन्य आदि।

सहेरि०—सह् धातु का जो साड् रूप, उसके सकार को मूर्धन्य आदेश होता है।

(4) साडिः
सह डेन वर्त्तते—समास, प्रातिपदिक संज्ञा,
सड सु—विसर्जनीय।
सडस्याऽपत्यम्—तस्याऽपत्यम्, 'अत इञ्' से 'इञ्' प्रत्यय,
सड इञ्—हलन्त्यम्, आदिवृद्धि,
साडि सु—'साड्' यह साड्रूप है; परन्तु सह धातु का नहीं है, अतः इसके सकार को मूर्धन्य नहीं होता है।

साड् ग्र०—सह् धातु का जो साड् रूप, उसके सकार को षकार होता है। जहाँ पर इस धातु का 'साड्' ऐसा रूप होता है, वहाँ पर ही मूर्धन्य आदेश होता है। अतः निम्नलिखित में मूर्धन्य नहीं होता है—

(5) जलासाहम्
जल सह्—पूर्ववत् ण्वि, सर्वापहार लोप,
जलासाह्—पूर्व पद का दीर्घत्व, 'अत उपधायाः' से उपधा-वृद्धि,
जलासाह् अम्—प्रातिपदिक संज्ञा, 'साड्' यह सह् धातु का है, परन्तु 'साड्' रूप नहीं है। अतः इसके सकार को षकार नहीं होता है।

(6) तुरासाहम्
पूर्ववत् षकार नहीं हुआ है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स इति०—सकार के स्थान पर मूर्धन्यादेश होता है, ताकि 'साड्' के आकार के स्थान पर मूर्धन्य न हो।

(3853) इण्कोः *57* (335)

'इण्कोः' इत्येतदधिकृतं वेदितव्यम्। इत उत्तरं यद्वक्ष्यामः, इणः कवर्गाच्चेत्येवं तद्वेदितव्यम्। वक्ष्यति-'आदेशप्रत्यययोः' (8.3.59)। सिषेव। सुष्वाप। अग्निषु। वायुषु। कर्तृषु। गीर्षु। धूर्षु। वाक्षु। त्वक्षु। इण्कोरिति किम्? दास्यति। असौ।

अर्थ—'इण्कोः' इस पद का अधिकार जानना चाहिए। इससे आगे जो भी कहा जायेगा वह इण् वर्ण से उत्तर तथा कवर्ग से उत्तर होता है—ऐसा जानना चाहिए। आगे कहा जायेगा—आदेशप्रत्यययोः।

उदा० (1) सिषेव। (2) सुष्वाप। (3) अग्निषु। (4) वायुषु। (5) कर्तृषु।

इनकी सिद्धि पा० 8.3.59 पर देखें।

(6) गीर्षु

गिर् सुप्—दीर्घ, इण् वर्ण (रेफ) से उत्तर प्रत्यय के सकार को मूर्धन्य आदेश हुआ।

(7) धूर्षु

धुर् सुप्—पूर्ववत्।

(8) वाक्षु

वाच् सुप्—हलन्त्यम्,
वाक् सु—चोः कुः,
वाक् षु—मूर्धन्य।

(9) त्वक्षु

त्वच् सुप्—पूर्ववत्।

इण्को०—इण् वर्ण तथा कवर्ग से उत्तर (आदेश तथा प्रत्यय के) सकार को मूर्धन्य आदेश होता है।

(10) दास्यति

दा ति—ऌट् शेषे च,
दा स्यति—स्यतासी ऌलुटोः, 'स्य' प्रत्यय है, यह आकार से उत्तर है जो इण् वर्ण नहीं है। अतः सकार को षकार नहीं हुआ।

(11) असौ

अदस् सु—'अदस औ सुलोपश्च' से प्रत्यय (सु) का लोप तथा आकार अन्तादेश, 'तदोः सः साव०' से सकार, अस औ—'स' आदेशस्वरूप है, यह आकार से उत्तर है, जो इण् वर्ण नहीं है। मूर्धन्य नहीं हुआ।

(3854) नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि *58* (434)

नुम्व्यवायेऽपि, विसर्जनीयव्यवायेऽपि, शर्व्यवायेऽपि इण्कोरुत्तरस्य सकारस्य मूर्धन्यादेशो भवति। व्यवायशब्दः प्रत्येकमभिसम्बद्ध्यते। नुम्व्यवाये तावत्-सर्पींषि, यजूंषि, हवींषि। विसर्जनीयव्यवाये-सर्पिःषु, यजुःषु, हविःषु। शर्व्यवाये-सर्पिष्षु, यजुष्षु, हविष्षु। नुमादिभिः प्रत्येकं व्यवाये षत्वमिष्यते, न समस्तैः। तेनेह न भवति-निंस्से, निंस्स्व इति। 'णिसि चुम्बने' (धा०पा० 1026)-इत्येतस्यैतद्रूपम्। अत्र हि नुमा, सकारेण, शरा च व्यवधानम्।

अर्थ—नुम् का व्यवधान होने पर भी, विसर्जनीय का व्यवधान होने पर भी तथा शर् वर्ण का व्यवधान होने पर भी इण् तथा कवर्ग से उत्तर सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। 'व्यवाय' शब्द का प्रत्येक के साथ सम्बन्ध है।

उदा० (क) नुम्व्यवाये—

(1) सर्पींषि

सर्पिस् जस्—जश्शसोः शि, शि सर्वनामस्थानम्,
सर्पिस् इ—लशक्वतद्धिते,
सर्पिन् स् इ—'नपुंसकस्य झलचः' से 'नुम्', 'सान्तमहतः' से दीर्घ,
सर्पीन् स् इ—'नश्चाऽपदान्तस्य झलि' से अनुस्वार, इण् वर्ण (ईकार) से उत्तर सकार को नुम् स्थानिक अनुस्वार का व्यवधान होने पर भी मूर्धन्य आदेश हो गया।

(2) हवींषि

हविस् शि—पूर्ववत् नुम्,
हवीन् स् इ—नुम्, दीर्घ, अनुस्वार,
हवींषि—षकार।

(3) यजूंषि

यजुस् जस्—सभी कार्य पूर्ववत्।

(ख) विसर्जनीयव्यवाये—

(4) सर्पिःषु

सर्पिस् सुप्—हलन्त्यम्, ससजुषो रुः, खरवसान०,
सर्पिर् सु—वा शरि,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सर्पिः सु—विसर्जनीय का व्यवधान होने पर भी मूर्धन्य आदेश हुआ।

(5) हविःषु
हविस् सुप्—पूर्ववत्।

(6) यजुःषु
यजुस् सुप्—पूर्ववत्।

(ग) शर्व्यवाये—

(7) सर्पिष्षु
सर्पिस् सुप्—पूर्ववत् 'वा शरि' से विकल्प से विसर्जनीय,
सर्पिस् षु—विसर्जनीय अभाव पक्ष में, मूर्धन्य, ष्टुत्व।

(8) हविष्षु
हविस् सुप्—पूर्ववत्।

(9) यजुष्षु (पूर्ववत्)।

नुमादि०—द्ध सूत्रपठित नुम् आदि का प्रत्येक का व्यवधान होने पर ही सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। अनेक का व्यवधान होने पर मूर्धन्य आदेश नहीं होता। अतः निम्नलिखित में नहीं होता है—

(10) निंस्से
णिसि → निस्—'णो नः' से नकार, इकार की इत्संज्ञा,
नि न् स्—इदितो नुम् धातोः,
निंस् थास्—नश्चाऽपदा०, थासः से,
निंस् से—'से' आदेश है, यह इण् वर्ण (इकार) से उत्तर है, परन्तु नुम् (अनुस्वार) तथा शर् (सकार)—इन दो वर्णों का व्यवधान होने से सकार को षकार नहीं हुआ।

(11) निंस्स्व
णिसि → निंस्—पूर्ववत्,
निंस् स्व—टित आत्मनेपदा०, सवाभ्यां वाऽमौ, पूर्ववत् मूर्धन्य आदेश का अभाव।

(3855) आदेशप्रत्यययोः *59* (221)

'मूर्धन्यः' इति वर्तते, 'स' इति च। 'आदेशप्रत्यययोः' इति षष्ठी भेदेन सम्बद्ध्यते। आदेशो यः सकारः, प्रत्ययस्य च यः सकारः इण्कोरुत्तरः, तस्य मूर्धन्यो भवति आदेशः। आदेशस्य तावत्-सिषेव। सुष्वाप। प्रत्ययस्य-अग्निषु। वायुषु। कर्तृषु। हर्तृषु। इन्द्रो मा वक्षत्, देवान्यंक्षदिति (अथ० 3.4.6) व्यपदेशिवद्भावात् प्रत्ययस्येति षत्वं भवति। यजतेर्वहतेश्च पञ्चमलकारे परस्मैपदप्रथमैकवचने इकारलोपः, 'लेटोऽडाटौ' (3.4.94) इत्यट् 'सिब्बहुलं लेटि' इति सिप्, ततः सिद्धम्—यक्षत्, वक्षत् इति।

अर्थ—मूर्धन्यः, सः—इन पदों का अनुवर्त्तन है। 'आदेश-प्रत्यययोः' पद में भेद से षष्ठी का सम्बन्ध है। इण् वर्ण तथा कवर्ग से उत्तर आदेश का जो सकार तथा प्रत्यय का जो सकार, उसके स्थान पर मूर्धन्य आदेश होता है।

उदा० (1) सिषेव
षिव् → सिव्—'धात्वादेः षः सः' से सकार आदेश,
सिव् णल्—लिट्, तिप्, परस्मैपदानां णलतुसु०,
सि सिव् अ—अनुबन्धलोप, द्वित्व, हलादिः शेषः,
सि षेव् अ—लघूपधगुण, इण् से पर आदेश।

(2) सुष्वाप
ष्वप् → स्वप्—'धात्वादेः षः सः' से सकार आदेश,
स्वाप् अ—अत उपधायाः,
सु स्वाप् अ—सम्प्रसारण, मूर्धन्य आदेश।

(3) अग्निषु
अग्नि सुप्—हलन्त्यम्,
अग्नि सु—इण् वर्ण से उत्तर प्रत्यय 'सुप्' का सकार है, इसे मूर्धन्य आदेश हो गया।

(4) वायुषु
वायु सुप्—सप्तमी बहुवचन,
वायुषु—अनुबन्ध लोप, पूर्ववत् मूर्धन्य आदेश।

(5) कर्तृषु
कर्तृ सुप्—इण् वर्ण (ऋकार) से उत्तर सुप् प्रत्यय का सकार है, इस सकार को मूर्धन्य आदेश हुआ।

(6) हर्तृषु
हर्तृ सुप्—पूर्ववत्।

इन्द्रो०—वक्षत् तथा यक्षत्—इन स्थलों पर व्यपदेशिवद् भाव से प्रत्यय के सकार को षकार होता है। ये रूप क्रमशः वह् तथा यज् धातुओं से लट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन में बनते हैं। 'इतश्च' से इकारलोप, 'लेटोऽडाटौ' से अट् आगम तथा 'सिब्बहुलं लेटि' से 'सिप्' होता है। यथा—

(7) वक्षत्
वह् स् अट् त्—तिप्, इकारलोप, अट्, सिप्,
वढ् स त्—'हो ढः' से ढकार,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वक् ष त्—'षढोः कः सि' से ककार, प्रत्यय 'सिप्' के सकार को मूर्धन्य आदेश हुआ।

(8) यक्षत्
यज् स् अ त्—सभी पूर्ववत्,
यक् स् अ त्—चोः कुः, खरि च, मूर्धन्य आदेश।

(3856) शासिवसिघसीनां च *60* (2410)

शासि, वसि, घसि-इत्येतेषां च इण्कोरुत्तरस्य सकारस्य मूर्धन्यो भवति। अन्वशिषत्, अन्वशिषताम्, अन्वशिषन्। शिष्टः, शिष्टवान्। वसि-उषितः, उषितवान्। उषित्वा। घसि-जक्षतुः, जक्षुः। 'घसिभसोः' (6.4.100) इत्युपधालोपः। 'अक्षन् पितरोऽमीमदन्त पितरः' (वा०सं० 19.36)। अनादेशार्थं वचनम्। घसिर्यद्यप्यादेशः, सकार-स्त्वादेशो न भवति। 'इण्कोः' इत्येव-शास्ति। वसति। जघास।

अर्थ—इण् तथा कवर्ग से उत्तर शास्, वस् तथा घस् के सकार के स्थान पर मूर्धन्य आदेश होता है।

उदा० (1) अन्वशिषत्
शास् त्—लुङ्, इतश्च,
शास् अङ् त्—च्लि लुङि, 'सर्तिशास्त्यर्ति०' से 'अङ्',
शिस् अत्—'शास इदङ्हलोः' से इत्त्व,
अनु अ शिषत्—मूर्धन्य आदेश, अट्, यण्।

(2) अन्वशिषताम्
शास् अ ताम्—तस् को 'ताम्' आदेश,
शिस् अ ताम्—इत्त्व, मूर्धन्य आदेश,
अनु अ शिष् अ ताम्—अट्, यण्।

(3) अन्वशिषन्
शास् अ झि—पूर्ववत् अङ्, झोऽन्तः, इतश्च, संयोगान्त लोप,
अनु अ शिषन्—इत्त्व, मूर्धन्य आदेश, अट् आदि।

(4) शिष्टः
शास् त—क्त, लशक्वतद्धिते,
शिस् त—इत्त्व,
शिष् त—मूर्धन्य आदेश, ष्टुना ष्टुः, सु।

(5) शिष्टवान्
शास् क्तवतु—पूर्ववत्।

(6) उषितः
वस् क्त—'वचिस्वपियजादी०' से सम्प्रसारण,
उस् त—इट्,
उष् इत सु—मूर्धन्य आदेश, विभक्तिकार्य।

(7) उषितवान्
वस् क्तवतु—पूर्ववत्।

(8) उषित्वा
वस् क्त्वा—लशक्वत०, सम्प्रसारण,
उस् इट् त्वा—इट्,
उष् इ त्वा—मूर्धन्य आदेश।

(9) जक्षतुः
अद् → घस् अतुस्—लिट्, लिट्यन्यतर०, तस्, 'अतुस्' आदेश, 'गमहन०' से उपधालोप,
जघ् स् अतुस्—द्वित्व, द्विर्वचनेऽचि, कुहोश्चुः, अभ्यासे चर्च,
ज क् ष् अतुस्—खरि च, मूर्धन्य आदेश।

(10) जक्षुः
घस् झि—पूर्ववत् द्वित्व, मूर्धन्य आदेश।

(11) अक्षन्
अद् लुङ्—'बहुलं छन्दसि' से 'घस्' आदेश,
घस् झि—झोऽन्तः, इतश्च,
घस् अन्—संयोगान्तस्य लोपः,
घस् च्लि अन्—'मन्त्रे घसह्वर०' से 'च्लि' का लुक्,
घ् स् अन्—'घसिभसोर्हलि' से उपधालोप,
क् स् अन्—खरि च, मूर्धन्य आदेश, अट्।

अनादे०—आदेशभिन्न स्थल के लिए यह विधान है। यद्यपि 'घस्' आदेश है, तथापि सकार आदेश नहीं है।

इण्को०—इण् तथा कवर्ग से उत्तर सकार को ही मूर्धन्य आदेश होता है।

(12) शास्ति
शास् ति—लट्, शप्, शप् का लुक्,
शास्ति—शास् का सकार है जो इण् से उत्तर नहीं है; अतः मूर्धन्य आदेश नहीं हुआ।

(13) वसति
वस् शप् ति—पूर्ववत् मूर्धन्य आदेश अभाव।

(14) जघास
घस् णल्—लिट्, णल् आदेश,
ज घास् अ—अत उपधायाः, द्वित्व, अभ्यासकार्य, पूर्ववत् मूर्धन्य आदेश का अभाव।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(3857) स्तौतिण्योरेव षण्यभ्यासात् *61* (2627)

स्तौतेर्ण्यन्तानां च षभूते सनि परतः अभ्यासादिण उत्तरस्य आदेशसकारस्य मूर्धन्यादेशो भवति। तुष्टूषति। ण्यन्तानाम्-सिषेवयिषति। सिषञ्जयिषति। सुष्वापयिषति। 'सिद्धे सत्यारम्भो नियमार्थः' (का०प०)-स्तौतिण्योरेव षण्यभ्यासाद्यथा स्यात्, अन्यस्य मा भूत्-सिसिक्षति। सुसूषति। एवकारकरणमिष्टतोऽवधारणार्थम्। स्तौतिण्योः षण्येव-इति हि विज्ञायमाने तुष्टावेत्यत्र न स्यात्। इह च स्यादेव-सिसिक्षतीति। षणीति किम्? अन्यत्र नियमो मा भूत्-सिषेच। को विनतेऽनुरोधः? अविनते नियमो मा भूत्-सुषुप्सति। तिष्ठासति। कः सानुबन्धेऽनुरोधेः? षशब्दमात्रे नियमो मा भूत्-सुषुपिष इन्द्रम्। अभ्यासादिति किम्? अभ्यासाद् या प्राप्तिस्तस्या नियमो यथा स्यात्, धातोर्या प्राप्तिस्तस्या नियमो मा भूत्-प्रतीषिषति। अधीषिषति।

अर्थ—षकारभूत 'सन्' प्रत्यय के परे रहते स्तु धातु के तथा ण्यन्त धातु के अभ्यास में जो इण् वर्ण तथा कवर्ग, उनसे उत्तर सकार के स्थान पर मूर्धन्य आदेश होता है।

उदा० (1) तुष्टूषति

ष्टु → स्तु—'धात्वादेः षः सः' से षकार के स्थान पर सकार आदेश, निमित्त (षकार) के हट जाने पर नैमित्तिक (टकार) की भी निवृत्ति हो गई,

स्तु सन्—'इको झल्' से 'सन्' किद्वत् हुआ, 'अज्झनगमां०' से दीर्घ आदेश,

स्तू सन्—'सन्यङोः' से द्वित्व,

तु स्तू ष—शर्पूर्वाः खयः, षत्व, इण् (उकार) से उत्तर सकार है, इस स्थान पर मूर्धन्य आदेश हुआ,

तुष् तू ष—ष्टुना ष्टु, धातुसंज्ञा,

तुष्टूष शप् ति—अतो गुणे।

(2) सिषेवयिषति

सेव् णिच्—अनुबन्धलोप,

सेवि इ सन्—धातोः कर्मणः समा०, इट्, षत्व,

सि सेवयि ष—सन्यङोः, गुण, अय् आदेश, 'णौ कृतं स्थानिवद् भवति' से रूपातिदेश, ह्रस्वः,

सिषेवयिष—अभ्यास में इण् (इकार), इससे उत्तर सकार को षकार, सनाद्यन्ता धातवः,

सिषेवयिष शप् ति—शप्, अतो गुणे।

(3) सिषञ्जयिषति

सञ्ज् णिच् सन्—पूर्ववत्, इट् आदि,

स सञ्ज् इ इ सन्—द्वित्व, रूपातिदेश, हलादिः शेषः,

सिसञ्जयिष—सन्यतः, आदेशप्रत्यययोः, सनाद्यन्ता धातवः,

सिषञ्जयिष—पूर्ववत् सकार को मूर्धन्य आदेश,

सिषञ्जयिष शप् तिप्—पूर्ववत्।

(4) सुष्वापयिषति

ष्वप् → स्वप्—धात्वादेः षः सः,

स्वप् णिच्—अत उपधायाः, सन्, इट्, गुण, अय्,

स्वापयि सन्—आदेशप्रत्यययोः,

स्वप् स्वापयिष—द्वित्व, रूपातिदेश,

सुस्वापयिष—'द्युतिस्वाप्योः०' से अभ्यास को सम्प्रसारण,

सुष्वापयिष शप् तिप्—सकार को षकार, अतो गुणे।

सिद्धे०—प्रकृत सूत्र के द्वारा कहा गया मूर्धन्य आदेश सिद्ध ही है। तब यह नियम के लिए विधान है। स्तु धातु के तथा ण्यन्त धातु के सकार को ही मूर्धन्य आदेश होता है, यदि वह अभ्यास के इण् तथा कवर्ग से उत्तर हो। इस प्रकार अन्य सकार को मूर्धन्य नहीं होता है।

(5) सिसिक्षति

सिच् सन्—'हलन्ताच्च' से सन् किद्वत्, लघूपधगुण, गुण का निषेध,

सि सिच् स—द्वित्व, हलादिः शेषः,

सि सिक् स—चोः कुः, अभ्यास के इण् वर्ण (इकार) से उत्तर सकार को मूर्धन्य आदेश नहीं हुआ,

सिसिक्ष—आदेशप्रत्यययोः, धातुसंज्ञा,

सि सिक्ष शप् ति—अतो गुणे।

(6) सुषूषते

षूङ् → सू—धात्वादेः षः सः, हलन्त्यम्,

सू सन्—सन्यङोः,

सु सूस—ह्रस्वः, आदेशप्रत्यययोः, धातुसंज्ञा, पूर्ववत् सनः,

सुसूष शप् त—टित आत्मनेपदानां०।

एवकार०—इष्ट के अवधारण के लिए 'एव' का ग्रहण है। 'स्तु' धातु के तथा ण्यन्त धातु के सकार को षकारभूत सन् के परे रहते ही मूर्धन्य आदेश होता है। ऐसा विज्ञायमान होने पर 'तुष्टाव' इस स्थल पर मूर्धन्य आदेश न हो तथा 'सिसिक्षति' में यह प्राप्त हो जायेगा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

षणीति०—षकारभूत सन् के परे रहते ही सकार को मूर्धन्य आदेश होता है, ताकि अन्यत्र नियम न हो।

(7) सिषेच
षिच् णल्—सकार, लिट्, णल् आदेश,
सि सिच् अ—द्वित्व, हलादिः शेषः, लघूपधगुण,
सिसेच—मूर्धन्य आदेश।

को०—विनत परे रहते अनुरोध क्या है ? विनत पूर्व आचार्यों की संज्ञा है, जो षत्व तथा णत्व के लिए प्रयुक्त होती थी। 'विनत' में यह प्रयोजन है कि निम्नलिखित में यह नियम न हो। यथा—

(8) सुषुप्सति
स्वप् सन्—'हलन्ताच्च' से किद्वत्,
सुप् स—सम्प्रसारण,
सु सुप् स—द्वित्व, हलादिः शेषः,
सु षुप् स—मूर्धन्य आदेश, धातुसंज्ञा, शप् आदि।

(9) तिष्ठासति
ष्ठा → स्था—धात्वादेः षः सः,
स्था स्था सन्—सन्यङोः, शर्पूर्वाः खयः,
त स्था स—ह्रस्वः,
ति स्था स—सन्यतः, मूर्धन्य आदेश,
ति ष् था स—ष्टुना ष्टुः, धातुसंज्ञा,
तिष्ठास शप् ति—अतो गुणे।

कः सा०—अनुबन्धसहित में क्या प्रयोजन है ? इसका प्रयोजन यह है कि षशब्दमात्र में ही नियम न हो।

(10) सुषुपिष इन्द्रम्
स्वप् लिट्—व्यत्यय से आत्मनेपद,
स्वप् थास्—थासः से,
स्वप् इट् से—आर्धधातुकस्येड् वलादेः 'एकाच उपदेशेऽनु०' से निषेध, क्रादि नियम से इट्, असंयोगाल्लिट्० से लिट् प्रत्यय किद्वत्,
सुप् इ से—वचिस्वपियजा० से सम्प्रसारण,
सु सुप् इ से—द्वित्व, हलादिः शेषः,
सु षु पिसे—मूर्धन्य आदेश,
सुषुपिषे—आदेशप्रत्यययोः,
सुषुपिषय् इन्द्रम्—अय्, लोपः शाकल्यस्य।

यहाँ निरनुबन्धक में नियम का अभाव होने से अभ्यास से उत्तर सकार को मूर्धन्य होता ही है।

अभ्यासा०—अभ्यास में स्थित जो इण् वर्ण तथा कवर्ग, उससे उत्तर सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। अभ्यास से उत्तर जो प्राप्ति होती है, ताकि उसको नियम हो जाय तथा धातु से जो प्राप्ति हो, उसको नियम न हो।

(11) प्रतीषिषति
प्रति इण् सन्—सन्यङोः,
प्रति षिष—द्वित्व, अजादेर्द्वितीयस्य, धातुसंज्ञा।

(12) अधीषिषति
अधि इक् सन्—पूर्ववत् द्वितीय एकाच् को द्वित्व आदि कार्य होकर रूप बनता है।

(3858) स स्विदिस्वदिसहीनां च *62*

(2628)

स्विदि, स्वदि, सहि-इत्येतेषां ण्यन्तानां सनि षभूते परतोऽभ्यासादुत्तरस्य सकारस्य सकारादेशो भवति। स्विदि-सिस्वेदयिषति। स्वदि-सिस्वादयिषति। सहि-सिसाहयिषति। सकारस्य सकारवचनं मूर्धन्यनिवृत्त्यर्थम्।

अर्थ—षभूत सन् प्रत्यय परे रहते णिच् प्रत्ययान्त स्विद्, स्वद् तथा सह् धातु के अभ्यास से उत्तर सकार को सकार होता है।

उदा० (1) सिस्वेदयिषति
ष्विद् → स्विद् णिच्—लघूपधगुण,
स्वेद् इ सन्—इट्,
स्वेदयिष—गुण, अय्, आदेशप्रत्यययोः,
सि स्वेदयिष—द्वित्व, रूपातिदेश, शर्पूर्वाः खयः, धातुसंज्ञा,
सिस्वेदयिष शप् ति—'स्तौतिण्योरेव०' से प्राप्त मूर्धन्य आदेश का बाध, अतो गुणे।

(2) सिस्वादयिषति
ष्वद् → स्वद् णिच्—धात्वादेः षः सः, अत उपधायाः,
सिस्वादयिष—इट्, आदेशप्रत्यययोः, सन्यतः, पूर्ववत् सकार के स्थान पर सकार।
सिस्वादयिष शप् ति—अतो गुणे।

(3) सिसाहयिषति
सह् णिच्—अत उपधायाः,
साहयिष—पूर्ववत्, द्वित्व, सन्यतः,
सिसाहयिष शप् ति—सकार को सकार।

सकारस्य० सकार के स्थान पर सकार का विधान मूर्धन्य आदेश की निवृत्ति के लिए है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(3859) प्राक्सितादड्व्यवायेऽपि *63* (2276)

'सेवसित' (8.3.70) इति वक्ष्यति। प्राक्सितसंशब्दनाद्यानित ऊर्ध्वमनुक्रमिष्यामस्तत्राड्व्यवायेऽपि मूर्धन्यो भवतीत्येवं तद्वेदितव्यम्, अपिशब्दादनड्व्यवायेऽपि। वक्ष्यति-'उपसर्गात्सुनोतिसुवति' (8.3.65) इति षत्वम्। अभिषुणोति। परिषुणोति। विषुणोति। निषुणोति। अभ्यषुणोत्। पर्यषुणोत्। व्यषुणोत्। न्यषुणोत्।

अर्थ—आगे 'परिनिविभ्यः सेवसितय' का पाठ किया जायेगा। इससे पहले-पहले तथा यहाँ से उत्तर जो कहा जायेगा, वहाँ अट् का व्यवधान होने पर भी मूर्धन्य आदेश होता है—ऐसा जानना चाहिए। 'अपि' का ग्रहण होने से अट् का व्यवधान न होने पर भी मूर्धन्य आदेश होता है।

आगे कहा जायेगा—'उपसर्गात्सुनोति०' आदि। मूर्धन्य आदेश षकार होता है।

उदा० (1) अभिषुणोति। (2) परिषुणोति। (3) विषुणोति। (4) निषुणोति। (5) अभ्यषुणोत्। (6) पर्यषुणोत्। (7) व्यषुणोत्। (8) न्यषुणोत्।

सर्वत्र मूर्धन्य आदेश हुआ है।

(3860) स्थादिष्वभ्यासेन चाभ्यासस्य *64* (2277)

'प्राक् सितात्' इति वर्तते। 'उपसर्गात्सुनोति' (8.3.65) इत्यत्र 'स्थासेनयसेध' इति स्थादयः, तेषु स्थादिषु प्राक् सितसंशब्दनाद् अभ्यासेन व्यवाये मूर्धन्यो भवति, अभ्याससकारस्य च भवतीत्येवं वेदितव्यम्। अभ्यासेन व्यवाये अषोपदेशार्थं च-अभिषिषेणयिषति, परिषिषेणयिषति। अवर्णान्ताभ्यासार्थं च-अभितष्ठौ। परितष्ठौ। अषोपदेशार्थं च-अभिषिषेणयिषति, परिषिषेणयिषति। षणि प्रतिषेधार्थं च-अभिषिषिक्षति, परिषिषिक्षति। 'अभ्यासस्य' इति वचनं नियमार्थम्-स्थादिष्वेवाभ्याससकारस्य मूर्धन्यो भवति, नान्यत्र। अभिसुसूषति, अभिसिषासति।

अर्थ—'प्राक् सितात्' का अनुवर्त्तन है। 'उपसर्गात्सुनोति०' से पूर्व-पूर्व 'उपसर्गात्सुनोति०' में 'स्थासेनयसेध' यहाँ जो 'स्था' आदि हैं, उन 'स्था' आदि में अभ्यास के सकार के स्थान पर मूर्धन्य आदेश होता है; अभ्यास के द्वारा व्यवहित होने पर भी।

उदा० (1) परितष्ठौ

परि स्था णल्—लिट्, णल् आदेश, आत औ णलः,

परि स्था स्था औ—द्वित्व,

परि त स्था औ—ह्रस्वः, शर्पूर्वाः खयः,

परितस्थौ—वृद्धिरेचि, अभ्यास का व्यवधान होने पर भी मूर्धन्य हो गया,

परि तष् थौ—ष्टुना ष्टुः।

अषोप०—जो षकारोपदेश नहीं हैं, ऐसे धातुओं के लिए यह विधान है। यथा—

(2) अभिषिषेणयिषति

सेनयाऽभ्रियाति—सत्यापपाश० से 'णिच्',

सेनय् इ सन्—सन्, इट्,

सिसेनयिष—द्वित्व, ह्रस्वः, धातुसंज्ञा,

अभिषिषेणयिषति—मूर्धन्य आदेश, णत्व।

(3) परिषिषेणयिषति

परि सेनयिस—पूर्ववत्।

अवर्ण०—अवर्णान्त अभ्यास के लिए है।

(4) अभितष्ठौ

सिद्धि पीछे देखें।

षणि०—षकारभूत सन् के परे रहते निषेध के लिए है।

(5) अभिषिषिक्षति

सिच् सन्—द्वित्व, अभ्यास कार्य,

अभि सि सिक् स—चोः कुः, आदेशप्रत्यययोः,

अभिषिषिक्ष—सकार को मूर्धन्य, धातुसंज्ञा, शप् आदि।

(6) परिषिषिक्षति (पूर्ववत्)।

अभ्यास०—'अभ्यासस्य' यह वचन नियम के लिए है। स्था आदियों में ही अभ्यास के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है, अन्यत्र नहीं।

(7) अभिसुसूषति

षूङ् → सू सन्—धात्वादेः षः सः,

अभि सु सू स—द्वित्व, ह्रस्वः,

अभि सु सूष—आदेशप्रत्यययोः, धातुसंज्ञा,

अभि सु सूष शप् तिप्—अतो गुणे।

(8) अभिसिषासति

षो → सो—धात्वादेः षः सः,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अभि सा सन्—आत्व,
अभि स सा स—द्वित्व, ह्रस्वः, सन्यतः,
अभि सि सा स—अभ्यास से उत्तर सकार को मूर्धन्य,
अभिसिषास—धातुसंज्ञा, शप् आदि।

(3861) उपसर्गात्सुनोतिसुवतिस्यतिस्तौतिस्तोभतिस्थासेनयसेधसिचसञ्जस्वञ्जाम् *65* (2270)

'मूर्धन्यः' इति वर्तते, 'स' इति च। उसर्गस्थान्निमित्तादुत्तरस्य सुनोति, सुवति, स्यति, स्तौति, स्तोभति, स्था, सेनय, सेध, सिच, सञ्ज, स्वञ्ज–इत्येतेषां सकारस्य मूर्धन्यादेशो भवति। सुनोति–अभिषुणोति, परिषुणोति। अभ्यषुणोत्, पर्यषुणोत्। सुवति–अभि-षुवति, परिषुवति। अभ्यषुवत्, पर्यषुवत्। स्यति–अभिष्यति, परिष्यति। अभ्यष्यत्, पर्यष्यत्। स्तौति–अभिष्टौति, परिष्टौति। अभ्यष्टौत्, पर्यष्टौत्। स्तोभति–अभिष्टोभते, परिष्टोभते। अभ्यष्टोभत्, पर्यष्टोभत्। स्था–अभिष्ठास्यति, परिष्ठास्यति। अभ्यष्ठात्, पर्यष्ठात्। अभितष्ठौ, परितष्ठौ। सेनय–अभिषेणयति, परिषेणयति। अभ्यषेणयत्, पर्यषेणयत्। अभिषिषेणयिषति, परिषिषेणयिषति। सेध–अभिषेधति, परिषेधति। अभ्यषेधत्, पर्यषेधत्। सिच–अभिषिञ्चति, परिषिञ्चति। अभ्यषिञ्चत्, पर्यषिञ्चत्। अभिषिषिक्षति, परिषिषिक्षति। सञ्ज–अभिषजति, परिषजति। अभ्यषजत्, पर्यषजत्। अभिषि-षङ्क्षति, परिषिषङ्क्षति। स्वञ्ज–अभिष्वजते, परिष्वजते। अभ्यष्वजत, पर्यष्वजत। अभिषिष्वङ्क्षते, परिषिष्वङ्क्षते। 'सेध' इति शाब्विकरणनिर्देशः सिध्यतिनिवृत्त्यर्थः। उपसर्गादिति किम्? दधि सिञ्चति। मधु सिञ्चति। निर्गताः सेचका अस्माद् देशात् निःसेचको देश इति नायं सिचेरुपसर्गः। अभिसावकीयतीत्यत्रापि न सुनोतिं प्रति क्रियायोगः, किं तर्हि? सावकीयं प्रति। अभिषावयतीत्यत्र तु सुनोतिमेव प्रति क्रियायोगः, न सावयतिमिति षत्वं भवति।

अर्थ—मूर्धन्यः, सः—इनका अनुवर्त्तन है। उपसर्ग में स्थित निमित्त से उत्तर षू अभिषवे, षू प्रेरणे, षो अन्तकर्मणि, ष्टुञ् स्तुतौ, ष्टुभ स्तम्भे, ष्ठा गतिनिवृत्तौ, सेनय, षिध, षिधृ, षिच, सन्ज तथा स्वन्ज—इन धातुओं के सकार के स्थान पर मूर्धन्य आदेश होता है।

उदा० (क) सुनोतेः—

(1) अभिषुणोति
अभि सु श्नु ति—लट्, स्वादिभ्यः श्नुः,
अभि षु नु ति—लशक्वतद्धिते, सकार को 'आदेशप्रत्यययोः' से आदेश प्राप्त, 'सात्पदाद्योः' से निषेध, पुनः मूर्धन्य आदेश,
अभि षु णु ति—णत्व, सार्वधातुकार्धधा० से गुण।

(2) परिषुणोति
पूर्ववत् श्नु, मूर्धन्य, गुण।

(3) अभ्यषुणोत्
सु श्नु त्—लङ्, इतश्च, श्नु,
अभि अ सु श्नु त्—अट्, लशक्वत० 'प्राक्सितादड्०' से मूर्धन्य आदेश,
अभ्यषुणोत्—णत्व, गुण।

(4) पर्यषुणोत् (पूर्ववत्)।

(ख) सुवतेः—

(5) अभिषुवति
अभि सू त—शप्, 'अचिश्नु धातु०' से उवङ् आदेश।

(6) परिषुवति (पूर्ववत्)।

(7) अभ्यषुवत्
पूर्ववत् मूर्धन्य।

(8) पर्यषुवत् (पूर्ववत्)।

(ग) स्यतेः—

(9) अभिष्यति
षो → अभि सो—धात्वादेः षः सः,
अभि स् श्यन् ति—'ओतः श्यनि' से ओकारलोप,
अभि ष्यति—मूर्धन्य आदेश।

(10) परिष्यति (पूर्ववत्)।

(11) अभ्यष्यत्
सो त्—लङ्, इतश्च,
स् श्यन् त्—ओकारलोप,
अभि अ ष्यत्—अट्, मूर्धन्य, यण्।

(12) पर्यष्यत् (पूर्ववत्)।

(घ) स्तौतेः—

(13) अभिष्टौति
ष्टु → स्तु—धात्वादेः षः सः,
अभि स्तु ति—शप्, शप् का लुक्, वृद्धि,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अभि ष् तौ ति—मूर्धन्य आदेश, ष्टुना ष्टुः।

(14) परिष्टौति (पूर्ववत्)।

(15) अभ्यष्टौत्
अभि स्तु त्—लङ्, इतश्च, शप् का लुक्,
अभि अ ष् तौ त्—वृद्धि, मूर्धन्य, ष्टुना ष्टुः।

(16) पर्यष्टौत्
परि स्तु त्—लङ्, इतश्च, शप् का लुक्,
परि स्तौ त्—वृद्धि,
परि अ ष् तौ त्—मूर्धन्य, ष्टुना ष्टुः।

(ङ) स्तोभतेः—

(17) अभिष्टोभते
अभि स्तुभ् त—शप्, लघूपधगुण,
अभि ष् तोभ् अत—मूर्धन्य आदेश, ष्टुना ष्टुः।

(18) परिष्टोभते (पूर्ववत्)।

(19) अभ्यष्टोभत
स्तुभ् त—लङ्, शप्,
स्तोभ् शप् त—लघूपध, अनुबन्धलोप,
अभि अ ष् तोभ् अ त—मूर्धन्य, ष्टुना ष्टुः, अट्।

(20) पर्यष्टोभत (पूर्ववत्)।

(च) तिष्ठतेः—

(21) अभिष्ठास्यति
स्था स्य ति—ऌट् शेषे च, स्यतासी०,
अभि ष् था स्य ति—मूर्धन्य, ष्टुना ष्टुः।

(22) परिष्ठास्यति (पूर्ववत्)।

(23) अभ्यष्ठात्
लङ्, इतश्च, शेष पूर्ववत्।

(24) पर्यष्ठात् (पूर्ववत्)।

(25) अभितष्ठौ
अभि स्था णल्—लिट्, णल्, आत औ णलः,
अभि स्था औ—द्वित्व,
अभि त स्था औ—शर्पूर्वाः खयः, ह्रस्वः, अभ्यासे चर्च,
अभि त ष् थौ—वृद्धिरेचि, मूर्धन्य आदेश, ष्टुत्व।

(26) परितष्ठौ (पूर्ववत्)।

(छ) सेनयतेः—

(27) अभिषेणयति
पूर्ववत् मूर्धन्य आदेश।

(28) परिषेणयति (पूर्ववत्)।

(29) अभ्यषेणयत्
लङ्, पूर्ववत् मूर्धन्य आदेश।

(30) पर्यषेणयत् (पूर्ववत्)।

(31) अभिषिषेणयिषति
सेनय सन्—धातोः कर्मणः समान०,
सेनय इ स—इट्, द्वित्व,
सिसेनयिस—हलादिः शेषः, ह्रस्वः,
अभिषिषेणयिष—मूर्धन्य आदेश, धातुसंज्ञा,
अभिषिषेणयिष शप् तिप्—अतो गुणे।

(32) परिषिषेणयिषति (पूर्ववत्)।

(ज) सेधतेः—

(33) अभिषेधति
सिध् तिप्—शप्, लघूपध गुण,
अभि सेध् अ ति—मूर्धन्य आदेश।

(34) परिषेधति (पूर्ववत्)।

(35) अभ्यषेधत्
सिध् शप् तिप्—इतश्च, अनुबन्धलोप,
अभि अ सेधत्—लघूपधगुण, मूर्धन्य आदेश।

(36) पर्यषेधत्
पूर्ववत् मूर्धन्य आदेश।

(झ) सिञ्चतेः—

(37) अभिषिञ्चति
षिञ्च् → सिञ्च्—धात्वादेः षः सः,
अभि सिञ्च् अ ति—मूर्धन्य आदेश।

(38) परिषिञ्चति (पूर्ववत्)।

(39) अभ्यषिञ्चत्
अभि अ सिञ्च् अ त्—लङ्, इतश्च, शेष पूर्ववत्।

(40) पर्यषिञ्चत् (पूर्ववत्)।

(41) अभिषिषिक्षति
सिच् सन्—इट् निषेध, 'चोः कुः' से कुत्व,
सि सिक् स—द्वित्व, हलादिः शेषः, आदेशप्रत्यययोः,
अभि सि सिक्ष—मूर्धन्य आदेश, धातुसंज्ञा,
अभि षि षिक्ष शप् तिप्—अतो गुणे।

(42) परिषिषिक्षति (पूर्ववत्)।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(ञ) सजतेः—

(43) अभिषजति

षन्ज् → सन्ज्—धात्वादेः षः सः,

सन्ज् शप् तिप्—अनुबन्ध लोप, 'दन्ससञ्जस्वञ्जां' से नकार-लोप,

अभिषजति—मूर्धन्य आदेश।

(44) परिषजति (पूर्ववत्)।

(45) अभ्यषजत्

लङ्, नकारलोप, मूर्धन्य आदेश।

(46) पर्यषजत् (पूर्ववत्)।

(47) अभिषिषङ्क्षति

सन्ज् सन्—द्वित्व, हलादिः शेषः,

स सन्ज् स—कुत्व, परसवर्ण,

स सङ् क् स—आदेशप्रत्यययोः,

सि सङ् क्ष—सन्यतः, धातुसंज्ञा,

अभिषिषङ्क्ष शप् ति—लकारकार्य, मूर्धन्य आदेश।

(48) परिषिषङ्क्षति (पूर्ववत्)।

(ट) स्वन्ज् धातोः—

(49) अभिष्वजते

'अभिषजति' की तरह।

(50) परिष्वजते (पूर्ववत्)।

(51) अभ्यष्वजत

'अभ्यषजत्' की तरह।

(52) पर्यष्वजत (पूर्ववत्)।

(53) अभिषिष्वङ्क्षते

ष्वञ् → स्वन्ज्—धात्वादेः षः सः,

स स्वन्ज् सन्—'अभिषिषङ्क्षति' की तरह सभी कार्य।

(54) परिषिष्वङ्क्षते (पूर्ववत्)।

सेध०—'सेध' में शप् विकरण के निर्देश से 'सिध्यति' धातु की निवृत्ति हो जाती है।

उपसर्गा०—उपसर्ग से उत्तर सकार को मूर्धन्य आदेश होता है।

(55) दधि सिञ्चति

यहाँ उपसर्ग से उत्तर सकार नहीं है। अतः मूर्धन्य आदेश नहीं हुआ। 'सात्पदाद्यो०' से निषेध।

(56) मधु सिञ्चति (पूर्ववत्)।

निःसेचको देशः।

निर्गताः—यहाँ सिच् धातु का उपसर्ग नहीं है। यहाँ गमि क्रिया के साथ निस् शब्द का योग है। निस् का न तो गम् क्रिया के साथ तथा न ही सिच् धातु के प्रति उपसर्ग संज्ञात्व है। विग्रह इस प्रकार है—

निर्गताः सेचका अस्माद् देशाद् इति।

अभिसा०—'अभिसावकीयति' इस स्थल पर 'सु' धातु के प्रति क्रियायोग नहीं है। तो क्या है ? 'सावकीय' के प्रति क्रिया-योग है। 'अभिषावयति' में 'सु' धातु के प्रति क्रियायोग है; 'सावयति' के प्रति नहीं है। अतः षत्व होता है। यथा—

(57) अभिसावकीयति

षु ण्वुल्—धात्वादेः षः सः, युवोरनाकौ,

सावकम् इच्छति—सुप आत्मनः क्यच्,

सावकीय—क्यच्, क्यचि च,

अभिसावकीय शप् तिप्—अतो गुणे।

(3862) सदिरप्रतेः *66* (2271)

सदेः सकारस्य उपसर्गस्थान्निमित्तादप्रतेरुत्तरस्य मूर्धन्य आदेशो भवति। निषीदति, विषीदति। न्यषीदत्, व्यषीदत्। निषसाद, विषसाद। अप्रतेरिति किम्? प्रतिसीदति।

अर्थ—उपसर्ग में स्थित निमित्त से उत्तर सद् के सकार के स्थान पर मूर्धन्य आदेश होता है, परन्तु प्रति से उत्तर को नहीं होता है।

उदा० (1) निषीदति

नि सद् तिप्—कर्त्तरि शप्, अनुबन्धलोप,

नि सीद् अ ति—'पाघ्राध्मा०' से 'सीद्' आदेश,

निषीदति—मूर्धन्य आदेश।

(2) विषीदति

वि सद् अ ति—पूर्ववत् शप्, सीद् आदेश, सकार के स्थान पर मूर्धन्य आदेश।

(3) न्यषीदत्

नि सद् अ त्—लङ्, इतश्च, सीद्, मूर्धन्य आदेश।

(4) व्यषीदत्

वि सद् अत्—पूर्ववत्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(5) निषसाद
सद् णल्—लिट्, अत उपधायाः, द्वित्व,
स साद् अ—अभ्यासकार्य,
नि ष साद् अ—मूर्धन्य आदेश।

(6) विषसाद (पूर्ववत्)।

अप्रते०—प्रति शब्द से उत्तर सकार को मूर्धन्य नहीं होता है।

(7) प्रतिसीदति
प्रति सद् शप् तिप्—'सीद्' आदेश, सकार को मूर्धन्य आदेश नहीं हुआ।

(3863) स्तम्भेः *67* (2272)

'उपसर्गात्' इति वर्तते। स्तम्भेः सकारस्य उपसर्ग-स्थान्निमित्तादुत्तरस्य मूर्धन्य आदेशो भवति। अभिष्टभ्नाति, परिष्टभ्नाति। अभ्यष्टभ्नात्, पर्यष्टभ्नात्। अभितष्टम्भ, परितष्टम्भ। 'अप्रतेः' इत्येतदिह नानुवर्तते, तेनैतदपि भवति–प्रतिष्टभ्नाति, प्रत्यष्टभ्नात्, प्रतितष्टम्भ।

अर्थ—'उपसर्गात्' का अनुवर्त्तन है। उपसर्ग में स्थित निमित्त से उत्तर स्तम्भ् धातु के सकार के स्थान पर मूर्धन्य आदेश होता है।

उदा० (1) अभिष्टभ्नाति
स्तम्भ् तिप्—शप् को बाध कर 'क्र्यादिभ्यः श्ना' से 'श्ना',
स्तम्भ् ना ति—लशक्वतद्धिते, सार्वधातुकमपित्,
स्तभ् ना ति—अनुनासिकलोप,
अभि ष् तभ् ना ति—मूर्धन्य आदेश, ष्टुना ष्टुः।

(2) परिष्टभ्नाति (पूर्ववत्)।

(3) अभ्यष्टभ्नात्
स्तम्भ् श्ना त्—लङ्, इतश्च, श्ना,
स्तभ् ना त्—अनुनासिकलोप,
अभि अ ष् टभ् नात्—अट्, मूर्धन्य आदेश, ष्टुत्व।

(4) पर्यष्टभ्नात् (पूर्ववत्)।

(5) अभितष्टम्भ
स्तम्भ् णल्—लिट्,
त स्तम्भ् अ—चुटू, हलन्त्यम्, द्वित्व, शर्पूर्वाः खयः,
अभि त ष् तम्भ् अ—मूर्धन्य आदेश,
अभि तष्टम्भ् अ—ष्टुना ष्टुः।

(6) परितष्टम्भ (पूर्ववत्)।

अप्रते०—'अप्रतेः' का यहाँ अनुवर्त्तन नहीं है। अतः निम्नलिखित में भी होता है—

(7) प्रतिष्टभ्नाति।
(8) प्रत्यष्टभ्नात्। (9) प्रतितष्टम्भ।

(3864) अवाच्चालम्बनाविदूर्ययोः *68* (2273)

अवशब्दादुपसर्गादुत्तरस्य स्तम्भेः सकारस्य मूर्धन्यादेशो भवति आलम्बनेऽर्थे, आविदूर्ये च। आलम्बनम् आश्रय-णम्। अविदूरस्य भाव आविदूर्यम्। आलम्बने तावत्–अवष्टभ्यास्ते। अवष्टभ्य तिष्ठति। आविदूर्ये–अवष्टब्धा सेना। अवष्टब्धा शरत्। आलम्बनाविदूर्ययोरिति किम्? अवस्तब्धो वृषलः शीतेन। अनिगर्थ आरम्भः।

अर्थ—आलम्बन तथा आविदूर्य अर्थों में 'अव' उपसर्ग से उत्तर स्तम्भ धातु के सकार के स्थान पर मूर्धन्य आदेश होता है।

'आलम्बन' का अर्थ है—आश्रयण। अविदूर का भाव 'आविदूर्य' कहलाता है।

उदा० (1) अवष्टभ्यास्ते
अव स्तम्भ् त्वा—'समासेऽनञ्पूर्वे०' से ल्यप्,
अव स्तम्भ् य—लाक्वतद्धिते, हलन्त्यम्, अनुनासिकलोप,
अव ष् तभ् य—मूर्धन्य आदेश,
अवष्टभ्य सु—ष्टुना ष्टुः, सुलोप।

(2) अवष्टब्धा सेना
अव स्तम्भ् क्त—लशक्वतद्धिते, अनुनासिकलोप,
अव स्तभ् त—झषस्तथो०,
अवस्तभ् ध—झलां जश् झशि,
अव स्तब् ध टाप्—चुटू, हलन्त्यम्,
अव ष् ट ब् ध आ—सवर्णदीर्घ, सु, सुलुक्।

आलम्बना०—आलम्बन तथा आविदूर्य अर्थों में ही मूर्धन्य आदेश होता है।

(3) अवस्तब्धो वृषलः शीतेन
यहाँ मूर्धन्य आदेश नहीं हुआ।

यह इक् भिन्न के लिए विधान है।

(3865) वेश्च स्वनो भोजने *69* (2274)

वेरुपसर्गादवाच्चोत्तरस्य भोजनार्थे स्वनतेः सकारस्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मूर्धन्यादेशो भवति। विष्वणति, व्यष्वणत्, विषष्वाण। अवष्वणति अवाष्वणत्, अवषष्वाण। अभ्यवहारक्रिया-विशेषोऽभिधीयते, यत्र स्वननमस्ति। भोजन इति किम्? विस्वनति मृदङ्गः।

अर्थ—'वि' उपसर्ग से उत्तर भोजन अर्थ में वर्त्तमान स्वन् धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है।

उदा० (1) विष्वणति
वि स्वन् अ तिप्—लट्,
वि ष् व न ति—मूर्धन्य आदेश, णत्व।

(2) व्यष्वणत्
वि स्वन् अ त्—लङ्, इतश्च,
विष् व ण् अत्—पूर्ववत्।

(3) विषष्वाण
वि स्वन् णल्—लिट्, अत उपधायाः, द्वित्व,
वि स स्वान् अ—हलादिः शेषः,
विष ष् वाण् अ—मूर्धन्य आदेश।

चकार से 'अव' का अनुकर्षण होता है।[1]

(4) अवष्वणति (पूर्ववत्)।

(5) अवाष्वणत्
अव स्वन् अ त्—लङ्, शेष पूर्ववत्।

(6) अवषष्वाण
लिट्, द्वित्व, अभ्यासकार्य।

जहाँ स्वनन है, वहाँ अभ्यवहार (= भक्षण) क्रियाविशेष है।

भोजन०—भोजन अर्थ में वर्त्तमान स्वन् के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है।

(7) विस्वनति मृदङ्गः
यहाँ भोजन अर्थ नहीं है। अतः मूर्धन्य आदेश नहीं हुआ।

(3866) परिनिविभ्यः सेवसितसयसिवुसहसुट्-स्तुस्वञ्जाम् *70* (2275)

परि, नि, वि-इत्येतेभ्य उपसर्गेभ्य उत्तरेषां सेव, सित, सय, सिवु, सह, सुट्, स्तु, स्वन्ज-इत्येतेषां सकारस्य मूर्धन्य आदेशो भवति। परिषेवते, निषेवते, विषेवते, पर्यषेवत, न्यषेवत, व्यषेवत। परिषिषेविषते निषिषेविषिते। विषिषेविषते। सित-परिषितः, विषितः, निषितः। सय-परिषयः, निषयः, विषयः। सिव्-परिषीव्यति, निषीव्यति, विषीव्यति। पर्यषीव्यत्, न्यषीव्यत्, व्यषीव्यत्। पर्यसीव्यत्, न्यसीव्यत्, व्यसीव्यत्। सह-परिषहते, निषहते, विषहते। पर्यषहत, न्यषहत, व्यषहत। पर्यसहत। न्यसहत। व्यसहत। सुट्-परिष्करोति। पर्यष्करोत्। पर्यस्करोत्। स्तु-परिष्टौति, निष्टौति विष्टौति। पर्यष्टौत्, न्यष्टौत्, व्यष्टौत्। पर्यस्तौत्, न्यस्तौत्, व्यस्तौत्। ष्वञ्ज-'दन्शस-ञ्जस्वञ्जाम्' (6.4.25) इति नलोपः। परिष्वजते, विष्व-जते, निष्वजते। पर्यष्वजत, पर्यस्वजत। पूर्वेणैव सिद्धे स्तुस्वञ्जिग्रहणमुत्तरार्थम्, अड्व्यवाये विभाषा यथा स्यात्।

अर्थ—परि, नि तथा वि—इन उपसर्गों से उत्तर सेव्, सित्, सय्, सिव्, सह्, सुट्, स्तु तथा स्वन्ज्—इनके सकार को मूर्धन्य आदेश होता है।

उदा० (क) सेव् धातोः—

(1) परिषेवते
परि सेव् शप् त—टित आत्मनेपदानां०,
परि षेव् अ ते—मूर्धन्य आदेश। 'सात्पदाद्यो०' से निषेध प्राप्त था।

(2) निषेवते
नि सेव् अ त—मूर्धन्य आदेश।

(3) विषेवते
वि सेव् अ त—पूर्ववत्।

(4) पर्यषेवत
परि अ सेव् अ त—मूर्धन्य आदेश।

(5) न्यषेवत
नि सेव् अ त—लङ्, मूर्धन्य आदेश।

(6) व्यषेवत
वि सेव् अ त—लङ्।

(7) परिषिषेविषते
सेव् सन्—इट्, द्वित्व,
सेव् सेव् इ स—हलादिः शेषः,
सि सेविष—ह्रस्वः, आदेशप्रत्यययोः, धातुसंज्ञा,
सि सेविष शप् त—पूर्ववत् सनः, शप्, अतो गुणे,
परिषिषेविषते—मूर्धन्य आदेश।

(8) निषिषेविषते

1. न्यास० 8.3.69

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पूर्ववत् सन् आदि।

(9) विषिषेविषते

पूर्ववत् सन्, अभ्यासकार्य आदि।

(ख) सितस्य—

(10) परिषितः

षिञ् → सि—धात्वादेः षः सः, हलन्त्यम्,

सि क्त—लशक्वतद्धिते,

परि सित—सात्पदा० से मूर्धन्य आदेश-निषेध, प्रकृत सूत्र के द्वारा मूर्धन्य आदेश हुआ,

परिषित—सु।

(11) निषितः (पूर्ववत्)।

(12) विषितः (पूर्ववत्)।

(ग) सयस्य—

षु → सु अच्—'एरच्' से अच्,

(13) परिषयः

परि सय—मूर्धन्य आदेश।

(14) निषयः (पूर्ववत्)।

(15) विषयः (पूर्ववत्)।

(घ) सिव् धातोः—

(16) परिषीव्यति

षिवु → सिव्—धात्वादेः षः सः, उपदेशेऽजनु०,

परि सिव् श्यन् तिप्—दिवादिभ्यः श्यन्, अनुबन्धलोप,

परि सिव् य ति—मूर्धन्य आदेश,

परि षीव् य ति—दीर्घ आदेश। हलि च।

(17) निषीव्यति

नि सिव् ति—पूर्ववत्।

(18) विषीव्यति

पूर्ववत् मूर्धन्य आदेश।

(19) पर्यषीव्यत्

सिव् श्यन् त्—'इतश्च' से इकारलोप,

परि अ षीव् य त्—दीर्घत्व, मूर्धन्य आदेश, यण्।

(20) न्यषीव्यत्

नि सिव् ति—लङ्, पूर्ववत्।

(21) व्यषीव्यत्

पूर्ववत् मूर्धन्य आदेश।

(22) पर्यसीव्यत्

परि अ सिव् श्यन् त्—लङ्, सभी कार्य पूर्ववत्, पक्ष में मूर्धन्य आदेश नहीं हुआ।

(23) न्यसीव्यत्

पूर्ववत् मूर्धन्य अभाव।

(24) व्यसीव्यत् (पूर्ववत्)।

(ङ) सह् धातोः—

(25) परिषहते

षह → सह्—धात्वादेः षः सः, उपदेशेऽजनु०,

परि सह् शप् त—लट्, अनुबन्धलोप,

परि षह ते—टित आत्मनेपदानां०, मूर्धन्य आदेश।

(26) निषहते

पूर्ववत् मूर्धन्य आदेश।

(27) विषहते (पूर्ववत्)।

(28) पर्यषहत

सह् शप् त—लङ्, अनुबन्धलोप,

परि अट् षहत—मूर्धन्य आदेश, अट्।

(29) न्यषहत (पूर्ववत्)।

(30) व्यषहत

वि सह् अ त—पूर्ववत्।

(च) सुट् आगमस्य—

(31) परिष्करोति

परि कृ ति—'तनादिकृञ्भ्य उः' से 'उ',

परि स् कर् उ ति—धातु को गुण, 'सम्पर्युपे०' से 'सुट्', सुट् कात्पूर्वः, सुट् के अनादेश होने से मूर्धन्य आदेश प्राप्त नहीं था,

परिष् करोति—उकार को गुण, मूर्धन्य आदेश।

(32) पर्यष्करोत्

परि कृ त्—लङ्, इतश्च, शेष पूर्ववत्,

परि अष् करोत्—मूर्धन्य आदेश।

(छ) स्तुधातोः—

(33) परिष्टौति

परि स्तु तिप्—शप्, शप् का लुक्, वृद्धि,

परि स्तौ ति—मूर्धन्य आदेश,

परि ष् टौ ति—ष्टुना ष्टुः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(34) निष्टौति
नि स्तु ति—पूर्ववत्।

(35) विष्टौति
वि स्तु ति—पूर्ववत्।

(36) पर्यष्टौत्
परि स्तु त्—लङ्, इतश्च, शेष पूर्ववत्,
परि अ स्तौ त्—मूर्धन्य आदेश।

(37) न्यष्टौत्
पूर्ववत् सभी कार्य।

(38) व्यष्टौत्
पूर्ववत् सभी कार्य।

(39) पर्यस्तौत्
परि अ स्तौ त्—इस दशा में 'सिवादीनां०' से पाक्षिक मूर्धन्य आदेश।

(40) न्यस्तौत्
नि स्तु त्—पूर्ववत्।

(41) व्यस्तौत्
सभी कार्य पूर्ववत्।

(ज) ष्वन्ज् धातोः—

(42) परिष्वजते
परि स्वन्ज् अ त—'दन्शसन्जस्वन्जाम्' से नकारलोप,
परि स्वजते—टित आत्मनेपदा०,
परिष्वजते—मूर्धन्य आदेश।

(43) निष्वजते
नि श्वन्ज् अ त—पूर्ववत्।

(44) विष्वजते
पूर्ववत् मूर्धन्य आदेश।

(45) पर्यष्वजत
स्वज् अ त—लङ्,
परि अ ष्वज् अ त—मूर्धन्य आदेश।

(46) पर्यस्वजत
परि अ स्वज् अ त—अट् का व्यवधान होने पर पक्ष में मूर्धन्य आदेश नहीं हुआ।

पूर्वेणैव०—पूर्व सूत्र के द्वारा यहाँ मूर्धन्य आदेश सिद्ध ही था। अतः स्तु तथा स्वन्ज् का ग्रहण उत्तरशास्त्र के लिए है; ताकि अट् का व्यवधान होने पर विकल्प हो जाय।

(3867) सिवादीनां वाड्व्यवायेऽपि *71* (2359)

अनन्तरसूत्रे 'सिवुसहसुट्स्तुस्वञ्जाम्' (8.3.70) इति सिवादयः। सिवादीनामड्व्यवायेऽपि परिनिविभ्य उत्तरस्य सकारस्य वा मूर्धन्यो भवति। तथा चैवोदाहृतम्।

अर्थ—पूर्व सूत्रपठित 'सिवुसहसुट्स्तुस्वञ्जाम्' पद के द्वारा सिवादि का ग्रहण होता है। परि, नि तथा वि से उत्तर सिव् आदि के सकार को अट् का व्यवधान होने पर भी विकल्प से मूर्धन्य आदेश होता है।

उदाहरण पिछले सूत्र पर दिये गये हैं।

(3868) अनुविपर्यभिनिभ्यः स्यन्दतेरप्राणिषु *72* (2349)

अनु, वि, परि, अभि, नि–इत्येतेभ्य उत्तरस्य स्यन्दतेरप्राणिषु सकारस्य वा मूर्धन्यादेशो भवति। अनुष्यन्दते, विष्यन्दते, परिष्यन्दते, अभिष्यन्दते तैलम्। निष्यन्दते। अनुस्यन्दते, विस्यन्दते, परिस्यन्दते, अभिस्यन्दते, निस्यन्दते। अप्राणिष्विति किम्? अनुस्यन्दते मत्स्य उदके। प्राण्यप्राणिविषयस्यापि स्यन्दतेरयं विकल्पो भवति–अनुष्यन्देते मत्स्योदके, अनुस्यन्देते। 'अप्राणिषु' इति पर्युदासोऽयम्, न प्रसज्यप्रतिषेधः।

अर्थ—यदि प्राणी अर्थ गम्यमान न हो तो अन, वि, परि, अभि तथा नि—इनसे उत्तर स्यन्द् धातु के सकार के स्थान पर विकल्प से मूर्धन्य आदेश होता है।

उदा० (1) अनुष्यन्दते
अनु स्यन्द् अ त—'आदेशप्रत्यययोः' की प्रवृत्ति न होने से प्रकृत सूत्र से मूर्धन्य आदेश।

(2) विष्यन्दते (पूर्ववत्)।

(3) परिष्यन्दते
मूर्धन्य आदेश।

(4) अभिष्यन्दते
मूर्धन्य आदेश।

(5) निष्यन्दते (पूर्ववत्)।

(6) अनुस्यन्दते
पक्ष में मूर्धन्य अभाव।

(7) विस्यन्दते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पक्ष में मूर्धन्य अभाव।

(8) परिस्यन्दते (पूर्ववत्)।

(9) अभिस्यन्दते (पूर्ववत्)।

(10) निस्यन्दते (पूर्ववत्)।

अप्राणि०—प्राणी अर्थ गम्यमान हो तो मूर्धन्य आदेश नहीं होता है। यथा—

(11) अनुस्यन्दते मत्स्य उदके
मूर्धन्य आदेश नहीं हुआ।

प्राणी तथा प्राणीतर अर्थ गम्यमान रहते यह विकल्प होता है।

अनुष्यन्देते मत्स्योदके।
अनुस्यन्देते मत्स्योदके।

अप्राणि०—'अप्राणिषु' पद में पर्युदास प्रतिषेध है। प्रसज्य प्रतिषेध नहीं है।

(3869) वेः स्कन्देरनिष्ठायाम् *73* (2398)

वेरुपसर्गादुत्तरस्य स्कन्देः सकारस्य मूर्धन्यो वा भवति अनिष्ठायाम्। विष्कन्ता, विस्कन्ता। विष्कन्तुम्, विस्कन्तुम्। विष्कन्तव्यम्, विस्कन्तव्यम्। अनिष्ठायामिति किम्? विस्कन्नः।

अर्थ—'वि' उपसर्ग से उत्तर स्कन्द् धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश विकल्प से होता है, परन्तु निष्ठा प्रत्यय में नहीं होता है।

उदा० (1) विष्कन्ता
वि स्कन्द् तृच्—खरि च, झरो झरि सवर्णे,
वि ष्कन्ता—मूर्धन्य आदेश, सु।

(2) विस्कन्ता
पक्ष में मूर्धन्य नहीं हुआ।

(3) विष्कन्तुम्
वि स्कन्द् तुमुन्—अनुबन्धलोप,
विष् कन्त् तुम्—मूर्धन्य आदेश, सु।

(4) विस्कन्तुम्
पक्ष में मूर्धन्य अभाव।

(5) विष्कन्तव्यम्
वि स्कन्द् तव्यत्—पूर्ववत्, विभक्तिकार्य।

(6) विस्कन्तव्यम्
पक्ष में मूर्धन्य अभाव।

अनिष्ठा०—निष्ठा में मूर्धन्य आदेश नहीं होता है।

(7) विस्कन्नः
वि स्कन्द् क्त—मूर्धन्य आदेश नहीं हुआ।

(3870) परेश्च *74* (2399)

परिशब्दाच्चोत्तरस्य स्कन्देः सकारस्य वा मूर्धन्यो भवति। परिष्कन्ता, परिष्कन्तुम्, परिष्कन्तव्यम्। परिस्कन्ता, परिस्कन्तुम्, परिस्कन्तव्यम्। पृथग्योगकरणसामर्थ्यात् 'अनिष्ठायाम्' इत्येतन्नानुवर्तते-परिष्कण्णः, परिस्कन्नः।

अर्थ—परि शब्द से उत्तर स्कन्द् के सकार को मूर्धन्य आदेश विकल्प से होता है।

उदा० (1) परिष्कन्ता
परि स्कन्द् तृच्—खरि च, झरो झरि सवर्णे,
परिष्कन्तृ सु—मूर्धन्य आदेश।

(2) परिस्कन्ता
पक्ष में मूर्धन्य आदेश अभाव।

(3) परिष्कन्तुम्
परि स्कन्द् तुमुन्—पूर्ववत्।

(4) परिस्कन्तुम्
पक्ष में नहीं हुआ।

(5) परिष्कन्तव्यम्
मूर्धन्य आदेश।

(6) परिस्कन्तव्यम्
पक्ष में मूर्धन्य आदेश नहीं हुआ।

पृथग्०—पृथक् योगकरणसामर्थ्य से 'अनिष्ठायाम्' का अनुवर्त्तन नहीं होता है। यथा—

(7) परिष्कण्णः
परि स्कन्द् क्त—लशक्वतद्धिते,
परि स्कन् न् न—रदाभ्यां निष्ठातो०,
परिष्कन्न सु—मूर्धन्य आदेश, णत्व।

(8) परिस्कन्नः
पक्ष में मूर्धन्य आदेश अभाव।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(3871) परिस्कन्दः प्राच्यभरतेषु *75* (3026)

'परिस्कन्द' इति मूर्धन्याभावो निपात्यते प्राच्यभरतेषु प्रयोगविषयेषु। पूर्वेण मूर्धन्ये प्राप्ते तदभावो निपात्यते। परिस्कन्दः। अन्यत्र परिष्कन्दः। अचि निपातनम्। अथ वा-निष्ठातकारस्य लोपः। भरतग्रहणं प्राच्यविशेषणम्।

अर्थ—प्राच्य भरत लोगों के प्रयोग-विषय में मूर्धन्य अभाव से युक्त 'परिस्कन्द' शब्द निपातनसिद्ध है। पूर्व सूत्र से मूर्धन्य आदेश प्राप्त होने पर उसके अभाव का निपातन कहा है।

उदा० (1) परिस्कन्दः
मूर्धन्य आदेश का अभाव।

(2) परिष्कन्दः
अन्यत्र मूर्धन्य आदेश।

अचि०—यह अच् में निपातन है। अथवा निष्ठा के तकार का लोप है। भरत शब्द का ग्रहण 'प्राच्य' का विशेषण है।

(3872) स्फुरतिस्फुलत्योर्निर्निविभ्यः *76* (2537)

स्फुरितस्फुलत्योः सकारस्य निस्, नि, वि-इत्येतेभ्य उत्तरस्य वा मूर्धन्यादेशो भवति। स्फुरति-निष्फुरति, निस्स्फुरति। निष्फुरति, निस्फुरति। विष्फुरति, विष्फुरति। स्फुलति-निष्फुलति, निस्स्फुलति। निष्फुलति, निस्फुलति। विष्फुलति, विस्फुलति।

अर्थ—निस्, नि तथा वि—इनसे उत्तर स्फुर् तथा स्फुल् धातुओं के सकार के स्थान पर विकल्प से मूर्धन्य आदेश होता है।

उदा० (1) निष्फुरति
निस् स्फुर् श ति—शप् को बाध कर 'तुदादिभ्यः शः' से 'श',
निस् ष्फुरति—लशक्वत०, मूर्धन्य आदेश,
निष् ष्फुरति—ष्टुना ष्टुः।

(2) निस्स्फुरति
पक्ष में मूर्धन्य-अभाव।

(3) निष्फुरति
नि स्फुर् श ति—मूर्धन्य आदेश,
निष्फुर अ ति—लशक्वत०।

(4) निस्फुरति
पक्ष में मूर्धन्य-अभाव।

(5) विष्फुरति
मूर्धन्य आदेश।

(6) विस्फुरति
मूर्धन्य-अभाव।

(7) निष्फुलति
निस् स्फुल् श तिप्—अनुबन्धलोप,
निष् ष्फुलति—मूर्धन्य आदेश, ष्टुना ष्टुः।

(8) निस्स्फुलति
पक्ष में मूर्धन्य नहीं हुआ।

(9) निष्फुलति
मूर्धन्य आदेश।

(10) निस्फुलति
मूर्धन्य-अभाव।

(11) विष्फुलति
मूर्धन्य आदेश।

(12) विस्फुलति
मूर्धन्य-अभाव।

(3873) वेः स्कभ्नातेर्नित्यम् *77* (2556)

वेरुत्तरस्य स्कभ्नातेः सकारस्य नित्यं मूर्धन्यादेशो भवति। विष्कभ्नाति। विष्कम्भिता। विष्कम्भितुम्। विष्कम्भितव्यम्।

अर्थ—'वि' से उत्तर स्कभ् धातु के सकार के स्थान पर मूर्धन्य आदेश नित्य होता है।

उदा० (1) विष्कभ्नाति
वि स्कभ् श्ना तिप्—क्र्यादिभ्यः श्ना, लशक्वतद्धिते, अनुनासिकलोप,
वि ष् क भ् ना ति—मूर्धन्य आदेश।

(2) विष्कम्भिता
वि स्कम्भ् तृच्—मूर्धन्य आदेश।

(3) विष्कम्भितुम् (पूर्ववत्)।

(4) विष्कम्भितव्यम्
वि स्कम्भ् तव्यत्—इट्, पूर्ववत् मूर्धन्य आदेश।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(3874) इणः षीध्वंलुङ्लिटां धोऽङ्गात् *78* (2247)

'मूर्धन्य' इति वर्तते। इणन्तादुङ्गादुत्तरेषां षीध्वंलुङ्लिटां यो धकारस्तस्य मूर्धन्यादेशो भवति। च्योषीढ्वम्। प्लोषीढ्वम्। लुङ्-अच्योढ्वम्। अप्लोढ्वम्। लिट्-चकृढ्वे, ववृढ्वे। 'इण्कोः' (8.3.57) इति वर्तमाने पुनरिण्ग्रहणं कवर्गनिवृत्त्यर्थम्। पक्षीध्वम्। यक्षीध्वम्। षीध्वंलुङ्लिटामिति किम्? स्तुध्वे। अस्तुध्वम्। अङ्गादिति किम्? परिवेविषीध्वम्। अर्थवद्ग्रहणादपि सिद्धम्? तत्तु नाश्रितम्।

अर्थ—'मूर्धन्यः' का अनुवर्त्तन है। इण् है अन्त में जिसके, ऐसे अंग से उत्तर षीध्वम्, लुङ् तथा लिट्—इनका जो धकार, उसके स्थान पर मूर्धन्य आदेश होता है।

उदा० (1) च्योषीढ्वम्
च्यु सीयुट् ध्वम्—आशीर्लिङ्, अनुबन्धलोप,
च्यु सीय् ध्वम्—'आर्धधातुकस्येड्०' से प्राप्त इट् आगम का एकाच उपदेशेऽनु० से निषेध,
च्यो षीय् ध्वम्—सार्वधातुकार्धधा० से अंग को गुण,
च्यो षी ढ्वम्—यकारलोप, मूर्धन्य आदेश।

(2) प्लोषीढ्वम्
प्लु ध्वम्—पूर्ववत्।

(3) अच्योढ्वम्
च्यु ध्वम्—लुङ्, च्लि लुङि, च्लेः सिच्,
च्यु स् ध्वम्—अनुबन्धलोप, अंग को गुण,
अ च्यो ध्वम्—अट्, 'धि च' से सकारलोप,
अच्योढ्वम्—मूर्धन्य आदेश।

(4) अप्लोढ्वम् (पूर्ववत्)।

(5) चकृढ्वे
कृ ध्वम्—लिट्, द्वित्व,
चकृ ध्वे—अभ्यासकार्य, टित आत्मने०,
चकृढ्वे—मूर्धन्य आदेश।

(6) ववृढ्वे
वृ ध्वम्—द्वित्व आदि पूर्ववत्।

इण्को०—'इण्कोः' का अनुवर्त्तन सुलभ होने पर भी 'इण्' का ग्रहण कवर्ग की निवृत्ति के लिए है।

(7) पक्षीध्वम्
पच् षीम्—आशीर्लिङ्, सीयुट्,
पच् षीय् ध्वम्—मूर्धन्य,
पक् षी ध्वम्—यकारलोप, चोः कुः, कवर्ग से उत्तर होने के कारण धकार को मूर्धन्य आदेश नहीं हुआ।

(8) यक्षीध्वम्
यज्—पूर्ववत्।

षीध्व०—षीध्वम्, लुङ् तथा लिट्—इनका जो धकार, उसके धकार को मूर्धन्य आदेश होता है।

(9) स्तुध्वे
स्तु ध्वम्—शप्, शप् का लुक्,
स्तुध्वे—टित आत्मनेपदा०, मूर्धन्य नहीं हुआ।

(10) अस्तुध्वम्
स्तु ध्वम्—लङ्, शप् का लुक्,
अस्तु ध्वम्—अट्, मूर्धन्य आदेश नहीं हुआ।

अङ्गा०—अंगसंज्ञक से उत्तर धकार को मूर्धन्य आदेश होता है।

(11) परिवेविषीध्वम्
विष् ध्वम्—लिङ्,
विष् शप् ध्वम्—कर्त्तरि शप्, जुहोत्यादिभ्यः श्लुः,
विष् सीयुट् ध्वम्—'श्लौ' से द्वित्व, सकारलोप,
वि विष् ईय् ध्वम्—हलादिः शेषः, यकारलोप, लोपो व्योर्वलि',
परि वे विष् ई ध्वम्—'णिजां त्रयाणां०' से अभ्यास को गुण,
यहाँ 'षीध्वम्' है, परन्तु यह अंग से उत्तर नहीं है। अतः मूर्धन्य आदेश नहीं होता है।

अर्थव०—'अर्थवत्' इस प्रकार ग्रहण करने से सिद्ध होता है। उसका आश्रय नहीं किया गया है।

(3875) विभाषेटः *79* (2325)

इणः परस्मादिट उत्तरेषां षीध्वंलुङ्लिटां यो धकारस्तस्य मूर्धन्यादेशो भवति विभाषा। लविषीढ्वम्, लविषीध्वम्। पविषीढ्वम्, पविषीध्वम्। लुङ्-अलविढ्वम्, अलविध्वम्। लिट्-लुलुविढ्वे, लुलुविध्वे। इण इत्येव-आसिषीध्वम्। अथेह कथं भवितव्यम्-उपदिदीयिध्वे? केचिदाहुः-इणन्तादङ्गादुत्तरस्य इट आनन्तर्यं युटा व्यवहितमिति न भवितव्यं ढत्वेनेति। अपरेषां दर्शनम्- 'अङ्गात्' (8.3.78) इति निवृत्तम्, 'इणः' इत्यनुवर्त्तते, ततश्च

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यकारादेव इणः परोऽनन्तर इडिति पक्षे भवितव्यं मूर्धन्येन' इति ।

अर्थ—इण् है अन्त में जिसके, उससे उत्तर जो इट्, उससे उत्तर षीध्वम्, लुङ् तथा लिट्—इनके धकार को विकल्प से मूर्धन्य आदेश होता है ।

उदा० (1) लविषीढ्वम्
लू ध्वम्—आशीर्लिङ्,
लू सीयुट् ध्वम्—इट् आगम,
लो इ सीय् ध्वम्—गुण, अनुबन्धलोप,
लविषीय् ध्वम्—मूर्धन्य (षकार),
लविषीढ्वम्—यकारलोप, पाक्षिक मूर्धन्य आदेश ।

(2) लविषीध्वम्
पक्ष में मूर्धन्य-अभाव ।

(3) पविषीढ्वम्
पू ध्वम्—पूर्ववत् सभी कार्य ।

(4) पविषीध्वम्
पक्ष में मूर्धन्य अभाव ।

(5) अलविढ्वम्
लू ध्वम्—लुङ्,
लू सिच् ध्वम्—च्लेः सिच्, अनुबन्धलोप,
लविढ्वम्—धकार को मूर्धन्य आदेश ।

(6) अलविध्वम्
पक्ष में धकार को मूर्धन्य आदेश अभाव ।

(7) लुलुविढ्वे
लू ध्वम्—लिट्, इट्,
लू लू इ ध्वम्—द्वित्व,
लु लू इ ध्वम्—ह्रस्वः,
लु लुव् इ ध्वम्—अचिश्नु धातु० से 'उवङ्',
लु लु विढ्वे—टित आत्मनेपदा०,
लु लु विढ्वे—पाक्षिक मूर्धन्य आदेश ।

(8) लुलुविध्वे
पक्ष में ढकार नहीं हुआ ।

इण०—इणन्त अंग से उत्तर धकार को मूर्धन्य आदेश होता है ।

(9) आसिषीध्वम्
आस् ध्वम्—लिङ्,
आस् इ सीय् ध्वम्—सीयुट्, इट्, अनुबन्धलोप,
आसि षीध्वम्—सकार को मूर्धन्य आदेश, यकारलोप, यहाँ इट् सहित षीध्वम् का धकार है; परन्तु यह इण् अन्त वाले अंग से उत्तर नहीं है । अतः मूर्धन्य आदेश नहीं हुआ ।

अथेह०—'उपदिदीयिध्वे' में धकार को मूर्धन्य आदेश क्यों नहीं होता है ?

(समा०) कुछ विद्वान् कहते हैं कि यहाँ इणन्त से उत्तर इट् का आनन्तर्य युट् आगम के द्वारा व्यवहित है । अतः ढत्व नहीं होना चाहिए ।

अपरे०—दूसरे विद्वान् कहते हैं कि 'अङ्गात्' पद की निवृत्ति हो चुकी है तथा केवल 'इणः' पद का अधिकार है । अतः 'यकार से ही इण् से अनन्तर पर जो इट्' इस प्रकार पक्ष में मूर्धन्य आदेश होना चाहिए ।

(10) उपदिदीयिध्वे
दीङ् लिट्—हलन्त्यम्,
दी ध्वम्—आर्धधातुकस्येड्, एकाच उपदेशे०, कृसृभृ०,
दी युट् इट् ध्वम्—'दीङो' युडचि०' से 'युट्',
दी दी य् इ ध्वम्—अनुबन्धलोप, द्वित्व,
उपदिदीयिध्वे—ह्रस्वः, टित आत्मने० ।

(3876) समासेऽङ्गुलेः सङ्गः *80* (1019)

सङ्गसकारस्याङ्गुलेरुत्तरस्य मूर्धन्य आदेशो भवति समासे । अङ्गुलेः सङ्गः-अङ्गुलिषङ्गः । अङ्गुलिषङ्गा यवागूः । अङ्गुलिषङ्गो गाः सादयति । समास इति किम्? अङ्गुलेः सङ्गं पश्य ।

अर्थ—अंगुलि शब्द से उत्तर संग शब्द के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है, समास में ।

उदा० (1) अङ्गुलिषङ्गः
अङ्गुलेः सङ्गः—समास, सुप् लुक्,
अङ्गुलि षङ्ग सु—मूर्धन्य आदेश ।
इसी प्रकार-अङ्गुलिषङ्गा यवागूः ।

समास०—समास में ही सकार को मूर्धन्य आदेश होता है । यथा—
अङ्गुलेः सङ्गं पश्य—यहाँ नहीं हुआ ।

(3877) भीरोः स्थानम् *81* (1020)

स्थानसकारस्य भीरोरुत्तरस्य मूर्धन्यादेशो भवति । भीरुष्ठानम् । समास इत्येव-भीरोः स्थानं पश्य ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—भीरु शब्द से उत्तर 'स्थान' शब्द के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है।

उदा० (1) भीरुष्ठानम्
भीरोः स्थानम्—समास,
भीरु ष् थान—मूर्धन्य आदेश,
भी रु ष् ठान सु—ष्टुना ष्टुः।

समास०—समास में मूर्धन्य आदेश होता है। यथा—
भीरोः स्थानम्—मूर्धन्य आदेश नहीं हुआ।

(3878) अग्नेः स्तुत्स्तोमसोमाः *82* (924)

अग्नेरुत्तरस्य स्तुत्, स्तोम, सोम-इत्येतेषां सकारस्य मूर्धन्यादेशो भवति समासे। अग्निष्टुत्। अग्निष्टोमः। अग्नीषोमः। *अग्नेर्दीर्घात्सोमस्येष्यते*। तेनेह न भवति-अग्निसोमौ माणवकौ। तथा च ज्योतिः-अग्निः, सोमः-लताविशेषः-अग्निसोमौ तिष्ठतः। समास इत्येव-अग्ने सोमः।

अर्थ—समास में अग्नि शब्द से उत्तर स्तुत्, स्तोम तथा सोम—इनके सकार के स्थान पर मूर्धन्य आदेश होता है।

उदा० (1) अग्निष्टुत्
अग्नि स्तु क्विप्—सर्वापहारलोप, उपपद समास,
अग्नि स्तुत्—'ह्रस्वस्य पिति' से 'तुक्' आगम, सु, सुलुक्,
अग्नि ष् तुत्—मूर्धन्य आदेश, ष्टुना ष्टुः।

(2) अग्निष्टोमः
अग्नि स्तोम—षष्ठी समास,
अग्नि ष् तोम—मूर्धन्य आदेश, ष्टुना ष्टुः, सु।

(3) अग्नीषोमौ[1]
अग्निश्च सोमश्च—चार्थे द्वन्द्वः,
अग्निसोम—'इदग्नेः सोमवरुणयोः' से ईकार,
अग्नीषोम औ—मूर्धन्य आदेश।

अग्ने०—दीर्घ वर्णान्त 'अग्नी' इस शब्द से उत्तर सोम शब्द के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। अतः निम्नलिखित में नहीं होता है—

अग्निसोमौ माणवकौ

यहाँ ईकार नहीं हुआ। अतः मूर्धन्य आदेश भी नहीं होता है।

1. अग्नीषोम इत्येकवद्भावोऽयुक्तः—ईश्वरचन्द्रः (व्याख्याकारः)।

'अग्नि' का अर्थ ज्योति है तथा 'सोम' एक लता का नाम है। यथा—

अग्निसोमौ तिष्ठतः।

समास०—समास में सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। यथा—

अग्ने सोमः—यहाँ समास नहीं हुआ। अतः मूर्धन्य आदेश नहीं हुआ।

(3879) ज्योतिरायुषः स्तोम् *83* (1021)

ज्योतिस्, आयुस्-इत्येताभ्यामुत्तरस्य स्तोमसकारस्य मूर्धन्यादेशो भवति समासे। ज्योतिष्टोमः। आयुष्टोमः। (ज्योतिःष्टोमः, आयुःष्टोमः।) 'समासे' इत्येव-ज्योतिः स्तोमं दर्शयति।

अर्थ—समास में ज्योतिस् तथा आयुस् शब्दों से उत्तर स्तोम शब्द के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है।

उदा० (1) ज्योतिष्टोमः
ज्योति स्तोमः—षष्ठी समास, मूर्धन्य,
ज्योति स् ष् तोम—ष्टुत्व।

(2) आयुष्टोमः
पूर्ववत् षष्ठी समास, मूर्धन्य आदेश।

समास०—समास में सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। यथा—

ज्योतिः स्तोमं दर्शयति—समास नहीं हुआ, अतः मूर्धन्य आदेश नहीं हुआ।

(3880) मातृपितृभ्यां स्वसा *84* (984)

मातृ, पितृ-इत्येताभ्यामुत्तरस्य स्वसृसकारस्य समासे मूर्धन्यादेशो भवति। मातृष्वसा। पितृष्वसा।

अर्थ—समास में मातृ व पितृ शब्दों से उत्तर जो स्वसृ शब्द, उसके सकार को मूर्धन्य आदेश होता है।

उदा० (1) मातृष्वसा
मातुः स्वसा—षष्ठी समास,
मातृ स्वसृ—सुप् लुक्,
मातृष्वसृ सु—मूर्धन्य आदेश।

(2) पितृष्वसा
पूर्ववत् समास, मूर्धन्य आदेश।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(3881) मातुःपितुर्भ्यामन्यतरस्याम् *85* (983)

मातुर्, पितुर्-इत्येताभ्यामुत्तरस्य स्वसृशब्दस्यान्यतरस्यां मूर्धन्यादेशो भवति समासे। मातुःष्वसा, मातुःस्वसा। पितुःष्वसा, पितुःस्वसा। मातुःपितुरिति रेफान्तयोरेतद्-ग्रहणम्। एकदेशविकृतस्यानन्यत्वाद् विसर्जनीयान्तात् सकारान्ताच्च षत्वं भवति। समास इत्येव-वाक्ये मा भूत् मातुः स्वसेत्येव नित्यं भवति।

अर्थ—मातुर् तथा पितुर्—इन शब्दों से उत्तर जो स्वसृ शब्द, उसके सकार को मूर्धन्य आदेश विकल्प से होता है, समास में।

उदा० (1) मातुःष्वसा
मातुः स्वसा—समास, 'विभाषा स्वसृपत्योः' से अलुक्,
मातुः स्वसृ—मूर्धन्य आदेश,
मातुःष्वसृ सु—विभक्तिकार्य।

(2) मातुःस्वसा
पक्ष में मूर्धन्य आदेश अभाव।

(3) पितुःष्वसा
पूर्ववत् मूर्धन्य आदेश।

(4) पितुः स्वसा
मूर्धन्य आदेश अभाव।

मातुः—सूत्र में 'मातुः पितुर्' इस प्रकार रेफान्त पदों का ग्रहण है। 'एकदेशविकृतमनन्यवद् भवति' परिभाषा के द्वारा विसर्जनीयान्त व सकारान्त से षत्व होता है।

भाव यह है कि उत्तर पद 'पितुर्' में रेफान्त का ग्रहण होने से उसके साहचर्य से पूर्व पद 'मातुर्' को भी रेफान्त का ग्रहण जानना चाहिए। यदि ऐसा होता है तो रेफ का 'खरवसानयो०' से विसर्जनीय करने पर उसका 'वा शरि' से पक्ष में सकार करने पर विसर्जनीयान्त तथा सकारान्त से उत्तर को मूर्धन्य आदेश प्राप्त नहीं होता है।

इस शंका का समाधान यह है कि 'एकदेशविकृतमनन्यवत्' परिभाषा से मूर्धन्य आदेश हो जाता है। कारण कि यदि रेफान्त (मातुर् पितुर्) पदों का ग्रहण न किया जाता और विसर्जनीयान्त का ग्रहण किया जाता तो सकारान्त पक्ष में मूर्धन्य आदेश प्राप्त न होता। यदि सकारान्त (मातुस्, पितुस्) पदों का ग्रहण किया जाता तो विसर्जनीयान्त पक्ष में मूर्धन्य आदेश न होता। अतः रेफान्त का ग्रहण है।

समास०—समास में सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। वाक्य में नहीं होता। यथा—मातुःस्वसा।

(3882) अभिनिसः स्तनः शब्दसंज्ञायाम् *86* (3193)

अभि, निस्-इत्येतस्मादुत्तरस्य स्तनतिसकारस्य मूर्धन्यादेशो भवति अन्यतरस्यां शब्दसंज्ञायां गम्यमानायाम्। अभिनिष्टानो वर्णः। अभिनिस्तानो वर्णः। अभिनिष्टानो विसर्जनीयः। अभिनिस्तानो विसर्जनीयः। शब्दसंज्ञायामिति किम्? अभिनिस्तनति मृदङ्गः। 'समासे' इति अतः प्रभृति निवृत्तम्।

अर्थ—शब्द संज्ञा गम्यमान हो तो अभि तथा निस् शब्दों से उत्तर स्तन् के सकार को मूर्धन्य आदेश विकल्प से होता है।

उदा० (1) अभिनिष्टानो वर्णः
अभिनिस्तन्यतेऽनेन—'अकर्त्तरि च कारके०' से 'घञ्,
अभि निस् तन् अ—प्रादि समास, लशक्वत०, हलन्त्यम्,
अभि निस् तान् अ—अत उपधायाः,
अभिनिष् टान सु—मूर्धन्य आदेश।

इसी प्रकार—अभिनिष्टानो विसर्जनीयः।

(2) अभिनिस्तानो वर्णः
पक्ष में मूर्धन्य आदेश नहीं हुआ।

इसी प्रकार—अभिनिस्तानो विसर्जनीयः।

शब्द०—शब्दसंज्ञा गम्यमान हो तो मूर्धन्य आदेश होता है।

(3) अभिनिस्तनति मृदङ्गः
यहाँ शब्द संज्ञा गम्यमान नहीं है। अतः मूर्धन्य आदेश नहीं हुआ।

समास०—'समासे' का अधिकार यहाँ से लेकर निवृत्त हो जाता है।

(3883) उपसर्गप्रादुर्भ्यामस्तिर्यच्परः *87* (2472)

उपसर्गस्थान्निमित्तात्प्रादुस्शब्दाच्चोत्तरस्य यकारपरस्याच्परस्य चास्तिसकारस्य मूर्धन्यो भवति। अभिषन्ति, निषन्ति, विषन्ति, प्रादुःषन्ति। अभिष्यात्, निष्यात्, विष्यात्, प्रादुःष्यात्। उपसर्गादिति किम्? दधि स्यात्। मधु स्यात्। अस्तीति किम्? अनुसृतम्। विसृतम्। अथासत्यपि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अस्तिग्रहणे सकारमेव प्रति उपसर्ग आश्रीयते, प्रादुःशब्दस्य च कृभ्वस्तिष्वेव प्रयोग इत्यन्यत्राप्रसङ्गः ? तथाप्येतत् प्रत्युदाहर्तव्यम्-अनुसूते अनुसूः, अनुस्वोऽपत्यम् आनुसेयः । शुभ्रादित्वाड् (4.1.123) ढक्, 'ढे लोपोऽकद्र्वा' (6.4.147) इत्युवर्णलोपः । यच्यर इति किम् ? निस्तः । विस्तः । प्रादुस्तः ।

अर्थ—उपसर्ग में स्थित निमित्त तथा प्रादुस् शब्द से उत्तर यकारपरक तथा अच् परक जो अस् धातु का सकार, उसे मूर्धन्य आदेश होता है।

उदा० (1) अभिषन्ति
अभि अस् झि—शप्, अदिप्रभृतिभ्यः शपः,
अभि अस् अन्ति—झोऽन्तः, 'श्नसोरल्लोपः' से अकारलोप,
अभिसन्ति—मूर्धन्य आदेश।

(2) निषन्ति
पूर्ववत् मूर्धन्य आदेश।

(3) विषन्ति
मूर्धन्य आदेश।

(4) प्रादुःषन्ति (पूर्ववत्)।

(5) अभिष्यात्
अभि अस् तिप्—लिङ्, 'इतश्च' से इकारलोप,
अभि अस् यासुट् त्—अनुबन्धलोप,
अभि स्यास् त्—अकारलोप,
अभि स्यात्—सकारलोप, मूर्धन्य आदेश।

(6) निष्यात् (पूर्ववत्)।

(7) विष्यात्
पूर्ववत् मूर्धन्य आदेश।

(8) प्रादुःष्यात् (पूर्ववत्)।

उपसर्गा०—उपसर्ग में स्थित निमित्त से उत्तर मूर्धन्य आदेश होता है।

(9) दधि स्यात्
'दधि' में इकार मूर्धन्य आदेश का निमित्त है, परन्तु 'दधि' उपसर्ग नहीं है। अतः निमित्त इकार से उत्तर यकारपरक अस् धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश नहीं हुआ।

(10) मधु स्यात्
पूर्ववत् मूर्धन्य आदेश नहीं हुआ।

अस्तीति०—अस् धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है।

(11) अनुसृतम्
'अन' उपसर्ग है, इसमें उकार निमित्त है, उकार से उत्तर सकार है परन्तु वह 'अस्' धातु का नहीं है। अतः इसे मूर्धन्य आदेश नहीं होता है।

(12) विसृतम्
पूर्ववत् मूर्धन्य आदेश नहीं होता है।

अथास०—अस् धातु का ग्रहण न होने पर भी सकार के प्रति ही उपसर्ग का आश्रय किया जाता है। प्रादुस् शब्द का कृ भू अस्ति—इनमें ही प्रयोग है—यह अन्यत्र प्रसंग है। तदपि यह प्रत्युदाहरण है—

(13) आनुसेयः
अनुसूते—अनु सू क्विप्—अनु सूः,
क्विप् का सर्वापहारलोप, प्रातिपदिक संज्ञा, सु।
अनुस्वोऽपत्यम्—शुभ्रादि गण में पाठ होने से 'ढक्' हुआ,
अनु सू ढक्—एय् आदेश,
आनुसू एय् अ—आदिवृद्धि,
आनुस् एय् अ सु—ढे लोपोऽकद्र्वा।

यच्यर०—यकारपरक तथा अच् परक अस् धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है।

(14) निस्तः
नि अस् तस्—शप् का लुक्,
नि स्तस्—अकारलोप, उपसर्ग 'नि' में इकार निमित्त है, इकार से उत्तर अस् धातु का सकार है; परन्तु इससे पर न तो यकार है और न ही अच् है। अतः मूर्धन्य आदेश नहीं होता है।

(15) विस्तः
वि स्तः—पूर्ववत्।

(16) प्रादुस्तः (पूर्ववत्)।

(3884) सुविनिर्दुर्भ्यः सुपिसूतिसमाः *88* (2477)

सु, वि, निर्, दुर्-इत्येतेभ्य उत्तरस्य सुपि, सूति, सम्-इत्येतेषां सकारस्य मूर्धन्यादेशो भवति। 'सुपि' इति स्वपिः कृतसम्प्रसारणो गृह्यते। सुषुप्तः। विषुप्तः। निःषुप्तः। दुःषुप्तः। 'सूति' इति स्वरूपग्रहणम्। सूषूतिः। विषूतिः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निःषूतिः । दुःषूतिः । सम-सुषमम्, विषमम्, निःषमम्, दुःषमम् ।

सुपेः षत्वं स्वपेर्मा भूद्विसुष्वापेति केन न ।
हलादिशेषान्न सुपिरिष्टं पूर्वं प्रसारणम् ॥

स्थादीनां नियमो नात्र प्राक्सितादुत्तरः सुपिः ।
अनर्थके विषुषुपुः सुपिभूतो द्विरुच्यते ॥
(म० भा०)

'पूर्वत्रासिद्धीयमद्विर्वचने' (पु०प०) इति कृते षत्वे ततो द्विर्वचने ।

अर्थ—सु, वि, निर् तथा दुर्—इन शब्दों से उत्तर सुपि, सूति तथा सम—इनके सकार को मूर्धन्य आदेश होता है ।

उदा० (1) सुषुप्तः
सु स्वप् क्त—लशक्वत०, वचिस्वपियजा० से सम्प्रसारण,
सु सुप् त सु—मूर्धन्य आदेश ।

(2) निःषुप्तः
निर् स्वप् क्त—पूर्ववत्,
निः सुप्त सु—खरवसानयो०, मूर्धन्य आदेश ।

(3) दुःषुप्तः
दुर् स्वप् क्त—पूर्ववत् ।

सूति०—'सूति' यह स्वरूप का ग्रहण है ।

(4) सुषूतिः
सु सूति—मूर्धन्य आदेश, सु ।

(5) विषूतिः (पूर्ववत्) ।
(6) निःषूतिः (पूर्ववत्) ।
(7) दुःषूतिः (पूर्ववत्) ।
(8) सुषमम्
सु सम सु—मूर्धन्य आदेश ।
(9) विषमम् (पूर्ववत्) ।
(10) निःषमम् (पूर्ववत्) ।
(11) दुःषमम् (पूर्ववत्) ।

सुपेः—(शङ्का) स्वप् को सम्प्रसारण करके सुप्—इस प्रकार निर्देश क्यों किया गया है ।

(समा०) 'सुप्' इस प्रकार कृतसम्प्रसारण निर्देश का प्रयोजन यह है कि 'सुप्' के सकार को ही मूर्धन्य आदेश हो, तथा अकृत-सम्प्रसारण स्वप् के सकार को न हो । इस प्रकार सुस्वाप, विस्वाप, सुस्वपन तथा निःस्वपन आदि स्थलों पर मूर्धन्य आदेश नहीं होता है ।

(शंका) यदि ऐसा है तो 'विसुष्वाप'[1] में सम्प्रसारण होने पर भी मूर्धन्य आदेश क्यों नहीं हुआ ।

यहाँ मूर्धन्य आदेश का कोई हेतु नहीं है । अतः नहीं हुआ । परसकार को 'आदेशप्रत्यययोः' से मूर्धन्य आदेश हुआ है ।

हलादि—'सुष्वाप' में 'लिट्यभ्यासस्यो०' से सम्प्रसारण होता है । इससे परकार्य होने से 'हलादिः शेषः' से हलादि शेष करने पर पश्चात् सम्प्रसारण होता है, तथापि 'सुप' रूप नहीं होता है । यहाँ पकार का अभाव रहता है । अतः मूर्धन्य आदेश नहीं होता है ।

पूर्वपक्षवादी ने प्रथम सम्प्रसारण करने पर पश्चात् हलादि शेष से यकार की निवृत्ति की है—इस प्रकार मानते हुए यह कहा है । पकार के बाद में भी निवृत्ति होती है । यह पकार का अभाव होने से 'सुपि' नहीं होता है । अतः ऐसा क्यों कहा गया ? 'एकदेशविकृतमनन्यवत्' परिभाषा से यह 'सुपि' ही है—ऐसा मानना चाहिए । जब परकार्य होने से हलादि शेष कर लेने पर पश्चात् सम्प्रसारण होता है, 'एकदेशविकृतमनन्यवत्' परिभाषा प्रवृत्त नहीं होती है । तब यह सुप् का विकार भी नहीं है । तो फिर क्या है ? यह 'स्वप्' का विकार है ।

इष्टं पूर्वं०—तब हलादि शेष से पूर्व सम्प्रसारण कर लिया जाय । परकार्य (हलादि शेष) को बाध कर पूर्वकार्य (सम्प्रसारण) हो जाता है । अतः हलादि शेष से पूर्व अभ्यास को सम्प्रसारण होना चाहिए ।

स्थादी०—(शंका) 'स्थादिष्वभ्यासेन०' से यह जो नियम है कि स्थादि के अभ्यास को ही षत्व होता है; अन्य के अभ्यास को नहीं । इस नियम से 'विसुष्वाप' यहाँ अभ्यास के सकार को मूर्धन्य आदेश प्राप्त नहीं होता है ।

(समा०) स्थादियों का नियम यहाँ प्रवृत्त नहीं होता है । 'विसुष्वाप' में अभ्यास के सकार को मूर्धन्य आदेश कैसे नहीं होता है ।

प्राक्सिता०—'स्थादिष्वभ्यासेन०' इस लक्षण में 'प्राक्

1. स्वप् लिट्—स्वप् णल्—स्वाप् अ (अनुबन्धलोप, अत उपधायाः),
स्वाप् स्वाप् अ (द्वित्व)—सु स्वाप् अ (लिट्यभ्यासस्यो०),
विसुष्वाप—इस प्रकार यहाँ सम्प्रसारण हुआ है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सितात्' यह वर्त्तमान है। अतः 'सेवसित' यहाँ सितकथन से पूर्व व्यवस्थित जो षु आदि; उनमें यह नियम होता है। अतः उनके ही अभ्यास के षत्व को व्यावृत्त करता है; अन्यों के अभ्यास के षत्व को नहीं।

उत्तरः—(शंका) 'सुपि' भी सित से पूर्व व्यवस्थित है। अतः यहाँ भी नियम प्रवृत्त होगा ? 'सुपि' का पाठ सित शब्द से उत्तर है; अतः वहाँ इस नियम की प्रवृत्ति कैसे होगी ?

अनर्थके—(शंका) 'अर्थवद्ग्रहणे नानर्थकस्य' परिभाषा से 'सुपि' इस अर्थवान् का ग्रहण करने से यहाँ उसके अनर्थक होने से षत्व नहीं होगा। कारण कि, 'सुपि' यहाँ अर्थवान् नहीं है।

(समा०) यदि अर्थवान् 'सुपि' के ग्रहण से 'विसुष्वाप' में षत्व नहीं होता है तो ऐसा होने पर 'विषुषुपुः' यहाँ पर षत्व नहीं होगा। यहाँ भी अनर्थक होने से षत्व नहीं होना चाहिए।

सुपि०—स्वप् से लिट् स्थानिक 'झि' हुआ। उसे 'उस्' आदेश, 'असंयोगाल्लिट्०' से किद्वत्, द्वित्व तथा 'वचिस्वपि-यजा०' से सम्प्रसारण तथा इससे षत्व होकर 'विषुप् उस्' इस दशा में आन्तरतम्य से 'षुप्' का द्वित्व होता है। इस प्रकार षुप् भूत के द्विर्वचन होने पर 'विषुषुपः' यहाँ अभ्यास का षत्व सिद्ध होता है। परन्तु 'विसुष्वाप' यहाँ षुपिभूत का द्वित्व नहीं है। अतः षत्व नहीं होता है।

पूर्वत्रा०—(शंका) द्वित्व करने में षत्व असिद्ध है। तब 'षुपि-भूतो द्विरुच्यते' यह कैसे कहा जाता है ?

(समा०) 'पूर्वत्रासिद्धीयमद्विर्वचने' से षत्व करने पर पश्चात् द्विर्वचन होता है।

(3885) निनदीभ्यां स्नातेः कौशले *89* (3082)

नि, नदी–इत्येताभ्यामुत्तरस्य स्नातिसकारस्य मूर्धन्यादेशो भवति कौशले गम्यमाने। निष्णातः कटकरणे। निष्णातो रज्जुवर्तने। नद्यां स्नातीति नदीष्णः। 'सुपि स्थः' (3.2.4) इत्यत्र 'सुपि' इति योगविभागात्कप्रत्ययः। कौशलं इति किम् ? निस्नातः। नद्यां स्नातो नदीस्नात इति।

अर्थ—'कौशल' अर्थ गम्यमान रहते नि, नदी—इनसे उत्तर स्ना के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है।

उदा० (1) निष्णातः

नि स्ना क्त—लशक्वतद्धि०,

निष् ना त सु—षत्व, णत्व।

(2) नदीष्णः

नद्यां स्नाति—'सप्तमी' से समास, 'सुपि स्थः' यहाँ 'सुपि' इस प्रकार योगविभाग से 'क' प्रत्यय,

नदी स्ना क—लशक्वतद्धिते, 'आतो लोप इटि च' से आकार- लोप,

नदी स्न् अ—षत्व, णत्व, सु।

कौशल०—कौशल अर्थ गम्यमान हो तो मूर्धन्य आदेश होता है।

(3) निस्नातः

मूर्धन्य नहीं हुआ।

इसी प्रकार 'नदीस्नातः' में भी नहीं हुआ।

(3886) सूत्रं प्रतिष्णात् *90* (3083)

'प्रतिष्णातम्' इति निपात्यते सूत्रं चेद्भवति। प्रतिष्णातं सूत्रम्। शुद्धमित्यर्थः। प्रतिस्नातमित्येवान्यत्र।

अर्थ—यदि सूत्र अर्थ हो तो 'प्रतिष्णात' शब्द निपातनसिद्ध है।

उदा० (1) प्रतिष्णातम्

प्रति स्ना क्त—षत्व का निषेध होने पर षत्व हुआ।

प्रति०—अन्यत्र 'प्रतिस्नातम्' होगा।

(3887) कपिष्ठलो गोत्रे *91* (3084)

'कपिष्ठलः' इति निपात्यते गोत्रविषये। कपिष्ठलो नाम यस्य स कापिष्ठलिः पुत्रः। गोत्र इति किम् ? कपेः स्थलं कपिस्थलम्।

अर्थ—गोत्र के विषय में 'कपिष्ठल' निपातनसिद्ध है।

उदा० (1) कपि स्थल—निपातन से षत्व,

कपिष्ठल—ष्टुना ष्टुः।

कपिष्ठल इ → कापिष्ठलिः पुत्रः।

गोत्र०—गोत्र का विषय हो तो सकार को निपातन से मूर्धन्य आदेश होता है।

(2) कपिस्थलम्

कपेः स्थलम्—मूर्धन्य आदेश नहीं हुआ।

(3888) प्रष्ठोऽग्रगामिनि *92* (2917)

'प्रष्ठः' इति निपात्यते अग्रगामिन्यभिधेये। प्रतिष्ठत इति प्रष्ठोऽश्वः। अग्रतो गच्छतीत्यर्थः। अग्रगामिनीति किम् ? प्रस्थे हिमवतः पुण्ये। प्रस्थो व्रीहीणाम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—अग्रग्रामी अर्थ में 'प्रष्ठ' शब्द निपातनसिद्ध है।

उदा० (1) प्रष्ठः
प्र स्था क—सुपि स्थः, लशक्वत०,
प्र स्थ् अ सु—निपातन से सकार को मूर्धन्य आदेश तथा 'ष्टुना ष्टुः' से ठकार।

अग्र०—अग्रगामी अर्थ में 'प्रष्ठ' शब्द होता है।

(2) प्रस्थः
अन्यत्र मूर्धन्य आदेश नहीं होता है।

(3889) वृक्षासनयोर्विष्टरः *93* (3233)

'विष्टरः' इति निपात्यते वृक्षे आसने च वाच्ये। विपूर्वस्य स्तृणातेः षत्वं निपात्यते। विष्टरो वृक्षः। विष्टरमासनम्। वृक्षासनयोरिति किम्? औलपिवाक्यस्य विस्तरः।

अर्थ—वृक्ष तथा आसन—इन अर्थों में 'विष्टर' शब्द निपातित है।

उदा० (1) विष्टरो वृक्षः
वि स्तृ अप्—ऋदोरप्,
वि स्तर् अ—गुण तथा षत्व निपातन से,
विष् टर् अ सु—ष्टुना ष्टुः।
इसी प्रकार—विष्टरम् आसनम्।

वृक्षा०—वृक्ष तथा आसन अर्थों में 'विष्टर' शब्द निपातित होता है।

(2) विस्तरः
अन्यत्र षत्व नहीं हुआ।

(3890) छन्दोनाम्नि च *94* (3206)

'विष्टारः' इति निपात्यते। विपूर्वात् 'स्तृ'-इत्येतस्माद्धातोः 'छान्दोनाम्नि च' इत्येवं विहितो घञ् इति 'विष्टरः' इत्यपि प्रकृते 'विष्टार' इति विज्ञायते। विष्टारपङ्क्तिः छन्दः। विष्टारो बृहतीछन्दः। छन्दोनाम्नीति किम्? पटस्य विस्तारः।

अर्थ—'विष्टार' का निपातन किया जाता है। छन्दोनाम में विहित विष्टर के स्थान पर विष्टार जानना चाहिए।

उदा० (1) विष्टारपङ्क्तिः छन्दः।

(2) विष्टारो बृहती छन्दः।

छन्दो०—छन्दोनाम के विषय में यह निपातन होता है।

(3) (पटस्य) विस्तारः
यहाँ मूर्धन्य आदेश नहीं हुआ।

(3891) गवियुधिभ्यां स्थिरः *95* (967)

गवियुधिभ्यामुत्तरस्य स्थिरसकारस्य मूर्धन्यादेशो भवति। गविष्ठिरः। युधिष्ठिरः। गोशब्दादहलन्तादपि एतस्मादेव निपातनात्सप्तम्या अलुग्भवति।

अर्थ—गवि तथा युधि से उत्तर स्थिर शब्द के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है।

उदा० (1) गविष्ठिरः
गवि स्थिरः—समास, 'हलदन्तात्०' से अलुक् न होकर निपातन से होता है,
गवि स्थिर—मूर्धन्य आदेश, ष्टुना ष्टुः।

(2) युधिष्ठिरः
युधि स्थिर—पूर्ववत्।

गो०—'गो' शब्द से अहलन्त से भी इस निपातन से सप्तमी का अलुक् होता है।

(3892) विकुशमिपरिभ्यः स्थलम् *96* (3085)

वि, कु, शमि, परि-इत्येतेभ्य उत्तरस्य स्थलसकारस्य मूर्धन्यादेशो भवति। विष्ठलम्। कुष्ठलम्। शमिष्ठलम्। परिष्ठलम्।

अर्थ—वि, कु, शमि तथा परि—इनसे उत्तर स्थल शब्द के सकार के स्थान पर मूर्धन्य आदेश होता है।

उदा० (1) विष्ठलम्
वि स्थल—मूर्धन्य आदेश, ष्टुना ष्टुः, सु।
(2) कुष्ठलम् (पूर्ववत्)।
(3) शमिष्ठलम् (पूर्ववत्)।
(4) परिष्ठलम् (पूर्ववत्)।

(3893) अम्बाम्बगोभूमिसव्यापद्वित्रिकुशेकुशङ्ख्वङ्गु-मञ्जिपुञ्जिपरमेबर्हिर्दिव्यग्निभ्यः स्थः *97* (2918)

अम्ब, आम्ब, गो, भूमि, सव्य, अप, द्वि, त्रि, कु, शेकु, शङ्कु, अङ्गु, मञ्जि, पुञ्जि, परमे, बर्हिस्, दिवि, अग्नि-इत्येतेभ्य उत्तरस्य स्थशब्दसकारस्य मूर्धन्यादेशो भवति।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अम्बष्ठः । आम्बष्ठः । गोष्ठः । भूमिष्ठः । सव्येष्ठः । अपष्ठः । द्विष्ठः । त्रिष्ठः । कुष्ठः । शेकुष्ठः । शङ्कुष्ठः । अङ्गुष्ठः । मञ्जिष्ठः । पुञ्जिष्ठः । परमेष्ठः । बर्हिष्ठः । दिविष्ठः । अग्निष्ठः । *स्थास्थिन्स्थूणामिति वक्तव्यम्* । सव्येष्ठाः । परमेष्ठी । सव्येष्ठृसारथिः ।

अर्थ—अम्ब, आम्ब, गो, भूमि, सव्य, अप, द्वि, त्रि, कु, शेकु, शंकु, अंगु, मंजि, पुंजि, परमे, बर्हिस्, दिवि तथा अग्नि—इन शब्दों से उत्तर 'स्थ' शब्द के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है।

उदा० (1) अम्बष्ठः
अम्बा स्थ—समास,
अम्ब स्थ—'ड्यापो सञ्ज्ञाच्छन्द०' से ह्रस्व आदेश,
अम्बष्ठ सु—मूर्धन्य आदेश, ष्टुना ष्टुः।

(2) आम्बष्ठः.
पूर्ववत् मूर्धन्य आदेश।

(3) गोष्ठः
मूर्धन्य आदेश, ष्टुत्व।

(4) भूमिष्ठः (पूर्ववत्)।

(5) सव्येष्ठः
सव्ये तिष्ठति—'क' प्रत्यय,
सव्ये स्थ क—अलुक्, शेष पूर्ववत्।

(6) अपष्ठः
अप स्था क—पूर्ववत्,
अपष्ठ सु—मूर्धन्य आदेश।

(7) द्विष्ठः (पूर्ववत्)।

(8) त्रिष्ठः
मूर्धन्य आदेश।

(9) कुष्ठः
कु स्था क—पूर्ववत्।

(10) शेकुष्ठः (पूर्ववत्)।

(11) शङ्कुष्ठः
मूर्धन्य आदेश।

(12) अङ्गुष्ठः (पूर्ववत्)।

(13) मञ्जिष्ठः (पूर्ववत्)।

(14) पुञ्जिष्ठः (पूर्ववत्)।

(15) परमेष्ठः
परमे स्था क—लशक्वतद्धिते,
परमे ष्ठ सु—पूर्ववत्।

(16) बर्हिष्ठः
बर्हिस् स्था क—पूर्ववत् 'क' प्रत्यय,
बर्हि ष् ठ सु—मूर्धन्य आदेश।

(17) दिविष्ठः
दिवि स्था क—अलुक्,
दिवि ष्ठः सु—मूर्धन्य आदेश।

(18) अग्निष्ठः
अग्नि स्था क—पूर्ववत्।

स्था०—स्था, स्थिन् तथा स्थृ—इनको मूर्धन्य आदेश होता है।

(19) सव्येष्ठाः
सव्ये तिष्ठति—'दिवेर्ङ्डः' के अनुवर्त्तमान रहते 'नयतेर्डिच्च' से डित् तथा 'सव्ये स्थश्छन्दसि' से 'ऋ' हुआ,
सव्ये स्था ऋ—'तत्पुरुषे' से अलुक्,
सव्ये स्थृ—डित् होने से टि का लोप, मूर्धन्य आदेश,
सव्येष्ठृ सु—ष्टुना ष्टुः, 'ऋदुशनस्पुरु०' से 'आनङ्' आदेश, 'सर्वनामस्थाने चा०' से दीर्घ,
सव्येष्ठान् स्—विसर्जनीय।

(20) परमेष्ठीः
परमे स्था इनि—गमेरिनि, परमे स्थः किच्च,
परमे स्थिन्—कित् होने से आलोप,
परमेष्ठिन् सु—मूर्धन्य आदेश, ष्टुना ष्टुः, प्रातिपदिक संज्ञा,
परमेष्ठीन्—'सौ च' से दीर्घ, हल्ङ्याब्भ्यो०, न लोपः०।

(21) सव्येष्ठृसारथिः
सव्येष्ठृ—पूर्ववत्,
सव्येष्ठृसारथि सु—कर्मधारय।

(3894) सुषामादिषु च *98* (1022)

सुषामादिषु शब्देषु सकारस्य मूर्धन्यादेशो भवति। शोभनं साम यस्यासौ सुषामा ब्राह्मणः। दुष्षामा, निष्षामा। निष्षेधः। दुष्षेधः। सुशब्दस्य कर्मप्रवचनीयसंज्ञकत्वान्निर्दुशब्दयोश्च क्रियान्तरविषयत्वादनुपसर्गत्वे सति पाठोऽयम्। 'सेधतेर्गतौ' (8.3.193) इति वा प्रतिषेधबाधनार्थः। सुषन्धिः। दुःषन्धिः। निःषन्धिः। सुष्ठु। दुष्ठु। तिष्ठतेरुणादिष्वेतौ व्युत्पाद्येते। *गौरिषक्थः संज्ञायाम्*

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(ग०सू० 179)। 'ड्यापोः संज्ञाछन्दसोर्बहुलम्' (6.3.63) इति पूर्वपदस्य ह्रस्वत्वम्। प्रतिष्णिका। प्रतिष्णा-शब्दादयं कन्प्रत्ययः। जलाषाहम्। नौषेचनम्। दुन्दु-भिषेवणम्। । *एति संज्ञायामगात्* (ग०सू० 180)। एकारपरस्य सकारस्य मूर्धन्यादेशो भवति इण्कोरुत्तर-स्यागकारात्परस्य संज्ञायां विषये। हरिषेणः। वारिषेणः। जानुषेणी। एतीति किम्? हरिसक्थम्। संज्ञायामिति किम्? पृथ्वी सेना यस्य स पृथुसेन राजा। अगादिति किम्? विष्वक्सेनः। 'इण्कोः' इत्येव-सर्वसेनः।

अर्थ—'सुषाम' आदि शब्दों में सकार को मूर्धन्य आदेश होता है।

उदा० (1) सुषामा
शोभनं साम यस्य—बहुव्रीहि,
सु सामन्—मूर्धन्य आदेश,
सुषामन् सु—विभक्तिकार्य।

(2) दुष्षामा
दुस् सामन्—समास,
दुर् सामन्—ससजुषोः०,
दुः सामन्—खरवसानयोर्वि०,
दुस् सामन्—'वा शरि' से पाक्षिक सकार, सकारपक्ष में,
दुस् षामन्—मूर्धन्य आदेश,
दुष् षामन् सु—ष्टुना ष्टुः, विभक्तिकार्य।

(3) निष्षामा
पूर्ववत् सभी कार्य।

(4) निष्षेधः
निस् सेध—मूर्धन्य आदेश,
निष् षेध सु—ष्टुत्व।

(5) दुष्षेधः (पूर्ववत्)।

सुशब्द०—(शंका) 'सुषेध' आदि तीन शब्दों को 'उपसर्गात्०' से मूर्धन्य आदेश सिद्ध था। तब यहाँ इनका पाठ व्यर्थ है।

(समा०) सु शब्द की कर्मप्रवचनीय संज्ञा है। निस् तथा दुस् शब्दों के क्रियान्तर में विषय होने से उपसर्ग संज्ञा न होने से यह पाठ किया गया है। अथवा इनके पाठ का दूसरा प्रयोजन 'सेधतेर्गतौ' से प्रतिषेध का बाध करना है।

(6) सुषन्धिः
सन्धीयते इति—'उपसर्गे-घोः किः' से 'कि',
सम् धा कि—लशक्वतद्धिते, आकारलोप,
सु सन्धि—मूर्धन्य आदेश, सु।

(7) दुःषन्धिः (पूर्ववत्)।

(8) निषन्धिः
निसन्धि—पूर्ववत्।

(9) सुष्ठुः
सु स्थु—औणादिक प्रत्यय, मृगय्वादयश्च,
सुष्ठु—मूर्धन्य आदेश, ष्टुत्व।

(10) दुष्ठु (पूर्ववत्)।

गौरिषक्थ०—संज्ञा में 'गौरिषक्थ' में मूर्धन्य आदेश होता है। 'ड्यापो सञ्ज्ञा०' से पूर्व पद को ह्रस्वादेश होता है।

(11) गौरिषक्थः
गौर्याः सक्थि—षष्ठी समास,
गौरी सक्थि—'अच्प्रत्यन्नव- पूर्वात्' से समासान्त 'अच्',
गौरि सक्थ् अ—ह्रस्वादेश, प्रातिपदिक संज्ञा,
गौरि षक्थ सु—मूर्धन्य आदेश।
गौर्या इव सक्थि यस्य—बहुव्रीहि समास,
गौरी सक्थि षच्—'बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः' से समासान्त,
गौरी सक्थि अ—षः प्रत्ययस्य, हलन्त्यम्,
गौरि सक्थ् अ—इकारलोप, ह्रस्वादेश, शेष पूर्ववत्।

(12) प्रतिष्णिका
प्रतिष्णाति—आतश्चोपसर्गे,
प्रति स्ना क—लशक्वत०,
प्रतिष्ण् अ—आकारलोप, मूर्धन्य आदेश, णत्व,
प्रतिष्ण टाप्—स्त्रियाम्, अजाद्यतष्टाप्, अनुबन्धलोप,
प्रतिष्णा कन्—सञ्ज्ञायां कन्,
प्रतिष्ण क—'केऽणः' से ह्रस्वादेश,
प्रतिष्णिका सु—टाप्, प्रत्ययस्थात् कात्०, सुलोप।

(13) जलाषाहम्
जल सह्—पूर्व पद को दीर्घ आदेश,
जल साह्—मूर्धन्य आदेश,
जलाषाहम्—रूप बना।

(14) नौषेचनम्
नौ सेचन—षष्ठी समास,
नौषेचन सु—मूर्धन्य आदेश।

(15) दुन्दुभिषेवणम्
दुन्दुभिसेवन—मूर्धन्य आदेश।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एति०—इण् तथा कवर्ग से उत्तर तथा एकारपरक सकार को मूर्धन्य आदेश होता है, संज्ञा के विषय में; परन्तु गकार से पर सकार को नहीं होता है।

(16) हरिषेणः

हरयः सेना अस्य—बहुव्रीहि समास,

हरि सेना—उपसर्जनलक्षण ह्रस्वादेश,

हरि सेन—सकार इण् वर्ण (इकार) से पर है, सकार से पर एकार है, संज्ञा का विषय है,

हरिषेण सु—मूर्धन्य आदेश, णत्व।

(17) वारिषेणः

वारिसेना—सभी कार्य पूर्ववत्।

(18) जानुषेणी (पूर्ववत्)।

एतीति०—**एकार** है परे जिसके, ऐसे सकार को मूर्धन्य आदेश होता है।

(19) हरिसक्थम्

इण् वर्ण (इकार) से उत्तर सकार है। संज्ञा का विषय है; परन्तु सकार से उत्तर एकार नहीं है। मूर्धन्य आदेश नहीं हुआ।

सञ्ज्ञाया०—**संज्ञा** के विषय में सकार को मूर्धन्य आदेश होता है।

(20) पृथुसेनो राजा

पृथ्वी सेना यस्य सः—समास,

पृथुसेना—'स्त्रियाः' से पुंवद्भाव,

पृथुसेन सु—सकार से परे एकार है, इण् से उत्तर सकार है, परन्तु संज्ञा का विषय न होने से मूर्धन्य आदेश नहीं हुआ।

अगा०—**गकार** से उत्तर सकार को मूर्धन्य आदेश नहीं होता है।

(21) विष्वक्सेनः

विष्वगञ्चतीति—'ऋत्विग्०' से 'क्विन्',

विष्वञ् क्विन्—सर्वापहार लोप,

विष्वच्—'अनिदिताम्०' से नकारलोप,

विष्वच् ई—'उगितश्च' से 'ङीप्', अनुबन्धलोप,

विषुच् ई—'अचः' से अकारलोप,

विषूची—'चौ' से दीर्घ,

विषूचो सेनाऽस्य—बहुव्रीहि,

विष्वच् सेन—ह्रस्वादेश, 'स्त्रियाः' से पुंवद्भाव,

विष्वक्सेन सु—'क्विन् प्रत्ययस्य कुः' से कुत्व, संज्ञा का विषय है, सकार से परे एकार है; परन्तु ककार से उत्तर होने के कारण सकार को मूर्धन्य आदेश नहीं हुआ।

इण्को०—**इण्** तथा **कवर्ग** से उत्तर सकार को मूर्धन्य आदेश होता है।

(22) सर्वसेनः

सकार से उत्तर एकार है, संज्ञा का विषय है; परन्तु सकार इण् व कवर्ग से उत्तर नहीं है। मूर्धन्य आदेश नहीं हुआ।

(3895) नक्षत्राद्वा *99* (1024)

नक्षत्रवाचिनः शब्दादुत्तरस्य सकारस्य वा एति संज्ञायामगकारादि, मूर्धन्यो भवति। रोहिणीषेणः, रोहिणीसेनः। भरणीषेणः, भरणीसेनः। अगकारादित्येव–शतभिषक्सेनः। अविहितलक्षणो मूर्धन्यः सुषामादिषु द्रष्टव्यः।

अर्थ—नक्षत्रवाची शब्द से उत्तर जो सकार, उसे मूर्धन्य आदेश विकल्प से होता है, यदि उससे परे एकार हो तथा संज्ञा का विषय हो।

उदा० (1) रोहिणीषेणः

रोहिणी एक नक्षत्र का नाम है। इससे उत्तर सकार को मूर्धन्य आदेश हुआ। णत्व हुआ।

(2) रोहिणीसेनः

पक्ष में नहीं हुआ।

(3) भरणीषेणः

मूर्धन्य आदेश पक्ष।

(4) भरणीसेनः

आदेश अभाव पक्ष।

अगका०—**गकार** से उत्तर सकार को मूर्धन्य आदेश नहीं होता है।

(5) शतभिषक्सेनः

गकार से उत्तर सकार है। मूर्धन्य आदेश नहीं हुआ।

अविहि०—जहाँ किसी लक्षण के द्वारा मूर्धन्य आदेश का विधान नहीं किया गया है, परन्तु वह प्राप्त होता है तो उसे सुषामादि में जानना चाहिए।

(3896) ह्रस्वात्तादौ तद्धिते *100* (1325)

ह्रस्वादुत्तरस्य सकारस्य मूर्धन्यादेशो भवति तादौ तद्धिते परतः। तरप्, तमप्, तय, त्व, तल्, तस्, त्यप्–एतानि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रयोजयन्ति। तरप्-सर्पिष्टरम्, यजुष्टरम्। तमप्-सर्पिष्टमम्, यजुष्टमम्। तय-चतुष्टये ब्राह्मणानां निकेताः। त्व-सर्पिष्ट्वम्, यजुष्ट्वम्। तल्-सर्पिष्टा, यजुष्टा। तस्-सर्पिष्टः, यजुष्टः। त्यप्-'आविष्ट्यो वर्द्धते' (ऋ० 1.95.5)। ह्रस्वादिति किम्? गीस्तरा, धूस्तरा। तादाविति किम्? सर्पिस्साद्भवति। प्रत्ययसकारस्य 'सात्पदाद्योः' (8.3.109) इति सत्यपि प्रतिषेधे प्रकृतिसकारस्य स्यात्। तद्धित इति किम्? सर्पिस्तरति। *तिङन्तस्य प्रतिषेधो वक्तव्यः*। भिन्द्युस्तराम्। छिन्द्युस्तराम्।

अर्थ—तकारादि तद्धित प्रत्यय के परे रहते ह्रस्व वर्ण से उत्तर सकार को मूर्धन्य आदेश होता है।

तरप्, तमप्, तय, त्व, तल्, तस् तथा त्यप्—ये तकारादि तद्धित प्रत्यय हैं।

उदा० (1) सर्पिष्टरम्
सर्पिस् तरप्—'द्विवचनविभज्योप०' से 'तरप्',
सर्पिर् तर—हलन्त्यम्, ससजुषो०,
सर्पिः तर—खरवसानयो०,
सर्पिस् तर—विसर्जनीयस्य सः,
सर्पिष् टर सु—मूर्धन्य आदेश, ष्टुत्व।

(2) यजुष्टरम्
यजुस् तरप्—पूर्ववत्।

(3) सर्पिष्टमम्
सर्पिस् तमप्—'अतिशायने०' से 'तमप्', शेष कार्य पूर्ववत्।

(4) यजुष्टमम्
यजुस् तमप्—पूर्ववत्।

(5) चतुष्टयम्
चतुर् तय—सङ्ख्याया अवयवे तयप्,
चतुःतय—विसर्जनीय,
चतुस् तय—सकार,
चतुष् टय सु—मूर्धन्य आदेश, ष्टुत्व।

(6) सर्पिष्ट्वम्
सर्पिस् त्व—तस्य भावस्त्वतलौ, शेष पूर्ववत्।

(7) यजुष्ट्वम् (पूर्ववत्)।

(8) सर्पिष्टा
सर्पिस् तल्—तस्य भावस्त्वतलौ,
सर्पिष् त टाप् सु—मूर्धन्य आदेश, ष्टुत्व, टाप्, सवर्णदीर्घ।

(9) यजुष्टा
यजुस् तल्—पूर्ववत्।

(10) सर्पिष्टः
सर्पिस् तस्—अपादाने चाहीय०,
सर्पिष् टस्—पूर्ववत्।

(11) यजुष्टः
यजुस् तस्—पूर्ववत्।

(12) आविष्ट्यः
आविस् त्यप्—अव्ययात् त्यप्, हलन्त्यम्,
आविष् ट्य सु—सभी कार्य पूर्ववत्।

ह्रस्वात्०—**ह्रस्व वर्ण** से उत्तर सकार को मूर्धन्य आदेश होता है।

(13) गीस्तरा
गिर् तरप्—हलन्त्यम्,
गीर् तर—दीर्घ,
गीस्तर टाप् सु—दीर्घ वर्ण से उत्तर सकार है। मूर्धन्य आदेश नहीं हुआ।

(14) धूस्तरा
धुर् तरप्—पूर्ववत्,
धूस् तर टाप्—मूर्धन्य आदेश नहीं हुआ।

तादौ०—**तकारादि** तद्धित परे रहते सकार को मूर्धन्य आदेश होता है।

(15) सर्पिस्साद् भवति
प्रत्यय सकार का 'सात्पदाद्योः' से निषेध होने पर भी प्रकृति सकार को होता है।

तद्धिते०—तकारादि **तद्धित** के परे रहते सकार को मूर्धन्य आदेश होता है।

(16) सर्पिस्तरति
सर्पिस् तरति—तकारादि परे है, परन्तु तद्धितसंज्ञक न होने से सकार को मूर्धन्य आदेश नहीं हुआ।

तिङन्त०—तिङन्त सकार को मूर्धन्य आदेश नहीं होता है।

(17) भिन्द्युस्तराम्
भिद् लिङ्—लिङ्,
भिद् यासुट् झि—यासुट् परस्मैपदे०, झेर्जुस्
भि श्नम् द् यासुट् जुस्—अनुबन्धलोप,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भिन द् यास् उस्—'श्नसोरल्लोपः' से अकारलोप,
भिन् द् या उस्—'लिङः सलोपो०' से पररूप, 'तिङश्च' से 'तरप्' तथा 'किमेत्तिङव्यय०' से 'आमु', मूर्धन्य आदेश नहीं हुआ।

(18) छिन्द्युस्तराम्
पूर्ववत् आदेश अभाव।

(3897) निसस्तपतावनासेवने *101* (2403)

निसः सकारस्य मूर्धन्यादेशो भवति तपतौ परतोऽनासेवनेऽर्थे। आसेवनम् = पुनः पुनः करणम्। निष्टपति सुवर्णम्। सकृदग्निं स्पर्शयतीत्यर्थः। अनासेवन इति किम्? निस्तपति सुवर्णं सुवर्णकारः। पुनः पुनरग्निं स्पर्शयतीत्यर्थः। 'निष्टप्तं रक्षः, निष्टप्ता अरातय' (वा० सं० 1.7) इत्यत्र सदप्यासेवनं न विवक्ष्यते। छान्दसो वा वर्णविकारः।

अर्थ—अनासेवन अर्थ में वर्त्तमान निस् के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है, तप् धातु के परे रहते।

पुनः पुनः करना 'आसेवन' कहलाता है।

उदा० (1) निष्टपति सुवर्णम्
निस् तपति—सकार को मूर्धन्य आदेश हुआ, ष्टुत्व हुआ।

आसेवने०—आसेवन अर्थ में मूर्धन्य आदेश नहीं होता है।

(2) निस्तपति सुवर्णं स्वर्णकारः
मूर्धन्य आदेश नहीं हुआ।

(3) निष्टप्तं रक्षः। (4) निष्टप्ता अरातयः।
यहाँ आसेवन अर्थ है, परन्तु विवक्षित नहीं है। अथवा छान्दस वर्णविकार जानना चाहिए।

(3898) युष्मत्तत्ततक्षुःष्वन्तःपादम् *102* (3640)

युष्मत्, तत्, ततक्षुस्–इत्येतेषु तकारादिषु परतः सकारस्य मूर्धन्यादेशो भवति स चेत् सकारोऽन्तःपादं भवति। युष्मदादेशः–त्वम्, त्वाम्, ते, तव। त्वम्–अग्निष्ट्वं नामासीत्। त्वा–अग्निष्ट्वा वर्धयामसि। ते–'अग्निष्टे (आप०गृ० 4.10.17) विश्वमानय'। तव–'अ॒प्स्व॑ग्ने सधि॒ष्टव॒' (ऋ० 8.43.9)। तत्–'अ॒ग्निष्ट-द्विश्व॒मापृणाति' (ऋ० 10.2.4)। ततक्षुस्–'द्यावा॑पृथि॒वी निं॑ष्टतक्षुः' (ऋ० 10.31.7)। अन्तः पादमिति किम्? यन्मं आत्मं॑नो मि॒न्दाभूं॑दु॒ग्निस्तत्पुन॒राहा॑र्जातवेदा॒ विचर्षणिः (तै०सं० 3.2.5.4)।

अर्थ—तकारादि युष्मत्, तत् तथा ततक्षुस् के परे रहते सकार के स्थान पर मूर्धन्य आदेश होता है, यदि वह सकार पाद के मध्य में वर्त्तमान हो। युष्मद् के स्थान पर तकारादि आदेश ये हैं—त्वम्, त्वाम्, ते, तव।

उदा० (1) अग्निष्ट्वम्
अग्नि स् त्वम्—रु, विसर्जनीय, पुनः सकार,
अग्निष् ट्वम्—मूर्धन्य आदेश, ष्टुना ष्टुः।

(2) अग्निष्ट्वा (पूर्ववत्)।

(3) अग्निष्टे
अग्नि स् ते—पूर्ववत्।

(4) सधिष्टव
सधिस् तव—पूर्ववत्।

(5) अग्निष्टत्
अग्नि स् तत्—पूर्ववत्।

(6) निष्टतक्षुः
निस् ततक्षुस्—मूर्धन्य आदेश।

अन्तःपा०—पादमध्य सकार को मूर्धन्य आदेश होता है।

(7) अग्निस्तत्
यहाँ नहीं हुआ।

(3899) यजुष्येकेषाम् *103* (3641)

यजुषि विषये युष्मत्तत्ततक्षुःषु परत एकेषामाचार्याणां मतेन सकारस्य मूर्धन्यादेशो भवति। अर्चिभिष्ट्वम्, अर्चिभिस्त्वम्। 'अ॒ग्निष्टेऽग्रम्, अग्निस्तेऽग्रं॑म्' (तै० 3.5.6.2)। अ॒ग्निष्टत् (तै० 1.1.14.5), 'अ॒ग्निस्तत्' (तै०3.2.5.4)। अर्चिर्भिष्टतक्षुः। अर्चिर्भिस्ततक्षुः।

अर्थ—यजुर्मन्त्र के विषय में तकारादि युष्मत्, तत् तथा ततक्षुस् के परे रहते सकार के स्थान पर कुछ आचार्यों के मत में मूर्धन्य आदेश होता है।

उदा० (1) अर्चिभिष्ट्वम्
मूर्धन्य आदेश।
(2) अर्चिभिस्त्वम्
आदेश अभाव।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(3) अग्निष्टे
आदेश पक्ष।

(4) अग्निस्ते
आदेश अभाव।

(5) अग्निष्टत्
आदेश हुआ।

(6) अग्निस्तत्
आदेश अभाव।

(7) अर्चिभिष्टतक्षुः
आदेश हुआ।

(8) अर्चिभिस्ततक्षुः
पक्ष में आदेश नहीं हुआ है।

(3900) स्तुतस्तोमयोश्छन्दसि *104* (3642)

'एकेषाम्' इति वर्तते। स्तुत, स्तोम-इत्येतयोः सकारस्य छन्दसि विषये मूर्धन्यादेशो भवति एकेषामाचार्याणां मतेन। त्रिभिष्टुतस्य, त्रिभिस्तुतस्य। गोष्टोमं (तै०सं० 7.4.11.1)। षोडशिनम्, गोस्तोमं षोडशिनम् (आप० श्रौ० 23.12.18)। 'पूर्वपदात्' इत्येव सिद्धे प्रपञ्चार्थमिदम्।

अर्थ—'एकेषाम्' का अनुवर्त्तन है। स्तुत तथा स्तोम के परे रहते सकार के स्थान पर मूर्धन्य आदेश होता है कुछ आचार्यों के मत में तथा वेद के विषय में।

उदा० (1) त्रिभिष्टुतस्य
त्रिभिस् स्तुतस्य—मूर्धन्य आदेश, ष्टुत्व।

(2) त्रिभिस्तुतस्य
पक्ष में आदेश नहीं हुआ।

(3) गोष्टोमम्
मूर्धन्य आदेश।

(4) गोस्तोमम्
मूर्धन्य-अभाव।

पूर्वप०—'पूर्वपदात्०' से मूर्धन्य आदेश सिद्ध ही है। तब प्रपञ्च के लिए यह विधान है।

(3901) पूर्वपदात् *105* (3643)

'छन्दसि' इति वर्त्तते, 'एकेषाम्' इति च। पूर्वपदस्थान्नि-मित्तादुत्तरस्य सकारस्य मूर्धन्यादेशो भवति छन्दसि विषये एकेषामाचार्याणां मतेन। 'द्विष्ठन्थिः' (मै० 3.8.2) द्विसन्धिः। 'त्रिषन्धिः' (मै० 3.8.2), त्रिसन्धिः। मधुष्ठानम्, मधुस्थानम्। 'द्विषाहस्रं चिन्वीत' (तै० 5.6.8.2) द्विसाहस्रं चिन्वीत। असमासेऽपि यत्पूर्वपदं तदपीह गृह्यते। 'त्रिः षमृद्धत्वाय' (ऐ०ब्रा० 2.16), त्रिः समृद्धत्वाय।

अर्थ—छन्दसि, एकेषाम्—इनका अनुवर्त्तन है। वेद के विषय में कुछ आचार्यों के मत में पूर्व पद में स्थित निमित्त से उत्तर सकार को मूर्धन्य आदेश होता है।

उदा० (1) द्विषन्धिः
द्वि सन्धि—बहुव्रीहि अथवा षष्ठी समास,
द्विषन्धि सु—मूर्धन्य आदेश।

(2) द्विसन्धिः
पक्ष में मूर्धन्य-अभाव।

(3) त्रिषन्धि
पूर्ववत् मूर्धन्य-आदेश।

(4) त्रिसन्धिः
मूर्धन्य आदेश अभाव।

(5) मधुष्ठानम्।
मधु स्थान—मूर्धन्य आदेश, ष्टुत्व।

(6) मधु स्थानम्।
मूर्धन्य आदेश अभाव।

(7) द्विषाहस्रम्
द्वयोः सहस्रयोर्भवति—तद्धितार्थ समास,
द्विसहस्र अण्—तत्र भवः,
द्विसाहस्र अ—'सङ्ख्यायाः संवत्स०' से उत्तरपदवृद्धि,
द्विषाहस्र सु—मूर्धन्य आदेश।

(8) द्विसाहस्रम्
पक्ष में मूर्धन्य आदेश अभाव।

असमा०—असमास की दशा में जो पूर्व पद, उसका भी यहाँ ग्रहण होता है।

(9) त्रिःषमृद्धत्वाय
मूर्धन्य आदेश।

(10) त्रिःसमृद्धत्वाय
मूर्धन्य आदेश अभाव।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(3902) सुञः *106* (3644)

'सुञ्' इति निपात इह गृह्यते, तस्य पूर्वपदस्थान्निमित्तादुत्तरस्य मूर्धन्यादेशो भवति छन्दसि विषये। 'अभी षुणः संखीनाम्' (ऋ० 4.31.3)। 'उर्ध्व ऊ षु णः ऊतये' (ऋ० 1.36.13)। ('इकः सुञि' (ऋ० 6.3.134) इति दीर्घः। 'नश्च धातुस्थोरुषुभ्यः' (ऋ० 8.4.27) इति णत्वम्।)

अर्थ—यहाँ 'सुञ्' निपात का ग्रहण किया जाता है। पूर्व पद में स्थित निमित्त से उत्तर सुञ् के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है, वेद के विषय में।

उदा० (1) अभीषुणः

अभी सु नः—मूर्धन्य आदेश। 'इकः सुञि' से दीर्घ आदेश, 'नश्च धातुस्थो०' से णत्व।

(2) ऊर्ध्व ऊषुणः

मूर्धन्य आदेश। पूर्ववत्।

(3903) सनोतेरनः *107* (3645)

सनोतेरनकारान्तस्य सकारस्य मूर्धन्यादेशो भवति। 'गोषा' (ऋ० 9.2.10)। 'नृषा' (ऋ० 9.2.10)। अन इति किम्? 'गोसनिं वाचंमुदेयम्' (अथ० 3.20.10)। 'पूर्वपदात्' इत्येव सिद्धे नियमार्थमिदम्। अत्र केचित् सवनादिपाठाद् गोसनिर्नियमस्य फलं न भवतीति सिसानयिषतीति प्रत्युदाहरन्ति। सिसनिषतेरप्रत्ययः, सिसनीरित्यपरे।

अर्थ—अनकारान्त सन् धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है।

उदा० (1) गोषाः

गां सनोति—इस अर्थ में

गो षण् विट्—धात्वादेः षः सः, 'जनसनखन०' से 'विट्', 'विट्' का सर्वापहारलोप,

गो स आ सु—'विड्वनोरनु०' से आत्त्व, मूर्धन्य आदेश।

(2) नृषाः

नृ सन् विट्—सभी कार्य पूर्ववत्।

अन इति०—अनकारान्त सन् के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है।

(3) गोसनिम्

गो सन् इन्—'छन्दसि वनसन०' से 'इन्' हुआ,

गो सनि अम्—प्रातिपदिक संज्ञा, नकारान्त होने से सकार को मूर्धन्य आदेश नहीं हुआ, द्वितीया एकवचन।

पूर्वपदा०—'पूर्वपदात्' से यह सिद्ध था। तब नियमार्थ विधान किया गया है। यहाँ कुछ विद्वान् सवनादि पाठ से 'गोसनि' यह नियम का फल नहीं होता है—ऐसा मानते हैं। अतः वे 'सिसानयिषति' प्रत्युदाहरण देते हैं।

(4) सिसानयिषति

सन् णिच्—अत उपधायाः,

सानि सन्—धातोः कर्मणः समा०,

सानि इ स—इट्, अंग को गुण,

सानयि स—अय् आदेश, 'सन्यङोः' से द्वित्व,

स सान यि स—हलादिः शेषः, ह्रस्वः,

सि सानयिष—सन्यतः, आदेशप्रत्यययोः, धातुसंज्ञा,

सि सानयिष शप् तिप्—अतो गुणे।

यदि यह नियमार्थ न कहा होता तो 'स्तौतिण्यो०' से यहाँ षत्व हो जाता।

(5) सिसनीः

सन् सन्—इट्, द्वित्व,

सन् इ स—पूर्वोऽभ्यासः,

स सनिस—हलादिः शेषः,

सि सनिष—सन्यतः आदेशप्रत्यययोः, धातुसंज्ञा,

सि सनिष क्विप्—सर्वापहारलोप,

सिसनिष्—'अतो लोपः' से अकारलोप,

सिसनि रु—'आदेशप्रत्यययोः' के असिद्ध होने से षकार को 'ससजुषोः०' से रुत्व,

सिसनीर्—'वोरुपधाया दीर्घ०' से दीर्घ आदेश, विसर्जनीय। षत्वभूत सन् के अभाव से 'स्तौतिण्यो०' नियम प्रवृत्त नहीं होता है। यहाँ यदि यह नहीं कहा जाता तो 'आदेशप्रत्यययोः' से मूर्धन्य होने लगता। ऐसा होने पर 'आदेशप्रत्यययोः' की प्रवृत्ति नहीं होती है।

(3904) सहेः पृतनर्ताभ्यां च *108* (3646)

पृतना, ऋत-इत्येताभ्यामुत्तरस्य सहिसकारस्य मूर्धन्यादेशो भवति। 'पृतनाषाहम्' (ऋ० 6.72.5) ऋताषाहम्। केचिद् 'सहेः' इति योगविभागं कुर्वन्ति-'ऋतीषह'(ऋ० 6.14.4)मित्यत्रापि यथा स्यात्। ऋतिशब्दस्य पूर्वपदस्य संहितायामेतद्दीर्घत्वं षत्वं च। अवग्रहे तु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ऋतिसहमित्येव भवति। चकारोऽनुक्तसमुच्चयार्थः। तेन 'ऋतीषहमिति' सिद्धम्।

अर्थ—पृतना तथा ऋत—इनसे उत्तर 'सहि' के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है।

उदा० (1) पृतनाषाहम्
पृतना सह् ण्वि—छन्दसि सहः,
पृतना साह्—अत उपधायाः, 'ण्वि' का सर्वापहारलोप, मूर्धन्य आदेश हुआ।

(2) ऋतीषाहम्
ऋति सह् ण्वि—'अन्येषामपि दृश्यते' से दीर्घ, शेष पूर्ववत्।

केचिद्०—कुछ विद्वान् 'सहेः' इस प्रकार योगविभाग करते हैं; ताकि निम्नलिखित में मूर्धन्य आदेश हो जाय। पूर्व पद 'ऋति' शब्द को संहिता में दीर्घ आदेश तथा षत्व होता है।

(3) ऋतीषहम्
ऋति सह्—'कृत्यल्युटो०' से 'क्विप्',
ऋति सह् क्विप्—प्रत्यय का सर्वापहारलोप,
ऋती सह्—'नहिवृतिवृषिव्यधि०' से दीर्घ आदेश,
ऋतीषह्—मूर्धन्य आदेश, प्रातिपदिक संज्ञा।

अवग्रहे०—अवग्रह में 'ऋतिसहम्' ही होता है। अनुक्त समुच्चय के लिए चकार का ग्रहण है। तब 'ऋतीषहम्' सिद्ध होता है।

(3905) न रपरसृपिसृजिस्पृशिस्पृहिसवनादीनाम् *109* (3168)

रेफपरस्य सकारस्य सृपि, सृजि, स्पृशि, सवनादीनां च मूर्धन्यो न भवति। रपर-'विस्रंसिकायाः कांण्डं जुहोति' (मै०सं० 2.6.1)। 'विस्रब्धः कथयति'। सृपि-'पुरा क्रूरस्य विसृपंः' (वा०सं० 1.28)। सृजि-वाचो विसर्जनात्। स्पृशि-'दिंविस्पृशंम्' (ऋ० 1.142.8)। स्पृहि-निस्पृहं कथयति। सवनादीनाम्-सवने सवने। सूते सूते। सामेसामे। सवनमुखे सवनमुखे। किं स्वतीति किंसंकिंसम्। अनुसवनमनुसवनम्। 'गोसनिं' (अथ० 3.20.10)। गोसनिम्। अश्वसनिमश्वसनिम्। पूर्वपदादिति प्राप्तेः प्रतिषेधः। अश्वसनिग्रहणमनिणोऽपि षत्वमस्तीति ज्ञापनार्थम्। तेन जलाषाहम्, अश्वषाहमित्येतत्सिद्धं भवति। क्वचिदेवं गणपाठः-सवनेसवने। अनुसवनेऽनुसवने। संज्ञायां बृहस्पतिसवः। शकुनिसवनम्। सोमेसोमे। सूतेसूते। संवत्सरेसंवत्सरे। किंसंकिंसम्। बिसंबिसम्। मुसलंमुसलम्। गोसनिमश्वसनिम्। सवनादिः।

अर्थ—रेफ परक सकार तथा सृप्, सृज्, स्पृश्, स्पृह् व सवनादि के सकार के स्थान पर मूर्धन्य आदेश नहीं होता है।

उदा० (क) रपरस्य—
(1) विस्रंसिकायाः
विस्रंस् ण्वुल्—'रोगाख्यायां०', चुटू, हलन्त्यम्,
विस्रंसक—युवोरनाकौ, प्रातिपदिक संज्ञा, सकार को मूर्धन्य आदेश नहीं हुआ,
विस्रंसक टाप्—अजाद्यतष्टाप्, प्रत्ययस्थात्०,
वि स्रंसिका ङस्—प्रातिपदिक संज्ञा, विभक्तिकार्य।

(2) विस्रब्धः
वि स्रन्भ् क्त—लशक्वत०,
वि स्रभ् त—'अनिदिताम्०' से नकारलोप,
वि स्रभ् ध—'झषस्तथो०' से धकार,
वि स्र ब् ध सु—'झलां जश् झशि' से जश्त्व, मूर्धन्य निषेध।

(ख) अन्येषां सकारस्य—
(3) विसृपः
वि सृप् कसुन्—सृपितृदोः कसुन्,
वि सृप् अस्—अनुबन्धलोप, मूर्धन्य आदेश नहीं हुआ।

(4) विसर्जनात्
वि सृज् ल्युट्—लशक्वत०, हलन्त्यम्,
वि सर्ज् अन—युवोरनाकौ, गुण, मूर्धन्य आदेश निषेध,
विसर्जन ङसि—प्रातिपदिक संज्ञा।

(5) दिविस्पृशम्
दिवि स्पृश् क्विन्—स्पृशोऽनुदके०, 'तत्पुरुषे कृति०' से अलुक्,
दिविस्पृश्—सर्वापहार लोप, प्रातिपदिक संज्ञा, विभक्तिकार्य।

(6) निस्पृहम्
नि स्पृह् अच्—'एरच्' से 'अच्' प्रत्यय, णिलोप,
नि स्पृह अम्—मूर्धन्य आदेश का अभाव, विभक्तिकार्य।

(7) सवने सवने
सु ल्युट्—गुण,
सवन ङि—वीप्सा अर्थ में द्वित्व।

(8) सूते सूते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

षू → सू—धात्वादेः षः सः,
सू क्त ङि—पूर्ववत्, वीप्सा अर्थ में द्वित्व।

(9) सामे सामे
(10) सवनमुखे सवनमुखे
(11) किंसं किंसम्
(12) अनुसवनमनुसवनम्
(13) गोसनिं गोसनिम्
(14) अश्वसनिमश्वसनिम्

पूर्वपदा०—'पूर्वपदात्०' से मूर्धन्य आदेश प्राप्त था। उसका निषेध हुआ।

अश्वसनि०—'अश्वसनि' के ग्रहण से ज्ञापित होता है कि इण् भिन्न को भी मूर्धन्य आदेश होता है। तब जलाषाहम् तथा अश्वषाहम्—ये रूप भी सिद्ध होते हैं।

(3906) सात्पदाद्योः *110* (2123)

'सात्' इत्येतस्य, पदादेश्च मूर्धन्यादेशो न भवति। 'विभाषा सातिकात्स्न्यें' (5.4.52)। प्रत्ययसकारत्वात् प्राप्तिः, पदादेश्चादेशसकारत्वात्। सात्–अग्निसात्, दधिसात्, मधुसात्। पदादेः–दधि सिञ्चति। मधु सिञ्चति।

अर्थ—'सात्' तथा 'पदादि' के सकार को मूर्धन्य आदेश नहीं होता है। 'विभाषा सातिकात्स्न्यें' से 'सात्' प्रत्यय होता है। प्रत्यय का सकार होने से मूर्धन्य आदेश की प्राप्ति थी तथा पदादि सकार को आदेश का सकार होने से मूर्धन्य आदेश प्राप्त था।

उदा० (क) सात्—
(1) अग्निसात्
मूर्धन्य आदेश नहीं हुआ।
(2) दधिसात् (पूर्ववत्)।
(3) मधुसात् (पूर्ववत्)।

(ख) पदादेः—
(4) दधि सिञ्चति
मूर्धन्य आदेश-निषेध।
(5) मधु सिञ्चति (पूर्ववत्)।

(3907) सिचो यङि *111* (2640)

सिचः सकारस्य यङि परतो मूर्धन्यादेशो न भवति। परिसेसिच्यते। अभिसेसिच्यते। 'उपसर्गात्' (8.3.65) इति या प्राप्तिः सा पदादिलक्षणमेव प्रतिषेधं बाधते, न 'सिचो यङि' इति। तस्मादयं प्रतिषेधः सर्वत्र भवति। यङीति किम्? अभिषिषिक्षति।

अर्थ—यङ् परे रहते सिच् के सकार को मूर्धन्य आदेश नहीं होता है।

उदा० (1) परिसेसिच्यते
सिच् यङ्—धातोरेकाचोः०, हलन्त्यम्,
से सिच् य—'सन्यङोः' से द्वित्व, हलादिः शेषः,
सेसिच्य—गुणो यङ्लुकोः, धातुसंज्ञा, मूर्धन्य आदेश का निषेध,
परिसेसिच्य शप् त—अतो गुणे।

(2) अभिसेसिच्यते
सिच् यङ्—पूर्ववत्।

उपसर्गा०—'उपसर्गात्' से जो प्राप्ति होती है, वह पदादि-लक्षण निषेध का ही बाध करती है। 'सिचो यङि' नहीं। अतः यह निषेध सर्वत्र होता है।

यङीति०—यङ् परे रहते मूर्धन्य आदेश का निषेध होता है।

(3) अभिषिषिक्षति
सिच् सन्—'सन्यङोः' से द्वित्व,
सि सिच् स—हलादि शेष, चोः कुः, आदेशप्रत्यययोः,
सि सिक्ष—धातुसंज्ञा,
अभिषिषिक्ष शप् ति—मूर्धन्य आदेश हो गया।

(3908) सेधतेर्गतौ *112* (2278)

गतौ वर्त्तमानस्य सेधतेः सकारस्य मूर्धन्यादेशो न भवति। अभिसेधयति गाः। परिसेधयति गाः। गताविति किम्? शिष्यमकार्यात् प्रतिषेधयति।

अर्थ—गति अर्थ में वर्त्तमान षिध धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश नहीं होता है।

उदा० (1) अभिसेधयति गाः
मूर्धन्य आदेश नहीं हुआ।
(2) परिसेधयति गाः (पूर्ववत्)।

गतावि०—गति अर्थ में वर्त्तमान सिध् के सकार को मूर्धन्य आदेश नहीं होता है।

(3) प्रतिषेधयति
मूर्धन्य आदेश हो गया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(3909) प्रतिस्तब्धनिस्तब्धौ च *113* (3027)

प्रतिस्तब्ध, निस्तब्ध–इत्येतौ मूर्धन्यप्रतिषेधाय निपात्येते। 'स्तम्भेः' (8.3.67) इति प्राप्तं षत्वं प्रतिषिध्यते। प्रति-स्तब्धः। निस्तब्धः।

अर्थ—प्रतिस्तब्ध तथा निस्तब्ध—इन शब्दों में मूर्धन्य आदेश निषेध का निपातन किया जाता है।

'स्तन्भः' से प्राप्त षत्व का निषेध किया जाता है।

उदा० (1) प्रतिस्तब्धः
प्रति स्तम्भ् क्त—'अनिदिताम्०' से अनुनासिकलोप,
प्रति स्तभ् त—झषस्तथो०,
प्रति स्तब् ध—झलां जश् झशि, सु।

(2) निस्तब्धः
निस् स्तम्भ् क्त—पूर्ववत्।

(3910) सोढः *114* (2358)

सहिरयं सोढ्भूतो गृह्यते, तस्य सकारस्य मूर्धन्यादेशो न भवति। परिसोढः, परिसोढुम्, परिसोढव्यम्। सोढभूत-ग्रहणं किम्? परिषहते।

अर्थ—'सोढ्' रूप को प्राप्त 'सह्' धातु का ग्रहण है। उसके सकार को मूर्धन्य आदेश नहीं होता है।

उदा० (1) परिसोढः
परि सह् क्त—'परिनिविभ्यः' से प्राप्त मूर्धन्य आदेश का निषेध हुआ,
परि सोढ् ध—सहिवहोरो०, हो ढः, झषस्तथो०,
परि सोढ् ढ—ढो ढे लोपः। सु।

(2) परिसोढुम्
परि सह् तुमुन् —अनुबन्धलोप,
परि सोढ् ढुम्—पूर्ववत्, ढो ढे लोपः।

(3) परिसोढव्यम्
परि सह् तव्यत्—पूर्ववत्।

सोढ्०—'सोढ्' इस रूप को प्राप्त सह् धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश का निषेध होता है।

(4) परिषहते
परि सह् शप् त—मूर्धन्य आदेश हो गया।

(3911) स्तम्भुसिवुसहां चङि *115* (2580)

स्तम्भु, सिवु, सह–इत्येतेषां चङि परतः सकारस्य मूर्धन्यादेशो न भवति। 'स्तम्भेः' (8.3.77) इति 'परि-निविभ्यः (8.3.70) इति च प्राप्तो मूर्धन्यः प्रतिषिध्यते। स्तम्भु–पर्यतस्तम्भत्, अभ्यतस्तम्भत्। सिवु–पर्यसीषिवत्, न्यसीषिवत्। सह–पर्यसीषहत्, व्यसीषहत्। *स्तम्भुसि-वुसहां चङि उपसर्गादिति वक्तव्यम्*। उपसर्गाद्या प्राप्ति-स्तस्या एव प्रतिषेधो यथा स्यात् अभ्यासाद्या प्राप्तिस्तस्या मा भूदिति। तथा चैवोदाहृतम्।

अर्थ—चङ् परे रहते स्तम्भ्, सिव् तथा सह्—इनके सकार को मूर्धन्य आदेश नहीं होता है।

'स्तम्भेः' से तथा 'परिनिविभ्यः' से प्राप्त मूर्धन्य आदेश का निषेध किया जाता है।

उदा० (क) स्तम्भ् धातोः—
(1) पर्यतस्तम्भत्
स्तम्भ् णिच्—धातुसंज्ञा,
स्तम्भ् इ त्—लुङ्, 'इतश्च' से इकारलोप, च्लि,
स्तम्भ् इ चङ् त्—'णिश्रिद्रुस्रुभ्यः०' से 'चङ्', चुटू, हलन्त्यम्,
स्तम्भ् अ त्—णेरनिटि,
त स्तम्भ् अ त्—'चङि' से द्वित्व, शर्पूर्वाः खयः, 'प्राक्सितादड्०' तथा 'स्थादिष्वभ्यासेऽ' से प्राप्त मूर्धन्य-निषेध,
परि अ तस्तम्भत्—अट्, यण्।

(2) अभ्यतस्तम्भत् (पूर्ववत्)।

(ख) सिव् धातोः—
(3) पर्यसीषिवत्
षिवु → सिव्—धात्वादेः षः सः, उपदेशेऽजनु०,
सिव् णिच्—पुगन्तलघूपधस्य च,
सेव् इ चङ् त्—लुङ्, पूर्ववत् 'चङ्',
सेवि अ त्—णिलोप, णौ चङ्युपधा०,
सि सिव् अ त्—'चङि' से द्वित्व, हलादिः शेषः,
सी सिवत्—सन्वल्लघुनि०, दीर्घो लघोः,
पर्य सीषि वत्—यण्, आदेशप्रत्यययोः।

(4) न्यसीषिवत् (पूर्ववत्)।

(5) पर्यसीषहत्
षह → सह्—आदेशप्रत्यययोः, उपदेशेऽजनु०,
सह् णिच्—अत उपधायाः, धातुसंज्ञा,
साहि—पूर्ववत् लुङ्, चङ्, णिलोप,
साह् अ त्—उपधाह्रस्व, द्वित्व,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स सहत्—हलादिः शेषः,
सि षहत्—सन्वल्लघु०, सन्यतः, आदेशप्रत्यययोः,
असीषहत्—दीर्घो लघोः।

(6) न्यसीषहत् (पूर्ववत्)।

उपसर्ग से उत्तर स्तम्भ्, सिव् तथा सह्—इन धातुओं के सकार को मूर्धन्य आदेश होता है। उपसर्ग से उत्तर जो प्राप्ति होती है, उसका निषेध हो जाय। अभ्यास से उत्तर जो मूर्धन्य आदेश की प्राप्ति है, उसका निषेध न हो।

(3912) सुनोतेः स्यसनोः *116* (2524)

सुनोतेः सकारस्य मूर्धन्यादेशो न भवति स्ये सनि च परतः। अभिसोष्यति। परिसोष्यति। अभ्यसोष्यत्। पर्यसोष्यत्। सनि किमुदाहरणम्? अभिसुसूषति। नैतदस्ति प्रयोजनम्, तत्र 'स्तौतिण्योरेव षण्यभ्यासात्' (8.3.71) इति नियमान्न भविष्यति। इदं तर्हि–अभिसुसूषते? एतदपि नास्ति; 'स्थादिष्वभ्यासेन चाभ्यासस्य' (8.3.64) इति नियमात्। इदं तर्ह्यभिसुसूषतेरप्रत्ययः अभिसुसूरित्युदाहरणमिति? अत्र हि सन्वभूतो न भवतीत्यभ्यासात् प्राप्तिरस्ति। स्यसनोरिति किम्? सुषाव।

अर्थ—स्य तथा सन् के परे रहते 'षु' धातु के सकार को मूर्धन्य आदेश नहीं होता है।

उदा० (1) अभिसोष्यति
सु स्य ति—ल्रट् शेषे च, स्यतासी ल्लुटोः,
अभि सो स्य ति—अंग को गुण, आदेशप्रत्यययोः।

(2) परिसोष्यति (पूर्ववत्)।
(3) अभ्यसोष्यत्
सु स्य त्—ल्रङ्, इतश्च, स्य, गुण,
सो स्यत्—अंग को गुण,
अभि अ सोष्यत्—अट्, आदेशप्रत्यययोः।

(4) पर्यसोष्यत् (पूर्ववत्)।
(5) अभिसुसूषति
सु सन्—'अज्झनगमां०' से दीर्घ,
सु सू स—सन्यङोः, ह्रस्वः,
अभि सुसूष—आदेशप्रत्यययोः, धातुसंज्ञा,
अभि सु सूष शप् ति—अतो गुणे।

नैतद०—यह प्रयोजन नहीं है। यहाँ 'स्तौतिण्योरेव०' नियम से नहीं होगा।

(6) अभिसुसूषते

एतदपि०—यहाँ पर भी मूर्धन्य आदेश नहीं होता है। 'स्थादिष्वभ्यासेन०' की यहाँ प्रवृत्ति होती है। 'अभिसुसूष' से अप्रत्यय करके 'अभिसुसूः' बनता है। परन्तु यहाँ भी सन् षकारभूत नहीं होता है। अतः 'स्तौतिण्योरेव०' की प्रवृत्ति नहीं होती है।

स्यसनो०—स्य तथा सन् के परे रहते ही मूर्धन्य आदेश का निषेध होता है। यथा—

(7) सुषाव
यहाँ मूर्धन्यादेश हो गया है।

(3913) सदिष्वञ्ज्योः परस्य लिटि *117* (2361)

सदि, स्वन्जि-इत्येतयोर्धात्वोर्लिटि परतः सकारस्य परस्य मूर्धन्यो न भवति। अभिषसाद, परिषसाद, निषसाद, विषसाद। परिषस्वजे, परिषस्वजाते, परिषस्वजिरे। अभिषस्वजे। स्वञ्जेः संयोगान्तादपि विभाषा लिटः कित्त्वमिच्छन्तीति पक्षेऽनुषङ्गलोपः।

अर्थ—लिट् परे रहते सद् तथा स्वन्ज् धातुओं के सकार को मूर्धन्य आदेश नहीं होता है।

उदा० (1) अभिषसाद
षद्ल्ऌ → सद्—धात्वादेः षः सः, उपदेशेऽजनु०,
सद् णल्—लिट्, परस्मैपदानां०,
स सद् अ—चुटू, हलन्त्यम्, द्वित्व, हलादिः शेषः,
स साद् अ—अत उपधायाः,
अभि ष साद् अ—मूर्धन्य आदेश नहीं हुआ। 'स्थादिष्वभ्या०' से षत्व प्राप्त था।

(2) परिषसाद (पूर्ववत्)।
(3) निषसाद (पूर्ववत्)।
(4) विषसाद (पूर्ववत्)।
(5) परिषस्वजे
ष्वज → स्वज्—धात्वादेः षः सः, उपदेशेऽजनु०,
स्वज् त—आत्मनेपद, लिटस्तझयोरे०,
स स्वज् ए—द्वित्व, हलादिः शेषः,
परि स स्वज् ए—'उपसर्गात्सुनोति०' से मूर्धन्य आदेश प्राप्त, प्रकृत सूत्र से निषेध,
परिषस्वजे—अभ्यास को मूर्धन्य आदेश।

(6) परिषस्वजाते

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वज् आताम्—लिट्, शेष कार्य पूर्ववत्,
परिषस्वजाताम्—टित, आत्मनेपदानां०।

(7) परिषस्वजिरे
स्वज् झ—लिट्, लिटस्तझयोरेशिरेच्,
स स्वज् इरे—द्वित्व, हलादिः शेषः।

(8) अभिषस्वजे
'परिषस्वजे' की तरह।

स्वञ्जेः०—('अभिषस्वज् एश्' इत्यादि स्थलों पर 'अनिदिताम्०' से अनुनासिकलोप होता है। 'असंयोगात्०' इस पर संयोग से उत्तर लिट् के कित्त्व का प्रतिषेध होने से अनुनासिक लोप प्राप्त नहीं होता है।)

(समा०) 'इन्धिभवतिभ्याञ्च' में चकार का पाठ अनुक्त समुच्चय के लिए है। अथवा 'विभाषोर्णोः' से 'विभाषा' पद का अनुवर्त्तन होता है। अतः संयोग से उत्तर लिट् को विकल्प से किद्वत् होता है। तब पक्ष में अनुस्वार का लोप होता है।

(3914) निव्यभिभ्योऽड्व्यवाये वा छन्दसि *118* (3647)

नि, वि, अभि-इत्येतेभ्य उपसर्गेभ्य उत्तरस्य सकारस्याड्व्यवाये छन्दसि विषये मूर्धन्यादेशो न भवति वा। न्यषीदत्पिता नः, न्यसीदत्। व्यषीदत्पिता नः, व्यसीदत्। अभ्यषीदत्, अभ्यसीदत्। 'सदिष्वन्ज्योः' इति, तदिह नानुवर्त्तते, सामान्येनैव तद्वचनम्। व्यष्टौत्, व्यस्तौत्; अभ्यस्तौत्-इत्येदपि सिद्धं भवति।

इति श्रीवामनाविरचितायां काशिकायां वृत्तावष्टमाऽध्यायस्य तृतीयः पादः॥

अर्थ—वेद के विषय में नि, वि तथा अभि उपसर्गों से उत्तर सकार को अट् का व्यवधान होने पर भी विकल्प से मूर्धन्य आदेश नहीं होता है।

उदा० (1) न्यषीदत्
षद्लृ → सद्—धात्वादेः षः सः, उपदेशेऽजनु०,
सद् त्—लङ्, 'इतश्च' से इकारलोप, कर्त्तरि शप्, अनुबन्धलोप,
सीद् अ त्—'पाघ्रा०' से 'सीद्' आदेश,
नि अ सीदत्—अट्, 'सदिरप्रतेः' से मूर्धन्य आदेश।

(2) न्यसीदत्
पक्ष में मूर्धन्य आदेश नहीं हुआ।

(3) व्यषीदत्
पूर्ववत् मूर्धन्य आदेश।

(4) व्यसीदत्
आदेश अभाव।

(5) अभ्यषीदत्
मूर्धन्य आदेश।

(6) अभ्यसीदत्
आदेश अभाव।

सदि०—'सदिष्वन्ज्योः' इसका अनुवर्त्तन नहीं है। यह सामान्य वचन है।

(7) व्यष्टौत्
स्तु त्—लङ्, इतश्च,
स्तु त्—कर्त्तरि शप्, अदिप्रभृतिभ्यः शपः,
स्तौत्—'उतो वृद्धिर्लुकि०' से वृद्धि,
वि अ स्तौत्—अट्, मूर्धन्य आदेश, ष्टुना ष्टुः।

(8) व्यस्तौत्
पक्ष में मूर्धन्य आदेश नहीं हुआ।

(9) अभ्यष्टौत्
मूर्धन्य आदेश।

(10) अभ्यस्तौत्
पक्ष में आदेश अभाव।

इति पण्डितेश्वरचन्द्रविरचितायां काशिकायाः सोमलेखाऽऽख्यायां हिन्दीटीकायाम्
अष्टमाऽध्यायस्य तृतीयः पादः समाप्तः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अष्टमाऽध्यायस्य चतुर्थः पादः

(3915) रषाभ्यां नो णः समानपदे *1* (235)

रेफषकाराभ्यामुत्तरस्य नकारस्य णकारादेशो भवति, समानपदस्थौ चेन्निमित्तनिमित्तिनौ भवतः। आस्तीर्णम्, विस्तीर्णम्, अवपूर्णम्। षकारात्-कुष्णाति, पुष्णाति, मुष्णाति। षत्रहणमुत्तरार्थम्; ष्टुत्वेनैव हि सिद्धमेतत्। समानपद इति किम्? अग्निर्नयति। वायुर्नयति। *ऋवर्णाच्चेति वक्तव्यम्*। तिसृणाम्। चतसृणाम्। मातृणाम्। पितृणाम्। रश्रुतिसामान्यनिर्देशाद्वा सिद्धम्। वर्णभक्त्या च व्यवधानेऽपि णत्वं भवतीति क्षुभ्नादिषु (8.4.39) नृनमन-तृप्नोतिग्रहणं ज्ञापकम्। अथ वा-ऋवर्णादपि णत्वं भवतीत्येतदेवानेन ज्ञाप्यते।

अर्थ—रेफ तथा षकार से उत्तर नकार के स्थान पर णकार होता है, यदि निमित्त तथा निमित्ती दोनों एक ही पद में विद्यमान हों।

उदा० (क) रेफात्—

(1) आस्तीर्णम्

आ स्तृ क्त—लशक्वतद्धि०,

आ स्तिर् त—'श्र्युकः किति' से इट् का निषेध, ऋत इद्धातोः, उरण् रपरः,

आ स्तिर् न—रदाभ्यां०,

आ स्तीर् ण सु—णत्व, दीर्घ।

(2) विस्तीर्णम्

वि स्तृ क्त—पूर्ववत् इकार, नत्व,

वि स्तिर् न सु—णत्व आदि।

(3) अवगूर्णम्

अव गुर् क्त—'श्वीदितो निष्ठायाम्' से इट् निषेध,

अव गुर् न—रदाभ्यां निष्ठातो०,

अव गूर् ण—णत्व, दीर्घ।

(ख) षकारात्—

(4) कुष्णाति

कुष् ति—लट्,

कुष् श्ना ति—क्र्यादिभ्यः श्ना, लशक्वत०,

कुष् णा ति—णत्व।

(5) पुष्णाति (पूर्ववत्)।

(6) मुष्णाति (पूर्ववत्)।

समान०—यदि निमित्त तथा निमित्ती—दोनों एक ही पद में हों तो नकार को णकार होता है।

(7) अग्निर्नयति

अग्निर् नयति—रेफ से उत्तर नकार है, परन्तु निमित्त (रेफ) तथा निमित्ती (नकार) समान पद में वर्त्तमान नहीं हैं, अपितु भिन्न-भिन्न पदों में स्थित हैं। णकार नहीं हुआ।

(8) वायुर्नयति (पूर्ववत्)।

ऋवर्णा०—ऋवर्ण से उत्तर नकार को णत्व होता है।

(9) तिसृणाम्

त्रि आम्—'त्रिचतुरोः स्त्रियां०' से 'तिसृ' आदेश,

तिसृ न् आम्—नुट् आगम, अनुबन्धलोप,

तिसृणाम्—'नामि' से प्राप्त दीर्घ का 'न तिसृचतसृ०' से निषेध, णत्व।

(10) चतसृणाम्

चतुर्—पूर्ववत्।

(11) मातृणाम्

मातृ आम्—ह्रस्वनद्यापो नुट्,

मातृनाम्—नामि, णत्व।

(12) पितृणाम् (पूर्ववत्)।

रश्रुति०—रेफश्रुति के सामान्य निर्देश से ही सिद्ध है। वर्ण-भक्ति से व्यवधान होने पर भी णत्व होता है। इसमें क्षुभ्नादि में नृनमन आदि के ग्रहण से ज्ञापित होता है।

अथवा०—अथवा इससे ज्ञापित होता है कि ऋवर्ण से उत्तर नकार को णत्व होता है।

(3916) अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि *2* (197)

अट्, कु, पु, नुम्-इत्येतैर्व्यवायेऽपि रेफषकाराभ्यामुत्तरस्य नकारस्य णकार आदेशो भवति। अड्व्यवाये तावत्-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करणम्, हरणम्। किरिणा। गिरिणा। कुरुणा। गुरुणा। कवर्गव्यवाये-अर्केण। मूर्खेण। गर्गेण। अर्घेण। पवर्गव्यवाये-दर्पेण। रेफेण। गर्भेण। चर्मणा। वर्मणा। आङ्व्यवाये-पर्याणद्धम्। निराणद्धम्। 'अङ्व्यवाये' इति सिद्धे आङ्ग्रहणम् 'पदव्यवाये' (8.4.32) इत्यस्य प्रतिषेधस्य बाधनार्थम्। नुम्व्यवाये-बृंहणम्। बृंहणीयम्। नुम्ग्रहणमनुस्वारोपलक्षणार्थं द्रष्टव्यम्। तेनं तृंहणम्, तृंहणीयमित्यत्रानुस्वारव्यवाये नुमभावेऽपि णत्वं भवति। सत्यपि च नुमि यत्रानुस्वारो न श्रूयते, तत्र न भवति-प्रेन्वनम्, प्रेन्वनीयमिति। व्यवायोपलक्षणार्थत्वाद-डादीनामिह व्यस्तैः समस्तैश्च व्यवायेऽपि णत्वं भवति।

अर्थ—रेफ तथा षकार से उत्तर नकार के स्थान पर णकार होता है, अट् वर्ण, कवर्ग, पवर्ग, आङ् तथा नुम्—इनका व्यवधान होने पर भी।

उदा० (क) अट्व्यवाये—

(1) करणम्
कृ ल्युट्—हलन्त्यम्, लशक्वत०,
कृ यु—युवोरनाकौ,
कर् अन—गुण, णत्व, सु।

(2) हरणम्
ह ल्युट्—पूर्ववत्।

(3) किरिणा
किरि टा—घिसंज्ञा,
किरि ना—आङो नाऽस्त्रियाम्,
किरिणा—णत्व।

(4) गिरिणा (पूर्ववत्)।

(5) कुरुणा
कुरु टा—पूर्ववत्।

(6) गुरुणा
गुरु टा—पूर्ववत्।

(ख) कवर्गव्यवाये—

(7) अर्केण
अर्क टा—'टाङसिङसामि०' से 'इन' आदेश,
अर्क इन—'आद् गुणः' से गुण एकादेश, रेफ तथा नकार के मध्य ककार व अकार का व्यवधान है।

(8) मूर्खेण
मूर्ख टा—पूर्ववत्,
मूर्खेन—णत्व, खकार का व्यवधान है।

(9) गर्गेण
गर्ग टा—गकार का व्यवधान।

(10) अर्घेण
अर्घ टा—धकार का व्यवधान।

(ग) पवर्गव्यवाये—

(11) दर्पेण
दर्प टा—पूर्ववत् 'इन' आदेश, गुण, णत्व, णकार का व्यवधान है।

(12) रेफेण
रेफ टा—फकार का व्यवधान है।

(13) गर्भेण
गर्भ टा—भकार का व्यवधान है।

(14) चर्मणा
चर्मन् टा—णत्व।

(15) वर्मणा
वर्मन् टा—णत्व

(घ) आङ्व्यवाये—

(16) पर्याणद्धम्
परि आ नह् क्त—लशक्वतद्धिते,
परि आ नध् त—'नहो धः' से धकार,
परि आ नध् ध—झषस्तथो०,
परि आ नद् ध—झलां जश् झशि,
पर्याणद्ध सु—इको यणचि, णत्व।

(17) निराणद्धम्
निर् आ नह् क्त—पूर्ववत्।

अङ्व्य०—'अङ्व्यवाये' के द्वारा णत्व के सिद्ध होने पर भी 'आङ्' का ग्रहण 'पदव्यवाये' से प्राप्त निषेध के बाध के लिए है।

(ङ) नुम्व्यवाये—

(18) बृंहणम्
बृंह् ल्युट्—अनुबन्धलोप,
बृंह् अन—युवोरनाकौ,
बृंहण सु—णत्व।

(19) बृंहणीयम्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बृंह् अनीयर्—हलन्त्यम्,
बृंहणीय सु—णत्व।

नुम्व्यवा०—नुम् का ग्रहण अनुस्वार के उपलक्षण के लिए है। अतः तृंहणम् तथा तृंहणीयम्—इन स्थलों पर अनुस्वार का व्यवधान होने पर तथा नुम् का अभाव होने पर भी णत्व हो जाता है। नुम् होने पर भी जहाँ अनुस्वार का श्रवण नहीं होता है, वहाँ णत्व नहीं होता है। यथा—

(20) प्रेन्वनम्
इवि → इन्व्—इदितो नुम् धातोः,
प्र इन्व् ल्युट्—झल् परे न रहने से 'नश्चाऽपदान्त०' की प्रवृत्ति नहीं होती है, युवोरनाकौ,
प्रेन्व् अन—आद् गुणः, णत्व नहीं हुआ, सु।

(21) प्रेन्वनीयम्
प्र इन्व् अनीयर्—पूर्ववत् णत्व अभाव।

व्यवायो०—व्यवधान के उपलक्षण होने से अट् आदि का पृथक्-पृथक् अथवा समस्त रूपेण—दोनों प्रकार का व्यवधान होने पर णत्व होता है।

(3917) पूर्वपदात्संज्ञायामगः *3* (857)

पूर्वपदस्थान्निमित्तादुत्तरस्य गकारवर्जिताद् नकारस्य णकार आदेशो भवति संज्ञायां विषये। द्रुणसः। वार्ध्रीणसः। खरणसः। शूर्पणखा। संज्ञायामिति किम्? चर्मनासिकः। अग इति किम्? ऋगयनम्। केचिदेतन्नियमार्थं वर्णयन्ति–पूर्वपदात्संज्ञायामेव णत्वं नान्यत्रेति। समासेऽपि हि समानपदे निमित्तनिमित्तिनोर्भावादस्ति पूर्वेण प्राप्तिरिति। स च नियमः पूर्वपदसम्बन्धादुत्तरपदस्थस्यैव णत्वं निवर्त्तयति–चर्मनासिक इति, न तद्धितपूर्वपदस्थस्य–खारपायणः, मातृभोगीणः, करणप्रिय इति। 'अगः' इति योगविभागेन णत्वप्रतिषेधः, न नियमप्रतिषेध इति। अपरे तु–पूर्वसूत्रे 'समानमेव यन्नित्यं पदं तत्समानपदम्' इत्याश्रयन्ति; समानग्रहणात्। तेषामप्राप्तमेव णत्वमनेन विधीयते। समासे हि पूर्वपदोत्तरपदविभागादसमानपदत्वमप्यस्तीति।

अर्थ—संज्ञा के विषय में पूर्व पद में स्थित निमित्त से उत्तर नकार के स्थान पर णकार होता है, परन्तु गकार से उत्तर नहीं होता है।

उदा० (1) द्रुणसः
द्रुरिव नासिकाऽस्य—बहुव्रीहि समास,
द्रुनस् अच्—'अञ्नासिकाया०' से समासान्त 'अच्' प्रत्यय तथा नासिका शब्द को 'नस्' आदेश, णत्व, सु।

(2) वार्ध्रीणसः
वार्ध्री नासिका—बहुव्रीहि,
वार्ध्री नस् अ—पूर्ववत् नस् आदेश, अच् समासान्त,
वार्ध्रीणस सु—णत्व।

(3) खरणसः
खर नासिका—पूर्ववत्,
खर नस् अ—णत्व, सु।

(4) शूर्पणखा
शूर्प नख टाप्—स्त्रियाम्, अजाद्यतष्टाप्, अनुबन्धलोप,
शूर्पणखा सु—णत्व, सुलोप।

सञ्ज्ञाया०—संज्ञा में ही नकार को णकार होता है।

(5) चर्मनासिकः
चर्मविकारो नासिकाऽस्य—'समुदायविकार०' से समास,
चर्म नासिक सु—उपसर्जनलक्षण ह्रस्वादेश, संज्ञा का विषय न होने से णत्व नहीं हुआ।

अग०—गकार से उत्तर को णत्व नहीं होता है।

(6) ऋगयनम्
ऋचोऽयनम्—षष्ठी समास,
ऋच् अयन—झलां जशोऽन्ते,
ऋज् अयन—कुत्व,
ऋग् अयन सु—गकार से उत्तर नकार को णत्व नहीं हुआ।

केचिदे०—कुछ विद्वान् नियम करते हैं कि पूर्व पद में स्थित निमित्त से उत्तर संज्ञा के विषय में ही नकार को णकार होता है, अन्यत्र नहीं। समास की अवस्था में एक ही पद में निमित्त व निमित्ती के होने से पूर्व सूत्र से णत्व की प्राप्ति है। यह नियम पूर्व पद से उत्तर जो उत्तर पद, उसमें स्थित को ही णत्व की निवृत्ति करता है। यथा—

चर्मनासिकः।

तद्धित पूर्व पद में स्थित की निवृत्ति नहीं करता है। यथा—

(7) खारपायणः। (8) मातृभोगीणः। (9) करणप्रियः।

अग इति०—'अगः' इस प्रकार योगविभाग के द्वारा णत्व का निषेध होता है तथा नियम का निषेध नहीं होता है।

अपरे०—अन्य विद्वान् तो पूर्व सूत्र में 'जो पद नित्य एक

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होता है, वह समान पद होता है'—इसका आश्रय करते हैं। उनके मत में अप्राप्त के स्थान पर इस सूत्र से णत्व होता है। समास की अवस्था में पूर्व पद व उत्तर पद के विभाग से भिन्न पद होते हैं।

(3918) वनं पुरगामिश्रकासिध्रकाशारिका-कोटराग्रेभ्यः *4* (1039)

'पूर्वपदात्संज्ञायाम्' इति वर्तते। पुरगा, मिश्रका, सिध्रका, शारिका, कोटरा, अग्रे-इत्येतेभ्यः पूर्वपदेभ्य उत्तरस्य वननकारस्य णकारादेशो भवति संज्ञायां विषये। पुरगावणम्। मिश्रकावणम्। सिध्रकावणम्। शारिकावणम्। कोटरावणम्। अग्रेवणम्। 'सिद्धे सत्यारम्भो नियमार्थः' (का०प०)। एतेभ्य एव परस्य वननकारस्य णकारादेशो भवति, नान्येभ्य इति। कुबेरवनम्। शतधारवनम्। असिपत्रवनम्।

अर्थ—'पूर्वपदात् सञ्ज्ञायाम्' का अनुवर्त्तन है। पुरगा, मिश्रका० सिध्रका, शारिका, कोटरा, तथा अग्रे—इन पूर्व पदों से उत्तर 'वन' शब्द का जो नकार, उसके स्थान पर णकार होता है, संज्ञा के विषय में।

उदा० (1) पुरगावणम्
पुरगा वन—षष्ठी समास, 'वनगिर्योः सञ्ज्ञाया०' से पूर्व पद को दीर्घ,
पुरगावण सु—णत्व।

(2) मिश्रकावणम्
मिश्रकावन—पूर्ववत्।

(3) सिध्रकावणम् (पूर्ववत्)।
(4) शारिकावणम् (पूर्ववत्)।
(5) कोटरावणम् (पूर्ववत्)।
(6) अग्रेवणम् (पूर्ववत्)।

सिद्धे०—यहाँ णत्व सिद्ध होने पर भी नियम के लिए विधान किया गया है। यह नियम करता है कि सूत्रोक्त 'पुरगा' आदि शब्दों से ही उत्तर वन शब्द के नकार को णकार होता है, अन्य शब्दों से उत्तर को नहीं।

(7) कुबेरवनम्
णत्व अभाव।

(8) शतधारवनम्
णत्व नहीं हुआ।

(9) असिपत्रवनम् (पूर्ववत्)।

(3919) प्रनिरन्तःशरेक्षुप्लक्षाम्रकार्ष्य-खदिरपीयूक्षाभ्योऽसंज्ञायामपि *5* (1050)

प्र, निर्, अन्तर्, शर, इक्षु, प्लक्ष, आम्र, कार्ष्य, खदिर, पीयूक्षा-इत्येतेभ्य उत्तरस्य वननकारस्य संज्ञायामसंज्ञायामपि णकारादेशो भवति। प्र-प्रवणे यष्टव्यम्। निर्-निर्वणे प्रतिधीयते। अन्तर्-अन्तर्वणे। शर-शरवणम्। इक्षु-इक्षुवणम्। प्लक्ष-प्लक्षवणम्। आम्र-आम्रवणम्। कार्ष्य-कार्ष्यवणम्। खदिर-खदिरवणम्। पीयूक्षा-पीयूक्षावणम्।

अर्थ—संज्ञा के विषय में तथा असंज्ञा के विषय में—दोनों स्थितियों में प्र, निर्, अन्तर्, शर, इक्षु, प्लक्ष, आम्र, कार्ष्य, खदिर तथा पीयूक्षा—इन शब्दों से उत्तर जो वन शब्द, उसके नकार के स्थान पर णकार आदेश होता है।

उदा० (1) प्रवणे
प्रगतं वनम्—प्रादि समास,
प्र वन ङि—णत्व, विभक्तिकार्य।

(2) निर्वणे
निर्गतं वनम्—पूर्ववत्।

(3) अन्तर्वणे
विभक्ति अर्थ में, णत्व पूर्ववत्।

(4) शरवणम्
शर वन सु—षष्ठी समास।

(5) इक्षुवणम् (पूर्ववत्)।
(6) प्लक्षवणम् (पूर्ववत्)।
(7) आम्रवणम्
णत्व हुआ।

(8) कार्ष्यवणम्
नकार को णकार।

(9) खदिरवणम्
णत्व आदेश।

(10) पीयूक्षावणम्
वन के नकार को णत्व।

(3920) विभाषौषधिवनस्पतिभ्यः *6* (1051)

'वनम्' इत्येव। ओषधिवाचि यत्पूर्वपदं वनस्पतिवाचि च

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तत्स्थान्निमित्तादुत्तरस्य वननकारस्य णकार आदेशो भवति विभाषा। ओषधिवाचिभ्यस्तावत्–दूर्वावणम्, दूर्वावनम्। मूर्वावणम्, मूर्वावनम्। वनस्पतिभ्यः–शिरीषवणम्, शिरीषवनम्। बदरीवणम्, बदरीवनम्। *द्व्यक्षरत्र्यक्षरेभ्य इति वक्तव्यम्*। इह मा भूत्–देवदारुवनम्। भद्रदारुवनम्। *इरिकादिभ्यः प्रतिषधो वक्तव्यः*। इरिकावनम्। मिरिकावनम्।

फली वनस्पतिर्ज्ञेयो वृक्षाः पुष्पफलोपगाः।
ओषध्यः फलपाकान्ता लता गुल्माश्च वीरुधः॥

(इति) सत्यपि भेदे वृक्षवनस्पत्योरिहाभेदेन ग्रहणं द्रष्टव्यम्।

अर्थ—'वनम्' का अनुवर्त्तन है। ओषधिवाची तथा वनस्पति वाची जो पूर्व पद, उसमें स्थित निमित्त से उत्तर 'वन' शब्द के नकार को णकार विकल्प से होता है।

उदा० (क) ओषधिवाचिभ्यः—
(1) दूर्वावणम्
दूर्वा वन—षष्ठी समास,
दूर्वावण सु—णत्व।

(2) दूर्वावनम्
पक्ष में णत्व नहीं हुआ।

(3) मूर्वावणम्
णत्वपक्ष।

(4) मूर्वावनम्
णत्व अभाव पक्ष।

(ख) वनस्पतिवाचिभ्यः—
(5) शिरीषवणम्
णत्वपक्ष।

(6) शिरीषवनम्
णत्व अभाव पक्ष।

(7) बदरीवणम्
नकार को णत्व।

(8) बदरीवनम्
पक्ष में णत्व नहीं हुआ।

द्व्यक्षर०—दो अक्षर वाला तथा तीन अक्षर वाला जो पूर्वपद, उससे उत्तर वन शब्द के नकार को णकार होता है।

(9) देवदारुवनम्
नकार को णकार नहीं हुआ।

(10) भद्रदारुवनम् (पूर्ववत्)।

इरिका०—इरिकादि शब्दों से उत्तर 'वन' शब्द के नकार को णकार नहीं होता है।

(11) इरिकावनम्
णत्व प्राप्त था। णत्व नहीं हुआ।

(12) मिरिकावनम् (पूर्ववत्)।

फली०—फलपाक के द्वारा जिनका नाश हो जाता है, उन्हें 'ओषधि' कहते हैं। यथा—कदली। प्रतान वाली को 'लता' कहते हैं। यथा—मालती। छोटे पौधे को 'गुल्म' कहते हैं। अनेक काण्ड, प्रकाण्ड व पत्तों वाली को 'वीरुध' कहते हैं। इस प्रकार भेद होने पर भी यहाँ वृक्ष और वनस्पति में अभेद स्वीकार किया गया है।

(3921) अह्नोऽदन्तात् *7* (791)

अदन्तं यत्पूर्वपदं तत्स्थान्निमित्तादुत्तरस्याह्नो नकारस्य णकार आदेशो भवति। पूर्वाह्णः। अपराह्णः। अदन्तादिति किम्? निरह्नः। दुरह्नः। 'अह्नोऽह्न एतेभ्यः' (5.4.88) इत्यह्नादेशः। 'अह्नः' इत्याकारान्तग्रहणाद् 'दीर्घाह्नी शरदि'त्यत्र न भवति।

अर्थ—ह्रस्व अकारान्त जो पूर्व पद, उसमें स्थित निमित्त से उत्तर 'अहन्' शब्द के नकार के स्थान पर णकार आदेश होता है।

उदा० (1) पूर्वाह्णः
अह्नः पूर्वः—'पूर्वापर०' से समास,
पूर्व अह्न—'अह्नोऽह्न एतेभ्यः' से 'अह्न' आदेश,
पूर्व अह्न—राजाऽहःसखि०; णत्व, सु।

(2) अपराह्णः
पूर्ववत् समास आदि, णत्व।

अदन्ता०—ह्रस्व अकारान्त पूर्व पद से उत्तर 'अहन्' के नकार को णकार होता है।

(3) निरह्नः
निर्गतोऽह्नः—प्रादि समास, शेष पूर्ववत्,
निर् अह्न सु—पूर्वपद के अदन्त न होने से णत्व नहीं हुआ।

(4) दुरह्नः
पूर्ववत् समास आदि।

अह्नो०—'अह्नोऽह्न एतेभ्यः' से 'अह्न' आदेश होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

'अह्न' यह अकारान्त के ग्रहण से निम्नलिखित में णत्व नहीं होता है—

(5) दीर्घाह्नी
दीर्घाण्यहानि यस्याम्—बहुव्रीहि समास,
दीर्घाह्न—पूर्ववत्,
दीर्घाह्न ङीप्—'अन उपधालोपि०' से 'ङीप्' 'अल्लोपोऽनः' से उपधालोप, णत्व नहीं हुआ,
दीर्घाह्नी सु—विभक्तिकार्य।

(3922) वाहनमाहितात् *8* (1052)

आहितवाचि यत्पूर्वपदं तत्स्थान्निमित्तादुत्तरस्य वाहननकारस्य णकार आदेशो भवति। इक्षुवाहणम्। शरवाहणम्। दर्भवाहणम्। वाहने यद् आरोपितमुह्यते तदाहितमुच्यते। आहितादिति किम्? दाक्षिवाहनम्। दाक्षिस्वामिकं वाहनमित्यर्थः।

अर्थ—आहितवाची जो पूर्वपद, उसमें स्थित निमित्त से उत्तर 'वाहन' शब्द के नकार को णकार होता है।

उदा० (1) इक्षुवाहणम्
इक्षूणां वाहनम्—कृद्योगलक्षणा जो कर्म में षष्ठी, उसका समास,
इक्षुवाहन सु—णत्व।

(2) शरवाहणम्
पूर्ववत् णत्व।

(3) दर्भवाहणम्
पूर्ववत् णकार हुआ।

वाहन में जो आरोपित वहन किया जाता है, उसे 'आहित' कहते हैं।

आहिता०—आहितवाची से उत्तर 'वाहन' शब्द के नकार को णत्व होता है।

(4) दाक्षिवाहनम्
णत्व नहीं हुआ।
दाक्षिवाहन का स्वामी है।

(3923) पानं देशे *9* (1053)

पाननकारस्य पूर्वपदस्थान्निमित्तादुत्तरस्य देशाभिधाने णकार आदेशो भवति। पीयते इति पानम्। 'कृत्यल्युटो बहुलम्' (3.3.113) इति कर्मणि ल्युट्। क्षीरं पानं येषां ते क्षीरपाणा उशीनराः। मनुष्याभिधानेऽपि देशाभिधानं गम्यते। सुपाराणाः प्राच्याः। सौवीरापाणा बाह्लीकाः। कषायपाणा गन्धाराः। देश इति किम्? दाक्षीणां पानं दाक्षिपानम्।

अर्थ—देश अर्थ वाच्य हो तो पूर्व पद में स्थित निमित्त से उत्तर 'पान' शब्द के नकार को णकार होता है। 'कृत्यलुटो बहुलम्' से कर्म में ल्युट् होता है।

उदा० (1) क्षीरपाणाः
क्षीरं पानं येषां ते—समास,
क्षीरपान—णत्व, जस्।

(2) सुरापाणाः (पूर्ववत्)।

(3) कषायपाणाः
णत्व हुआ।

देश०—देश अर्थ में ही नकार को णकार होता है। यथा—

दाक्षीणां पानम्—दाक्षिपानम्
णत्व नहीं हुआ।

(3924) वा भावकरणयोः *10* (1054)

भावे करणे च यः पानशब्दस्तदीयस्य नकारस्य णकार आदेशो भवति वा पूर्वपदस्थान्निमित्तादुत्तरस्य। क्षीरपाणं वर्त्तते, क्षीरपानम्। कषायपाणम्, कषायपानम्। सुरापाणम्, सुरापानम्। करणे–क्षीरपाणः कंसः। क्षीरपानः। *वाप्रकरणे गिरिनद्यादीनामुपसंख्यानम्*। गिरिणदी, गिरिनदी। चक्रणदी, चक्रनदी। चक्रणितम्बा, चक्रनितम्बा।

अर्थ—भाव तथा करण अर्थों में वर्त्तमान पूर्व पद में स्थित निमित्त से उत्तर जो पान शब्द, उसके नकार को णकार विकल्प से होता है।

उदा० (1) क्षीरपाणम्
क्षीरपान—'नपुंसके भावे क्तः' 'ल्युट् च',
क्षीर पाण सु—णत्व।

(2) क्षीरपानम्
पक्ष में णत्व नहीं हुआ।

(3) कषायपाणम्
णत्वपक्ष।

(4) कषायपानम्
णत्व अभाव पक्ष।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(5) सुरापाणम्
णत्व हुआ है।

(6) सुरापानम्
णत्व नहीं हुआ।

(7) क्षीरपाणः
पीयतेऽनेनेति पानम्—'करणाधिकरणयोश्च' से 'ल्युट्', क्षीरपान सु—णत्व।

(8) क्षीरपानः
णत्व अभाव।

वाप्रक०—गिरि, नदी आदि शब्दों में णत्व विकल्प से होता है।

(9) गिरिणदी
णत्व हुआ है।

(10) गिरिनदी
पक्ष में णत्व अभाव।

(11) चक्रणदी
णत्व।

(12) चक्रनदी
पक्ष में णत्व नहीं हुआ।

(13) चक्रणितम्बा
णत्व हुआ।

(14) चक्रनितम्बा
णत्व नहीं हुआ।

(3925) प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु च *11*

(1055)

'वा' इति वर्तते। प्रातिपदिकान्ते नुमि विभक्तौ च यो नकारस्तस्य पूर्वपदस्थान्निमित्तादुत्तरस्य वा णकार आदेशो भवति। प्रातिपदिकान्ते तावत्–माषवापिणौ, माषवापिनौ। नुमि–माषवापाणि, माषवापानि। व्रीहिवापाणि, व्रीहिवापानि। विभक्तौ–माषवापेण, माषवापेन। व्रीहिवापेण, व्रीहिवापेन। पूर्वपदाधिकारदुत्तरपदस्य प्रातिपदिकस्थो योऽन्त्यो नकारस्तस्येदं णत्वमिष्यते। इह हि न भवति–गर्गाणां भगिनी गर्गभगिनी। यदा त्वेवं भवति–गर्गाणां भगो गर्गभगः, गर्गभगोऽस्या अस्तीति गर्गभगिणीति; तदा मातृभोगीणवन्नित्यमेव णत्वेन भवितव्यम्। माषवापिणी, माषवापिनीत्यत्र तु 'गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक्सुबुत्पत्तेः' (पु०प०) इति कृदन्तेनैव समासे सति प्रातिपदिकस्य उत्तरपदस्यैव सतो नकारो भवति। तथा चात्र नुम्ग्रहणं कृतम्। स हि समुदायभक्तत्वादुत्तरपदस्यान्तो न भवति। *युवादीनां प्रतिषेधो वक्तव्यः*। आर्ययूना। क्षत्रिययूना। प्रपक्वानि। दीर्घाह्नी शरत्।

अर्थ—'वा' का अनुवर्त्तन है। पूर्वपद में स्थित निमित्त से उत्तर प्रातिपदिक के अन्त में, नुम् में तथा विभक्ति में जो नकार, उसको विकल्प से णकार होता है।

उदा० (क) प्रातिपदिकान्ते—
(1) माषवापिणौ
माषवप् णिनि—'बहुलमाभीक्ष्ण्ये' से प्रत्यय, माषवापिन्—चुटू, उपदेशेऽजनु०, अत उपधायाः, माषवापिण् औ—णत्व।

(2) माषवापिनौ
पक्ष में णत्व नहीं हुआ।

(ख) नुमि—

(3) माषवापाणि
माषान् वपन्ति—'कर्मण्यण्' से 'अण्', हलन्त्यम्, माषवाप् अ—अत उपधायाः, प्रातिपदिक संज्ञा, माषवाप जस्—जश्शसोः शिः, शि सर्वनामस्थानम्, माषवाप इ—लशक्वतद्धिते, माषवाप नुम् इ—नपुंसकस्य झलचः, माषवापान् इ—सर्वनामस्थाने चा०, णत्व।

(4) माषवापानि
पक्ष में णत्व अभाव।

(5) व्रीहिवापाणि
पूर्ववत् णत्व।

(6) व्रीहिवापानि
णत्व अभाव।

(ग) विभक्तौ—

(7) माषवापेण
माषवाप—पूर्ववत् अण्, माषवाप टा—टाङसिङसामिनात्स्याः, माषवाप इन—आद् गुणः, णत्व।

(8) माषवापेन
पक्ष में णत्व नहीं हुआ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पूर्वपदा०—पूर्व पद अधिकार से उत्तर पद का प्रातिपदिक में स्थित जो अन्त्य नकार, उसके स्थान पर णकार होता है। यहाँ नहीं होता है। यथा—

(9) गर्गभगिनी
गर्गाणां भगिनी—समास हुआ, णत्व-निषेध।

इह हि०—जब ऐसा होता है—
गर्गाणां भगः—गर्गभगः।
गर्गभगोऽस्या अस्ति—गर्गभगिणी—णत्व हुआ।
'मातृभोगीण' की तरह णत्व होता है।

माष०—माषवापिणी, माषवापिनी—इन स्थलों पर 'गतिकारकोपपदानां०' से कृदन्त के साथ समास होने पर प्रातिपदिक के उत्तर पद का ही नकार होता है। यहाँ 'नुम्' का ग्रहण किया गया है। वह समुदायभक्त होने से उत्तर पद का अन्त नहीं होता है।

युवा०—'युवन्' के नकार को णत्व का निषेध होता है।

(10) आर्ययूना
आर्य युवन्—विशेषण समास,
आर्य यून्—'श्वयुवमघोनामत०' से सम्प्रसारण, सम्प्रसारणाच्च, अकः सवर्णे दीर्घः,
आर्य यून् टा—चुटू।

(11) क्षत्रिययूना (पूर्ववत्)।

(12) प्रपक्वानि
प्रपक्व नुम् शि—'जस्' को 'शि' आदेश, 'नुम्' आगम,
प्रपक्वान् इ—दीर्घ, णत्वनिषेध।

(13) दीर्घाह्नी (पूर्ववत्)।

(3926) एकाजुत्तरपदे णः *12* (307)

एकाजुत्तरपदं यस्य स एकाजुत्तरपदः, तस्मिन्नेकाजुत्तरपदसमासे प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु पूर्वपदस्थान्निमित्तादुत्तरस्य नकारस्य णकार आदेशो भवति। वृत्रहणौ। वृत्रहणः। नुमि-क्षीरपाणि। सुरापाणि। विभक्तौ-क्षीरपेण। सुरापेण। 'णः' इति वर्त्तमाने पुनर्णग्रहणं विकल्पाधिकारनिवृत्तेर्विस्पष्टीकरणार्थम्।

अर्थ—एकाच् है उत्तर पद जिसका, वह एकाजुत्तर पद कहलाता है। एकाच् उत्तर पद समास में वर्त्तमान पूर्व पद में स्थित निमित्त से उत्तर नकार के स्थान पर णकार होता है, प्रातिपदिकान्त, नुम् तथा विभक्ति में।

उदा० (1) वृत्रहणौ
वृत्रहन् क्विप्—'ब्रह्मभ्रूण०' से 'क्विप्',
वृत्रहन्—सर्वापहार लोप, प्रातिपदिक संज्ञा,
वृत्रहन् औ—णत्व।

(2) वृत्रहणः
वृत्रहन् जस्—पूर्ववत्,
वृत्रहण् अस् —चुटू, णत्व।

(3) क्षीरपाणि
क्षीरं पिबति—'आतोऽनुपसर्गे कः',
क्षीर पा क—'लशक्वतद्धिते', 'आतो लोप इटि च' से आकारलोप,
क्षीरप् अ शि—जस्, 'शि' आदेश, नुम्, लशक्वत०,
क्षीरपान् इ—दीर्घ, णत्व।

(4) सुरापाणि
सुरापा टक्—'गापोष्टक्' अथवा पूर्ववत् 'क',
सुराप शि—जश्शसोः शिः,
सुरापान् इ—णत्व।

(5) क्षीरपेण
क्षीरप टा—टाङसिङसामिना०,
क्षीरप इन—आद् गुणः,
क्षीरपेन—णत्व।

(6) सुरापेण
सुराप टा—पूर्ववत्।

ण इति०—'णः' का अधिकार होने पर भी पुनः 'णः' का ग्रहण विकल्प की निवृत्ति तथा स्पष्टता के लिए है।

(7) वस्त्रयुगाणि
वस्त्रयुग जस्—जश्शसोः शिः,
वस्त्रयुग शि—शि सर्वनामस्थानम्, लशक्वत०,
वस्त्रयुग न् इ—नुम्,
वस्त्रयुगान् इ—दीर्घ, णत्व।

(3927) कुमति च *13* (1056)

कवर्गवति चोत्तरपदे प्रातिपदिकान्तनुम्विभक्तिषु पूर्वपदस्थान्निमित्तादुत्तरस्य नकारस्य णकारादेशो भवति। वस्त्रयुगिणौ, वस्त्रयुगिणः। स्वर्गकामिणौ। वृषगामिणौ। नुमि-वस्त्रयुगाणि। खरयुगाणि। विभक्तौ-वस्त्रयुगेण। खरयु-गेण।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—क वर्ग वाले उत्तर पद के परे रहते पूर्व पद में स्थित निमित्त से उत्तर नकार को णकार होता है, प्रातिपदिकान्त, नुम् तथा विभक्ति में।

उदा० (1) वस्रयुगिणौ
वस्रयुग इनि—अत इनिठनौ, उपदेशे,
वस्रयुगिन् औ—णत्व।

(2) वस्रयुगिणः
वस्रयुगिन् जस्—पूर्ववत् णत्व।

(3) स्वर्गकामिणौ
स्वर्गकामिन् औ—णत्व।

(4) वृषगामिणौ
वृषगामिन् औ—णकार हुआ।

(5) वस्रयुगाणि
वस्रयुग जस्—जश्शसोः शिः,
वस्रयुग शि—शि सर्वनामस्थानम्, लशक्वत०,
वस्रयुग न् इ—नुम्,
वस्रयुगान् इ—दीर्घ, णत्व।

(6) खरयुगाणि
खरयुग जस्—पूर्ववत्।

(7) वस्रयुगेण
वस्रयुग टा—टाङसिङसामिनात्०,
वस्र युग इन—आद् गुणः, णत्व।

(8) खरयुगेण
खरयुग टा—पूर्ववत्।

(3928) उपसर्गादसमासेऽपि णोपदेशस्य *14* (2287)

न उपदेशे यस्यासौ णोपदेशः। णोपदेशस्य धातोर्यो नकारः तस्य उपसर्गस्थान्निमित्तादुत्तरस्य णकारादेशो भवति असमासेऽपि, समासेऽपि। प्रणमति। परिणमति। प्रणायकः। परिणायकः। उपसर्गादिति किम्? पूर्वपदाधिकारात् समास एव स्यादिति तदधिकारनिवृत्तिद्योतनार्थम्। णोपदेशस्येति किम्? प्रनर्दति। प्रनर्दकः।

अर्थ—णकार है उपदेश में जिसके, वह 'णोपदेश' कहलाता है। उपसर्ग में स्थित निमित्त से उत्तर णोपदेश धातु का जो नकार, उसे णकार आदेश होता है, समास में तथा असमास में अर्थात् दोनों अवस्थाओं में।

उदा० (1) प्रणमति
णम → नम्—णो नः, उपदेशेऽजनु०,
प्र नम् ति—लट्,
प्र नम् शप् ति—कर्त्तरि शप्, लशक्वत०, हलन्त्यम्,
प्र णम् अ ति—णत्व।

(2) परिणमति
परि नम् अ ति—पूर्ववत्,
परि णम् अ ति—णत्व।

(3) प्रणायक
णीञ् → नी—हलन्त्यम्, णो नः,
प्र नी ण्वुल्—चुटू, हलन्त्यम्, युवोरनाकौ,
प्र नै अक—अचो ञ्णिति,
प्रणाय् अक सु—एचोऽयवायावः, णत्व।

(4) परिणायकः
परि नी ण्वुल्—पूर्ववत्।

उपसर्गा०—उपसर्ग में स्थित निमित्त से उत्तर नकार को णकार होता है।

(5) प्रनायको देशः
प्रगता नायका अस्माद् देशात्—समास हुआ,
प्र नायक सु—'प्र' उपसर्ग नहीं है, अतः इससे उत्तर नकार को णत्व नहीं हुआ।

असमासे०—असमास में भी णत्व होता है। पूर्व अधिकार से समास की दशा में ही णत्व होता है। इस अधिकार की निवृत्ति के द्योतन के लिए।

णोपदेश धातु के नकार को णकार होता है।

(6) प्रनर्दति
प्र नर्द् ति—कर्त्तरि शप्, अनुबन्ध लोप,
प्र नर्द् अ ति—'नर्द्' धातु णोपदेश नहीं है, अतः णत्व नहीं हुआ,
प्रनर्दति—रूप बना।

(7) प्रनर्दकः
प्र नर्द् ण्वुल्—अनुबन्धलोप,
प्र नर्द् अक—युवोरनाकौ,
प्र नर्दक सु—णत्व नहीं हुआ।

(3929) हिनुमीना *15* (2530)

हिनु, मीना—इत्येतयोरुपसर्गस्थान्निमित्तादुत्तरस्य नका-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रस्य णकारादेशो भवति। प्रहिणोति, प्रहिणुतः। प्रमीणाति, प्रमीणीतः। हिनुमीनाग्रहणे विकृतस्यापि भवति; अजादेशस्य स्थानिवत्त्वात्।

अर्थ—उपसर्ग में स्थित निमित्त से उत्तर हिनु तथा मीना के नकार को णत्व होता है।

उदा० (1) प्रहिणोति
प्र हि ति—'शप्' को बाध कर 'स्वादिभ्यः श्नुः' से 'श्नु',
प्र हि श्नु ति—लशक्वत०,
प्रहिणोति—अंग को गुण, णत्व।

(2) प्रहिणुतः
प्र हि श्नु तस्—पूर्ववत्, 'सार्वधातुकमपित्' से ङिद्वत्,
प्र हि नु त स्—गुण का निषेध, णत्व।

(3) प्रमीणाति
प्र मी श्ना ति—'शप्' को बाध कर 'क्र्यादिभ्यः श्ना' से 'श्ना',
प्र मी ना ति—लशक्वत०,
प्रमीणाति—णत्व।

(4) प्रमीणीतः
प्र मी श्ना तस्—पूर्ववत्, 'तस्' ङिद्वत्,
प्र मी नी तस्—'ई हल्यघोः' से 'ई',
प्र मीणी तस्—णत्व।

हिनु०—हिनु, मीना—इनके ग्रहण करने में अजादेश के स्थानिवत् होने से विकृत (अर्थात् हिनो तथा मिनी) का भी ग्रहण होता है।

(3930) आनि लोट् *16* (2231)

'आनि' इत्येतस्य लोडादेशस्योपसर्गस्थान्निमित्तादुत्तरस्य नकारस्य णकारादेशो भवति। प्रवपाणि। परिवपाणि। प्रयाणि। परियाणि। लोडिति किम्? प्रवपानि मांसानि।

अर्थ—उपसर्ग में स्थित निमित्त से उत्तर लोट् प्रत्यय के आदेश-स्वरूप 'आनि' के नकार को णकार होता है।

उदा० (1) प्रवपाणि
प्र वप् मिप्—लोट्,
प्र वप् नि—मेर्निः,
प्र वप् आट् नि—आड् उत्तमस्य पिच्च,
प्रवपानि—णत्व।

(2) प्रयाणि
प्र या आट् नि—पूर्ववत्,
प्रयाणि—णत्व।

(3) परियाणि
परि या आ नि—पूर्ववत्,
परियाणि—णत्व।

लोडिति०—लोट् के आदेशस्वरूप 'आनि' के नकार को णत्व होता है।

(4) प्रवपानि मांसानि
प्रकृष्टा वपा येषाम्—बहुव्रीहि,
प्र वपा जस्—जश्शसोः शिः, शि सर्वनामस्थानम्,
प्र वपा न् इ—लशक्वत०, नुम्, नपुंसकस्य झलचः,
प्र वपानि—णत्व नहीं हुआ।

(3931) नेर्गद-नद-पत-पद-घु-मा-स्यति-हन्ति-याति-वाति-द्राति-प्साति-वपति-वहति-शाम्यति-चिनोति-देग्धिषु च *17*

(2285)

'नि' इत्येतस्योपसर्गस्थान्निमित्तादुत्तरस्य नकारस्य णकारादेशो भवति गद, नद, पत, पद, घु, मा, स्यति, हन्ति, याति, वाति, द्राति, प्साति, वपति, वहति, शाम्यति, चिनोति, देग्धि-इत्येतेषु परतः। गद-प्रणिगदति, परिणिगदति। नद-प्रणिनदति, परिणिनदति। पत-प्रणिपतति, परिणिपतति। पद-प्रणिपद्यते, परिणिपद्यते। घु-प्रणिददाति, परिणिददाति। प्रणिदधाति, परिणिदधाति। माङ्-प्रणिमिमीते, परिणिमिमीते। मेङ्-प्रणिमयते, परिणिमयते। *'मा' इति माङ्मेङोर्ग्रहणमिष्यते*। स्यति-प्रणिष्यति, परिणिष्यति। हन्ति-प्रणिहन्ति, परिणिहन्ति। याति-प्रणियाति, परिणियाति। वाति-प्रणिवाति, परिणिवाति। द्राति-प्रणिद्राति, परिणिद्राति। प्साति-प्रणिप्साति, परिणिप्साति। वपति-प्रणिवपति, परिणिवपति। वहति-प्रणिवहति, परिणिवहति। शाम्यति-प्रणिशाम्यति, परिणिशाम्यति। चिनोति-प्रणिचिनोति, परिणिचिनोति। देग्धि-प्रणिदेग्धि, परिणिदेग्धि। *अड्व्यवायेऽपि नेर्गदादिषु णत्वमिष्यते*। प्रण्यगदत्, परिण्यगदत्।

अर्थ—उपसर्ग में स्थित निमित्त से उत्तर 'नि' के नकार को णकार होता है, गद्, नद्, पत्, पद्, घुसंज्ञक धातु, मा, स्था, हन्, या, वा, द्रा, प्सा, वप्, वह्, शम्, चि तथा दिह्—इनके परे रहते।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उदा० (क) गद् परतः—
(1) प्रणिगदति
प्र निगद् अ ति—लट्,
प्रणि गदति—णत्व।

(2) परिणिगदति
परि नि गद् अ ति—पूर्ववत् णत्व।

(ख) नद्परतः—
(3) प्रणिनदति
प्र नि नद् अ ति—लट्,
प्रनिनदति—णत्व,
प्रणिनदति—रूप बना।

(4) परिणिनदति
परि नि नद् अ ति—पूर्ववत्।

(ग) पत् परतः—
(5) प्रणिपतति
प्र नि पत् अ ति—लट्,
प्रणिपतति—णत्व।

(6) परिणिपतति
परि नि पत् अ ति—पूर्ववत्।

(घ) पद् परतः—
(7) प्रणिपद्यते
प्र नि पद् त—'शप्' को बाध कर 'श्यन्',
प्र नि पद् य त—लशक्वत०, हलन्त्यम्,
प्रणिपद्यते—णत्व, टित आत्मनेपदा०।

(8) परिणिपद्यते
परि नि पद् श्यन् त—पूर्ववत्,
परि नि पद् य त—अनुबन्धलोप,
परिणिपद्यते—णत्व।

(ङ) घुपरतः—
(9) प्रणिददाति
दा ति—'शप्' को 'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः' से 'श्लु',
दा दा ति—'श्लौ' से द्वित्व, ह्रस्वः,
परि नि द दा ति—णत्व,
परिणिददाति—रूप बना।

(10) परिणिददाति
परि नि दा ति—पूर्ववत् श्लुत्व, द्वित्व,
परिणिददाति—णत्व।

(11) प्रणिदधाति
धा ति—'शप्' को श्लुत्व, द्वित्व,
द धा ति—ह्रस्वः, अभ्यासे चर्च,
प्रनिदधाति—णत्व।

(12) परिणिदधाति
परि नि दधाति—णत्व।

(च) मा परतः—
'मा' के द्वारा माङ् माने तथा मेङ् प्रणिदाने—दोनों का ग्रहण होता है। यहाँ मीञ् हिंसायाम्, डुमिञ् प्रक्षेपणे तथा मा माने—इनका ग्रहण नहीं होता।

(13) प्रणिमिमीते
माङ् त—'शप्' को पूर्ववत् श्लुत्व,
मा मा त—'श्लौ' से द्वित्व,
म मा त—'ह्रस्वः' से ह्रस्वादेश,
मि मा त—'भृञामित्' से अभ्यास को इत्त्व,
प्र नि मि मी त—ई हल्यघोः, णत्व।

(14) परिणिमिमीते
परि नि मि मी त—पूर्ववत्,
परिणिमिमीत—णत्व।

(15) प्रणिमयते
मेङ् त—हलन्त्यम्, शप्,
मय् अ त—एचोऽयवायावः,
प्र नि मयत—णत्व, टित आत्मनेपदा०।

(16) परिणिमयते
परि नि मे शप् त—पूर्ववत् णत्व।

(छ) षो परतः—
(17) प्रणिष्यति
षो → सो—धात्वादेः षः सः,
सो श्यन् ति—'शप्' को बाध कर 'दिवादिभ्यः श्यन्' से 'श्यन्',
स् य ति—लशक्वतद्धि०, हलन्त्यम्, 'ओतः श्यनि' से ओकारलोप,
प्र नि स्यति—'उपसर्गात् सुनोति०' से सकार को मूर्धन्य आदेश तथा नकार को प्रकृत सूत्र से णकार।

(18) परिणिष्यति (पूर्ववत्)।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(ज) हन् परतः—

(19) प्रणिहन्ति
प्र नि हन् ति—शप् का लुक्,
प्रणिहन्ति—णत्व।

(20) परिणिहन्ति (पूर्ववत्)।

(झ) यापरतः—

(21) प्रणियाति
पूर्ववत् शप् का लुक्, णत्व।

(22) परिणियाति
पूर्ववत् णत्व।

(ञ) वापरतः—

(23) प्रणिवाति
शप्, शप् लुक्, णत्व।

(24) परिणिवाति—पूर्ववत्।

(ट) द्रापरतः—

(25) प्रणिद्राति
शप् लुक्, णत्व।

(26) परिणिद्राति (पूर्ववत्)।

(ठ) प्सापरतः—

(27) प्रणिप्साति (पूर्ववत्)।

(28) परिणिप्साति (पूर्ववत्)।

(ड) वप् परतः—

(29) प्रणिवपति
प्र नि वप् शप् ति—णत्व आदि।

(30) परिणिवपति (पूर्ववत्)।

(ढ) वह् परतः—

(31) प्रणिवहति
णत्व पूर्ववत्।

(32) परिणिवहति (पूर्ववत्)।

(ण) शम्परतः—

(33) प्रणिशाम्यति
शम् श्यन् ति—शप् को बाध कर 'श्यन्',
शाम् य ति—अनुबन्धलोप, 'शमामष्टानां दीर्घः' से दीर्घ,
प्र नि शाम्यति—णत्व।

(34) परिणिशाम्यति (पूर्ववत्)।

(त) चिपरतः—

(35) प्रणिचिनोति
चि श्नु ति—शप् को बाध कर 'श्नु',
चिनु ति—'चिनु' अंग को 'सार्वधातुकार्धधातु०' से गुण,
प्रनिचिनोति—णत्व।

(36) परिणिचिनोति (पूर्ववत्)।

(थ) दिह्परतः—

(37) प्रणिदेग्धि
दिह् ति—लट्, शप्, लुक्,
देह् ति—पुगन्तलघूपधस्य च,
देघ् ति—दाऽऽदेर्धातोर्घः,
देघ् धि—झषस्तथो०,
देग् धि—झलां जश् झशि,
प्र नि देग्धि—णत्व।

(38) परिणिदेग्धि (पूर्ववत्)।

अङ्०—अट् का व्यवधान होने पर भी गदादि के परे रहते 'नि' को णत्व होता है।

(39) प्रण्यगदत्
गद् शप् त्—लङ्, इतश्च, शप्, अनुबन्धलोप,
प्र नि अ गदत्—णत्व, यण्।

(40) परिण्यगदत् (पूर्ववत्)।

(3932) शेषे विभाषाऽकखादावषान्त उपदेशे *18* (2232)

'नेः' इति वर्त्तते, 'उपसर्गात्' इति च। अककारादिः, अखकारादिः, अषकारान्तश्च उपदेशे यो धातुः स शेषः; तस्मिन्परत उपसर्गस्थान्निमित्तादुत्तरस्य नेर्नकारस्य विभाषा णकार आदेशो भवति। प्रणिपचति, प्रनिपचति। प्रणिभिनत्ति, प्रनिभिनत्ति। अककादाविति किम्? प्रनिकरोति। प्रनिखादति। अषान्त इति किम्? प्रनिपिनष्टि। उपदेशग्रहणं किम्? इह च प्रतिषेधो यथा स्यात्-प्रनिचकार, प्रनिचखाद, प्रनिपेक्ष्यतीति। इह च मा भूत्-विशेः-प्रणिवेष्टा, प्रणिवेक्ष्यति।

अर्थ—'नेः' तथा 'उपसर्गात्' का अनुवर्त्तन है। उपदेश में जो ककारादि नहीं है, जो खकारादि नहीं है तथा जो षकारान्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नहीं है, ऐसे धातु के परे रहते उपसर्ग में स्थित निमित्त से उत्तर 'नि' के नकार को णकार आदेश विकल्प से होता है।

उदा० (1) प्रणिपचति
प्र नि पच् शप् ति—लट्, कर्त्तरि शप्,
प्रणिपचति—णत्व।

(2) प्रनिपचति
प्र नि पच् अ ति—पक्ष में णत्व नहीं हुआ।

(3) प्रणिभिनत्ति
भिद् तिप्—लट्,
भि श्नम् द् ति—'शप्' को बाध कर 'रुधादिभ्यः श्नम्' से 'श्नम्',
भि नद् ति—अनुबन्धलोप,
भिनत् ति—खरि च,
प्र नि भिनत् ति—णत्व।

(4) प्रनिभिनत्ति
पक्ष में णत्व-अभाव।

अकखादा०—**अककारादि व अखकारादि** धातु के परे रहते णत्व होता है।

(5) प्रनिकरोति
प्र नि कृ तिप्—'शप्' को बाध कर 'तनादिकृञ्भ्य उः' से 'उ',
प्र नि कर् उ ति—धातु को गुण,
प्र नि करोति—'करु' अंग को गुण, ककारादि 'कृ' धातु के परे रहते 'नि' के नकार को णत्व नहीं हुआ।

(6) प्रनिखादति
खाद् शप् तिप्—अनुबन्धलोप,
प्र नि खादति—खकारादि धातु 'खाद्' के परे रहते णत्व नहीं हुआ।

अषान्त०—**जो षकारान्त** नहीं है, ऐसे धातु के परे रहते णत्व होता है।

(7) प्रनिपिनष्टि
पिष् ति—'शप्' को बाध कर 'श्नम्',
पि न ष् ति—अनुबन्धलोप, ष्टुना ष्टुः,
प्र नि पि नष् टि—पिष् धातु षकारान्त है। अतः इसके परे रहते णत्व नहीं हुआ।

उपदेश०—**उपदेश** में जो अककारादि शेष धातु, उनके परे रहते णत्व होता है।

तब निम्नलिखित में निषेध हो जाता है—

(8) प्रनिचकार। (9) प्रनिचखाद। (10) प्रनिप्रेक्ष्यति।

चकार 'कृ' का लिट् में रूप है। अब चकारादि होने पर भी उपदेश में ककारादि होने से णत्व नहीं हुआ।

इसी प्रकार 'चखाद' खाद् धातु का लिट् का रूप है। यह चकारादि है, परन्तु उपदेश में खकारादि है। अतः इसके परे रहते णत्व नहीं हुआ।

इसी प्रकार 'पेक्ष्यति' ककारान्त है, परन्तु उपदेश में षान्त है। अतः इसके परे रहते णत्व नहीं हुआ।

(11) प्रणिवेष्टा
विश् तृ—पुगन्तलघूपधस्य च,
वेश् तृ—व्रश्चभ्रस्ज० से षकार,
वेष् तृ—ष्टुना ष्टुः, सु,
प्र नि वेष् टा—'वेष्' षकारान्त है, परन्तु उपदेश में शकारान्त है। अतः णत्व का निषेध नहीं हुआ।

(12) प्रणिवेक्ष्यति
विश् स्य ति—ऌट् शेषे च, स्यतासी,
वेश् स्य ति—लघूपधगुण,
वेष् स्य ति—व्रश्चभ्रस्ज०,
वेक् स्य ति—षढोः कः सि,
प्र नि वेक् ष्य ति—आदेशप्रत्यययोः, 'वेष्' यह षकारान्त है, परन्तु उपदेश में शकारान्त है, णत्व का निषेध नहीं हुआ।

(3933) अनितेः *19* (2478)

अनितेर्नकारस्योपसर्गस्थान्निमित्तादुत्तरस्य णकारादेशो भवति। प्राणिति। पराणिति।

अर्थ—उपसर्ग में स्थित निमित्त से उत्तर 'अन्' धातु के नकार को णकार आदेश होता है।

उदा० (1) प्राणिति
प्र अन् ति—लट्,
प्र अन् इ ति—शप् का लुक्, 'रुदादिभ्यः सार्व०' से 'इट्',
प्राणिति—णत्व।

(2) पराणिति
प रा अन् इ ति—पूर्ववत् 'इट्', णत्व।

(3934) अन्तः *20* (2984)

'अनितेः' इति वर्तते, उपसर्गस्थान्निमित्तादुत्तरस्या-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नितिनकारस्य पदान्ते वर्त्तमानस्य णकारादेशो भवति। हे प्राण्। हे पराण्। 'पदान्तस्य' (8.4.37) इति प्रतिषेधस्यापवादोऽयम्। अन्तश्च पदापेक्षो गृह्यते। केचित्तु–पूर्वसूत्र एवैतदन्तग्रहणं सामीप्यार्थमभिसम्बध्नन्ति। निमित्तसमीपस्थस्यैकवर्णव्यवहितस्यानितिनकारस्य पदान्ते वर्तमानस्य णकारादेशो यथा स्यात्। इह मा भूत्–पर्यनितीति। तैर्द्वितीयमपि पदान्तस्य णत्वार्थमन्तग्रहणमाश्रयितव्यमेव। येषां तु 'पर्यणितीति भवितव्यम्' इति दर्शनम्, तेषां पूर्वसूत्रेनार्थोऽन्तग्रहणेन।

अर्थ—'अनितेः' का अनुवर्त्तन है। उपसर्ग में स्थित निमित्त से उत्तर तथा पदान्त में वर्त्तमान अन् धातु के नकार को णकार आदेश होता है।

उदा० (1) हे प्राण्
प्र अन् क्विप्—सर्वापहारलोप,
प्रान्—प्रातिपदिक संज्ञा, सु, लोप,
हे प्राण्—पदसंज्ञा, णत्व।

(2) हे पराण् (पूर्ववत्)।

पदान्त०—'पदान्तस्य' के द्वारा प्राप्त निषेध का यह अपवाद है। 'अन्त' शब्द पद से अपेक्षित का ग्रहण किया जाता है।

केचित्तु०—कुछ विद्वान् तो पूर्व सूत्र में ही सामीप्य वाची अन्त शब्द का सम्बन्ध मानते हैं। उनके अनुसार निमित्त के समीप स्थित तथा एक वर्ण के द्वारा व्यवहित पदान्त में अन् धातु के नकार के स्थान पर णकार होता है। अतः निम्नलिखित स्थलों पर णकार नहीं होता है।

(3) पर्यनिति
परि अन् इ ति—णत्व नहीं हुआ।

तैर्द्वि०—उन विद्वानों को पदान्त के णत्व के लिए द्वितीय 'अन्त' शब्द के ग्रहण का आश्रय करना चाहिए।

येषां०—जिनके मत में 'पर्यणिति' रूप बनता है, उनके अनुसार पूर्व सूत्र में 'अन्त' शब्द के ग्रहण का कोई प्रयोजन नहीं है।

(3935) उभौ साभ्यासस्य *21* (2606)

साभ्यासस्यानितेरुपसर्गस्थान्निमित्तादुत्तरस्योभयोर्नकारयोर्णकार आदेशो भवति। प्राणिदणिषति, प्रणिणत्। पराणिणिषति, पराणिणत्। 'पूर्वत्रासिद्धीयमद्विर्वचने' (पु० प०) इत्येतस्मिन् सति पूर्वेणैव कृतणत्वस्य द्विर्वचने कृते सिद्धमेतदन्तरेणापि वचनम्? एतत्तु नाश्रयितव्यमिति सूत्रमिदमारभ्यते। तेन औजढदिति सिद्धं भवति।

अर्थ—उपसर्ग में स्थित निमित्त से उत्तर अभ्याससहित 'अन्' धातु के दोनों नकारों के स्थान पर णकार आदेश होता है।

उदा० (1) प्राणिणिषति
अन् सन्—'धातोः कर्मणः' से 'सन्',
अन् इट् सन्—आर्धधातुकस्येड् वलादेः,
अ नि स—अनुबन्धलोप, सन्यङोः,
अ नि नि स— अजादेर्द्वितीयस्य,
प्र अ णि णि ष—दोनों नकारों को णकार हो गया है, आदेशप्रत्यययोः,
प्राणिणिष शप् तिप्—धातुसंज्ञा, अतो गुणे।

(2) प्राणिणत्
अन् णिच्—धातुसंज्ञा,
अनि ति—लुङ्, इतश्च, च्लि को 'चङ्',
अ नि अ त्—अनुबन्धलोप, 'चङि' से द्वित्व,
अ नि नि अ त्—'णेरनिटि' से णिलोप,
प्र अणि ण् अत्—दोनों नकारों को द्वित्व।

(3) पराणिणिषति
'प्राणिणिषति' की तरह।

(4) पराणिणत्
'प्राणिणत्' की तरह।

पूर्वत्रा०—'पूर्वत्राऽसिद्धीयमद्विर्वचनने' ऐसा होने पर पूर्व सूत्र के द्वारा ही जिसे णत्व किया जा चुका है, ऐसे नकार को द्वित्व करने पर यह अन्य वचन से भी सिद्ध है। इसका आश्रय नहीं करना चाहिए; अतः इस लक्षण का विधान किया गया है। तब 'औजढत्' भी सिद्ध होता है।

(3936) हन्तेरत्पूर्वस्य *22* (359)

अकारपूर्वस्य हन्तिनकारस्य उपसर्गस्थान्निमित्तादुत्तरस्य णकार आदेशो भवति। प्रहण्यते, परिहण्यते। प्रहणनम्, परिहणनम्। अत्पूर्वस्येति किम्? प्रघ्नन्ति। परिघ्नन्ति। तपकरणं किम्? चिणि–प्राघानि। पर्यघानि।

अर्थ—उपसर्ग में स्थित निमित्त से उत्तर अकारपूर्वक हन् धातु का जो नकार, उसके स्थान पर णकार होता है।

उदा० (1) प्रहण्यते
प्र हन् यक् त—कर्मवाच्य, भावकर्मणोः, सार्वधातुके यक्,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्र हण् य त—णत्व, टि को एत्व।

(2) परिहण्यते (पूर्ववत्)।

(3) प्रहणनम्
प्र हन् ल्युट्—अनुबन्धलोप,
प्र हन् अन सु—युवोरनाकौ।

(4) परिहणनम् (पूर्ववत्)।

अत्पूर्व०—अकार है पूर्व में जिसके, ऐसे हन् के नकार को णत्व होता है।

(5) प्रघ्नन्ति
प्र हन् झि—झोऽन्तः, शप् का लुक्,
प्र ह् न् अन्ति—'गमहन०' से उपधालोप,
प्र घ् न् अन्ति—'हो हन्ते०' से कुत्व, हन् का नकार है, परन्तु उससे पूर्व अकार नहीं है, णत्व नहीं हुआ।

(6) परिघ्नन्ति (पूर्ववत्)।

तपर०—ह्रस्व अकार है पूर्व में जिसके, ऐसे हन् के नकार के स्थान पर णकार होता है।

(7) प्राघानि
हन् च्लि त—भावकर्मणोः, लुङ्, च्लि लुङि,
हान् चिण् त—चिण् भावकर्मणोः, चुटू, हलन्त्यम् 'अत उपधायाः' से उपधावृद्धि,
घान् इ त—'हो हन्ते०' के द्वारा कुत्व,
प्र अ घानि त—अट्, अकः सवर्णे दीर्घः,
प्राघानि—'चिणो लुक्' से तकार का लुक्, हन् का नकार है परन्तु इससे पूर्व ह्रस्व अकार नहीं है, णत्व नहीं हुआ।

(8) पर्यघानि (पूर्ववत्)।

(3937) वमोर्वा *23* (2429)

'हन्ते' इति वर्तते। वकारमकारयोः परतो हन्तिनकारस्योपसर्गस्थान्निमित्तादुत्तरस्य वा णकारादेशो भवति। प्रहण्वः, परिहण्वः; प्रहन्वः, परिहन्वः। प्रहण्मः, परिहण्मः; प्रहन्मः, परिहन्मः।

अर्थ—'हन्तेः' का अनुवर्त्तन है। उपसर्ग में स्थित निमित्त के परे रहते हन् के नकार को णकार आदेश विकल्प से होता है, वकार तथा मकार परे रहते।

उदा० (1) प्रहण्वः
हन् वस्—लट्, शप् का लुक्,
प्र हण् वस्—णत्व।

(2) परिहण्वः (पूर्ववत्)।

(3) प्रहन्वः
पक्ष में णकार अभाव।

(4) परिहन्वः
पक्ष में णकार अभाव।

(5) प्रहण्मः
प्र हन् मस्—णकार।

(6) प्रहन्मः
पक्ष में णकार आदेश नहीं हुआ।

(7) परिहण्मः
णकार हुआ।

(8) परिहन्मः
णकार-अभाव।

(3938) अन्तरदेशे *24* (3294)

अन्तःशब्दादुत्तरस्य हन्तिनकारस्यात्पूर्वस्य णकारादेशो भवति आदेशाभिधाने। अन्तर्हण्यते। अन्तर्हणनं वर्तते। अदेशे इति किम्? अन्तर्हननो देशः। 'अत्पूर्वस्य' इत्येव–अन्तर्घ्नन्ति। तपरकरणं किम्? अन्तरघानि।

अर्थ—यदि देश अर्थ वाच्य न हो तो अन्तर् शब्द से उत्तर हन् धातु का जो अकारपूर्वक नकार, उसके स्थान पर णकार होता है।

उदा० (1) अन्तर्हण्यते
अन्तर् हन् यक् त—भावकर्मणोः, सार्वधातुके यक्,
अन्तर् हण् य ते—हलन्त्यम्, णत्व, एत्व।

(2) अन्तर्हणनम्
अन्तर् हन् ल्युट्—युवोरनाकौ, णत्व, सु।

अदेशे०—देश अर्थ वाच्य हो तो णत्व नहीं होता है।

(3) अन्तर्हननो देशः
णत्व नहीं हुआ।

अत्पू०—अकार है पूर्व में जिसके, ऐसे हन् के नकार को णत्व होता है।

(4) अन्तर्घ्नन्ति
हन् अन्ति—'झि' को 'झोऽन्तः' से 'अन्त्' आदेश, शप् लुक्,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

घ् न् अन्ति—'गमहन०' से उपधालोप, 'हो हन्ते०' से कुत्व, अन्तर् घ्नन्ति—हन् का नकार है, परन्तु नकार से पूर्व अवर्ण नहीं है, णत्व नहीं हुआ।

तपर०—ह्रस्व अकार से उत्तर नकार को णत्व होता है।

(5) अन्तरघानि
हन् चिण् त—लुङ्, चिण् भावकर्मणोः,
हान् इ त—अत उपधायाः, हो हन्ते०,
घानि—चिणो लुक्,
अन्तर् अघानि—ह्रस्व अकार न होने से नकार को णत्व नहीं हुआ।

(3939) अयनं च *25* (3295)

'अन्तरदेशे' इति वर्तते। अयननकास्य चान्तःशब्दादुत्तरस्य णकारादेशो भवति आदेशाभिधाने। अन्तरयणं वर्तते। अन्तरयणं शोभनम्। 'अदेशे' इत्येव-अन्तरयनो देशः।

अर्थ—'अन्तरदेशे' का अनुवर्त्तन है। यदि देश अर्थ वाच्य न हो तो अन्तर् शब्द से उत्तर 'अयन' शब्द के नकार को णकार होता है।

उदा० (1) अन्तरयणम्
अन्तर् अयन सु—णत्व।

अदेशे०—देश अर्थ वाच्य हो तो नकार को णत्व नहीं होता है।

(2) अन्तरयनो देशः
नकार को णकार नहीं हुआ।

(3940) छन्दस्यृदवग्रहात् *26* (3648)

'पूर्वपदात्' इति वर्तते। ऋकारान्तादवग्रहात् पूर्वपदादुत्तरस्य णकारादेशो भवति छन्दसि विषये। 'नृमणाः' (ऋ० 1.167.5)। 'पितृयाणम्'। (ऋ० 10.2.7)। अत्र हि नृमणाः, पितृयाणमिति ऋकारोऽवगृह्यते। अवग्रहग्रहणं किमर्थमुच्यते, यावता 'संहिताधिकार आ अध्यायपरिसमाप्तेः' (8.2.108) इत्युक्तम्? विषयोपलक्षणार्थमवग्रहग्रहणम्। अवगृह्यमाणाद्यथा स्याद्, अनवगृह्यमाणान्मा भूत्। अपदान्ते चावग्रहो नास्ति।

अर्थ—'पूर्वपदात्' का अनुवर्त्तन है। ऋकारान्त अवग्रह पूर्व पद से उत्तर नकार के स्थान पर णकार होता है, वेद के विषय में।

उदा० (1) नृमणाः
नृ मण जस्—णत्व हुआ।

(2) पितृयाणम्
पूर्ववत् णत्व।

यहाँ ऋकार को अवग्रह होता है।

अव०—अध्याय की समाप्तिपर्यन्त 'संहितायाम्' का अधिकार है। तब अवग्रह का ग्रहण क्यों किया गया है।

(समा०) विषय के उपलक्षण के लिए अवग्रह का ग्रहण है। अवगृह्यमाण शब्द से (उत्तर नकार को णकार) हो जाय तथा अनवगृह्यमाण से उत्तर को न हो। अपदान्त में अवग्रह नहीं होता है।

(3941) नश्च धातुस्थोरुषुभ्यः *27* (3649)

'नस्' इत्येतस्य नकारस्य णकारादेशो भवति धातुस्थान्निमित्तादुत्तरस्योरुशब्दात्पुशब्दाच्च छन्दसि विषये। धातुस्थात्तावत्-'अग्ने॒ रक्षा॑ णः' (ऋ० 7.15.13)। 'शिक्षा॑ णो अ॒स्मिन्' (ऋ० 7.32.26)। उ॒रुशब्दात्-'उरु णस्कृधि' (ऋ० 7.75.11)। षुशब्दात्-अ॒भी षु॑णः सखीनाम् (ऋ० 4.31.3)। 'ऊ॒र्ध्व ऊ॒ षु ण ऊ॒तये॒' (ऋ० 1.36.13)। अस्मदादेशोऽयं नस्शब्दः, 'बहुवचनस्य वस्नसौ' (8.1.21) इति।

अर्थ—धातु में स्थित निमित्त से उत्तर, ऊरु शब्द से उत्तर तथा सु शब्द से उत्तर 'नस्' के नकार को णकार आदेश होता है, वेद के विषय में।

उदा० (1) अग्ने रक्षाणः
'रक्षा'—यहाँ धातु में णत्व का निमित्त रेफ व षकार दोनों स्थित हैं, इनसे उत्तर 'नस्' के नकार को णकार हुआ।

(2) शिक्षाणः
पूर्ववत् णत्व।

(3) अरुणस्कृधि
पूर्ववत् णत्व।

(4) अभीषुणः
पूर्ववत् णकार हुआ।

अस्मदा०—यह 'नस्' अस्मद् शब्द के स्थान पर आदेश होता है। द्र०—बहुवचनस्य वस्नसौ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(3942) उपसर्गाद् बहुलम् *28* (859)

उपसर्गस्थान्निमित्तादुत्तरस्य नसो नकारस्य णकारादेशो भवति बहुलम्। प्रणः शूद्रः। प्रणसः। प्रणो राजा। न च भवति-'प्र नौ मुञ्चतम्' (ऋ० 6.74.4)। बहुलग्रहणाद्भाषायामपि भवति। प्रणसं मुखम्। 'उपसर्गाच्च' (5.4.119) इति नासिकाया नसादेशः।

अर्थ—उपसर्ग में स्थित निमित्त से उत्तर 'नस्' के नकार को बहुलता से णकार होता है।

उदा० (1) प्रणः शूद्रः
णत्व हुआ।
(2) प्रनः
णत्व-अभाव।

बहुल०—'बहुलम्' का ग्रहण होने से लोक में भी होता है।

(3) प्रणसं मुखम्
प्रगता नासिका यस्य—बहुव्रीहि समास,
प्र नस् अच्—'उपसर्गाच्च' से 'अच्' समासान्त तथा नासिका को 'नस,
प्रणस सु—णत्व।

(3943) कृत्यचः *29* (2835)

कृत्स्थो यो नकारोऽच उत्तरस्तस्योपसर्गस्थान्निमित्तादुत्तरस्य णकारादेशो भवति। अन, मान, अनीय, अनि, इनि, निष्ठादेश-एते णत्वं प्रयोजयन्ति। अन-प्रयाणम्, परियाणम्। प्रमाणम्, परिमाणम्। मान-प्रयायमाणम्, परियायमाणम्। अनीय-प्रयाणीयम्, परियाणीयम्, अनि-अप्रयाणिः, अपरियाणिः। इनि-प्रयायिणौ, परियायिणौ। निष्ठादेशः-प्रहीणः, परिहीणः; प्रहीणवान्, परिहीणवान्। अच इति किम्? प्रमग्नः, परिभुग्नः। 'भुजो कौटिल्ये' (धा०पा० 1418), अस्य निष्ठाप्रत्ययः, 'ओदितश्च' (8.2.45) इति निष्ठानत्वम्, 'चोः कुः' (8.2.30) इति कुत्वे सिद्धम्-परिभुग्न इति। *कृत्स्थस्य णत्वे निर्विण्णस्योपसंस्थानं कर्त्तव्यम्*। निर्विण्णोऽस्मि खलसङ्गेन। निर्विण्णोऽहमत्र वासेन।

अर्थ—उपसर्ग में स्थित निमित्त से उत्तर नकार, जो कृत् प्रत्यय में स्थित हो तथा अच् से उत्तर हो, उसको णकार आदेश होता है।

अन, मान, अनीय, अनि, इनि तथा निष्ठा को प्राप्त नकार आदेश—इनके नकार को णत्व होता है।

उदा० (क) अनस्य णत्वम्—
(1) प्रयाणम्
प्र या ल्युट्—हलन्त्यम्, लशक्वत०,
प्र या अन—युवोरनाकौ,
प्र याण—णत्व, सु।

(2) परियाणम्
परि या ल्युट्—पूर्ववत्।

(3) प्रमाणम्
प्र मा ल्युट्—पूर्ववत्।

(4) परिमाणम्
परि मा ल्युट्—पूर्ववत्।

(ख) मानस्य—
(5) प्रयायमाणम्
या लट्—भावकर्मणोः, लटः शतृशानचा०,
या शानच्—लशक्व०, हलन्त्यम्, तिङ् शित् सार्वधातुकम्,
या यक् आन—सार्वधातुके यक्,
या य म् आन—'आने मुक्', अनुबन्धलोप,
प्र यायमाण सु—णत्व।

(6) परियायमाणम् (पूर्ववत्)।

(ग) अनीयस्य—
(7) प्रयाणीयम्
प्र या अनीयर्—तव्यत्तव्यानीयरः, हलन्त्यम्,
प्र या अनीय सु—सवर्णदीर्घ, णत्व।

(8) परियाणीयम्
परि या अनीयर—णत्व।

(घ) अनेः—
(9) अप्रयाणिः
या अनि—'आक्रोशे नञ्यनिः' से 'अनि',
अ प्र यानि सु—णत्व।

(10) अपरियाणिः
पूर्ववत् 'अनि', णत्व।

(ङ) इने—
(11) प्रयायिणौ
या णिनि—'सुप्यजातौ णिनिस्ता०' से 'णिनि',

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

या इन्—चुटू, उपदेशेऽजनु०,
या युक् इन्—'युक्' आगम 'आतो युक्०', अनुबन्धलोप,
प्र यायिन् औ—प्रातिपदिक संज्ञा, णत्व।

(12) परियायिणौ (पूर्ववत्)।

(च) निष्ठादेशस्य—

(13) प्रहीणः
ओहाक् क्त—अनुबन्धलोप,
हा त—'ओदितश्च' से नकार,
प्र ही न—'घुमास्था०' से ईत्त्व,
प्रहीण सु—णत्व।

(14) परिहीणः (पूर्ववत्)।

(15) प्रहीणवान्
प्र हा क्तवतु—पूर्ववत्।

(16) परिहीणवान् (पूर्ववत्)।

अच०—अच् से उत्तर नकार को णकार होता है।

(17) प्रमग्नः
टुमस्जो क्त—अनुबन्धलोप, 'ओदितश्च' से नकार,
म स् ज् न—'मस्जिनशोर्झलि' से 'नुम्,
म स् न् ज् न—'मस्जेरन्त्यात् पूर्वं नुमिच्छन्त्यनु०',
मस्ज् न—'अनिदिताम्०' से अनुनासिकलोप,
म ज् न—'स्कोः संयोगा०' से सकारलोप,
प्र मग् न—'चोः कुः' से कुत्व, कृत् प्रत्यय में स्थित नकार है, परन्तु यह अच् से उत्तर नहीं है, णत्व नहीं हुआ, सु।

(18) परिभुग्नः

भुजो०—'भुजो कौटिल्ये' इस धातु से निष्ठासंज्ञक प्रत्यय हुआ, 'ओदितश्च' से निष्ठा को नकार आदेश, 'चोः कुः' से कुत्व करने पर रूप सिद्ध होता है।

कृत्स्थ०—'निर्विण्ण' शब्द साधु होता है।

(19) निर्विण्णः

विद् क्त—'रदाभ्यां निष्ठातो०' से निष्ठा को नकार तथा दकार को नत्व,

निर् विन् न—'बहुलम्' का अनुवर्त्तन मान कर अच् से उत्तर न रहने पर भी नकार को णकार, सु।

(3944) णेर्विभाषा *30* (2836)

णयन्ताद्यो विहितः कृत्प्रत्ययः तत्स्थस्य नकारस्योपसर्गस्थान्निमित्तादुत्तरस्य विभाषा णकारादेशो भवति। प्रयापणम्, प्रयापनम्। परियापणम्, परियापनम्। प्रयाप्यमाणम्, प्रयाप्यमानम्। प्रयापणीयम्, प्रयापनीयम्। अप्रयापणिः, अप्रयापनिः। प्रयापिणौ, प्रयापिनौ। विहितविशेषणं किम्? प्रयाप्यमाणमित्यत्र यका व्यवधानेऽपि यथा स्यादिति।

अर्थ—णि प्रत्ययान्त से विहित जो कृत प्रत्यय, उसमें स्थित नकार के स्थान पर णकार विकल्प होता है, यदि वह नकार उपसर्ग में स्थित निमित्त से उत्तर हो।

उदा० (1) प्रयापणम्
प्र या णिच्—'हेतुमति च' से 'णिच्',
प्र या पुक् णिच्—'अर्त्तिह्री०' से 'पुक्', अनुबन्धलोप, धातुसंज्ञा,
प्रयाप् ल्युट्—लशक्वतद्धिते, हलन्त्यम्, युवोरनाकौ, णेरनिटि,
प्र यापन सु—णत्व।

(2) प्रयापनम्
पक्ष में णत्व नहीं हुआ।

(3) परियापणम्
या पुक् णिच्—पूर्ववत्,
परि याप् ल्युट्—युवोरनाकौ, सु।

(4) परियापनम्
पक्ष में णत्व नहीं हुआ।

(5) प्रयाप्यमाणम्
याप् णिच्—पूर्ववत् धातुसंज्ञा,
याप् यक् शानच्—भावकर्मणोः, सार्वधातुके यक्, णिलोप,
याप्य म् आन—आने मुक्,
प्रयाप्यमाण सु—णत्व।

(6) प्रयाप्यमानम्
पक्ष में नकार को णकार नहीं हुआ।

(7) प्रयापणीयम्
या पुक् णिच्—पूर्ववत्,
याप् अनीयर्—णिलोप,
प्र याप् अनीय सु—णत्व।

(8) प्रयापनीयम्
णत्व नहीं हुआ।

(9) अप्रयापणिः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

या पुक् णिच्—पूर्ववत् धातुसंज्ञा,
याप् अनि—णिलोप,
अप्रयापणि सु—णत्व।

(10) अप्रयायनिः
पक्ष में णत्व नहीं हुआ।

(11) प्रयापिणौ
या पुक् णिच् णिनि—पूर्ववत् णिलोप,
प्र यापिन् औ—णत्व।

(12) प्रयापिनौ
पक्ष में णत्व अभाव।

विहित०—णि प्रत्ययान्त से विहित जो कृत् प्रत्यय, उसके नकार को णत्व होता है। प्रयाप्यमाणम्—इस स्थल पर यक् का व्यवधान होने पर भी णत्व होता है।

(3945) हलश्चेजुपधात् *31* (2837)

'कृत्यचः' इति वर्त्तते। हलादिर्यो धातुरिजुपधस्तस्मात्परो यः कृत्यप्रत्ययः तत्स्थस्य नकारस्याच उत्तरस्योपसर्गस्थान्निमित्तादुत्तरस्य विभाषा णकारादेशो भवति। प्रकोपणम्, प्रकोपनम्। परिकोपणम्, परिकोपनम्। हल इति किम्? प्रेहणम्, प्रोहणम्। इजुपधादिति किम्? प्रवपणम्, परिवपणम्। 'कृत्यचः' (8.4.29) इति नित्ये प्राप्ते विकल्पः। अच इत्येव-परिभुग्नः। इजुपधस्य सर्वस्य हलन्तत्वादिह हल्ग्रहणमादिविशेषणम्।

अर्थ—'कृत्यचः' का अनुवर्त्तन है। हलादि जो इजुपध धातु, उससे पर जो कृत् प्रत्यय, उस प्रत्यय में स्थित नकार को विकल्प से णत्व होता है, यदि वह नकार अच् से उत्तर तथा प्रत्यय में स्थित निमित्त से उत्तर हो।

उदा० (1) प्रकोपणम्
प्र कुप् ल्युट्—हलन्त्यम्, लशक्वतद्धिते,
प्र कोप् अन—युवोरनाकौ, पुगन्तलघूपधस्य च, 'कुप्' धातु हलादि है तथा उपधा में इच् वर्ण है, अतः णत्व हो गया,
प्रकोपण—सु।

(2) प्रकोपनम्
पक्ष में णत्व नहीं हुआ।

(3) परिकोपणम्
पूर्ववत् णत्व।

(4) परिकोपनम्
णत्व नहीं हुआ।

हल०—हलादि जो धातु उससे विहित प्रत्यय के नकार को णकार होता है।

(5) प्रेहणम्
प्र ईह् ल्युट्—'ईह्' की उपधा में इच् वर्ण है, परन्तु हलादि नहीं है, अतः णत्व का विकल्प नहीं हुआ, 'कृत्यचः' से नित्य णत्व होता है,
प्रेहण सु—आद् गुणः।

(6) प्रोहणम्
प्र ऊह् ल्युट्—पूर्ववत् नित्य णत्व।

इजुप०—इच् है उपधा में जिसके, ऐसे धातु से विहित प्रत्यय के नकार को णत्व होता है।

(7) प्रवपणम्
प्र वप् ल्युट्—युवोरनाकौ,
प्र वप् अन—'वप्' धातु हलादि है परन्तु इजुपध नहीं है, अदुपध है, अतः णत्व का विकल्प नहीं हुआ, नित्य हुआ।

(8) परिवपणम् (पूर्ववत्)।

अच०—अच् से उत्तर नकार को विकल्प से णत्व होता है।

(9) परिभुग्नः
भुज् क्त—लशक्वतद्धिते,
भुग् न—'ओदितश्च' से नकार, 'चोः कुः' से गकार,
परिभुग्न सु—'भुज्' धातु हलादि है, इसकी उपधा में इच् वर्ण (उकार) है, परन्तु इससे विहित कृत् प्रत्यय (ल्युट्) का नकार अच् वर्ण से उत्तर नहीं है। अतः णत्व नहीं हुआ।

इजुप०—इजुपध हलन्त होता है। अतः सूत्रस्थ 'हल्' का ग्रहण आदि का विशेषण बनता है।

(3946) इजादेः सनुमः *32* (2838)

'हलः' इति वर्तते, तेनेह सामर्थ्यात्तदन्तविधिः। इजादेः सनुमो हलन्ताद्धातोर्विहितो यः कृत्, तत्स्थस्य नकारस्योपसर्गस्थान्निमित्तादुत्तरस्य णकारो भवति। प्रेङ्खणम्। परेङ्खणम्। प्रेङ्गणम्, परेङ्गणम्। प्रोम्भणम्, परोम्भणम्। 'सिद्धे सत्यारम्भो नियमार्थः'-इजादेरेव सनुमः, नान्यस्मादिति। प्रमङ्गनम्, परिमङ्गनम्। 'हलः' इत्यधिकाराद् ण्यन्ते नित्यं विद्ध्यर्थमेतन्न भवति।

अर्थ—'हलः' का अनुवर्त्तन है। यहाँ सामर्थ्यवशात् तदन्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विधि होती है। इजादि, नुम् सहित तथा हलन्त जो धातु, उससे विहित जो कृत् प्रत्यय, उसमें स्थित नकार को णकार आदेश होता है, यदि वह नकार उपसर्ग में स्थित निमित्त से उत्तर हो।

उदा० (1) प्रेङ्खणम्
इखि → इन् ख्—उपदेशेऽजनुना०, इदितो नुम् धातोः,
इङ् ख्—नश्चाऽपदान्तस्य०, अनुस्वारस्य ययि०,
प्र इ ङ् ख् ल्युट्—'इखि' धातु इजादि है, हलन्त है तथा नुम् वाला है। अतः णत्व हुआ।

(2) परेङ्खणम् (पूर्ववत्)।

(3) प्रेङ्गणम्
प्र इङ्ग ल्युट्—पूर्ववत् णत्व।

(4) परेङ्गणम् (पूर्ववत्)।

(5) प्रोम्भणम्
उभि → उ न् भ्—पूर्ववत् नुम्,
उम्भ् ल्युट्—अनुस्वार, परसवर्ण, अनुबन्धलोप,
प्र उम्भ् अन—पूर्ववत् णत्व।

(6) परोम्भणम् (पूर्ववत्)।

सिद्धे०—यहाँ णत्व सिद्ध ही है। अतः नियमार्थ विधान किया गया है। यह नियम किया गया है कि इजादि धातु से ही विहित प्रत्यय के नकार को णत्व होता है; अन्य धातु से विहित को नहीं।

(7) प्रमङ्गनम्
मगि → मन् ग्—इदितो नुम् धातोः, ल्युट्,
प्र मङ्ग् अन—युवोरनाकौ, णत्व नहीं हुआ।

(8) परिमङ्गनम् (पूर्ववत्)।

हल०—पूर्व सूत्र से 'हलः' का अनुवर्त्तन है। उससे तदन्त विधि होती है। चूँकि णिप्रत्ययान्त धातु हलन्त नहीं होता, अपितु अजन्त होता है। अतः यह ण्यन्त में नित्य विधि के लिए नहीं है।

(3947) वा निंसनिक्षनिन्दाम् *33* (2839)

'उपसर्गात्' इति वर्तते। निंस, निक्ष, निन्द–इत्येतेषां नकारस्योपसर्गस्थान्निमित्तादुत्तरस्य वा णकारादेशो भवति। प्रणिंसनम्, प्रनिंसनम्, प्रणिक्षणम्, प्रनिक्षणम्। प्रणिन्दनम्, प्रनिन्दनम्। णोपदेशत्वादेतेषां नित्ये प्राप्ते विकल्पः।

अर्थ—'उपसर्गात्' का अनुवर्त्तन है। उपसर्ग में स्थित निमित्त से उत्तर निंस्, निक्ष् तथा निन्द् का जो नकार, उसे विकल्प से णकार होता है।

उदा० (1) प्रणिंसनम्
णिंसि → निन् स—इदितो नुम् धातोः, णो नः,
प्र निंस् ल्युट्—नश्चाऽपदान्त०, अनुबन्धलोप,
प्र णिंस् अन सु—णकार। 'उपसर्ग०' से नित्य णत्व प्राप्त था।

(2) प्रनिंसनम्
पक्ष में णत्व नहीं हुआ।

(3) प्रणिक्षणम्
णिक्ष् → निक्ष्—णो नः,
निक्ष् ल्युट्—युवोरनाकौ,
प्र णिक्ष् अन सु—पाक्षिक णत्व, 'अट्कुप्वाङ्०' से प्रत्यय के नकार को णत्व।

(4) प्रनिक्षणम्
पक्ष में धातु के नकार को णत्व नहीं हुआ। प्रत्यय के नकार को पूर्ववत् णत्व।

(5) प्रणिन्दनम्
णिदि → निन् द्—णो नः, इदितो नुम् धातोः,
प्र नि न् द् ल्युट्—अनुबन्धलोप, युवोरनाकौ,
प्रणिन्दन सु—णत्व।

(6) प्रनिन्दनम्
पक्ष में णत्व नहीं हुआ।

णोपदे०—ये सभी धातु णोपदेश है। अतः इन्हें नित्य णत्व प्राप्त था। प्रकृत सूत्र के द्वारा विकल्प कहा गया है।

(3948) न भाभूपूकमिगमिप्यायीवेपाम् *34* (2840)

भा, भू, पू, कमि, गमि, प्यायी, वेप–इत्येतेषामुपसर्गस्थात् निमित्तादुत्तरस्य कृत्स्थस्य नकारस्य णकारादेशो न भवति। भा–प्रभानम्, परिभानम्। भू–प्रभवनम्, परिभवनम्। पू–प्रपवनम्, परिपवनम्। पूग्रहणेन पूङ्ग्रहणं द्रष्टव्यम्। पूङो हि भवत्येव णत्वम्–प्रपवणं सोमस्येति। कमि–प्रकमनम्, परिकमनम्। गमि–प्रगमनम्, परिगमनम्। प्यायी–प्रप्यायनम्, परिप्यायनम्। वेप–प्रवेपनम्, परिवेपनम्। *ण्यन्तानां भादीनामुपसंख्यानं कर्तव्यम्*। प्रभापनम्, परिभापनम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—भा, भू, पू, कमि, गमि, प्यायी तथा वेप—इन धातुओं से विहित कृत् प्रत्यय, उसमें स्थित नकार के स्थान पर णकार नहीं होता है, यदि वह नकार उपसर्ग में स्थित निमित्त से उत्तर हो।

उदा० (1) प्रभानम्
प्र भा ल्युट्—अनुबन्धलोप, युवोरनाकौ,
प्र भा अन सु—णत्वनिषेध।

(2) परिभानम्
परि भा ल्युट्—पूर्ववत्।

(3) प्रभवनम्
भू ल्युट्—अनुबन्धलोप, अन आदेश,
भो अन—आर्धधातुकं शेषः, सार्वधातुकार्धधा०,
प्र भव् अन सु—अव्, णत्व निषेध।

(4) परिभवनम्
परि भू ल्युट्—पूर्ववत्।

(5) प्रपवनम्
प्र पू ल्युट्—पूर्ववत्,
प्र पो अन—अन, गुण,
प्र पव् अन सु—णत्वनिषेध।

(6) परिपवनम्
परि पू ल्युट्—पूर्ववत्।

पूग्रह०—'पू' के ग्रहण से 'पूञ्' का ग्रहण जानना चाहिए। पूङ् से उत्तर नकार को णत्व सिद्ध ही है। यथा—

(7) प्रपवणम्।

(8) प्रकमनम्
प्र कम् ल्युट्—पूर्ववत्।

(9) परिकमनम् (पूर्ववत्)।

(10) प्रगमनम्
प्र गम् ल्युट्—णत्व निषेध।

(11) परिगमनम् (पूर्ववत्)।

(12) प्रप्यायनम्
प्र प्याय् ल्युट्—पूर्ववत्।

(13) परिप्यायनम्
णत्व का निषेध।

(14) प्रवेपनम्
प्र वेप् ल्युट्—पूर्ववत्।

(15) परिवेपनम् (पूर्ववत्)।

ण्यन्ता०—णि प्रत्ययान्त भा आदि धातुओं से उत्तर नकार को णकार नहीं होता है।

(16) प्रभापनम्
प्र भा पुक् णिच्—'अर्तिह्री' से 'पुक्',
प्र भाप् ल्युट्—'णेरनिटि' से णिलोप, णत्व-निषेध।

(17) परिभापनम् (पूर्ववत्)।

(3949) षात् पदान्तात् *35* (3310)

षकारात्पदान्तादुत्तरस्य नकारस्य णकारादेशो न भवति। निष्पानम्। दुष्पानम्। सर्पिष्पानम्। यजुष्पानम्। षादिति किम्? निर्णयः। पदान्तादिति किम्? कुष्णाति। पुष्णाति। पदे अन्तः पदान्तः—इति सप्तमीसमासोऽयम्, तेनेह न भवति—सुसर्पिष्केण, सुयजुष्केण। 'शेषाद्विभाषा' (5.4.114) इति कप्।

अर्थ—पदान्त व षकार से उत्तर नकार को णकार नहीं होता है।

उदा० (1) निष्पानम्
निस् पा ल्युट्—युवोरनाकौ,
निस् पान—ससजुषो रुः,
निर् पान—खरवसानयो०,
निःपान—विसर्जनीयस्य सः,
निस्पान—'कृत्यचः' से प्राप्त णत्व का निषेध,
निष्पान सु—'इदुदुपधस्य०' से षत्व।

(2) दुष्पानम्
दुस् पानम्—पूर्ववत्।

(3) सर्पिष्पानम्
सर्पिस् पान—पूर्ववत्।

(4) यजुष्पानम् (पूर्ववत्)।

षादि०—षकार से उत्तर नकार को णत्व का निषेध होता है।

(5) निर्णयः
निर् नी अच्—पदान्त से उत्तर नकार है, परन्तु षकार से उत्तर नहीं है, णत्वनिषेध नहीं हुआ,
निर् णे अ—णत्व, गुण,
निर् ण य सु—अय्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पदान्ता०—पदान्त से उत्तर नकार को णत्व नहीं होता है।

(6) कुष्णाति
कुष् ति—'शप्' को बाध कर 'क्र्यादिभ्यः श्ना' से 'श्ना',
कुष् श्ना ति—लशक्वतद्धिते, षकार तो है परन्तु पदान्त नहीं है,
कुष् णाति—णत्व हो गया है।

(7) पुष्णाति (पूर्ववत्)।

पदे०—पदे अन्तः पदान्तः—इस प्रकार सप्तमी समास है। अतः निम्नलिखित में निषेध नहीं होता है—

(8) सुसर्पिष्केण
निषेध नहीं हुआ।

(9) सुयजुष्केण
निषेध नहीं हुआ।

शेषा०—'शेषाद् विभाषा' से 'कप्' हुआ है।

(3950) नशेः षान्तस्य *36* (2518)

'न' इति वर्तते। नशेः षकारान्तस्य णकारादेशो न भवति। प्रनष्टः, परिनष्टः। षान्तस्येति किम्? प्रणश्यति, परिणश्यति। अन्तग्रहणं षान्तभूतपूर्वमात्रस्यापि यथा स्यात्-प्रनङ्क्ष्यति, परिनङ्क्ष्यति।

अर्थ—'न' का अनुवर्त्तन है। षकारान्त जो नश् धातु, उसके नकार को णकार नहीं होता है।

उदा० (1) प्रनष्टः
नश् क्त—'मस्जिनशोर्झलि' से 'नुम्',
न न् श् त—'अनिदितां हल०' से अनुनासिकलोप,
न श् त—'व्रश्चभ्रस्ज०' से षत्व,
नष् त—ष्टुना ष्टुः,
प्र नष् ट सु—'उपसर्गादसमासे' से प्राप्त णत्व का निषेध।

(2) परिनष्टः (पूर्ववत्)।

षान्त०—षकारान्त नश् के नकार को णकार नहीं होता है।

(3) प्रणश्यति
नश् श्यन् ति—'श्यन्', अनुबन्धलोप,
प्रणश्यति—षकारान्त न होने से निषेध नहीं हुआ।

(4) परिणश्यति (पूर्ववत्)।

अन्त०—'अन्त' का ग्रहण है। अतः भूतपूर्व षान्त को भी निषेध हो जाय।

(5) प्रनङ्क्ष्यति
नश् स्य ति—ऌट् शेषे च, स्यतासी०,
नष् स्य ति—षत्व, नुम्,
न न्क् स्य ति—षढोः कः सि,
नङ् क् ष्य ति—नश्चाऽपदा०, अनुस्वारस्य ययि०, आदेश-प्रत्यययोः,
प्रनङ्क्ष्यति—णत्व का निषेध।

(6) परिनङ्क्ष्यति (पूर्ववत्)।

(3951) पदान्तस्य *37* (198)

पदान्तो यो नकारस्तस्य णकारादेशो न भवति। वृक्षान्, प्लक्षान्, अरीन्, गिरीन्।

अर्थ—पदान्त में जो नकार, उसे णकार नहीं होता है।

उदा० (1) वृक्षान्
वृक्ष शस्—लशक्वतद्धिते,
वृक्ष अस्—अकः सवर्णे दीर्घः, प्रथमयोः पूर्वसवर्णः,
वृक्षास्—तस्माच्छसो०,
वृक्षान्—'अट्कुप्वाङ्नु०' से प्राप्त णत्व का निषेध।

(2) प्लक्षान् (पूर्ववत्)।

(3) अरीन्
अरि शस्—लशक्वत०,
अरीस्—प्रथमयोः पूर्व०, पूर्ववत् णत्व-निषेध।

(4) गिरीन्
गिरि शस्—पूर्ववत्।

(3952) पदव्यवायेऽपि *38* (1057)

पदेन व्यवायः पदव्यवायः पदव्यवधानम्। पदेन व्यवायेऽपि सति निमित्तनिमित्तिनोर्नकारस्य णकारादेशो न भवति। माषकुम्भवापेन। चतुरङ्गयोगेन। प्रावनद्धम्। पर्यवनद्धम्। प्रगान्नयामः। परिगान्नयामः। *पदव्यवायेऽतद्धित इति वक्तव्यम्*। इह मा भूत्-आर्द्रगोमयेण। शुष्कगोमयेण। 'गोश्च पुरीषे' (4.3.145) इति मयट्। स्वादौ पूर्वं पदमिति गोशब्दः पूर्वपदम्, तेन व्यवायः।

अर्थ—पद के द्वारा व्यवधान 'पदव्यवाय' कहलाता है। निमित्त तथा निमित्ती के मध्य पद का व्यवधान होने पर भी नकार को णकार नहीं होता है।

उदा० (1) माषकुम्भवापेन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

माषाणां कुम्भः—माषकुम्भः,
माषकुम्भं वपति—'कर्मण्यण्',
माष कुम्भ वाप् अ—अत उपधायाः, प्रातिपदिक संज्ञा,
माष कुम्भ वाप टा—टाङसिङसामिना०
माषकुम्भवापेन—आद् गुणः, अट्कुप्वाङ्नुम्० से प्राप्त णत्व का निषेध।

(2) चतुरङ्गयोगेन
यहाँ 'कुमति च' से णत्व प्राप्त था।

(3) प्रावनद्धम्
णह् → नह्—णो नः,
नह् क्त—लशक्वत०,
नध् ध—'नहो धः' से हकार को धकार, 'झषस्तथो०' से तकार को धकार,
नद्ध—झलां जश् झशि,
प्र अव नद्ध—गतिसमास, णत्वनिषेध।

(4) पर्यवनद्धम् (पूर्ववत्)।

(5) प्रगान्नयामः
यह छान्दस उदाहरण है। पूर्ववत् णत्व का निषेध।

(6) परिगान्नयामः (पूर्ववत्)।

पदव्य०—अतद्धित में पद का व्यवधान होने पर णत्वनिषेध होता है। अतः निम्नलिखित में निषेध नहीं होता है—

(7) आर्द्रगोमयेण
गोरिदम् → गोमयम्—'गोश्च पुरीषे' से 'मयट्',
आर्द्रं च तद् गोमयम्—कर्मधारय समास,
आर्द्रगोमय टा—'इन' आदेश, णत्व हो गया।

(8) शुष्कगोमयेण
पूर्ववत् णत्व।

(3953) क्षुभ्नादिषु च *39* (792)

'न' इति वर्तते। 'क्षुभ्ना' इत्येवमादिषु शब्देषु नकारस्य णकारादेशो न भवति। क्षुभ्नाति। अजादेशस्य स्थानिवद्भावादिहापि प्रतिषेधो भवति। क्षुभ्नीतः। क्षुभ्नन्ति। नृनमनः। 'पूर्वपदात्संज्ञायाम्' (8.4.3) इति प्राप्तिः। 'छन्दस्यृदवग्रहात्' (8.4.26) इति च प्राप्नोति। नन्दिन्, नन्दन, नगर–एतान्युत्तरपदानि संज्ञायां प्रयोजयन्ति–हरिनन्दी। हरिनन्दनः। गिरिनगरम्। नृतिर्यङि प्रयोजयति–नरीनृत्यते। तृप्नु–तृप्नोति। नर्तन, गहन, नन्दन, निवेश, निवास, अग्नि, अनूप–एतान्युत्तरपदानि प्रयोजयन्ति। परिनर्तनम्, परिगहनमिति, संज्ञायाम्–'पूर्वपदात्संज्ञायाम्' (8.4.3) इति प्राप्नोति। परिनन्दनमित्यत्र 'उपसर्गादसमासेऽपि' (8.4.24) इति प्राप्नोति। शरनिवेशः। शरनिवासः। शराग्निः। दर्भानूपः–इत्येताः संज्ञाः। *आचार्यादणत्वं च* (ग०सू० 182)। आभार्यभोगीनः। आचार्यानी। *इरिकादिभ्यो वनोत्तरपदेभ्यः संज्ञायाम्*। (ग०सू० 183)। इरिका, तिमिर, समीर। कुबेर, हरि, कर्मार–इत्युत्तरपदवनशब्दस्थस्य संज्ञायाम्। क्षुभ्नादिराकृतिगणः। अविहितलक्षणो णत्वप्रतिषेधः क्षुभ्नादिषु द्रष्टव्यः।

अर्थ—'न' का अनुवर्त्तन है। 'क्षुभ्ना' आदि में नकार का णत्व नहीं होता है।

उदा० (1) क्षुभ्नाति
क्षुभ् श्ना ति—'क्र्यादिभ्यः श्ना', 'लशक्वत०', से शकार की इत्संज्ञा,
क्षुभ् ना ति—'अट्कुप्वाङ्नु०' से प्राप्त णत्व का निषेध।

अजादे०—अजादेश के स्थानिवद्भाव होने से यहाँ पर भी निषेध होता है।

(2) क्षुभ्नीतः
क्षुभ् श्ना तस्—ई हल्यघोः,
क्षुभ् नीतस्—णत्वनिषेध।

(3) क्षुभ्नन्ति
क्षुभ् श्ना झि—झोऽन्तः,
क्षुभ् न् अन्ति—'श्नाऽभ्यस्तयोरातः' से आकारलोप,
क्षुभ्नन्ति—णत्व का निषेध।

(4) नृनमनः

पूर्वप०—'पूर्वपदात् सञ्ज्ञायामगः' से णत्व प्राप्त था। 'छन्दस्यृदवग्रहात्' से भी णत्व प्राप्त था। संज्ञा में उत्तर पद में नन्दिन्, नन्दन तथा नगर—ये शब्द प्रयुक्त होते हैं। यथा—

(5) हरिनन्दी
णत्वनिषेध।

(6) हरिनन्दनः (पूर्ववत्)।

(7) गिरिनगरम्
पूर्ववत् णत्वनिषेध।

नृति०—नृत् धातु के यङ् में णत्व नहीं होता है। यथा—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(8) नरीनृत्यते
नृत् यङ्—धातोरेकाचो०,
नृ नृत् य—सन्यङोः, हलादिः शेषः, उरत्, उरण् रपरः, हलादिः शेषः,
न नृत् य—'रीगृदुपधस्य०' से 'रीक्' आगम,
नरी नृत्य—धातुसंज्ञा,
नरीनृत्य शप् त—अतो गुणे।

(9) तृप्नोति
तृप् श्नु ति—'शप्' को बाध कर 'श्नु',
तृप् नु ति—लशक्वतद्धि०,
तृप्नोति—'सार्वधातुकार्धधा०' से 'तृप्नु' को गुण।

नर्तन०—'नर्तन' आदि शब्द उत्तर पद में हो तो णत्वनिषेध होता है। यथा—

(10) परिनर्तनम् (पूर्ववत्)।
(11) परिगहनम्
णत्वनिषेध।

पूर्वप०—'पूर्वपदात् सञ्ज्ञा०' से यहाँ णत्व प्राप्त था। 'परिनन्दन' में 'उपसर्गादसमासेऽपि' से भी प्राप्त था।

(12) शरनिनेशः (पूर्ववत्)।
(13) शरनिवासः
णत्व का निषेध।

(14) शराग्निः
णत्व नहीं हुआ।

(15) दर्भानूपः (पूर्ववत्)।

ये सभी संज्ञा हैं।

आचार्या०—आचार्य शब्द से उत्तर नकार को णकार नहीं होता है।

(16) आचार्यभोगीनः
'आत्मन्विश्वजन०' से 'ख' प्रत्यय, णत्वनिषेध।

(17) आचार्यानी
आचार्य ङीप्—'इन्द्रवरुण०' से 'ङीप्' तथा 'आनुक्' आगम,
आचार्य आन् ई—णत्व का निषेध, सुलुक्।

इरिका०—इरिका आदि शब्दों से उत्तर 'वन' शब्द के नकार को णत्व नहीं होता है।

यह आकृतिगणं है। जिसे णत्व-प्रतिषेध प्राप्त हो तथा उसको णत्व-प्रतिषेध विधान न हो, उसे क्षुभ्नादिगण में जानना चाहिए।

(3954) स्तोः श्चुना श्चुः *40* (111)

सकारतवर्गयोः शकारचवर्गाभ्यां सन्निपाते शकार-चवर्गावादेशौ भवतः। स्तोः श्चुनेति यथासंख्यमत्र नेष्यते। सकारस्य शकारेण, चवर्गेण, द्वाभ्यामपि सन्निपाते शकारो भवति। तवर्गस्यापि च शकारेण, चवर्गेण च सन्निपाते चवर्गो भवति। आदेशे तु यथासंख्यमिष्यते-सकारस्य शकारः, तवर्गस्य च चवर्ग इति। सकारस्य शकारेण सन्निपाते-वृक्षश्शेते। प्लक्षश्शेते। तस्यैव चवर्गेण-वृक्षश्चिनोति, प्लक्षश्चिनोति। वृक्षश्छादयति, प्लक्षश्छा-दयति। तवर्गस्य शकारेण-अग्निचिच्छेते, सोमसुच्छेते। तस्यैव चवर्गेण-अग्निचिच्चिनोति, सोमसुच्चिनोति। अग्निचिच्छादयति, सोमसुच्छादयति। अग्निचिज्जयति, सोमसुज्जयति। अग्निचिज्झकारः, सोमसुज्झकारः। अग्निचिञ्ञकारः, सोमसुञ्ञकारः। मस्जेः-मज्जति। भ्रस्जेः-भृज्जति। व्रश्चेः-वृश्चति। यजेः-यज्ञः। याचेः-याच्ञा। 'शात्' (8.4.44) इति प्रतिषेधो ज्ञापकः-संख्यातानुदेशाभावस्य। 'स्तोः श्चौ' इति सप्तमीनिर्देशो न कृतः; पूर्वेण परेण च श्चुना सन्निपाते श्चुत्वं यथा स्यादिति।

अर्थ—सकार तथा तवर्ग का शकार तथा चवर्ग के साथ योग होने पर शकार तथा चवर्ग आदेश होता है। यहाँ यथासंख्य नहीं होता है। सकार का शकार के साथ तथा चवर्ग के साथ—दोनों के साथ योग होने पर शकार होता है। तवर्ग का भी शकार के साथ तथा चवर्ग के साथ योग होने पर चवर्ग आदेश होता है। आदेश में यथासंख्य होता है। सकार के स्थान पर शकार तथा तवर्ग के स्थान पर चवर्ग।

उदा० (क) सकारस्य शकारेण—
(1) वृक्षश्शेते
वृक्षस् शेते—सकार का शकार के साथ योग,
वृक्षश् शते—आन्तरतम्य से सकार के स्थान पर शकार होता है।

(2) प्लक्षश्शेते
प्लक्षस् शेते—पूर्ववत्।

(ख) सकारस्य चवर्गेण—
(3) वृक्षश्चिनोति
वृक्षस् चिनोति—सकार का चकार के साथ,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वृक्षश् चिनोति—शकार आदेश।

(4) प्लक्षञ्चिनोति
प्लक्षस् चिनोति—पूर्ववत्।

(5) वृक्षश्छादयति
वृक्षस् छादयति—सकार का छकार के साथ,
वृक्षश् छादयति—शकार आदेश।

(6) प्लक्षश्छादयति
प्लक्षस् छादयति—पूर्ववत्।

(ग) तवर्गस्य शकारेण—

(7) अग्निचिच्छेते
अग्निचित् शेते—तकार का शकार के साथ,
अग्निचिच् शेते—तकार के स्थान पर चकार,
अग्निचिच् छेते—'शश्छोऽटि' से शकार को छकार होकर रूप बनता है।

(8) सोमसुच्छेते
सोमसुत् शेते—पूर्ववत्।

(घ) तवर्गस्य चवर्गेण—

(9) अग्निचिच्चिनोति
अग्निचित् चिनोति—तकार का चकार से,
अग्निचिच् चिनोति—चकार आदेश।

(10) सोमसुच्चिनोति
सोमसुत् चिनोति—पूर्ववत्।

(11) अग्निचिच्छादयति
अग्निचित् छादयति—तकार को चकार।

(12) सोमसुच्छादयति
सोमसुत् छादयति—पूर्ववत्।

(13) अग्निचिज्जयति
अग्निचित् जयति—तकार का जकार के साथ,
अग्निचिच् जयति—चकार आदेश,
अग्निचिज् जयति—झलां जशोऽन्ते।

(14) सोमसुज्जयति
सोमसुत् जयति—पूर्ववत्।

(15) अग्निचिज्झकारम्
अग्निचित् झकारम्—तकार का झकार के साथ,
अग्निचिच् झकारम्—तकार को चकार,
अग्निचिज् झकारम्—झलां जशोऽन्ते।

(16) सोमसुज्झकारम् (पूर्ववत्)।

(17) अग्निचिञ्ञकारः
अग्निचित् ञकारः—तकार का ञकार के साथ,
अग्निचिञ् ञकारः—तकार के स्थान पर चवर्ग का पञ्चम वर्ण ञकार।

(18) सोमसुञ्ञकारः (पूर्ववत्)।

(19) मज्जति
मस्ज् तिप्—लट्,
म द् ज् अ तिप्—झलां जश् झशि,
मज्ज् अ ति—स्तोः श्चुना श्चुः, श्चुत्व करने में जश्त्व असिद्ध नहीं होता है।

(20) भृज्जति
भ्रस्ज् अ ति—'ग्रहिज्यावयि०' से सम्प्रसारण,
भृस्ज् अ ति—झलां जश् झशि,
भृ द् ज् अ ति—श्चुत्व।

(21) वृश्चति
व्रश्च श ति—शप् को बाध कर 'तुदादिभ्यः शः' से 'श',
वृश्च् अ ति—सम्प्रसारण, लशक्वतद्धिते,
वृश्च ति—रूप बनता है।

(22) यज्ञः
यज् नङ्—'यजयाच०' से 'नङ्',
यज् ञ—हलन्त्यम्, श्चुत्व, सु।

(23) याच्ञा
याच् नङ्—पूर्ववत्,
याच् ञ—श्चुत्व,
याच् ञ आ—स्त्रीत्व में 'टाप्', अनुबन्धलोप,
याच् ञा सु—सुलोप।

शात्०—'शात्' के द्वारा श्चुत्व का निषेध ज्ञापक है कि यहाँ यथासंख्य नियम प्रवृत्त नहीं होता है।

भाव यह है कि पूर्व में छः वर्ण (स् त् थ् द् ध् न्) हैं तथा पर में भी छः वर्ण (श् च् छ् ज् झ् ञ्) हैं। आदेश भी यह हैं (श् च् छ् ज् झ् ञ्); अतः समसंख्य होने से यथासंख्य नियम लागू होना चाहिए, परन्तु यथासंख्य नियम योग के सम्बन्ध में लागू नहीं होता है। तब यह आवश्यक नहीं है कि सकार शकार का, तकार चकार का तथा आगे भी इसी प्रकार स्थानी व निमित्त का योग हो। वस्तुतः यहाँ स्थानी व निमित्त का योग किसी प्रकार भी हो सकता है अर्थात् सकार का योग श् च् छ् ज् झ् ञ्—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इनमें से किसी के साथ हो सकता है। तब श्चुत्व आदेश होगा। भाव है कि शकारादि चाहे सकारादि के आगे आवें, चाहे पीछे आवें—दोनों स्थितियों में सकारादि के स्थान पर 'श्चुत्व' ही होता है। इसी प्रकार योग में यथासंख्य नियम प्रवृत्त नहीं होता है। 'स्तोः' के किसी भी वर्ण का और 'श्चु' के किसी भी वर्ण का किसी भी प्रकार योग हो, तो 'स्तु' को श्चुत्व होता है। यहाँ 'शात्' सूत्र ज्ञापक है। 'शात्' से शकार से पर तवर्ग को श्चुत्व का निषेध कहा गया है। यदि सकारादि से पर शकारादि होने पर ही श्चुत्व मानते हैं तो शकारादि से पर तवर्ग की प्राप्ति नहीं होगी। तब निषेध कैसा ? इस प्रकार 'शात्' सूत्र व्यर्थ होकर ज्ञापित करता है कि स्थानी व निमित्त में पौर्वापर्य निश्चित नहीं है।

ध्यातव्य है कि आदेश के सम्बन्ध में यथासंख्य नियम प्रवृत्त होता है। अतः ये आदेश क्रमशः होते हैं। यथा—सकार के स्थान पर शकार, तकार के स्थान पर चकार, थकार के स्थान पर छकार, दकार के स्थान पर जकार, धकार के स्थान पर झकार तथा नकार के स्थान पर ञकार होता है।

(3955) ष्टुना ष्टुः *41* (113)

'स्तोः' इति वर्त्तते। सकारतवर्गयोः षकारटवर्गाभ्यां सन्निपाते षकारटवर्गावादेशौ भवतः। तत्रापि तथैव संख्यातानुदेशाभावः। षकारेण सकारस्य-वृक्षष्षण्डे, प्लक्षष्षण्डे। तस्यैव टवर्गेण-वृक्षष्टीकते, प्लक्षष्टीकते। वृक्षष्ठकारः, प्लक्षष्ठकारः। तवर्गस्य षकारेण-पेष्टा। पेष्टुम्। पेष्टव्यम्। कृषीष्ट। कृषीष्ठाः। तस्यैव टवर्गेण-अग्निचिट्टीकते। सोमसुट्टीकते। अग्निचिट्ठकारः, सोमसुट्ठकार। अग्निचिड्डीनः, सोमसुड्डीनः। अग्निचिड्ढौकते, सोमसुड्ढौकते। अग्निचिण्णकारः, सोमसुण्णकारः। अत्ट्-अट्टति। अद्ड्-अड्डति।

अर्थ—'स्तोः' का अनुवर्त्तन है। सकार तथा तवर्ग का षकार तथा टवर्ग के साथ योग होने पर षकार तथा टवर्ग आदेश होते हैं। यहाँ पर भी पूर्ववत् यथासंख्य लागू नहीं होता है।

उदा० (क) षकारेण सकारस्य—

(1) वृक्षष्षण्डे
वृक्षस् षण्डे—षकार आदेश।

(2) प्लक्षष्षण्डे (पूर्ववत्)।

(ख) टवर्गेण सकारस्य—

(3) वृक्षष्टीकते
वृक्षस् टीकते—षकार।

(4) प्लक्षष्टीकते (पूर्ववत्)।

(5) वृक्षष्ठकारः
वृक्षस् ठकारः—षकार।

(6) प्लक्षष्ठकारः
प्लक्षस् ठकारः—षकार।

(ग) षकारेण तवर्गस्य—

(7) पेष्टा
पिष् तृच्—आर्धधातुकं शेषः, हलन्त्यम्,
पेष् तृ—'पुगन्तलघूपधस्य च' से गुण,
पेष् टा—टकार आदेश, सु।

(8) पेष्टुम्
पिष् तुमुन्—अनुबन्धलोप,
पेष् टुम्—शेष पूर्ववत्,
पेष्टुम् सु—सुलोप।

(9) पेष्टव्यम्
पिष् तव्यत्—पूर्ववत्।

(10) कृषीष्ट
कृष् त—आशीर्लिङ्,
कृष् सीयुट् त—अनुबन्धलोप,
कृ सीय् सुट् त—सुट् तिथोः,
कृ षी स् त—सलोप, यलोप, आदेशप्रत्यययोः, ष्टुत्व।

(11) कृषीष्ठाः
कृष् थास्—पूर्ववत् सीयुट्, सुट्, अनुबन्धलोप,
कृष् सीयुट् सुट् थास्—सकारलोप, यकारलोप,
कृषीष् ठास्—षत्व, ष्टुत्व।

(घ) तवर्गस्य टवर्गेण—

(12) अग्निचिट् टीकते
अग्निचित् टीकते—तकार का टकार से,
अग्निचिट् टीकते—टकार।

(13) सोमसुट्टीकते (पूर्ववत्)।

(14) अग्निचिट्ठकारः
अग्निचित् ठकारः—टकार।

(15) सोमसुट्ठकारः (पूर्ववत्)।

(16) अग्निचिड्डीनः
अग्निचित् डीनः—ष्टुत्व,
अग्निचिट् डीनः—झलां जशोऽन्ते।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(17) सोमसुड्डीनः (पूर्ववत्)।
(18) अग्निचिद्ढौकते
अग्निचित् ढौकते—तकार का ढकार से,
अग्निचिद् ढौकते—ढकार।

(19) सोमसुद्ढौकते (पूर्ववत्)।
(20) अग्निचिण्णकारः
अग्निचित् णकारः—णकार आदेश।

(21) सोमसुण्णकारः (पूर्ववत्)।
(22) अट्टति
अत् ट् तिप्—ष्टुत्व,
अट्ट् शप् ति—अनुबन्धलोप।

(23) अड्डति
अद्ड् शप् ति—पूर्ववत् ष्टुत्व।

(3956) न पदान्ताट्टोरनाम् *42* (114)

पदान्ताट्टवर्गादुत्तरस्य स्तोः ष्टुत्वं न भवति 'नाम्' इत्येतद्वर्जयित्वा। श्वलिट्साये। मधुलिट् तरति। पदान्तादिति किम्? 'ईड स्तुतौ' (धा०पा० 1020)-ईट्टे। टोरिति किम्? सर्पिष्टमम्। अनामिति किम्? षण्णाम्। अत्यल्पमिदमुच्यते। *अनाम्नवतिनगरीणामिति वक्तव्यम्*। षण्णाम्। षण्णवतिः। षण्णगरी।

अर्थ—पदान्त टवर्ग से उत्तर सकार व तवर्ग के स्थान पर ष्टुत्व नहीं होता है, परन्तु 'नाम्' को यह निषेध नहीं होता है।

उदा० (1) श्वलिट्साये
श्वलिट् साये—पदान्त में टकार है, इससे पर सकार है,
श्वलिट् साये—'ष्टुना ष्टुः' से प्राप्त ष्टुत्व का निषेध।

(2) मधुलिट् तरति
मधुलिट् तरति—पदान्त में टकार वर्त्तमान है, उससे पर तकार है,
मधुलिट् तरति—ष्टुत्व नहीं हुआ।

पदान्ता०—पदान्त में टवर्ग से उत्तर सकार व तवर्ग को ष्टुत्व नहीं होता है।

(3) ईट्टे
ईड् त—'खरि च' से टकार, टकार पदान्त में नहीं है, अतः ष्टुत्व का निषेध नहीं हुआ।

टोरिति०—पदान्त में टवर्ग से उत्तर सकार व तवर्ग को ष्टुत्व नहीं होता है।

(4) सर्पिष्टमम्
सर्पिस् तमप्—'अतिशायने तमप्',
सर्पिष् तम—'ह्रस्वात् तादौ०' से मूर्धन्य, ष्टुत्व हुआ।

अनामि०—नाम् को निषेध नहीं होता है।

(5) षण्णाम्
षष् नाम्—'षट्चतुर्भ्यश्च' से 'नुट्', 'झलां जशोऽन्ते' से डकार, ष्टुत्व,
षड् नाम्—'यरोऽनुनासिकेऽनु०' से डकार को णकार।

अत्यल्प०—यह थोड़ा कहा गया है। नाम्, नवति तथा नगरी को यह निषेध नहीं होता है।

(6) षण्णाम् (पूर्ववत्)।

(7) षण्णवतिः
षडधिका नवतिः—शाकपार्थिवादि समास,
षष् नवति—झलां जशोऽन्ते, यरोऽनुनासिके०,
षण् णवति सु—ष्टुत्व।

(8) षण्णगरी
षण्णां नगराणां समाहारः—समास,
षष् नगर ङीप्—द्विगोः, ष्टुत्व।

(3957) तोः षि *43* (115)

'न' इति वर्तते। तवर्गस्य षकारे यदुक्तं तन्न भवति। अग्निचित्षण्डे। भवान्षण्डे। महान्षण्डे।

अर्थ—'न' का अनुवर्त्तन है। षकार परे रहते तवर्ग के स्थान पर ष्टुत्व नहीं होता है।

उदा० (1) अग्निचित् षण्डे
अग्निचित् षण्डे—'अग्नौ चेः' से 'क्विप्' होता है, ष्टुत्वनिषेध।

(2) सोमसुत् षण्डे[1] (पूर्ववत्)।
(3) भवान् षण्डे
ष्टुत्व-निषेध।

(4) महान् षण्डे (पूर्ववत्)।

(3958) शात् *44* (112)

'तोः' इति वर्तते। शकारादुत्तरस्य तवर्गस्य यदुक्तं तन्न भवति। प्रश्नः। विश्नः।

1. यह उदाहरण न्यास में प्रदर्शित है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—'तोः' का अनुवर्त्तन है। शकार से उत्तर तवर्ग के स्थान पर श्चुत्व नहीं होता है।

उदा० (1) प्रश्नः
प्रच्छ् नङ्—'यजयाच०' से 'नङ्', हलन्त्यम्,
प्रश् न—च्छ्वोः शूडनु०,
प्रश्न सु—'स्तोः श्चुना श्चुः' से प्राप्त श्चुत्व का निषेध।

(2) विश्नः
विच्छ् नङ्—सभी कार्य पूर्ववत्।

(3959) यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा *45* (116)

पदान्तग्रहणमनुवर्तते। यरः पदान्तस्यानुनासिके परतो वाऽनुनासिकादेशो भवति। वाङ्नयति, वाग्नयति। श्वलिण्नयति, श्वलिङ्नयति। अग्निचिन्नयति, अग्निचिद् नयति। त्रिष्टुम्नयति, त्रिष्टुब्नयति। 'पदान्तस्य' इत्येव–वेद्मि। क्षुभ्नाति। *यरोऽनुनासिके प्रत्यये भाषायां नित्यवचनं कर्तव्यम्*। वाङ्मयम्। त्वङ्मयम्। व्यवस्थितविभाषाविज्ञानात् सिद्धम्।

अर्थ—'पदान्त' के ग्रहण का अधिकार है। पदान्त यर् के स्थान पर अनुनासिक आदेश विकल्प से होता है, अनुनासिक परे रहते।

उदा० (1) वाग् नयति
वाच् नयति—'झलां जशोऽन्ते' से जश्त्व,
वाज् नयति—'चोः कुः' से कुत्व,
वाग् नयति—अनुनासिक अभाव।

(2) वाङ् नयति
वाग् नयति—अनुनासिक ङकार हुआ।

(3) श्वलिङ् नयति
जश्त्व, अनुनासिक अभाव।

(4) श्वलिण्नयति
अनुनासिक आदेश।

(5) अग्निचिद् नयति
अग्निचित् नयति—जश्त्व,
अग्निचिद् नयति—अनुनासिक अभाव।

(6) अग्निचिन्नयति
अनुनासिक आदेश।

(7) त्रिष्टुब् नयति
जश्त्व, अनुनासिक अभाव।

(8) त्रिष्टुम् नयति
अनुनासिक।

पदान्त०—पदान्त यर् के स्थान पर ही अनुनासिक होता है।

(9) वेद्मि
विद् मिप्—लट्, पुगन्तलघूप०,
वेद् मि—यर् पदान्त में नहीं है, अतः अनुनासिक नहीं हुआ।

(10) क्षुभ्नाति
क्षुभ् श्ना ति—'क्र्यादिभ्यः श्ना' से 'श्ना',
क्षुभ् ना ति—लशक्वत०।

यरोऽनु०—लोक में अनुनासिक प्रत्यय के परे रहते 'यर्' के स्थान पर नित्य अनुनासिक होता है।

(11) वाङ्मयम्
वाच् मयट्—'नित्यं वृद्धशरादिभ्यः' से 'मयट्',
वाङ्मय सु—कुत्व, अनुनासिक।

(12) त्वङ्मयम्
त्वच् मयट्—'मयड्वैतयोः',
त्वङ् मय सु—कुत्व, अनुनासिक।

(13) वाङ्मात्रम् (पूर्ववत्)।

(14) कियन्मात्रम् (पूर्ववत्)।

व्यवस्थि०—यह सब व्यवस्थित विभाषा मानकर सिद्ध हो जाता है।

(3960) अचो रहाभ्यां द्वे *46* (59)

'यरः' इति वर्तते। अच उत्तरौ यौ रेफहकारौ ताभ्यामुत्तरस्य यरो द्वे (वा) भवतः। अर्क्कः। मर्क्कः। ब्रह्म्मा। अपह्नुते। अच इति किम्? किन् ह्नुते। किम् ह्नालयति।

अर्थ—'यरः' का अनुवर्त्तन है। अच् वर्ण से उत्तर जो रेफ तथा हकार, उनसे उत्तर यर् वर्ण को द्वित्व होता है।

उदा० (1) अर्क्कः
अर्क—अच् (अकार) से उत्तर रेफ है, उससे उत्तर यर् वर्ण (ककार) है,
अर् क् क सु—ककार को द्वित्व।

(2) मर्क्कः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मर्क सु—पूर्ववत्।

(3) ब्रह्म्मा

ब्रह्मा—अच् वर्ण (अकार) से उत्तर हकार है, उससे उत्तर यर् वर्ण मकार है,

ब्रह्म्मा—मकार को द्वित्व।

(4) उपह्नुते

उपह्नुते—अच् (अकार) से उत्तर हकार, हकार से उत्तर यर् वर्ण (नकार) को द्वित्व होता है।

यर०—अच् वर्ण से उत्तर रेफ व हकार से उत्तर यर् को द्वित्व होता है।

ह्नुते—यहाँ हकार से उत्तर यर् को द्वित्व नहीं हुआ। कारण कि हकार अच् से उत्तर नहीं है।

इसी प्रकार—किम् ह्नलयति में हकार से उत्तर मकार को द्वित्व नहीं हुआ।

(3961) अनचि च *47* (48)

'अचः' इति वर्तते, 'यरः' इति च। अनच्यरस्य अच उत्तरस्य यरो द्वे वा भवतोऽनचि परतः। दद्ध्यत्र। मद्ध्वत्र। अच इत्येव-स्मितम्। ध्मातम्। *यणो मयो द्वे भवत इति वक्तव्यम्*। केचिदत्र 'यणः' इति पञ्चमी, 'मयः' इति षष्ठीति व्याचक्षते। तेषामुल्क्का, वाल्म्मीक इत्युदाहरणम्। अपरे तु 'यणः' इति षष्ठी, 'मयः' इति पञ्चमीति, तेषां दध्य्यत्र, मध्व्वत्रेत्युदाहरणम्। *शरः खयो द्वे भवत इति वक्तव्यम्*। अत्रापि यदि 'शरः' इति पञ्चमी, 'खयः' इति षष्ठी; तदा स्थाली, स्थातेत्युदाहरणम्। अथ वा-खय उत्तरस्य शरो द्वे भवतः। वत्स्सः, इक्ष्षुः, क्ष्षीरम्, अप्स्सराः। *अवसाने च यरो द्वे भवत इति वक्तव्यम्*। वाक्क्, वाक्। त्वक्क्, त्वक्। षट्ट्, षट्। तत्त्, तत्।

अर्थ—'अचः' तथा 'यरः' का अनुवर्त्तन है। अच् वर्ण से उत्तर यर् वर्ण को विकल्प से द्वित्व होता है, यदि अच् वर्ण परे न हो।

उदा० (1) दद्ध्यत्र

दधि अत्र—इको यणचि,

दध् य् अत्र—अच् अकार से उत्तर यर् धकार को द्वित्व हुआ,

दध् ध्यत्र—झलां जश् झशि,

दद् ध्यत्र—रूप।

(2) मद्ध्वत्र

मधु अत्र—इको यणचि, शेष पूर्ववत्।

अच०—अच् से उत्तर यर् को द्वित्व होता है।

(3) स्मितम्। (4) ध्मातम्।

यहाँ यर् वर्ण से उत्तर नहीं है। अतः द्वित्व नहीं हुआ।

यणो०—यण् वर्ण से उत्तर मय् वर्ण को द्वित्व होता है। कुछ विद्वान् यहाँ 'यणः' में पञ्चमी तथा 'मयः' में षष्ठी मानते हैं। उनके अनुसार निम्नलिखित उदाहरण होते हैं—

(5) उल्क्का

उल्का—यण् वर्ण (लकार) से पर मय् वर्ण (ककार) को द्वित्व हुआ।

(6) वाल्म्मीकः

वाल्मीकः—पूर्ववत्।

अपरे०—अन्य विद्वान् 'यणः' में षष्ठी तथा 'मयः' में पञ्चमी मानते हैं। उनके अनुसार मय् वर्ण से उत्तर यण् वर्ण को द्वित्व होता है। यथा—

(7) दध्य्यत्र

दधि अत्र—इको यणचि,

दध् यत्र—मय् वर्ण (धकार) से पर यण् वर्ण (यकार) को द्वित्व हुआ है।

(8) मध्व्वत्र

पूर्ववत् यण् (वकार) को द्वित्व हुआ।

शरः—शर् वर्ण से उत्तर खय् वर्ण को द्वित्व होता है। यहाँ भी 'शरः' में पञ्चमी तथा 'खयः' में षष्ठी स्वीकार करते हैं।

(9) स्थाली

स्थाली—शर् वर्ण (सकार) से उत्तर खय् वर्ण (थकार) है। अतः थकार को द्वित्व,

स् थ् थाली—'खरि च' से तकार।

(10) स्थाता

स्थाता—पूर्ववत्।

अथवा०—जो विद्वान् 'खयः' में पञ्चमी तथा 'शरः' में षष्ठी मानते हैं। उनके अनुसार खय् वर्ण से उत्तर शर् वर्ण को द्वित्व होता है। यथा—

(11) वत्स्सः

वत्सः—खय् वर्ण (तकार) से उत्तर शर् वर्ण (सकार) को द्वित्व हुआ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(12) इक्ष्णुः

इक्षुः—खय् वर्ण (ककार) से उत्तर शर् वर्ण (षकार) को द्वित्व हुआ है।

(13) क्ष्णोरम्

क्षोरम्—पूर्ववत् षकार को द्वित्व।

(14) अप्स्सराः

अप्सराः—खय् वर्ण (यकार) से उत्तर शर् वर्ण (सकार) को द्वित्व हुआ।

अवसाने०—अवसान में यर् वर्ण को द्वित्व विकल्प से होता है।

(15) वाक्क्

वाच् सु—सुलोप, पदसंज्ञा,
वाक्—चोः कुः, ककार को द्वित्व।

(16) वाक्

पक्ष में द्वित्व नहीं हुआ।

(17) त्वक्क्

द्वित्व पक्ष।

(18) त्वक्

द्वित्व अभाव।

(19) षट्ट्

षट्—द्वित्व।

(20) षट्

द्वित्व नहीं हुआ।

(21) तत्त्

तत्—द्वित्व।

(22) तत्

द्वित्व अभाव।

(3962) नादिन्याक्रोशे पुत्रस्य *48* (55)

आदिनि परत आक्रोशे गम्यमाने पुत्रशब्दस्य न द्वे भवतः। 'अनचि च' इति प्राप्तिः प्रतिषिध्यते। पुत्रादिनी त्वमसि पापे। आक्रोश इति किम्? तत्त्वकथने द्विर्वचनं भवत्येव–पुत्रानत्तीति पुत्रादिनी। शिशुमारी व्याघ्री। *तत्परे चेति वक्तव्यम्*। पुत्रपुत्रादिनी त्वमसि पापे। *वा हतजग्धपर इति वक्तव्यम्*। पुत्रहती, पुत्रहती। पुत्रजग्धी। पुत्रजग्धी। *चयो द्वितीयाः शरि पौष्करसादेः*। चयो द्वितीया भवन्ति शरि परतः पौष्करसादेराचार्यस्य मतेन। तकारस्य थकारः–वथ्सः। ककारस्य खकारः–ख्षीरम्। पकारस्य फकारः– अफ्सराः।

अर्थ—आक्रोश अर्थ गम्यमान हो तो आदिन् शब्द परे रहते पुत्र शब्द को द्वित्व नहीं होता है। 'अनचि च' से प्राप्त द्वित्व का निषेध किया गया है।

उदा० (1) पुत्रादिनी त्वमसि पाये
द्वित्व नहीं हुआ।

आक्रोश०—आक्रोश अर्थ गम्यमान रहते द्वित्व-निषेध होता है। तत्त्वकथन में द्वित्व होता है।

(2) पुत्रादिनी

पुत्रान् अत्ति—यहाँ आक्रोश गम्यमान नहीं है, तत्त्वकथन है। अतः द्वित्व हुआ है।

तत्परे०—पुत्र परे रहते पुत्र शब्द को द्वित्व नहीं होता है।

(3) पुत्रपुत्रादिनी त्वमसि पापे
यहाँ नहीं हुआ।

वा हत०—हत तथा जग्ध शब्दों के परे रहते पुत्र शब्द को विकल्प से द्वित्व होता है।

(4) पुत्रहती
द्वित्व हुआ।

(5) पुत्रहती
पक्ष में द्वित्व नहीं हुआ।

(6) पुत्रजग्धी
द्वित्व हुआ।

(7) पुत्रजग्धी
पक्ष में द्वित्व नहीं हुआ।

चयो०—पौष्करसादि आचार्य के मत में शर् वर्ण परे रहते चय् वर्ण को द्वितीय वर्ण होता है।

(8) वथ्सः

वत्सः—शर् (सकार) परे रहते चय् वर्ण (तकार) को उसी वर्ग का द्वितीय वर्ण (थकार) हुआ।

(9) वत्सः
पक्ष में द्वितीय वर्ण नहीं हुआ।

(10) ख्षीरम्

क्षीरम्—चय् वर्ण (ककार) को पूर्ववत् द्वितीय वर्ण हुआ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(11) क्षीरम्
पक्ष में द्वितीय वर्ण अभाव।

(12) अप्सरा:
पकार को फकार।

(13) अप्सरा:
द्वितीय वर्ण अभाव।

(3963) शरोऽचि *49* (340)

'न' इति वर्तते। शरोऽचि परतो न द्वे भवतः। 'अचो रहाभ्याम्' (8.4.46) इति प्राप्तिः प्रतिषिध्यते। कर्षति। वर्षति। आकर्षः। अक्षदर्शः। अचीति किम्? दश्श्यर्ते।

अर्थ—'न' का अनुवर्त्तन है। अच् परे रहते शर् वर्ण को द्वित्व नहीं होता है।

'अचो रहाभ्यां०' से प्राप्त द्वित्व का निषेध किया जाता है।

उदा० (1) कर्षति
षकार को द्वित्व नहीं हुआ।

(2) वर्षति (पूर्ववत्)।

(3) आकर्षः (पूर्ववत्)।

(4) अक्षदर्शः
शकार को द्वित्व नहीं हुआ।

अची०—अच् परे रहते द्वित्व का निषेध होता है।

(5) दश्श्यर्ते
दर्श्यते—अच् वर्ण (अकार) से पर रेफ से उत्तर शर् वर्ण (शकार) है। इससे पर अच् वर्ण न होने से द्वित्व का निषेध नहीं हुआ।

(3964) त्रिप्रभृतिषु शाकटायनस्य *50* (56)

त्रिप्रभृतिषु वर्णेषु संयुक्तेषु शाकटायनस्याचार्यस्य मतेन द्वित्वं न भवति। इन्द्रः। चन्द्रः। उष्ट्रः। राष्ट्रम्। भ्राष्ट्रम्।

अर्थ—तीन संयुक्त वर्णों को शाकल्य के मत में द्वित्व नहीं होता है।

उदा० (1) इन्द्रः
'अनचि च' से प्राप्त द्वित्व का निषेध।

(2) चन्द्रः
पूर्ववत् निषेध।

(3) उष्ट्रः
द्वित्व नहीं हुआ।

(4) राष्ट्रम् (पूर्ववत्)।

(5) भ्राष्ट्रम्
द्वित्व नहीं हुआ।

(3965) सर्वत्र शाकल्यस्य *51* (57)

शाकल्याचार्यस्य मतेन सर्वत्र द्विर्वचनं न भवति। अर्कः। मर्कः। ब्रह्मा। अपह्नुते।

अर्थ—शाकल्य के मत में सर्वत्र द्वित्व नहीं होता है।

उदा० (1) अर्कः
'अचो रहाभ्यां द्वे' से द्वित्व प्राप्त था।

(2) मर्कः (पूर्ववत्)।

(3) ब्रह्मा
'अचो रहाभ्यां द्वे' से द्वित्व प्राप्त था।

(4) अपह्नुते (पूर्ववत्)।

(3966) दीर्घादाचार्याणाम् *52* (58)

दीर्घादुत्तरस्याचार्याणां मतेन न द्वित्वं भवति। दात्रम्। पात्रम्। मूत्रम्। सूत्रम्।

अर्थ—आचार्य लोगों के मत में दीर्घ वर्ण से उत्तर द्वित्व नहीं होता है।

उदा० (1) दात्रम्
'अनचि च' से द्वित्व प्राप्त था। निषेध हुआ।

(2) पात्रम् (पूर्ववत्)।

(3) मूत्रम्
द्वित्व-निषेध।

(4) सूत्रम् (पूर्ववत्)।

(3967) झलां जश् झशि *53* (52)

झलां स्थाने जशादेशो भवति झशि परतः। लब्धा, लब्धुम्, लब्धव्यम्। दोग्धा, दोग्धुम्, दोग्धव्यम्। बोद्धा, बोद्धुम्, बोद्धव्यम्। झशीति किम्? दत्तः। दत्थः। दध्मः।

अर्थ—झल् वर्ण के स्थान पर जश् वर्ण होता है, झश् वर्ण परे रहते।

उदा० (1) लब्धा
लभ् तृच्—झषस्तथो०,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लभ् धृ—झलां जश् झशि,
लब् धृ सु—सु।

(2) लब्धुम्
लभ् तुमुन्—अनुबन्धलोप,
लभ् धुम्—तकार को धकार,
लब् धुम्—जश्त्व,
लब् धुम्—सुलोप।

(3) लब्धव्यम्
लभ् तव्यत्—हलन्त्यम्,
लभ् धव्य—झषस्तथो०,
लब् धव्य—झलां जस् झशि,
लब् धव्य सु—अतोऽम्।

(4) दोग्धा
दुह् तृ—दाऽऽदेर्धातोर्घः,
दुघ् तृ—झषस्तथो०,
दुघ् धृ—झलां जश् झशि,
दोग्धृ सु—पुगन्तलघूप०।

(5) दोग्धुम्
दुह् तुमुन्—अनुबन्धलोप,
दोघ् तुम्—लघूपधगुण, घकार,
दोग् धुम् सु—धकार, जश्त्व।

(6) दोग्धव्यम्
दुह् तव्यत्—हलन्त्यम्, लघूपधगुण,
दोघ् तव्य—घकार,
दोग् धव्य सु—धकार, जश्त्व।

(7) बोद्धा
बुध् तृ—झषस्तथो०,
बुध् धृ—लघूपधगुण,
बोद् धृ सु—जश्त्व।

(8) बोद्धुम्
बुध् तुमुन्—लघूपधगुण,
बोध् तुम्—झषस्तथो०,
बोध् धुम्—झलां जश् झशि,
बाद् धुम् सु—सु।

(9) बोद्धव्यम्
बुध् तव्यत्—हलन्त्यम्, लघूपधगुण,
बोध् धव्य—झषस्तथो०,
बोद् धव्य सु—झलां जश् झशि।

झशीति०—झश् वर्ण परे रहते जश् आदेश होता है।

(10) दत्तः
दा तस्—शप्, श्लुत्व,
दा दा तस्—'श्लौ' से द्वित्व, ह्रस्वः,
द द् तस्—श्नाऽभ्यस्तयो०, खरि च।

(11) दत्थः
दा थस्—पूर्ववत् श्लुत्व,
द दा थस्—द्वित्व, आकारलोप,
द द् थस्—खरि च।

(12) दध्मः
दा धा मस्—श्लुत्व,
द धा मस्—द्वित्व, ह्रस्वः, अभ्यासे चर्च,
द ध् मस्—आकारलोप।

(3968) अभ्यासे चर्च *54* (2182)

अभ्यासे वर्त्तमानानां झलां चरादेशो भवति, चकाराज्जश्च। चिखनिषति। चिच्छित्सति। टिठकारयिषति। तिष्ठासति। पिफकारयिषति। बुभूषति। जिघत्सति। डुढौकिषते। *प्रकृतिचरां प्रकृतिचरो भवन्ति*। चिचीषति। टिटीकिषते। तितनिषति। *प्रकृतिजशां प्रकृतिजशो भवन्ति*। जिजनिषते। बुबुधे। ददौ। डिड्ये।

अर्थ—अभ्यास में वर्त्तमान झल् वर्ण के स्थान पर चर् वर्ण तथा जश् वर्ण होता है।

उदा० (1) चिखनिषति
खन् सन्—सन्, इट्, 'सन्यङोः' से द्वित्व,
ख खन् इट् स—पूर्वोऽभ्यासः, हलादिः शेष; अभ्यासे चर्च से चकार,
चिखनिष—सन्यतः, आदेशप्रत्यययोः, धातुसंज्ञा,
चिखनिष शप् तिप्—पूर्ववत् सनः, अतो गुणे।

(2) चिच्छित्सति
छिद् सन्—सन्यङोः, पूर्वोऽभ्यासः
छि छिद् स—हलादिः शेषः, अभ्यासे चर्च,
चि त् छि त् स—'छे च' से 'तुक्', 'खरि च' से तकार,
चिच् छित्स शप् तिप्—स्तोः श्चुना श्चुः, धातुसंज्ञा, अतो गुणे।

(3) जिझकारयिषति (न्यासे प्रदर्शितः)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

झकारम् आचष्टे—'तत्करोति तदाचष्टे' से 'णिच्',
झकार इ—इष्ठवत्, टिलोप,
झकारि सन्—धातुसंज्ञा, इट्,
झकारयिष—गुण, अय्, आदेशप्रत्यययोः,
जझकारयिष—अभ्यासे चर्च, धातु संज्ञा,
जिझकारयिष—सन्यतः, धातुसंज्ञा,
जिझकारयिष शप् तिप्—अतो गुणे।

(4) टिठकारयिषति
ठकारम् आचष्टे—'तत्करोति तदाचष्टे' से 'णिच्',
ठकार इ—इष्ठवद्भाव, टिलोप,
ठकारि स—धातुसंज्ञा, सन्,
ठकारय् इस—इट्, सार्वधातुकार्धधा० से गुण, अय्, आदेश-प्रत्यययोः,
ट ठकार यिष—सन्यङोः, हलादिः शेषः, अभ्यासे चर्च,
टिठकारयिष ति—सन्यतः, धातुसंज्ञा, अतो गुणे।

(5) तिष्ठासति
ष्ठा → स्था—धात्वादेः षः सः, ठकार को थकार,
स्था स्था स—सन्, द्वित्व, पूर्वोऽभ्यासः,
थ स्था स—हलादिः शेषः, शर्पूर्वाः खयः, ह्रस्वः, अभ्यासे चर्च,
ति स्था स—सन्यतः, आदेशप्रत्यययोः, ष्टुना ष्टुः,
तिष्ठा स शप् ति—धातुसंज्ञा, अतो गुणे।

(6) पिफकारयिषति
फकारम् आचष्टे—'तत्करोति तदाचष्टे' से 'णिच्',
फकारयि स—'ठकारयि स' की तरह सभी कार्य, द्वित्व,
पफकारयिस—अभ्यासे चर्च, आदेशप्रत्यययोः,
पिफकारयिष—सन्यतः, धातुसंज्ञा,
पिफकारयिष शप् ति—अतो गुणे।

(7) बुभूषति
भू सन्—सन्यङोः, पूर्वोऽभ्यासः,
भु भू स—ह्रस्वः, अभ्यासे चर्च,
बुभूष—आदेशप्रत्यययोः, धातुसंज्ञा,
बुभूष शप् ति—पूर्ववत् सनः,
बुभूषति—अतो गुणे।

(8) जिघत्सति
अद् सन्—'लुङ् सनोर्घस्लृ' से 'घस्' आदेश,
घस् स—'सन्यङोः' से द्वित्व,
घ घस् स—द्वित्व, हलादिः शेषः,
जिघस् स—अभ्यासे चर्च, सन्यतः, 'सः स्यार्ध०' से तकार, धातुसंज्ञा,
जिघत् स शप् तिप्—अतो गुणे।

(9) डुढौकिषते
ढौक् इ सन्—इट्, 'सन्यङोः' से द्वित्व,
ढु ढौक् इ स—अभ्याससंज्ञा, ह्रस्वः,
डु ढौकिष—अभ्यासे चर्च, आदेशप्रत्यययोः, धातुसंज्ञा,
डु ढौकिष शप् त—पूर्ववत् सनः, अतो गुणे।

प्रकृति०—प्रकृति चर् के स्थान पर प्रकृति चर् होते हैं। यथा—

(10) चिचीषति
चि सन्—'अज्झनगमां०' से दीर्घ,
ची ची स—द्वित्व, पूर्वोऽभ्यासः,
चिचीष—ह्रस्वः, आदेशप्रत्यययोः, धातुसंज्ञा,
चि चीष शप् तिप्—अतो गुणे।

(11) टिटीकिषते
टीक् इट् सन्—पूर्ववत् द्वित्वादि,
टिटीकिष—ह्रस्वः, षत्व, लकारकार्य।

(12) तितनिषति
तन् इट् सन्—द्वित्वादि,
त तन् इ ष—हलादिः शेषः, आदेशप्रत्यययोः,
तितनिष—सन्यतः, लकारकार्य।

(13) तितीर्षति
तॄ सन्—सन्,
तिर् स—ऋत इद्धातोः, उरण् रपरः,
तीर् स—'हलि च' से दीर्घ, सन्यङोः,
ति तीर् स—ह्रस्वः, आदेशप्रत्यययोः, धातुसंज्ञा,
ति तीर्ष शप् ति—अतो गुणे।

प्रकृति०—प्रकृति जश् के स्थान पर प्रकृति जश् होता है। यथा—

(14) जिजनिषते
जन् इट् सन्—इट्, 'सन्यङोः' से द्वित्व,
जिजनिष—हलादिः शेषः, सन्यतः, षत्व,
जिजनिष शप् त—अतो गुणे।

(15) बुबुधे
बुध् त—लिटस्तझयो०,
बुध् एश्—सन्यङोः, पूर्वोऽभ्यासः,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बु बुध् ए—हलादिः शेषः।

(16) ददौ
दा णल्—लिट्, णल् आदेश,
दा औ—आत औ णलः,
दा दा औ—द्वित्व,
द दा औ—ह्रस्वः, वृद्धिरेचि।

(17) डिड्ये
डी त—पूर्ववत् 'एश्', द्वित्व,
डि डी ए—ह्रस्वः, यण्।

(3969) **खरि च *55* (121)**

खरि च परतो झलां चरादेशो भवति। जश्ग्रहणं नानुवर्तते; पूर्वसूत्रे चानुकृष्टत्वात्। भेत्ता, भेत्तुम्, भेत्तव्यम्। युयुत्सते। आरिप्सते। आलिप्सते।

अर्थ—झल् वर्ण के स्थान पर चर् वर्ण होता है, खर् वर्ण परे रहते। झल् का अनुवर्त्तन नहीं है, पूर्व सूत्र में अनुवृत्त होने से।

उदा० (1) भेत्ता
भिद् तृच्—हलन्त्यम्, आर्धधातुकं शेषः,
भेद् तृ—पुगन्तलघूपधस्य च,
भेत् तृ सु—चर् (तकार)।

(2) भेत्तुम्
भिद् तुमुन्—अनुबन्धलोप,
भेत् तुम् सु—चर्त्व, सु।

(3) भेत्तव्यम्
भिद् तव्यत्—लघूपधगुण, चर्त्व, सु।

(4) युयुत्सते
युध् सन्—चर्त्व,
युत्स—द्वित्व, हलादिः शेषः,
यु युत्स—धातुसंज्ञा, पूर्ववत् सनः,
यु युत्स शप् त—अतो गुणे, टित आत्मनेपदा०।

(5) आरिप्सते
रभ् सन्—'सनि मीमा०' से 'इस्',
रिस् भ् स—'स्कोः संयोगा०' से सकारलोप,
रिप् स—खरि च, धातुसंज्ञा,
आ रिप्स शप् त—लकारकार्य।

(6) आलिप्सते
लभ् सन्—पूर्ववत् सभी कार्य।

(3970) **वाऽवसाने *56* (206)**

'झलाम्', 'चर्' इति वर्तते। अवसाने वर्त्तमानानां झलां वा चरादेशो भवति। वाक्, वाग्। त्वक्, त्वग्। श्वलिट्, श्वलिड्। त्रिष्टुप्, त्रिष्टुब्।

अर्थ—झलाम्, चर्—इनका अनुवर्त्तन है। अवसान में वर्त्तमान झल् वर्ण के स्थान पर चर् आदेश विकल्प से होता है।

उदा० (1) वाक्
वाच् सु—हल्ङ्याब्भ्यो०,
वाच्—पदसंज्ञा, चोः कुः, झलां जशोऽन्ते,
वाग्—वाऽवसाने।

(2) वाग्
चर्त्व अभाव।

(3) त्वक्
त्वच्—सु, सुलोप, पदसंज्ञा, कुत्व,
त्वग्—जश्त्व, चर्त्व।

(4) त्वग्
त्वग्—इस दशा में पूर्ववत्,
त्वग्—चर्त्व अभाव।

(5) श्वलिट्
श्वलिट्—पूर्ववत् पदसंज्ञा, जश्त्व,
श्वलिड्—चर्त्व।

(6) श्वलिड्
श्वलिड्—पदसंज्ञा, जश्त्व,
श्वलिड्—चर्त्व अभाव पक्ष।

(7) त्रिष्टुप्
चर्त्व पक्ष।

(8) त्रिष्टुब्
चर्त्व अभाव।

(3971) **अणोऽप्रगृह्यस्यानुनासिकः *57* (110)**

अणोऽप्रगृह्यसंज्ञस्यावसाने वर्तमानस्य वाऽनुनासिकादेशो भवति। दधिँ, दधि। मधुँ मधु। कुमारीँ, कुमारी। अण इति किम्। कर्तृ। हर्तृ। अप्रगृह्यस्येति किम्? अग्नी। वायू।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ—जो प्रगृह्यसंज्ञक नहीं हैं, अवसान में स्थित ऐसे अण् के स्थान पर अनुनासिक आदेश विकल्प से होता है।

उदा० (1) दधिँ
अनुनासिक पक्ष।

(2) दधि
अनुनासिक अभाव पक्ष।

(3) मधुँ
अनुनासिक।

(4) मधु
अनुनासिक अभाव।

(5) कुमारीँ
अनुनासिक पक्ष।

(6) कुमारी
अनुनासिक अभाव।

अण०—अण् को अनुनासिक होता है। यथा—

कर्तृ, हर्तृ–अवसान में ऋकार है। जो अण् वर्ण नहीं है। अतः अनुनासिक नहीं हुआ।

अप्रगृ०—अप्रगृह्य अण् को अनुनासिक होता है। यथा—

अग्नी। वायू—'ईदूदेद् द्विवचनं०' से प्रगृह्यसंज्ञा है। अतः अवसान में वर्त्तमान होने पर भी अनुनासिक नहीं होता है।

(3972) अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः *58*

(124)

अनुस्वारस्य ययि परतः परसवर्ण आदेशो भवति। शङ्किता, शङ्कितुम्, शङ्कितव्यम्। उञ्छिता, उञ्छितुम्, उञ्छितव्यम्। कुण्डिता, कुण्डितुम्, कुण्डितव्यम्। नन्दिता, नन्दितुम्, नन्दितव्यम्। कम्पिता, कम्पितुम्, कम्पितव्यम्। इह 'कुर्वन्ति, वृषन्ति'–इत्यत्र णत्वस्यासिद्धत्वात्पूर्वं नकारस्यानुस्वारः क्रियते, तस्यापि परसवर्णेन पुनर्नकार एव भवति, तस्याप्यसिद्धत्वात् पुनर्णत्वं न भवति। एवमनुस्वारीभूतो णत्वमतिक्रामतीति। ययीति किम्? आचिक्रंस्यते।

अर्थ—यय् वर्ण परे रहते अनुस्वार के स्थान पर परसवर्ण आदेश होता है।

उदा० (1) शङ्किता
शकि → शन् क्—इदितो नुम् धातोः,
शंक्—नश्चाऽपदान्त०, परसवर्ण,
शङ्क् तृ—इट्,
शङ्क् इ तृ—सु।

(2) शङ्कितुम्
शङ्क्—पूर्ववत्,
शङ्क् इ तुम्—'सु' होकर रूप बनता है।

(3) शङ्कितव्यम्
शङ्क् इ तव्य सु—पूर्ववत्।

(4) उञ्छिता
उछि → उन् छ्—इदितो नुम् धातोः,
उञ्छ्—नश्चाऽपदा० अनुस्वारस्य०,
उञ्छ् तृच्—इट्,
उञ्छ् इ तृ—सु।

(5) उञ्छितुम्
उञ्छ्—पूर्ववत्,
उञ्छ् इट् तुमुन्—सु।

(6) उञ्छितव्यम्
उञ्छ्—पूर्ववत्,
उञ्छ् इट् तव्यत्—सु।

(7) कुण्डिता
कुडि → कु न् ड्—इदितो नुम्०,
कुण्ड्—अनुस्वार, परसवर्ण,
कुण्ड् तृच्—इट्,
कुण्ड् इ तृ—सु।

(8) कुण्डितुम्
कुण्ड्—पूर्ववत् तुमुन् प्रत्यय, अनुबन्ध लोप, इट् तथा सु।

(9) कुण्डितव्यम्
कुण्ड्—पूर्ववत्,
कुण्ड् इट् तव्यत्—सु।

(10) नन्दिता
टुनदि → नन् द्—आदिर्ञिटुडवः, उपदेशेऽज०, इदितो नुम्०,
नन्द्—अनुस्वार, परसवर्ण,
नन्द् तृ—इट्,
नन्द् इ तृ—सु।

(11) नन्दितुम्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नन्द्—पूर्ववत्,
नन्द् इट् तुमुन्—सु।

(12) नन्दितव्यम्
नन्द्—पूर्ववत्,
नन्द् इ तव्यत्—सु।

(13) कम्पिता
कपि → क न् प्—इदितो नुम् धातोः,
कम्प्—नश्चाऽपदा०, अनुस्वारस्य०,
कम्प् इट् तृच्—सु।

(14) कम्पितुम्
कम्प्—पूर्ववत्,
कम्प् इट् तुमुन्—सु।

(15) कम्पितव्यम्
कम्प्—पूर्ववत्,
कम्प् इट् तव्यत्—सु।

इह०—निम्नलिखित स्थलों पर णत्व के असिद्ध होने से पूर्व नकार को अनुस्वार किया जाता है, उसका पुनः परसवर्ण नकार ही होता है। उसके पुनः असिद्ध होने से णकार नहीं होता है। इस प्रकार अनुस्वारभूत णत्व का अतिक्रमण करता है।

(16) कुर्वन्ति
कृ झि—लट्, झोऽन्तः,
कृ उ अन्ति—तनादिकृञ्भ्य उः, गुण, अत उत् सार्व०,
कुर् उ अन्ति—यण्, नश्चाऽपदान्तस्य० से अनुस्वार, पुनः अनुस्वार को परसवर्ण,
कुर्वन्ति—णकार नहीं हुआ।

(17) वृषन्ति
वृष् अ अन्ति—पूर्ववत् अनुस्वार, परसवर्ण।

यथी०—यय् वर्ण परे रहते अनुस्वार को परसवर्ण होता है।

(18) आक्रंस्यते
आ क्रम् त—आङ उद्गमने, लृट् शेषे च, स्यतासी०,
आ क्रम् स्य त—नश्चाऽपदा०,
आक्रंस्यत—अनुस्वार से पर सकार है जो 'यय्' नहीं है। अतः परसवर्ण नहीं हुआ, एत्व।

(19) आचिक्रंसते
आ क्रम्—'आङ उद्गमने' से आत्मनेपद,
आ क्रम् सन्—'सन्यङोः' से द्वित्व,
आ क क्रम् स—हलादिः शेषः,
आ चि क्रम् स—कुहोश्चुः, सन्यतः,
आचिक्रंस—नश्चाऽपदान्त०, अनुस्वार से पर यय् न होने से परसवर्ण नहीं हुआ, धातुसंज्ञा,
आचिक्रंसते—पूर्ववत् सनः, शप्।

(3973) वा पदान्तस्य *59* (125)

पदान्तस्यानुस्वारस्य ययि परतो वा परसवर्णादेशो भवति। तङ्कथञ्चित्रपक्षण्डयमानन्नभःस्थम्पुरुषोऽवधीत्, तं कथं चित्रपक्षं डयमानं नभःस्थं पुरुषोऽवधीत्।

अर्थ—यय् वर्ण परे रहते पदान्त में अनुस्वार को विकल्प से परसवर्ण होता है।

उदा० (1) तङ्कथञ्चित्रदपक्षण्डयमानन्नभःस्थम्पुरुषोऽवधीत्
तम् कथम् चित्रपक्षम् डयमानम् नभस्थम्—सर्वत्र पदान्त में मकार है, 'मोऽनुस्वारः' से सर्वत्र अनुस्वार,
तं कथं चित्रपक्षं डयमानं नभस्थं—'वा पदान्तस्य' से सर्वत्र परसवर्ण,
तङ्कथञ्चित्रपक्षण्डयमान्नभस्थम्पुरुषः।

(2) तं कथं चित्रपक्षं डयमानं नभस्थं पुरुषः
पक्ष में परसवर्ण नहीं हुआ।

(3974) तोर्लि *60* (117)

तवर्गस्य लकारे परतः परसवर्णादेशो भवति। अग्निचिल्लुनाति। सोमसुल्लुनाति। भवाँल्लुनाति। महाँल्लुनाति।

अर्थ—लकार परे रहते तवर्ग के स्थान पर परसवर्ण आदेश होता है।

उदा० (1) अग्निचिल्लुनाति
अग्निचित् लुनाति—परसवर्ण लकार।

(2) सोमसुल्लुनाति (पूर्ववत्)।

(3) भवाल्ँ लुनाति
भवान् लुनाति—नकार के स्थान पर 'ल्ँ' परसवर्ण होता है।

(4) महाल्ँ लुनाति
महान् लुनाति—पूर्ववत्।

(3975) उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य *61* (118)

'सवर्णः' इति वर्तते। उद उत्तरयोः स्था, स्तम्भ-इत्ये-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तयोः पूर्वसवर्णादेशो भवति। उत्थाता उत्थातुम्, उत्थातव्यम्। स्तम्भेः खल्वपि-उत्तम्भिता, उत्तम्भितुम्, उत्तम्भितव्यम्। स्थास्तम्भोरिति किम्? उत्स्नाता।* उत्पूर्वस्य स्कन्देश्छन्दस्युपसंख्यानम्*। अग्ने दूरमुत्कन्दः। *रोगे चेति वक्तव्यम्*। उत्कन्दको नाम रोगः। कन्दतेर्वा धात्वन्तरस्यैतद्रूपम्।

अर्थ—'सवर्णः' का अनुवर्त्तन है। उद् से उत्तर स्था तथा स्तम्भ्—इनके परे रहते पूर्वसवर्ण आदेश होता है।

उदा० (1) उत्थाता
उद् स्था तृ—आदेः परस्य,
उद् थ् थातृ—खरि च,
उद् त् थातृ—खरि च,
उत् त् थातृ—'अनचि च' से पूर्व तकार को द्वित्व,
उत् त् त् थातृ—'झरो झरि सवर्णे' से लोप,
उत् त् थातृ—सु।

(2) उत्त्थाता
उत् त् त् थातृ—पूर्ववत्,
उत् त्थातृ सु—झरो झरि० से लोप अभाव पक्ष में।

(3) उत्थाता
उत् त् थातृ—इस दशा में,
उत्थातृ—'अनचि च' से द्वित्व अभाव पक्ष में 'झरो झरि०' से लोप,
उत्थातृ—सु।

(4) उत्थातुम्
'तुमुन्' में पूर्ववत्।

(5) उत्थातव्यम्
'तव्यत्' में पूर्ववत्।

(6) उत्तम्भिता
उद् स्तम्भ् तृ—पूर्ववत् थकार, चर्त्व,
उत् त् तम्भ् तृ—'झरो झरि०' से लोप,
उत्तम्भ् इ तृ—सु।

(7) उत्तम्भितुम्
'तुमुन्' में पूर्ववत् पूर्वसवर्ण।

(8) उत्तम्भितव्यम्
'तव्यत्' में।

स्था०—स्था तथा स्तम्भ् को पूर्वसवर्ण होता है।

(9) उत्स्नाता
उद् स्ना तृ—पूर्वसवर्ण नहीं हुआ, खरि च,
उत् स्ना तृ—सु।

उत्पू०—वेद के विषय में उद् पूर्वक स्कन्द् धातु को पूर्वसवर्ण होता है।

(10) उत्कन्द
उद् स्कन्द् सिप्—लोट्,
उद् स्कन्द् अ हि—सेर्ह्यपिच्च,
उद् स्कन्द—अतोः हेः,
उत् कन्द—पूर्वसवर्ण।

रोगे०—रोग अर्थ में स्कन्द् धातु को पूर्वसवर्ण होता है।

(11) उत्कन्दको रोगः
कन्दते०—'कन्द्' धातु से भी यह सिद्ध होता है।

(3976) झयो होऽन्यतरस्याम् *62* (119)

झय उत्तरस्य हकारस्य पूर्वसवर्णादेशो भवति अन्यतरस्याम्। वाग्घसति, वाग् हसति। श्वलिड् ढसति, श्वलिड् हसति। अग्निचिद्धसति, अग्निचिद् हसति। सोमसुद्धसति। सोमसुद् हसति। त्रिष्टुब्भसति, त्रिष्टुब् हसति। झय इति किम्? प्राङ् हसति। भवान्हसति।

अर्थ—झय् वर्ण से उत्तर हकार के स्थान पर पूर्वसवर्ण विकल्प से होता है।

उदा० (1) वाग्घसति
वाच् हसति—चोः कुः,
वाक् हसति—पूर्वसवर्ण घकार,
वाक् घसति—झलां जश् झशि।

(2) वाग् हसति
पूर्वसवर्ण अभाव पक्ष। जश्त्व।

(3) श्वलिड् ढसति
श्वलिड् हसति—पूर्वसवर्ण, ढकार,
श्वलिड् ढसति—जश्त्व।

(4) श्वलिड् हसति
पूर्वसवर्ण अभाव।

(5) अग्निचिद् धसति
अग्निचित् हसति—पूर्वसवर्ण धकार,
अग्निचिद् धसति—जश्त्व।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(6) अग्निचिद् हसति
पूर्वसवर्ण अभाव।

(7) सोमसुद् धसति
सोमसुत् हसति—पूर्वसवर्ण, जश्त्व।

(8) सोमसुद् हसति
पूर्वसवर्ण अभाव।

(9) त्रिष्टुब् भसति
त्रिष्टुप् हसति—पूर्वसवर्ण।

(10) त्रिष्टुब् हसति
पूर्वसवर्ण अभाव।

झय०—झय् वर्ण से उत्तर हकार को पूर्वसवर्ण होता है।

(11) प्राङ् हसति
हकार ङकार से उत्तर है, जो झय् वर्ण नहीं है। पूर्वसवर्ण नहीं हुआ।

(12) भवान् हसति (पूर्ववत्)।

(3977) शश्छोऽटि *63* (120)

'झयः' इति वर्त्तते, 'अन्यतरस्याम्' इति च। झय उत्तरस्य शकारस्य अटि परतश्छकारादेशो भवति अन्यतरस्याम्। वाक्छेते, वाक् शेते। अग्निचिच्छेते, अग्निचित् शेते। सोमसुच्छेते, सोमसुत् शेते। श्वलिट्छेते श्वलिट् शेते। त्रिष्टुप्छेते, त्रिष्टुप् शेते। *छत्वममीति वक्तव्यम्*। किं प्रयोजनम्? तच्छ्लोकेन, तच्छ्मश्रुणा-इत्येवमर्थम्।

अर्थ—झयः, अन्यतरस्याम्—इनका अनुवर्त्तन है। झय् वर्ण से उत्तर शकार के स्थान पर छकार आदेश विकल्प से होता है, अट् परे रहते।

उदा० (1) वाक् छेते
वाच् शेते—चोः कुः,
वाक् छेते—झय् वर्ण (ककार) से उत्तर शकार को छकार हुआ, अट् वर्ण (एकार) के परे रहते।

(2) वाक् शेते
पक्ष में छकार नहीं हुआ।

(3) अग्निचिच्छेते
अग्निचित् शेते—झय् (तकार) से पर शकार है, अट् (एकार) परे है, शकार को छकार,
अग्निचित् छेते—स्तोः श्चुना श्चुः,
अग्निचिच् छेते—रूप बना।

(4) अग्निचित् शेते
पक्ष में छकार नहीं हुआ।

(5) सोमसुच् छेते
छकार, श्चुत्व।

(6) सोमसुत् शेते
छकार अभाव।

(7) श्वलिट् छेते
श्वलिट् शेते—झय् वर्ण (टकार) से उत्तर शकार को छकार हुआ, अट् वर्ण (एकार) परे रहते।

(8) श्वलिट् शेते
पक्ष में छत्व अभाव।

(9) त्रिष्टुप् छेते
त्रिष्टुप् शेते—झय् (यकार) से उत्तर शकार है, इससे पर अट् वर्ण (एकार) है, छकार हुआ।

(10) त्रिष्टुप् शेते
पक्ष में छत्व अभाव।

छत्वम०—अम् परे रहते छकार होता है। इसका क्या प्रयोजन है?

(समा०) निम्नलिखित में भी छत्व होता है—

(11) तच्छ्लोकेन
तत् श्लोकेन—झय् वर्ण (तकार) से उत्तर शकार है, शकार से पर लकार है, जो अट् वर्ण नहीं है, छत्व प्राप्त नहीं हुआ, प्रकृत वार्त्तिक से छत्व हुआ। श्चुत्व।

(12) तच्छ्मश्रुणा
तत् श्मश्रुणा—पूर्ववत् शकार को छकार,
तत् छ्मश्रुणा—श्चुत्व।

(3978) हलो यमां यमि लोपः *64* (60)

'अन्तरस्याम्' इति वर्तते। हल उत्तरेषां यमां यमि परतो लोपो भवति अन्यतरस्याम्। शय्या इत्यत्र द्वौ यकारौ, क्रमजस्तृतीयः; तत्र मध्यमस्य वा लोपो भवति-शय्या, शय्या। अदितेरपत्यमादित्य इत्यत्र तकारात्पर एको यकारः, 'यणो मय' इति क्रमजो द्वितीयः, तत्र मध्यमस्य वा लोपो भवति। आदित्यः, आदित्यः। आदित्यो देवता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अस्य स्थालीपाकस्येति आदित्य्यः, आदित्य इति। अत्रापि द्वौ यकारौ; क्रमजस्तृतीयः; तत्र मध्यमस्य मध्यमयोर्वा लोपो भवति। हल इति किम्? आत्रम्। यमामिति किम्? अग्निः। अर्घ्यम्। यमीति किम्? शार्ङ्गम्।

अर्थ—'अन्यतरस्याम्' का अनुवर्त्तन है। हल् वर्ण से उत्तर यम् वर्ण का लोप विकल्प से होता है, यम् वर्ण परे रहते।

'शय्य्या' शब्द में दो यकार हैं, तृतीय क्रमज यकार है। यहाँ मध्यम यकार का पाक्षिक लोप होता है।

उदा० (1) शय्य्या

शी क्यप्—सञ्ज्ञायां समजः, लशक्वत०, हलन्त्यम्,

शयङ् य—अयङ् यि०,

शय् य—अनुबन्धलोप,

शय् य् य—'अनचि च' से यकार को द्वित्व,

शय्य् य टाप् सु—अनुबन्धलोप।

(2) शय्या

शय् य् य—इस दशा में 'हलो यमां यमि लोपः' से मध्यम यकार का लोप।

अदिते०—'आदित्य' में तकार से पर एक यकार है, 'यणो मयः०' से क्रमज द्वितीय यकार हुआ। (प्रकृत सूत्र से) मध्यम का पाक्षिक लोप हुआ।

(3) आदित्य:

अदितेरपत्यम्—'दित्यदित्यादि०' से 'ण्य',

अदिति ण्य—चुटू,

आदित् य—आदिवृद्धि, इकारलोप,

आदित् य्य—'यणो मयः०' से यकार को द्वित्व,

आदित् य सु—प्रकृत सूत्र से लोप।

(4) आदित्य्य:

लोप अभाव पक्ष।

अत्रापि०—यहाँ भी दो यकार हैं। मध्यम का अथवा मध्यम दो यकारों का लोप होता है।

हल० हल् से पर यम् का लोप होता है।

(5) आत्रम्

'अत्राण्णः' से निपातन,

आत्र—यम् (नकार) से पर यम् (नकार) है, परन्तु प्रथम यम् हल् से उत्तर नहीं है। अतः लोप नहीं हुआ,

आत्र—सु।

यमा०—हल् से उत्तर यम् वर्ण का लोप होता है।

(6) अग्नि:

गकार से परे यम् (नकार) है, परन्तु गकार यम् नहीं है। अतः गकार का लोप नहीं होता है।

(7) अर्घ्यम्

'पादार्घाभ्यां च' से तादर्थ्य में 'यत्' हुआ है। हल् वर्ण (रेफ) से उत्तर घकार है, इससे उत्तर यम् (यकार) है; परन्तु घकार यम् नहीं है। अतः इसका लोप नहीं होता है।

यमीति०—हल् से उत्तर यम् का लोप होता है, यम् परे रहते।

(8) शार्ङ्गम्

शृङ्गस्य विकारः—'अण्' होता है।

शार् ङ् ग्म्—हल् वर्ण (रेफ) से उत्तर यम् (ङकार) है, उससे परे गकार है, जो यम् नहीं है। अतः ङकार का लोप नहीं होता है।

(3979) झरो झरि सवर्णे *65* (71)

'हलः' इति वर्तते, 'अन्यतरस्याम्' इति च। हल उत्तरस्य झरो झरि सवर्णे परतो लोपो भवति अन्यतरस्याम्। प्रत्तम्, अवत्तमित्यत्र त्रयस्तकाराः, क्रमजश्चतुर्थः; तत्र मध्यमस्य मध्यमयोर्वा लोपो भवति। मरुत्त इत्यत्र चत्वारस्तकाराः, क्रमजः पञ्चमः; तत्र मध्यमस्य मध्यमयोर्मध्यमानां वा लोपो भवति। मरुच्छब्दस्य हि उपसंख्यानसामर्थ्याद् 'अच उपसर्गात्तः' (7.4.47) इति तत्वं भवति। झर इति किम्? शार्ङ्गम्। झरीति किम्? प्रियपञ्चा। अल्लोपस्य च 'पूर्वत्रासिद्धे न स्थानिवत्' (पु०वृ० 112) इति स्थानिवद्भावप्रतिषेधादत्र चकारस्य अकारे लोपः स्यात्। सवर्ण इति किम्? तर्प्ता, तर्प्तुम्, तर्प्तव्यम्। सवर्णग्रहणसामर्थ्यादिह सङ्घातानुदेशो न भवति, सवर्णमात्रे लोपो विज्ञायते। तेन शिण्ढि, पिण्ढि इति ढकारे डकारस्य लोपो भवति।

अर्थ—हलः, अन्यतरस्याम्—इनका अनुवर्त्तन है। हल् वर्ण से उत्तर झर् वर्ण का लोप विकल्प से होता है, झर् सवर्ण परे रहते।

प्रत्तम्, अवत्तम्—इनमें तीन तकार हैं। क्रमज चतुर्थ तकार है। तब मध्यम तकार का अथवा मध्यम दो तकारों का लोप होता है।

'मरुत्तः' यहाँ चार तकार हैं। क्रमज पञ्चम तकार है। यहाँ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मध्यम तकार का अथवा दो मध्यम तकारों का अथवा मध्यम तकारों का लोप होता है। मरुत् शब्द को उपसंख्यानसामर्थ्य से 'अच उपसर्गात्तः' से तत्व होता है।

झर०—झर् वर्ण का लोप होता है।

उदा० (1) शार्ङ्गम्

हल् वर्ण (रेफ) से उत्तर डकार है, जो झर् नहीं है। अतः झर् वर्ण गकार के परे रहते डकार का लोप नहीं हुआ।

झरीति०—झर् परे रहते झर् वर्ण का लोप होता है।

(2) प्रियपञ्चा

प्रियः पञ्चाऽस्य—'अल्लोपोऽनः' से अकारलोप,

प्रियपञ्चन्—स्तोः श्चुना श्चुः,

प्रियपञ्च् ञ् टा—तृतीया एकवचन, चुटू, यहाँ हल् (ञकार) से पर झर् (चकार) का लोप नहीं होता है, कारण कि चकार से पर ञकार है, जो झर् वर्ण नहीं है।

अल्लोप०—'पूर्वत्राऽसिद्ध के विषय में स्थानिवत्' नहीं होता है। इससे अकारलोप के स्थानिवद्भाव का निषेध होने से यहाँ ञकार परे रहते चकार का लोप होता है।

सवर्ण०—सवर्ण झर् के परे रहते झर् का लोप होता है।

(3) तर्प्ता

तर् प् ता—हल् (रेफ) से उत्तर झर् (पकार) है, इससे पर झर् (तकार) है परन्तु यकार तथा तकार सवर्ण नहीं है। अतः झर् (यकार) का लोप नहीं हुआ।

(4) तर्प्तुम्

पूर्ववत् यकार का लोप नहीं हुआ।

(5) तर्प्तव्यम् (पूर्ववत्)।

सवर्ण०—सवर्णग्रहणसामर्थ्य से यहाँ यथासंख्य नियम प्रवृत्त नहीं होता है। सवर्णमात्र के परे रहते लोप जानना चाहिए। तब निम्नलिखित में ढकार के परे रहते डकार का लोप होता है।

(6) शिण्ढि

शिष् सिप्—लोट्, हलन्त्यम्,

शि श्नम् ष् सि—'शप्' को बाध कर 'श्नम्', लशक्वतद्धिते,

शि न ष् हि—सेर्ह्यपिच्च,

शि न् ष् हि—श्नसोरल्लोपः,

शि न् ष् धि—हुझल्भ्यो हेर्धिः,

शि न् ड् धि—'झलां जश् झशि' से डकार,

शिण्ड् धि—'अनुस्वारस्य ययि०' से परसवर्ण,

शिण्ड् ढि—'ष्टुना ष्टुः' से ढकार,

शिण्ढि—प्रकृत सूत्र से डकार का लोप।

(7) पिण्ढि

पिष् सिप्—सभी कार्य पूर्ववत्।

(3980) उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः *66* (3660)

उदात्तादुत्तरस्यानुदात्तस्य स्वरितादेशो भवति। गार्ग्यः। वात्स्यः। पचंति। पठंति। अस्य स्वरितस्यासिद्धत्वाद् 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' (6.1.158) इत्येतन्न प्रवर्त्तते। तेनोदात्तस्वरितावुभावपि श्रूयेते।

अर्थ—उदात्त से उत्तर अनुदात्त को स्वरित आदेश होता है।

उदा० (1) गार्ग्यः

गर्ग यञ्—गर्गादिभ्यो यञ्,

गार्ग् य—तद्धितेष्वचामादेः, अकारलोप,

गार्ग्य—'ञ्नित्यादे०' से आदि उदात्त, 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' से शेष अनुदात्त, उसे स्वरित,

गार्ग्यः—सु।

(2) वात्स्यः

वत्स यञ्—पूर्ववत्।

(3) पचंति

पच् तिप्—लट्,

पच् शप् तिप्—कर्त्तरि शप्, अनुबन्धलोप,

पचंति—पच् में अकार धातुस्वर से उदात्त है, 'शप्' का अकार तथा 'तिप्' का इकार 'अनुदात्तौ सुप् पितौ' से अनुदात्त है, चकारोत्तरवर्त्ती अकार स्वरित हुआ।

(4) पठंति (पूर्ववत्)।

अस्य०—इस स्वरित के असिद्ध होने से 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्' यह प्रवृत्त नहीं होता है। तब उदात्त व स्वरित दोनों का श्रवण होता है।

(3981) नोदात्तस्वरितोदयमगार्ग्यकाश्यप-गालवानाम् *67* (3661)

उदात्तोदयस्य स्वरितोदयस्य चानुदात्तस्य स्वरितो न भवति। पूर्वेण प्राप्तः प्रतिषिध्यते, अगार्ग्यकाश्यप-गालवानां मतेन। उदात्त उदयो यस्मात्स उदात्तोदयः। उदात्तपर इत्यर्थः। एवं स्वरितोदयः। उदात्तोदयस्तावत्-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गार्ग्यस्तत्रं । वात्स्यस्तत्रं । तत्रशब्द आद्युदात्तः, तस्मिन्नुदात्ते परतो गार्ग्यशब्दः स्वरितो न भवति । स्वरितोदयः–गार्ग्यः क्वं । वात्स्यः क्वं । क्वशब्दः स्वरितः, तस्मिन्परतोऽनुदात्तः स्वरितो न भवति । अगार्ग्यकाश्यपगालवानामिति किम् ? गार्ग्यस्तत्रं । गार्ग्यः क्वं । तेषां हि मतेन स्वरितो भवत्येव । 'उदात्तस्वरितपरस्य' इति वक्तव्ये उदयग्रहणं मङ्गलार्थम् । अनेकाचार्यसङ्कीर्तनं पूजार्थम् ।

अर्थ—उदात्तोदय का तथा स्वरितोदय का अनुदात्त का स्वरित नहीं होता है । पूर्व सूत्र के द्वारा प्राप्त (स्वरित स्वर) का निषेध किया जा रहा है । गार्ग्य, काश्यप तथा गालव के मत में नहीं होता है ।

उदात्त उदयो यस्मात्—उदात्तोदयः । इसी प्रकार—स्वरितोदय ।

उदा० (1) गार्ग्यस्तत्रं

'तत्र' शब्द त्रल् प्रत्ययान्त है ।

(2) वात्स्यस्तत्रं (पूर्ववत्) ।

तत्र०—'तत्र' शब्द आद्युदात्त है । इस उदात्त के परे रहते 'गार्ग्य' शब्द को स्वरित नहीं होता है ।

(3) गार्ग्यः क्वं ।

(4) वात्स्यः क्वं ।

क्व०—क्व शब्द स्वरित होता है । इसके परे रहते अनुदात्त को स्वरित नहीं होता है ।

अगार्ग्य०—गार्ग्य, गालव तथा काश्यप के मत में यह निषेध नहीं होता है । गार्ग्यस्तत्र । गार्ग्यः क्व । इनके मत में स्वरित होता ही है । 'उदात्तस्वरितपरस्य' यह कहना चाहिए था । 'उदय' शब्द का ग्रहण मंगलार्थ है । अनेक आचार्यों के नाम का उल्लेख सत्कार के लिए है ।

(3982) अ अ इति *68* (11)

एकोऽत्र विवृतः, अपरः संवृतः, तत्र विवृतस्य संवृतः क्रियते । अकारो विवृतः संवृतो भवति । वृक्षः । प्लक्षः । इह शास्त्रे कार्यार्थमकारो विवृतः प्रतिज्ञातः, तस्य तथाभूतस्यैव प्रयोगो मा भूदिति संवृतप्रत्यापत्तिरियं क्रियते । दीर्घप्लुतयोश्चानेन विवृतेनाकारेण ग्रहणं नेष्यते । तेन तयोः संवृतो न भवति । संवृतेन च सर्वगुणस्य मात्रिकस्य ग्रहणमिष्यते । तेन सर्वगुण प्रत्यापद्यते ।

इष्ट्युपसंख्यानवती शुद्धगणा विवृतगूढसूत्रार्था ।
व्युत्पन्नरूपसिद्धिर्वृत्तिरियं काशिका नाम ॥

इति श्रीवामनविरचितायां काशिकायां वृत्तावष्टमाध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥
॥ समाप्तश्चायमध्यायो ग्रन्थश्च ॥

अर्थ—एक अकार यहाँ विवृत है, दूसरा संवृत । यहाँ विवृत (अकार) के स्थान पर संवृत किया जाता है । विवृत अकार संवृत होता है ।

उदा० (1) वृक्षः (2) प्लक्षः ।

इस शास्त्र में कार्य के लिए अकार विवृत रूप में उपदिष्ट है । उसका उस रूप में प्रयोग न हो—इसलिए संवृत की प्रत्यापत्ति की जाती है ।

इस विवृत अकार के द्वारा दीर्घ तथा प्लुत का ग्रहण नहीं होता । अतः उनको संवृत्त नहीं होता है ।

संवृत्त के द्वारा सर्वगुणमात्रिक का ग्रहण होता है । तब सर्वगुण की प्रत्यापत्ति की जाती है ।

शून्यं (0) शास्त्रवियन्नेत्रप्रमितेऽब्दे (6 0 2) तु वैक्रमे ।
माघे शुक्ले तृतीयायां व्याख्येयं पूर्णतामगात् ॥
अध्येतॄणां तु तोषाय मोदाय शेमुषीजुषाम् ।
स्वान्तःसुखाय मेऽस्त्विति हार्दोऽयं मे मनोरथः ॥

इति हरियाणाप्रदेशीयभिवानीमण्डलान्तर्गतभिवानीनाम्नि लघुकाशीत्याऽऽख्यया विख्याते दिव्यधाम्नि नगरे राजकीयस्नातकोत्तरमहाविद्यालयीयसंस्कृतविभागाऽध्यक्ष-पण्डितेश्वरचन्द्रविरचितायामष्टाध्यायीव्याख्याभूतकाशिकावृत्तेः सोमलेखाऽऽख्यहिन्दीटीकायामष्टमाध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥

॥ समाप्तश्चायमष्टमोऽध्यायः ॥

॥ समाप्तश्चाऽयं ग्रन्थस्तद्धिन्दीव्याख्याऽपि पूर्णतामगाच्छ्रीविश्वनाथप्रसादतः ॥

॥ इति शम् ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(क) काशिकास्थसूत्राणामकाराद्यनुक्रमेणाऽनुक्रमणी

(अत्र वामतः अध्यायपादसूत्रसंख्या निर्दिष्टाऽस्ति)

अ		अङ्गानि मैरेये	6.2.70	अजिनान्तस्योत्तर	5.3.82	अतः कृकमि०	8.3.46
अंशंहारी	5.2.69	अङ्गात्प्रातिलोम्ये	8.1.33	अजिन्रज्योश्च	7.3.60	अतश्च	4.1.177
अ अ	8.4.68	अङ्गुलेर्दारुणि	5.4.114	अजेर्व्यघञपोः	2.4.53	अतिग्रहाव्यथन०	5.4.46
अकः सवर्णे दीर्घः	6.1.101	अङ्गुल्यादि०	5.3.108	अज्झनगमां सनि	6.4.16	अतिथेर्ञ्यः	5.4.26
अकथितं च	1.4.51	अच	4.3.31	अज्ञाते	5.3.73	अतिरतिक्रमणे च	1.4.95
अकर्तरि च०	3.3.19	अच उपसर्गात्तः	7.4.47	अञ्चेः पूजायाम्	7.2.53	अतिशायने	5.3.55
अकर्तर्यृणे पञ्चमी	2.3.24	अचः	6.4.138	अञ्चेर्लुक्	5.3.30	अतेः शुनः	5.4.96
अकर्मकाच्च	1.3.26	अचः कर्तृयकि	6.1.195	अञ्चेश्छन्दस्य०	6.1.170	अतेरकृत्पदे	6.2.191
अकर्मकाच्च	1.3.35	अचः कर्मकर्तरि	3.1.62	अञ्चोऽनपादाने	8.2.48	अतो गुणे	6.1.97
अकर्मकाच्च	1.3.45	अचः परस्मिन्०	1.1.57	अञ्जेः सिचि	7.2.71	अतो दीर्घो यञि	7.3.101
अकर्मधारये	6.2.130	अचतुरविचतुर०	5.4.77	अञ्नासिकायाः	5.4.118	अतो भिस ऐस्	7.1.9
अकृच्छ्रे प्रियसुख०	8.1.13	अचश्च	1.2.28	अट्कुप्वाङ्०	8.4.2	अतोऽम्	7.1.24
अकृत्सार्वधातु०	7.4.25	अचस्तास्वत्थल्य	7.2.61	अडभ्यासव्यवाये	6.1.136	अतो येयः	7.2.80
अके जीविकार्थे	6.2.73	अचित्तहस्तिधेनो०	4.2.47	अड् गार्ग्य०	7.3.99	अतो रोरप्लुताद०	6.1.113
अकेनोर्भविष्य०	2.3.70	अचित्तादेदेश०	4.3.96	अणञौ च	4.3.33	अतो र्लान्तस्य	7.2.2
अक्षशलाका०	2.1.10	अचिर ऋतः	7.2.102	अणावकर्म०	1.3.88	अतो लोपः	6.4.48
अक्षेषु ग्लहः	3.3.70	अचि विभाषा	8.2.21	अणिञोरनार्ष०	4.1.78	अतो हलादेर्लघोः	7.2.7
अक्षोऽन्यतरस्याम्	3.1.75	अचि शीर्षः	6.1.62	अणि नियुक्ते	6.2.75	अतो हेः	6.4.105
अक्ष्णोऽदर्शनात्	5.4.76	अचि श्नुधातु०	6.4.77	अणिनुणः	5.4.15	अत्यन्तसंयोगे च	2.1.29
अगारान्ताट्ठन्	4.4.70	अचो ञ्णिति	7.2.115	अणुदित्सवर्णस्य०	1.1.69	अत्र लोपोऽभ्यास०	7.4.58
अगारैकदेशे	3.3.79	अचोऽन्त्यादि टि	1.1.64	अणृगयनादिभ्यः	4.3.73	अत्रानुनासिकः	8.3.2
अग्नीत्प्रेषणे	8.2.92	अचो यत्	3.1.97	अणो द्व्यचः	4.1.156	अत्रिभृगुकुत्स०	2.4.65
अग्नेः स्तुत्स्तोम	8.3.82	अचो रहाभ्यां द्वे	8.4.46	अणोऽप्रगृह्य०	8.4.57	अत्वसन्तस्य	6.4.14
अग्नेर्ढक्	4.2.33	अच्कावशक्तौ	6.2.157	अण्कर्मणि च	3.3.12	अत्सृदृत्वरप्रथ०	7.4.95
अग्नौ चेः	3.2.91	अच्च घेः	7.3.119	अण्कुटिलिकायाः	4.4.18	अदः सर्वेषाम्	7.3.100
अग्नौ परि०	3.1.131	अच्छ गत्यर्थवदेषु	1.4.69	अण्च	5.2.103	अदभ्यस्तात्	7.1.4
अग्राख्यायामुरसः	5.4.93	अच्छत्यन्वव०	5.4.75	अण्महिष्यादिभ्यः	4.4.48	अदर्शनं लोपः	1.1.60
अग्राद्यत्	4.4.116	अजर्यं सङ्गतम्	3.1.105	अत आदेः	7.4.70	अदस औ सु०	7.2.107
अग्रान्तशुद्ध०	5.4.145	अजादीगुण०	5.3.58	अत इञ्	4.1.95	अदसो मात्	1.1.12
अङितश्च	6.4.104	अजादेर्द्वितीयस्य	6.1.2	अत इनिठनौ	5.2.115	अदसोऽसेर्दादु०	8.2.80
अङ्ग इत्यादौ च	6.1.119	अजाद्यतष्टाप्	4.1.4	अत उत्सार्व०	6.4.110	अदिप्रभृतिभ्यः	2.4.72
अङ्गयुक्तं तिङ्	8.2.96	अजाद्यदन्तम्	2.2.33	अत उपधायाः	7.2.116	अदूरभवश्च	4.2.70
अङ्गस्य	6.4.1	अजाविभ्यां थ्यन्	5.1.8	अत एकहल्०	6.4.120	अदेङ् गुणः	1.1.2

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अदो जग्धिर्ल्यप्ति०	2.4.36	अनन्तावसथे०	5.4.23	अनुप्रवचनादि०	5.1.111	अन्यतो ङीष्	4.1.40
अदोऽनन्ने	3.2.68	अनन्त्यस्यापि	8.2.105	अनुब्राह्मणादिनिः	4.2.62	अन्यथैवंकथमि०	3.4.27
अदोऽनुपदेशे	1.4.70	अनभिहिते	2.3.1	अनुर्यत्समया	2.1.15	अन्यपदार्थे च	2.1.21
अद्ङुतरादिभ्यः	7.1.25	अनवक्लृप्त्यमर्ष०	3.3.145	अनुर्लक्षणे	1.4.84	अन्यारादितरर्ते	2.3.29
अद्भिः संस्कृतम्	4.4.134	अनश्च	5.4.108	अनुवादे चरणानाम्	2.4.3	अन्येभ्योऽपि	3.2.178
अद्यश्वीनावष्टब्धे	5.2.13	अनसन्तान्नपुं०	5.4.103	अनुविपर्यभिनि०	8.3.72	अन्येभ्योऽपि	3.3.130
अधःशिरसी पदे	8.3.47	अनाप्यकः	7.2.112	अनुशतिकादीनां	7.3.20	अन्येभ्योऽपि	3.2.75
अधिकम्	5.2.73	अनिगन्तोऽञ्चतौ	6.2.52	अनुस्वारस्य	8.4.58	अन्येषामपि	6.3.137
अधिकरणवाचि०	2.3.68	अनितेरन्तः	8.4.19	अनृष्यानन्तर्ये	4.1.104	अन्येष्वपि	3.2.101
अधिकरणवाचि०	2.2.13	अनिदितां हल०	6.4.24	अनेकमन्यपदार्थे	2.2.24	अन्वच्यानुलोम्ये	3.4.64
अधिकरणविचाले	5.3.43	अनुकम्पायाम्	5.3.76	अनेकाल्शित्०	1.1.55	अन्ववतप्ताद्रहसः	5.4.81
अधिकरणे बन्धः	3.4.41	अनुकरणं चानिति०	1.4.62	अनो नुट्	8.2.16	अपगुरो णमुलि	6.1.53
अधिकरणे शेतेः	3.2.15	अनुकाभिका०	5.2.74	अनो बहुव्रीहेः	4.1.12	अपघनोऽङ्गम्	3.3.81
अधिकरणैतावत्त्वे	2.4.15	अनुगवमायामे	5.4.83	अनो भावकर्म०	6.2.150	अपचितश्च	7.2.30
अधिकृत्य कृते	4.3.87	अनुगादिनष्ठक्	5.4.13	अनोरकर्मकात्	1.3.49	अपत्यं पौत्र०	4.1.162
अधिपरी अनर्थकौ	1.4.93	अनुग्वलंगामी	5.2.15	अनोरप्रधान०	6.2.189	अपथं नपुंसकम्	2.4.30
अधिरीश्वरे	1.4.97	अनुदात्तं सर्वम०	8.1.18	अनोश्मायः	5.4.94	अपदातौ साल्वात्	4.2.135
अधिशीङ्स्था०	1.4.46	अनुदात्तङित०	1.3.12	अनौ कर्मणि	3.2.100	अपदान्तस्य मूर्ध०	8.3.55
अधीगर्थदयेशां	2.3.52	अनुदात्तं च	8.1.3	अन्तः	6.2.92	अपपरिबहि	2.1.12
अधीष्टे च	3.3.166	अनुदात्तं पद०	6.1.152	अन्तः	6.2.143	अपपरी वर्जने	1.4.88
अधुना	5.3.17	अनुदात्तं प्रश्ना०	8.2.101	अन्तः	6.2.179	अपमित्ययाचिता०	4.4.21
अधेः प्रसहने	1.3.33	अनुदात्तस्य च	6.1.161	अन्तः	8.4.20	अपरस्पराः	6.1.144
अधेरुपरिस्थम्	6.2.188	अनुदात्तस्य चर्दुप०	6.1.58	अन्तःपूर्वपदाट्ठञ्	4.3.60	अपरिमाणबिस्ता०	4.1.22
अध्ययनतोऽवि०	2.4.5	अनुदात्तादेरञ्	4.2.44	अन्तरं बहिर्योगो०	1.1.36	अपरिह्वृताश्च	7.2.32
अध्यर्धपूर्व०	5.1.28	अनुदात्तादेश्च	4.3.140	अन्तरदेशे	8.4.24	अपरोक्षे च	3.2.119
अध्यायन्यायो०	3.3.122	अनुदात्ते च	6.1.190	अन्तरपरिग्रहे	1.4.65	अपवर्गे तृतीया	2.3.6
अध्यायानुवाक०	5.2.60	अनुदात्ते च कु०	6.1.120	अन्तरान्तरेण युक्ते	2.3.4	अपस्करो रथ०	6.1.149
अध्यायिन्यदेश०	4.4.71	अनुदात्तेतश्च	3.2.149	अन्तर्घनो देशे	3.3.78	अपस्पृधेथामा०	6.1.36
अध्यायेष्वेवर्षेः	4.3.69	अनुदात्तोपदेश०	6.4.37	अन्तर्धौ येना०	1.4.28	अपह्नवे ज्ञः	1.3.44
अध्वनो यत्खौ	5.2.16	अनुदात्तौ सुप्पितौ	3.1.4	अन्तर्बहिर्भ्यां	5.4.117	अपाच्च	6.2.186
अध्वर्युक्रतुर०	6.2.10	अनुनासिकस्य	6.4.15	अन्तर्वत्पति०	4.1.32	अपाच्चतुष्पा०	6.1.142
अध्वर्युक्रतुर०	2.4.4	अनुनासिकात्०	8.3.4	अन्तश्च	6.2.180	अपादाने चाहीय०	5.4.45
अन्	6.4.167	अनुपदसर्वान्नाया०	5.2.9	अन्तश्च तवै	6.1.200	अपादाने पंचमी	2.3.28
अन उपधालोपि०	4.1.28	अनुपद्यन्वेष्टा	5.2.90	अन्तात्यन्ताध्व०	3.2.48	अपादाने परी०	3.4.52
अनङ् सौ	7.1.93	अनुपराभ्यां कृञः	1.3.79	अन्तादिवच्च	6.1.85	अपाद्वदः	1.3.73
अनचि च	8.4.47	अनुपसर्गाज्ञः	1.3.76	अन्तिकबाढयोर्नेद०	5.3.63	अपिः पदार्थ सं०	1.4.96
अनत्यन्तगतौ क्तात्	5.4.4	अनुपसर्गात्फुल्ल०	8.2.55	अन्तोदात्तादु०	6.1.169	अपूर्वपदादन्य०	4.1.140
अनत्याधान०	1.4.75	अनुपसर्गाद्वा	1.3.43	अन्तोवत्याः	6.1.220	अपृक्त एकाल्०	1.2.41
अनद्यतने लङ्	3.2.111	अनुपसर्गाल्लिम्प०	3.1.138	अन्त्यात्पूर्वे बह्वचः	6.2.83	अपे क्लेशतमसोः	3.2.50
अनद्यतने लुट्	3.3.15	अनुपसर्जनात्	4.1.14	अन्नाण्णः	4.4.85	अपे च लषः	3.2.144
अनद्यतनेर्हिल्०	5.3.21	अनुप्रतिगृणश्च	1.4.41	अन्नेन व्यंजनम्	2.1.34	अपेतापोढमुक्त०	2.1.38

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपोनप्त्रपांनप्तृ	4.2.27	अयङ् यि क्ङिति	7.4.22	अवपथासि च	6.1.121	अश्विमानण्	4.4.126
अपो भि	7.4.48	अयनं च	8.4.25	अवयवाद्यूतो:	7.3.11	अषडक्षाशितंग्वलं०	5.4.7
अप्तृन्तृच्स्वसृ०	6.4.11	अयस्मयादीनि	1.4.20	अवयवे च	4.3.135	अषष्ठ्यातृतीयास्थ०	6.3.99
अप्पूरणीप्रमा०	5.4.116	अयामन्ताल्वाय्ये०	6.4.55	अवयसि ठंश्च	5.1.84	अष्टन आ विभक्तौ	7.2.84
अ प्रत्ययात्	3.3.102	अरण्यान्मनुष्ये	4.2.129	अवया: श्वेतवा:	8.2.67	अष्टन: संज्ञायाम्	6.3.125
अप्लुतवदुप०	6.1.129	अरिष्टगौडपूर्वे च	6.2.100	अवसमन्धेभ्य०	5.4.79	अष्टनो दीर्घात्	6.1.172
अभाषितपुंसकाच्च	7.3.48	अरुर्द्विषदजन्तस्य	6.3.67	अवाच्चालम्बना०	8.3.68	अष्टाभ्य औश्	7.1.21
अभिजनश्च	4.3.90	अरुर्मनश्चक्षुश्चे०	5.4.51	अवात्कुटारच्च	5.2.30	असंयोगाल्लिट्	1.2.5
अभिजिद्विदभृ०	5.3.118	अर्तिपिपर्त्योश्च	7.4.77	अवाद् ग्र:	1.3.51	असंज्ञायां तिल०	4.3.149
अभिज्ञावचने	3.2.112	अर्तिलूधूसूखन०	3.2.184	अवारपारात्य०	5.2.11	असमासे निष्का०	5.1.20
अभिनिविशश्च	1.4.47	अर्तिह्रीव्लीरी०	7.3.36	अवृद्धादपि बहु०	4.2.125	अ सांप्रतिके	4.3.9
अभिनिष्क्रामति	4.3.86	अर्थवदधातुर०	1.2.45	अवृद्धाभ्यो नदी०	4.1.114	असिद्धवदत्राभात्	6.4.22
अभिनिस: स्तन:	8.3.86	अर्थे	6.2.44	अवे: क:	5.4.28	असुरस्य स्वम्	4.4.123
अभिप्रत्यतिभ्य:	1.3.80	अर्थे विभाषा	6.3.100	अवे ग्रहो वर्ष०	3.3.51	असूर्यललाटयोर्दृ०	3.2.36
अभिरभागे	1.4.92	अर्दे: संनिविभ्य:	7.2.24	अवे तॄस्त्रोर्घञ्	3.3.121	अस्तं च	1.4.68
अभिविधौ भाव	3.3.44	अर्धं नपुंसकम्	2.2.2	अवे यज:	3.2.72	अस्ताति च	5.3.40
अभिविधौ सम्पदा	5.4.53	अर्धर्चा: पुंसि च	2.4.31	अवोदैधौद्म्प्रश्रथ०	6.4.29	अस्तिनास्ति०	4.4.60
अभूततद्भावे	5.4.60	अर्धाच्च	5.4.100	अवोदोर्नियः	3.3.26	अस्तिसिचोऽपृक्ते	7.3.96
अभेर्म्मुखम्	6.2.185	अर्धात्परिमाणस्य	7.3.26	अव्यक्तानुकरण०	6.1.98	अस्तेर्भू:	2.4.52
अभेश्चाविदूर्ये	7.2.25	अर्धाद्यत्	4.3.4	अव्यक्तानुकरणाद्	5.4.57	अस्थिदधिसक्थ्य०	7.1.75
अभ्यमित्राच्छ च	5.2.17	अर्मे चावर्णे द्वयच्	6.2.90	अव्ययं विभक्ति०	2.1.6	अस्मदो द्वयोश्च	1.2.59
अभ्यस्तस्य च	6.1.33	अर्य: स्वामि०	3.1.103	अव्ययसर्वना०	5.3.71	अस्मद्युत्तम:	1.4.107
अभ्यस्तानामा०	6.1.189	अर्वणस्त्रसाव०	6.4.130	अव्ययात्यप्	4.2.104	अस्मायामेधा०	5.2.121
अभ्यासस्यासवर्णे	6.4.78	अर्शआदिभ्यो०	5.2.127	अव्ययादाप्सुप:	2.4.82	अस्य च्वौ	7.4.32
अभ्यासाच्च	7.3.55	अर्ह:	3.2.12	अव्ययीभाव:	2.1.5	अस्यतितृषो:	3.4.57
अभ्यासे चर्च	8.4.54	अर्ह: प्रशंसायाम्	3.2.133	अव्ययीभावश्च	1.1.41	अस्यतिवक्तिख्या०	3.1.52
अभ्युत्सादयांप्रज०	3.1.42	अर्हे कृत्यतृचश्च	3.3.169	अव्ययीभावश्च	2.4.18	अस्यतेस्थुक्	7.4.17
अमनुष्यकर्तृके च	3.2.53	अलंकृञ्निराकृ०	3.2.136	अव्ययीभावाच्च	4.3.59	अस्वाङ्गपूर्वपदाद्वा	4.1.53
अमहन्नवं नगरे०	6.2.89	अलंखल्वो:	3.4.18	अव्ययीभावे चा०	6.3.81	अह: सर्वैकदेश०	5.4.87
अमावस्यदन्य०	3.1.122	अलुगुत्तरपदे	6.3.1	अव्ययीभावे शर०	5.4.107	अहंशुभयोर्युस्	5.2.140
अमावास्याया वा	4.3.30	अलोऽन्त्यस्य	1.1.52	अव्ययेऽयथाभिप्रे०	3.4.59	अहन्	8.2.68
अमि पूर्व:	6.1.107	अलोऽन्त्यात्पूर्व	1.1.65	अव्यादवद्यादव०	6.1.116	अहीने द्वितीया	6.2.47
अमु च च्छन्दसि	5.4.12	अल्पाख्यायाम्	5.4.136	अशनायोदन्यध०	7.4.34	अहेतिविनियोगे च	8.1.61
अमूर्धमस्तका०	6.3.12	अल्पाच्तरम्	2.2.34	अशब्दे यत्खाव०	4.3.64	अहो च	8.1.40
अमैवाव्ययेन०	2.2.20	अल्पे	5.3.85	अशाला च	2.4.24	अह्नष्टखोरेव	6.4.145
अमो मश्	7.1.40	अल्लोपोऽन:	6.4.134	अश्नोतेश्च	7.4.72	अह्नोऽदन्तात्	8.4.7
अम्नरूधरवरित्यु०	8.2.70	अवक्रय:	4.4.50	अश्वक्षीरवृषलव०	7.1.51	अह्नोऽह्न एतेभ्य:	5.4.88
अम्बाम्बगोभू०	8.3.97	अवक्षेपणे कन्	5.3.95	अश्वपत्यादिभ्यश्च	4.1.84		
अम्बार्थनद्यो०	7.3.107	अवङ् स्फोटा०	6.1.123	अश्वस्यैकाहगम:	5.2.19	आ	
अम् संबुद्धौ	7.1.99	अवचक्षे च	3.4.15	अश्वाघस्यात्	7.4.37	आकडारादेका संज्ञा	1.4.1
अय:शूलदण्डा०	5.2.76	अवद्यपण्यवर्या	3.1.101	अश्वादिभ्य: फञ्	4.1.110	आकर्षात्फल्	4.4.9

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आकर्षादिभ्यः कन् 5.2.64
आकालिकडा० 5.1.114
आक्रन्दाट्ठञ्च 4.4.38
आक्रोशे च 6.1.158
आक्रोशे नञ्यनिः 3.3.112
आक्रोशेऽवन्योर्ग्रहः 3.3.45
आ क्वेस्तच्छील० 3.2.134
आख्यातोपयोगे 1.4.29
आगवीनः 5.2.14
आगस्त्यकौण्डि० 2.4.70
आग्रहायण्यश्व० 4.2.22
आङ उद्गमने 1.3.40
आङि चापः 7.3.105
आङि ताच्छील्ये 3.2.11
आङि युद्धे 3.3.73
आङो दोऽनास्य० 1.3.20
आङो नाऽस्त्रियाम् 7.3.120
आङोऽनुनासि० 6.1.126
आङो यमहनः 1.3.28
आङो यि 7.1.65
आङ् मर्यादाभि० 2.1.13
आङ् मर्यादावचने 1.4.89
आङ्माङोश्च 6.1.74
आ च त्वात् 5.1.120
आ च हौ 6.4.117
आचार्योपसर्जन० 6.2.104
आचार्योपसर्जन० 6.2.36
आच्छीनद्योर्नुम् 7.1.80
आज्जसेरसुक् 7.1.50
आज्ञायिनि च 6.3.5
आटश्च 6.1.90
आडजादीनाम् 6.4.72
आडुत्तमस्य पिच्च 3.4.92
आढकाचित० 5.1.53
आढ्यसुभगस्थूल० 3.2.56
आण् नद्या 7.3.112
आत ऐ 3.4.95
आत औ णलः 7.1.34
आतः 3.4.110
आतश्चोपसर्गे 3.1.136
आतश्चोपसर्गे 3.3.106
आतो ङितः 7.2.81
आतोऽटि नित्यम् 8.3.3
आतो धातोः 6.4.140
आतोऽनुपसर्गे कः 3.2.3
आतो मनिन्० 3.2.74
आतो युक् चिण् 7.3.33
आतो युच् 3.3.128
आतो लोप इटि च 6.4.64
आत्मनश्च 6.3.6
आत्मनेपदेष्वनतः 7.1.5
आत्मनेपदेष्व० 2.4.44
आत्मनेपदेष्व० 3.1.54
आत्मन्विश्वजन० 5.1.9
आत्ममाने खश्च 3.2.83
आत्माध्वानौ खे 6.4.169
आथर्वणिकस्ये 4.3.133
आदरानादरयोः 1.4.63
आदाचार्याणाम् 7.3.49
आदिः प्रत्येनसि 6.2.27
आदिः सिचो० 6.1.187
आदिकर्मणि क्त 3.4.71
आदितश्च 7.2.16
आदिरन्त्येन 1.1.71
आदिरुदात्तः 6.2.64
आदिर्ञिटुडवः 1.3.5
आदिर्णमुल्यन्य० 6.1.194
आदिश्चिहणा० 6.2.125
आद्गमहनजनः 3.2.171
आदेः परस्य 1.1.54
आदेच उपदेशे० 6.1.45
आदेशप्रत्यययोः 8.3.59
आद् गुणः 6.1.87
आद्यन्तवदेकस्मिन् 1.1.21
आद्यन्तौ टकितौ 1.1.46
आद्युदात्तं द्वयच्छ० 6.2.119
आद्युदात्तश्च 3.1.3
आधारोऽधिकरणम् 1.4.45
आनङृतो द्वन्द्वे 6.3.22
आनाय्योऽनित्ये 3.1.127
आनि लोट् 8.4.16
आने मुक् 7.2.82
आन्महतः 6.3.46
आपत्यस्य च 6.4.151
आपो जुषाणो० 6.1.118
आपोऽन्यतर० 7.1.15
आप्ज्ञप्यृधामीत् 7.4.55
आप्रपदं प्राप्नोति 5.2.8
आबाधे च 8.1.10
आभीक्ष्ण्ये णमुल्च 3.4.22
आम एकान्तर० 8.1.55
आमः 2.4.81
आमन्त्रितं पूर्वम० 8.1.72
आमन्त्रितस्य च 6.1.198
आमन्त्रितस्य च 8.1.19
आमि सर्वनाम्नः 7.1.52
आमेतः 3.4.90
आम्प्रत्ययवत्० 1.3.63
आम्रेडितं भर्त्सने 8.2.95
आयनेयीनीयियः 7.1.2
आयादय आर्ध० 3.1.31
आयुक्तकुशला० 2.3.40
आयुधजीविभ्य० 4.3.91
आयुधजीवि० 5.3.114
आयुधाच्छ च 4.4.14
आरगुदीचाम् 4.1.130
आर्धधातुकं शेषः 3.4.114
आर्धधातुकस्ये० 7.2.35
आर्धधातुके 2.4.35
आर्धधातुके 6.4.46
आर्यो ब्राह्मणकु० 6.2.58
आर्हादगोपुच्छ० 5.1.19
आलजाटचौ 5.2.125
आवट्याच्च 4.1.75
आवश्यकाधम० 3.3.170
आवसथात्ठल् 4.4.74
आशंसायां 3.3.132
आशंसावचने 3.3.134
आशङ्काबाधने० 6.2.21
आशितः कर्ता 6.1.201
आशिते भुवः 3.2.45
आशिषि च 3.1.150
आशिषि नाथः 2.3.55
आशिषि लिङ्० 3.3.173
आशिषि हनः 3.2.49
आश्चर्यमनित्ये 6.1.147
आश्वयुज्या वुञ् 4.3.45
आसन्दीवदष्ठी० 8.2.12
आ सर्वनाम्नः 6.3.91
आसुयुवपिरपि० 3.1.126
आस्पदं प्रतिष्ठा० 6.1.146
आहस्थः 8.2.35
आहि च दूरे 5.3.37
आहो उताहो 8.1.49

इ

इकः काशे 6.3.123
इकः सुञि 6.3.134
इको गुणवृद्धी 1.1.3
इकोऽचि विभक्तौ 7.1.73
इको झल् 1.2.9
इको यणचि 6.1.77
इको बहेऽपीलोः 6.3.121
इकोऽसवर्णे शाक० 6.1.127
इको ह्रस्वोऽङ्यो० 6.3.61
इगन्तकालकपाल० 6.2.29
इगन्ताच्च लघु० 5.1.131
इगुपधज्ञाप्रीकिरः 3.1.135
इग्यणः संप्रसारणम् 1.1.45
इङश्च 2.4.48
इङश्च 3.3.21
इङ्धार्योः 3.2.130
इच एकाचोऽम्प्र० 6.3.68
इच्कर्मव्यतिहारे 5.4.127
इच्छा 3.3.101
इच्छार्थेभ्यो 3.3.160
इच्छार्थेषु लिङ्० 3.3.157
इजादेश्च सनुमः 8.4.32
इजादेश्च गुरुमतो० 3.1.36
इञः प्राचाम् 2.4.60
इञश्च 4.2.111
इट ईटि 8.2.28
इटोऽत् 3.4.106
इट् सनि वा 7.2.41

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इडत्यर्तिव्ययती०	7.2.66
इडाया वा	8.3.54
इण: ष:	8.3.39
इण: षीध्वंलुङ्०	8.3.78
इणो गा लुङि	2.4.45
इणो यण्	6.4.81
इण्को:	8.3.57
इण्नशजिसर्ति०	3.2.163
इण्निष्ठायाम्	7.2.47
इतराभ्योऽपि	5.3.14
इतरेतरान्योन्यो०	1.3.16
इतश्च	3.4.100
इतश्च लोप:	3.4.97
इतश्चानिञ:	4.1.122
इतोऽत्सर्वनाम०	7.1.86
इतो मनुष्यजाते:	4.1.65
इत्थंभूतलक्षणे	2.3.21
इत्थंभूतेन कृत०	6.2.149
इदंकिमोरीश्की	6.3.90
इदन्तो मसि	7.1.46
इदम् इश्	5.3.3
इदमस्थमु:	5.3.24
इदमोऽन्वादेशे०	2.4.32
इदमो म:	7.2.108
इदमोहिंल्	5.3.16
इदमो ह:	5.3.11
इदितो नुम् धातो:	7.1.58
इदुदुपधस्य चा०	8.3.41
इदुद्भ्याम्	7.3.117
इदोऽय् पुंसि	7.2.111
इद् गोण्या:	1.2.50
इद्दरिद्रस्य	6.4.114
इद् वृद्धौ	6.3.28
इन: स्त्रियाम्	5.4.152
इनच्पिटच्किकचि	5.2.33
इनण्यनपत्ये	6.4.164
इनित्रकट्याचश्च	4.2.51
इन्द्रवरुणभवशर्व०	4.1.49
इन्द्रियमिन्द्रलिङ्ग०	5.2.93
इन्द्रे च	6.1.124
इन्धिभवतिभ्यां च	1.2.6
इन्हन्पूषार्यम्णां	6.4.13
इरयोरे	6.4.76
इरितो वा	3.1.57
इवे प्रतिकृतौ	5.3.96
इषुगमियमां छ:	7.3.77
इष्टकेषीका०	6.3.65
इष्टादिभ्यश्च	5.2.88
इष्टवीनमिति च	7.1.48
इष्टस्य यिट् च	6.4.159
इसुसुक्तान्तात्क:	7.3.51
इसुसो: सामर्थ्ये	8.3.44
इस्मन्त्रन्क्विषु च	6.4.97
ई	
ई घ्राध्मो:	7.4.31
ई च खन:	3.1.111
ई च गण:	7.4.97
ई च द्विवचने	7.1.77
ईडजनोर्ध्वे च	7.2.78
ईडवन्दवृशंसदु०	6.1.214
ईदग्ने: सोमवरुण०	6.3.27
ईदास:	7.2.83
ईदूतौ च सप्तम्यर्थे	1.1.19
ईदूदेद् द्विवचनं	1.1.11
ईद्यति	6.4.65
ईयसश्च	5.4.156
ईवत्या:	6.1.221
ईश: से	7.2.77
ईश्वरे तोसुन्कसुनौ	3.4.13
ईषदकृता	2.2.7
ईषदन्यतरस्याम्	6.2.54
ईषदर्थे	6.3.105
ईषदसमाप्तौ कल्प०	5.3.67
ईषद्दु:सुषु कृच्छ्रा०	3.3.126
ई हल्यघो:	6.4.113
ई ३ चाक्रवर्म०	6.1.130
उ	
उगवादिभ्यो यत्	5.1.2
उगितश्च	4.1.6
उगितश्च	6.3.45
उगिदचां सर्व०	7.1.70
उग्रंपश्येरंमद०	3.2.37
उच्चैरुदात्त:	1.2.29
उच्चैस्तरां वा	1.2.35
उञ:	1.1.17
उञि च पदे	8.3.21
उञ्छति	4.4.32
उञ्छादीनां च	6.1.160
उणादयो बहुलम्	3.3.1
उतश्च प्रत्यया०	6.4.106
उताप्यो: सम०	3.3.152
उतो वृद्धिर्लुकि	7.3.89
उत्क उन्मना:	5.2.80
उत्करादिभ्यश्छ:	4.2.90
उत्तमैकाभ्यां च	5.4.90
उत्तरपथेनाहृ०	5.1.77
उत्तरपदवृद्धौ	6.2.105
उत्तरपदस्य	7.3.10
उत्तरपदादि:	6.2.111
उत्तरमृगपूर्वाञ्च	5.4.98
उत्तराञ्च	5.3.38
उत्तराधरदक्षिण०	5.3.34
उत्परस्यात:	7.4.88
उत्सादिभ्योञ्	4.1.87
उद ईत्	6.4.139
उद: स्थास्तम्भो:	8.4.61
उदकस्योद:	6.3.57
उदकेऽकेवले	6.2.96
उदक्च विपाश:	4.2.74
उदङ्कोऽनुदके	3.3.123
उदन्वानुदधौ च	8.2.13
उदराट्ठगाद्यूने	5.2.67
उदराश्वेषुषु	6.2.107
उदश्चर: सकर्म०	1.3.53
उदश्वितोऽन्यतर०	4.2.19
उदात्तयणो०	6.1.174
उदात्तस्वरित०	1.2.40
उदात्तस्वरित०	8.2.4
उदात्तादनुदात्त०	8.4.65
उदि कूले रुजि०	3.2.31
उदि ग्रह:	3.3.35
उदितो वा	7.3.56
उदि श्रयतियौति०	3.3.49
उदीचां वृद्धा०	4.1.157
उदीचामात:	7.3.46
उदीचामिञ्	4.1.153
उदीचां माङो०	3.4.19
उदीच्यग्रामाच्च	4.2.109
उदुपधाद्भावादि०	1.2.21
उदोऽनूर्ध्वकर्मणि	1.3.24
उदोष्ठ्यपूर्वस्य	7.1.102
उद्धनोऽत्याधानम्	3.3.80
उद्विभ्यां काकु०	5.4.148
उद्विभ्यां तप:	1.3.27
उन्योर्ग्र:	3.3.29
उपकादिभ्यो०	2.4.69
उपघ्न आश्रये	3.3.85
उपजानूपकर्णो०	4.3.40
उपज्ञाते	4.3.115
उपज्ञोपक्रमं तदा०	2.4.21
उपदंशस्तृतीयायाम्	3.4.47
उपदेशेऽजनुनासि०	1.3.2
उपदेशेऽत्वत:	7.2.62
उपधायां च	8.2.78
उपधायाश्च	7.1.101
उपपदमतिङ्	2.1.19
उपपराभ्याम्	1.3.39
उपमानं शब्दार्थ०	6.2.80
उपमानाञ्च	5.4.137
उपमानादप्राणिषु	5.4.97
उपमानादाचारे	3.1.10
उपमानानि सा०	2.1.55
उपमाने कर्मणि च	3.4.45
उपमितं व्याघ्रा०	2.1.56
उपरिस्विदा०	8.2.102
उपर्यध्यधस: सा०	8.1.7
उपर्युपरिष्टात्	5.3.31
उपसंवादाशयोश्च	3.4.8
उपसर्गप्रादुर्भ्या०	8.3.87
उपसर्गव्यपेतं च	8.1.38
उपसर्गस्य	6.3.122
उपसर्गस्यायतौ	8.2.19
उपसर्गा: क्रियायोगे	1.4.59

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उपसर्गाच्च 5.4.119
उपसर्गाच्छन्द० 5.1.118
उपसर्गात्खल्घञोः 7.1.67
उपसर्गात्सुनोति० 8.3.65
उपसर्गात्वाङ्गं 6.2.177
उपसर्गादध्वनः 5.4.85
उपसर्गादसमासे० 8.4.14
उपसर्गादृति धातौ 6.1.91
उपसर्गाद्ध्रस्व 7.4.23
उपसर्गाद् ब० 8.4.27
उपसर्गे घोः किः 3.3.92
उपसर्गे च संज्ञा० 3.2.99
उपसर्गेऽदः 3.3.59
उपसर्गे रुवः 3.3.22
उपसर्जनं पूर्वम् 2.2.30
उपसर्या काल्या० 3.1.104
उपाच्च 1.3.84
उपाजेऽन्वाजे 1.4.73
उपात्प्रतियत्न० 6.1.139
उपात्प्रशंसायाम् 7.1.66
उपाद् द्व्यजजि० 6.2.194
उपाद्यमः स्वकरणे 1.3.56
उपाधिभ्यां त्यक० 5.2.34
उपान्मन्त्रकरणे 1.3.25
उपान्वध्याङ्वसः 1.4.48
उपेयिवानना० 3.2.110
उपोत्तमं रिति 6.1.217
उपोऽधिके च 1.4.87
उप्ते च 4.3.44
उभयथर्क्षु 8.3.8
उभयप्राप्तौ कर्मणि 2.3.66
उभादुदात्तो 5.2.44
उभे अभ्यस्तम् 6.1.5
उभे वनस्पत्या० 6.2.140
उभौ साभ्यासस्य 8.4.21
उमोर्णयोर्वा 4.3.158
उरः प्रभृतिभ्यः 5.4.151
उरण् रपरः 1.1.51
उरत् 7.4.66
उरसोऽण्च 4.4.94
उरसो यच्च 4.3.114
उर्ऋत् 7.4.7
उश्च 1.2.12
उषविदजागृ० 3.1.38
उषासोषसः 6.3.31
उष्ट्रः सादिवा० 6.2.40
उष्ट्राद् वुञ् 4.3.157
उस्यपदान्तात् 6.1.96

ऊ

ऊँ 1.1.18
ऊकालोऽज्झ्रस्व० 1.2.27
ऊङुतः 4.1.66
ऊडिदंपदाद्यप् 6.1.171
ऊतियूतिजूतिसा० 3.3.97
ऊदनोर्देशे 6.3.98
ऊदुपधाया० 6.4.89
ऊधसोऽङ् 5.4.131
ऊनार्थकलहं० 6.2.153
ऊरूत्तरपदादौपम्ये 4.1.69
ऊर्णाया युस् 5.2.123
ऊर्णोतेर्विभाषा 7.2.6
ऊर्णोतेर्विभाषा 7.3.90
ऊर्ध्वाद्विभाषा 5.4.130
ऊर्ध्वे शुषिपूरोः 3.4.44
ऊर्यादिच्विडाचश्च 1.4.61
ऊषसुषिमुष्क० 5.2.107

ऋ

ऋक्पूरब्धूःपथा० 5.4.74
ऋचः शे 6.3.55
ऋचितुनुघम० 6.3.133
ऋच्छत्यृताम् 7.4.11
ऋणमाधमर्ण्ये 8.2.60
ऋत उत् 6.1.111
ऋतश्च 7.4.92
ऋतश्च संयोगादेः 7.2.43
ऋतश्च संयोगा० 7.4.10
ऋतश्छन्दसि 5.4.158
ऋतष्ठञ् 4.3.78
ऋतेरीयङ् 3.1.29
ऋतो ङिसर्वना० 7.3.110
ऋतोऽञ् 4.4.49
ऋतो भारद्वाजस्य 7.2.63
ऋतोरण् 5.1.105
ऋतो विद्यायोनि० 6.3.23
ऋत्यकः 6.1.128
ऋत्विग्दधृषश्च 3.2.59
ऋत्व्यवास्त्व्य० 6.4.175
ऋदुपधाच्चाक्लृ० 3.1.110
ऋदुशनस्पुरुदं० 7.1.94
ऋदृशोऽङि गुणः 7.4.16
ऋद्धनोः स्ये 7.2.70
ऋन्नेभ्यो ङीप् 4.1.5
ऋषभोपानहो० 5.1.14
ऋष्यन्धक० 4.1.114
ऋहलोर्ण्यत् 3.1.124

ॠ

ॠ इद्धातोः 7.1.100
ॠदोरप् 3.3.57

ए

एकः पूर्वपरयोः 6.1.84
एकगोपूर्वाट्ठञ् 5.2.118
एकतद्धिते च 6.3.62
एकधुराल्लुक्च 4.4.79
एकं बहुवीहिवत् 8.1.9
एकवचनं संबुद्धिः 2.3.49
एकवचनस्य च 7.1.32
एकविभक्ति चा० 1.2.44
एकशालायाष्ठज० 5.3.109
एकश्रुति दूरात्० 1.2.33
एकस्य सकृच्च 5.4.19
एकहलादौ पूर० 6.3.59
एकाच उपदेशे 7.2.10
एकाचो द्वे प्रथमस्य 6.1.1
एकाचो बशो 8.2.37
एकाच्च प्राचाम् 5.3.94
एकाजुत्तरपदे णः 8.4.12
एकादाकिनिच्चास० 5.3.52
एकादिश्चैकस्य 6.3.76
एकादेश उदात्तेन० 8.2.5
एकाद्धो ध्यमु० 5.3.44
एकान्याभ्यां 8.1.65
एको गोत्रे 4.1.93
एङः पदान्ता० 6.1.109
एङि पररूपम् 6.1.94
एङ् प्राचां देशे 1.1.75
एङ्ह्रस्वात्संबुद्धेः 6.1.69
एच इग्घ्रस्वादेशे 1.1.48
एचोऽप्रगृह्यस्या० 8.2.107
एचोऽयवायावः 6.1.78
एजेः खश् 3.2.28
एण्या ढञ् 4.3.159
एत ईद् बहुवचने 8.2.81
एत ऐ 3.4.93
एतत्तदोः सुलो० 6.1.132
एतदस्त्रतसोस्त्रत० 2.4.33
एतदोऽन् 5.3.5
एति संज्ञायाम० 8.3.99
एतिस्तुशास्वृ० 3.1.109
एतेतौ रथोः 5.3.4
एतेर्लिङि 7.4.24
एत्येधत्यूठ्सु 6.1.89
एधाच्च 5.3.46
एनपा द्वितीया 2.3.31
एनबन्यतरस्याम० 5.3.35
एरच् 3.3.56
एरनेकाचोऽसं० 6.4.82
एरुः 3.4.86
एर्लिङि 6.4.67
एहि मन्ये प्रहासे 8.1.46

ऐ

ऐकागारिकट्० 5.1.113
ऐषमोह्यःश्वसो० 4.2.104

ओ

ओः पुयण्ज्यपरे 7.4.80
ओः सुपि 6.4.83
ओक उचः के 7.3.64
ओजः सहोऽम्भसा० 4.4.27
ओजःसहोऽम्भस्त० 6.3.3
ओजसोऽहनि 4.4.130
ओत् 1.1.15
ओतः श्यनि 7.3.71

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ओतो गार्ग्यस्य 8.3.20
ओदितश्च 8.2.45
ओमभ्यादाने 8.2.87
ओमाङोश्च 6.1.95
ओरञ् 4.2.71
ओरञ् 4.3.139
ओरावश्यके 3.1.125
ओर्गुणः 6.4.146
ओर्देशे ठञ् 4.2.119
ओषधेरजातौ 5.4.37
ओषधेश्च वि० 6.3.132
ओसि च 7.3.104

औ

औक्षमनपत्ये 6.4.173
औङ आपः 7.1.18
औत् 7.3.118
औतोऽम्शसोः 6.1.93

क

कः करत्करति० 8.3.50
कंशंभ्यां बभयु० 5.2.138
कंसमन्थशूर्प० 6.2.122
कंसाट्टिठन् 5.1.25
कंसीयपरशव्य० 4.3.168
ककुदस्यावस्था० 5.4.146
कच्छाग्निवक्त्र० 4.2.126
कच्छादिभ्यश्च 4.2.133
कठचरकाल्लुक् 4.3.107
कठिनान्तप्रस्ता० 4.4.72
कडङ्करदक्षिणा० 5.1.69
कडाराः कर्मधा० 2.2.38
कणेमनसी श्रद्धा० 1.4.66
कण्ठपृष्ठग्रीवा० 6.2.114
कण्ड्वादिभ्यो यक् 3.1.27
कण्वादिभ्यो 4.2.111
कतरकतमौ कर्म० 6.2.57
कतरकतमौ जा० 2.1.63
कत्र्यादिभ्यो ढ० 4.2.95
कथादिभ्यष्ठक् 4.4.102
कद्रुकमण्डल्वो० 4.1.71
कन्था च 6.2.124
कन्थपलद० 4.2.142
कन्थायाष्ठक् 4.2.102
कन्यायाः क० 4.1.116
कपिज्ञात्योर्ढक् 5.1.127
कपि पूर्वम् 6.2.173
कपिबोधादा० 4.1.107
कपिष्ठलो गोत्रे 8.3.91
कमेर्णिङ् 3.1.30
कम्बलाच्च संज्ञा० 5.1.3
कम्बोजाल्लुक् 4.1.175
करणाधिकरण० 3.3.117
करणे च स्तो० 2.3.33
करणे यजः 3.2.85
करणेऽयोविद्रुषु 3.3.82
करणे हनः 3.4.37
कर्कलोहितादी० 5.3.110
कर्णललाटात्मक० 4.3.65
कर्णे लक्षण० 6.3.115
कर्णो वर्णलक्ष० 6.2.112
कर्तरि कर्मव्य० 1.3.14
कर्तरि कृत् 3.4.67
कर्तरि च 2.2.16
कर्तरि चर्षिदे० 3.2.186
कर्तरि भुवः 3.2.57
कर्तरि शप् 3.1.68
कर्तर्युपमाने 3.2.79
कर्तुः क्यङ् सलो० 3.1.11
कर्तुरीप्सिततमं 1.4.49
कर्तृकरणयो० 2.3.18
कर्तृकरणे कृता० 2.1.32
कर्तृकर्मणोः कृति 2.3.65
कर्तृकर्मणोश्च 3.3.127
कर्तृस्थे चाशरीरे 1.3.37
कर्त्रीजीवपुरुष० 3.4.43
कर्मण उकञ् 5.1.103
कर्मणा यमभि० 1.4.32
कर्मणि घटोऽठच् 5.2.35
कर्मणि च 2.2.14
कर्मणि च येन 3.3.116
कर्मणि दृशि० 3.4.29
कर्मणि द्वितीया 2.3.2
कर्मणि भृतौ 3.2.22
कर्मणि हनः 3.2.86
कर्मणीनि 3.2.93
कर्मणो रोमन्थ० 3.1.15
कर्मण्यण्न्या० 3.2.92
कर्मण्यण् 3.2.1
कर्मण्यधिकरणे 3.3.93
कर्मण्याक्रोशे 3.4.25
कर्मधारयवदु० 8.1.11
कर्मधारयेऽनिष्ठा 6.2.46
कर्मन्दकृशा० 4.3.111
कर्मप्रवचनीययुक्ते० 2.3.8
कर्मप्रवचनीयाः 1.4.83
कर्मवत्कर्मणा 3.1.87
कर्मवेषाद्यत् 5.1.100
कर्मव्यतिहारे 3.3.43
कर्माध्ययने वृत्तम् 4.4.63
कर्षात्वतो घ० 6.1.159
कलापिनोऽण् 4.3.108
कलापिवैशम्पा० 4.3.104
कलाप्यश्वत्थय० 4.3.48
कलेर्ढक् 4.2.8
कल्याण्यादी० 4.1.126
कवं चोष्णे 6.3.107
कव्यध्वरपृतन० 7.4.39
कव्यपुरीषपुरी० 3.2.65
कषादिषु यथा० 3.4.46
कष्टाय क्रमणे 3.1.14
कस्कादिषु च 8.3.48
कस्य च दः 5.3.72
कस्येत् 4.2.25
काण्डाण्डादी० 5.2.111
काण्डान्तात्क्षेत्रे 4.1.23
कानाम्रेडिते 8.3.12
का पथ्यक्षयोः 6.3.104
कापिश्याः ष्फक् 4.2.99
कामप्रवेदने० 3.3.153
काम्यच्च 3.1.9
कारकाद्दत्त० 6.2.148
कारके 1.4.23
कारनाम्नि च 6.3.10
कारस्करो 6.1.156
कारे सत्यागदस्य 6.3.70
कार्तकौजपादय० 6.2.37
कार्मस्ताच्छील्ये 6.4.172
कालप्रयोजना० 5.2.81
कालविभागे 3.3.137
कालसमयवे० 3.3.167
कालाः 2.1.28
कालाः परिमा० 2.2.5
कालाच्च 5.4.33
कालाट्ठञ् 4.3.11
कालात् 5.1.78
कालात्साधुपु० 4.3.43
कालाद्यत् 5.1.107
कालाध्वनोरत्यन्त० 2.3.5
कालेभ्यो भववत् 4.2.34
कालोपसर्जने च 1.2.57
काश्यपकौशि० 4.3.102
काश्यादिभ्य० 4.2.116
कासूगोणीभ्यां० 5.3.90
कास्तीराजस्तु० 6.1.155
कास्प्रत्ययादाम० 3.1.35
किंकिलास्त्य० 3.3.146
किं क्रियाप्रश्ने० 8.1.44
किं क्षेपे 2.1.64
किंयत्तदो निर्धा० 5.3.92
किंवृत्तं च चिदु० 8.1.48
किंवृत्ते लिङ्० 3.3.144
किंवृत्ते लिप्सा० 3.3.6
किंसर्वनामबहु० 5.3.2
कितः 6.1.165
किति च 7.2.118
किदाशिषि 3.4.104
किमः कः 7.2.103
किमः क्षेपे 5.4.70
किमः संख्याप० 5.2.41
किमश्च 5.3.25
किमिदंभ्यां वो 5.2.40
किमेत्तिङव्य० 5.4.11
किमोऽत् 5.3.12
किरतौ लवने 6.1.141

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किरश्च पञ्चभ्यः 7.2.75
किसरादिभ्यः० 4.4.53
कुगतिप्रादयः 2.2.18
कुटीशमीशुण्डा० 5.3.88
कुण्डं वनम् 6.2.136
कु तिहोः 7.2.104
कुत्वा डुपच् 5.3.89
कुत्सने च 8.1.69
कुत्सितानि 2.1.53
कुत्सिते 5.3.74
कुप्वोः क पौ च 8.3.37
कुमति च 8.4.13
कुमहद्ब्रह्मा० 5.4.105
कुमारःश्रमणादि० 2.1.70
कुमारशीर्षयो० 3.2.51
कुमारश्च 6.2.26
कुमार्या वयसि 6.2.95
कुमुदनडवेतसे० 4.2.87
कुम्भपदीषु च 5.4.139
कुरुगार्हपतरि० 6.2.42
कुरुनादिभ्यो० 4.1.172
कुर्वादिभ्योण्यः 4.1.151
कुलकुक्षिग्रीवा० 4.2.96
कुलटाया वा 4.1.127
कुलत्थकोपधादण् 4.4.4
कुलात्खः 4.1.139
कुलालादि 4.3.118
कुलिजाल्लुक्खौ 5.1.55
कुल्माषादञ् 5.2.83
कुशाग्राच्छः 5.3.105
कुषिरजोः प्राचां 3.1.90
कुसीददशैकाद० 4.4.31
कुसूलकूपकुम्भं० 6.2.102
कुस्तुम्बुरूणि 6.1.143
कुहोश्चुः 7.4.62
कूलतीरतूल० 6.2.121
कूलसूदस्थल० 6.2.129
कृकणपर्णाद्भार० 4.2.145
कृच्छ्रगहनयोः 7.2.22
कृञः प्रतियत्ने 2.3.53
कृञः श च 3.3.100
कृञो द्वितीयतृ० 5.4.58
कृञो हेतुताच्छी० 3.2.20
कृञ्चानुप्रयुज्य० 3.1.40
कृतलब्धक्रीत० 4.3.38
कृते ग्रन्थे 4.3.116
कृत्तद्धितसमा० 1.2.46
कृत्यचः 8.4.29
कृत्यतुल्याख्या० 2.1.68
कृत्यल्युटो बहु० 3.3.113
कृत्याः 3.1.95
कृत्यानां कर्तरि 2.3.71
कृत्यार्थे तवैके 3.4.14
कृत्याश्च 3.3.171
कृत्यैरधिकार्थ० 2.1.33
कृत्यैर्ऋणे 2.1.43
कृत्योकेष्णुच्चा० 6.2.160
कृत्वोर्थप्रयोगे 2.3.64
कृदतिङ् 3.1.93
कृन्मेजन्तः 1.1.39
कृपो रो लः 8.2.18
कृभ्वस्तियोगे 5.4.50
कृमृदृरुहिभ्यश्छ० 3.1.59
कृषेश्छन्दसि 7.4.64
कृसृभृवृस्तुद्रु० 7.2.13
कॄ धान्ये 3.3.30
केकयमित्रयुप्र० 7.3.2
केऽणः 7.4.13
केदाराद्यञ्च 4.2.40
केवलमामक० 4.1.30
केशाद्वोऽन्यतर० 5.2.109
केशाश्वाभ्यां य० 4.2.48
कोः कत्तत्पुरु० 6.3.103
कोपधाच्च 4.2.79
कोपधाच्च 4.3.137
कोपधादण् 4.2.132
कोशाट्टञ् 4.3.42
कौपिञ्जलहा० 3.4.162
कौमारापूर्ववचने 4.2.13
कौरव्यमाण्डूका० 4.1.19
कौशल्यकार्मा० 4.1.155
क्ङिति च 1.1.5
क्तक्तवतू निष्ठा 1.1.26
क्तस्य च वर्तमाने 2.3.67
क्तादल्पाख्यायाम् 4.1.51
क्तिच्क्तौ च सं० 3.3.174
क्ते च 6.2.45
क्तेन च पूजायाम् 2.2.12
क्तेन नञ्विशि० 2.1.60
क्तेनाहोरात्रा० 2.1.45
क्ते नित्यार्थे 6.2.61
क्तोऽधिकरणे च 3.4.76
क्त्रेर्मम् नित्यम् 4.4.20
क्त्वा च 2.2.22
क्त्वातोसुन्क० 1.1.40
क्त्वापि च्छन्द० 7.1.38
क्त्वि स्कन्दिस्य० 6.4.31
क्त्वो यक् 7.1.47
क्यङ्मानिनोश्च 6.3.36
क्यचि च 7.4.33
क्यच्व्योश्च 6.4.152
क्यस्य विभाषा 6.4.50
क्याच्छन्दसि 3.2.170
क्रतुयज्ञभ्यश्च 4.3.68
क्रतूक्थादिसूत्रा० 4.2.60
क्रतौ कुण्डपा० 3.1.130
क्रत्वादयश्च 6.2.118
क्रमः परस्मैप० 7.3.76
क्रमश्च क्त्वि 6.4.18
क्रमादिभ्यो 4.2.61
क्रय्यस्तदर्थे 6.1.82
क्रव्ये च 3.2.69
क्रियार्थोपपदस्य 2.3.14
क्रियासमभिहारे 3.4.2
क्रीङ्जीनां णौ 6.1.48
क्रीडोऽनुसंपरि० 1.3.21
क्रीतवत्परिमा० 4.3.156
क्रीतात्करणपूर्वात् 4.1.50
क्रुधद्रुहेर्ष्यासू० 1.4.37
क्रुधद्रुहोरुपसृष्ट० 1.4.38
क्रुधमण्डार्थेभ्य० 3.2.151
क्रौड्यादिभ्यश्च 4.1.80
क्र्यादिभ्यः श्ना 3.1.81
क्लिशः क्त्वा० 7.2.50
क्वणो वीणायां च 3.3.65
क्वसुश्च 3.2.107
क्वाति 7.2.105
क्विन्प्रत्ययस्य० 8.2.62
क्विप् च 3.2.76
क्षत्राद्घः 4.1.138
क्षयो निवासे 6.1.201
क्षय्यजय्यौ श० 6.1.81
क्षायो मः 8.2.53
क्षिप्रवचने लृट् 3.3.133
क्षियः 6.4.59
क्षियाशीःप्रैषेषु० 8.2.104
क्षियो दीर्घात् 8.2.46
क्षीराड्ढञ् 4.2.20
क्षुद्रजन्तवः 2.4.8
क्षुद्राभ्यो वा 4.1.131
क्षुद्राभ्रमरवट० 4.3.119
क्षुब्धस्वान्त० 7.2.18
क्षुभ्नादिषु च 8.4.39
क्षुल्लकश्च वैश्व० 6.2.39
क्षेत्रियच्परक्षेत्रे 5.2.92
क्षेपे 2.1.47
क्षेपे 6.2.108
क्षेमप्रियमद्रे० 3.2.44
क्सस्याचि 7.3.72

ख

खः सर्वधुरात् 4.4.78
ख च 4.4.132
खचि ह्रस्वः 6.4.94
खट्वा क्षेपे 2.1.26
खण्डिकादि० 4.2.44
खनो घ च 3.3.125
खरवसानयोर्वि० 8.3.15
खरि च 8.4.55
खलगोरथात् 4.2.50
खलयवमाषतिल० 5.1.7
खर्या ईकन् 5.1.33
खार्याः प्राचाम् 5.4.101
खित्यनव्ययस्य 6.3.66

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

खिदेश्छन्दसि	6.1.52
ख्यत्यात्परस्य	6.1.112

ग

गतिकारकोप०	6.2.139
गतिबुद्धिप्रत्यव०	1.4.52
गतिरनन्तर:	6.2.49
गतिर्गतौ	8.1.70
गतिश्च	1.4.60
गत्यर्थकर्मणि	2.3.12
गत्यर्थलोटा	8.1.51
गत्यर्थाकर्मक०	3.4.72
गत्वरश्च	3.2.164
गदमदचरयम०	3.1.100
गन्तव्यपण्यं	6.2.13
गन्धनावक्षेपण०	1.3.32
गन्धस्येदुत्पूति०	5.4.135
गम: क्वौ	6.4.40
गमश्च	3.2.47
गमहनजनखन०	6.4.98
गमेरिट् परस्मै०	7.2.58
गम्भीरान:	4.3.58
गर्गादिभ्यो यञ्	4.1.105
गर्तोत्तरपदा०	4.2.137
गर्हायां लडपि०	3.3.142
गर्हायां च	3.3.149
गवाश्वप्रभृतीनि	2.4.11
गवियुधिभ्यां	8.3.95
ग: स्थकन्	3.1.146
गहादिभ्यश्च	4.2.138
गाङ्कुटादिभ्यो०	1.2.1
गाङ् लिटि	2.4.49
गाण्ड्यजगात्०	5.2.110
गातिस्थाघुपा०	2.4.77
गाथिविदथिके०	6.4.165
गाधलवणयो:	6.2.4
गापोष्टक्	3.2.8
गिरेश्च सेनक०	5.4.112
गुडादिभ्यष्ठञ्	4.4.103
गुणवचनब्राह्म०	5.1.124
गुणोऽपृक्ते	7.3.91
गुणो यङ्लुको:	7.4.82
गुणोऽर्तिसंयो०	7.4.29
गुपूधूपविच्छि०	3.1.28
गुपेश्छन्दसि	3.1.50
गुप्तिज्किद्भ्य: सन्	3.1.5
गुरोरनृतोऽनन्त्य०	8.2.86
गुरोश्च हल:	3.3.103
गृधिव ञ्च्यो: प्र०	1.3.69
गृष्ट्यादिभ्यश्च	4.1.136
गृहपतिना संयुक्ते	4.4.90
गेहे क:	3.1.144
गो: पादान्ते	7.1.57
गोचरसंचरव०	3.3.119
गोतन्तियवं पाले	6.2.78
गोतो णित्	7.1.90
गोत्रक्षत्रियाख्ये०	4.3.99
गोत्रचरणा०	5.1.134
गोत्रचरणाद्वुञ्	4.3.126
गोत्रस्त्रिया:	4.1.147
गोत्रादवत्	4.3.80
गोत्राद्यून्यस्त्रि०	4.1.94
गोत्रान्तेवासि०	6.2.69
गोत्रावयवात्	4.1.79
गोत्रे कुञ्जादिभ्य:०	4.1.98
गोत्रेऽलुगचि	4.1.89
गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्र०	4.2.39
गोद्व्यचोऽसंख्या०	5.1.39
गोधाया ढ्रक्	4.1.129
गोपयसोर्यत्	4.3.160
गोपुच्छाट्ठञ्	4.4.6
गोयवाग्वोश्च	4.2.136
गोरतद्धितलुकि	5.4.92
गोबिडालसिंह०	6.2.72
गोश्च पुरीषे	4.3.145
गोषदादिभ्यो	5.2.62
गोष्ठात्खञ्भूत०	5.2.18
गोष्पदं सेविता०	6.1.145
गोस्त्रियोरुपस०	1.2.48
गौ: सादसादि०	6.2.41
ग्रन्थान्ताधिके	6.3.79
ग्रसितस्कभित०	7.2.34
ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च०	3.3.58
ग्रहिज्यावयिव्य०	6.1.16
ग्रहोऽलिटि दीर्घ:	7.2.37
ग्राम: शिल्पिनि	6.2.62
ग्रामकौटाभ्यां च	5.4.95
ग्रामजनपदैकदे०	4.3.7
ग्रामजनबन्धुभ्य०	4.2.43
ग्रामात्पर्यनुपूर्वात्	4.3.61
ग्रामाद्यखञौ	4.2.94
ग्रामेऽनिवसन्त:	6.2.84
ग्राम्यपशुसङ्घेष्व०	1.2.73
ग्रीवाभ्योऽण्च	4.3.57
ग्रीष्मवसन्ताद०	4.3.46
ग्रीष्मावरसमाद्	4.3.49
ग्रोयङि	8.2.20
ग्लाजिस्थश्च	3.2.139

घ

घकालतनेषु	6.3.17
घच्छौ च	4.4.117
घञ: सास्यां	4.2.58
घञपोश्च	2.4.38
घञि च भाव०	6.4.27
घनिलचौ च	5.3.79
घरूपकल्पचेलड्०	6.3.43
घसिभसोर्हलि	6.4.100
घुमास्थागापा०	6.4.66
घुषिरविशब्दने	7.2.23
घेर्ङिति	7.3.111
घोर्लोपो लेटि	7.2.70
घोषादिषु च	6.2.85
ध्वसोरेद्धाव०	6.4.119

ङ

ङमो ह्रस्वादचि	8.3.32
ङयि च	6.1.208
ङसिङसोश्च	6.1.110
ङसिङ्यो: स्मा०	7.1.15
ङिच्च	1.1.53
ङिति ह्रस्वश्च	1.4.6
ङेप्रथमयोरम्	7.1.28
ङेराम्नद्याम्नीभ्य:	7.3.116
ङेर्य:	7.1.13
ङ्णो: कुक्टुक्शरि	8.3.28
ङ्यापो: संज्ञा०	6.3.63
ङ्याप्प्रातिपदि०	4.1.1
ङ्याश्छन्दसि	6.1.178

च

चक्षिङ: ख्याञ्	2.4.54
चङि	6.1.11
चङ्यन्यतर०	6.1.218
चजो: कु घिण्यतो:	7.3.52
चटकाया ऐरक्	4.1.128
चतुर: शसि	6.1.167
चतुरनडुहोरा०	7.1.98
चतुर्थी चाशिष्या०	2.3.73
चतुर्थी तदर्था०	2.1.36
चतुर्थी तदर्थे	6.2.43
चतुर्थी संप्रदाने	2.3.13
चतुर्थ्यर्थे बहुलं	2.3.62
चतुष्पादो गर्भि०	2.1.71
चतुष्पाद्भ्यो०	4.1.135
चनचिदिव०	8.1.57
चरणे ब्रह्मचा०	6.3.86
चरणेभ्यो धर्म०	4.2.45
चरति	4.4.8
चरफलोश्च	7.4.87
चरेष्ट:	3.2.16
चर्मणोऽञ्	5.1.15
चर्मोदरयो: पूरे:	3.4.31
चलनशब्दा०	3.2.148
चवायोगे प्रथमा	8.1.59
चादयोऽसत्वे	1.4.57
चादिलोपे विभा०	8.1.63
चादिषु च	8.1.58
चाय: की	6.1.21
चाय: की	6.1.35
चार्थे द्वन्द्व:	2.2.29
चाहलोप एवे०	8.1.62
चिणो लुक्	6.4.104
चिण्णमुलोर्दीर्घो०	6.4.93
चिण्ते पद:	3.1.60
चिण्भावकर्मणो:	3.1.66

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चितः 6.1.163
चितेः कपि 6.3.127
चित्तवति नित्यम् 5.1.89
चित्याग्निचि० 3.1.132
चित्रीकरणे च 3.3.150
चिदिति चोप० 8.2.101
चिन्तिपूजि० 3.3.105
चिस्फुरोर्णौ 6.1.54
चीरमुपमानम् 6.2.127
चुटू 1.3.7
चूर्णादिनिः 4.4.23
चूर्णादीन्यप्रा० 6.2.134
चेलखेटकटुक० 6.2.126
चेले क्नोपेः 3.4.33
चोः कुः 8.2.30
चौ 6.1.222
चौ 6.3.138
च्छ्वोः शूडनु० 6.4.19
च्लि लुङि 3.1.43
च्लेः सिच् 3.1.44
च्वौ च 7.4.26

छ

छगलिनो ढि० 4.3.109
छ च 4.2.28
छत्रादिभ्यो णः 4.4.62
छदिरुपधिबलेर्ढञ् 5.1.13
छन्दसि गत्यर्थे० 3.3.129
छन्दसि घस् 5.1.106
छन्दसि च 5.1.67
छन्दसि च 5.4.142
छन्दसि च 6.3.126
छन्दसि ञ्नित्र् 4.3.19
छन्दसि निष्ट० 3.1.123
छन्दसि परि० 5.2.89
छन्दसि परेऽपि 1.4.81
छन्दसि पुनर्व० 1.2.61
छन्दसि लिट्० 3.2.105
छन्दसि लुङ्लङ्० 3.4.6
छन्दसि वनसं० 3.2.27
छन्दसि वा प्रा० 8.3.49
छन्दसि शायज० 3.1.84
छन्दसि सहः 3.2.63
छन्दसीरः 8.2.15
छन्दसो निर्मिते 4.4.93
छन्दसो यदणौ 4.3.71
छन्दस्यनेकमपि० 8.1.35
छन्दस्यपि दृश्यते 6.4.73
छन्दस्यपि दृश्यते 7.1.76
छन्दस्युभयथा 3.4.117
छन्दस्युभयथा 6.4.5
छन्दस्युभयथा 6.4.86
छन्दस्यृदवग्रहात् 8.4.26
छन्दागौक्थि० 4.3.129
छन्दोनाम्नि च 3.3.34
छन्दोनाम्नि च 8.3.94
छन्दोब्राह्मणानि 4.2.66
छात्र्यादयः शा० 6.2.86
छादेर्घेऽद्व्युपस० 6.4.96
छाया बाहुल्ये 2.4.22
छे च 6.1.73
छेदादिभ्यो नि० 5.1.64

ज

जश्शसोः शिः 7.1.20
जक्षित्यादयः षट् 6.1.6
जङ्गलधेनुवल० 7.3.25
जनपदतद० 4.2.124
जनपदशब्दा० 4.1.168
जनपदिनां ज० 4.3.100
जनपदे लुप् 4.2.81
जनसनखन० 3.2.67
जनसनखनां स० 6.4.42
जनिकर्तुः प्रकृतिः 1.4.30
जनिता मन्त्रे 6.4.53
जनिवध्योश्च 7.3.35
जपजभदहदश० 7.4.85
जम्ब्वा वा 4.3.165
जम्भासुहरित० 5.4.125
जयः करणम् 6.1.202
जराया जरस० 7.2.101
जल्पभिक्षकुट्ट० 3.2.155
जसः शी 7.1.17
जसि च 7.3.109
जहातेश्च 6.4.116
जहातेश्च क्त्वि 7.4.43
जागरूकः 3.2.165
जाग्रोऽविचिण्ण० 7.3.85
जातरूपेभ्यः 4.3.153
जातिकालसु० 6.2.170
जातिनाम्नः कन् 5.3.81
जातिरप्राणिनाम् 2.4.6
जातुयदोर्लिङ 3.3.147
जातेरस्त्रीविष० 4.1.63
जातेश्च 6.3.41
जात्यन्ताच्छ ब० 5.4.9
जात्याख्याया० 1.2.58
जात्वपूर्वम् 8.1.47
जानपदकुण्ड० 4.1.42
जान्तनशां वि० 6.4.32
जायाया निङ् 5.4.134
जालमानायः 3.3.124
जासिनिप्रहण० 2.3.56
जिघ्रतेर्वा 7.4.6
जिदृक्षिविश्री० 3.2.157
जिह्वामूलाङ्गु० 4.3.62
जीर्यतेरतृन् 3.2.104
जीवति तु 4.1.163
जीविकार्थे चा० 5.3.99
जीविकोपनिष० 1.4.79
जुचङ्क्रम्यद० 3.2.150
जुष्टार्पिते च 6.1.209
जुसि च 7.3.83
जुहोत्यादिभ्यः 2.4.75
जृव्रश्च्योः क्त्वि 7.2.55
जृस्तम्भुम्रुचुम्लु० 3.1.58
जे प्रोष्ठपदानाम् 7.3.18
ज्ञाजनोर्जा 7.3.79
ज्ञाश्रुस्मृदृशां 1.3.57
ज्ञोऽविदर्थस्य 2.3.51
ज्य च 5.3.61
ज्यश्च 6.1.42
ज्यादादीयसः 6.4.160
ज्योतिरायुषः 8.3.83
ज्योतिर्जनपदरा० 6.3.85
ज्योत्स्नातमि० 5.2.114
ज्वरत्वरस्रिव्य० 6.4.20
ज्वलितिक० 3.1.140

झ

झयः 5.4.111
झयः 8.2.10
झयो होऽन्यतरं० 8.4.62
झरो झरि सवर्णे 8.4.65
झलां जशोऽन्ते 8.2.39
झलां जश्झशि 8.4.53
झलो झलि 8.2.26
झल्युपोत्तमम् 6.1.180
झषस्तथोर्धोऽधः 8.2.40
झस्य रन् 3.4.105
झेर्जुस् 3.4.108
झोऽन्तः 7.1.3

ञ

ञितश्च तत्प्रत्य० 4.3.155
ञीतः क्तः 3.2.187
ञ्नित्यादि० 6.1.197
ञ्यादयस्तद्रा० 5.3.119

ट

टाङसिङसामि० 7.1.12
टाबृचि 4.1.9
टिड्ढाणञ्द्वय० 4.1.15
टित आत्मनेप० 3.4.79
टेः 6.4.143
टेः 6.4.155
टितोऽथुच् 3.3.89

ठ

ठक् छौ च 4.2.84
ठगायस्थानेभ्यः 4.3.75
ठञ्कवचिनश्च 4.2.41
ठस्येकः 7.3.50
ठाजादावूर्ध्वं द्वि० 5.3.83

ड

डः सि धुट् 8.3.29
डति च 1.1.25
डाबुभाभ्याम० 4.1.13
ड्वितः क्त्रिः 3.3.88

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ढ

ढकि लोपः 4.1.133
ढक्च मण्डूकात् 4.1.119
ढश्छन्दसि 4.4.106
ढे लोपोऽकद्र्वाः 6.4.147
ढो ढे लोपः 8.3.13
ढ्रलोपे पूर्वस्य० 6.3.111

ण

णचः स्त्रियामञ् 5.4.14
णलुत्तमो वा 7.1.91
णिचश्च 1.3.74
णिजां त्रयाणां 7.4.75
णिनि 6.2.79
णिश्रिद्रुस्रु० 3.1.48
णेरणौ यत्कर्म 1.3.67
णेरध्ययने वृत्तम् 7.2.26
णेरनिटि 6.4.51
णेर्विभाषा 8.4.30
णेश्छन्दसि 3.2.137
णो नः 6.1.65
णौ गमिरबोधने 2.4.46
णौ चङ्युपधाया 7.4.1
णौ च संश्चङोः 2.4.51
णौ च संश्चङोः 6.1.31
ण्य आवश्यके 7.3.65
ण्यक्षत्रियार्ष० 2.4.58
ण्यासश्रन्थो० 3.3.107
ण्युट् च 3.1.147
ण्वुल्तृचौ 3.1.133

त

तङानावात्मने० 1.4.100
तत आगतः 4.3.74
तत्पुरुषः 2.1.22
तत्पुरुषः समा० 1.2.42
तत्पुरुषस्याङ्गु 5.4.86
तत्पुरुषे कृति 6.3.14
तत्पुरुषे तुल्यार्थ० 6.2.2
तत्पुरुषे शाला० 6.2.123
तत्पुरुषोऽनञ्० 2.4.19
तत्प्रकृतवचने 5.4.21
तत्प्रत्ययनु० 4.4.28
तत्प्रत्ययस्य 7.3.29
तत्प्रयोजको० 1.4.55
तत्र 2.1.46
तत्र कुशलः 5.2.63
तत्र च दीयते 5.1.96
तत्र जातः 4.3.25
तत्र तस्येव 5.1.116
तत्र तेनेदमिति 2.2.27
तत्र नियुक्तः 4.4.69
तत्र भवः 4.3.53
तत्र विदित इति 5.1.42
तत्र साधुः 4.4.98
तत्रोद्धृतममत्रे० 4.2.14
तत्रोपपदं सप्त० 3.1.92
तत्सर्वादेः 5.2.7
तथायुक्तं चानी० 1.4.50
तदधीते तद्वेद 4.2.59
तदधीनवचने 5.4.54
तदर्थे विकृतेः 5.1.12
तदर्हति 5.1.63
तदर्हम् 5.1.117
तदशिष्यं संज्ञा० 1.2.53
तदस्मिन्नधिक० 5.2.45
तदस्मिन्नन्नं० 5.2.82
तदस्मिन्नस्ती० 4.2.67
तदस्मिन्वृ० 5.1.47
तदस्मै दीयते 4.4.66
तदस्य तदस्मि० 5.1.16
तदस्य पण्यम् 4.4.51
तदस्य परिमाणम् 5.1.57
तदस्य ब्रह्मचर्यम् 5.1.94
तदस्य संजातं 5.2.36
तदस्य सोढम् 4.3.52
तदस्यां प्रहरण० 4.2.57
तदस्यास्त्य० 5.2.94
तदोः सः सा० 7.2.106
तदो दा च 5.3.19
तद् गच्छति पथि० 4.3.85
तद्धरति वहत्या० 5.1.50
तद्धितश्चासर्व० 1.1.38
तद्धितस्य 6.1.164
तद्धिताः 4.1.76
तद्धितार्थोत्तर० 2.1.51
तद्धितेष्वचामा० 7.2.117
तद्युक्तात्कर्मणो० 5.4.36
तद्राजस्य बहुषु० 2.4.62
तद्वहति रथयुग० 4.4.76
तद्धानासामुप० 4.4.125
तनादिकृञ्भ्य० 3.1.79
तनादिभ्यस्त० 2.4.79
तनिपत्योश्छन्द० 6.4.99
तनूकरणे तक्षः 3.1.76
तनोतेर्यकि 6.4.44
तनोतेर्विभाषा 6.4.17
तन्त्रादचिराप० 5.2.70
तपःसहभ्राभ्यां 5.2.102
तपरस्तत्कालस्य 1.1.70
तपस्तपःकर्म० 3.1.88
तपोऽनुतापे 3.1.65
तप्तनप्तनथनाश्च 7.1.45
तमधीष्टो भृतो 5.1.80
तयोरेव कृत्य० 3.4.70
तयोर्दार्हिलौ च 5.3.20
तयोर्य्वावचि 8.2.108
तरति 4.4.5
तरप्तमपौ घः 1.1.22
तवकममकावेक० 4.3.3
तवममौ ङसि 7.2.96
तवै चान्तश्च 6.2.51
तव्यत्तव्यानीयरः 3.1.96
तसिलादिष्वाकृ० 6.3.35
तसिश्च 4.3.113
तसेश्च 5.3.8
तसौ मत्वर्थे 1.4.19
तस्थस्थमिपां 3.4.101
तस्माच्छसो नः 6.1.103
तस्मादित्युत्तरस्य 1.1.67
तस्मान्नुडचि 6.3.74
तस्मान्नुड् द्विहलः 7.4.71
तस्मिन्नणि च 4.3.2
तस्मिन्निति 1.1.66
तस्मै प्रभवति 5.1.101
तस्मै हितम् 2.1.5
तस्य च दक्षि० 5.1.95
तस्य तात् 7.1.45
तस्य धर्म्यम् 4.4.47
तस्य निमित्तं 5.1.38
तस्य निवासः 4.2.69
तस्य परमाम्रेडि० 8.1.2
तस्य पाकमूले 5.2.24
तस्य पूरणे ड् 5.2.48
तस्य भावस्त्व० 5.1.119
तस्य लोपः 1.3.9
तस्य वापः 5.1.45
तस्य विकारः 4.3.134
तस्य व्याख्यान 4.3.66
तस्य समूहः 4.2.37
तस्यादित उदा० 1.2.32
तस्यापत्यम् 4.1.92
तस्येदम् 4.3.120
तस्येश्वरः 5.1.42
ताच्छील्यव० 3.2.129
तादौ च निति 6.2.50
तान्येकवचन० 1.4.102
ताभ्यामन्यत्रो० 3.4.75
तालादिभ्योऽण् 4.3.152
तावतिथं ग्रहण० 5.2.77
तासस्त्योर्लोपः 7.4.50
तासि च क्लृपः 7.2.60
तास्यनुदात्ते० 6.1.186
तिककितवादि० 2.4.68
तिकादिभ्यः 4.1.154
तिङश्च 5.3.56
तिङस्त्रीणि त्री० 1.4.101
तिङि चोदात्त० 8.1.71
तिडो गोत्रादी० 8.1.27
तिङ्ङतिङः 8.1.28
तिङ्शित्सार्व० 3.4.113
ति च 7.4.89
तितुत्रतथसिसुसर० 7.2.9
तित्तिरिवरत० 4.3.102
तित्स्वरितम् 6.1.185

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तिप्तस्झिसिप्थ० 3.4.78
तिप्यनस्ते: 8.2.73
तिरसस्तिर्यलोपे 6.3.94
तिरसोऽन्यतर 8.3.42
तिरोऽन्तर्धौ 1.4.71
तिर्यच्यपवर्गे 3.4.60
ति विंशतेर्डिति 6.4.142
तिष्ठतेरित् 7.4.5
तिष्ठद्गुप्रभृतीनि 2.1.17
तिष्यपुनर्वस्वो० 1.2.63
तिसृभ्यो जस: 6.1.166
तीररूप्योत्तरप० 4.2.106
तीर्थे ये 6.3.87
तीषसहलुभरुष० 7.2.48
तुआद्धन् 4.4.115
तुजादीनां दीर्घो० 6.1.7
तुदादिभ्य: श: 3.1.77
तुन्दशोकयो: परि० 3.2.5
तुन्दादिभ्य 5.2.117
तुन्दिबलिवटे० 5.2.139
तुपश्यपश्यताहै: 8.1.39
तुभ्यमह्यौ ङयि 7.2.95
तुमर्थाच्च भाववo 2.3.15
तुमर्थे सेसेनसेऽसे० 3.4.9
तुमुन्ण्वुलौ क्रि० 3.3.10
तुरिष्ठेमेय:सु 6.4.154
तुरुस्तुशम्यम: 7.3.95
तुल्यार्थैरतुलो० 2.3.72
तुल्यास्यप्रयत्नं 1.1.9
तुश्छन्दसि 5.3.59
तुह्योस्ताड्ढा० 7.1.35
तूदीसलातुरवर्म० 3.4.94
तृष्णीमि भुव: 3.4.63
तृजकाभ्यां कर्तरि 2.2.15
तृज्वत्क्रोष्टु: 7.1.95
तृणह इम् 7.3.92
तृणे च जातौ 6.3.103
तृतीया कर्मणि 6.2.48
तृतीया च होश्छ० 2.3.3
तृतीया तत्कृता० 2.1.30
तृतीयादिषु भा० 7.1.74
तृतीयाप्रभृती० 2.2.21
तृतीयार्थे 1.4.85
तृतीयासप्तम्यो० 2.4.84
तृतीयासमासे 1.1.30
तृन् 3.2.135
तृषिमृषिकृषे: 1.2.25
तृफलभजत्रपश्च 6.4.122
ते तद्राजा: 4.1.174
तेन क्रीतम् 5.1.37
तेन तुल्यं क्रि० 5.1.115
तेन दीव्यति 4.4.2
तेन निर्वृत्तम् 4.2.68
तेन निर्वृत्तम् 5.1.79
तेन परिजय्यल० 5.1.93
तेन प्रोक्तम् 4.3.101
तेन यथाकथा 5.1.98
तेन रक्तं रागात् 4.2.1
तेन वित्तश्चु० 5.2.26
तेन सहेति तुल्य० 2.2.28
तेनैकदिक् 4.3.112
ते प्राग्धातो: 1.4.80
तेमयावेकवचन० 8.1.22
तो: षि 8.4.43
तोर्लि 8.4.60
तौ सत् 3.2.127
त्यदादिषु दृशो० 3.2.60
त्यदादीनाम: 7.2.102
त्यदादीनि च 1.1.74
त्यदादीनि सर्वै० 1.2.72
त्यागरागहास० 6.1.216
त्रपुजतुनो: षुक् 4.3.135
त्रसिगृधिधृषि० 3.2.140
त्रिंशच्चत्वारिंश० 5.1.62
त्रिककुत्पर्वते 5.4.147
त्रिचतुरो: स्त्रियां 7.2.99
त्रिप्रभृतिषु शा० 8.4.50
त्रे: संप्रसारणं च 5.2.55
त्रेर्मम् 4.4.20
त्रेस्त्रय: 6.3.48
त्रेस्त्रय: 7.1.53
त्वमावेकवचने 7.2.97
त्वामौ द्वितीयाया: 8.1.23
त्वाहौ सौ 7.2.94
त्वे च 6.3.64

थ

थट् च च्छन्दसि 5.2.50
थलि च सेटि 6.4.121
थलि च सेटीड० 6.1.196
थाथघञ्क्ताजबि० 6.2.144
थास: से 3.4.80
था हेतौ चच्छ० 5.3.26
थो न्थ: 7.1.87

द

दंशसञ्जस्वञ्जां 6.4.25
दक्षिणादाच् 5.3.36
दक्षिणापश्चात्पुर० 4.2.98
दक्षिणेर्मा लुब्ध० 5.4.126
दक्षिणोत्तराभ्या० 5.3.28
दण्डव्यवसर्गयोश्च 5.4.2
दण्डादिभ्य: 5.1.66
ददातिदधात्यो० 3.1.139
दधस्तथोश्च 8.2.38
दधातेर्हि: 7.4.42
दध्नष्ठक् 4.2.17
दन्त उन्नत 5.2.106
दन्तशिखात्सं० 5.2.113
दम्भ इच्च 7.4.56
दयतेर्दिगिलिटि 7.4.9
दयायासश्च 3.1.37
दश्च 7.2.109
दश्च 8.2.75
दस्ति 6.3.124
दाणश्च सा चेच्च० 1.3.55
दाण्डिनायन० 6.4.174
दादेर्धातोर्घ: 8.2.32
दाधर्तिदर्धर्ति० 7.4.65
दाधा ध्वदाप् 1.1.20
दाधेट्सिशदस० 3.2.159
दानीं च 5.3.18
दामन्यादित्रि० 5.3.116
दामहायनान्ताच्च 4.1.27
दाम्नीशसयुयुज० 3.2.182
दायाद्यं दायादे 6.2.5
दाशगोघ्नौ सं० 3.4.73
दाश्वान्साह्वा० 6.1.12
दिक्पूर्वपदाट्टञ् 4.3.6
दिक्पूर्वपदाद० 4.2.107
दिक्पूर्वपदान्ङीप् 4.1.60
दिक्शब्दा ग्राम० 6.2.103
दिक्शब्देभ्य: 5.3.27
दिक्संख्ये संज्ञा० 2.1.50
दिगादिभ्यो० 4.3.54
दिङ्नामान्यन्त० 2.2.26
दित्यदित्यादि० 4.1.85
दिव उत् 6.1.131
दिव औत् 7.1.84
दिव: कर्म च 1.4.43
दिवसश्च पृथि० 6.3.30
दिवस्तदर्थस्य 2.3.58
दिवादिभ्य: 3.1.69
दिवात्रिभानि० 3.2.21
दिवो झल् 6.1.183
दिवो द्यावा 6.3.29
दिवोऽविजिगी० 8.2.49
दिशो मद्राणाम् 7.3.13
दिष्टिवितस्त्यो० 6.2.31
दीङो युडचि 6.4.63
दीधीवेवीटाम् 1.1.6
दीपजनबुधपूरि० 3.1.61
दीर्घ इण: किति 7.4.69
दीर्घकाशतुषभ्रा० 6.2.82
दीर्घजिह्वी च 4.1.59
दीर्घं च 1.4.12
दीर्घाच्च वरुणस्य 7.3.23
दीर्घाज्जसि च 6.1.105
दीर्घात् पदान्ताद्वा 6.1.75
दीर्घादटि समान० 8.3.9
दीर्घादाचार्या० 8.4.52
दीर्घोऽकित: 7.4.83
दीर्घो लघो: 7.4.94
दु:खात्प्रातिलो० 5.4.64
दुन्योरनुपसर्गे 3.1.142

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दुरस्युर्द्रविण०	7.4.36	द्रोश्च	4.3.161	द्विस्तावा त्रि०	5.4.84	न	
दुष्कुलाड्ढक्	4.1.142	द्वन्द्वं रहस्यम०	8.1.15	द्विस्त्रिश्चतुरि०	8.3.43		
दुहः कब्घश्च	3.2.70	द्वन्द्वमनोज्ञा०	5.1.133	द्वीपादनुसमुद्रं	4.3.10	नः क्ये	1.4.15
दुहश्च	3.1.63	द्वन्द्वश्च प्राणितूर्य०	2.4.2	द्वेस्तीयः	5.2.54	न कपि	7.4.14
दूतस्य भागक०	4.4.120	द्वन्द्वाच्चुदषहा०	5.4.106	द्वैपवैयाघ्रादञ्	4.2.11	न कर्मव्यतिहारे	7.3.6
दूराद्धूते च	8.2.84	द्वन्द्वाच्छः	4.2.6	द्व्यचः	4.1.121	न कवतेर्यङि	7.4.63
दूरान्तिकार्थेभ्यो	2.3.35	द्वन्द्वादुन् वैर०	4.3.125	द्व्यचश्छन्दसि	4.3.150	न कोपधायाः	6.3.37
दूरान्तिकार्थैः	2.3.34	द्वन्द्वे घि	2.2.32	द्व्यचोऽतस्तिङः	6.3.135	न क्त्रिचि दीर्घश्च	6.4.39
दृक्स्ववस्वत०	7.1.83	द्वन्द्वे च	1.1.31	द्व्यजृद्ब्राह्मण०	4.3.72	न क्त्वा सेट्	1.2.18
दृग्दृशवतुषु	6.3.89	द्वन्द्वोपतापगर्ह्यात्०	5.2.128	द्व्यञ्मगधकलि०	4.1.170	न क्रोडादिबह्वचः	4.1.56
दृढः स्थूलबल०	7.2.20	द्वारादीनां च	7.3.4	द्व्यन्तरुपसर्गेभ्यो०	6.3.97	न क्वादेः	7.3.59
दृतिकुक्षिकल०	4.3.56	द्विगुरेकवचनन्	2.4.1	द्व्यष्टनः संख्याया०	6.3.47	नक्षत्राद्धः	4.4.141
दृशेः क्वनिप्	3.2.94	द्विगुश्च	2.1.23	द्व्येकयोर्द्विवचनै०	1.4.22	नक्षत्राद्वा	8.3.100
दृशे विख्ये च	3.4.11	द्विगोः	4.1.21	ध		नक्षत्रे च लुपि	2.3.45
दृष्टं साम	4.2.7	द्विगोः ष्ठंश्च	5.1.54			नक्षत्रेण युक्तः	4.2.3
देयमृणे	4.3.47	द्विगोर्यप्	5.1.82	धः कर्मणि ष्ट्रन्	3.2.181	नक्षत्रेभ्यो बहु०	4.3.37
देये त्रा च	5.4.55	द्विगोर्लुगनपत्ये	4.1.88	धनगणं लब्धा	4.4.84	नखमुखात्संज्ञा०	4.1.58
देवताद्वन्द्वे च	6.2.141	द्विगोर्वा	5.1.86	धनहिरण्यात्कामे	5.2.65	न गतिहिंसार्थे०	1.3.15
देवताद्वन्द्वे च	6.3.26	द्विगौ क्रतौ	6.2.97	धनुषश्च	5.4.132	नगरात्कुत्सन०	4.2.128
देवताद्वन्द्वे च	7.3.21	द्विगौ प्रमाणे	6.2.12	धन्वयोपधाद्वुञ्	4.2.121	न गुणादयोऽव०	6.2.176
देवतान्तात्ता०	5.4.25	द्वितीयतृतीयच०	2.2.3	धर्मे चरति	4.4.41	न गोपवनादि०	2.4.67
देवपथादिभ्य०	5.3.100	द्वितीयाटौस्स्वेनः	2.4.34	धर्मपथ्यर्थन्या०	4.4.92	न गोऽप्राणिष्व	6.3.77
देवब्रह्मणोरनु०	1.2.38	द्वितीया ब्राह्मणे	2.3.60	धर्मशीलवर्णा०	5.2.132	न गोश्वन्सा०	6.1.182
देवमनुष्यपुरुष०	5.4.56	द्वितीयायां च	3.4.53	धर्मादनिच्केव०	5.4.124	न ङिसंबुद्ध्योः	8.2.8
देवसुम्नयोर्यजुषि०	7.4.38	द्वितीयायां च	7.2.87	धातुसंबन्धे प्रत्य०	3.4.1	न चवाहाहैवयुक्ते	8.1.24
देवात्तल्	5.4.27	द्वितीयाश्रिता०	2.1.24	धातोः	3.1.91	न च्छन्दस्य	7.4.35
देविकार्शिशपा०	7.3.1	द्वितीये चानुपाख्ये	6.3.80	धातोः	6.1.162	नञ्	2.2.6
देविक्रुशोश्चोप०	3.2.147	द्वित्रिचतुर्भ्यः	5.4.18	धातोः कर्मणः	3.1.7	नञः शुचीश्वर०	7.3.30
देशे लुबिलचौ०	5.2.105	द्वित्रिपूर्वादण्	5.1.36	धातोरेकाचो०	3.1.22	नञस्तत्पुरुषात्	5.4.71
दैवयज्ञिशौचि०	4.1.81	द्वित्रिपूर्वान्नि०	5.1.30	धातोस्तन्निमि०	6.1.80	नञो गुणप्रतिषे०	6.2.155
दो दद्धोः	7.4.46	द्वित्रिभ्यां तय०	5.2.43	धात्वादेः षः सः	6.1.64	नञो जरमरमि०	6.2.116
दोषो णौ	6.4.90	द्वित्रिभ्यां ष	5.4.115	धान्यानां भवन	5.2.1	नञ्दुःसुभ्यो	5.4.121
द्यतिस्यतिमा०	7.4.40	द्वित्रिभ्यामञ्जलेः	5.4.102	धारेरुत्तमर्णः	1.4.35	नञ्सुभ्याम्	6.2.172
द्यावापृथिवीशु०	4.2.32	द्वित्रिभ्यां पाद्द०	6.2.197	धि च	8.2.25	नडशादाड्ड्व०	4.2.88
द्युतिस्वाप्योः	7.4.67	द्व्योश्च धमुञ्	5.3.45	धिन्विकृण्व्योर०	3.1.80	नडादिभ्यः फक्	4.1.99
द्युद्भ्यो लुङि	1.3.91	द्विदण्ड्यादिभ्य०	5.4.128	धुरो यड्ढकौ	4.4.77	नडादीनां कुक्च	4.2.91
द्युद्भ्यां मः	5.2.108	द्विर्वचनेऽचि	1.1.59	धूमादिभ्यश्च	4.2.127	न तिसृचतसृ	6.4.4
द्युप्रागपागुदक्प्र०	4.2.101	द्विवचनविभ०	5.3.57	धृषिशसी वैया०	7.2.19	नते नासिकायाः	5.2.31
द्रवमूर्तिस्पर्शयोः	6.1.24	द्विषत्परयोस्ता०	3.2.39	ध्रुवमपायेऽपादा०	1.4.24	न तौल्वलिभ्यः	2.4.61
द्रव्यं च भव्ये	5.3.104	द्विषश्च	3.4.112	ध्वमो ध्वात्	7.1.42	न दण्डमाणवा०	4.3.130
द्रोणपर्वतजीव०	4.1.103	द्विषोऽमित्रे	3.2.131	ध्वाङ्क्षेण क्षेपे	2.1.42	न दधिपय आदीनि	2.4.14

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नदीपौर्णमास्या०	5.4.110	न माङ्योगे	6.4.74	न सुब्रह्मण्यायां	1.2.37	नित्यं छन्दसि	7.4.8
नदी बन्धुनि	6.2.109	नमिकम्पिस्म्य०	3.2.167	नस्तद्धिते	6.4.144	नित्यं पणः परि०	3.3.66
नदीभिश्च	2.1.20	न मुने	8.2.3	नह प्रत्यारम्भे	8.1.31	नित्यं मन्त्रे	6.1.210
न दुहस्नुनमा	3.1.89	नमोवरिवश्चित्र०	3.1.19	न हास्तिनफ०	6.2.101	नित्यं वृद्धशरा	4.3.144
न दृशः	3.1.47	न यः	3.2.152	नहिवृतिवृषि०	6.3.116	नित्यं शतादिमा०	5.2.57
नद्याः शेषस्या०	6.3.44	न यदि	3.2.113	नहो धः	8.2.34	नित्यं संज्ञाछन्द०	4.1.29
नद्यादिभ्यो ढक्	4.2.97	न यद्यनाकाे	3.4.23	नाग्लोपिशास्वृ०	7.4.2	नित्यं सपत्न्या०	4.1.34
नद्यां मतुप्	4.2.85	न यासयोः	7.3.45	नाचार्यराजर्त्वि०	6.2.133	नित्यं समासे०	8.3.45
नद्यृतश्च	5.4.153	न य्वाभ्यां पदा०	7.3.3	नाञ्जलौ	1.1.10	नित्यं स्मयतेः	6.1.57
न द्व्यचः प्राच्य०	4.2.113	न रपरसृपिसृ०	8.3.110	नाञ्चेः पूजायाम्	6.4.30	नित्यं हस्ते पा०	1.4.77
न धातुलोप आर्ध०	1.1.4	न रुधः	3.1.64	नाडीतन्त्र्योः	5.4.159	नित्यमसिच्प्र०	5.4.122
न ध्याख्यापृमू०	8.2.57	नरे संज्ञायाम्	6.3.129	नाडीमुष्टयोश्र	3.2.30	नित्यवीप्सयोः	8.1.4
न नञ्पूर्वात्तत्पु०	5.1.121	न लिङि	7.2.39	नातः परस्य	7.3.27	निनदीभ्यां	8.3.89
न निर्धारणे	2.2.10	न लुट्	8.1.29	नादिचि	6.1.104	निन्दहिंसक्लि०	3.2.146
न निविभ्याम्	6.2.181	न लुमताङ्गस्य	1.1.63	नादिन्याक्रोश	8.4.48	निपात एकाजनाङ्	1.1.14
ननौ पृष्टप्रति०	3.2.121	न लोकाव्यय०	2.3.69	नाद्धस्य	8.2.17	निपातस्य च	6.3.136
नन्दिग्रहिपचा०	3.1.134	नलोपः प्रातिपदि०	8.2.7	नाधार्थप्रत्यये	3.4.62	निपातैर्यद्यदिह०	8.1.30
न न्द्राः संयोगादयः	6.1.3	नलोपः सुप्स्वर०	8.2.2	नानद्यतनवत्	3.3.135	निपानमाहावः	3.3.74
नन्वित्यनुज्ञैष०	8.1.43	नलोपो नञः	6.3.73	नानोर्ज्ञः	1.3.58	निमूलसमूलयोः	3.4.34
नन्वोर्विभाषा	3.2.121	न ल्यपि	6.4.69	नान्तादसंख्या०	5.2.49	निरः कुषः	7.2.46
न पदान्तद्विर्व०	1.1.58	न वशः	6.1.20	नाभ्यस्तस्याचि०	7.3.87	निरभ्योः पूल्वोः	3.3.28
न पदान्ताट्टोर०	8.4.42	न विभक्तौ तुस्माः	1.3.4	नाभ्यस्ताच्छतुः	7.1.78	निरुदकादीनि	6.2.184
नपरे नः	8.3.27	न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः	7.2.59	नामन्त्रिते समा०	8.1.73	निर्वाणोऽवाते	8.2.50
न पादम्याङ्श्या०	1.3.89	नवेति विभाषा	1.1.44	नामन्यतरस्याम्	6.1.177	निर्वृत्तेऽक्षद्यूता०	4.4.19
नपुंसकमनपुंसके	1.2.69	न व्यो लिटि	6.1.46	नामि	6.4.3	निवाते वातत्राणे	6.2.8
नपुंसकस्य झलचः	7.1.72	न शब्दश्लोक०	3.2.23	नाम्यादिशि०	3.4.58	निवासचितिशरी०	3.3.41
नपुंसकाच्च	7.1.19	न शसददवादि०	6.4.126	नाम्रेडितस्या०	6.1.99	निव्यभिभ्यो०	8.3.119
नपुंसकादन्यत०	5.4.109	नशेः षान्तस्य	8.4.36	नावों द्विगोः	5.4.99	निशाप्रदोषाभ्यां	4.3.14
नपुंसके भावे	3.3.114	नशेर्वा	8.2.63	नाव्ययदिक्०	6.2.168	निष्कुलत्रिष्को०	5.4.62
न पूजनात्	5.4.69	नश्च	8.3.30	नाव्ययीभावाद्०	2.4.83	निष्ठा	2.2.36
न प्राच्यभर्गा०	4.1.178	नश्च धातुस्थो०	8.4.27	नासिकास्त	3.2.29	निष्ठा	3.2.102
न बहुव्रीहौ	1.1.29	नश्चापदान्तस्य	8.3.24	नासिकोदरौ०	4.1.55	निष्ठा च द्व्यज०	6.1.200
न भकुर्छुराम्	8.2.79	नश्छव्यप्रशान्	8.3.7	निकटे वसति	4.4.73	निष्ठायां सेटि	6.4.52
न भाभूपूकमि०	8.4.34	न षट्स्वस्रादिभ्यः	4.1.10	निगरणचलना०	1.3.87	निष्ठायामण्यदर्थे	6.4.60
न भूताधिकसं०	6.2.91	न संयोगाद्वम०	6.4.137	निगृह्यानुयोग च	8.2.94	निष्ठा शीङ्स्वि०	1.2.19
न भूवाक्चि०	6.2.19	न संख्यादेः	5.4.89	निघो निमितम्	3.3.87	निष्ठोपमानाद०	6.2.169
न भूसुधियोः	6.4.85	न संज्ञायाम्	5.4.155	नित्यं करोतेः	6.4.108	निष्ठोपसर्गपूर्व०	6.2.110
न भ्राण्नपान्न०	6.3.75	नसत्तनिषत्तानु०	8.2.61	नित्यं कौटिल्ये	3.1.23	निष्प्रवाणिश्च	5.4.160
नमः स्वस्तिस्वा०	2.3.16	न संप्रसारणे सं०	6.1.37	नित्यं क्रीडाजी०	2.2.17	निसमुपविभ्यो०	1.3.30
न मपूर्वोऽपत्ये०	6.4.170	न सामि वचने	5.4.5	नित्यं ड्विः	3.4.99	निसस्तपतावः	8.3.102
नमस्पुरसोर्गत्योः	8.3.40	न सुदुर्भ्यो केव०	7.1.68	नित्यं छन्दसि	4.1.46	नीम्बञ्चुम्रंसु०	7.4.84

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नीचैरनुदात्तः	1.2.30	पङ्गोश्च	4.1.68	परवल्लिङ्गं द्वन्द्व०	2.4.27	पर्वताच्च	4.2.143
नीतौ च तद्युक्तात्	5.3.77	पचो वः	8.2.52	परश्च	3.1.2	पर्श्वादियौधेया	5.3.117
नुगतोऽनुनासि०	7.4.85	पञ्चद्दशतौ वर्गे	5.1.60	परश्वधाङ्गञ्च	4.4.58	पललसूपशाकं	6.2.128
नुदविदोन्दत्रा०	8.2.56	पञ्चमी भयेन	2.1.37	परस्मिन्विभाषा	3.3.138	पलाशादिभ्यो वा	4.3.141
नुम्विसर्जनीय०	8.3.58	पञ्चमी विभक्ते	2.3.42	परस्मैपदानां	3.4.82	पश्चपश्चा च	5.3.33
नृ च	6.4.6	पञ्चम्यपाङ्परिभिः	2.3.10	परस्य च	6.3.8	पश्चात्	5.3.32
नृ चान्यतर०	6.1.184	पञ्चम्या अत्	7.1.31	पराजेरसोढः	1.4.26	पश्यार्थैश्चाना०	8.1.25
नृन्पे	8.3.10	पञ्चम्याः परावः	8.3.51	परादिश्छन्दसि	6.2.199	पाककर्णपर्णपुष्प०	4.1.64
नेटि	7.2.4	पञ्चम्याः स्तोका०	6.3.2	परावनुपात्यय	3.3.38	पाघ्राध्माधेट्०	3.1.137
नेट्यलिटि रधेः	7.1.62	पञ्चम्यामजातौ	3.2.98	परावरयोगे च	3.4.20	पाघ्राध्मास्था०	7.3.78
नेड्वशि कृति	7.2.8	पञ्चम्यास्तसिल्	5.3.7	परावराधमोत्तम०	4.3.5	पाणिघताडघौ	3.2.55
नेतराच्छन्दसि	7.1.26	पणपादमाषशता०	5.1.34	परिक्रयणे संप्र०	1.4.44	पाण्डुकम्बला०	4.2.11
नेदमदसोरकोः	7.1.11	पतः पुम्	7.4.19	परिक्लिश्यमाने	3.4.55	पातौ च बहुलम्	8.3.52
नेन्द्रस्य परस्य	7.3.22	पतिः समास एव	1.4.8	परिखाया ढञ्	5.1:17	पात्रात्ठन्	5.1.46
नेन्सिद्धबध्नाति०	6.3.19	पत्यन्तपुरोहि०	5.1.128	परिनिविभ्यः	8.3.70	पात्राद् घंश्च	5.1.68
नेयङुवङ्स्थाना०	1.4.4	पत्यावैश्वर्ये	6.2.18	परिन्योर्नीणोर्धू०	3.3.37	पात्रेसमितादयश्च	2.1.48
नेरनिधाने	6.2.192	पत्युर्नो यज्ञसं०	4.1.33	परिपन्थं च तिष्ठति	4.4.36	पाथोनदीभ्यां	4.4.111
नेर्गदनदपतपद०	8.4.17	पत्रपूर्वादञ्	4.3.122	परिप्रत्युप्रापा०	6.2.33	पादः पत्	6.4.130
नेर्बिडज्बिरीस०	5.2.32	पत्राध्वर्युपरि०	4.3.123	परिमाणाख्यायां	3.3.20	पादशतस्य	5.4.1
नेर्विशः	1.3.17	पथः पन्थ च	4.3.29	परिमाणान्तस्या०	7.3.17	पादस्य पदाज्या०	6.3.52
नोङ्धात्वोः	6.1.175	पथः ष्कन्	5.1.75	परिमाणे पचः	3.2.33	पादस्य लोपो०	5.4.138
नोत्तरपदेऽनु०	6.2.142	पथि च छन्दसि	6.3.108	परिमुखं च	4.4.29	पादार्घाभ्यां च	5.4.25
नोत्वद्वर्ध्रबि०	4.3.151	पथिमथोः सर्व०	6.1.199	परिवृतो रथः	4.2.10	पादोऽन्यतर०	4.1.8
नोदात्तस्वरितो०	8.4.67	पथिमथ्यृभुक्षा०	7.1.85	परिव्यवेभ्यः क्रियः	1.3.18	पानं देशे	8.4.9
नोदात्तोपदेश०	7.3.34	पथो विभाषा	5.4.72	परिषदो ण्यः	4.4.44	पापं च शिल्पिनि	6.2.68
नोनयतिध्वनय०	3.1.51	पथ्यतिथिवस०	4.4.104	परिषदो ण्यः	4.4.101	पापाणके कुत्सितैः	2.1.54
नोपधात्थफा०	1.2.23	पदमस्मिन्दृश्यम्	4.4.87	परिस्कन्दः प्राचा०	8.3.75	पाय्यसांनाय्य०	3.1.129
नोपधायाः	6.4.7	पदरुजविशस्पृ०	3.3.16	परेरभितो भावि०	6.2.182	पारस्करप्रभृ०	6.1.157
नौगदनदपङ्गस्वनः	3.3.64	पदव्यवायेऽपि	8.4.38	परेर्मृषः	1.3.82	पारायणतुराय०	5.1.72
नौ ण च	3.3.60	पदस्य	8.1.16	परेर्वर्जने	8.1.5	पाराशर्यशि०	4.3.110
नौ द्व्यचष्ठन्	4.4.7	पदात्	8.1.17	परेश्च	8.3.74	पारेमध्ये षष्ठ्या	2.1.18
नौवयोधर्मविष०	4.4.91	पदान्तस्य	8.4.37	परेश्च घाङ्कयोः	8.2.22	पार्श्वेनान्विच्छति	5.2.75
नौ वृ धान्ये	3.3.48	पदान्तस्यान्यतर०	7.3.9	परोक्षे लिट्	3.2.116	पाशादिभ्यो यः	4.2.49
न्यग्रोधस्य च	7.3.5	पदान्ताद्वा	6.1.76	परोवरपरंपर०	5.2.10	पितरामातरा च	6.3.33
न्यङक्वादीनां च	7.3.53	पदास्वैरिबा०	3.1.119	परौ घः	3.3.84	पिता मात्रा	1.2.70
न्यधी च	6.2.53	पदेऽपदेशे	6.2.7	परौ भुवोऽवज्ञाने	3.3.55	पितुर्यच्च	4.3.79
		पदोत्तरपदं गृह्णाति	4.4.39	परौ यज्ञे	3.3.47	पितृव्यमातुल०	4.2.36
प		पद्दन्नोमास्ह०	6.1.63	पर्पादिभ्यः ष्ठन्	4.4.10	पितृष्वसुश्छण्	4.1.132
पक्षात्तिः	5.2.25	पद्यत्यतदर्थे	6.3.53	पर्यभिभ्यां च	5.3.9	पिष्टाच्च	4.3.146
पक्षिमत्स्यमृगा०	4.4.35	पन्थो ण नित्यम्	5.1.76	पर्याप्तिवचनेष्व०	3.4.66	पीलाया वा	4.1.118
पङ्क्तिर्विंशति०	5.1.59	परः सन्निकर्षः	1.4.109	पर्यायार्हणोत्प०	3.3.111	पुंयोगादाख्यायाम्	4.1.48

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुंवत्कर्मधारय०	6.3.42	पूर्वपदात्संज्ञाया०	8.4.3	प्रतिकण्ठार्थल०	4.4.40	प्रवृद्धादीनां च	6.2.147
पुंसि संज्ञायां	3.3.118	पूर्वपरावरदक्षि०	1.1.34	प्रतिजनादिभ्यः	4.4.99	प्रशंसायां रूपम्	5.3.66
पुंसोऽसुङ्	7.1.89	पूर्ववत्सनः	1.3.62	प्रतिनिधिप्रति०	2.3.11	प्रशंसावचनैश्च	2.1.66
पुगन्तलघूपधस्य	7.3.86	पूर्ववदश्ववडवौ	2.4.27	प्रतिपथमेति	4.4.42	प्रशस्यस्य श्रः	5.3.60
पुच्छभाण्डचीव०	3.1.20	पूर्वसदृशसमो०	2.1.31	प्रतिबन्धि चिर०	6.2.6	प्रश्ने चासन्न०	3.2.117
पुत्रः पुम्भ्यः	6.2.132	पूर्वादिनिः	5.2.86	प्रतियोगे पंचम्याः	5.4.44	प्रष्ठोऽग्रगामिनि	8.3.92
पुत्राच्छ च	5.1.40	पूर्वादिभ्यो नव०	7.1.16	प्रतिश्रवणे च	8.2.99	प्रसमुपोदः पाद०	8.1.6
पुत्रान्तादन्य०	4.1.159	पूर्वाधरावराणा०	5.3.39	प्रतिष्कशश्च	6.1.151	प्रसंभ्यां जानु०	5.4.129
पुत्रेऽन्यतरस्याम्	6.3.22	पूर्वापरप्रथमचरम०	2.1.58	प्रतिस्तब्धनिस्त०	8.3.114	प्रसितोत्सुकाभ्यां	2.3.44
पुमः खय्यम्परे	8.3.6	पूर्वापराधरोत्तर०	2.2.1	प्रतेरंश्वादयस्त०	6.2.193	प्रस्कण्वहरि०	6.1.153
पुमान्त्रिया	1.2.67	पूर्वाह्णापराह्णा०	4.3.28	प्रतेरुरसः सप्तमी०	5.4.82	प्रस्त्योऽन्यतर०	8.2.54
पुरा च परीप्सा०	8.1.42	पूर्वे कर्तरि	3.2.20	प्रतेश्च	6.1.25	प्रस्थपुरवहा०	4.2.122
पुराणप्रोक्तेषु	4.3.105	पूर्वे भूतपूर्वे	6.2.22	प्रत्नपूर्वविश्वे०	5.3.111	प्रस्थेऽवृद्धमक०	6.2.87
पुरि लुङ् चास्मे	3.2.122	पूर्वैः कृतमिनयौ	4.4.133	प्रत्यपिभ्यां ग्रहेः	3.1.118	प्रस्थोत्तरपद०	4.2.110
पुरुषश्चान्वा०	6.2.190	पूर्वोऽभ्यासः	6.1.4	प्रत्यभिवादे०	8.2.83	प्रहरणम्	4.4.57
पुरुषहस्तिभ्या०	5.2.38	पृथग्विनाना०	2.3.32	प्रत्ययः	3.1.1	प्रहासे च मन्यो०	1.4.106
पुरुषात्प्रमाणे०	4.1.24	पृथ्वादिभ्य०	5.1.122	प्रत्ययलोपे प्रत्य०	1.1.62	प्राक् कडारात्	2.1.3
पुरे प्राचाम्	6.2.99	पृषोदरादीनि	6.3.109	प्रत्ययस्थात्का०	7.3.44	प्राक् क्रीताच्छः	5.1.1
पुरोऽग्रतोऽग्रेषु	3.2.18	पेषं वासवाहन०	6.3.58	प्रत्ययस्य लुक्	1.1.61	प्राक्सितादड्०	8.3.63
पुरोऽव्ययम्	1.4.67	पैलादिभ्यश्च	2.4.59	प्रत्ययोत्तरपद०	7.2.98	प्रागिवात्कः	5.3.70
पुवः संज्ञायाम्	3.2.185	पोटायुवतिस्तो०	2.1.65	प्रत्याङ्भ्यां	1.3.59	प्रागेकादशभ्यो०	5.3.49
पुषादिद्युता०	3.1.55	पोरदुपधात्	3.1.98	प्रत्याङ्भ्यां	1.4.40	प्राग्घिताद्यत्	4.4.75
पुष्करादिभ्यो	5.2.135	पौराडाशपुरो०	4.3.70	प्रथने वावशब्दे	3.3.33	प्राग्दिशो विभक्तिः	5.3.1
पुष्यसिद्ध्यौ	3.1.116	प्यायः पी	6.1.28	प्रथनमचरम०	1.1.32	प्राग्दीव्यतोऽण्	4.1.83
पूःसर्वयोर्दारि०	3.2.41	प्रकारवचने जाती०	5.3.69	प्रथमयोः पूर्व०	6.1.102	प्राग्रीश्वरान्निपाताः	1.4.56
पूगाञ्ञ्योऽग्रा०	5.3.112	प्रकारवचने थाल्	5.3.23	प्रथमानिर्दिष्टं	1.2.43	प्राग्वतेष्ठञ्	5.1.18
पूगेष्वन्यतर०	6.2.28	प्रकारे गुणवचनस्य	8.1.12	प्रथमायाश्च	7.2.88	प्राग्वहतेष्ठक्	4.4.1
पूङः क्त्वा च	1.2.22	प्रकाशनस्थेया०	1.3.23	प्रथमोऽचिरोप०	6.2.56	प्राचां कटादेः	4.2.139
पूङश्च	7.2.51	प्रकृत्यान्तः०	6.1.115	प्रधानप्रत्ययार्थ०	1.2.56	प्राचां क्रीडायाम्	6.2.74
पूङ्यजोः शानन्	3.2.128	प्रकृत्या भगा०	6.2.137	प्रनिरन्तःशरेक्षु०	8.4.5	प्राचां ग्रामनगरा०	7.3.14
पूतनात्पूजित०	8.1.67	प्रकृत्याशिषि	6.3.83	प्रभवति	4.3.83	प्राचां नगरान्ते	7.3.24
पूजायां नान०	8.1.37	प्रकृत्यैकाच्	6.3.163	प्रभौ परिवृढः	7.2.21	प्राचां ष्फतद्धितः	4.1.17
पूतक्रतोरै च	4.1.36	प्रकृष्टे ठञ्	5.1.108	प्रमदसंमदौ	3.3.68	प्राचामवृद्धा०	4.1.160
पूरणगुणसुहि०	2.2.11	प्रजने वीयतेः	6.1.55	प्रमाणे च	3.4.51	प्राचामुपादेरड०	5.3.80
पूरणाद्भागे	5.3.48	प्रजने सर्तेः	3.3.71	प्रमाणे द्वयस०	5.2.37	प्राणभृज्जाति०	5.1.129
पूरणार्धाट्ठन्	5.1.48	प्रजोरिनिः	3.2.156	प्रयच्छति गर्हर्यम्	4.4.30	प्राणिरजतादि०	4.3.154
पूर्णाद्विभाषा	5.4.149	प्रज्ञादिभ्यश्च	5.4.38	प्रयाजानुयाजौ	7.3.62	प्राणिस्थादातो	5.2.96
पूर्वं तु भाषायाम्	8.2.98	प्रज्ञाश्रद्धार्चा०	5.2.101	प्रयै रोहिष्यै	3.4.10	प्रातिपदिकान्त०	8.4.11
पूर्वकालैकसर्व०	2.1.49	प्रणवष्टेः	8.2.89	प्रयोजनम्	5.1.109	प्रातिपदिकार्थ०	2.3.46
पूर्वत्रासिद्धम्	8.2.1	प्रणाय्यो	3.1.128	प्रयोज्यनियो०	7.3.68	प्रादयः	1.4.58
पूर्वपदात्	8.3.106	प्रतिः प्रतिनि०	1.4.92	प्रवाहणस्य ढे	7.3.28	प्रादस्वाङ्गं संज्ञा०	6.2.183

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्राद्वहः 1.3.81
प्राध्वं बन्धने 1.4.78
प्राप्तापन्ने च द्विती० 2.2.4
प्रायभवः 4.3.39
प्रावृट्शरत्काला० 6.3.15
प्रावृष एण्यः 4.3.17
प्रावृषष्ठप् 4.3.26
प्रियवशे वदः 3.2.38
प्रियस्थिरस्फि० 6.4.157
प्रीतौ च 6.2.16
प्रुसृल्वः सम० 3.1.149
प्रे दाज्ञः 3.2.6
प्रे द्रुस्तुस्रुवः 3.3.27
प्रे वणिजाम् 3.3.52
प्रे लपसृद्रुमथ० 3.2.145
प्रे लिप्सायाम् 3.3.46
प्रेष्यब्रुवोर्हविषो 2.3.61
प्रे स्रोऽयज्ञे 3.3.32
प्रैषातिसर्गप्राप्त० 3.3.163
प्रोक्ताल्लुक् 4.2.64
प्रोपाभ्यां युजे० 1.3.64
प्रोपाभ्यां समर्था० 1.3.42
प्लक्षादिभ्योऽण् 4.3.164
प्लुतप्रगृह्या 6.1.125
प्लुतावैच इदुतौ 8.2.106
प्वादीनां ह्रस्वः 7.3.80

फ

फक्फिञोरन्य० 4.1.91
फणां च सप्ता० 6.4.125
फलेग्रहिरात्मं० 3.2.26
फले लुक् 4.3.163
फल्गुनीप्रोष्ठ० 1.2.60
फाण्टांह्रतिमि० 4.1.150
फेनादिलच्च 5.2.99
फेश्छ च 4.1.149

ब

बन्धने चर्षौ 4.4.96
बन्धुनि बहुव्रीहौ 6.1.14
बन्धे च विभाषा 6.3.13
बभूथाततन्थ० 7.2.64
बर्हिषि दत्तम् 4.4.119
बलादिभ्यो 5.2.136
बहुगणवतुडति 1.1.23
बहुपूगगण० 5.2.52
बहुप्रजाश्छ० 5.4.123
बहुलं छन्दसि 2.4.39
बहुलं छन्दसि 2.4.73
बहुलं छन्दसि 2.4.76
बहुलं छन्दसि 3.2.88
बहुलं छन्दसि 5.2.122
बहुलं छन्दसि 6.1.34
बहुलं छन्दसि 7.1.8
बहुलं छन्दसि 7.1.10
बहुलं छन्दसि 7.1.103
बहुलं छन्दसि 7.3.97
बहुलं छन्दसि 7.4.78
बहुलं छन्दस्य० 6.4.75
बहुलमाभीक्ष्ण्ये 3.2.81
बहुवचनस्य 8.1.21
बहुवचने झल्येत 7.3.103
बहुव्रीहाविद० 6.2.162
बहुव्रीहेरूधसौ 4.1.25
बहुव्रीहेश्चान्तो० 4.1.52
बहुव्रीहौ प्रकृत्या 6.2.1
बहुव्रीहौ विश्वं 6.2.106
बहुव्रीहौ सक्थ्य० 5.4.113
बहुव्रीहौ संख्ये० 5.4.73
बहुषु बहुवचनम् 1.4.21
बहोर्नञ्वदुत्तर० 6.2.175
बहोर्लोपो भू च 6.4.158
बह्वच इञः 2.4.66
बह्वचः कूपेषु 4.2.73
बह्वचोऽन्तो० 4.3.67
बह्वचो मनुष्य० 5.3.78
बह्वचूर्वपदा० 4.4.64
बह्वन्यतरस्याम् 6.2.30
बह्वल्पार्थाच्छ० 5.4.42
बह्वादिभ्यश्च 4.1.45
बाष्पोष्मभ्या० 3.1.16
बाह्वन्तात्संज्ञा० 4.1.67
बाह्वादिभ्यश्च 4.1.96
बिभेतेर्हेतुभये 6.1.56
बिल्वकादिभ्य० 6.4.153
बिल्वादिभ्यो० 4.3.136
बिस्ताच्च 5.1.31
बुधयुधनशज० 1.3.86
बृहत्या आच्छा० 5.4.6
ब्रह्मणस्त्वः 5.1.136
ब्रह्मणो जान० 5.4.104
ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु 3.2.87
ब्रह्महस्तिभ्यां 5.4.78
ब्राह्मणकोष्णिके 5.2.71
ब्राह्मणमाणव 4.2.42
ब्राह्मोऽजातौ 6.4.171
ब्रुव ईट् 7.3.93
ब्रुवः पञ्चाना० 3.4.84
ब्रुवो वचिः 2.4.53
ब्रूहिप्रेष्यश्रौष० 8.2.91

भ

भक्ताख्यास्त० 6.2.71
भक्ताण्णः 4.4.100
भक्तादणन्य० 4.4.68
भक्तिः 4.3.95
भक्ष्येण मिश्री० 2.1.35
भजो ण्विः 3.2.62
भञ्जभासमिदो 3.2.161
भञ्जेश्च चिणि 6.4.33
भय्यप्रवय्ये च 6.1.83
भर्गात्त्रैगर्ते 4.1.111
भवतष्ठक्छसौ 4.2.115
भवतेरः 7.4.73
भविष्यति गम्यादयः 3.3.3
भविष्यति मर्यादा० 3.3.136
भवे छन्दसि 4.4.110
भव्यगेयप्रवचनी० 3.4.68
भस्त्रादिभ्यः ष्ठन् 4.4.16
भस्त्रैषाजाज्ञा० 7.3.47
भस्य 6.4.129
भस्य टेर्लोपः 7.1.88
भागाद्यच्च 5.1.49
भावकर्मणोः 1.3.13
भावलक्षणे 3.4.16
भाववचनाश्च 3.3.11
भावे 3.3.18
भावे च 4.4.144
भावेऽनुपसर्गस्य 3.3.75
भाषायां सदव० 3.2.108
भासनोपसंभा० 1.3.47
भिक्षादिभ्योऽण् 4.2.38
भिक्षासेनादायेषु 3.2.17
भित्तं शकलम् 8.2.59
भिद्योद्धयौ नदे 3.1.115
भियः क्रुक्लुकनौ 3.2.174
भियोऽन्यतर० 6.4.115
भियो हेतुभये 7.3.40
भीत्रार्थानां भयहेतुः 1.4.25
भीमादयोऽपा० 3.4.74
भीरोः स्थानम् 8.3.81
भीस्म्योर्हेतुभये 1.3.68
भीह्रीभृहुमद० 6.1.192
भीह्रीभृहुवां 3.1.39
भुजन्युब्जौ 7.3.61
भुजोऽनवने 1.3.66
भुवः प्रभवः 1.4.31
भुव संज्ञान्तः० 3.2.179
भुवश्च 3.2.138
भुवश्च 4.1.47
भुवश्च महा० 8.2.71
भुवो भावे 3.1.107
भुवो वुग्लुङ्० 6.4.88
भूतपूर्वे चरट् 5.3.53
भूते 3.2.84
भूते च 3.3.140
भूतेऽपि दृश्यन्ते 3.3.2
भूवादयो धातवः 1.3.1
भूषणेऽलम् 1.4.64
भूसुवोस्तिङि 7.3.88
भृञामित् 7.4.76
भृञोऽसंज्ञायाम् 3.1.112
भृशादिभ्यो 3.1.12
भोज्यं भक्ष्ये 7.3.69
भोभगोअघो० 8.3.17

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भौरिक्याद्येषु०	4.2.54	मन्त्रे श्वेतवहो०	3.2.71	मिश्रं चानुपसर्ग०	6.2.154	यञञोश्च	2.4.64
भ्यसो भ्यम्	7.1.30	मन्त्रेष्वाङ्यादे०	6.4.141	मीनातिमिनो०	6.1.50	यञश्च	4.1.16
भ्रस्जो रोपध०	6.4.47	मन्त्रे सोमा०	6.3.131	मीनातेर्निगमे	7.3.81	यञिञोश्च	4.1.101
भ्राजभासधु०	3.2.177	मन्थौदनसक्तु	6.3.60	मुखं स्वांगम्	6.2.167	यतश्च निर्धारणम्	2.3.41
भ्राजभासभाष०	7.4.3	मन्यकर्मण्यना०	2.3.17	मुखनासिकावच०	1.1.8	यतोऽनावः	6.1.213
भ्रातरि च	4.1.164	मपर्यन्तस्य	7.2.91	मुचोऽकर्मकस्य	7.4.57	यत्तदेतेभ्यः परि०	5.1.39
भ्रातुर्व्यच्च	4.1.144	मय उञो वो वा	8.3.33	मुण्डमिश्रश्ल०	3.1.21	यथातथयथापुर०	7.3.31
भ्रातृपुत्रौ स्वसृ०	1.2.68	मयट् च	4.3.82	मुद्गादण्	4.4.25	यथातथयोरसू०	3.4.28
भ्रुवो वुक्च	4.1.125	मयड्वैतयो०	4.3.143	मूर्तौ घनः	3.3.77	यथामुखसंमु०	5.2.6
म		मयतेरिदन्य०	6.4.70	मूलमस्याबर्हि	4.4.88	यथाविध्यनुप्र०	3.4.4
मघवा बहुलम्	6.4.128	मयूरव्यंसकाद०	2.1.72	मृजेर्विभाषा	3.1.113	यथासंख्यमनु०	1.3.10
मड्डुकझर्झराद०	4.4.56	मये च	4.4.138	मृजेर्वृद्धिः	7.2.114	यथासादृश्ये	2.1.7
मतजनहलात्०	4.4.97	मस्करमस्क०	6.1.154	मृडमृदगुध०	1.2.7	यथास्वे यथा०	8.1.14
मतिबुद्धिपूजा०	3.2.188	मस्जिनशोर्झलि	7.1.60	मृदस्तिकन्	5.4.39	यद्धितुपरं छन्दसि	8.1.56
मतुवसो रु संबुद्धौ	8.3.1	महाकुलाद०	4.1.141	मृषस्तिति०	1.2.20	यद्वृत्तान्नित्यम्	8.1.66
मतोः पूर्व०	6.1.219	महान्व्रीह्यप०	6.2.38	मेघर्तिभयेषु कृञः	3.2.43	यमः समुपनिविषु	3.3.63
मतोश्च बह्वजङ्गात्	4.2.72	महाराजप्रोष्ठ०	4.2.35	मेर्निः	3.4.89	यमरमनमातां	7.2.73
मतौ च	4.4.136	महाराजाट्टञ्	4.3.97	मोऽनुस्वारः	8.3.23	यमो गन्धने	1.2.15
मतौ छः सूक्त०	5.2.59	महेन्द्राद्घाणौ च	4.2.29	मो नो धातोः	8.2.64	ययतोश्चातदर्थे	6.2.156
मतौ बह्वचो०	6.3.119	माङि लुङ्	3.3.175	मो राजि समः	8.3.25	यरोऽनुनासिके०	8.4.45
मत्वर्थे मास०	4.4.128	माणवचरकाभ्यां	5.1.11	म्रियतेर्लुङ्लिङोः	1.3.61	यवययवकषष्टिका०	5.2.3
मदोऽनुपसर्गे	3.3.67	मातरपितरा०	6.3.32	म्वोश्च	8.2.65	यश्च यङः	3.2.176
मद्रवज्योः कन्	4.2.131	मातुःपितुर्भ्याम०	8.3.85	**य**		यसोऽनुपसर्गात्	3.1.71
मद्रात्परिवापणे	5.4.67	मातुरुत्संख्या०	4.1.115			यस्कादिभ्यो गोत्रे	2.4.63
मद्रेभ्योऽञ्	4.2.108	मातृपितृभ्यां	8.3.84	यः सौ	7.2.110	यस्मात्प्रत्ययवि०	1.4.13
मधुबभ्रोर्ब्राह्म	4.1.106	मातृष्वसुश्च	4.1.134	यङश्चाप्	4.1.74	यस्मादधिकं यस्य	2.3.9
मधोः	4.4.139	मात्रोपज्ञोपक्रम०	6.2.14	यङि च	7.4.30	यस्य च भावेन	2.3.37
मधोर्ञ च	4.4.129	माथोत्तरपद०	4.4.37	यङोऽचि च	2.4.74	यस्य चायामः	2.1.16
मध्याद् गुरौ	6.3.11	मादुपधायाश्च	8.2.9	यङो वा	7.3.94	यस्य विभाषा	7.2.15
मध्यान्मः	4.3.8	मानपश्वङ्गयोः	5.3.51	यचि भम्	1.4.18	यस्य हलः	6.4.49
मध्ये पदे निवेचने	1.4.76	माने वयः	4.3.162	यच्चयत्रयोः	3.3.148	यस्येति च	6.4.148
मध्वादिभ्यश्च	4.2.86	मान्बधदान्शान्०	3.1.6	यजजपदशां यङः	3.2.166	याजकादिभिश्च	2.2.9
मनः	3.2.82	मायायामण्	4.4.124	यजध्वैनमिति च	7.1.43	याज्यान्तः	8.2.90
मनः	4.1.11	मालादीनां च	6.2.88	यजयाचयत०	3.3.90	याडापः	7.3.113
मनसः संज्ञायाम्	6.3.4	मासाद्वयसि	5.1.81	यजयाचरुचप्रव०	7.3.66	याप्ये पाशप्	5.3.47
मनुष्यतत्स्थ०	4.2.134	मितनखे च	3.2.34	यजुष्युरः	6.1.117	यावति विन्द०	3.4.30
मनोरौ वा	4.1.38	मितां ह्रस्वः	6.4.92	यजुष्येकेषाम्	8.3.103	यावत्पुरानिपात०	3.3.4
मनोजातावo	4.1.161	मित्रे चर्षौ	6.3.130	यजेश्च करणे	2.3.63	यावदवधारणे	2.1.8
मन्क्तिन्व्याख्या०	6.2.151	मिथ्योपपदा०	1.3.71	यज्ञकर्मण्यजप०	1.2.34	यावद्यथाभ्याम्	8.1.36
मन्त्रे घसह्वर०	2.4.80	मिदचोऽन्त्या०	1.1.47	यज्ञर्त्विग्भ्यां	5.1.71	यावादिभ्यः कन्	5.4.29
मन्त्रे वृषेषपच०	3.3.96	मिदेर्गुणः	7.3.82	यज्ञे समि स्तुवः	3.3.31	यासुट् परस्मै०	3.4.103

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यीवर्णयोर्दीधीवे० 7.4.53
युक्तारोहृयादयश्च 6.2.81
युक्ते च 6.2.66
युग्यं च पत्रे 3.1.121
युजेरसमासे 7.1.71
युप्लुवोदीर्घ० 6.4.58
युवा खलतिप० 2.1.67
युवाल्पयो: कन० 5.3.64
युवावौ द्विव० 7.2.92
युवोरनाकौ 7.1.1
युष्मत्ततक्षु० 8.3.103
युष्मदस्मदो: 8.1.20
युष्मदस्मदोरना० 7.2.86
युष्मदस्मदोरन्य० 4.3.1
युष्मदस्मदोर्ङसि 6.1.211
युष्मदस्मद्भ्यां 7.1.27
युष्मद्युपपदे स० 1.4.105
यूनश्च कुत्सा० 4.1.167
यूनस्ति: 4.1.77
यूनि लुक् 4.1.90
यूयवयौ जसि 7.2.93
यूस्त्याख्यौ नदी 1.4.3
ये च 6.4.109
ये च तद्धिते 6.1.61
ये चाभावकर्म० 6.4.168
येन विधिस्तदन्त० 1.1.72
येनाङ्गविकार: 2.3.20
ये यज्ञकर्मणि 8.2.88
ये विभाषा 6.4.43
येषां च विरोध: 2.4.9
योगप्रमाणे च० 1.2.55
योगाद्यच्च 5.1.102
योऽचि 7.2.89
योजनं गच्छति 5.1.74
योपधाद्गुरु० 5.1.132

र

रक्तो हलादे० 6.4.161
रक्ते 5.4.32
रक्षति 4.4.33
रक्षोयातूनां ह० 4.4.121
रोरमनुष्ये० 4.2.100
रज:कृष्यासु० 5.2.112
रञ्जेश्च 6.4.26
रथवदयोश्च 6.3.102
रथाद्यत् 4.3.121
रदाभ्यां निष्ठातो 8.2.42
रधादिभ्यश्च 7.2.45
रधिजभोरचि 7.1.61
रभेरशब्लिटो: 7.1.63
रलो व्युपधाद्ध० 1.2.26
रश्मौ च 3.3.53
रषाभ्यां नो ण: 8.4.1
रसादिभ्यश्च 5.2.95
राजदन्तादिषु 2.2.31
राजनि युधि० 3.2.95
राजन्यबहुवचन० 6.2.34
राजन्यादिभ्यो 4.2.53
राजन्वान्सौराज्ये 8.2.14
राजश्वशुराद्यत् 4.1.137
राजसूयसूर्य० 3.1.114
राजा च 6.2.59
राजा च प्रशंसा० 6.2.63
राजान:सखि० 5.4.91
राज्ञ: क च 4.2.140
रात्राह्नाहा: पुं० 2.4.29
रात्रे: कृति वि० 6.3.72
रात्रेश्चाजसौ 4.1.31
रात्र्यह:संवत्स० 5.1.87
रात्सस्य 8.2.24
राधीक्ष्योर्यस्य० 1.4.39
राधो हिंसायाम् 6.4.123
रायो हलि 7.2.85
राल्लोप: 6.4.21
राष्ट्रावारपारा० 4.2.93
रिक्ते विभाषा 6.1.208
रिङ् शयग्लिङ्षु 7.4.28
रि च 7.4.51
रीगृदुपधस्य च 7.4.90
रीङृत: 7.4.27
रुग्रिकौ च लुकि 7.4.91
रुच्यर्थानां प्रीय० 1.4.33
रुजार्थानां भाव० 2.3.54
रुदविदमुषग्रहि० 1.2.8
रुदश्च पंचभ्य: 7.3.98
रुदादिभ्य: सार्व० 7.2.76
रुधादिभ्य: श्नम् 3.1.78
रुष्यमत्वरसंघु० 7.2.28
रुह: पोऽन्यतर० 7.3.43
रुपादाहतप्र० 5.2.120
रेवतीजगती० 4.4.122
रेवत्यादिभ्य० 4.1.146
रैवतिकादिभ्य० 4.3.131
रो: सुपि 8.3.16
रोगाख्यायां 3.3.108
रोगाच्चापनयने 5.4.49
रोणी 4.2.78
रोपधेतो: प्राचां 4.2.123
रो रि 8.3.14
रोऽसुपि 8.2.69
वोंरुपधाया० 8.2.76

ल

ल: कर्मणि च 3.4.69
ल: परस्मैपदम् 1.4.99
लक्षणहेत्वो: 3.2.126
लक्षणे जायाप० 3.2.52
लक्षणेत्थंभूता० 1.4.90
लक्षणेनाभिप्रती० 2.1.14
लङ: शाकटायन० 3.4.111
लट: शतृशान० 3.2.124
लट् स्मे 3.2.118
लभेश्च 7.1.64
लवणाट्ठञ् 4.4.52
लवणाल्लुक् 4.4.24
लशक्वतद्धिते 1.3.8
लषपतपदस्था० 3.2.154
लस्य 3.4.77
लाक्षारोचनाट्ठक् 4.2.2
लिङ: सलोपोऽन० 7.2.79
लिङ: सीयुट् 3.4.102
लिङर्थे लेट् 3.4.7
लिङाशिषि 3.4.116
लिङ् च 3.3.159
लिङ् चोर्ध्वमौहू० 3.3.9
लिङ्चोर्ध्वमौहू० 3.3.164
लिङ्निमित्ते 3.3.139
लिङ् यदि 3.3.168
लिङ्याशिष्यङ् 3.1.86
लिङ्सिचावात्म० 1.2.11
लिङ्सिचोरात्म० 7.2.42
लिट: कानज्वा 3.3.106
लिटस्तझयोरेशि० 3.4.81
लिटि धातोरनभ्या० 6.1.8
लिटि वयो य: 6.1.38
लिट् च 3.4.115
लिट्यन्यतरस्याम् 2.4.40
लिट्यभ्यासस्यो० 6.1.17
लिङ् यङोश्च 6.1.29
लिति 6.1.193
लिपिसिचिह्नश्च 3.1.53
लिप्स्यमानसि० 3.3.7
लिय: सम्मानन० 1.3.70
लीलोर्नुग्लुकाव० 7.3.39
लुक्तद्धितलुकि 1.2.49
लुक् स्त्रियाम् 4.1.109
लुग्वा दुहदिह० 7.3.73
लुङ् 3.2.110
लुङि च 2.4.43
लुङ्लङ्लृङ्० 6.4.71
लुङ्सनोर्घस्लृ 2.4.37
लुट: प्रथमस्य 2.4.85
लुटि च क्लृप: 1.3.93
लुपसदचरजप० 3.1.24
लुपि युक्तवद्व्या० 1.2.51
लुप् च 4.3.166
लुबविशेषे 4.2.4
लुब्योगाप्रख्या० 1.2.54
लुभो विमोहने 7.2.54
लुम्मनुष्ये 5.3.98
लृट: सद्वा 3.3.14
लृट् शेषे च 3.3.13
लेटोऽडाटौ 3.4.94
लोकसर्वलोका० 5.1.44

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लोटो लङ्वत्	3.4.85	वयसि दन्तस्य	5.4.141	वाक्यादेरामन्त्रि०	8.1.8	वासरूपोऽस्त्रि०	3.1.94
लोट् च	3.3.162	वयसि पूरणात्	5.2.130	वा क्रोशदैन्ययोः	6.4.61	वासुदेवार्जुनाभ्यां	4.3.98
लोट् च	8.1.52	वयसि प्रथमे	4.1.20	वा गमः	1.2.13	वा सुप्यापिशलेः	6.1.92
लोडर्थलक्षणे च	3.3.8	वयस्यासु मूर्ध्नो	4.4.127	वा घोषमिश्र०	6.3.56	वाह ऊठ्	6.4.132
लोपः पिबतेरी०	7.4.4	वरणादिभ्यश्च	4.2.82	वाचंयमपुरं०	6.3.69	वाहः	4.1.61
लोपः शाकल्यस्य	8.3.19	वर्गान्ताच्च	4.3.63	वा चित्तविरागे	6.4.91	वा ह च छन्दसि	5.3.13
लोपश्चास्यान्य०	6.4.107	वर्ग्यादयश्च	6.2.131	वाचि यमो व्रते	3.2.40	वाहनमाहितात्	8.4.8
लोपस्त आत्मने०	7.1.41	वर्चस्केऽवस्करः	6.1.148	वाचो ग्मिनिः	5.2.124	वाहिताग्न्यादिषु	2.2.37
लोपे विभाषा	8.1.45	वर्णदृढादिभ्यः	5.1.123	वाचो व्याहृता०	5.4.35	वाहीकग्रामेभ्यश्च	4.2.117
लोपो यि	6.4.118	वर्णादनुदात्तात्तो०	4.1.39	वा छन्दसि	3.4.88	विंशतिकात्खः	5.1.32
लोपो व्योर्वलि	6.1.66	वर्णाद् ब्रह्मचा०	5.2.134	वा छन्दसि	3.4.88	विंशतित्रिंशद्भ्यां	5.1.24
लोमादिपामा०	5.2.100	वर्णे चानित्ये	5.4.31	वा छन्दसि	6.1.106	विंशत्यादिभ्य०	5.2.56
लोहितादिडा०	3.1.13	वर्णो वर्णेन	2.1.69	वा जाते	6.2.171	विकर्णकुषीतका	4.1.124
लोहितान्मणौ	5.4.30	वर्णो वर्णेष्वनेते	6.2.3	वा जृभ्रमुत्रसाम्	6.4.124	विकर्णशुङ्गच्छ०	4.1.117
ल्यपि च	6.1.41	वर्णौ वुक्	4.2.103	वातातीसारा०	5.2.129	विकशमिपरिभ्यः	8.3.96
ल्यपि लघुपूर्वात्	6.4.56	वर्तमानसामीप्ये	3.3.131	वा दान्तशान्त०	7.2.27	विचार्यमाणानाम्	8.2.97
ल्युट् च	3.3.115	वर्तमाने लट्	3.2.123	वा द्रुहमुहष्णुह०	8.2.33	विज इट्	1.2.2
ल्वादिभ्यः	8.2.44	वर्षप्रमाण ऊलोप०	3.4.32	वा नपुंसकस्य	7.1.79	विजुपे छन्दसि	3.2.73
		वर्षस्याभविष्यति	7.3.16	वा निंसनिक्षनि०	8.4.32	विड्वनोरनुनासि०	6.4.41
व		वर्षाभ्यष्ठक्	4.3.18	वान्तो यि प्रत्यये	6.1.79	वित्तो भोगप्रत्य०	8.2.58
वच उम्	7.4.20	वर्षाभ्वश्च	6.4.84	वान्यस्मिन्स०	4.1.165	विदांकुर्वन्तित्वत्य०	3.1.41
वचिस्वपियजादी०	6.1.15	वर्षाल्लुक्च	5.1.87	वान्यस्य संयोगादेः	6.4.68	विदिभिदिच्छि०	3.2.162
वचोऽशब्दसंज्ञा०	7.3.67	वले	6.3.118	वा पदान्तस्य	8.4.59	विदूराञ्ज्यः	4.3.84
वञ्चिलु ञ्चृतश्च	1.2.24	वशं गतः	4.4.86	वा बहूनां जाति०	5.3.93	विदेः शतुर्वसुः	7.1.36
वञ्चेर्गतौ	7.3.63	वश्चास्यान्यतर०	6.1.39	वा भावकरणयोः	8.4.10	विदो लटो वा	3.4.83
वतण्डाच्च	4.1.108	वसतिक्षुधोरिट्	7.2.52	वा भुवनम्	6.2.20	विद्यायोनिसंब०	4.3.77
वतोरिड् वा	5.1.23	वसन्ताच्च	4.3.20	वा भ्राशभ्लाशव	3.1.70	विधिनिमन्त्र०	3.3.161
वतोरिथुक्	5.2.53	वसन्तादिभ्यष्ठक्	4.2.63	वामदेवाड्ड्यड्ड्यौ	4.2.9	विध्यत्यधनुषा	4.4.83
वत्सरान्ताच्छ०	5.1.91	वसुम्रंसुर्ध्वस्वन०	8.2.72	वामि	1.4.5	विध्वरुषोस्तुदः	3.2.35
वत्सशालाभि०	4.3.36	वसोः समूहे च	4.4.140	वाम्शसोः	6.4.80	विनञ्भ्यां नाना०	5.2.27
वत्सांसाभ्यां	5.2.98	वसोः संप्रसार०	6.4.131	वा यौ	2.4.57	विनयादिभ्यष्ठक्	5.4.34
वत्सोक्षाश्वर्षभे०	5.3.91	वस्तेर्ढञ्	5.3.101	वाय्वृतुपित्रुषसो	4.2.31	विन्दुरिच्छुः	3.2.169
वदः सुपि क्यप्०	3.1.106	वस्नक्रयविक्रया०	4.4.13	वारणार्थानामी०	1.4.27	विन्मतोर्लुक्	5.3.65
वदव्रजहलन्तस्या०	7.2.3	वस्नद्रव्याभ्यां	5.1.51	वा लिटि	2.4.55	विपराभ्यां जेः	1.3.19
वनं समासे	6.2.178	वस्वेकाजाद्धसाम्	7.2.67	वा ल्यपि	6.4.38	विपूयविनीयजि०	3.1.117
वनगिर्योः संज्ञा०	6.3.117	वहश्च	3.2.64	वावसाने	8.4.56	विप्रतिषिद्धं चान०	2.4.13
वनं पुरगामिश्रका०	8.4.4	वहाग्रे लिहः	3.2.32	वा शरि	8.3.36	विप्रतिषेधे परं कार्यम्	1.4.2
वनो र च	4.1.7	वह्यं करणम्	3.1.102	वा शोकष्यञ्रोगेषु	6.3.51	विप्रसंभ्यो ड्वसं०	3.2.180
वन्दिते भ्रातुः	5.4.157	वाकिनादीनां	4.1.158	वा षपूर्वस्य निगमे	6.4.9	विभक्तिश्च	1.4.104
वमोर्वा	8.4.23	वा क्यषः	1.3.90	वाष्योष्म	3.1.16	विभाषर्जोश्छ०	6.4.162
वयसि च	3.2.10	वाक्यस्य टेः प्लुत०	8.2.82	वा संज्ञायाम्	5.4.133	विभाषा	2.1.11

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विभाषा कथमि० 3.3.143
विभाषा कदाकह्र्योः 3.3.5
विभाषाऽकर्मकात् 1.3.85
विभाषा कार्षाप० 5.1.29
विभाषा कुरुयुग० 4.2.130
विभाषा कृञि 1.4.72
विभाषा कृञि 1.4.98
विभाषा कृवृषोः 3.1.120
विभाषाख्यान० 3.3.110
विभाषा गमहन० 7.2.68
विभाषा गुणे० 2.3.25
विभाषा ग्रहः 3.1.143
विभाषाऽग्रे प्रथम० 3.4.24
विभाषा घ्राधे० 2.4.78
विभाषा ङि रुप्लु० 3.3.50
विभाषा ङिश्योः० 6.4.136
विभाषा चत्वारिं० 6.3.49
विभाषा चिण्ण० 7.1.69
विभाषा चेः 7.3.58
विभाषा छन्दसि 1.2.36
विभाषा छन्दसि 6.2.164
विभाषा छन्दसि 7.4.44
विभाषा जसि 1.1.32
विभाषाञ्चेरदिक्स्त्रि० 5.4.8
विभाषा तिलमा० 5.2.4
विभाषा तृतीया० 7.1.97
विभाषा तृन्न० 6.2.161
विभाषा दिक्स० 1.1.28
विभाषा द्वितीया० 7.3.115
विभाषा धातौ 3.3.155
विभाषा धेट्श्व्योः 3.1.49
विभाषाध्यक्षे 6.2.67
विभाषापः 6.4.57
विभाषा परावरा० 5.3.29
विभाषा परेः 6.1.44
विभाषा पुरुषे 6.3.106
विभाषा पूर्वा० 4.3.24
विभाषा पृष्टप्रति० 8.2.93
विभाषा फाल्गु० 4.2.23
विभाषा बहोर्धा 5.4.20
विभाषा भावा० 7.2.17
विभाषा भाषा० 6.1.181
विभाषाभ्यवपूर्व० 6.1.26
विभाषा मनुष्ये 4.2.144
विभाषा रोगा० 4.3.13
विभाषा लीयतेः 6.1.51
विभाषा लुङ्लृङोः 2.4.50
विभाषावरस्य 5.3.41
विभाषा वर्षक्षर० 6.3.16
विभाषा विप्रलापे 1.3.50
विभाषा विवधात् 4.4.17
विभाषा वृक्षमृ० 2.4.12
विभाषा वेण्वि० 6.1.215
विभाषा वेष्टिचे० 7.4.96
विभाषा श्यावा० 5.4.144
विभाषा श्वेः 6.1.30
विभाषा सपूर्वस्य 4.1.34
विभाषा समीपे 2.4.16
विभाषा साका० 3.2.114
विभाषा साति 5.4.52
विभाषा सुपो 5.3.68
विभाषा सृजिदृशोः 7.2.65
विभाषा सेनासु० 2.4.25
विभाषा स्वसृप० 6.3.24
विभाषा हविरपू० 5.1.4
विभाषितं विशे० 8.1.74
विभाषितं सोप० 8.1.53
विभाषेटः 8.3.79
विभाषोत्पुच्छे 6.2.196
विभाषोदरे 6.3.88
विभाषोपपदेन 1.3.77
विभाषोपयमने 1.2.16
विभाषोपसर्गे 2.3.59
विभाषोर्णोः 1.2.3
विभाषोशीनरेषु 4.2.118
विभाषौषधिवन० 8.4.6
विमुक्तादिभ्योऽण्० 5.2.61
विरामोऽवसानम् 1.4.110
विशाखयोश्च 1.2.62
विशाखाषाढा० 5.1.110
विशिपतिपदि० 3.4.56
विशिष्टलिङ्गो नदी० 2.4.7
विशेषणं विशेष्ये० 2.1.57
विशेषणानां चा० 1.2.52
विश्वस्य वसुरा० 6.3.128
विषयो देशे 4.2.52
विष्किरः शकुनौ० 6.1.150
विष्वग्देवयोश्च 6.3.92
विसर्जनीयस्य 8.3.34
विसारिणो मत्स्ये 5.4.16
विस्पष्टादीनि० 6.2.24
वीरवीर्यौ च 6.2.120
वुञ्छण्कठजिलसे० 4.2.80
वृकज्येष्ठाभ्यां 5.4.41
वृकाट्टेण्यण् 5.3.115
वृक्षासनयोर्विष्टरः 8.3.93
वृणोतेराच्छादने 3.3.54
वृत्तिसर्गतायनेषु 1.3.38
वृद्धस्य च 5.3.62
वृद्धस्य च पूजा० 4.1.166
वृद्धाच्छः 4.2.114
वृद्धाट्ठक्सौवीरे० 4.1.148
वृद्धात्प्राचाम् 4.2.120
वृद्धादकेकान्त० 4.2.141
वृद्धिनिमित्तस्य 6.3.39
वृद्धिरादैच् 1.1.1
वृद्धिरेचि 6.1.88
वृद्धिर्यस्याचामा० 1.1.73
वृद्धेत्कोसलाजा० 4.1.171
वृद्धो यूना तल्लक्ष० 1.2.65
वृद्ध्यः स्यसनोः 1.3.92
वृन्दारकनाग० 2.1.62
वृषाकप्यग्निकु० 4.1.37
वृषादीनां च 6.1.203
वृतो वा 7.2.38
वेः पादविहरणे 1.3.41
वेः शब्दकर्मणः 1.3.34
वेः शलच्छटचौ 5.2.28
वेः स्कन्देरनिष्ठा० 8.3.73
वेः स्कम्नातेर्नि० 8.3.77
वेञः 6.1.40
वेञो वयिः 2.4.41
वेतनादिभ्यो 4.4.12
वेत्तेर्विभाषा 7.1.7
वेरपृक्तस्य 6.1.67
वेशन्तहिमव० 4.4.112
वेशोयशआदेर्भ० 4.4.131
वेश्च स्वनो भोजने 8.3.69
वैतोऽन्यत्र 3.4.96
वैयाकरणाख्यायां 6.3.7
वैवावेति च 8.1.64
वोताप्योः 3.3.141
वोतो गुणवचनात् 4.1.44
वोपसर्जनस्य 6.3.82
वो विधूनने चुक् 7.3.38
वौ कषलसकत्थ० 3.2.143
वौ क्षुश्रुवः 3.3.25
व्यक्तवाचां समु० 1.3.48
व्यंजनैरुपसिक्ते 4.4.26
व्यत्ययो बहुलम् 3.1.85
व्यथो लिटि 7.4.68
व्यधजपोरनुप० 3.3.61
व्यन्सपत्ने 4.1.145
व्यवहिताश्च 1.4.82
व्यवहृपणोः सम० 2.3.57
व्यवायिनोऽन्त० 6.2.166
व्यश्च 6.1.43
व्याङ्परिभ्यो 1.3.83
व्याहरति मृगः 4.3.51
व्युपयोः शेतेः 3.3.39
व्युष्टादिभ्योऽण् 5.1.97
व्योर्लघुप्रयत्नतरः 8.3.18
व्रजयजोर्भावे 3.3.98
व्रते 3.2.80
व्रश्चभ्रस्जसृजमृ० 8.2.36
व्रातच्फञोरः० 5.3.113
व्रातेन जीवति 5.2.21
व्रीहिशाल्योर्ढक् 5.2.2
व्रीहेः पुरोडाशे 4.3.148
व्रीह्यादिभ्यश्च 5.2.116

श

शकटादण् 4.4.80
शकधृषज्ञाग्ला० 3.4.65

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शकलाद्वा 4.3.128
शकि णमुल्कमुलौ 3.4.12
शकि लिङ् च 3.3.172
शकिसहोश्च 3.1.99
शक्तियष्टयोरीकक् 4.4.59
शक्तौ हस्तिक० 3.2.54
शण्डिकादिभ्यो० 4.3.92
शतमानविंशति० 5.1.27
शतसहस्रान्ता० 5.2.119
शताच्च ठन्यता० 5.1.21
शतुरनुमो नद्य० 6.1.173
शदन्तविंशतेश्च 5.2.46
शदेः शितः 1.3.60
शदेरगतौ तः 7.3.42
शप्श्यनोर्नित्यम् 7.1.81
शब्ददर्दुरं करोति 4.4.34
शब्दवैरकलहा० 3.1.17
शमामष्टानां दीर्घः 7.3.74
शमिता यज्ञे 6.4.54
शमित्यष्टाभ्यो 3.2.141
शमि धातोः 3.2.14
शम्याष्ट्लञ् 4.3.142
शयवासवासि० 6.3.18
शरद्वच्छुनकद० 4.1.102
शरादीनां च 6.3.120
शरीरावयवाच्च 4.3.55
शरीरावयवाद्यत् 5.1.6
शरोऽचि 8.4.49
शर्करादिभ्योऽण् 5.3.107
शर्कराया वा 4.2.83
शर्परे विसर्जनीयः 8.3.35
शर्पूर्वाः खयः 7.4.61
शल इगुपधादनि० 3.1.45
शलालुनोऽन्यतर० 4.4.54
शश्छोऽटि 8.4.63
शसो न 7.1.29
शाखादिभ्यो यत् 5.3.103
शाच्छासाह्वाव्या० 7.3.37
शाच्छोरन्यतर० 7.4.41
शाणाद्वा 5.1.35
शात् 8.4.44
शारदेऽनार्तवे 6.2.9
शार्ङ्गरवाद्यञो 4.1.73
शालीनकौपीने 5.2.20
शास इदङ्हलोः 6.4.34
शासिवसिघसीनां 8.3.60
शा हौ 6.4.35
शिखाया वलच् 4.2.89
शि तुक् 8.3.31
शितेर्नित्याबह्व० 6.2.138
शिलाया ढः 5.3.102
शिल्पम् 4.4.55
शिल्पिनि चा० 6.2.76
शिल्पिनि ष्वुन् 3.1.145
शिवशमरिष्टस्य 4.4.143
शिवादिभ्योऽण् 4.1.112
शिशुक्रन्दयम० 4.3.88
शि सर्वनामस्था० 1.1.42
शीङः सार्वधातु० 7.4.21
शीङो रुट् 7.1.6
शीतोष्णाभ्यां 5.2.72
शीर्षेश्छन्दसि 6.1.60
शीर्षच्छेदाद्यच्च 5.1.65
शीलम् 4.4.61
शुक्राद् घन् 4.2.26
शुण्डिकादि० 4.3.76
शुभ्रादिभ्यश्च 4.1.123
शुषः कः 8.2.51
शुष्कचूर्णरूक्षेषु 3.4.35
शुष्कधृष्टौ 6.1.206
शूद्राणामनिर० 2.4.10
शूर्पादञन्यतर० 5.1.26
शूलात्पाके 5.4.65
शूलोखाद्यत् 4.2.17
शृङ्खालमस्य 5.2.79
शृङ्गमवस्थायां च 6.2.115
शृतं पाके 6.1.27
शृदृप्रां ह्रस्वो वा 7.4.12
शृन्द्योरारुः 3.2.173
शे 1.1.13
शे मुचादीनाम् 7.1.59
शेवलसुपरिवि० 5.3.84
शेश्छन्दसि बहु० 6.1.70
शेषात्कर्तरि पर० 1.3.78
शेषाद्विभाषा 5.4.154
शेषे 4.2.92
शेषे प्रथमः 1.4.108
शेषे लृडयदौ 3.3.151
शेषे लोपः 7.2.90
शेषे विभाषा 8.1.41
शेषे विभाषा 8.1.50
शेषे विभाषाकखा० 8.4.18
शेषो घ्यसखि 1.4.7
शेषो बहुव्रीहिः 2.2.23
शोणात्प्राचाम् 4.1.43
शौनकादिभ्य० 4.3.106
श्नसोरल्लोपः 6.4.111
श्नान्नलोपः 6.4.23
श्नाभ्यस्तयो० 6.4.112
श्याद्व्यधाम्रुसं० 3.1.141
श्येनतिलस्य पाते 6.3.71
श्योऽस्पर्शे 8.2.47
श्रज्यावमकन् 6.2.25
श्रविष्ठाफल्गु० 4.3.34
श्राणामांसौदना० 4.4.67
श्राद्धमनेन भुक्त० 5.2.85
श्राद्धे शरदः 4.3.12
श्रिणीभुवोऽनु० 3.3.24
श्रीग्रामण्योश्छ० 7.1.56
श्रुवः श्रृ च 3.1.74
श्रुशृणुपृकृवृ० 6.4.102
श्रेण्यादयः कृता० 2.1.59
श्रोत्रियंश्छन्दो० 5.2.84
श्रयुकः किति 7.2.11
श्लाघह्नुङ्स्था० 1.4.34
श्लिष आलिङ्गने 3.1.46
श्लौ 6.1.10
श्वगणाट्ठञ्च 4.4.11
श्वयतेरः 7.4.18
श्वयुवमघोना० 6.4.133
श्वशुरः श्वश्रूवा 1.2.71
श्वसस्तुट् च 4.3.15
श्वसोवसीयः 5.4.80
श्वादेरिञि 7.3.8
श्वीदितो निष्ठा० 7.2.14

ष

षः प्रत्ययस्य 1.3.6
षट्कतिकतिपय० 5.2.51
षट्च काण्डा० 6.2.135
षट्चतुर्भ्यश्च 7.1.55
षट्त्रिचतुर्भ्यो० 6.1.179
षड्भ्यो लुक् 7.1.22
षढोः कः सि 8.2.41
षण्मासाण्ण्यच्च 5.1.83
षत्वतुकोरसिद्धः 6.1.86
षपूर्वहन्धृत० 6.4.135
षष्टिकाः षष्टिरा० 5.1.90
षष्ट्यादेश्चासंख्या० 5.2.58
षष्ठाष्टमाभ्यां ञ 5.3.50
षष्ठी 2.2.8
षष्ठी चानादरे 2.3.38
षष्ठी प्रत्येनसि 6.2.60
षष्ठीयुक्तश्छन्दसि 1.4.9
षष्ठी शेषे 2.3.50
षष्ठी स्थानेयोगा 1.1.49
षष्ठी हेतुप्रयोगे 2.3.26
षष्ठ्यतसर्थ० 2.3.30
षष्ठ्या आक्रोशे 6.3.21
षष्ठ्याः पतिपुत्र० 8.3.53
षष्ठ्या रूप्य च 5.3.54
षष्ठ्या व्याश्रये 5.4.48
षात्पदान्तात् 8.4.34
षिद्गौरादिभ्यश्च 4.1.41
षिद्भिदादिभ्यो 3.3.104
ष्टुना ष्टुः 8.4.41
ष्ठिवुक्लमुचमां 7.3.75
ष्णान्ता षट् 1.1.24
ष्यङः संप्रसार० 6.1.13

स

स उत्तमस्य 3.4.98
स एषां ग्रामणीः 5.2.78
सः स्यार्धधातुके 7.4.49
सः स्विदिस्वदि० 8.3.62

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संयसश्च	3.1.72	सञ्ज्ञापूरण्योश्च	6.3.38	सनिंससनिवांसम्	7.2.69	समां समां विजा०	5.2.12
संयोगादिश्च	6.4.166	सञ्ज्ञायाम्	2.1.44	सनि ग्रहगुहोश्च	7.2.12	समानकर्तृकयोः	3.4.21
संयोगादेरातो	8.2.43	सञ्ज्ञायाम्	3.3.109	सनि च	2.4.47	समानकर्तृकेषु	3.3.158
संयोगान्तस्य	8.2.23	सञ्ज्ञायाम्	3.4.42	सनि मीमाधुर०	7.4.54	समानतीर्थेवासी	4.4.107
संयोगे गुरु	1.4.11	सञ्ज्ञायाम्	4.1.72	सनीवन्तर्धभ्रस्ज०	7.2.49	समानस्य छन्द०	6.3.84
संवत्सराग्रहा०	4.3.50	सञ्ज्ञायाम्	4.3.117	सनोतेरनः	8.3.108	समानोदरे श०	4.4.108
संशयमापन्नः	5.1.73	सञ्ज्ञायाम्	6.2.159	सन्धिवेलाद्यृतुनक्ष०	4.3.16	समापनात्स०	5.1.112
संसृष्टे	4.4.22	सञ्ज्ञायाम्	8.2.11	सन्महत्परमोत्त०	2.1.61	समायाः खः	5.1.85
संस्कृतम्	4.4.3	सञ्ज्ञायां लला०	4.4.46	सन्यङोः	6.1.9	समासत्तौ	3.4.50
संस्कृतं भक्षाः	4.2.16	सञ्ज्ञायां शरदो०	4.3.27	सन्यतः	7.4.79	समासस्य	6.1.223
संहितशफल०	4.1.70	सञ्ज्ञायां श्रवणा०	4.2.5	सन्लिटोर्जः	7.3.57	समासाच्च तद्वि०	5.3.106
संहितायाम्	6.1.72	सञ्ज्ञायां समज०	3.3.99	सन्वल्लघुनि चङ०	7.4.93	समासान्ताः	5.4.68
संहितायाम्	6.3.114	सञ्ज्ञायां कन्	4.3.147	सपत्ननिष्पत्रा०	5.4.61	समासेऽङ्गुलेः सङ्गः	8.3.80
सक्थं चाक्नां०	6.2.198	सञ्ज्ञायां कन्	5.3.75	सपूर्वाच्च	5.2.87	समासेऽनञ्पूर्वे०	7.1.37
सख्यशिश्वीति०	4.1.62	सञ्ज्ञायां कन्	5.3.87	सपूर्वायाः प्रथमा०	8.1.26	समाहारः स्वरितः	1.2.31
सख्युरसंबुद्धौ	7.1.92	सञ्ज्ञायां कन्थोशी०	2.4.20	सप्तनोऽञ्छन्दसि	5.1.61	समि० ख्यः	3.2.7
सख्युर्यः	5.1.126	सञ्ज्ञायां गिरि	6.2.94	सप्तमीपंचम्यौ	2.3.7	समि मुष्टौ	3.3.36
सगतिरपि तिङ्	8.1.68	सञ्ज्ञायां च	5.3.97	सप्तमीविशेषणे	2.2.35	समि यद्रुदुवः	3.3.23
सगर्भसयूथस०	4.4.114	सञ्ज्ञायां च	6.2.76	सप्तमी शौण्डैः	2.1.40	समुच्चयेऽन्यतर०	3.4.3
सङ्कलादिभ्यश्च	4.2.75	सञ्ज्ञायां जन्या	4.4.82	सप्तमी सिद्धशु०	6.2.32	समुच्चये सामान्य०	3.4.5
सङ्ख्ययाव्ययास०	2.2.25	सञ्ज्ञायां धेनुष्या	4.4.89	सप्तमीहारिणौ	6.2.65	समुदाङ्भ्यो०	1.3.75
सङ्ख्या	6.2.35	सञ्ज्ञायामना०	6.3.146	सप्तम्यधिकरणे च	2.3.36	समुदोरजः पशुषु	3.3.69
सङ्ख्यापूर्वो द्विगुः	2.1.52	सञ्ज्ञायामुपमा०	6.1.204	सप्तम्याः पुण्यम्	6.2.152	समुद्राभ्राद् घः	4.4.118
सङ्ख्याया अति०	5.1.22	सञ्ज्ञायां भृतृवृजि०	3.2.46	सप्तम्यां चोप०	3.4.49	समूलाकृतजीवे०	3.4.36
सङ्ख्याया अवयवे०	5.2.42	सञ्ज्ञायां मन्मा०	5.2.137	सप्तम्यां जनेर्डः	3.2.97	समूहवच्च बहुषु	5.4.22
सङ्ख्यायाः क्रिया०	5.4.17	सञ्ज्ञायां मित्रा०	6.2.165	सप्तम्यास्त्रल्	5.3.10	समो गम्यृच्छि०	1.3.29
सङ्ख्यायाः सङ्ख्वत्०	7.3.15	सञ्ज्ञोऽन्यतर०	2.3.22	सभायां नपुंसके	6.2.98	सम्परिपूर्वात्ख च	5.1.92
सङ्ख्यायाः सङ्ख्या०	5.1.58	सञ्ज्ञौपम्ययोश्च	6.3.113	सभाया यः	4.4.105	सम्परिभ्यां करोतौ	6.1.137
सङ्ख्यायाः स्तनः	6.2.163	सत्यं प्रश्ने	8.1.32	सभा राजामनु०	2.4.23	सम्पादिनि	5.1.99
सङ्ख्याया गुणस्य	5.2.47	सत्यादशपथे	5.4.66	समः क्ष्णुवः	1.3.65	सम्पृचानुरुधा०	3.2.142
सङ्ख्याया विधार्थे	5.3.42	सत्यापपाशरूपवी०	3.1.25	समः प्रतिज्ञाने	1.3.52	सम्प्रतिभ्यामना०	1.3.46
सङ्ख्यायाश्च गुणा०	5.4.59	सत्सूद्विषद्रुह०	3.2.61	समः समि	6.3.93	सम्प्रसारणस्य	6.3.139
सङ्ख्या वंश्येन	2.1.19	सदिरप्रतेः	8.3.66	समः सुटि	8.3.5	सम्प्रसारणाच्च	6.1.108
सङ्ख्याविसाय०	6.3.110	सदृशप्रतिरूपयोः	6.2.11	समयस्तदस्य०	5.1.104	सम्प्रोदश्च कटच्	5.2.29
सङ्ख्याऽव्ययादे०	4.1.26	सदेः परस्य लिटि	8.3.118	समयाच्च यापना०	5.4.60	सम्बुद्धौ च	7.3.106
सङ्ख्यासुपूर्वस्य	5.4.140	सद्यः परुत्परार्यैषमः	5.3.22	समर्थः पदविधिः	2.1.1	सम्बुद्धौ शाक०	1.1.16
सङ्ख्यैकवचना०	5.4.43	सध मादस्थयो०	6.3.96	समर्थानां प्रथ०	4.1.82	सम्बोधने च	2.3.47
सङ्ग्रामे प्रयोजन०	4.2.56	सनः क्तिचि लो०	6.4.45	समवप्रविभ्यः	1.3.22	सम्बोधने च	3.2.125
सङ्घाङ्कलक्षणे०	4.3.127	स नपुंसकम्	2.4.17	समवायान्समवै०	4.4.43	सम्भवत्यवहर०	5.1.52
सङ्घे चानौत्तरा०	3.3.42	सनाद्यन्ता धातवः	3.1.32	समवाये च	6.1.138	सम्भावनेऽलमि०	3.3.154
सङ्घोद्धौ गणप्र०	3.3.86	सनाशंसभिक्ष उः	3.2.168	समस्तृतीया०	1.3.54	सम्भूते	4.3.41

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सम्माननोत्संजना०	1.3.36	सात्पदाद्यौः	8.3.111	सुट् तिथोः	3.4.107	सोमाट्ट्यण्	4.2.30
सरूपाणामेकशे०	1.2.64	साधकतमं करणम्	1.4.42	सुडनपुंसकस्य	1.1.43	सोमे सुञः	3.2.90
सर्तिशास्त्यर्ति०	3.1.56	साधुनिपुणाभ्या०	2.3.43	सुधातुरकङ् च	4.1.97	सोमे ह्वरितः	7.2.33
सर्वकूलाभ्रकरीषे	3.2.42	सान्तमहतः संयो०	6.4.10	सुधितवसुधितने०	7.4.45	सोरवक्षेपणे	6.2.195
सर्वगुणकात्स्न्यें	6.2.93	साप्तपदीनं सख्यम्	5.2.22	सुनोतेः स्यसनोः	8.3.117	सोर्मनसी अलो०	6.2.117
सर्वचर्मणः कृतः	5.2.5	साम आकम्	7.1.33	सुप आत्मनः क्यच	3.1.8	सोऽस्य निवासः	4.3.89
सर्वत्र लोहितादि०	4.1.18	सामन्त्रितम्	2.3.48	सुपः	1.4.103	सोऽस्यां शवस्नभृ०	5.1.56
सर्वत्र विभाषा	6.1.122	सामि	2.1.27	सुपां सुलुक्पूर्वस०	7.1.39	सोऽस्यादिरिति	4.2.55
सर्वत्र शाकल्यस्य	8.4.51	सायंचिरंप्राके प्रगे०	4.3.23	सुपि च	7.3.102	सौ च	6.4.13
सर्वत्राण् च	4.3.22	सार्वधातुकमपित्	1.2.4	सुपि स्थः	3.2.4	स्कोः संयोगाद्यो०	8.2.29
सर्वदेवात्तातिल्	4.4.142	सार्वधातुकार्धधा०	7.3.84	सुपो धातुप्रातिप०	2.4.71	स्तन्भेः	8.3.67
सर्वनामस्थाने	6.4.8	सार्वधातुके यक्	3.1.67	सुप्तिङन्तं पदम्	1.4.14	स्तम्बकर्णयोरमि०	3.2.13
सर्वनाम्नः स्मै	7.1.14	साल्वावयवप्र०	4.1.173	सुप्प्रतिना मात्रार्थे	2.1.9	स्तम्बशकृतोरिन्	3.2.24
सर्वनाम्नः स्याड्०	7.3.114	साल्वेयगान्धा०	4.1.169	सुप्यजातौ णिनि०	3.2.78	स्तम्बे क च	3.3.83
सर्वनाम्नस्तृती०	2.3.27	सावनडुहः	7.1.82	सुप्रातसुश्वसुदि०	5.4.120	स्तम्भुसिवुसहां०	8.3.116
सर्वपुरुषाभ्यां	5.1.10	सावेकाचस्तृती०	6.1.168	सुबामन्त्रितेपरा०	2.1.2	स्तम्भुस्तुम्भुस्क०	3.1.82
सर्वभूमिपृथि०ञ्न	5.1.41	सास्मिन्पौर्णमा०	4.2.21	सुयजोर्ङ्वनिप्	3.2.103	स्तुतस्तोमयो०	8.3.105
सर्वस्य द्वे	8.1.1	सास्य देवता	4.2.24	सुवास्त्वादिभ्यो०	4.2.77	स्तुसुधूञ्भ्यः पर०	7.2.72
सर्वस्य सुपि	6.1.191	सिकताशर्करा०	5.2.104	सुविनिर्दुर्भ्यः सुपि०	8.3.88	स्तेनाद्यन्नलोपश्च	5.1.125
सर्वस्य सोऽन्यत०	5.3.6	सिचि च परस्मैप०	7.2.40	सुषामादिषु च	8.3.98	स्तोः श्चुना श्चुः	8.4.40
सर्वादीनि सर्वना०	1.1.27	सिचि वृद्धिः परस्मै०	7.2.1	सुसर्वार्धाज्जनपद०	7.3.12	स्तोकान्तिकदूरा०	2.1.39
सर्वैकान्यर्किय०	5.3.15	सिचो यङि	8.3.112	सुहृद् दुर्हृदौ	5.4.150	स्तौतिण्योरेव ष०	8.3.61
सवाभ्यां वामौ	3.4.91	सिजभ्यस्तवि०	3.4.109	सूत्रं प्रतिष्णातम्	8.3.90	स्त्यः प्रपूर्वस्य	6.1.23
सविधसनीडस०	6.2.23	सिति च	1.4.16	सूत्राच्च कोपधात्	4.2.64	स्त्रियाः	6.4.79
ससजुषो रुः	8.2.66	सिद्धशुष्कपक्व०	2.1.41	सूददीपदीक्षश्च	3.2.153	स्त्रियाः पुंवद्भाषि०	6.3.34
ससूवेति निगमे	7.4.74	सिध्मादिभ्यश्च	5.2.97	सूपमानात् क्तः	6.2.145	स्त्रियाम्	4.1.3
सस्नौ प्रशंसायाम्	5.4.40	सिध्यतेरपारलौ०	6.1.49	सूर्यतिष्याग०	6.4.149	स्त्रियां संज्ञायाम्	5.4.143
सस्येन परिजातः	5.2.68	सिन्धुतक्षशिला०	4.3.93	सृघस्यदः क्मरच्	3.2.160	स्त्रियां क्तिन्	3.3.94
सहनञ्विद्यमान०	4.1.57	सिन्ध्वपकराभ्यां	4.3.32	सृजिदृशोर्झल्य०	6.1.58	स्त्रियां च	7.1.96
सहयुक्तेऽप्रधाने	2.3.19	सिपि धातो रुर्वा	8.2.74	सृपितृदोः कसुन्	3.4.17	स्त्रियामवन्तिकु०	4.1.176
सह सुपा	2.1.4	सिब्बहुलं लेटि	3.1.34	सृ स्थिरे	3.3.17	स्त्री पुंवच्च	1.2.66
सहस्य सः संज्ञा०	6.3.78	सिवादिनां वाड्०	8.3.71	सेधतेर्गतौ	8.3.113	स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्०	4.1.87
सहस्य सध्रिः	6.3.95	सुः पूजायाम्	1.4.94	सेनान्तलक्षण०	4.1.152	स्त्रीभ्यो ढक्	4.1.120
सहस्रेण संमितौ	4.4.135	सुकर्मपापमन्त्र०	3.2.89	सेनाया वा	4.4.45	स्त्रीषु सौवीरसा०	4.2.76
सहिवहोरोदव०	6.3.112	सुखप्रिययोर्हिते	6.2.15	सेहर्यपिच्च	3.4.87	स्थः क च	3.2.77
सहेः पृतनर्ता०	8.3.109	सुखप्रियादानुलो०	5.4.63	सेऽसिचि कृतचृत०	7.2.57	स्थण्डिलाच्छयि०	4.2.15
सहेः साडः सः	8.3.56	सुखादिभ्यः कर्तृ०	3.1.18	सोऽचि लोपे	6.1.134	स्थागापापचो०	3.3.95
सहे च	3.2.96	सुखादिभ्यश्च	5.2.131	सोढः	8.3.115	स्थाध्वोरिच	1.2.17
साक्षात्प्रभृतीनि	1.4.74	सुञः	8.3.107	सोदराद्यः	4.4.109	स्थादिष्वभ्यासेन०	8.3.64
साक्षाद् द्रष्टरि	5.2.91	सुञो यज्ञसंयोगे	3.2.132	सोऽपदादौ	8.3.38	स्थानान्तगोशाल०	4.3.35
साढ्यै साढ्वा	6.3.113	सुट् कात्पूर्वः	6.1.132	सोममर्हति यः	4.4.137	स्थानान्ताद्विभा०	5.4.10

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्थानिवदादेशो०	1.1.56	स्वमोर्नपुंसकात्	7.1.33	हरितादिभ्योऽञ:	4.1.100	हुश्नुवो: सार्वधा०	6.4.87
स्थानेऽन्तरतम:	1.1.50	स्वयं क्तेन	2.1.25	हरीतक्यादिभ्यश्च	4.3.167	हक्रोरन्यतरस्याम्	1.4.53
स्थालीबिलात्	5.1.70	स्वरतिसूतिसू०	7.2.44	हल:	6.4.2	हृदयस्य प्रिय:	4.4.95
स्थूलदूरयुवह्र०	6.4.156	स्वरादिनिपात०	1.1.37	हल:श्न:शानज्झौ	3.1.83	हृदयस्य हृल्ले०	6.3.50
स्थूलादिभ्य: प्रका०	5.4.3	स्वरितञित: कर्त्र०	1.3.72	हलदन्तात्सप्त०	6.3.9	हन्द्रगसिन्ध्वन्ते पू०	7.3.19
स्थे च भाषायाम्	6.3.20	स्वरितमाम्रेडिते०	8.2.103	हलन्ताच्च	1.2.10	हषेर्लोमसु	7.2.29
स्थेशभासपिस०	3.2.175	स्वरितात्संहिता०	1.2.39	हलन्त्यम्	1.3.3	हेति क्षियायाम्	8.1.60
स्नात्व्यादयश्च	7.1.49	स्वरितेनाधिकार:	1.3.11	हलश्च	3.3.121	हेतुमति च	3.1.26
स्नुक्रमोरनात्म०	7.2.36	स्वरितो वानुदात्ते०	8.2.6	हलश्चेजुपधात्	8.4.31	हेतुमनुष्येभ्यो०	4.3.81
स्नेहने पिष:	3.4.38	स्वसुश्छ:	4.1.143	हलसीराट्टक्	4.3.124	हेतुहेतुमतोर्लिङ्	3.3.156
स्पर्धायामाङ:	1.3.31	स्वागतादीनां च	7.3.7	हलसीराट्टक्	4.4.81	हेतौ	2.3.23
स्पृशोऽनुदके क्विन्	3.2.58	स्वाङ्गाच्चेत:	6.3.40	हलसूकरयो: पु०	3.2.183	हेमन्तशिशिराव०	2.4.28
स्पृहिगृहिपतिद०	3.2.158	स्वाङ्गाञ्चोपस०	4.1.54	हलस्तद्धितस्य	6.4.1..	हेमन्ताच्च	4.3.21
स्पृहेरीप्सित:	1.4.36	स्वाङ्गे तस्प्रत्यये	3.4.61	हलादि: शेष:	7.4.60	हे मपरे वा	8.3.26
स्फाय: स्फी नि०	6.1.22	स्वाङ्गेऽध्रुवे	3.4.54	हलि च	8.2.77	हेरचडि	7.3.56
स्फायो व:	7.3.41	स्वाङ्गेभ्य: प्रसिते	5.2.66	हलि लोप:	7.2.113	हैयङ्गवीनं संज्ञा०	5.2.23
स्फिगपूतवीणा०	6.2.187	स्वादिभ्य: श्नु:	3.1.73	हलि सर्वेषाम्	8.3.22	हैहेप्रयोगे हैहयो:	8.2.85
स्फुरतिस्फुल०	6.1.47	स्वादिष्वसर्व०	1.4.17	हलोऽनन्तरा: सं०	1.1.7	हो ढ:	8.2.31
स्फुरतिस्फुलत्यो०	8.3.76	स्वादुमि णमुल्	3.3.26	हलो यमां यमि	8.4.64	होत्राभ्यश्छ:	5.1.135
स्मिपूङ्रञ्जवशां०	7.2.74	स्वापेश्चडि	6.1.18	हल्ङ्याल्भ्यो दीर्घा०	6.1.68	हो हन्तेर्ञ्णिन्नेषु	7.3.54
स्मे लोट्	3.3.165	स्वामिन्नैश्वर्ये	5.2.126	हव्येऽनन्त:पादम्	3.2.66	ह्यन्तक्षणश्वसजा	7.2.5
स्मोत्तरे लङ् च	3.3.176	स्वामीश्वराधि०	2.3.39	हशश्वतोर्लङ् च	3.2.116	ह्रस्वं लघु	1.4.10
स्यतासी लुलृटो:	3.1.33	स्वे पुष:	3.4.40	हशि च	6.1.114	ह्रस्व:	7.4.59
स्यदो जवे	6.4.28	स्वौजसमौट्छष्टा०	4.1.2	हश्च व्रीहिका०	3.1.148	ह्रस्वनद्यापो नुट्	7.1.54
स्यश्छन्दसि बहु०	6.1.133			हस्ताज्जातौ	5.2.133	ह्रस्वनुड्भ्यां म०	6.1.176
स्यसिच्सीयुट्ता०	6.4.62		ह	हस्तादाने चेर०	3.3.40	ह्रस्वस्य गुण:	7.3.108
स्रवतिशृणोतिद्र०	7.4.81			हस्ते वर्तिग्रहो:	3.4.39	ह्रस्वस्य पिति कृ०	6.1.71
स्रोतसो वि०	4.4.113	ह एति	7.4.52	हायनान्तयुवा०	5.1.130	ह्रस्वाच्चन्द्रोत्तर०	6.1.151
स्वं रूपं शब्दस्या०	1.1.68	हन: सिच्	1.2.14	हिंसायां प्रतेश्च	6.1.141	ह्रस्वात्तादौ त०	8.3.101
स्वं स्वामिनि	6.2.17	हनश्च वध:	3.3.76	हिंसार्थानां च स०	3.4.48	ह्रस्वादङ्गात्	8.2.27
स्वतन्त्र: कर्ता	1.4.54	हनस्त च	3.1.108	हि च	8.1.34	ह्रस्वान्तेऽन्त्या०	6.2.174
स्वतवान् पायौ	8.3.11	हनस्तोऽचिण्णलो:	7.3.32	हितं भक्षा:	4.4.65	ह्रस्वे	5.3.86
स्वनहसोर्वा	3.3.62	हनो वध लिङि	2.4.42	हिनु मीना	8.4.15	ह्रस्वो नपुंसके०	1.2.47
स्वपादिहिं०	6.1.188	हन्त च	8.1.54	हिमकाषिहतिषु च	6.3.54	ह्रुह्वरेश्छन्दसि	7.2.31
स्वपितृषोर्नजि०	3.2.172	हन्तेरत्पूर्वस्य	8.4.22	हिरण्यपरिमाणं ध०	6.2.55	ह्वादो निष्ठायाम्	6.4.95
स्वपिस्यमिव्येञां	6.1.19	हन्तेर्ज:	6.4.36	हीने	1.4.86	ह्वः संप्रसारणम्	6.1.32
स्वपो नन्	3.3.91	हरतेरनुद्यमनेऽच्	3.2.9	हीयमानपापयो०	5.4.47	ह्वः संप्रसारणं च	3.3.72
स्वमज्ञातिध०	1.1.35	हरतेर्दृतिनाथयो:	3.2.25	हुझल्भ्यो हेर्धि:	6.4.101	ह्वावामश्च	3.2.2
		हरत्युत्सङ्गादिभ्य:	4.4.15				

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(ख) काशिकास्थवार्त्तिकानामकाराद्यनुक्रमेणानुक्रमणी

(अत्र वामतः काशिकासम्मताऽध्यायपादसूत्रसङ्ख्या निर्दिष्टा)

अ

अकच् प्रकरणे 5.3.71
अकाकारयो 2.3.66
अकारान्तोत्तर 2.4.17
अकेकान्त 4.2.140
अक्षरसमूहे 4.4.140
अक्षादूहिन्यां 6.1.89
अग्नीधः शरण 4.3.120
अग्रपश्चा 4.3.23
अग्रामा इत्य 2.4.7
अङ्गगात्र 4.1.54
अच् प्रकरणे 3.2.9
अजपथ 5.1.77
अजसादि 4.1.31
अजिनान्ता 4.3.60
अज्वरि सन्ताप्यो 2.3.54
अज्विधौ 3.3.56
अञ्चतेश्चोप 4.1.6
अञ्जस उप 6.3.3
अटाट्टा 3.1.17
अण् कुञ्चा 4.1.120
अण् प्रकरणे 5.1.97, 5.2.103,5.3.36
अतेर्धातुलोप 6.2.191
अत्यन्ताऽपह्न 3.2.45
अत्यादयः 2.2.18
अत्रायुष्या 2.3.73
अदसोऽनो 8.2.80
अदेः प्रतिषेध 1.3.87
अद्यतन्यां 6.4.114
अद्रिसध्र्योर 6.3.92
अद्विप्रभृत्यु 6.4.96
अधर्माच्चेति 4.4.41
अधिकरणाच्च 3.1.10
अधिकरणे चोप 2.3.28
अध्यात्मादि 4.3.60
अध्वनः प्रथमा 2.3.28
अध्वपरिमाणे 6.1.79
अनजादौ च 5.3.83
अनडुहः स्त्रिया 7.1.98
अनद्यतन उप 3.3.3
अनव्ययस्येति 8.3.38
अनसन्तान 5.4.104
अनाचमिकमि 7.3.34
अनाम्नवति 8.4.42
अनिदितां 6.4.24
अनुत्पत्तावु 5.2.12
अनुवाकाद 2.4.29
अनुसूर्लक्ष्य 4.2.60
अनेकशफेष्वि 1.2.73
अनेकाच इति 6.1.98
अनो नलोप 2.4.17
अन्तःशब्द 1.4.65
अन्ताच्चेति 4.3.23,6.3.11
अन्तिकस्य 6.4.149
अन्तोदात्तप्रक 6.2.199
अन्तोदात्ता 4.1.52
अन्त्यात्पूर्वो 8.2.68
अन्वादेशे नपुँ 8.2.68
अपत्यग्रह 4.1.16
अपादाने 3.3.21
अपिप्रधान 5.4.116
अपील्वादीना 6.3.121
अपुत्रादीनामि 7.4.35
अपुरीति 1.1.36
अपोयोनि 4.3.22
अप्रत्ययादिभि 2.3.43
अप्राणिजा 4.1.66
अबहुन 4.1.52
अब्राह्मणगो 2.4.58
अभितःपरितः 2.3.2
अभिवादिदृ 1.4.53
अभ्यर्हितश्च 2.2.34
अभ्यासजश्त्व 8.2.3
अभ्यासस्यान 7.4.59
अयवसम 5.3.25
अरण्याण्ण्यो 4.2.104
अर्णसो लोप 5.2.109
अर्थवेद 3.1.25
अर्थाच्चा 5.2.135
अर्थात्तद 5.2.122
अर्थेन नित्य 2.1.36
अर्धपूर्व 1.1.22
अर्धाच्चेति 5.1.25
अर्धोत्तर 5.3.32
अर्यक्षत्रि 4.1.49
अलङ्कृञो 3.2.136
अवसाने च 8.4.48
अवादयः क्रुष्टा 2.2.18
अवान्तरदीक्षा 5.1.94
अवेर्दुग्धे 4.2.36
अवोऽधसो 4.3.8
अव्ययप्रति 2.3.69
अव्ययानां च2.2.24,6.4.144
अव्ययानां प्र 2.1.2
अव्यये नञ् कु 6.2.2
अशिष्टव्यवहारे 1.3.55
अश्मनो विकारे 4.3.130, 6.4.144
अश्ववृषयो 7.1.51
अष्टका पितृ 7.3.45
अष्टनः कपाले 6.4.46
अष्टाचत्वा 5.1.94
असंयुक्ता 7.3.115
असनयोश्च 2.4.54
असितपलित 4.1.39
असूयादिषु 8.2.103
अस्तु सत्या 6.3.70
अहरादीनां 8.2.70
अह्नः खः क्रतौ 4.2.42
अह्नः समूहे 6.4.145
अह्नो नलोप 8.2.7
अह्नो रुविधौ 8.2.68

आ

आकालाट् 5.1.114
आख्यानात्कृत 3.1.26
आगमेः क्षमा 1.3.21
आग्नीध्रः साधा 4.3.25
आङः स्थः 1.3.22
आङि नु 1.3.21
आङोऽन्यत्रा 6.4.141
आङ्पूर्वाद 3.1.109
आङ् याजया 7.1.39
आङ् लोप 3.1.26
आचारेऽवग 3.1.11
आचार्यादण 4.1.49, 5.1.9
आदिकर्मणि 3.2.102
आदिखाद्योः 1.4.52
आदेश्चेति 4.3.8
आद्युदात्त 6.2.91
आनुपूर्व्ये 8.1.12
आपत्यग्रहणं 4.1.16
आभीक्ष्ण्ये द्वे 8.1.12
आमन्त्रिते 8.2.107
आमुष्यायणा 5.3.25, 6.3.21
आलस्य सुखा 3.2.5
आलुचि शीङो 3.2.158
आविसश्छ 4.2.104
आशङ्कायामुप 3.1.7

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आशिषि चोप 7.3.45
आशिषि नाथ 1.3.21
आशिषि वुन 4.3.61
आस्यं व्यादा 3.4.21
आस्यविहरण 1.3.20
आहृतप्रकरणे 5.1.77
आहौ प्रकरणे 4.4.1
आहौ प्रभूता 4.4.1

इ

इकः प्लुत 6.1.77
इकवको 3.3.125
इकारादि ग्रह 7.3.8
इको वक्तव्यः 3.3.125
इक् कृष्यादि 3.3.108
इक्शितपौ धातु 3.3.108
इच्छासन्न 3.1.7
इञ उपस 4.1.65
इणजादि 3.3.108
इण्वदिकः 2.4.45
इत्येऽनभ्या 6.3.70
इत्वमन 6.3.97
इत्वोत्वाभ्यां 7.1.102
इदवृद्धौ 6.3.28
इनिप्रकरण 5.2.135
इयङ् उवङ् 6.4.77
इयङुवङभ्यां 6.4.148
इयाडियाजी 7.1.39
इरिकादिभ्यः 8.4.6
इवेन सह समा 2.2.18
इषेरनिच्छार्थ 3.3.107
इष्टकादि 6.3.65

ई

ईकक् च 4.1.85
ईकञ् 4.1.87
ईक्षिक्षमि 3.2.1
ईत्वमनवर्णा 6.3.97
ईदादीनां 1.1.11
ईद्रथिनः 8.2.17
ईयसो बहु 1.2.48
ईर्ष्यतेस्तृ 6.1.3
ईषद् गुण 2.2.7
ईषा अक्षादि 6.1.127

उ

उकप्रतिषेधे 2.3.69
उगिद्वर्ण 1.1.72
उच्चयस्य 3.3.40
उतश्च प्रत्य 6.4.106
उत्तरपदं भूता 7.2.107
उत्तरपदलोपे 7.3.45
उत्तरादा 4.2.104
उत्तानादिषु 3.2.15
उत्पातेन ज्ञापि 2.3.13
उत्पूर्वस्य 8.4.61
उत्प्रतिभ्यां 3.2.78
उत्फुल्ल 8.3.55
उद ईहा 1.3.24
उपधाह्रस्व 7.4.1
उपध्मानीय 8.3.38
उपमानात् 4.1.55
उपसर्गाद 1.3.30
उपाद् देवपूजा 1.3.25
उपाध्याय 4.1.49
उभयतश्च 2.4.3
उभयत्र 6.3.26
उभयप्राप्तौ 2.3.71
उभयोऽन्यत्र 7.1.52
उभसर्वतसोः 2.3.2
उरसो लोपश्च 3.2.48
उवर्णाल्ल 5.3.83
उष्णभद्र 6.3.70

ऊ

ऊ च गमा 6.4.40
ऊठ्युपधा 6.1.171
ऊधसोऽनङि 5.3.131
ऊर्णोतेश्च 3.1.36
ऊर्ध्वदेहा 4.3.60
ऊर्ध्वन्दमा 4.3.60

ऋ

ऋकारल्लकार 1.1.9
ऋकारल्वादि 3.3.94, 8.2.44
ऋचित्रेरुत्तर 6.1.37
ऋणदशा 6.1.89
ऋतिसवर्णे 6.1.98
ऋतुनक्षत्राणां 2.2.34
ऋते च तृतीया 6.1.89
ऋवर्णाच्चे 8.4.1
ऋषिप्रतिषेधो 6.2.165

ॠ

ॠकारल्वादि 8.2.44

ऌ

ऌति ल्ल वा 6.1.101

ए

एकतरात् प्रति 7.1.26
एकतिङ् वाक्यं 4.1.20
एकवचन 4.1.89
एकाक्षरपूर्व 5.3.83
एकाचो न 6.1.95
एकादेश शास्त्रा 8.3.41
एकादेश स्वरो 8.2.3
एतेवान्नावाद 8.1.23
एवे चानियोगा 6.1.91

ओ

ओजसोऽप्स 3.1.11
ओतो णिदि 6.1.93
ओत्वोष्ठयोः 6.1.94

औ

औत्वप्रतिषेध 7.2.107

क

ककारप्रत्य 5.2.33
कच्छ्वा ह्रस्व 5.2.107
कण्ड्वादीनां 6.1.3
कन्द्रावे 6.3.101
कन्प्रकरणे 5.3.3
कपिलकादी 8.2.18
कबरमणि 4.1.55
कमलादि 4.2.51
कमेरप्रति 2.3.69
कमेरुपस 3.1.48
कम्बोजादि 4.1.175
कर्तृकर्मणो 3.3.127
कर्मणः कर 1.4.32
कर्मणि समि 3.2.49
कर्मप्रवच 6.4.24
कर्मव्यति 8.1.12
काकिण्याश्चो 5.1.33
काण्यादीनां 7.4.3
कादिलोपे 6.4.149
कामप्रवे 3.3.157
कारकार्हा 2.3.38
कारिकाश 1.4.60
कार्षापणा 5.1.25
कास्यनेका 3.1.35
किंयत्तद्बहु 3.2.21
किकिनाव 3.2.171
किरतेर्हर्ष 1.3.21
कुक्कुट्यादि 6.3.42
कुग् जन 4.2.138
कुत्सित इति 5.2.122
कुरुवृज्यो 7.1.38
कृत्रादीनां 6.1.12
कृत्रोऽसुट्क 7.2.13
कृतापकृता 2.1.60
कृत्यग्रहणे 2.1.33
कृद्योगा 2.2.8
कृन्नद्याः 6.3.44
केलिमर उप 3.1.96
केवलायाश्चे 5.1.33
कोपधप्रति 6.3.37
कौरव्यमा 4.1.19
क्तिनि नित्यं 7.2.30
क्तिन्नपीष्य 3.3.94
क्तिन्नाबादि 3.3.94
क्यचि मान्ता 3.1.8
क्रमेस्तु कर्त्त 7.2.36
क्रिया कुत्सन 8.1.12
क्रियाग्रहणं 1.4.32
क्रियाविशेष 2.4.18
क्रियासमभि 8.1.12
क्रुकन्नपि 3.2.174
क्रोशशत 5.1.74
क्लिन्नस्य 5.2.33
क्विप् प्रत्य 6.4.34
क्विब् वचि 3.2.178
क्वौ च शास 6.4.34
क्शादिरप्य 2.4.54

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्षत्रिय समान 4.1.168
क्षदेश्चनि 3.2.135
क्षिपकादीनां च 7.3.45
क्षीरलवणयो 7.1.51

ख

खच्च डिद् 3.2.38
खच् प्रकरणे 3.2.38
खरुसंयोगोप 4.1.44
खपरे शरि 8.3.36
खर्पूर्वाः खय 7.4.61
खलति कादिषु 1.2.51
खलादिभ्य इनि 4.2.51
खश्प्रत्यये 3.2.28
खुरखराभ्यां 5.4.118

ग

गच्छतौ पर 4.4.1
गजाच्चे 4.2.43
गणिकाया 4.2.40
गत्यर्थेषु 1.4.52
गन्धस्येत्त्वे 5.4.135
गमादीनामि 6.4.40
गमेरिङादेश 6.4.16
गवादिषु 3.1.138
गवाश्वप्र 2.4.11
गवि च युक्ते 6.3.46, 1.2.6
गापोर्ग्रह 2.4.77
गिरौ डश्छन्द 3.2.15
गिलगिले 6.3.70
गिलेऽगिल 6.3.70
गुग्गुलुमधु 4.1.71
गुणवचनेभ्यो 5.2.94
गुणात्तरेण 2.2.9
गुणादिभ्यो 4.2.37
गोत्रस्य बहु 4.1.89
गोत्रादङ्क 4.2.8
गोत्रान्ताद् 1.1.73
गोपालिका 4.1.48
गोर्यूतौ छ 6.1.79
गोष्ठादय 5.2.29
ग्रीष्माद 4.1.86
ग्लाम्लाज्या 3.3.94

घ

घञपोः प्रति 2.4.56
घञर्थे कवि 3.3.58
घट्टिवन्दिविदि 3.3.107
घस्ल्ल भावे 2.4.37
घिनुणि च 6.4.24
घोषग्रहण 4.3.127

ङ

ङावुतरपदे 8.2.8

च

चटकाच्चे 4.1.128
चतसर्या 7.2.99
चतुरश्छयता 5.2.51
चतुरोऽच् प्रक 5.3.77
चतुर्थादच 5.3.83
चतुर्थी विद्या 2.3.13
चतुर्थ्यर्थ उप 5.1.47
चतुर्मासाण्ण्य 5.1.94
चतुष्पाज्जाति 2.1.71
चयो द्वितीया 8.4.48
चरणाद् धर्मा 4.3.126
चरिचलिपति 6.1.12
चरेराङि चा 3.1.100
चर्मणः कोश 6.4.144
चातुर्मास्यानां 5.1.94
चातुर्मास्यानां 5.1.94
चातुर्वर्ण्या 5.1.124
चापले द्वे 8.1.12
चारौ वा 3.2.49
चावतद्धित 6.1.222
चित्रीकरणे 3.1.26
चिरपरु 4.3.23
चीवरादर्जने 3.1.20
चुल्लादेशो 5.2.33
चूडादिभ्य 5.1.110

छ

छत्वममीति 8.4.63
छन्दसः प्र 4.2.55
छन्दसि च नेतु 5.4.116
छन्दसि तृच्च 3.2.135
छन्दसि निपू 3.3.35
छन्दसि परे 3.1.8
छन्दसि भाषा 8.2.70
छन्दसि वेति 7.3.107
छन्दसि स्त्रियां 6.3.92
छन्दसी वनि 5.2.109
छन्दस्यमि 6.4.120
छन्दो विनि 5.2.122
छप्रकरणे 4.2.28
छिपकादीनां 7.3.45

ज

जनपरयो 4.3.60
जवसवौ 3.3.56
जसादिषु 7.3.109
जागर्त्तेरका 3.3.101
जातुयदो 3.3.147
जातेऽर्थे 4.2.8
जिघ्रते सञ्ज्ञा 3.1.137
जित् पर्याय 1.1.68
जिह्वाकात्य 1.1.73
जुगुप्साविराम 1.4.24
जुहोतेर्दीर्घ 3.2.178
ज्योतिरुद्गम 1.3.40

झ

झलि सञ्जीति 8.1.42
झित्तद्धि 1.1.68

ठ

ठक्छसोश्च 6.3.35
ठक्प्रकर 4.4.1
ठग्रहणमुको 5.3.82
ठञ्प्रकरण 4.2.35

ड

डच्प्रकरणे 5.4.73
डट् स्तोमे 5.2.37
डतरडतम 8.1.12
डप्रकरणा 3.2.48
डप्रकरणे 3.2.48
डरो वक्तव्य 2.3.125
डलकवती 7.3.107
डाचि द्वे 8.1.12
डुप्रकरणे 3.2.180
डे च विहायसो 3.2.38
डो वक्तव्यः 3.3.125

ण

णमुलत्र वक्त 6.1.140
णाविष्ठवत् 6.4.156
ण्यति प्रति 7.3.66
ण्यन्तानां 8.4.34
ण्यादयो 4.1.85

त

तकिशसि 3.1.97
तच्चरतीति 5.1.94
ततोऽभिगम 5.1.74
तत्करो 3.1.76
तत्पचतीति 5.1.52
तत्परे चेति 8.4.48
तत्र शेप 6.2.140
तत्स्थैश्च 2.2.9
तदन्ताच्चे 5.2.135
तदन्तादपीति 5.2.46
तदस्य प्रक 5.1.105
तदादि वचनं 1.4.13
तदादेश्च 4.3.60
तद् युक्तात् 2.3.28
तद् विपर्या 2.3.36
तनोतेर्णस्यो 3.1.140
तत्र सहते 5.2.122
तपसः पर 3.1.15
तमे तादेश्च 6.4.149
तयोश्छन्दसि 4.1.39
तलो ह्रस्वो 7.3.107
तसि प्रकरणे 5.3.44
तस्य निमित्त 5.1.38
तादर्थ्ये चतु 6.3.7
ताभ्यां पितरि 4.2.36
तारका ज्योतिषि 7.3.45
तावतिथेन 5.2.77
तिङन्तस्य 8.3.100
तिडां तिङो 7.1.39
तितुत्र 7.2.9
तिलानिष्फ 4.2.36
तिष्यपुष्य 6.4.149
तिसृभावे 7.2.99
तीयादीकक् 4.2.8

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तुरीयशब्द 2.2.3
तृज्वद्भावा 7.1.97
तृतीया वि 3.3.18
तृन्विधावृ 3.2.135
त्यकनश्च 7.3.44
त्यदादीनां 1.2.72
त्यब्नेर्ध्रुव 4.2.104
त्रेश्च प्रति 6.1.176
त्वतलोर्गुण 4.1.35, 6.3.35
त्विषेर्देव 3.2.135

द

दंशेश्छन्द 3.2.139
दम्भेरेत्वं 6.4.120
दरिद्रातेरा 6.4.114
दारजारौ 3.3.20
दारावाहनो 3.2.49
दासाच्छन्द 4.1.35
दिक्पूर्व 5.3.32
दिक्शब्द 6.3.109
दिग्धसह 3.2.15
दिवश्च दासे 6.3.21
दुग्वोर्दीर्घश्च 8.2.44
दुरो दाशनाश 6.3.109
दूत्यम् 5.1.126
दूरादेत्य 4.2.104
दृक्षे चेति 6.3.89, 6.3.90
दृशेः क्सश्च 3.2.60, 6.3.89
दृशेरग्वक्त 3.1.86
दृशेश्चेति 1.3.29
दृष्टे सामनि 4.2.8
दृभय इत्य 3.2.178
देवाद्यञ 4.1.85
देवानां प्रिय 6.3.21
दोष उपस 7.3.51
द्यतेरित्वाद 7.4.47
द्युतिगमि 3.2.178
द्युश्चोभया 5.3.22
द्वन्द्वे घ्यजा 2.2.33
द्वन्द्वे देवा 4.3.88
द्विगुप्राप्ता 2.4.26
द्विगोर्नित्यम् 5.2.37
द्वितीयादच 5.3.83
द्वितीयाऽनुप 6.2.47
द्वित्वे गोयुगच् 5.2.29
द्विर्वचनप्रक 6.1.8
द्विर्वचने 8.2.3
द्विषः शतुर्वा 3.2.128
द्व्यक्षरत्र्यक्ष 8.4.6

ध

धमुञन्तात् 5.3.45
धातोरुगि 4.1.6
धात्वर्थनिर्देशे 3.3.108
धासु वा षष 6.3.109
धूञ् प्रीञो 7.3.37
धृषेश्चेति 3.2.172
धेनोरन 4.2.47
धेनोर्भव्या 6.3.70
ध्यायतेः सम्प्र 3.2.178

न

नकारग्रह 6.1.174
नक्षत्रयोगे 3.1.26
नगपांसु 5.2.107
नञो नलोप 6.3.73
नञो नलोपो 6.3.73
नञोऽस्त्यर्थ 2.2.24
नञ्स्नञीक 4.1.15
नपुंसके भाव 2.3.67
नभोऽङ्गिरो 1.4.18
नयतेः षुक् 3.2.135
नरकरि 4.2.51
नराच्चेति 4.4.49
नवस्य नू 5.3.25
नवाऽस्त्रीपूर्व 6.3.42
न विद्याया 4.2.8
नशिमन्यो 6.4.120
नश्च पुराणे 5.3.25
नस् नासिका 6.1.63
नान्तस्य टि 6.4.144
नासिकायां 3.2.29
निमित्तकारण 3.3.27
निमित्तात् कर्म 2.3.38
निमिमीलियां 6.1.51
निमेये चाऽपि 5.2.47
निरादयः क्रा 1.2.44, 2.2.18
निरो देशे 3.2.48
निष्के चेति 6.3.56
निष्ठादेश 6.1.16, 8.2.3
निष्ठायाः पूर्व 2.2.36
निसो गते 4.2.104
नीलादोषधौ 4.1.42
नील्या अन् 4.4.2
नुड्विधि मा.सू.4
नृतिखनि 3.1.145
नेतुर्नक्षत्रे 3.1.138, 5.4.116
नौ लिम्पेरि 3.1.138

प

पञ्चजनादु 5.1.9
पञ्चमी वि 3.3.28
पण्यकम्बल 3.1.61
पत्राद् वाह्ये 4.3.123
पथः सङ्ख्या 2.4.18
पथ्यध्याय 4.2.129
पदादिषु 6.1.63
पदाधिकार 8.2.3
पदान्तवच्चे 7.4.85
पदव्यवाये 8.4.37
पद्भावे 6.3.53
पयसस्तु[1] 3.1.11
परस्परोपप 1.3.16
परिचर्याप 3.3.101
परिदेवन 3.3.15
परेर्वर्जने 8.1.5
परेर्वा 3.3.107
परोक्षे च 3.2.111
पर्यादयो ग्लाना 2.2.18
पर्वमरुद् 5.2.122
पर्शूणस्व 4.2.42
पल्यराज 5.3.78
पाटेर्णिलुक् 6.1.12
पाणिगृही 5.1.52
पाणौ सृजे 3.1.110
पाण्डोर्जन 4.1.171
पात्रादिभ्यः 2.4.17
पादिषु धेट 1.3.89
पार्श्वादिषू 3.2.16
पावकादीनां 7.3.45
पिङ्गश्छन्द 4.2.36
पित्पर्याय 1.1.68
पिशङ्गादु 4.1.39
पिशाचाच्चे 5.2.122
पीतात्कन् 4.2.2
पीवोपवस 6.3.109
पुंवद्भावाद् 6.3.42
पुंवद्भावो 6.3.45
पुंसानुजो 6.3.3
पुच्छाच्चे 4.2.10
पुच्छादुद 3.1.20
पुण्यसुदिना 5.1.111
पुण्याहवाचना 5.1.111
पुनर्भ्वश्चेति 6.4.84
पुनश्चनसौ 1.4.60
पुम्मुहुसोः 8.3.41
पुरुषाद् वध 5.1.10
पुरुषाद् वधवि 5.1.10
पुष्पमूलेषु 4.3.166
पूजायां स्वति 5.3.69
पूञो विनाशे 8.2.44
पूर्णमासादण् 4.2.35
पूर्वपदाद्यो 6.2.199
पूर्वपदान्तो 6.2.199
पूर्वपदे सुपो 5.2.12
पूर्वप्रथम 8.1.12
पूर्वादिभ्यः 4.2.51
पूर्वादिष्व 2.1.31
पृच्छतौ 4.4.1
पृथिव्याञा 4.1.85
प्रकृत्यर्थस्य 5.2.29
प्रकृत्याके राज 6.4.163
प्रगस्य छ 4.3.23
प्रतिपदवि 2.2.10
प्रतिशब्दश्चा 5.1.25
प्रतिषेधे हसा 1.3.15
प्रमाणपरिमाणा 5.2.37
प्रमाणे लो 5.2.37
प्रवत्सतर 6.1.89
प्रश्नाख्यान 2.3.28

1. वस्तुतस्तु जैनेन्द्रसूत्रमिदम्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रश्नान्ताभि 8.2.107
प्रहरणार्थेभ्य 2.2.35
प्राक्शताद् 6.3.47
प्राग्दीव्यति 4.2.33
प्राग्बहु 5.3.69
प्राण्यङ्गादि 5.2.96
प्रादयो गता 2.2.18
प्रादिप्र 2.2.18
प्रादिभ्यो धातु 2.2.24
प्रादूहोढो 6.1.89
प्लुतविकार 8.2.3

फ

फलबर्हाभ्यां 5.2.122
फल्गुन्यषाढा 4.3.32
फेनाच्चेति 3.1.16

ब

बकारस्याऽपि 6.1.3
बलादूलच् 5.2.122
बहिर्देव 4.3.58
बहिषष्टि 4.1.85
बहुग्रहणे 5.3.2
बहुपूर्वाच्चे 5.1.30
बहुप्रकृ 2.4.12
बहुलं छन्दसी 3.2.8
बहुलं सञ्ज्ञा 2.4.54
बहुलं सञ्ज्ञा 4.1.53
बहुव्रीहिः समा 2.2.24
बहूर्जि नुम् 7.1.72
बह्वल्पार्था 5.3.42
बाहुरुपूर्व 4.3.77
बाह्युर्दि 4.2.99
बाह्वादिप्र 4.1.96
बृहन्महतो 6.1.173
ब्रह्मणि वदः 3.2.78
ब्रह्मवर्चसादु 5.1.39
ब्राह्मणाच्छंसि 6.3.2

भ

भक्षस्य छन्द 6.3.70
भक्षेरहिंसार्थ 1.4.52
भगे च दारे 3.2.41
भद्राच्चेति 5.3.67
भयभीतभीति 2.1.37
भर्त्सने पर्या 8.2.95
भवतेश्चेति 3.1.143
भवने क्षेत्रे 5.2.29
भस्याऽढे 6.3.35
भागरूपना 5.3.25
भाण्डात् समा 3.1.20
भावप्रत्ययान्ता 4.4.20
भाषायां धाञ् 3.2.171
भाषायां शासि 3.3.130
भूयसश्च 5.1.34
भूरिदाव्नस्तु 8.2.17
भोराजन्य 8.2.83
भ्रकुंसादी 6.3.61
भ्रातुश्च ज्या 2.2.34
भ्राष्ट्रग्न्यो 6.3.70

म

मण्मीयौ च 4.3.60
मत्वर्थाच्छ 3.3.108
मत्स्यस्य ङ्या 6.4.149
मधुकमरिच 5.1.77
मध्यशब्दा, मध्यो मध्यं 4.3.60
मनुष्यलुपि 1.2.52
मपूर्व 6.4.170
मरुच्छन्द 1.4.59
मर्मणश्चे 5.2.122
मर्मृज्यते 7.4.91
मस्जेरन्त्यात् 1.1.47
महदात्त्वे 6.3.46
महाजनान्नि 5.1.9
महानाम्न्या 5.1.94
महिषाच्चे 4.2.87
माङ्याक्रोशे 3.2.124
मातच् मातृ 6.1.142
मातृणां मात 7.3.107
मामकनर 7.3.44
मासाद् भृति 5.4.116
मित्राच्छन्दसि 5.3.25
मुखपार्श्व 4.2.138, 4.3.60
मुद्गलाच्छ 4.1.49
मृजेरजादौ 1.1.2
मेधारथा 5.2.109

य

यकपूर्वाया 7.3.46
यकारपर 6.1.3
यक्चिणो 3.1.89
यजिवप्यो 6.4.120
यज्ञर्त्विग्भ्यां 5.1.71
यज्ञादीना 2.4.64
यणो मयो द्वे 8.4.47
यतश्चाऽध्व 2.3.28
यथेष्टं 6.1.3
यदेतदप्रा 2.3.17
यन्प्रकरण 4.2.42
यप् प्रकरणे 5.2.120
यमाच्चेति 4.1.85
यरोऽनुनासि 8.4.45
यवनाल्लिप्या 4.1.49
यवलपरे 8.3.26
यवाद्दोषे 4.1.49
यस्मिन् विधि 1.1.72
यस्येत्यौ 6.4.148
याथाकाम्ये 7.4.35
यासयोरि 7.3.45
युष्मदस्मद 8.1.23
योगे चेति 8.2.22
योपधप्रकर 4.1.63

र

रजकरजन 6.4.24
रञ्जेर्णौ मृग 6.4.24
रथसीता 4.3.120
रप्रकरणे खमु 5.2.107
रयेर्मतौ बहु 6.1.37
राजघ उप 3.2.55
राजाचार्याभ्यां 5.1.9
राज्ञोऽप 4.1.137
रादिफः 3.3.108
रेशब्दाच्च 6.1.176
रोः काम्ये 8.3.38
रोगे चेति 8.4.61

ल

लघ्वक्षरं पूर्वं 2.2.34
लुक्प्रकर 4.3.34
लुगकारे 4.4.128
लुगागम 7.3.37
लुप् प्रकरणे 4.3.166
लुबाख्या 4.3.87
लोकस्य पृणे 6.3.70
लोकोत्तर 4.3.60
लोपः पूर्व 5.3.83
लोम्नोऽपत्ये 4.1.85
लोहितडाज्भ्य 5.4.57
लोहितात्लि 5.3.31

व

वडवाया 4.1.120
वतुप् प्रकर 5.2.39
वत्वन्तात् स्वार्थे 5.2.37
वन उपस 8.3.1
वनो न दृश 4.1.7
वप्रकरणे 5.2.109
वयस्य चरम 4.1.20
वर्जने प्रति 2.4.54
वर्णकातान्त 7.3.45
वर्णात्कारः 3.3.108
वर्णानामानुपू 2.2.34
वर्त्तका शकु 7.3.45
वलच् प्रकर 5.2.112
वलादावा 2.1.35
वशिरण्यो 3.3.58
वसतेर्लुङ 3.2.110
वसुशब्दा 4.1.44
वसेरश्यर्थ 1.4.48
वसेस्तव्य 3.1.96
वहीनरस्ये 7.3.1
वहेरनियन्तृ 1.4.52
वा केशेषु 6.1.61
वा गोमयेषु 4.2.129
वाङ्मति 4.1.85
वाचो वादे 6.3.109
वातं न सह 5.2.122
वातात् समूहे 5.2.122
वातादूल 4.2.42
वा नपुंसका 8.2.8
वा नामधा 6.1.3
वा नामधेय 1.1.73
वाप्रकरणे 8.4.10

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वा प्रियस्य 2.2.35
वाबन्त 2.4.17
वालमूल 7.4.38
वा लिप्साया 1.3.25
वा हतजग्ध 8.4.48
विंशतेश्चेति 5.1.58, 5.2.37
विकारे स्नेहे 5.2.29
विगृहीताच्च 4.2.92
विद्या 6.3.23
विनाऽपि पूर्व 5.3.32
विनाऽपि प्रत्य 5.3.83
विभक्ति नि 6.1.158
विभक्तिस्व 6.1.158
विभाजयितु 4.4.49
विभाषा प्रक 1.1.36
विभाषा भव 8.3.1
विशसितु 4.4.49
विशिपूरि 5.1.111
विश्वजनादी 6.1.76
विस्तारे पटच् 5.2.29
विस्मितप्रति 7.2.29
विंहायसो विह 3.2.38
वुग्युटावुवङ् 6.4.22
वृद्धाच्चेति 4.2.39
वृद्धेर्वृधुषि 4.4.30
वृषण्वस्व 1.4.14
वेति वक्त 6.1.12
वेर्ग्रो वक्तव्य 5.4.119
वेशादिषु 6.3.122
वैरे देवासु 4.3.125
व्यचे कुटा 1.2.1
व्यधेः सम्प्र 3.2.162
व्याधिमत्स्य 3.3.17
व्यासवरु 4.1.97
व्रीहिवत्स 3.2.24

श

शंसिदुहि 3.4.109
शकन्ध्वादिषु 6.1.94
शकलकर्द 4.2.2
शतरुद्रा 4.2.28
शतषष्टे· 4.2.60
शतसहस्र 2.1.39
शताच्चेति 5.1.35
शन्शतोर्डिनि 5.1.58, 5.2.37
शप उपालम्भ 1.3.21
शरः खयो 8.4.47
शसिबह्वल्पा 6.3.35
शिक्षेर्जिज्ञासा 1.3.21
शिखा 5.2.116
शीतोष्णतृप्रे 5.2.122
शीलिकामि 3.2.1
शीले कोमलो 5.3.71
शुनः सङ्कोच 6.4.144
शुनोदन्त दंष्ट्रा 6.3.137
शृङ्गवृन्दाभ्या 5.2.122
शृवायुवर्ण 3.3.21
शे तृम्फादी 7.1.59
शेपपुच्छला 6.3.21
शेवलादी 5.3.84
शेषविज्ञाना 2.3.67
शेषे विभाषा 2.3.66
श्रुत्वं धुटि 8.2.3
श्यतेरित्वं 7.4.41
श्यां प्रतिषेधो 7.1.19
श्रच्छब्दस्यो 1.4.59
श्रदन्त रोरु 3.3.106
श्रन्थश्चेति 6.4.122
श्रन्थिग्रन्थि 1.2.6
श्रविष्ठाषाढा 4.3.34
श्रितादिषु 2.1.24
श्रूयजिस्तु 3.3.94
श्रोत्रियस्य 5.1.130
श्वशुरस्योका 4.1.66
श्वेतवहादी 3.2.71

ष

षष उत्वं 6.3.109
षष्ठीप्रक 6.3.21
षष्ठ्यर्थे चतु 2.3.62
षाच्चय 4.1.74

स

संयोगान्तस्य 8.2.3
संयोगाद्देर्गुणं 7.4.10
संवहेस्तु 4.3.120
सङ्ख्याग्रह 5.2.46
सङ्ख्याग्र 4.2.65
सङ्ख्याग्रयो 1.2.58
सङ्ख्याया अल्पी 2.2.34
सञ्ज्ञायामण् 5.1.94
सञ्ज्ञायामुत्त 6.3.57
सत्रकष्टकक्ष 3.1.14
सनि राधो 7.4.54
सत्रिपाता 7.4.54
सपूर्वपदा 4.3.4
सप्तमीविधा 2.3.36
सप्तम्याः 2.2.35
सप्तम्या ऋ 2.4.84
सप्तम्युप 2.2.24
समवपूर्वाच्च 3.1.110
समशब्दा 5.3.25
समानवाक्ये 8.1.19
समानशब्दा 4.3.60
समानाधिक 2.1.60
समानान्य 3.2.60
समाप ईत्वे 6.3.97
समास प्रत्य 1.1.72
समिधामाधा 4.3.120
समुदाय विका 2.2.24
समोऽकूजने 1.3.21
सम्पदादि 3.3.94
सम्पुङ्कानां 8.3.5
सम्पूर्वाद् 3.1.112
सम्प्रसारण 6.1.86
सम्बन्धि 4.1.96
सर्व एव 8.1.26
सर्वजनाट् 5.1.9
सर्वत्र गो 4.1.85
सर्वत्रामय 5.2.122
सर्वनाम सङ् 2.2.35
सर्वनाम्नो वृत्ति 2.2.26
सर्वप्रातिपदि 3.1.11
सर्वप्रातिपदिके 7.1.51
सर्वस्वरो 6.1.191
सर्वाण्णस्य वा 5.1.10
सर्वादेशेति 5.2.135
सवर्णदीर्घ 6.1.101
सविशेषणस्य 1.2.59
सहायाद् वा 5.1.132
सहितसहाभ्यां 4.1.70
सहिवहि 3.2.171
साक्षात्प्रभृति 1.4.74
सादकारयो 6.3.122
साधुकारिणी 3.2.78
साध्वसाधुप्रयो 2.3.36
सिच आद्यु 6.1.187
सिज्लोप एकादे 8.2.3
सित्तद् विशे 1.1.68
सिद्धश्च प्रत्य 6.4.114
सिनोतेर्ग्रास 8.2.44
सिन्नित्यसमा 6.1.127
सीमन्तः केशे 6.1.94
सुग् वक्तव्यः 7.1.51
सुदिनदुर्दिन 3.1.17
सुदुरोरधिक 3.2.48
सुपां सुपो 7.1.39
सुबधिकारे 2.2.24
सुबन्तस्य 2.1.2
सुब्धातुष्ठिवु 6.1.64
सुराशीध्वो 3.2.8
सुवर्णशतमान 5.1.29
सूचिसूत्रिमू 3.1.22
सूतोग्रराज 6.3.70
सूत्रे च धार्ये 3.2.9
सूर्यागस्त्ययो 6.4.149
सूर्यादेवतायां 4.1.48
सोऽपदादा 8.3.38
स्तने धेटः 3.2.29
स्तोमे डविधि 5.1.58
स्त्रियामपत्ये 4.1.128
स्त्रियामपि 8.2.83
स्त्रियामय 4.1.128
स्त्रीनपुंसक 8.1.12
स्थाम्नोऽकार 4.1.85
स्थाम्नो लुग् 4.3.60
स्थास्थिन् स्थू 8.3.97
स्थेणोरद्य 2.4.3
स्पृश उप 3.3.16
स्पृशमृश 3.1.44

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वराद्यन्तो	1.3.64	स्वार्थे अव	8.1.12	हरिद्रा महा	4.2.2	हिमारण्यया	4.1.49
स्वरो रो	6.3.109	ह		हरीतक्यादिषु	1.2.51	हिरण्य इति	3.1.123
स्वर्गादिभ्यो	5.1.111	हनुचलन	3.1.15	हर्षजीविका	6.1.142	हृग्रहोर्भश्छ	8.2.35
स्ववः स्वत	7.4.48	हनो वा वध	3.1.97	हविषः प्रस्थि	2.3.61	हृदय्या आप	6.1.83
स्वाङ्गकर्मका	1.3.20,1.3.27	हन्तेर्घत्वं	6.1.12	हस्तिसूचक	3.2.13	हृदयाच्चालु	5.2.122
	1.3.28	हन्तेर्हिंसायां	7.4.30	हायनो	4.1.27	हृद्द्युभ्यां	6.3.9
स्वादीरेरिः	6.1.89	हरतेरप्रति	1.3.15	हितयोगे चतु	2.3.13		
स्वामिन्यन्तो	3.1.103	हरतेर्गतता	1.3.21	हिन्योरुत्व	3.4.86		

(ग) काशिकास्थेष्टीनामकाराद्यनुक्रमेणानुक्रमणी

(अत्र वामतः काशिकासम्मताऽध्यायपादसङ्ख्या निर्दिश्यते)

अङोऽप्यत्र	3.1.49	ऋतो भारद्वाज	7.2.13	जातीयऽरोऽनेन	8.1.12	पुण्यसुदीना	2.4.18
अणपीष्यते	4.1.73	एकतरद्धि	7.1.26	ट्युट्युलौ	6.4.144	पूर्वविप्रति	3.4.37
अत्रापि सत्रर्थ	3.1.6	एतत्तु विशेष	7.3.66	णप्रत्ययोऽत्रे	4.4.101	पै ओवे शोष्णे	7.3.37
अत्रेष्टिश्रन्थि	1.2.6	एते च त्रयो	6.3.10	ण्यत् प्रत्ययस्य	4.1.122	प्रकृतिविकारे	6.2.43
अनर्थकस्यापि	1.2.45	एभिरस्थ्य	7.1.75	तदन्तग्रहण	7.1.2	प्रत्ययलक्षण	6.1.199
अनियमश्चात्रे	2.2.31	ओजसोऽप्सरसो	3.1.11	तदन्तविधि	7.2.84	प्राण्यङ्गात्रे	5.2.128
अनोनकारान्त	6.4.134	कर्मधारयादि	5.1.109	तदन्तविधिर	7.1.98	बहुवचने	4.1.98
अन्त्यात् पूर्व	7.1.72	कारकादत्त	6.2.148	तिङन्तादयं	5.3.70	बाधकविषये	3.3.43
अयं प्रतिषेध	6.3.41	कारापूर्वस्या	6.4.84	तुरीयशब्द	2.2.3	भञ्जेः कर्म	3.2.161
अयमादेश	7.4.46	क्त्वपेरपि	7.2.60	त्रिविधश्चा	3.2.89	भूयश्च वाचि	5.2.47
असूयके	8.2.83	क्तिन्नपीष्यते	3.3.94	त्रीणामित्य	7.1.53	भृशं शोभते	3.1.22
अस्याश्च	8.2.84	क्रियाविशेषणा	2.4.18	दिग्यादेशेन	7.4.9	मस्जेरन्त्या	1.1.47
अस्येटो	7.2.75	क्शादिरप्यमा	2.4.58	द्योशब्दोऽप्यो	6.1.93	मृजेरजादौ	1.1.5
आकृतिगण	7.3.20	गतिकारकपूर्वा	6.4.82	द्विपर्यन्त	7.2.12	यत् प्रत्ययेनैवे	2.1.43
आत्मनेपदेन	7.2.58	गतिग्रहणेन	8.1.18	न ङिसम्बुद्ध्योः	7.1.98	यथासंख्य	5.1.127
आसे एकान्त	8.1.55	घ इति	8.2.22	न च ब्रीह्यादि	5.2.116	यस्माच्छाशे	6.4.34
इतः पूर्व संख्या	5.1.20	ङित्यजादावयं	6.1.188	नञ् पूर्वाणामि	7.3.47	रोगे चायमिष्य	5.2.129
इतः प्रभृति	8.2.25	चतुर्विधश्चात्र	3.2.87	निन्दाक्षमाव्या	3.1.5	लाक्षणिकस्या	7.1.100
इषु इच्छाया	7.2.4	चरणाद् धर्माम्ना	4.3.126	पक्षेऽजपीष्यते	5.4.118	लुगन्तायास्तु	5.1.20
इष्यते तु	6.1.62	चर्मण्यापि प्रकृति	5.1.14	पञ्चमी व्यवहिते	8.1.66	लुमताऽपि	6.1.198
इहापि प्रतिषेध	7.3.45	छन्दसि चायमिष्यते	4.3.102	पथः संख्याऽव्य	2.4.18	लेख इत्यण	6.3.50
ईकारान्तादन्य	6.1.130	छन्दसि निपू	3.3.35	परमप्रकृतेरेवाय	4.1.155	ल्युटा तु समावेश	3.3.44
उत्तरपद	7.3.30	छन्दस्येव	7.3.107	परिमाणान्तस्या	5.1.55	वर्णाश्रयविधा	6.1.85
उत्तरपदेऽपि	7.3.45	जनजनन	7.2.78	पादशब्देन च	6.1.115	वर्णाश्रयेऽपि	7.3.92
उशनसः	7.1.94	जनादीनामुपदेश	6.1.195	पीत्वीनमपीष्यते	7.1.48	वलादावा	2.4.56

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वसुग्रहणे	6.4.131	वृद्धिविषये	7.4.10	शरीरावयवस्य	6.3.53	सानाय्या	5.4.36
वाबन्तः	2.4.17	वृषशब्दोऽत्र	4.1.154	श्वादीनामेतत्	6.4.133	सुभगमन्त्रे	7.3.19
विगृहीताद	5.2.11	शकलकर्दमाभ्याम	4.2.2	षष्ठ्यपीष्यते	2.3.31	सूत्रान्तादक	4.2.60
विगृहीतादपीष्यते	4.2.93	शतसहस्र	5.2.45	समानस्य सर्व	1.2.27	सौनागाः कर्मणि	7.2.17
विपरीता	4.2.93	शब्दप्रवृत्ति	2.1.53	समासान्तो	8.1.67	स्तुत्यर्थस्य	2.3.57
विभाषा चायमि	3.3.156	शब्विकरणा	1.2.21	सम्पूर्व	6.1.137	स्वः स्वतवसी	7.4.48
वृग्रहणे वृञो	3.1.109						

(घ) काशिकास्थफिट्सूत्राणामकाराद्यनुक्रमेणानुक्रमणी

(अत्र वामतः काशिकासम्मताऽध्यायपादसूत्रसङ्ख्या निर्दिष्टा
लघुकोष्ठके फिट्सूत्रसङ्ख्या प्रदर्शिता)

(59) कर्दमादीनां च	6.2.13	(80) निपाता आद्यु	6.2.33	(33) वर्णानाम्	4.1.93	(65) साङ्काश्यका	6.2.32
(26) नब्विषयस्यानि	6.2.21	(02) पाटलापालङ्का	6.2.14				

(ङ) काशिकास्थगणसूत्राणामकाराद्यनुक्रमेणानुक्रमणी

(अत्र वामतः काशिकासम्मताऽध्यायपादसूत्रसङ्ख्या निर्दिष्टाऽस्ति)

अङ्गात् कल्याणे	5.2.100	इकन् बहु	4.2.60	कटाच्छो	4.1.41	गवादिषु	5.1.2
अचामचि	3.1.134	इतः प्राण्य	4.1.45	कुड्याया	4.2.95	गुणात्	5.2.95
अणु निपुणे	5.4.29	ईयसश्च	5.4.29	कुमारी	5.4.29	गुहा गिर्यो	3.3.104
अनियमश्चा	2.2.31	उत्तमशश्च	6.1.160	कूलात्	4.2.127	गोमूत्र आच्छा	5.4.3
अनुसूर्ल	4.2.60	उदकात् सञ्ज्ञा	4.3.54	कृदिकारादक्तिनः	4.1.45	गौरिषक्थः	8.3.98
अनो नलोप	2.4.17	उदङ्कः सञ्ज्ञा	4.1.96	कृदिकारा	6.2.140	चतुर्वेदस्यो	5.1.124
अन्तरं बहि	1.1.27	उदस्थाना	4.1.86	कृष्णतिलेषु	5.4.3	चन्द्रभागा	4.1.45
अन्नविकारे	5.1.4	उपसंर्ग	1.4.57	कृष्णरणौ	4.1.99	चर्मिवर्मि	4.1.158
अपूपादिष्व	5.1.2	उपायात्	5.4.34	क्रपेः सम्रसा	8.2.18	चीवरादर्ज	3.1.20
अमितौजस	4.1.96	ऊधसोऽनङ्	5.1.2	क्रपेः सम्र	3.3.104	छिदा द्वैधी	3.3.104
अर्हतो नुम्	5.1.124	ऊरी उरी	1.4.61	क्रुञ्चाया	4.2.91	जटाघटा 5.2.97,	5.2.110
आख्यातमा	2.1.72	ऋतावुष्ण	5.4.29	क्रुञ्चाह्रस्वत्व	6.4.153	जनपरयो	4.2.138
आख्याना	4.2.60	एकाचः	5.2.95	क्रोष्टु क्रोष्ट	4.1.99	जराया जरस्	5.4.107
आत्रेय भा	4.1.110	एति सञ्ज्ञा	8.3.98	क्षुद्रकमालवा	4.2.45	जीर्णशालिषु	5.4.3
आराशस्त्र्याम्	3.3.104	एषणः कर	4.1.41	गर्भादप्राणिनि	5.2.36	जुह्वत्	5.4.81

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तक्षत्रलोप	4.2.91	पूर्वपराव	1.1.27	लक्षणश्या	4.1.123	शून्ये रिक्ते	5.4.29
तदादिवच	1.4.13	पृषदंशे	4.1.86	लक्ष्म्या अच्च	5.2.100	श्रेण्यादिषु	2.1.59
तद् बृहतो	6.2.140	प्रकृति	1.2.56	वडवाया	4.2.97	श्रोत्र शरीरे	5.4.38
तनु सूत्रे	5.4.29	प्रतिपरस	5.4.107	वर्णात्	5.2.127	श्वभ्रेदरः	6.1.160
तपसः पर	3.1.15	प्रधानोप	1.2.56	वर्त्तनिः स्तोत्रे	6.1.160	संवत्सरात्	4.3.16
त्यदादी	1.2.72	बधेर्वैरूप्ये	3.1.06	वर्त्तमान वर्द्ध	6.2.160	संहिताऽगवि	6.2.146
त्रिवेणी	4.1.112	बहुष्वनिय	2.2.31	वष्कयाऽसे	4.1.86	सत्प्राक्का	4.1.4, 4.1.64
दान कुत्सिते	5.4.29	भक्षमन्थ	6.1.160	वाजाऽसे	4.1.105	समुद्रान्ना	4.2.127
दानेरार्जवे	3.1.06	भाण्डात् समा	3.1.20	वातदन्त	5.2.97	समो मतिमन	5.1.123
देवस्य	4.2.138	भारद्वाज	4.1.110	वा नामे	8.1.27	सम्भस्त्राजि	4.1.4, 4.1.64
द्विपदी	4.2.60	भिदा विदा	3.3.104	वाबन्तः	2.4.17	सम्भूयोम्भ	4.1.96
द्व्यचो	4.1.112	भोगवद् गौ	4.1.73	विकार सदृशे	6.2.160	सम्राजः	4.1.151
धर्मादिषूभ	2.2.31	भोजक्षत्रिये	4.1.80	विद्या चान	4.2.60	सर्वतोऽक्ति	4.1.45
धारा प्रपाते	3.3.104	मध्य मध्य	4.2.138	विद्या लक्ष	4.2.60	सर्ववेदादि	5.1.124
नन्दिवाशि	3.1.134	मानेर्जिज्ञासा	3.1.06	विशयी विषयी	3.1.134	सहितपिद	3.1.134
नान्ये मितो	7.3.34	माला क्षेपे	5.2.131	विष्वगित्यु	5.2.100	साम्बतापौ	6.1.160
नाभिं नभं	5.1.2	मुखपार्श्व	4.2.138	वेणुकादि	4.2.138	सुभगमन्त्रे	5.1.129
नृनरयोर्वृ	4.1.73	मूलान्नञः	4.1.4	वेदवेग	6.1.160	सुमङ्गलात्	4.1.41
पत्रमूले	5.4.3	यमोऽप	1.3.89	वेनाच्छ	4.1.151	सुराया अहौ	5.4.3
परस्त्री	4.1.104	यवव्रीहि	5.4.29	शक्तिः शस्त्रे	4.1.45	सूतयुव	4.1.80
परेर्हस्त	6.2.184	याचिव्याह	3.1.134	शप आत्रेये	4.1.110	सूत्रान्ताद	4.2.60
पशौ लून	5.4.29	रक्षश्रुवस	3.1.134	शम रणौ	6.1.203	स्तुयुद्रुव	6.1.160
पाद्यकाला	5.4.29	राजपुरु	7.3.20	शलङ्कु शल	4.1.99	स्नातवेद	5.4.29
पार्ष्णिघम	5.2.97	राजाऽसे	5.1.128	शाकीपला	5.2.100	स्वमज्ञा	1.1.27
पिप्पल्याद	4.1.41	राजाह्नोश्छ	6.2.160	शानेर्निशा	3.1.06	स्वाङ्गाद्धीना	5.2.127
पुत्र कृत्रिमे	5.4.29	रेवती नक्ष	4.1.41	शीर्षान्नञः	5.2.116	स्वाङ्गाद् विवृ	5.2.117
पुरुषाऽसे	5.1.130	रोहिणी नक्ष	4.1.41	शूद्रा चाऽम	4.1.4	हरीतक्या	1.2.51

(च) काशिकास्थपरिभाषाणामकाराद्यनुक्रमेणानुक्रमणी

(अत्र वामतः काशिकासम्मताऽध्यायपादसङ्ख्या निर्दिश्यते)

अङ्गवृत्ते	7.1.30, 7.1.90, 7.3.78	अन्तरङ्गानपि	7.1.37	उभयत आश्रये	7.1.80	गतिकारको	2.2.19, 4.1.50, 8.1.71
अङ्गाधिकारे	7.2.93	अभ्यासविका	7.4.66	एकदेशविकृत	4.3.30	ग्रहणवता	4.1.4, 5.2.87
अनन्त्यविका	8.2.80	अर्थवद् ग्रहणे	1.3.17	एकयोगनिर्दिष्टा	5.2.25	तन्मध्यपति	6.1.132, 6.1.135, 7.1.11
अनित्यमाग	7.1.1	असिद्धं	6.4.19, 6.4.22, 8.2.78	एकानुबन्ध	7.1.36	धातूपसर्गयो	6.1.136
अनिनस्मिन्	4.1.11	उपपदविधौ	3.2.43	कार्यकालं	8.2.1		
				कृद्ग्रहणे गति	6.2.49, 7.1.37		

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नानुबन्ध	3.4.19	यत्क्रियायु	6.1.91, 8.1.71	लिङ्गमशिष्य	7.1.1	सन्नियोग	6.4.153,
निर्दिश्यमान	4.1.78,6.4.130	यदागमास्त	1.2.71	व्यपदेशिवद्	5.2.87		7.3.113
पुरस्तादप	6.1.89	यस्मिन् विधि	6.1.45,	सकृद्गतौ	6.4.101,	सम्प्रसारणं	6.1.31
पूर्वत्रासिद्धे	8.1.1		7.1.37, 7.3.77, 7.3.91		7.1.50, 7.1.77	सर्वे विधय	7.1.57, 7.1.65
प्रतिज्ञानुना	7.1.1	येन नाप्राप्ते	6.1.89	सञ्ज्ञापूर्वको	6.4.146	सर्वो द्वन्द्वो	1.2.63
प्रातिपदिक	4.1.1	येन नाव्यव	7.3.54,	सन्निपातलक्ष	7.1.9, 7.1.13,	स्वरविधौ	6.1.135,
भाव्यमाने	8.2.80		7.4.93, 8.2.19		7.2.90, 7.2.101, 7.3.1,		6.1.176,6.1.223,8.4.42
मध्येऽपवादा	6.4.81	लक्षणप्रति	6.2.85		7.3.50, 8.2.2		

(छ) काशिकास्थोणादिसूत्राणामकाराद्यनुक्रमेणानुक्रमणी

(अत्र वामतः काशिकासम्मताऽध्यायपादसङ्ख्या निर्दिश्यते)

अग्रादिपश्चा	4.1.76	कवतेर्यत्	6.2.8	दृणाते षुग्	6.2.9	शृस्वृस्निहि	6.2.42
अतेरिथन्	6.2.44	कुसुयुभ्य	6.2.1, 6.2.43	धान्ये नित्	6.2.9	श्याधूसूभ्यो	3.4.74
अविमह्यो	1.3.6	कृग्रोरुच्च	6.2.42	पृथिव्याञा	1.1.76	श्वनुक्षन्पूष	6.2.142
अवे भृञ	6.2.144	कृषेर्वर्णो	6.2.3	प्रथेरमच्	6.2.56	सर्वधातुभ्यः	7.2.9
अशूप्रुषि	6.2.4	कृगृशृपॄ	6.2.2	प्लुषिशुषि	7.2.9	सिचिमुच्यो	6.2.7
अशेः क्वसरन्	7.2.9	कृपॄवृजि	6.2.5	भियष्षुग	3.4.74	सितनिगमि	7.2.9
अशेर्देवन	6.2.2	गमेर्डप्रत्य	6.3.77	भुजिमृङ्भ्या	7.1.1	सुक् च	7.2.9
आङि श्रिहनि	6.2.48	चन्द्रे मोऽसि	6.2.42	भूसूभ्रस्जि	6.2.20	सृजेरसु	6.2.9
इण् भीकापा	7.2.9	चुपेरच्चो	6.2.24	रञ्जेः क्युन्	6.2.20	स्फायितञ्च	7.3.53
इषे किच्च.	6.2.14	जृगृस्तृजा	7.3.85	वृतृवदिहनि	7.2.9	हनिकुषिनी	6.2.43, 6.2.144
उपसर्गे वसेः	6.2.144	जृविशिभ्यां	7.1.3	वृषादिभ्यश्चित्	6.2.43	हसिमृगृण्	7.2.9
ऋजेन्द्राग्र	6.2.141	ञमन्ताङ्डः	7.2.8	शमेर्बन्	6.2.4		

(ज) काशिकास्थकारिकाणामकाराद्यनुक्रमेणानुक्रमणी

(अत्र वामतः काशिकासम्मताऽध्यायपादसूत्रसङ्ख्या निर्दिश्यते)

अक्रियमाणे	8.3.43	अदसः सो	7.2.107	अनुप्रयो	2.4.52	अमेहक्क	4.2.104
अक्षादयस्तृ	2.1.10	अदसो द्रेः	8.2.80	अन्तर्वत्प	4.1.32	अर्च्चासु	5.3.100
अज्विधि	3.1.134	अदिं हदिं	7.2.10	अपत्ये कु	4.1.161	अवदत्तं	1.4.57, 7.4.46
अञ्सिद्धिर	4.2.45	अद्रवं मूर्त्ति	4.1.54	अपृक्तश्चे	7.1.25	अश्मानं	2.3.17
अतो लोपो	6.4.46	अधिके समा	5.2.45	अभ्यस्त	7:3.86	आकर्षात्	4.4.7
अदन्तमृ	7.2.10	अनिट्	7.2.10	अमावसो	3.1.122	आकृतिग्रह	4.1.63

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आगमस्य वि	6.1.158	क्षुद्रजन्तु	2.4.8	नाकमिष्ट	3.1.48	विधिवाक्या	4.4.7
आनाय्यो	3.1.127	क्स्नोर्गित्वा	3.2.139	नाम च धातु	3.3.1	विनावातं	2.3.32
आप एत्वं	7.2.107	गणस्थमूद	7.2.10	नामि दीर्घ	6.4.3	वेत्तेस्तु	8.2.56
आमोऽमित्व	3.1.35	घसिभसोर्न	8.2.25	निष्टर्क्ये	3.1.123	व्यायाम	6.1.63
आलम्बिश्च	4.3.104	ङित्वे विद्या	7.1.18	पचिं वचि	7.2.10	शकिस्तु	7.2.10
आहुस्रि	5.3.116	चतुर्थादन	5.3.83	पञ्चम्याश्च	7.2.90	शास्मिनि	6.4.12
इकः कित्त्वं	1.2.9	चर्मणि	2.3.36	पञ्चसु	2.1.10	शिषिं पिषिं	7.2.10
इकोऽचिव्य	7.1.73	चिण्वद् वृद्धि	4.3.4, 6.4.62	परादिश्च	6.2.199	शीलितो	3.2.188
इक् तु यदा	8.2.108	जग्धौ सि	2.4.36	पृथुं मृदुं	6.4.161	शुष्किका	8.2.1
इच्च कस्य	1.2.17	ज्ञापकं स्या	4.2.45	प्रत्याहारे	मा.सू. 4	शैषिकान्म	3.1.7
इट् चासिद्ध	6.4.62	डावतावर्थ	5.2.38	प्रागुदञ्चौ	1.1.75	श्रोत्रियस्येव	5.4.122
इति स्वरान्ता	7.2.10	ण्यदेकस्मा	3.1.123	फलीवन	8.4.6	षट् सञ्ज्ञा	4.1.10
इत्वं कित्	1.2.18	तपिं तिपिं	7.2.10	बाहुलकप्रकृ	3.3.1	संयोगान्त	6.1.68
इमान् दशैः	7.2.10	तस्मिंस्तु क्रि	8.3.43	भागपूर्व	4.1.148	संयोगे गुरु	7.3.86
इमेऽनिट्	7.2.10	तस्येदमि	4.1.92	भूमनिन्दा	5.2.94	सञ्ज्ञायां	3.1.112
ईदूतौ सप्तमी	1.1.19	तातङि ङि	7.1.35	भूवादीना	1.3.1	सञ्ज्ञासु	3.3.1
ईषदर्थे क्रि	1.1.14	तातङो ङि	7.1.35	मध्यो मध्यं	4.3.60	सत्त्वे नि वि	4.1.44
उदात्तत्वा	3.2.57	तान्ते दोषो	7.4.46	मुखपार्श्वत	4.3.60	सदृशं त्रिषु	1.1.37
उदुम्बरा	4.1.173	तुदिं	7.2.10	यमिर्यमन्ते	7.2.10	समानस्य	4.3.60
उभसर्व	2.3.2	त्यजिं यजिं	7.2.10	यमुन्दश्च	4.1.149	सम्बोधने	7.1.94
ऊर्ध्वमानं	5.1.19	दिशिं दृशिं	7.2.10	युवोश्चेद्	7.1.1	सर्वमेवं	8.2.25
एकस्मान्	मा.सू.14	दिहिर्दुहि	7.2.10	रायात्वं तिसृ	7.1.73	सामर्थ्याद्धि	1.2.9
एति जीव	2.3.54	दीर्घविधिं	6.4.12	रीश्वरी	1.4.56	सामान्या	7.1.18
एत्वं भिसि	7.1.9	दुगागमोऽवि	6.3.99	रुद्रो विश्व	8.1.18	सिद्धे यस्येति	4.2.9
एवं सति	8.3.43	दुहियाचि	1.4.51	रुधिः सरा	7.2.10	सिद्धे ह्ययं	8.3.43
औकारोऽयं	7.1.18	दृष्टे साम	4.2.8	लिशं च	7.2.10	सुट्यपि वा	6.4.12
कच्चिज्जीव	3.3.153	देवव्रातो गलो	7.4.41	लुम्पेदवश्च	6.4.144	सुपि कुत्सने	8.1.69
कण्वात्तु श	4.1.18	द्वित्वे नैगमि	7.1.1	वचनाद्यत्र	1.1.19	सुपेः षत्वं	8.3.88
कर्मस्थः	3.1.87	धातु प्रक	3.1.27	वर्णागमो	6.3.109	सुप्तिङ् उप	3.1.85
किन्तुयणा	8.2.108	धातो हि नुम्	7.3.86	वर्णाश्चा	7.1.18	सुसूक्ष्म	2.2.23
किरतिं चर्क्क	7.4.92	धि सकारे	8.2.25	वाच्य ऊर्णो	7.2.11	स्थादीनां	8.3.88
कृत्वसुजर्थे	8.3.43	धूमायन्त	1.1.35	वाच्य ऊर्णो	3.1.36	स्वरेण	7.2.10
कृष्णोदक पा	5.4.75	न दरिद्रायके	6.4.114	वाताय	2.3.13	हरिद्रुरेषा	4.3.104
कौमारापूर्व	4.2.13	न सेडिति	1.2.18	वालवायो	4.3.84	हृष्टतुष्टौ	3.2.188

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(झ) काशिकास्थोदाहृतशब्दानामकाराद्यनुक्रमेणानुऽक्रमणी

(अत्र वामतः काशिकासम्मताध्याय-पाद-सूत्रसङ्ख्या निर्दिष्टा)

अ

अ अपेहि 1.1.14
अइउण् 1.3.3
अंशः 6.1.203
अंशकः 5.2.69
अंशहरः 3.2.9
अंसलः 5.2.98
अंसवती गौः 5.2.98
अक् 1.1.71
अकखीत् 7.2.5
अकणीत् 7.2.7
अकरणिस्ते 3.3.112
अ॒क॒र॒णी॒यम् 6.2.160
अकरत् 3.1.59,7.4.16
अकरभीयः 5.1.1
अकरम् 7.4.16
अकरवम् 3.4.103
अकरिष्यत् 1.4.13, 3.1.33,6.4.71
अकरोत् 3.2.111, 6.4.71
अकरोषि त्वं 6.3.73
अ॒क॒र्ण्यम् 6.2.156
अ॒क॒र्त्त॒व्यम् 6.2.160
अकर्त्ता 6.2.161
अ॒क॒र्त्ता 6.2.161
अकर्त्ति 7.4.92
अकर्तिष्यत् 7.2.57
अकर्त्तीत् 7.2.57
अकर्त्स्यत् 7.2.57
अकल्पिष्यत 1.3.93, 7.2.60
अकल्प्स्यत् 1.3.93, 7.2.60
अ॒क॒स्मा॒त् 6.2.160
अकाणीत् 7.2.7
अकारः 3.3.108
अकारयिषाताम् 3.1.48
अकारि 6.4.104
अकारि 3.1.62
अकारि कटः 3.1.62
अकारि कटो 3.1.66
अकारितराम् 6.4.104
अकारी 3.1.134
अकार्क्षीत् 3.1.44
अ॒का॒र्ण॒वे॒ष्ट॒कि॒कम् 6.2.155
अकार्णीत् 1.1.3
अकार्षम् 7.3.96
अकार्षीः कटं 3.2.120
अकार्षीः 3.2.121, 8.1.43,8.2.93
अकार्षीत् 3.1.44, 3.1.59,3.2.110, 6.4.41, 6.4.71, 7.2.1,7.3.96, 8.2.28
अकार्षुः 3.4.109, 3.4.110
अकिञ्चन 2.1.72
अ॒कु॒मा॒रीकः 6.2.173
अकुरुतम् 1.1.56
अकुरुताम् 1.1.56
अकृक्षत् 3.1.44
अकृढ्वम् 8.3.55
अकृत 1.2.12,3.1.79, 7.2.43,8.2.27
अकृत कटः 3.1.62
अकृतकारम् 3.4.36
अकृता 4.1.52
अकृतिस्तस्य 3.3.112
अकृत्वा 7.1.37
अकृथाः 3.1.79
अकृथाः 8.2.27
अकृषत 8.2.27
अकृषाताम् 8.2.27
अकेशभार्यः 6.3.40
अकेशा 4.1.57
अकोशीत् 7.2.4
अकोषि पादः 3.1.90
अकोषीत् 3.1.45, 7.2.4,8.2.28
अकौशलम् 7.3.30
अक्क 7.3.107
अक्रन् 2.4.80
अक्रन्दीत् 7.4.65
अक्राक्षीत् 3.1.44
अक्षकितवः 2.1.40
अक्षणीत् 7.2.5
अक्षण्वता 7.1.76
अ॒क्ष॒ण्वता॑ 6.1.176
अक्षण्वन्तः 8.2.16
अक्षति 3.1.75
अक्षदर्शः 8.4.49
अ॒क्ष॒द्युवा॑ 6.1.171
अक्ष॒द्युवे॑ 6.1.171
अक्षद्यूः 6.4.19, 7.1.84
अक्षद्यूभिः 6.1.131
अक्षद्यूभ्याम् 6.1.131
अक्षधूः 5.4.74
अक्षधूर्त्तः 2.1.40
अक्षन् 1.1.58,6.4.98, 8.3.60
अक्षन्नमीमदन्त 2.4.80
अक्षपरि 2.1.10
अक्षभिः 7.1.76
अक्षरम् 7.2.9
अक्षरीत् 7.2.7
अक्षशौण्डः 1.2.43, 2.1.40,2.2.30, 6.3.9,6.3.12
अ॒क्षशौण्डः 6.2.2
अक्षस्य ग्लहः 3.3.70
अक्षाः 1.2.64,7.3.97, 8.2.24
अक्षान् दीव्यति 1.4.43
अक्षारीत् 7.2.2
अक्षिकाणमस्य 2.3.20
अक्षिणी 7.1.75
अक्षितम् 6.4.60
अक्षितम् 8.2.46
अक्षिनिकायं जल्पति 3.4.54
अक्षिभ्याम् 7.1.75
अक्षिभ्रुवम् 2.2.31, 5.4.77
अक्षी 7.1.77
अक्षीभ्याम् 7.1.77
अक्षैत्रज्ञम् 7.3.30
अक्षैर्दीव्यति 1.4.43
अक्षौहिणी 6.1.89
अक्ष्णा 7.1.75
अक्ष्णा काणः 2.1.30, 2.3.20
अक्ष्णे 7.1.75
अक्ष्णोति 3.1.75
अखट्वका 7.3.48, 7.3.49
अखट्वा 7.3.48
अखट्वाका 7.3.48
अगः 6.3.77
अगच्छद् देवदत्त किम् 3.2.117
अगदङ्कारः 6.3.70
अगन्म 8.2.65
अगन्व 8.2.65
अगमत् 3.1.5,6.4.98
अगम3ः 8.2.100, 8.2.105,8.2.107
अगमः3 8.2.105
अगमिष्यत् 7.2.58
अगस्तयः 1.1.61, 2.4.70
अगस्त्यमन्वसिञ्चन् प्र. 1.4.84
अगस्ति 4.2.80
अगस्त्य 1.4.84
अगाः 6.3.77
अगात् 2.4.45,2.4.77
अगाताम् 2.4.45
अगा॑द्र्दत्ररथिकः 6.2.156
अगायि 2.4.45
अंगासाताम् 2.4.77
अगासीत् 2.4.77
अगुः 2.4.45
अगो अत्र 8.3.17
अगोपायिष्टम् 3.1.50
अगोपिष्टम् 3.1.50
अगोर्यम् 8.2.1

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अगो वृषलः 6.3.77
अगोष्पदा 6.1.145
अगौः 5.4.71
अगौप्तम् 3.1.50
अगौप्सीत् 7.2.4
अग्न आ 1.2.36
अग्न आ याहि 1.2.36
अग्नयः 7.3.109
अग्नये 1.4.6, 6.1.101,7.3.111
अग्नये गोमयान् 2.3.61, 8.2.91
अग्नये छाग 2.3.61
अग्नये छागं 2.3.61
अग्नये छागस्य 2.3.61
अग्नयेऽनुब्रू3हि 8.2.91
अग्नायी 4.1.37,6.3.35
अग्ना3इ 8.2.108
अग्ना3इच्छत्रम् 8.2.3
अग्ना3याशा 8.2.108
अग्ना3यिन्द्रम् 8.2.108
अग्निं प्रति 2.1.14
अग्निः 1.1.7,8.2.76, 8.3.49,8.4.64
अग्निः करोति 8.3.41
अग्निकाम्यति 7.3.84
अग्निकाश्यपी 4.3.88
अग्निकुण्डस्योपासनं 3.3.116
अग्निचिच्चिनोति 8.4.40
अग्निचिच्छादयति 8.4.40
अग्निचिच्छेते 8.4.40
अग्निचिज्जयति 8.4.40
अग्निचिज्झकारम् 8.4.40
अग्निचिञ्चकारः 8.4.40
अग्निचिट् 8.4.41
अग्निचिट्टकारः 8.4.41
अग्निचिड्डीनः 8.4.41
अग्निचिड्ढौकते 8.4.41
अग्निचिण्णकारः 8.4.41
अग्निचित् 1.1.62, 1.3.3,3.2.91, 6.1.71,8.4.43, 8.4.63,
अग्निचितः 3.2.91
अग्निचिता 6.1.169
अग्निचितौ 3.2.91
अग्निचित्या 3.1.132
अग्निचित्वान् 8.2.10
अग्निचित् शेते 8.4.63
अग्निचित् षण्ढे 8.4.43
अग्निचिद् 7.1.72, 8.2.101,8.4.45
अग्निचिदत्र 1.1.66, 8.2.39
अग्निचिद् धसति 8.4.62
अग्निचिद् ब्रा 7.1.72
अग्निचिद् भाया 8.2.101
अग्निचिद् हसति 8.4.62
अग्निचिन्नयति 8.4.45
अग्निचिल्लुनाति 8.4.59
अग्निचि3त् 1.2.28, 8.2.82
अग्नित्वम् 7.3.84
अग्निदेवत्यम् 5.4.24
अग्निना 7.3.120
अग्निभिः 7.1.9
अग्निभ्याम् 7.3.102, 7.3.111
अग्निम् 6.1.107
अग्निमद्य होतारम् वृणीताऽयं 3.4.6
अग्निमभि 2.1.14
अग्निमान् 8.2.9
अग्निमान् 6.1.176
अग्निमा3वह 8.2.91
अग्निमिन्धः 6.3.70
अग्निमीळे 1.2.36
अग्निरत्र 6.1.113, 8.2.66,8.3.17
अग्निरीशे 5.4.25
अग्निरुज्ज्व 7.2.34
अग्निर्नयति 8.3.15, 8.4.1
अग्निर्माणवको 8.1.12, 8.1.204,8.2.101
अग्निर्हि अग्ने 8.1.35
अग्निवान् 8.2.15
अग्निवायू 6.3.26
अग्निवारुणीम् 7.3.23
अग्निवेशदासेरकाः 2.4.68
अग्निषु 8.3.55, 8.3.57,8.3.59
अग्निष्टुत् 8.3.82, 8.3.102,8.3.104
अग्निष्टे 8.3.102, 8.3.104
अग्निष्टोमः 8.3.82
अग्निष्टोमः 6.2.141
अग्निष्टोमयाजी 3.2.84
अग्निष्टोमयाज्यस्य 3.4.1
अग्निष्ट्वम् 8.3.102
अग्निष्ट्वा 8.3.102
अग्निष्ठः 8.3.97
अग्निस्तत् 8.3.104
अग्निसात् 8.3.111
अग्निसाद् 5.4.52
अग्निसोमौ 8.3.82
अग्निस्तत् 8.3.103
अग्निस्तत्र 8.3.55
अग्निस्ते 8.3.104
अग्निस्तोकः 2.1.65
अग्नी 6.1.102, 6.1.104
अग्नी 8.2.5,8.4.57
अग्नी इति 1.1.11, 6.1.125
अग्नीन् 6.1.103, 8.2.104
अग्नीनाम् 6.4.1,6.4.3, 7.1.54
अग्नीनाम् 6.1.177
अग्नीनाम् 6.1.177
अग्नीभवति 5.4.53
अग्नीरथः 6.3.111, 8.3.14
अग्नीवरुणौ 6.3.27
अग्नीषोमौ 6.3.25, 8.3.82
अग्नीषोम्यम् 4.2.32
अग्नी3इति 6.1.129
(हे) अग्ने 6.1.68
अग्ने 7.3.108
अग्ने 8.4.27
अग्नेः 7.3.111
अग्नेः स्तोम 8.3.82
अग्ने गृहपते 8.1.73
अग्नेऽत्र 6.1.109
अग्नेरागच्छ 6.1.110
अग्नौ 1.4.74,7.3.119
अग्न्याहितः 2.2.37
अग्मन् 2.4.80
(भवतो) अग्रग्रासिका 3.3.111
अग्रणीः 3.2.61
अग्रतस्सरः 3.2.18
अग्रन्थिष्ट 3.1.89
अग्रहीत् 7.2.5
अग्रहीषाताम् 6.4.62
अग्रहीष्यत 6.4.62
अग्राहिषाताम् 6.4.62
अग्राहिष्यत 6.4.62
अग्राहीषाताम् 6.4.62
अग्रिमम् 4.3.23
अग्रियम् 4.4.117
अग्रीयम् 4.4.117
अग्रुचत् 3.1.58
अग्रेगाः 3.2.67, 6.4.41
अग्रेगावा 3.2.75
अग्रेगूः 6.4.40
अग्रेऽग्राः 8.1.12
अग्रेजावा 6.4.41
अग्रे भुक्त्वा 2.2.20
अग्रे भुङ्क्ते ततो व्रजति 3.4.24
अग्रेभोज 3.4.24
अग्रे भोजन 2.2.20
अग्रेभूः 6.4.40
अग्रेवणम् 2.2.31,8.4.4
अग्रेसरः 3.2.18
अग्रोचीत् 3.1.58
अग्र्यम् 4.4.116
अग्लुचत् 3.1.58
अग्लुञ्चत् 3.1.58
अग्लुञ्चीत् 3.1.58
अग्लोचीत् 3.1.58
अघसत् 6.4.98
अघसताम् 2.4.37
अघसन् 2.4.37
अघानि 7.3.32
अघानिषाताम् 6.4.62
अघानिष्यत 6.4.62
अघायवः 7.4.37
(मा त्वा वृका) अघायवो 3.1.7
अघो अत्र 8.3.17
अघो ददाति 8.3.17
अघो यत्र 8.3.17
अघो याति 8.3.22
अघ्नन् 7.3.53
अघ्न्ये देवि सरस्वति 8.1.73
अघ्रात् 2.4.78
अघ्रासाताम् 2.4.78
अघ्रासीत् 2.4.78
अङ्कति 5.1.41
अङ्कुशग्रहः 3.2.9
अङ्क्ता 7.2.62, 7.2.72
अङ्ग कूज वृषल 8.1.33
अङ्ग कूज3 8.2.96
अङ्ग कुरु 8.1.33

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अङ्गगत् 6.4.40
अङ्ग देवदत्त 8.2.96
अङ्गना 7.3.101
अङ्ग पच 8.2.96
अङ्ग पचं 8.1.33
अङ्ग पठं 8.1.33
अङ्गमेजयः 3.2.28
अङ्गव्याहर3 8.2.96
अङ्गस्म राज 3.3.166
अङ्गस्य 1.3.11
अङ्गाः 1.2.51,2.4.62, 4.2.31
अङ्गाऽधीष्व 8.2.96
अङ्गारवैणवम् 7.3.20
अङ्गारीणि 5.1.12
अङ्गारीयाणि 5.1.12
अङ्गिरस 2.4.65
अङ्गिरस्वत् 1.4.18
अङ्गुरिः 8.2.18
अङ्गुल् शृङ्गः 6.2.115
अङ्गुलाकर्णः 6.3.115
अङ्गुलिः 8.2.18
अङ्गुलित्रम् 3.2.3
अङ्गुलित्राणः 6.3.12
अङ्गुलिषङ्ग 8.3.80
अङ्गुलीयम् 4.3.62
अङ्गुष्ठः 8.3.97
अच् 1.1.71
अचकथत् 7.4.93
अचकथत् 7.4.94
अचकमत 3.1.48, 7.4.93,7.4.94
अचकलत् 3.1.21
अचकाङ्क्षत् 7.4.1
अचकाणत् 7.4.3
अचकात्त्वम् 8.2.74
अचकाद् 8.2.73
अचकासीत् 7.2.7
अचकास्त्वम् 8.2.74
अचचेष्टत् 7.4.96
अचतुरः 5.4.77
अचत्वारः 6.1.158
अचर्तिष्यत् 7.2.57
अचर्त्स्यत् 7.2.57
अचायिषाताम् 6.4.62
अचायिष्यत 6.4.62
अचारुः 6.2.160
अचिकीर्त्तत् 7.4.7
अचिचेष्टत् 7.4.96
अचिच्यवत् 7.4.93
अचितोपचि 2.1.72
अचिनवम् 1.1.5, 3.1.103,6.1.93
अचिन्वत 7.1.5
अचीकणत् 7.4.3
अचीकमत 3.1.48, 7.4.93
अचीकरत् 1.4.10, 3.1.48,7.4.1, 7.4.83,7.4.93, 7.4.94
अचीकरत 3.1.89
अचीकरत् कटः 3.1.89
अचीकृतत् 7.4.7
अचुच्यवत् 7.4.93
अचेषाताम् 6.4.62
अचेष्ट 1.2.11
अचेष्यत 6.4.62
अचैषीत् 1.1.3,3.1.42, 7.2.1
अचो यत् 1.3.4
अच्छगतम् 1.4.69
अच्छगत्य 1.4.69
अच्छत्स्यत् 7.2.57
अच्छर्दिष्यत् 7.2.57
अच्छा 6.3.136
अच्छात् 2.4.78
अच्छावाकीयम् 5.1.135, 5.2.59
अच्छासीत् 2.4.78
अच्छित्त 3.1.57, 8.2.26
अच्छित्थाः 8.2.26
अच्छिदत् 3.1.57
अच्छिनत् 8.2.75
अच्छिनस् 8.2.75
अच्छिनो 6.1.68
अच्छैत्सीत् 3.1.45, 3.1.57,7.2.3
अच्छैदिकः 6.2.155
अच्छोदितम् 1.4.69
अच्छोद्य 1.4.69
अच्योद्वम् 8.2.25, 8.3.78
अच्योष्ट 7.2.1,7.2.43, 8.2.27
अजः 3.2.101,4.1.3
अजः कष्टं 3.1.14
अजक नाशं नष्टः 3.4.45
अजका 7.3.47
अजक्रन्दाः 4.2.125
अजक्षः 7.3.99
अजक्षत् 7.3.99
अजक्षीः 7.3.98
अजक्षीत् 7.3.98
अजक्षीरेण 6.3.63
अजक्षुः 7.1.2,7.1.4
अजगणत् 7.4.97
अजगवम् 5.2.110
अजजागरत् 7.4.93
अजतुन्द 6.1.155
अजत्वम् 6.3.64
अजथ्या 5.1.8
अजनि 3.1.61,7.3.35
अजनिष्ट 3.1.61
अजपदः 5.4.120
अजपृष्ठः 6.2.114
अजमीढाः 4.2.125
अजयः 6.2.157
अजरः 6.2.116
अजरत् 3.1.58
अजरिता कम्बलः 3.1.105
अजर्घाः 8.2.37,8.3.14
अजर्यम् 3.1.105
अजस्तुन्द 6.1.155
अजस्रम् 3.1.167
अजहलत् 3.1.21
अजहात् 6.4.112
अजा 4.1.3,4.1.4
अजां नयति 1.3.36
अजाः 1.2.73
अजाकृपाणीयम् 5.3.106
अजागः 6.1.68, 6.4.68,7.3.98
अजागरीत् 7.2.5
अजागरुः 3.4.109, 7.1.2,7.1.4, 7.3.85
अजागर्भिणी 2.1.71
अजागारि 7.3.85
अजातौल्वलिः 2.1.60
अजात्वम् 6.3.64
अजारीत् 3.1.58
अजाविकम् 2.4.11
अजा ह्यग्नेरजनिष्ट 8.1.35
अजिका 7.3.47
अजिघ्रपत् 7.4.6
अजिघ्रपताम् 7.4.6
अजिघ्रपन् 7.4.6
अजिघ्रिपत् 7.4.6
अजिघ्रिपताम् 7.4.6
अजिघ्रपन् 7.4.6
अजिजीवत् 7.4.3
अजिनफला 4.1.4
अजिरम् 2.4.54
अजिरवती 6.3.119, 6.1.220
अजिरवती 6.1.220
अजिह्मयुः 3.4.109
अजीगणत् 7.4.83, 7.4.97
अजीजवत् 7.4.93
अजीजिवत् 7.4.3
अजीलवत् 7.4.1
अजीहरत् 1.4.10
अजीहरत् 3.1.48, 7.4.1,7.4.94
अजुहवम् 7.3.87
अजुहवुः 7.3.83
अजूगुपतम् 3.1.50
अजूहवत् 6.1.32
अजूहवताम् 6.1.32
अजूहवन् 6.1.32
अजैडकम् 2.4.11
अञ्जूकः 6.2.174
अञ्जका 7.3.47
अञ्जत 2.4.80
अञ्जिका 7.3.47
अज्वालीत् 7.2.2
अञ्चति 7.1.44
अञ्चितः 6.4.30,7.2.53
अञ्चिताः 6.4.30
अञ्चित्वा 7.2.53
अञ्जन 6.3.117
अञ्जनागिरिः 6.2.94
अञ्जलागिरिः 6.3.117
अञ्जसाकृतम् 6.3.3
अञ्जिता 7.2.62,7.2.71
अञ्जिषति 7.2.74
अञ्जिसक्थ 6.2.199
अटाट्यते 3.1.22,6.1.9
अटाट्या 3.3.101
अटायते 3.1.17
अटिटिषति 6.1.2
(मा भवान्) अटीत् 7.2.7
अट्टति 8.4.41
अट्टायते 3.1.17
अट्टालिबन्धम् 3.4.42
अट्ट्योतति 8.2.3
अड्ढौकत् 7.4.2
अड्ढौकत् 7.4.59
अड्डति 8.4.41

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अड्डिडिषति 6.1.3
अण् 1.1.71
अणककुलालः 2.1.54
अणकनापितः 2.1.54
अणति 6.1.65
अणव्यम् 5.2.4
अणुकः 5.4.3
अण्डसूः 3.2.6
अण्डीरः 5.2.111
अतः 5.3.5
अतक्षीत् 7.2.7
अतत 2.4.79,6.4.37
अततक्षत् 1.4.1,6.4.51 7.4.93,7.4.94
अतत्वरत् 7.4.95
अतथाः 2.4.79,6.4.37
अतनिष्ट 2.4.79
अतनिष्ठाः 2.4.79,
अतप्त तपस्तापसः 3.1.65,3.1.88
अतमि 6.4.93,7.3.34
अतर्त्स्यत् 7.2.57
अतर्दिष्यत् 7.2.57
अतस्तरत् 7.4.95
अतामि 6.4.93
अतायि 3.1.61
अतायिष्ट 3.1.61
अतारिषुः 7.2.40
अतारिष्टाम् 7.2.40
अताप्सीत् 3.1.44
अतिकृशः 6.2.191
अतिकारक 6.2.191
अतिकारीषग 6.1.14
अतिकारीष 6.1.13
अतिकेशा 4.1.54
अतिकेशी 4.1.54
अतिक्रम्य तु पर्वतं 3.4.20
अतिक्रान्ता 4.1.12, 6.2.191
अतिक्वाणः 3.3.65
अतिक्षिपति 1.3.80
अतिखट्वः 1.2.48, 2.2.18,6.1.68
अतिखट्वः 6.2.2
अतिखट्वा 7.3.48
अतिखट्वाय 7.3.113
अतिखट्विका 7.3.48
अतिखट्वेन 7.3.105
अतिगार्ग्य 6.2.191
अतिगौः 5.4.69
अतिचारी 3.2.142
अतिजरम् 7.2.101
अतिजरसम् 7.2.101
अतिजरसात् 7.1.12
अतिजरसिना 7.1.112
अतिजरसैः 7.1.9
अतिजरांसि 7.2.101
अजिजराभ्याम् 7.2.101
अतिजरैः 7.2.101
अतितन्त्रीः 1.2.48
अतितव7.2.92,7.2.96
अतितिस्रौ 6.1.166
अतितुभ्यम् 7.2.92, 7.2.95
अतितैसृकम् 2.1.6
अतित्यद् 7.2.102
अतित्यदः 7.2.102
अतित्यदौ 7.2.102
अतित्वम् 7.2.92, 7.2.94,7.2.97
अतित्वान् 7.2.97
अतित्वाभिः 7.2.97
अतित्वाभ्याम् 7.2.97
अतित्वाम् 7.2.92, 7.2.97
अतिथ्यर्थम् 6.2.44
अतिधीवरी 4.1.4
अतिनु1.1.44,1.1.48, 1.2.28,1.2.47,
अतिपदा 6.2.191
अतिपीवरी 4.1.4
अतिपुरुषः 2.2.18
अतिभवती 1.1.72, 4.1.4,4.1.6
अतिमम 7.2.92, 7.2.96
अतिमहती 4.1.4
अतिमहिमा 4.1.11
अतिमहिमानः 4.1.11
अतिमहिमानौ 4.1.11
अतिमह्यम् 7.2.92, 7.2.95
अतिमान् 7.2.97
अतिमाभिः 7.2.97
अतिमाभ्याम् 7.2.97
अतिमाम् 7.2.92, 7.2.97
अतिमालः 1.1.48, 1.2.48,2.2.18
अतिमालः 6.2.2
अतियुवत् 7.2.92
अतियुवभ्यम् 7.2.92
अतियुवया 7.2.92
अतियुवयि 7.2.92
अतियुवाकम् 7.2.92
अतियुवान् 7.2.92
अतियुवाभिः 7.2.92
अतियुवाम् 7.2.92
अतियुवासु 7.2.92
अतियुष्मान् 7.2.92
अतियूयम् 7.2.92, 7.2.93
अतिराजा 5.4.69
अतिराजी 4.1.12
अतिराज्ञी 4.1.29
अतिरात्रः 5.4.87
अतिरात्रः 6.2.97
अतिरि 1.1.48,1.2.78
अतिरि कुल 1.2.47
अतिलक्ष्मीः 1.2.48
अतिवयम् 7.2.92, 7.2.93
अतिश्रीः 1.2.48
अतिश्वः 5.4.96
अतिश्वी 5.4.96
अतिष्ठिपत् 7.4.5
अतिष्ठिपताम् 7.4.5
अतिष्ठपन् 7.4.5
अतिसक्थ 5.4.69
अतिसखेः 6.1.112
अतिसारकी 5.2.129
अतिसिक्तं भवता 1.4.95
अतिसिक्तमेव 1.4.95
अतिसुगव्यम् 5.1.19
अतिसुलभम् 7.1.68
अतिसुलभ्मः 7.1.68
अतिस्तुतम् 2.2.18
अति स्तुतमेव भवता 1.4.95
अतिस्तुतं भवता 1.4.95
अतिस्नः 6.1.158
अतिस्वन् 4.2.80
अतीक्ष्णम् 6.2.161
अतीक्ष्णम् 6.2.161
अतीसारो व्याधि 3.3.17
अतुत्रौकत् 7.4.59
अतृणेट् 7.3.92
अतृण्या 6.2.156
अतृपत् 3.1.44
अत्तव्यम् 2.4.36
अत्ता 7.2.10
अत्ति 1.1.61,2.4.72, 3.1.87,7.3.100,
अत्यक्षः 5.4.69
अत्यङ्कुश 6.2.190
अत्यङ्कुलम् 5.4.86
अत्यङ्कुलिः पुरुषः 5.4.86
अत्यध्यापकः 8.1.67
अत्यन्तगः 3.2.48
अत्यन्तीनः 5.2.11
अत्ययी 3.2.157
अत्यरराजत् 7.4.2
अत्यस्मान् 7.2.92
अत्यहम् 7.2.94
अत्यह्नः 5.4.88
अत्यहम्श् 7.2.97
अत्याकम् 7.2.92
अत्यायः 3.1.141
अत्यावत् 7.2.92
अत्यावभ्यम् 7.2.92
अत्यावया 7.2.92
अत्यावयि 7.2.92
अत्यावाकम् 7.2.92
अत्यावान् 7.2.92
अत्यावाभिः 7.2.92
अत्यावासु 7.2.92
अत्यूध्नी 4.1.26
अत्रः 5.3.5
अत्रयः 2.4.65
अत्रा 6.3.133
अत्राप्सीत् 3.1.44
अत्रिभरद्वाजि 4.3.125
अत्साः 7.3.97,8.2.24
अत्सारीत् 7.2.2
अत्सि 7.3.100
अथर्वणा 6.4.137
अथर्वणे 6.4.137
अथो अस्मै 2.4.32
अथो अस्य प्रभूतं स्वम् 2.4.32
अथो कम्बलस्ते 8.1.26
अथो कम्बलो मे 8.1.26
अथो ग्रामे कम्बलस्तव 8.1.26
अथो ग्रामे कम्बलस्ते 8.1.26
अथो ग्रामे कम्बलो 8.1.26
अदः कुलम् 8.2.80
अदः कृतम् 1.4.70
अदः कृत्य 1.4.70
अदः कृत्वा 1.4.70
अददत् 7.4.95
अददृषत् 7.4.93

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अदधत् 3.1.49
अदधुः 7.1.4
अदघ्नश्चः 8.2.80
अदन्त्यम् 6.2.156
अदन्त्यम् 6.2.156
अदमि 7.3.34
अदरत् 3.1.59
अदरिद्रासीत् 6.4.114
अदरिद्रीत् 6.4.114
अदर्शत् 7.4.16
अदर्शत् 3.1.47
अदर्शताम् 7.4.16
अदर्शनम् 7.4.16
अदर्शिषाताम् 6.4.62
अदर्शिष्यत 6.4.62
अदस् 7.2.102
अदसीयम् 1.1.74
अदस्यति 8.2.80
अदात् 2.4.77
अदाताम् 6.4.46
अदायि 7.3.32
अदायिषाताम् 6.4.62
अदायिष्यत 6.4.62
अदारीत् 3.1.59
अदार्प्सीत् 3.1.44
अदाषीत् 8.2.28
अदास्यत 6.4.62
अदिग्ध 7.3.73
अदित 1.2.17
अदितिः करत् 8.3.50
अदिदीपत् 7.4.3
अदिद्रवत् 7.4.93
अदिध्वनत् 3.1.51
अदिषाताम् 6.4.62
अदीदपत् 7.3.36,7.4.1
अदीदिपत् 7.4.3
अदीपि 3.1.61
अदीपिष्ट 3.1.61
अदुः 3.4.110,6.1.96
अदुग्ध 7.3.73,8.2.40
अदुग्ध गौः 3.1.89
अदुग्ध गौः स्वयमेव 3.1.63
अदुग्धाः 7.3.73, 8.2.40
अदुद्रुवत् 3.1.48
अदुहत 7.1.8,7.1.41
अदुहितरा 1.1.45
अदुह्व 7.1.8,7.1.41
अदुह्वत् 7.4.93
अदुह्वहि 7.3.73
अदूधुनत् 7.3.37
अदूरदशाः 2.2.25, 5.4.73
अदूरविंशाः 2.2.25, 5.4.73
अदृक्षाताम् 6.4.62
अदृपत् 3.1.44
अदृश्रन् 7.1.8
अदृश्रम् 7.1.8
अदेयम् 6.2.156
अदेवदत्तः 6.2.159
अदेवीत् 7.2.4,7.2.7, 8.2.28
अदोऽत्र 8.2.80
अदोहि गौर्गोपालकेन 3.1.63,
अदोहि गौः स्वयमेव 3.1.63,3.1.89
अद्धकि 5.3.77
अद्रिः 6.1.171
अद्रिः 7.4.48,8.3.35
अद्रिप्साताम् 8.3.35, 8.3.37
अद्धुताऽध्यापकः 8.1.67
अद्ध्यः 7.4.48
अद्ध्यः 6.1.171
अद्मरः 3.2.160
अद्य 5.3.22
अद्यकृत्तिकाः 4.2.4
अद्यतनम् 1.1.56
अद्यते 2.4.36
अद्यपुष्यः 2.3.45
अद्य भुक्त्वा 2.3.7
अद्य ममार 3.4.6
अद्यश्यात् 6.1.95
अद्य श्राद्धमित्याथ3 8.2.94
अद्यश्वीनं मरणम् 5.2.13
अद्यश्वीना 5.2.13
अद्यश्वीनो वियोगः5.2.13
अद्य श्वो वा 3.3.15
अद्यामावास्येत्याथ3 8.2.94
अद्युतत् 3.1.55
अद्येव 6.1.94
अद्योढा 6.1.95
अद्रक्ष्यत 6.4.62
अद्राक् 8.2.62
अद्राक्षीत् 1.2.11, 3.1.47,6.1.58
अद्राप्सीत् 3.1.44
अद्रिजाः 6.4.41
अद्वके 7.3.47
अद्विषन् 3.4.112
अद्विषुः 3.4.112
अधः पदम् 8.3.47
अधःस्विद् 8.2.102
अध आगत 5.3.39
अधमम् 4.3.8
अधमर्णः 8.2.60
अधमार्द्धम् 4.3.5
अधरकायः 2.2.1
अधरपरि 3.3.47
अधरस्मात् 7.1.16
अधरस्मिन् 7.1.16
अधराः 1.1.34
अधरात् 7.1.16
अधराद् आग 5.3.34
अधराद् रम 5.3.34, 5.3.35
अधराद् वस 5.3.34, 5.3.35
अधरे 1.1.34,7.1.16
अधरेण रम 5.3.35
अधरेण वस 5.3.35
अधरेद्युः 5.3.22
अधरोत्तरम् 2.4.12
अधरोत्तरे 2.4.12
अधर्मजुगुप्सुः 2.1.37
अधर्म्याज्जुगुप्सते 1.4.24
अधर्माद् विरमति 1.4.24
अधविष्ट 7.2.72
अधसत् 2.4.37
अधस्ताद् 5.3.27
अधस्ताद् आग 5.3.40
अधस्ताद् रम 5.3.35
अधस्ताद् वस 5.3.35, 5.3.40
अधस्पदम् 8.3.47
अधस्पदी 8.3.47
अधाक्षीत् 3.1.45
अधात्2.4.78,3.1.49, 2.4.77
अधाताम् 6.4.46
अधायि 7.3.32
अधावीत् 7.2.72
अधासीत् 2.4.78, 3.1.49
अधि 1.4.58,2.1.40
अधिकदशाः 2.2.25
अधिकम् 5.2.73
अधिकरण 6.2.188
अधिकर्णः 6.2.188
अधिकविंशाः 2.2.25
अधिकार्मम् 6.2.91
अधिका विंशतिर्गवाम् 2.2.25
अधि कुमारि 2.1.6
अधिकुमारि 2.4.83
अधिकेशः 6.2.188
अधिक्षत 7.3.73
अधिगमयति 2.4.46
अधिजगाते 2.4.49
अधिजगिरे 2.4.49
अधिजगे 2.4.49
अधिजिगमिषति 2.4.47
अधिजिगमिषिता 7.2.58
अधिजिगांसते 2.4.48, 6.4.16,7.2.58, 8.3.24
अधिजिगांसन्ते 2.4.48
अधिजिगांसिता 7.2.58
अधिजिगांसिष्यते 7.2.58
अधिजिगांसेते 2.4.48
अधिजिगापयिषति2.4.51
अधिज्यधन्वा 5.4.132
अधित 1.2.17
अधित्यका 5.2.34
अधित्यका 7.3.45
अधिदन्तः 6.2.188
अधिपञ्चालेषु 1.4.97
अधिपतिवतः 8.2.15
अधिब्रह्मदत्ते 1.4.97
अधिब्रह्मदत्ते पञ्चालाः 2.3.9
अधिराजम् 5.4.68
अधिषाताम् 3.1.49
अधिसानुषु 6.1.63
अधिस्त्रि 2.1.6, 2.4.18, 2.4.83
अधिहरि 2.4.83
अधीचः 6.2.53
अधीचा 6.2.53
अधीच्छामो 3.3.162
अधीती व्याकरणे 2.3.36
अधीते 3.2.124
अधीत्य 6.1.86
अधीयन् 3.2.129
अधीयन् पारायणम् 2.3.69
अधीयानः 3.2.124
अधीयानो वसति 3.2.126
अधीषिषति 8.3.61

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अधीष्व माणवक 8.1.42
अधुः 3.4.110
अधुक्षत् 3.1.45, 7.3.72, 7.3.73
अधुक्षत 7.3.73
अधुक्षताम् 7.3.72
अधुक्षथाः 7.3.73
अधुक्षध्वम् 7.3.73
अधुक्षाताम् 7.3.72
अधुक्षाथाम् 7.3.72
अधुक्षामहि 7.3.73
अधुक्षावहि 7.3.73
अधुक्षासाम् 7.3.72
अधुक्षि 7.3.72
अधुग्धाः 7.3.73
अधुग्ध्वम् 7.3.73
अधुग्ध्वम् 8.2.37
अधुना 5.3.17
अधुरम् 5.4.71
अधोक् 8.2.32
अधोग् 1.1.62
अधोऽग्रे 6.1.120
अधोऽधोः 8.1.7
अधोऽधो ग्रामम् 2.3.2
अधो रम 5.3.39
अधो वस 5.3.39
अधोष्ट 7.2.72
अधो हसति 8.3.22
अध्यगात् 2.4.45
अध्यगाताम् 2.4.45
अध्यगीषत 1.2.1, 2.4.50, 6.4.66
अध्यगीषाताम् 1.2.1, 2.4.50, 6.4.66
अध्यगीष्ट 1.2.1, 2.4.50, 6.4.66
अध्यगीष्यत 2.4.50
अध्यगीष्यन्त 2.4.50
अध्यगीष्ये 2.4.50
अध्यगुः 2.4.45
अध्यङ् 6.2.53
अध्यजीगपत् 2.4.51
अध्यञ्चः 6.2.53
अध्यञ्चौ 6.2.53
अध्यधि 8.1.7
अध्यधि ग्रामम् 2.3.2
अध्ययनतः पराजयते 5.4.45
अध्ययनतप 2.4.14
अध्ययनपुण्यम् 6.2.152
अध्ययनात् 5.4.45
अध्ययनात् पराजयते 2.3.28
अध्ययनाय 2.3.23
अध्ययनेन वसति 2.3.23
अध्यर्धकंसम् 5.1.28
अध्यर्धकाकिणीकम् 5.1.33
अध्यर्धकार्षापणम् 5.1.29
अध्यर्धखारीकम् 5.1.33
अध्यर्धपण्यम् 5.1.34
अध्यर्धपाद्यम् 5.1.34
अध्यर्धप्रतिकम् 5.1.29
अध्यर्धमाष्यम् 5.1.34
अध्यर्धविंशतिकीनम् 5.1.32
अध्यर्धशतम् 5.1.35
अध्यर्धशतमानम् 5.1.29
अध्यर्धशत्यम् 5.1.35, 5.1.34
अध्यर्धशाणम् 5.1.35
अध्यर्धशाण्यम् 5.1.35
अध्यर्धशातमानम् 5.1.29
अध्यर्धशूर्पम् 5.1.28
अध्यर्धसहस्रम् 5.1.29
अध्यर्धसाहस्रम् 5.1.29
अध्यर्धसुवर्णम् 5.1.29
अध्यर्धसौवर्णिकम् 5.1.29
अध्यस्यां मामकी तनू 1.1.19
अध्यागच्छ 1.2.45
अध्यागच्छति 2.3.46
अध्यात्म 5.4.108
अध्यापकपुत्र 6.2.1
अध्यापयति 1.3.86, 1.4.52, 6.1.48, 7.3.37
अध्यापिपत् 2.4.51
अध्यापिपयिषति 2.4.51
अध्याप्य 6.4.57
अध्यायः 3.3.21, 3.3.122
अध्यायिष्यते 6.4.62
अध्येता 2.4.85
अध्येतारः 2.4.85, 7.4.51
अध्येतारौ 2.4.85, 7.4.51
अध्येषणा 3.3.107
अध्येष्यते 6.4.62
अध्यैषत 2.4.50
अध्यैषाताम् 2.4.50
अध्यैष्ट 2.4.50
अध्यैष्यत 2.4.50
अध्यैष्यन्त 2.4.50
अध्यैष्येताम् 2.4.50
अध्वगः 3.2.48
अध्वगतः 6.4.40
अध्वगानां धावन्तः 2.3.41
अध्वगेषु धावन्तः 2.3.41
अध्वनीनः 5.2.16, 6.4.169
अध्वन्यः 5.2.16
अध्वरिषाताम् 7.2.43
अध्वर्यः 3.1.123
अध्वर्यन्तः 7.4.39
अध्वर्युर्ब्राह्मणी 4.1.66
अध्वानं गच्छति 2.3.12
अध्वार्षीत् 7.2.43
अध्वृषाताम् 7.2.43
अनंसिषुः 7.2.73
अनंसिष्टाम् 7.2.73
अनंसीत् 7.2.73
अनंस्त 7.273
अनंस्त दण्डः स्वयमेव 3.1.89
अनकस्मात् 6.2.160
अनक्ति 6.4.23
अनङ्गमेजयः 6.2.160
अनजः 6.3.74
अनजका 7.3.47
अनजका 7.3.47
अनजिका 7.3.47
अनडुद्भिः 8.2.72
अनडुद्भ्याम् 8.2.72
अनडुद्यज्ञमन्वसिञ्च 1.4.84
अनडुही 4.1.42, 7.1.98
अनड्वन् 8.2.72
अनड्वान् 7.1.82, 7.1.98, 8.2.72
अनड्वाहः 6.1.158
अनड्वाहः 7.1.98
अनड्वाहम् 7.1.98
अनड्वाही 4.1.42, 7.1.98
अनड्वाहौ 7.1.98
अनन्तकरः 3.2.21
अनन्तगः 3.2.48
अनन्दिषुः 2.4.3
अनन्नम् 6.2.161
अनन्नम् 6.2.161
अनन्पलाषुकम् 6.2.160
अनभ्यासमित्यः 6.3.70
अनयोः 7.2.112
अनयोश्छात्रयोश्शोभनं 2.4.32
अनर्त्तिष्यत् 7.2.57
अनर्त्स्यत् 7.2.57
अनर्थकः 5.4.51
अनर्वाणः 6.4.127
अनर्वाणम् 6.4.127
अनर्वाणौ 6.4.127
अनुलङ्कृष्णुः 6.2.160
अनश्नन्नन्यो 8.1.65
अनश्वः 6.3.74
अनुहः 6.2.160
अनुगामुकम् 6.2.160
अनुाक्ष्यम्भविष्णु 6.2.160
अनाथसभा 2.4.24
अनाश्वान् 3.2.109
अनासिका 4.1.57
अनिघातेषुः 6.2.108
अनित्यः शब्द 8.2.94
अनिराकरिष्णुः 6.2.160
अनुकः 5.2.74
अनुकनीयान् 6.2.189
अनुकम्पित 5.3.83, 5.3.84
अनुकरोति 1.3.79
अनुकामीनः 5.2.11
अनुक्ताऽध्यापकः 8.1.67
अनुक्रीडते 1.3.21
अनुगङ्गम् 2.1.16
अनुगवम् 5.4.83
अनुगवीनः 5.2.15
अनुगु 5.4.83
अनुचिकीर्ष 1.3.63
अनुजः 3.2.101
अनुजातं माणवकेन 3.4.72
अनुजाता माणविका 3.4.72
अनुजातो माणवको 3.4.72
अनुजिज्ञासति पुत्रम् 1.3.58
अनुजीर्णं देवदत्तेन 3.4.72
अनुजीर्णा वृषली 3.4.72

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुजीर्णो 3.4.72
अनुज्येष्ठः 6.2.189
अनुज्येष्ठः 6.2.189
अनुज्येष्ठम् 2.1.6
अनुतूलयति 3.1.25
अनुत्तम् 7.4.47
अनुत्तमा 8.2.61
अनुत्साहः 6.3.118
अनुदत्तम् 1.4.57
अनुदत्तम् 7.4.46
अनुदरः 6.2.108
अनुद्यम् 3.1.101
अनुनाथति माणवकम् 1.3.21
अनुन्नम् 8.2.61
अनुपथम् 5.4.107
अनुपदी गवाम् 5.2.90
अनुपुरुषः 6.2.190
अनुप्रवचनीयम् 5.7.111
अनुप्रहरेद् 8.2.97
अनुप्रावर्षत् 2.1.4
अनुब्राह्मणी 4.2.62
अनुब्राह्मणिनौ 4.2.62
अनुभवे 7.4.73
अनुमध्यमः 6.2.189
अनुयमुनम् 2.1.16
अनुयागः 7.3.62
अनुयाजः 7.3.62
अनुरथम् 2.1.6
अनुरहसम् 5.4.81
अनुराधः 4.3.34
अनुरोधी 3.2.142
अनुरूपम् 2.1.6
अनुरोधी 3.2.142
अनुलेपिका 4.4.48
अनुलोमम् 5.4.75
अनुलोमयति 3.1.25
अनुवदति वीणा 1.3.49
अनुवदते कठः 1.3.49
अनुवदते मौद्गः 1.3.49
अनुवनम् 2.1.15
अनुवाकः 2.4.29
अनुव्यचलत् 2.1.4
अनुशाकटायनं 1.4.86
अनुशाधि 6.4.35
अनुषङ्ग 7.3.53
अनूषिवान् 3.2.108
अनुष्ट्या 7.1.39
अनुष्यन्दते 8.3.72
अनुसरति 7.3.78
अनुसवनम् 8.3.110
अनुसामम् 5.4.75
अनुसिञ्चति 1.4.90
अनुसूः 8.3.87
अनुसृतम् 8.3.87
अनुस्यन्दते 8.3.72
अनुहरन्ते पैतृकमश्वा 1.3.21
अनुहरन्ते मातृकं गावः 1.3.21
अनूकाशः 6.3.123
अनूचानः 3.2.109
अनूपः 6.3.98
अनूपो 6.3.98
अनूवाच 3.2.109
अनूवास 3.2.108
अनूषितं भवता 3.4.72
अनूषितो गुरुं भवान् 3.4.72
अनूषितो गुरुर्भवता 3.4.72
अनृक् 5.4.74
अनृक्कं 5.4.154
अनृचः 5.4.71,5.4.74
अनृतं हि मत्तो 8.1.35
अनृजुः 5.4.154
अनेन 7.2.112
अनेन छात्रेण रात्रिरधीता 2.4.32
अनेनिजम् 7.3.87
अनेशम् 6.4.120
अनेषका 7.3.47
अनेषो ददाति 6.1.132
(हे) अनेहः 7.1.94
अनेहसम् 5.4.103
अनेहा 7.1.94
अनैपुणम् 7.3.30
अनैश्वर्यम् 7.3.30
अनैषीत् 1.1.3,7.2.1
अन्तकरः 3.2.21
अन्तगः 3.2.48
अन्तमः 6.4.149
अन्तरघानि 8.4.24
अन्तरयणम् 8.4.25
अन्तरयनो 8.4.25
अन्तरस्मात् 7.1.16
अन्तरस्मिन् 7.1.16
अन्तराः 1.1.36
अन्तरात् 7.1.16
अन्तरा तक्षशिलां 2.3.4
अन्तरात्वां च मां 2.3.4
अन्तरायाम् 1.1.36
अन्तरिक्षसत् 3.2.61
अन्तरीपः 6.3.97
अन्तरीपम् 1.1.54, 5.4.74
अन्तरे 1.1.36,7.1.16
अन्तरेण त्वां च मां2.3.4
अन्तरेण पुरुषकारं 2.3.4
अन्तर्गिर 5.4.112
अन्तर्गिरि 5.4.112
अन्तर्घनः 3.3.78
अन्तर्घातः 3.3.78
अन्तर्धन्ति 8.4.24
अन्तर्णयति 1.4.65
अन्तर्द्धा 1.4.65, 3.3.106
अन्तर्द्धिः 1.4.65, 3.3.92
अन्तर्लोम 5.4.117
अन्तर्वणः 6.2.179
अन्तर्वणे 8.4.5
अन्तर्वती 4.1.32
अन्तर्वत्नी 4.1.32
अन्तर्हणनम् 8.4.24
अन्तर्हण्यते 8.4.24
अन्तर्हतम् 1.4.65
अन्तर्हत्य 1.4.65
अन्तर्हत्वा 1.4.65
अन्तर्हननो 8.4.24
अन्तः स्थीयः 4.2.138
अन्तादी 2.2.31
अन्तिकं ग्रामस्य 2.3.34, 2.3.35
अन्तिकं ग्रामात् 2.3.34
अन्तिकादागत 2.1.39, 6.3.1
अन्तिकाद् ग्रामस्य2.3.35
अन्तिके ग्रामस्य 2.3.36
अन्तिकेन ग्रामस्य2.3.35
अन्तितः 6.4.149
अन्तितमः 6.4.149
अन्तिमम् 4.3.23
अन्तियः 6.4.149
अन्तिषत् 6.4.149
अन्तेगुरुः 6.3.11
अन्धकवर्तीय 4.3.91
अन्धकावर्त्तकीयम् 5.3.106
अन्धङ्करणम् 3.2.56
अन्धतमसम् 5.4.79
अन्धम्भविष्णुः 3.2.57
अन्धम्भावुकः 3.2.57
अन्धोनाम 3.3.151
अन्नबुभुक्षुः 2.1.24
अन्नम् 2.4.54,8.4.64
अन्नमयम् 5.4.21
अन्नस्य हेतोर्वसति2.3.26
अन्नादः 3.2.68
अन्य 1.1.27
अन्यत् 7.1.25
अन्यतर 1.1.27
अन्यतरत् 7.1.25
अन्यतरस्मै 1.1.27
अन्यतरेद्युः 5.3.22
अन्यत्कारकः 6.3.99
अन्यथाकारं भुङ्क्ते 3.4.27
अन्यथाकृत्वा 3.4.27
अन्यदर्थः 6.3.100
अन्यदा 5.3.15
अन्यदाशा 6.3.99
अन्यदाशीः 6.3.99
अन्यदास्था 6.3.99
अन्यदास्थितः 6.3.99
अन्यदीयः 6.3.99
अन्यदूतिः 6.3.99
अन्यदुत्सुकः 6.3.99
अन्यद्रागः 6.3.99
अन्यम् 8.1.12
अन्यस्मिन् 7.1.15
अन्यस्मै 1.1.27
अन्यस्याः 7.3.114
अन्यस्यै 7.3.114
अन्यादृक् 3.2.60
अन्यादृक्षः 3.2.60
अन्यार्थः 6.3.100
अन्याशीः 6.3.99
अन्यास्थितः 6.3.99
अन्येद्युः 5.3.22
अन्यो देवदत्तात् 2.3.29
अन्योऽन्यं 8.1.12
अन्योऽन्यम् 8.1.12
अन्योऽन्यस्य 1.3.16, 8.1.12
अन्योऽन्याम् 8.1.12
अन्वक्षम् 5.4.107
अन्वग्निः 6.1.116
अन्वग् भावमास्ते 3.4.64
अन्वग् भूत्वा 3.4.64
अन्वग्भूत्वाऽऽस्ते 3.4.64
अन्वग् भूयास्ते 3.4.64
अन्वब्रवीत् 3.2.109
अन्वर्जुनं 1.4.86
अन्वलुलोमत् 7.4.2

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्ववसत् 3.2.108
अन्ववातप्त पापेन कर्मणा 3.1.65
अन्ववात्सीत् 3.2.108
अन्ववारुद्ध गौः 3.1.64
अन्ववारोधि 3.1.64
अन्ववोचत् 3.2.109
अन्वशात्त्वम् 8.2.74
अन्वशाद् 8.2.73
अन्वशास्त्वम् 8.2.74
अन्वशिषत् 6.4.34, 8.3.60
अन्वसिषताम् 6.4.34, 8.3.60
अन्वशिषन् 6.4.34, 8.3.60
अन्वाजे कृत्य 1.4.73
अन्वाजे कृत्वा 1.4.73
अन्वियात् 7.4.24
अन्वीपम् 6.3.98
अन्वेतवै 3.4.14
अन्वेतवै 6.2.51
अन्वेषणा 3.3.107
अपः 6.1.171
अपकरः 6.1.149
अपकरकः 4.3.32
अपकिरति 6.1.142
अपकिरति कुसुमम् 1.3.21
अपकुक्षिः 6.2.187
अपक्रामति 1.3.38
अपगारम् 6.1.53
अपगोरम् 6.1.53
अपघनः 3.3.81
अपघातः 3.3.81
अपचः 6.2.157
अपचः 6.2.157
अपचत् 3.4.100
अपचत 3.4.101
अपचतम् 1.3.4, 3.4.101
अपचताम् 1.3.4, 3.4.101
अपचम् 3.4.101
अपचसि 2.2.6
अपचसि त्वं 6.3.73
अपचाच्छायते 6.1.75
अपचाम 3.4.99
अपचामहि 3.4.100
अपचारी 3.2.142
अपचाव 3.4.99
अपचावहि 3.4.100
अपचितः 7.2.30
अपचितिः 7.2.30
अपचे 6.1.97
अपचे छत्र 6.1.86
अपचेच्छत्रम् 6.1.86
अपचेताम् 7.2.81
अपचेथाम् 7.2.81
अपचो 6.2.157
अपचोऽयं 6.2.158
(शतम्) अपजानीते 1.3.44
अपटुता 5.1.121
अपटुत्वम् 5.1.121
अपठोऽयं 6.2.158
अपतिता 5.1.121
अपतितत्वम् 5.1.121
अपत्रपिष्णुः 3.2.136
अपत्रिगर्त्तम् 2.1.11
अपत्रिगर्त्तम् 6.2.33
अपत्रिगर्तेभ्यो 1.4.88
अपत्रिगर्तेभ्यः 2.1.11
अपत्रिगर्तेभ्यो वृष्टो देवः 2.3.10
अपथम् 2.4.30, 5.4.72
अपथा नगरी 2.4.30
अपथानि 2.4.30
अपथो देशः 2.4.30
अपनाम 6.2.187
अपनीतशलाकः 5.4.160
अपन्थाः 5.4.72
अपपूत 6.2.187
अपप्तत् 7.4.19
अपप्ताम् 7.4.19
अपप्तन् 7.4.19
अपप्रथत् 7.4.95
अपमाय 6.4.70
अपमित्य 6.4.70
अपमित्य याचते 3.4.19
अपमित्य हरति 3.4.19
अपमित्सते 7.4.54
अपमुखः 6.2.186
अपचायितः 7.2.30
अपरकान्यकुब्जः 7.3.14
अपरकायः 2.2.1
अपरकार्ष्णमृत्तिकः 7.3.14
अपरकाशकृत्स्नाः 6.2.104
अपरकृष्णमृत्तिका 6.2.103
अपरचानराटम् 6.2.103
अपरदक्षिण 2.1.17
अपरपक्षा 2.4.28
अपरपञ्चालाः 6.2.103
अपरपरा 6.1.144
अपरपाञ्चालकः 7.3.13
अपरपाटलिपुत्रकः 7.3.14
अपरपाणिनीयाः 6.2.104
अपरपुरुषः 2,1.58
अपरयायातम् 6.2.103
अपररात्रः 5.4.87
अपररात्रकृतम् 2.1.45
अपरवार्षिकम् 7.3.10
अपरशालाप्रियः 2.1.51
अपरसमम् 2.1.17
अपरस्मात् 7.1.16
अपरस्मिन् 7.1.16
अपरहैमनम् 7.3.10
अपरा 1.1.34, 4.1.30
अपरात् 7.1.16
अपराधी 3.1.134
अपरापहाणा 4.1.4
अपराह्णः 2.4.29, 5.4.88, 8.4.7
अपराह्णक 4.3.28
अपराह्णकृतम् 2.1.44
अपराह्णसिद्धः 6.2.32
अपराह्णे 6.3.110
अपराह्णेत 4.3.24
अपरियाणिः 8.4.29
अपरिहृताः 7.2.32
अपरे 1.1.34, 7.1.16
अपरेण 5.3.35
अपरेद्युः 5.3.22
अपरेद्युरुपक्रामति 1.3.42
अपरेधतुः 6.4.123
अपरेधिथ 6.4.123
अपरेधुः 6.4.123
अपरेषुकामशमी 6.2.103
अपरेषुकामशमी 2.1.50
अपरैषुकामशमः 7.3.14
अपलाङ्गूल 6.2.187
अपलाषी 3.2.144
अपलाषुकम् 3.2.154
अपलुपम् 3.4.12
अपवदति 1.3.73
अपवदते 1.3.73
अपविद्ध्वम् 8.2.25
अपविध्वम् 8.2.25
अपवीणम् 6.2.187
अपष्ठः 8.3.97
अपसरजः 6.2.83
अपसार्वसेनि 6.2.33
अपसीरः 6.2.187
अपसेचनम् 3.3.113
अपसौवीरम् 6.2.33
अपस्करः 6.1.149
अपस्किरते 6.1.142
अपस्किरते कुक्कुटो भक्षार्थी 1.3.21
अपस्किरते वृषभो हृष्टः 1.3.21
अपस्किरते श्वाऽऽश्रयार्थी 1.3.21
अपस्परा 6.1.144
अपस्पशत् 7.4.95
अपस्पृधेथाम् 6.1.35, 6.1.36
अपस्फिग 6.2.187
अपहर्त्तारः 3.2.135
अपहलम् 6.2.187
अपह्नुते 8.4.51
अपां रेतांसि 8.2.89
अपां स्रष्टा 2.2.16, 2.3.65
अपाक्त 3.4.101
अपाकर्त्तोः 1.1.40, 3.4.16
अपाक्तम् 3.4.101
अपाक्ताम् 3.4.101
अपाक्षम् 3.4.101
अपाक्षीत् 3.4.100, 7.2.3
अपाचि 6.4.101
अपाची 3.1.134
अपाच्यम् 4.2.101
अपाङ्गः 6.2.187
अपाणिनीयः 6.2.156
अपात् 2.4.77
अपाद्यम् 6.2.156
अपाध्वा 6.2.187
अपान्नप्त्रियं हविः 4.2.27
अपान्नप्त्रीयम् 4.2.28
अपामार्गः 3.3.121, 6.3.122
अपावीत् 7.2.1, 7.3.96, 8.2.3
अपावृधि 6.4.102
अपाश्या 6.2.156
अपासीत् 2.4.77
अपास्पर्धेथाम् 6.1.36
अपास्पा 8.3.14

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपि कुर्यात् 3.3.152
अपिगृह्यम् 3.1.118
अपिग्राह्यम् 3.1.118
अपि तत्र भवान् 3.3.142
अपि द्रोणपाकं 3.3.154
अपि द्वारं 3.3.152
अपिपर्वतं 3.3.154
अपिपीडत् 7.4.3
अपिप्रिणत् 7.3.37
अपिप्रवत् 7.4.93
अपिप्लवत् 7.4.93
अपि भवान् 2.3.21
अपि सिञ्च 1.4.96
अपि सिञ्चेत् 1.4.96
अपि स्तुयाद् 1.4.96
अपि स्तुहि 1.4.96
अपीपचता 6.1.4
अपीपचत् 6.1.11, 7.4.1,7.4.93, 7.4.94
अपीपठत्6.1.11,7.4.1
अपीपलत् 7.3.37
अपीपवत् 7.4.93
अपीपिडत् 7.4.3
अपीप्यताम् 7.4.4
अपीप्यत् 7.4.4
अपीप्यन् 7.4.4
अपुत्रः 2.2.24
अपुनत 6.4.112, 7.1.5
अपुप्रवत् 7.4.93
अपुप्लवत् 7.4.93
अपुषत् 3.1.55
अपूपमयम् 5.4.21
अपूपीयम् 5.1.4, 5.1.5,5.1.19
अपूप्यम् 5.1.4, 5.1.5,5.1.19
अपूरि 3.1.61
अपूरिष्ट 3.1.61
अपेक्ष्यत् 8.2.41
अपेहि द्वितीया 2.1.72
अपेहि प्रसवा 2.1.72
अपेहिवाणिजा 2.1.72
अपोनप्त्रियं हविः 4.2.27
अपोनप्त्रीयं हवि 4.2.27
अपोहकटा 2.1.72
अपोहकर्दमा 2.1.72
अप्यधीयीत 3.3.152
अप्यम् 4.4.134
अप्यायि 3.1.61
अप्यायिष्ट 3.1.61
अप्रजाः 5.4.122
अप्रयाणिः 8.4.29
अप्रयापणिः 8.4.30
अप्रयायनिः 8.4.30
अप्राप्य नदीं पर्वतः 3.4.20
अप्लोढ्वम् 8.2.25, 8.3.78
अप्लोष्ट 7.2.1, 7.2.43,8.2.27
अप्सराः 8.4.48
अप्सरायते 3.1.12
अप्सराः 8.4.47
अप्सव्यः 6.3.18
अप्सु 7.4.48
अप्सुमन्तौ 6.3.18
अप्सुयोनिः 6.3.18
अफ्सराः 8.4.48
अबबाधत् 7.4.2
अबभाषत् 7.4.3
अबभ्राजत् 7.4.3
अबिभः 6.1.68
अबिभयुः 1.1.3, 6.1.96,7.3.83
अबिभर् 8.2.76
अबिभरुः 7.3.83
अबिभषुः 3.4.109
अबिभ्रजत् 7.4.3, 7.4.94
अबीभषत् 7.4.3
अबीभसत् 7.4.3
अबुद्ध 1.2.11,3.1.61, 8.2.40
अबुद्धाः 8.2.40
अबोधि 3.1.61
अब्जाः 1.1.69,1.1.70, 3.2.67,6.4.41
अब्रवीत 7.3.93
अब्रह्मबन्धूकः 6.2.173
अब्राह्मणः 2.2.6, 6.3.73,6.3.74
अब्राह्मणः 6.2.2
अभङ्क्षि 6.4.33
अभयङ्करः 3.2.43
अभस्त्रका 7.3.47
अभस्त्रिका 7.3.47
अभाजि 1.1.4,6.4.22, 6.4.33
अभार्यः 2.2.24
अभिकः 5.2.74
अभिक्षिपति 1.3.80
अभिक्षिप्यते 1.3.80
अभिचरितवै 6.2.51
अभिजाः 3.2.101
अभिजानासि देवदत्त 3.2.112,3.2.113
अभिजित् 4.3.36
अभिजिताः 5.3.118
अभितः 5.3.9
अभितष्टम्भ 8.3.67
अभितष्ठौ 8.3.64, 8.3.65
अभितो ग्रामम् 2.3.2
अभित्त 1.2.11,3.1.57 8.2.26
अभित्थाः 8.2.26
अभित्सत 8.2.26
अभित्साताम् 8.2.26
अभिदत् 3.1.57
अभिनत् त्वम् 8.2.75
अभिनद् 8.2.3
अभिनस 8.2.75
अभिनिष्टानो 8.3.86
अभिनिस्तनति 8.3.86
अभिनिस्तानो 8.3.86
अभिनोऽत्र 6.1.68
अभिनोऽभिनः 8.2.3
अभिभुञ्जतीनाम् 6.1.178
अभिभावी 3.1.134
अभिमन्युरर्जुनतः 2.3.11
अभिमुखः 6.2.185
अभिरमते 1.3.83
अभिरूपक 8.2.103
अभिलावः 3.3.28
अभिलाषो मे 3.3.153
अभिवादयति गुरूं 1.4.53
अभिवादयते 1.4.53
अभिव्याहृतः 3.2.188
अभिशीतः 6.1.26
अभिशीन 6.1.26
अभिश्यान 6.1.26
अभिषजति 8.3.65
अभिषन्ति 8.3.87
अभिषसाद 8.3.118
अभिषस्वजे 8.3.118
अभिषावयति 8.3.63
अभिषिक्तम् 1.4.60
अभिषिञ्चति 8.3.65
अभिषिषङ्क्षति 8.3.65
अभिषिषिक्षति 8.3.64, 8.3.65,8.3.112
अभिषिषेणयिषति 8.3.64,8.3.65
अभिषिष्वङ्क्षते 8.3.65
अभिषुणोति 8.3.63, 8.3.65
अभिषुवति 8.3.65
अभिषेणयति 3.1.25, 8.3.65
अभिषेधति 8.3.65
अभिष्टभ्नाति 8.3.67
अभिष्टोभते 8.3.65
अभिष्टौति 8.3.65
अभिष्ठास्यति 8.3.65
अभिष्यति 8.3.65
अभिष्यन्दते 8.3.72
अभिष्यात् 8.3.87
अभिष्वजते 8.3.65
अभिसम्पर्याहरति 8.1.70
अभिसावकीयति 8.3.65
अभिसिषासति 8.3.64
अभिसुसूषति 8.3.64, 8.3.117
अभिसुसूषते 8.3.117
अभिसेधयति 8.3.113
अभिसेसिच्यते 8.3.112
अभिसोष्यति 8.3.117
अभिस्यन्दते 8.3.72
अभिहर 8.2.92
अभिहवः 3.3.72
अभी 6.3.134
अभी अत्र 1.1.12
अभीकः 5.2.74
अभीरुक् 6.3.116
अभीषुणः 8.3.107, 8.4.27
अभुत्सत 8.2.37
अभुद्ध्वम् 8.2.37
अभूः 7.3.88
अभूत् 2.4.77,7.3.88, 7.3.96
अभूवन् 3.4.110, 6.4.88
अभूवम्6.4.88,7.3.88
अभेदि 3.1.62,3.1.87
अभैत्सीत् 3.1.45, 3.1.57,6.1.68, 7.2.3
अभैषीः 7.3.97
अभोक्ष्यत 3.3.140
अभ्यग्नि 2.1.14
अभ्यङ्क्ता 2.1.14
अभ्यतस्ताम्यत् 8.3.114

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अभ्यमति 7.3.95, 7.2.34
अभ्यमितः 7.2.28
अभ्यमित्रीणः 5.2.17
अभ्यमित्रीयः 5.2.17
अभ्यमित्र्यः 5.2.17
अभ्यमी 3.2.157
अभ्यमीति 7.2.34, 7.3.95
अभ्यर्णा शरत् 7.2.25
अभ्यर्णा सेना 7.2.25
अभ्यर्दितो वृषलः 7.2.25
अभ्यर्हितपशुः 6.3.10
अभ्यषजत् 8.3.65
अभ्यषिञ्चत् 8.3.65
अभ्यषीदत् 8.3.119
अभ्यषुणोत् 8.3.63, 8.3.65
अभ्यषुवत् 8.3.65
अभ्यषेणयत् 8.3.65
अभ्यषेधत् 8.3.65
अभ्यष्टभ्नात् 8.3.67
अभ्यष्टोभत 8.3.65
अभ्यष्टौत् 8.3.65, 8.3.119
अभ्यष्ठात् 8.3.65
अभ्यष्यत् 8.3.65
अभ्यष्वजत 8.3.65
अभ्यसीदत् 8.3.119
अभ्यसोष्यत् 8.3.117
अभ्यतस्तम्भत् 8.3.116
अभ्यस्तौत् 8.3.119
अभ्याघाती 3.2.142
अभ्यान्त 7.2.28
अभ्याशं ग्रामस्य 2.3.34
अभ्याशं ग्रामात् 2.3.34
अभ्याशादागतः 2.1.39
अभ्याशे ग्रामस्य 2.3.36
अभ्युत्सादयामकः 3.1.42
अभ्युदसीषदत् 3.1.42
अभ्युद्गः 8.3.37
अभ्युद्धरति 8.1.70
अभ्युद्धृतः 6.2.49
अभ्युह्य 7.4.23
अभ्युह्यते 7.4.23
अभ्यूषखा 3.3.109
अभ्यूह्य 7.4.23
अभ्र आँ अपः 1.1.8, 1.3.2, 6.1.126
अभ्रंलिहः 3.2.32
अभ्रङ्कष 3.2.42
अभ्रघनः 3.3.77
अभ्रविलिप्ती 4.1.52
अभ्रायते 3.1.17
अभ्रियः 4.4.118
अमंस्त 8.2.26, 7.1.58
अमंस्थाः 8.2.26
अममातरत् 7.4.2
अममार्ज् 7.4.7
अममालत् 7.4.2
अमम्रदत् 7.4.95
अमरंः 6.2.116
अमरत् 3.1.59
अमरावती 6.3.119
अमरिष्यत् 1.3.61
अमाङ्क्षीत् 7.1.60
अमातापुत्राऽध्यापकः 8.1.67
अमात्यः 4.2.104
अमार्क्षीत् 3.1.44
अमार्द 8.2.24
अमावस्यः 4.3.30
अमावास्यकः 4.3.30
अमावस्या 3.1.122
अमावास्यः 4.3.31
अमाषः 6.2.172
अमाषकः 6.2.174
अमिति 7.2.34
अमित्रंः 6.2.116
अमिमत 6.4.112
अमिमीलत् 7.4.3
अमी 7.2.102, 8.2.81
अमी आसाते 1.1.12
अमीभिः 7.1.11, 8.2.81
अमीभ्यः 8.2.81
अमीमयत् 7.4.58, 7.4.93
अमीमिलत् 7.4.3
अमीमृजत् 7.4.7
अमीषाम् 8.2.81
अमीषु 8.2.81
अमुकेऽत्र 1.1.12
अमुकैः 7.1.11
अमुत्र भवान् 3.3.162
अमुत्र भवानास्ताम् 3.3.162
अमुना 7.3.120, 8.2.3, 8.2.80
अमुम् 8.2.80
अमुमुयङ् 8.2.80
अमुमुयञ्चः 8.2.80
अमुया 8.2.80
अमुयोः 8.2.80
अमुष्मात् 8.2.1
अमुष्मिन् 8.2.1
अमुष्मै 1.1.50, 8.2.1
अमू 7.2.102, 8.2.80
अमू अत्र 1.1.12
अमू आसाते 1.1.12
अमून् 8.2.80
अमूभ्याम् 1.1.50, 8.2.80
अमूलाः 4.1.4
अमृक्षत् 3.1.44
अमृत 1.3.61, 3.1.59
अमृतः 3.2.188
अमृतंः 6.2.116
अमृताश्मः 5.4.94
अमृताश्म 5.4.94
अमृष्यते 1.3.82
अमेधाः 5.4.122
अमोषीत् 3.1.45, 7.2.4, 8.2.28
अम्न 8.2.70
अम्नरेव 8.2.70
अम्ब 7.3.107, 7.3.109
अम्बष्ठः 8.3.97
अम्बाड 7.3.107
अम्बाडे 7.3.107
अम्बाल 7.3.107
अम्बाले 7.3.107
अम्बिक 7.3.107
अम्बिके 7.3.107
अम्बे 7.3.109
अम्बे अम्बाले 6.1.118
अम्भसाकृतम् 6.3.3
अम्भोजखण्ड 4.2.51
अम्राक्षीत् 3.1.44
अम्रुचत् 3.1.58
अम्रोचीत् 3.1.58
अम्लुचत् 3.1.58
अम्लोचीत् 3.1.58
अयः 1.1.72, 3.3.56
अयंः 6.1.203
अयं च मरिष्यति 8.1.30
अयं ते 6.1.127
अयं दण्डः हराऽनेन 2.4.34
अयं नु कदाऽध्येता 3.3.15
अयं वाव हस्त 8.1.64
अयं सो अग्निः 6.1.120
अयं सो अध्व 6.1.120
अयंसिषु 7.2.73
अयंसिष्टाम् 7.2.73
अयंसीत् 7.2.73
अयंस्त 7.2.73
अयजद् 3.2.117
अयजे 6.1.97
अयुज्ञदुत्तः 6.2.159
अयथातथ 7.3.31
अयथापुर 7.3.31
अयनकः 6.2.174
अयनम् 6.4.81
अयः पात्रम् 8.3.49
अयम् 7.2.102, 7.2.108, 7.2.111
अयमस्मात् 2.3.29
अयमागमम् 3.3.131
अययाचत् 7.4.2
अयुवः 6.2.172
अयुवंकः 6.2.174
अयष्ट 1.2.11
अयस्कंसः 8.3.45
अयस्कर्णी 8.3.45
अयस्काण्डः 8.3.48
अयस्कामः 8.3.45
अयस्कारः 8.3.46
अयुस्कारः 6.2.76
अयस्कुम्भः 8.3.45
अयस्कुम्भी 8.3.45
अयस्कुशा 8.3.45
अयस्कृत 6.3.92
अयस्पात्रम् 8.3.45, 8.3.49
अयस्पात्री 8.3.45
अयस्मयं वर्म 1.4.20
अयस्मयानि पात्राणि 1.4.20
अयस्यः 5.4.25
अयाथातथ्यम् 7.3.30
अयायापुर्यम् 7.3.31
अयान् 3.4.111
अयानयीनः 5.2.9
अयासिषुः 7.2.73
अयासिष्टाम् 7.2.73
अयासीत् 7.2.73
अयुः 3.4.111, 6.1.96
अयुताऽध्यापकः 8.1.67
अयुताऽभिरूपकः 8.1.67
अयोघनः 3.3.82
अयोदती 5.4.143
अयोमयम् 1.4.20
अयौधिकः 6.2.160

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अरंसिषु 7.2.73
अरंसिष्टाम् 7.2.73
अरंसीत् 7.2.73
अरंस्त 7.2.73
अरकान् 6.1.103
अरक्षीत् 7.2.7
अरगीत् 7.2.5
अरङ्गि 3.1.90
अरणीत् 7.2.7
अरण्यानी 4.1.49
अरण्ये तिलकाः 2.1.44, 6.3.9
अरण्ये त्रायते 1.4.25
अरण्ये बिभेति 1.4.25
अरण्येमाषकाः 6.3.9
अरण्ये माषाः 2.1.44
अरम् 8.2.18
अरमणीयता 5.1.121
अरमणीयत्वम् 5.1.121
अररक्षत् 1.4.1, 6.4.51, 7.4.93, 7.4.94
अरविन्दः 3.1.138
अराङ्क्षीत् 7.2.3
अराजा 5.4.71
अराजा 6.2.160
अराणीत् 7.2.7
अरात्रः 5.4.75
अरार्यते 3.1.22, 6.1.3, 6.1.9, 7.4.30
अराली 4.1.73
अरित्रंगाधम् 6.2.4
अरित्रम् 3.2.184
अरिन्दमः 3.2.46
अरिरिषति 6.1.2, 6.1.9, 7.2.74
अरिष्टतातिः 4.4.143, 4.4.144
अरिष्टपुरम् 6.2.100
अरिष्टश्रितपुरम् 6.2.100
अरीन् 8.4.37
अरीरमत् 3.1.42
अरूकरोति 5.4.51
अरुक्षत् 3.1.59
अरुणत् 3.2.111
अरुद्ध 3.1.57
अरुणस्कृधि 8.4.27
अरुन्तुदः 3.2.35, 6.3.67
अरूभवति 5.4.51
अरूष्करः 3.2.21
अरूस्यात् 5.4.51
अरोकदन् 5.4.144
अरोकदन्तः 5.4.144
अरोचकिने हितम् 2.3.13
अरोदः 7.3.99
अरोदत् 7.3.99
अरोदीः 7.3.98
अरोदीत् 7.3.98
अरौत्सीत् 7.2.3
अर्कः 8.4.51
अर्काश्वमेधम् 2.4.4
अर्केण 8.4.2
अर्क्कः 8.4.46
अर्धः 7.3.53
अर्धेण 8.4.2
अर्घ्यम् 5.4.25, 8.4.64
अर्चनाः 5.4.118
अर्चावान् 5.2.101
अर्चिचिषति 6.1.3
अर्चिभिष्टतक्षुः 8.3.104
अर्चिभिष्ट्वम् 8.3.104
अर्चिभिस्ततक्षुः 8.3.104
अर्चिभिस्त्वम् 8.3.104
अर्च्छकः 6.1.91
अर्च्य 7.1.38
अर्च्यम् 7.3.66
अर्जयन् वसति 3.2.126
अर्जयिष्यमाणो 3.3.14
अर्जुनः 5.3.100
अर्जुनक 4.3.98, 7.1.1
अर्जुनकः 6.1.197
अर्जुनः कार्त्तवीर्यः 2.1.56
अर्जुन गृह्याः 3.1.119
अर्जुनतः 1.4.92, 5.4.44
अर्जुनतोऽभवन् देवाः 5.4.48
अर्जुनपक्ष्य 6.2.131
अर्जुनवर्ग्यः 6.2.131
अर्जुनशिरी 2.4.11
अर्जुनाः 2.4.66
अर्णवः 5.2.109
अर्तिता 3.1.31
अर्तित्वा 1.2.24
अर्थकरः 3.2.20
अर्थकामौ 2.2.31
अर्थदुघा 3.2.70
अर्थधर्मौ 2.2.31
अर्थभुत 8.2.37
अर्थम् अधिक 1.3.33
अर्थवान् 5.2.122, 5.2.135
अर्थशब्दौ 2.2.31
अर्थान्तरं देवदत्तात् 2.3.29
अर्थापयति 3.1.25
अर्थी 5.2.122, 5.2.135
अर्थो देवदत्तस्य 2.3.73
अर्थ्यम् 4.4.92
अर्दयीत् 3.1.51
अर्दिधिषति 7.2.49
अर्दितः 7.2.24
अर्द्दिधिषति 7.4.55
अर्द्धकोशातकी 2.2.2, 2.4.26
अर्द्धक्रोशः 7.3.26
अर्द्धखारम् 5.4.101
अर्द्धखारी 5.4.101
अर्द्धनखरञ्जनी 2.4.26
अर्द्धनावम् 5.4.100
अर्द्धं पशोर्देवदत्तस्य 2.2.2
अर्द्धपिप्पली 2.2.2, 2.4.26
अर्द्धं पिप्पलीनाम् 2.2.2
अर्द्धभाक् 3.2.62
अर्द्धभाक् 6.1.67
अर्द्धमासतमः 5.2.57
अर्द्धर्चः 2.4.31
अर्द्धर्चम् 2.4.31
अर्द्धर्च्चः 5.4.74
अर्द्धर्च्चम् 5.4.74
अर्द्धिकः 5.1.25, 5.1.48
अर्द्धिकी 5.1.25
अर्द्ध्यम् 4.3.4
अर्धकांसिकः 7.3.27
अर्धकृत 5.4.5
अर्धकौडविकम् 7.3.26
अर्धखारीभार्यः 7.3.27
अर्धखारी 7.3.27
अर्धद्रौणिकम् 7.3.26
अर्धपञ्चमक 1.1.23
अर्धपञ्चमशू 1.1.23
अर्धपाञ्चालकः 7.3.12
अर्धप्रस्थिकः 7.3.27
अर्धभाक् 1.2.41
अर्धर्चः 2.4.31
अर्धर्चम् 2.4.31
अर्धाः 1.1.33
अर्धे 1.1.33
अर्पयति 7.3.36
अर्पितः 6.1.209
अर्पितं पितॄणाम् 6.1.210
अर्पितोप्तम् 2.2.31
अर्यः स्वामी 3.1.103
अर्यते 7.4.29
अर्यमन् 6.4.13
अर्यमा 6.4.13
अर्यमिकः 5.3.84
अर्यमियः 5.3.84
अर्यमिलः 5.3.84
अर्याणी 4.1.49
अर्यी 4.1.49
अर्यात् 7.4.29
अर्यो वैश्यः 3.1.103
अर्वतः 6.4.127
अर्वता 6.4.127
अर्वती 6.4.127
अर्वद्भिः 6.4.127
अर्वद्भ्याम् 6.4.127
अर्वन्तः 6.4.127
अर्वन्तम् 6.4.127
अर्वन्तौ 6.4.127
अर्वपदी 5.4.139
अर्वा 6.4.127
अर्वाक् 5.4.8
अर्वाचीनम् 5.4.8
अर्वाचीना 5.4.8
अर्शसः 5.2.127
अर्श्यात् 6.1.95
अर्हः 7.3.53
अर्हति भोक्तुम् 3.4.65
अर्हन्निह 3.2.133
अलं रोदनेन 3.4.18
अलङ्कारः 3.4.18
अलङ्करिष्णुः 3.2.136, 3.3.131
अलङ्कर्मीण 5.4.7
अलङ्कुमारिः 2.2.18, 2.4.26
अलङ्कृतम् 1.4.64
अलङ्कृत्य 1.4.64
अलं कृत्वा 2.2.22, 3.4.18, 3.4.66
अलञ्जीविकः 2.4.26
अलब्ध 8.2.40
अलब्धाः 8.2.40
अलम् 8.2.18
अलम्पुरु 5.4.7
अलं बाले रुदित्वा 3.4.18
अलम्भि 7.1.69
अलं भुक्त्वौदनं 1.4.64
अलं भोक्तुम् 3.4.66
अलं मल्लो 2.3.16

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अलं महीपाल 2.3.23
अलर्त्ति 7.4.65
अलर्षि 7.4.65
अलविध्वम् 8.2.25, 8.3.79
अलविद्ध्वम् 8.2.25, 8.3.79
अलविष्ट 3.1.62
अलाबूः 4.1.66
अलाबू कटम् 5.2.29
अलाभि 7.1.69
अलावि 6.4.104
अलावि केदारः 3.1.62
अलाविषुः 8.2.27, 8.2.28
अलाविष्टाम् 8.2.27, 8.2.28
अलावीत् 1.1.3,7.2.1, 7.2.4,7.3.96, 8.2.3
अलिक्षत् 3.1.45
अलिक्षत 7.3.73
अलिपत 3.1.54
अलिपत् 3.1.52
अलिप्त 3.1.54
अलीढ 7.3.73,8.2.40
अलीढाः 8.2.40
अलीलवत् 7.4.93, 7.4.94
अलुठत् 1.3.91
अलुनत 6.4.112, 7.1.5
अलुनात् 6.4.112
अलेक्ष्यत् 8.2.41
अलोटिष्ट 3.1.55
अलोठिष्ट 1.3.91
अलोमका 7.3.45
अल्पशः 5.4.42
अल्पशो देहि 6.3.35
अल्पाः 1.1.33
अल्पान्मुक्त 2.3.33, 6.3.1
अल्पिष्ठः 5.3.64
अल्पीयान् 5.3.64
अल्पे 1.1.33
अल्पेन मधुना मत्तः 2.3.33
अल्पेन मुक्तः 2.3.33
अल्ल 7.3.107
अव 8.2.70
अव आगत 5.3.39
अवकटम् 5.2.30
अवकरः 6.1.148
अवकल्पयामि 3.3.155
अवकुटारम् 5.2.30
अवकोकिलः 2.2.18
अवक्रीणीते 1.3.18
अवक्लिन्नपक्वम् 2.2.31
अवगल्भते 3.1.12
अवगल्भायते 3.1.12
अवगाहे 3.4.14
अवगिरते 1.3.51
अवगिरन्ते 1.3.51
अवगिरेते 1.3.51
अवगूर्णम्8.2.42,8.4.1
अवगृह्यं पदम् 3.1.119
अवगोर्यम् 8.2.1
अवग्रहः (पदस्य) 3.3.45,3.3.51
अवग्रहो 3.3.51
अवग्राहः 3.3.45
अवग्राहो 3.3.51
अवघुषित 7.2.23, 7.3.67
अवचक्षे 3.4.15
अवचितपरा 2.1.72
अवचूर्णयति 3.1.25
अवच्छयति 7.3.71
अवच्छातम् 7.4.41
अवच्छातवान् 7.4.41
अवच्छाययाति 7.3.37
अवच्छितम् 7.4.41
अवच्छितवान् 7.4.41
अवटकच्छपः 2.1.48
अवटीटः 1.3.8
अवटीटम् 5.2.31
अवटीटा 5.2.31
अवणिकः 7.3.50
अवतप्तेनकुल 2.1.47
अवतमसम् 5.4.79
अवतानः 3.1.140
अवतारः 3.3.120
अवतिष्ठते 1.3.22
अवतुतावयि 7.4.80
अवत्तम् 6.3.124, 7.4.47
अवत्सीयः 5.1.5, 6.2.155
अवत्स्यत् 7.4.49
अवदत्तम् 1.4.57, 7.4.46
अवदातम् 1.1.20, 7.4.46
अवदात्तम् 7.4.47
अवदाता 7.4.40
अवदाघः 7.3.53
अवदान्यः 6.2.160
अवदाय 7.4.40
अवदाहः 7.3.53
अवदिग्याते 7.4.9
अवदिग्यिरे 7.4.9
अवदिग्ये 7.4.9
अवद्यं पापम् 3.1.101
अवद्यति 7.3.71
अवधिः 7.3.35
अवधिषाताम् 6.4.62
अवधिषुः 2.4.43
अवधिष्टाम् 2.4.43
अवधीत् 1.1.57, 2.4.43,7.2.10
अवनाटः 5.2.31
अवनाटम् 5.2.31
अवनायः 3.3.26
अवनुनावयिषति 7.4.80
अवन्तिब्रह्म 5.4.104
अवन्ती 1.2.49, 4.1.65,4.1.176
अवन्त्यश्म 6.2.37
अवभृथः 6.2.143
अवभ्रटः 5.2.31
अवभ्रटम् 5.2.31
अवभ्रीत 7.2.2
अवमम् 4.3.8
अवमीत् 7.2.5
अवमुक्तोपानतकः 2.2.36
अवमुक्तोपानत्कः 5.4.151
अवमूर्द्धशयः 3.2.15
अवयाः 3.2.72,8.2.67
अवरत 5.3.29
अवरतो 5.3.29
अवरस्ताद् 5.3.29
अवरस्मात् 7.1.16
अवरस्मिन् 7.1.16
अवरहसम् 5.4.81
अवराः 1.1.34
अवरात् 7.1.16
अवरार्द्ध्यम् 4.3.5
अवरिष्ट1.2.11,7.2.42
अवरीष्ट1.2.11,7.2.42
अवरे 1.1.34,7.1.16
अवरेव 8.2.70
अवर्तिष्यत 1.3.92, 7.2.59
अवर्द्धिष्यत 1.3.92
अवर्त्तिष्ट 1.2.11
अवर्त्स्यत् 1.3.92, 7.2.59
अवलेखनम् 6.2.150
अवलोमम् 5.4.75
अववर्त्तत् 7.4.7
अववाञ्छत् 7.4.1
अववाणत् 7.4.3
अववेष्टत् 7.4.96
अवशीतम् 6.1.26
अवशीन 6.1.26
अवश्यक 6.1.144
अवश्यं करी 2.3.70
अवश्यङ्करी 3.3.170
अवश्यपाच्यम् 7.3.65
अवश्यपाव्यम् 1.1.72
अवश्यरेच्यम् 7.3.65
अवश्यलाव्य 3.1.124
अवश्यलाव्यम् 1.1.72, 6.1.8
अवश्यवाच्यम् 7.3.65
अवश्यस्तुत्यः 3.1.109
अवश्यान 6.1.26
अवश्यायः 3.1.141
अवषष्वाण 8.3.69
अवष्टब्धा सेना 8.3.68
अवष्टभ्यास्ते 8.3.68
अवसन्निह 3.2.122
अवसर्गः 7.3.53
अवसामम् 5.4.75
अवसाय 6.4.69
अव सायः 3.1.141
अवसाययति 7.3.37
अवसितः 7.4.40
अवसितवान् 7.4.40
अवसीयते 6.4.66
अवसेयात् 6.4.67
अवसेसीयते 6.4.66
अवस्कर 6.1.148
अवस्करकः 4.3.28
अवस्करशोधकः 6.2.73
अवस्तब्धो 8.3.68
अवस्ताद् आग 5.3.41
अवस्ताद् रम 5.3.41
अवस्ताद् वस 5.3.41
अवस्तारः 3.3.120
अवस्था3.3.95,4.4.62
अवस्यति 7.3.71
अवस्रावणाम् 3.3.113
अवस्वनति 8.3.69

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अवहननायोलूखनम् 2.1.35
अवहननायोलूखलम् 2.3.13
अवहारः 3.1.141, 3.3.122
अवहितः 6.2.147
अवाचा 6.1.169
अवांचा 6.1.169
अवाच्यम् 7.3.67
अवात्त 8.2.26
अवात्ताम् 8.2.26
अवात्सम् 3.2.110
अवात्सुः 3.2.122
अवादी 3.1.134
अवादीत् 7.2.3
अवान् 3.4.111
अवान्तरदीक्षी 5.1.94
अवांमदेव्यम् 6.2.156
अवारपारी 4.3.25
अवारपारीणः 4.2.92, 4.2.93,5.2.11
अवारपारीणम् 4.3.120
अवारीणः 4.2.93, 5.2.11
अवाच्वणत् 8.3.69
अवासी 3.1.134
अविकः 5.4.28
अविकटम् 5.2.29
अविकटोरणः 6.3.10
अविकारः 6.2.160
अविकारसदृशः 6.2.160
अविक्षिपा 6.2.157
अविक्षिपः 6.2.158
अविथ्या 5.1.8
अविदुः 3.4.109
अविदूसम् 4.2.36
अविनायी 3.1.134
अविपटम् 5.2.29
अविमत्तकामविद्धाः 6.2.37
अविमरीसम् 4.2.36
अविलिखः 6.2.158
अविलिखः 6.2.157
अविवेष्टत् 7.4.96
अविशायी 3.1.134
अविषः 1.3.6
अविष्णुमित्रः 6.2.159
अविसोढम् 4.2.36
अवीवणत् 7.4.3
अवीवदत् 7.4.1
अवीवृतत् 7.4.7
अवीवृधत् 7.4.8
अवीवृधताम् 7.4.8
अवीवृधन् 7.4.8
अवीहिकः 6.2.174
अवुः 3.4.111
अवृत 7.2.42
अवृषलः 6.3.73
अवृषलः 6.2.2
अवृषलः 2.2.6
अवृषलीकः 6.2.173
अवेदिषुः 3.1.42
अवेविजम् 7.3.87
अवोचत् 3.1.52, 3.1.89,7.4.20
अवोचत 3.1.89
अवोचताम् 3.1.52, 7.4.20
अवोचन् 3.1.52, 7.4.20
अवोचस्तत्र किञ्चिद् 3.2.120
अवोढा 6.2.156
अवोदः 6.4.29
अवो रमणी 5.3.39
अवो वसति 5.3.39
अव्यथिष्यै 3.4.10
अव्यथी 3.2.157
अव्यथ्यः 3.1.114
अव्ययीत् 7.2.5
अव्याहारी 3.1.134
अव्राजी 3.1.134
अव्राजीत् 7.2.3
अव्रीहिः 6.2.172
अव्रीहिकः 6.2.172
अशकत् 3.1.55
अशक्तः 5.4.121
अशक्तिः 5.4.121
अशत्रुः 6.2.116
अशत्स्यत् 1.3.60
अशनायति 7.4.34
अशनीयति 7.4.34
अशमयिषाताम् 6.4.62
अशमयिष्यत 6.4.62
अशमि 7.3.34
अशमि 6.4.93
अशमिषाताम् 6.4.62
अशमिष्यत 6.4.62
अशमिष्यत् 7.2.59
अशशासत् 7.4.2
अशात् 2.4.78
अशामि 6.4.93
अशामिषाताम् 6.4.62
अशामिष्यत 6.4.62
अशायि भवता 3.1.66
अशाश्यते 3.1.22
अशासीत् 2.4.78
अशिखा 4.1.54
अशिता 7.2.9
अशितानशिते 2.1.60
अशितुम् 7.2.9
अशिशिषते 7.2.74
अशिश्रवत् 7.4.93
अशिश्रियत् 2.1.48
अशिश्वयत् 6.1.31
अशिश्वी 4.1.62
अशिश्वियत् 3.1.49
अशिश्वियत् 3.1.58
अशिश्वीयिषति 6.1.3
अशिशिषति 6.1.2
अशिषत् 3.1.56
अशीत् 7.2.7
अशीतिः 5.1.59
अशीर्षिकः 5.2.116
अशीर्षी 5.2.116
अशुचिः 6.2.161
अशुचिः 6.2.161
अशुश्रवत् 7.4.93
अशूशवत् 6.1.31
अशेरत 7.1.6
अशोकम् 4.3.166
अशोकिका 7.3.46
अशौचम् 7.3.30
अश्नीत पिबता 2.1.72
अश्मनः 6.4.144
अश्ममय 4.3.143
अश्मरः 4.2.80
अश्मानं दृषदं 2.3.17
अश्मार्मम् 6.2.91
अश्रन्थिष्ट 3.1.89
अश्राद्धभोजी 3.2.80
अश्लीलदृढ 6.2.42
अश्वः 1.1.7
अश्वकः 5.3.70, 5.3.73,5.3.74, 5.3.96,5.3.98
अश्वकान् 5.3.99
अश्वकुङ्गर 2.1.62
अश्वक्रीतः 6.2.151
अश्वक्रीती 2.2.19
अश्वगोयुगम् 5.2.29
अश्वग्रीवः 6.2.114
अश्वग्रीवः 6.2.114
अश्वघासः 6.2.44
अश्वजङ्घः 6.2.114
अश्वत् 3.1.49,3.1.58, 7.4.18
अश्वतरः 5.3.91
अश्वता 5.1.119
अश्वताम् 7.4.18
अश्वति 3.1.11
अश्वत्थः 4.3.48
अश्वत्थक 4.3.48
अश्वत्थामः 4.1.85
अश्वत्थामा 3.2.74, 4.3.60
अश्वत्थो मुहूर्तः 4.2.5
अश्वत्रिरात्रः 6.2.81
अश्वत्वम् 5.1.119
अश्वत्रिरात्र 6.2.81
अश्वदायो व्रजति 3.3.12
अश्वन् 7.4.18
अश्वनागः 2.1.62
अश्वपाली 4.1.146
अश्वपोष 1.1.68
अश्वप्रकाण्डम् 2.1.66
अश्वप्रपतनीयम् 5.1.111
अश्वबल्लवः 6.2.66
अश्वमचर्च्विका 2.1.66
अश्वमणिन्दः 6.2.66
अश्वमतल्लिका 2.1.66
अश्वमहिष 2.4.9
अश्वयीत् 3.1.49, 3.1.58,7.2.5
अश्वयुक् 3.2.59, 3.2.61,7.1.71
अश्वयुजः 3.2.59, 7.1.71
अश्वयुजौ 3.2.59, 7.1.71
अश्वरक्षितम् 2.1.35
अश्वरक्षितम् 6.2.45
अश्वरथेन्द्राः 2.2.33
अश्वलवणम् 6.2.4
अश्वल्लीत् 7.2.2
अश्ववडवम् 2.4.12
अश्ववडवान् 2.4.27
अश्ववडवैः 2.4.27
अश्ववडवौ 2.4.12, 2.4.27
अश्ववाणिज 6.2.13
अश्ववृन्दारकः 2.1.62
अश्वषड्गवम् 5.2.29
अश्वषाहम् 8.3.108

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अश्वसः 7.3.99
अश्वसङ्ख्यः 6.2.66
अश्वसत् 7.3.99
अश्वसनिमश्व 8.3.110
अश्वसीः 7.3.98
अश्वसीत् 7.2.5,7.3.98
अश्वसुखम् 2.1.35
अश्वस्थानः 4.3.35
अश्वस्थानम् 5.4.10
अश्वस्थानम् 6.2.151
अश्वस्यति वडवा 7.1.51
अश्वस्यदः 6.4.28
अश्वस्वामी 6.2.17
अश्वहत्या 3.1.108
अश्वहितम् 2.1.35
अश्वंहितम् 6.2.45
अश्वा 4.1.4, 5.4.97, 7.3.45
अश्वा इमे 1.2.73
अश्वाची 6.3.92
अश्वाध्यक्षः 6.2.67
अश्वायति 7.4.37
अश्वायते 3.1.11
अश्वायन्तः 7.4.37
अश्वावती 6.3.131
अश्वावृषौ 2.2.33
अश्विकः 4.4.10
अश्विका 7.3.45
अश्विकी 4.4.10
अश्वितत् 3.1.55
अश्वीनः 5.2.19
अश्वीयति 7.1.51
अश्वीयम् 4.2.48
अश्वीयियिषति 6.1.3
अश्वेन व्रजति 2.3.12
अश्वोरसम् 5.4.93
अषडक्षीण 5.4.7
अषाढः 4.3.34
अषाढा 4.3.34
अष्ट 7.1.21
अष्टकः 5.1.58
अष्टकपालम् 6.3.46
अष्टकम् 5.1.58
अष्टकर्णः 6.3.115
अष्टका 7.3.45
अष्टकाः पाणिनीयाः 4.2.65
अष्टकी 5.2.116
अष्टगवं ब्राह्मणस्य 6.3.46
अष्टचत्वरिंशत् 6.3.49
अष्टता 7.2.84
अष्टत्वम् 7.2.84
अष्टधा 5.3.43
अष्टन् 7.1.21
अष्टपञ्चाशत् 6.3.49
अष्टपदी 5.4.139
अष्टपुत्रः 6.3.125, 7.1.21
अष्टभार्यः 6.3.125, 7.1.21
अष्टभिः 7.2.84
अष्टभ्यः 7.2.84
अष्टमः 5.3.50,5.3.51
अष्टमातुरः 6.3.47
अष्टशतम् 6.3.47, 6.3.49
अष्टसहस्रम् 6.3.47
अष्टसु 6.1.172, 7.2.84
अष्टाकपालम् 6.3.46, 6.3.126
अष्टागवम् 6.3.126
अष्टागवं शकटम् 6.3.46
अष्टाचत्वारिंशकः 5.1.94
अष्टाचत्वारिंशत् 6.3.49
अष्टाचत्वारिंशी 5.1.94
अष्टात्रिंशत् 6.3.47
अष्टादश 6.3.47
अष्टानाम् 7.1.54, 7.2.84
अष्टापञ्चाशत् 6.3.49
अष्टापदम् 6.3.125
अष्टापदी 6.3.126
अष्टावन्धुरः 6.3.125
अष्टाभिः 7.2.84
अष्टाभिः 6.1.172
अष्टाभ्यः 6.1.172
अष्टाभ्यः 7.2.84
अष्टावक्रः 6.3.125
अष्टाविंशतिः 6.3.47
अष्टासु 7.2.84
अष्टासु 6.1.172
अष्टाहिरण्या 6.3.126
अष्टिका खारी 7.3.45
अष्टीवान् 8.2.12
अष्टौ 7.1.21
अष्ठीवान् 8.2.12
असंव्याहारी 3.1.134
असक्थः 5.4.121
असक्थिः 5.4.121
असखा 5.4.71
असङ्जातककुत् 5.4.146
असत्कृतम् 1.4.63
असत्कृत्य 1.4.63
असत् कृत्वा 1.4.63
असदृशः 6.2.160
असनिष्ट 2.4.79
असनिष्ठाः 2.4.79
असरत् 3.1.56,7.4.16
असस्मरत् 7.4.95
असा आदित्यः 8.2.1, 8.3.17,8.3.19
असाङ्क्षीत् 7.2.3
असात् 2.4.78
असात 2.4.79
असाथाः 2.4.79
असाधुः पितरि 2.3.36
असान्तापिकः 6.2.155
असावादित्यः 8.3.17, 8.3.19
असावीत् 7.2.72, 7.3.96
असासीत् 2.4.78
असि 7.3.100,7.4.50
असिक्नी 4.1.39
असिकुलहः 6.2.153
असिकलहः 2.1.31
असिक्त 3.1.54
असिघातम् 3.4.37
असिचत् 3.1.52
असिचत 3.1.54
असिता 3.2.141, 4.1.39
असिपत्रवनम् 6.3.117, 8.4.4
असिस्नवत् 7.4.93
असुकः 7.2.107
असुकौ 7.2.107
असुन्वन् 6.4.87
असुभगाम्भविष्णुः 6.2.160
असुरः 8.2.18
असुराः 5.3.117
असुरापः 6.3.73
असुर्यम् 4.4.123
असुलः 8.2.18
असुस्नुवत् 3.1.48
असुस्नुवत् 7.4.93
असूतजरती 6.2.42
असूयकः 3.2.146
असूयियिषति 6.1.3
असूर्यम्पश्याः 3.2.36
असूषुपत् 6.1.18
असूषुपताम् 6.1.18
असूषुपन् 6.1.18
असेना 2.4.19
असेवीत् 7.2.4, 7.2.7,8.2.28
असो ददाति 6.1.132
असोमपः 6.3.73
असोष्ट 7.2.72
असौ 7.2.102, 7.2.106, 7.2.107,8.3.57
अस्तं काण्डम् 1.4.68
अस्तं कृत्वा 1.4.68
अस्तङ्गतानि 1.4.68
अस्तङ्गत्य 1.4.68
अस्तभत् 3.1.58
अस्तम्भीत् 3.1.58
अस्तावीत् 1.1.3, 7.2.72
अस्ति 6.4.111,7.3.96
अस्तिक्षीरा 2.2.24
अस्ति भोक्तुम् 3.4.65
अस्तुङ्कारः 6.3.70
अस्तुध्वम् 8.3.78
अस्तु श्रौ3षट् 8.2.91
अस्तु हीत्य 6.1.130
अस्तु ही3त्य 6.1.130
अस्ते देवदत्तः 3.4.69
अस्तोष्ट 7.2.72
अस्थनि 6.1.158
अस्थन्वन्तम् 7.1.76, 8.2.16
अस्थभिः 7.1.76
अस्थात् 2.4.77
अस्थानि 7.1.76
अस्थिनी 7.1.75
अस्थिभ्याम् 7.1.75
अस्थिमान् 8.2.12
अस्थिहरः 3.2.10
अस्थुः 3.4.110
अस्थ्ना 7.1.75
अस्थ्ने 7.1.75
अस्नाऽवरोहति 6.1.63
अस्पर्धेथाम् 6.1.36
अस्पार्क्षीत् 3.1.44
अस्पृक्षत् 3.1.44
अस्प्राक्षीत् 3.1.44
अस्मकाभिः 5.3.71
अस्मकासु 5.3.71
अस्मत् 7.1.31, 7.2.86,7.2.90
अस्मत्पुत्रः 7.2.98

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अस्मत् पुत्रः 7.2.98
अस्मदीयः 4.3.1
अस्मदीयम् 7.2.98
अस्मभ्यं वा 8.1.24
अस्मभ्यं ह 8.1.24
अस्मभ्यं च 8.1.24
अस्मभ्यम् 7.1.30, 7.2.86,7.2.90
अस्मभ्यमह 8.1.24
अस्मभ्यमेव 8.1.24
अस्मरत् 7.4.95
अस्मरिषाताम् 7.2.43
अस्मांश्च पश्यति 8.1.24
अस्मा उद्धर 8.2.1
अस्माउद्धर 8.3.19, 8.3.17
अस्माकं वा 8.1.24
अस्माकं ह 8.1.24
अस्माकं च 8.1.24
अस्मान् ह 8.1.24
अस्माकम् 7.1.33, 7.2.90
अस्माकमह 8.1.24
अस्माकमेव 8.1.24
अस्मात् 8.1.12
अस्माद् ग्रामाद् 1.3.24
अस्मान्7.1.29,7.2.87
अस्मानह 8.1.24
अस्मानेव 8.1.24
अस्मान् द्वेष्टि 1.4.37
अस्मान्वा 8.1.24
अस्माभिः 7.2.86
अस्मायुद्धर 8.3.17
अस्माय् उद्धर 8.3.19
अस्मार्षीत् 7.2.43
अस्मासु 7.2.86
अस्मिन् शास्त्राणि 1.3.38
अस्मृषाताम् 7.2.43
अस्मे 7.1.39
अस्मे इति 1.1.13
अस्मे इन्द्रा 1.1.13
अस्यति 7.3.74
अस्यन्तस्यत् 7.2.59
अस्यापगोर 6.1.53
अस्यमीत् 7.2.5
अस्यवामीयम् 5.2.59
अस्या 6.1.85
अस्युद्यतः 2.2.36
अस्राक् 8.2.62
अस्राक्षीत् 1.2.11, 6.1.58
अस्वका 7.3.47
अस्वपः 7.3.99
अस्वपत् 7.3.99
अस्वपीः 7.3.98
अस्वपीत् 7.3.98
अस्विका 7.3.47
अहं 7.4.94
अहंयुः 5.2.140
अहः 8.2.7
अहःपतिः 8.2.70
अहन् 1.2.45
अहनि भुक्तम् 2.1.45, 2.3.64
अहनिष्यत 6.4.62
अहं तेभ्योऽकरं नमः 3.4.6
अहन्नहिम् 8.2.7,8.3.9
अहं नु करोमि 3.2.121
अहं न्वकार्षम् 3.2.121
अह माणवको 8.1.39
अहम् 7.1.28,7.2.88, 7.2.90,7.2.94
अहं पचामि 1.4.107
अहर् 8.2.69
अहरत् 3.2.111, 6.4.71
अहरति सृताः 2.1.28
अहरत्यस्येषून् 3.4.57
अहरिष्यत् 6.4.71
अहर्ददाति 8.2.69
अहर्दिव 5.4.77
अहर्पतिः 8.2.70
अहर्भुङ्क्ते 8.2.69
अहलः 5.4.121
अहलि 5.4.121
अहल्यायै जार 1.2.37
अहल्यायै जारः 2.3.62
अहर्वै देवानामासीत् 8.1.64
अहसाताम् 6.4.62
अहस्करः 3.2.21
अहानि 7.1.72
अहारि 6.4.104
अहारितराम् 6.4.104
अहारि भारो यज्ञदत्तेन 3.1.66
अहारी 3.1.134
अहार्षीत्1.1.3,3.1.44, 6.4.71,7.2.1, 8.2.28
अहार्षुः 3.4.109, 3.4.110
अहि 6.3.120
अहि चुम्बकायनिः 4.1.160
अहिच्छत्री 4.1.78
अहिदन् 5.4.145
अहिदन्तः 5.4.145
अहिनकुलम् 2.4.9
अहिनाः 5.4.118
अहिंरहिः 8.1.12
अहिर्नु3 8.2.98
अहिहतः 2.1.32
अहिहंतः 6.2.48
अहीनः 4.2.42
अहीवती 6.1.221
अहीवती 8.2.11
अहत 1.2.12, 7.2.43,8.2.27
अहत्वा 7.1.37
अहथाः 8.2.27
अहोदेवदत्तः 8.1.40
अहोभिः 8.2.7,8.2.68, 8.2.69
अहोभ्याम् 8.2.68, 8.2.7,8.2.69
अहोरत्नानि 8.2.68
अहोरथन्तरम् 8.2.68
अहोरम्यम् 8.2.68
अहोरात्रः 5.4.87, 8.2.68
अहोरात्राणि 2.4.28
अहोरात्रे इदं ब्रूमः 2.4.28
अहोरात्रौ पुण्यौ 2.4.28
अहोरूपम् 8.2.68
अहो विष्णुमित्रः 8.1.40
अह्यालीत् 7.2.2
अह्नुतमसि 7.2.31
अह्वत् 3.1.54
अह्वास्त 3.1.54

आ

आ 6.3.135
आः 7.3.97,8.2.73
आ एवं किल तत् 1.1.14
आ एवं नु 1.1.14
आकत्यम् 5.1.121
आकरः 3.3.118
आकरिकम् 4.3.75, 4.4.47
आकरिकः 4.4.50, 4.4.69
आकर्षः 8.4.49
आकर्षकः 5.2.64
आकर्षश्च 5.4.97
आकर्षिकः 4.4.9
आकर्षिकी 4.4.9
आकर्ष्टा 7.2.10
आकशापेयः 4.1.148
आकशापेयिः 4.1.148
आकशापेयिकः 4.1.148
आकायः 3.3.41
आकार्षीत् 7.2.1
आकालिकः 5.1.114
आकालिका 5.1.114
आकालिकी 5.1.114
आकुमारम् 1.4.89
आ कुमारम् 2.1.13
आकुमारेभ्यः 2.1.13
आकृतिस्तस्य 3.3.112
आकौशलम् 7.3.30
आक्रंस्यते 8.3.24, 8.4.58
आक्रन्दिकः 4.4.38
आक्रन्दिकी 4.4.38
आक्रमते 1.3.40, 1.3.62,7.3.76
आक्रमन्ते 1.3.40
आक्रष्टा 7.2.10
आक्रामति धूमो 1.3.40
आक्रामति माणवकः 1.3.40
आक्रामते 1.3.40
आक्राष्टाम् 1.1.57
आक्रीडते 1.3.21
आक्रीडी 3.2.142
आक्रुष्टः 3.2.188
आक्रोशकः 3.2.147
आक्लीकृत्य 1.4.61
आक्शातव्यम् 2.4.54
आक्शाता 2.4.54
आक्शातुम् 2.4.54
आक्षद्यूतिकम् 4.4.19
आक्षिकः 6.1.165
आक्षिकः 4.4.1,4.4.2, 7.2.118,7.3.50
आक्षिकी 4.1.15
आक्षिपते 1.3.80
आक्षीणः 6.4.60
आक्षौत्रज्ञम् 7.3.30
आखः 3.3.12
आखनः 3.3.125
आखानिकबक 2.1.48
आखनिकवकः 3.3.125
आखनिकः 3.3.125

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आखरः 3.3.125
आखा 3.2.101
आखानः 3.3.125
आखुः 4.1.44
आखुघातः (शूद्रः) 3.2.53
आखूत्थः 3.2.4
आख्यत् 3.1.52
आख्यताम् 3.1.52
आख्यन् 3.1.52
आख्यातव्यम् 2.4.54
आख्याता 2.4.54
आख्यातिकः 4.3.72
आख्यातुम् 2.4.54
आख्यास्यति 2.4.54
आख्यास्यते 2.4.54
आख्यास्यामि 8.1.56
आख्येयम् 2.4.35
आगच्छ 8.1.51, 8.1.52, 8.1.57
आगच्छ देवदत्त 8.1.51, 8.1.52, 8.1.53
आगच्छ भो 8.2.83
आगच्छानि 8.1.53
आगच्छेर्देवदत्त 8.1.51, 8.1.52
आगंतनर्दी 6.2.81
आगंतप्रहारी 6.2.81
आगंतबोधी 6.2.81
आगतमत्स्या 6.2.81
आगतयोधी 6.2.81
आगंतरोही 6.2.81
आगंतवञ्ची 6.2.81
आगत्य 1.1.57, 6.4.38
आगनीगन्ति 7.4.65
आगन्तुः 6.2.50
(राजानम्) आगमयति 3.1.26
आगमयस्व 1.3.21
आगमिष्यति 3.3.131
आगम्य 6.4.38
आगम्यतां 8.1.52
आगवीनः 5.2.14
आगस्ती 6.4.149
आगस्तीय 6.4.149
आगस्तीयः 6.4.149
आगस्त्यः 6.4.149
आगस्त्यमन्व 2.3.8
आगहि 6.4.22
आगामी 3.3.2
आगामुकं वारा 2.3.69
आगामुकम् (रक्षः) 3.2.154
आग्नावैष्णवम् 6.3.28
आग्ना3इ 8.2.107
अग्निचिच्छेते 8.4.63
आग्निपदः 5.1.97
अग्निमारुतम् 6.3.28
आग्निमारुतीम् 7.3.21
आग्निवारुणीम् 6.3.28, 7.3.23
आग्निशर्मिः 6.4.144
आग्निष्टोमिकः 4.2.60
आग्निष्टोमिक 4.3.68
आग्निष्टोमिकम् 5.1.96
आग्निष्टोमिकी 6.1.95
आग्नीध्रम् 5.4.25
आग्नीध्रा 5.4.25
आग्नीध्री 5.4.25
आग्नीषोमीयम् 4.2.32
आग्नेद्रः 7.3.22
आग्नेन्द्रः 6.3.28
आग्नेयः 4.2.33, 6.3.35
आग्नेयम् 4.2.8
आग्रभोजनिकः 4.4.66
आग्रहायणः 5.4.36
आग्रहायण 4.3.50
आग्रहायणिक 4.3.50
आग्रहायणिको मासः 4.2.22
आग्रहायणी 4.1.41
आग्रायणः 5.4.36
आघातुकम् (शूलम्) 3.2.154
आघ्नते 1.3.28
आघ्नाते 1.3.28
आघ्नीय 1.1.62
आङ्गः 2.4.62, 4.1.170
आङ्गकः 4.2.125, 4.3.100
आङ्गकुलम् 2.4.64
आङ्गविद्यः 4.2.60
आङ्गी 4.1.178
आङ्गुलिकः 5.3.108
आङ्गो राजा 4.1.170
आङ्ग्यः 2.4.62
आचख्यतुः 2.4.55
आचख्युः 2.4.55
आचख्यौ 2.4.55
आचचक्षाते 2.4.55
आचचक्षिरे 2.4.55
आचचक्षे 2.4.55
आचतुरं 8.1.15
आचतुर्यम् 5.1.121
आचरध्यै 3.4.9
आचर्यम् 6.1.147
आचर्यो देशः 3.1.100
आचामः 7.3.34
आचामकः 7.3.34
आचामति 7.3.75
आचाम्यम् 3.1.126
आचारनिपुणः 2.1.31
आचारश्लक्ष्णः 2.1.31
आचार्य 3.1.100
आचार्यकः 4.3.77
आचार्यपुत्रः 6.3.23
आचार्यपुत्रः 6.2.133
आचार्यभोगीनः 5.1.9, 8.4.39
आचार्या 4.1.49
आचार्यानी 4.1.49, 8.4.39
आचिक्रंसते 1.3.62, 8.3.24, 8.4.58
आचितम् 6.2.146
आचितिकी 5.1.53
आचितीना 5.1.53
आचोषखा 3.3.109
आच्छादयति 6.1.74
आच्छायम् 6.1.74
आच्छाया 6.1.74
आछाया 6.1.74
आजः 3.3.108
आजकम् 4.2.39
आजकरोणः 4.2.78
आजकधेनु 4.1.96
आजकबन्धविः 4.1.96
आजक्रन्दकः 4.2.125
आजपथिक 5.1.77
आजमीढकः 4.2.125
आजाढवः 4.1.171
आजिः 3.3.108
आज्यम् 3.1.109
आञ्जिषुः 7.2.71
आञ्जिष्टाम् 7.2.71
आञ्जीत् 7.2.71
आट 7.4.60, 7.4.70, 7.4.71
आटतुः 7.4.60, 7.4.70, 7.4.71
आटिटत् 1.1.59, 6.1.11, 6.4.51, 7.4.1
आटुः 7.4.60, 7.4.70, 7.4.71
आढकजम्बुकः 4.2.120
आढकिकी 5.1.50
आढकीना 5.1.53
आढ्यकुलीनः 4.1.139
आढ्यचरः 5.3.53
आढ्यचरी 5.3.53
आढ्यङ्करणम् 3.2.56
आढ्यङ्करणी 4.1.15
आढ्यकुलीनः 7.1.2
आढ्यतरः 5.3.57
आढ्यतर 5.3.57
आढ्यतमः 5.3.55
आढ्यपदि 5.4.128
आढ्यंपूर्व 6.2.22
आढ्यम्भविष्णुः 3.2.57
आढ्यम्भावुकः 3.2.57
आढ्यश्चि 4.2.138
आढ्यीकुर्वन्ति 3.2.56
आढ्यी भविता 3.2.57
आढ्योपक्रम 6.2.14
आढ्यो भविता 3.2.57
आणवीनम् 5.2.4
आततन्थ 7.2.64
आततान 3.2.105, 3.2.106
आतनुहि 6.4.106
आतपशुष्कः 2.1.41
आतपशुष्कः 6.2.144
आतपायाति 2.3.13
आतमितोः 3.4.16
आतिः 3.3.108
आतिथेयम् 4.4.104
आतिथ्यम् 5.4.26
आतिष्ठते 1.3.22
आतिस्तरिषति 7.2.40
आतिस्तरीषति 7.2.40
आतिस्तीर्षति 7.2.40
आतून 6.3.133
आतृढम् 6.3.111
आतृदः 3.4.17
आतृदः 1.1.40
आतेनिथ 7.2.64
आत्तामद्यमध्यतः 2.4.39
आत्थ 3.4.84, 7.3.96, 8.2.35
आत्मचतुर्थ 6.3.6
आत्मनः 6.4.141
आत्मना 6.4.141
आत्मनापञ्चमः 6.3.5

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आत्मनाषष्ठः 6.3.6
आत्मनीनः 6.4.169
आत्मनीनम् 5.1.9
आत्मनेपदम् 6.3.7
आत्मनेभाषा 6.3.7
आत्मपोषं पुष्णाति 3.4.40
आत्मम्भरिः 3.2.26
आत्मान्तरः 6.2.166
आत्रेयः 6.4.148
आत्रेयः 4.1.122, 2.4.65
आत्रेयीयाः 4.1.89
आत्रेय्यः 2.4.65
आथर्वणम् 4.2.46
आथर्वणिकः 6.4.174
आद 2.4.40
आदः 7.3.100
आदत् 7.3.100
आदतुः 2.4.40
आदत्ते 1.3.20
आदयते 1.3.87, 1.4.52
आदर्शकः 4.2.124
आदायचरः 3.2.17
आदिः 3.3.108
आदिकरः 3.2.21
आदितः 5.4.44
आदित्यः 4.1.85, 5.3.99, 8.4.64
आदित्यम् 4.1.85, 4.2.24
आदित्यम् उप 1.3.25
आदित्यान् हवामहे 8.3.9
आदित्य्यः 8.4.64
आदिथ 7.2.66
आदिमः 4.3.8
आदिवान् 7.2.67
आदिषन् 3.4.112
आदीधिता 7.4.53
आदीधीत 7.4.53
आदीध्य 7.4.53
आदीध्यकः 1.1.6
आदीध्यते 7.4.53
आदीध्यनम् 1.1.6, 7.4.53
आदीध्ये 1.1.57
आदुः 2.4.40
आदूनः 8.2.44
आदृढम् 6.3.111
आदृत्यः 3.1.109
आदेवकः 3.2.147
आद्यन्तौ 2.2.31
आद्यावसाने 2.4.14
आद्यूनः 8.2.49
आद्योपक्रमं 2.4.21
आद्रियते 7.4.28
आधक् 2.4.80
आधये 1.1.39
आधर्मिकः 4.4.40, 4.4.41
आधारः 3.3.122
आधिदैविकम् 7.3.20
आधिभौतिकम् 7.3.20
आधेनवम् 4.2.47
आध्यात्मिक 4.3.60
आध्रियते 7.4.28
आध्वरिक 4.3.72
आध्वर्यवम् 4.3.123
आनक् 6.4.73
आनङ्ग 7.4.71
आनङ्गतुः 7.4.71
आनङ्गुः 7.4.71
आनञ्ज 7.4.71
आनञ्जतुः 7.4.71
आनञ्जिथ 7.2.62
आनञ्जुः 7.4.71
आनडुहम् 1.1.10
आनद्धम् 2.2.18
आनन्त्यम् 5.4.23
आनर्चुः 6.1.35, 6.1.36
आनर्च्छ 3.1.36, 7.4.11
आनर्च्छतुः 3.1.36, 7.4.11
आनर्च्छुः 3.1.36, 7.4.11
आनर्त्तकम् 4.2.127
आनर्हुः 6.1.36
आनायः 3.3.124
आनाय्य 3.1.127
आनिचेयी 4.1.73
आनिधेयी 4.1.73
आनिरुद्धः 4.1.114
आनुकूलिक 4.4.28
आनुगादिक 5.4.13
आनुग्रामिक 4.3.61
आनुज्वरः 5.4.36
आनुते शृगालः 1.3.21
आनुपदिकः 4.4.37
आनुलोमिक 4.4.28
आनुशतिकम् 7.3.20
आनुषूकः 5.4.36
आनुष्टुभः 4.2.55, 5.4.36
आनुसांवत्सरिकः 7.3.20
आनुसांवरणम् 7.3.20
आनुसुकः 4.2.60
आनुसेयः 8.3.87
आनुहारतिः 7.3.20
आनुहौडिकः 7.3.20
आनृचुः 6.1.35, 6.1.36
आनृधतुः 7.4.71
आनृधुः 7.4.71
आनृशंसि 4.2.138
आनृहुः 6.1.36
आनैपुणम् 7.3.30
आनैश्वर्यम् 7.3.30
आन्तर्गेहिक 4.3.60
आन्तर्वेशिमक 4.3.60
आन्नः 1.3.7, 4.4.85, 8.4.64
आन्वीपिकः 4.4.28
आपः 1.2.53, 6.4.11
आपकरः 4.3.33
आपचाच्छयते 6.1.75
आपटवम् 5.1.121
आपणः 3.3.119
आपणिकः 4.4.69
आपणिकम् 4.4.47
आपणिकः 4.4.50
आपत्कालिका 4.2.116
आपत्कालिकी 4.2.116
आपदम् 6.1.146
आपनीफणत् 7.4.65
आपन्नजीविकः 2.2.4, 2.4.26
आपन्ना जीविकाम् 2.2.4
आपमित्य 4.4.21
आपमित्यकम् 4.4.21
आपरपञ्चालकः 7.3.13
आपरमद्रः 4.2.108, 7.3.13
आपरशालः 2.1.51, 4.2.107
आपराह्णिक 4.3.24
आपाटलिपुत्रम् 2.1.13
आपाटलिपुत्रात् 1.4.89, 2.1.13
आपाटलिपुत्राद् 2.3.10
आपात्यः 3.4.68
आपिङ्गलः 2.2.18
आपिप्याते 6.1.29
आपिप्यिरे 6.1.29
आपिप्ये 6.1.29
आपिशल 4.3.101
आपिशलः 4.2.64
आपिशलम् 4.3.115
आपिशलपाणिनीयाः 6.2.36
आपिशलपाणिनीये 6.2.36
आपिशलिकृतिः 6.2.151
आपिशल्युप 6.2.14
आपीनः 6.1.28, 8.2.45
आपीनम् 6.1.28
आपीनवान् 8.2.45
आपूपिकः 4.3.96, 4.4.51, 4.4.61, 4.4.65, 4.2.67
आपृच्छते गुरुम् 1.3.21
आपृच्छ्यः 3.1.123
आपेपीयते 6.1.29
आपेपीयन्ते 6.1.29
आपो अस्मान् 6.1.118
आप्तः 6.1.205
आप्ता 7.2.10
आप्तिः 3.3.93, 3.3.103
आप्नुयात् 6.4.77
आप्नुवन्ति 6.4.77, 6.4.87
आप्यम् 3.1.98
आप्यानः 6.1.28
आप्रपदीनः पटः 5.2.8
आप्रादद्यावापृथिवी 2.4.80
आप्लकः 3.3.50
आप्लावः 3.3.50
आप्लाव्यः 3.4.68
आप्लुत्य 6.4.58
आबुध्यम् 5.1.121
आभिगमिक 7.3.20
आभिजितः 4.3.36, 5.3.118
आभिजित्यः 5.3.118
अभिजित्यौ 5.3.118
आभिसारकः 4.2.124
आभ्याम् 6.1.171
आभ्याम् 1.1.21
आभ्याम् 7.2.113
आभ्यामहरप्यधीतम् 2.4.32
आभ्रिकः 4.4.2

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आम् 7.1.96, 7.2.112, 8.1.55
आमः 7.3.34
आ मथुरायाः 1.4.89
आ मन्द्रैरिन्द्र 1.4.82, 8.1.70
आमयावी 5.2.122
आमर्ष्टा 7.2.10
आमलकम् 1.2.49
आमलकीतरा 6.3.43
आमलंजः 6.2.83
आमलम् 4.3.163
आमात् 3.2.68
आमावस्यः 4.3.31
आमावास्यः 4.3.30
आमावास्यिकः 4.4.71
आमिक्षीयं दधि 5.1.4
आमिक्ष्यं दधि 5.1.4
आमित्रः 5.4.36
आमुष्यकुलिका 6.3.21
आमुष्यपुत्रिका 5.4.25, 6.3.21
आमुष्यायणः 6.3.21, 6.4.174
आमृष्यते 1.3.82
आमोषी 3.2.142
आम्बष्ठः 8.3.97
आम्बष्ठ्यः 4.1.170
आम्बष्ठ्या 4.1.74, 4.1.177
आम्बष्ठ्यो राजा 4.1.171
आम्भसिकः 4.4.27
आम्रगुप्तायनिः 4.1.157
आम्रगुप्तिः 4.1.157
आम्रपालिकः 4.1.146
आम्रमंथ 4.3.144
आम्रवणम् 8.4.5
आम्रष्टा 7.2.10
आम् देवदत्तः 8.1.55
आम् पचति 8.1.55
आम् भोः 8.1.55
आयःशूलिकः 5.2.76
आयकः 6.4.81
आयच्छति 1.3.75
आयच्छते 1.3.28
आयच्छते पाणिम् 1.3.28
आयच्छते वस्त्रम् 1.3.75
आयच्छन्ते 1.3.28
आयच्छेते 1.3.28
आयतस्तूः 3.2.178
आयतीगवम् 2.1.17
आयतीसम 2.1.17
आयथातथ्यम् 7.3.30
आयथापुर्यम् 7.3.30
आयन् 6.4.81
आयवसे 5.4.25
आयस्यति 3.1.71
आयामयते 1.3.89
आयामी 3.2.142
आयायी 3.3.3
आयामयते 1.3.89
आयासी 3.2.142
आयिष्यते 6.4.62
आयुक्तो गौः 2.3.40
आयुक्तः कटकरणे 2.3.40
आयुधम् 3.3.58
आयुधिकः 4.4.14
आयुधीयः 4.4.14
आयुध्यम् 5.1.121
आयुनक् 6.4.73
आयुष्टोमः 8.3.83
आयुष्मानेधि 8.2.107
आयुष्यम् 5.1.111
आयुष्यम् 5.1.39
आयुष्यं देवदत्ताय 2.3.73
आयुष्यं देवदत्तस्य 2.3.73
आयोमुखीय 4.2.141
आर 6.1.1
आरग्वायनबन्धकी 2.2.31
आरडवम् 4.2.71
आरण्यः 4.2.104
आरण्यकोऽध्यायः 4.2.129
आरण्यको मनुष्यः 4.2.129
आरण्यकाः (गोमयाः) 4.2.129
आरण्याः (गोमयाः) 4.2.129
आरण्याः 4.2.104
आरण्याः पशवः 4.2.129
आरत् 3.1.56, 7.4.16
आरतुः 7.4.11
आरब्धा 7.1.63, 7.2.10
आरभते 7.1.63
आरभते भोक्तुम् 3.4.65
आरमति 1.3.83
आरम्भः 7.1.63
आरम्भकः 7.1.63
आरम्भम् आरम्भम् 7.1.63
आरम्भयति 7.1.63
आरम्भी 7.1.63
आरवः 3.3.50
आरस्यम् 5.1.121
आरा 6.1.203
आरा 3.3.104
आरातीयः 4.1.85, 4.2.104, 6.4.144
आराद् यज्ञदत्तात् 2.3.29
आराद् देवदत्तात् 2.3.29
आरावः 3.3.50
आराशस्त्रि 2.4.6
आरिथ 7.2.66
आरिप्सते 7.4.54, 8.4.55
आरिरात्सति 7.4.54
आरिष्टीयः 4.2.80
आरीहणकम् 4.2.80
आरीहणकी 4.2.141
आरुः 7.4.11
आरुढो वृक्षो 3.4.72
आरुणपरा 4.3.105
आरुणिनः 4.3.104
आरुहत् 3.1.59
आरुहम् 3.1.59
आरुहेम 3.4.117
आरुहेयम् 3.1.86
आरेभे 7.1.63
आरेवान् 6.1.176
आरोढा 7.2.10
आरोहन्ति हस्तिनं 1.3.67
आरोहन्ति 1.3.67
आरोहयते 1.3.67
आर्क्षोद 4.3.91
आर्गयनः 4.3.73
आर्चः 5.2.101
आर्चभिमौद्गिलाः 6.2.37
आर्च्चाभिनः 4.3.104
आर्चाभिनः 4.2.66
आर्चिकः 4.3.72
आर्जुनायनः पुत्रः 2.4.66
आर्जुनावः 4.2.69
आर्जुनिः पिता 2.4.66
आर्त्तभागी 4.1.78
आर्तवम् 5.1.105
आर्त्तिः 3.3.104
आर्त्विजीनः 5.1.71
आर्त्विजीनं ब्राह्मणकुलम् 5.1.71
आर्थिकः 4.4.40
आर्दिदत् 3.1.51, 6.1.11
आर्द्धमासिकः 5.1.93
आर्द्धमासिक 4.3.11, 4.3.47
आर्द्धमासिकम् 4.2.34, 5.1.78, 5.1.79
आर्द्धर्णोत् 6.1.90
आर्द्रकः 4.3.28
आर्द्रकोपदंशाम् 3.4.47
आर्द्रगोमयेण 8.4.38
आर्द्रपदी 5.4.139
आर्धकांसिकः 7.3.27
आर्धकौडविकः 7.3.27
आर्धकौडविकम् 7.3.26
आर्धक्रोशिकम् 7.3.26
आर्धद्रौणिकम् 7.3.26
आर्धप्रस्थिकः 7.3.27
आर्धमासिक 4.3.11, 5.1.94
आर्यः 3.1.103
आर्यकुमार 6.2.58
आर्यकुमारः 6.2.58
आर्यकृता 4.1.30
आर्यकृती 4.1.30
आर्यक्षत्रियः 6.2.58
आर्यब्राह्मणः 6.2.58
आर्ययूना 8.4.11
आर्यशीः 6.4.34
आर्याणी 4.1.49
आर्यी 4.1.49
आर्वतम् 6.4.127
आर्षभ्यः 5.1.14
आर्षिकः 4.2.132
आर्हन्त्यम् 5.1.124
आलघवम् 5.1.121
आलब्धा 7.1.65
आलंभ्या गौः 7.1.65
आलम्बिनः 4.3.104
आलयः 3.3.118
आलवण्यम् 5.1.121
आलस्यम् 5.1.121
आलापयते 1.3.70
आलापयते जटाभिः 7.3.39
आलिङ्गयायन 4.2.82
आलिप्सते 7.4.54, 8.4.55
आलूय 1.2.27, 6.1.71
आवकयोः 5.3.71
आवकाम् 7.2.91
आवट्यम् 5.1.121

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आवट्या 4.1.75
आवट्यायनी 4.1.17, 4.1.75
आवधिषत 2.4.44
आवधिषाताम् 2.4.44
आवधिष्ट माणवकः 3.1.89
आवधिष्ट 1.1.56, 2.4.44,7.2.10
आवन्त्यः 4.1.171, 4.1.176
आवन्त्यश्मकम् 2.2.31
आवन्त्यश्मकाः 6.2.37
आवपनिष्किरा 2.1.72
आवयोः 7.2.89, 7.2.88,7.2.92
आवयोरह स्वम् 8.1.24
आवयोरेव 8.1.24
आवयोर्वा स्वम् 8.1.24
आवयोर्ह 8.1.24
आवयोश्च स्वम् 8.1.24
आवरसम 4.3.49
आवसथः 6.2.144
आवसथिकः 4.4.74
आवसथिकी 4.4.74
आवसथ्यम् 5.4.23
आवहते 1.3.81
आवां च 8.1.24
आवां पचावः 1.4.107
आवां वा 8.1.24
आवां ह पश्यति 8.1.24
आवापयति केशान् 7.3.38
आवाभ्यां च 8.1.24
आवाभ्यां वा 8.1.24
आवाभ्यां ह 8.1.24
आवाभ्याम् 7.2.92, 7.2.89
आवाभ्यामह दीयते 8.1.24
आवाभ्यामेव 8.1.24
आवाम् 7.1.28, 7.2.87,7.2.88, 7.2.91,7.2.92,
आवामह 8.1.24
आवामेव 8.1.24
आवायः 3.3.122
आ विजनितोः 3.4.16
आविधः 3.3.58
आविशति 1.3.78
आविष्कृतम् 8.3.41
आविष्टयः 8.3.101
आविष्टयः 4.2.104
आविष्पीतम् 8.3.41
आवृढम् 6.3.111
आवेपे 6.4.120
आवेविता 7.4.53
आवेवीत 7.4.53
आवेव्य 7.4.53
आवेव्यकः 1.1.6,
आवेव्यते 7.4.53
आवेव्यनम् 1.1.6, 7.4.53
आव्याधा 3.3.61
आव्रज 8.1.52
आश 7.4.72
आशंसुः 3.2.168
आशतुः 7.4.72
आशयति 1.3.87
आशाध्वम् 8.2.25
आशास्ते 6.4.34
आशास्यमान 6.4.34
आशिका 3.3.108
आशितः 6.1.207
आशितः 3.2.188
आशितम् 6.1.207
आशितं देवदत्तेन 6.1.207
आशितं देव 6.1.207
आशितङ्गवी 5.4.7
आशितम्भव 3.2.45
आशितम्भवः 3.2.45
आशितम्भवम् 3.2.45
आशितव्यं 3.4.70
आशिवान् 7.2.67
आशिशत् 6.1.11, 6.4.51
आशीतिकम् 5.1.37
आशिषः 6.4.34
आशिषिकः 7.3.51
आशिषौ 6.4.34
आशीः 6.4.34,8.2.76
आशीतिक 5.1.37
आशीरः 6.1.36
आशीर्त्तः 6.1.36
आशीर्वान् 8.2.15
आशुः 3.3.1,7.4.72
आशुश्रूषति 1.3.59
आशोकेयी 4.1.73
आशौचम् 7.3.30
आश्चर्य 6.1.147
आश्चर्यं यहि 3.3.151
आश्चर्यो गवां 2.2.14, 2.3.66
आश्मः 4.3.134, 6.4.144
आश्माकिः 4.1.173
आश्मनः 6.4.144
आश्मन्यः 6.4.144
आश्मरथ 4.3.105
आश्मायनः 4.1.110
आश्रममुनिः 6.2.85
आश्लिक्षत् 3.1.46
आश्लिषत् 3.1.46
आश्वत्थम् 4.3.164
आश्वत्थिकः 4.2.22
आश्वपतम् 4.1.84
आश्वपतः 4.1.92
आश्वपथि 4.2.141
आश्वपालिकः 4.1.146
आश्वम् 4.2.48, 4.3.123,5.1.129
आश्वयुक् 4.3.36
आश्वयुजः 4.3.36
आश्वयुजक 4.3.45
आश्वयुजी 4.3.45
आश्वरथ 4.3.122
आश्वलक्षणिकः 4.2.60
आश्वलायनः 1.1.1
आश्वस्तः 7.2.15
आश्वायनः 4.1.110
आश्विकः 5.1.39
आश्वीनः 5.2.19
आश्विनी 4.4.126
आश्वो रथः 4.3.92
आषाढी 5.1.94
आषाढीयः 4.3.34
आषाढो दण्डः 5.1.110
आष्टमः 5.3.50, 5.3.51
आष्टमातुर 6.3.47
आष्ट्रावी 5.2.122
आ संस्थातो 3.4.16
आसङ्गत्यम् 5.1.121
आसनम् 3.3.115
आसनवान् 8.2.12
आसना 3.3.107
आसनात् प्रेक्षते 2.3.28
आसनाद् उत्थाय 3.4.52
आसनि 6.1.63
आसनि 6.1.171
आसनिष्यत् 7.4.65
आसन्दीवान् 8.2.12
आसन्दीवान् 8.2.12
आसन्नदशाः 2.2.25, 5.4.73
आसन्नविंशाः 2.2.25
आसयति 1.3.88, 1.4.52
आ साङ्काश्यात् 1.4.89
आसाञ्चक्रे 3.1.37
आसाव्यम् 3.1.124
आसिकः 4.4.57
आसितं तेन 3.4.76
आसितं भवता 3.4.70, 3.4.72
आसितो देवदत्तः 3.4.76
आसितो भवान् 3.4.72
आसित्यम् 7.3.20
आसिषीष्वम् 8.3.79
आसिसिषते 1.3.62
आसिहात्य 7.3.20
आसीः 7.3.96
आसीत् 7.3.96,7.3.97
आसीनः 1.1.54, 7.2.83
आसुतीवलः 5.2.112, 6.3.118
आसुरः 5.3.117
आसुरायणी 4.1.19
आसुरी 4.1.178
आसुरी माया 4.4.124
आसुरीयः कल्पः 4.1.19
आसुरौ 5.3.117
आस्तरणम् 7.1.102
आस्तरिषीष्ट 7.2.42
आस्तरिष्ट 7.2.42
आस्तरीता 7.2.38
आस्तरीष्ट 7.2.42
आस्तारकः 7.1.102
आस्तारिषुः 7.2.40
आस्तरिष्टाम् 7.2.40
आस्तिः 3.3.93
आस्तिकः 4.4.60
आस्तीर्णम् 7.1.100, 8.2.42,8.2.77, 8.4.1
आस्तीर्षीष्ट 7.2.42
आस्तीर्ष्ट 7.2.42
आस्ते 7.2.35
आस्तें 6.1.186
आस्ते 1.3.12,1.3.62
आस्तेयम् 4.3.56
आस्थत् 7.4.17
आस्थताम् 7.4.17

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आस्थन् 7.4.17
आस्था 4.4.62
आस्थापितम् 6.2.146
आस्नादुत्तिष्ठ 1.3.24
आस्पदम् 6.1.146
आस्माकः 4.3.1
आस्माकीनः 4.3.1
आस्यं व्यादाय 3.4.21
आस्यते भवता 3.1.66
आस्यते 1.3.13, 3.4.69
आस्यहात्यः 7.3.20
आस्यहैतिकः 7.3.20
आस्या 3.3.107
आस्रावः 3.1.141
आस्रेमाणम् 1.1.60, 6.1.66
आस्वनितः 7.2.28
आस्वान्तः 7.2.28
आस्वापित 6.2.146
आस्से 7.4.49
आह 3.4.84, 8.2.35
आहत 1.1.56, 1.2.14, 2.4.44
आहतुः 3.4.84, 8.2.35
आहते वृषलं 1.3.28
आहते शिरः 1.3.28
आहते माणवकः 3.1.89
आहत्य 6.4.38
आहथुः 3.4.84
आहन्ति 1.3.28, 3.1.89
आहन्ति शिरः 1.3.28
आहरचेला 2.1.72
आहरनिवपा 2.1.72
आहरवनिता 2.172
आहरवसना 2.1.72
आहवः 3.3.73
आहसत 1.2.14, 2.4.44
आहसाताम् 1.2.14, 2.4.44
आहारः 3.3.19
आहाव 3.3.74
आहिच्छत्र 1.1.75
आहिच्छत्री 4.1.78
आहिताग्निः 2.2.37
आहिमतम् 4.2.72
आहिमालः 4.2.56
आहुः 3.4.84, 8.2.35
(इन्द्राग्नी) आहुवध्यै 3.4.9
आहूत 6.1.15
आहूतवान् 6.1.15
आहूतसुब्रह्मण्यः 2.2.36
आहेयम् 4.3.56
आहो इति 1.1.15
आहो 8.1.49
आ होतोः 3.4.16
आहो देवदत्तः 8.1.50
आह्वः 4.2.42
आह्विकम् 5.1.79
आह्विकम् 6.4.145
आह्वकन्थ 6.2.124
आह्वजालिका 4.2.118
आह्वजालिकी 4.2.118
आह्वजालीया 4.2.118
आह्वजालीयी 4.2.118
आह्वत् 3.1.52
(गाम्) आह्वयति 1.3.31
आह्वयते 1.3.31
आह्वरकन्थम् 6.2.123
आह्वरकन्थम् 2.4.20
आह्वायः 3.3.73, 3.3.74
आह्वाव 3.3.73
आ3श्रा3वय 8.2.92

इ

इ इन्द्रं पश्य 1.1.14
इकारः 3.3.108
इक्षुः 7.2.9
इक्षुकीया 6.4.153
इक्षुच्छायम् 2.4.22
इक्षुभक्षिका 3.3.111
इक्षुभक्षिकां 6.2.73
इक्षुभक्षिकाम् 2.2.15
इक्षुमतीं 6.1.219
इक्षुमती 4.2.71, 4.2.85
इक्षुवणम् 8.4.5
इक्षुवाहणम् 8.4.8
इक्षुशाकटम् 5.2.29
इक्षुशाकिनम् 5.2.29
इक्ष्वुः 8.4.47
इङ्गुदीतैलम् 5.2.29
इच्छति 3.3.160, 6.1.73, 7.3.77
इच्छन् करोति 3.3.157, 3.3.158
इच्छा 3.3.101
इच्छामि भुङ्क्ष्व 3.3.157
इच्छामि भुञ्जीत 3.3.157
इच्छामो भवन्तं 3.3.161
इच्छुः 3.2.169
इच्छेत् 3.3.160
इज्या 3.3.98
इटोऽत् 1.3.4
इडस्पदे 8.3.53
इडायाः पति 8.3.54
इडायाः पदः 8.3.54
इडायाः पदम् 8.3.54
इडायाः पयः 8.3.54
इडायाः पारम् 8.3.54
इडायाः पृष्ठम् 8.3.54
इडायाः पोषम् 8.3.54
इडायास्पतिः 8.3.54
इडायास्पदः 8.3.54
इडायास्पदम् 8.3.54
इडायास्पयः 8.3.54
इडायास्पारम् 8.3.54
इडायास्पुत्रः 8.3.54
इडायास्पृष्ठम् 8.3.54
इडायास्पोषम् 8.3.54
इड्ऊर्जम् 5.4.106
इतर 1.1.27
इतरत् 7.1.25, 7.1.26
इतरम् 7.1.26
इतरस्मै 1.1.27
इतरेतरं 8.1.12
इतरेतरमिमे 8.1.12
इतरेतरस्य 8.1.12
इतरेतरस्य व्यति 1.3.16
इतरेतरां 8.1.12
इतरेतरामिमे 8.1.12
इतरेद्युः 5.3.22
इतरेतरस्य 1.3.16
इतरो देवदत्तात् 2.3.29
इतस्त्य 4.2.104
इतिपाणिनि 2.1.6
इतिस्मोपाध्यायः 3.2.119
इति हाऽकरोत् 3.2.116
इत्थम् 5.3.4, 5.3.5, 5.3.24
इत्थङ्कारं भुङ्क्ते 3.4.27
इत्यः 3.1.109
इत्या 3.3.99
इत्वरः 3.2.163
इत्वरी 4.1.15
इत्वरी 3.2.163
इदं वनकपेर्यातम् 2.3.68
इदुन्तृतीयः 6.2.162
इदुन्द्वितीयः 6.2.162
इदम् 7.2.102, 8.2.64
इदमस्थमुः 1.3.4
इदम् अहेः 2.3.68
इदमीयम् 1.1.74
इदमेषां यातम् 3.4.76
इदमेषाम् 3.4.76
इदम् एषां 2.3.68
इदमथमः 6.2.162
इदम्प्रथमः 6.2.162
इदम्प्रथमकाः 6.2.162
इदम्प्रथमाः 6.2.162
इदम्प्रथमाः 6.2.162
इदानीम् 5.3.18
इदम् एषां 2.2.13
इदम् एषाम् 2.2.13, 2.3.68
इदम् एषाम् अशितम् 2.3.68
इदम् एषां भुक्तम् 2.3.68
इदावत्सरीयः 5.1.91
इद्धः 1.3.5
इद्वत्सरीयः 5.1.91
इध्मप्रव्रश्चनः 2.2.8, 3.3.117
इध्मप्रव्रश्चनः 6.2.139
इध्मबर्हि 2.4.14
इनसभ 1.1.68
इनसभम् 2.4.23
इन्दवो 8.1.56
इन्दिद्रीयिषति 6.1.3
इन्दूरथः 6.3.111, 8.3.14
इन्द्रः 5.3.100, 8.4.50
इन्द्रजननी 4.3.88
इन्द्रप्रस्थः 6.2.87
इन्द्ररथाश्वाः 2.2.33
इन्द्रवायू 2.2.33
इन्द्राग्निभ्यां 2.3.61
इन्द्राग्नी 2.2.33
इन्द्राग्नी 6.2.142
इन्द्राणी 4.1.49
इन्द्रापूषणौ 6.2.142
इन्द्राबृहस्पति 6.3.25
इन्द्राबृहस्पती 6.2.141
इन्द्रावरुणौ 6.2.141
इन्द्रावरुणौ 6.3.25
इन्द्रावायू 6.2.142
इन्द्रासोमौ 6.2.141
इन्द्रासोमौ 6.3.25
इन्द्रियम् 5.2.93
इन्द्रियावती 6.3.131
इन्द्रेन्द्राण्यौ 1.2.67
इन्द्रो बाहु 6.1.126
इन्धानः 6.1.215
इभपोटा 2.1.65

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इभयुवतिः 2.1.65
इभ्यका 7.3.46
इभ्यान् क्षत्रियान् 8.3.9
इभ्यापुत्रः 6.1.13
इभ्यिका 7.3.46
इमं छन्दोऽध्यापय 2.4.32
इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति 1.2.40
इमंमे गङ्गे यमुने 1.2.39
इमकयोः 7.2.112
इमकेन 7.2.112
इमकैः 7.1.11
इमम् 1.1.3,7.2.109
इमथा 5.3.111
इमान् 7.2.109
इमे 7.2.102,7.2.109
इमौ 7.2.102,7.2.109
इयं नु कदा 3.3.15
इयज 3.1.36
इयमस्याः 2.3.29
इयम् 7.2.108, 7.2.110,7.2.111
इयजिथ 6.1.17
इययिथ 7.4.69
इयर्त्ति 6.4.78,7.4.77
इयष्ट 7.2.62
इयाज 3.2.117, 6.1.17,6.4.78
इयान् 5.2.40,6.3.90
इयाय 6.1.1,6.4.78, 7.4.69
इयृयात् 7.4.29
इयेष् 6.4.78
इरम्मदः 3.2.37
इरिकावनम् 8.4.6
इराण 7.3.77
इषीकतूलम् 6.3.65
इषुच्छाय 6.2.14
इषुवज्रौ 2.4.4
इषेत्वकः 5.2.62
इषे त्वोर्जे त्वा 1.2.36
इष्टः 6.1.15
इष्टकचित्तम् 6.3.65
इष्टकावः 5.2.109
इष्टम् 1.1.45,6.1.108
इष्टवान् 6.1.15
इष्टिः 3.3.93,3.3.96
इष्टी 5.2.88
इष्ट्वीनम् 7.1.48
इष्णाति 7.3.77
इष्यति 7.3.77
इष्यात् 3.4.104
इष्यास्ताम् 3.4.104
इष्यासुः 3.4.104
इह 5.3.3,8.1.19, 5.3.11
इहत्यः 4.2.104
इहत्यिका 7.3.44
इह देशे 5.3.16
इहद्वितीया 2.1.72
इहपञ्चमी 2.1.72
इह भवानासीत 3.3.161
इहभवान् भुङ्क्ताम् 3.3.162
इह भवान् भुङ्क्ताम् 3.3.161
इहवितका 2.1.72
इहस्थोऽयमिष्वासः 2.3.7
इहेव 6.1.94
इहैव 6.1.94

ई

ईक्षत 6.4.74
ईक्षाञ्चक्रे 1.3.63, 1.4.12,2.4.81
ईक्षामास 1.3.63
ईक्षाम्बभूव 1.3.63
ईक्षिष्ट 6.4.74
ईचिक्षिषते 6.1.3
ईजतुः 1.2.5
ईजुः 1.2.5
ईट्टे 8.4.42
ईडिध्वम् 7.2.78
ईडिध्वे 7.2.78
ईडिषे 7.2.78
ईडिष्व 7.2.78
ईड्यम् 6.1.214
ईदृक् 6.3.90
ईदृक्षः 6.3.90
ईदृङ् 7.1.83
ईदृशः 6.3.90
ईधे 1.2.6
ईप्सति 7.4.55
ईयतुः 6.4.78,7.4.69
ईयात् 7.4.24
ईयिवान् 3.2.109
ईयुः 6.4.78,7.4.69
ईर्त्सति 7.2.49
ईर्प्सति 7.4.55
ईर्ष्यिता 6.4.49
ईर्ष्यियिषति 6.1.3
ईशिता 7.2.8
ईशितुम् 7.2.8
ईशिध्वम् 7.2.78
ईशिषे 7.2.77
ईशिष्व 7.2.77
ईशै 3.4.8,3.4.96
ईश्वरः 3.2.175,7.2.48
ईश्वरपुत्रः 6.2.133
ईश्वरसभ 1.1.68
ईश्वरसभम् 2.4.23
ईश्वरोऽभिचरितोः 3.4.13
ईषतुः 6.4.78
ईषत्कडारः 6.2.54
ईषत्कुडारः 6.2.54
ईषत् कडारः 2.2.7
ईषत्करः 2.3.69
ईषत्करो 5.4.57
ईषत्कर 3.4.70
ईषत्करः 6.2.139
ईषत्करो 3.3.126
ईषत् कार्यः 3.3.126
ईषत्पानः 2.3.69
ईषत्पानः सोमो 3.3.128
ईषत्पिङ्गलः 6.2.54
ईषत्पिङ्गलः 6.2.54
ईषत् पिङ्गलः 2.2.7
ईषत्पीतम् 2.2.7
ईषत्पुरुषः 6.3.106
ईषत्प्रमयः 6.1.51
ईषत् प्रलम्भः 7.1.67
ईषदाढ्यङ्करः 3.3.127
ईषदाढ्यम्भवं 3.3.127, 3.4.70
ईषदुन्नतः 2.2.7
ईषदुपदानम् 6.1.50
ईषद्गार्ग्यः 2.2.7
ईषद्दानो 3.3.128
ईषद्भेदः 6.2.54
ईषद् भोजः 3.3.126
ईषद्रक्तम् 2.2.7
ईषद्विकटः 2.2.7
ईषद्विलयः 6.1.51
ईषन्निमयः 6.1.51
ईषल्लभः 7.1.67
ईषा अक्षः 6.1.127
ईषिध्वम् 7.2.78
ईषिध्वे 7.2.78
ईषुः 6.4.78
ईहत 6.4.74
ईहा 3.3.103
ईहाञ्चक्रे 1.4.12, 2.4.81,3.1.36
ईहामास 2.4.52
ईहामासतुः 2.4.52
ईहामासुः 2.4.52
ईहिष्ट 6.4.74

उ

उ इति 1.1.18
उ उत्तिष्ठ 1.1.14
उँ इति 1.1.17
उक्तः 6.1.15
उक्तवान् 6.1.15
उक्थशाः 3.2.71, 8.2.67
उक्थ्यम् 5.4.25
उक्षतरः 5.3.91
उक्षान्नाय 8.2.107
उखास्रत् 3.2.76, 4.1.6, 6.1.68, 7.1.70
उखास्रन्द्रिः 8.2.72
उखास्रन्द्र्याम् 8.2.72
उख्यम् 4.2.17
उग्रदुहिता 6.3.70
उग्रपुत्री 6.3.70
उग्रम्पश्यः 3.2.37
उचिच्छिषति 7.4.61, 8.2.3
उच्चकैः 5.3.71, 5.3.73,5.3.74, 5.3.85, 6.1.163
उच्चक्षूकरोति 5.4.51
उच्चक्षूभवति 5.4.51
उच्चक्षूस्यात् 5.4.51
उच्चनीचम् 2.1.72
उच्चयः 3.3.40
उच्चरति वाष्पम् 1.3.53
उच्चरते 1.3.53
उच्चरते कुटुम्बम् 1.3.53
उच्चरते गोहम् 1.3.53
उच्चारपदेन 6.2.7
उच्चावचम् 2.1.72
उच्चुकोट 1.2.1
उच्चैः 2.3.46
उच्चैःकारमाचष्टे 2.2.21
उच्चैःकारम् 3.4.59
उच्चैःकृत्य 2.2.22
उच्चैः कृत्याचक्षे 3.4.59
उच्चैःकृत्वाऽऽचष्टे 3.4.59
उच्चैः कृत्वा 2.2.22
उच्चैरधीयान 2.1.2
उच्चैर्धुरः 5.4.68
उच्चैर्मुखः 6.2.168
उच्चैर्भाषते 1.2.29

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उच्चैर्मुखः 2.2.24, 6.2.168
उच्चैर्मूर्धा 5.4.115
उच्चैस्तम 5.4.11
उच्चैस्तमा 5.4.11
उच्चैस्तर 5.4.11
उच्चैस्तरा 5.4.11
उच्छिश्रयिषति 7.2.49
उच्छिश्रीषति 7.2.49
उच्छिष्यः 3.1.123
उच्छ्रायः 3.3.49
उच्यान्तै 3.4.8,3.4.96
उज्जहिस्ताम्बः 2.1.72
उज्जिघ्र 3.1.137
उज्ज्वलिति 7.2.34
उज्झितव्यम् 7.1.3
उज्झिता3.1.115,7.1.3
उज्झितुम् 7.1.3
उञ्छः 6.1.160
उञ्छितव्यम् 8.4.58
उञ्छिता 8.4.58
उञ्छितुम् 8.4.58
उडुलोमाः 4.1.85
उड्डयिता 7.2.10
उड्डीनः 7.2.14
उड्डीनवान् 7.2.14
उतः 6.4.2,6.1.15
उत 6.3.133
उत कुर्यात् 3.3.152
उत दण्डः 3.3.152
उतवान् 6.4.2,6.1.15
उताधीयीत 3.3.152
उतापरीभ्यः 4.1.30
उताहो 8.1.49
उताहो देवदत्तः 8.1.50
उताहो इति 1.1.15
उत्कः 5.2.80
उत्कटम् 5.2.28
उत्कन्द 8.4.61
उत्कन्दकः 8.4.61
उत्करीयम् 4.2.90
उत्काकुत् 5.4.148
उत्कारः 3.3.30
उत्कुरुते 1.3.32
उत्कृष्टपुरुषः 2.1.61
उत्कृष्टा गौ 2.1.61
उत्कोटः 1.2.1
उत्कोटकः 1.2.1
उत्कोटयति 1.2.1
उत्क्रामयति 6.4.92
उत्क्षिप्य शिरः 3.4.54
उत्खनिः 8.4.61
उत्तपति स्वर्ण 1.3.27
उत्तपत्ति सुवर्णं सुवर्णकार 3.1.88
उत्तपते पाणिम् 1.3.27
उत्तपते पृष्ठम् 1.3.27
उत्तब्धा 7.2.34
उत्तमितः 7.2.34
उत्तमः 6.1.160
उत्तमकंसः 6.2.122
उत्तमकुलम् 6.2.121
उत्तमकृत्वा 7.1.37
उत्तमगङ्ग 2.1.21
उत्तमगवः 5.4.92
उत्तमनैष्कि 5.1.20
उत्तमपुरुषः 2.1.61
उत्तमपूर्व 6.2.22
उत्तमरथ्य 4.3.121
उत्तमराज्य 1.2.42
उत्तमर्ण 8.2.60
उत्तमलवण 6.2.24
उत्तमवाणिज 6.2.13
उत्तमशारद 6.2.9
उत्तमषट् 7.1.22
उत्तमसदृश 6.2.11
उत्तमसीत्य 4.4.91
उत्तमाध्वा 5.4.85
उत्तमाष्टौ 7.1.21
उत्तमाहः 5.4.91
उत्तम्भितव्यम् 8.4.61
उत्तम्भिता 8.4.61
उत्तम्भितुम् 8.4.61
उत्तरकायः 2.2.1
उत्तरतारम् 6.3.109
उत्तरतीरम् 6.3.109
उत्तरत 5.3.28
उत्तरतो 5.3.28
उत्तरतो ग्रामस्य 2.3.30
उत्तरतो रम 5.3.35
उत्तरतो वस 5.3.35
उत्तरधुरीणः 4.4.78
उत्तरपरिग्राह 3.3.47
उत्तरपश्चात् 5.3.32
उत्तरपश्चार्धः 5.3.32
उत्तरपश्चिमा 2.2.26
उत्तरपाञ्चालकः 6.2.105
उत्तरपूर्वस्यै 1.1.28
उत्तरपूर्वायै 1.1.28
उत्तरसक्थम् 5.4.98
उत्तरस्मात् 7.1.16
उत्तरस्मिन् 7.1.16
उत्तराः 1.1.34
उत्तरा ग्रामात् 2.3.29
उत्तरात् 7.1.16
उत्तराद् 5.3.35
उत्तराद् आग 5.3.34, 5.3.38
उत्तरादागतः 5.3.35
उत्तरा प्रयाति 5.3.38
उत्तराद् रम 5.3.34, 5.3.35
उत्तराद् वस 5.3.34, 5.3.35
उत्तरा रम 5.3.38
उत्तरा वृक्षाः 2.1.50
उत्तराहि ग्रामात् 2.3.29
उत्तराहि रम 5.3.38
उत्तराहि वस 5.3.38
उत्तरे 7.1.16,1.1.34
उत्तरेण ग्रामस्य 2.3.31
उत्तरेण ग्रामम् 2.3.31
उत्तरेण प्रयाति 5.3.38
उत्तरेण रम 5.3.35
उत्तरेण वस 5.3.35
उत्तरेद्युः 5.3.22
उत्तरो ग्रामात् 2.3.29
उत्तरो ग्रीष्मो 2.3.29
उत्तवीति 7.3.95
उत्तानशयः 3.2.15
उत्तानशया 4.1.20
उत्तौत्ति 7.3.95
उत्थातव्यम् 8.4.61
उत्तत्थाता 8.4.61
उत्थाता 8.4.61
उत्थातुम् 8.4.61
उत्थापनीयम् 5.1.111
(तूलिकाया) उत्थानं 3.3.116
उत्पचविपचा 2.1.72
उत्पचिष्णु 3.2.136
उत्पतनिपता 2.1.72
उत्पतिष्णुः 3.2.136
उत्पत्यपाक 2.1.72
उत्पर्शु 6.2.177
उत्पलगन्धिः 5.4.136
उत्पलमालभारिणी6.3.65
उत्पश्यः 3.1.137
उत्पावः 3.3.49
उत्पिबः 3.1.137
उत्पुच्छः 6.2.196
उत्पुच्छयते 3.1.20, 3.1.89
उत्पुटितव्यम् 1.2.1
उत्पुटिता 1.2.1
उत्पुटितुम् 1.2.1
उत्फुल्लः 8.2.55
उत्सङ्गः 4.4.15
उत्साः 7.3.72
उत्साहवलः 5.2.112, 6.3.118
उत्साहवान् 5.2.136
उत्साही 3.1.134, 5.2.136
उत्सौ 7.3.72
उत्स्नाता 8.4.61
उत्स्नुक् 8.2.33
उत् स्नुट् 8.2.33
उत्स्नोग्धा 8.2.33
उत् स्नोढा 8.2.33
उदककुम्भः 6.3.59
उदकगाहः 6.3.60
उदकगिरिः 6.3.57
उदकपर्वतः 6.3.59
उदकपात्रम् 6.3.59
उदकबिन्दुः 6.3.60
उदकभारः 6.3.60
उदकमच्छं 1.4.69
उदकमन्थः 6.3.60
उदकम्1.4.74,3.1.115
उदकवज्रः 6.3.60
उदकवान् घटः 8.2.13
उदकवीवधः 6.3.60
उदकसक्तुः 6.3.60
उदकसात् 5.4.53
उदकसाद् 5.4.52
उदकस्थलम् 6.3.59
उदकस्पर्शः 3.2.58
उदकहारः 6.3.60
उदकीयति 7.4.34
उदकीभवति 5.4.52
उदकुम्भः 6.3.59
उदके विशीर्णम् 2.1.47
उदकौदनः 6.3.60
उदक्तम् 6.4.30
उदक्तम् उदकम् 7.2.53
उदक्तमुदकं 8.2.48
उदक्या वृत्तयः 5.1.67
उदगात् कठकालापम् 2.4.3
उदगाहः 6.3.60
उदगुः कठकालापाः 2.4.3
उदग्भूम 5.4.75
उदग्राभम् 3.3.35
उदङ् 3.2.59

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उदङ्कः 3.3.123
उदजः 2.4.56,3.3.69
उदञ्जिनम् 6.2.184
उदञ्चनः 6.2.52
उदञ्चनः (उदकः) 3.3.123
उदतापि सवर्णं 3.1.66
उदधिः 6.3.58
उदुनि 6.1.171
उदन्यति 7.4.34
उदन्वान् 8.2.13
उदपत्सत 3.1.60
उदपत्साताम् 3.1.60
उदपत्सल 3.1.60
उदपात्रम् 6.3.59
उदपादि 3.1.60
उदपुपुच्छत गौः 3.1.89
उदपेषं पिनष्टि 3.4.38, 6.3.58
उदबिन्दुः 6.3.60
उदभारः 6.3.60
उदमन्थः 6.3.60
उदरकः 5.2.67
उदरक्रिमि 2.1.48
उदरपूरं भुङ्क्ते 3.4.31
उदरम्भरिः 3.2.26
उदरवान् 5.2.117
उदरशयः 3.2.15
उदरिकः 5.2.117
उदरिणी 5.2.94
उदरिलः 5.2.117
उदरी 5.2.117
उदरेमणिः 6.3.12
उदवज्रः 6.3.60
उदवासः 6.3.58
उदवाहनः 6.3.58
उदवीवधः 6.3.60
उदवोढम् 6.3.112
उदवोढम् 7.2.3
उदवोढाम् 6.3.112, 7.2.3
उदश्वित्कटुकम् 6.2.126
उदश्वित् कतिपयम् 2.1.65
उदश्वित्वान् 8.2.10
उदश्वित्वान् घोषः 1.4.19
उदश्विन्ति 7.1.72
उदसक्तुः 6.3.60
उदहारः 6.3.60
उदाकुरुते 1.3.32
उदाजः 2.4.56, 3.3.69,7.3.60
उदायंस्त 1.2.15
उदायत 1.2.15
उदायसत 1.2.15
उदायसाताम् 1.2.15
उदासारिण्यः 3.2.78
उदितः 6.1.15
उदितवान् 6.1.15
उदितानुदितम् 2.1.60
उदित्वा 1.2.7
उदियात् 7.4.24
उदीचः 6.4.139
उदीचा 6.4.139
उदीची 4.1.6
उदीचीनम् 5.4.8
उदीचे 6.4.139
उदीच्यम् 4.2.101
उदुब्जाञ्चकार 1.3.63
उदुम्बरमश 2.1.48
उदुम्बरावती 4.2.85, 6.3.119
उदुम्बरावती 6.1.219
उदुम्भाञ्चकार 1.3.63
उदेजयः 3.1.138
उदेतोः 1.1.40
उदेतोः 3.4.16
उदौदनः 6.3.60
उद्गतशृङ्गः 6.2.115
उद्गन्धिः 5.4.135
सूर्यम्उद्गमयति 3.1.26
उद्गाता 3.2.135
उद्गारः 3.3.29
उद्गीतिः 3.3.95
उद्ग्राभम् 8.2.35
उद्ग्राहः 3.3.35
उद्घनः 3.3.80
उद्घातः 3.3.80
उद्धः 3.3.86
उद्दालकपुष्प 3.3.109
उद्दालकपुष्पभञ्जिका 2.2.17
उद्दालकपुष्पभञ्जिका 6.2.74
उद्दासी 3.1.134
उद्द्रावः 3.3.49
उद्धमः 3.1.137
उद्धमविधमा 2.1.72
उद्धयः 3.1.137
उद्धरचूडा 2.1.72
उद्धरोत्सृजा 2.1.72
उद्धा 5.2.109
उद्धृतौदना 2.2.24
उद्धृत्य 7.1.38
उद्ध्यः 3.1.115
उद्ध्येरावति 2.4.7
उद् नो 6.1.63
उद्बाहुः 6.2.177
उद्भासी 3.1.134
उद्भिद्बलभिदौ 2.4.4
उद्यच्छति 1.3.75
उद्यच्छते भारम् 1.3.75
उद्यतः 3.2.188
उद्यतगदः 2.2.36
उद्यताऽसिः 2.2.36
उद्यन्ति कठकालापाः 2.4.3
उद्यावः 3.3.49, 3.3.122
उद्युङ्क्ते 1.3.64
उद्वतः 5.1.118
उद्वती 5.2.109
उद्वान् 8.2.45
उद्वासी 3.1.134
उद्विग्नः 7.2.14,8.2.45
उद्विग्नवान् 7.2.14, 8.2.45
उद्विचितव्यम् 6.1.16
उद्विचिता 6.1.16
उद्विचितुम् 6.1.16
उद्विजितव्य 1.2.2
उद्विजिता 1.2.2
उद्विजितुम् 1.2.2
उद्वेजन 1.2.2
उद्वेजनीय 1.2.2
उन्दिदिषति 6.1.3,6.1.9
उन्नतककुत् 5.4.146
उन्नसः 5.4.119
उन्नायः 3.3.26
उन्नीयः 3.1.123
उन्नेतार 3.2.135
उन्यः 6.4.82
उन्यौ 6.4.82
उन्मत्तगङ्गम् 2.1.21, 2.2.23,2.4.18, 2.4.84,
उन्मत्तप्रलपितम् 6.2.149
उन्मदिष्णुः 3.2.136
उन्मनीभवति 5.4.51
उन्मनीस्यात् 5.4.51
उन्मादः 3.3.67
उन्मादी 3.2.141
उन्मुक् 8.2.33
उन्मुट् 8.2.33
उन्मोग्धा 8.2.33
उन्मोढा 8.2.33
उपकः 5.3.80,5.3.83
उपकलमकाः 2.4.68
उपकरोति 6.1.137, 6.1.139
उपकाः 2.4.69
उपकिरति 6.1.140
उपकुमारि 2.4.18
उपकुम्भम् 2.1.6, 6.2.121
उपकुम्भं कृतम् 2.4.84
उपकुम्भं तिष्ठति 2.4.83
उपकुम्भं निधेहि 2.4.84
उपकुम्भं पश्य 2.4.83
उपकुम्भाद् आनय 2.4.83
उपकुम्भेन कृतम् 2.4.84
उपकुम्भे निधेहि 2.4.84
उपकुरुते 1.3.32
उपकूलम् 6.2.121
ऊपक्रन्ता 7.2.36
उपक्रमते 1.3.39, 1.3.42
उपक्रमितव्यम् 7.2.36
उपक्रम्य 6.4.18
उपक्रामति 1.3.39
उपखार्या 1.4.87
उपखार्य्यां द्रोणः 2.3.9
उपगणाः 5.4.73
उपगिर 5.4.112
उपगिरि 5.4.112
उपगु 1.1.48,1.2.28
उपगूढम् 6.3.111, 8.3.13
उपगेयम् 3.1.86
उपगौरः 6.2.194
उपघातः 3.3.85
उपचतुराः 5.4.77
उपचर्म 5.4.109
उपचाय्यः 3.1.131
उपचाय्यपृडाः 3.1.123
उपचेयम् 3..1.131
उपच्छत् 6.4.97
उपजरस 5.4.107
उपजापः 3.3.61
उपज्याय 6.1.42
उपडः 5.3.80,5.3.83
उपतीरम् 6.2.121
उपतूलम् 6.2.121
उपतैषः 6.2.194
उपत्यका 5.2.34, 7.3.45

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उपत्रिंशाः 5.4.73
उपदशं दन्तोष्ठम् 2.4.16
उपदशं मार्दङ्गिक 2.4.16
उपदशा दन्तोष्ठाः 2.4.16
उपदशाः 2.2.25, 2.4.16, 5.4.73
उपदा 3.3.106
उपदातव्यम् 6.1.50
उपदाता 6.1.50
उपदातुम् 6.1.50
उपदानम् 6.4.63
उपदायो 6.1.50
उपदिदीयाते 6.4.22, 6.4.63
उपदिदीयिध्वे 8.3.79
उपदिदीयिरे 6.4.22, 6.4.63
उपदिदीये 6.4.22, 6.4.63
उपदृषद 5.4.111
उपदृषद् 5.4.111
उपदेदीयते 6.4.63
उपदेवः 6.2.194
उपधा 3.3.106
उपनदम् 5.4.110
उपनदि 5.4.110
उपनिषत् कृत्य 1.4.79
उपनिष्के कार्षापणम् 2.3.9
उपनैषः 6.2.194
उपपयः काम 1.1.41
उपपयः कार 1.1.41
उपपादुकम् 3.2.154
उपपूर्वरात्रम् 6.2.33
उपपूर्वाह्णम् 6.2.33
उपपौर्णमास 5.4.110
उपपौर्णमासि 5.4.110
उपप्रयन्तो अध्व 6.1.115
उपबहव 5.4.73
उपमणिकम् 2.1.6
उपमणिकं तिष्ठति 2.4.83
उपमणिकं पश्य 2.4.83
उपमा कृष्णस्य 2.3.72
उपमूलम् 6.2.121
उपयच्छते भार्याम् 1.3.56
उपयच्छति 1.3.56
उपयट् 8.2.36
उपयट् काम्यति 3.1.9
उपयड्भिः 3.3.73
उपयड्भ्याम् 3.2.73
उपयमः 3.3.63
उपयाजाः 7.3.62
उपयामः 3.3.63
उपयुङ्क्ते 1.3.64
उपरमति देवदत्तम् 1.3.84
उपरमति यज्ञदत्तम् 1.3.84
उपरमयति 1.3.84
उपरवीति 7.3.95
उपराज 5.4.108
उपराजम् 5.4.68
उपरावः 3.3.22
उपरि 5.3.31
उपरि ग्रामस्य 2.3.30
उपरि रमणी 5.3.31
उपरि वसति 5.3.31
उपरिष्टाद् आग 5.3.31
उपरिष्टाद् ग्रामस्य 2.3.30
उपरिष्टाद् रम 5.3.31
उपरिष्टाद् वस 5.3.31
उपरिस्विद् 8.2.102
उपरोधी 3.1.134
उपरौति 7.3.95
उपर्युपरि 8.1.7
उपर्युपरि ग्रामम् 2.3.2
उपर्षभीयति 6.1.92
उपलभ्यम् 7.1.66
उपलभ्यानि धनानि 7.1.66
उपलभ्या विद्या 7.1.66
उपल्कारीयति 6.1.92
उपवदते कर्मकरान् 1.3.47
उपवदते कुलभार्याम् 1.3.47
उपवदते परदारान् 1.3.47
उपवाजयति 7.3.37
उपवाय 6.1.41
उपविंशाः 2.2.25, 5.4.73
उपविपाश 5.4.107
उपवीणयति 3.1.25
उपव्याय 6.1.43
उपशयः 3.3.39
उपशयितं भवता 3.4.72
उपशयितो गुरुं भवान् 3.4.72
उपशयितो गुरुर्भवता 3.4.72
उपशय्य 7.4.22
उपशरद 5.4.107
उपशाकटायन 1.4.87
उपशायः 3.3.39
उपशालम् 6.2.121
उपशुन 5.4.77
उपशुश्राव 3.2.108
उपशुश्रुवान् 3.2.108
उपश्लिष्टं भवता 3.4.72
उपश्लिष्टो गुरुं 3.4.72
उपश्लिष्टो गुरुर्भवता 3.4.77
उपश्लोकयति 3.1.25
उपवसथः 6.2.144
उपसत् 3.2.61
उपसमिध् 5.4.111
उपसमिध 5.4.111
उपसरः (गवाम्) 3.3.71
उपसरजः 1.3.7, 3.1.92, 3.2.97, 6.4.143
उपसर्गः 7.3.53
उपसर्या 3.1.104
उपससाद 3.2.108
उपसार्या मथुरा 3.1.104
उपसिञ्चन्ति 1.3.67
उपसितो गुरुं 3.4.72
उपसेदिवान् 3.2.108
उपसोमः 6.2.194
उपस्कर्तव्यम् 6.1.137
उपस्कर्ता 6.1.137, 8.3.5
उपस्कर्तुम् 6.1.137
उपस्कारम् 6.1.140
उपस्कीर्ण 6.1.141
उपस्कुरुते 1.3.32
उपस्कृत 6.1.138
उपस्कृतम् 6.1.139
उपस्कृतं ग 6.1.139
उपस्कृतं ज 6.1.139
उपस्कृतं भु 6.1.139
उपस्कृषीष्ट 7.4.10
उपस्तवीति 7.3.95
उपस्तुत्य 1.1.56, 6.1.71
उपस्तौति 7.3.95
उपस्थानीयः 3.4.68
उपस्थानीयोऽन्ते 3.4.68
उपस्थायुकाः (पशवः) 3.2.154
उपस्थितम् 6.2.146
उपस्थितं भवता 3.4.72
उपस्थितो गुरुं 3.4.72
उपस्थितो गुरुर्भवता 3.4.72
उपस्थेयम् 3.1.86
उपस्थेयाम 3.4.117
उपस्निहितिः 1.2.18, 7.2.9
उपहतम् 6.2.146
उपहवः 3.3.72
उपहूतः 6.2.146
उपहतपशू रुद्रः 2.2.24
उपहत्य 1.1.56
उपहोडः 6.2.194
उपहुते 8.4.46
उपह्वयते 1.3.30
उपांशुयाजम् 7.3.62
उपाक्षम् 6.2.121
उपागात् 3.2.109
उपाग्नि 1.1.41
उपाग्निमुखः 1.1.41
उपाग्रहायण 5.4.110
उपाग्रहायणि 5.4.110
उपाजिनम् 6.2.184
उपाजिनम् 6.2.194
उपाजेकृत्य 1.4.73
उपाजे कृत्वा 1.4.73
उपाध्यायः 3.3.21
उपाध्यायश्चेत् 3.3.131
उपाध्यायश्चेदागच्छति 3.3.8, 3.3.131
उपाध्यायश्चेदागन्ता 3.3.8
उपाध्यायश्चेदागमत् 3.3.131
उपाध्यायश्चेदागमिष्य 3.3.8
उपाध्यायश्चेदागमिष्यति 3.3.131
उपाध्यायुपुत्रः 6.2.133
उपाध्यायाय 2.3.13
उपाध्यायाद् अन्तर्द्धन्ते 1.4.28
उपाध्यायाद् अधीते 1.4.29
उपाध्यायाद् निली 1.4.28
उपाध्याया 3.3.21
उपाध्यायाय गां 1.4.32
उपाध्यायानी 4.1.49
उपाध्यायी 3.3.21, 4.1.49
उपानत् 5.2.9, 6.3.116, 8.2.34
उपानत्खेटम् 6.2.126
उपानसम् 5.4.94
उपानही 6.1.106
उपानह्यौ 6.1.106
उपाऽपरात्रम् 6.2.33
उपापराह्णम् 6.2.33

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उपायंस्त 1.2.16
उपायत कन्याम् 1.2.16
उपार्छति 6.1.91
उपार्ध्नोति 6.1.91
उपार्षभीयति 6.1.92
उपाल्कारीयति 6.1.92
उपावृट् 6.3.116
उपावृत् 6.3.116
उपाश्नृणोत् 3.2.108
उपाश्रौषीत् 3.2.108
उपासदत् 3.2.108
उपासितं भवता 3.4.72
उपासितो गुरुर्भवता 3.4.72
उपासीदत् 3.2.108
उपास्थित 1.2.17
उपास्थिषत 1.2.17
उपास्थिषाताम् 1.2.17
उपिकः 5.3.80
उपियः 5.3.80
उपिलः 5.3.80
उपेडकीयति 6.1.94
उपेतः 6.1.89,6.1.91
उपेन्द्रः 6.2.194
उपेन्द्रदत्तकः 5.3.80, 5.3.83
उपेयाय 3.2.109
उपेयिवान् 3.2.109
उपेयुषा 3.2.109
उपेलयति 6.1.94
उपैडकीयति 6.1.94
उपैत् 3.2.109
उपैति 6.1.89
उपैधते 6.1.89
उपैमि 6.1.89
उपैषि 6.1.89
उपोदनयति 6.1.94
उपोपमे 8.1.6
उपोषति 6.1.94
उपौदनीयति 6.1.94
उप्तम्1.1.45,6.1.108
उप्तः 6.1.15
उप्तगाढम् 2.2.31
उप्तवान् 6.1.15
उप्त्रिमम्1.3.5,3.3.88, 4.4.20
उब्जककुभाः 2.4.68
उब्जिजिषति 6.1.3
उभ 1.1.27
उभति 7.1.59
उभय 1.1.27
उभयः 5.2.44
उभयके 5.3.71
उभयतो ग्रामम् 2.3.2
उभयदत 5.4.142
उभयद्युः 5.3.22
उभयस्मात् 1.1.27
उभयस्मिन् 1.1.27
उभयस्मै 1.1.27
उभयाकर्णि 5.4.128
उभयाञ्जलि 5.4.128
उभयादन्ति 5.4.128
उभयापाणि 5.4.128
उभयाबाहुः 5.4.128
उभयावी 5.2.122
उभयाहस्ति 5.4.128
उभये 1.1.27
उभये 5.2.44
उभयेद्युः 5.3.22
उभयेषाम् 1.1.27
उभाकर्णि 5.4.128
उभाञ्जलि 5.4.128
उभादन्ति 5.4.128
उभापाणि 5.4.128
उभाबाहुः 5.4.128
उभाहस्ति 5.4.128
उमाकटम् 5.2.29
उमापुष्पकं 6.2.10
उम्भति 7.1.59
उम्यम् 5.2.4
उरःपेषं युध्यन्ते 3.4.55
उरगः 3.2.48
उररीकरोति 1.4.61
उररीकृतम् 1.4.61, 2.2.18
उररीकृत्य 1.4.61
उरश्छदः 3.3.118, 6.4.96
उरसः 5.2.127
उरसलङ्कटाः 2.4.68
उरसिकृत्य 1.4.75
उरसिकृत्वा 1.4.75
उरसिलः 5.2.100
उरसिलोमा 2.2.24, 2.2.35,6.3.12
उरस्तः 4.3.114
उरस्यः 4.3.114, 4.4.94
उरस्वान् 5.2.100
उरुणः सकारः 8.3.49
उरुणस्कारः 8.3.49
उरुणस्कृधि 6.4.102, 8.3.50
उरुया 7.1.39,7.4.25
उरुव्यचाः 1.2.1
उरुष्या 6.3.133
उरो अन्तरिक्षं 6.1.117
उर्वशी 4.3.87
उर्वाः 2.4.64
उर्विया 7.1.39
उलपयः 5.3.116
उलूकपक्षी 4.1.55
उलूकपाकः 7.3.53
उलूक पुच्छी 4.1.55
उलूखलम् 6.3.109
उलूखलमुस 2.4.14
उलूखलमुसलम् 2.2.31
उल्क्का 8.4.47
उल्लाघः 8.2.55
उल्लापयते 1.3.70
उवः 6.4.20
उवचिथ 6.1.17
उवप 3.1.36
उवपिथ 6.1.17
उवयिथ 6.1.17, 6.1.39, 7.2.61
उवशिथ 6.1.17
उवाच 6.1.17
उवाप 6.1.17,6.4.78
उवाय 2.4.41,6.1.17, 6.1.38,6.1.39
उवाश 6.1.17
उवोष 3.1.38,6.4.78
उवौ 6.4.20
(हे) उशन 7.1.94
(हे) उशनः 7.1.94
उशना 7.1.94
उशन्ति 6.1.16,6.1.20
उशितः 6.1.16
उशितवान् 6.1.16
उशीरबीजम् 2.2.31
उश्यात् 3.3.160
उषस्यम् 4.2.31
उषासासूर्यम् 6.3.31
उषासोनक्ता 6.3.31
उषितः 7.2.52,8.3.60
उषितवान् 7.2.52, 8.3.60
उषित्वा 1.2.7,7.2.52, 8.3.60
उष्टः 6.1.16,6.1.20
उष्ट्रः 1.1.7,8.4.50
उष्ट्रकः5.3.73,5.3.74, 5.3.96,5.3.98
उष्ट्रकण्ठः 6.2.114
उष्ट्रकोशी 3.2.79
उष्ट्रक्रोशी 6.2.80
उष्ट्रखरम् 2.2.33
उष्ट्रखर 2.4.11
उष्ट्रगोयुगम् 5.2.29
उष्ट्रग्रीवा 5.3.100
उष्ट्रमुखः 2.2.24
उष्ट्रवामी 6.2.40
उष्ट्रशश 2.4.11
उष्ट्रशशकम् 2.2.33
उष्ट्रसादिः 6.2.40
उष्णकः5.2.72,5.2.81
उष्णाङ्करणम् 6.3.70
उष्णभोजी 3.2.78
उष्णालुः 5.2.122
उष्णिक् 3.2.59
उष्णिका 5.2.72
उष्णिहा 4.1.4
उष्णोदकम् 6.2.96
उष्मायते 3.1.17
उह्यन्तां 8.1.51
उह्यन्तां देवदत्तेन 8.1.51

ऊ

ऊः 6.4.20
ऊँ इति 1.1.18
ऊककृताः 6.2.46
ऊकशुष्कः 6.2.32
ऊचतुः 6.1.17
ऊचुः 6.1.17
ऊचे 2.4.53
ऊढः 6.1.15, 6.3.112, 8.2.1
ऊढभार्यः 2.2.37
ऊढरथोऽनड्वान् 2.2.24
ऊढवान् 6.1.15, 6.3.112
ऊढिः 8.2.1
ऊतम् 6.1.66
ऊतिः 3.3.97,6.4.20
ऊध एव 8.2.70
ऊधन्यः 5.1.2
ऊधरेव 8.2.70
ऊनयीः 3.1.51
ऊयतुः2.4.41,6.1.16, 6.1.38,6.1.39
ऊयुः 2.4.41,6.1.16, 6.1.38,6.1.39
ऊय्यते 6.1.66
ऊरव्याः कण्टकाः4.4.83
ऊरीकृतम् 1.4.61

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ऊरीकृत्य 1.4.60
ऊरुदघ्नम् 5.2.37, 7.1.2
ऊरुदघ्नी 4.1.15
ऊरूद्वयसम् 5.2.37
ऊरूद्वयसी 4.1.15
ऊरूबली 5.2.135
ऊरूभिन्नी 4.1.52, 4.1.53
ऊरीस्यात् 1.4.60
ऊरूमात्रम् 5.2.37
ऊरूमात्री 4.1.15
ऊर्क् 3.2.177,8.2.24
ऊर्जः 3.2.177
ऊर्जमेका रक्षति 8.1.65
ऊर्जस्वलः 5.2.114
ऊर्जस्वी 5.2.114
ऊर्जी 3.2.177
ऊर्णनाभ 5.4.75
ऊर्णम्रदा 6.3.63
ऊर्णया 8.1.42
ऊर्णयास्म पुरा 3.2.118
ऊर्णया युस् 1.3.4
ऊर्णायुः 1.4.16, 5.2.123,7.1.1
ऊर्णासूत्रेण 6.3.63
ऊर्णुतः 7.2.11
ऊर्णुनाव 6.1.8
ऊर्णोर्ति 6.1.162
ऊर्णोनूयते 7.2.11
ऊर्ध्वं मुहूर्त्ता 3.3.9, 8.3.107
ऊर्ध्वं मुहूर्ताद् 3.3.9, 3.3.164,3.3.165
ऊर्ध्वं मुहू 3.3.164
ऊर्ध्वं मुहूर्ताद् 3.3.165
ऊर्ध्वजानुः 5.4.130
ऊर्ध्वजुः 5.4.130
ऊर्ध्वपूरं पूर्यते 3.4.44
ऊर्ध्वशोषं शुष्यति 3.4.44
ऊर्मिमान् 8.2.9
ऊर्वष्ठीव 5.4.77
ऊर्विता 8.2.78
ऊवतुः2.4.41,6.1.39, 6.4.78
ऊवुः 6.1.39,2.4.41, 6.4.78
ऊषतुः 6.4.78
ऊषरम् 5.2.107
ऊषितः 6.1.15
ऊषितवान् 6.1.15
ऊषुः 6.4.78
ऊषुरिह 3.2.122
ऊषु ण 6.3.134
ऊष्मायते 3.1.17
ऊहा 3.3.103
ऊहाञ्चक्रे 2.4.81, 3.1.36
ऊह्यते 7.4.23

ऋ

ऋक्लक् 1.3.3
ऋक्वता 1.4.20
ऋक्सामे 2.4.14
ऋक्सामे 5.4.77
ऋगयनम् 8.4.3
ऋगुयनुव्याख्यानम् 6.2.151
ऋग्यजुष 5.4.77
ऋग्यजुरुन्मु 5.4.77
ऋग्यजुषम् 5.4.77
ऋचोर्द्धम् 5.4.74
ऋच्छति 7.3.78
ऋजिमा 6.4.161
ऋजिष्ठः 6.4.161, 6.4.162
ऋजीयः 6.4.162
ऋजीयान् 6.4.161
ऋजुबाहुः 6.2.199
ऋणम् 8.2.60
ऋणाति 7.3.80
ऋणार्णम् 6.1.89
ऋतः 6.4.37
ऋतकः 0.0.2
ऋतजाः 6.4.41
ऋतभाग 4.1.104
ऋतम् 8.2.60
ऋतवान् 6.4.37
ऋतव्यम् 4.2.31
ऋताषाह 8.3.107
ऋतिङ्करः 3.2.43
ऋतित्वा 1.2.24
ऋतिसह 8.3.107
ऋतीमान् 8.2.15
ऋतीयते 3.1.29
ऋतीयन्ते 3.1.29
ऋतीयिता 3.1.31
ऋतीयेते 3.1.29
ऋतीषट् 6.3.116
ऋतीषहम् 8.3.109
ऋतीषाहम् 8.3.109
ऋतुयाजैः 7.3.62
ऋते ज्ञानम् 2.3.32
ऋते ज्ञानात् 2.3.32
ऋते ज्ञानेन 2.3.32
ऋते देवदत्तात् 2.3.29
ऋते यज्ञदत्तात् 2.3.29
ऋत्विक्पुत्रः 6.2.133
ऋत्विग् 3.2.59
ऋत्वियः 1.4.16, 5.1.106
ऋत्व्यम् 6.4.175
ऋद्धेषु भुञ्जानेषु 2.3.36
ऋद्धेष्वासीनेषु 2.3.36
ऋधक् 1.1.37
ऋभुक्षणम् 6.4.9
ऋभुक्षाः7.1.85,7.1.86, 7.1.88
ऋभुक्षाणः 7.1.86
ऋभुक्षाणम् 6.4.9, 7.1.86
ऋभुक्षाणौ 7.1.86
ऋभुक्षे 7.1.88
ऋश्यकः 4.2.80
ऋषभतरः 5.3.91
ऋषिमान् 8.2.15
ऋषिवत् 5.1.117
ऋषीवती 8.2.11
ऋषीवहम् 6.3.121
ऋष्युशृङ्गः 6.2.115
ऌतकः 0.0.2

ए

एकं राशिं 5.3.43
एओङ् 1.3.3
एकः 2.3.46,5.3.52
एककः 5.3.52
एककरः 3.2.21
एककृताः 2.1.59
एकक्षीरम् 6.3.62
एकचत्वारिंशं 5.2.46
एकचितीकः 6.3.127
एकतमो भवतां 5.3.94
एकतरम् 7.1.26
एकतरो भवतोद्देवदत्त 5.3.94
एकता 6.3.62
एकत्रिंशः 5.2.56
एकत्रिंशं 5.2.46
एकत्रिंशत्तमः 5.2.56
एकत्वम् 6.3.62
एकदा 5.3.15
एकदाम्नी 4.1.29
एकदुग्धम् 6.3.62
एकधा 4.3.44, 5.3.42,5.3.43, 5.3.44
एकधुरः 4.4.79
एकधुरीणः 4.4.79
एकपत्नी 4.1.35
एकपदि 5.4.128
एकपदी 5.4.139
एकपरि 2.1.10
एकपुष्पा 4.1.4
एकभयम् 6.3.62
एकभिक्षा 2.1.49
एकमूर्द्ध्नी 4.1.29
एकरूप्यम् 6.3.62
एकविंशः 5.1.58, 5.2.56,6.4.142
एकविंशम् 5.2.46
एकविंशतितमः 5.2.56
एकविंशति भारद्वाजम् 2.4.84
एकशततम 5.2.57
एक शाटी 2.1.49
एकशालिक 5.3.109
एकशितिपात् 6.2.81
एकषष्टः 5.2.58
एकषष्टितमः 5.2.58
एकसप्ततः 5.2.58
एकसप्ततितमः 5.2.58
एकस्याः शाटी 2.1.49
एकाकिनः 5.3.52
एकाकी 5.3.52
एकातिलोच्छित्तिः 3.3.20
एकादशः 5.2.48, 5.3.49
एकादशम् 5.2.45
एकादश 6.2.35
एकाद्नत्रिंशत् 6.3.76
एकाद्नविंशति 6.3.76
एकान्नत्रिंशत् 6.3.76
एकान्नविंशतिः 6.3.76
एकान्यिकः 4.4.63
एकाशततमः 5.2.57
एकैकम् 8.1.9
एकैकया 8.1.9
एकैकस्मै 8.1.9
एको देवानुपातिष्ठत् 8.1.65
एडका 4.1.4
एणीजङ्घः 6.2.114
एणीपचनीयः 1.1.75
एणीपदः 5.4.120
एततृतीयः 6.2.162

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एतमातं ङितं विद्यात् 2.4.34
एतयोश्छात्रयोश्शोभ 2.4.34
एतं छात्रं छन्दोऽध्यापय 2.4.32
एतयति 6.4.155
एतद्द्वितीयः 6.2.162
एतस्माच्छात्राच्छन्दोऽधीष्व 2.4.32
एतस्मिन् ग्रामे सुखम् 2.4.32
एता 4.1.39
एता या 1.1.16
एतायते 6.3.36
एतद् 7.2.102
एतदीयम् 1.1.74
एतर्हि 5.3.4,5.3.16
एतावतिथः 5.2.53
एतावद्वयसम् 5.2.37
एतावन्मात्रम् 5.2.37
एतावान् 5.2.39
एति 7.3.89
एतिकाः 7.3.44
एति जीवन्तम् 2.3.54
एते 7.2.102
एतेन छात्रेण रात्रिरधीता 2.4.32
एतेऽर्चयन्ति 6.1.15
एतौ 7.2.102
एतौ गावौ 6.1.132
एधँ 1.3.2
एधा 6.4.29
एधते 1.3.1
एधानाहर्तुं व्रजति 2.3.14
एधि 6.4.22,6.4.119
एधिता 3.2.149
एधेभ्यो व्रजति 2.3.14
एधोदकम् उप 2.3.53
एधोदकस्य 1.3.32
एधोदकस्योपस्कुः 2.3.53
एधोकस्योपस्कुरुं 2.3.53
एधोदकस्योप 6.1.139
एनी 4.1.39
एभिः 6.1.171
एभिः 7.1.11,7.2.113
एभ्यः 7.2.113
एभ्यो वा 8.3.51
एमि 7.3.89
एयात् 7.4.24
एरण्डतैलम् 5.2.29
एलिशालम् 6.2.86
एवं स्म 3.2.119
एवङ्कारं भुङ्क्ते 3.4.27
एवा 6.3.136
एषः 7.2.106
एषका 7.3.47
एष गमिष्यामि 3.3.131
एष ददाति 6.1.132
एष भुङ्क्ते 6.1.1.32
एष स्य वाजो 6.1.133
एष स्य ते 6.1.133
एषाम् 7.2.113
एषि 7.3.89
एषिका 7.3.47
एषिता 7.2.9,7.2..48
एषितुम् 7.2.9
एषित्वा 1.2.26
एषिषिषति 1.2.26
एषिष्यति 7.2.48
एषु 7.2.113
एषे रथा 1.1.39
एषे 3.4.9
एषोऽत्र 6.1.132
एष्टा 7.2.48
एष्यते 6.4.62
एहकि 5.3.77
एहिमन्ये ओदनं 1.4.106
एहि मन्ये रथेन 1.4.106
एहि मन्ये 8.1.46
एहि मन्यसे 8.1.46
एहियवम् 2.1.72
एहिवाणिजा 2.1.72
एहिस्वागता 2.1.72
एहीडम् 2.1.72

ऐ

ऐऔच् 1.3.3
ऐकगविकः 5.2.118
ऐकचक्रका 4.2.122
ऐकध्यं 5.3.44
ऐकशतिकः 5.2.118
ऐकशालिकः 5.3.109
ऐकसहस्रिकः 5.2.118
ऐकागारिकः 5.1.113
ऐकागारिकी 5.1.113
ऐकान्यिकः 4.4.63
ऐक्षत 6.1.90,6.4.72
ऐक्षवः 4.3.136
ऐक्षिष्ट 6.1.90,6.4.72
ऐक्षिष्यत 6.4.72, 6.1.90
ऐक्षुका 6.4.153
ऐक्ष्वाकः 4.1.168, 4.2.132,6.4.174
ऐङ्गुदम् 4.3.164
ऐज्यत् 6.4.72
ऐडविडः 4.1.120
ऐडविडवृन्दारिका 6.3.42
ऐणम् 4.3.159
ऐणेयम् 4.3.155, 4.3.159
ऐतरेयिणः 4.2.66, 4.3.105
ऐतिकायनः 1.1.1
ऐतिहासिकः 4.2.60
ऐतिह्यम् 5.4.23
ऐदंयुगीनः 4.4.99
ऐन्द्रं (हविः) 4.2.24
ऐन्द्रमहिकम् 5.1.109
ऐन्द्रवक्त्रकः 4.2.126
ऐन्द्रवेणुकी 4.2.141
ऐन्द्रशर्मिः 4.1.96
ऐन्द्राग्नम् 7.3.22
ऐन्द्रालिश 4.3.152
ऐन्द्रावरुणम् 7.3.23
ऐन्द्रो मन्त्रः 4.2.24
ऐन्द्र्यां 1.3.25,5.3.27
ऐरावतः 4.1.113
ऐरावतकः 4.2.121
ऐलयीः 3.1.51
ऐलयीत् 7.2.5
ऐलिलत् 3.1.51
ऐलिशाला 6.2.86
ऐश्वर्य
ऐषमः 5.3.22
ऐषमस्तनम् 4.2.10
ऐषमस्त्यम् 4.2.104
ऐषुकारि भक्तम् 6.1.193
ऐषुकारि भक्तः 4.2.54
ऐषुकावतम् 4.2.72
ऐष्टिकः 4.3.72
ऐहत 6.4.72
ऐहलौकिक 4.3.60, 7.3.20
ऐहिष्ट 6.4.72
ऐहिष्यत 6.4.72
ऐ3तिकायन 8.2.106

ओ

ओक्यः 5.4.25
ओजसाकृतम् 6.3.3
ओजसीनम् अहः 4.4.130
ओजस्यमहः 4.4.130
ओढा 6.1.95
ओजस्या तनूः 4.4.128
ओजायते 3.1.12
ओदनं 8.1.5
ओदनं पचन् 2.3.69
ओदनं पचमानः 2.3.67, 2.3.69
ओदनं पचति 1.4.49, 2.3.12
ओदनं परि 1.4.90
ओदनं परिषिञ्चति 1.4.88
ओदनं पेचानः 2.3.69
ओदनं पेचिवान् 2.3.69
ओदनं बुभुक्षुः 2.3.69
ओदनं भुक्तवान् 2.3.69
ओदनं भुक्त्वा 2.3.69
ओदनं भुङ्क्ष्व 3.4.3
ओदनं भोजको 2.3.70
ओदनपक् 6.4.15, 8.2.30
ओदनपाकी 4.1.64
ओदनपाणिनीयाः 6.2.69
ओदनपाणिनिः 1.1.73
ओदनपाणिनी 1.1.73
ओदपानः 4.3.25
ओदनबुभुक्षु 2.1.24
ओदनभिस्सा 6.4.1
ओदनभिस्सिटा 6.4.1
ओदनभोजनं सुखम् 6.2.150
ओदनभोजनं 3.3.116
ओदनभोजिका 3.3.111
ओदनस्य भोजकः 2.2.16, 2.2.17
ओदनिकः 4.4.67
ओदनिकी 4.4.67
ओदुम्बः 6.4.29
ओम् 6.4.20
ओम्भेयकः 4.3.25
ओयते 6.1.80
ओषधयः 5.4.37
ओषधिः 6.2.42
ओषधिः 6.3.132
ओषधिपते 6.3.132
ओषधिभिः 6.3.132
ओषधीभ्यः 6.3.132
ओषाञ्चकार 3.1.38
ओष्ठ्यम् 4.3.55
ओष्ठ्यम् 6.1.213
ओस् 7.1.96
ओहिष्ट 6.4.74
ओह्यते 7.4.23
ओ3श्रा3वय 8.2.92

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

औ

औक्थिकः 4.2.60
औक्थिक्यम् 4.2.46
औक्थिक्य 4.3.129
औक्षकम् 4.2.39
औक्षम् 6.4.173
औक्ष्णः 6.4.135, 6.4.173
औखीयाः 4.3.102
औङ्कारीयत् 6.1.90
औचिती 5.1.123
औजढत् 8.2.1
औजसिकः 4.4.27
औडुपिकः 4.4.5, 4.4.15
औडुलोमिः 4.1.85, 4.1.96, 6.4.144
औढीयत् 6.1.90
औणीवत्यः 5.3.118
औत्तरपथिकम् 5.1.77
औत्तरपथिकः 5.1.77
औत्तरपदकी 4.2.138
औत्तरपदिकः 4.4.39
औत्तराहम् 4.2.104
औत्पातः 4.2.59
औत्सः 4.1.86, 4.1.92, 4.3.25
औत्सङ्गिकः 4.4.15
औत्साश्छात्राः 2.4.64
औत्सी 4.1.15
औदकशौद्धिः 7.3.20
औदन्वतः 8.2.13
औदपानः 4.1.86, 4.3.76
औदपानी 4.1.15
औदमेधिः 6.3.57
औदमेयी 4.1.65
औदरिकः 5.2.67
औदवाहिः 6.3.57
औदश्वितम् 4.2.19
औदश्वित 1.1.68
औदश्वित्कम् 4.2.19
औदश्वित्क 1.1.68
औदश्वित्कः 7.3.51
औदिष्टः 4.2.69
औदुम्बरः 4.2.67
औदुम्बर 4.3.154
औदुम्बरिः पुत्रः 2.4.58
औदुम्बरिः पिता 2.4.58
औदुम्बरिः 4.1.173
औदुम्बरो जनपदः 4.2.81
औदुम्बरो राजा 4.1.173
औद्गात्रम् 4.4.49, 5.1.129
औनयीत् 7.2.5
औनिनत् 3.1.51
औन्नेत्रम् 5.1.129
औपकर्णिक 4.3.40
औपकायनः 2.4.69
औपकूलम् 4.3.59
औपगवः 1.1.1, 1.1.21, 1.1.38, 1.2.46, 1.4.13, 4.1.83, 4.1.92, 6.4.146, 7.2.117
औपगवक 4.3.80, 4.3.99, 4.3.126
औपगवकम् 4.2.8, 4.2.39
औपगवम् 4.3.120
औपगवाः 1.1.38, 2.4.62
औपगविः 4.1.93, 4.1.148, 4.1.156, 4.1.157
औपगवि 4.1.15, 4.1.78, 4.1.147,
औपगवीयः 1.1.73
औपगवौ 1.1.38
औपचारिकः 5.4.35
औपजानुकः 4.3.39
औपधेयं दारू 5.1.13
औपनीविक 4.3.40
औपबाहविः 4.1.96
औपमन्यवः 1.1.1
औपम्यम् 5.1.124
औपयिकः 5.4.34
औपरिष्टः 4.2.104
औपवस्त्रम् 5.1.105
औपाध्यायक 4.3.77
औपानह्यः 5.1.14
औपुष्टकः 4.2.124
औप्यत 6.4.72
औब्जत् 6.4.72
औब्जिष्यत् 6.4.72
औब्जीत् 6.1.90, 6.4.72
औभीत् 6.1.90
औमकम् 4.3.158
औमम् 4.3.158
औमीनम् 5.2.4
औम्मत् 6.4.72
औम्मिष्यत् 6.4.72
औम्मीत् 6.4.72
औम्मेयकः 4.2.95
औरभ्रकम् 4.2.39
औयत 6.1.80
औरसः 4.4.94
और्णकम् 4.3.158
और्णम् 4.3.158
और्द्दायनी 4.2.99
और्ध्वदमिक 4.3.60
और्ध्वदेहिक 4.3.60
और्वः 4.1.104
और्वी 6.1.161
और्वी 4.1.73
औलपिनः 4.3.104
औलपीयः 5.3.116
औलपीयौ 5.3.116
औलूखलो यावकः 4.2.92
औशनम् 4.2.8
औशनसम् 4.2.8
औशिजवृन्दारिका 6.3.42
औषधं ददाति 5.4.37
औषधम् 5.4.37
औषिकः 7.3.51
औष्ट्रः 4.2.52
औष्ट्रकः 4.3.157
औष्ट्रकम् 4.2.39, 4.3.155
औष्ट्रम् 4.3.123, 5.1.129
औष्ट्ररथ 4.3.122
औस्रीयत् 6.1.90
औह्यत 6.4.72
औ३पगव 8.2.106
औ३पमन्यव 8.2.106

क

क आस्ते 8.3.17, 8.3.19
कः 7.2.103
कः पाटलिपुत्रः 3.3.6
कंयः 5.2.138
कंयुः 5.2.138
कंसपरिमृट् 8.2.36
कंसपरिमृड्भिः 7.2.114
कंसपरिमृड्भ्याम् 7.2.114
कंसिकः 5.1.25
कंसिकी 5.1.25
कं हेतुं 2.3.27
ककुदावर्त्ति 5.2.94
ककुदावर्ती 5.2.128
कक्षा 3.3.105
कक्षायते 3.1.14
कक्षीवान् 8.2.12
कक्ष्यावान् 8.2.12
कङ्कचित् 3.2.91
कं कारणं 2.3.27
कचाकचि 2.2.27, 5.4.127, 6.3.137
कच्चित् 8.1.30
कच्चिज्जीवति 3.3.153
कच्चिद् अधीते 8.1.30
कच्चिद् कच्चिद् 8.1.30
कच्चिद्भुङ्क्ते 8.1.30
कच्छपः 3.2.4
कच्छपी 2.2.19
कच्छुरम् 5.2.107
कजलार्मम् 6.2.91
कटं 8.1.47
कट आस्ते 1.4.45
कटं करोति 1.4.49, 2.3.53
कटं कारको 2.3.70
कटं कुरु३ 8.2.104
कटं कुर्यात् 3.3.161
कटं कुर्वाणं 1.3.88
कटं कृत्वा 2.3.69
कटं चिकीर्षुः 2.3.69
कटं तावद् 3.3.161
कटकवल 5.4.68
कटकवलयिनी 5.2.128
कटघोषीय 4.2.139
कटनगरीय 4.2.139
कटपल्वली 4.2.139
कटप्रुवः 6.4.83
कटप्रुवौ 6.4.83
कटप्रूः 3.2.178
कटमहो कुरिष्यसि 8.1.41
कटीता 6.3.35
कटीत्वम् 6.3.35
कटुकबदरी 4.2.82
कटुकाश्वः 6.2.108
कटे आस्ते 2.3.36
कटे शेते 1.4.45
कटोलपादः 5.4.138
कठकालापाः 6.2.37
कठकौथुमाः 6.2.37
कठजातीया 6.3.42
कठत्वम् 5.1.134
कठदेशीया 6.3.42
कठधूर्तः 2.1.65

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कठप्रवक्ता 2.1.65
कठमानिनी 6.3.41
कठवृन्दारिका 6.3.42
कठश्रोत्रियः 2.1.65
कठाः 4.2.66,4.3.107
कठाध्यापकः 2.1.65
कठाऽध्वर्युः 6.2.10
कठी 4.1.63
कठीता 6.3.35
कठीत्वम् 6.3.35
कठीपाशा 6.3.41
कठीभार्यः 6.3.41
कठीयते 6.3.41
कडङ्करीयः 5.1.69
कडङ्कर्यः 5.1.69
कडारजैमिनिः 2.2.38
कडारपुरुषो ग्रामः 2.2.38
कणिता 1.1.6
कणेहत्य 1.4.66
कणे हत्वा 1.4.66
कण्टकसञ्चेयः 2.1.33
कण्टकित 5.2.36
कण्ठः 7.3.50
कण्ठेकालः 2.2.24, 2.2.35,6.3.12
कण्ठ्यम् 5.1.6
कण्ठ्यम् 6.1.213
कण्डूः 6.1.66
कण्डूतिः 1.1.58
कण्डूत्वम् 5.1.131
कण्डूयति 1.3.5, 3.1.27
कण्डूयते 3.1.27
कण्डूया 3.3.102
कण्डूयियिषति 6.1.3
कण्वायते 3.1.17
कतमः 5.3.93
कतमकठः 2.1.63
कतमकठः 6.2.58
कतमकठः 6.2.58
कतमकालापः 2.1.63
कतमत् 7.1.25
कतमश्चिद् 8.1.48
कतमस्मै 1.1.27
कतमा 8.1.12
कतमो भिक्षां 3.3.6
कतरः 5.3.92
कतरकठः 2.1.63
कतरकठः 6.2.57
कतरकठः 6.2.57
कतरकतमक 1.1.32
कतरकतमा 1.1.32
कतरकतमानाम् 1.1.31
कतरकतमे 1.1.32
कतरकालापः 2.1.63
(हे) कतरत् 6.1.69
कतरत् 7.1.25
कतरश्चित् 8.1.48
कतरस्मै 1.1.27
कतरा 8.1.12
कतरो नाम 3.3.145
कतरो भिक्षां ददाति 3.3.6
कतरो भिक्षां दाता 3.3.6
कतरो भिक्षां दास्य 3.3.6
कति 5.2.41
कतिकः 1.1.23,5.1.22
कतिकृत्वः 1.1.23
कतितिष्ठन्ति 1.1.25
कतिथः 5.2.51
कतिधा 1.1.23
कतिपयथः 5.2.51
कतिपयाः 1.1.33
कतिपयान्मुक्तः 2.3.33
कतिपये 1.1.33
कतिपयेन मुक्तः 2.3.33
कति पश्य 1.1.25
कतिशः 1.1.23
कतीह कवचम् 3.2.129
कतीह निध्नाना 3.2.129
कतीह पचमानाः 6.1.186
कतीह भूष्यमाणाः 3.2.128
कतीह मण्ड्य 3.2.129
कतीह शिखण्डं 3.2.129
कत्तृणा 6.3.103
कत्रयः 6.3.101
कथम् 5.3.25
कथं नाम 3.3.140, 3.3.142, 3.3.143
कथं ह्रते 8.3.27
कथं ह्रलयति 8.3.26
कथङ्कारं भुङ्क्ते 3.4.27
कथञ्चिद् 8.2.101
कथना 3.3.105
कथा 3.3.105,5.3.26
कदजः 6.3.101
कदन्नम् 6.3.101
कदम्बम् 4.3.166
कदलीस्तम्भोरू ऊङ 4.1.69
कदश्वः 6.3.101
कदा 5.3.21
कदा देवदत्त 3.3.130, 3.3.131
कदा भुङ्क्ते 3.3.5
कदा भोक्ता 3.3.5
कदा भोक्ष्यते 3.3.5
कदुष्ट्रः 6.3.101
कदुष्णम् 2.2.18, 6.3.107
कदोढा 6.1.95
कद्रथः 6.3.102
कद्रीची 6.3.92
कद्रुः 4.1.71,4.1.72
कद्रूः 4.1.71,4.1.72
कद्वदः 6.3.102
कनयति 6.4.155
कनिक्रदत् 7.4.65
कनिष्ठः 5.3.64
कनिष्ठा 4.1.4
कनीयान् 5.3.64
कन्तः 5.2.138
कन्तिः 5.2.138
कन्तुः 5.2.138
कन्यया शोकः 2.3.23
कन्या 1.2.31,4.1.20
कन्यादर्शं वरयति 3.4.29
कुन्यांप्रिय 6.2.16
कन्याम् अल 2.3.69
कुन्यास्वनः 6.1.223
कपाटघ्नः (चौरः) 3.2.54
कपिः 5.3.100
कपि 6.3.120
कपिञ्जलार्भम् 6.2.90
कपित्थः 1.2.45
कपित्थरसः 2.2.9
कपिरकः 8.2.18
कपिलकः 8.2.18
कपिला 4.1.40
कपिश्यांपर्णेयाः 6.2.37
कपिष्ठलाः 2.4.69
कपिस्थल 8.3.91
कपिस्थलम् 8.3.91
कपीवती 8.2.11
कपीवहम् 6.3.121
कपोतकीया 6.4.153
कपोतपाकः 7.3.53
कपोतपाकी 5.3.113
कपोतमय 4.3.143
कबरपुच्छी 4.1.55
कबरा 4.1.42
कंबराक्षम् 5.4.76
कबरी 4.1.42
कमण्डलव्या 6.4.146
कमण्डलव्या मृत्तिका 5.1.2
कमण्डलुः 4.1.71
कमंण्डलुग्राहः 6.2.75
कमण्डलुपाणिश्छात्रः 2.3.21
कमण्डलूः 4.1.72
कमना 3.2.153
कमलखण्डम् 4.2.51
कमिता 3.1.31
कम्पना 3.2.153
कम्पयति 1.3.87
कम्पितव्यम् 8.4.58
कम्पिता 8.4.58
कम्पितुम् 8.4.58
कम्रः 3.2.167
कम्रा शाखा 3.2.153
कम्बः 5.2.138
कम्बलचारायणेयाः 6.2.69
कुम्बुलुचीरंम् 6.2.127
कम्बलदः 3.1.94, 3.2.3,6.4.64
कम्बलदायो व्रजति 3.3.12
कम्बलस्तव स्वम् 8.1.26
कम्बलस्ते 8.1.26
कम्बलस्ते स्वम् 8.1.26
कुम्बुलान्तरः 6.2.166
कम्बलार्णम् 6.1.89
कम्बलीया ऊर्णा 5.1.3
कम्बलो ग्रामे ते 8.1.26
कम्बलो ग्रामे मे 8.1.26
कम्बलो मम 8.1.26
कम्बलो मे स्वम् 8.1.26
कम्बल्यम् 5.1.3
कम्बोजः 4.1.175
कम्बोजो राजा 4.1.175
कम्भः 5.2.138
कं भवान् 3.3.6
कम्यः 5.2.138
कम्रा (युवतिः) 3.2.167
कम्रा 3.2.153
कयाषुभीयम् 5.2.59
कयास्ते 8.3.17,8.3.19
कयेते 6.1.78
करः 3.3.57
करकिसलय 2.1.56
करणग्रामः 4.2.37
करग्राहम् 3.4.39
करणप्रियः 8.4.3

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करणभूतया 3.3.4
करणम् 8.4.2
करणीयम् 3.1.1, 3.1.90,3.1.93, 3.1.96
कृ॒णीय॑म् 6.1.217
करभीय उष्ट्रः 5.1.1
करभोरूः 4.1.69
कररावः 5.2.109
करवर्त्तम् 3.4.39
करवाणि 3.4.92
करवाम 3.4.92,3.4.98
कर॒वामः 3.4.98
करवामहै 3.4.92
करवाव 3.4.92,3.4.98
करवावः 3.4.98
करवावहै 3.4.92
करवीरम् 4.3.166
करवै 3.4.92,3.4.93
करवैते 3.4.95
करवैथे 3.4.95
करिक्रत् 7.4.65
करिष्ठः 5.3.59, 6.4.154
करिष्यति 1.4.13, 3.1.33,7.2.38, 7.2.70,
करिष्यती 7.1.80
करिष्यते 3.3.14
करिष्यन् 3.3.14
करिष्यन्तं देवदत्तं 3.3.14
करिष्यन्ती 7.1.80
(हे) करिष्यमाण 3.3.14
करिष्यमाणं 3.3.14
करिष्यमाणो 3.3.14
करिष्यामः 1.4.13
करिष्यामीति व्रजति 3.3.13
करिष्यावः 1.4.13
करिस्कन्धः 4.2.51
करीकृष्यते 7.4.64
करीरी 4.1.41
करीषगन्धिः 5.4.136
करीषगन्ध्ये 7.1.18
करीषङ्कषा 3.2.42
करुणायति 3.1.13
करुणायते 3.1.13
करोत् 6.4.74
करोति 1.2.4,6.4.110
करोति कटम् 3.1.92
करोतु कटो 3.3.162, 3.3.163
करोमि 1.2.4,6.4.110
करोमिननु 8.2.93
करोषि 1.2.4,6.4.110
कर्कन्धुकुणः 5.2.24
कर्कन्धूः 4.1.66
कर्कीप्रस्थः 6.2.87
कर्णः 1.1.7
कर्णजाहम् 5.2.24
कर्णतोऽभवन् आदित्याः 5.4.48
कर्णिका 1.3.8,4.3.65
कर्णिकालः 5.2.96
कर्णिकावान् 5.2.96
कर्णेचुरचुरा 2.1.48
कर्णेजपः 6.3.14, 3.2.13
कर्णे जपिता 3.2.13
कर्णेजयः 3.1.92
कर्णेटिट्टिभ 2.1.48
कर्ण्यम् 4.3.55,4.3.65
कर्त्तः 6.4.11
(हे) कर्त्तः 7.1.94
कर्त्तरि 7.3.110
कर्त्तवे 3.4.9
कर्तृवै 6.1.200
कर्त्तव्यः कटो भवता 3.4.70
कर्त्तव्यः घटः 3.3.19
कर्त्तव्यम् 1.1.21,1.2.4, 3.1.1,3.1.2, 3.1.90,3.1.93, 3.1.96
कर्त्तव्यम् 6.1.58
कर्त्ता 1.1.51,1.2.4, 1.2.46,1.4.13, 2.4.85,3.1.133, 3.4.67,6.1.8, 6.1.45,7.1.94, 7.2.10, 7.2.63, 7.3.84, 8.2.42
कर्त्ता 6.1.186
कर्त्ता कटान् 2.3.69, 3.2.13
कर्त्तारः 2.4.85, 6.4.11,7.3.110, 7.4.51
कर्त्तारं॑ः 6.1.186
कर्तारौ 2.4.85, 7.3.110,7.4.51
कर्त्तारौ॑ 6.1.186
कर्तारौ कट 6.4.11
कर्त्तासि 2.4.85,7.4.50
कर्त्तासे 7.4.50
कर्त्ताहि 7.4.52
कर्त्तिता 7.2.57
कर्त्तिष्यति 7.2.57
कर्तुकामः 6.1.144
कर्तुम् 1.2.4,7.2.110
कर्तृ 8.4.57
कर्तृकरः 3.2.21
कर्तृमान् 6.1.176
कर्तृषु 8.3.57,8.3.59
कर्तॄणाम् 6.1.177
कर्तॄणाम् 6.4.3,7.1.54
कर्तॄन् 6.1.103
कर्त्रर्थम् 6.1.77
कर्त्रर्थम् 6.1.77
कर्त्रा 6.1.174
कर्त्रा 6.1.174
कर्त्री 4.1.5
कर्त्री॑ 6.1.174
कर्त्री 6.1.174
कर्त्वम् 3.4.14
कर्त्स्यति 7.2.57
कर्पूरः 8.2.18
कर्म 8.2.18
कर्मकरः 3.2.22
कर्मकुरुवर्द्धितुक 6.2.65
कर्मकाण्डम् 4.2.51
कर्मकारः 3.2.22
कर्मकृत् 3.2.89
कर्मठः 1.3.8,5.2.35
कर्मण्यः 4.4.98
कर्मण्यम् 5.1.100
कर्मन्दिनः 4.2.66, 4.3.111
कर्मी 5.2.116
कर्शित्वा 1.2.25
कर्षः 6.1.159
कर्षति 6.1.64,8.4.49
कर्ष्टा 7.2.10,7.2.62
कर्हि 5.3.21
कर्हि भुङ्क्ते 3.3.5
कर्हि भोक्ता 3.3.5
कर्हि भोक्ष्यते 3.3.5
कलयति 3.1.21
कलशीपदी 5.4.139
कलसीपक्व 6.2.32
कलहंसपदी 5.4.139
काञ्चीपुरम् 6.2.99
कलहकारः 3.2.23
कलहायते 3.1.17
कलापकम् 4.3.48
कलापाऽध्वर्युः 6.2.10
कलालः 5.2.97
कलिङ्गगत् 6.4.40
कल्पः 6.1.203
कल्पता 8.2.18
कल्पनापोढः 2.1.38
कल्पिता 1.3.93
कल्पितासे 7.2.60
कल्पिषीष्ट 7.2.60
कल्पिष्यते 1.3.93
कल्पिष्यते 7.2.60
कल्पिसूत्रः 4.2.60
कल्पा 1.3.93,7.2.60
कल्पारः 1.3.93, 8.2.18
कल्पारौ 1.3.93, 8.2.18
कल्प्यम् 3.1.110
कल्प्स्यति 1.3.93, 7.2.60
कल्म 8.2.18
कल्माषी 4.1.39, 4.1.40
कल्याणक्रोडा 4.1.56
कल्याणखुरा 4.1.56
कल्याणगुदा 4.1.56
कल्याणघोणा 4.1.56
कल्याणधर्मा 5.4.124
कल्याणनखा 4.1.56
कल्याणपञ्च 5.4.116
कल्याणपञ्चमीकः 6.3.34
कल्याणपुच्छा 4.1.55
कल्याणपुच्छी 4.1.55
कल्याणप्रक्व 3.3.65
कल्याणबाला 4.1.56
कल्याणमुखा 4.1.56
कल्याणमूर्द्धा 6.2.197
कल्याणशफा 4.1.56
कल्याणाक्ष 5.4.113
कल्याणाचारः 3.2.1
कल्याणाचारा 3.2.1
कल्याणीद 5.4.116
कल्याणीदशमाः 6.3.34
कल्याणीप 5.4.116
कल्याणीपञ्चमीक 6.3.34
कल्याणीप्रधानाः 6.3.34
कल्याणीप्रियः 6.3.34
कल्याणीमाता 6.3.34
कल्याणोखा 4.1.56
कवचहरः 3.2.10

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कवपथः 6.3.108
कवर्गीयम् 4.3.63
कविशस्तः 6.2.147
कवोष्णम् 2.2.18, 6.3.107
कव्यः 5.4.25
कव्यन्तः 7.4.39
कव्यवाहनः 3.2.65
कश्चिद् 8.1.48
कश्मीराणां 2.1.2
कषः 3.3.119
कषति 6.1.64
कषायपाणम् 8.4.10
कषायपाणाः 8.4.9
कषायपानम् 8.4.10
कषायपायिणः 3.2.81
कषितम् 7.2.22
कष्टः 7.2.22
कष्टम् 3.2.188
कष्टश्रितः 1.1.73, 1.2.43, 2.1.24, 2.2.30, 2.4.71
कष्टश्रितः 6.2.47
कष्टायते 3.1.14
कस्कः 8.3.48
कस्मान्निमित्ताद् 2.3.27
कस्मात् 7.1.15, 5.3.2
कस्मात् कारणाद् 2.3.27
कस्मात् प्रयोजनात् 2.3.27
कस्माद् हेतोः 2.3.27
कस्मिन् 5.3.2
कस्मिन् कारणे 2.3.27
कस्मिन् निमित्ते 2.3.27
कस्मिन् प्रयोजने 2.3.27
कस्मिन् हेतौ 2.3.27
कस्मै 7.1.14
कस्मै कारणाय 2.3.27
कस्मैचिद् 8.1.48
कस्मै निमित्ताय 2.3.27
कस्मै प्रयोजनाय 2.3.27
कस्मै हेतवे 2.3.27
कस्य कारणस्य 2.3.27
कस्य निमित्तस्य 2.3.27
कस्य प्रयोजनस्य 2.3.27
कस्य हेतोः 2.3.27
कस्य हेतोर्वसति 2.3.27
कस्याः 7.3.114
कस्यै 7.3.114
कहिकः 5.3.83
कहोडः 5.3.83
का ईमरे 6.1.127
कांस्कान् 8.3.48
काँस्कान् 8.3.12
कांस्कान् भोजयति 8.3.12
कांस्यः 4.3.168
कांस्यम् 4.3.155
काक आस्ते 8.3.19
काकगुहाः 3.2.5
काकतालीयम् 5.3.106
काकतालुकी 5.2.128
काकतीरम् 4.2.106
काकन्दकः 4.2.123
काकन्दी 4.2.76
काकपेया नदी 2.1.33
काकम् 4.2.37
काकयास्ते 8.3.19
काकशावः 6.3.42
काकस्य काष्ण्यम् 2.2.11
काकिणीकम् 5.1.33
काकोलूकम् 2.4.9
काकोलूकिका 4.3.125
काक्यर्थम् 8.2.29
काक्षः 6.3.104
काक्षतवम् 4.2.71
काच्छः 4.2.133
काच्छकम् (हसितम) 4.2.134
काच्छको (मनुष्यः) 4.2.134
काच्छिका (चूडा) 4.2.134
काच्छो गौः 4.2.134
काञ्चनुधनम् 6.2.55
काञ्चीपुरम् 6.2.99
काठकम् 4.2.46, 4.3.126
काठशाठिनः 4.3.106
काठाः 4.3.107
काठिकथा 5.1.134
काठिकयाऽत्याकुरुते 5.1.134
काठिकाम् अवेतः 5.1.134
काणिकः 4.4.32
काणेयः 4.1.131
काणेरः 4.1.131
काण्ठेविद्धया 4.1.81
काण्ठेविद्धी 4.1.81
काण्डः 4.3.136
काण्डगुणस्यो 6.1.139
काण्डं गुडस्य 1.3.32
काण्डपुष्पा 4.1.4
काण्डपृष्ठः 6.2.114
काण्डप्लविकः 4.4.5
काण्डलावः 6.2.75, 6.2.76
काण्डलावः 3.2.1
काण्डलावो व्रजति 3.3.12
काण्डलावभार्यः 6.3.39
काण्डाग्नकः 4.2.126
काण्डीभूतम् 6.3.61
काण्डीरः 5.2.111
काण्डे 1.2.45, 1.2.47, 6.4.148
काण्वाश्छात्राः 4.2.111
कातीरम् 6.1.155
कात्तिकिकः 4.2.23
कात्रेयकः 4.2.95
कात्रेयक 4.3.25
काथिकः 4.4.102
कादम्बपुष्पि 4.3.11
काद्रवेयः 6.4.147
कानीनः 4.1.116
कान्तः 3.2.188
कान्तारपथिकः 5.1.77
कान्तारपथिकम् 5.1.77
कान्तारातीतः 2.1.24
कान्तारातीतः 6.2.47
कान्तीनगरम् 6.2.89.
कान्तीपूरकः 4.2.122
कान्थकम् 4.2.103
कान्थिकः 4.2.102
कान्यकुब्जः 1.1.75
कान्यकुब्जी 4.1.78
कापटवः 1.2.46, 1.4.13, 4.1.83, 6.4.146, 7.2.117
कापटवक 4.3.80, 4.3.99
कापटवकम् 4.2.8
कापटवम् 4.3.120
कापटवी 4.1.73, 4.1.78
कापटवीयः 1.1.73
कापथः 6.3.104, 6.3.108
कापलिकम् 5.3.107
कापिञ्जलादाः 4.1.90
कापिञ्जलादि 4.1.90
कापिञ्जलाद्य 4.1.90
कापित्थम् 4.3.140
कापिलवत्रः 4.2.73
कापिशायनं मधु 4.2.99
कापिशायनी द्राक्षा 4.2.99
कापिष्ठलयः 2.4.69
कापुरुषः 2.2.18, 6.3.106
कापेयः 4.1.107
कापेयम् 5.1.127
कापोतः 4.3.135
कापोतकाः 6.4.153
कापोतदारव 4.3.154
कापोतपाक्यः 5.3.113
कापोतपाक्यौ 5.3.113
कापोतम् 4.2.44
कापोतम् 4.3.154
काप्य 4.1.107
काप्यायनी 4.1.107
काभ्याम् 1.1.56
कामं: 6.1.203
कामः 7.3.34
कामक्रोधौ 2.4.14
कामण्डलेयः 4.1.135
कामण्डलेयः 6.4.147
कामण्डलेयी 4.1.73
कामदुघा 3.2.70
कामधुरम् 6.3.105
कामम् 6.4.75
काममूनयीः 6.4.75
कामयते 1.1.5, 3.1.30, 3.3.160
कामयन्ते 3.1.30
कामयिता 3.1.31
कामयेत 3.3.160
कामयेते 3.1.30
कामये भुङ् 3.3.157
कामये भुञ्जी 3.3.157
कामलिनः 4.3.104
कामार्थौ 2.2.31
कामुका 4.1.42
कामुकाः (स्त्रियः) 3.2.154
कामुकी 4.1.42
कामो मे भुञ्जीत 3.3.153
काम्पिल्यकः 4.2.121, 6.4.151
काम्पिल्यम् 4.2.80
काम्पिल्यसिद्धः 6.2.32
काम्पिल्यसिद्धः 2.1.41, 6.3.19
काम्बलः 4.2.10
काम्बोजः 4.3.93
काम्बोजमुण्डः 2.1.72
काम्यम् 5.1.11, 6.3.105

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कायः 3.3.41
कायं हविः 4.2.25
कारः 7.2.115
कारकः 1.2.46,3.1.133, 3.4.67,6.4.57, 7.1.1,7.3.44
कारकरः 3.2.21, 6.1.156
कारकवान् 5.2.115
कारको व्रजति 2.3.15
कारणा 3.3.107, 6.4.46,6.4.57
कारण्डवूती 6.1.220
कारयति 1.4.53, 1.4.55,6.4.46, 7.4.1
कारयति कटम् 3.1.26
कारयति कटं परस्य 1.3.74
कारयते कटम् 1.3.73
कारयते कटः 3.1.89
कारयाञ्चकार 6.4.55
कारयिता 6.4.57
कारस्करो 6.1.156
कारा 6.1.203
कारा 3.3.104
काराः 3.3.20
काराभ्वः 6.4.84
काराभ्वौ 6.4.84
कारिः 3.3.110
कारिका 3.3.110, 7.3.44
कारिकाकृत 1.4.60
कारिकाकृत्य 1.4.60
कारिकाभार्यः 6.3.37
कारिकेयिः 6.4.151
कारिकेयी 6.4.150
कारिकेयीभूतः 6.4.152
कारिकेयीयति 6.4.152
कारिकेयो जाल्मः 4.1.147
कारितम् 6.4.52
कारिषीष्ट 6.4.46
कारिषेणिः 4.1.153
कारिषेण्यः 4.1.152
कारिष्यते 3.1.87, 6.4.62
कारीरः 4.3.135
कारीरम् 4.3.141
कारीषगन्धये 7.1.18
कारीषगन्धी 6.1.13
कारीषगन्धीपतिः 6.3.61,6.3.139
कारीषगन्धीपुत्रः 6.3.139
कारीषगन्धीव 6.1.13
कारीषगन्धीमातः 6.1.14
कारीषगन्धीमाता 6.1.14
कारीषगन्धीमातृक 6.1.14
कारीषगन्ध्यया 7.3.105
कारीषगन्ध्ययोः 7.3.105
कारीषगन्ध्या 4.1.2, 4.1.74,4.1.78, 6.1.13
कारीषगन्ध्यानाम् 7.1.54
कारीषगन्ध्याप 6.1.14
कारीषगन्ध्यायाः 7.3.113
कारीषगन्ध्याब 6.1.14
कारीषगन्ध्यामातः 6.1.14
कारीषगन्ध्यामाता 6.1.14
कारीषगन्ध्यामातृक 6.1.14
कारीषगन्ध्यायाम् 7.3.116
कारीषगन्ध्यायै 7.3.113
कारीषगन्ध्ये 7.3.106
कारूः 3.3.1
कारूणी 4.1.178
कारौ 3.3.20
कार्कटेकव 4.2.71
कार्कणः 4.3.76
कार्कणम् 4.2.145
कार्कवाकवम् 4.2.79
कार्कीकः 5.3.110
कार्णछिद्रिकः 4.2.79
कार्णवेष्टकः 4.2.79
कार्णवेष्टकिकं शरीरम् 5.1.99
कार्णायनिः 4.2.80
कार्णिपुरम् 6.2.99
कार्त्तः 4.3.66
कार्त्तकौजपौ 6.2.36
कार्त्तिकः 4.2.23
कार्त्तिकी 5.1.94
कार्त्तिक्या 2.3.28
कार्त्रायणिः 4.1.156
कार्दमम् 4.2.2
कार्दमिकम् 4.2.2
कार्परः 4.2.14
कार्पासः 4.3.136
कार्पासम् 4.3.143
कार्मः 6.4.172
कार्मणम् 5.4.36, 6.4.172
कार्मन्दम् 4.3.111
कार्मारः 5.4.36
कार्मारक 4.3.118
कार्मार्यायणिः 4.1.155
कार्मार्यायणिः 4.1.155
कार्मुकम् 4.3.117
कार्मुकम् 5.1.103
कार्यते 1.1.63,6.4.51
कार्यम् 3.1.120, 3.1.124
कार्यम् 6.1.185
कार्यशब्दिकः 4.4.1
कार्यी 5.2.115
कार्शाश्मम् 4.3.111
कार्षापणविकलम् 2.1.31
कार्षापणकुलम् 6.2.152
कार्षापणशः 5.4.43
कार्षापणिकः 5.1.25
कार्षापणोनम् 6.2.152
कार्षापणोनम् 2.1.31
(मा) कार्षीत् 3.3.175
कार्षीत् 6.4.74
कार्ष्णोत्तरासङ्गाः 6.2.1
कार्ष्णसुन्दरयः 2.4.69
कार्ष्णाजिनयः 2.4.69
कार्ष्यम् 5.1.123
कार्ष्यवणम् 8.4.5
कालककालिका 8.1.11
कालकः पटः 5.4.33
कालः पचति 3.3.167
कालकं मुखम् 5.4.33
कालकूटिः 4.1.173
कालञ्जरकः 4.2.125
कालमुखा 4.1.58
कालवणम् 6.3.105
कालशाः 4.2.16
कालशेयम् 4.3.56
काला 4.1.42
कालाक्षी गर्भिणी 2.1.71
कालापकः 4.2.65
कालापकम् 4.3.115, 4.3.126,4.2.46
कालापाः 4.3.108, 6.4.144
कालायसम् 5.4.94
कालिकम् 5.1.108
कालिका शाटी 5.4.33
कालिङ्गः 4.1.170
कालिङ्गकः 4.2.125
कालितरा 4.1.1
कालिम्मन्या 6.3.42, 6.3.67,6.3.66
काली 4.1.42
कालेजः 6.3.15
कालेयः 4.2.34
कालेयम् 4.2.8
कालो भोक्तुम् 3.3.167
कालो भोजनस्य 3.3.167
कालो यद् 3.3.168
काल्यः 5.1.107
काल्याणकम् 5.1.133
काल्याणिनेयः 4.1.126
कावचिकम् 4.2.41
काव्यम् 5.1.131
काव्यी 4.1.73
काशकृत्स्न 4.3.101, 4.3.115
काशंजः 6.2.82
काशपुष्पकः 5.2.81
काशिका 4.2.116
काशिकी 4.2.116
काशिता 7.2.9
काशितुम् 7.2.9
काशिलम् 4.2.80
काशीयाः 4.2.113
काश्मीरः 4.3.93
काश्मीरवाणि 6.2.13
काश्मीरसदे 6.2.23
काश्मीरसनी 6.2.23
काश्मीरसम 6.2.23
काश्मीरसवि 6.2.23
काश्मीरसवे 6.2.23
काश्मीरेभ्यो 1.4.31
काश्यपः 4.1.105
काश्यपिनः 4.2.66, 4.3.103
काश्यपीय 4.3.103
काषायबृहतिकः 6.3.39
काषायम् 4.2.1
काषायौ 4.2.1
काष्ठका 6.4.153
काष्ठकीया 6.4.153
काष्ठतट् 8.2.29
काष्ठधक् 8.2.32
काष्ठधुक् 8.2.32
काष्ठनिचयः 3.3.41
काष्ठभित् 3.2.61
काष्ठभेदः 6.2.144
काष्ठम् 7.2.9
काष्ठशक्स्थाता 8.2.29
काष्ठसभा 2.4.23

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

काष्ठसिंहः 6.2.72
काष्ठाऽध्यापकः 8.1.67
काष्ठाऽभिरूपकः 8.1.67
कासतः कुरु 5.4.49
कासाञ्चक्रे 3.1.35
कासूतरी 5.3.90
कास्तीरम् 6.1.155
कास्स्कान् 8.3.5
किं 8.1.6
कियँ ह्यः 8.3.26
किंराजः 5.4.70
किंराजा 5.4.70
किंराट् 8.3.25
किलँ ह्लादयति 8.3.26
किवँ ह्ललयति 8.3.26
किंवान् 8.2.9
किंशारुकम् (तीक्ष्णम्) 3.2.154
किंशुलक 6.3.117
किंशुलकागिरिः 6.3.117
किंशुलकादिः 6.3.117
किंसं 8.3.110
किंसखा 2.1.64, 5.4.70
किं ह्नुते 8.3.27
किं ह्मलयति 8.3.26
किं ह्यः 8.3.26
किं ह्लादयति 8.3.26
किं ह्ललयति 8.3.26
किकिदीविना 7.3.109
किकिदीव्या 7.3.109
किङ्करः 3.2.21
किङ्करा 3.2.21
किंकिल नाम 3.3.146
किङ्कवः 5.4.70
किंगौः 2.1.64,5.4.70
किंतमाम् 5.4.11
किन्तमाम् 5.4.11
किंतराम् 5.4.11
किन्तराम् 5.4.11
किन्दासाः 2.4.67
किं देवदत्त 8.1.44
किं देवदत्तो 8.1.44
किं नु खलु 3.3.162
किं नु खलु भो 3.3.161
किं निमित्तं वसति 2.3.27
किन् ह्नुते 8.3.27
किम् 8.2.64
किमत्र 8.3.23
किमधीते 8.1.44
किमीयम् 1.1.74
किमु आवपनम् 8.3.33
किमोऽत् 1.3.4
किम्वा वपनम् 8.3.33
किम् ह्मलयति 8.3.26
कियन्तः 5.2.41
कियन्मात्रम् 8.4.45
कियान् 5.2.40,6.3.90
किरः 3.1.135
किरति 1.1.51, 7.1.100
किरिः 3.3.108
किरिकाणः 6.2.2
किरिकाणः 2.1.30
किरिणा 8.4.2
किर्योः 1.1.58,8.2.78
किलासी 5.2.128
किशरिकः 4.4.53
किशरिकी 4.4.53
किशोरि अत्र 6.1.127
किशोरिका 7.4.13
किशोरी 4.1.20
किशोरीणाम् 7.1.54
किशोर्यत्र 1.1.11, 6.1.127
किष्किन्धा 6.1.157
किष्कुः 6.1.157
कीदृक् 6.3.90
कीदृक्षः 3.2.60,6.3.90
कीदृशः 6.3.90
कीर्णिः 3.3.93, 8.2.44
कीर्तयतः 7.1.101
कीर्तयति 7.1.101
कीर्तयन्ति 7.1.101
कीर्त्तिः 3.3.97
कीर्षिः 8.2.44
कीर्त्यम् 3.1.110
कीललपा 7.3.105
कीललपाः 3.2.74
कीलालपः 6.4.140
कीलालपा 6.4.140
कीलालपा 4.1.95
कीलालपाः ब्राह्मणी 4.1.4
कीलालपे 6.4.140
कीलालपेन 7.1.73
कीलालपोः 7.3.105
कुक्कुट 6.3.117
कुक्कुटमयू 1.2.67
कुक्कुटमयूर्यौ 2.4.7
कुक्कुटमयूर्यौ 2.4.26
कुक्कुटाण्डम् 6.3.42
कुक्कुटार्मम् 6.2.90
कुक्कुटी 4.1.14, 4.1.63
कुक्कुटौ 1.2.67
कुक्षिः 7.2.9
कुक्षिम्भरिः 3.2.26
कुड्मलाग्रदन् 5.4.145
कुड्मलाग्रदन्तः 5.4.145
कुचेलम् 6.2.130
कुञ्चिकयैनं 6.1.57
कुञ्चिकर्णः 6.2.113
कुञ्जौ 3.2.59
कुञ्जरः 5.2.107
कुञ्जरः 6.3.109
कुञ्जावः 5.2.109
कुटितव्यम् 1.2.1
कुटिता 1.2.1
कुटितुम् 1.2.1
कुटीकुट 2.4.11
कुटीच्छाया 6.1.76
कुटीछाया 6.1.76
कुटीजः 6.2.82
कुटीनिवातम् 6.2.8
कुटीमय 4.3.144
कुटीरः 5.3.88
कुटुम्बभारः 3.2.46
कुटुम्बमुच्चर 1.3.53
कुटुम्बिनी 4.2.51
कुटुम्बे अत्ति 1.3.24
कुट्टाकः 3.2.155
कुट्टिमम् 4.4.20
कुडवमात्रम् 5.2.37
कुड्यच्छायम् 2.4.25
कुड्यच्छाया 2.4.22, 2.4.25
कुड्यूच्छाया 6.2.14
कुड्यनिवातम् 6.2.8
कुड्ये 1.2.45,1.2.47, 6.4.148
कुणपदी 5.4.139
(हे) कुण्ड 6.1.69
कुण्डं याति 8.3.23
कुण्डं रथेन 0.0.5
कुण्डं हसति 8.3.23
कुण्डकृतः 6.2.170
कुण्डपानम् 3.1.130
कुण्डपाय्यः क्रतुः 3.1.130
कुण्डप्रतिपन्न 6.2.170
कुण्डप्रस्थः 6.2.87
कुण्डम् 1.2.45,7.1.24
कुण्डमितः 6.2.170
कुण्डमिदमानय 2.4.34
कुण्डलहिरण्यम् 2.1.35
कुण्डलहिरण्य् 6.2.43
कुण्डलाय 2.3.13
कुण्डलिनी 4.2.51
कुण्डशो 7.1.20
कुण्डा 1.4.11, 3.3.103,4.1.42, 7.1.58
कुण्डानि 1.4.13, 1.1.42,1.1.55, 7.1.20,7.1.72
कुण्डितव्यम् 7.1.58, 8.1.58
कुण्डिता 7.1.58, 7.4.58
कुण्डितुम् 7.1.58, 8.4.58
कुण्डिनाः 1.1.61, 2.4.70
कुण्डी 4.1.42
कुण्डिनाः 6.1.163
कुण्डीबृसाः 5.3.114
कुण्डे 6.1.104,7.1.73
कुण्डेतिष्ठतः 7.1.19
कुण्डेनाऽटन् 2.1.2
कुण्डे पश्य 7.1.19
कुण्डोदरः 6.2.108
कुण्डोष्नी 4.1.25, 5.4.131
कुतः 5.3.2, 5.3.6,5.3.7, 7.2.104
कुतः पर्यागच्छति 1.4.93
कुतपसौश्रुतः 2.1.60
कुतुप 5.3.89
कुतृणानि 6.3.103
कुतोऽध्यागच्छति 1.4.93
कुत्र 5.3.2,5.3.10, 5.3.12,7.2.104
कुत्सकुशिकि 4.3.125
कुत्साः 2.4.65
कुत्सितो ब्राह्मणः 2.1.53
कुद्दालखातं नगरम् 6.2.146
कुध्र 3.2.6
कुन्तिसुराष्ट्राः 6.2.37
कुन्ती 1.2.49,4.1.65, 4.1.176
कुन्दतृणभ् 6.2.85
कुपथः 6.3.108

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कुपुरुषः 2.2.18, 6.3.101,6.3.106
कुप्यम् 3.1.114
कुबेरबलिः 2.1.35
कुबेरबलिः 6.2.43
कुबेरवनम् 8.4.4
कुब्जकैरात 2.4.11
कुब्जवामन 2.4.11
कुब्रह्मः 5.4.105
कुब्राह्मणः 6.2.195
कुब्रह्मा 5.4.105
कुब्राह्मणः 6.2.2
कुब्राह्मणः 6.3.101
कुमारकुल 6.2.26
कुमारघाती 3.2.51
कुमारचातकाः 6.2.28
कुमारजीमूताः 6.2.28
कुमारताप 6.2.26
कुमारप्रत्येना 6.2.27
कुमारबलाहकाः 6.2.28
कुमारलोहध्वजाः 6.2.28
कुमारश्रमणा 2.1.70
कुमारश्रम 6.2.26
कुमारावः 5.2.109
कुमारि 7.3.107
कुमारि अत्र 6.1.127
कुमारि ऋश्य 6.1.128
कुमारिका 4.1.123, 7.4.13
कुमारितमा 1.1.22
कुमारितरा 1.1.22
कुमारिदारा 6.3.63
कुमारीं 8.4.57
कुमारी 1.2.27,1.4.3, 2.3.46,4.1.2, 4.1.20,6.1.68, 6.4.148
कुमारी 6.1.161
कुमारीः 4.1.2
कुमारीः 6.1.103
कुमारीणाम् 4.1.2, 6.1.177,7.1.54
कुमारीदीक्षा 6.2.69
कुमारीन्द्रः 6.1.127
कुमारीभिः 4.1.2
कुमारीभ्यः 4.1.2
कुमारीभ्याम् 4.1.2
कुमारीम् 6.1.107
कुमारीमतल्लिका 2.1.66
कुमारी शेते 6.1.105
कुमारीषु 4.1.2
कुमार्यः 6.1.105
कुमार्यत्र 1.1.11, 6.1.127
कुमार्यर्थ 6.1.127
कुमार्याः 7.3.112
कुमार्याम् 7.3.116
कुमार्यै 4.1.2,7.3.112, 8.2.4
कुमुदम् 3.2.5
कुमार्यौ 6.1.105
कुमुदश्येनी 6.2.2
कुमुदश्येनी 2.1.55
कुमुदिकम् 4.2.80
कुमुद्वान् 6.1.161
कुमुद्वान् 4.2.87, 6.4.143
कुम्बना 3.3.105
कुम्बा 3.3.105
कुम्भकारः 2.2.19, 3.1.92,3.2.1, 3.2.20
कुम्भकारः 6.2.76
कुम्भकारी 4.1.14, 4.1.15
कुम्भकारेभ्य 1.1.39
कुम्भपदी 5.4.139
कुम्भबिलम् 6.2.102
कुम्भमाडूक 2.1.48
कुम्भीकपालम् 6.2.137
कुम्भीनदालम् 6.2.137
कुम्भीपक्वः 2.1.41
कुम्भीपक्वः 6.2.32
कुम्भीभुगालम् 6.2.137
कुरुरावः 5.2.109
कुरवः 4.2.81
कुराज्यम् 6.2.130
कुरु 6.4.106,6.4.110
कुरुः 1.2.49,4.1.66, 4.1.176
कुरूः 1.2.49,4.1.66, 4.1.176
कुरु कुरु क्षेत्रम् 2.4.7
कुरु कुरु जाङ्गलम् 2.4.7
कुरुगार्हपतम् 6.2.42
कुरुचरः 3.2.16, 6.3.14
कुरुचरी 1.3.7,3.2.16, 4.1.14,4.1.15
कुरुणा 8.4.2
कुरुतः 1.2.4,6.4.110, 7.3.111
कुरुते 1.3.72,7.1.41
कुरुपुञ्जालाः 6.2.34
कुर्मः 6.4.108
कुर्याः 7.2.79
कुर्यात् 3.4.103, 6.4.109,7.2.79, 8.2.79
कुर्याताम् 3.4.103, 6.4.109,7.2.79
कुर्युः 3.4.103, 6.4.10,7.2.79,
कुर्वः 6.4.108
कुर्वती 7.1.80
कुर्वन्ति 1.2.4,1.3.72, 6.4.110,7.1.3, 8.4.58,7.1.72
कुर्वन्नवोचत् 8.3.32
कुर्वन्नास्ते 8.3.32
कुर्वीत 7.2.79
कुर्वीयाताम् 7.2.79
कुर्वीरन् 7.2.79
कुलकरम् 3.2.20
कुलटा 6.1.94
कुलदमनः 3.1.134
कुलभार्याम् 1.3.47
कुलमदः 3.3.67
कूलमुद्रजः 3.2.31
कुलीनः 4.1.139, 4.1.140
कुलुञ्चानां पतये 1.4.9
कुलुञ्चानां पत्ये 1.4.9
कुल्माषखादः 3.2.81
कुल्यः 4.1.140
कुल्यम् 4.2.80
कुवलम् 1.2.49
कुवलयम् 4.3.163
कुवलीच्छाया 6.1.76
कुवलीछाया 6.1.76
कुवलीतरा 6.3.43
कुवित् करोति 8.1.30
कुवित् पचति 8.1.30
कुवृषलः 6.2.2
कुशकाशम् 2.2.34, 2.4.12
कुशकाशाः 2.4.12
कुशकाशौ 2.4.12
कुशचीरम् 6.2.135
कुशलः कटकरणस्य 2.3.40
कुशलः कटकरणे 2.3.40
कुशलं देवदत्तस्य 2.3.73
कुशलं देवदत्ताय 2.3.73
कुशा 4.1.42
कुशाग्रीयं 5.3.105
कुशाग्रीया 5.3.105
कुशिकासो अव 6.1.116
कुशी 4.1.42
कुषित्वा 1.2.7
कुष्ठः 8.3.97
कुष्ठम् 7.2.9
कुष्ठलम् 8.3.96
कुष्ठी 5.2.94,5.2.128
कुष्णाति 8.4.1,8.4.35
कुष्यति पादः 3.1.90
कुष्यते पादः 3.1.90
कुसितायी 4.1.37
कुसीदायी 4.1.37
कुसीदिकः 4.4.31
कुसीदिकी 4.431
कुसुरविन्द 6.2.97
कुसूलबिलम् 6.2.102
कस्तुम्बुरुणि 6.1.143
कुस्तुम्बुरूणि 6.1.143
कुह 5.3.13,7.2.104
कुहः 6.1.216
कूजः 7.3.59
कूज्यम् 7.3.59
कूटबन्धम् 3.4.41
कूटशृङ्गः 6.2.112
कूटस्थः 6.3.20
कूपकच्छपः 2.1.48
कूपखाः 3.2.68,6.4.41
कूपचूर्णकः 2.1.48
कूपबिलम् 6.2.102
कूपमण्डूक 2.1.48
कूपे गर्गकुलम् 1.4.42
कूपेपिशाचकाः 6.3.9
कूपेपिशाचिकाः 2.1.44
कूपे सिञ्चन् 2.1.2
कूमनः 6.3.133
कूलं व्याददाति 1.3.20
कूलङ्कषा (नदी) 3.2.42
कूलमुद्रुजो 3.2.31
कूलमुद्वहः 3.2.31
कूलाञ्जिनः 6.2.165
कूष्ट्रो 6.3.101
कृकणीयम् 4.2.145
कृकवाकुः 4.1.66
कृच्छ्रान्मुक्तः 2.1.39, 2.3.33
कृच्छ्रायते 3.1.17
कृच्छ्रालब्धः 2.1.39
कृच्छ्रेण कार्यः 3.3.126
कृच्छ्रेण मुक्तः 2.3.33

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कृणाति 7.3.80
कृणुत 7.1.44
कृणुतः 6.4.48
कृणुतात् 7.1.44
कृणुहि 6.4.106
कृणोति 3.1.80
कृतम् 6.1.205
कृतः 1.1.26,8.2.42
कृतः कटः 3.4.1
कृतकटः 2.2.36
कृतः कटो 3.4.70
कृतकर्म्मा 6.2.117
कृतपूर्वी 2.3.65
कृतपूर्वी कटम् 5.2.87
कृतम् 3.2.102,6.1.71
कृतयति 3.1.21, 6.4.161
कृतयशाः 6.2.117
कृतये 1.4.7
कृतवान् 1.1.26, 3.2.102,6.4.14, 8.2.23,8.2.42
कृतवे 1.4.6
कृता 6.1.182
कृतापकृतम् 2.1.60
कृताकृतम् 2.1.60, 6.2.46
कृतिः 3.3.94, 3.3.100,3.3.110
कृतिकारोहिण्यौ 2.2.34
कृतौ 7.3.119
कृत्यम् 3.1.120
कृत्या 3.3.100, 7.3.120
कृत्याम् 3.3.10, 7.3.117
कृत्यै 1.4.6
कृत्रिमम् 1.3.5, 3.3.88, 4.4.20
कृत्वा 1.1.40,1.2.18, 2.4.82,7.1.37
कृत्वी 7.1.49
कृन्तति 7.1.59
कृन्तविचक्षणा 2.1.72
कृपणः 8.2.18
कृपा 3.3.104
कृपायति 3.1.13
कृपायते 3.1.13
कृपीटः 8.2.18
कृशः 3.1.135,8.2.55
कृशाश्विनः 4.2.66, 4.3.111
कृशित्वा 1.2.25
कृषति 6.1.64
कृषन्ति 7.1.72
कृषन्नवोचत् 8.3.32
कृषन्नास्ते 8.3.32
कृषिः 3.3.108,3.4.75
कृषिवती 6.1.221
कृषीय 3.4.106
कृषीयास्ताम् 3.4.107, 7.2.79
कृषीयास्थाम् 3.4.187
कृषीरन् 3.4.105, 3.4.107,7.2.79
कृषीवती 6.1.221
कृषीवलः 5.2.112, 6.3.118
कृषीष्ट 1.2.12, 3.4.107,7.2.43, 7.2.79,7.4.28, 8.4.41
कृषीष्ठाः 3.4.107, 8.4.41
कृष्टपच्याः 3.1.114
कृष्टसमीकृतम् 2.1.49
कृष्णः 5.2.94
कृष्णकर्णः 6.2.12
कृष्णकल्माषः 6.2.3
कृष्णगङ्गम् 2.1.21
कृष्णगिरिः 6.3.117
कृष्णता 5.1.123
कृष्णति नटः 3.1.11
कृष्णतिलाः 6.2.3
कृष्णत्वम् 5.1.123
कृष्णपदी 5.4.139
कृष्णभूम 5.4.75
कृष्णवेण्णा 2.1.21
कृष्णशबलः 2.1.69
कृष्णसर्पः 2.1.56
कृष्णसारङ्गः 6.2.3
कृष्णसारङ्गः 2.1.69
कृष्णसुन्दरा 2.4.69
कृष्णा 4.1.40
कृष्णा गवां 2.2.10
कृष्णाजिनः 6.2.165
कृष्णाजिनः कृष्णसुन्दराः 2.4.68
कृष्णाजिनाः 2.4.69
कृष्णिमा 5.1.123, 6.4.161
कृष्णिष्ठः 6.4.161
कृष्णीयान् 6.4.161
कृष्णौतः 6.2.3
कृष्णोत्तरासङ्गः 2.2.23
कृष्णोराज्यै 2.3.62
कृष्णोस्याखरेष्ठः 6.3.20
क्लृप्तः 0.0.4,8.2.18
क्लृप्तवान् 0.0.4,8.2.18
क्लृ3प्तशिख 0.0.2
के 1.2.29,7.1.17, 7.2.103
केन 1.1.56
केन कारणेन 2.3.27
केनचित् 8.1.48
केन निमित्तेन 2.3.27
केन प्रयोजनेन 2.3.27
केन हेतुना वसति 2.3.27
केभ्यः 6.1.182
केरलः 4.1.175
केवला 4.1.30
केवलान्नम् 2.1.49
केवली 4.1.30
केशकः 5.2.66
केशग्राहं युद्ध्यन्ते 3.4.50
केशचणः 5.2.25
केशचुञ्चु 1.3.7
केशचूडः 2.2.24
केशनखकः 5.2.66
केशलूनी 4.1.52
केशवः 5.2.109, 7.3.101
केशवान् 5.2.109
केशश्मश्रू 2.2.31
केशसङ्घात 2.2.24
केशाकेशि 2.2.27, 5.4.127,6.3.137
केशिकः 5.2.109
केशी 5.2.109
केशेषु चमरीं 2.3.36
केशैः प्रसितः 2.3.44
केशैरुत्सुकः 2.3.44
केशैर्ग्राहम् 3.4.50
केशेषु प्रसितः 2.3.44
कैः 1.1.56
कैकयः 7.3.2
कैकसेयी 4.1.73
कैकेयी 4.1.178
कैटीरः 4.3.136
कैतवायनिः 4.1.154
कैदारकम् 4.2.40
कैदारिकम् 4.2.41
कैदार्यम् 4.2.40
कैदासायन 4.1.100
कैरविणी 4.2.51
कैलासगन्धमादने 2.4.7
कैशिकम् 4.2.48
कैशिनः 6.4.165
कैशिन्यः 4.1.151
कैशोरम् 5.1.129
कैश्यम् 4.2.48
को 8.1.48
कोकिलस्य 2.3.67
कोकिला 4.1.4
कोकिलाभिव्याहारी 6.2.80
कोकूयते 7.4.63
कोटर 6.3.117
कोटरा 8.4.4
कोटरादिः 6.3.117
कोटरावणम् 6.3.117, 8.4.4
कोटायते 3.1.17
कोण्डोपरथाः 5.3.116
को नाम 3.3.143
को नाम 3.3.145
कोप्यम् 3.1.98
कोम् 6.1.95
कोशातकी 4.1.41, 4.3.167
कोषितव्यम् 7.2.46
कोषिता 6.1.96, 7.2.9,7.2.46
कोषितुम् 7.2.9,7.2.46
कोषिषीष्ट पादः 3.1.90
कोषिष्यते पादः 3.1.90
कोष्ठागारिकः 4.4.70
कोष्णम् 2.2.18
कोष्णम् 6.3.107
कोऽसिचत् 6.1.86
कोष्ठा 6.1.96
कोऽस्मै 6.1.86
कोऽस्य 6.1.86
कौ 7.2.103
कौकिलः 4.1.120
कौक्कुटिकः 4.4.46
कौक्षः 4.2.96
कौक्षेयकोऽसि 4.2.96
कौक्षेयम् 4.3.56
कौचवार्यः 1.3.10
कौचवार्य्य 4.3.94
कौञ्जायनी 5.3.113
कौञ्जायन्यः 1.3.7, 5.3.113,4.1.98

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कौञ्जायनाः 6.1.164
कौञ्जिः 4.1.98, 4.1.162
कौटः 5.4.95
कौटजभारिक 5.1.50
कौटजिकः 5.1.50
कौटतक्षः 5.4.95
कौटतक्षा 5.4.95
कौटिलिकः 4.4.18
कौटिशिखी 4.2.141
कौडविकः 5.1.52, 5.1.57
कौडविकम् 5.1.19
कौण्डबृसी 5.3.114
कौण्डलः 5.2.103
कौण्डिनः 5.2.103
कौण्डिनाश्छा
कौण्डीबृसाः 5.3.114
कौण्डीबृस्यः 5.3.114
कौण्डीबृस्यौ 5.3.114
कौण्डोपरथीयः 5.3.116
कौण्डोपरथीयौ 5.3.116
कौतपः 5.2.103
कौतरिमातुल 6.2.132
कौतस्कुतः 6.4.144, 8.3.48
कौत्सकुशिकिका 5.1.133
कौथुमलौकाक्षाः 6.2.37
कौथुमाः 6.4.144
कौद्दालिकः 4.4.2
कौद्रवीणम् 5.2.1
कौनटिपुत्रः 6.2.132
कौनटिमातुलः 6.2.132
कौन्त्यः 4.1.171, 4.1.176
कौपिञ्जलः 4.3.132
कौपीनम् 5.2.20
कौबलम् 4.1.89
कौमारः 4.2.13
कौमारम् 5.1.129
कौमारी (भार्या) 4.2.13
कौमुदगन्धीपतिः 6.3.139
कौमुदगन्धीपुत्रः 6.3.139
कौमुदगन्धीब 6.1.13
कौमुदगन्ध्या 6.1.13, 4.1.78
कौमुदिकम् 4.2.80
कौमुदीगन्धी 6.1.13
कौमेदुरः 4.3.93
कौम्भकारिः 4.1.153
कौक्ष्मकार्यः 4.1.152
कौम्भाः 4.2.16
कौरवः 4.2.130
कौरवकः 4.2.130
कौरवकम् 4.2.130
कौरवी 4.1.19
कौव्य 4.1.151
कौरव्यः 2.4.58, 4.1.172, 4.1.176
कौरव्यायणिः 4.1.19, 4.1.151
कौरव्यो राजा 4.1.172
कौरुकात्यः 7.3.20
कौरुजङ्गलम् 7.3.25
कौरुजाङ्गलम् 7.3.25
कौरुपाञ्चालः 7.3.20
कौलः 4.2.96
कौलटिनेयः 4.1.127
कौलटेयः 4.1.127
कौलटेरः 4.1.127
कौलत्थम् 4.4.4
कौलत्थीनम् 5.2.1
कौलालः 5.4.36
कौलालक 4.3.118
कौलेयकः 4.1.140
कौलेयकःश्वा 4.2.96
कौल्माषिकः 4.4.103
कौल्माषी 5.2.83
कौवलम् 4.1.89, 6.1.158
कौशाम्बी नगरी 4.2.68
कौशाम्बीनिः 1.2.36
कौशिक ब्राह्मण 1.2.37
कौशिकिनः 4.2.66
कौशेयम् 4.3.42
कौषीतकिः 4.1.124
कौषीतकेयः 4.1.124
कौसल्यः 4.1.171
कौसल्या 4.1.74
कौसल्यायनिः 4.1.155
कौसुम्भम् 4.2.1
कौ स्तः 1.1.58
कौहडः पिता 2.4.58
कौहडिः पुत्रः 2.4.58
क्नूतम् 6.1.66
क्नूयिता 3.2.152
क्नूय्यते 6.1.66
क्नोपयति 1.1.4, 7.3.36,7.3.86
क्रथः 6.1.216
क्रन्त्वा 6.4.18
क्रमकः 4.2.61
क्रमकवार्तिकम् 2.4.5
क्रमते 1.3.42
(ऋक्षस्य) क्रमते 1.3.38
क्रमते यजुष्वस्य 1.3.38
क्रमित्वा 6.4.18
क्रमीम् 7.1.40
क्रयविक्रयिकः 4.4.13
क्रयाऽक्रयिका 2.1.60
क्रयिकः 4.4.13
क्रय्यो 6.1.82
क्रव्यात् 3.2.69
क्रव्यादः 3.2.69
क्रष्टव्या ग्रामं 2.3.71
क्रष्टा 7.2.10
क्रान्तः 3.2.188
क्रान्त्वा 6.4.18
क्रापयति 6.1.48
क्रामतः 7.3.76
क्रामति 1.3.42,3.1.70, 7.3.76
क्रामन्ति 7.3.76
क्राम्यति 3.1.70
क्रिमिणां 6.4.1
क्रियते 7.4.28
क्रियते 1.3.13
क्रियते कटः 3.1.66
क्रियते कटः स्वयमेव 3.1.67
क्रिया 3.3.100
क्रियात् 7.4.28,7.4.29
क्रियाप्रबन्धे 3.3.132
क्रियाम् 3.3.110
क्रियासुः 7.2.79
क्रियास्ताम् 7.2.79
क्रियेत 6.4.46
क्रीणाति 3.1.81, 6.4.101
क्रीणीहि 3.1.83
क्रुङ् 3.2.59
क्रुञ्चकीयम् 4.2.91
क्रुञ्चकीया 6.4.153
क्रुञ्चा 6.1.182
क्रुञ्चा 4.1.4
क्रेयम् 6.1.82
क्रोत्स्यति 8.2.37
क्रोद्धा 7.2.10
क्रोधनः 3.2.151
क्रोशं कुटिला नदी 2.3.5
क्रोशं पर्वतः 2.3.5
क्रोशतः 2.3.38
क्रोशति 2.3.38
क्रोशमधीते 2.3.5
क्रोशमधीतोऽनुथाकः 2.3.6
क्रोशशतात् 2.3.5
क्रोशस्यैकदेशे 2.3.5
क्रोशेनाऽनुवाकोऽधीतः 2.3.6
क्रोष्टरि 7.1.97
क्रोष्टवे 7.1.97
क्रोष्टा 3.2.147, 7.1.95,7.2.10
क्रोष्टारः 7.1.95
क्रोष्टारम् 7.1.95
क्रोष्टारौ 7.1.95
क्रोष्टुः 7.1.97
क्रोष्टुना 7.1.97
क्रोष्टुभिः 7.1.97
क्रोष्टुभ्याम् 7.1.97
क्रोष्टून् 7.1.95,7.1.97
क्रोष्टूनाम् 7.1.97
क्रोष्टोः 7.1.97
क्रोष्टौ 7.1.97
क्रोष्ट्रा 7.1.97
क्रोष्ट्री 4.1.41,7.1.96
क्रोष्ट्रीभिः 7.1.96
क्रोष्ट्रीभ्याम् 7.1.96
क्रोष्ट्रे 7.1.97
क्रोष्ट्रोः 7.1.97
क्रोष्ट्वोः 7.1.97
क्रौञ्चः 4.1.120
क्रौञ्चं साम 4.2.7
क्रौञ्चकाः 6.4.153
क्रौञ्चबन्धं बध्नाति 3.4.42
क्रौञ्जायनाः 5.3.113
क्रौञ्जायन्यौ 5.3.113
क्रौड्या 4.1.80
क्रौशशतिकः 5.1.74
क्रौशशतिको भिक्षुः 5.1.74
क्रौष्टकीयः 5.3.116
क्लमी 3.2.141
क्लामति 3.1.70, 7.3.75,7.3.74
क्लिशितः 7.2.50
क्लिशितवान् 7.2.50
क्लिशित्वा 1.2.7, 7.2.50
क्लिष्टः 7.2.50
क्लिष्टवान् 7.2.50
क्लिष्टाक्लिशि 2.1.60
क्लिष्ट्वा 7.2.50
क्लीबते 3.1.12

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्लीबायते 3.1.11
क्लेशकः 3.2.146
क्लेशाऽपहः 3.2.50
क्व 1.2.31,5.3.12, 5.3.13
क्व गमिष्यसि 7.2.105
क्वणः 3.3.65
क्वत्यः 4.2.104
क्वसु 1.4.99
क्वाणः 3.3.65
क्वत्यः 4.2.104
क्षणेपाकः 7.3.53
क्षणोति 3.1.79
क्षतः 6.4.37
क्षतवान् 6.4.37
क्षत्ता 3.2.135
क्षत्ता 6.4.11
क्षत्तारः 6.4.11
क्षत्तारौ 6.4.11
क्षत्तृभ्यः 3.2.135
क्षत्रविद्या 4.3.73
क्षत्रियः 4.1.137,7.1.2
क्षत्रियका 7.3.46
क्षत्रियजम् 3.2.101
क्षत्रियजाती 5.4.9
क्षत्रियत्वम् 5.1.132
क्षत्रियपूजकः 6.2.151
क्षत्रिययाजकः 2.2.9
क्षत्रिययाजक 6.2.151
क्षत्रियया 8.4.11
क्षत्रियराज्यम् 6.2.130
क्षत्रियवत् 5.1.117
क्षत्रियशालम् 6.2.123
क्षत्रिया 4.1.49
क्षत्रिया 4.1.63
क्षत्रियाणि 4.1.49
क्षत्रियापुत्र 6.1.13
क्षत्रियिका 7.3.46
क्षत्रियी 4.1.49
क्षत्रियो मनुष्याणां 2.2.10
क्षत्रियो वदति 1.3.48
क्षमति 7.2.34
क्षमा 1.2.20
क्षमिति 7.2.34
क्षयः 3.3.56
क्षर्यः 6.1.201
क्षयी 3.2.157
क्षयो वर्तते 6.1.202
क्षय्यः 6.1.81
क्षरजः 6.3.16
क्षरति 7.2.34
क्षरिति 7.2.34
क्षरेजः 6.3.16
क्षवः 3.3.25
क्षवथुः 3.3.89
क्षविता 7.2.10
क्षात्रविद्यः 4.2.60
क्षात्त्रिः 4.1.138
क्षान्तः 3.2.188
क्षामः 8.2.53
क्षामवान् 8.2.53
क्षामिमान् 8.2.1
क्षाम्यति 7.3.74
क्षिणेर्म 5.4.126
क्षिण्णः 3.2.187
क्षितः 6.4.61
क्षितकः 6.4.61
क्षितम् 6.4.60
क्षितायुः 6.4.61
क्षिपका 7.3.45
क्षिपा 3.3.104
क्षिप्नुः 3.2.140
क्षिया 3.3.104
क्षीणः 6.4.61
क्षीणकः 6.4.61
क्षीणस्तपस्वी 8.2.46
क्षीणाः 8.2.46
क्षीणायुः 6.4.61
क्षीणोऽयं 8.2.46
क्षीबः 8.2.55
क्षीबिकः 8.2.3
क्षीरगन्धिः 5.4.136
क्षीरनिधिं मथ्नाति 1.4.51
क्षीरपाणः 8.4.10
क्षीरपाणम् 8.4.10
क्षीरपाणाः 8.4.9
क्षीरपाणि 8.4.12
क्षीपरानः 8.4.10
क्षीरपानम् 8.3.10
क्षीरपा ब्राह्मणी 3.2.8
क्षीरपायिणः 3.2.81
क्षीरपेण 8.4.12
क्षीरम् 8.4.48
क्षीरस्यति 7.1.51
क्षीरहोती 6.2.81
क्षीरिणः 5.2.94
क्षीरीयति 7.1.51
क्षीरोदः 6.3.57
क्षीरौदनः 2.1.34
क्षुद्रकाः 5.3.114
क्षुधितः 7.2.52
क्षुधितवान् 7.2.52
क्षुधित्वा 7.2.52
क्षुब्धः (मन्थः) 7.2.18
क्षुभितम् 7.2.18
क्षुभ्नन्ति 8.4.39
क्षुभ्नाति 8.4.39
क्षुभ्नाति 8.4.45
क्षुभ्नीतः 8.4.39
क्षुल्लकवैश्वदेवम् 6.2.38
क्षेत्रकरः 3.2.21
क्षेत्रियं विषम् 5.2.92
क्षेत्रियः 5.2.92
क्षेत्रियाणि तृणानि 5.2.92
क्षेत्रियो व्याधि 5.2.92
क्षेत्रे यवेभ्यो 1.4.27
क्षेत्रे वदते 1.3.47
क्षेत्रे विवदन्ते 1.3.47
क्षेपिमा 6.4.156
क्षेपिष्ठः 6.4.156
क्षेपीयान् 6.4.156
क्षेप्ता 7.2.10
क्षेमकारः 3.2.43
क्षेमङ्करः 3.2.44
क्षेमवृद्धिन् 4.1.96, 4.2.138
क्षेम्यः 5.4.25
क्षेयम् 6.1.81
क्षैरेयी यवागूः 4.2.20
क्षोत्ता 7.2.10
क्षोदिमा 6.4.156
क्षोदिष्ठः 6.4.156
क्षोदीयान् 6.4.156
क्षोद्धा 7.2.10
क्षौद्रकमालव 4.2.45
क्षौद्रकमालवी 4.2.45
क्षौद्रकी 5.3.114
क्षौद्रक्यः 5.3.114
क्षौद्रक्यौ 5.3.114
क्षौद्रम् 4.3.119
क्ष्णविता 7.2.10
क्ष्मापयति 7.3.36
क्ष्मायिता 3.2.159
क्ष्विण्णः 1.3.5, 3.2.187,7.2.15
क्ष्विण्णवान् 7.2.15
कृष्णोरम् 8.4.47

ख

खट्व ऋश्य 6.1.128
खट्वका 7.3.48
खट्वया 4.1.2,7.3.105
खट्वयोः 4.1.2, 7.3.105
खट्वच्छति 6.1.91
खट्वर्श्य 6.1.87
खट्वल्कारः 6.1.87
खट्वा 4.1.2, 4.1.4 4.1.40
खट्वाः 6.4.140
खट्वाका 7.3.49
खट्वाऽग्रम् 1.1.9
खट्वातरा 4.1.1
खट्वानाम् 4.1.2, 7.1.54
खट्वापादः 6.3.61
खट्वाप्लुतः 2.1.26
खट्वाभार्यः 6.3.34
खट्वाभिः 1.1.69, 6.1.85,7.1.9
खट्वाम् आरूढः 2.1.26
खट्वायाः 7.3.113
खट्वायाम् 7.3.116
खट्वायै 4.1.2, 7.3.113
खट्वारूढः 2.1.26
खट्वारूढः 6.2.147
खट्वावर्ती 6.1.219
खट्वावान् 5.2.115, 8.2.9
खट्वावृन्दारिका 6.3..42
खट्वासु 4.1.2
खट्विका 7.3.48
खट्वीकरोति 7.4.32
खट्वीभवति 7.4.32
खट्वीयति 7.4.33
खट्वीस्यात् 7.4.32
खट्वे 6.1.104, 7.1.18,7.3.106,
खट्वे इति 6.1.25
खट्वेन्द्रः 6.1.84, 6.1.87,6.1.127, 6.1.128
खट्वेहते 6.1.87
खट्वैडका 6.1.87
खट्वैतिकायनः 6.1.88
खट्वोदकम् 6.1.87
खट्वौदनः 6.1.88
खट्वौपगवः 6.1.88
खण्डिका 4.2.45
खदिकः 5.2.116
खदिरवणम् 8.4.5
खदिरवती 6.1.220
खदिरवती 6.3.119
खदिरसारः 3.3.17
खनकः 3.1.145

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

खनकी 3.1.145, 4.1.41
खनत 7.1.44
खनतात् 7.1.44
खनति 7.1.2
खनति गोत्रं 8.1.27
खनित्रम् 3.2.184
खन्यते 6.4.43
खन्या 3.1.123
खरः 5.2.107
खरकण्ठः 6.2.114
खरकर्णः 6.2.113
खरकुटी 5.3.98
खरंकुटी 6.1.204
खरटखर 5.4.57
खरणसः 5.4.118, 8.4.3
खरणाः 5.4.118
खरंनादी 6.2.80
खरमुखः 2.2.24
खरयुगाणि 8.4.13
खरयुगेण 8.4.13
खरशालः 4.3.35
खरीवृषः 6.2.144
खरुरियम् 4.1.44
खर्जः 7.3.59
खर्ज्यम् 7.3.59
खलतिः 3.4.74
खलतिकं 1.2.51
खलपूः 1.4.3,8.2.4
खलप्वः 6.4.83
खलप्वां 6.1.175
खलप्वाशा 8.2.4
खलप्वे 1.4.3
खलप्वें 6.1.175
खलप्वौ 6.4.83
खलिनी 4.2.51
खलु कृत्वा 2.2.22, 3.4.18
खलेबुसम् 2.1.17
खल्यम् 5.1.7
खल्या 4.2.49
खवात् 5.2.115
खशयः 3.2.15,6.3.18
खाट् करोति 1.4.62
खाट् कृतम् 1.4.62
खाट् कृत्य 1.4.62
खाणि 7.3.89
खाण्डकः 4.2.127
खाण्डिकम् 4.2.45
खाण्डिकीय 4.3.102
खातः 6.4.42
खातवान् 6.4.42
खातिः 6.4.42
खादकः 3.2.146
खादतमोदता 2.1.72
खादतवमता 2.1.72
खादताचमता 2.1.72
खादयति 1.4.52
खादिरम् 4.3.140
खादिरेष 6.3.39
खान्यः 3.1.123
खायते 6.4.43
खायतें 6.1.195
खारपायणः 8.4.3
खारपायणीयाः 4.1.89
खारशतिक 5.1.57
खारिकम् 4.4.26
खारिन्धमः 3.2.30
खारिन्धयः 3.2.30
खारिम्प चः (कटाहः) 3.2.33
खारिम्पचः 3.2.33
खारी 2.3.46
खारीकः 5.1.52,5.1.57
खारीकम् 5.1.33, 5.1.45
खार्यां द्रोणः 2.3.9
खिन्दति 7.1.59
खुरणसः 5.4.118
खुरणाः 5.4.118
खेत्ता 7.2.10
खेदयति 6.1.51
खेयम् 1.1.51
खेयम् 3.1.111
खेशयः 6.3.18
ख्यातः 8.2.57
ख्यातवान् 8.2.57
ख्खीरम् 8.4.48

ग

गङ्गापारम् 2.1.18
गङ्गामध्यम् 2.1.18
गङ्गायनिः 4.1.112
गङ्गायमुने 2.4.7
गङ्गायां घोषः 1.4.42
गङ्गायाः पारं 2.1.18
गङ्गाया मध्यम् 2.1.18
गङ्गाशोणम् 2.4.7
गच्छ 6.4.105,7.1.35
गच्छति 6.1.73,7.3.77
गच्छति ग्रामं 3.4.69
गच्छतु 7.1.35
गजता 4.2.43
गजवाजम् 2.2.31
गडुकण्डः 2.2.35
गडुमान् 5.2.97
गडुलः 5.2.97
गडुशिराः 2.2.35
गणकः 1.1.23,5.1.22
गणकी 4.1.48
गणकृत्वः 1.1.23
गणतिथः 5.2.52
गणधा 1.1.23
गणना 3.3.110
गणयति गणं 1.3.67
गणशः 1.1.23
गणिः 3.3.110
गणितम् 6.4.52
गण्डयन्तः 6.4.55
गण्यः 4.4.84
गतं देवदत्तेन 3.4.72
गतगतः 8.1.10
गतगता 8.1.10
गतप्रत्यागतम् 2.1.60
गतार्थः 2.2.37
गतिः 6.4.37
गतो देवदत्तेन ग्रामः 3.4.72
गतो देवदत्तो ग्रामम् 3.4.72
गत्वरः 3.2.164
गत्वरी 3.2.164
गदिका 4.3.93
गद्यम् 3.1.100
गन्तवे 3.49
गन्ता 6.4.15,7.2.10
गन्तास्मः 7.2.58
गन्तास्मि 7.2.58
गन्तास्वः 7.2.58
गन्धार्हा 3.2.12
गभीर आँ उग्र 6.1.126
गभीर आँ उग्रपुत्रे 1.1.8
गमः 3.3.58
गमंनकनि 6.2.25
गमंनकनी 6.2.25
गमनकृच्छ्रम् 6.2.6
गमंनचिरम् 6.2.6
गमंननेदी 6.2.21
गमंनपायि 6.2.25
गमंनपायी 6.2.25
गमंनप्रिय 6.2.15
गमनम् 6.4.98
गमनशोभ 6.2.25
गमुनश्रेयः 6.2.25
गमंनश्रेय 6.2.25
गमंनश्रेष्ठ 6.2.25
गमंनसुख 6.2.15
गमनाकुञ्चनप्रसारणानि 2.4.6
गमंनाबाध 6.2.21
गमंनावम 6.2.25
गमयत 7.1.44
गमयतः 2.4.46
गमयतात् 7.1.44
गमयति 1.4.52,2.4.46
गमयन्ति 2.4.46
गमिष्यति 7.2.58
गमी 3.3.2
गमी (श्वो ग्रामम्) 3.3.3
गमेम 3.1.86
गम्यते 1.3.78,6.4.15, 6.4.37,6.4.98, 8.3.23,8.3.24
गम्यते ग्रामः 3.1.66
गम्यते ग्रामो 3.4.69
गर्यः 6.1.203
गरः 3.3.29,3.3.57, 6.1.160,7.4.41, 8.2.21
गरडिति 6.1.98
गरिमा 6.4.157
गरिष्ठः 5.3.55,6.4.157
गरीयान् 6.4.157
गरुडः 5.3.100
गर्गकुलम् 2.4.64
गर्गगार्ग्यायणौ 1.2.65
गर्गत्रिरात्रः 6.2.81
गुर्गत्रिरात्रः 6.2.97
गर्गभगिनी 8.4.11
गर्गमयम् 4.1.89
गर्गरूप्यम् 4.1.89
गर्गवत्साः 6.2.37
गर्गाः 1.1.63, 2.4.64,6.1.197
गर्गिभार्यः 6.3.34
गर्गीयम् 4.1.89
गर्गेण 8.4.2
गर्जः 7.3.59
गर्ज्यम् 7.3.59
गर्त्तशयः 3.2.15
गर्त्यः 5.1.67
गर्द्धनः 3.2.150
गर्दभकः 5.3.70, 5.3.74,5.3.96, 5.3.98

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गर्दभति 3.1.11
गर्दभदन् 5.4.145
गर्दभदन्तः 5.4.145
गर्दभाण्डः 5.2.60
गर्दभाण्डीयः 5.2.60
गर्दभांश्च कालयति 8.1.59
गर्दभान्वा 8.1.59
गर्दभायते 3.1.11
गर्दभोच्चारी 6.2.80
गर्धप् 8.2.37
गर्धयति श्वानम् 1.3.69
गर्धयते माणवकम् 1.3.69
गर्भिणी 2.1.70,4.2.38
गर्भिभार्यः 6.3.34
गर्भेण 8.4.2
गर्भे तृप्तः 2.1.48
गलः 7.4.41,8.2.21
गलकोत्कृत्ती 4.1.52
गलूलः 5.2.97
गलेचोपकः 3.3.113
गलोगलः 8.2.3
गवयी 4.1.63
गवां 6.1.182
गवां 8.1.56
गवां कृष्णा सम्पन्न 2.3.41
गवां दायादः 2.3.39
गवां प्रतिभूः 2.3.39
गवां प्रसूतः 2.3.39
गवां साक्षी 2.3.39
गवां स्वामी 2.3.39
गवाक्षः 5.4.76, 6.1.123,7.4.41
गवाग्रः 6.1.123
गवाग्रम् 6.1.123
गवाजिनम् 6.1.123
गवादिनी 6.1.219
गवाध्यक्षः 6.2.67
गवाध्यक्षः 6.2.67
गवाम् 7.1.57
गवामधिपतिः 2.3.39
गवामीश्वरः 2.3.39
गवामुपसर 3.3.71
गवाविकम् 2.4.11
गवाश्वम् 2.4.11
गवित्ययम् 1.1.16
गविष्ठिरः 6.3.9,8.3.95
गवीधुमतः 2.3.28
गवुष्ट्रम् 6.1.123
गर्वे 6.1.182
गवेन्द्रः 6.1.124
गवेन्द्रयज्ञ 6.1.124
गवैडकम् 2.4.11
गवोदनम् 6.1.123
गवौदनम् 6.1.123
गवोष्ट्रम् 6.1.123
गव्यः 5.1.39
गव्यम् 4.1.85, 4.3.145,4.3.160, 5.1.2,5.1.5, 5.1.19
गव्या 4.2.50
गव्यूतिः 6.1.79
गहनायते 3.1.17
गहीयः 4.2.138
गाः 6.1.93,6.1.103
गां दीव्यध्वमिति 2.3.60
गां दोग्धि 1.4.51
गां मे 8.2.99
गाङ्गः 4.1.112
गाङ्गामहिकम् 5.1.109
गाङ्गायनि 4.1.112
गाङ्गेऽनूपे 8.2.3
गाङ्गेयः 4.1.112, 4.1.123
गाणिक्यम् 4.2.40
गाणितः 6.4.165
गाण्डिवम् 5.2.110
गाण्डीवधन्वा 5.4.132
गाण्डीवम् 5.2.110
गात्रम् 2.4.54
गाथकः 3.1.146
गाथाकारः 3.2.23
गाथिका 3.1.146
गाथिनः 6.4.165
गान्धारः 4.1.169, 4.3.93
गान्धारि वाणि 6.2.13
गान्धारिसदे 6.2.23
गान्धारिसनी 6.2.23
गान्धारिसप्त 6.2.12
गान्धारिसम 6.2.23
गान्धारिसवि 6.2.23
गान्धारिसवे 6.2.23
गान्धारो 4.1.169
गाम् 6.1.93
गामस्य तद 2.3.60
गामो 8.1.20
गाम्भीर्यम् 4.3.58
गाम्मन्यः 6.3.68
गायनः 3.1.147
गायनी 3.1.147
गारेधकायनिः 4.1.158
गारेधिः 4.1.158
गार्गः 4.3.127
गार्गकम् 6.4.151
गार्गिः 4.1.93,4.1.162
गार्गिकः 4.1.147
गार्गिकयाऽत्या कुरुते 5.1.134
गार्गिकया श्लाघते 5.1.134
गार्गिकाम् अवेतः 5.1.134
गार्गिकुलम् 1.2.49
गार्गित्वम् 1.2.49
गार्गी 4.1.16,4.1.17, 6.4.150
गार्गीपुत्रः 6.2.132
गार्गीपुत्रः 6.3.61
गार्गीपुत्रकायणिः 4.1.159
गार्गीपुत्रायणिः 4.1.159
गार्गीपुत्रिः 4.1.159
गार्गीप्रियः 6.2.109
गार्गीबन्धुः 6.2.109
गार्गीभूतः 6.4.152
गार्गीमात 7.3.107
गार्गीयः 4.2.114,7.1.2
गार्गीयति 6.4.152
गार्गीयते 6.4.152
गार्गीयाः 4.1.89, 4.1.91
गार्गेयो माणवकः 4.1.147
गार्गोऽङ्क 4.3.127
गार्गो जाल्मः 4.1.147
गार्ग्यः 1.4.18,2.4.64, 4.1.93,4.1.105, 4.1.151,4.1.162, 4.1.165,4.1.166, 7.2.117,
गार्ग्यैः 6.1.196, 8.4.67
गार्ग्युः 8.4.67
गार्ग्यः स्त्रियः 2.4.64
गार्ग्यकुलम् 2.4.64
गार्ग्यगर्गौ 1.2.65
गार्ग्यत्वम् 5.1.134
गार्ग्यम् 2.4.64
गार्ग्यवात्स्यायनौ 1.2.65
गार्ग्युस्तत्र 8.4.67
गार्ग्यायणीयाः 4.1.91
गार्ग्यायणः 4.1.93, 4.1.101,4.1.163, 4.1.165, 4.1.167, 6.4.151
गार्ग्यायणो जाल्मः 4.1.167
गार्ग्यो जाल्मः 4.1.147, 4.1.167
गार्ग्यायणी 4.1.17
गार्ग्योऽस्मि 2.3.18
गार्ग्यौ 1.2.65,1.2.66
गार्दभम् 4.3.123
गार्दभरथ 4.3.122
गार्दभरथिकः 6.2.155
गार्भिणम् 4.2.38
गार्मुतम् 4.3.151
गार्ष्टेयः 4.1.136
गार्हपत्यः 4.4.90
गार्हपत्यम् 5.1.128
गावः 1.2.73,7.1.90, 7.2.115
गावौ 7.1.90,7.2.115
गाहकिकूलम् 6.2.129
गिरः 8.2.21,8.2.76
गिरति 1.1.51,1.3.51, 7.1.100
गिरिणदी 8.4.10
गिरिणा 6.1.168,8.4.2
गिरिनगरम् 8.4.39
गिरिनदी 8.4.10
गिरिशः 3.2.15
गिरीन् 8.4.37
गिरौ 8.2.21,8.2.76
गिर्योः 1.1.58,8.2.78
गिलः 3.2.6
गिलगिलः 6.3.70
गीः 8.2.76
गीः काम्यति 8.3.37
गीः कारः 8.3.45
गीः पतिः 8.2.70
गीयते 6.4.66
गीर्णिः 8.2.44
गीर्ण्णिः 3.3.93
गीर्प्पतिः 8.2.70
गीर्वान् 8.2.15
गीर्षु 8.3.16,8.3.57
गीस्तरा 8.3.101
गुग्गलूः 4.1.71
गुडकल्पा द्राक्षा 5.4.14
गुडधाना 2.1.35
गुडधानाः 6.2.154
गुडपलंलम् 6.2.128
गुडपृथुका 2.1.35
गुडप्रियः 2.2.35

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गुडमिश्रः 2.1.31
गुड़ुमिश्राः 6.2.153
गुडमैरेयः 6.2.70
गुडलिट् 8.2.1,8.2.32
गुडलिण्मान् 8.2.1
गुडसंम्मिश्राः 6.2.154
गुडापूपिका 5.2.82
गुडोदकम् 6.2.96
गुडोदकम् 6.2.96
गुणग्रामः 4.2.37
गुणवृद्धी 2.2.31
गुण्या ब्राह्मणाः 5.2.120
गुधितम् 1.2.21
गुधित्वा 1.2.7
गुप्तः 6.1.205
गुप्तकः 5.3.78
गुप्तातरा 6.3.43
गुप्तापाशा 6.3.38
गुप्ताभार्य 6.3.38
गुप्तामानिनी 6.3.38
गुप्तायते 6.3.38
गुप्तार्मम् 6.2.90
गुप्तिः 3.1.31
गुप्तिबन्धः 6.3.13
गुफति 7.1.59
गुफित्वा 1.2.23
गुम्फति 7.1.59
गुम्फित्वा 1.2.23
गुरुं शुश्रूषते 1.3.57
गुरुणा 8.4.2
गुरुतल्पगः 3.2.48
गुरुलाघव 4.3.115
गुरुवचन 1.3.53
गुरोः स्नापनं 3.3.116
गुलुगुधा 1.4.61
गुहः 6.1.203
गुहा 3.3.104
गुह्यम् 3.1.109
गूढः 7.2.15
गूढवान् 7.2.15
गूर्णम् 8.2.61
गूर्तम् 8.2.61
गूहो वर्त्तते 6.4.89
गृणाती 7.3.80
गृध्नुः 3.1.40
गृभाय 3.1.84
गृहपति 6.2.18
गृहप्रवेशनीयम् 5.1.111
गृहम् 3.1.144
गृहमेधीयम् 4.2.32
गृहमेध्यम् 4.2.32
गृहयाय्यः 6.4.55
गृहयालुः 3.2.158, 6.4.55
गृहाः 1.2.53
गृहाः दाराः 3.1.144
गृहाणि 3.1.144
गृहीतः 6.1.16
गृहीतम् 1.1.45, 6.1.108
गृहीतवान् 6.1.16
गृहीत्वा 1.2.8
गृह्णाति 6.1.16
गृह्यका इमे 3.1.119
गृह्यान्तै 3.4.8,3.4.96
गेयम् 1.1.51,3.1.97
गेयात् 6.4.67
गेयानि माणवकेन 3.4.68
गेयो माणवकः 2.3.71, 3.4.68
गेहमनु प्रपातमनु 3.4.56
गेहमनुप्रपादमनुप्रपाद 3.1.56
गेहमनु प्रविश्य भुङ्क्ते 3.4.56
गेहमवस्कन्दमव 3.4.56
गेहं गेहमवस्कन्दमास्ते 3.4.56
गेहम् अनुप्रवेश 3.4.56
गेहं गेहमनुप्रपात 3.4.56
गेहं गेहमनुप्रपाद 3.4.56
गेहं गेहमनुप्रवेशमास्ते 3.4.56
गेहं प्रविशति 1.4.49
गेहानुप्रपातमास्ते 3.4.56
गेहानुप्रपादमास्ते 3.4.56
गेहानुप्रवेशमास्ते 3.4.56
गेहावस्कन्दमास्ते 3.4.56
गेहे उतिष्ठते 1.3.24
गेहे क्ष्वेडी 2.1.48
गेहे गार्ग्यः 2.1.2
गेहे दाही 2.1.48
गेहे दृप्तः 2.1.48
गेहे धृष्टः 2.1.48
गेहे नर्दी 2.1.48
गेहे मेही 2.1.48
गेहे वदते 1.3.47
गेहे विवदन्ते 1.3.47
गेहे विजिती 2.1.48
गेहे व्याडः 2.1.48
गेहे शूरः 2.1.48
गैरिमित्रः 4.3.87
गैरेयम् 4.2.97
गो अग्रम् 6.1.122
गो अश्वेभ्यः 6.1.122
गोकर्णः 6.2.113
गोका 7.3.44,7.4.13
गोकुञ्जरः 2.1.62
गोक्रीतः 6.2.151
गोगर्भिणी 2.1.71
गोगृष्टिः 2.1.65
गोगोष्ठम् 5.2.29
गोऽग्रम् 6.1.122, 6.1.123
गोग्रीवः 6.2.114
गोघ्नः 3.4.73
गोचरः 3.3.119
गोजङ्घः 6.2.114
गोजाः 1.1.69,1.1.70, 3.2.67,6.4.41
गोऽजिनम् 6.1.123
गोणा 4.1.42
गोणी 4.1.42
गोणीतरी 5.3.90
गोतमाः 2.4.65
गोता 5.1.119
गोत्रा 4.2.51
गोत्वम् 5.1.119
गोदः 3.1.94,3.2.3, 6.4.64
गोदानिकः 5.1.94
गोदायो व्रजति 3.3.12
गोदोहनी 3.3.117
गोदौ ग्रामः 1.2.52
गोदौ (रमणीयौ) 1.2.52
गोधा 3.3.104
गोधाकालका 2.3.62
गोधापदी 5.4.139
गोधुक् 3.2.61,8.2.37
गोधेनुः 2.1.65
गोनर्दीयः 1.1.75
गोनसः 5.4.118
गोनागः 2.1.62
गोनाम् 7.1.57, 6.3.114
गोपदम् 6..1.145
गोपदी 5.4.139
गोपायति 3.1.5, 3.1.28,6.1.158
गोपायति 6.1.158, 6.1.162
गोपाया 3.1.31
गोपायिता 3.1.31
गोपालः 6.2.78
गोपालका 5.3.114
गोपालधानी पूलासम् 2.2.31
गोपालवा 5.3.114
गोपालसंभम् 6.2.98
गोपालिका 4.1.48
गोपिता 3.1.31
गोपिता 7.2.44
गोपृष्ठः 6.2.114
गोपोषम् 1.1.68, 3.4.40
गोप्ता 3.1.31,7.2.44
गोप्यम् 3.1.98
गोप्रकाण्डम् 2.1.66
गोफित्वा 1.2.23
गोबल्लव 6.2.66
गोबष्कयणी 2.1.65
गोबाली 4.1.64
गोभिरक्षा 7.3.97, 8.2.24
गोभिर्वपावान् 2.1.30
गोभृत् 4.2.75
गोभ्याम् 6.1.79, 6.1.182
गोभ्यो हितम् 2.3.13
गोमचर्च्चिका 2.1.66
गोमंणिन्दः 6.2.66
गोमतल्लिका 2.1.66
गोमती 4.2.110
गोमत्प्रियः 7.2.98
गोमत्यति 7.1.70
(हे) गोमन् 6.4.14
गोमयम् 4.1.85, 4.3.145
गोमयाद् वृश्चिको 1.4.30
गोमहिषम् 2.4.12
गोमहिषाः 2.4.12
गोमान् 5.2.94,6.4.14, 7.1.70,8.2.23
गोमान् आसीत् 3.4.1
गोमान् भविता 3.4.1
गोमी 5.2.114
गोमुखः 6.2.168
गोयानम् 6.1.79
गोयूति 6.1.79
गोरक्षः 6.2.78
गोरक्षितम् 2.1.35, 6.2.45
गोरूप्यम् 4.1.85
गोलंवणम् 6.2.4

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गोवशा 2.1.65
गोवाणिजः 6.2.13
गोवाली 4.1.64
गोविट् 6.4.19
गोविन्दः 3.1.138
गोवृन्दारकः 2.1.62
गोवृषः 6.2.144
गोवेहत् 2.1.65
गोशतिकः 5.2.118
गोशते 5.2.46
गोशालम् 2.4.25
गोशालः 4.3.35
गोशाला 2.4.25
गोशृङ्गः 6.2.115
गोऽश्वम् 2.4.11
गोऽश्वाः 6.1.122
गोऽश्वौ 2.4.11
गोषदकः 5.2.62
गोषा 6.4.41
गोषाः 3.2.67,8.3.108
गोषु कृष्णा 2.3.41
गोषु दायादः 2.3.39
गोषु दुग्धास्वागतः 2.3.37
गोषु दुह्यमानासु 2.3.37
गोषु प्रतिभू 2.3.39
गोषु प्रसूतः 2.3.39
गोषु साक्षी 2.3.39
गोषु स्वामी 2.3.39
गोष्टोमम् 8.3.105
गोष्ठः 8.3.97
गोष्ठश्वः 5.4.77
गोष्ठी 4.2.110
गोष्ठे क्ष्वेडी 2.1.48
गोष्ठे पटु 2.1.48
गोष्ठे पण्डित 2.1.48
गोष्ठे प्रगल्भ 2.1.48
गोष्ठे शूर 2.1.48
गोष्ठश्वः 5.4.77
गोष्ठो वर्त्तते 5.2.18
गोष्पदपूरम् 3.4.32
गोष्पदपूरं 6.1.145
गोष्पदप्रम् 3.4.32
गोष्पदमात्र 6.1.145
गोष्पदो देश 6.1.145
गोष्वधिपतिः 2.3.39
गोष्वीश्वरः 2.3.39
गोसङ्ख्यः 3.2.7, 6.2.66
गोसनिं 8.3.110
गोसनिम् 3.2.27, 8.3.108
गोसन्दायः 3.2.3,3.2.6
गोसहस्रिक 5.2.118
गोसादः 6.2.41
गोसादिः 6.2.41
गोसारथिः 6.2.41
गोसुखम् 2.1.35
गोस्तोमम् 8.3.105
गोस्थानः 4.3.35
गोस्थानम् 5.4.10
गोस्थानम् 6.2.151
गोस्यदः 6.4.28
गोस्वामी 6.2.17
गोहितम् 1.1.62, 2.1.35
गोहितम् 6.2.45
गोह्यम् 3.1.109
(हे) गौः 7.1.90
गौः 7.2.115
गौः पञ्च 4.1.29
गौकक्षाः 4.2.111
गौकक्षाः दण्ड 4.3.130
गौकक्षा अन्ते 4.3.130
गौकक्ष्या 4.1.74
गौगुलवी 4.1.73
गौडपुरम् 6.2.100
गौड़भृत्यपुरम् 6.2.100
गौडिकः 4.4.103
गौणमुख्य 4.3.88
गौतम ब्रुवाण 1.2.37
गौतमार्द्धिकम् 4.3.4
गौतमी 4.1.73
गौदानिकः 5.1.94
गौधरः 4.1.129
गौधारः 4.1.130
गौधूमः 4.3.136
गौधेनुक 4.2.45
गौधेयः 4.1.129
गौधेरः 1.1.60, 4.1.129,6.1.66
गौपवनाः 2.4.67
गौपालपशुपालिका 5.1.132
गौपालिशालङ्कायनाः 2.4.9
गौपुच्छिकः 4.4.6
गौपुच्छिकम् 5.1.19
गौपेयः 4.1.121
गौप्तः 4.2.74
गौमताः 1.1.75
गौरमुखः 6.2.167
गौरमुखा 4.1.58
गौरसक्थः 6.2.198
गौरावस्कन्दिह 1.2.37
गौरिमत् 4.1.73
गौरिमित्रः 4.2.56, 4.3.87
गौरिषक्थः 8.3.98
गौरी 1.2.27,1.4.3, 4.1.2,4.1.41, 6.4.148
गौरीं च 6.1.107
गौरीणाम् 7.1.54
गौरी ब्राह्मणितरा 1.4.14
गौरीम् 6.1.107
गौरुत्तल्पिकः 4.4.1
गौर्यं च 6.1.107
गौर्याम् 7.3.116
गौर्वाहिकः 8.1.12
गौलक्षणिकः 4.2.60
गौल्मिकः 4.4.50, 4.4.69
गौल्मिकम् 4.4.47
गौशकटिकः 5.2.118
गौशतिकः 5.2.118
गौष्ठी 4.2.110
गौष्ठीनः 5.2.18
गौसहस्रिकः 5.2.118
ग्रथित्वा 1.2.23
ग्रथ्नाति 3.1.89
ग्रन्थित्वा 1.2.23
ग्रन्थीते श्लोक 3.1.89
ग्रभीता 8.2.35
ग्रसितः 7.2.34
ग्रस्तम् 7.2.34
ग्रहः 3.1.143, 3.3.58,7.4.41
ग्रहं: 6.1.203
ग्रहः पादस्य 3.3.70
ग्रहिषीष्ट 6.4.62
ग्रहीतव्यम् 7.2.37
ग्रहीता 7.2.37
ग्रहीतुम् 7.2.37
ग्रहीष्यते 6.4.62
ग्रामं गच्छति 1.4.49, 2.3.12
ग्रामं गच्छन् 1.4.50
ग्रामं गतः 2.3.67
ग्रामं गन्ता 2.3.12
ग्रामं गामी 2.3.70
ग्रामं भवान् 3.3.162
ग्रामं भवानागच्छेत् 3.3.161
ग्रामं व्रजति 2.3.12
ग्रामकुलालः 6.2.62
ग्रामकुलालः 6.2.62
ग्रामगः 3.2.48
ग्रामगतः 2.1.24
ग्रामगतः 6.2.47
ग्रामगमी 2.1.24
ग्रामगामी 2.1.24
ग्रामगृह्या सेना 3.1.119
ग्रामगोधुक् 6.2.81
ग्रामणिनः 7.1.73
ग्रामणिदृष्टिः 6.3.34
ग्रामणिना 7.1.73
ग्रामणिनि 7.1.73
ग्रामणिने 7.1.73
ग्रामणिनोः 7.1.73
ग्रामणिपुत्रः 6.3.61
ग्रामणिभ्याम् 7.1.74
ग्रामणीः 1.4.3, 1.2.47,3.2.61, 6.1.68,6.1.71
ग्रामणीनाम् 7.1.73
ग्रामणीपुत्रः 6.3.61
ग्रामण्यः 6.4.82, 7.1.73
ग्रामण्या (ब्राह्मणकुलेन) 7.1.73
ग्रामण्याम् 7.3.116, 7.1.73
ग्रामण्ये 1.4.3,7.1.73
ग्रामण्योः 7.1.73
ग्रामण्यौ 6.4.82
ग्रामत आगच्छति 5.4.45
ग्रामतक्षः 5.4.95
ग्रामता 4.2.43
ग्रामनापितः 6.2.62
ग्रामनापितः 6.2.62
ग्रामनिर्गतः 2.1.37
ग्रामम् अधितिष्ठति 1.4.46
ग्रामम् अधिवसति 1.4.48
ग्रामम् अधिशेते 1.4.46
ग्रामम् अनुवसति 1.4.48
ग्रामम् अभिनिविशते 1.4.47
ग्रामम् आवसति 1.4.48
ग्रामम् उपवसति 1.4.48
ग्रामरक्षायणिः 4.1.157
ग्रामरथ्या 6.2.62
ग्रामवासः 6.3.18
ग्रामवासी 6.3.18
ग्रामश्च ते स्वम् 8.1.24

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आमस्तव च 8.1.24
आमस्तव वा स्वम् 8.1.24
आमस्तव स्वं 8.1.25
आमस्तव ह 8.1.24
आमस्तवाह स्वम् 8.1.24
आमस्तवैव 8.1.24
आमस्तुभ्यं 8.1.25
आमस्तुभ्यं च 8.1.24
आमस्तुभ्यं वा 8.1.24
आमस्तुभ्यं ह 8.1.24
आमस्तुभ्यमहदीयते 8.1.24
आमस्तुभ्यमेव 8.1.24
आमस्ते 8.1.22
आमस्त्वा 8.1.25
आमस्त्वा 8.1.23
आमस्त्वां 8.1.25
आमस्त्वां च 8.1.24
आमस्त्वां ह 8.1.24
आमस्त्वामह 8.1.24
आमस्त्वामेव 8.1.24
आमस्त्वा वा 8.1.24
आमस्य पतिरियम् 4.1.33
आमस्य पत्ये 1.4.9
आमात् 5.4.45
आमाद् आगच्छति 1.4.23,1.4.24
आमाद् आयाति 2.3.28
आमाय गच्छति 2.3.12
आमाय गन्ता 2.3.12
आमाय व्रजति 2.3.12
आमार्द्धः 2.2.2
आमीणः 4.2.94,4.3.25
आमे उपवसति 1.4.48
आमे कम्बलो मम 8.1.26
आमेयकः 4.2.95
आमेवासः 6.3.18
आमेवासी 6.3.18
आमो 8.1.4,8.1.18, 8.1.20,8.1.21, 8.1.22, 8.1.23
आमोपघ्नः 3.3.85
आमो मम वा 8.1.24
आमो मम स्वं 8.1.25
आमो मम ह 8.1.24
आमो ममाह 8.1.24
आमो ममैव 8.1.24
आमो मह्यं 8.1.25
आमो मह्यं च 8.1.24
आमो मह्यं वा 8.1.24
आमो मह्यं ह 8.1.24
आमो मह्यमह 8.1.24
आमो मह्यमेव 8.1.24
आमो मां 8.1.25
आमो मां च 8.1.24
आमो मां ह 8.1.24
आमो मा पश्यति 8.1.25
आमो मामेव 8.1.24
आमो माम् च 8.1.24
आमो मे 8.1.22
आमो वः 1.1.56
आमो वः 8.1.21
आमो वा मां 8.1.24
आमो वो 8.1.21
आमो माहमह 8.1.24
आम्यः 4.2.93
आम्यः 4.2.94,4.3.25
आवस्तुत् 3.2.171
आवस्तुतः 3.2.177
आवस्तुतौ 3.2.177
आहः 3.1.143,7.4.41
आहट् 3.1.134
आहिता 6.4.62, 7.2.37
आहिषीष्ट 6.4.62,
आहिष्यते 6.4.62, 7.2.37
आही 3.1.134,3.4.67
आीवा 4.1.110
आीष्मं सस्यम् 4.3.46
आीष्मम् 4.3.46
आीष्मवसन्तौ 2.2.34
आेथतुः 1.2.6
आेथुः 1.2.6
आैवः 4.2.96
आैवम् 4.3.57
आैवेयकोऽलङ्कारः 4.2.96
आैवेयम् 4.3.57
आैवोऽन्यः 4.2.96
आैष्मकम् 4.3.49, 4.3.46
आैष्मः 4.3.44,4.3.96
आैष्मम् 4.3.16
आैष्माः यव 4.3.43
आैष्माः व्रीह 4.3.44
आैष्मी 4.1.86
आैष्म्यः 4.3.43
ग्लहः (अक्षस्य) 3.3.70
ग्लातव्यम् 6.1.45
ग्लाता 6.1.45
ग्लातुम् 6.1.45
ग्लानं भवता 3.4.72
ग्लानिः 3.3.93
ग्लानो भवान् 3.4.72
ग्लायति 6.1.45
ग्लायति भोक्तुम् 3.4.65
ग्लायते 1.3.13,6.4.64
ग्लायात् 6.4.68
ग्लासीष्ट 6.4.68
ग्लास्नुः 1.3.8, 3.2.139
ग्लाहः 3.3.70
ग्लिष्टम् (अविस्पष्टम्) 7.2.18
ग्लुचुकायनिः 4.1.90, 4.1.160
ग्लेयात् 6.4.68
ग्लौचुकायनः 4.1.147, 4.3.126
ग्लौचुकायनकः 4.3.99
ग्लौचुकायनाः 4.1.90
ग्लौचुकायनिकः 4.1.147
ग्लौचुकिः 4.1.160

घ

घटं घटं 5.4.43
घटः 3.3.118
घटग्रहः 3.2.9
घटते भोक्तुम् 3.4.65
घटत्वम् 5.1.131
घटदिति 6.1.98
घटयति 6.4.92
घटालः 5.2.97
घटिकः 4.4.7
घटिन्धमः 3.2.30
घटिन्धयः 3.2.30
घटीकरोति मृदम् 5.1.50
घटीग्रहः 3.2.9
घटीभवति 5.4.50
घटीयति 2.4.71, 7.4.33
घटीस्यात् 5.4.50
घटोदरः 6.2.108
घटोधो 5.4.131
घटोध्नी 4.1.25,5.4.131
घट्टना 3.3.107
घनं दधि 3.3.77
घनाघनः 6.1.12, 8.3.35
घस्ता 7.2.10
घस्तान्नूनम् 2.4.39
घस्मरः 3.2.160
घाटां विन 1.3.37
घातंघातम् 7.3.32, 7.3.54
घातः 3.1.108, 3.3.76, 7.3.53
घातकः 7.3.32,7.3.54
घातयति 7.3.32, 7.3.53
घातयति कंसम् 3.1.26
घातसङ्घात 7.3.54
घातो वर्त्तते 3.3.76, 7.3.32,7.3,54
घात्यम् 3.1.97
घानिता 6.4.62
घानिषीष्ट 6.4.62
घानिष्यते 6.4.62
घापयति 7.3.36
घासः 2.4.38,3.3.59, 7.4.49
घुष्टा रज्जुः 7.2.23
घुष्टौ पादौ 7.2.23
घूर्णते 7.1.2
घृतः 6.4.37
घृतं विलायय 7.3.39
घृतं विलीनय 7.3.39
घृतकम् 5.3.85
घृतगन्धिः 5.4.136
घृतनिधायम् 3.4.45
घृतपदी 5.4.139
घृतपललम् 6.2.128
घृतपलल 6.2.128
घृतपावा 3.2.74
घृतपीतः 2.2.37
घृतरौढिः 1.1.73
घृतरौढीयाः 1.1.73
घृतरौढीयाः 6.2.69
घृतवान् 6.4.37
घृतशाकम् 6.2.128
घृतसूपः 6.2.128
घृतस्पृक् 1.2.41, 3.2.58,6.1.67, 8.2.62
घृतस्यन्दः 6.4.28
घृतस्य यजते 2.3.63
घृताची 6.3.92
घृतेन यजते 2.3.63
घृष्णाक् 3.2.172
घोराध्यापक 8.1.67
घोषस्थली 4.2.127
घ्नती 7.1.80
घ्नन्ति 7.3.53
घ्नन्तु 7.3.53
घ्राणः 8.2.56
घ्रातः 8.2.56

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ङ

ङस् 7.1.96
ङसि 7.1.96
ङि 7.1.96
ङे 7.1.96

च

चकणतुः 6.4.120
चकणिथ 6.4.121
चकणुः 6.4.120
चकर (अहम्) 7.1.91
चकर्थ 7.2.63
चकर्षिथ 7.2.62
चकाः 8.2.73
चकाद्धि 8.2.25
चकार 3.2.115
चकार (अहम्) 7.1.91
चकारात्र 1.1.14
चकासति 6.1.6
चकासयति 7.2.116
चकासाञ्चकार 3.1.35
चकृद्वे 8.3.55, 8.3.78
चकृम 7.2.13
चकृव 7.2.13
चक्रचरः 4.4.71
चक्रणदी 8.4.10
चक्रणितम्बा 8.4.10
चक्रतुः 1.1.59
चक्रतुः 6.4.77
चक्रतुः 7.4.10
चक्रनदी 8.4.10
चक्रनितम्बा 8.4.10
चक्रबन्धं बाध्नाति 3.4.41
चक्रबन्धः 2.1.41, 6.3.13
चक्रबंन्ध 6.2.32
चक्रबन्धकः 6.3.19
चक्रम् 6.1.12
चक्रमुक्तः 2.1.38
चक्रवाकवती 6.3.119
चक्रवान् 8.2.12
चक्रसुवक्थः 6.2.198
चक्रसक्थी 5.4.113
चक्रिः 3.2.171
चक्रिरे 6.4.76
चक्रीवान् 8.2.12
चक्रुः 1.1.59,6.1.96, 6.4.77,7.4.10
चक्रेबन्धः 6.3.13
चखान 7.4.62
चख्नतुः 6.4.98
चख्नुः 6.4.98
चख्यास्तण्डुलाः 5.1.2
चङ्क्रमणः 3.2.150
चङ्क्रम्यते 3.1.23
चङ्क्रम्यते 6.4.43
चञ्चकः 5.4.3
चञ्चत्कः 5.4.3
चञ्चा 5.3.98
चञ्चाः 6.1.197
चञ्चां 6.1.204
चञ्चा अभिरूपः 1.2.52
चञ्चूरीति 7.4.87, 7.4.88
चञ्चूर्ति 7.4.88
चञ्चूर्यते 3.1.24,7.4.87
चटकका 7.3.45
चटका 4.1.4,4.1.128,
चटकिका 7.3.45
चण्डालमृतपाः 2.4.10
चतसृणाम् 6.1.177, 6.4.4,6.4.5,8.4.1
चतसृभिः 7.2.99, 7.2.100
चतसृभिंः 6.1.180
चतसृणाम् 6.4.5
चतस्रः 4.1.10, 6.1.167,7.2.99, 7.2.100
चतंस्रः 6.1.179
चतिता 7.2.34
चतुः करोति 8.3.43
चतुः पचति 8.3.43
चतुःस्तना 6.2.163
चतुःस्तना 6.2.164
चतुःस्तना 6.2.164
चतुर्भिः 6.1.180
चतुरंः 6.1.167
चतुरः पश्य 6.1.167
चतुरङ्गयोगेन 8.4.38
चतुरश्र 5.4.120
चतुर्णाम् 6.4.7,7.1.54
चतुर्णाम् 6.1.179
चतुर्थः 6.2.51
चतुर्थकः 5.2.81
चतुर्थकम् 5.2.77
चतुर्थभिक्षा 2.2.3
चतुर्दन् 5.4.141
चतुर्दशान्यकः 4.4.64
चतुर्द्धा 5.3.42
चतुर्भिः 6.1.180
चतुर्भुक्तम् 5.4.18
चतुर्भुङ्क्ते 5.4.18
चतुर्थ्यः 6.1.179
चतुर्मयम् 5.2.47
चतुर्मयाः 5.2.47
चतुर्यति 8.2.77
चतुर्यिता 8.2.78
चतुर्युगम् 2.4.17
चतुर्हायणी 4.1.27
चतुर्हायना शाला 4.1.27
चतुष्कः 5.2.77
चतुष्कण्टकम् 8.3.41, 8.3.43
चतुष्कपालम् 8.3.41, 8.3.43
चतुष्कम् 5.2.77
चतुष्करोति 8.3.43
चतुष्कलम् 8.3.41
चतुष्कृतम् 8.3.41
चतुष्टयम् 8.3.101
चतुष्टयी 5.2.42
चतुष्पचति 8.3.43
चतुष्पथम् 2.4.18
चतुष्पदा 4.1.9
चतुष्पदी 4.1.8
चतुष्परि 2.1.10
चतुष्पात् 4.1.8
चतूरात्रः 2.4.29
चत्तः 7.2.34
चत्यम् 3.1.97
चत्वारः 6.1.158
चत्वारः 7.1.98
चत्वारः 7.2.99
चत्वारिंशत् 5.1.59
चत्वारि 7.1.72,7.1.98 7.2.99
च न आँ इन्द्रः 1.1.8
चनीकसीति 7.4.84
चनीकस्यते 7.4.84
चनीस्कद्यते 7.4.84
चनोहितः 1.4.60
चन्दनगन्धः 2.2.9
चन्दनप्रियङ्गुकालेपनम् 6.2.150
चन्दनसारः 3.3.17
चन्दनानुलिप्ता 4.1.52
चन्द्रः 8.4.50
चन्द्रगुप्तस 1.1.58
चन्द्रभागी 4.1.45
चन्द्रमसा युक्ता 4.2.3
चन्द्रमाः 6.2.42
चन्द्रमुखा 4.1.54
चन्द्रमुखी 4.1.54, 4.1.58
चप्पकन्थम् 6.2.124
चमति 7.3.75
चयः 1.1.72,3.3.41, 3.3.56
चयनम् 1.3.8,6.1.78, 6.1.109,6.4.77
चरः पुरुषः 6.1.12
चरकत्रिरात्रः 6.2.97
चरकबन्धकः 6.3.19
चरकाः 4.3.104, 4.3.107
चरमपुरुषः 2.1.58
चरमाः 1.1.33
चरमे 1.1.33
चराचरः 6.1.12,7.4.59
चराति 3.4.97
चरिकर्त्ति 7.4.92
चरितम् 8.2.42
चरित्रम् 3.2.184
चरिष्णुः 3.2.136
चरीकर्ति 7.4.92
चरीकृष्यते 7.4.64
चरुः 3.4.74
चर्कर्ति 7.3.94,7.4.92
चर्चना 3.3.105
चर्चा 3.3.105
चर्चापाठः 3.2.1
चर्त्तिष्यति 7.2.57
चर्त्यम् 3.1.110
चर्त्स्यति 7.2.57
चर्म 3.3.2,3.4.75
चर्मकन्थम् 6.2.123
चर्मणा 6.4.137,8.4.2
चर्मणाम् 6.4.7
चर्मणि द्वीपिनं 2.3.36
चर्मणे 6.4.137
चर्मण्वती 8.2.12
चर्मन् 7.1.39,8.2.8
चर्मनमन् 2.1.2
चर्मनासिकः 8.4.3
चर्मपूरं स्तृणाति 3.4.31
चर्मवः 6.4.14
चर्मवती 8.2.12
चर्मी 5.2.116
चर्म्मणाम् 6.4.7
चर्म्मवः 6.4.14
चर्म्मायति 1.4.15
चर्म्मायते 1.4.15
चर्यम् 3.1.100
चलः 3.1.140,6.1.12

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चलनः 3.2.148
चलयति 1.3.87
चलाचलः 6.1.12, 7.4.59
चलाचलेषुः 6.2.108
चलीक्लृप्यते 8.2.80
चवर्गीयम् 4.3.63
चस्कन्दीति 7.4.84
चाकर्ति 7.4.92
चाकशीति 7.3.87
चाक्रगर्त्तकः 4.2.126
चाक्रवर्मणः 6.4.170
चाक्रिकः 4.4.57
चाक्षुषम् 4.2.92
चाखायते 6.4.43
चाचलिः 3.2.171
चाटकैरः 4.1.128
चाटुकारः 3.2.23
चाण्डालः 5.4.36
चाण्डालक 4.3.118
चाण्डालकिः 4.1.96
चाण्डाली 4.1.73
चातकाः 5.3.112
चातक्यः 5.3.112
चातक्यौ 5.3.112
चातुरं शकटम् 4.2.92
चातुराश्रम्यम् 5.1.124
चातुर्दशं रक्षः 4.2.92
चातुर्दशिकः 4.4.71
चातुर्मासकः 5.1.94
चातुर्मासी 5.1.94
चातुर्मास्यानि 5.1.94
चातुर्वर्ण्यम् 5.1.124
चातुर्वैद्यम् 5.1.124, 7.3.20
चातुर्होतृक 4.3.72
चातुष्टयः 4.2.65
चातुष्पथिकः 4.4.71
चातुष्प्राश्यः 5.4.36
चात्वारिंशत्कः 5.1.22
चात्वारिंशानि 5.1.62
चान्द्रभागेयः 4.1.113
चान्द्रसामः 6.4.170
चान्द्रायणिकः 5.1.72
चान्द्रायणिक 5.1.18
चापयति 6.1.54
चायकः 6.1.78, 6.4.77
चाययति 6.1.54
चायिता 6.4.62
चायिषीष्ट 6.4.62
चायिष्यते 6.4.62
चारकः 7.3.34
चारकबन्धः 6.2.32
चारकीणम् 5.1.11
चारायणः 4.1.99, 7.1.2, 7.2.118
चारायुणः 6.1.165
चारायणक 4.3.80
चारायणी 4.1.63
चारित्रतः क्षिप्तः 5.4.46
चारित्रतः पापः 5.4.47
चारित्रतोऽतिगृह्यते 5.4.46
चारित्रतो न व्यथते 5.4.46
चारित्रतो हीयते 5.4.47
चारुकर्णा 4.1.55
चारुकर्णी 4.1.55
चारुवहम् 6.3.121
चार्मः 6.4.144
चार्मणः 4.2.10, 6.4.144, 6.4.170
चार्मिकायनिः 4.1.158
चार्वाघाटः 3.2.49
चार्वाघातः 3.2.49
चालः 3.1.14
चिकयामकः 3.1.42
चिकरिषति 7.2.75
चिकर्त्तिषति 7.2.57
चिकल्पिषते 1.3.93, 7.2.60
चिकाय 7.3.58
चिकित्सते 3.1.5
चिकिनः 5.2.33
चिकीर्षकः 1.1.58, 6.4.48
चिकीर्षकः 6.1.93
चिकीर्षति 1.2.9, 3.1.32, 6.4.16, 7.1.100, 7.2.40
चिकीर्षवे 1.1.39
चिकीर्षा 3.1.94, 3.3.111, 3.3.102
चिकीर्षादेव 2.3.66
चिकीर्षावान् 5.2.96
चिकीर्षितव्यम् 6.4.48
चिकीर्षिता 6.4.46, 6.4.48
चिकीर्षितुम् 3.1.7, 6.4.48
चिकीर्षुः 3.2.168
चिकीर्ष्यते 6.4.48
चिकीर्ष्यम् 6.1.213
चिकीर्ष्यात् 7.2.80
चिकीर्ष्यम् 6.1.185
चिकीषति 7.3.58
चिकृत्सति 7.2.57
चिक्लृप्सति 1.3.93, 7.2.60
चिक्लृप्स त्वम् 7.2.60
चिक्लृप्सिता 7.2.60
चिक्कः 5.2.33
चिक्यानः 3.2.106
चिक्लिदम् 6.1.12
चिक्षियतुः 6.4.77, 7.4.10
चिक्षियुः 6.4.77, 7.4.10
चिखनिषति 6.4.42, 8.4.54
चिखाद 6.1.52
चिखिल्किनिकायः 6.2.94
चिखेद 6.1.52
चिचर्तिषति 7.2.57
चिचाय 7.3.58
चिचीषति 1.2.9, 7.1.82, 7.3.58, 8.4.54
चिचृत्सति 7.2.57
चिचेथ 7.2.61
चिच्छर्त्सति 7.2.57
चिच्छर्दिषति 7.2.57
चिच्छित्सति 8.4.54
चिच्छिदतुः 1.2.5
चिच्छिदुः 1.2.5, 6.1.73
चिच्छिद्वान् 7.2.67
चिच्छृत्सति 7.2.57
चिच्छेद 6.1.68
चिच्यावयिषति 7.4.81
चिच्युषः 6.4.22
चिच्युषे 6.1.36
चितः 1.1.5
चितवान् 1.1.5
चितिः 3.3.93
चित्तं खेदयति 6.1.52
चित्तं चिखाद 6.1.52
चित्तं चिखेद 6.1.52
चित्तं दूषयति 6.4.91
चित्तं दोषयति 6.4.91
चित्तविनाश 3.1.134
चित्पतिः 6.2.199
चित्यः 3.1.132
चित्युति 6.2.19
चित्रकरः 3.2.21
चित्रगुः 1.2.48, 2.2.23, 2.2.35, 5.4.73, 7.1.90
चित्रगुर्देवदत्तः 2.2.24
चित्रम् 3.3.151
चित्ररथबाह्लीकम् 2.2.31
चित्रललाटिकावती 5.2.128
चित्रा 4.3.34
चित्रास्वाती 2.2.31, 2.2.34
चित्रीयते 3.1.20
चिनु 6.4.106
चिनुतः 1.1.5, 1.2.4, 6.1.186
चिनुमः 7.3.101
चिनुयात् 7.2.80, 7.4.25
चिनुयुः 7.3.83
चिनुवः 7.3.101
चिनुहीदम् 6.1.130
चिनुहीऽइद 6.1.130
चिन्तना 3.3.105
चिन्तयति 3.1.25
चिन्ता 1.4.74, 3.3.105
चिन्तितः 6.1.205
चिन्तिसुराष्ट्राः 6.2.37
चिन्वताम् 7.1.5
चिन्वते 7.1.5
चिन्वन्ति 1.1.5, 1.2.4, 6.1.186, 7.1.3, 7.1.5
चिन्वाते 7.2.81
चिपिटः 5.2.33
चिरं जीवति 3.3.173
चिरं जीवतु 3.3.173
चिरं जीवितं देवदत्तस्य 2.3.73
चिरं जीवितं देवदत्ता 2.3.73
चिरं जीवेत् 3.3.173
चिरण्टी 4.1.20
चिरत्नम् 4.3.23
चिरन्तनः 7.1.1
चिरन्तनम् 4.3.23
चिरिणोति 8.2.78
चिल्लः 5.2.33
चिह्णकन्थम् 6.2.125
चीयते 1.2.28, 7.4.25
चीयात् 3.1.93, 7.4.25
चुकुवे 7.4.63
चुकुषे पादः 3.1.90
चुच्यावयिषति 7.4.81
चुच्युविषे 6.1.36

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चुटू 1.1.69
चुलुम्पाञ्चकार 3.1.35
चुल्लः 5.2.33
चुश्ज्योतिषति 7.4.61
चूडकनाशम् 3.4.45
चूडा 3.3.104
चूडालः 1.3.8,5.2.96
चूडावान् 5.2.96
चूर्णिनः 4.4.23
चूर्णपेषम् 3.4.35
चूर्तिः 7.4.89
चेकीतः 6.1.21
चेकीयते 6.1.21
चेकीयन्ते 6.1.21,
चेकीयेते 6.1.21
चेकीर्यते 7.4.27
चेक्रीयते 7.4.27
चेचीयते 7.3.58,
7.4.25,7.4.82
चेतयः 3.1.138
चेतयमानं 1.3.88
चेतयसे 3.2.112
चेतव्यम् 6.4.62
चेता 1.1.2,1.1.50,
6.1.45,6.4.48,
6.4.62,7.2.10,
7.3.84
चेदागच्छति 3.3.9
चेदागन्ता 3.3.9
चेदागमिष्यति 3.3.9
चेयम् 3.1.97,6.1.213
चेलक्नोपम् 3.4.33
चेषीष्ट 1.2.11,6.4.62
चेष्यति 6.4.62,7.2.58
चेष्यते 6.4.62
चेस्यते 6.4.62
चैटयत 1.5.4,4.1.80,
4.2.54
चैत्रः 4.2.23
चैत्रकरोधका 6.2.34
चैत्रिकः 4.2.23
चैदीयाः 4.2.113
चैन्तितः 4.1.113
चैयातकः 4.2.110
चोकूयते 7.4.63
चोक्रुशीति 7.4.82
चोपनः 3.2.148
चोपयति 1.3.87
चोरङ्कारम् आक्रोशति
3.4.25
चोरं दण्डेनोपहत्य 3.4.48
चोरं द्विषन् 3.2.128
चोरकबन्धम् 3.4.41
चोरतो बिभेति 5.4.45
चोरयति 3.1.25
चोररूपः 5.3.66
चोरस्य कुलम् 6.3.21
चोरस्य द्विषन् 3.2.128
चोरस्योज्जासयति 2.3.56
चोरात् बिभेति 5.4.45
चोरी 4.1.15
चोरी 6.4.172
चोलः 4.1.175
चौडम् 5.1.110
चौडिः 6.4.148,
7.3.32
चौरं ज्वरयति 2.3.54
चौरं द्विषन् 2.3.69,
3.2.128
चौरं विहन्ति 2.3.56
चौरं सन्तायति 2.3.54
चौरं हिनस्ति 2.3.56
चौरघातः 3.2.53
चौरभयम् 2.1.37
चौरम् उज्जासयति 2.3.56
चौरस्य द्विषन् 2.3.69,
3.2.128
चौरस्य निप्रहन्ति 2.3.56
चौरस्य निहन्ति 2.3.56
चौरस्य पिनष्टि 2.3.56
चौरस्य प्रणि 2.3.56
चौरस्य प्रहन्ति 2.3.56
चौरस्य रुजति 2.3.54
चौरस्याऽऽमयत्यामयः
2.3.54
चौरस्योन्नाय्यति 2.3.56
चौरस्योत्क्राथयति 2.3.56
चौरस्योन्नाट 2.3.56
चौर3 8.1.8
चौर3 चौर 8.2.95
चौर चौर3 8.2.95
चौरान्न दिदृक्षते 1.4.28
चौरान् पश्यति 1.4.50
चौरी 4.1.15,6.4.172
चौरेभ्य उद्विजते 1.4.25
चौरेभ्यस्त्रायते 1.4.25
चौरेभ्यो बिभेति 1.4.25
चौरेभ्यो रक्षति 1.4.25
च्यवन्ते 7.1.5
च्यावयति 3.4.7
च्यावयाति 3.1.34,
3.4.94,3.4.97
च्युतः 8.2.43
च्युतवान् 8.2.43
च्योषीद्वम् 8.3.78
च्योषीष्ट 7.2.43
च्यौलः 7.2.115

छ

छत्रधारः 6.2.75
छत्रम् 6.4.97
छत्रवान् 5.2.115
छत्रिकः 5.2.115
छत्रिणी 4.1.5
छत्रिणौ 6.4.12
छत्री 5.2.94,
5.2.115
छत्रोपानह 5.4.106
छदिः 6.4.97
छद्म 6.4.97
छन्दःसमापनीयम्
5.1.112
छन्दस्यः 4.3.71,
4.4.93,5.4.25
छन्दोऽधीते व्याकरणमधीते
3.4.3
छन्दोऽधीष्व
व्याकरणमधीष्व 3.4.3
छन्दोऽध्येषीष्ट3 8.2.104
छन्दोव्याख्यानम्
6.2.151
छन्नः 7.2.27
छमिति 6.1.98
छर्त्स्यति 7.2.57
छर्दिकातः कुरु 5.4.49
छर्दिष्यति 7.2.57
छागलः 4.1.117
छागलिः 4.1.117
छागलेयिनः 4.3.109
छाग्यायनिः 4.1.155
छात्र 2.3.21
छात्रः 4.4.62
छात्रव्यंसकः 2.1.72
छात्रस्य हसितम् 2.3.67
छात्रहसितम् 2.2.12
छात्राणां दशमः 2.2.11
छात्राणां पञ्चमः 2.2.11
छात्राप्रिय 6.2.16
छात्रिंशालम् 6.2.86
छात्रिंशाला 6.2.86
छात्रेण हसि 2.3.67
छात्रेणोपाध्या 2.3.21
छात्रैः परिवृतो 4.2.10
छादितः 7.2.27
छादिषेयाणि 5.1.13
छान्दसः 4.2.59,
4.3.71
छान्दसवैयाकरणाः
6.2.36
छान्दोगं कुलम् 4.3.129
छान्दोग्यम् 4.2.46,
4.3.129
छायाशुष्कः 2.1.41
छित् 3.2.178,8.2.64
छित्तिः 3.3.104
छिद् 1.1.65
छिदा 3.3.104,
छिदिः 3.3.108
छिदुरः 3.2.162
छिद्यते 1.2.28
छिद्रकर्णः 6.3.115
छिनत्ति 6.1.68
छिनत्ति 7.1.2
छिन्द्धि 6.4.101
छिन्द्युः 6.1.96
छिन्द्युस्ताम् 8.3.101
छिन्धिविचक्षणा 2.1.72
छिन्नः 8.2.42
छिन्नकः 5.4.4
छिन्नकर्णः 6.3.115
छिन्नम् 5.4.4
छिन्नवान् 8.2.42
छुर्यात् 8.2.79
छेत्ता 1.4.1,1.4.10,
6.1.59,7.2.10,
7.3.86
छेदनम् 7.3.86
छैदिकः 5.1.64
छोप्ता 7.2.10

ज

जक्षत् 7.1.78
जक्षतः 7.1.78
जक्षति 6.1.6,7.1.4,
7.1.79
जक्षंति 6.1.189
जक्षतुः 1.1.58,2.4.40,
6.4.98,7.1.4,
8.3.60
जक्षंतु 6.1.189
जक्षतौ 7.1.78
जक्षन्ति 7.1.79
जक्षितः 6.1.189
जक्षिति 7.2.76
जक्षिवान् 3.2.107,
7.2.67

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जक्षुः 1.1.58,2.4.40, 6.4.98,8.3.60
जगणतुः 6.4.120
जगणुः 6.4.120
जगत् 3.2.178
जगती 4.1.86
जगतीछन्दः 6.3.63
जगत्यम् 4.4.122
जगदिति 6.1.98
जगन्वान् 7.2.68
जगान्वान् 8.2.65
जगाम 3.2.117, 7.4.62
जगुरिः 7.1.103, 3.2.171
जगृभ्मा 7.2.64
जगृहिम 7.2.37,7.2.64
जगृहिव 7.2.37
जग्धः 2.4.36
जग्धवान् 2.4.36
जग्मतुः 6.4.98
जग्मिः 3.2.171
जग्मिवान् 7.2.68
जग्मुः 6.4.98
जग्रहिथ 6.1.17
जग्रहिथ 7.2.62
जग्राह 6.1.17
जग्ले 1.1.59, 3.4.115,6.1.45
जग्लौ 7.1.34,7.4.60
जघन अहम् 7.3.54
जघन्यः 5.3.103
जघन्य पुरुष 2.1.58
जघन्वान् 7.2.68
जघसिथ 7.2.61
जघान 7.3.32,7.4.62
जघास 2.4.40,8.3.60
जघ्नतुः 1.1.59,6.4.98
जघ्निः 3.2.171
जघ्निवान् 7.2.68
जघ्नुः 1.1.59,6.4.98
जङ्गमीति 7.4.85
जङ्गम्यते 7.4.85
जङ्घन्यते 7.4.30, 7.3.54
जङ्घाकरः 3.2.21
जङ्घावलिः 6.3.12
जङ्घावात्स्यः 6.2.69
जजनंत् 6.1.192
जजनम् 7.4.78
जजरतुः 6.4.124
जजरिथ 6.4.124
जजरुः 6.4.124
जजागर 7.3.85
जजागार 3.1.38
जजागार 6.1.1,7.3.85
जजागृवान् 7.3.85
जजान 7.3.35
जज्ञाते 6.4.98
जज्ञिः 3.2.171
जज्ञिरे 6.4.98
जज्ञे 6.4.98
जञ्जः 6.1.160
जञ्जन्यते 6.4.43
जञ्जपीति 7.4.86
जञ्जपूकः 3.2.166
जञ्जप्यते 3.1.24,7.4.86
जञ्जभीति 7.4.86
जञ्जभ्यते 3.1.24, 7.4.86
जटालः 5.2.97
जटिलिका 7.3.44
जतु 7.1.23
जतुनी 7.1.17,7.1.19
जतुनी 7.1.73,
जतूः 4.1.71
जतूनि 1.1.42,7.1.20, 7.1.72
जनंः 6.1.203
जनकः 7.3.35
जनकीयम् 4.2.138, 4.3.60
जनता 4.2.43
जनपदो 8.1.4,8.1.18, 8.1.20,8.1.21, 8.1.120
जनपदो नुः 8.1.21
जनपदो नः 1.1.56
जनपदो नो 8.1.21
जनमेजयः 3.2.28
जनयति 1.3.86,6.4.92
जनयति सुखम् 1.3.86
जनयिता 6.4.53
जनार्दनः 3.1.134
जनिता 6.4.53
जनिध्वम् 7.2.78
जनिध्वे 7.2.78
जनिषे 7.2.78
जनिष्ठा 6.4.75
जनिष्व 7.2.78
जनीयन्तः 7.4.35
जनुषाऽन्धः 6.3.3
जन्मन आरभ्य 2.3.29
जन्मनः प्रभृति 2.3.29
जन्यः 3.4.68,4.4.97
जन्यते 6.4.43
जन्यम् 3.1.97,5.4.25
जन्यमः 3.4.68
जन्या 4.4.82
जपः 3.3.61
जप्यम् 3.1.98
जभ्यम् 7.1.61
जभ्रिरे 8.2.35
जम्पती 2.2.31
जम्पतीव 1.1.11
जम्बु 4.3.165
जम्बू 4.3.165
जम्भः 7.1.61
जम्भकः 7.1.61
जम्भं जम्भम् 7.1.61
जम्भयति 7.1.61
जयः 1.1.72,3.3.56
जयंः 6.1.202
जयनम् 1.3.8
जयी 3.2.15
जुयो 6.1.202
जय्यः 6.1.81
जुरत्कुमारी 6.2.95
जरद्गृष्टिः 2.1.49
जरद्धस्ती 2.1.49
जरद् वृत्तिः 2.1.49
जरन् 3.2.104
जरन्तः 3.2.104,7.1.3
जरन्तौ 3.2.104
जरया 7.2.101
जरसा 7.2.101
जरसे 7.2.101
जरा 3.3.104,7.4.16
जरात्रिः 7.2.101
जराभ्याम् 7.2.101
जरामृत्यू 6.2.37
जरायै 7.2.101
जरित्वा 7.2.55
जरिहर्ति 7.4.92
जरीगृह्यते 6.1.16
जरीत्वा 7.2.55
जरीहर्ति 7.4.92
जर्हर्ति 7.4.92
जलधिः 3.3.93
जलनः 1.1.68
जलपथः 5.3.100, 5.4.74
जलसरसम् 5.4.94
जलस्पृग् 3.2.58
जलाषाट् 3.2.63, 6.3.137,8.2.31, 8.3.56
जलाषाहम् 8.3.98, 8.3.108
जलासाहम् 8.3.56
जलौकसः 7.3.64
जुल्पः 6.1.160
जल्पतकि 5.3.71, 5.3.73,5.3.85
जल्पति 8.1.4
जल्पतिकल्पम् 5.3.67
जल्पति गोत्रम् 8.1.27
जल्पति जल्पति 8.1.27
जल्पतितराम् 5.3.57
जल्पति ब्रुवम् 8.1.27
जल्पनम् 3.3.115
जल्पनः 3.1.134
जल्पाकः 3.2.155
जल्पितम् 3.3.114
जवः 3.3.56
जवनः 3.2.150
जहति 6.4.116
जहर्थ 7.2.61
जहांति 6.1.190
जहाति 6.4.113, 6.4.116,7.4.76
जहार 3.2.115,7.4.62
जहारात्र 1.1.14
जहाहि 6.4.117
जहि 6.4.22,6.4.36
जहिजोडः 2.1.72
जहितः 6.4.116
जहिथः 6.4.116
जहिस्तम्बः 2.1.72
जहिहि 6.4.117
जहीतः 6.4.116
जहीथः 6.4.116
जहीहि 6.4.117
जहौ 7.4.62
जह्यात् 6.4.118
जह्याताम् 6.4.118
जह्युः 6.4.118
जागतः 4.2.55, 7.2.117
जागतम् 4.2.55
जागर्ति 6.1.192
जागरं 7.3.85
जागरः 7.3.85
जागरकः 7.3.85
जागरयति 7.2.5,7.3.85

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जागरा 3.3.101
जागराञ्चकार 3.1.38
जागरितः 7.2.11, 7.3.85
जागरितवान् 7.2.11, 7.3.85
जागरूकः 3.2.164
जागरो वर्त्तते 7.3.85
जागर्त्ति 6.1.192, 7.2.76
जागर्या 3.3.101
जागर्यात् 3.4.104
जागर्यासुः 3.4.104
जागर्यास्ताम् 3.4.104
जागार 6.1.8
जागृतः 7.3.85
जागृथः 7.3.85
जागृधिः 7.3.85
जागृयात् 3.4.104
जागृविः 1.2.41, 6.1.67,7.3.85
जाग्रत 7.1.78
जाग्रतः 7.1.78
जाग्रति 6.1.6, 7.1.4,7.1.79
जाग्रंति 6.1.189
जाग्रतु 3.4.111,7.1.4
जाग्रंतु 6.1.189
जाग्रतौ 7.1.78
जाग्रन्ति 7.1.79
जाग्रहिता 7.2.37
जाग्लायते 6.4.64
जाङ्गलपथिक 5.1.77
जाङ्गलपथिकः 5.1.77
जाजलाः 6.4.144
जाजायते 6.4.43
जाज्वल्यते 3.1.22
जाडारः 4.1.130
जाड्यम् 5.1.124
जाड्याद् बद्धः 2.3.25
जाड्येन बद्धः 2.3.25
जातं हिमव 4.2.103
जातः 6.4.42
जातदन्तः 2.2.37
जातपुत्रः 2.2.37
जातरूपम् 4.3.153
जातवान् 6.4.42
जातश्मश्रुः 2.2.37
जातिः 6.4.42
जातु कारिष्या 8.1.47
जातु तत्र 3.3.147
जातु तत्र भवान् 3.3.140
जातु भोक्ष्यसे 8.1.47
जातुषम् 4.3.138
जातोक्षः 5.4.77
जानकीयः 5.3.116
जानपदः 5.4.104
जानपदी 4.1.42
जानाति 1.3.57,7.3.79
जानाति देवदत्तस्य 1.3.76
जानाति पुत्रं 1.3.45
जानाति भोक्तुम् 3.4.65
(अश्वं) जानीते 1.3.76
(गां) जानीते 1.3.76
जानुदघ्नम् 5.2.37
जानुदघ्नम् 7.1.2
जानुदघ्नी 4.1.15
जानुद्वयसम् 5.2.37
जानुद्वयसी 4.1.15
जानुप्रहृतिकम् 4.4.19
जानुमात्रम् 5.2.37
जानुमात्री 4.1.15
जानुषेणी 8.3.99
जापयति 6.1.48, 7.3.37
जाबालिः पिता 2.4.58
जाबालिः पुत्रः 2.4.58
जामदग्न्यः 4.1.105
जाम्बवम् 4.3.165
जाम्बवशालुकिन्यौ 2.4.7
जाम्बिः 4.1.96
जाम्बेयः 4.1.135, 6.4.147
जाम्ब्वकः 4.2.125
जाम्ब्वाः 4.2.125
जायते 6.4.43,7.3.79
जायतें 6.1.195
जायाघ्नः 3.2.52
जायापती 2.2.31
जायुः 3.3.1
जारभरा 3.1.134
जाराः 3.3.20
जारूषी 4.2.76
जालपदी 5.4.139
जालबाहूः 4.1.67
जालमानीयः 5.3.116
जालूकः 4.3.116
जिगमिषतः 2.4.47
जिगमिषति 2.4.47, 7.2.58
जिगमिषत्वम् 7.2.58
जिगमिषन्ति 2.4.47
जिगरिषति 7.2.75
जिगाय 7.3.56
जिगीषति 7.3.56
जिघत्सतः 2.4.37
जिघत्सति 2.4.37, 7.4.49,8.4.54
जिघत्सन्ति 2.4.37
जिघर्त्ति 7.4.78
जिघांसति 6.4.16, 7.3.54
जिघृक्षति 1.2.8
जिघृक्षति 7.2.12,7.2.62
जिघ्रति 7.3.78
जिजनिषति 6.4.42
जिजनिषते 8.4.54
जिजावयिषति 7.4.80
जिज्ञपयिषति 7.2.49
जिज्ञापयिषति 7.4.55
जिज्ञासते धर्म्मम् 1.3.57, 1.3.58
जिज्यतुः 7.3.56
जिज्यिथ 6.1.17
जिज्युः 7.3.57
जिज्यौ 6.1.17
जिझकारयिषति 8.4.54
जित्यः 3.1.117
जित्वरः 3.2.163
जित्वरी 3.2.163
जिनाति 6.1.16
जिरिणोति 8.2.78
जिव्रिः 8.2.78
जिष्णुः 1.1.5,1.3.8, 3.2.139
जिहननीयिषति 7.3.54
जिर्हीते 6.1.190
जिहीते 7.4.76
जिहीर्षकः 1.1.58, 6.4.48
जिहीर्षकः 6.1.193
जिहीर्षति 3.1.7,6.4.16, 7.2.41,7.4.63
जिहीर्षा 3.1.94,3.3.102
जिहीर्षावान् 5.2.96
जिहीर्षिता 6.4.46
जिहीर्षुः 3.2.168
जिहीर्ष्यते 6.4.48
जिहीर्ष्यम् 6.1.185
जिह्रयाञ्चकार 3.1.39
जिह्राय 3.1.39
जिह्रेति 6.1.10
जिह्रेतिं 6.1.192
जिह्रामग्ने चकृषे 8.2.90
जिह्रामूलीय 4.3.62
जिह्रायकीयिं 6.1.32
जीनः 6.4.1,6.1.16, 6.4.2,8.2.44
जीनवान् 6.1.16, 8.2.44
जीमूतः 6.3.109
जीरदानुः 1.1.60, 6.1.66
जीर्णः 3.2.104
जीर्णवान् 3.2.104
जीर्ण्णिः 3.3.93
जीव 7.1.35
जीवकः 3.1.150
जीवका जीवनाद् 7.3.45
जीवग्राहम् 3.4.36
जीवतात् 1.1.53, 7.1.35
जीवतु 7.1.35
जीवनग् 8.2.63
जीवनड् 8.2.63
जीवनाशं नश्यति 3.4.43
जीवपुत्रप्रचायिका 6.2.74
(क्रत्वे दाक्षाय) जीवसे 3.4.9
जीवसे 1.1.39
जीविकां कृत्वा 1.4.79
जीविकां प्राप्ता 2.2.4
जीविकाकृत्य 1.4.79
जीविकापन्नः 2.2.4
जीविकापन्ना 2.2.4
जीविकाप्राप्तः 2.2.4
जीवितमरणम् 2.4.14
जीवितमरणे 2.4.14
जीवेन नष्टः 3.4.43
जुगुप्सते 3.1.5,3.4.114
जुगुप्सनः 3.2.149
जुगुप्सिषते 3.1.7,6.1.9
जुघुक्षति 7.2.12
जुजुष्टन 7.1.45
जुजोषत् 7.3.87
जुवः 3.2.177
जुवौ 3.2.177
जुषत 7.1.45
जुषाणो अप्तु 6.1.118
जुष्टं देवानाम् 6.1.210
जुष्टः 3.2.188
जुष्टं 6.1.209
जुष्यः 3.1.109
जुहवाञ्चकार 3.1.39

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जुहवानि 7.3.87
जुहाव 3.1.39,6.1.33, 6.1.85
जुहावयिषतः 6.1.32
जुहावयिषति 6.1.32, 7.4.80
जुहावयिषन्ति 6.1.32
जुहुतः 1.1.63
जुहुतात् 6.4.101
जुहुताम् 6.4.101
जुहुधि 3.4.88, 6.4.101
जुहुवतुः 6.4.87
जुहुवुः 6.4.87
जुहूः 3.2.178
जुहूयते 6.1.33
जुहूषति 6.1.33
जुहोति 1.1.61, 2.4.75,3.2.124, 6.1.4,6.1.10
जुहोतिं 6.1.192
जुहोथ 7.2.61
जुहोधि 3.4.88
जुह्वत् 3.2.124,6.4.87
जुह्वति 6.4.87
जुह्वतु 6.4.87
जूः 3.2.177,3.2.178, 6.4.20
जूतिः 3.3.97
जूरः 6.4.20
जूरौ 6.4.20
जूर्त्तिः 6.4.20
जृणाति 7.3.80
जेगीयते 6.4.66
जेघ्नीयते 7.4.30
जेघ्रीयते 1.1.59, 7.4.31
जेजीयते 6.1.16, 7.3.56
जेयः 6.1.81
जेयम् 3.1.97,3.1.117
जेयंम् 6.1.213
जेरतुः 6.4.124
जेरिथ 6.4.124
जेरुः 6.4.124
जेहीयते 6.4.64, 6.4.116
जैत्रम् 7.2.115
जैत्वनः 6.4.167
जैमिनिकडारः 2.2.38
जैवन्तायनः 4.1.103
जैवन्तिः 4.1.103
जैह्माशिनेयः 6.4.174
जैह्माकाता 1.1.73
जोषम् 1.1.37
जोषिषत् 3.4.7, 3.1.34,3.4.94, 3.4.97
जोहवीति 7.4.82
जोहूयते 6.1.33
ज्ञः 3.1.135,7.3.33
ज्ञका 7.3.47,7.4.13
ज्ञपयति 6.4.92
ज्ञपितः 7.2.27
ज्ञप्तः 7.2.27
ज्ञातिपुत्रः 6.2.133
ज्ञातेयम् 5.1.127
ज्ञापितः 7.2.27
ज्ञिका 7.3.47
ज्ञीप्सति 1.2.8, 1.2.9,6.4.51, 7.2.49,7.4.51, 7.4.55
ज्यनाति 7.3.80
ज्यानिः 3.3.93
ज्यायान् 5.3.61, 5.3.62,6.4.160
ज्येष्ठं ज्येष्ठं 8.1.12
ज्येष्ठः 5.3.61,5.3.62
ज्येष्ठतातिः 5.4.41
ज्येष्ठा 4.1.4
ज्योतिष्टोमः 8.3.83
ज्योत्स्ना 5.2.114
ज्यौत्स्नः 5.2.103
ज्वरंः 6.1.203
ज्वलः 3.1.140
ज्वलनः 1.1.68, 3.2.150
ज्वालः 3.1.140

झ

झटिति 6.1.98
झार्झरः 4.4.56
झार्झरिकः 4.4.56
झि 1.4.99
झृणाति 7.3.80

ञ

ञिकारीयति 1.3.5

ट

टा 7.1.96
टिटीकिषते 8.4.54
टिठकारयिषति 8.4.54
टेष्ठीव्यते 6.1.64

ठ

ठस्येकः

ड

डाकिनी 4.2.51
डिड्ये 8.4.54
डित्थः 1.2.45
डीनः 8.2.45
डीनवान् 8.2.45
डुढौकिषते 7.4.58, 8.4.54
डुढौके 7.4.59
डोढौक्यते 7.4.83

ढ

ढौकते 7.1.2

ण

णकारीयति 6.1.65

त

तं कथं 8.4.59
तं प्रत्यथा 5.3.111
तं भवन्तम् 5.3.14
तं सुतं मन्ये 2.3.17
तक्यम् 3.1.97
तक्रम् 1.1.68,7.3.53
तक्षकः 7.2.116
तक्षकः सर्पः 2.1.56
तक्षकीयम् 4.2.91
तक्षणम् 6.4.9
तक्षति 3.1.76,7.1.39
तक्षन् 6.4.8
तक्षभिः 8.2.2
तक्षभ्याम् 8.2.2
तक्षवान् ग्रामः 1.4.19
तक्षसु 8.2.2
तक्षा 6.1.68,6.4.9
तक्षाणः 6.4.9
तक्षाणम् 6.4.9
तक्षाणौ 6.4.9
तक्षाऽयस्कारम् 2.4.10
तक्षितः 8.2.29
तक्षिषत् 3.4.7
तक्ष्णः 6.4.134
तक्ष्णा 6.4.134, 6.4.137
तक्ष्णुहि 3.4.87, 6.4.106
तक्ष्णे 6.4.134, 6.4.137
तक्ष्णोति 3.1.76
तङ्गनासिका 4.1.55
तच्छ्मश्रुणा 8.4.63
तच्छ्लोकेन 8.4.63
तट् 8.2.29
तटः 2.3.46
तटम् 2.3.46
तटी 2.3.46
तण्डवतण्डाः 6.2.37
तण्डुलकिण्वम् 2.2.31
तण्डुलिकः 5.2.115
तण्डुली 5.2.118
तण्डुलीयम् 5.1.4
तण्डुल्यम् 5.1.4
तत् 8.4.47
ततः 1.1.38,5.3.1, 5.3.2,5.3.6, 5.3.8,6.3.35, 6.4.37
ततक्ष 3.1.36
ततक्षिथ 6.4.121
ततमः 5.3.93
ततरः 5.3.92
ततवान् 6.4.37
ततान 7.3.34
ततिः 6.4.37
ततुरिः 3.2.171, 7.1.103
तत्करः 3.2.21, 6.1.157
तत्करा 3.2.21
तत्तम 8.4.47
तत्तृतीयः 6.2.162
तत्पाणिनिः 2.1.6
तत्प्रथमः 6.2.162
तत्याज 6.1.35,6.1.36
तत्र 1.1.38,5.3.2, 5.3.10,6.3.35
तत्र कृतम् 2.1.46
तत्रत्यः 4.2.104
तत्र नः परि 6.1.138
तत्र नः संस्कृ 6.1.138
तत्र न उप 6.1.138
तत्रपीतम् 2.1.46
तत्र भवान् 3.3.141
तत्र भवान् गार्ग्यायणः 4.1.166
तत्र भवान् दाक्षायणः 4.1.166
तत्र भवान् वात्स्यायनः 4.1.166
तत्र भुक्तम् 2.1.46
तत्र शाला 2.4.82
तत्रसतुः 6.4.124
तत्रसिथ 6.4.124
तत्रसुः 6.4.124

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तत्वा 6.4.37
तत्सरतुः 6.4.120
तत्सरुः 6.4.120
तथा 5.3.23
तथाकारम् अहं 3.4.28
तद् 7.2.102
तदा 1.1.38,5.3.15, 5.3.19,5.3.21
तदा ओढा 6.1.95
तदानीम् 5.3.19
तदिदं 1.2.69
तदीयम् 1.1.74
तदु अस्य 8.3.33
तदोढा 6.1.95
तद्दर्शः 3.2.60
तृद्द्वितीयः 6.2.162
तद्बहुः 6.2.162
तद्ब्राह्मण 7.1.23
तद्र्यङ् 6.3.92
तद्वस्य 8.3.33
तनिता 7.2.9
तनितुम् 7.2.9
तनुमः 6.4.107
तनुवः 6.4.107
तनुवम् 6.4.77
तनू इति 1.1.19
तनूनपात् 6.2.140
तनोति 3.1.79
तन्तनीति 7.4.85
तन्तन्यते 6.4.44, 7.4.85
तन्तान्तः 6.4.15
तन्तिः 3.3.174, 6.4.39,7.2.9
तन्तिपालः 6.2.78
तन्तुः 3.4.75
तन्तुवायः 6.2.76, 6.2.77
तन्तुवायः 3.2.2
तन्त्र उतम् 8.3.21
तन्त्रकः पटः 5.2.70
तन्त्रकः प्रावारः 5.2.70
तन्त्रम् 7.2.9
तन्त्रयुतम् 8.3.21
तन्त्रीतरा 6.3.44
तन्द्रालुः 3.2.158
तन्मः 6.4.107
तन्यते 6.4.44
तन्वः 6.4.107
तन्वम् 6.4.77
तपनः 3.1.134
तपन्ति 3.1.88
तपश्च तपस्यश्च 4.4.128
तपस्यः 4.4.128
तपस्यति 3.1.15
तपस्वी 5.2.102, 5.2.121
तप्तरहसम् 5.4.81
तप्ता 7.2.10
तमः 7.3.34
तमं तमं 6.4.93
तमकः 7.3.34
तम् अधिचक्रे 1.3.33
तमसाकृतम् 6.3.3
तमित्वा 7.2.56
तमिस्रम् 5.2.114
तमिस्रा 5.2.114
तमी 3.2.141,7.3.34
तमोऽपहः 3.2.50
तयः 6.1.203
तयोरन्यः पिप्पलं 8.1.65
तरङ्गात्यस्तः 2.1.24
तरङ्गापन्नस्तः 2.1.38
तरट् 3.1.134
तरति 1.1.3,7.3.84
तरिता 1.1.2,7.2.10, 7.2.38
तरितारम् 7.2.34
तरित्रतः 7.4.65
तरीतत् 6.3.116
तरीता 7.2.1,7.2.38
तरीतारम् 7.2.34
तरुणी 4.1.15
तरुतारम् 7.2.34
तरुषेम 3.1.85
तर्त्स्यति 7.2.57
तर्दिष्यति 7.2.57
तर्पणम् 6.1.59
तर्पिता 6.1.59,7.2.10, 7.2.45
तर्प्तव्यम् 8.4.65
तर्प्ता 6.1.59,7.2.10, 7.2.45,8.4.65
तर्प्तुम् 1.1.9,8.4.65
तर्प्णम् 6.1.59
तर्षित्वा 1.2.25
तर्हि 5.3.21
तल्लँल्लोकम् 8.2.3
तलसस्पारम् 8.3.53
तलुनी 4.1.15
तव 6.1.211,7.1.27, 7.2.90,7.2.96
तव पर्यायः 3.3.38
तव पुष्प 6.2.74
तव राजोप
तवश्यं 6.1.87
तवल्कारः 6.1.87
तव विशायः 3.3.39
तव स्वम् 6.1.211, 7.1.27
तवेदम् 6.1.87
तवेहते 6.1.87
तवोदकम् 6.1.87
तष्टः 8.2.29
तष्टवान् 8.2.29
तस् 1.4.99
तस्करः 6.1.157
तस्थतुः 6.4.64
तस्थिथ 6.4.64
तस्थिवान् 7.2.67
तस्थुः 6.4.64
तस्थौ 7.1.34
तस्मात् 7.1.15
तस्मिंस्त्वा 8.3.8
तस्मिन् 7.1.15
तस्मिन्त्वा 8.3.8
तस्मै 7.1.14
तस्याः 7.3.114
तस्यै 7.3.114
तांस्त्वं 8.3.8
ताक्षण्यः 4.1.112, 4.1.153,6.4.135
ताक्षशिलः 4.3.93
ताक्ष्णः 4.1.112, 4.1.153,6.4.135,
ताक्ष्ण्यः 4.1.112, 4.1.153
ताडघः 3.2.55
ताडघातः 3.2.5,3.2.55
ताणबिन्दविः 4.1.148
ताण्डिनः 4.2.66, 4.3.104
तात्कालिका 4.2.116
तात्कालिकी 4.2.116
तादः 4.1.156
तादायनिः 4.1.156
तादृक् 3.2.60,6.3.91
तादृक्षः 3.2.60,6.3.91
तादृङ् 7.1.83
तादृशः 3.2.60,6.3.91
तादृशी 4.1.15
ताद् ब्राह्मणात् 7.1.39.
तानि इमानि 1.2.69
तानि बहून्य 6.2.162
तानि सन्ति 1.1.58
तान्तः 6.4.37
तान्तवान् 6.4.37
तान्तुवायिः 4.1.153
तान्तुवाय्यः 4.1.152
तान्त्वा 7.2.56
तापः 6.1.160
तापनीयम् 4.3.153
तापसः 5.2.103
तापसरक्षितम् 6.2.45
तापसी 6.4.172
तापसी 4.1.15
तामं वामं 6.4.93
तामिस्रः 5.2.103
ताम्यति 7.3.74
ताम्रनखी 4.1.58
तायते 6.4.44
तारका 7.3.45
तारकितम् 5.2.36
तारिकादासी 7.3.45
तारिषत् 3.1.34,3.4.7, 3.4.94,3.4.97
तार्क्कवम् 4.3.137
तार्णकाः 6.4.153
तार्णबिन्दविः 4.1.148
तार्णबिन्दविकः 4.1.148
तार्णाबिन्दवी 4.2.28
तार्णबिन्दवीयम् 4.2.28
तार्तीयीकम् 4.2.8
तालजङ्घः 6.2.114
तालभञ्जिका 3.3.109
तालंभञ्जिका 6.2.74
तालम् 4.3.152
तावकः 4.3.3
तावकीनः 4.3.3
तावच्छः 1.1.23
तावतिकः 5.1.23
तावतिथः 5.2.53
तावत्कः 1.1.23,5.1.23
तावत्कृत्वः 1.1.23
तावद्धा 1.1.23
तावद्भार्यः 6.3.39
तावद्वयसम् 5.2.37
तावन्मात्रम् 5.2.37
तावान् 5.2.39,6.3.91
तासाम् 7.1.52
तिककितवा 2.4.68
तिङ् 1.1.71
तितंसति 7.2.49, 6.4.17
तितउच्छत्र 1.1.7

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तितनिषति 6.4.17, 7.2.49,8.4.54
तितरिषति 7.2.40
तितरीषति 7.2.40
तितर्दिषति 7.2.57
तितांसति 6.4.17, 7.2.49
तितिक्षते 3.1.5
तितिक्षा 1.2.20
तितीर्षति 7.2.40, 8.4.54
तितृत्सति 7.2.57
तित्तिरिः 4.1.65
तित्तिरिकपिञ्जलम् 2.4.12
तित्तिरिकपिञ्जलाः 2.4.12
तित्याज 6.1.36
तिप् 1.4.99
तिमिङ्गिलः 6.3.70
तिमिङ्गिलगिलः 6.3.70
तिमिरपटलै 4.1.31
तिमिहः 3.2.49
तिरः कर्त्तव्यम् 8.3.42
तिरः कर्त्ता 8.3.42
तिरः कर्त्तुम् 8.3.42
तिरः कृत्य 1.4.72
तिरः कृत्वा 1.4.72, 8.3.42
तिरश्चा 6.3.94
तिरश्चे 6.3.94
तिरस्कर्त्तव्यम् 8.3.42
तिरस्कर्त्ता 8.3.42
तिरस्कृतम् 1.4.72
तिरस्कृत्य 1.4.72
तिरस्कृत्वा 1.4.72
तिरोभूतम् 1.4.71
तिरो भूत्वा 1.4.71
तिरोभूय 1.4.71
तिर्पिरीकम् 8.2.18
तिर्यक् 6.3.94
तिर्यक्कारं गतः 3.4.60
तिर्यक् कृत्य गतः 3.4.60
तिर्यकृ कृत्वा काहष्ठं 3.4.60
तिर्यक् कृत्वा गतः 3.4.60
तिर्यङ् 6.3.94
तिर्यञ्चः 6.3.94
तिर्यञ्चौ 6.3.94
तिलकटम् 5.2.29
तिलकाः 5.3.77
तिलतैलम् 5.2.29
तिलन्तुदः 3.2.28
तिलपलंलम् 6.2.135
तिलपिञ्जः 4.2.36
तिलपेजः 4.2.36
तिलमय 4.3.149
तिलमिश्रः 2.1.31
तिलमिश्राः 6.2.154
तिलव्रती 5.1.94
तिलाः 4.3.166
तिलान्स्यावपति 1.1.7
तिलापूपिका 5.2.82
तिलोदकम् 6.2.96
तिलोदरा 4.1.55
तिलोदरी 4.1.55
तिल्पिञ्जः 4.2.36
तिल्पिलीकम् 8.2.18
तिल्यम् 5.1.7,5.2.4
तिष्ठति 7.3.78
तिष्ठतु सर्पिः 8.3.44
(मयि) तिष्ठते 1.3.23
तिष्ठते कन्या 1.3.23
तिष्ठते त्वयि 1.3.23
तिष्ठते वृषली 1.3.23
तिष्ठद्गु 2.1.17
तिष्ठन्तोऽनुशासति 3.2.126
तिष्ठासति 1.2.8,7.4.61, 7.4.79,8.3.61 8.4.54
तिष्ठेद् 8.2.97
तिष्यः 4.3.34
तिष्यपुनर्वसवः 1.2.63
तिष्यपुनर्वसवीयम् 4.2.6
तिष्यपुनर्वसवीयम् अद्य 4.2.6
तिष्यपुनर्वसु 1.2.64
तिष्यपुनर्वसू 1.2.63
तिसृका 7.2.99
तिसृणाम् 6.1.177, 6.4.4,6.4.5,8.4.1
तिसृभिः 6.1.180
तिसृभिः 7.2.99,7.2.100
तिसृणाम् 6.4.5
तिस्रः 4.1.10,7.2.99
तिस्रः पश्य 7.2.100
तिस्रस्तिष्ठ 6.1.166
तीक्ष्णाया सूच्या 2.1.2
तीक्ष्णशृङ्गा 4.1.55
तीक्ष्णशृङ्गी 4.1.55
तीक्ष्णेन परशुना 2.1.2
तीर्णः 7.2.11
तीर्णवान् 7.2.11
तीर्त्वा 7.2.11
तीर्थकाकः 2.1.42
तीर्थध्वाङ्क्ष 2.1.42
तीर्थे ध्वाङ्क्षस्तिष्ठति 2.1.42
तीर्थवायसः 2.1.42
तीव्रगन्धो 5.4.135
तुग्रियः 4.4.115
तुङ्गनासिकं 5.4.118
तुङ्गनासिका 4.1.55
तुङ्गनासिकी 4.1.55
तुतोज 6.1.7
तुत्रौकिषते 4.7.59, 7.4.58
तुत्रौके 7.4.59
तुदतः 6.1.186
तुदता 6.1.173
तुदताम् 7.1.80
तुदति 3.1.77,7.1.59, 7.1.80
तुदती 6.1.173
तुदती कुले 7.1.80
तुदती ब्राह्म 7.1.80
तुदद्भिः 6.1.173
तुदद्भ्याम् 6.1.173
तुदन्ती 6.1.173
तुदन्ती कुले 7.1.80
तुदन्ती ब्राह्म 7.1.80
तुन्दपरिमा 3.2.5
तुन्दपरिमृजः 3.2.4
तुन्दवान् 5.2.117
तुन्दिकः 5.2.117
तुन्दिभः 5.2.139
तुन्दिलः 5.2.117
तुन्दी 5.2.117
तुन्नवायः 6.2.76
तुभ्यम् 7.1.28,7.2.95, 7.3.90
तुभ्यंम् 6.1.212
तुम्बुरुणी 7.1.73
तुम्बुरुणे 7.1.73
तुम्फति 7.1.59
तुरः 6.4.21
तुरङ्गस्कन्धः 4.2.51
तुराषाट् 3.2.63, 8.2.31,8.3.56
तुरासाहम् 8.3.56
तुरीयः 5.2.51
तुरीयभाक् 6.1.67
तुरीयभिक्षा 2.2.3
तुरौ 6.4.21
तुर्यः 5.2.51
तुर्यभिक्षा 2.2.3
तुला देवदत्तस्य 2.3.72
तुलाप्रग्रहेण 3.3.52
तुलाप्रग्राहेण 3.3.52
तुल्यम् 4.4.91
तुल्यंमहान् 6.2.2
तुल्यमहान् 2.1.68
तुल्यंलोहितः 6.2.2
तुल्यश्वेतः 2.1.68
तुल्यो देवदत्तस्य 2.3.72
तुल्यो देवदत्तेन 2.3.72
तुषंजः 6.2.82
तुष्टः 3.2.188
तुष्टाव 8.3.61
तुष्टुध्वे 7.2.13
तुष्टुम 7.2.13
तुष्टुमहे 7.2.13
तुष्टुव 7.2.13
तुष्टुवहे 7.2.13
तुष्टुह्वे 7.2.13
तुष्टूषति 1.2.9,6.4.16, 8.3.61
तुष्टोथ 7.2.13
तुहिनात्यस्तः 2.1.24
तूः 6.4.20,6.4.21
तूणीरधारः 6.2.75
तूताव 6.1.7
तूतुजानः 6.1.7
तूरः 6.4.20
तूरौ 6.4.20
तूर्णः 6.4.21,7.2.28
तूर्णवान् 6.4.21
तूर्त्तिः 6.4.20,6.4.21
तूष्णीं भूत्वा 3.2.63
तूष्णीकः 5.3.71
तूष्णीकाम् 5.3.71
तूष्णीम्भूय 3.4.63
तूष्णीम्भावम् 3.4.63
तृंहणम् 8.4.2
तृंहणीयम् 8.4.2
तृचं 6.1.37
तृणकाण्डम् 4.2.51
तृणकीया 6.4.153
तृणजम्भा 5.4.125
तृणमय 4.3.144
तृणविस्तर 3.3.33
तृणशः 4.2.80
तृणंसिंहः 6.2.72
तृणहानि 7.3.92
तृणेक्षि 7.3.92

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तृणेढि 7.3.92
तृणेह्मि 7.3.92
तृणोपल 2.4.11
तृण्ढः 7.3.92
तृण्या 4.2.49
तृतः 6.4.37
तृतवान् 6.4.37
तृतीयः 5.2.55,5.3.48, 6.4.2
तृतीयकम् 4.2.8,5.2.77
तृतीयम् 5.3.48
तृतीयस्मै 1.1.36
तृतीयस्यै 7.3.115
तृतीयाक 5.4.58
तृतीयाकरोति 8.1.12
तृतीया भिक्षा 2.2.3
तृतीयाय 1.1.36
तृतीयायै 7.3.115
तृतीया विद्या 4.2.8
तृतीयिकः 5.1.48
तृप्तः 3.2.188,6.1.59
तृप्तजातः 6.2.170
तृप्तालुः 5.2.122
तृप्नोति 8.4.39
तृफति 7.1.59
तृम्फति 7.1.59
तृषित्वा 1.2.25
तृष्णाक् 3.2.172
तृष्णावरुत्री 6.2.140
ते 1.2.29,7.1.17, 7.2.102
ते अग्ने 6.1.115
ते अस्मिन् 6.1.115
तेजयति 3.1.5
तेजस्विन् 5.2.122
तेतिम्यते 7.4.85
तेप्ता 7.2.10
तेभ्यः 6.1.182
तेऽयस्मय 6.1.116
तेरतुः 6.4.122
तेरिथ 6.4.122,7.2.38
तेरुः 6.4.122
तेऽवदन् 6.1.16
तेषाम् 7.1.52
तेष्ठीयते 6.4.66
तेष्ठीव्यते 6.1.64
तैकायनिः 4.1.90, 4.1.149,4.1.154
तैकायनिः पुत्र 2.4.58
तैकायनीय 4.1.90
तैङः 4.3.66
तैङम् 4.3.66,4.3.68
तैतिरीयम् 3.1.2
तैतिलकंद्रूः 6.2.42
तैतिलाः 6.4.144
तैत्तिरः 4.3.135
तैत्तिरम् 4.2.44, 4.3.154
तैत्तिरिकः 4.4.35
तैत्तिरीयम् 3.1.2
तैत्तिरीयाः 4.3.102
तैन्तिडीक 4.3.137
तैन्तिडीकम् 4.4.4
तैलकम् 5.3.85
तैलकल्पा 5.4.14
तैलखलिः 4.1.173
तैलपीतः 2.2.37
तैलपेष पिनष्टि 3.4.38
तैलम् 4.3.149
तैलम्पाता 4.2.58, 6.3.71
तैलस्पृक् 6.1.67
तैलस्यन्दः 6.4.28
तैलीनम् 5.2.4
तैलोदङ्कः 3.3.123
तैषः 6.4.149
तैषम् 4.3.16,6.4.149
तैषि 6.4.149
तोतित्के 7.4.65
तोत्रम् 3.2.182
तोत्रा 7.2.10
तोमरग्रहः 3.2.9
तोष्टा 7.2.10
तोष्टूयते 7.4.25
तौ 1.2.72,7.2.102
तौदेयः 1.3.10,4.3.94
तौम्बुरवम् (पूर्णम्) 7.1.73
तौम्बुरविणः 4.3.104
तौरायणिक 5.1.18, 5.1.72
तौल्वलायनः 2.4.61
तौल्वलिः 2.4.61
तौषायनः 4.2.80
त्मनम् 6.4.141
त्मना 6.4.141
त्मनि 6.4.141
त्मने 6.4.141
त्मन्या 6.4.141
त्यक्ता 7.2.10
त्यद् 7.2.102
त्यदः 7.2.102
त्यदीयम् 1.1.74
त्यदौ 7.2.102
त्यस्मात् 7.1.16
त्यस्मिन् 7.1.16
त्यागः 1.1.50,2.3.15, 3.3.18,7.2.116, 7.3.52
त्यागः 6.1.159
त्यागः 6.1.216
त्यागाय व्रजति 2.3.15
त्यागिमम् 4.4.20
त्यागी 3.2.142,6.4.24
त्याज्यम् 7.3.66
त्यादः 4.1.156
त्यादायनिः 4.1.156
त्यादृक् 3.2.60
त्यादृशः 3.2.60
त्यृचं 6.1.37
त्ये 7.2.102
त्यौ 7.2.102
त्रपटत्रपटा 5.4.57
त्रपा 3.3.104
त्रपिष्ठः 6.4.157
त्रपीयान् 6.4.157
त्रपु 7.1.23
त्रपुणी 7.1.17,7.1.19, 7.1.73
त्रपुणे 7.1.73
त्रपूणाम् 6.1.177
त्रपूणि 1.1.42,7.1.20, 7.1.72
त्रप्ता 6.1.59,7.2.10, 7.2.45
त्रयः 7.2.99
त्रयः पञ्चाशत् 6.3.49
त्रयदतमालमेत 5.4.142
त्रयम् 5.2.42
त्रयश्चत्वारिंशत् 6.3.49
त्रयस्त्रिंशत् 6.3.48
त्रयाणाम् 7.1.53
त्रयाणाम् 6.1.179
त्रयी गतिः 5.2.43
त्रयोदंश 6.2.35
त्रयोदश 6.3.48
त्रयोदशः 5.2.48
त्रयोदशान्यिकः 4.4.64
त्रयोदशी 4.3.16
त्रयोविंशति 6.3.48
त्रसति 3.1.70
त्रस्नुः 3.2.140
त्रस्यति 3.1.70
त्राणः 8.2.56
त्राणम् 7.4.41
त्रातः 6.1.205
त्रातः 8.2.56
त्रातम् 7.4.41
त्राध्वं नो देवाः 2.4.73
त्रापुषम् 4.3.138
त्राप्यम् 3.1.126
त्रिंशः 5.2.56
त्रिंशकः 5.1.24, 6.4.143
त्रिंशत् 5.1.59
त्रिंशत्कः 5.1.24
त्रिंशत्तमः 5.2.56
त्रिंशम् 5.2.46
त्रिंशिनः 5.1.58,5.2.37
त्रिः करोति 8.3.43
त्रिःषमृद्धत्वाय 8.3.106
त्रिकाः काश 4.2.65
त्रिः पचति 8.3.43
त्रिःसमृद्धत्वाय 8.3.106
त्रिकंर्सः 6.2.122
त्रिकंसम् 5.1.28
त्रिककुत् 5.4.147
त्रिककुदः 5.4.147
त्रिकम् 5.1.37,5.1.58, 5.2.77
त्रिकम्बल्या 4.1.22
त्रिकरः 3.2.2
त्रिकाः शालङ्कायनाः 5.1.58
त्रिकाकिणीकम् 5.1.33
त्रिकाण्डः 6.2.122
त्रिकाण्डी रज्जुः 4.1.23
त्रिखारम् 5.4.101
त्रिखारि 5.4.101
त्रिगर्तेभ्यो 2.3.10
त्रिगुणाकर्णः 6.3.115
त्रिचक्रः 6.2.199
त्रिचतुराः 2.2.25, 2.2.34,5.4.77
त्रिचत्वारिंशत् 6.3.49
त्रिचितीकः 6.3.127
त्रितयम् 5.2.42
त्रिदन् 5.4.141
त्रिदन् 6.2.197
त्रिदशाः 6.3.47,6.3.48
त्रिदाम्नी 4.1.27
त्रिधा 5.3.42,5.3.45, 5.3.46
त्रिनावम् 5.4.99
त्रिनिष्कम् 5.1.30

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

त्रिनैष्किकम् 5.1.30
त्रिपञ्चाशत् 6.3.49
त्रिपण्यम् 5.1.34
त्रिपथम् 2.4.18
त्रिपदा ऋक् 4.1.9
त्रिपदिकां 6.4.130
त्रिपदिकाम् 5.4.2
त्रिपदी 4.1.8
त्रिपरि 2.1.10
त्रिपात् 6.2.197
त्रिपात् 4.1.8,5.4.140
त्रिपाद्यम् 6.3.53, 5.1.34
त्रिपाद्र्यः 6.2.122
त्रिपुरी 5.4.68
त्रिपुरुषम् 5.2.38
त्रिपुरुषा 4.1.24
त्रिपुरुषी4.1.24,5.2.38
त्रिप्रतिकम् 5.1.29
त्रिफला 4.1.4,4.1.21
त्रिफली 4.1.4
त्रिबिस्तम् 5.1.31
त्रिबिस्ता 4.1.22
त्रिबैस्तिकम् 5.1.31
त्रिभिः 6.1.179
त्रिभिष्टुतस्य 8.3.105
त्रिभिस्तुतस्य 8.3.105
त्रिभुवनम् 2.4.17
त्रिभूमः 5.4.75
त्रिभ्यः 6.1.179
त्रिमन्थः 6.2.122
त्रिमयम् 5.2.47
त्रिमातुरः 6.3.48
त्रिमाष्यम् 5.1.34
त्रिमास्यः 5.1.82
त्रिमुनि 2.1.19
त्रिमूर्द्धः 5.4.115, 6.2.197
त्रिमूर्द्धा 6.2.197
त्रियम्बकम् 6.4.77
त्रिरात्रः 5.4.87
त्रैरात्रिकः 5.1.87
त्रिरात्रीणः 5.1.87
त्रिर्भुङ्क्ते 5.4.18
त्रिवती 5.2.15
त्रिवतीः 6.1.176
त्रिवर्षः 5.1.88
त्रिवर्षा 4.1.22
त्रिवर्षीणः 5.1.88
त्रिवार्षिकः 5.1.88, 7.3.16
त्रिविंशः 5.2.56
त्रिविंशतिकीनम् 5.1.32
त्रिविंशतितमः 5.2.56
त्रिविधोध्नी 4.1.26
त्रिवृतां 6.2.199
त्रिवेदः 4.1.88
त्रिशः 5.4.43
त्रिशंकलपतितः 6.2.47
त्रिशतकम् 5.1.21
त्रिशतम् 5.1.35, 6.3.48,6.3.49
त्रिशता 4.1.22
त्रिशतिकां 5.4.2
त्रिशत्यम् 5.1.34, 5.1.35
त्रिशत्रः 2.4.29
त्रिशमः 5.2.37
त्रिशाणम् 5.1.35, 5.1.36
त्रिशाण्यम् 5.1.35, 5.1.36
त्रिशूर्पम्5.1.19,5.1.28
त्रिशूर्प्पः 6.1.122
त्रिषन्धि 8.3.106
त्रिष्करोति 8.3.43
त्रिष्टुप् 8.4.56
त्रिष्टुप् छेते 8.4.63
त्रिष्टुप् शेते 8.4.63
त्रिष्टुब् 8.4.45,8.4.56
त्रिष्टुबत्र 8.2.39
त्रिष्टुब्भस 1.1.50
त्रिष्टुब् भसति 8.4.62
त्रिष्टुब् हसति 8.4.62
त्रिष्टुभ् 8.4.46
त्रिष्ठः 8.3.97
त्रिष्पचति 8.3.43
त्रिसंवत्सरीणः 5.1.87
त्रिसन्धिः 8.3.106
त्रिसमीनः 5.1.86
त्रिसहस्रम् 6.3.48
त्रिसांवत्सरिकः 5.1.87
त्रिसीत्यम् 4.4.91
त्रिस्तना 6.2.163
त्रिस्ताक्षी 5.4.78
त्रिस्तावा 5.4.84
त्रिहल्यः 4.4.97
त्रिहस्ति 5.2.38
त्रिहस्तिनी 5.2.38
त्रिहायणी 4.1.27
त्रिहायना शाला 4.1.27
त्रीणाम् 7.1.53
त्रीणि 7.2.99
त्रुटति 3.1.70
त्रुट्यति 3.1.70
त्रेधा 5.3.46
त्रेपाते 6.4.122
त्रेपिरे 6.4.122
त्रेपे 6.4.122
त्रेसतुः 6.4.124
त्रेसिथ 6.4.124
त्रेसुः 6.4.124
त्रैंशानि 5.1.62
त्रैककुदी 4.3.112
त्रैगर्त्तकः 4.2.53, 4.2.124
त्रैगुणिकः 4.4.30
त्रैदैवदत्तिः 4.1.88
त्रैधम् 5.3.45,5.3.46
त्रैपारायणिकः 5.1.19
त्रैमातुरः 1.1.51
त्रैयन्यिकः 4.4.63
त्रैयह्निकः 5.1.87
त्रैरात्रिकः 5.1.87
त्रैलोक्यम् 5.1.124
त्रैवर्षिकम् 7.3.16
त्रैवार्षिकः 5.1.88
त्रैविद्यः 4.2.60
त्रैशङ्कवम् 4.2.79
त्रैशाणम् 5.1.36, 7.3.17
त्रैष्टुभम् 4.2.55
त्रैसमिकः 5.1.86, 7.3.15
त्रैस्वम् 5.1.124
त्रैस्वर्यम् 5.1.124
त्रैहायनम् 5.1.130
त्रौर्णावीत् 7.2.6
त्र्यङ्गुल 5.4.114
त्र्यङ्गुलम् 5.4.86
त्र्यङ्गुल 5.4.103
त्र्यङ्गुलिः 5.4.102
त्र्यन्यः 2.2.35
त्र्यन्याय 1.1.29
त्र्यम्बकम् 6.4.77
त्र्यशीतिः 6.3.48
त्र्यहः 2.1.23,2.4.29, 5.4.88,5.4.89, 6.4.145
त्र्यहजातः 2.2.5
त्र्यहोजातः 6.2.170
त्र्यहदेयम् 2.1.43
त्र्यहनि 6.3.110
त्र्यहपूर्वाय 1.1.30
त्र्यहमत्यासम् 3.4.57
त्र्यहात्यासम् 3.4.57
त्र्यहीणः 5.1.87
त्र्यहीनः 6.4.145
त्र्यहे 2.3.7 5.4.89,6.3.110
त्र्यह्नि 6.3.110
त्र्यह्ने 6.3.110
त्र्याचिता 4.1.22
त्र्याढकी 4.1.22
त्र्यायुः 5.4.77
त्र्यायुषम् 5.4.77
त्र्यूध्नी 4.1.26
त्व 1.1.27,1.2.30
त्वं पचसि 1.4.105
त्वं ब्राह्म 7.2.90
त्वक् 8.4.47,8.4.56
त्वक्क् 8.4.47
त्वक्षु 8.3.57
त्वग् 8.4.56
त्वग्वन्तः 5.3.65
त्वङ्मन्यः 6.3.68
त्वङ्मय 4.3.144
त्वङ्मयम् 8.4.45
त्वचयति 3.1.25
त्वचिकः 5.3.83
त्वचिसारः 6.3.9
त्वचीयान् 5.3.65
त्वत् 7.1.32, 7.2.90,7.2.97
त्वत्कपितृकः 1.1.29
त्वत्पतरः 7.2.98
त्वत्पुत्रः 7.2.98
त्वत्प्रधानाः 7.2.98
त्वदीयः 4.3.3,7.2.98
त्वदीयम् 1.1.74
त्वद् गच्छति 7.2.89
त्वद्धितम् 7.2.98
त्वद्यति 7.2.98
त्वद्यते 7.2.98
त्वन्नाथः 7.2.98
त्वम् 7.1.28,7.2.88, 7.2.90,7.2.94
त्वमत्र 8.3.23
त्वमह ग्रामं 8.1.61
त्वमहाऽरण्यं 8.1.61
त्वम् आस्से 8.3.32
त्वमृजिष्ठः 6.4.162
त्वमेन् 6.1.94
त्वयका 1.1.30,5.3.71
त्वयकि 5.3.71

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

त्वर्या 6.1.168
त्वया 7.2.89,7.2.91, 7.2.97
त्वयि 7.2.89,7.2.97
त्वर्यि 6.1.168, 7.2.89,7.2.97
त्वरितः 7.2.28
त्वष्टा 3.2.135,6.4.11
त्वष्टारः 6.4.11
त्वष्टारौ 6.4.11
त्वष्ट्रीयम् 5.1.135
त्वादायनिः 1.1.74
त्वाम् 7.1.28,7.2.87, 7.2.97
त्वावतः 5.2.39
त्वाष्ट्रः 7.2.117
त्वाष्ट्री 6.2.199
त्वे इति 1.1.13
त्वे रायः 1.1.13
त्वेष्टा 7.2.10
त्वोद्मन् 6.1.94
त्सरुकः 5.2.64

थ

थ 1.4.99
थस् 1.4.99

द

दंशमशकम् 2.4.8
दंष्टा 7.2.10
दंष्ट्रा 3.2.182
दक्षिणत आ 5.3.36
दक्षिणत आग 5.3.37
दक्षिणत उप 7.1.41
दक्षिणतः 5.3.28
दक्षिणतारम् 6.3.109
दक्षिणतीरम् 6.3.109
दक्षिणतो 5.3.28
दक्षिणतो ग्रामस्य 2.3.30
दक्षिणतो रम 5.3.35
दक्षिणतो रमणी 5.3.28
दक्षिणतो वस 5.3.35, 5.3.37
दक्षिणतो विपा 4.2.74
दक्षिणदक्षि 1.1.28
दक्षिणधुरीणः 4.4.78
दक्षिणपश्चात् 5.3.32
दक्षिणपश्चार्धः 5.3.32
दक्षिणपाञ्चालकः 7.3.13
दक्षिणपूर्वस्यै 1.1.28
दक्षिणपूर्वा दिक् 2.2.26
दक्षिणपूर्वायै 1.1.28
दक्षिणस्मात् 7.1.16
दक्षिणस्मिन् 7.1.16
दक्षिणाः 1.1.34
दक्षिणात् 7.1.16
दक्षिणा इमे 1.1.34
दक्षिणात्यिका 7.3.44
दक्षिणाद् आग 5.3.34
दक्षिणाद् रम् 5.3.34, 5.3.35
दक्षिणाद् वस 5.3.34, 5.3.35
दक्षिणायाः 7.1.39
दक्षिणा रम 5.3.36, 5.3.37
दक्षिणार्द्धम् 4.3.6
दक्षिणा वस 5.3.36, 5.3.37
दक्षिणाहि ग्रामात् 2.3.29
दक्षिणाहि रम 5.3.37
दक्षिणाहि वस 5.3.37
दक्षिणीयः 5.1.69
दक्षिणे 1.1.34,7.1.16
दक्षिणेन 3.3.138
दक्षिणेन ग्रामम् 2.3.31
दक्षिणेन ग्रामस्य 2.3.31
दक्षिणेन चेद् 3.3.156
दक्षिणेन रम 5.3.35
दक्षिणेन वस 5.3.35
दक्षिणेर्मा 5.4.126
दक्षिणोत्तरपू 1.1.28
दक्षिण्यः 5.1.69
दुग्धजानिं तृणानि 6.2.83
दग्धप्ररूढम् 2.1.49
दग्धव्यम् 8.2.32
दग्धा 7.2.10,8.2.32
दग्धुम् 8.2.32
दङ्क्ष्णवः 3.2.139
दण्डः 5.3.100
दण्डकः 5.3.87
दण्डताडम् 3.4.48
दण्डपाणिः 2.2.36
दण्डपाता 4.2.58
दण्डवती शाला 5.2.115
दण्डवान् 5.2.115
दण्डहस्तः 1.1.10
दण्डाऽग्रम् 1.1.9, 1.1.50,6.1.97, 6.1.101
दण्डादण्डि 2.1.17, 2.2.27,5.4.127
दण्डिकः 5.2.115
दण्डिन् 6.4.13
दण्डिनी 4.1.5
दण्डिनौ 6.4.12
दण्डी 5.2.115, 5.2.94,6.4.13
दण्डेन ताडम् 3.4.48
दण्डोपघातं गाः 3.4.48
दण्ड्यः 5.1.66
दत्तः 5.3.83,6.4.113, 7.4.46,8.4.53
दत्तः 6.1.205
दत्तकः 5.3.78,5.3.83
दत्तजातीया 6.3.42
दत्तदेशीया 6.3.42
दत्तवान् 7.4.46
दत्तवृन्दारिका 6.3.42
दत्तातरा 6.3.43
दत्तापाशा 6.3.38
दत्ताभार्यः 6.3.38
दत्तामानिनी 6.3.38
दत्तायते 6.3.38
दत्तार्मम् 6.2.90
दत्तिः 7.4.46
दत्तिकः 5.3.83
दत्तियः 5.3.83
दत्तिलः 5.3.83
दत्तो 6.1.63
दत्थः 8.4.53
दत्वाय 7.1.47
ददः 3.1.139
ददत् 6.1.5,7.1.78, 7.3.70
ददतः 7.1.78
ददति 6.1.5, 7.1.4,7.1.79
दुदर्ति 6.1.173
ददंति 6.1.189
ददतु 7.1.4
ददतुः 6.4.66
ददंतु 6.1.189
ददतौ 7.1.78
दददाते 6.4.126
दददिरे 6.4.126
दददे 6.4.126
ददन्ति 7.1.79
ददर्श 3.2.105, 3.2.106,3.2.107
ददर्शिथ 7.2.65
ददात् 7.3.70
ददाति 7.4.78
ददांति 6.1.190, 6.1.192
ददिः 3.2.171
ददिर्गाः 2.3.69
ददुः 6.4.66
ददृत् 3.2.178
ददृशिवान् 7.2.68
ददृश्वान् 7.2.68
ददौ 7.3.32,8.4.54
दद्धयत्र 1.1.58, 6.1.77,8.4.47
दुद्यात् 6.1.189
दद्रष्ठ 7.2.65
दधः 3.1.139
दधत् 7.1.78,7.3.70
दधतः 7.1.78
दधति 7.1.4,7.1.79
दुधर्ति 6.1.173
दधंति 6.1.189
दधंतु 6.1.189
दधतु 6.1.5,7.1.4
दधतौ 7.1.78
दुधनंत् 6.1.192
दधनम् 7.4.78
दधंनि 6.1.158
दधन्ति 7.1.79
दधातन 7.1.45
दधांति 6.1.190
दधाति 8.2.38
दधि 1.2.27,7.1.23, 8.3.111,8.4.57
दधिः 3.2.171
दधिं 1.4.110,8.4.57
दधि अत्र 6.1.127
दुधिकटुंकम् 6.2.126
दधिक्राः 3.2.68, 6.4.41
दधिघनः 3.3.77
दधिघृतम् 2.4.12
दधिघृते 2.4.12
दधि तिष्ठति 7.1.23
दधिदत्तम् 7.4.47
दधिना 7.1.75
दधिनी 7.1.19,7.1.75
दधिपयसी 2.4.14
दधिष्याम् 7.1.75
दधिशीतम् 1.1.10
दधिसात् 8.3.111
दधि सिञ्चति 8.3.65
दधिस्यति 7.1.51
दधिस्यात् 8.3.87
दधीचः 6.3.138
दधीचः 6.4.138
दुधीचंः 6.1.222

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दुधीचः 6.1.170
दुधीचां 6.1.222
दधीचा 6.4.138, 6.3.138
दुधीचैं 6.1.222
दधीचे 6.3.138, 6.4.138
दधीनि 1.1.42,7.1.20
दधीन्द्रः 6.1.101
दधीवान् 8.2.15
दधृग् 3.2.59
दधौ 7.3.32
दध्ना 7.1.75
दध्ने 7.1.75
दध्मः 8.4.53
दध्यत्र 1.4.109, 6.1.72,6.1.77, 6.1.101,6.1.109, 6.1.127,8.2.23
दध्यस्यति 7.1.51
दध्याशय 8.2.4
दध्याशा 8.2.4
दध्युदक 1.1.64
दध्योदनः 2.1.34
दध्यत्र 8.4.47
दध्रे 6.4.76
दध्वंसे 1.2.5
दध्वनतुः 6.4.125
दध्वनिथ 6.4.125
दध्वनुः 6.4.125
दध्वरतुः 7.4.10
दध्वरुः 7.4.10
दध्वर्थ 7.2.63
दनीध्वंसः 2.4.74
दनीध्वंसीति 7.4.84, 6.4.24
दनीध्वस्यते 7.4.84
दन्तच्छदः 3.3.118, 6.4.96
दन्तजातः 6.2.171
दन्तजाता 4.1.52
दन्तजाताः 6.2.171
दन्तधावनम् 6.2.150
दन्तनाशम् 3.4.45
दन्तयोर्हन्तिकुञ्जरम् 2.3.36
दन्तलेखकः 2.2.17
दन्तलेखकः 6.2.73
दन्तवान् 5.2.106
दन्तावलः 5.2.113, 6.3.118
दन्तुरः 5.2.106
दन्तूलः 5.2.97
दन्तौष्ठकः 5.2.66
दन्त्यम् 4.3.55, 5.1.6,5.1.19
दन्दशीति 7.4.86
दन्दशूकः 3.2.166
दन्दश्यते 3.1.24, 7.4.86
दन्दहीति 7.4.86
दन्दह्यते 3.1.24,7.4.86
दन्द्रमणः 3.2.150
दन्द्रम्यते 3.1.23
दमः 7.3.34
दमकः 7.3.34
दमदमाक 5.4.57
दमदमाकरोति 6.1.100
दमदमाभ 5.4.57
दमदमास्यात् 5.4.57
दमनः 3.1.134
दमयते 1.3.89
दमितः 7.2.27
दमित्वा 7.2.56
दमी 3.2.141,7.3.34
दम्पती 2.2.31
दम्पतीव 1.1.11
दयाञ्चक्रे 3.1.37
दयालु 3.2.158
दरः 3.3.58
दरत् 4.1.65,4.1.177
दरिद्रः 6.4.114
दरिद्रति 6.1.6,6.4.114
दरिद्रति 6.1.192
दरिद्रितं 6.1.192
दरिद्राञ्चकार 3.1.35, 7.2.67
दरिद्राणः 6.4.114
दरिद्राति 6.1.192, 6.4.114
दरिद्रायकः 6.4.114
दरिद्रितः 6.4.114
दरिद्रिथः 6.4.114
दरिद्रिमः 6.4.114
दरिद्रिवः 6.4.114
दरिद्रेष्वासीनेषु 2.3.36
दरी 3.2.157
दर्द्धर्त्ति 7.4.65
दर्द्धर्षि 7.4.65
दर्पणः 3.1.134
दर्पिता 6.1.59,7.2.10, 7.2.45
दर्पेण 8.4.2
दर्पा 6.1.59, 7.2.10,7.2.45
दर्प्पणम् 6.1.59
दर्भः पवित्र 3.2.185
दर्भकाण्डंम् 6.2.135
दर्भकुण्डंम् 6.2.136
दर्भचीरंम् 6.2.135
दर्भपूतीक 2.4.11
दर्भमय 4.3.144
दर्भमयम् 4.3.150
दर्भमूली 4.1.64
दर्भवाहणम् 8.4.8
दर्भशरम् 2.4.11
दर्भानूपः 8.4.39
दर्वि 7.3.109
दर्विः 1.2.41,6.1.67
दर्वी 7.3.109
दर्शनम् 6.1.58
दर्शनीयजातीयः 5.3.69
दर्शनीयतमः 5.3.55
दर्शनीयतराः 5.3.57
दर्शनीयपादः 6.2.138
दर्शनीयपूर्व 6.2.22
दर्शनीयभार्यः 6.3.34
दर्शनीयमानी 3.2.83, 6.3.36
दर्शनीयम्मन्य 3.2.83
दर्शनीयलला 6.2.177
दर्शनीयंस्तना 6.2.163
दर्शनीयोपक्र 6.2.14
दर्शनीयोपक्रमं 2.4.21
दर्शपौर्णमा 2.4.4
दर्शयति चैत्रं 1.4.53
दर्शयते 1.4.53
दर्शयते भृत्यै 1.4.53
दर्शश्च पौर्णमासश्च 2.4.4
दर्शिता 6.4.62
दर्शिषीष्ट 6.4.62
दर्शिष्यते 6.4.62
दर्ष्टा 6.4.62
दल्मिमान् 8.2.9
दवं 6.1.203
दवयति 6.4.155
दविद्युतत् 7.4.65
दविध्वतः 7.4.65
दविष्ठः 6.4.156
दवीयान् 6.4.156
दश 1.1.24,4.1.10, 7.1.22
दशकः 5.1.60
दशकपालः 2.1.52
दशकपालः 6.2.29
दशकपालः 4.1.88
दशकम् 5.1.58
दशकमासि 5.4.116
दशका वैयाघ्रपदीयाः 4.2.65
दशकुमारि 2.1.51
दशगवधनः 2.1.51
दशगवम् 2.4.17, 2.1.23,5.4.92
दशगवमयम् 5.4.92
दशगवरूप्यम् 5.4.92
दशगुः 5.4.92
दशगोणिः 1.1.52, 1.2.50
दशग्रीवः 6.2.114
दशत् 5.1.60
दशतयम् 5.2.42
दशतयी 4.1.15
दशति 6.4.25
दश दन्तोष्ठाः 2.4.15
दशद्वर्ग 5.1.60
दशनम् 3.2.182
दशनौः 5.4.99
दशपाकाः 5.4.17
दशपूली 2.1.51,2.4.1, 4.1.21
दश ब्राह्म 8.2.2
दशभगाल 6.2.29
दशभूम 5.4.75
दशमः 5.3.49
दशमात्रम् 5.2.37
दश मार्दङ्गिक 2.4.15
दशमास्यः 6.2.29
दशमी 5.2.130
दशमीपाशा 6.3.38
दशमीभार्यः 6.3.38
दशमीमानिनी 6.3.38
दशमीयते 6.3.38
दशरथी 2.4.17
दशराजम् 2.1.23
दशरात्रम् 2.1.23
दशवर्षः 6.2.29
दशशरावः 6.2.29
दशसूचिः 1.2.50
दशानाम् 6.4.7,7.1.54
दशारत्निः 6.2.29
दशारत्न्यः 6.2.29
दशार्णम् 6.1.89
दुशार्मम् 8.2.2
दुशाश्वः 6.2.29

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दशाश्वा 4.1.22
दशाश्वी 4.1.22
दशेन्द्रः 1.2.49
दशैकादशिकः 4.4.31
दशमीभार्यः 6.3.38
दशैकादशिकी 4.4.31
दश्यर्थते 8.4.49
दस्तः 7.2.27
दस्युभयम् 2.1.37
दस्युरूपः 5.3.66
दस्युहन्तमः 8.2.17
दस्योदस्यो3 8.2.95
दाक्षं लक्षणं 4.3.127
दाक्षः 4.3.127
दाक्षाः 4.2.112, 4.2.113,4.3.130
दाक्षायणः 2.4.58, 2.4.60,4.1.93, 4.1.101,4.1.122, 4.1.156,4.1.164, 4.1.165
दाक्षायणः पुत्र 2.4.60
दाक्षायणो जाल्मः 4.1.167
दाक्षिः 1.1.72,1.4.18 2.4.60,4.1.93, 4:1.122,4.1.160, 4.1.166,4.1.165, 6.4.148,7.2.117
दाक्षिः पिता 2.4.60
दाक्षिकटः 6.2.85
दाक्षिकन्था 2.4.20, 6.2.134
दाक्षिकन्थीय 4.2.142
दाक्षिकन्या 6.2.124
दाक्षिकार्षः 6.2.129
दाक्षिकूटः 6.2.85
दाक्षिकूलम् 6.2.129
दाक्षिग्रामः 6.2.84
दाक्षिग्रामीय 4.2.142
दाक्षिघोषः 6.2.85
दाक्षिणशाल 4.2.107
दाक्षिणात्यः 4.2.98
दाक्षिणात्यिका 7.3.44
दाक्षिणार्द्धाः 4.3.7
दाक्षिणार्द्धिक 4.3.6
दाक्षिणार्द्धिकाः 4.3.7
दाक्षिनगरी 4.2.142
दाक्षिपलदी 4.2.142
दाक्षिंपल्वलः 6.2.85
दाक्षिंपिङ्गलः 6.2.85
दाक्षिंपिशङ्ग 6.2.85
दाक्षिंपुंसा 6.2.85
दाक्षिप्रस्थः 6.2.87
दाक्षिप्रेक्षा 6.2.85
दाक्षिंबदरी 6.2.85
दाक्षिरथः 6.2.85
दाक्षिंर्वा 4.1.165
दाक्षिवाहन 8.4.8
दाक्षिंशालः 6.2.85
दाक्षिशाल्मली 6.2.85
दाक्षिंशिल्पी 6.2.85
दाक्षिह्रदः 6.2.85
दाक्षिह्रदीय 4.2.142
दाक्षी 1.2.66,4.1.65, 4.1.93,6.4.148,
दाक्षो घोष 4.3.127
दाक्षोऽङ्ग 4.3.127
दाक्ष्यंश्वत्थः 6.2.85
दागव्यायनिः 4.1.155
दाडिमीवान् 8.2.9
दाडिम्यत्र 1.1.12
दाडी 4.3.167
दाण्डकयः 5.3.116
दाण्डकीयः 5.3.116
दाण्डकीयौ 5.3.116
दाण्डपाता 4.2.58
दाण्डम् 6.4.164
दाण्डमाथिकः 4.4.37
दाण्डा 4.1.15,4.2.57
दाण्डाः 4.3.130
दाण्डाजिनि 5.2.76
दाण्डाजिनिकः 5.2.76
दाण्डायनुस्थली 6.2.129
दाण्डिकः 4.4.11
दाण्डिनायनः 6.4.174
दातम् 1.1.20,7.4.46
दातव्यम् 6.4.62
दाता 6.4.62,6.4.66, 7.2.10
दाति 2.4.76,6.1.8
दात्तः कूपः 4.2.74
दात्तामित्रीं 4.2.76
दात्तेयः 4.1.121
दात्त्रेण धान्यं 2.1.32
दात्त्रेण लुनाति 1.4.42
दात्यौहम् 7.3.1
दात्रम् 3.2.182,8.4.52
दात्रंलूना 6.2.48
दात्राकर्णः 6.3.115
दात्राकर्णः 6.2.112
दात्रामित्रीयः 4.2.123
दात्रेण लुनाति 2.3.18
दादर्द्धि 8.2.37
दाधर्त्ति 7.4.65
दाधारा 6.1.7
दाधिकम् 1.1.56, 4.2.18,4.4.3, 4.4.20,4.4.22
दाधिकः 4.4.8
दाधित्थम् 4.3.140, 4.3.155
दाधीचः 6.1.222
दाध्यश्विः 7.3.3
दाध्वर्यते 7.4.30
दानयति 3.1.6
दानीयो (ब्राह्मणः) 3.3.113
दान्तः 6.4.37,7.2.27
दान्तवान् 6.4.37
दान्त्वा 7.2.56
दापयति 7.3.36
दाभ्यम् 3.1.126
दामुकपुत्रः 6.2.132
दामनयः 5.3.116
दामनीयः 5.3.116
दामनीयौ 5.3.116
दामलिट् 8.2.32, 8.2.37
दामलिह्यति 8.2.32, 8.2.37
दामा 4.1.11
दामानः 4.1.11
दामानौ 4.1.11
दामिनी 5.2.137
दामोदरः 6.2.107
दाम्यति 7.3.74
दायः 3.1.139, 3.1.141,7.3.32
दायः 6.1.159
दायकः 7.3.32
दायिता 6.4.62
दायिषीष्ट 6.4.62
दायिष्यते 6.4.62
दारगवम् 2.2.31, 5.4.77
दारदः 4.1.120
दारदी 4.3.83
दाराः 1.2.53,3.3.20
दारुः 3.2.159
दारुकच्छकः 4.2.126
दारुणाऽध्यापकः 8.1.67
दारुणाऽभिरूपकः 8.1.67
दारुवहम् 6.3.121
दार्घसत्र 7.3.1
दार्ढ्यम् 5.1.123
दार्त्तेयम् 4.3.56
दार्दभकम् 4.4.4
दार्दुरिकः 4.4.34
दार्दुरूक 4.3.137
दार्भायणः 4.1.102
दार्भिः 4.1.102
दार्वकः 4.2.125
दार्वाघाटः 3.2.49
दार्विया 7.1.39
दार्षदाः सक्तवः 4.2.92
दावः 3.1.142
दाविकम् (उढकम्) 7.3.1
दाविकाकूलाः शालयः 7.3.1
दाशः 3.4.73
दाशरथः 4.1.95
दाशोदनिक 4.3.68
दाश्वान् 6.1.12
दासितः 7.2.27
दासी 5.3.98
दार्सी 6.1.204
दासीदासम् 2.4.11
दासीपदी 5.4.139
दासीपुत्रः 6.3.22
दासीफली 4.1.64
दार्सीब्राह्मणः 6.2.69
दासीभारः 6.2.42
दासीमाणवक 2.4.11
दासीय 6.4.64
दासीश्रोत्रियः 6.2.69
दासीष्ट 6.4.62,6.4.67
दासीसभम् 2.4.24
दासीसंभम् 6.2.98
दासेयः 4.1.131
दासेरः 4.1.131
दास्यति 6.4.62, 7.4.54,8.2.37, 8.3.57
दास्यते 6.4.62
दास्या सभ्र 1.3.55
दास्याः कामुक 2.3.69
दास्याः पुत्रः 6.3.22
दिक् 3.2.59
दिग्धसहशयः 3.2.15
दित्यवाट् 3.2.64
दित्यौहः 6.4.132
दित्यौहा 6.4.132
दित्यौही 4.1.61

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दित्यौहे 6.4.132
दित्सति 7.4.54
दित्स्यम् 3.1.97
दिदम्भिषति 7.2.49, 7.4.56
दिदरिद्रासति 6.4.114, 7.2.49
दिदरिद्रिषति 6.4.114, 7.2.49
दिदरिषते 7.2.75
दिदिवतुः 6.4.120
दिदिवांसः 6.1.66
दिदिवांसौ 6.1.66
दिदिवान् 6.1.66
दिदिवुः 6.4.120
दिदृक्षते नृपम् 1.3.57
दिदृक्षेण्यः 3.4.14
दिदेविथ 6.4.121
दिदेविषति 1.2.26, 7.2.49
द्युत् 3.2.178
द्युतिषति 1.2.26
द्योतिषते 1.2.26
दिद्रावयिषति 7.4.81
दिद्रासति 6.1.3
दिधरिषते 7.2.75
दिधिषुपति 6.2.19
दिवः 6.1.131
द्यवः 6.1.171
दिवः पृथिव्या 8.3.51
दिवस्पयः 8.3.53
दिवस्परि 8.3.51
दिवस्पातु 8.3.52
दिवस्पुत्राय 8.3.53
दिवस्पृथिव्यौ 6.3.30
दिवस्पृष्ठे 8.3.53
द्यवा 6.1.171
द्यवा 6.1.183
दिवाकरः 3.2.21
दिवातनम् 4.3.23
दिवामन्या रात्रिः 6.3.67
दिवामान्या रात्रिः 6.3.66
दिविजः 6.3.15
दिविष्ठः 8.3.97
दिविस्पृक् 6.3.9
दिविस्पृशम् 8.3.110
दिवे 6.1.171
दिवोदासाय 6.3.21
दिवौ 6.1.131
दिवौकसः 7.3.64
दिवोदासः 6.2.199
दिवोदासाय 6.2.91
दिवोदासाय 6.2.199
दिव्यति 8.2.77
दिव्यम् 4.2.101, 8.2.79
दिव्यवाट् 3.2.64, 8.2.31
दिशोदण्डः 6.3.21
दिश्यम् 4.3.54
दिष्टिः 5.2.37
दिष्टिमात्रम् 5.2.37
दीक्षातपसी 2.2.34, 2.4.14
दीक्षिता 3.2.153
दीडी 4.3.167
दीदांसते 3.1.6
दीध्यत् 6.1.6
दीध्यते 6.1.6
दीनः 8.2.45
दीनवान् 8.2.45
दीपयामः 7.1.46
दीपयामसि 7.1.46
दीपिता 3.2.153, 7.2.8, 7.2.9
दीपितुम् 7.2.8, 7.2.9
दीप्तः 7.2.14
दीप्तवान् 7.2.14
दीप्तिः 3.3.93, 7.2.9
दीप्रम् (काष्ठम्) 3.2.167
दीप्रः 7.2.8
दीयते 6.4.46, 6.4.66
दीर्घं ते 8.2.104
दीर्घकेशमानिनी 6.3.40
दीर्घकेशीपाशा 6.3.40
दीर्घकेशीभार्यः 6.3.40
दीर्घकेशीयते 6.3.40
दीर्घजङ्घः 6.3.34
दीर्घजङ्घा 4.1.55
दीर्घजङ्घी 4.1.55
दीर्घजानुः 5.4.113
दीर्घजिह्वी 4.1.59
दीर्घजीवितः 5.2.60
दीर्घजीवितीयः 5.2.60
दीर्घपात्रः 5.4.75
दीर्घमुखा शाला 6.2.167
दीर्घरात्र 5.4.75
दीर्घसक्थ 5.4.113
दीर्घसक्थि 5.4.113
दीर्घसक्थी 5.4.113
दीर्घसत्रम् 7.3.1
दीर्घाहा 8.2.68
दीर्घाहोऽत्र 8.2.68
दीर्घाह्वी 8.4.11
दीव्यति 3.1.69, 8.2.77
दीव्यन्ती 4.1.6, 7.1.81
दुःखजः 3.2.98
दुःखजाता 2.2.36, 4.1.52
दुःखज्ञातः 6.2.170, 6.2.171
दुःखज्ञातः 6.2.171
दुःखप्राप्त 6.2.47
दुःखप्राप्तः 6.2.47
दुःखाकरोति 5.4.64
दुःखापन्नः 2.1.24
दुःखापन्नः 6.2.47
दुःखायते 3.1.18, 7.4.25
दुःखार्तः 6.1.89
दुःखी 5.2.131
दुःशक्तः 5.4.121
दुःशक्तिः 5.4.121
दुःशासनः 3.3.130
दुःषन्धिः 8.3.98
दुःषमम् 8.3.88
दुःषमम् 6.2.121
दुःषुप्तः 8.3.88
दुःषूतिः 8.3.88
दुःसक्थः 5.4.121
दुःसक्थिः 5.4.121
दुग्धाम् 7.1.41
दुग्धास्वागतः 2.3.38
दुग्धे गौः स्वयमेव 3.1.89
दुद्यूषति 1.1.59, 7.2.49
दुद्रावयिषति 7.4.81
दुद्रुम 7.2.13
दुद्रुव 7.2.13
दुद्रोथ 7.2.13
दुन्दुभिर्वाव 2.4.74, 7.3.94
दुन्दुभिषेवणम् 8.3.98
दुरयणम् 8.2.19
दुरस्युः 7.4.36
दुरह्णः 8.4.7
दुराढ्यङ्करो 3.3.127
दुराढ्यम्भवम् 3.3.127
दुरुतम् 6.4.1
दुर्गः 3.2.48
दुर्गवदिकम् 2.1.6
दुर्जनाः सञ्च 2.4.54
दुर्दत्तम् 7.4.47
दुर्दर्शनः 3.3.130
दुर्दानः 3.3.128
दुर्दिनायते 3.1.17
दुर्द्धर्षणः 3.3.130
दुर्नयः 1.4.57
दुर्निर्णयः 1.4.57
दुर्नीतम् 1.4.57
दुर्बलकः 5.3.76
दुर्भिक्षाय सिता 2.3.13
दुर्भोजः 3.3.126
दुर्मर्षणः 3.3.130
दुर्मेधाः 5.4.122
दुर्यवनम् 2.1.6
दुर्योधनः 3.3.130, 5.3.100
दुर्लभम् 7.1.68
दुर्लाभः 7.1.68
दुर्हलः 5.4.121
दुर्हलिः 5.4.121
दुर्हृद् 5.4.150
दुर्हृदयशोरः 5.4.150
दुष्करः 3.3.126, 3.4.70
दुष्करः 6.2.139
दुष्कुलीनः 4.1.142
दुष्कृतम् 2.2.18, 8.3.41
दुष्क्रीता 4.1.50
दुष्टभ्रातृकः 5.4.1.57
दुष्टीयति 7.4.36
दुष्ठु 8.3.98
दुष्पानः 3.3.128
दुष्पानम् 8.4.35
दुष्पीतम् 8.3.41
दुष्पुरुषः 2.2.18
दुष्प्रजाः 5.4.122
दुष्प्रलम्भः 7.1.67, 7.1.68
दुष्वामा 8.3.98
दुष्वेधः 8.3.98
दुष्षन्धिः 8.3.98
दुष्षमम् 2.1.17
दुस्तरीपः 6.2.184
दुहन्ति 7.1.41
दुहाम् 7.1.41
दुहिता 4.1.10
दुहितुः पतिः 6.3.24
दुहितृपतिः 6.3.24
दुहित्रे 1.4.3
दुह्यम् 3.1.109
दूडाशः 6.3.109
दूडाभः 6.3.109

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दूढ्यः 6.3.109
दूणाशः 6.3.109
दूत्यम् 4.4.120, 5.1.126
दूनः 8.2.45
दूनवान् 8.2.45
दूरं ग्रामस्य 2.3.34, 2.3.35
दूरं ग्रामात् 2.3.34
दूरं पन्थाः 2.3.35
दूरक्तम् 8.3.14
दूरगः 3.2.48
दूरस्य पथः स्वम् 2.3.35
दूरादागतः 2.1.39, 6.2.49
दूरादागतः 6.2.144
दूराद् ग्रामस्य 2.3.35
दूराय पथे देहि 2.3.35
दूरे ग्रामस्य 2.3.36
दूरेण ग्रामस्य 2.3.35
दूरेत्यः 4.2.104
दूरेपाकः 7.3.53
दूरेपाकुः 7.3.53
दुर्वाकाण्डश्यामा 6.2.2
दूर्वावणम् 8.4.6
दूर्वावनम् 8.4.6
दूषणः 3.1.134
दूषयतः 6.4.90
दूषयति 6.4.90,6.4.91
दूषयन्ति 6.4.90
दु३ष्कुल 8.3.41
दु३ष्पुरुष 8.3.41
दृंहितम् 7.2.20
दृक्षीष्ट 6.4.62
दृग्भिः 8.2.62
दृग्भ्याम् 8.2.62
दृढः स्थूल 7.2.20
दृढता 5.1.123
दृढत्वम् 5.1.123
दृढधनुः 5.4.133
दृढधन्वा 5.4.133
दृढधूर 5.4.74
दृढमुष्टये 1.4.8
दृढमुष्टिना 1..4.8
दृढशालम् 6.2.123
दृढसेनो 2.4.19
दृढो बलवान् 7.2.20
दृणाति 7.3.80
दृतिहरिः पशुः 3.2.25
दृतिहारः 3.2.25
दृप्तः 6.1.59
दृफति 7.1.59
दृम्फति 7.1.59
दृशे 1.1.39
दृशेयम् 3.1.86
दृशे विख्याय 3.4.11
दृषत् 7.1.70
दृषतः शारदा 6.2.9
दृषत् करोति 5.4.57
दृषत् शारदा 6.2.9
दृषत्सु 4.1.2
दृषत् स्थानम् 8.2.26
दृषद् 4.1.2
दृषदः 3.1.4,7.1.70
दृषदा 4.1.2
दृषदाम् 4.1.2
दृषदि 4.1.2
दृषदिता 6.4.50
दृषदिमाषकः 6.2.64
दृषदिमाषकः 6.3.10
दृषदुपलम् 2.2.31
दृषदे 4.1.2
दृषदोः 4.1.2
दृषदौ 3.1.4,7.1.70
दृषद्भिः 4.1.2
दृषद्भ्यः 4.1.2
दृषद्भ्याम् 4.1.2
दृषद्विता 6.4.50
दृषद्वान् 8.2.10
दृष्टः 6.1.58
दृहितम् 7.2.20
देग्धा 7.2.10
देदीप्यते 3.1.22
देदीयते 6.4.66
देधीयते 6.4.66
देध्मीयते 1.1.59, 7.4.31
देभतुः 1.2.6,6.4.120
देभुः 1.2.6,6.4.120
देमतुः 6.4.120
देमुः 6.4.120
देयम् 6.4.65
देयात् 6.4.67
देवं शतं 1.4.51
देवः 5.3.83
देवः 6.1.205
देवकः 5.3.83
देवका 7.3.45
देवकीयम् 4.2.138
देवखाता 6.2.148
देवग्रामः 6.2.84
देवच्छन्दः 5.4.103
देवच्छन्दस 5.4.103
देवच्छन्दसा 5.4.103
देवजूतिः 6.2.42
देवता 5.4.27
देवतातिः 4.4.142
देवतायां भक्ति 7.3.107
देवतार्थम् 6.2.44
देवते 7.3.107
देवत्रा 5.4.56
देवत्रातः 7.4.41
(हे) देवदत्त 2.3.48, 2.3.49,6.1.69
देवदत्त 6.1.198
देवदत्त 8.1.49
देवदत्त आग 8.2.84
देवदत्त आयु 8.2.83
देवदत्त आहो 8.1.49
देवदत्त उताहो 8.1.49
देवदत्त एव ग्रामं 8.1.62
देवदत्त जातु 8.1.72
देवदत्त तव 8.1.72
देवदत्तं भुञ्जान 3.3.158
देवदत्तः 5.3.83, 6.1.204,8.1.45, 8.1.57
देवदत्तः पचति 1.4.54, 3.2.124,8.1.36, 8.1.57
देवदत्तः पचति 8.1.28
देवदत्तः पचति च 8.1.58
देवदत्तः पचतिरूपम् 8.1.57
देवदत्तः पचति वा 8.1.58
देवदत्तः पचति ह 8.1.58
देवदत्तः पचतीव 8.1.57
देवदत्तः पचत्यह 8.1.58
देवदत्तः पचत्येव 8.1.58
देवदत्तः प्रपचति 8.1.58, 8.1.70
देवदत्तः प्रवक्ता 2.1.65
देवदत्तः शत्रुरेषाम् 5.2.78
देवदत्तः श्लाघते 1.4.34
देवदत्तकः 5.3.78, 5.3.79,5.3.83, 5.3.95
देवदत्तकाः 5.2.78
देवदत्तकारकः 6.2.139
देवदत्तचरः 5.3.54
देवदत्तनेतृ 5.4.116
देवदत्त पचसि 8.1.73
देवदत्तपण्डित 8.1.73
देवदत्तम् अभिक्रुध्यति 1.4.28
देवदत्तम् अभिद्रुह्यति 1.4.38
देवदत्तमय 4.3.82
देवदत्तमुप 1.3.84
देवदत्तरूप्य 4.3.81
देवदत्तरूप्यः 5.3.54
देवदत्तवत् 5.1.116
देवदत्तशठ 4.3.106
देवदत्तसभा 2.4.23
देवदत्तसु 6.2.23
देवदत्ता 4.1.3,4.1.4, 4.1.48
देवदत्ताः 1.1.73,6.1.198
देवदत्ताय क्रुध्यति 1.4.37,1.4.38
देवदत्ताय गां 1.4.40
देवदत्ताय ग्रामा शृणोति 1.4.40
देवदत्ताय ति 1.4.34
देवदत्ताय द्रुह्यति 1.4.37
देवदत्ताय राध्यति 1.4.39
देवदत्ताय रोचते 1.4.33, 2.3.13
देवदत्ताय शतं 1.4.35
देवदत्ताय शपते 1.3.21, 1.4.34
देवदत्ताय श्लाघते 1.4.34
देवदत्ताय स्वदतेऽपूर 1.4.33
देवदत्ताय ह्रुते 1.4.34
देवदत्तायाऽसूयति 1.4.37
देवदत्तायेक्षते 1.4.39
देवदत्तायेर्ष्यति 1.4.37
देवदत्ता श्यामा 2.1.55
देवदत्ता3 1.2.27
देवदत्ता3 अत्र 6.1.125
देवदत्तिका 7.3.45
देवदत्तीया 1.1.73
देवदत्तेन कृतम् 2.3.18
देवदत्तेन क्रीत 5.1.37
देवदत्तेन क्षिप्त 5.4.46
देवदत्तेन भुक्त 3.4.16
देवदत्तो ग्रा 5.3.112
देवदत्तोऽत्र 8.2.6
देवदत्तो दत्त 5.3.83
देवदत्तो देव 5.3.83
देवदत्तोपज्ञो 2.4.21
देवदत्तोरः 5.4.93

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देवदत्तौ 6.1.198
देवदत्तौष्ठं 6.1.94
देवदारु 8.4.6
देवदृग्भ्याम् 6.1.58
देवद्र्यङ् 6.3.92
देवनीतिः 6.2.42
देवपथः 5.3.100
देवपालितः 6.2.148
देवब्रह्म 5.4.104
देवभूयम् 3.1.107
देवमित्रः 6.2.165
देवयज्या 3.1.123
देवयिता 3.2.147
देवविशा 4.1.4
देवसूतिः 6.2.42
देवसूदम् 6.2.129
देवहूतिः 6.2.42
देवहूयः 3.1.123
देवां अच्छादीव्यत् 8.3.9
देवाँ अच्छादीव्यत् 8.3.3
देवाः शरण्याः 8.1.74
देवा एनं 6.2.148, 3.3.174
देवागारिकः 4.4.70
देवानाम्प्रियः 6.3.21
देवान् जिगाति 8.2.89
देवा मरुतः 1.2.40
देवायन्तः 7.4.38
देवा हसन्ति 0.0.14
देवि 8.1.73
देविकः 5.3.79, 5.3.78,5.3.83
देविता 7.2.49
देवित्वा 1.2.18,1.2.26
देवियः 5.3.79,5.3.83
देविलः 5.3.79,5.3.83
देवी 4.1.15
देवेभिः 7.1.10
देष्टा 7.2.10
देहः 6.1.160
देहि 6.4.119
दे3वदत्त 1.1.48
दैतेयः 4.1.85
दैत्यः 4.1.85,4.1.92
दैपम् 4.3.10
दैप्यम् 4.3.10
दैप्यहैमायनाः 6.2.34
दैर्घवस्रः 4.2.73
दैवदत्तः 1.1.75, 4.2.116,4.3.96
दैवदत्तम् 4.3.81
दैवदत्ता 1.1.73
दैवदत्ताः 4.2.116
दैवदत्तिकः 4.2.116
देवदत्तोपज्ञो 2.4.21
दैवदत्त्या 4.1.79
दैवदाख 4.3.155
दैवदारव 4.3.139
दैवनायकः 4.2.53
दैवम् 4.1.85
दैवयज्ञी 4.1.81
दैवयज्ञ्या 4.1.81
दैवासुरम् 4.3.88
दैवासुरः 5.2.61
दैवासुरम् 4.3.125
दैवस्थानि 2.4.59
दैवि 2.4.59
दैव्यम् 4.1.85,4.3.58
दैष्टिकः 4.4.60
दोग्धव्यम् 8.2.32, 8.2.40,8.4.53
दोग्धा 7.2.10,8.2.1, 8.2.32,8.2.40, 8.4.53
दोग्धुम् 8.2.1,8.2.32, 8.2.40,8.4.53
दौवारिकः 4.4.69
दौवारिकक 6.2.10
दोषः 6.4.90
दोषयति 6.4.91
दोषातनम् 4.3.23
दोषामन्यमहः 6.3.67
दोषामन्यम् अहः 6.3.66
दोषी 3.2.142
दोष्टा 7.2.10
दोष्णो 6.1.63
दोही 3.2.142
दोहीयसी 5.3.59, 6.4.154
दोह्यम् 3.1.109
दोह्या धेनुः 6.1.214
दौर्भागिनेयः 4.1.126, 7.3.19
दौर्भाग्यम् 7.3.19
दौलेयः 6.4.148
दौवारपा 7.3.4
दौवारिक 4.4.69,7.3.4
दौवारिकक 6.2.10
दौष्कः 7.3.51
दौष्कुलेयः 4.1.142
दौष्कुल्य 8.3.41
दौष्पुरुष्यम् 8.3.41
दौहित्रः 4.1.104
द्यां पश्य 6.1.93
द्याः पश्य 6.1.93
द्यावः 7.1.90
द्यावाक्षामा 6.3.29
द्यावापृथिवी 6.2.142
द्यावापृथिवीमन्तम् 8.2.15
द्यावापृथिवीयम् 4.2.32
द्यावापृथिव्यम् 4.2.32
द्यावापृथिव्यौ 6.3.30
द्यावाभूमि 6.3.29
द्यावौ 7.1.90
द्युकामः 6.1.131
द्युतितम् 1.2.21
द्युतित्वा 1.2.26
द्युभिः 1.2.28, 6.1.131,6.4.19
द्युभिः 6.1.183
द्युभ्याम् 1.2.28, 6.1.131,6.1.183, 6.4.19
द्युमः 5.2.108
द्युमान् 6.1.131
द्युश्चन्द्रः 6.1.151
द्यूतं वर्तते 8.2.49
द्यूतः 6.4.19
द्यूतवान् 6.4.19
द्यूत्वा 6.4.19
द्योतते 1.3.91
द्योतितम् 1.2.21
द्योतित्वा 1.2.26
द्यौः 1.1.3,1.1.56, 1.2.28,7.1.84, 7.1.90
द्रंष्ट्रा 3.2.182
द्रक्ष्यते 6.4.62
द्रढिमा 5.1.123, 7.2.20
द्रढीयति 7.2.20
द्रढीयान् 7.2.20
द्रप्ता 6.1.59,7.2.10, 7.2.45
द्रवः 3.3.27
द्रवति 1.3.86
द्रविणस्युः 7.4.36
द्रविणीयति 7.4.36
द्रव्यकः 5.1.51
द्रव्यम् 5.3.104, 4.3.161
द्रष्टव्यम् 6.1.58
द्रष्टा 6.1.58, 6.4.62,7.2.10
द्रष्टुम् 6.1.58
द्राघिमा 6.4.157
द्राघिष्ठः 6.4.157
द्राघीयान् 6.4.157
द्रावयति 1.3.86
द्रुघणः 3.3.82
द्रुघनः 3.3.82
द्रुणसः 5.4.118,8.4.3
द्रुपदी 5.4.139
द्रुमः 5.2.108
द्रुमती 4.2.85
द्रुमवती 6.1.219
द्रुवयम् 4.3.162
द्रोग्धा 7.2.45,8.2.3, 8.2.33
द्रोढा 7.2.45,8.2.33
द्रोणपदी 5.4.139
द्रोणम्पचः 3.2.33
द्रोणिः 4.1.103
द्रोणीभार्यः 6.3.34
द्रोणो व्रीहिः 2.3.46
द्रोहिता 7.2.45
द्रोही 3.2.142
द्रौघणकम् 4.2.80
द्रौघणकीय 4.2.141
द्रौणायनः 4.1.103
द्रौणिः 4.1.103
द्रौणिकः 5.1.57
द्रौणिकम् 5.1.45
द्रौणिकी 5.1.52
द्रौणी 5.1.52
द्रौह्यवः 4.1.168
द्वके 7.3.47
द्वन्द्वं 8.1.15
द्वन्द्वं मन्त्र 8.1.15
द्वन्द्वं युद्धं 8.1.15
द्वन्द्वं व्युत्क्रा 8.1.15
द्वन्द्वं सङ्क 8.1.15
द्वयम् 5.2.43
द्वयाः 5.2.43
द्वयावी 5.2.122
द्वयाशीतिकः 7.3.3
द्वये 5.2.43
द्वयोः 5.3.2
द्वा अत्र 8.2.1,8.3.17, 8.3.19
द्वा आनय 8.2.1
द्वा आनय 8.3.18
द्वाचत्वारिंशत् 6.3.49
द्वात्रिंशत् 6.3.47
द्वादश 6.3.47

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

द्वादश 6.2.35
द्वादशम् 5.2.45
द्वादशः 5.3.49
द्वादशान्यिकः 4.4.63
द्वापञ्चाशत् 6.3.49
द्वाभ्याम् 5.3.2,7.2.102
द्वावत्र 8.3.17,8.3.19
द्वावानय 8.3.17
द्वाविंशतिः 6.3.47
द्वि 7.2.102
द्विः करोति 8.3.43
द्विः पचति 8.3.43
द्विकंसम् 5.1.28
द्विकंसः 6.2.122
द्विकम् 5.1.37,5.2.77
द्विकम्बल्या 4.1.22
द्विकरः 3.2.21
द्विकांस्पात्र्यां 2.3.64
द्विकाकिणीकम् 5.1.33
द्विकाण्डः 6.2.122
द्विकाण्डा 4.1.23
द्विकाण्डी रज्जुः 4.1.23
द्विकार्षापण 5.1.29
द्विकार्षापणिकम् 5.1.29
द्विकुलजिकी 5.1.55
द्विकुलिजा 5.1.55
द्विकुलिजी 5.1.55
द्विकुलिजीना 5.1.55
द्विकृष्णः 2.2.35
द्विके 7.3.47
द्विकौडविकः 7.3.17
द्विखारम् 5.4.101
द्विखारि 5.4.101
द्विखारीकम् 5.1.33
द्विगुणाक 5.4.59
द्विगुणाकर्णः 6.3.115
द्विचत्वारिंशत् 6.3.49
द्विचितीकः 6.3.127
द्विजः 3.2.101
द्विजार्थः 2.1.35
द्विजार्थम् 2.1.35
द्विज्ञार्था 2.1.35
द्वितयम् 5.2.42
द्वितयाः 1.1.33
द्वितये 1.1.33
द्वितीयः 5.2.54,5.3.48
द्वितीयं भिक्षाणाम् 2.2.3
द्वितीयकः 5.2.81
द्वितीयकम् 4.2.8, 5.2.77
द्वितीयभिक्षा 2.2.3
द्वितीयभिक्षाया 2.2.3
द्वितीयम् 5.3.48
द्वितीयस्मै 1.1.36
द्वितीयस्यै 7.3.115
द्वितीयाक 5.4.58
द्वितीयाकरोति 8.1.12
द्वितीयाय 1.1.36
द्वितीयायै 7.3.115
द्वितीया विद्या 4.2.8
द्वितीयिकः 5.1.48
द्वित्राः 2.2.25,2.2.34, 5.4.73,6.3.47
द्विदण्डा 5.4.128
द्विदण्डि 5.4.128
द्विदन् 5.4.141
द्विदन् 6.2.197
द्विदन्तः 5.4.141
द्विदशाः 2.2.25
द्विदाम्नी 4.1.27, 4.1.29
द्विदिष्टिः 5.2.37
द्विद्रोणेन धान्यं 2.3.18
द्विधा 5.3.42,5.3.46, 5.3.45
द्विधाकारं गतः 3.4.62
द्विधाकृत्य 7.1.37
द्विधाकृत्य गतः 3.4.62
द्विधा कृत्वा गतः 3.4.62
द्विधाभावं गतः 3.4.62
द्विधा भूत्वा गत 3.4.62
द्विधा भूय गतः 3.4.62
द्विनावधनः 5.4.99
द्विनावम् 5.4.99
द्विनावमयम् 5.4.99
द्विनावरुप्यम् 5.4.99
द्विनिष्कम् 5.1.30
द्विनैष्किक 4.3.156
द्विनैष्किकम् 5.1.30, 7.3.17
द्विपः 3.2.4
द्विपञ्चाशत् 6.3.49
द्विपण्यम् 5.1.34
द्विपदः 6.4.130
द्विपदः 6.4.129
द्विपदा 6.4.130
द्विपदा ऋक् 4.1.8
द्विपदिकां 5.4.2, 6.4.130
द्विपदिकाम् 5.4.1
द्विपदी 4.1.8,5.4.139
द्विपदी देवदत्ता 4.1.9
द्विपदे 6.4.130
द्विपरि 2.1.10
द्विपात् 4.1.8,5.4.140
द्विपात् 6.2.197
द्विपात्रिकी 5.1.54
द्विपात्री 5.1.54
द्विपात्रीणा 5.1.54
द्विपादः 6.4.129
द्विपादौ 6.4.129
द्विपाद्यम् 5.1.34, 6.3.53
द्विपाय्यः 6.2.122
द्विपुंस्कः 5.4.151
द्विपुमान् 5.4.157
द्विपुरी 5.4.68
द्विपुरुषम् 5.2.38
द्विपुरुषा 4.1.24
द्विपुरुषी 4.1.24, 5.2.38
द्विप्रतिकम् 5.1.29
द्विबितस्तिः 5.2.37
द्विबिस्तम् 5.1.30
द्विबिस्ता 4.1.22
द्विबैस्तिकम् 5.1.31
द्विभूमः 5.4.75
द्विमन्थः 6.2.122
द्विमयम् 5.2.47
द्विमातुरः 6.3.47
द्विमाष्यम् 5.1.34
द्विमास्यः 5.1.82
द्विमुनि 2.1.19
द्विमुसलि 5.4.128
द्विमूर्द्धः 5.4.115, 6.2.197
द्विमूर्द्धा 6.2.197
द्विमोदकिकां 5.4.1
द्वियमुनम् 2.1.20
द्विरहन्यधीते 2.3.64
द्विरह्नो 2.3.64
द्विरह्नोऽधीते 2.3.64
द्विरात्रः 2.4.29,5.4.87
द्विरात्रम् 5.4.87
द्विरात्रीणः 5.1.87
द्विर्भुङ्क्ते 5.4.18
द्विवर्षः 5.1.88,5.1.89
द्विवर्षा 4.1.22, 7.3.15
द्विवर्षीणः 5.1.88, 5.1.89
द्विवार्षिकः 5.1.88, 7.3.16
द्विविंशतिकीनम् 5.1.32
द्विवितस्ति 5.2.37
द्विविधो 4.1.26
द्विवेदः 4.1.88,4.2.60
द्विशः 5.4.43
द्विशतकम् 5.1.21
द्विशततमः 5.2.57
द्विशतम् 5.1.35, 6.3.47,6.3.49
द्विशतमानम् 5.1.29
द्विशता 4.1.22
द्विशतिकां 5.4.2
द्विशतिकाम् 5.4.1
द्विशत्यम् 5.1.34, 5.1.35
द्विशमः 5.2.37
द्विशाणम् 5.1.35, 5.1.36
द्विशाण्यम् 5.1.35, 5.1.36
द्विशातमानम् 5.1.29
द्विशिति 6.2.81
द्विशिराः 6.2.163
द्विशुक्लः 2.2.35
द्विशूर्पम् 5.1.19, 5.1.28
द्विशूर्प्यः 6.2.122
द्विशौर्पिकम् 5.1.19
द्विष् 3.2.61
द्विषन् 3.2.129
द्विषन्तः 3.2.130
द्विषन्तपः 3.2.39, 6.3.67,6.4.94
द्विषन्तौ 3.2.130
द्विषन्धिः 8.3.106
द्विषाष्टिकः 5.1.57,7.3.15
द्विषाहस्रम् 8.3.106
द्विष्करोति 8.3.43
द्विष्टमाम् 8.2.27
द्विष्टराम् 8.2.27
द्विष्ठः 8.3.97
द्विष्पचति 8.3.43
द्विसंवत्सरीणः 5.1.87
द्विसन्धिः 8.3.106
द्विसमीनः 5.1.86
द्विसहस्रम् 5.1.29, 6.3.47
द्विसांवत्सरिकः 5.1.87, 7.3.15
द्विसाप्ततिकः 5.1.57, 7.3.15
द्विसाहस्रः 4.3.156

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

द्विसाहस्रम् 5.1.29, 8.3.106
द्विसीत्यम् 4.4.91
द्विसुवर्णधनम् 6.2.55
द्विसुवर्णम् 5.1.29
द्विसौवर्णिकम् 5.1.29, 7.3.17
द्विस्तना 6.2.164
द्विस्तंना 6.2.164
द्विस्तावती 5.4.84
द्विस्तावा वेदिः 5.4.84
द्विहल्यः 4.4.97
द्विहंस्त 6.2.197
द्विहस्ति 5.2.38
द्विहस्तिनी 5.2.38
द्विहायना शाला 4.1.27
द्विहायनी 4.1.27
द्वीपः 6.3.97
द्वीपम् 1.1.54,5.4.74
द्वेक्ष्यति 1.2.11
द्वेधा 5.3.46
द्वेषी 3.2.142
द्वेष्टा 1.2.11,7.2.10
द्वेष्टि 2.4.72
द्वैकुलिजिकः 7.3.17
द्वैकुलिजिकी 5.1.55
द्वैकुलिजीना 5.1.55
द्वैगुणिकः 4.4.30
द्वैतीयीकम् 4.2.8
द्वैदेवदत्तिः 4.1.88
द्वैधं कारं गतः 3.4.62
द्वैधं कृत्य गतः 3.4.62
द्वैधं कृत्वा गतः 3.4.62
द्वैधं भावम् 3.4.62
द्वैधं भूत्वा 3.4.62
द्वैधं भूय गतः 3.4.62
द्वैधम् 5.3.45,5.3.46
द्वैधानि 5.3.45
द्वैपः 4.2.12
द्वैपकम् 4.3.10
द्वैपारायणिकः 4.1.88, 5.1.19
द्वैप्यहैमा 6.2.34
द्वैप्या 4.1.16
द्वैप्याः 2.4.64
द्वैमातुरः 1.1.51, 4.1.115
द्वैयन्यिकः 4.4.63
द्वैयह्निक 5.1.87
द्वैरात्रिकः 5.1.87
द्वैशाणम् 5.1.36, 7.3.17
द्वैसमिकः 5.1.86, 7.3.15
द्व्यहायनम् 5.1.130
द्वौ 2.3.46,7.2.102
द्वौवारपालम् 7.3.4
द्वौवारिकः 7.3.4
द्व्यङ्गुलम् 5.4.86
द्व्यङ्गुल 5.4.114
द्व्यङ्गुल उत्कर्ष 3.4.51
द्व्यङ्गुलेनोत्कर्ष 3.4.51
द्व्यङ्गुलशृङ्गः 6.2.115
द्व्यङ्गुलाकर्णः 6.3.115
द्व्यङ्गुलोत्कर्ष खणि 3.4.51
द्व्यञ्जलः 5.4.102
द्व्यञ्जलि 5.4.103
द्व्यञ्जलिप्रिय 5.4.102
द्व्यन्यः 2.2.35
द्व्यन्याय 1129
द्व्यशीतिः 6.3.47
द्व्यहः2.1.23,2.4.29, 5.4.88,5.4.89, 6.3.110,6.4.145
द्व्यहंतर्ष गाः 3.4.57
द्व्यहं तर्ष 3.4.57
द्व्यहजातः 6.2.170
द्व्यहजा 2.2.5
द्व्यहनि 6.3.110
द्व्यह्नि 6.3.110
द्व्यह्ने 6.3.110
द्व्यहपूर्वाय 1.1.30
द्व्यहमत्यासं गाः 3.4.57
द्व्यहमुपोष्य 3.4.57
द्व्यहात्यासं गाः 3.4.57
द्व्यहीनः 5.1.87, 6.4.145
द्व्यह्नः 5.4.89
द्व्याक्षायणः 4.2.54
द्व्याचित 4.1.22
द्व्याचिता 5.1.54
द्व्याचितिकी 5.1.54
द्व्याचितीना 5.1.54
द्व्याढकिकी 5.1.54
द्व्याढकी 4.1.22, 5.1.54
द्व्याढकीना 5.1.54
द्व्यायुः 5.4.77
द्व्यायुषम् 5.4.77
द्व्यूष्नी 4.1.26
द्व्यैह्निकः 5.1.87

ध

धकित् 5.3.72
धत्त 7.1.45
धत्तः 6.4.113,8.2.38
धत्तः 8.2.40
धत्थः 8.2.38,8.2.40
धत्से 8.2.38
धत्स्व 8.2.38
धद्ध्वम् 8.2.38
धनं हि 8.2.38
धनकः 5.2.65
धनकामो 1.3.73
धनक्रीता 4.1.50
धनक्रीती 2.2.19
धनंदायादः 6.2.5
धनपोषम् 1.1.68, 3.4.40
धनम् 1.2.45
धनमदः 3.3.67
धनंस्वामी 6.2.17
धनायति 7.4.34
धनीयति 7.4.34
धनुर्ग्रहः 3.2.9
धनुंश्छाय 6.2.14
धनुष्कपालम् 8.3.45
धनुष्करः 3.2.21
धनुष्खाता नदी 6.2.146
धनुष्फलम् 8.3.45
धनूंषि 8.3.24
धनेन कुलम् 2.3.23, 2.3.25
धन्यः 4.4.84
धन्यम् 5.1.39
धमति 7.3.78
धमनिः 4.1.45
धमनी 4.1.44
धमनीलः 5.2.97
धर्मं जिज्ञा 1.3.57, 1.3.58
धर्मदुघा 3.2.70
धर्मात् प्रमाद्यति 1.4.24
धर्मार्थी 2.2.31
धर्म्यम् 4.4.91,4.4.92
धर्षितः 7.2.19
धवखदिरपलाशाः 2.2.29,2.2.34
धविता 7.2.44
धवित्रम् 3.2.184
धाका 7.3.44, 7.4.13
धातः 7.4.46
धातवान् 7.4.46
धाता 6.1.45,6.4.66
धाति 2.4.76
धात्री 3.2.181
धानकाः 5.3.77
धानाः पिनष्टि 2.3.56
धानाभृट् 8.2.36
धानाशष्कुलि 2.4.6
धानुर्दण्डिकः 4.4.11
धानुष्कः 4.4.11, 4.4.57,7.3.51
धान्यंगवः 6.2.72
धान्यंपुति 6.2.18
धान्यमायः 3.2.2
धान्यविक्रायः 3.2.93
धान्यार्थः 2.1.30
धान्यार्थः 6.2.153
धान्यार्थी 5.2.135
धापयति 7.3.36
धापयेते 1.3.89
धामच्छत् 6.4.97
धायः 3.1.139, 3.1.141,7.3.32
धायः 6.1.159
धायकः 7.3.32
धाय्या 3.1.129
धारकः 5.3.75,7.3.44
धारयः 3.1.138
धारयन्नुपनिषदम्3.2.129
धारयिष्णवः 3.2.137
धारा 3.3.104
धारां 6.1.203
धारुः 3.2.159
धार्त्तराज्ञः 6.4.135
धार्त्तराज्ञी 4.2.127
धार्मविद्यः 4.2.60
धार्मिकः 4.4.40, 4.4.41
धार्यम् 3.1.124
धाव 6.4.105
धावतस्ते 3.3.10
धावति 7.3.78
धावन्नध्वमानां 2.2.10
धासीय 7.4.45
धासीष्ट 6.4.67
धिग् देवदत्तम् 2.3.2
धित्सति 7.4.54
धित्स्यम् 3.1.97
धिनुतः 6.4.48
धिनुहि 6.4.106
धिनोति 3.1.80
धिप्सति1.2.10,7.2.49

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धिषीय 7.4.45
धिष्व 7.4.45
धीः 3.2.178
धीतः 7.4.46
धीतवान् 7.4.46
धीती 1.1.19,7.1.39
धीत्या 1.1.19
धीनः 8.2.45
धीनवान् 8.2.45
धीप्सति 1.2.10, 7.2.49,7.4.56
धीबन्ध्वाम् 7.3.116
धीयते 6.4.46,6.4.66
धीवरी 4.1.7
धीवा 3.2.75
धुनाति 7.3.80
धुरः 3.2.177
धुरः 6.4.21
धुरीणः 4.4.78
धुरौ 3.2.17,6.4.21
धुर्यः 4.4.77,8.2.79
धूः 3.2.177,6.4.21, 8.2.76
धूः काम्यति 8.3.37
धूः कारयः 8.3.45
धूःपतिः 8.2.70
धूत्वा 7.2.44
धूनः 8.2.44
धूनयति 7.3.37
धूनवान् 8.2.44
धूपायति 3.1.28, 6.1.158
धूपायति 6.1.158
धूम 6.3.120
धूमकेतुः 1.1.68
धूममयानि 4.3.151
धूर्णः 6.4.21
धूर्णवान् 6.4.21
धूर्तः 7.2.9
धूर्तिः 6.4.21
धूर्प्पतिः 8.2.70
धूर्वान् 8.2.15
धूर्विता 7.2.9,8.2.78
धूर्वितुम् 7.2.9
धूर्षु 8.3.16,8.3.57
धूस्तरा 8.3.101
धृणाति 7.3.80
धृतिः 3.3.104
धृष्टः 1.3.5,3.2.187, 7.2.19
धृष्टः 6.1.206
धृष्णुः 3.2.14
धृष्णुयाः7.1.39,7.4.25
धृष्णोति भोक्तुम् 3.4.65
धेनवः 7.3.109
धेनवे 1.4.7
धेनुगोदुह 5.4.106
धेनुम्भव्या 6.3.70
धेनुष्यां 4.4.89
धेनूः 6.1.103
धेनौ 7.3.119
धेन्वनड्वहौ 5.4.77
धेन्वा 7.3.120
धेन्वाम् 6.1.177, 7.3.117
धेन्वै 1.4.6
धेयम् 6.4.65
धेयात् 6.4.67
धेहि 6.4.119
धैनुकम् 4.2.47
धैवत्यम् 6.4.174
धोक्ष्यते 8.2.37
धोता 7.2.44
धौमकः 4.2.127
धौरेयः 4.4.77
ध्मातम् 8.4.47
ध्यातः 8.2.57
ध्यातवान् 8.2.57
ध्रुवका 7.3.45
ध्वंसकलाकृ 1.4.61
ध्वंसिता 6.4.24
ध्वंसित्वा 1.2.23
ध्वनयीत् 3.1.51
ध्वनितम् 7.2.18
ध्वरिषीष्ट 7.2.43
ध्वर्त्ता 7.2.63
ध्वर्यः 3.1.123
ध्वषीष्ट 7.4.29
ध्वस्तः 6.4.24
ध्वस्तिः 3.3.93
ध्वस्यते 6.4.24
ध्वाङ्क्षरावी 3.2.79
ध्वाङ्क्षरावी 6.2.80
ध्वाङ्क्षो 1.3.34
ध्वाजम् 4.2.109
ध्वान्तम् (तमः) 7.2.18
ध्वृषीष्ट 7.2.43, 7.4.29

न

नंष्टव्यम् 7.1.60
नंष्टा 7.1.60,7.2.45
नंष्टुम् 7.1.60
नंष्ट्वा 6.4.32
नः क्षुद्रः 6.1.63
नकुलः 6.3.75
नक्तन्दिव 5.4.77
नक्रः 6.3.75
नक्षत्रम् 6.3.75
नक्षत्रियेभ्यः स्वाहा 4.4.141
नखनिर्भिन्नः 2.1.32
नुखनिर्भिन्ना 6.2.48
नखम् 6.3.75
नखमुचानि 3.2.5
नखम्पचा (यवागू) 3.2.34
नखलेखकः 2.2.17
नखंलेखकः 6.2.73
नगः 6.3.77
नगरं च मे 8.1.24
नगरकाकः 2.1.48
नगरकारः2.2.19,3.2.1, 3.2.20
नगरकारी 4.1.14, 4.1.15
नुगुरखेटम् 6.2.126
नगरगृह्या सेना 3.1.119
नगरम् 5.2.107
नगरवायस 2.1.48
नगरार्धः 2.2.2
नगाः 6.3.77
नग्नङ्करणम् 3.2.56
नग्नम्भविष्णुः 3.2.57
नग्नम्भावुकः 3.2.57
नग्नमुषितम् 2.2.31
नच्छायाम् 6.1.76
नछायाम् 6.1.76
नटस्य गाथां 1.4.29
नडकीयम् 4.2.91
नडमाध्मानः 2.3.69
नडशः 4.2.80
नडेन 8.1.42
नड्वलम् 4.2.88
नड्वान् 4.2.87, 6.4.143
नुड्वान् 6.1.161
न त्वं किञ्चिदपि 1.3.44
न त्वां काकं 2.3.17
न त्वां तृणं 2.3.17
न त्वां तृणाय 2.3.17
न त्वा नावं 2.3.17
न त्वां बुसं 2.3.17
न त्वां बुसाय 2.3.17
न त्वां शुने 2.3.17
न त्वां शृगालं 2.3.17
न त्वां श्वानं 2.3.17
न त्वामत्रं 2.3.17
(हे) नदि 6.1.69
नदी 4.1.15
नदीकुक्कुटिका 6.3.9
नुदीकूलम् 6.2.135
नदीकूलानि 2.3.54
नुदीघोषः 6.1.223
नदीदोहनी 6.3.10
नुदीनुगुरम् 6.2.89
नुदीनाम् 6.1.178
नदीमन्ववसिता 1.4.85
नदीष्णः 8.3.89
नद्धम् 8.2.34
नद्धव्यम् 8.2.34
नद्धा 7.2.10
नद्धी 3.2.182
नद्धुम् 8.2.34
नद्यातिः 1.1.19
नद्यौः 7.1.10
ननंष्ठ 7.1.60
ननान्दा 4.1.10
ननान्दुः पति 6.3.24
ननान्दृपतिः 6.3.24
ननु करोमि 8.1.43
ननु करोमि भो 3.2.120
ननु गच्छामि 8.1.43
ननु ब्रवीमि भोः3.2.120
नन्ता 7.2.10
नन्दकः 3.1.150
नन्दकपाञ्चजन्यौ 2.4.6
नन्दका नन्दताद् 7.3.45
नन्दनः 3.1.134, 3.4.67,7.1.1
नुन्दुपुत्रः 6.2.133
नन्दितव्यम् 8.4.58
नन्दिता 8.4.58
नन्दितुम् 8.4.58
नन्दोपक्रमाणि 2.4.21
नुन्दोपक्रमा 6.2.14
नन्द्यते 6.4.24
नपात् 6.3.75
नपुंसकम् 6.3.75
नप्ता 6.4.11
नप्तारः 6.4.11
नप्तारौ 6.4.11
नभश्च नभस्यश्च 4.4.128
नभस्यो मासः 4.4.128
नभस्वत् 1.4.18
नभ्यः 5.1.2

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नभ्राट् 6.8.75
नमति 6.1.65
नमते दण्डः स्वयमेव 3.1.89
न मर्षयामि 3.3.145
नमस्कर्त्तव्यम् 8.3.40
नमस्कर्त्ता 8.3.40
नमस्कर्त्तुम् 8.3.40
नमस्यति देवान् 3.1.19
नमुचिः 6.3.75
नमो देवेभ्यः 2.3.16
नम्रः 3.2.167
नयः 6.1.203
नयति 1.1.3,3.4.113, 6.1.65,7.3.84
(अजां) नयति 1.3.36
नयते चार्वी 1.3.36
नयते चार्वी लोकायते 1.3.36
नयुब्जः 7.3.61
नरकपतितः 2.1.24
नरकश्रितः 2.1.24
नरदिकः 4.4.53
नरदिकी 4.4.53
नरपतिः 6.2.18
नरम्मन्यः 6.3.68
नरस्कन्धः 4.2.51
नराशंसः 6.2.140
नरिका 7.3.44
नरिनर्त्ति 7.4.66,7.4.91
नरीनर्त्ति 7.4.66,7.4.91
नरीनृतीति 7.4.90, 7.4.91
नरीनृत्यते 7.4.90, 8.4.39
नर्त्तकः 3.1.145
नर्त्तकी 1.3.6,3.1.145, 4.1.41
नर्त्तयते 1.3.89
नर्तिष्यति 7.2.57
नर्त्स्यति 7.2.57
नर्नर्त्ति 7.4.66
नर्नर्त्ति 7.4.91,8.2.29
नर्नृतीति 7.4.91
नलेन स्म 3.2.118, 3.2.122
नव 1.1.24,4.1.10, 7.1.22
नवकः 5.1.58
नवनगरम् 6.2.89
नवतिः 5.1.59
नवतिशतम् 2.2.34
नवमः 5.3.49
नवमल्लिका 4.3.166
नवमी 5.2.130
नवानाम् 6.4.7,7.1.54
नवाऽन्नम् 2.1.49
नवार्मम् 6.2.90
नवाऽवसथम् 2.1.49
नविता 7.2.10
नवीनम् 5.4.25
नवेदाः 6.3.75
नव्यम् 5.4.25
नशनम् 7.1.60
नशिता 7.2.45
नशित्वा 6.4.32
नश्वरः 3.2.163
नश्वरी 3.2.163
नश्वरी 4.1.15
नष्टं सुस्मू 1.3.57
नष्टनष्टः 8.1.10
नष्टनष्टा 8.1.10
नष्ट्वा 6.4.32
नसत्तम् 8.2.61
नसन्नम् 8.2.61
न सम्भाव 3.3.145
नसा 6.1.63
नस्तः 6.1.63
नस्यम् 5.1.6,6.1.63
नह भोक्ष्यसें 8.1.31
नह वै तस्मिंश्च 8.1.31
नहाध्येष्यसे 8.1.31
नह्यति 6.1.65
नह्यते 6.4.24
नाकपृष्ठः 6.2.114
नाकम् 6.3.75
नाऽकार्षम् 3.2.121
नाकुलः 4.1.114
नाकुलक 4.3.99
नागनासोरूः 4.1.69
नागरकः 4.2.128
नागरम् 5.1.133
नागराः (ब्राह्मणाः) 4.2.127
नागरेयक 4.2.128
नागा 4.1.42
नागी 4.1.42
नाट्यम् 4.3.129
नाडायनः 1.1.73, 4.1.93,4.1.99, 7.1.2,7.2.118
नाडायन 6.1.165
नाडायनक 4.3.80
नाडायनिः 4.1.93
नाडायनी 4.1.63
नाडिः 4.1.99
नाडिन्धमः 3.2.30
नाडिन्धयः 3.2.30
नाडीजङ्घः 6.2.114
नातानतिक 4.3.67
नाथते मधुनः 1.3.21
नाथते सर्पिषः 1.3.21
नाथहरिः पशुः 3.2.25
नाथहारः 3.2.25
नादेयम् 4.2.97
नाद्यः 4.4.111
नानन्द्यते 6.4.24
नानह्यते 6.4.24
नाना 5.2.27
नानाकारं गतः 3.4.62
नानाकृत्य 3.4.62, 7.1.37
नाना कृत्वा गतः 3.4.62
नाना देवदत्तात् 2.3.32
नाना देवदत्तेन 2.3.32
नाना भावं गतः 3.4.62
नाना भूय गतः 3.4.62
नान्दीकरः 3.2.21, 6.3.63
नान्दीघोषः 6.3.63
नान्दीपुर 5.4.74
नान्दीपुरकः 4.2.122
नान्दीविशालः 6.3.63
नापितवास्तुक 4.2.120
नापितायनिः 4.1.157
नापित्यः 4.2.152
नाभा 5.1.2,7.1.39
नाभ्यम् 5.1.6
नामग्राहम् 3.4.58
नामधेयम् 5.4.25
नामाख्यातिकः 4.3.72
नामादेशम् 3.4.58
नामिकः 4.3.72
नायः 3.1.142,3.3.24
नाययति 1.4.52
नारकः 6.3.137
नाराह्यौ 6.1.106
नारी 4.4.49
नारीः 4.1.73
नार्कुटः 8.3.15
नार्पत्यः 8.3.15
नार्मतम् 8.2.9
नार्मदाः 4.1.113
नार्मपुरम् 6.2.99
नाऽवकल्पयामि 3.3.145
नावगाहे 3.4.14
नावयज्ञिक 4.3.68
नावया 7.1.39
नाविकः 4.4.7
नाविकः 5.2.116
नावौ 6.1.102
नाव्यः 6.1.79
नाव्यम् 6.1.213
नाव्यम् उदकम् 4.4.91
नाव्या नदी 4.4.91
नाव्यो ह्रदः 6.1.79
नाश 3.2.109
नाशयति 1.3.86
नाशयति दुःखम् 1.3.86
नाशिता 7.2.45
नाशीत् 3.2.109
नाश्नात् 3.2.109
नासत्याः 6.3.75
नासिकन्धमः 3.2.29
नासिकन्धयः 3.2.29
नासिकाया नत 5.2.31
नासिके ते 6.1.63
नासिक्यं 6.1.63
नासिक्यो 6.1.63
नास्तिकः 4.4.60
निंस्से 8.4.58
निःशीतम् 2.1.6
निःश्रेयस 5.4.77
निःषमम् 8.3.88
निःषुप्तः 8.3.88
निःषूतिः 8.3.88
निःसेचको 8.3.65
निकरतुः 7.4.11
निकषः 3.3.119
निकषा ग्रामम् 2.3.2
निकायः 3.3.41
निकाय्यः 3.1.129
निकारः 3.3.30
निकुचितिः 1.2.18, 7.2.9
निकुच्यकर्णि 5.4.128
निक्वणः 3.3.65
निक्वाणः 3.3.65
निगदः 3.3.64
निगमः 3.3.119
निगरणम् 7.1.102, 8.2.21
निगलनम् 8.2.21
निगादः 3.3.64

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निगारः 3.3.2
निगारकः 7.1.102, 8.2.21
निगारयति 1.3.87
निगार्यते 8.2.21
निगालकः 8.2.21
निगाल्यते 8.2.21
निगिरति 8.2.21
निगिलति 8.2.21
निगीर्णम् 8.2.42
निगीर्यते 8.2.20
निगूहं 6.4.89
निगूहः 6.4.89
निगूहकः 6.4.89
निगूहति 6.4.89
निगूहन्ति 6.4.89
निगूही 6.4.89
निगूह्य 6.4.89
निगृहीतिः 1.2.18,7.2.9
निगोढा 6.4.89
निगोढुम् 6.4.89
निग्रहश्चोरस्य 3.3.45
निग्राभम् 3.3.35, 8.2.35
निग्राहः 3.3.45
निघसः 3.3.60
निघाः (शालयः) 3.3.87
निघातः 3.3.87
निघोक्ष्यते 8.2.37
(कतीह) निघ्नानाः 3.2.128
निचकरतु 7.4.11
निचकरु 7.4.11
निचकार 7.4.11
निचायः 3.3.20
निचाय्यः 6.1.35
निचिक्युः 6.1.35
निचेयम 3.1.129
निजगरतुः 7.4.11
निजगरुः 7.4.11
निजगार 7.4.11
निजुगुहतुः 6.4.89
निजुगुहुः 6.4.89
निजेगिल्यते 3.1.24, 7.4.27,8.2.20
निजेगिल्यन्ते 8.2.20
निजेगिल्येते 8.2.20
नितीर्णम् 6.3.124
नित्तृणम् 6.2.192
नित्यः 4.2.104
नित्यः 8.2.99
नित्यप्रहसितः 6.2.61
नित्यप्रहसितः 6.2.61
नित्यम् 4.2.104
निदण्डः 6.2.192
निदत्तम् 7.4.46
निदत्तम् 1.4.57
निदर्शनम् 6.2.150
निदाघः 7.3.53
निदाहः 7.3.53
निद्रायति 3.1.13
निद्रायते 3.1.13
निद्रालुः 3.2.158
निधनकृताः 6.2.46
निधनशुष्कः 6.2.32
निनदः 3.3.64
निनय 1.1.59
निनर्तिषति 7.2.57
निनादः 3.3.64
निनायः 1.1.59
निनृत्सति 7.2.57
निनेज 7.3.87,7.4.75
निनेथ 7.2.61
निन्दकः 3.2.146
निन्यतुः 6.4.82
निन्युः 6.4.82
निपठः 3.3.64
निपठितिः 7.2.9
निपत्यरोहि 2.1.72
निपत्या 3.3.99
निपदः 6.1.63
निपुदः 6.1.171
निपपरतुः 7.4.12
निपपरुः 7.4.12
निपप्रतुः 7.4.12
निपप्रुः 7.4.12
निपरणम् 7.1.102
निपाठः 3.3.64
निपारकः 7.1.102
निबिडः 5.2.32
निबिडम् 5.2.32
निबिडाः 5.2.32
निबिरीसः 5.2.32
निबिरीसम् 5.2.32
निमयो 6.1.51
निमातव्यम् 6.1.50
निमाता 6.1.50
निमातुम् 6.1.50
निमाय 6.1.50
निमूलकाषम् 3.4.34
निमूलम् 6.2.192
नियः 6.4.77
नियः 6.4.82
नियतम् 4.2.104
नियमः 3.3.63
निया 6.4.140
नियाति 1.4.81
नियामः 3.3.63
नियुङ्क्ते 1.3.64
निये 6.4.140
नियोग्यः 7.3.68
नियोज्यः 7.3.68
नियौ 6.4.77,6.4.82
निरक्षी 3.1.134
निरङ्कुलम् 5.4.86
निरञ्जिनम् 6.2.184
निरध्वम् 5.4.85
निरयणम् 8.2.19
निरस्यति 1.3.30
निरस्यते 1.3.30
निरह्नः 5.4.88, 8.4.7
निराकरिष्णुः 3.2.136
निराणद्धम् 8.4.2
निरामयं देवदत्तस्य 2.3.73
निरामयं देवदत्ताय 2.3.73
निरुक्तम् 6.2.146
निरुत्तम् 6.4.2,6.4.1
निरुदकम् 6.2.184
निरुध्नी 4.1.26
निरुपलम् 6.2.184
निर्गो देशः 3.2.48
निर्णयः 8.4.35
निर्णेक्ता 7.2.10
निर्दितः 7.4.40
निर्दितवान् 7.4.40
निर्दृत्तम् 7.4.47
निर्भस्त्रका 7.3.47
निर्भस्त्रिका 7.3.47
निर्मक्षिकम् 2.1.6
निर्मक्षिकम् 6.2.184
निर्मशकम् 2.1.6
निर्मशकम् 6.2.184
निर्यातः 8.2.43
निर्वणम् 6.2.178
निर्वणे 8.4.5
निर्वरिता 7.2.10
निर्वरीता 7.2.10
निर्वाणः प्रदीप 8.2.50
निर्वाणोऽग्निः 8.2.50
निर्वाणो भिक्षा 8.2.50
निर्वातः 8.2.43,8.2.50
निर्वायात् 6.4.68
निर्वाराणसिः 1.2.48, 2.2.18
निर्वाराणसिः 6.2.2
निर्विण्णः 8.4.29
निर्हिमम् 2.1.6
निलयनम् 7.2.46
निलिम्पाः 3.1.138
निली 4.1.42
निवचने कृत्य 1.4.76
निवचने कृत्वा 1.4.76
निवतः 5.1.118
निवरा कन्या 3.3.48
निवाग्वृषल 6.2.192
निवापी 3.1.134
निवासी 3.1.134
निविविक्षते 1.3.62
निविशते 1.3.17, 1.3.62
निविशन्ते 1.3.17
निशाकरः 3.2.21
निशातम् 7.4.41
निशातवान् 7.4.41
निशातव्यम् 6.1.45
निशाता 6.1.45
निशातुम् 6.1.45
निशानयति 3.1.6
निशाययति 7.3.37
निशायां व्याह 4.3.51
निशायी 3.1.134
निशि 6.1.63
निशितम् 7.4.41
निशितवान् 7.4.41
निश्चत्वारिंशा 5.4.73
निश्चप्रचम् 2.1.72
निश्चयः 3.3.20,3.3.58
निश्चायः 7.2.114
निश्यति 7.3.71
निश्रावी 3.1.134
निषण्णः 8.2.61
निषण्णश्यामा 2.1.72
निषत्तः 8.2.61
निषद्याः 3.3.99
निषन्ति 8.3.87
निषमम् 6.2.121
निषयः 8.3.70
निषसाद 8.3.66, 8.3.118
निषहते 8.3.70
निषादो 6.3.122
निषितः 8.3.70
निषिषेविषते 8.3.70

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निषीदति 8.3.66
निषीव्यति 8.3.70
निषुणोति 8.3.63
निषेवते 8.3.70
निष्कंदायी 3.3.170
निष्कमाला 6.2.55
निष्कालकः 6.2.184
निष्कालिक 6.2.184
निष्कुलाक 5.4.62
निष्कुलान् 5.4.62
निष्कुषितः 7.2.47
निष्कुषितवान् 7.2.47
निष्कृतम् 8.3.41
निष्के वल्यम् 5.4.25
निष्कोषितव्यम् 7.2.46
निष्कोषिता 7.2.46
निष्कोषितुम् 7.2.46
निष्कोष्टव्यम् 7.2.46
निष्कोष्टा 7.2.46
निष्कोष्टुम् 7.2.46
निष्कौशाम्बये 1.2.44
निष्कौशाम्बिः 1.2.44, 1.2.48,2.2.18, 2.4.26,6.1.68, 6.2.2
निष्कौशाम्बिना 1.2.44
निष्कौशाम्बिम् 1.2.44
निष्कौशाम्बेः 1.2.44
निष्कौशाम्बौ 1.2.44
निष्क्रमिता
निष्क्रान्तः 6.2.184
निष्टतक्षुः 8.3.102
निष्टपति 1.3.27
निष्टपति सुवर्णम् 8.3.102
निष्टप्तं रक्षः 8.3.102
निष्टप्ता अरातयः 8.3.102
निष्टर्क्यम् 3.1.123
निष्टौति 8.3.70
निष्ट्यः 4.2.104
निष्णातः 8.3.89
निष्पत्राक 5.4.61
निष्पदी 5.4.139
निष्पानम् 8.4.35
निष्पावः 3.3.28
निष्पावौ 3.3.20, 7.2.114
निष्पीतम् 8.3.41
निष्पेषः 6.2.184
निष्प्रवाणिः 5.4.160
निष्फुरति 8.3.76
निष्फुलति 8.3.76
निष्यन्दते 8.3.72
निष्यात् 8.3.87
निष्वजते 8.3.70
निष्षमम् 2.1.17
निष्षामा 8.3.98
निष्षेधः 8.3.98
निष्ष्फुरति 8.3.76
निष्ष्फुलति 8.3.76
निस्तः 8.3.87
निस्तब्धः 8.3.114
निस्तरीकः 6.2.184
निस्तरीपः 6.2.184
निस्तोकः 6.3.1
निस्त्रिंशः 5.4.73
निस्त्रिंशानि 5.4.73
निस्नातः 8.3.89
निस्पृहम् 8.3.110
निस्फुरति 8.3.76
निस्फुलति 8.3.76
निस्यन्दते 8.3.72
निस्वनः 3.3.64
निस्वानः 3.3.64
निस्स्फुरति 8.3.76
निस्स्फुलति 8.3.76
निस्स्व 8.3.58
निहन्ति 1.4.81
निहवः 3.3.72
निह्नयते 1.3.30
नि३ष्कुलम् 8.3.41
नीकाशः 6.3.123
निक्लेदः 6.3.122
नीचकैः 5.3.73, 5.3.74,5.3.85
नीचैः 2.3.46
नीचैः कारम् 3.4.59
नीचैः कृत्याचक्षे 3.4.59
नीचैरधीयान 2.1.2
नीचैरिच्छति 3.1.8
नीचैर्धुरः 5.4.68
नीचैर्मुखः 2.2.24
नीचैर्मुखः 6.2.168
नीतिः 3.3.103
नीत्तम्6.3.124,7.4.47
नीपम् 6.3.97
नीयते 6.4.24
नीरक्तम् 6.3.111, 8.3.14
नीरात्रः 5.4.87
नीरुक् 6.3.116
नीलकण्ठः 6.2.114
नीलग्रीवः 6.2.114
नीलम् 4.2.2
नीलमुत्पलम् 2.1.56
नीलम् उत्पलम् 8.1.28
नीला 4.1.42
नीली 4.1.42
नीलोत्पलम् 2.1.56
नीलोदः 6.3.57
नीवाराः 3.3.48
नीवृत् 6.3.116
नीहारायते 3.1.17
नुत्तः 8.2.56
नुत्तो नुत्तः 8.2.3
नुदतः 6.1.186
नुदता 6.1.173
नुदताम् 7.1.80
नुदति 3.1.77,7.1.59
नुदती 6.1.173
नुदद्भ्याम् 6.1.173
नुदन्ती 6.1.173
नुन्नः 8.2.3,8.2.56
नू 6.3.133
नूतनम् 5.4.25
नूत्नम् 5.4.25
नृचक्षाः 2.4.54
नृणाति 7.3.80
नृणाम् 6.4.6
नृनमनः 8.4.39
नृभिः 6.1.184
नृभ्यः 6.1.184
नृभ्याम् 6.1.184
नृभ्यांम् 6.1.184
नृमणाः 8.4.26
नृषा 6.4.41,8.3.108
नृषु 6.1.184
नृः पाहि 8.3.10
नॄः पाहि 8.3.10
नृः प्रीणीहि 8.3.10
नॄः प्रीणीहि 8.3.10
नृणाम् 6.4.6
नॄन् पाहि 8.3.10
नॄन् भोजयति 8.3.10
नोज्जिह्मायन्तो नरकं 8.3.10
नेतव्या ग्रामम् 2.3.71
नेता 7.2.10
नेता अश्वस्य 2.3.68
नेताश्वस्य 2.3.68
नेत्रम् 3.2.182
नेदिष्ठम् 5.3.63
नेदीयः 5.3.63
नेनेक्ति 7.3.87
नेनिजति 6.1.5
नेनिजानि 7.3.87
नेनीयते 6.4.24
नेनेक्ति 2.4.75,7.4.75
नेम 1.1.27
नेमं तिष्ठति 7.1.25
नेमं पश्य 7.1.25
नेमकृत 5.4.5
नेमतुः 6.4.120
नेमधितम् 7.4.45
नेमम् 7.1.25
नेमस्मै 1.1.27
नेमहिता 7.4.45
नेमाः 1.1.27,1.1.33
नेमिः 3.2.171
नेमुः 6.4.120
नेमे 1.1.27,1.1.33
नेशिथ 7.1.60
नेषत् 3.4.7
नेषतु 3.1.85
नेष्टा 3.2.135,6.4.11
नेष्टारः 6.4.11
नेष्टारौ 6.4.11
नेष्टोद्गातारौ 6.3.25
नैकटिकः 4.4.73
नैतकि 4.2.110
नैत्यम् 5.1.97
नैत्यशब्दि 4.4.1
नैधेयः 1.1.57, 4.1.122
नैपथ्यः 4.1.172
नैर्ऋतः 4.2.59
नैयग्रोधः (चमसः) 7.3.5
नैयग्रोधम् 4.3.164
नैरुक्तः 4.2.59
नैलीनकः 4.2.110
नैशः 4.3.51
नैशम् 4.3.14
नैशादकर्षुकः 7.3.51
नैशिकः 4.3.51
नैशिकम् 4.3.14
नैषध्यः 4.1.172
नैषादः 5.4.36
नैषादक 4.3.118
नैषादकर्षुकः 4.2.119, 7.3.51
नैषादकिः 4.1.96
नैष्कशतिकः 5.2.119
नैष्कसहस्रिकः 5.2.119
नैष्किकः 4.3.156

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नैष्किकम् 4.3.156, 5.1.19,5.1.37
नैष्कुल्य 8.3.41
नो अवन्तु 6.1.116
नो अव्रता 6.1.116
नोत्ता 7.2.10
नोनाव 6.1.8
(कृष्णो) नोनाव 3.1.35
नौका 7.3.44,7.4.13
नौति 7.3.89
नौभ्याम् 6.1.79
नौमि 7.3.89
नौयानम् 6.1.79
नौषि 7.3.89
नौषेचनम् 8.3.98
न्यकुटीत् 7.2.7
न्यक्षम् 6.2.192
न्यखोरीत् 7.2.2
न्यगूढ 7.3.73
न्यग्रोधः 7.3.53
न्यग्रोधकः 4.2.80
न्यग्रोधपरिमण्डला 2.1.55
न्यग्रोधंपरिमण्डला 6.2.2
न्यघुक्षत 7.3.73
न्यघुढ्वम् 8.2.37
न्यङ् 6.2.53
न्यङ्कुः 7.3.53
न्यंङ्कः 6.2.53
न्यङ्कौ 6.2.53
न्यधुक्षत् 7.3.73
न्यधुवीत् 7.2.1
न्यनुवीत् 7.2.1
न्यन्तः 6.2.181
न्यपुटीत् 7.2.7
न्यमीलीत् 7.2.2
न्ययः 3.3.37
न्यर्णः 7.2.24
न्यविशत 1.3.17, 1.4.13
न्यशीशयत् 7.3.37
न्यषहत 8.3.70
न्यषीदत् 8.3.66, 8.3.119
न्यषीव्यत् 8.3.70
न्यषुणोत् 8.3.63
न्यषेवते 8.3.70
न्यष्टौत् 8.3.70
न्यसीदत् 8.3.119
न्यसीव्यत् 8.3.70
न्यसीषिवत् 8.3.116
न्यस्तौत् 8.3.70
न्यग्रोधमूलः (शालयः) 7.3.5
न्यादः 3.3.60
न्यायः 3.3.122
(एषोऽत्र) न्यायः 3.3.37
न्याय्यम् 4.4.92
न्युब्जः 7.3.61
न्योकः 7.3.64
न्रा 6.1.184
न्रार्थिः 7.3.3
न्रे 6.1.184

प

पक्तव्यम् 8.2.30
पक्ता 7.2.10,8.2.30
पक्तासे 3.4.80
पक्तिः 3.3.18,3.3.95, 3.3.96
पक्तुम् 8.2.30
पक्त्रिमम् 3.3.88, 4.4.20
पक्वः 6.4.15,6.4.37, 8.2.52
पक्ववान् 6.4.15, 6.4.37,8.2.52
पक्वेष्टकचितम् 6.3.65
पक्षतिः 5.2.25
पक्षीघ्नम् 8.3.78
पक्षीयास्ताम् 3.4.102
पक्षीरन् 3.4.102
पक्षीष्ट 3.4.102
पक्ष्यसे 3.4.80
पक्ष्यामः 7.3.101
पक्ष्यामि 7.3.101
पक्ष्यावः 7.3.101
पङ्क्तिः 5.1.59
पङ्गूः 4.1.68
पच् 1.1.65
पच 6.4.105,8.1.51, 8.1.52
पचः 3.1.134,3.4.67
पचतः 1.3.4,1.4.22, 1.4.108,3.4.78
पचत 3.4.85
पचतंः 6.1.186
पचतकि 5.3.71, 5.3.73,5.3.85
पचतभृज्जता 2.1.72
पचतम् 3.4.85
पचता कृतम् 3.2.124
पचताम्3.4.85,3.4.90
पचति 3.2.123, 7.1.58,8.1.4
पचंति6.1.162,8.4.67
पचति 1.1.7,1.4.22, 1.4.108,3.1.4, 3.1.68,3.2.126, 3.4.78
पचतिः 3.3.108
पचतिकल्पम् 5.3.67
पचतिक्लिश्नाति 8.1.69
पचति गोत्रम् 8.1.69
पचति गोत्रम् 8.1.27
पचतितमाम् 5.3.56
पचतितमा 5.4.11
पचतितराम् 5.3.57
पचतितरा 5.4.11
पचतिदेश्यः 8.1.57
पचति नामु 8.1.27
पचति पचति 8.1.27
पचति पापम् 8.1.27
पचति पूति 8.1.69
पचति पूतिदेवदत्तः 8.1.69
पचति प्रवचनम् 8.1.69
पचति ब्रुवम् 8.1.69
पचति ब्रुवम् 8.1.27
पचति मिथ्या 8.1.69
पचतिरूपम् 5.3.66
पचति शोभनम् 8.1.69
पचतीति 8.2.3
पचतु 1.1.56,3.4.86
पचते 1.3.72,3.4.78
पचतोरूपम् 5.3.66
पचत्योदनं 3.1.87
पचत्योदनम् 1.1.66
पचथ 1.4.105, 3.4.78
पचथः1.3.4,1.4.105, 3.4.78,7.3.101
पचध्वम् 3.4.91, 7.3.103
पचध्वे 3.4.78
पचन् 7.1.70
हे पचन् 3.2.125
पचनम् 3.3.18
पचन्तः 7.1.70
पचन्तं 3.2.124
पचन्ताम् 3.4.90
पचन्ति 1.1.2,1.4.14, 1.4.108,3.4.78, 6.1.97,7.2.81, 8.2.5
पचन्ति पाचकाः 1.3.72
पचन्ति पूति 8.1.69
पचन्तिरूपम् 5.3.66
पचन्ती 4.1.6,7.1.81
पचन्तु 3.4.86
पचन्ते 3.4.78,7.2.81
पचन्तौ 7.1.70
पचप्रकूटा 2.1.72
(हे) पचमान 3.2.125
पचमानः 3.4.79, 3.4.113,6.1.186, 7.2.82
पचमानं 3.2.124
पचमाना 4.1.15
(कतीह) पचमानाः 3.2.128
पचमानेन 3.2.124
पचलवणा 2.1.72
पचसि 1.4.105, 3.4.78,8.1.19
पचसि 8.1.17
पचसे 3.4.78
पचस्व 3.4.91
पचानि 3.4.89
पचाम् 3.3.110
पचाम 3.4.85
पचामः 1.4.107, 3.4.78,7.3.101
पचामंः 6.1.186
पचामहे 3.4.78
पचामि 1.4.107, 3.4.78,7.3.101
पचाव 3.4.85
पचावः 1.4.107, 3.4.78,7.3.101
पचावंः 6.1.186
पचावहे 3.4.78
पचावहै 7.2.81
पचावेदम् 3.4.93
पचिष्यन्ति 7.2.10
पचे 1.1.2,3.4.78, 6.1.97
पचेत् 7.2.80
पचेत 3.4.102
पचेताम् 3.4.90, 7.2.80,7.2.81
पचेते 3.4.78,7.2.81
पचेते इति 1.1.11
पचेथाम् 7.2.81
पचेथे 3.4.78,7.2.81
पचेथे इति 1.1.11

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पचेय 3.4.106
पचेयाताम् 3.4.102
पचेयुः 3.4.108, 7.2.80
पचेरन् 1.1.60, 3.4.102,3.4.105, 6.1.66
पचेलिमाः 3.1.96
पच्छः 6.3.55
पच्छब्दः 6.3.56
पच्यते 1.3.78
पच्यते ओदनः 1.3.78, 3.1.67
पञ्च 1.1.24,1.1.63, 7.1.22
पञ्चकः5.1.22,5.1.47, 5.1.56,5.1.60, 5.2.77
पञ्चकः शकुनयः 5.1.58
पञ्चकपालः 2.1.51, 2.1.52,2.4.26, 4.1.88
पञ्चंकपालः 6.2.29
पञ्चकम्5.1.37,5.1.39
पञ्चकमासिक 5.4.116
पञ्चकर्णः 6.3.115
पञ्चकुमारि 2.1.51
पञ्चकृत्वः 5.4.17
पञ्चकृत्वोऽह्नो 2.3.64
पञ्चकेन पशून् 2.3.18
पञ्चको देवदत्तः 5.1.47
पञ्चखट्वम् 2.4.17
पञ्चखट्वी 2.4.17
पञ्चगर्गमय 4.1.88
पञ्चगर्गरूप्य 4.1.88
पञ्चगवधनः 2.1.51
पञ्चगवम् 2.1.23, 2.4.17,5.4.92
पञ्चगवमयम् 5.4.92
पञ्चगवरूप्यम् 5.4.92
पञ्चगुः 5.4.92
पञ्चगोणिः 1.1.52, 1.2.50
पञ्चगोदाव 5.4.75
पञ्चजनीनम् 5.1.9
पञ्चजनीयम् 5.1.9
पञ्चत् 5.1.60
पञ्चतक्षम् 2.4.17
पञ्चतक्षी 2.4.17
पञ्चतयम् 5.2.42
पञ्चतयी 4.1.15
पञ्चथः 5.2.50
पञ्चदण्डी 8.2.2
पञ्चदश 6.3.47
पञ्चदशः 5.1.58
पञ्चदशस्तोमः 5.2.37
पञ्चदशाः 5.4.73
पञ्चदशिनः 5.1.58, 5.2.37
पञ्चदशी 5.2.37
पञ्चदाम्नी 4.1.29
पञ्चदिष्टिः 6.2.31
पञ्चधा 5.3.42,5.3.43
पञ्चनदम् 2.1.20, 5.4.75
पञ्चनावप्रियः 2.1.52, 5.4.99
पञ्चनौः 5.4.99
पञ्चपदी 5.4.139
पञ्चपाकाः 5.4.17
पञ्चपात्रम् 2.4.17
पञ्चपूली2.1.51,2.4.1, 2.4.17,4.1.21
पञ्चपूलीयं 2.4.1
पञ्चंभगालः 6.2.29
पञ्च ब्राह्मणाः 2.1.50, 2.2.25
पञ्च ब्राह्मण्यः 4.1.10, 8.2.2
पञ्चभिः 6.1.180
पञ्चभिंः 6.1.180
पञ्चभिर्भुक्तमस्य 2.2.24
पञ्चमः5.2.49,5.2.50, 5.3.48
पञ्चमजातीया 6.3.42
पञ्चमदेशीया 6.3.42
पञ्चमम् 5.3.49
पञ्चमवान् 5.2.130
पञ्चमवृन्दारिका 6.3.42
पञ्चमात्रम् 5.2.37
पञ्चमासिक 5.4.116
पञ्चंमास्यः 6.2.29
पञ्चमिकः 5.1.48
पञ्चमी 5.2.130
पञ्चमीपाशा 6.3.38
पञ्चमीभार्यः 6.3.38
पञ्चमीमानिनी 6.3.38
पञ्चमीयते 6.3.38
पञ्चमूली 2.1.52
पञ्चराजम् 2.1.23
पञ्चंवर्षः 6.2.29
पञ्चवाक् 5.4.106
पञ्चलौहितिकम् 5.1.28
पञ्चवितस्ति 6.2.31
पञ्चव्याकरणः 4.2.60
पञ्चंशरावः 6.2.29
पञ्चशष्कुलिः 1.2.49
पञ्चषाः 5.4.73
पञ्चसूचिः 1.2.49
पञ्चाङ्गुल 5.4.114
पञ्चाङ्गुलि 5.4.114
पञ्चाङ्गुलिः 5.4.86
पञ्चानाम् 6.1.180, 6,4.7,7.1.55
पुञ्चानाम् 6.1.179
पञ्चाम्राः 2.1.50
पञ्चारत्निः 6.2.29
पञ्चारत्न्य 6.2.29
पुञ्चार्मम् 8.2.2
पञ्चालाः (बहुक्षीरधृताः) 1.2.52
पञ्चालाः रमणीयाः 1.2.52
पञ्चालाः (जनपदः) 1.2.52
पञ्चालाः 1.2.51, 4.2.81
पञ्चालाः (बह्वन्नाः) 1.2.52
पञ्चालाः (बहुमाल्यफलाः) 1.2.52
पञ्चालेषु 2.3.45
पञ्चाशत् 5.1.59
पुञ्चाश्चः 6.2.29
पञ्चाश्वा 4.1.22
पञ्चाश्वी 4.1.22
पञ्चेन्द्रः 1.2.49
पुट्चीरंम् 6.2.127
पटत्पटदिति 6.1.99
पटदन्न 6.1.98
पटपटाक 5.4.57
पटपटाकरोति 1.4.61, 6.1.99,8.1.12
पटपटाकृतम् 1.4.61
पटपटाकृत्य 1.4.61
पटपटाभ 5.4.57
पटपटायति 1.3.90, 3.1.13
पटपटायते 1.3.90, 3.1.13
पटपटास्यात् 5.4.57
पटयति 1.1.57
पटयति 6.4.155
पटयते 6.4.155
पटवः 7.3.109
पटव्यम् 5.1.5
पुट्हुशब्द 6.1.223
पुट्रान्तरः 6.2.166
पटा3उ 8.2.108
पटा3इच्छत्रम् 8.2.3
पटा3वाशा 8.2.108
पटा3वुदकम् 8.2.108
पटिति 6.1.98
पटितिकरो 5.4.57
पटिमा 6.4.155, 6.4.161
पटिष्ठः 5.3.55, 5.3.58,6.4.155, 6.4.161
पटीयांसः 5.3.57
पटीयान् 5.3.57, 6.4.155,6.4.161
पटु० 4.1.44
पटुकल्पः 5.3.67
पटुका 7.3.44
पटुगुप्तौ 2.2.32
पटुजातीय 5.3.69
पुटुजातीयंः 6.1.217
पटुजातीयः 8.1.12
पटुतम० 5.3.58
पटुतमः 6.1.71
पटुतरः 5.3.58,6.1.71
पटुता 6.3.35
पटुत्वम् 6.3.35
पटुदेशीयः 5.3.67
पटुदेश्यः 5.3.67
पटुना 7.3.120
पटुपटुः 8.1.11
पुटुपुटुः 8.1.11
पटुपटु 8.1.12
पटुपट्वी 8.1.11
पुटुपुट्वी 8.1.11
पटुभार्यः 6.3.40
पटुमृदुशुक्लाः 2.2.32
पटुशुक्लमृदवः 2.2.32
पटूकरोति 7.4.26
पटूभवति 7.4.26
पटूयति 1.3.5
पटूस्यात् 7.4.26
पटो 7.3.108
(हे) पटो 2.3.49
पटौ 7.3.119
पट्विकल्पा 6.3.42
पट्विका 6.3.42
पट्वितमा 6.3.42

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पट्वितरा 6.3.42
पट्वीवरूपा 6.3.42
पट्वी 4.1.44
पट्वी 7.3.111
पठ् 1.1.65
पठ 6.4.105
पठतः 6.1.186
पठति 3.1.4,3.2.123, 3.2.126
पठंति 8.4.67,6.1.162
पठतिः 3.3.108
पठानि 3.4.89
पठिता 4.1.15
पठिष्यते 6.4.62
(सहस्रस्य) पणते 3.1.28
पणायति 3.1.28
पण्डित 8.1.12
पण्डितपण्डितः 8.1.11, 8.2.12
पण्डितमानी 3.2.83
पण्डितम्मन्यः 3.2.83
पण्यकम्बलः 6.2.42
पण्यम् 3.1.101
पतनः 3.2.150
पतयालुः 3.2.158
पतयालूः 4.1.71
पताकी 5.2.116
पताति 3.1.34,3.4.7, 3.4.94,3.4.97
पतापतः 6.1.12,7.4.59
पताम 3.4.8
पतिंवरा (कन्या) 3.2.46
पतिघ्नी 3.2.52
पतिघ्नी (पाणिरेखा) 3.2.53
पतितः 7.2.15
पतितजम्भः 5.4.125
पतितपतितः 8.1.10
पतिता 7.2.9
पतितुम् 7.2.9
पतिरियं ब्राह्मणी
पतिवती 4.1.32
पतिवत्नी 4.1.32
पत्काषी 6.3.54
पत्रम् 3.2.182
पत्त्रम् 7.2.9
पत्ता 7.2.10
पत्नी 4.1.33
पत्नीव3ः 8.2.107
पत्नीसंयाजा 7.3.62
पत्या 1.4.8,7.1.12
पत्युः 6.1.112,
पत्ये 1.4.8,7.1.13 7.3.111
पत्ये शेते 1.4.32
पत्यौ 7.3.118
पथः 7.1.88
पृथः 6.1.161
पृथः पश्य 6.1.199
पथकः 5.2.62
पथा 7.1.88
पृथा 6.1.161
पथा आगमन् 6.1.127
पथिकः 5.1.75,5.1.76
पथिकी 5.1.75
पथिप्रज्ञः 3.2.6
पथिप्रियः 6.1.199
पथिरक्षी 3.2.27
पथे 7.1.88
पृथे 6.1.161
पथे गच्छति 2.3.12
पथ्यम् 4.4.92
पथ्यं देवदत्तस्य 2.3.73
पथ्यं देवदत्ताय 2.3.73
पदं मिथ्या 1.3.71
पदं सुष्ठु 1.3.71
पदंकः 4.2.61
पदक्रमकम् 2.4.5
पदकारः 3.2.23
पदगः 6.3.52
पदनः 3.2.150
पदष्ठीव 5.4.77
पदसङ्घाटः 3.2.49
पदसङ्घातः 3.2.49
पदा 6.1.63
पदाजिः 6.3.52
पदातिः 6.3.52
पदिकः 6.3.53
पदे कृत्य 1.4.76
पदे कृत्वा 1.4.76
पदोपहतः 6.3.52
पद्घोषः 6.3.56
पद्धतिः 6.3.54
पद्धिमम् 6.3.54
पद्मगन्धिः 5.4.136
पद्मनाभः 5.4.75
पद्मिनी 5.2.135
पद्यः 4.4.87
पद्याः कण्डका 6.3.53
पद्याः शर्कराः 4.4.83, 6.3.53
पनायति 3.1.28
पनीपतीति 7.4.84
पनीपत्यते 7.4.84
पनीपदीति 7.4.84
पनीपद्यते 7.4.84
पन्थकः 4.3.29
पन्थाः 1.1.3,1.2.28, 1.1.57,6.1.199, 7.1.39,7.1.85, 7.1.86,7.1.87
पन्थ्याः 6.1.199
पन्थानः 7.1.86,7.1.87
पन्थानः 6.1.199
पन्थानम् 7.1.86, 7.1.87
पन्थानं गच्छति 2.3.12
पन्थानौ 7.1.86,7.1.87
पन्थानौ 6.1.199
पन्नगः 3.2.48
पन्नागाराः 2.4.66
पन्नित्रिकः 6.3.56
पन्मिश्रः 6.3.56
पपक्थ 3.4.82, 6.4.121,7.2.62
पपच (अहम्) 7.1.91
पपच 3.4.82, 6.4.120,7.4.93
पपठ 6.4.120
पपतुः 1.1.59,6.4.64
पपाच (अहम्) 7.1.91
पपाच 3.4.82,6.1.1, 6.1.4,6.1.8, 7.4.60,7.4.61, 7.4.70,7.4.79
पपाठ 6.1.8,7.4.60, 7.4.70
पपाप 6.4.64
पपिः 3.2.171
पपिः सोमम् 2.3.69
पपिथ 6.4.64
पपिवद्भ्याम् 8.2.72
पपिवद्भिः 8.2.72
पपिवान् 3.2.107
पपुः 1.1.59,6.4.64
पपुरिः 7.1.103
पपुषः 6.4.22
पपौ 7.1.34
पप्तिम 6.4.99
पप्रितमम् 7.1.103
पफकनरकाः 2.4.68
पफणतुः 6.4.125
पफणिथ 6.4.125
पफणुः 6.4.125
पम्पशीति 7.4.86
पम्पश्यते 7.4.86
पम्फुलीति 7.4.87, 7.4.88
पम्फुल्यते 7.4.87
पय आ3श्विन् 6.1.113
पयः 1.1.63,6.1.203
पय ≍ कामयते 8.3.37
पयः पयो जरयति 1.2.64
पुयुःपानं सुखम् 6.2.150
पयःपायिका 3.3.111
पय ≍ पिबति 8.3.37
पयःशक् 8.2.29
पयःसु 8.3.16
पयसौदनं भुङ्क्ते 1.4.49
पयस्कंसः 8.3.45
पयस्कम् 8.3.37
पयस्कर्णी 8.3.45
पयस्कल्पम् 8.3.37
पयस्कामः 8.3.45
पयस्काम्यति 8.3.37
पयस्कारः 8.3.45, 8.3.50
पयस्कुम्भः 8.3.45
पयस्कुम्भी 8.3.45
पयस्कुशा 8.3.45
पयस्पात्रम् 8.3.45
पयस्पात्री 8.3.45
पयस्पाशम् 8.3.37
पयस्यते 3.1.12
पयस्यम् 4.3.160
पयस्याः 4.4.125
पयस्वान् 8.2.9
पयस्वी 1.4.19, 5.2.121
पयांसि 1.1.47, 7.1.72,8.3.24, 6.4.10
पयायते 3.1.12
पयो धावति 8.2.25
पयोपवसनः 6.3.109
परकीयम् 4.2.138, 4.3.60
परत 5.3.29
परतो 5.3.29
परदारान् 1.1.47, 1.3.32
परन्तपः 3.2.39,6.4.94
परमाऽहः 5.4.91

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परपथम् 5.4.107
परमकंसः 6.2.122
परमकषायः 6.2.10
परमकारीष 6.1.13
परमकारीषग 6.1.14
परमकुमारः 6.2.58
परमकुमारी 6.2.95
परमकूलम् 6.2.129
परमकूलम् 6.1.182, 6.2.121
परमकृत्वा 7.1.37
परमकृष्णः 6.2.3
परमकृच्छ्रा 6.1.182
परमखट्वका 7.3.48
परमखट्वाका 7.3.49
परमखट्विका 7.3.48
परमगव 5.4.69, 5.4.92
परमगाधम् 6.2.4
परमगार्ग्यः 2.4.64
परमगिरिः 6.2.94
परमचतुर्णाम् 7.1.54
परमचीरम् 6.2.127
परमचूर्णम् 6.2.134
परमचैलम् 6.2.126
परमतव 7.2.96
परमतिष्ठद् 2.1.17
परमतुभ्यम् 7.2.95
परमते 7.2.102
परमतौ 7.2.102
परमत्वचा 6.1.169
परमत्वम् 7.2.94
परमदण्डिना 8.3.32
परमदण्डिनौ 8.3.32
परमदायादः 6.2.5
परमधनुःकपालम् 8.3.45
परमनामितः 6.2.62, 6.2.63
परमनियः 6.4.82
परमनियौ 6.4.82
परमनेदी 6.2.21
परमनैष्किकम् 5.1.19
परमपञ्चानाम् 7.1.54
परमपयः कामः 8.3.46
परमपयः कारः 8.3.45
परमपुलोमम् 6.2.128
परमपुरुषः 2.1.61
परमपूर्व 6.2.22
परमप्रिय 6.2.15
परमब्राह्मणः 6.2.58
परममम 7.2.96
परममह्यम् 7.2.95
परममैरेयः 6.2.70
परमयूयम् 7.2.93
परमरथ्यः 4.4.76
परमरथ्यम् 4.3.121
परमराज 5.1.69
परमराजः 6.1.182
परमराज्यम् 1.2.42
परमराज्यम् 6.2.130
परमर्तः 6.1.89
परमलव 6.2.24
परमलवणम् 6.2.4
परमलुवः 6.4.83
परमलुवौ 6.4.83
परमवयम् 7.2.93
परमवर्ग्यः 6.2.131
परमवाचा 6.1.169
परमवाचे 6.1.169
परमवाणिज 6.2.13
परमशरत् 5.4.107
परमशरावम् 6.2.29
परमशारदम् 6.2.9
परमशिरःपदम् 8.3.47
परमशुना 6.1.182
परमशुनें 6.1.182
परमश्वभ्याम् 6.1.182
परमश्वेतः 6.2.93
परमषट् 7.1.22
परमषण्णाम् 7.1.54
परमसः 7.2.102
परमसक्थि 5.4.113
परमसदृश 6.2.11
परमसप्त 6.2.12
परमसप्तानाम् 7.1.54
परमसर्पिः 8.3.45, 8.3.48
परमसिंहः 6.2.72
परमसीत्यम् 4.4.91
परमसुख 6.2.15
परमसेना 2.4.19
परमस्वधर्मः 5.4.124
परमस्वामी 6.2.17
परमाऽध्यापकः 8.1.67
परमाध्वर्यु 6.2.10
परमाध्वा 5.4.85
परमाऽनेन 7.2.107
परमारत्निः 6.2.29
परमाष्टौ 7.1.21
परमाऽहम् 7.2.94, 7.2.107
परमेष्ठः 8.3.97
परमेष्ठीः 8.3.97
परम्परीणः 5.2.10
परलोकदृश्वा 3.2.94
परलोकदृश्वरी 4.1.7
परशव्यम् 6.4.146
परशुच्छिन्नः 2.1.32
परशुना छिनत्ति 1.4.42, 2.3.18
परशुना वृश्चन् 2.1.2
परश्शताः 2.1.39
परस्ताद् 5.3.29
परस्परस्य 1.3.16
परस्मात् 7.1.16
परस्मिन् 7.1.16
परस्मैपदम् 6.3.8
परस्मैभाषा 6.3.8
परस्सहस्रा 2.1.39
परमाक्षिः 5.4.113
पराः 1.1.34
पराकरोति 1.3.79
पराक्रमते 1.3.39
पराक्रामति 1.3.39
पराङ् 6.2.52
पराचः 6.2.52
पराचा 6.2.52
पराचिकीर्ष 1.3.62
पराजयते 1.3.19
पराजयते अध्ययनात् 1.4.26
पराजयन्ति 1.4.58
पराञ्चः 6.2.52
पराञ्चौ 6.2.52
पराणिणत् 8.4.21
पराणिणिषति 8.4.21
पराणिति 8.4.19
परात् 7.1.16
परात्तम् 7.4.47
परापम् 6.3.97
परारि 5.3.22
परारित्नम् 4.3.23
परार्द्ध्यम् 4.3.5
परावर्क् 2.4.80
परि 8.1.5
परिकमनम् 8.4.34
परिकर्षः 6.2.184
परिकूलम् 6.2.182
परिकूलम् 6.2.121
परिकूलम् 6.2.121
परिकेशः 6.2.184
परिकोपणम् 8.4.31
परिकोपनम् 8.4.31
परिक्रीडते 1.3.22
परिक्रीणीते 1.3.18
परिक्रोशकः 3.2.147
परिक्षीणः 6.4.60
परिक्षेपक 3.2.146
परिक्षेपी 3.2.142
परिखा 3.2.101
परिगमनम् 8.4.34
परिगहनम् 8.4.39
परिगात्रयामः 8.4.38
परिगृहीतम् 6.2.146
परिग्रहो 3.3.47
(उत्तरः) परिग्राहः 3.3.47
परिघः 3.3.84, 8.2.22
परिघ्नन्ति 8.4.22
परिचर्या 3.3.101
परिचस्कार 6.1.136
परिचाय्यः 3.1.131
परिचेयम् 3.1.131
परिजुग्घः 6.2.146
परिजाः 3.2.101
परिणत 8.2.34
परिणमति 8.4.14
परिणयः 3.3.37
परिणयति 1.4.59
परिणश्यति 8.4.36
परिणहनम् 6.3.116
परिणायकः 1.4.59, 8.4.14
परिणायेन (शारान् हन्ति) 3.3.37
परिणिगदति 8.4.17
परिणिचिनोति 8.4.17
परिणिददाति 8.4.17
परिणिदधाति 8.4.17
परिणिदेग्धि 8.4.17
परिणिद्राति 8.4.17
परिणिनदति 8.4.17
परिणिपतति 8.4.17
परिणिपद्यते 8.4.17
परिणिप्साति 8.4.17
परिणिमयते 8.4.17
परिणिमिमीते 8.4.17
परिणियाति 8.4.17
परिणिवपति 8.4.17
परिणिवहति 8.4.17
परिणिशाम्यति 8.4.17
परिणिहन्ति 8.4.17
परिण्यगदत् 8.4.17
परितः 5.3.9
परितष्टम्भ 8.3.67
परितष्ठौ 8.3.64, 8.3.65

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुरितीरम् 6.2.121
पुरितीरम् 6.2.182
पुरितूलम् 6.2.121
परितो ग्रामम् 2.3.2
परित्रिगर्तम् 2.1.12, 6.2.33,8.1.5
परित्रिगर्तेभ्यः 2.1.12
परि त्रिगर्तेभ्यो 1.4.88, 2.3.10
परिददृशे 6.4.76
परिदध्रे 6.4.76
परिदाही 3.2.142
परिदृढी कन्या 7.2.20
परिदेवकः 3.2.147
परिदेवी 3.2.147
परिद्यूनः 8.2.49
परिद्रढव्य 7.2.20
पुरिद्रुत् 6.1.160
परिधातवै 3.4.14
परिधापयित्वा 7.1.38
परिधीं रति 8.3.9
परिनङ्क्ष्यति 8.4.36
परिनर्तनम् 8.4.39
परिनष्टः 8.4.36
परिपन्थिनो विदन् 5.2.89
परिपरिणो विदन् 5.2.89
परि परि त्रिगर्तेभ्यो 1.4.88
परिपवनम् 8.4.34
परिपातवै 6.2.51
पुरिपादः 6.2.184
परिपुच्छयते 3.1.20
परिप्यायनम् 8.4.34
परिप्लूय 6.4.58
परिवृहितम् 7.2.21
परिभवः 3.3.55
परिभवनम् 8.4.34
परिभवी 3.2.15, 3.1.134
परिभानम् 8.4.34
परिभापनम् 8.4.34
परिभावः 3.3.55
परिभावी 3.1.134
परिभुग्नः 8.4.29, 8.4.31
परिमङ्गनम् 8.4.32
पुरिमुण्डलम् 6.2.182
परिमाणम् 8.4.29
परिमार्ग्यः 3.1.113
परिमार्ज्जन्ति 1.1.5
परिमार्ज्जन्तु 1.1.5
पुरिमूलम् 6.2.121
परिमृजन्ति 1.1.5
परिमृजन्तु 1.1.5
परिमृज्यः 3.1.113
परिमृष्यतः 1.3.82
परिमृष्यति 1.3.82
परिमृष्यन्ति 1.3.82
परिमोहयते 1.3.89
परिमोही 3.2.142
परियाणम् 8.4.29
परियाणि 8.4.16
परियाणीयम् 8.4.29
परियापणम् 8.4.30
परियापनम् 8.4.30
परियायमाणम् 8.4.29
परियायिणौ 8.4.29
परियोगः 8.2.22
परिरमति 1.3.83
परिराटकः 3.2.146
परिराटी 3.2.142
पर्णीयम् 4.2.145
परिवत्सरीणः 5.1.92
परिवत्सरीयः 5.1.92
परिवपणम् 8.4.31
परिवर्त्तयैनत् 2.4.34
परिवहति 1.3.82
परिवादकः 3.2.146
परिवादी 3.2.142
परिवीय 6.1.44
परिवीषु 6.1.86
परिवृढः 7.2.21
परिवेपनम् 8.4.34
परिवेविषाणि 7.3.87
परिवेविषीध्वम् 8.3.78
परिव्याय 6.1.44
परिव्राजः 7.3.60
परिव्राज्यम् 7.3.60
परिव्राट् कौशि 2.4.14
पुरिशालम् 6.2.121
परिषजति 8.3.65
परिषदः पातु 8.3.52
परिषद्वलः 5.2.112
परिषयः 8.3.70
परिषसाद 8.3.118
परिषस्वजाते 1.2.6, 8.3.118
परिषस्वजिरे 8.3.118
परिषस्वजे 1.2.6, 8.3.118
परिषहते 8.3.70, 8.3.115
परिषिञ्चति 8.3.65
परिषितः 8.3.70
परिषिषङ्क्षति 8.3.65
परिषिषिक्षति 8.3.64, 8.3.65
परिषिषेणयिषति 8.3.64, 8.3.65
परिषिषेविषते 8.3.70
परिषिष्वङ्क्षते 8.3.65
परिषीव्यति 8.3.70
परिषुणोति 8.3.65
परिषुणोति 8.3.63
परिषुवति 8.3.65
परिषेणयति 8.3.65
परिषेधति 8.3.65
परिषेवते 8.3.70
परिष्कण्णः 8.3.74
परिष्कन्तव्यम् 8.3.74
परिष्कन्ता 8.3.74
परिष्कन्तुम् 8.3.74
परिष्कन्दः 8.3.75
परिष्करोति 8.3.70
परिष्कर्त्तव्य 6.1.137
परिष्कर्त्ता 6.1.137
परिष्कर्त्तुम् 6.1.137
परिष्कृत 6.1.138
परिष्टभ्नाति 8.3.67
पुरिष्टुत् 6.1.160
परिष्टोभते 8.3.65
परिष्टौति 8.3.65, 8.3.70
परिष्ठलम् 8.3.96
परिष्ठास्यति 8.3.65
परिष्यति 8.3.65
परिष्यन्दते 8.3.72
परिष्वक्ता 7.2.10
परिष्वजते 6.4.25, 8.3.65,8.3.70
परिसर्या 3.3.101
परिसारी 3.2.142
परिसार्वसेनि 6.2.33
परिसृष्टा 4.1.48
परिसेधयति 8.3.113
परिसेसिच्यते 8.3.112
परिसोढः 8.3.115
परिसोढव्यम् 8.3.115
परिसोढुम् 8.3.115
परिसोष्यति 8.3.117
परिसौवीरम् 6.2.33
परिस्कन्तव्यम् 8.3.74
परिस्कन्ता 8.3.74
परिस्कन्तुम् 8.3.74
परिस्कन्दः 8.3.75
परिस्कन्नः 8.3.74
परिस्तरितवै 3.4.14
परिस्तरितुवै 6.2.51
परिस्यन्दते 8.3.72
परिहणनम् 8.4.22
परिहण्मः 8.4.23
परिहण्यते 8.4.22
परिहण्वः 8.4.23
परिहन्मः 8.4.23
परिहन्वः 8.4.23
पुरिहस्तः 6.2.184
परिहीणः 8.4.29
परिहीणवान् 8.4.29
परीणत् 6.3.116, 8.2.34
परीतत् 6.4.40
परीतम् 6.4.40
परीत्तम् 6.3.124
परीपृच्छीति 7.4.90
परीपृच्छ्यते 6.1.16, 7.4.90
परीष्टिः 3.3.107
परुत् 5.3.22
परुत्तम् 4.3.23
परुषः परुषः परि 8.3.49
परे 1.1.34,7.1.16
परेङ्गणम् 8.4.32
परेङ्गणम् 8.4.32
परेद्यवि 5.3.22
परोक्षम् 5.4.107
परोम्भणम् 8.4.32
परोवरीणः 5.2.10
पर्णकारी 6.2.79
पर्णधुट् 8.2.37
पर्णध्वत् 3.2.76, 4.1.6,6.1.68, 7.1.70
पर्णध्वद्भिः 8.2.72
पर्णध्वद्भ्याम् 8.2.72
पर्पिका 4.4.10
पर्पिकी 4.4.10
पुर्यक्षम् 6.2.121
पर्यघानि 8.4.22
पर्यङ्कः 8.2.22
पर्यङ्कीयति मञ्चके 3.1.10
पर्यतस्तम्भत् 8.3.116
पर्यध्ययनः 2.2.18
पर्यनिति 8.4.20
पर्यन्तः 6.2.180

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(कालस्य) पर्ययः 3.3.38
पर्यवनद्धम् 8.4.38
पर्यवेविषम् 7.3.87
पर्यषजत् 8.3.65
पर्यषहत 8.3.70
पर्यषिञ्चत् 8.3.65
पर्यषीव्यत् 8.3.70
पर्यषुणोत् 8.3.63, 8.3.65
पर्यषुवत् 8.3.65
पर्यषेणयत् 8.3.65
पर्यषेधत् 8.3.65
पर्यषेवत 8.3.70
पर्यष्करोत् 8.3.70
पर्यष्टभ्नात् 8.3.67
पर्यष्टोभत 8.3.65
पर्यष्टौत् 8.3.65, 8.3.70
पर्यष्ठात् 8.3.65
पर्यष्यत् 8.3.65
पर्यष्वजत 8.3.65, 8.3.70
पर्यसीव्यत् 8.3.70
पर्यसीषहत् 7.3.116
पर्यसीषिवत् 8.3.116
पर्यसोष्यत् 8.3.117
पर्यस्तौत् 8.3.70
पर्यस्वजत 8.3.70
(कतीह कवचं) पर्यस्यमानाः 3.2.128
पर्याचितम् 6.2.146
पर्याणद्धम् 8.4.2
पर्याप्तं भुङ्क्ते 3.4.66
पर्याप्तो भोक्तुम् 3.4.66
पर्यायः 3.3.38
पर्यासिषाताम् 3.1.52
पर्यासिषांताम् 3.1.52
पर्यास्थत 3.1.52
पर्यास्थन्त 3.1.52
पर्यास्थेताम् 3.1.52
पर्येषणा 3.3.107
पर्वणा 6.4.137
पर्वणे 6.4.137
पर्वतः 5.2.122
पर्वतम् अध्यास्ते 1.4.46
पर्वतमन्ववसिता 1.4.85
पर्वतम् उपवसति 1.4.48
पर्वतस्थः 6.3.20
पर्वता इव बलाहकाः 2.1.55
पर्वताद् अवरोहति 1.4.23, 1.4.28, 2.3.28, 5.4.45
पर्वतीयः 4.2.143
पर्वतीयानि 4.2.143
पर्वतोपध्नः 3.3.85
पर्शवः 5.3.117
पर्शूः 4.1.178
पुलाण्डुभुक्षितः 6.2.170
पलाण्डुभक्षिता 4.1.53
पलाण्डुभक्षिती 2.2.36, 4.1.53
पलायते 8.2.19
पलायाञ्चक्रे 3.1.37
पलाशशातनः 2.2.8, 3.3.117
पुलाशशातनः 6.2.139
पलिक्नी 4.1.39
पलिघः 3.3.84, 8.2.22
पलितङ्करणम् 3.2.56
पलितम्भविष्णुः 3.2.57
पलितम्भावुकः 3.2.57
पलितस्तम्भ 5.2.60
पलितस्तम्भीयः 5.2.60
पलिता 4.1.39
पलियोगः 8.2.22
पल्यङ्कः 8.2.22
पल्ययते 8.2.19
पल्यवर्च्चसम् 5.4.78
पवः 3.3.28, 3.3.57
पवनीयम् 7.2.35
पवमानः 3.2.128, 3.3.131
पवितः 1.2.22, 7.2.51
पवितवान् 1.2.22, 7.2.51
पवितव्यम् 7.2.35
पविता 7.2.9, 7.2.10, 7.2.35
पवितुम् 7.2.9, 7.2.35
पवित्रः 3.2.185
पवित्रम् 3.2.185
पवित्रमम् 1.3.5
पवित्वा 1.2.22, 7.2.51
पविषीढ्वम् 8.3.79
पविषीध्वम् 8.3.79
पविषीष्ट 3.4.116
पविष्यति 7.2.10
पव्यम् 6.1.80, 7.2.35
पशवे 7.3.109
पशुना रुद्रं 1.4.32
पशुपालसंभम् 6.2.98
पशून् 8.1.3
पशोः पादः 2.3.49
पश्च 5.3.33
पश्चा 5.3.33
पश्चात् 5.3.33
पश्चाद् आग 5.3.32
पश्चाद् दिशि 5.3.32
पश्चाद् रम 5.3.32
पश्चार्धः 5.3.32
पश्चिमदक्षिणा 2.2.26
पश्चिमम् 4.3.23
पश्चिमरात्रः 2.2.1
पश्यत माणवको 8.1.39
पश्यति 1.3.57, 7.3.78
पश्यतोहरः 6.3.21
पश्यन्ति भृत्याः 1.3.67
पश्य माणवको 8.1.39
पश्य मृगो धावति 8.1.39
पश्वे 7.3.109
पस्पशाते 7.3.87
पांशुरम् 8.2.18
पांशुलम् 8.2.18
पांसुरम् 5.2.107
पाकः 1.1.50, 2.3.15, 3.3.18, 7.2.116, 7.3.52
पाकः 6.1.159
पाककर्णा 4.1.4
पाकभार्यः 6.3.37
पाकयज्ञिकः 4.2.35
पाकयज्ञिक 4.3.68
पाका 3.3.18
पाकाय व्रजति 2.3.15, 3.3.11
पाकिमम् 4.4.20
पाकौ 3.3.18
पाक्यम् 3.1.98, 3.1.124, 7.3.52, 7.3.65
पाक्षायणः 4.2.80
पाक्षिकः 1.1.58, 4.4.35
पाङ्क्तः 4.2.55
पाचकः 7.2.116
पाचकजातीया 6.3.42
पाचकतमः 5.3.58
पाचकतरः 5.3.58
पाचकदेशीया 6.3.42
पाचकवृन्दारिका 1.2.42, 6.3.42
पाचयति 7.2.116
पाचयति ओदनम् 3.1.26
पाचयते ओदनम् 1.3.73
पाचयत्योदनं 1.4.52
पाचयाञ्चकार 3.1.40
पाचयामास 3.1.40
पाचयाम्बभूव 3.1.40
पाचिकाभार्यः 1.2.42, 6.3.37
पाञ्चकपालम् 4.1.88
पाञ्चकलापिकम् 5.1.28, 7.3.17
पाञ्चजन्यम् 4.3.58
पाञ्चनापितिः 2.1.51
पाञ्चलोहितकम् 7.3.17
पाञ्चलोहितिकम् 7.3.17
पाञ्चहोतृक 4.3.72
पाञ्चालः 4.1.168
पाञ्चालः 4.3.100
पाञ्चालिः 4.1.168
पाञ्चाली 4.1.178
पाञ्चौदनिक 4.3.68
पाटलिपुत्रका 4.2.123
पाटलिपुत्रवत् 5.1.116
पाटलिपुत्रावत् 2.3.28
पाटवम् 5.1.131
पाटूपटः 6.1.12
पाठकः 7.2.116, 7.3.34
पाठयति 1.4.52, 7.2.116
पाठिः 3.3.110
पाठिकाम् 3.3.110
पाणः 3.3.66
पाणविकः 4.4.55
पाणिकम् 5.1.19, 5.1.37
पाणिगृहीती 4.1.52
पाणिग्राहम् 3.4.39
पाणिघः 3.2.55
पाणिघातः 3.2.55
पाणिघातम् 3.4.37
पाणिनः 6.4.165
पाणिना कुण्ठः 2.3.20
पाणिनिकृतिः 6.2.151
पाणिनीयं 4.2.66
पाणिनीयम् 4.3.101, 4.3.115
पाणिनीयः 4.2.64, 4.3.99
पाणिनीयदेवदत्तौ 6.2.36
पाणिनीयरौ 6.2.36
पाणिनीया ब्राह्मणी 4.2.64
पाणिनोपक 3.3.49

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पाणिनोपज्ञ 6.2.14
पाणिन्धमाः (पन्थानः) 3.2.37
पाणिन्युपज्ञम् 2.4.21
पाणिपादम् 2.4.2, 2.4.17
पाणिपादवती 5.2.128
पाणिवर्त्तम् 3.4.39
पाणिसर्ग्या 3.1.110
पाणौ कृत्य 1.4.77
पाण्डवः 4.1.171
पाण्डवेयः 4.1.123
पाण्डारः 4.1.130
पाण्डित्याद् मुक्तः 2.3.25
पाण्डित्येन मुक्तः 2.3.25
पाण्डुकम्बलिन 4.2.11
पाण्डुकम्बलिनौ 4.2.11
पाण्डुकम्बली 4.2.11
पाण्डुत्वम् 5.1.131
पाण्डुभूमः 5.4.75
पाण्डुरम् 5.2.107
पाण्डुरियम् 4.1.44
पाण्ड्यः 4.1.171
पाण्यम् 3.1.101
पाण्युपकर्षं धागाः 3.4.49
पातवै 3.4.9
पात्रप्रग्राहः 3.3.46
पात्रम् 8.4.52
पात्रिकं क्षेत्रम् 5.1.46
पात्रिका 5.1.53
पात्रिकी 5.1.46, 5.1.50
पात्रियः 5.1.68
पात्रीणा 5.1.53
पात्रे बहुलाः 2.1.48
पात्रे समिताः 2.1.48
पात्र्यः 5.1.68
पाथेयम् 4.4.104
पाथ्यः 4.4.111
पादं 6.1.204
पादः 3.3.16
पादघातम् 3.4.37
पादघोषः 6.3.56
पादनिष्कः 6.3.56
पादपः 3.2.4
पादपतिता 4.1.52
पादपम् 4.3.119
पादभाक् 6.1.67, 1.2.41
पादमिश्रः 6.3.56
पादवान् 5.2.96
पादविकः 4.4.37
पादशः 5.4.43, 6.3.55
पादशब्दः 6.3.56
पादहारकः 2.1.32, 3.3.113
पादाः 1.2.69
पादिकम् 5.1.19, 5.1.37
पादे गृह्या 2.1.72
पादेन खञ्जः 2.3.20
पादौ 6.1.63
पाद्यम् 5.4.25, 6.3.53
पानशौण्डः 6.2.2
पानसैन्धवः 6.2.72
पानसैन्धवः 7.3.19
पानीयशीतम् 2.1.68
पानीयशीतम् 6.2.2
पान्थः 5.1.76
पान्नागाराः 4.2.113
पान्नागारि पिता 2.4.60
पान्नागारिः पुत्रः 2.4.60
पापकुलालः 2.1.54
पापकुलालः 6.2.68
पापकुलालः 6.2.68
पापकृत् 3.2.89
पापचिषति 7.4.80
पापचिषते 7.4.79
पापचीति 7.4.83
पापच्यते 3.1.22, 6.1.4, 6.1.9, 7.4.83, 7.4.85
पापतिः 3.2.171
पापनापितः 2.1.54
पापनापितः 6.2.68
पापनापितः 6.2.68
पापसमम् 2.1.17
पापा 4.1.30
पापी 4.1.30
पामनः 5.2.100
पामनां 6.4.1
पामवान् 5.2.100
पामा 4.1.11, 4.1.13
पामाः 4.1.13
पामानः 4.1.11, 4.1.13
पामानौ 4.1.11
पामे 4.1.13
पायःपानम् 3.3.116
पायं पायं व्रजति 3.4.22
पायते 6.4.66
पाययति 7.3.37
पाययते 1.3.89
पायसिकः 4.3.96
पायुः 3.3.1
पाय्यम् 3.1.129
पारगः 3.2.48
पारदारिकः 4.4.1, 7.3.20
पारयः 3.1.138
पारयिष्णवः 3.2.137, 6.4.55
पारलौकिक 4.3.60, 7.3.20
पारशवः 4.3.167
पारश्वधिकः 4.4.58
पारस्करः 6.1.157
पारस्तः 4.2.104
पारस्त्रैणेयः 7.3.20
पारायणिक 5.1.18
पारायणिकः 5.1.72
पारावारीण 4.2.93
पारावारीणः 5.2.11
पाराशरकल्पिकः 4.2.60
पाराशरम् 4.3.110
पाराशरिणः 4.2.66, 4.3.110
पारिखेयी भूमिः 5.1.16
पारिग्रामिक 4.3.61
पाराशर्यः 4.1.105
पाराशवम् 4.3.155
पारिपन्थिकः 4.4.36
पारिपार्श्विक 4.4.29
पारिमुखिक 4.4.29
पारिमुख्यम् 4.3.59
पारिषदः 4.2.110, 4.4.101
पारिषदम् 4.3.123
पारिषद्यः 4.4.44, 4.4.101
पारिहनव्य 4.3.59
पारीणः 4.2.93
पारेगङ्गम् 2.1.18
पारेधन्वकः 4.2.121
पारेवंडवा 6.2.42
पार्णम् 4.2.145
पार्थवम् 5.1.120, 5.1.122
पार्थिवः 5.1.41, 5.1.42, 5.1.43,
पार्थिवचन्द्र 4.1.56
पार्थिवा 4.1.85
पार्थिवी 4.1.85
पार्द्दायानी 4.2.99
पार्यापिकः 4.4.1
पार्वतम् 4.2.144
पार्वतः 4.2.67
पार्वतायनः 4.1.103
पार्वतिः 4.1.103
पार्शवः 5.3.117
पार्शवौ 5.3.117
पार्श्वकः 5.2.75
पार्श्वतः 5.4.44, 7.1.37
पार्श्वतीयम् 4.2.138, 4.3.60
पार्श्वम् 4.2.42
पार्श्वशयः 3.2.15
पार्श्वोपपीडं शेते 3.4.49
पार्ष्णित्रम् 3.2.3
पार्ष्णीलः 5.2.97
पालङ्गिनः 4.3.104
पालदः 4.2.110
पालयति 7.3.37
पालाशकम् 4.2.80
पालाशम् 4.3.140, 4.3.141, 4.3.155
पाल्वलतीरम् 4.2.106
पालेयम् उदकम् 7.3.2
पावकः 1.1.68, 7.3.45
पावयाङ्क्रियात् 3.1.42
पाविका 7.3.45
पाव्यम् 3.1.124
पाव्यात् 3.1.42
पाशीयाः 4.2.113
पाशुकः 4.3.72
पाश्चात्यः 4.2.98
पाश्या 4.2.49
पाष्टिकम् 5.1.19
पास्पर्धेः 8.3.14
पिंशति 7.1.59
पिंषन्ति 1.1.58
पिचव्यः 5.1.2, 5.1.12, 6.1.79, 6.4.146
पिच्छवान् 5.2.100
पिच्छिलः 5.2.100
पिण्डग्रः 6.4.14
पिण्डफला 4.1.4
पिण्डवहम् 6.3.121
पिण्डाश्म 5.4.94
पिण्डीशूरः 2.1.48
पिण्ड्यः 6.1.106
पिण्ढि 1.1.58, 8.4.65
(हे) पितः 7.1.94
पितरः 6.4.11
पितरं सञ्जानीते 2.3.22
पितरामातरा 6.3.33

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पितरि 7.3.110
पितरि निपुणः 2.3.43
पितरि शूर 2.1.48
पितरि साधुः 2.3.43
पितरौ 1.2.70,6.4.11, 7.3.110
पिता 7.1.94
पितापुत्रौ 2.4.5,6.3.25
पितामहः 4.2.36
पितामही 4.2.36
पितुः 8.2.24
पितुःपुत्र 2.3.49
पितुःस्वसा 8.3.85
पितुःष्वसा 6.3.24, 8.3.85
पितुः पुत्रः 6.3.23
पितुरनुहर 1.3.21
पितुरन्तेवासी 6.3.23
पितुष्ष्वसा 8.2.3
पितृकः 5.3.83
पितृगृहम् 6.3.23
पितृघातः 3.2.88
पितृदत्तः 5.3.83
पितृदेवत्यम् 5.4.24
पितृधन 6.3.23
पितृपितामहौ 6.3.25
पितृपोषम् 3.4.40
पितृप्रतिरूप 6.2.11
पितृभोगीणः 5.1.9
पितृयाणम् 8.4.26
पितृवलः 6.3.118
पितृव्यः 4.2.36
पितृव्यगवः 6.2.65
पितृव्यघाती 3.2.86
पितृष्वसा 6.3.24, 8.3.84
पितृसदृशः 2.1.31
पितृसदृश 6.2.11
पितृसमः 2.1.31
पितृस्थानः 5.4.10
पितृस्थानी 5.4.10
पितृहा 3.2.88
पितृणाम् 7.1.100, 8.4.1
पित्तघ्नं (घृतम्) 3.2.53
पित्रर्थम् 6.2.44
पित्रा सञ्जानीते 2.3.22
पित्रीयः 5.1.9
पित्रीयति 7.4.27
पित्रीयते 7.4.27
पित्रीयम् 5.1.9
पित्र्यम् 4.2.31,4.3.79, 7.4.27
पित्सति 7.2.49,7.4.54
पिनष्टि 8.2.41
पिपक्षति 6.1.4,6.1.9, 7.4.79
पिपतिषति 3.1.7, 7.2.49,7.4.54
पिपर्त्ति 7.4.77
पिपतिषति 6.1.9
पिपविषति 7.4.80
पिपविषते 7.2.74
पिपाःवयिषति 7.4.80
पिपासति 1.2.8
पिपासति 7.4.79
पिपासित 5.2.36
पिपिक्षति 8.2.41
पिपृच्छिषति 1.2.8
पिप्पली 4.1.41
पिप्रच्छिषति 7.2.75
पिप्रावयिषति 7.4.81
पिप्लावयिषति 7.4.81
पिफकारयिषति 8.4.54
पिबति 7.3.78
पिबध्यै 3.4.9
पिल्लः 5.2.33
पिशङ्गी 4.1.39
पिशाचः 6.3.109
पिशाचकी 5.2.129
पिशाचसभ 2.4.23
पिष्टकः 4.3.147
पिष्टमय 4.3.146
पिस्पन्दिषते 7.4.61
पीठम् 1.2.45,7.1.24
पीठे 7.1.73
पीडा 3.3.104
पीड्ये 2.1.2
पीतकम् 4.2.2
पीतदारु 4.3.154
पीतविपीतम् 2.1.60
पीता गावः 3.4.76
पीतापीतम् 2.1.60
पीता वर्षाय विज्ञेया 2.3.13
पीत्वा पीत्वा पुनः 3.4.22
पीत्वा व्रजति 3.4.21
पीत्वास्थिरक 2.1.72
पीत्वी 7.1.49
पीत्वीनम् 7.1.48
पीनम् 6.1.28
पीयते 6.4.66
पीयूक्षावण 8.4.5
पीयूक्षावणम् 8.4.5
पीलुकुणः 5.2.24
पीलुने 7.1.73
पीलुमूलतः 4.3.113
पीलुवहम् 6.3.121
पीवरी 4.1.7
पीवा 3.2.75
पीवोपवसनः 6.3.109
पुँश्चली 8.3.6
पुंश्चली 8.3.6
पुंसः 6.1.171
पुंसा 6.1.171
पुंसानुजः 6.3.3
पुंसे 6.1.171
पुंस्कामा 8.3.5
पुंस्कामा 8.3.6
पुँस्कामा 8.3.6
पुंस्कामा 8.3.41
पुंस्ता 5.1.120
पुंस्त्वम् 5.1.120
पुंस्पुत्रः 8.3.6
पुँस्पुत्रः 8.3.6
पुंस्फलम् 8.3.6
पुँस्फलम् 8.3.6
पुंस्कामा 8.3.5
पुंक्षीरः 8.3.6
पुंक्षुरः 8.3.6
पुञ्जवः 8.3.6
पुञ्जिष्ठः 8.3.97
पुटापुटिका 2.1.60
पुण्ड्रनगरम् 6.2.89
पुण्ड्राः 1.2.51,2.4.62, 4.2.31
पुण्यकृत् 3.2.89
पुण्यरात्रः 5.4.87
पुण्यसमम् 2.1.17
पुण्याहः 5.4.90
पुण्याहम् 2.4.18
पुण्याहवाचनम् 5.1.111
पुतित्रीयिषति 6.1.3
पुत्रकः 5.3.76
पुत्रका 7.3.45
पुत्रकामयति 3.1.9
पुत्रकाम्यति 3.1.32
पुत्रकाम्या 3.3.102
पुत्रचेलम् 6.2.126
पुत्रजग्धी 8.4.48
पुत्रजातः 2.2.37
पुत्रजातः 6.2.170
पुत्रपती 2.2.31
पुत्रपशू 2.2.31
पुत्रपुत्रादिनी 8.4.48
पुत्रपौत्र 2.4.11
पुत्रपौत्राणां दर्शकः 2.3.70
पुत्रपौत्रीणः 5.2.10
पुत्रवलः 5.2.112
पुत्रस्य परिष्व 3.3.116
पुत्रहती 8.4.48
पुत्रहती 8.4.48
पुत्रादिनी 8.4.48
पुत्रिका 7.3.45
पुत्रीयति 3.1.7,2.4.71, 3.1.32,7.4.33
पुत्रीयति छात्रम् 3.1.10
पुत्रीयन्तः 7.4.35
पुत्रीयम् 5.1.40
पुत्रीया 3.3.102
पुत्रीयिता 3.1.8
पुत्रीयिषिति 6.1.3
पुत्रीयिषिष 6.1.3
पुत्रेण सह 2.3.19
पुत्रेण सार्द्धम् 2.3.19
पुत्रौ 1.2.68
पुत्र्यम् 5.1.40
पुनः कल्पम् 8.3.37
पुनः कारः 8.3.45
पुनता 6.1.173
पुनताम् 6.4.112,7.1.5
पुनती 6.1.173
पुनते 6.4.112,7.1.5
पुनरत्र 8.3.17
पुनरुत् स्यूतं 1.4.60
पुनर्दायः 2.1.72
पुनर्भ्वः 6.4.84
पुनर्भ्वी 6.4.84
पुनर्वसुः 4.3.34
पुनर्वसू 1.2.61
पुना 6.3.111
पुनाति 7.3.80
पुना रक्तम् 8.3.14
पुनीतः 6.1.158, 6.4.113
पुनीतस्तराम् 6.1.158
पुनीते 6.4.113
पुनीथः 6.4.113
पुनीयात् 3.4.116
पुनीहि 3.4.87, 6.4.105,6.4.106
पुंदासः 8.3.6
पुपविथ 6.4.126
पुपुतित्रीयिषि 6.1.3

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुपुत्रीयिषति 6.1.3
पुपूर्षति 7.1.102
पुपूषति 7.2.74
पुप्रावयिषति 7.4.81
पुप्लावयिषति 7.4.81
पुमनुजः 3.2.100
पुमांसः 7.1.89
पुमांसौ 7.1.89
पुम् आख्यः 8.3.6
पुमाचारः 8.3.6
पुमान् 7.1.89
पुम्भ्य 6.1.171
पुम्भ्याम् 6.1.171
पुरः 3.2.177
पुरःकृत्वा 1.4.67
पुरःसरः 3.2.18
पुर आगत 5.3.39
पुरक 6.3.117
पुरगावणम् 8.4.54
पुरन्दरः 3.2.41
पुरस्कृत्य 1.4.67
पुरन्दरः 6.3.69,6.4.94
पुरस्कृतम् 1.4.67
पुरस्ताद् 5.3.27
पुरस्तादागतः 5.3.40
पुरस्ताद् ग्रामस्य 2.3.30
पुरस्ताद् रम 5.3.40
पुरस्ताद् वस 5.3.40
पुरस्ताद् वसति 5.3.27
पुरां भेत्ता 2.2.16, 2.3.65
पुरा क्रूरस्य विसृपो 8.3.28
पुरा क्रूरस्य 3.4.17
पुरा क्रूरस्य 2.3.69
पुरा जर्तृभ्य आतृदः 3.4.17
पुराणान्नम् 2.1.49
पुरा प्रचरितोः 3.4.16
पुरा प्रवदितोः 3.4.16
पुरा भुङ्क्ते 3.3.4
पुरा वत्सानामपाकर्त्तोः 3.4.16
पुरा विद्योतते 8.1.42
पुरा सूर्यस्योदेतोराधेयः 2.3.69
पुरा सूर्यस्योदेतोः 3.4.16
पुरा स्तनयति स्तनयित्नुः 8.1.42
पुरीषवाहणः 3.2.65
पुरीष्यवाहनः 3.2.65
पुरुत्रा 5.4.56
(हे) पुरुदंसः 7.1.94
पुरुदंसा 7.1.94
पुरुषं हतवान् 3.2.87
पुरुषः 8.3.35
पुरुषः 8.1.4
पुरुषः क्षुरम् 8.3.35
पुरुषः त्सरु 8.3.35
पुरुषत्रा 5.4.56
पुरुषदघ्नम् 5.2.38
पुरुषद्वयसम् 5.2.38
पुरुषमात्रम् 5.2.38
पुरुषमृगश्चन्द्रमसः 2.3.62
पुरुषवाहम् 3.4.43
पुरुषव्याघ्रः 2.1.56
पुरुषसिंहः 2.1.56
पुरुषायुष 5.4.77
पुरुषा वदति 8.3.17
पुरुषेणोढ 3.4.43
पुरुषो ददाति 6.1.114
पुरुषोऽयं 2.1.56
पुरुषो याति 6.1.114
पुरुषो हसति 6.1.114
पुरोडाः 3.2.71,8.2.67
पुरोडाशिक 4.3.70
पुरोडाशिकी 4.3.70
पुरोडाशीयः 5.1.4
पुरोडाश्यः 5.1.4
पुरो रम 5.3.39
पुरो वस 5.3.39
पुरौ 3.2.177
पुलस्तिः 4.1.105
पुलिनवती 6.3.119
पुलिन्दाः 5.3.114
पुषाण 3.1.83
पुष्करणम् 4.3.115
पुष्करवान् हस्ती 5.2.135
पुष्कराक्ष 5.4.76
पुष्करायते 3.1.11
पुष्करावती 4.2.85, 6.3.119
पुष्करावंती 6.1.219
पुष्करिणी 5.2.135
पुष्कलुलुप्ली 6.2.80
पुष्टये व्रजति 3.3.11
पुष्णाति 8.4.1,8.4.35
पुष्पः 5.3.100
पुष्पधन्वा 5.4.132
पुष्पनिकरः 3.3.30
पुष्पपुटे संस्कृतो 4.2.16
पुष्पप्रचयश्चौर्येण 3.3.40
पुष्पप्रचायः 3.3.40
पुष्पफलवान् 5.2.128
पुष्पहारः 6.2.80
पुष्पासवः 6.2.70
पुष्पाहरः 3.2.11
पुष्पेभ्यो 1.4.36
पुष्पेभ्यो वने 1.4.36
पुष्पेभ्यो व्रजति 2.3.14
पुष्पेभ्यः स्पृह 1.4.36, 2.3.13
पुष्यः 3.1.116
पुष्यनेत्रा 5.4.116
पुष्यपुनर्व 1.2.63
पुष्यमित्रस 1.1.58
पुष्येण 2.3.45
पुष्येण युक्ता 4.2.3
पुष्येण योज 3.1.26
पुष्ये पायसम् 2.3.45
पूः 1.4.67,3.2.177, 8.2.76,8.3.40
पूः करोति 8.3.40
पूगकृंताः 6.2.46
पूगतिथः 5.2.52
पूजना 3.3.105
पूजा 3.3.105
पूजार्हा 3.2.12
पूतं धान्यम् 8.2.44
पूतः 7.2.51
पूतक्रतायी 4.1.36
पूतवान् 7.2.51
पूतिगन्धिः 5.4.135
पूत्वा 7.2.51
पूनाः 8.2.44
पूनिः 8.2.44
पूयमान 2.1.17
पूरितः 7.2.27
पूरुषः 6.3.137
पूर्णः 7.2.27
पूर्णकः 5.3.75
पूर्णककुत् 5.4.146
पूर्णकाकुत् 5.4.149
पूर्णकाकुदः 5.4.149
पूर्तः 8.2.57
पूर्तवान् 8.2.57
पूर्त्ताः 7.1.102
पूर्त्ती 5.2.88
पूर्द्धिः 6.4.102
पूर्वं 8.1.12
पूर्वं छात्राणाम् 2.2.1
पूर्वं नाभेः 2.2.1
पूर्वं भुक्त्वा व्रजति 3.4.24
पूर्वं भोजं व्रजति 3.4.24
पूर्वकाण्डम् 4.2.51
पूर्वकान्त्रकुब्जः 7.3.14
पूर्वकायः 2.2.1
पूर्वकार्ष्णमृत्तिकः 7.3.14
पूर्वकांशकृत्स्नाः 6.2.104
पूर्वकृष्णमृत्तिका 6.2.103
पूर्वचानराटम् 6.2.103
पूर्वत्रैयलिन्दः 7.3.3
पूर्वथा 5.3.111
पूर्वदाविकः 7.3.1
पूर्वनगरी 4.2.97
पूर्वपक्षा 2.4.28
पूर्वपञ्चालाः 6.2.103
पूर्वपदिकः 4.2.60
पूर्वपाञ्चालकः 7.3.13
पूर्वपांञ्चालकः 6.2.105
पूर्वपाटलिपुत्रकः 7.3.14
पूर्वपाणिनीयाः 6.2.104
पूर्वपुरुषः 2.1.58
पूर्वयायातम् 6.2.103
पूर्वरात्रः 5.4.87
पूर्वरात्रकृतम् 2.1.45
पूर्ववयसः ब्राह्मणा प्रत्युत्थेयाः 1.2.58
पूर्ववया ब्राह्मणः प्रत्युत्थेयः 1.2.58
पूर्ववार्षिकम् 7.3.10
पूर्वशांशपः 7.3.1
पूर्वशालाप्रियः 2.1.51
पूर्वशिष्याः 6.2.104
पूर्वसक्थ 5.4.98
पूर्वसरः 3.2.19
पूर्वसारः 3.2.19
पूर्वस्मात् 7.1.16
पूर्वस्मिन् 7.1.16, 5.3.27
पूर्वहैमनम् 7.3.10
पूर्वाः 1.1.34
पूर्वात् 7.1.16
पूर्वाधिरामम् 6.2.103
पूर्वापरम् 2.4.12
पूर्वापराणाम् 1.1.31
पूर्वापरे 2.4.12
पूर्वापहाणा 4.1.4
पूर्वाह्णर्यम् 4.3.6
पूर्वाह्णः 2.4.29,5.4.88, 8.4.7
पूर्वाह्णकः 4.3.28
पूर्वाह्णकाले 6.3.17
पूर्वाह्णकृतम् 2.1.44

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पूर्वाह्णेयम् 2.1.43
पूर्वाह्णतनः 4.3.24
पूर्वाह्णतने 6.3.17
पूर्वाह्णतमे 6.3.17
पूर्वाह्णतरे 6.3.17
पूर्वाह्णशयः 6.3.18
पूर्वाह्णसिद्धः 6.2.32
पूर्वाह्णे 6.3.110
पूर्वाह्णे काले 6.3.17
पूर्वाह्णेतन 4.3.24
पूर्वाह्णेतने 6.3.17
पूर्वाह्णेतमा 5.4.11
पूर्वाह्णेतमे 6.3.17
पूर्वाह्णेतरा 5.4.11
पूर्वाह्णेतरे 6.3.17
पूर्वाह्णेऽधी 4.4.71
पूर्वाह्णेस्फोटकाः 6.3.9
पूर्विणः 5.2.86
पूर्विणैः 4.4.133
पूर्विणौ 5.2.86
पूर्वी 5.2.86
पूर्वीणैः 4.4.133
पूर्वे 1.1.34,7.1.16
पूर्वेण 5.3.35
पूर्वेद्युः 1.3.42,5.3.22
पूर्वेषुकामशमः 4.2.107
पूर्वैषुकामशमः 7.3.14
पूर्वेषुकामशमी 6.2.103
पूर्वेषुकामशमी 2.1.50
पूर्वो ग्रामात् 2.3.29
पूर्वो ग्रीष्माद् 2.3.29
पूर्वोत्तरा दिक् 2.2.26
पूर्व्यः 5.4.25
पूर्व्यैः 4.4.133
पूलासकरण्डम् 2.2.31
पूषन् 6.4.13
पूषा 6.4.13
पृच्छति 6.1.16
पृणाति 7.3.80
पृतनाषाट् 8.3.56
पृतनाषाहम् 8.3.109
पृतनासुम 6.1.63
पृतन्यति 7.4.39
पृत्सु 6.1.63
पृथकत् 5.3.72
पृथक् कृत्वा 3.4.62
पृथग् देवदत्तात् 2.3.32
पृथग् देवदत्तेन 2.3.32
पृथिवी 4.1.41
पृथुजघना 4.1.56
पृथुता 5.1.120, 5.1.122
पृथुत्वम् 5.1.120, 5.1.122
पृथुमुखः 6.2.168
पृथुसेनो राजा 8.3.99
पृषताः 1.2.73
पृषोदरम् 6.3.109
पृषोद्वानम् 6.3.109
पृष्टः 6.1.16,6.4.19
पृष्टवान् 6.1.16,6.4.19
पृष्ट्वा 1.2.8,6.4.19
पृष्ठतः 5.4.44
पृष्ठतः कारं 3.4.61
पृष्ठतः कृत्य 3.4.61
पृष्ठतः कृत्वा 3.4.61
पृष्ठतो भावं गतः 3.4.61
पृष्ठतो भूत्वा 3.4.61
पृष्ठतो भूय गतः 3.4.61
पृष्ठशयः 3.2.15
पृष्ठ्यः 4.2.42
पेक्ष्यति 8.2.41
पेच 3.4.82
पेचतुः 3.4.82, 6.4.120
पेचथुः 3.4.82
पेचाते 3.4.81
पेचिथ 3.4.82, 3.4.115,6.4.121, 7.2.63
पेचिम 3.4.82
पेचिरन् 6.4.120
पेचिरे 3.4.81
पेचिव 3.4.82
पेचिवान् 7.2.67
पेचिषे 3.4.80
पेचुः 3.4.82,6.4.120
पेचुषः 6.4.131
पेचुषा 6.4.131
पेचुषे 6.4.131
पेचे 3.4.81
पेतिम 6.4.99
पेपीयते 6.4.66
पेयम् 3.1.97
पेयात् 6.4.67
पेष्टव्यम् 8.4.41
पेष्टा 7.2.10,8.4.41
पेष्टुम् 8.4.41
पेस्वरः 3.2.175
पैङ्गक्षी पुत्रीयम् 4.2.28
पैङ्गी 4.3.105
पैङ्गी कल्पः 4.2.66, 4.3.105
पैङ्गीयाः 4.2.113
पैठसर्पाः 6.4.144
पैतामहक 4.3.77
पैतृकम् 4.3.78, 4.3.79,7.3.51
पैतृमत्यम् 4.1.85
पैतृष्वसेयः 4.1.133
पैतृष्वस्रीयः 4.1.132
पैत्तिकम् 5.1.38
पैप्पलादक 4.3.126
पैप्पलादाः 4.2.66
पैप्पलिकम् 4.4.22
पैप्पलीकच्छ 4.2.126
पैलः 4.1.118
पैलः पिता 2.4.59
पैलः पुत्रः 2.4.59
पैलशयापर्णेयौ 6.2.37
पैलुमूलम् 5.1.97
पैलुमूली 4.3.112
पैलुवहकः 4.2.122
पैलेयः 4.1.118
पोटायते 3.1.17
पोतः 7.2.9
पोता 3.2.135,6.4.11
पोतारः 6.4.11
पोतारौ 6.4.11
पोतृगृहम् 6.3.23
पोत्रम् (सूकरस्य) 3.2.183
पोत्रम् (हलस्य) 3.2.183
पोत्रीयम् 5.1.135
पोपुवः 1.1.4,2.4.74
पोपूयिता 6.4.49
पोषणम् 3.1.116
पोषयिष्णवः 6.4.55
पोष्टा 7.2.10
पौंस्नः 4.1.92
पौंस्नम् 4.1.87, 5.1.120
पौंस्नी 4.1.15
पौणिक्या 4.1.79
पौण्ड्रः 4.1.170
पौण्ड्रकः 4.3.100
पौण्ड्रनागरः 7.3.24
पौतिमाष्या 4.1.74
पौत्तिकम् 4.3.117
पौत्रः 4.1.104
पौत्रम् 4.4.49
पौनःपुनिकः 6.4.144
पौयमानिः 6.1.80
पौरवं याचते 1.4.51
पौरवः 4.1.168
पौरवीयः 4.3.100
पौरवीय 4.3.99
पौरश्चरणिक 4.3.72
पौरस्तः 4.2.104
पौरस्त्यः 4.2.98
पौराणिकः 4.2.60
पौरुषम् 5.2.38
पौरुषेयम् 5.1.10
पौरुषेयो वधो 5.1.10
पौरुषेधो विकार 5.1.10
पौरेयम् 4.2.97
पौरोडाशिक 4.3.69
पौरोडाशिकी 4.3.70
पौरोहित्यम् 5.1.128
पौर्णमासी 4.2.35
पौर्वनगरेयम् 4.2.97
पौर्वपञ्चालकः 7.3.13
पौर्वपदिकः 4.4.39
पौर्वमद्रः 4.2.108, 7.3.13
पौर्ववर्षिकम् 7.3.11
पौर्वशालः 2.1.51, 4.2.107
पौर्वार्द्धः 4.3.7
पौर्वाह्णिकम् 4.3.6
पौर्वार्द्धिकाः 4.3.7
पौर्वाह्णिक 4.3.24
पौषः (मासः अर्द्धमासः) 4.2.21
पौषः 6.4.149
पौषम् 4.3.16
पौषमहः 4.2.3
पौषम् अहः 4.2.4
पौषी रात्रिः 4.2.4,4.2.3
पौष्करसादिः 7.3.20
पौष्कलः 4.2.75
पौष्कीयाः 4.2.113
प्रौष्ठपदिकम् 4.2.35
पौष्पयः 2.4.66
प्रकटम् 5.2.28
प्रकण्वो देश 6.1.153
प्रकमनम् 8.4.34
प्रकरणम् 6.2.139
प्रकरोति 8.1.71
प्रकर्त्ता 6.2.50
प्रकर्त्ता 6.2.50
प्रकर्त्तुम् 6.2.50
प्रकारः 6.3.122
प्रकारकः 6.2.139
प्रकारीया इष्टकाः 5.1.12

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रकाशः 6.3.123
प्रकुरुते 1.3.32
प्रकृतम् 1.4.60
प्रकृतः 6.2.49
प्रकृतः कटं 3.2.102, 3.4.71
प्रकृतः कटो 3.4.71
प्रकृतं देवदत्तेन 3.4.71
प्रकृतवान् 3.2.102
प्रकृता 4.1.39
प्रकृतिः 6.2.50, 6.2.151
प्रकृत्य 1.1.56, 1.4.60, 6.1.71, 7.1.37, 7.4.25
प्रकृत्या दर्शनीयः 2.3.18
प्रकृत्याऽभिरूपः 2.3.18
प्रकृशित 8.2.55
प्रकोपणम् 8.4.31
प्रकोपन 8.4.31
प्रकोष्ठ 6.2.183
प्रकोष्ठम् 6.2.183
प्रक्रंसीष्ट 7.2.36
प्रक्रंस्यते 7.2.36
प्रक्रन्ता 7.2.36
प्रक्रमते 1.3.42
प्रक्रमते भोक्तुम् 3.4.65
प्रक्रमितव्यम् 7.2.36
प्रक्रमिता 7.2.36
प्रक्रमितुम् 7.2.36
प्रक्रम्य 6.4.18
प्रक्षत्य 6.4.38
प्रक्षयः 6.2.144
प्रक्षालयैनत् 2.4.34
प्रक्षालितपादः 6.2.110
प्रक्षालितमुखः 6.2.169
प्रक्षालितमुखः 6.2.169
प्रक्षीणः 6.4.60
प्रक्षीबितः 8.2.55
प्रक्षीय 6.4.59
प्रक्ष्वेदितः 1.2.19
प्रक्ष्वेदितवान् 1.2.19
प्रखन्य 7.1.37
प्रगणय्य 6.4.56
प्रगदिन् 4.2.80
प्रगद्यम् 4.2.80
प्रगमनम् 8.4.34
प्रगाद्यम् 3.1.100
प्रगान्नयामः 8.4.38
प्रगाय 6.4.69
प्रगृहम् 6.2.183
प्रगृह्यं पदम् 3.1.119
प्रगेतनम् 4.3.23
प्रग्रहो 3.3.46, 3.3.53
प्रग्राहः 3.3.53
प्रघणः 3.3.79
प्रघसः 2.4.38, 3.3.59
प्रघाणः 3.3.79
प्रघातः 3.1.108, 3.3.76, 3.3.79
प्रघ्नन्ति 8.4.22
प्रचरी 4.1.48
प्रचरितोः 3.4.16
प्रचिक्रंसिष्यते 7.2.36
प्रचेता 8.2.70
प्रचेतो 8.2.70
प्रच्छदः 6.4.96
प्रच्छर्दिका (= वमन) 3.3.108
प्रच्छिद् 3.2.61
प्रजगध्य 2.4.36
प्रजनः 7.3.35
प्रजनयामकः 3.1.42
प्रजनिष्णुः 3.2.136
प्रजयः 6.2.144
प्रजल्पाकः 6.2.50
प्रजविनौ 3.2.156
प्रजवी 3.2.156
प्रजाः 3.2.99
प्रजाकाण्ड 6.2.126
प्रजातभार्यः 6.3.34
प्रजाता 4.1.48
(न) प्रजानाति 1.3.76
प्रजापतये 1.4.8
प्रजापतिना 1.4.8
प्रजामेका जिन्वति 8.1.65
प्रजावती 4.4.48
प्रजिघाय 7.3.55
प्रजिघायिषति 7.3.55
प्रजिघीषति 7.3.55
प्रजित् 3.2.61
प्रजेधीयते 7.3.55
प्रज्ञया मुक्तः 2.3.25
प्रज्ञया विन 1.3.37
प्रज्ञां दूष० 6.4.91
प्रज्ञां दोष० 6.4.91
प्रज्ञावान् 5.2.101
प्रज्ञुः 5.4.129
प्रज्यय 6.1.42
प्रज्वलः 3.1.140
प्रणः 8.4.28
प्रणत्य 6.4.38
प्रणम् 5.4.25
प्रणमति 8.4.14
प्रणमय्य 6.4.56
प्रणाम्य 6.4.38
प्रणय 6.4.69
प्रणयः 3.1.142, 3.3.24
प्रणयति 1.4.59
प्रणश्यति 8.4.36
प्रणसं 8.4.28
प्रणसः 5.4.119
प्रणायकः 1.4.59
प्रणायक 8.4.14
प्रणाय्यः 3.1.128
प्रणिंसनम् 8.4.33
प्रणिक्षणम् 8.4.33
प्रणिगदति 8.4.17
प्रणिचिनोति 8.4.17
प्रणिददाति 1.1.20, 8.4.17
प्रणिदधाति 1.1.20, 8.4.17
प्रणिदयते 1.1.20
प्रणिदाता 1.1.20
प्रणिदेग्धि 8.4.17
प्रणिद्यति 1.1.20
प्रणिद्राति 8.4.17
प्रणिद्रोग्धि 8.4.17
प्रणिधयति 1.1.20
प्रणिनदति 8.4.17
प्रणिन्दनम् 8.4.33
प्रणिपचति 8.4.18
प्रणिपतति 8.4.17
प्रणिपद्यते 8.4.17
प्रणिप्साति 8.4.17
प्रणिभिनत्ति 8.4.18
प्रणिमयते 8.4.17
प्रणिमिमीते 8.4.17
प्रणियाति 8.4.17
प्रणिवपति 8.4.17
प्रणिवहति 8.4.17
प्रणिवाति 8.4.17
प्रणिवेक्ष्यति 8.4.18
प्रणिवेष्टा 8.4.18
प्रणिशाम्यति 8.4.17
प्रणिष्यति 8.4.17
प्रणिहन्ति 8.4.17
प्रणीः 3.2.61
प्रणीतम् 1.4.60
प्रणीयः 3.1.123
प्रणेयः 3.1.128
प्रण्यगदत् 8.4.17
प्रतक्ष्य 1.2.27
प्रतनम् 5.4.25
प्रतपने 1.4.74
प्रतमय्य 6.4.56
प्रतरम् 5.4.12
प्रतराम् 5.4.12
प्रतान् 6.4.15, 8.2.64
प्रतामः 8.2.64
प्रतामौ 8.2.64
प्रतिकः 5.1.25
प्रतिकश 6.1.152
प्रतिकी 5.1.25
प्रतिकीर्ण 6.1.141
प्रतिक्षिपति 1.3.80
प्रतिगृह्यम् 3.1.118
प्रतिग्राह्यम् 3.1.118
प्रतिचर्म 5.4.109
प्रतिजनः 6.2.193
प्रतितष्टम्भ् 8.3.67
प्रतिदीव्ना 1.1.58
प्रतिदीव्ना 6.4.137, 8.2.78
प्रतिदीव्ने 1.1.58, 6.4.137, 8.2.79
प्रतिदीव्या 1.1.58
प्रतिपत् 3.3.93
प्रतिपथम् 5.4.107
प्रतिपत्रम् 6.2.146
प्रतिपथिकः 4.4.40, 4.4.42
प्रतिपूर्वरात्रम् 6.2.33
प्रतिपूर्वाह्णम् 6.2.33
प्रतिप्रस्थात्रीयम् 5.1.135
प्रतिबोधी 3.3.3
प्रतिभुवः 6.4.85
प्रतिभुवौ 6.4.85
प्रतिभूः 3.2.179
प्रतियच्छति 1.4.92
प्रतियायी 3.3.3
प्रतियोगी 3.3.3
प्रतियोधी 3.3.3
प्रतिराजम् 5.4.108
प्रतिराजा 6.2.193
प्रतिरित्सति 7.4.54
प्रतिरोधः 6.3.122
प्रतिरोधी 3.3.3
प्रतिलोमम् 5.4.75
प्रतिविपाश 5.4.107
प्रतिवेशः 6.3.122, 6.3.123
प्रतिशरद् 5.4.107
प्रतिशीनः 6.1.25, 8.2.47

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रतिशीनवान् 6.1.25
प्रतिशुश्रूषति 1.3.59
प्रतिश्रयायः 3.1.141
प्रतिषीव्यः 3.1.123
प्रतिषेधयति 8.3.113
प्रतिष्कश 6.1.152
प्रतिष्टभ्नाति 8.3.67
प्रतिष्ठते 1.3.22
प्रतिष्णातम् 8.3.90
प्रतिष्णिका 8.3.98
(सहस्रं) प्रतिसञ्जानीते 1.3.46
प्रतिसामम् 5.4.75
प्रतिसीदति 8.3.66
प्रतिस्तब्धः 8.3.114
प्रतिस्नात 8.3.90
प्रतिहर्त्ता 3.2.135
प्रतीचः 6.1.170
प्रतीची 4.1.6,5.4.8
प्रतीच्यम् 4.2.101
प्रतीपम् 1.1.54
प्रतीरोध 6.3.122
प्रतीवेशः 6.3.122
प्रतीषिषति 8.3.61
प्रतीषिषति अर्थान् 2.4.47
प्रतुम्पति 6.1.157
प्रतूर्णम् 8.2.61
प्रतूर्त्तम् 8.2.61
प्रत्तम् 7.4.47,8.4.65
प्रत्तम् 6.3.124
प्रत्नथा 5.3.111
प्रत्नम् 4.3.23,5.4.25
प्रत्यंशुः 6.2.193
प्रत्यक्षम् 5.4.107
प्रत्यग् ग्रामात् 2.3.29
प्रत्यग्नि 1.1.41,2.1.14
प्रत्यग्रमणी 5.3.30
प्रत्यग् चस 5.3.30
प्रत्यङ् 3.2.59
प्रत्यङ् 6.2.52
प्रत्यङ्करोति 8.3.32
प्रत्यङ्काः 2.1.14
प्रत्यङ्डास्ते 8.3.32
प्रत्यङ्मुखः 6.2.168
प्रत्यञ्चः 6.2.52
प्रत्यञ्चौ 6.2.52
प्रत्यध्वम् 5.4.85
प्रत्यपररात्रम् 6.2.33
प्रत्यपराह्णम् 6.2.33
प्रत्ययः 1.3.11
प्रत्ययते 8.2.19
प्रत्यर्थम् 2.1.6
प्रत्यवरोहि 4.1.41
प्रत्यर्पयित्वा 7.1.38
प्रत्यष्टभ्नात् 8.3.67
प्रत्यष्ठात् कठकौथुमम् 2.4.3
प्रत्यष्ठुः कठ 2.4.3
प्रत्यात्मम् 5.4.108, 6.4.169
प्रत्याययति 2.4.46
प्रत्यासारिण्यः 3.2.78
प्रत्युरः 5.4.82
प्रत्युरसम् 5.4.82
प्रथमं 8.1.12
प्रथमं भुक्त्वा व्रजति 3.4.24
प्रथमं भोजं व्रजति 3.4.24
प्रथमपुरुषः 2.1.58
प्रथमवैयाकरणः 6.2.56
प्रथमवैयाकरणः 6.2.56
प्रथमाः 1.1.33
प्रथमे 1.1.33
प्रथयति 6.4.155
प्रथिमा 5.1.120, 5.1.122,6.4.161
प्रथिमिनी 5.2.137
प्रथिष्ठः 6.4.161
प्रथीयान् 6.4.161
प्रदः 3.1.139
प्रदक्षिणम् 2.1.17
प्रदत्तम् 1.4.57,7.4.46
प्रदमय्य 6.4.56
प्रदर्विदा 6.3.63
प्रदवः 3.1.142
प्रदा 3.3.106,6.4.64
प्रदान् 8.2.64
प्रदाय 6.4.69
प्रदिः 3.3.92
प्रदेवं 8.1.6
प्रदोषकः 4.3.28
प्रद्यु 1.1.48
प्रद्युतितः 1.2.21
प्रद्युम्नागमनी 4.3.67
प्रद्युम्नो वासु 2.3.11
प्रद्योतितः 1.2.21
प्रद्रावः 3.3.27
प्रद्रावी 3.2.145
प्रद्वारम् 6.2.183
प्रद्विट् 3.2.61
प्रधः 3.1.139
प्रधर्षितः 1.2.19
प्रधर्षितवान् 1.2.19
प्रधा 3.3.106,6.4.64
प्रधाय 6.4.69,7.1.37
प्रधिः 3.3.92
प्रधुक् 3.2.61
प्रपदम् 6.2.183
प्रपर्णः 2.2.24
प्रपलाशः 2.2.24
प्रधुरः 5.4.68
प्रपृष्ठः 6.2.177
प्रधौतमुखः 6.2.110
प्रध्यौ 6.4.82
प्रधुक् 3.2.61
प्रनः 8.4.28
प्रनङ्क्ष्यति 8.4.36
प्रनर्दक 8.4.14
प्रनर्दति 8.4.14
प्रनष्टः 8.4.36
प्रनायको देशः 1.4.59, 8.4.14
प्रनिंसनम् 8.4.33
प्रनिकरोति 8.4.18
प्रनिक्षणम् 8.4.33
प्रनिखादति 8.4.18
प्रनिचकार 8.4.18
प्रनिचखाद 8.4.18
प्रनिन्दनम् 8.4.33
प्रनिपचति 8.4.18
प्रनिप्रेक्ष्यति 8.4.18
प्रनिभिनत्ति 8.4.18
प्रपक्वानि 8.4.11
प्रपचति 6.2.139, 8.1.71
प्रपचतितराम् 6.2.139
प्रपचति पूतिः 8.1.64
प्रपचन्ति पूति 8.1.69
प्रपचति मिथ्या 8.1.69
प्रपतनः 3.4.74
प्रपतनम् 3.3.113
प्रपतितपर्णः 2.2.24
प्रपतिकप्रलाशः 2.2.24
प्रपवणम् 8.4.34
प्रपवनम् 8.4.34
प्रपा 3.3.58
प्रपातुका (गर्भा) 3.2.154
प्रपात्य 6.4.56
प्रपापूरणीयम् 5.1.111
प्रपित्सते 7.4.54
प्रपीठम् 6.2.183
प्रपीतिः 3.3.95
प्रपृष्ठः 6.2.177
प्रपृष्ठः 6.2.177
प्रप्यानः 6.1.28
प्रप्यायनम् 8.4.34
प्रप्राऽयमग्नि 8.1.6
प्रफुल्लाः 8.2.55
प्रफुल्लिः 7.4.89
प्रबाहवा 7.1.39
प्रबेभिदय्य 6.4.56
प्रभवः 3.3.24
प्रभवनम् 8.4.34
प्रभव्यम् 3.1:107
प्रभाक् 3.2.62
प्रभाकरः 3.2.21
प्रभानम् 8.4.34
प्रभापनम् 8.4.34
प्रभावुकम् (अन्नम्) 3.2.154
प्रभित् 3.2.61
प्रभुः 3.2.180
प्रभुर्मल्लो 2.3.16
प्रभुक्त ओदनं 3.4.71
प्रभुक्तः 1.2.21
प्रभुक्त ओदनो 3.4.71
प्रभुक्तं देवदत्तेन 3.4.71
प्रभेदः 6.2.144
प्रभ्वी 4.1.47
प्रमग्नः 8.4.29
प्रमङ्गनम् 8.4.32
प्रमत्तगीतम् 6.2.149
प्रमत्य 6.4.38
(कन्यानां) प्रमदः 3.3.68
प्रमाछन्दः 6.1.74
प्रमाच्छन्दः 6.1.74
प्रमाणम् 8.4.29
प्रमातव्यम् 6.1.50
प्रमाता 6.1.50
प्रमातुम् 6.1.50
प्रमाथी 3.2.145
प्रमादः 3.3.67,3.3.68
प्रमादी 3.2.141
प्रमाद्यम् 3.1.100
प्रमाय 6.1.50,6.4.69
प्रमिणन्ति 7.3.81
प्रमित्सति 7.4.54
प्रमिन्नः 7.2.17
प्रमिपिनष्टि 8.4.18
प्रमीणाति 7.3.81, 8.4.15
प्रमीणीतः 8.4.15
प्रमुदितः 1.2.21
प्रमेदितः 1.2.19, 7.2.17
प्रमेदितवान् 1.2.19

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रमोदितः 1.2.21
प्रमन्थि 6.4.103
प्रयत्य 6.4.38
प्रयम्य 6.4.38
प्रयवः 3.3.23
प्रयस्यति 3.1.71
प्रयागः 7.3.62
प्रयाजः 7.3.62
प्रयाणम् 8.4.29
प्रयाणि 8.4.16
प्रयाणीयम् 8.4.29
प्रयापणम् 8.4.30
प्रयापणीयम् 8.4.30
प्रयापनम् 8.4.30
प्रयापनीयम् 8.4.30
प्रयायिणौ 8.4.29
प्रयायिनौ 8.4.30
प्रयाप्यमाणम् 8.4.30
प्रयाप्यमानम् 8.4.30
प्रयायमाणम् 8.4.29
प्रयायिणौ 8.4.29
प्रयुक् 3.2.61
प्रयुक्तः 6.2.147
प्रयुङ्क्ते 1.3.64
प्रयोग्यः 7.3.68
प्रयोजनं देवदत्तस्य 2.3.73
प्रयोजनं देवदत्ताय 2.3.73
प्रयै 3.4.10
प्रयोज्यः 7.3.68
प्ररक्ष्य 1.2.27
प्ररत्य 6.4.38
प्ररम्य 6.4.38
प्ररि 1.1.48
प्ररुता 4.1.39
प्रर्च्छको 6.1.91
प्रलंपिता 6.2.50
प्रलंपितुम् 6.2.50
प्रलम्बते 1.2.45, 2.3.46
प्रलम्भः 7.1.67
प्रलम्भम् 7.1.69
प्रललाटः 6.2.177
प्रलवः 6.2.144
प्रलवित्रम् 6.2.144
प्रलवित्रा 6.1.174
प्रलवित्री 6.1.174
प्रलापी 3.2.145
प्रलिपः 3.1.138
प्रलूय 1.2.27
प्रवकः 3.1.149
प्रवचनीयो गुरुः 3.4.68
प्रवचनीयो गुरुणा 3.4.68
प्रवणम् 6.2.178
प्रवणे 8.4.5
प्रवते 1.3.86
प्रवत्य 6.4.38
प्रवदितोः 3.4.16
प्रवपणम् 8.4.31
प्रवपाणि 8.4.16
प्रवपानि 8.4.16
प्रवयणः 2.4.57
प्रवयणीयः 2.4.56
प्रवय्या 6.1.83
प्रवरः 3.3.54
प्रवरा गौः 3.3.54
प्रवरिता 7.2.10
प्रवरीता 7.2.10
प्रवर्ग्योपस 2.4.14
प्रवर्षुकाः (पर्जन्याः) 3.2.154
प्रवहतः 1.3.81
प्रवहति 1.3.81
प्रवहन्ति 1.3.81
प्रवाच्यम् 7.3.66
प्रवादी 3.2.145
प्रवाद्यम् 3.1.106
प्रवाय 6.1.41
प्रवायकः 2.4.56
प्रवासी 3.2.145
प्रवाहणेयः 7.3.28
प्रवाहणेयकम् 7.3.29
प्रवाहणेयिः 7.3.29
प्रवाहिका (पेचिश) 3.3.108
प्रवाहिकातः कुरु 5.4.49
प्रवाहेमूत्रितम् 2.1.47
प्रवित् 3.2.61
प्रविशति 1.3.17, 1.3.78
प्रविश पिण्डिम् 2.3.14
प्रवीताः 2.4.56
प्रवृद्धम् 6.2.147
प्रवृद्धविलूना 4.1.53
प्रवृद्धविलूनी 4.1.53
प्रवृद्धो 6.2.146
प्रवृषः 6.2.144
प्रवेता 2.4.56
प्रवेतुम् 2.4.56
प्रवेपनम् 8.4.34
प्रवेयम् 2.4.35,6.1.83
प्रवेष्टा 7.2.10
प्रव्याय 6.1.43
प्रशमय्य 6.4.56
प्रशय्य 7.4.22
प्रशाखः 6.2.177
प्रशाच्छादयति 8.3.7
प्रशान् 6.4.15,8.2.64
प्रशाधि 6.4.35
प्रशासितम् 7.2.34
प्रशास्ता 6.4.11, 7.2.34
प्रशास्ताप्रतिहर्त्तारौ 6.3.25
प्रशास्तारः 6.4.11
प्रशास्तारौ 6.4.11
प्रश्नः 1.1.57,3.3.90, 6.1.16,6.4.19, 8.4.44
प्रश्नानाम् 6.4.23
प्रश्रथः 6.4.29
प्रश्रयः 3.3.24
प्रश्लिष्ट 6.2.146
प्रष्टव्यम् 8.2.36
प्रष्टा 8.2.36,7.2.10
प्रष्टुम् 8.2.36
प्रष्ठः 8.3.92
प्रष्ठवाट् 3.2.64, 8.2.31
प्रष्ठी 4.1.48
प्रष्ठौहः 6.1.89, 6.4.132
प्रष्ठौहः 6.1.171
प्रष्ठौहा 6.1.89, 6.4.132
प्रष्ठौहा 6.1.171
प्रष्ठौही 4.1.61
प्रष्ठौहे 6.1.89, 6.4.132
प्रसंस्तीतः 6.1.23
प्रसंस्तीतवान् 6.1.23
प्रसुवः 6.2.144
प्रसविता 7.2.44
प्रसुवित्रम् 6.2.144
प्रसुवित्रा 6.1.174
प्रसुवित्री 6.1.174
प्रसवी 3.2.157
प्रसादः 6.3.122
प्रसाधनम् 3.3.118
प्रसारः 6.3.122
प्रसारी 3.2.145
प्रसुस्नूविष्यते 7.2.36
प्रसुस्नूषति 7.2.36
प्रसूः 3.2.61
प्रसूतभार्य 6.3.34
(द्वे) प्रसूती 3.3.20
प्रसेचः 6.3.122
प्रसेचकमुखः 6.2.110
प्रसेवः 3.3.19, 6.3.122
प्रसोता 7.2.44
प्रस्कण्व 6.1.153
प्रस्कन्दनम् 3.3.113
प्रस्तावः 3.3.27
प्रस्तीतः 6.1.23,8.2.54
प्रस्तीतवान् 6.1.23, 8.2.54
प्रस्तीमः 6.1.23,8.2.54
प्रस्तीमवान् 6.1.23, 8.2.54
प्रस्तुत्य 1.1.56
प्रस्तुम्पति 6.1.157
प्रस्थः 3.1.136, 3.3.58,8.3.92
प्रस्थुधनम् 6.2.55
प्रस्थमात्रम् 5.2.37
प्रस्थम्पचा 3.2.33
प्रस्थाय 6.4.69,7.1.37
प्रस्थायी 3.3.3
प्रस्थितिः 3.3.95
प्रस्नः 3.3.58
प्रस्नवितव्यम् 7.2.36
प्रस्नविता 7.2.10, 7.2.36
प्रस्नवितुम् 7.2.36
प्रस्नविन्नीयते 7.2.36
प्रस्नुतः 7.2.36
प्रस्नुतवान् 7.2.36
प्रस्नुते 3.1.89
प्रस्नोषीष्ट 7.2.36
प्रस्नोष्यते 7.2.36
प्रस्रावः 3.3.27
प्रस्वानः 3.3.62
प्रस्वेदित 1.2.19
प्रस्वेदितवान् 1.2.19
प्रहणनम् 8.4.22
प्रहण्मः 8.4.23
प्रहण्यते 8.4.22
प्रहण्वः 8.4.23
प्रहन्मः 8.4.23
प्रहन्वः 8.4.23
प्रहरणम् 6.2.139
प्रहरणः दण्डः 3.3.118
प्रहसने 1.4.74
प्रहस्तम् 6.2.183
प्राद्राणः 8.2.43

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रद्राणवान् 8.2.43
प्रहाय 6.4.69
प्रहारः 7.3.53
प्रहारकः 7.3.53
प्रहारकः 6.2.139
प्रहासः 3.3.62
प्रहिणुतः 8.4.15
प्रहिणोति 8.4.15
प्रहीणः 8.4.29
प्रहीणवान् 8.4.29
प्रहृतः 6.2.49
प्रहृता 4.1.39
प्रहृतिः 6.2.151
प्रहृत्य 1.1.56, 6.1.71,7.1.37, 7.4.25
प्रहृषः 6.2.144
प्रहृत्तिः 6.4.95
प्रहृन्नः 6.4.95
प्रहृन्नवान् 6.4.95
प्रहादयति 6.4.95
प्रह्वायः 3.3.72
प्राक् 5.4.8
प्राकारः 6.3.122
प्राकारीयः 5.1.16
प्राकारीया इष्टका 5.1.16
प्राक् क्रोडा 4.1.60
प्राक्तनम् 4.2.101
प्राक् पुष्पा 4.1.4
प्राक्प्रा 1.2.67
प्राग् 5.3.30
प्रागद्यम् 4.2.80
प्राग्गुल्फा 4.1.60
प्राग्ग्रामम् 2.1.12
प्राग्ग्रामात् 2.1.12, 2.3.29
प्राग् जघना 4.1.60
प्राग्भ्याम् 6.1.182
प्राग्रमणीय 5.3.30
प्राग्वसति 5.3.30
प्राघानि 8.4.22
प्राङ् 3.2.59
प्राङ् 6.2.52,7.1.70
प्राङ् आस्ते 8.3.32
प्राङ्क्छेते 8.3.28
प्राङ्क्शेते 8.3.28
प्राङ्क्षष्ठः 8.3.28
प्राङ्क्सासे 8.3.28
प्राङ्नासिका 4.1.60
प्राङ्नासिकी 4.1.60
प्राङ्भ्याम् 6.1.182
प्राङ्मुखः 6.2.168
प्राङ्मुखा 4.1.60
प्राङ्मुखी 4.1.60
प्राङ् शेते 8.3.28
प्राङ् षष्ठः 8.3.28
प्राङ् साये 8.3.28
प्राङ् हसति 8.4.62
प्राचां 6.1.182
प्राचार्यः 2.2.18
प्राचिकीर्षत् 3.1.7
प्राची 4.1.6,5.4.8
प्राचीनम् 5.4.7,5.4.8
प्राचीना 5.4.8
प्राचैं 6.1.182
प्राच्यम् 4.2.101
प्राच्यंसप्त 6.2.12
प्राच्यांऽध्वर्युः 6.2.10
प्राजनः 2.4.57
प्राजापत्यम् 4.1.85, 4.2.24,5.1.121, 5.1.128
प्राजावतम् 4.4.48
प्राजिता 2.4.56
प्राजितुम् 2.4.56
प्राजीजनत् 3.1.42
प्राजीहयद् 7.3.55
प्राज्ञः 5.2.101,5.4.38
प्राज्ञा 5.4.38
प्राज्ञी 5.4.38
प्राञ्चः 7.1.70
प्राञ्चः 6.2.52
प्राञ्चां 6.1.182
प्राञ्चौ 6.2.52,7.1.7
प्राणः 7.3.99
प्राणत् 7.3.99
प्राणिणत् 8.4.21
प्राणिणिषति 6.1.3, 8.4.21
प्राणिति 7.2.76,8.4.19
प्राणीः 7.3.98
प्राणीत् 7.3.98
प्राणो अङ्गे 6.1.119
प्रातःकल्पम् 8.3.37
प्रातरत्र 6.1.113, 8.3.17
प्रातरध्येयः 2.1.43
प्रातरित्वः 8.3.1
प्रातरित्वा 3.2.75
प्रातरित्वानौ 3.2.75
प्रातर्नयति 0.0.5
प्रातराजक्रयः 6.3.111, 8.3.14
प्रातिकण्ठिकः 4.4.40
प्रातिकण्ठिक 4.4.39
प्रातिकूलिक 4.4.28
प्रातिजनीनः 4.4.99
प्रातिपथिकः 4.4.42
प्रातिलोमिक 4.4.28
प्रातीपिकः 4.4.28
प्रात्यग्रथिः 4.1.173
प्राथमिक 4.3.72
प्रादुःषन्ति 8.3.87
प्रादुःष्यात् 8.3.87
प्रादुष्कृतम् 8.3.41
प्रादुष्पीतम् 8.3.41
प्रादुस्तः 8.3.87
प्रादोषम् 4.3.14
प्रादोषः 4.3.51
प्रादोषिकम् 4.3.14
प्रादोषिकः 4.3.51
प्राध्वं कृत्वा 1.4.78
प्राध्वं शकटम् 5.4.85
प्राध्वङ् कृत्य 1.4.78
प्राध्वः 5.4.85
प्राध्वम् 6.4.169
प्रान्तः 6.2.180
प्रान्तपुष्पा 4.1.4
प्रान्तेवासी 2.2.18
प्रापम् 6.3.97
प्रापयति 6.4.155
प्रापय्य 6.4.57
प्राप्तजीविकः 2.2.4, 2.4.26
प्राप्तजीविका 2.2.4
प्राप्तोदकः ग्रामः 2.2.24
प्राप्तोधाः 4.1.25
प्राप्नुहि 6.4.106
प्राप्य 6.4.57
प्राप्स्यति 7.4.55
प्राभूतिकः 4.4.1
प्रायश्चित्तम् 6.1.157
प्रायश्चित्ति 6.1.157
प्रायेण याज्ञिकः 2.3.18
प्रायेण वैयाकरणः 2.3.18
प्रायोगिकः 7.3.20
प्रायौगिकः 7.3.20
प्रार्च्छति 6.1.91
प्रार्णम् 6.1.89
प्रालम्भि 7.1.69
प्रावनद्धम् 8.4.38
प्रावयति 1.3.86
प्रावरिता 7.2.38
प्रावरिषीष्ट 7.2.42
प्रावरिष्ट 7.2.40,7.2.42
प्रावरिषुः 7.2.42
प्रावरीष्ट 7.2.42,7.2.40
प्रावारः 3.3.54
प्रावारिषुः 7.2.40
प्रावारिष्टाम् 7.2.40, 7.2.42
प्रावारीयति कम्बलम् 3.1.10
प्रावाहणेयः 7.3.28
प्रावाहणेयकम् 7.3.29
प्रावाहणेयिः 7.3.29
प्राविवरिषति 7.2.40
प्राविवरीषति 7.2.40
प्रावुवूर्षति 7.2.40, 7.1.102
प्रावृट् 6.3.116
प्रावृट्शर 5.4.106
प्रावृत 7.2.42
प्रावृषिकः 4.3.26
प्रावृषिजः 6.3.14
प्रावृषीष्ट 7.2.42
प्रावृषेण्यः 4.3.17
प्रावृषेण्यम् 4.2.34, 5.1.96
प्राशित्रम् 5.1.105
प्राश्लिष्टम् 6.2.146
प्रासः 3.3.19
प्रासङ्ग्यः 4.4.75, 4.4.76
प्रासङ्ग्यः 6.1.161
प्रासादः 6.3.122
प्रासादात् पतितः 2.1.38
प्रासादात् प्रेक्ष 2.3.28
प्रासादात् प्रेक्षेते 2.3.28
प्रासादारोहणीयम् 5.1.111
प्रासादीयति कुड्ये 3.1.10
प्रासादीयम् 5.1.16
प्रासादीया 5.1.16
प्रासिकः 4.4.57
प्रास्तारिकः 4.4.72
प्रास्थकीयम् 4.2.138
प्रास्थिकम् 5.1.19, 5.1.45
प्रास्थिकः 5.1.52
प्रास्थिकी 5.1.52
प्रास्नीष्ट 3.1.89
प्राह्वेतनम् 4.3.23
प्रियंवदः 1.3.8,3.2.38
प्रियः 3.1.135

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रियकारः 3.2.44
प्रियक्रोष्टुने 7.1.97
प्रियङ्करः 3.2.44
प्रियङ्करणम् 3.2.56
प्रियगार्ग्यः 2.4.64
प्रिय गुडः 2.2.35
प्रियचतसृ 7.2.99
प्रियचतसृणि 7.2.99
प्रियचतसृणि 7.2.99
प्रियचतस्रः 7.2.100, 7.2.99
प्रियचतस्रः स्वम् 7.2.100
प्रियचतस्रा 7.2.99
प्रियचतस्रि 7.2.100
प्रियचतस्रौ 7.2.99
प्रियचतुराम् 7.1.55
प्रियचत्वः 7.1.99
प्रियचत्वाः 7.1.98
प्रियचत्वाः 7.2.99
प्रियचत्वारः 7.1.98, 7.2.99
प्रियचत्वारौ 7.1.98, 7.2.99
प्रियतिसा 7.2.99
प्रियतिसृ 7.2.99
प्रियतिसृणी 7.2.99
प्रियतिसृणि 7.2.99
प्रियतिस्रः स्वम् 7.2.100
प्रियतिस्रः 7.2.99, 7.2.100
प्रियतिस्रि 7.2.100
प्रियतिस्रौ 7.2.99
प्रियत्रयः 7.2.99
प्रियत्रिः 7.2.99
प्रियत्री 7.2.99
प्रियदध्ना 7.1.75
प्रियदध्ने 7.1.75
प्रियधर्मा 5.4.124
प्रियधुरः 5.4.154
प्रियपञ्चानः 7.1.22
प्रियपञ्च 7.1.54
प्रियपञ्चा 8.4.65
प्रियपथः 5.4.154
प्रियप्रियेण 8.1.13
प्रियबाह्वाः 2.4.62
प्रियबैदाः 2.4.64
प्रियभार्गवाः 2.4.65
प्रियमित्रः 6.2.165
प्रियम्भविष्णुः 3.2.57
प्रियम्भावुकः 3.2.57
प्रिययास्काः 2.4.63
प्रियविश्वाय 1.1.29
प्रियषषः 7.1.22
प्रियषषाम् 7.1.55
प्रियसक्ष्ना 7.1.75
प्रियसक्ष्ने 7.1.75
प्रियसर्पिष्कः 5.4.151
प्रियाकरोति 5.4.63
प्रियाक्ष्णा 7.1.75
प्रियाक्ष्णे 7.1.75
प्रियात्रेयाः 2.4.65
प्रियाऽनड्वान् 7.1.98
प्रियाऽनड्वाहः 7.1.98
प्रियाऽनड्वाहौ 7.1.98
प्रियाऽष्टानः 7.2.84
प्रियाष्टानः 7.1.21
प्रियाऽष्टौ 7.2.84
प्रियास्ना 7.1.75
प्रियास्ने 7.1.75
प्रियेण 8.1.13
प्रियोभयाय 1.1.29
प्रीणति 3.1.81
प्रीणम् 5.4.25
प्रीणयति 7.3.37
प्रीणाहि 3.4.88
प्रीणीहि 3.4.88, 6.4.101
प्रेक्षी 4.2.80
प्रेङ्खणम् 8.4.32
प्रेङ्गणम् 8.4.32
प्रेत्य 6.1.85
प्रेद्धम् 1.1.4
प्रेन्वनम् 8.4.2
प्रेन्वनीयम् 8.4.2
प्रेमा 6.4.157
प्रेयान् 6.4.157
प्रेलयति 6.1.94
प्रेषितव्यम् 7.2.48
प्रेषिता 7.2.48
प्रेषितुम् 7.2.48
प्रेषे भगाय 3.4.9
प्रेष्ठः 6.4.157
प्रेहणम् 8.4.31
प्रेहिवाणिजा 2.1.72
प्रेहिस्वागता 2.1.72
प्रैघते 6.1.89
प्रैयङ्गविकः 4.2.60
प्रैषः 6.1.89
प्रैषकारः 3.2.20
प्रैष्यः 6.1.89
प्रोदरः 6.2.177
प्रोम्भणम् 8.4.32
प्रोर्णवन 1.2.3
प्रोर्णवनीय 1.2.3
प्रोर्णवानि 7.3.90
प्रोर्णविता 1.2.3, 7.2.10
प्रोर्णुतः 7.2.11
प्रोर्णुतवान् 7.2.11
प्रोर्णुनविषति 7.2.49
प्रोर्णुनाव 3.1.36, 7.2.11
प्रोर्णुनुविषति 7.2.49
प्रोर्णुनूषति 7.2.49
प्रोर्णुविता 1.2.3
प्रौर्णुवीत् 7.2.6
प्रोर्णोः 7.3.91
प्रोर्णोत् 7.3.91
प्रोर्णोति 7.3.90
प्रोर्णोनूयते 3.1.22
प्रोर्णोमि 7.3.90
प्रोर्णोषि 7.3.90
प्रोर्णौति 7.3.90
प्रोर्णौमि 7.3.90
प्रोर्णौषि 7.3.90
प्रोर्ण्णोनूयते 6.1.9
प्रोल्लाधितः 8.2.55
प्रोषति 6.1.94
प्रोष्ठः 4.1.112
प्रोष्ठपदः 5.4.120, 7.3.18
प्रोष्ठपदा 7.3.18
प्रोष्ठपादः 7.3.18
प्रोष्यपापी 2.1.72
प्रोहकटा 2.1.72
प्रोहकर्दमा 2.1.72
प्रोहणम् 8.4.31
प्रोह्यपदि 5.4.128
प्रोह्यपादि 5.4.128
प्रौढः 6.1.89
प्रौढिः 6.1.89
प्रौर्णवीत् 7.2.6
प्रौर्णावीत् 7.2.6
प्रौर्णुवीत् 7.2.6
प्रौष्ठः 4.1.112
प्रौहः 6.1.89
प्लक्ष इदम् 8.2.3
प्लक्षः 1.4.110, 2.4.71, 6.1.102, 8.3.15, 8.3.17, 8.4.68
प्लक्षःशेते 8.3.36
प्लक्षकः 5.3.86
प्लक्षकीयम् 4.2.91
प्लक्षन्यग्रोधम् 1.1.68, 2.4.12
प्लक्षन्यग्रोधा 1.1.68
प्लक्षन्यग्रोधाः 1.2.64, 2.4.12
प्लक्षन्यग्रोधौ 2.2.29
प्लक्षन्यग्रोधौ 2.2.34, 2.4.12
प्लक्षन्यग्रोधौ 6.2.141
प्लक्षम् 6.1.107
प्लक्षमान् 5.2.94
प्लक्षयोः 7.3.104
प्लक्षवणम् 8.4.5
प्लक्षवान् 5.2.94, 8.2.9
प्लक्षश्चिनोति 8.3.34, 8.4.40
प्लक्षश्छादयति 8.3.15, 8.3.34, 8.4.40
प्लक्षश्शेते 8.3.36, 8.4.40
प्लक्षष्टीकते 8.3.34, 8.4.41
प्लक्षष्ठकारः 8.3.34, 8.4.41
प्लक्षष्षण्डे 8.4.41
प्लक्षस्तरति 8.3.15, 8.3.34
प्लक्षस्य 7.1.12, 7.3.102
प्लक्षाः 6.1.102, 6.1.103
प्लक्षात् 1.3.4, 7.1.12
प्लक्षान् 6.1.102, 8.4.37
प्लक्षाभ्याम् 1.4.2, 7.3.102, 7.3.103
प्लक्षाय 1.1.56, 7.1.13, 7.3.102
प्लक्षावत्र 1.1.11
प्लक्षेण 7.1.12
प्लक्षेभ्यः 7.3.103
प्लक्षेषु 1.4.2, 7.3.103
प्लक्षैः 1.1.69, 6.4.1, 7.1.9
प्लक्षैः 8.2.5
प्लक्षोऽत्र 6.1.113
प्लक्षौ 6.1.104
प्लत्ययते 8.2.19
प्लवन्ते 7.1.5
प्लविकः 4.4.7
प्लाक्षम् 4.3.164
प्लाक्षाः 4.2.112

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्लाक्षायणः 4.1.93, 4.1.101,4.1.122, 4.1.164
प्लाक्षाणाम् 7.1.54
प्लाक्षिः 1.4.18, 4.1.122,4.1.160, 6.4.148,7.2.117
प्लाक्षी4.1.65,4.1.93, 6.4.148
प्लायते 8.2.19
प्लिनाति 7.3.80
प्लुतः 8.2.43
प्लुतवान् 8.2.43
प्लुष्टायते 3.1.17
प्लोषीद्वम् 8.3.78
प्लोषीष्ट 7.2.43

फ

फक्कति 7.1.2
फलकक्षः 5.4.97
फलकसक्थ 5.4.98
(वृक्षशिखरे) फलप्रचयं 3.3.40
फलप्रचायः 3.3.40
फलाहारी 6.2.79
फलानां तृप्त 2.2.11
फलानां सुहितः 2.2.11
फलाफलिका 2.1.60
फलासवः 6.2.70
फलाहरः 3.2.11
फलिनः 5.2.122
फलीकृत्य 1.4.61
फलूकृत्य 1.4.61
फलेग्रहिः 3.2.26
फलेपाकः 7.3.53
फलेपाकुः 7.3.53
फलेभ्यः स्पृह 1.4.36
फल्गुनः 4.3.34
फल्गुनी 4.3.34
फल्गुन्यः 1.2.60
फल्गुन्यौ 1.2.60
फाणितम् 7.2.18
फाण्टम् 7.2.18
फण्टाहृतः 4.1.150
फाण्टाहृतमयम् 4.1.90
फण्टाहृतम 4.1.90
फाण्टाहृतरूप्यम् 4.1.90
फाण्टाहृताः 4.1.90
फाण्टाहृतायनः 4.1.150
फाण्टाहृतायनिः 4.1.150
फाण्टाहृतिः 4.1.90
फालदती 5.4.143
फाला इव तण्डुलाः 2.1.55
फाल्गुनः 4.2.23
फाल्गुनिकः 4.2.23
फाल्गुनी 5.1.94
फाल्गुनी पौर्णमासी 6.3.63
फाल्गुनीवह 4.2.122
फुल्लः 8.2.55
फुल्लवान् 8.2.55
फेणतुः 6.4.125
फेणिथ 6.4.125
फेणुः 6.4.125
फेनलः 5.2.99
फेनवान् 5.2.99
फेनायते 3.1.17
फेनिलः 5.2.99
फेलतुः 6.4.122
फेलिथ 6.4.122
फेलुः 6.4.122

ब

बंहिमा 6.4.157
बंहियान् 6.4.157
बंहिष्ठः 6.4.157
बकनखश्वगुदपरिणद्धाः 2.4.68
बङ्गाः 2.4.62,4.2.31
बट्टवः 2.3.46
बदरम् 1.2.49, 4.3.163
बदरामलके 2.4.12
बदरामलम् 2.4.12
बदरीवणम् 8.4.6
बदरीवनम् 8.4.6
बधान 3.1.84
बधिरो नाम 3.3.151
बनीभ्रंसीति 7.4.84
बनीभ्रस्यते 7.4.84
बन्द्धा 7.2.10
बन्धः 6.1.160
बन्धः 3.3.121
बन्धयति बलिम् 3.1.26
बन्धुता 4.2.43
बप्सति 6.4.100
बब्धान्ते 1.1.58
बब्धाम् 1.1.58, 6.4.100,8.2.25
बभणतुः 6.4.120, 8.2.3
बभणिथ 6.4.121
बभणुः 6.4.120,8.2.3
बभस्ति 6.4.100
बभार 3.1.39,7.4.76
बभूव 1.2.6,6.4.22, 6.4.88
बभूथ 7.2.64
बभूवतुः 6.4.22, 6.4.88,7.4.73
बभूवान् 7.2.67
बभूविथ 1.2.6,7.2.64
बभूवुः 6.4.22,6.4.88, 7.4.73
बभूवे 7.4.73
बभृम 7.2.13
बभृव 7.2.13
बभ्रमतुः 6.4.124
बभ्रमिथ 6.4.124
बभ्रमुः 6.4.124
बभ्राजाते 6.4.125
बभ्राजिरे 6.4.125
बभ्राजे 6.4.125
बभ्राम 7.3.74
बभ्राशाते 6.4.125
बभ्राशिरे 6.4.125
बभ्राशे 6.4.125
बभ्लाशाते 6.4.125
बभ्लाशिरे 6.4.125
बभ्लाशे 6.4.125
बम्बाविश्ववयसौ 6.4.140
बम्भञ्जीति 7.4.86
बम्भञ्ज्यते 7.4.86
बरीभृज्यते 6.1.16
बरीभृज्यते 6.4.47
बर्करा इमे 1.2.73
बर्करी 4.1.20
बर्दुम् 6.1.59
बर्हिणः 5.2.122
बर्हिष्ठः 8.3.97
बर्हिष्पवि 3.2.185
बर्हिष्पूल 8.3.48
बर्हिष्प्रस्तरः 3.3.32
बर्हिष्यम् 4.4.119
बलवान् 5.2.136
बलाका 4.1.63
बलाकायाः 2.2.11
बलाकी 5.2.116
बलाहकः 6.3.109
बलिं बन्ध 3.1.26
बलिकरः 3.2.21
बलिनः 5.2.139
बलिभः 5.2.139
बली 5.2.136
बलूलः 5.2.97, 5.2.122
बल्यः 4.2.80
बहवः 1.1.38,2.3.46
बहितम् 7.2.18
बहिर्ग्रामम् 2.1.12
बहिर्ग्रामात् 2.1.12
बहिर्लोमः 5.4.117
बहिष्कृतम् 8.3.41
बहिष्ठः 6.4.154
बहिष्पीतम् 8.3.41
बहुः 4.1.44
बहुकः 1.1.23,5.1.22
बहुकपालः 6.2.30
बहुकरः 3.2.21
बहुकरा 3.2.21
बहुकर्तृकः 5.4.153
बहुकुक्कुटा 4.1.14
बहुकुमारीकः 5.4.153
बहुकुमारीकः 7.4.14
बहुकुमारीकौ 6.2.175
बहुकुरुचरा 4.1.14
बहुकुलीनः 4.1.140
बहुकुल्यः 4.1.140
बहुकृता 4.1.52
बहुकृत्वः 1.1.23, 5.4.20
बहुकृत्वो मासस्य 5.4.20
बहुक्षमः 3.2.1
बहुक्षमा 3.2.1
बहुक्षीरघृता 1.2.52
बहुक्षीरघृतौ 1.2.52
बहुखट्वः 5.4.154
बहुखट्वक 1.1.57, 1.1.58
बहुखट्वकः 5.4.154, 7.4.15
बहुखट्वाकः 5.4.154, 7.4.15
बहुगुडा 5.3.68
बहुगुणः 6.2.176
बहुगुणा 6.2.176
बहुचर्मिका 7.3.44
बहुच्छत्रिका 5.4.152
बहुच्छत्रीणि 6.4.12
बहुच्छन्दो 6.2.176
बहुजरः 6.2.175
बहुतः 5.3.2,5.3.6, 5.3.8
बहुतक्षा 4.1.13,4.1.28
बहुतक्षाः 4.1.13

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बहुतक्षाणः 4.1.13
बहुतक्षे 4.1.13,4.1.28
बहुतक्ष्णी 4.1.28
बहुतन्त्रीः 5.4.159
बहुन्त्रीका 5.4.159
बहुतितवा 6.1.174
बहुतिथः 5.2.52
बहुतिलः 6.2.175
बहुत्र 5.3.2,5.3.10
बहुत्रा 5.4.56
बहुदण्डिकः 5.4.152
बहुदण्डिका 5.4.152
बहुदण्डी 5.4.152
बहुदण्डीनि 6.4.12
बहुधा 1.1.23
बहुधा दिवसस्य 5.4.20
बहुधीवरी 4.1.13
बहुधीवा 4.1.13
बहुधुरी 7.1.72
बहुनाडिः 5.4.159
बहुनाडीकः 5.4.159
बहुनिष्कम् 5.1.30
बहुनैष्किकम् 5.1.30
बहुपटवः 6.1.163
बहुपटुः 5.3.68
बहुपरिव्राजका मथुरा 7.3.44
बहुपीवरी 4.1.13
बहुपीवा 4.1.13
बहुपुंस्क 5.4.151
बहुपुमान् 5.4.151
बहुपुरि 7.1.72
बहुपूषाणि 6.4.12
बहुपूषाणि 6.4.14
बहुप्रजाः 5.4.123
बहुप्रजो 5.4.123
बहुबिस्तम् 5.1.31
बहुबैस्तिकम् 5.1.31
बहुब्रह्मबन्धूकः 5.4.153
बहुब्रह्मबन्धूकं 6.2.175
बहुभगालः 6.2.30
बहुभस्त्रका 7.3.47
बहुभस्त्रिका 7.3.47
बहुभ्रूणहानि 6.4.13
बहुमत्स्या 4.1.28
बहुमद्रचरा 4.1.14
बहुमना 6.2.175
बहुमरः 6.2.175
बहुमालः 5.4.154
बहुमालकः 5.4.154, 7.4.15
बहुमालाकः 5.4.154, 7.4.15
बहुमाल्य 1.2.52
बहुमाष 6.2.175
बहुमास्यः 6.2.30
बहुमित्रः 6.2.175
बहुमृत्तः 6.2.175
बहुमृदुः 5.3.68
बहुयुवः 6.2.175
बहुयवा 4.1.54
बहुराजया 7.3.105
बहुराजयोः 7.3.105
बहुराजा 4.1.2,4.1.13, 4.1.28
बहुराजाः 4.1.13
बहुराजानः 4.1.13
बहुराजानाम् 7.1.54
बहुराजायाः 7.3.113
बहुराजायाम् 7.3.116
बहुराजायै 7.3.113
बहुराजे 4.1.13, 7.1.18,7.3.105
बहुराज्ञीसभा 4.1.28
बहुलः 4.3.34
बहुलक्ष्मीक 7.4.14
बहुवधूकः 7.4.14
बहुवाग्मिका 5.4.152
बहुविक्रीणाति 1.3.18
बहुवीणः 5.4.154
बहुवीणकः 5.4.154
बहुवीणाकः 5.4.154
बहुवृत्रहाणि 6.4.12
बहुवृषलीकं 6.2.175
बहुव्रीहिः 6.2.175
बहुव्रीहिकः 6.2.175
बहुशः 1.1.23,5.4.42
बहुशरावः 6.2.30
बहुशूकरा 4.1.14
बहुशो देहि 6.3.35
बहुश्रेयसी 1.2.48, 5.4.156
बहुश्रेयान् 5.4.156
बहुसुक्तः 6.2.176
बहुस्वामिका 5.4.152
बहूर्जि 7.1.72
बहूर्ज्जि 7.1.72
बहोः सूपात् 5.3.2
बहौ सूपे 5.3.2
बह्वक्षर 6.2.176
बह्वध्यायः 6.2.176
बह्वन्नाः 1.2.52
बह्वन्नौ 1.2.52
बह्वरत्निः 6.2.30
बह्वरंत्निः 6.2.30
बह्वर्यमाणि 6.4.12
बह्वाम्पि 6.4.11
बाह्वी 4.1.44
बह्वीः 6.1.103
बह्वीनाम् 6.1.178
बह्वीभ्यो 6.3.35
बह्वीषु 4.4.46
बह्वृक् 5.4.74
बह्वृक्कं 5.4.154
बह्वृचः 5.4.74, 6.2.172
बह्वृचमानिनी 6.3.41
बह्वृची 4.1.63
बह्वृचीपाशा 6.3.41
बह्वृचीभार्यः 6.3.41
बह्वृचीयते 6.3.41
बह्वृचो 5.4.74
बाकम् 4.2.37
बाङ्गः 4.1.170
बाङ्गक 4.2.125
बाङ्गकः 4.3.100
बाङ्गी 4.1.178
बाढम् 7.2.18
बादरम् 4.1.89
बादरिकः 4.4.32
बाधयति 3.1.6
बाभाव्यते 7.4.85
बाभ्रवः 4.1.106
बाभ्रवदान 6.2.37
बाभ्रवशाल 6.2.37
बाभ्रवीयाः 1.1.57
बाभ्रव्यः 4.1.106, 6.1.79,6.4.146
बाभ्रव्यशा 4.3.125
बाभ्रव्यायणी 4.1.18, 4.1.106
बारः 8.2.18
बारुडकिः 4.1.97
बार्हस्पत्यम् 4.2.24, 5.1.121
बार्हिणम् 4.3.152
बालः 8.2.18
बालकमु 1.3.70
बालवर्दिन् 4.1.123
बालवायः 6.2.76
बालाकयः 2.4.66
बालाकिः 6.4.148, 7.3.32
बालाक्या 4.1.74, 4.1.78
बालेयः 6.4.148
बालेयार्द्धिकम् 4.3.4
बालेयास्तण्डुलाः 5.1.13
बाल्वजः 4.2.67
बाल्वजभारि 5.1.50
बाल्वजिकः 5.1.50
बालवायः 6.2.77
बाहवः 4.1.96
बाहविः 4.1.96
बाहितम् 7.2.18
बाहीकः 4.1.85
बाहुकः 4.4.7
बाहुकरः 3.2.21
बाहुका स्त्री 4.4.7
बाहुकुलेयकः 4.1.140
बाहुगर्त्तकः 4.2.126
बाहुगर्तम् 4.2.137
बाहुबली 5.2.135
बाहुरूप्यम् 4.2.106
बाह्यः 4.1.85,6.4.144
बाह्यम् 4.3.58
बाह्याः 4.1.85
बाह्यायनी 4.2.99
बाह्वृच्य 4.3.129
बिदकुलम् 2.4.64
बिदाः 2.4.64
बिदाः 6.1.197
बिदारी 4.3.166
बिभयाञ्चकार 3.1.39
बिभराञ्चकार 3.1.39
बिभरिषति 7.2.49
बिभर्क्षति 7.2.49
बिभर्ज्जिषति 7.2.49
बिभर्त्ति 2.4.75,7.4.76
बिभर्त्ति 6.1.192
बिभाय 3.1.39
बिभावयिषति 7.4.8
बिभितः 6.4.115
बिभित्सति 1.2.10
बिभिथः 6.4.115
बिभिदतुः 1.2.5
बिभिदिम 7.2.13
बिभिदिव 7.2.13
बिभिदुः 1.2.5
बिभिद्वान् 7.2.67
बिभिमः 6.4.115
बिभिवः 6.4.115
बिभीतः 6.4.115
बिभीथः 6,4.115
बिभीमः 6.4.115

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बिभीवः 6.4.115
बिभृयात् 7.4.28
बिभेति 2.4.75,6.1.10, 6.4.115
बिभेतिं 6.1.192
बिभेद 1.2.5,6.1.68
बिभेदिथ 1.2.5, 7.2.61,7.2.62
बिभ्यति 6.4.115
बिभ्यतु 3.4.111
बिभ्रक्षति 7.2.49
बिभ्रज्जिषति 7.2.49
बिभ्रति 6.4.112
बिम्बावः 5.2.109
बिम्बोष्ठा 4.1.55
बिम्बोष्ठी 4.1.55, 6.1.94
बिम्बौष्ठा 4.1.55
बिम्बौष्ठी 4.1.55, 6.1.94
बिल्वदारु 5.4.103
बिल्वसप्तरात्रः 6.2.97
बिसं बिसम् 8.3.108
बिसवान् 4.2.86
बीजाकरोति 5.4.58
बीभत्सते 3.1.6
बुद्धं 6.1.205
बुद्धयः 7.3.109
बुद्धिजः 3.2.98
बुद्ध्या मुक्तः 2.3.25
बुद्ध्या विनय 1.3.37
बुध् 1.1.65
बुधः 3.1.135
बुधितम् 7.2.10
बुध्यसे 3.2.112
बुध्यस्व 8.1.12
बुबुधे 8.4.54
बुभुक्षते 1.2.26
बुभुक्षितं न प्रति 2.3.2
बुभुक्षितकः 5.3.76
बुभुत्सते 1.2.10
बुभूर्षति 7.2.49
बुभूषति 7.4.73, 7.4.80,8.4.54
बृंहणम् 8.4.2
बृंहणीयम् 8.4.2
बृद्धा 4.1.20
बृसी 6.3.109
बृहकः 5.4.3
बृहता 6.1.173
बृहतिकः 5.4.6
बृहती 5.4.6
बृहती 6.1.173
बृहती छन्दः 5.4.6
बृहत्कः 5.4.3
बृहत्पतिः 6.1.157
बृहद्दर्मम् 6.2.90
बृहस्पतिः 6.1.157
बृहस्पतिः 6.2.140
बृहस्पतिकः 5.3.83
बृहस्पतिने 5.4.116
बृहस्पतियः 5.3.83
बृहस्पतिर्दे 6.1.157
बृहस्पतिर्वै देवानां 8.1.64
बृहस्पतिलः 5.3.83
बृहस्पतिस 8.3.108
बेभिदितव्यम् 6.4.46, 6.4.49
बेभिदिता 6.4.46, 6.4.49
बेभिदितुम् 6.4.46, 6.4.49
बेभिद्यते 6.4.46
बैकयः 2.4.66
बैदः 2.4.64,4.1.104, 4.3.127
बैदः पिता 2.4.58
बैदः पुत्रः 2.4.58
बैदः सङ्घ 4.3.127
बैद्यः स्त्रियः 2.4.64
बैदकुलम् 2.4.64
बैदमय 4.3.155
बैदिः 4.1.104
बैदिका 4.2.116
बैदिकी 4.2.116
बैदी 4.1.73
बैदीं 6.1.161
बैदीविद्यः 4.3.127
बैदोघोषः 4.3.127
बैदोऽङ्गः 4.3.127
बैद्याशाः 8.2.4
बैन्दवाः 2.4.67
बैम्बकिः 4.1.97
बैल्वः 4.3.136, 4.3.151
बैल्वकाः 6.4.153
बैल्वमय 4.3.155
बैल्वानि 4.3.166
बोद्धव्यम् 8.2.37, 8.2.40,8.4.53
बोद्धा 7.2.10,8.2.37, 8.2.40,8.4.53
बोद्धुम् 8.2.37,8.2.40, 8.4.53
बोधयति 1.4.52
बोधयति पद्मम् 1.3.86
बोधिता 7.2.10
बोध्यति 1.3.86
बोभवीति 7.3.88, 7.4.65
बोभूतु 7.4.65
बोभूयते 7.4.73
बोभोति 7.4.65
बौधिः 4.1.107
बौधिः पिता 2.4.58
बौधिः पुत्रः 2.4.58
बौध्यः 4.1.107
ब्रध्नायना 4.1.107
ब्रध्नायन्यः 4.1.98
ब्रध्नायन्यौ 4.1.98
ब्रवाणि 7.3.93
ब्रवीति 3.1.89,3.4.84, 7.3.93
(अहं) ब्रवीमि 1.2.59
ब्रवीमि 3.4.84,7.3.93
ब्रवीषि 3.4.84,7.3.93
ब्रह्म अधीत 3.2.87
ब्रह्मगुप्तीयः 5.3.116
ब्रह्मचारिपरि 6.2.1
ब्रह्मणः चूर्ति 7.4.89
ब्रह्मणशीली 5.2.132
ब्रह्मण्यम् 5.1.7
ब्रह्मता 5.1.136
ब्रह्मत्वम् 5.1.136
ब्रह्मन् 8.3.1
ब्रह्मप्रजापती 2.4.14, 6.3.25
ब्रह्मबन्धु 7.3.103
ब्रह्मबन्धुः 6.2.109
ब्रह्मबन्धुतरा 6.3.44
ब्रह्मबन्धुपुत्र 6.3.61
ब्रह्मबन्धूः 1.4.3, 4.1.66,6.1.85
ब्रह्मबन्धूतरा 6.3.44
ब्रह्मबन्धूनाम् 7.1.54
ब्रह्मबन्धूपुत्रः 6.3.61
ब्रह्मबन्धूभार्यः 6.3.34
ब्रह्मबन्धूवृन्दारिका 6.3.42
ब्रह्मबन्ध्वः 6.1.105
ब्रह्मबन्ध्वा 7.3.112
ब्रह्मबन्ध्वां 6.1.175
ब्रह्मबन्ध्वाम् 7.3.116
ब्रह्मबन्ध्वें 6.1.175
ब्रह्मबन्ध्वै 7.3.112
ब्रह्मबन्ध्वौ 6.1.105
ब्रह्मभूयं गतः 3.1.107
ब्रह्ममित्रः 6.2.165
ब्रह्मवद्यम् 3.1.106
ब्रह्मवनिम् 3.2.27
ब्रह्मवर्च्चस 5.4.78
ब्रह्मवर्च्चस्यम् 5.1.39
ब्रह्मवादी 3.2.78
ब्रह्मवाद्यम् 3.1.123
ब्रह्मवित् 3.2.61
ब्रह्मसाम 5.4.103
ब्रह्मसामम् 5.4.103
ब्रह्महत्या 3.1.108
ब्रह्महा 3.2.87,6.1.67
ब्रह्महूषु 6.1.86
ब्रह्मा 8.4.51
ब्रह्माणं हन्ति 3.2.87
ब्रह्मावद्यम् 3.1.106
ब्रह्मैडका 6.1.88
ब्रह्मैतिकायनः 6.1.88
ब्रह्मोद्यम् 3.1.106
ब्रह्मौदनः 6.1.88
ब्रह्मौपगवः 6.1.88
ब्रह्म्मा 8.4.46
ब्राध्नायनाः 5.3.113
ब्राध्नायनी 5.3.113
ब्राध्नायन्यः 4.1.98, 5.3.113
ब्राध्नायन्यौ 5.3.13
ब्राभ्रवदानच्युताः 6.2.37
ब्राभ्रवशालङ्कायनाः 6.2.37
ब्राभ्रव्यायणी 4.1.18
ब्राह्मः 6.4.171
ब्राह्मकृतेयी 4.1.73
ब्राह्मणः 1.4.22
ब्राह्मणः 6.4.171
ब्राह्मणः पठ 1.4.22
ब्राह्मणं दीव्य 2.3.58
ब्राह्मणं दृष्ट्वा 3.4.29
ब्राह्मणकः 5.2.71
ब्राह्मणकम्बलः 1.2.46, 2.2.8
ब्राह्मणकुम्बलः 6.1.223
ब्राह्मणकर्त्त 2.2.11
ब्राह्मणकुलम् 6.2.98, 6.3.21
ब्राह्मणको 5.2.71
ब्राह्मणक्षत्रिय 2.4.6
ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्राः 2.2.34
ब्राह्मणक्षत्रियौ 2.4.8

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ब्राह्मणजः 3.2.101
ब्राह्मणजाति 5.4.9
ब्राह्मणजो 3.2.101
ब्राह्मणत्रा 5.4.55
ब्राह्मणत्रा भव 5.4.55
ब्राह्मणधर्मी 5.2.132
ब्राह्मणनिकायः 3.3.42
ब्राह्मणनिकायः 6.2.94
ब्राह्मणपूजकः 6.2.151
ब्राह्मणभिस्सा 6.4.1
ब्राह्मणमित्रः 6.2.116
ब्राह्मणमिश्रो 6.2.154
ब्राह्मणयाजकः 2.2.9
ब्राह्मणयाजकः 6.2.151
ब्राह्मणराज्यम् 1.2.42
ब्राह्मणराज्यम् 6.2.130
ब्राह्मणवत् 5.1.115, 5.1.117
ब्राह्मणवर्णी 5.2.132
ब्राह्मणवेदं भोजयति 3.4.29
ब्राह्मणशयनम् 6.2.151
ब्राह्मणशालम् 6.2.123
ब्राह्मणशाला 6.2.123
ब्राह्मणशीली 5.2.132
ब्राह्मणसखः 5.4.91
ब्राह्मणसभा 6.2.98
ब्राह्मणसमित् 6.1.223
ब्राह्मणसात् 5.4.54
ब्राह्मणसुख 6.2.16
ब्राह्मणसेणम् 2.4.19
ब्राह्मणसेनम् 2.4.19, 2.4.25
ब्राह्मणसेनम् 6.2.98, 6.2.123
ब्राह्मणसेना 2.4.19, 2.4.25
ब्राह्मणस्य करिष्यन् 3.2.127
ब्राह्मणस्य करिष्यमाणः 3.2.127
ब्राह्मणस्य कर्त्तव्यम् 2.2.11
ब्राह्मणस्य कुर्वन् 2.2.11
ब्राह्मणस्य कुर्वाणः 2.2.11,3.2.127
ब्राह्मणस्य कृत्वा 2.2.11
ब्राह्मणस्य हृत्वा 2.2.11
ब्राह्मणाः 1.2.73,1.3.4
ब्राह्मणाः1.3.7,1.4.14, 7.1.50
ब्राह्मणाः पञ्च 2.2.25
ब्राह्मणाः पठन्ति 1.4.21
ब्राह्मणाक्षि 5.4.76
ब्राह्मणाच्छंसीयम् 5.1.135
ब्राह्मणाच्छ 6.3.2
ब्राह्मणा ददाति 8.3.17
ब्राह्मणान् पणायते2.3.57
ब्राह्मणाभ्यां च कृतं 1.2.64
ब्राह्मणा वैयाकरणाः 8.1.74
ब्राह्मणासः 7.1.50
ब्राह्मणासनम् 6.2.151
ब्राह्मणिकः 4.3.72
ब्राह्मणिगोत्रा 6.3.43
ब्राह्मणिचेली 6.3.43
ब्राह्मणितमा 1.1.22, 6.3.43
ब्राह्मणितरा 1.1.22, 6.3.43
ब्राह्मणिब्रुवा 6.3.43
ब्राह्मणिमता 6.3.43
ब्राह्मणिहता 6.3.43
ब्राह्मणी4.1.63,4.1.73
ब्राह्मणीकल्पा 6.3.43
ब्राह्मणीगर्भिणी 2.1.71
ब्राह्मणीपुत्रः 6.3.22
ब्राह्मणीरूपा 6.3.43
ब्राह्मणेषु 2.3.36
ब्राह्मणेष्वासीनेषु 2.3.36
ब्राह्मणो वदति 1.3.48
ब्राह्मणौ 1.2.67
ब्राह्मणौ पचतः 1.4.22
ब्राह्मण्यः 6.4.168
ब्राह्मण्यम् 4.2.42
ब्राह्मण्यम् 5.1.124
ब्राह्मप्रजापत्यम् 7.3.21
ब्राह्मी ओषधिः 6.4.171
ब्रीहियवाः 2.4.12
(आवां) ब्रुवः 1.2.59
ब्रुवन्ति 3.4.84
ब्रूतः 3.4.84,7.3.93
ब्रूतात् 7.1.35
ब्रूते श्लोक 3.1.89
ब्रूथ 3.4.84
(वयं) ब्रूमः 1.2.59
ब्रूमः 3.4.84
ब्रूवः 3.4.84
ब्लेपयति 7.3.36

भ

भक्ता 7.2.10
भक्तिः 3.3.103
भक्तिकरः 3.2.21
भक्त्वा 6.4.32
भक्षः 6.1.160
भक्षकारः 6.3.70
भक्षङ्कारः 6.3.70
भक्षयति 1.4.52
भक्षयन्ति 1.4.52
भगन्दरः 3.2.41
भगिनीभर्त्ता 6.2.81
भगो अत्र 8.3.17, 8.3.20
भगो इदम् 8.3.20
भगो ददाति 8.3.17
भगोयत्र 8.3.17
भगो याति 8.3.22
भगो हसति 8.3.22
भङ्क्ता 7.2.10
भङ्क्त्वा 6.4.32
भङ्गाकटम् 5.2.29
भङ्गुरम् (काष्ठम्) 1.3.8,3.2.161
भङ्गुरम् 6.1.163
भङ्ग्यम् 5.2.4
भञ्जन 6.3.117
भञ्जयामः 7.1.46
भञ्जयामसि 7.1.46
भद्रं 8.2.107
भद्रं देवदत्तस्य 2.3.73
भद्रं देवदत्ताय 2.3.73
भद्रंयाः 7.3.45
भद्रंयिका 7.3.45
भद्रङ्करणम् 6.3.70
भद्रदारु 8.4.6
भद्रपादः 7.3.18
भद्रबाहुकः 5.3.78
भद्रबाहू 4.1.67
भद्रमुखः 6.2.167
भद्राकरोति 5.4.67
भनक्ति 6.4.23
भयङ्करः 3.2.43
भयब्राह्मणः 6.2.69
भयम् 3.3.56
भयानकः 3.4.74
भव्यम् 6.1.83
भरटिकः 4.4.16
भरटिकी 4.4.16
भरणिपुत्रः 6.3.63
भरणीषेणः 8.3.100
भरणीसेनः 8.3.100
भरता 6.3.133
भरिभ्रत् 7.4.65
भर्जनम् 6.4.47
भर्ज्जनम् 6.4.47
भर्त्तारम् उप 1.3.25
भर्त्तव्यम् 6.4.47
भर्त्ता 6.4.47,7.2.10
भर्त्तुम् 6.4.47
भवः 3.1.143
भवका 7.3.45
भवत 6.3.135
भवत आसिका 2.2.15
भवतः आसिका 2.3.65
भवतः 6.4.46,7.1.15, 7.1.70
भवतः कटः 2.3.71
भवतः प्राप्तकाल 3.3.163
भवतः शायिका 2.2.15, 2.3.65
भवता कटः 2.3.71
भवता कटः कर्त्तव्य 3.3.162
भवता कटं कार्यं 3.3.162
भवता कटं कृत्यः 3.3.162
भवता खलु 3.3.169, 3.3.171,3.3.172
भवता सहस्रं देयम् 3.3.171
भवति 1.1.3, 1.3.8,3.1.68, 6.4.46,7.1.15, 7.3.83,7.3.88, 7.3.114
भवति नाम 3.3.146
भवति पचंति 8.1.28
भवति भोक्तुम् 3.4.65
भवति मे प्रार्थना 3.3.162
भवती 4.1.6
भवतु खलु 3.3.169
भवते 7.1.14,7.3.114
भवतोऽग्रगामिका 2.2.15
भवदीयः 1.4.16, 4.2.115
भवदीयम् 1.1.74
भवदीयाः 6.3.35
भवन्तः 7.1.70
भवन्तौ 7.1.70
भववान् 7.3.101

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भवांश्चरति 8.3.4,8.3.5
भवाँश्चिनोति 8.3.7
भवांश्छादयति 8.3.7
भवांश्लाघयति 8.3.4
भवाँष्टीकते 8.3.7
भवांष्टीकते 8.3.7
भवाँस्तरति 8.3.7
भवांस्तरति 8.3.7
भवाञ्छेते 8.3.31
भवान् 6.4.14,7.1.70, 7.2.102,8.4.43,
भवानास्ते 8.3.32
भवानी 4.1.49
भवान् करोति 8.3.7
भवान् खलु 3.3.165, 3.3.169,3.3.172,
भवान् त्सरुकः 8.3.7
भवान् त साये 8.3.30
भवान् माणवकम् 3.3.165
भवान् साये 8.3.30
भवान् हसति 8.4.62
भवामि 1.4.13
भवाल्ँ लु 8.4.59
भवितव्यम् 1.1.49, 1.1.55,1.1.56, 2.4.52,
भविता 1.1.49,1.1.55, 1.1.56,2.4.52, 3.2.149,
भवितुम् 1.1.49,1.1.55, 1.1.56,2.4.52
भविष्णुः 3.2.138
भव्यः 3.4.68
भव्यम् 2.4.35, 3.1.107
भसिता 7.2.8
भस्तिकः 4.4.16
भसितुम् 7.2.8
भस्त्रका 7.3.47
भस्त्रिका 7.3.47
भस्त्रिकी 4.4.16
भस्म 3.3.2,7.2.8
भस्मनि हुतम् 2.1.47
भस्त्रफला 4.1.4
भाः 3.2.177
भाः करणम् 8.3.45
भाक्तः 4.4.68,4.4.100
भाक्तिकः 4.4.68
भागधेयम् 5.4.25
भागधेया 4.1.30
भागधेयी 4.1.30
भागवतीभाग 2.4.11
भागवित्तायनः 4.1.148
भागवित्तिः 4.1.90
भागवित्तिकः 4.1.148
भागवित्तीयम् 4.1.90
भागवृत्तिकः 4.1.89
भागिकम् 5.1.49
भागिका 5.1.49
भागी 3.2.142
भागीरथी 4.2.85
भाग्यम् 5.1.49
भाग्या 5.1.49
भाङ्गीनम् 5.2.4
भाजी 4.1.42
भाज्ीसूदम् 6.2.129
भाण्डागारिकः 4.4.70
भाण्डिशाला 6.2.86
भाण्डीजङ्घि 2.4.58
भाद्रः सङ्ग्रामः 4.2.56
भाद्रदाख 4.3.139
भाद्रमातुरः 4.1.115
भानवः 4.1.92
भानविति 1.1.16, 6.1.109
भानवे 1.4.6
भानुलः 5.3.83
भानो इति 1.1.16, 6.1.109
भापयते 6.1.56
भाययति 6.1.56, 7.3.40
भाययति कुञ्चिकयैनम् 1.3.68
भारतः 4.2.56
भारतीवान् 8.2.15
भारम् 6.1.163
भारहारः 3.2.9
भारा 3.3.104
भाराहारः 3.2.11
भारुजिकः 5.3.108
भार्गवः 2.4.65, 6.1.161
भार्गवौ 6.1.161
भार्गायणः 4.1.111
भार्गिः 4.1.111
भार्गी 4.1.178
भार्यः 3.1.112
भार्या चेलम् 6.2.126
भार्यापती 2.2.31
भार्याम् ईर्ष्यति 1.4.37
भार्यासौश्रुतः 6.2.69
भाल्लविनः 4.2.66, 4.3.105
भावः 3.1.143,3.3.24
भावतः 4.2.115
भावत्कः 4.2.115
भावत्काः 6.3.35
भावी 3.3.3
भाव्यः 3.1.123
भाष्यकृत् 3.2.89
भासः 3.2.177
भासुरम् (ज्योतिः) 3.2.161
भासौ 3.2.177
भास्करः 3.2.21
भास्मनः 4.3.134
भास्वरः 3.2.175
भास्वान् 8.2.9
भिक्षा 1.4.1,1.4.11
भिक्षाकः 3.2.155
भिक्षाकंसः 6.2.71
भिक्षाचतुर्थम् 2.2.3
भिक्षाचरः 3.2.17
भिक्षातुरीयम् 2.2.3
भिक्षातुर्यम् 2.2.3
भिक्षातृतीयम् 2.2.3
भिक्षाद्वितीय 2.2.3
भिक्षाद्वितीयम् 2.2.3
भिक्षाप्रियः 6.2.71
भिक्षाभिरुषितः 2.1.32
भिक्षामात्र 6.2.14
भिक्षामाणवः 6.2.69
भिक्षाविडालः 6.2.72
भिक्षितभिक्षिः 2.2.36
भिक्षुः 3.2.168
भिक्षुकनिकायः 3.3.42
भिक्षुको ब्राह्मणकुलम् 1.3.25
भित् 3.2.178,8.2.64
भित्तम् 8.2.59
भित्तिः 3.3.104
भित्सीष्ट 1.2.11
भिदा 3.3.104
भिदिः 3.3.108
भिदुरः 3.2.162
भिदेलिमानि 3.1.96
भिद् 1.1.65
भिद्यः 3.1.115
भिद्यते 1.2.28,3.1.87
भिद्यतें 6.1.195
भिनत्ति 3.1.78,6.1.68, 6.4.111
भिन्तात् 6.4.101
भिन्तः 6.4.111
भिन्दन्ति 6.4.111
भिन्द्युः 6.1.96
भिन्द्युस्तराम् 8.3.101
भिन्धकि 6.4.101
भिन्धि 6.4.101
भिन्धिलवणा 2.1.72
भिन्नः 1.1.5,8.2.42
भिन्नकः 5.4.4
भिन्नकर्णः 6.3.115
भिन्नम् 5.4.4
भिन्नम् अनेन् 7.2.17
भिन्नवन्द्रिः 8.2.42
भिन्नवन्द्र्याम् 8.2.42
भिन्नवान् 1.1.5,8.2.42
भिन्नो देवदत्तात् 2.3.29
भिस् 7.2.112
भीमः 6.1.205
भीमः 2.3.28,3.4.74
भीयते 6.4.115
भीरुः 3.2.174
भीरुकः 3.2.174
भीरुष्ठानम् 8.3.81
भीलुकः 3.2.174
भीषयते 1.1.46,6.1.56
भीषयते जटिलः 1.3.68
भीषयते मुण्डः 1.3.68
भीष्मः 3.4.74
भुक्तः 1.1.26,1.3.8
भुक्त ओदनो 3.4.70, 3.4.76
भुक्त ओदनं 3.4.76
भुक्त पूर्वी 2.3.65
भुक्तपूर्वी ओदनम् 5.2.87
भुक्तं देवदत्तेन 3.4.76
भुक्तवति ब्राह्मणे 3.4.21
भुक्तवत् 1.3.8
भुक्तवान् 1.1.26, 1.3.8,3.2.102
भुक्तविभुक्तम् 2.1.60
भुक्ता ब्राह्मणाः 3.4.76
भुक्ताभुक्तम् 2.1.60
भुक्तौदनः 2.2.36
भुक्त्वा 1.2.26, 8.1.4,8.1.12,
भुक्त्वा व्रजति 3.4.21
भुक्त्वासुहित 2.1.72
भुङ्क्ते 1.3.64,8.1.3
भुजः 7.3.61

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भुज्युः 7.1.1
भुञ्जते 1.3.66
भुञ्जाते 1.3.66
भुञ्जीय 3.3.159
भुत्सीष्ट 1.2.11
भुनक्त्येनमग्निराहितः 1.3.66
भुव 8.2.71
भुवनपति 6.2.20
भुवरिति 8.2.71
भुवो 8.2.71
भूतकाण्डम् 6.2.126
भूतये व्रजति 2.3.15, 3.3.11
भूतार्मम् 6.2.91
भूतिः 3.3.96,3.3.174
भूपतिः 6.2.19
भूमा 6.4.158
भूमिः 3.4.74
भूमित उज्जिहीते 5.4.45
भूमिपाशा 6.3.9
भूमिशयः 6.3.18
भूमिष्ठः 8.3.97
भूमेरुञ्छिही 5.4.45
भूयांसि 7.1.72
भूयान्6.4.158,8.2.23
भूयिष्ठः 6.4.159
भूरिदावत्तरः 8.2.17
भूरिदावा 3.2.74
भूरिशः 5.4.42
भूषणः 3.2.151
(कतीह) भूषयमाणाः 3.2.128
भूष्णुः 1.1.5,1.3.8, 3.2.139
भृगवः 2.4.65, 6.1.161
भृगुः 7.3.53
भृङ्गारधारः 6.2.75
भृज्जति 6.1.16,8.4.40
भृणाति 7.3.80
भृत्यः 3.1.112
भृत्या 3.3.99
भृशं क्राम 3.1.23
भृशं जागर्ति 3.1.22
भृशं प्राटति 3.1.22
भृशाऽध्यापकः 8.1.67
भृशायते 3.1.12, 7.4.25
भृशीभवति 3.1.12
भृष्टः 6.1.16,6.4.47
भृष्टवान्6.1.16,6.4.47
भेकभार्यः 6.3.37
भेजतुः 6.4.122
भेजिथ 6.4.122
भेजुः 6.4.122
भेत्तव्यम् 8.4.55
भेत्ता 1.4.1,1.4.10, 3.1.115,6.1.59, 7.2.10,7.2.62, 7.3.86,8.4.55
भेत्तुम् 8.4.55
भेदकः 7.2.116
भेदति 3.1.85
भेदनम् 7.3.86
भेदयति 7.2.116
भेदिका देव 2.3.66
भेयम् 6.1.83
भेषजा 4.1.30
भेषजी 4.1.30
भैकुराटः 4.3.116
भैक्षम् 4.2.38
भैक्ष्योत्करः 3.3.30
भैदिकः 5.1.64
भैमरथी 4.2.85,4.3.87
भैषज्यम् 5.4.23
भो अत्र 8.3.17
भो अत्र 8.3.20
भो आयुष्मती भव8.2.83
भो आयुष्मानेधि 8.2.82
भो इदम् 8.3.20
भोक्तव्य ओदनो 3.4.70
भोक्ता 7.2.10
भोक्तुं कामयते 3.3.158
भोक्तुं पारयति 3.4.66
भोक्तुं वष्टि 3.3.158
भोक्तुं वाञ्छति 3.3.158
भोक्तुं व्रजति 3.3.10
भोक्तुम् इच्छति 3.3.158
भोगः 7.3.61
भोगः 6.1.160
भोगवती 4.1.73
भोगैः पर्येति 8.3.51
भोग्यः 7.3.69
भोजं भोजं व्रजति 3.4.22
भोजं भोजं 8.1.4, 8.1.12
भोजकटीयः 1.1.75
भोजको व्रजति 3.3.10
भोजदुहिता 6.3.70
भोजनादपनस्तः 2.1.38
भोजपुत्री 6.3.70
भोजयति 1.3.87, 1.4.52
भोज्य ओदनः 2.1.68
भोज्यः 7.3.69
भोज्यलवणम् 2.1.68
भोज्यलवणम् 6.2.2
भोज्योष्णम् 2.1.68
भोज्यौष्णम् 6.2.2
भोत्स्यन्ते 8.2.37
भो ददाति 8.3.17
भो याति 8.3.22
भो हसति 8.3.22
भो3यिन्द्रम् 6.1.77
भौज्ञायुनाः 6.1.164
भौणिक्या 4.1.79
भौरिकिं 4.2.54
भौरिकिविधः 4.2.54
भौरिकिविधम् 6.1.193
भौरिमती 4.1.73
भौलिकिविधम् 6.1.193
भौलिङ्गिः 4.1.173
भ्यस्7.2.112,7.3.101
भ्याम् 7.2.112, 7.3.101
भ्रंशकला 1.4.61
भ्रकुंसः 6.3.61
भ्रकुटिः 6.3.61
भ्रज्जनम् 6.4.47
भ्रमति 3.1.70,7.3.74
भ्रमी 3.2.141
भ्रष्टककपिष्ठलाः 2.4.68
भ्रष्टकाः 2.4.69
भ्रष्टव्यम् 6.4.47, 8.2.36
भ्रष्टा 6.4.47,7.2.10, 7.2.49,8.2.36
भ्रष्टुम् 6.4.47,8.2.36
भ्राजयिष्णुना 3.2.138
भ्रातयति 6.4.161
भ्रातरौ1.2.68,7.3.110
भ्राता 7.1.94
भ्रातुष्पुत्रः 6.2.133
भ्रातुष्पुत्रः 8.3.48
भ्रातृकम् 4.3.78
भ्रातृवलः 5.2.112, 6.3.118
भ्रातृव्यः 4.1.144, 4.1.145
भ्रातृव्यः कण्ट 4.1.145
भ्रात्रीयः 4.1.144
भ्रामरम् 4.3.119
भ्राम्यति3.1.70,7.3.74
भ्राशते 3.1.70
भ्राश्यते 3.1.70
भ्राष्टकयः 2.4.69
भ्राष्टिः 8.2.36
भ्राष्ट्रजः 6.2.82
भ्राष्ट्रपक्वः 6.2.32
भ्राष्ट्रम् 1.1.7,3.4.3, 8.4.50,
भ्राष्ट्रमट 3.4.3
भ्राष्ट्रमट मठमट 3.4.1
भ्राष्ट्रमटत 3.4.3
भ्राष्ट्रमटति मठमटति 3.4.3
भ्राष्ट्रमिन्धः 6.3.70
भ्राष्ट्राः 4.2.16
भ्राष्ट्रापकर्षम् अपूपान् 3.4.52
भ्रुकुंसः 6.3.61
भ्रुकुटिः 6.3.61
भ्रुवः 6.4.77
भ्रुवम्मन्यः 6.3.68
भ्रुवाम् 1.4.5
भ्रुवे 1.4.6
भ्रुवै 1.4.6
भ्रुवौ 6.4.77
(हे) भ्रूः 1.4.4
भ्रूकुलम् 6.3.61
भ्रूणहनि 6.4.12
भ्रूणहा 3.2.87,6.1.67
भ्रूणहायते 6.4.12
भ्रूणाम् 1.4.5
भ्रूविक्षेपं कथयति 3.4.54
भ्रेजाते 6.4.125
भ्रेजिरे 6.4.125
भ्रेजे 6.4.125
भ्रेमतुः 6.4.124
भ्रेमिथ 6.4.124
भ्रेमुः 6.4.124
भ्रेशाते 6.4.125
भ्रेशिरे 6.4.125
भ्रेशे 6.4.125
भ्रौणघ्नः 6.4.135, 6.4.174
भ्रौणहत्यम् 6.4.174
भ्रौवेयः 4.1.125
भ्वर्धम् 1.4.13
भ्लाशते 3.1.70
भ्लाश्यते 3.1.70
भ्लेशाते 6.4.125
भ्लेशिरे 6.4.125
भ्लेशे 6.4.125

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

म

मकरी 6.1.154
मकरो ग्राह 6.1.154
मक्षिका 4.1.63
मक्षिकालः 5.2.97
मक्षू 6.3.133
मगधाः 1.2.51,2.4.62, 4.2.31
मग्नः 1.1.47,7.1.60, 8.2.29
मग्नवान् 7.1.60,1.1.47
मघवतः 6.4.128, 6.4.133
मघवता 6.4.128, 6.4.133
मघवती 6.4.128
मघवते 6.4.133
मघवन्तः 6.4.128
मघवन्तम् 6.4.128
मघवन्तौ 6.4.128
मघवभिः 6.4.128
मघवभ्याम् 6.4.128
मघवा 6.4.128
मघवान् 6.4.128
मघवानः 6.4.128
मघवानम् 5.2.109
मघवानौ 6.4.128
मघाभिः 2.3.45
मघासु ग्रहः 2.3.45
मघासु पललौ 2.3.45
मधीप्रस्थः 6.2.87
मघोनः 6.4.128, 6.4.133
मघोना 6.4.128, 6.4.133
मघोनी 6.4.128
मघोने 6.4.133
मङ्क्तव्यम् 7.1.60
मङ्क्ता 1.1.47,7.1.60
मङ्क्तुम् 1.1.47,7.1.60
मज्जति 8.4.40
मज्जनम् 7.1.60
मज्जिष्ठः 8.3.97
मडरकन्थम् 6.2.125
मडुरकन्थम् 6.2.125
मणि 6.3.120
मणिकः 5.4.29
मणिकर्णः 6.3.115
मणिकर्णः 6.2.113
मणिका 3.3.110
मणिपुच्छी 4.1.55
मणिप्रस्तारः 3.3.32
मणिवः 5.2.109
मण्डनः 3.2.151
मण्डना 7.3.44
मण्डयन्तः 6.4.55
मण्डूकसरसम् 5.4.94
मत् 7.1.32, 7.2.90,7.2.97
मतः 6.4.37
मतवान् 6.4.37
मतिः 3.3.93,3.3.96
मतित्रैधा 5.3.45
मतिद्वैधा 5.3.45
मती 1.1.19,7.1.39
मत्कपितृकः 1.1.29
मत्तः 8.2.57
मत्तरः 7.2.98
मत्तवान् 8.2.57
मत्पुत्रः 7.2.98
मत्प्रधानाः 7.2.98
मत्यम् 4.4.97
मत्या 1.1.19,3.3.99
मत्वर्थीयः 3.3.108
मत्सी 4.1.41,4.1.63, 6.4.149
मत्स्यः 5.3.100
मत्स्यचरी 6.4.149
मत्स्यचूर्णम् 6.2.134
मत्स्याः 1.2.51,4.2.81
मथः 7.1.88
मथः पश्य 6.1.199
मथा 7.1.88
मथितम् 1.1.68
मथुरापाटलिपुत्रम् 2.4.7
मथुरावत् 5.1.116
मथे 7.1.88
मदनः 3.1.134
मदीयः 4.3.3,7.2.98
मदीयम् 1.1.74
मद् गच्छति 7.2.89
मद्गुः 7.3.53
मद्धितम् 7.2.98
मद्ध्वत्र 1.1.58, 6.1.77,8.4.47
मद्यति 7.2.98
मद्यते 7.2.98
मद्यम् 3.1.100
मद्रं देवदत्तस्य 2.3.73
मद्रं देवदत्ताय 2.3.73
मद्रकः 4.2.131, 4.3.100
मद्रकारः 3.2.44
मद्रकेकयाः 2.4.7
मद्रङ्करः 3.2.44
मद्रचरः 3.2.16,6.3.14
मद्रचरी 1.3.7,3.2.16, 4.1.14,4.1.15
मद्रबाहुकः 5.3.78
मद्रराजः 5.4.91
मद्रराज्ञी 5.4.91
मद्रवाणिज 6.2.13
मद्रसंदेश 6.2.23
मद्रसंनीड 6.2.23
मद्रसंमर्या 6.2.23
मद्रसंविध 6.2.23
मद्रसवेश 6.2.23
मद्रह्रदः 0.0.5
मद्राणां राजन् 2.1.2
मद्रार्मम् 6.2.91
मद्राश्मार्मम् 6.2.91
मद्रिकाकल्पा 6.3.37
मद्रिकाभार्यः 6.3.37
मद्रिकामानिनी 6.3.37
मद्रिकायते 6.3.37
मद्री 4.1.177
मध्यः 4.4.128, 4.4.129
मध्व्या 4.4.129
मध्व्यान् 4.4.139
मध्व्यो मासः 4.4.128
मधु 1.2.27,1.4.110, 8.4.57,8.3.111
मधु अत्र 6.1.127
मधुः 4.4.129
मधुँ 1.4.110,8.4.57
मधुग् 8.2.3
मधुड् 8.2.3
मधुतिष्ठति 7.1.23
मधुदत्तम् 7.4.47
मधुन ईष्टे 2.3.52
मधुनि विश 1.3.17
मधुनी 7.1.19
मधुनो जानीते 1.3.45
मधुनो अपि स्यात् 1.4.96
मधुनो जानीते 2.3.51
मधुनो ज्ञानम् 2.2.10
मधुनो नाथते 2.3.55
मधु पश्य 7.1.23
मधुमता 4.4.128
मधुमान् 4.2.86
मधुमैरेयः 6.2.70
मधुरः 5.2.107
मधुरा 4.1.14
मधुरा वाग् 5.4.35
मधुराहार 3.3.19
मधुलिट् तरति 8.4.42
मधुलिट् त् साये 8.3.29
मधुलिट् साये 8.3.29
मधुश्च्युत 8.2.3
मधुष्ठानम् 8.3.106
मधुसर्पिषी 2.2.31, 2.4.14
मधुसात् 8.3.111
मधु सिञ्चति 8.3.65
मधुसूदनः 3.1.134, 3.2.153
मधुस्थान 8.3.104
मधुस्यति 7.1.51
मधुस्यात् 8.3.87
मधूः 4.1.71
मधूचः 6.1.222
मधूचः 6.3.138, 6.4.138
मधूचा 6.3.138, 6.4.138
मधूचां 6.1.222
मधूचें 6.1.222
मधूचे 6.3.138,6.4.138
मधूदके 6.1.101
मधूनि 1.1.42,7.1.20
मध्यं काष्ठं 4.3.9
मध्यतः 5.4.44
मध्यपुरुषः 2.1.58
मध्यमः 4.3.8
मध्यमपुरुषः 2.1.58
मध्यमभार्यः 6.3.39
मध्यमा 4.1.4,4.2.138
मध्यमीय 4.2.138, 4.3.60
मध्यरात्रः 2.2.1
मध्या 4.3.9
मध्या स्त्री 4.3.9
मध्याह्नः 2.4.29,2.2.1, 6.3.110
मध्यीयः 4.3.60
मध्ये कृत्य 1.4.76
मध्ये कृत्वा 1.4.76
मध्येगङ्गम् 2.1.18
मध्येगुरुः 6.3.11
मध्यो वैया 4.3.9
मध्वत्र 1.4.109, 6.1.72,6.1.77, 6.1.109,6.1.127, 8.2.23,8.4.47

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मध्वस्यति 7.1.51
मध्विदम् 1.1.64
मनति 7.3.78
मनसागुप्ता 6.3.4
मनसाऽऽज्ञायी 6.3.5
मनसादत्ता 6.3.4
मनसा पाटलिपुत्रं 2.3.12
मनसासङ्गता 6.3.4
मनसिकृत्य 1.4.75
मनसि कृत्वा 1.4.75
मनाक् 1.1.37
मनायी 4.1.38
मनावी 4.1.38
मनिता 7.2.10
मनुः 4.1.38
मनुषी 4.1.63
मनुष्यः 4.1.161
मनुष्यच्छन्द 5.4.103
मनुष्यत्रा 5.4.56
मनुष्यनाथः 6.2.1
मनुष्यहितम् 6.2.45
मनुष्याणां क्षत्रियः 2.3.41
मनुष्येषु क्षत्रिय 2.3.41
मनुष्वत् 1.4.18
मनोगुप्ता 6.3.4
मनोदत्ता 6.3.4
मनोहत्य 1.4.66
मनो हत्वा 1.4.66
मन्ता 3.1.33,7.2.10
मन्तिः 3.3.174
मन्त्र 8.2.62
मन्त्रः 6.1.203
मन्त्रकारः 3.2.23
मन्त्रकृत् 3.2.89
मन्त्रयैते 3.4.95
मन्त्रयैथे 3.4.95,3.4.96
मन्त्रस्पृक् 3.2.58, 8.2.62
मन्त्री 3.1.134
मन्थः 6.1.160
मन्थरैषणाः 2.4.66
मन्थाः 6.1.199
मन्थाः 7.1.85,7.1.86, 7.1.87
मन्थानः 6.1.199
मन्थानः 7.1.86,7.1.87
मन्थानम् 7.1.86, 7.1.87
मन्थानौ 7.1.86,7.1.87
मन्थानौ 6.1.199
मन्दिषत् 3.1.34, 3.4.7,3.4.94,3.4.97
मन्दुरजः 1.3.7, 3.1.92,3.2.97, 6.4.143
मन्दुरंजः 6.2.83
मन्द्रः 1.1.7
मन्त्राथः 7.2.98
मन्या 3.3.99
मन्युं विन 1.3.37
मन्ये काष्ठमूलूखलम् 2.3.17
मम 6.1.211
मम 7.1.27, 7.2.90,7.2.96
ममगेहम् एष्यसि 8.1.41
ममङ्क्थ 7.1.60
ममज्जिथ 7.1.60
ममत्तु 6.1.192
मम पर्याय 3.3.38
मम विशाय 3.3.39
मम स्वम् 6.1.211
मम्ले 1.1.59, 3.4.115,,6.1.45
मम्लौ 7.1.34,7.4.60
मयका 1.1.30,5.3.71
मयकि 5.3.71
मया 7.2.89,7.2.91, 7.2.97
मयि 7.2.89
मयि तिष्ठ 7.2.97
मयूरः 6.3.109
मयूरव्यंसकः 2.1.72
मयूरस्य नृत्तम् 2.3.67
मयूरिका बन्धम् 3.4.42
मयूरीकुक्कुटौ 2.4.26
मरति 3.1.85
मरिष्यति 1.3.61
मरीमृजः 1.1.4
मरुत्तः 1.4.59, 5.2.122
मरुत्वः 8.3.1
मरुत्वतीयम् 4.2.32
मरुत्वत्यम् 4.2.32
मरुत्वान् 8.2.10
मरुद्वृद्धः 6.2.199
मर्कः 8.4.51
मर्क्कः 8.4.46
मर्जिता 7.2.10
मर्त्यः 5.4.25
मर्त्यत्रा 5.4.56
(कण्टकानां) मर्दनम् 3.3.116
मर्मावित् 6.3.116
मर्मावी 5.2.122
मर्मृज्य 7.4.65
मर्मृज्यते 7.4.91
मर्मृज्यमानासः 7.4.91
मर्मृत्युः 6.2.140
मर्यः 3.1.123
मर्षितः 1.2.20
मर्षितवान् 1.2.20
मर्षित्वा 1.2.25
मलिनः 5.2.114
मलीमसः 5.2.114
मल्लग्रामः 6.2.84
मल्लवास्तु 4.2.120
मल्लाः 5.3.114
मल्लिका 4.3.166
मव्यिता 6.4.49
मशकावती 4.2.85
मशकावती 6.3.119
मस् 1.4.99
मसूरचूर्णम् 6.2.134
मस्करः 6.1.154
मस्करी 6.1.154
मस्करो 6.1.154
मस्तकशि 6.3.12
मुहुता 6.1.173
मुहूती 6.1.173
महत्पुत्रः 6.3.46
महन् 6.4.10
महाँ असि 8.3.3
महाँ इन्द्रः 8.3.3
महां इन्द्रो 8.3.9
महाकरः 6.3.46
महाकुलः 4.1.141
महाकुलीनः 4.1.140
महागृष्टिः 6.2.38
महागोमयनिकायः 3.3.41
महाघासः 6.3.46
महाजनीयम् 5.1.9
महाजातीयः 6.3.46
महाजाबालः 6.2.38
महाजिनः 6.2.165
महादेवः 6.3.46
महाधुरा 5.4.74
महान् 6.4.10,8.4.43
महानुगुरम् 6.2.89
महानसम् 5.4.94
महानामिकः 5.1.94
महान्तः 6.4.10
महान्तौ 6.4.10
महान् त् साये 8.3.30
महान् साये 8.3.30
महापराह्णः 6.2.38
महापुरुषः 2.1.61
महाप्रवृद्धः 6.2.38
महाबलः 6.3.46
महाबाहुः 6.3.46
महाब्रह्मः 5.4.105
महाब्रह्मा 5.4.105
महाब्राह्मणः 6.2.69, 6.3.46
महाभारः 6.2.38
महाभारत 6.2.38
महामात्रान् 1.3.25
महामात्री 4.1.48
महामुखः 6.2.168
महाराजः 5.4.91
महाराजबलिः 2.1.35
महाराजहतः 6.2.48
महारौरवः 6.2.38
महार्हम् 6.2.90
महाललाटा 4.1.56
महालूं लु 8.4.60
महावार्त्तिकः 4.2.65
महाविशिष्टः 6.3.46
महावैश्वदेवम् 6.2.38
महाव्रीहिः 6.2.38
महाशूद्री 4.1.4
महाहलिहिलः 6.2.38
महिषः 1.3.6
महिषी 4.4.48
महिषीगोष्ठम् 5.2.29
महिष्मान् 4.2.87
महीघ्र 3.2.5
महेन्द्रियं हविः 4.2.29
महेन्द्रीयम् 4.2.29
महेषुः 6.2.107
महेष्वासः 6.2.38
महोक्षः 5.4.77
महोधाः पर्जन्यः 5.4.131
महोधाः 4.1.25
मह्यम् 7.1.28,7.2.90, 7.2.95
मह्यम् 6.1.212
मा अभित्थाः 6.4.75
मा अवाप्सुः 6.4.75
मा आवः 6.4.75
मां परि स्याद् 1.4.90
मांस् 6.1.63
मांसकामः 3.2.1
मांसकामा 3.2.1
मांसपचन 6.1.145

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मांसपाकः 6.1.145, 7.3.53
मांसभक्षः 3.2.1
मांसभक्षा 3.2.1
मांसशीलः 3.2.1
मांसशीलाः 3.2.1
मांसशोणित 2.4.11
मांसि 7.1.72
मांस्पचन 6.1.145
मांस्पाकः 6.1.145
माकन्दकः 4.2.123
माकन्दी 4.2.76
मा कार्षीः 3.4.18
माक्षिकम् 4.3.117
मागधः 4.1.168, 4.1.170,4.1.178
मागधी 4.1.178
माघम् अहः 4.2.3
माघवतम् 6.4.128
माघवनः 6.4.133
माघवनम् 6.4.128
माघी रात्रिः 4.2.3
माच्छिदत् 6.1.74
माच्छैत्सीत् 6.1.74
माञ्जिष्ठेन 4.2.1
माण्डुकः 4.4.56
माण्डुकिकः 4.4.56
माणवक 1.2.40
माणवकं गमयति 1.4.52
माणवकं धर्मं 1.4.51
माणवकं पन्थानं 1.4.51
माणवकं भवान् 3.3.162
माणवकं यापयति 1.4.52
माणवकजटिलक 8.1.74
माणवकजटिलका 8.1.73
माणवकजटिलकाध्यापक 1.2.40
माणवकम् उदानयते 1.3.36
माणवकम् उप 2.4.55
माणवकम् उपनयते 1.3.36
माणवकस्तु 8.1.39
माणवक3 8.1.8, 8.2.103,
माणवकाय ददाति 1.4.32,2.3.13
माणवकाय पुरो 2.3.61
माणवीनम् 5.1.11
माणव्यम् 4.2.42, 5.1.124
माणिचरी 4.2.76
माण्डवपुरम् 4.2.109
माण्डव्यः 6.1.79, 6.4.146
माण्डूकः 4.1.119
माण्डूकम् 4.3.137
माण्डूकायनी 4.1.19
माण्डूकिः 4.1.119
माण्डूकेयः 4.1.119
(हे) मातः 7.1.94
मातयति 6.4.161
मातरं प्रति 2.2.18
मातरं परि 1.4.90
मातरं सञ्जानीते 2.3.22
मातरं स्मरति 2.3.52
मातरः 6.4.11
मातरपितरौ 6.3.32
मातरमनु 1.4.90
मातरमभि 1.4.91
मातरम् प्रति 1.4.90
मातरापितरौ 6.3.33
मातरि 7.3.110
मातरि निपुणः 2.3.43
मातरिपुरुष 2.1.48
मातरिश्वकः 5.2.62
मातरि साधुः 2.3.43
मातरौ6.4.11,7.3.110
माता 4.1.10,7.1.94
मातापितरौ 1.1.53, 1.2.70,2.2.34, 6.3.25,6.3.32, 6.3.33
मातापुत्रौ 6.3.25
मातामहः 4.2.36
मातामहक 4.3.77
मातामही 4.2.36
मातुः 8.2.24
मातुःष्वसा 6.3.24, 8.3.85
मातुःस्वसा 6.3.24, 8.3.85
मातुः स्मरति 2.3.52
मातुरध्येति 2.3.52
मातुरनुहर 1.3.21
मातुर्गुणैः स्मरति 2.3.52
मातुलः 4.2.36
मातुलकः 4.3.77
मातुलघाती 3.2.86
मातुलपुत्रः 6.3.23
मातुलानी 4.1.49
मातुलाश्वः 6.2.65
मातुली 4.1.49
मातुष्ष्वसा 8.2.3
मातृकम् 4.3.78, 7.3.51
मातृकल्पिकः 4.2.60
मातृघातः 3.2.88
मातृनिवातम् 6.2.8
मातृपोषम् 3.4.40
मातृप्रतिरूप 6.2.11
मातृभोगीणः 5.1.9, 8.4.3
मातृष्वसा 6.3.24, 8.3.84
मातृष्वसेयः 4.1.134
मातृष्वस्रीयः 4.1.134
मातृसदृशः 2.1.31
मातृसमः 2.1.31
मातृस्थानः 5.4.10
मातृस्थानीय 5.4.10
मातृहा 3.2.88
मातॄणाम् 7.1.100, 8.4.1
मात्यम् 4.1.85
मात्रर्थम् 6.2.44
मात्रा सञ्जीनीते 2.3.22
मात्रीभूतः 7.4.27
मात्रीयः 5.1.9
मात्रीयति 7.4.27
मात्रीयते 7.4.27
मात्रे 1.4.3
मात्स्यम् 6.4.149
मात्स्यिकः 1.1.58, 4.4.35
माथितिकः 7.3.50
माथुरः4.3.25,4.3.38, 4.3.39,4.3.41, 4.3.53,4.3.74, 4.3.85,4.3.89, 4.3.90,4.3.95
माथुरम् 4.2.109, 4.3.85
माथुराः पाटलिपुत्रेभ्यः 2.3.42,5.3.57
माथुरीपाशा 6.3.39
माथुरीमानिनी 6.3.39
माथुरीयते 6.3.39
माथुरी वृत्ति 4.3.100, 4.3.108
मादयध्यै 3.4.9
मादायनिः 1.1.74
मान्द्रिः 7.4.48
माद्यति 7.3.74
माद्रः 4.3.100
माद्रकारिः 4.1.173
माद्रनगरः 7.3.24
माद्रबाहेयः 6.4.147
माद्रिणः 6.4.166
माद्रीप्रस्थः 4.2.110
माधवः 4.1.106, 4.4.129
माधव्यः 4.1.106
माधुरीभार्यः 6.3.38
माधूकम् 4.3.137
माधूचः 6.1.222
माध्यन्दिनम् 4.3.60
माध्यमकीय 4.2.138
माध्यमम् 4.3.60
माध्यमाः 4.2.138
माध्वश्चिः 7.3.3
माध्वीः 6.4.175
मानयति 3.1.6
मानवी 4.1.105, 4.1.161
मानुष्यः 4.1.161
मानुष्यकम् 4.2.39, 6.4.162
मानोज्ञकम् 5.1.133
मानोन्मानिका 2.1.60
मान्थरैषणिः 2.4.60
मान्थविका 4.2.117
मान्थविकी 4.2.117
मापचन् 3.2.124
मापचमानः 3.2.124
मा भवान् अटीत् 7.2.2
मा भवान् अशीत् 7.2.2
माम् 7.1.28,7.2.87, 7.2.97
माम् अनु स्याद् 1.4.90
मामकः 4.3.3
मामकी 4.1.30
मामहानः 6.1.7
मामिका4.1.30,7.3.44
मायावान् 5.2.116, 5.2.121
मायावी 5.2.121
मायिकः 5.2.116, 5.2.121
मायी5.2.116,5.2.121
मायुः 3.3.1
मायूरः 4.3.135
मायूरम् 4.2.44, 4.3.154

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मायूरिकः 4.4.35
मारिचिकम् 4.4.3, 4.4.22
मारीचः 4.1.122
मारुतम् 5.4.25
मारुतीः 6.1.106
मारुत्यः 6.1.106
मार्गं गच्छति 2.3.12
मार्गः 3.3.121
मार्गशीर्षः 4.3.37
मार्गिकः 4.4.35
मार्जारमूषकम् 2.4.9
मार्त्तिकः 4.3.134
मार्दङ्गिकः 4.4.55
मार्दङ्गिकपाणविकम् 2.4.2
मार्दङ्गिकाश्चारोहौ 2.4.2
मार्दवम् 5.1.120, 5.1.122
मार्दे॒यपुरम् 6.2.101
मार्ष्टव्यम् 7.2.114, 8.2.36
मार्ष्टा 7.2.10, 7.2.114, 8.2.36
मार्ष्टुम् 7.2.114, 8.2.36
माल ऋश्य 6.1.128
मालभारिणी कन्या 6.3.65
मालया 7.3.105
मालयोः 7.3.105
मालर्च्छति 6.1.91
मालवकः 4.2.53
मालवाः 5.3.114
मालवी 5.3.114
मालव्यः 5.3.114
मालव्यौ 5.3.114
मालाः 6.4.140
मालातरा 4.1.1
मालानाम् 7.1.54
मालापदी 5.4.139
मालापादः 6.3.61
माला॑प्रस्थः 6.2.88, 4.2.122
मालाभिः 1.1.69, 7.1.9
मालार्हा 3.2.12
मालावतम् 4.2.72
मालावान् 8.2.9
माली 5.2.116
मालीयः 1.1.1
मालीयः 1.1.73
मालीयति 7.4.33
माले इति 1.1.11, 6.1.125
मालेन्द्रः 6.1.84, 6.1.87
माल्लवास्तवः 4.2.120
माल्लिकः 4.2.14
मावत 5.2.39
माशब्दिकः 4.4.1
माषकः 5.4.3
माषकुम्भवापेन 8.4.38
माषवापाणि 8.2.3, 8.4.11
माषवापानि 8.4.11
माषवापिणौ 8.4.11
माषवापेण 8.4.11
माषवापेन 8.4.11
माषविकलम् 2.1.31
मा॒षवि॒कलम् 6.2.152
माषशः 5.4.43
माषाः 1.2.64, 4.3.166
माषानस्मै 1.4.92
माषिकम् 5.1.19, 5.1.37
माषीणम् 5.2.4
माषेष्वश्वं वध्नाति 1.4.49
माषोनम् 2.1.31
मा॒षो॒नम् 6.2.152
माष्यम् 5.1.7, 5.2.4
मासं कल्याणी 2.3.5
मासं गुडधाना 2.3.5
मासजातः 2.2.5
मा॒सजा॒तः 6.2.170, 6.2.171
मासंजातः 6.2.171
मासजाता 2.2.36, 4.1.52
मासतमः 5.2.57
मासदेयम् 2.1.43
मासपूर्वः 2.1.31
मासपूर्वाय 1.1.30
मासप्रमितः 2.1.28
मासमधीतः 2.3.6
मासमधीते 2.3.5
मासस्य द्विरधीते 2.3.5
मासावरः 2.1.31
मासि 6.1.63
मासिकः 4.3.11, 5.1.80, 5.1.93,
मासिकम् 4.2.34, 4.3.47, 5.1.78, 5.1.81, 5.1.96
मासूरः 4.3.136
मासे देया भिक्षा 2.1.43
मासेन कृ॒र्त्तारः 8.1.29
मासेनाऽनुवाकोऽधीतः 2.3.6
मासौदनिकः 4.4.67
मा स्म करोत् 3.3.176
मा स्म कार्षीत् 3.3.176
मा स्म हरत् 3.3.176
मा स्म हार्षीत् 3.3.176
मास्य 5.1.81
माहकाः 4.2.112, 4.3.130
माहकिकूल 6.2.129
मा॒हु॒कि॒ग्रामः 6.2.84
मा॒हु॒कि॒प्रस्थः 6.2.87
मा॒हु॒कि॒स्थली 6.2.129
माहकीप्रस्थः 4.2.110
माहाकुलः 4.1.140
माहाकुलीनः 4.1.140
माहाजनिकम् 5.1.9
माहानामिक 5.1.94
माहारजनम् 4.2.2
माहाराजिक 4.3.97
माहाराजिकम् 4.2.35
मा हि कार्षम् 6.1.187
मा हि कार्ष्टाम् 6.1.187
मा हि का॒र्ष्टाम् 6.1.187
माहिकिकः 4.2.132
माहिकिकन्थी 4.2.142
माहिकिग्रामी 4.2.142
माहिकिनग 4.2.142
माहिकिपलदी 4.2.142
माहिकिह्रदी 4.2.142
माहि चीकरतां॑म् 6.1.218
माहित्थम् 4.3.140
मा हि दधत् 6.1.218
मा हि धुक्षा 6.1.161
मा हि लाविषम् 6.1.187
मा हि लाविष्टाम् 6.1.187
मा॒हि॒ष॒कु॒पुत्रः 6.2.132
माहिषम् 4.4.48
माहिषिकः 4.2.132
माहिस्म दधात् 6.1.190
माहेन्द्रम् 4.2.29
माहेयम् 4.2.97
मा ह्वार मित्रस्य 2.4.80
मितः 7.4.40
मितङ्गमः 3.2.38
मितङ्गमा 3.2.38
मितद्रुः 3.2.180
मितम्पचा (ब्राह्मणी) 3.2.34
मितवान् 7.4.40
मित्रद्विट् 3.2.61
मित्रधेयम् 5.4.25
मित्रध्रुक् 3.2.61, 8.2.33
मित्रध्रुट् 8.2.33
मित्रमहो अव 6.1.116
मित्रयुः 3.2.170, 7.4.35
मित्रशीः 6.4.34
मित्रशीः 6.4.34
मित्रावरुणीयम् 5.1.135, 5.2.59
मित्रीयिता 3.2.170
मित्सति 7.4.54
मित्सते 7.4.54
मिथ्याकृत्य 1.4.74
मिथ्याकृत्वा 1.4.74
मिधते 7.3.82
मिनाति 7.3.80
मित्रः 1.3.5, 3.2.187, 7.2.16
मित्रवान् 7.2.15
मिप् 1.4.99
मिमताम् 6.4.112
मिमते 6.4.112, 6.4.113
मिमाते 7.2.81,
मिमीते 6.4.113, 7.4.76
मिर्मीते 6.1.190
मिमीध्वे 6.4.113
मिमीषे 6.4.113
मिरिकावनम् 8.4.6
मिश्रक 6.3.117
मिश्रकावणम् 6.3.117, 8.4.4
मिश्रयति 3.1.21
मीढम् 6.3.111
मीढ्वः 8.3.1
मीढ्वान् 6.1.12
मीनः 8.2.45
मीनवान् 8.2.45
मीमांसकः 4.2.61
मीमांसकदुर्दरुढः 2.1.53
मीमांसते 1.3.62, 3.1.6, 7.4.83
मीमांसनः 3.2.149
मीमांसिषते 3.1.7
मीमाय 6.1.7

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मीयते 6.4.66
मुकयी 4.1.63
मुकुटे कार्षापणम् 6.2.64
मुकुलितः 5.2.36
मुक्तये हरिं 2.3.13
मुखकमल 2.1.56
मुखकामः 6.3.12
मुखतः कारं गतः 3.4.61
मुखतः कृत्य गतः 3.4.61
मुखतः कृत्वा 3.4.61
मुखतः कृत्वा गतः 3.4.61
मुखतीयम् 4.2.138, 4.3.60
मुखतो भावं 3.4.61
मुखतो भूत्वा 3.4.61
मुखतो भूय तिष्ठति 3.4.61
मुखपद्म 2.1.56
मुखरः 5.2.107
मुखीकृत्य 3.1.61
मुखीभूय 3.4.61
मुख्यः 5.3.103
मुञ्चति 1.1.47,7.1.59
मुञ्जेषीकतूलम् 6.3.65
मुण्डयति 3.1.21
(कतीह) मुण्डयमानाः 3.2.128
मुण्डयितारः 3.2.135
मुण्डा 4.1.63
मुण्डाकरोति 5.4.67
मुण्डिका 7.3.44
मुदितम् 8.2.42,1.2.21
मुद्गचूर्णम् 6.2.134
मुद्गलानी 4.1.49
मुद्गशाकम् 6.2.128
मुद्गसूपः 6.2.135
मुद्गाः 4.3.166
मुद्राः करं 1.3.36
मुनि 6.3.120
मुनिपदी 5.4.139
मुनीवती 8.2.11
मुनीवती 6.1.221
मुनीवहम् 6.3.121
मुमुक्षति 7.4.57
मुमुक्षते 7.4.57
मुमुषिषति 1.2.8
मुमूर्षति 1.3.62,3.1.7 7.1.102
मुरः 6.4.21
मुरौ 6.4.21
मुवः 6.4.20
मुवौ 6.4.20
मुषाण 3.1.83
मुषित्वा 1.2.8
मुषिरम् 5.2.107
मुष्करः 5.2.107
मुष्टलुञ्चितम् 2.2.31
मुष्टिन्धमः 3.2.30
मुष्टिन्धयः 3.2.30
मुष्टिबन्धम् 3.4.41
मुष्टिमुखः 6.2.168
मुष्णाति 3.1.83,8.4.1
मुसलामु 2.2.27
मुसलामुस 2.1.17
मुसलामुसलि 5.4.127
मुहुश्चस्कामा 8.3.41
मुहूर्त्तप्रहसितः 6.2.61
मुहूर्त्तरमणीयम् 6.2.2
मुहूर्त्तसुखम् 2.1.29
मुहूर्त्तसुखम् 6.2.2
मूः 6.4.20,6.4.21
मूढः 6.3.111
मूतः 6.4.20
मूतवान् 6.4.20
मूतिः 6.4.20
मूत्रकृच्छ्रम् 6.2.6
मूत्रपदेन 6.2.7
मूत्रपुरीष 2.4.11
मूत्रम् 8.4.52
मूत्रशकृत् 2.4.11
मूत्राय कल्पते 2.3.13
मूत्राय जायते 2.3.13
मूत्राय सम्पद्यते 2.3.13
मूरम् 8.2.18
मूर्खभ्रातृकः 5.4.157
मूर्खेण 8.4.2
मूर्च्छालः 5.2.97
मूर्छिता 8.2.78
मूर्त्तः 6.4.21,8.2.57
मूर्त्तवान् 6.4.21,8.2.57
मूर्त्तिः 6.4.21
मूर्द्धशिखः 6.3.12
मूर्धन्वती 8.2.16
मूर्धन्वत्यः 4.4.126
मूर्धावणम् 8.4.6
मूर्वामय 4.3.143
मूर्वावणम् 8.4.6
मूर्वावनम् 8.4.6
मूलकः 4.3.28
मूलकपणः 3.3.66
मूलकशाकम् 6.2.135
मूलकशाकटम् 5.2.29
मूलकशाकिनम् 5.2.29
मूलकसूपः 6.2.128
मूलकोपदंशं भुङ्क्ते 2.2.20,3.4.47
मूलम् 8.2.18
मूलविभुजः 3.2.5
मूलवृट् 8.2.36
मूलशाटक 5.2.29
मूलशाकिन 5.2.29
मूले 8.1.12
मूल्यः 4.4.91
मूल्यम् 4.4.91
मूल्याः 4.4.88
मूषिकका 7.3.45
मूषिकदन् 5.4.145
मूषिकदन्तः 5.4.145
मूषिका 4.1.4
मूषिकाबिलपूरम् 3.4.32
मूषिकाबिलप्रम् 3.4.32
मूषिकिका 7.3.45
मृगक्षीरम् 6.3.42
मृगनेत्रा 5.4.116
मृगपदम् 6.3.42
मृगया 3.3.101
मृगशिराः 4.3.37
मृगसक्थम् 5.4.98
मृजन्ति 1.1.5
मृजा 3.3.104
मृडानी 4.1.49
मृडित्वा 1.2.7
मृणाति 7.3.80
मृण्मय 4.3.144
मृत्तिका 5.4.39
मृतिस्ते 3.3.112
मृत्कुण्डम् 6.2.136
मृत्युः 7.1.1
मृत्स्ना 5.4.40
मृदित्वा 1.2.7
मृदुः 4.1.44
मृदुकल्पः 5.3.67
मृदुका 7.3.44
मृदुगुप्तौ 2.2.32
मृदुजातीयः 5.3.69, 8.1.12
मृदुजातीयः 6.1.217
मृदुता 5.1.120, 5.1.122
मृदुत्वम् 5.1.120, 5.1.122
मृदुदेशीयः 5.3.67
मृदुदेश्यः 5.3.67
मृदुपचति 2.4.18
मृदुमृदुः 8.1.12
मृदुमृद्वी 8.1.11
मृगुद्याञ्चकार 3.1.8
मृद्वङ्गा 4.1.54
मृद्वङ्गी 4.1.54
मृद्विका 6.3.42
मृद्वी 4.1.44
मृषित्वा 1.2.25
मृषीष्ट 1.3.61
मृषोद्यम् 3.1.114
मृष्टः 1.1.5,1.1.63
मृष्टलुञ्चि 2.2.31
मृष्टवान् 1.1.5
मृस्सा 5.4.40
मे इति 1.1.13
मेखलावी 5.2.122
मेखली 5.2.116
मेघः 7.3.53
मेघङ्करः 3.2.43
मेघायते 3.1.17
मेढा 7.2.10
मेढ्रम् 3.2.182
मेदस्पिण्डः 8.3.48
मेदितम् अनेन् 7.2.17
मेदुरः 3.2.161
मेदुरम् 6.1.163
मेद्यतः 7.3.82
मेद्यति 7.3.82
मेद्यते 1.1.3
मेद्यन्ति 7.3.82
मेधा 3.3.104
मेधातपसी 2.4.14
मेधातिथेर्मेष 1.2.37
मेधायते 3.1.17
मेधावान् 5.2.121
मेधावी 5.2.121
मेधिरः 5.2.109
मेध्याय 4.4.110
मेनका 6.4.120
मेमीयते 6.4.66
मेयात् 6.4.67
मे रायः 1.1.13
मेरुदुहिता 6.3.70
मेरुदृश्वा 3.2.94
मेरुपुत्री 6.3.70
मेषः 3.3.19
मेषशृङ्गः 6.2.115
मैत्रः 5.4.36
मैत्रेयः 6.4.174
मैत्रेयिकया श्लाघते 7.3.2

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मैनिकः 1.1.58,4.4.35
मैधावः 6.4.164
मैमतः 4.1.150
मैमतायनः 4.1.150
मैमतायनिः 4.1.150
मोक्तव्यम् 7.1.59
मोक्ता 7.1.59,7.2.10
मोक्तुम् 7.1.59
मोक्षते 7.4.57
मोग्धा 7.2.45
मोढा 7.2.45
मोदकमयः 5.4.22
मोदकमयम् 5.4.22
मोदितम् 1.2.21
मोमूत्र्यते 3.1.22
मोहिता 7.2.45
मौखर्या 4.1.79
मौञ्जम् 4.3.151
मौञ्जायनी 4.1.73
मौण्डिनिकायः 6.2.94
मौदकम् 4.3.126
मौदकिकः 4.4.61, 4.4.65,4.4.51
मौदकिकम् 5.4.22
मौदकिको यज्ञः 5.4.22
मौदपैप्पलादाः 6.2.37
मौदाः 4.2.66
मौद्गः 4.4.25, 4.3.136,4.3.143
मौद्गिकम् 5.1.37
मौद्गी 4.4.25
मौद्गीनम् 5.2.1
मौनचित्ती 4.1.65
मौनम् 5.1.131
मौनिचित्तिः 4.2.80
मौर्वम् 4.3.143, 4.3.135
मौष्टा 4.1.15,4.2.57
मौसलपाता 4.2.58
मौसुकीयम् 4.2.141
मौहूर्तः 4.2.59
म्रदयति 6.4.155
म्रदिमा 5.1.120, 5.1.122, 6.4.161
म्रदिष्ठः 6.4.161
म्रदीयान् 6.4.161
म्रियेते 1.3.61
म्रियन्ते 1.3.61
म्लानः 8.2.43
म्लानवान् 8.2.43
म्लानिः 3.3.93
म्लायति 6.1.45
म्लायात् 6.4.68
म्लेच्छः 6.1.160
म्लेच्छति 6.1.75
म्लेच्छितम् 7.2.18
म्लेयात् 6.4.68

य

य 7.3.101
यः 7.2.102
य एषको ददाति 6.1.132
यं भोजयति 8.1.66
यंयमीति 7.4.83, 7.4.85
यंयम्यते7.4.83,7.4.85
यकः 5.3.93
यका 7.3.45
यकृन्मेदः 2.4.11
यकृल्लोमन् 4.2.110
यको भवः 5.3.93
यक्नोऽवद्यति 6.1.63
यक्षत् 8.3.59
यक्षीध्वम् 8.3.78
यच्च तत्र भवान् 3.3.148,3.3.149, 3.3.150
यच्छति 6.1.73, 7.3.77,7.3.78
यच्छुक्ली० 1.4.61
यजन्ति6.1.97,7.2.81, 8.2.5
यजते 1.3.72
यजध्वम् 7.3.103
यजध्वैनम् 7.1.43
यजन्ति 6.1.97, 7.2.81,8.2.5
यजन्ति याजकाः 1.3.72
यजन्ते 7.2.81
यजमानः 7.2.82
यजन्तौ 8.1.16
यजमानः 3.2.128, 3.3.131, 3.4.113, 6.1.186
यजमाना 4.1.15
यजुः करोति 8.3.44
यजुःसु 8.3.58
यजुरुदित 1.3.49
यजुष्कम् 8.3.38
यजुष्करोति 8.3.44
यजुष्कल्पम् 8.3.39
यजुष्काम्यति 8.3.39
यजुष्टः 8.3.101
यजुष्टमम् 8.3.101
यजुष्टरम् 8.3.101
यजुष्टा 8.3.101
यजुष्ट्वम् 8.3.101
यजुष्पात्रम् 8.3.48
यजुष्पानम् 8.4.35
यजुष्पाशम् 8.3.39
यजुष्षु 8.3.58
यजुस्ते 8.3.39
यजूंषि 8.3.58
यजे 6.1.97
यजेताम् 7.2.81
यजेते 7.2.81
यजेथाम् 7.2.81
यजेथे 7.2.81
यजेय 3.4.106
यजेयुः 3.4.108
यजेरन् 3.4.105, 6.1.66
यज्ञः 3.3.90,8.4.40
यज्ञकः 5.3.83
यज्ञका 7.3.45
यज्ञदत्तः पुचुति 8.1.28
यज्ञदत्तकः 5.3.78, 5.3.79,5.3.83
यज्ञदत्तकाः 5.2.78, 5.3.112
यज्ञदत्तमय 4.3.82
यज्ञदत्तरूप्य 4.3.81
यज्ञदत्तवत् 5.1.116
यज्ञदत्ता 4.1.48
यज्ञदत्ताय द्रुह्यति 1.4.38
यज्ञदत्ता3 इदम् 6.1.125
यज्ञदत्तिका 7.3.45
यज्ञदत्तेन भुक्तम् 2.3.18
यज्ञदत्तोपक्रमो 2.4.21
यज्ञानाम् 6.4.23
यज्ञायज्ञीयम् 5.2.59
यज्ञिकः5.3.79,5.3.83
यज्ञियः5.1.71,5.3.79, 5.3.83
यज्ञियो देशः 5.1.71
यज्ञिलः5.3.79,5.3.83
यज्वा 3.2.103
यतः 1.1.38,5.3.1, 5.3.2,5.3.6,5.3.7, 6.3.35,6.4.37
यत् 7.1.39
यतमः 5.3.93
यतरः 5.3.92
यतवान् 6.4.37
यतिः 6.4.37
यत्करः 3.2.21
यत्करा 3.2.21
यत्करोति 8.1.30
यत्करोति 8.1.71
यत्कामास्ते जुहुमः8.1.66
यत्कारिका 1.4.60
यत्काष्ठं 8.1.57
यत्काष्ठं पचति 8.1.68
यत्काष्ठं प्रपचति 8.1.68
यत्कूजति शकटम्8.1.30
यत्खाट् 1.4.62
यत्तिरस्करोति 1.4.72
यत्तिरोभवति 1.4.71
यत्नः 3.3.90
यत्नानाम् 6.4.23
यत्पचति 8.1.30
यत्पटपटा 1.4.61
यत्परिमाण 5.2.39
यत् पुरस्करोति 1.4.67
यत्प्रकरोति 1.4.60, 8.1.71
यत्प्रथमः 6.2.162
यत्प्रपचति 8.1.71
यत्यम् 3.1.97
यत्र 1.1.38,5.3.2, 6.3.35
यत्र क्व च ते 8.1.30
यत्र तत्र भवान्3.3.148, 3.3.149,3.3.150
यत्रत्यः 4.2.104
यत्र यत्र भुङ्क्ते 8.1.30
यत्र शालायाम् 2.4.82
यत्र स्यो निप 6.1.133
यत्राऽधीते 8.1.30
यत्वा 6.4.37
यत् सत्करोति 1.4.63
यथा 5.3.23
यथा करोति 8.1.37
यथाकारम् अहं 3.4.28
यथा कृत्वाऽहं 3.4.28
यथा देवदत्तः 8.1.37
यथा देवदत्तस्तथा 2.1.7
यथाऽधीते 8.1.36
यथाऽध्यापकम् 2.1.7
यथापचति शोभनम् 8.1.37
यथाप्रकरोति चारु 8.1.38
यथा प्रपचति शोभनम् 8.1.38

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यथा भुङ्क्ते 8.1.36, 8.1.37
यथामुखीनः 5.2.6
यथायथम् 8.1.14
यथा विष्णुमित्रः 8.1.38
यथा वृद्धम् 2.1.7
यथाशक्ति 2.1.6
यद् 7.2.102
यद् अदः करोति 1.4.70
यदच्छगच्छति 1.4.69
यदच्छवदति 1.4.69
यदत्र 1.4.91
यदत्र मामधिकरिष्यति 1.4.98
यदधीते 6.1.186
यदन्तर्हन्ति 1.4.65
यदयं भुक्त्वा व्रजति 3.4.23
यदयं भुङ्क्ते ततः 3.4.23
यदयमधीते ततः 3.4.23
यदलङ्करो 1.4.64
यदलङ्करोति 1.4.64
यदसत् करोति 1.4.63
यदस्तङ्गच्छति 1.4.68
यदा 5.3.21,1.1.38
यदा भवद्विधः 3.3.147
यदि कमलकमा 3.3.138
यदि करोति 8.1.30
यदि पचति 8.1.30
यदिष्ठन 7.1.45
यदुल्लवते 3.2.126
यद् ऊरीकरोति 1.4.61, 2.2.18
यद् दारुणं पचति 8.1.68
यद् दारुणं प्रपचति 8.1.68
यद्र्यङ् 6.3.92
यद्र्यङ् वायुर्वाति 8.1.66
यद्वायुः पवते 8.1.66
यन्तव्यम् 6.4.37
यन्ता 6.4.37,7.2.10
यन्तारौ 7.1.39
यन्तिः 6.4.39
यन्ति 6.4.81
यन्तु 6.4.81
यन्नाम तत्रभवान् 3.3.147
यन्निषीद० 3.2.126
यब्धा 7.2.10
यमः 3.3.63
यमसभीय 4.3.88
यमुनाया अनु 2.1.16
यम्यम् 3.1.100
ययतुः 6.4.46
ययाथ 6.1.116,7.2.61
ययिथ 7.2.63
ययिम 7.2.61
ययिव 7.2.61
ययिवान् 7.2.67
ययुः 6.4.46
ययुषः 6.4.131
ययेते 6.1.78
यर्हि 5.3.21
यल्ँ ल्ँ० 0.0.6,8.2.3
यवः 3.3.57
यवक्यम् 5.2.3
यवक्रियः 6.4.82
यवक्रियौ 6.4.82
यवनः 3.1.134, 4.1.175
यवनमुण्डः 2.1.72
यवनानी 4.1.49
यवपालः 6.2.78
यवबुसक 4.3.48
यवमय 4.3.149
यवमान् 5.2.94, 6.4.14,8.2.9, 8.2.23
यवयति 6.4.155
यवसुरम् 2.4.25
यवसुरा 2.4.25
यवाः 4.3.166
यवागूः 1.4.3
यवागूमग्निहोत्रं 2.3.3
यवागूमग्निहोत्रं 2.3.3
यवाग्वाऽग्निहोत्रं 2.3.3
यवान् 8.2.104
यवानां लावकः 2.3.70
यवानि 7.3.89
यवानी 4.1.49
यवापूपीयम् 5.1.19
यवापूप्यम् 5.1.19
यवासम् 4.3.141
यविकः 5.2.116
यविता 7.2.10
यविष्ठः 5.3.64, 6.4.156
यविष्ठ्यम् 5.4.25
यवीनान् 5.3.64
यवीयान् 6.4.156
यवेभ्यो गां 1.4.27
यवैर्यजेत 8.1.63
यव्यम् 5.1.7
यव्यम् 5.2.3
यशः 8.2.23
यशःकरोति 8.3.45
यशःकामयते 8.3.45
यशःसु 8.3.16
यशस्कम् 8.3.37
यशस्करी 3.2.20
यशस्कल्पम् 8.3.37
यशस्काम्यति 8.3.37
यशस्यम् 5.1.39, 5.1.111
यशस्वान् 8.2.9
यशस्वी 1.4.19
यशस्वी 5.2.121
यशांसि 6.4.10, 7.1.72,8.3.24
यशोभगीनः 4.4.132
यशोभग्यः 4.4.131, 4.4.132
यष्टव्यम् 8.2.36
यष्टा 7.2.10,8.2.36
यष्टिककुत् 5.4.146
यष्टिग्रहः 3.2.9
यष्टिग्राहं युध्यन्ते 3.4.53
यष्टुम् 8.2.36
यसति 3.1.71
यस्काः 2.4.63
यस्कायनीयाः 4.1.91
यस्कीयाः 4.1.91
यस्मात् 7.1.15
यस्मिन् 7.1.15
यस्मै 7.1.14
यस्मै ददाति 8.1.66
यस्यति 3.1.71
यस्य हेतोर्वसति 2.3.27
यस्याः 7.3.114
यस्यै 7.3.114
याऽअङ्क्ते 2.3.62
याकृत्कः 7.3.51
या केशान् प्रलिखति 2.3.62
या क्षेत्रा 6.1.70
या खर्वेण 2.3.62
यागः 7.2.116
याचिः 3.3.110
याचितकम् 4.4.21
याचिकाम् 3.3.110
याचिता 7.2.8
याचितुम् 7.2.8
याचित्वाऽपमयते 3.4.19
याच्ञा 3.3.90,7.2.8, 8.4.40
याच्यम् 7.3.66
याजकपुत्रः 6.2.133
याजिः 3.3.110
याजिका 3.3.110
याजुष्कः 7.3.51
याज्यम् 7.3.66
याज्यानुवाक्ये 6.2.37
याज्ञदत्तम् 4.3.81
याज्ञदत्तिः 4.1.157
याज्ञदत्या 4.1.79
याज्ञवल्क्यानि 4.2.66
याज्ञिककितवः 2.1.53
याज्ञिकपाशः 5.3.47
याज्ञिकरूपः 5.3.66
याज्ञिकवैयाकरणौ 2.4.5
याज्ञिकाश्वः 6.2.64
याज्ञिक्य 4.3.129
याज्ञिक्येन 5.3.95
याज्यम् 7.3.66
याज्यानुवा० 6.2.37
यातः 8.2.43
यातं देवदत्तेन 3.4.76
यातवान् 8.2.43
यातव्या 4.4.121
याता 6.1.168
याता 4.1.10,6.4.48
याताः 7.3.3
याताननान्दरौ 6.3.25
यातानुयातम् 2.1.60
याति 1.3.78
याति 6.1.162
याति नि 1.4.81
याती 7.1.80
यातुधानानुपस्पृश 8.3.9
यातो ग्रामं देवदत्तः 3.4.76
यातो ग्रामो देवदत्तेन 3.4.76
याथाकथाचम् 5.1.98
याथाकामी 5.1.123
यादः 4.1.156
या दतः 6.1.171
या दतो धावति 2.3.62
यादायनिः 4.1.156
यादृक् 3.2.60,6.3.91
यादृक्षः 3.2.60,6.3.91
यादृङ् 7.1.83
यादृशः 3.2.60,6.3.91
यादृशी 4.1.15
याद्भिः 6.1.168

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

याद्भ्याम् 6.1.168
या नखानि कृन्तति 2.3.62
यानम् 1.1.3
यानि क्षेत्राणि 6.1.70
यानि वनानि 6.1.70
यानि सन्ति 1.1.58
यान्ति 6.1.97,6.4.46, 6.4.64,6.4.112
यान्ती कुले 7.1.80
यान्ती ब्राह्म 7.1.80
यान्तु 3.4.85,3.4.111
याऽभ्यङ्क्ते 2.3.62
यामः 3.3.63
यामं: 6.1.203
यामकः 7.3.34
यामुनः 4.1.113, 4.1.121
यामुन्दायनिः 4.1.149
यामुन्दायनिकः 4.1.149
यामुन्दायनीयः 4.1.149
याम्यम् 4.1.85
यायजीति 7.4.83
यायजूकः 3.2.165
यायज्यते 3.1.22, 6.1.9,7.4.83
यायात् 6.4.68,7.2.80
यायातः 4.3.87
यायावरः 1.1.58, 3.2.176
यावकः 4.3.149, 5.4.29
यावक्रीतिकः 4.2.60
यावज्जीवं 3.3.132
यावज्जीवम् 3.3.133
यावज्जीवम् अधीते 3.4.30
यावतिकः 5.1.23
यावतिथः 5.2.53
यावत्कः 5.1.23
यावत् करोति चारु 8.1.37
यावत् पचति 8.1.37
यावत् प्रकरोति चारु 8.1.38
यावत् प्रपचति 8.1.38
यावद् अधीते 8.1.36
यावद् ओदनम् 1.3:26
यावदमत्रम् 2.1.8
यावद् दतं 2.1.8
यावद् देवदत्तः 8.1.37, 8.1.38
यावद् द्वयस० 5.2.37
यावद्भार्यः 6.3.39
यावद् भुक्तम् 1.3.25, 1.3.85
यावद् भुङ्क्ते 3.3.4, 8.1.36,8.1.37
यावद् वेदं भुङ्क्ते 3.4.30
यावन्मात्रम् 5.2.37
यावमतम् 4.2.72
या वना 6.1.70
याववरुणद्धि 6.1.78
यावसम् 4.3.140
यावान् 5.2.39,6.3.91
याव्यम् 3.1.126
याष्टीकः 4.4.59,7.3.3
याष्टीकी 4.1.15
यासाम् 7.1.52
यासुबाहुः 6.2.119
यास्कः 2.4.63
यास्कायनिः 4.1.156
यास्कायनीया 4.1.91
यास्काश्छात्राः 2.4.63
यास्कीयाः 4.1.91
यास्क्यः 2.4.63
यास्ता रात्रय 4.1.31
यियक्षति 7.4.79
यियक्षते 1.2.10
यियविषति 7.2.49, 7.4.80
यियाववियिषति 7.4.80
युक् 3.2.178
युक्ताध्यायी 6.2.81
युक्तारोही 6.2.81
युगन्धरः 3.2.46
युग्यः 4.4.75,4.4.76
युग्योगौः 3.1.121
युग्योऽश्वः 3.1.121
युङ् 3.2.59,7.1.71
युङ्गः 3.2.59,7.1.71
युङ्गौ 3.2.59,7.1.71
युतः 7.2.11
युतवान् 7.2.11
युतात् 7.1.35
युत्वा 7.2.11
युद्धाय सन्नद्धो 1.4.32
युध् 1.1.65
युधिष्ठिरः 6.3.9,8.3.95
युधिष्ठिरवर्गीण 4.3.64
युधिष्ठिरवर्गीय 4.3.64
युधिष्ठिरवर्ग्य 4.3.64
युधिष्ठिराः 2.4.66
युधिष्ठिरार्जुनौ 2.2.34
युमः 6.4.107
युयुत्सते 8.4.55
युयुधि 3.4.88
युयूषति 7.2.49
युयोधि 6.4.103
युयोध्यास्मज 3.4.88
युवः 6.4.107
युवकयोः 5.3.71
युवकाम् 7.2.91
युवखलतिः 2.1.67
युवखलती 2.1.67
युवजरती 2.1.67
युवजरन् 2.1.67
युवजानिः 1.1.57, 5.4.134
युवतिः 4.1.76,4.1.77
युवतीः 6.4.133
युवपलितः 2.1.67
युवपलिता 2.1.67
युवम् 7.2.88
युवयोः 7.2.88, 7.2.89,7.2.92
युवयोरह स्वम् 8.1.24
युवयोरेव स्वम् 8.1.24
युवयोर्वा स्वम् 8.1.24
युवयोर्ह स्वम् 8.1.24
युववलिनः 2.1.67
युववलिना 2.1.67
युवां वा पश्यति 8.1.24
युवां ह पश्यति 8.1.24
युवां च 8.1.24
युवां पचथः 1.4.105
युवाभ्यां च 8.1.24
युवाभ्यां वा 8.1.24
युवाभ्यां ह 8.1.24
युवाभ्याम् 7.2.89, 7.2.92
युवाभ्यामह 8.1.24
युवाभ्यामेव 8.1.24
युवाम् 7.1.28,7.2.87, 7.2.88,7.2.91, 7.2.92
युवामह पश्यति 8.1.24
युवामेव पश्यति 8.1.24
युवायोश्च स्वम् 8.1.24
युष्मकाभिः 5.3.71
युष्मकासु 5.3.71
युष्मत् 7.1.31,7.2.86, 7.2.90
युष्मत्पुत्रः 7.2.98
युष्मदीयः 4.3.1
युष्मदीयम् 7.2.98
युष्मभ्यं च 8.1.24
युष्मभ्यं वा 8.1.24
युष्मभ्यं ह 8.1.24
युष्मभ्यम् 7.1.30, 7.2.86,7.2.90
युष्मभ्यमह 8.1.24
युष्मभ्यमेव 8.1.24
युष्मांश्च पश्यति 8.1.24
युष्माकं च 8.1.24
युष्माकं वा 8.1.24
युष्माकं ह 8.1.24
युष्माकम् 7.1.33, 7.2.90
युष्माकमह 8.1.24
युष्माकमेव 8.1.24
युष्मान् 7.1.29,7.2.87
युष्मानह 8.1.24
युष्मानेव 8.1.24
युष्मान् वा 8.1.24
युष्मान् ह 8.1.24
युष्माभिः 7.2.86
युष्मासु 7.2.86
युष्मे 7.1.39
युष्मे इति 1.1.13
युहि 6.4.105,6.4.106
यूकालः 5.2.97
यूकालिक्षम् 2.4.8, 2.4.12
यूकालिक्षे 2.4.12
यूतिः 3.3.97
यूथपशुः 6.3.10
यूनः 6.1.37,6.4.133
यूना 6.4.133
यूनिः 3.3.93
यूने 6.4.133
यूपदारु 1.2.43, 2.1.35,2.2.30
यूपंदारु 6.2.43
यूपंलवजः 6.2.1
यूपाग्रम् 1.1.50
यूपाऽग्रम् 6.1.97
यूपाय दारु 2.3.13
यूप्यः पलाशः 5.1.67
यूयं पचथ 1.4.105
यूयम् 7.1.28,7.2.88, 7.2.90,7.2.93
यूष्णः 6.1.63
ये 1.2.29,7.1.17, 7.2.102
येन भुङ्क्ते 8.1.66

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

येन हेतुना वसति 2.3.27
येनाग्निस्तेन 2.1.14
येभ्यः 6.1.182
येमतुः 6.4.120
येमुः 6.4.120
येयं पौर्णमासी 3.3.135
येयं पौर्णमास्यतिक्रान्ता 3.3.134
येषाम् 7.1.52
योक्ता 7.2.10
योक्त्रम् 3.2.182
योगी 3.2.142
योग्यः 5.1.102
योग्यम् 3.1.121
यो जटाभिः 2.3.37
योजनं पर्वतः 2.3.5
योजनमत्यस्यगाः 3.4.57
योजनमधीते 2.3.5
योजनातीतः 6.2.47
योजनेऽनुवाकोऽधीतः 2.3.6
(पुष्येण) योजयति 3.1.26
योत्रम् 3.2.182
यो ददाति 6.1.132
योद्धा 7.2.10
योधपति 1.3.86
योधयन्ति 1.3.86
यो भक्तं ददाति 3.3.7
यो भक्तं दाता 3.3.7
यो भक्तं दास्यति 3.3.7
यो भुङ्क्ते 2.3.37, 6.1.132,8.1.66
योम् 6.1.95
योऽयं 3.3.138
योऽयं त्रिंशद्रात्र 3.3.137
योऽयं त्रिंशदहोरात्र 3.3.137
योऽयं निरवधिकः 3.3.137
योऽयं वत्सरोऽतीत 3.3.137
योऽयं संवत्सर 3.3.137
योऽयं संवत्सरो 3.3.138
योऽय संवत्सरोऽतीत 3.3.138
योऽयं मास 3.3.137
योऽयमध्वा 3.3.136, 3.3.138
योऽयमध्वा गत 3.3.136
योयुवति 6.4.87
योयोति 7.3.89
योऽस्मै 6.1.86
योऽस्य 6.1.85
यौ 1.2.72,7.2.102
यौगन्धरः 4.2.130
यौगन्धरकः 4.2.130
यौगन्धरिः 4.1.173
यौगिकः 5.1.102
यौजनशतिकः 5.1.74
यौजनशतिक आचार्यः 5.1.74
यौजनिकः 5.1.74
यौति 7.3.89
यौत्रम् 7.2.115
यौधेयः 5.3.117
यौधेयी 4.1.178
यौमि 7.3.89
यौवतम् 4.2.38
यौवनम् 5.1.130, 6.4.133
यौवनाश्वः 6.2.107
यौवनिका 6.4.163
यौषि 7.3.89
यौष्माकः 4.3.1
यौष्माकीणः 4.3.1
यौ स्तः 1.1.58

र

रंरमीति 7.4.83,7.4.85
रंरम्यते 7.4.83,7.4.85
रक्तोत्पलम् 2.1.56
रक्त्वा 6.4.32
रक्षःसभम् 2.4.23
रक्षस्या 4.4.121, 4.4.128
रक्षा 4.1.178
रक्षितः 3.2.188
रक्षितः 6.1.205
रक्ष्णः 3.3.90
रघु 8.2.18
रङ्क्ता 7.2.10
रङ्क्त्वा 6.4.32
रङ्क्षीष्ट वस्त्रं 3.1.90
रङ्क्ष्यते वस्त्रं 3.1.90
रङ्गः 6.4.27
रजः 3.4.74,6.4.24
रजकः 3.1.145, 6.4.24
रजकतन्तु 2.4.10
रजकी 1.3.6,3.1.145, 4.1.41
रजतः 6.4.26
रजति 6.4.26
रजनम् 6.4.24
रजन्ति 6.4.26
रजयति 6.4.24,6.4.92
रजस्वला 5.2.112
रजिष्ठम् 6.4.162
रज्जुः 4.1.66,5.3.100
रज्जुच्छिद् 3.2.61
रज्जुभेदः 6.2.144
रज्जुसृट् 8.2.36
रज्जुसृड्भ्याम् 6.1.58, 8.2.62
रज्यति वस्त्रं 3.1.90
रज्यते वस्त्रं 3.1.90
रञ्जयति 6.4.24
रट्श्रयोतति 8.2.3
रणः 3.3.58
रणः 6.1.203
रणिता श्वः 1.1.6
रतः 6.4.37
रतवान् 6.4.37
रतिः 6.4.37
रत्वा 6.4.37
रथकट्या 4.2.51
रथकान् 5.3.99
रथकारः 6.2.77
रथदारु 6.2.43
रथन्तरम् (साम) 3.2.46
रथयातः 6.2.48
रथवर्त्म 6.2.151
रथस्या 6.1.157
रथात् पतितः 1.4.24
रथिकापादातम् 2.4.2
रथिकान् उप 1.3.25
रथिकाऽश्वारोहम् 2.4.2, 2.4.12
रथिकाऽश्वारोहौ 2.4.12
रथिरः 5.2.109
रथीतरः 8.2.17
रथोरसम् 5.4.93
रथ्यः 4.4.75,4.4.76
रथ्यम् 4.3.121
रथ्या 5.1.7
रद्धा 7.1.61,7.2.45
रधितव्यम् 7.1.61
रधिता 7.1.62
रधिता 7.2.45
रधितुम् 7.1.62
रन्ता 6.4.15 ,7.2.10
रन्धः 7.1.61
रन्धं रन्धम् 7.1.61
रन्धकः 7.1.61,7.1.62
रन्धनम् 7.1.62
रन्धनाय स्थाली 2.1.35, 2.3.13
रन्धयति 7.1.61
रन्ध्रापकर्षं पयः 3.4.52
रमणः 3.1.134,7.1.1
रमणा 7.3.44
रमणीयकुर्त्ता 6.2.73
रमणीयकारकः 6.2.73
रमणीयस० 6.2.98
रमयामकः 3.1.42
रम्यते 6.4.15,6.4.37, 8.3.23,8.3.24
रयिमान् 6.1.37
ररक्ष 3.1.36
ररक्षतुः 6.4.120
ररक्षिथ 6.4.121
ररक्षुः 6.4.120
ररञ्जे वस्त्रं 3.1.90
ररन्ध 7.1.62
ररन्धिम 7.1.62,7.2.45
ररन्धिव 7.1.62,7.2.45
रराजतुः 6.4.125
रराजिथ 6.4.125
रराजुः 6.4.125
रराधतुः 6.4.123
रराधिथ 6.4.123, 7.2.62
रराधुः 6.4.123
रारासाते 6.4.120
रारासिरे 6.4.120
रारासे 6.4.120
रवः 3.3.22
रवणः 3.2.148
रवाणि 7.3.89
रविता 7.2.10
रसवान् 5.2.95
रसविक्रयी 3.2.93
रसिको नटः 5.2.95
राः 7.2.85
राका 7.3.44,7.4.13
राक्षोघ्नः 5.4.36
राक्षोऽसुर 4.3.88
राक्षोऽसुरम् 4.3.125
रागः 1.1.4,1.1.50, 2.3.15,3.3.18, 6.4.22,6.4.27, 7.3.52
रागः 6.1.159
रागी 3.2.142,6.4.24
राङ्कवः 4.2.100
राङ्कवको 4.2.100

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राङ्ङ्वायण 4.2.100
राङ्ङ्वो 4.2.100
राजकम् 8.2.39
राजकीयम् 4.2.140, 6.4.134
राजकुमारः 6.2.59
राजकुमारी 1.2.44, 1.2.48
राजंकुलालः 6.2.63
राजकुलालः 6.2.63
राजकृत्वा 3.2.95
राजगवीय० 5.4.92
राजघः 3.2.55
राजचिद् 8.2.101
राजतम् 4.3.154
राजतमः 1.4.17,8.2.7
राजतरः 1.4.17,8.2.7
राजता 1.4.17,8.2.7
राजत्वम् 1.4.17
राजदन्तः 2.2.31
राजदन्तिः 4.1.160
राजदन्त्यम् 5.1.20
राजदुहिता 6.3.70
राजधुरा 5.4.74
राजन् 6.4.8
राजनः 4.1.137
राजनापितः 6.2.63
राजंनापितः 6.2.63
राजनि 6.4.8,6.4.136
राजनौ 5.4.99
राजन् भुङ्क्ष्व 8.3.24
राजन्यः 4.1.137
राजन्यकः 4.2.53
राजन्यकम् 4.2.39, 6.4.162
राजन्याम् 7.3.116
राजन्वती पृथिवी 8.2.14
राजन्वान् 8.2.14
राजपथः 5.3.100
राजपुत्रः 6.2.133
राजपुत्रकम् 4.2.39
राजपुत्री 6.3.70
राजपुरुषः 1.2.43, 1.2.46,2.2.8, 2.2.30,2.4.71, 6.1.223,8.2.3
राजपुरुषायणिः 7.3.20
राजपृषत् 6.1.223
राजपौरुष्यम् 7.3.20
राजप्रत्येनाः 6.2.60
राजप्रियम् 6.2.16
राजब्राह्मणः 6.2.59
राजभिः 1.4.17,8.2.2, 8.2.7
राजभोगीनः 5.1.9
राजभोजकः 3.3.113
राजभोजनाः 6.2.150
राजभ्याम् 1.4.17, 8.2.2,8.2.7
राजयुध्वा 3.2.95
राजवत् 5.1.117
राजवती6.1.220,8.2.2
राजवर्च्चसम् 5.4.78
राजवान् 8.2.14
राजशयनम् 6.2.151
राजसखः 5.4.91
राजसभा 1.1.68
राजसभा 2.4.23, 6.2.98
राजसात् क० 5.4.54
राजसात्स० 5.4.54
राजसाद् 5.4.54
राजसु 6.1.168,8.2.2
राजसुखम् 6.2.16
राजसूदः 6.2.135
राजसूयः 3.1.114
राजसूयवाजपेये 2.4.4
राजसूयिकः 4.3.68
राजसूयिकम् 5.1.96
राजसूयिकी 5.1.95
राजस्थानः 5.4.10
राजस्थानी 5.4.10
राजस्यात्स्या 5.4.54
राजहस्ती 6.2.63
राजा 1.1.43,6.1.68, 6.4.8,8.2.7
राजाच्छादनानि 3.3.113
राजाच्छादनानि 6.2.150
राजाधीनः 5.4.7
राजानः 1.1.43, 1.4.17,6.4.8,8.2.7
राजानमाग० 3.1.26
राजानम् उप 1.3.26
राजानम् 1.1.43,6.4.8
राजानौ 1.1.43, 1.4.17,6.4.8,8.2.7
राजानति
राजायते 1.4.15,8.2.2
राजाऽश्वः 8.2.2
राजासनम् 6.2.151
राजीयति 1.4.15,8.2.2
राजीवम् 5.2.109
राज्ञः पश्य 6.4.134
राज्ञः पाटलिपुत्रकस्य 2.2.11
राज्ञः पुरुषः 2.3.49
राज्ञस्पातु 8.3.52
राज्ञं ज्ञातः 3.2.188
राज्ञां पूजितः 2.2.12, 2.3.67,3.2.188
राज्ञां बुद्धः 2.2.12, 2.3.67,3.2.188
राज्ञां मतः 2.2.12, 2.3.67,3.2.188
राज्ञा 6.1.168, 6.4.134
राज्ञामर्चितः 3.2.188
राज्ञामिष्टः
राज्ञि 6.4.136
राज्ञे6.1.168,6.4.134
राज्ञे हितम् 5.1.9
राज्यम् 5.1.128, 6.4.168
राट् 3.2.61
रातिः 3.3.96
रात्रयः 4.1.31
रात्रिं विवा० 3.1.26
रात्रिं सहो० 4.1.31
रात्रिचरः 6.3.72
रात्रिञ्चरः 6.3.72
रात्रितरायाम् 6.3.17
रात्रिन्दिव 5.4.77
रात्रिन्दिवम् 5.4.77
रात्रिम् 4.1.31
रात्रिमटः 6.3.72
रात्रिम्मन्यः 6.3.72
रात्रिवृत्तम् 2.1.45
रात्रिसङ्क्रा० 2.1.28
रात्रिरसुराणामासीत् 8.1.64
रात्री 4.1.45
रात्रीभिः 4.1.31
रात्रौ 1.1.37
रात्रौ शेते 2.3.64
रात्र्यः 4.1.31
रात्र्यटः 6.3.72
रात्र्यतिसृताः 2.1.28
राद्धा 7.2.10,7.2.62
राद्धिः 3.3.93
राधानुराधीया रात्रिः 4.2.6
राध्नुवन्ति 6.4.77, 6.4.87
राध्नुहि 3.4.87, 6.4.106
राध्यत्यो० 3.1.87
रान्धसः 4.1.114
राप्यम् 3.1.126
राभिः 6.1.171
राभिः 7.2.85
राभ्यः 7.2.85
राभ्याम् 6.1.171
राभ्याम् 7.2.85
रामकः 7.3.34
रामणीयक 5.1.132
रामो जामदग्न्यः 2.1.56
रायः 7.2.85
रायः 6.1.171
रायस्पोषम् 8.3.53
रायान्तौ 7.1.3
रायौ 7.2.85
रारन्धि 6.4.103
राष्टिः 8.2.36
राष्ट्रम् 1.1.7,8.4.50
राष्ट्रिय 4.3.89
राष्ट्रियः 4.2.92, 4.2.93,4.3.25, 4.3.38,4.3.53, 4.3.74,4.3.95
राष्ट्रियम् 4.3.85, 4.3.120
रासु 7.2.85
रिक्तः 6.1.208
रिक्तगुरुः 6.2.42
रिक्थहरः 3.2.9
रिणाति 7.3.80
रिपुसूदनः 3.2.153
रिरावयिषति 7.4.80
रिर्यतुः 8.2.78
रिर्युः 8.2.78
रिषण्यति 7.4.36
रिष्टीयति 7.4.36
रीणः 8.2.45
रीणवान् 8.2.45
रुचितम् 1.2.21
रुच्यः 3.1.114
रुजावी 5.2.122
रुणद्धि 3.1.78
रुतः 7.3.89
रुदतः प्राव्राजीत् 2.3.38
रुदति 2.3.38
रुदन्ति 7.2.76
रुदित्वा 1.2.8
रुदिमः 7.2.8
रुदिवः 7.2.8
रुदिहि 6.4.101

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रुद्राणी 4.1.49
रुद्रेभ्यो अव 6.1.121
रुद्रेभ्योऽव 6.1.121
रुधादिभ्यः श्नम् 1.3.4
रुन्द्धः 6.4.111
रुन्धः 6.4.111
रुन्धन्ति 6.4.111
रुमण्वान् 8.2.12
रुरवः 1.2.73
रुरुदिम 7.2.8
रुरुदिव 7.2.8
रुरुदिषति 1.2.8
रुरूपृषतम् 2.4.12
रुरूपृषताः 2.4.12
रुरूषति 7.2.12
रुषितः 3.2.188, 7.2.28
रुष्टः 3.2.188,7.2.28
रुहि6.4.105,6.4.106
रुहिहि 6.4.101
रूक्षपेषम् 3.4.35
रूपधेयम् 5.4.25
रूपयति 3.1.25
रूपवान् 5.2.95
रूपरसगन्धस्पर्शाः 2.4.6
रूपिको दारकः 5.2.95
रूप्यं कार्षापणम् 5.2.120
रूप्यः केदारः 5.2.120
रूप्यः दीनारेः 5.2.120
रेक्ता 7.2.10
रेक्यम् 7.3.52,7.3.65
रेखा 3.3.104
रेजतुः 6.4.125
रेजिथ 6.4.125
रेंजुः 6.4.125
रेट् 3.2.75
रेडसि 1.1.4
रेणतुः 6.4.120
रेणुः 6.4.120
रेतस्याः 4.4.125
रेधिवान् 7.1.62
रेपयति 7.3.36
रेफः 3.3.108
रेफित्वा 1.2.23
रेफेण 8.4.2
रेवतिपुत्रः 6.3.63
रेवती 4.3.34
रेवत्यम् 4.4.122
रेवान् 8.2.15
रेवानेतु 6.1.37
रेषिता 7.2.48
रेष्टा 7.2.10,7.2.48
रैकुलम् 1.1.62
रैता 7.2.85
रैत्वम् 7.2.85
रैपोषम् 1.1.68,3.4.40
रैयति 6.1.79
रैवतिकः 4.1.146
रैवन्तिकीय 4.3.131
रोक्ता 7.2.10
रोगः 3.3.16
रोचते ओदनस्य 2.2.14
रोचते मे 2.3.66
रोचनः 3.1.134
रोचयते 1.3.89
रोचिष्णुः 3.2.136
रोच्यम् 7.3.66
रोढा 7.2.10
रोदसीव 1.1.11
रोदिति3.4.113,7.2.9, 7.2.76,7.3.98
रोद्धा 7.2.10
रोपयति 7.3.43
(कीटो) रोमन्थं वर्त्तयति 3.1.15
रोमन्थायते 3.1.15
रोमाणि 8.2.18
रोरवीति 7.3.94
रोरवीति 1.1.4
रोरुवति 6.4.87
रोरोति 7.3.89
रोषणः 3.2.151
रोषिता 7.2.48
रोष्टा 7.2.10,7.2.48
रोहयति 7.3.43
रोहिणः 4.3.37
रोहिणित्वम् 6.3.64
रोहिणिपुत्रः 6.3.63
रोहिणी 4.3.34
रोहिणीत्वम् 6.3.64
रोहिणीषेणः 8.3.100
रोहिणीसेनः 8.3.100
रोहितागिरीय 4.3.91
रोहितिकः 4.1.112
रोहिष्यै 3.4.10
रौचनिकम् 4.2.2
रौढीयंकाश 6.2.36
रौणः 4.2.78
रौहिणः 4.3.37
रौहिणेयः 6.3.35

ल

लक्षणोरुः 4.1.70
लक्षतमः 5.2.57
लक्षितम् 6.4.52
लक्ष्मीः 1.4.3
लक्ष्मीणाम् 7.1.54
लक्ष्मीतरा 6.3.44
लक्ष्म्यै 6.4.77
लगितम् 7.2.18
लग्नः 7.2.14,8.2.29, 8.2.45
लग्नं (सक्तम्) 7.2.18
लग्नवान् 7.2.14, 8.2.29,8.2.45
लघयति 6.4.155
लघिमा 6.4.155
लघिष्ठः 5.3.55, 5.3.58,6.4.155
लघीयांसः 5.3.57
लघीयान् 5.3.57, 5.3.58,6.4.155
लघु 8.2.18
लङ्कशान्तमुखाः 2.4.68
लब्धव्यम् 8.2.40, 8.4.53
लब्धा 7.1.64,7.2.10, 8.4.53,8.2.40
लब्धिः 3.3.93
लब्धुम् 8.2.40,8.4.53
लभते 7.1.64
लभते भोक्तुम् 3.4.65
लभ्यम् 3.1.98, 7.1.65
लभ्याः 2.4.63
लमकाः 2.4.69
लम्भं लम्भम् 7.1.64, 7.1.69
लम्भः 7.1.64
लम्भकः 7.1.64
लम्भयति 7.1.64
लम्भो वर्त्तते 7.1.64
ललाटन्तपः (आदित्यः) 3.2.36
ललाटपुर 5.4.74
ललाटिका 4.3.65
ललाटपुरम् 6.2.99
ललाट्यम् 4.3.65
ललाट्यम् 6.1.213
ललाटूलः 5.2.97
लवः 3.3.28,3.3.57
लवकः 3.1.149
लवणः 1.2.51, 3.1.134
लवणः सूपः 4.4.24
लवणं कृत्वा 1.4.74
लवणङ्कारं 1.1.39
लवणङ्कारं भुङ्क्ते 3.4.26
लवणङ्कारम् 2.2.20
लवणङ्कृत्य 1.4.74
लवणम् 1.2.51
लवणयति 3.1.21
लवणवान् 8.2.12
लवणस्यत्युष्ट्रः 7.1.51
लवणा 1.2.51
लवणाक्षम् 5.4.76
लवणीकृत्य 1.4.74
लवणीयति 7.1.51
लवनम् 6.1.78, 6.1.109,6.4.77
लवनीयम् 7.2.35
लवितव्यम् 3.4.144, 7.2.35
लविता 1.1.4,1.1.46, 3.4.114,7.2.9, 7.2.10,7.2.35
लवितुम् 3.4.144, 7.2.9,7.2.35
लवित्रम् 3.2.184
लविषीढ्वम् 8.3.79
लविषीध्वम् 8.3.79
लविषीष्ट 3.4.116
लविष्यति 7.2.10
लव्यम् 3.1.124, 6.1.80,7.2.35
लशक्वत 1.1.69
लषणः 3.2.150
लषति 3.1.70
लष्यति 3.1.70
लहिकः 5.3.83
लाक्षणिः 4.1.153
लाकृतिः 6.1.77
लाक्षणिकः 4.2.60
लाक्षण्यः 4.1.152
लाक्षिकः 4.2.60
लाक्षिकम् 4.2.2
लाघवम् 5.1.131
लाङ्गलग्रहः 3.2.9
लाङ्गलाः 6.4.144
लाङ्गलेगृह्या 2.1.72
लाङ्या 4.1.80
लाप्यम् 3.1.126
लाभः 7.1.67
लाभं लाभम् 7.1.69
लाभकायनः 2.4.69

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लालपीति 2.4.74, 7.3.94
लालाटिकः 4.4.46
लालामिकः 4.4.40
लावकः 6.1.78, 6.4.77
लावणिकः 4.4.52
लावणिकी 4.1.15
लाव्यम् 3.1.124
लिखितम् 1.2.21
लिखित्वा 1.2.26
लिट् 8.2.36
लिनाति 7.3.80
लिपिकरः 3.2.21
लिप्तः 3.2.188
लिप्तवासितम् 2.2.31
लिबिकरः 3.2.21
लिम्पः 3.1.138
लिम्पति 7.1.59
लिलावयिषति 7.4.80
लिलिक्षति 8.2.41
लिलिखिषति 1.2.26
लिलेखिषति 1.2.26
लीढम् 6.3.111, 8.3.13
लीनः 8.2.45
लीनवान् 8.2.45
लुचित्वा 1.2.24
लुञ्चित्वा 1.2.24
लुण्टाकः 3.2.155
लुनता 6.1.173
लुनताम् 6.4.112, 7.1.5
लुनती 6.1.173
लुनते 6.4.112, 7.1.5
लुनन्ति 1.3.14, 6.4.113, 7.1.5
लुनाति 6.1.158
लुनाति 6.4.113, 7.3.80
लुनाति दात्त्रेण 1.3.67
लुनीतः 6.1.158, 6.4.113
लुनीतस्तराम् 6.1.158
लुनीते 6.4.113
लुनीयात् 3.4.116
लुनीथः 6.4.113
लुनीहि 3.4.87, 6.4.105, 6.4.106, 8.1.4
लुब्धः 7.2.54
लुब्धा 7.2.54
लुभित्वा 7.2.54
लुम्पति 7.1.59
लुलव 1.1.59
लुलविथ 6.1.196
लुलविथ 6.4.126, 7.2.61
लुलाव 1.1.59
लुलवतुः 6.4.77, 6.4.82, 6.4.83
लुलुविढ्वे 8.3.79
लुलुविध्वे 8.3.79
लुलुविव 7.2.13
लुलुविम 7.2.13
लुलुवुः 6.4.77, 6.4.82, 6.4.83
लुलुवुषः 6.4.22
लुलूषति 7.2.12, 7.4.79
लुवः 6.4.77, 6.4.83
लुवौ 6.4.77, 6.4.83
लूत्वा 7.2.11
लूनः 7.2.11, 8.2.44
लूनयवम् 2.1.17
लूनवान् 7.2.11, 8.2.44
लूनिः 3.3.93
लूयते केदार 6.1.194
लूयते केदारो 6.1.195
लोलूयं 6.1.194
लोलूयं 6.1.194
लोहितगङ्ग 2.2.23
लूनिः 8.2.44
लून्युः 6.1.108
लूभिः 3.1.90, 3.4.114
लूभ्याम् 3.1.90, 3.4.114
लूयते 1.3.13
लेक्ष्यति 8.2.41
लेखः 3.3.121
लेखा 3.3.104
लेखाभ्रूम्मन्यः 6.3.68
लेखित्वा 1.2.26
लेढव्यम् 8.2.32, 8.2.40
लेढा 7.2.10, 8.2.32, 8.2.40
लेढि 8.2.41
लेढुम् 8.2.32, 8.2.40
लेप्ता 7.2.10
लेभाते 3.4.81
लेभिरे 3.4.81
लेभे 3.4.81, 7.1.64
लेष्टव्यम् 8.2.36
लेष्टा 7.2.10, 8.2.36
लेष्टुम् 8.2.36
लेहः 3.1.141
लैखाग्रेयः 6.4.148
लैगवायनः 1.1.5
लोकम्पृणः 6.3.70
लोतः 7.2.9
लोप्ता 7.2.10
लोब्धा 7.2.48
लोभिता 7.2.48
लोभित्वा 7.2.54
लोमकाखण्डः 6.3.63
लोमकागृहम् 6.3.63
लोमवान् 5.2.100
लोमशः 1.3.8, 5.2.100
लोमसक्थं 6.2.199
लोमानि 8.2.18
लोला 3.1.27
लोलुप्यते 3.1.24
लोलुवः 1.1.4, 2.4.74
लोलूः 6.1.66
लोलूयम् 6.1.194
लोलूयते 7.4.82
लोलूया 3.3.102
लोलूयाञ्चक्रे 3.1.35
लोलूयिता 6.4.49
लोलूयिषते 6.1.9
लोष्टग्राहम् 3.4.53
लोष्टो नु3 8.2.98
लोहध्वजाः 2.4.62, 5.3.112
लोहमय 4.3.143
लोहितः 5.4.30, 6.3.117
लोहितकः 5.4.30, 5.4.31
लोहितकः कम्बलः 5.4.32
लोहितकः पटः 5.4.32
लोहितकल्माषः 6.2.3
लोहितगङ्गम् 2.1.21
लोहितगङ्ग 2.4.84
लोहितपादिका 4.1.20
लोहितशालि 4.1.57
लोहितसारङ्गः 2.1.69
लोहितसारङ्गः 6.2.3
लोहितस्तक्षकः 2.1.57
लोहिताक्ष 5.4.113
लोहितायति 1.3.90, 3.1.13
लोहितायते 1.3.90, 3.1.13
लोहितायसम् 5.4.94
लोहितिका 5.4.32
लोहितिका कोपे 5.4.31
लोहितिका कोपेन 5.4.31
लोहितैतः 6.2.3
लोहितो गौः 5.4.31
लोहितोदः 6.3.57
लोहिनिका शाटी 5.4.32
लौकायतिकः 4.2.60
लौकिकः 5.1.44
लौयमानिः 6.1.80
लौहध्वज्यः 5.3.112
लौहध्वज्यौ 5.3.112
लौहम् 4.3.143, 4.3.154
लौहितीकः 5.3.110
लौहित्यायनी 4.1.18
लौहेषः 6.3.39

व

वंश 6.3.120
वंशकः 5.3.87
वंशावती 6.3.120
वंहति 4.1.45
वक्तव्यम् 1.1.49, 1.1.56, 2.4.53, 8.2.30
वक्ता 1.1.49, 1.1.56, 2.4.53, 7.2.10, 8.2.30
वक्तुम् 1.1.49, 1.1.56, 2.4.53, 8.2.30
वक्त्वा 1.2.24
वक्रम् 7.3.53
वक्षत् 8.3.59
वक्षे 3.4.9
वक्षे रायः 1.1.38, 1.1.39
वक्ष्यति 7.4.49
वक्ष्यते 2.4.53
वङ्क 7.3.63
वङ्क्वरभण्डीरथाः 2.4.68
वचनकरः 3.2.20
वचनज्याय 6.2.25
वचनज्येष्ठ 6.2.25
वचनप्रिय 6.2.15
वचनसुख 6.2.15
वचनाबाध 6.2.21
वचनाशङ्क 6.2.21
वचित्वा 1.2.24
वच्यात् 3.4.104
वज्रणखा 4.1.58

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वज्रस्य भर्त्ता 2.2.16
वज्रस्य भर्त्ता 2.3.65
वज्रहंतः 6.2.48
वञ्चयति अहिम् 1.3.69
वञ्चयते 1.3.69
वञ्चित्वा 1.2.24
वञ्च्यम् 7.3.63
वटकमयी यात्रा 5.4.21
वटकिनी पौर्णमासी 5.2.82
वटंजः 6.2.82
वटिभः 5.2.139
वडवांजः 6.2.83
वडवासन्दायः 3.2.3
वडवी 5.2.116
वणिंग् ग्राम 6.2.84
वणिज्यम् 5.1.126
वण् शेते 8.3.28
वण्ट् शेते 8.3.28
वण्णावोचत् 8.3.32
वण्णास्ते 8.3.32
वतः 6.4.37
वतण्डी 4.1.73,4.1.109
वतवान् 6.4.37
वतिः 6.4.37
वत्सः 7.2.9,8.4.48
वत्सकः 5.3.76
वत्सजंरः 6.2.37
वत्सतर 5.3.91
वत्सतरार्णम् 6.1.89
वत्सपालः 6.2.78
वत्सप्रीः 6.4.148
वत्समुंखः 6.2.168
वत्सलः 5.2.98
वत्सशालः 4.3.36
वत्साः 2.4.64,7.3.72
वत्सा इमे 1.2.73
वत्सीयः 5.1.5
वत्सौ 7.3.72
वत्स्यति 7.4.49
वत्स्सः 8.4.47
वथ्सः 8.4.48
वदः 6.1.12
वदति यत्किञ्चित् 1.3.47
वदते क्षेत्रे 1.3.47
वदते गेहे 1.3.47
वदते चार्वी 1.3.47
वदावदः 6.1.12
वदावदः 7.4.59
वदिता 7.2.9
वदिता जनापवादान् 2.3.69
वदितारौ 6.4.11
वदितुम् 7.2.9
वद्ध्रीणसः 5.4.118
वधः 7.3.35
वधकः 7.3.35
वधकम् 2.4.54
वधिषीष्ट 6.4.62
वधीम् 7.1.40
(हे) वधु 6.1.69
वधूटी 4.1.20
वधूटीजानिः 1.1.57
वध्यम् 3.1.97
वध्यात् 2.4.35,2.4.42
वध्यासु 2.4.42
वध्यास्ताम् 2.4.42
वध्रिंका 6.1.204
वध्र्यश्वाय 6.2.91
वध्वै 6.4.77
वनं याति 8.3.23
वनम् 1.2.45,7.1.24
वनम् हसति 8.3.23
वनशः 7.1.20
वनस्पतिः 6.2.140
वनस्पतीरनु 8.3.3
वनानि 7.1.72
वनीवच्यते 7.4.84
वनीवञ्चीति 7.4.84
वनेकिंशुकाः 2.1.44, 6.3.9
वनेबल्वजकाः 6.3.9
वनेबिल्वकाः 2.1.44
वनेहरिद्रका 6.3.9
वन्तिः 6.4.39
वन्दना 3.3.107
वन्दारुः 3.2.173
वन्द्यम् 6.1.214
वपः 3.1.134
वपा 3.3.104
वप्ता 7.2.10
वप्रितमम् 7.1.103
वमिति 7.2.34
वमी 3.2.157
वयं पचामः 1.4.107
वयम् 7.1.28,7.2.88, 7.2.90,7.2.93
वयस्यः 4.4.91
वरः 3.3.58
वरजः 6.3.16
वरणपुष्प 3.3.109
वरणाः 1.1.61,4.2.82
वराकः 3.2.155
वराकी 3.2.155
वराहदन् 5.4.145
वराहदन्तः 5.4.145
वरिता 7.2.38
वरिमा 6.4.157
वरिवर्त्ति 7.4.91
वरिवस्यति 3.1.19
वरिषीष्ट 1.2.11,7.2.42
वरिष्ठः 6.4.157
वरीता 7.2.38
वरीयान् 6.4.157
वरीवर्त्ति 7.4.91
वरीवृजत् 7.4.65
वरीवृतीति 7.4.90
वरीवृत्यते 7.4.90
वरीवृधीति 7.4.90
वरीवृध्यते 7.4.90
वरीवृश्चीति 7.4.90
वरीवृश्च्यते 6.1.16, 7.4.90
वरुः 3.4.74
वरुणानी 4.1.49
वरुणिकः 5.3.84
वरुणियः 5.3.84
वरुणिलः 5.3.84
वरुतारम् 7.2.34
वरूत्रीः 7.2.34
वरेजः 6.3.16
वर्करा इमे 1.2.73
वर्करी 4.1.20
वर्ग्यम् 4.3.54
वर्चस्यः 5.4.25
वर्चस्या इष्टकाः 4.4.125
वर्चस्वान् 5.2.122
वर्ढव्यम् 6.1.59
वर्ढा 6.1.59
वर्णका 7.3.45
वर्णयति 3.1.25
वर्णवान् 5.2.134
वर्णसङ्घातः 3.2.49
वर्णिका 7.3.45
वर्णिनः 5.2.134
वर्णिनौ 5.2.134
वर्णी 5.2.134
वर्त्तका 7.3.45
वर्त्तते 1.3.92
वर्त्तनः 3.2.149
वर्त्तनिः 6.1.160
वर्त्तिका 7.3.45
वर्त्तितम् 7.2.26
वर्त्तित्वा 1.2.18,1.2.26
वर्त्तिषीष्ट 1.2.11, 7.2.59
वर्त्तिष्णुः 3.2.136
वर्त्तिष्यते 1.3.92
वर्तिष्यते 7.2.59
वर्त्म 3.3.2,3.4.75
वर्त्स्यति 1.3.92, 7.2.59
वर्द्धनः 3.1.134, 3.2.149
वर्द्धिष्णुः 3.2.136
वर्द्धिष्यते 1.3.92
वर्धन्तु 3.4.117
वर्मणा 8.4.2
वर्मायति 1.4.15, 3.1.13
वर्मायते 1.4.15
वर्म्मायते 3.1.13
वर्या 3.1.101
वर्वर्त्ति 7.4.91,7.3.94, 8.2.29
वर्षजः 6.3.16
वर्षति 8.4.49
वर्षतीति 3.3.156
वर्षम् 3.3.56
वर्षशतस्य पूरक 2.3.70
वर्षाभ्वः 6.4.84
वर्षाभ्वौ 6.4.84
वर्षिष्ठः 5.3.62, 6.4.157
वर्षिष्ठे अधि 6.1.118
वर्षीयान् 5.3.62, 6.4.157
वर्षेजः 6.3.16
वर्ष्यम् 3.1.120
वलयवती 6.3.119
वलिभः 5.2.139
वल्लीहिरंण्यम् 6.2.43
ववतुः 2.4.41,6.1.40, 6.4.46
ववमतुः 6.4.126
ववमिथ 6.4.126
ववमुः 6.4.126
ववरिथ 7.2.38,7.2.64
ववर्थ 7.2.64
ववित्थ 7.2.63
ववुः 2.4.41
ववुः 6.1.40,6.4.46
ववृद्वे 8.3.78
ववृते 7.4.66
ववृधे 7.4.66

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ववृम 7.2.13
ववृमहे 7.2.13
ववृव 7.2.13
ववृवहे 7.2.13
ववौ 2.4.41,6.1.40
वव्रश्च 6.1.17,6.1.66
वव्रश्चिथ 6.1.17
वशं 3.3.58
वशंवदः 1.3.8,3.2.38
वशाब्राह्मकृतेयुः 6.2.69
वशा3इयम् 6.1.130
वशेयम् 6.1.130
वश्यः 4.4.86
वषडग्नये 2.3.16
वषडिन्द्राय 2.3.16
वष्टि 3.3.160
वस् 1.4.99
वसति 8.3.60
वसनक्नोपम् 3.4.33
वसनच्छन्नः 6.2.170
वसनच्छन्ना 4.1.53
वसनार्णम् 6.1.89
वसन्ता 7.1.39
वसन्तीह पुरा छात्राः 3.2.122
वसयति 6.4.155
वसव्यः 5.4.25, 4.4.140
वसा 3.3.104
वसिता 3.2.149
वसिता वस्त्राणाम् 7.2.10
वसिष्ठः 6.4.162
वसिष्ठाः 2.4.64
वसीयान् 6.4.162
वसुधितम् 7.4.45
वसुनीतिः 6.2.42
वसुन्धरा 3.2.46
वसुभिर्नो अव्या 6.1.116
वसुमान् 6.1.176
वसुलः 5.3.83
वसूनाम् 6.1.177
वस्तव्यम् 8.2.39
वस्ता 7.2.10,8.2.39
वस्ते 1.3.12,7.2.35
वस्तें 6.1.186
वस्त्रकाम्यति 3.1.9
वस्त्रक्नोपम् 3.4.33
वस्त्रक्रीती 4.1.50
वस्त्रचीरम् 6.2.127
वस्त्रच्छन्नः 6.2.170
वस्त्रच्छन्ना 4.1.53
वस्त्रयुगाणि 8.4.13
वस्त्रयुगिणः 8.4.13
वस्त्रयुगिणौ 8.4.13
वस्त्रयुगेण 8.4.13
वस्त्रान्तरः 6.2.166
वस्निकः 4.4.13, 5.1.51
वस्वी 4.1.44
वस्से 7.4.49
वहं लिहः 3.2.32
वहः 3.3.119
वहः 6.1.203
वहतिनावा 6.1.174
वहद्गु 2.1.17 (कतीह शिखण्डं)
वहमानाः 3.2.128
वहेगड्डुः 2.2.35
वह्यम् 3.1.102
वांशकठिनिकः 4.4.72
वांशभारिकः 5.1.50
वांशिकः 5.1.50
वाक् 3.2.178, 5.4.106,8.2.30, 8.4.47,8.4.56
वाकिनकायनिः 4.1.158
वाकिनिः 4.1.158
वाक्क् 8.4.47
वाक्कुलुहः 6.2.153
वाक्कलहः 2.1.31, 6.2.153
वाक्छयनम् 8.2.3
वाक् छेते 8.4.63
वाक्तमा 6.1.168
वाक्तरा 6.1.168
वाक्त्वचम् 2.2.29, 5.4.106
वाक्पुतिः 6.2.19
वाक्पतिः 6.2.199
वाक्पत्नीयं कन्या 6.1.174
वाक्यपदीय 4.3.88
वाक्यम् 3.1.98, 3.1.124,7.3.52, 7.3.65,7.3.67
वाक् शेते 8.4.63
वाक्षु 8.3.57
वाक्स्थाता 8.2.29
वाग् 8.4.45,8.4.56
वागत्र 8.2.39
वागूर्जम् 5.4.106
वाघसति 1.1.50, 8.4.62
वाग्दृषदम् 2.2.29
वाग्निपुणः 2.1.31
वाग्भिः 6.1.168
वाग्भ्यः 6.1.168
वाग्भ्याम् 6.1.168
वाग्मी 5.2.124
वाग्यामः 3.2.40
वाग्वादः 6.3.109
वाग्विप्रुष 5.4.106
वाग् हसति 8.4.62
वाङ् 8.4.45
वाङ्नयनम् 8.2.3
वाङ्मनसे 2.4.14, 5.4.77
वाङ्मय 4.3.144
वाङ्मयम् 8.4.45
वाङ्मात्रम् 8.4.45
वाचः 6.1.168
वाचंयमः 3.2.40, 6.3.69
वाचयति पदं मिथ्या 1.3.71
वाचस्पतिम् 8.3.53
वाचा 6.1.168
वाचाटः 5.2.125
वाचालः 5.2.125
वाचिकः 5.3.83, 5.4.35,6.1.15
वाचिकं श्रद्दधे 5.4.25
वाचोयुक्तिः 6.3.21
वाचौ 6.1.168
वाच्यति 1.4.15,6.1.15
वाच्यम् 4.1.85,7.3.67
वाजपेयिकी 5.1.95
वाजपेयिकः 4.2.60
वाजपेयिक 4.3.68
वाजपेयिकम् 5.1.96
वाजसनेयिनः 4.2.66
वाजसनेयिन 4.3.106
वाज्रिणः 6.4.166
वाटरम् 4.3.119
वाडवः 4.1.120
वाडवम् 4.2.45
वाड्वहरणम् 6.2.65
वाडवेयः 4.1.120
वाडव्यम् 4.2.42
वाड्वलिः 6.3.109
वातकी 5.2.129
वातच्छेद्यानि 2.1.33
वातण्डः 4.1.108
वातण्ड्यः 4.1.108
वातण्ड्ययुवतिः 1.1.50
वातण्ड्यायनी 4.1.109
वातन्धमः 3.2.30
वातन्धयः 3.2.30
वातमजाः 3.2.28
वातवती गुहा 5.2.129
वाता 6.4.48
वाताय कपिला 2.3.13
वाति 1.3.78
वातिकम् 5.1.38
वातूलः 4.2.42, 5.2.97,5.2.122
वात्सकम् 4.2.39, 6.4.151
वात्सप्रेयः 6.4.148
वात्सशालः 4.3.36
वात्सी 4.1.16,4.1.17, 6.4.150
वात्सीपुत्रः 6.3.61
वात्सीपुत्रः 6.2.132
वात्सीपुत्रकायणिः 4.1.159
वात्सीपुत्रायणिः 4.1.159
वात्सीपुत्रिः 4.1.159
वात्सीबन्धुः 6.2.109
वात्सीभूतः 6.4.152
वात्सीयः 4.2.114, 7.1.2
वात्सीयति 6.4.152
वात्सीयते 6.4.152
वात्स्यः 1.4.18, 4.1.105,4.1.162, 7.2.117
वात्स्यः 6.1.196
वात्स्युः 8.4.67
वात्स्यः 8.4.67
वात्स्युस्तत्रं 8.4.67
वात्स्यायनः 4.1.93, 4.1.101,4.1.163, 4.1.165,6.4.151
वात्स्यायनी 4.1.17
वात्स्यायनीयाः 4.1.91
वात्स्यायनो जाल्मः 4.1.167
वात्स्यौ 1.2.65,1.2.66
वादयते 1.3.89
वाद्भ्रीणसः 8.4.3
वाद्यम् 3.1.106
वाध्यौगः 7.3.20
वानरश्चा 5.4.97
वानस्पत्यम् 4.1.85

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वानहस्तिक 4.2.45
वानेयम् 4.2.97
वान्तः 7.2.15
वान्ति 6.1.97,6.4.46, 6.4.64,6.4.112
वान्तु 3.4.85,3.4.111
वापयति 6.1.55
वाप्यम् 3.1.126
वाप्यश्वः 1.1.19
वामः 7.3.34
वामदेव्यं साम 4.2.9
वामरज्जुः 5.3.100
वामरथाः 2.4.58, 4.1.151
वामरथ्यायनी 4.1.151
वामोरूः 4.1.70
वाययति 6.1.55 6.1.109,7.3.37
वायवः 7.3.109
वायवायाहि 6.1.109
वायविति 1.1.16
वायवे 1.4.6,7.3.111
वायव्यम् 4.2.31
वायसविद्यिकः 4.2.60
वायसार्मम् 6.2.90
वायुः 2.4.57,3.3.1, 8.2.76
वायुकः 5.3.83
वायुदत्तः 5.3.83
वायुदेवत्यम् 5.4.24
वायुना 7.3.120
वायुभिः 7.1.9
वायुभ्याम् 7.3.102
वायुम् 6.1.107
वायुमान् 6.1.176
वायुमान् 8.2.9
वायुरत्र 8.2.66,8.3.17
वायुर्नयति 8.3.15, 8.4.1
वायुषु 8.3.55,8.3.57, 8.3.59
वायुस्तत्र 8.3.55
वायू 8.2.5
वायू 6.1.102
वायू इति 1.1.11, 6.1.125
वायून् 6.1.103
वायूनाम् 6.1.177
वायूनाम् 6.4.1,6.4.3, 7.1.54
वायूनाम् 6.1.177
वायू 3 इति 6.1.129
वायोः 7.3.111
वायो 7.3.108
(हे) वायो 6.1.68
वायोऽत्र 1.1.16, 6.1.109
वायो इति 1.1.16, 6.1.109
वायोः 6.1.110, 7.3.111
वायौ 7.3.119
वाय्वग्नी 6.3.25
वाय्वोः 1.1.58
वारणपुष्पप्रचायिका 2.2.17
वारतन्तवीय 4.3.102
वारत्रम् 5.1.15
वारयध्वम् 7.1.42
वारयध्वात् 7.1.42
वाररुचः 4.3.116
वारवन्तीयम् 5.2.59
वाराहकम् 4.2.80
वाराही 6.1.106
वाराह्या 4.1.74,4.1.78
वाराह्यौ 6.1.106
वारिपथः 5.3.100
वारिपथिकः 5.1.77
वारिपथिकम् 5.1.77
वारिवस्कृतः 5.4.36
वारिषेणः 8.3.99
वारुडः 5.4.36
वारुडक 4.3.118
वार्कारूप्यम् 4.2.106
वार्केण्यः 5.3.115
वार्केण्यौ 5.3.115
वार्ज्यः 4.3.100
वार्णवः 4.2.133, 4.3.93
वार्णवम् 4.2.77
वार्त्तः 5.2.101
वार्त्तघ्नः 6.4.135
वार्त्तनः 4.2.125
वार्त्तिकसूत्रिकः 4.2.60
वार्त्रघ्नम् 7.3.32
वार्त्रघ्नः 6.4.135
वार्द्धकम् 4.2.39
वार्द्धुषिक 4.4.30
वार्धुषिकः 4.4.30
वार्ध्रकठिनिकः 4.4.72
वार्ध्री 4.3.151
वार्ध्रीणसः 8.4.3
वार्मतेयः 4.2.94
वार्म्मतेयः 1.3.10
वार्मिकायनि 4.1.158
वार्यम् 6.1.214
वार्षशतिकः 5.1.57
वार्षसाहस्रिकः 5.1.57
वार्षिकः 4.2.63
वार्षिकम् 4.3.18
वार्ष्यायणिः 4.1.154, 4.1.155
वाल्मीकिश्लोका 2.4.21
वाल्म्मीकः 8.4.47
वावदीति 2.4.74, 7.3.94
वावशीति 7.3.87
वावश्यते 6.1.20
वावश्यन्ते 6.1.20
वावश्येते 6.1.20
वावहिः 3.2.171
वाव्यथ्यते 7.4.68
वाशनः 3.1.134
वाशिलम् 4.2.80
वाष्पायते 3.1.16
वासः 7.4.49,8.3.35
वासतेयम् 4.4.104
वासवदत्ता 4.3.87
वासनम् 5.1.27
वासनीयकम् 5.1.132
वासन्तक 4.3.46
वासन्तम् 4.2.34, 4.3.46,5.1.96
वासन्तिकः 4.2.63, 4.3.20
वासन्तिकम् 5.1.96
वासन्ती 4.3.43
वासयते 1.3.89
वासयामः 7.1.46
वासयाममसि 7.1.46
वासवदत्तिकः 4.2.60
वासवदत्तेयः 4.1.113
वाससी इव 2.2.18
वासिनायनिः 6.4.174
वासिष्ठम् 4.2.7
वासिष्ठः पिता 2.4.58
वासिष्ठः पुत्रः 2.4.58
वासिष्ठायनिः 4.2.80
वासिष्ठिकः 4.3.69
वासिष्ठी 4.1.78
वासुदेवः 5.3.99
वासुदेवक 4.3.98, 7.1.1
वासुदेवकः 6.1.197
वासुदेवगृह्याः 3.1.119
वासुदेवतः 5.4.44
वासुदेवपक्ष्यः 6.2.131
वासुदेववर्गीण 4.3.64
वासुदेववर्गीय 4.3.64
वासुदेववर्ग्य 4.3.64
वासुदेववर्ग्यः 6.2.131
वास्तव्यः 3.1.96
वास्तुविद्यः 4.3.73
वास्तेयः 5.3.101
वास्तेयम् 4.3.56
वास्तेयी 5.3.101
वास्तोष्पतीयम् 4.2.32
वास्तोष्पत्यम् 4.2.32
वास्त्वः 6.4.175
वास्त्व्यम् 6.4.175
वास्त्रयुगिकम् 5.7.99
वास्त्रयुग्मिकः 5.1.63
वास्त्रो रथ 4.2.10
वास्त्यर्थम् 8.2.29
वाहयति 1.4.52
वाहाभ्रट् 3.2.76
वाह्यम् 3.1.102
विंशः 5.2.56,6.4.142
विंशकः 5.1.24, 6.4.142
विंशति 5.1.59
विंशतिकः 5.1.24
विंशतितमः 5.2.56
विंशत्या 6.4.142
विंशम् 6.4.142
विंशिनः 5.1.58, 5.2.37
विकटम् 5.2.28
विकत्थी 3.2.143
विकपितः 6.4.24
विकम्पितः 6.4.24
विकरोति पयः 1.3.34
विकस्तः 7.2.34
विकस्वरः 3.2.175
विकाकुत् 5.4.148
विकाषी 3.2.143
विकिरः 6.1.150
(ध्वाङ्क्षः) विकुरुते 1.3.34
विकुर्वते 1.3.35
(क्रोष्टा) विकुरुते 1.3.34
विकुर्वते सैन्धवा 3.1.89
विकुर्वन्ते सैन्धवाः 1.3.35
विक्रमते साधु 1.3.41
विक्रमते सुष्ठु 1.3.41

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विक्रयिकः 4.4.13
विक्रामति अजिन 1.3.41
विक्रीणीते 1.3.18
विक्लीकृत्य 1.4.61
विक्षावः 3.3.25
विक्षिपः 3.1.94, 3.1.135
विक्षेपकः 3.1.94
विक्षेप्ता 3.1.94
विख्ये 3.4.11
विगाढा 7.2.44
विगाद्दंभरथिकः 6.2.156
विगाहिता 7.2.44
विगूनः 8.2.44
विग्रः 5.4.119
विघनः 3.3.82
विघसः 3.3.59
विघातः 3.3.76
विघ्नः 3.3.58
विचक्षणः 2.4.54
विचति 6.1.16
विचतुरः 5.4.77
विचमति 7.3.75
विचर्चिका (= दाद) 3.3.108
विचर्चिकालः 5.2.97
विचाच्छायते 6.1.75
विचिच्छित्सति 8.2.3
विचितः 6.1.16, 6.1.37, 6.4.2
विचितवान् 6.1.16
विचितव्यम् 1.2.1
विचिता 1.2.1
विचितुम् 1.2.1
विचित्रकटु 6.2.24
विचित्रलव 6.2.24
विचित्रा सूत्रस्य 2.2.14
विचित्रा हि कृति 2.3.66
विचित्रा हि सूत्रस्य 2.3.66
विचेतीकरोति 5.4.51
विचेतीभवति 5.4.51
विचेतीस्यात् 5.4.51
विच्छायति 3.1.28
विजयते 1.3.19
विजयिष्ठः 6.4.154
विजावा 3.2.75, 6.4.41
विजिघ्रः 3.1.137
विट् 4.1.65, 8.2.36
वितत्निरे 6.4.99
वितपति 1.3.27
वितपते 1.3.27
वितपते पाणिम् 1.3.27
वितपते पृष्ठम् 1.3.27
वितस्तिः 5.2.37
विति 1.1.17, 1.1.18
वितिष्ठते 1.3.22
वितीर्णम् 6.3.124
वितूस्तयति 3.1.21
वितृदः 3.4.13
वितेनिरे 6.4.99
वित्तः 3.4.83, 8.2.56
वित्तम् 8.2.58
वित्तविनाशनः 3.1.134
वित्तात् 3.1.41
वित्तिः 3.3.96
वित्तोऽयं 8.2.58
वित्थ 3.4.83
वित्थः 3.4.83
विद 3.4.83
विदकुलम् 2.4.64
विदतुः 3.4.83
विदत्तम् 1.4.57, 7.4.46
विदथुः 3.4.83
विददरतुः 7.4.12
विददरुः 7.4.12
विदद्रतुः 7.4.12
विदद्रुः 7.4.12
विदन् 7.1.36
विदन्तः 7.1.36
विदन्ति 3.4.83
विदन्तु 3.1.41, 3.4.111
विदन्तौ 7.1.36
विदा 3.3.104
विदाङ्करोतु 3.1.41
विदाङ्करु 3.1.41
विदाङ्करुतात् 3.1.41
विदाङ्करुताम् 3.1.41
विदाङ्करुर्वन्तु 3.1.41
विदाञ्चकार 3.1.38
विदामक्रन् 3.1.42
विदारी 4.3.166
विदितः 7.2.11, 7.2.15
विदितवान् 7.2.16
विदित्वा 1.2.8
विदिद्युतिषते 7.4.67
विदिद्युते 7.4.67
विदिद्युत्यते 7.4.67
विदिद्योतिषते 7.4.67
विदुः 3.4.83
विदुधविथ 7.2.61
विदुरः 3.2.162
विदुषः 6.4.131
विदुषा 6.4.131
विदुषितरा 6.3.45
विदुषीतरा 6.3.45
विदुषे 6.4.131
विदेद्युत्यते 7.4.67
विदेयम् 3.1.86
विदेशस्थायी 3.3.154
विद् 6.4.46
विद्धः 6.1.16, 6.1.37, 6.4.2
विद्धवान् 6.1.16
विद्म 3.4.83
विद्मा 6.3.135
विद्यते नाम 3.3.146
विद्यते भोक्तुम् 3.4.85
विद्यमानकेशा 4.1.57
विद्यमाननासिका 4.1.57
विद्यया यशः 2.3.23
विद्यमानश्रे 1.2.48
विद्या 3.3.99
विद्याचणः 5.2.26
विद्याचुञ्चुः 5.2.25, 5.2.26
विद्यादायादः 6.2.5
विद्यामदः 3.3.67
विद्युत् 3.2.177
विद्युतः 3.2.177
विद्युतौ 3.2.177
विद्युत्वान् 8.2.10
विद्युत्वान् वलाहकः 1.4.19
विद्वत्तरा 6.3.45
विद्वद्भिः 8.2.72
विद्वद्भ्याम् 8.2.72
विद्वन्मन्या 6.3.67
विद्वांसः 7.1.36
विद्वांसौ 7.1.36
विद्वान् 7.1.36, 8.2.7, 8.3.1
विधमः 3.1.137
विधयः 3.1.137
विधविता 7.2.61
विधुन्तुदः 3.2.35
विधुरः 3.2.162, 5.4.68
विधूत 7.2.15
विधूतवान् 7.2.15
विधोता 7.2.61
विध्यति 6.1.16
(देवदत्तो) विनयति 1.3.37
(घाटां) विनयति 1.3.37
(गडुं) विनयति 1.3.37
(प्रज्ञया) विनयति 1.3.37
(बुद्ध्या) विनयति 1.3.37
(मन्युं) विनयते 1.3.37
(क्रोधं) विनयते 1.3.37
(सहस्रं) विनयते 1.3.36
विना 5.2.27
विनाकारं गतः 3.4.62
विनाकृत्य गतः 3.4.62
विनाकृत्वा गतः 3.4.62
विना देवदत्तात् 2.3.32
विना देवदत्तेन 2.3.32
विना भावं गतः 3.4.62
विना भूत्वा गतः 3.4.62
विना भूय गतः 3.4.62
विना वर्षम् 2.3.32
विना वातम् 2.3.32
विना विद्युत् प्रपतनम् 2.3.32
विना हस्तिकृतान् दोषान् 2.3.32
विनाशकः 3.2.146
विनीयः 3.1.117
विनेयम् 3.1.117
विन्ते 7.1.7
विन्दः 3.1.138
विन्दति 7.1.59
विन्दते 7.1.7
विन्दाते 7.1.7
विन्दुः 3.2.169
विन्नः 8.2.56, 8.2.58
विपत् 3.3.93
विपत्तिः 3.3.93
विपद् 3.3.94
विपथम् 2.4.18
विपन्नश्रुतम् 6.2.149
विपर्शु 6.2.177
विपश्यः 3.1.137
विपादिकालः 5.2.97
विपाव्यम् 3.1.117
विपाशयति 3.1.25
विपिबः 3.1.137
विपूयः 3.1.117
विपृच्छम् 3.4.12
विप्रकृष्टं ग्रामस्य 2.3.34
विप्रकृष्टं ग्रामात् 2.3.34
विप्रकृष्टादा 6.3.2
विप्रकृष्टादागतः 2.1.39

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विप्रलम्भः 7.1.67
विप्रवदन्ति 1.3.50
विप्रवदन्ति मौहूर्त्ताः 1.3.50
विप्रवदन्ति शकुनयः 1.3.50
विप्रवदन्ति 1.3.50
विप्रवदन्ते 1.3.50
विफलीकृत्य 1.4.61
विभरिषति 7.2.49
विभाकरः 3.2.21
विभाजम् 3.4.12
विभीषणः 3.1.134
विभुः 3.2.180
विभुजति पाणिम् 1.3.66
विभुवम् 6.4.86
विभूः 3.2.179, 3.2.180
विभ्राजः 3.2.177
विभ्राजौ 3.2.177
विभ्राट् 3.2.177
विभ्वम् 6.4.86
विभ्वी 4.1.47
विमलदिवि 7.1.72
विमलद्यु 6.1.131
विमानत्वम् 5.1.132
वियमः 3.3.63
वियामः 3.3.63
वियूय 6.4.58
विरजीकरोति 5.4.51
विरजीभवति 5.4.51
विरजीस्यात् 5.4.51
विरमति 1.3.83
विरहीकरोति 5.4.51
विरहीभवति 5.4.51
विरही स्यात् 5.4.51
विराट् 3.2.61
विराट् 8.2.36
विरिब्धम् 7.2.18
विरिभित 7.2.18
विरुणद्धि 1.1.47
विरेभितम् 7.2.18
विलक्षणो देवदत्तात् 2.3.29
विलगितः 6.4.24
विलङ्गिता 6.4.24
विललाप 3.2.115
विलातव्यम् 6.1.51
विलाता 6.1.51
विलातुम् 6.1.51
विलापयति 7.3.39
विलापयति जतु 7.3.39
विलाय 6.1.51
विलाययति 7.3.39
विलालयति 7.3.39
विलाषी 3.2.144
विलासी 3.2.143
विलासीपक्वः 6.2.32
विलिखः 3.1.135, 3.4.13
विलीनयति 7.3.39
विलीय 6.1.51
विलुभिता केशाः 7.2.54
विलेतव्यम् 6.1.51
विलेता 6.1.51
विलेतुम् 6.1.51
विवक्ति 2.4.76, 7.4.78
विवत्सति 7.4.49
(क्षेत्रे) विवदन्ते 1.3.47
(गेहे) विवदन्ते 1.3.47
विवधिकः 4.4.17
विवधिकीं 4.4.17
विवरिषीष्ट 7.2.39
विवरीषते 7.2.40
विवर्त्तिषते 1.2.10, 1.2.26, 1.3.92, 7.2.59
विवर्द्धिषते 1.3.92
विवष्टि 2.4.76, 7.4.78
विवहनमैथु 4.3.125
(रात्रिं) विवासयति 3.1.26
विविदिवान् 7.2.68
विविदिषति 1.2.8
विविद्वान् 7.2.68
विविशिवान् 7.2.68
विविश्वान् 7.2.68
विवीषति 6.4.16
विवृत्सति 1.3.92, 7.2.59
विवृत्सत्वम् 7.2.59
विवृत्सिता 7.2.59
विवेकी 3.2.142
विवेक्ता 7.2.10
विवेद 3.1.38
विव्यचिथ 6.1.17
विव्यतुः 8.2.78
विव्यथाते 7.4.68
विव्यथिरे 7.4.68
विव्यधिथ 6.1.17
विव्याच 6.1.17
विव्याध 6.1.17
विव्युः 8.2.78
विशङ्कटे 5.2.28
(मधुनि) विशन्ति 1.3.17
विशयः 3.3.39
विशयी 3.1.134
विशशरतुः 6.4.126
विशशरतु 7.4.12
विशशरिथ 6.4.126
विशशरुः 6.4.126, 7.4.12
विशशसतुः 6.4.126
विशशसिथ 6.4.126
विशशसुः 6.4.126
विशशृवान् 7.4.12
विशश्रतुः 7.4.12
विशश्रुः 7.4.12
विशसितः 7.2.19
विशस्तः 7.2.19
विशस्ता 7.2.34
विशाखः 4.3.34
विशाखा 1.2.62
विशाखाऽनुराधा 1.2.63
विशाखे 1.2.62
विशायः 3.3.39
विशालाक्षः 5.4.113
विशालिकः 5.3.84
विशालियः 5.3.84
विशालिलः 5.3.84
विशाले 5.2.28
विशीर्णम् 7.1.100, 8.2.42, 8.2.77
विशुष्कः 6.2.144
विशृण्विरे 6.1.8
विश्नः 3.3.90, 6.4.19, 8.4.44
विश्नानाम् 6.4.23
विश्रयी 3.2.157
विश्रावः 3.3.25
विश्रुतः 6.2.148
विश्वः 1.1.27
विश्वकम् 5.3.85
विश्वके 5.3.71, 5.3.73
विश्वकैः 7.1.11
विश्वग्युक् 6.3.92
विश्वजनच्छत्रम् 6.1.76
विश्वजनीनम् 5.1.9
विश्वजनीय 5.1.9
विश्वजनीयम् 5.1.9
विश्वतःपात्रम् 8.3.49
विश्वतस्कः 8.3.50
विश्वतस्करत् 8.3.50
विश्वतस्पात्रम् 8.3.49
विश्वथा 5.3.111
विश्वदेवः 5.4.155, 6.2.106
विश्वदेवः 6.2.106
विश्वदेवाः 6.2.106
विश्वदेव्यावती 6.3.131
विश्वद्याशा 6.3.92
विश्वनरः 6.3.129
विश्वमहान् 6.2.106
विश्वमित्रः 6.2.106
विश्वमित्रो 6.3.130
विश्वम्भरा 3.2.46
विश्वयशाः 5.4.155
विश्वयशाः 6.2.106
विश्वराजः 6.3.128
विश्वराजौ 6.3.128
विश्वसितकि 5.3.76
विश्वस्मात् 1.1.27, 7.1.15
विश्वस्मिन् 7.1.15
विश्वस्मै 1.1.27, 7.1.14
विश्वस्थाः 7.3.114
विश्वस्यै 7.3.114
विश्वाची 6.3.92
विश्वाजिनः 6.2.106
विश्वामित्रः 6.3.130
विश्वामित्रा 6.2.165
विश्वाराट् 6.3.128
विश्वावसुः 6.3.128
विश्वे 7.1.17
विश्वेषाम् 1.1.27, 7.1.52
विषन्ति 8.3.87
विश्वौ 1.1.27
विषं भक्षयति 1.4.50
विषन्ति 8.3.87
विषपदी 5.4.139
विषपुच्छी 4.1.55
विषपुष्पकः 5.2.81
विषममय 4.3.82
विषमम् 6.2.121
विषमम् 2.1.17, 8.3.88
विषमरूप्य 4.3.81
विषमस्थः 3.2.3, 6.3.20
विषमीयम् 4.3.81
विषमेण धावति 2.3.18
विषयः 8.3.70
विषयी 3.1.134
विषष्वाण 8.3.69
विषसाद 8.3.66, 8.3.118

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषहते 8.3.70
विषितः 8.3.70
विषिषेविषते 8.3.70
विषीदति 8.3.66
विषीव्यति 8.3.70
विषुणोति 8.3.63
विषुप्तः 8.3.88
विषुवम् 6.4.77
विषूतिः 8.3.88
विषेवते 8.3.70
विष्कन्तव्यम् 8.3.73
विष्कन्ता 8.3.73
विष्कन्तुम् 8.3.73
विष्कब्ध 7.2.34
विष्कभ्नाति 8.3.77
विष्कम्भितव्यम् 8.3.77
विष्कम्भिता 8.3.77
विष्कम्भितुम् 8.3.77
विष्किरः 6.1.150
विष्टकर्णः 6.3.115
विष्टरो वृक्षः 8.3.93
विष्टारः 3.3.34
विष्टारपङ्क्तिः 8.3.94
विष्टारो बृहती 8.3.94
विष्टौति 8.3.70
विष्ठलम् 8.3.96
विष्णुः 5.3.99, 5.3.100
विष्णुपदम् 6.2.7
विष्णुरेनं श्रूयाद् 6.2.148
विष्णुश्रुतः 6.2.148
विष्फारः 6.1.47
विष्फालः 6.1.47
विष्फुरति 8.3.76
विष्फुलति 8.3.76
विष्यः 4.4.91
विष्यन्दते 8.3.72
विष्यात् 8.3.87
विष्वक्सेनः 8.3.99
विष्वक्सेनार्जुनौ 2.2.31
विष्वगञ्चनम् 6.3.92
विष्वजते 8.3.70
विष्वणति 8.3.69
विष्वद्र्यङ् 6.3.92
विष्वम् 6.4.77
विसखाः 3.2.67
विसर्जनात् 8.3.110
विससिता 7.2.34
विसारी देवदत्तः 5.4.16
विसारो मत्स्यः 3.3.17
विसृतम् 8.3.87
विसृपः 1.1.40, 3.4.17,8.3.110,
विस्कन्तव्यम् 8.3.73
विस्कन्ता 8.3.73
विस्कन्तुम् 8.3.73
विस्कन्नः 8.3.73
विस्तः 8.3.87
(तृण) विस्तरः 3.3.33
विस्तारः 8.3.93
विस्तरिषीष्ट 7.2.39
विस्तरो वचसाम् 3.3.33
विस्तार 8.3.94
(पटस्य) विस्तारः 3.3.33
विस्तीर्णम् 8.2.42, 8.2.77,8.4.1
विस्पष्टक 6.2.24
विस्पष्टपटुः 2.2.32
विस्पष्टब्रा 6.2.24
विस्पष्टलव 6.2.24
विस्फारः 6.1.47
विस्फालः 6.1.47
विस्फुरति 8.3.76
विस्फुलति 8.3.76
विस्फोर्यम् 8.2.1
विस्मापयति 6.1.57
विस्मापयति रूपेण 1.3.68
विस्मापयते 6.1.57
विस्मापयते जटिलः 1.3.68
विस्यन्दते 8.3.72
विस्रंसिकायाः 8.3.110
विस्रब्धः 8.3.110
विस्रम्भी 3.2.143
विस्वनति 8.3.69
विहगः 3.2.38
विहङ्गः 3.2.38
विहङ्गमः 3.2.38
विहवः 3.3.72
विहायसा 1.1.37
विह्वयते 1.3.30
विह्वरितस्त्व 7.2.33
वीकाशः 6.3.123
वीक्लेदः 6.3.122
वीक्षते 8.2.6
वीणावादकपरिवादकम् 2.4.2
वीणाशङ्खदुन्दुभयः 2.2.34
वीणी 5.2.116
वीतिः 3.3.96
वीत्तम् 6.3.124
वीपम् 6.3.97
वीमार्गः 3.3.121, 6.3.122
वीरणकन्था 2.4.20
वीरणपुष्पप्रचायिका 6.2.74
वीरणावती 6.3.119
वीरणावती 6.1.219
वीरपुरुषः 2.1.58
वीरपुरुषको ग्रामः 2.2.24
वीरबन्धु 7.3.107
वीरबन्धुतरा 6.3.44
वीरबन्धूः 4.1.66
वीरबन्धूतरा 6.3.44
वीरबन्धूनाम् 7.1.54
वीरुबन्ध्वा 6.1.175
वीरुबन्ध्वै 6.1.175
वीरुत् 7.3.53
वीवधिकः 4.4.17
वीवधिकी 4.4.17
वुवूर्षति 7.1.102, 7.2.41
वृकगर्त्तीयम् 4.2.137
वृकतिः 5.4.41
वृकप्रेक्षी 6.2.80
वृकभयम् 1.2.43, 2.1.37,2.2.30
वृकभीः 2.1.37
वृकभीतः 2.1.37
वृकभीति 2.1.37
वृकवञ्ची 6.2.80
वृकाः 5.3.115
वृकाजिनः 4.3.60
वृकाजिनः 6.2.165
वृकावलुप्तम् 6.2.145
वृकेभ्यो बिभेति 2.3.28
वृकोदरः 6.2.107
वृक्णः 8.2.3,6.1.16
वृक्णवान् 6.1.16,8.2.3
वृक्षः 1.4.110,2.4.71, 6.1.102,8.3.15, 8.3.17, 8.3.36, 8.4.68
वृक्षं वृक्षं प्रति 1.4.90
वृक्षं वृक्षं परि 1.4.90
वृक्षं वृक्षम् अनु 1.4.90
वृक्षं वृक्षमभि 1.4.91
वृक्षं परि 1.4.90
वृक्षं परि विद्योतते 2.3.10
वृक्षं प्रति 1.4.90
वृक्षं प्रति 2.1.9,2.2.1
वृक्षम् अनु 1.4.90
वृक्ष आश्रित 6.1.113
वृक्ष इदम् 8.2.3
वृक्ष इह 6.1.113
वृक्षकः 5.3.86
वृक्ष ≍ करोति 8.3.37
वृक्षः करोति 8.3.37
वृक्षः ≍ खनति 8.3.37
वृक्षः खनति 8.3.37
वृक्षता 3.4.114
वृक्षता 6.4.48
वृक्षत्वम् 3.4.114
वृक्षः पचति 8.3.37
वृक्षत्वम् 6.4.48
वृक्ष ≍ पचति 8.3.37
वृक्ष ≍ फलति 8.3.37
वृक्षः फलति 8.3.37
वृक्षमनु 2.1.15,2.1.16
वृक्षमभि 1.4.91
वृक्षमवचिनोति 1.4.51
वृक्षम् 6.1.107
वृक्षयोः 7.3.104
वृक्षवयति 8.3.17
वृक्षवान् 5.2.94,8.2.9
वृक्षवृट् 8.3.17
वृक्षव् करोति 8.3.17
वृक्षश्चिनोति 8.3.34, 8.4.40
वृक्षश्छादयति 8.3.15, 8.3.34,8.4.40
वृक्षश्शेते 8.3.36, 8.4.40
वृक्षःषण्डे 8.3.36
वृक्षष्टीकते 8.3.34, 8.4.41
वृक्षष्ठकारः 8.3.34, 8.4.41
वृक्षष्षण्डे 8.3.36, 8.4.41
वृक्षःसाये 8.3.36
वृक्षस्तरति 8.3.15, 8.3.34
वृक्षस्य 1.3.8,7.1.12 7.3.102
वृक्षस्य पत्रं 2.3.28
वृक्षस्साये 8.3.36
वृक्षा 8.3.36
वृक्षाः 1.2.64, 6.1.102,6.1.103, 6.1.104, 8.3.36,
वृक्षा अत्र 6.1.113

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वृक्षाणाम् 7.1.54, 7.3.103
वृक्षात् 1.3.4,1.3.8, 5.3.2,7.1.12, 7.1.15
वृक्षान् 6.1.102, 6.1.103,8.4.37
वृक्षाभ्याम् 1.1.21, 1.4.1,7.3.102, 7.3.103
वृक्षाय 1.1.56, 7.1.13,7.3.102
वृक्षारोही 6.2.81
वृक्षावत्र 1.1.11
वृक्षावृश्य 6.1.128
वृक्षास्थातारः 8.3.36
वृक्षा हसन्ति 8.3.22
वृक्षे 5.3.2,7.1.15
वृक्षे क्षत्र 6.1.86
वृक्षेच्छत्रम् 6.1.86
वृक्षेण 7.1.12
वृक्षेभ्यः1.4.1,7.3.103
वृक्षेषु 1.4.2,7.3.103
वृक्षैः 1.1.69,6.4.1, 7.1.9
वृक्षैः 8.2.5
वृक्षोऽत्र 6.1.113
वृक्षौ 1.2.64,6.1.85, 6.1.104
वृजिकः 4.2.131, 4.3.100
वृजिकाभार्यः 6.3.37
वृजिकामानिनी 6.3.37
वृजिकायते 6.3.37
वृजिगार्हपतम् 6.2.42
वृढम् 6.3.111
वृणाति 7.3.80
वृतः 7.2.11
वृतवान् 7.2.11
वृतो गुणो देवदत्तेन 7.2.26
वृत्ततः क्षिप्तः 5.4.46
वृत्ततः पापः 5.4.47
वृत्ततोऽतिगृह्यते 5.4.46
वृत्ततो न व्यथते 5.4.46
वृत्ततो हीयते 5.4.47
वृत्त वाहूः 4.1.67
वृत्तिमान् 5.2.101
वृत्तोरुः स्त्री 4.1.69
वृत्यः 3.1.109
वृत्यम् 3.1.110
वृत्या 3.1.101
वृत्वा 7.2.11
वृत्रहच्छत्रम् 8.2.2
वृत्रहच्छाया 8.2.2
वृत्रहणः 8.4.12
वृत्रहणि 6.4.12
वृत्रहणौ 8.4.12
वृत्रहन् 6.4.13
वृत्रहभिः 8.2.2
वृत्रहभ्याम् 8.2.2
वृत्रहा 3.2.87,6.4.13
वृत्रहायते 6.4.12
वृद्धः 7.2.15
वृद्धकाश्यपीया 1.1.73
वृद्धकुमारी 6.2.95
वृद्धजानिः 5.4.134
वृद्धपतिः 4.1.34
वृद्धपत्नी 4.1.34
वृद्धवान् 7.2.15
वृद्धा 4.1.20
वृद्धाम्भीया 1.1.73
वृद्धिगुणौ 2.2.31
वृद्धोक्षः 5.4.77
वृद्धो यूना 2.3.19
वृद्ध्यम् 3.1.110
वृध् 1.1.65
वृन्दारकः 5.2.122
वृन्दारका 7.3.45
वृन्दारिका 7.3.45
वृन्दिष्ठः 6.4.157
वृन्दीयान् 6.4.157
वृश्चति 6.1.16,6.1.66, 8.4.40
वृषः 6.1.203
वृषणश्चस्य 1.2.37
वृषणश्चस्य मेने 1.4.18
वृषण्यति 7.4.36
वृषण्वसु 1.4.18
वृषदन् 5.4.145
वृषदन्तः 5.4.145
वृषन्ति 8.4.58
वृषल 8.1.2
वृषलरूपः 5.3.66
वृषल वृषल 3 8.2.95
वृषलस्यकुलम् 6.3.21
वृषलस्य क्राथयति 2.3.56
वृषलस्य पत्नी 4.1.33
वृषलस्य पिनष्टि 2.3.56
वृषलस्योज्जासयति 2.3.56
वृषल 3 8.1.8
वृषली 4.1.63
वृषलीपुति 6.2.18
वृषलीपुत्रः 6.3.22
वृषलीब्राह्मणः 6.2.69
वृषलीभूतम् 6.3.61
वृषलेष्वासीनेषु 2.3.36
वृषल्याः पुत्रः 6.3.22
वृषस्यति गौः 7.1.51
वृषाकपायी 4.1.37
वृषाकपिः स्त्री 4.1.37
वृषाश्वे 2.2.33
वृषीयति 7.1.51, 7.4.36
वृषीष्ट 7.2.42
वृष्टिः 3.3.96
वृष्टे देवे गतः 2.2.24
वृष्णिकुमाराः 6.2.34
वृष्णो अंशु 6.1.118
वृष्यम् 5.1.7,3.1.120
वेक्ता 7.2.10
वेगः 6.1.160
वेणुः 6.1.214
वेणुकीया 6.4.153
वेणुकः 5.3.87
वेतसकीया 6.4.153
वेतस्वान् 4.2.87, 6.4.143
वेत्ता 7.2.10
वेत्ति 3.4.83
वेत्तु 3.1.41
वेत्थ 3.4.83
वेत्रकीया 6.4.153
वेत्सि 3.4.83
वेद 3.4.83
वेदः 6.1.203
वेदः 6.1.160
वेदः 3.3.121
वेदना 3.3.107
वेदपुण्यम् 6.2.152
वेदपुण्यम् 6.2.152
वेदभृताः 5.3.118
वेदयः 3.1.138
वेदयति 1.4.52
वेदवित् 3.2.61
वेदाध्यायः 3.2.1
वेदानि 7.3.87
वेदापयति 3.1.25
वेदिता 7.2.10
वेद्मि 3.4.83,8.4.45
वेपथुः 1.3.5,3.3.89
वेमनी 1.1.43
वेमन्यः 4.4.98, 6.4.168
वेला भेक्तुम् 3.3.167
वेलायद् 3.3.168
वेविच्यते 6.1.16
वेविजानि 7.3.87
वेवीयते 6.1.19
वेवेक्ति 7.4.75
वेवेष्टि 7.4.75
वेव्यते 6.1.6
वेशः 3.3.16
वेशन्तः 7.1.3
वेशोभगीनः 4.4.132
वेशोभग्यः 4.4.131, 4.4.132
वेष्टः 6.1.160
वेष्टः 3.3.121
वेष्टव्यम् 8.2.36
वेष्टा 7.2.10,8.2.36
वेष्टुम् 8.2.36
वेष्यः 5.1.100
वैकथिकः 4.4.102
वैकयः 2.4.66
वैकर्णः 4.1.117
वैकर्णिः 4.1.117, 4.1.124
वैकर्णेयः 4.1.124
वैकारिकतम् 2.2.31
वैकुलिशकः 4.2.125
वैकृतः 5.4.36
वैणवः 4.3.136
वैणवी 4.3.151
वैणिकः 4.4.55
वैणुकाः 6.4.153
वैणुकीयम् 4.2.138
वैतनिकः 4.4.11
वैतसकाः 6.4.153
वैतस्तः 4.1.113
वैत्रकाः 6.4.153
वैत्रकीयम् 4.2.138
वैदथिनः 6.4.165
वैदभृताः 5.3.118
वैदभृत्यः 5.3.118
वैदिशम् 4.2.70
वैदिशो जनपद 4.2.81
वैदूर्य्य 4.3.84
वैदेहः 4.1.168
वैदेहकम् 4.2.127
वैदेहिः 4.1.168
वैदेही 4.1.178
वैद्यी 6.4.150

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वैधूमाग्नी 4.2.76
वैनतेयः 7.1.2
वैनतेयः 4.1.113
वैनतेयः 4.1.120
वैनतेयी 41.15
वैनयिकः 5.4.34
वैन्यः 4.1.151
वैपाशः 4.1.112
वैपाशाग्न्यः 4.1.112
वैपाशो मत्स्यः 1.1.10
वैपेयविधः 4.2.54
वैभुजाग्नकः 4.2.126
वैभाजित्रम् 4.4.49
वैमनः 6.4.135, 6.4.167
वैमात्रेयः 4.1.115
वैमुक्तः 5.2.61
वैयल्कशः 7.3.4
वैयसनम् 7.3.3
वैयाकरणः 7.3.3, 4.2.59
वैयाकरणखसूचिः 2.1.53
वैयाकरणनिकायः 3.3.42
वैयाकरणपाशः 5.3.2, 5.3.47
वैयाकरणभार्यः 7.3.27
वैयाकरणरूपः 5.3.66
वैयाकरणश्चौरः 2.1.53
वैयाकरणहस्ती 6.2.64
वैयाघ्रः 4.2.12
वैयाघ्रपद्यः 1.1.57, 6.4.130
वैयातः 5.4.36
वैयादिकः 5.2.103
वैयासकिः 4.1.96
वैयुष्टम् 5.1.97
वैरकारः 3.2.23
वैराटकः 4.2.53
वैरायते 3.1.17
वैलेपिकम् 6.3.37
वैवधिकः 4.4.17
वैवधिकी 4.4.17
वैशतिकम् 5.1.27
वैशन्तीभ्यः स्वाहा 4.4.112
वैशस्त्रम् 4.4.49
वैशाखो मन्थः 5.1.110
वैश्यजातीय 5.4.9
वैश्वधेनवम् 7.3.25
वैश्वधैनवम् 7.3.25
वैश्वानरिः 6.3.129
वैश्वामित्रः 4.1.114
वैश्वामित्रम् 4.2.7
वैश्वामित्री 4.1.78
वैष्टापुरेयः 4.1.123
वैसर्पः 5.2.103
वैसारिणः मत्स्यः 5.4.16
वैहीनरिः 7.3.1
वोचेम 3.1.86,7.1.46
वोढव्यम् 6.3.112, 8.2.31
वोढा6.3.112,7.2.10, 8.2.31
वोढुम्6.3.112,8.2.31
व्यकृषत सैन्धवा 3.1.89
व्यक्तवाटुक 6.2.24
व्यक्तलव 6.2.24
व्यक्रीणीत 1.4.13
व्यजः 3.3.119
व्यतिगच्छन्ति 1.3.15
व्यतिघ्नन्ति 1.3.15
व्यतिजज्ञिध्वम् 7.2.78
व्यतिजज्ञिध्वे 7.2.78
व्यतिजज्ञिषे 7.2.78
व्यतिजज्ञिष्व 7.2.78
व्यतिजल्पन्ति 1.3.15
व्यतिपठन्ति 1.3.15
व्यतिपाकः 3.3.43
व्यतिपुनते 1.3.14
व्यतिभविषीष्ट 7.3.88
व्यतिरे 7.4.51
व्यतिलुनते 1.3.14
व्यतिशेश्यते 7.1.6
व्यतिषङ्गः 7.3.53
व्यतिसर्पन्ति 1.3.15
व्यतिसे 7.4.50
व्यतिहसन्ति 1.3.15
व्यतिहिंसन्ति 1.3.15
व्यतिहे 7.4.52
व्यतीक्षा 3.3.43
व्यतीहा 3.3.43
व्यत्यपुक्षत 7.3.73
व्यत्यरुक्षत 7.3.73
व्यत्यरे 6.4.64
व्यत्यले 6.4.64
व्यथयति 6.4.92
व्यद्धा 7.2.10
व्यद्युतत् 1.3.91
व्यद्योतिष्ट 1.3.91, 3.1.55
व्यधः 3.3.61
व्यन्तः 6.2.181
व्ययेते 6.1.78
व्यरंसिषुः 7.2.73
व्यरंसिष्टाम् 7.2.73
व्यरंसीत् 7.2.73
व्यर्णः 7.2.24
व्यवहरणचिरम् 6.2.6
व्यशारिषुः 7.2.40
व्यशारिष्टाम् 7.2.40
व्यषहत 8.3.70
व्यषीदत् 8.3.66, 8.3.119
व्यषीव्यत् 8.3.70
व्यषुणोत् 8.3.63
व्यषेवत 8.3.70
व्यष्टौत् 8.3.70, 8.3.119
व्यष्वणत् 8.3.69
व्यसीदत् 8.3.119
व्यसीव्यत् 8.3.70
व्यसीषहत् 7.3.116
व्यस्तौत् 8.3.70, 8.3.119
व्यहनि 6.3.110
व्यह्नः 6.3.110
व्यह्नि 6.3.110
व्यह्ने 6.3.110
व्याकरणकेन 5.3.95
व्याकरणाऽध्ययनाय 1.3.38
व्याकरम् 6.1.127
व्याघ्रः 3.1.137
व्याघ्रकः 5.3.81, 5.3.82
व्याघ्रपात् 5.4.138
व्याघ्रमुखः 6.2.169
व्याघ्रमुखः 6.2.169
व्याघ्रवान् 5.2.115
व्याघ्रिलः 5.3.81
व्याघ्री 2.2.19
व्याडिः 7.3.7
व्याङ्गिः 7.3.7
व्याङ्युपज्ञ 6.2.14
व्याङ्युपज्ञम् 2.4.21
व्यात्युक्षी 3.3.43
(कूलं) व्याददाति 1.3.20
(विपादिकां) व्याददाति 1.3.20
व्याददाति आस्यं 1.3.20
व्याददते 1.3.20
व्याधः 3.1.141
व्यानशाते 7.4.72
व्यानशिरे 7.4.72
व्यानशे 7.4.72
व्याभाषकः 3.2.146
व्यावक्रोशी 3.3.43, 5.4.14,7.3.6
व्यावचर्ची 3.3.43
व्यावचोरी 3.3.43
व्यावर्त्ती 7.3.6
व्यावलेखी 3.3.43, 7.3.6
व्यावहारिकः 7.3.7
व्यावहासी 3.3.43, 5.4.14,7.3.6
व्याहरणकृच्छ्रम् 6.2.6
व्याहरणने 6.2.21
व्याहरणप्रिय 6.2.15
व्याहरणसु 6.2.15
व्याहरणाबा 6.2.21
व्याहरणाशङ्क 6.2.21
व्युष्टत्रिरात्रः 6.2.81
व्यूढोरस्कः 5.4.151
व्येमानम् 6.4.120
व्रजः 3.3.119
व्रजति च जल्पति च 3.4.21
व्रजोपरोधं गाः 3.4.49
व्रज्या 3.3.98
व्रतयति 3.1.21
व्रतयति पयः 3.1.21
व्रष्टव्यम् 8.2.36
व्रष्टा 8.2.36
व्रष्टुम् 8.2.36
व्रातीनः 5.2.21
व्राहिवापानि 8.4.11
व्रीणः 8.2.45
व्रीणवान् 8.2.45
व्रीहयः 4.3.166
व्रीहिकः 5.2.166
व्रीहिप्रस्थः 6.2.12
व्रीहिभिर्यजेत 8.1.63
व्रीहिमान् 5.2.116
व्रीहिमताः 2.4.62, 5.3.113
व्रीहिमती 5.3.113, 6.3.119
व्रीहिमय 4.3.148
व्रीहियवम् 2.4.12
व्रीहियवौ 1.2.58, 2.4.12
व्रीहिवापाणि 8.4.11
व्रीही 5.2.116

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्रैहः 4.3.136
व्रैहम् 4.3.148
व्रैहिपलालि 4.3.11
व्रैहिमत्यः 5.3.113
व्रैहिमत्यौ 5.3.113
व्रैहेयम् 5.2.2
व्लिनाति 7.3.80
व्लेपयति 7.3.86

श

शं देवदत्तस्य 2.3.73
शं देवदत्ताय 2.3.73
शंयः 5.2.138
शंयुः 5.2.138
शंयुवाकः
शंवदः 3.2.14
शंवान् 8.2.9
शंशमंशंश० 6.4.93
शंशान्तः 6.4.15
शंशामंशंशामं 6.4.93
शंसिता 7.2.34
शंस्ता 7.2.34
शंस्तृ 7.2.34
शंस्थः 3.2.77
शंस्थाः 3.2.77
शंस्यम् 3.1.109
शंस्यंम् 6.1.214
शकटवर्त्म 6.2.151
शकटिः 4.1.45
शकटी 4.1.45
शकटे आस्ते 2.3.36
शकट्याम् 6.1.177
शकन्धुः 6.1.94
शकलाकृत्य 1.4.61
शकलाङ्गुष्ठोऽकरत् 3.1.59,3.4.6,7.4.16
शकह्यर्थम् 6.1.108
शकह्यौ 6.1.108
शका 7.3.44
शकितो घटः कर्तुम् 7.2.17
शकुनिसवन० 8.3.108
शकृत् करिर्वत्सः 3.2.24
शकृत् कारः 3.2.24
शकृत्पदी 5.4.139
शकृन्ति 7.1.72
शकेयम् 3.1.86
शक्तम् 7.2.17
शक्ता 7.2.62
शक्तिके3 8.1.8
शक्तिग्रहः 3.2.9
शक्तो घटः कर्तुम् 7.2.17
शक्तो मल्लो 2.3.16
शक्नुमः 6.4.107
शक्नुयात् 6.4.77
शक्नुवः 6.4.107
शक्नुवन्ति 6.4.77
शक्नोति भोक्तुम् 3.4.65
शक्नोऽवद्यति 6.1.63
शक्यम् 3.1.99
शक्यमेव कुर्त्तम् 3.4.66
शक्रगः 3.2.8
शक्रगी 3.2.8
शक्रसङ्गायः 3.2.8
शङ्करः 3.2.14
शङ्करा 3.2.14
शङ्कव्यं दारु 5.1.2
शङ्कव्यं 6.1.79
शङ्कव्यम् 5.1.12, 6.4.146
शङ्कितव्यम् 8.4.58
शङ्किता 8.4.58
शङ्कितुम् 8.4.58
शङ्कुकर्णः 6.2.112
शङ्कुकर्णी 4.1.64
शङ्कुलाखण्डः 1.2.43, 2.1.30,2.2.30
शङ्कुलाखण्डः 6.2.2
शङ्कुष्ठः 8.3.97
शङ्खः 7.1.2
शङ्खदुन्दुभिवीणाः 2.2.34
शङ्खनूपुरिणी 5.2.128
शङ्खनूपु० 5.4.68
शङ्खपुष्पी 4.1.64
शङ्खप्रस्तारः 3.3.32
शङ्खभिन्नी 4.1.53
शङ्खवीणादुन्दुभयः 2.2.34
शचीपतिः 6.2.140
शणकबाभ्रवा 6.2.37
शणपादः 6.2.81
शणफला 4.1.4
शण्ड्रामर्कौ 6.2.140
शतं दायी 2.3.70, 3.3.170
शतं पणते 2.3.57
शतं प्रति० 1.3.46
शतं प्रतिदी० 2.3.59
शतं विनयते 1.3.36
शतं सङ्गिर० 1.3.52
शतं सङ्गा० 1.3.46
शतकम् 5.1.21
शतकृत्वः 5.4.17
शतक्रतवः 7.3.109
शतक्रत्वः 7.3.109
शतखाः 6.4.41
शततमः 5.2.57
शतधनुः 5.4.133
शतधन्वा 5.4.133
शतधार 8.4.4
शतधारो अयम् 6.1.116
शतपथः 5.3.100
शतपथिकः 4.2.60
शतपथिकी 4.2.60
शतपदी 5.4.139
शतपुष्पा 4.1.4
शतभिषः 4.2.8
शतभिषक् 4.3.36
शतभिशक्सेनः 8.3.100
शतम् 5.1.59
शतरवाः 6.4.41
शतरुद्रीयम् 4.2.28
शतसूः 3.2.61
शतस्य दीव्यति 2.3.58
शतस्य दीव्य 2.3.59
शतस्य पणते 2.3.57
शतस्य प्रति 2.3.59
शतस्य व्यव 2.3.57
शतस्वः 6.4.83
शतस्वौ 6.4.83
शताद् बद्धः 2.3.24
शतानि 1.1.24
शताय परिक्रीतः 1.4.44
शतिकः 2.3.1,5.1.38, 5.1.47,5.1.57, 5.1.63
शतिकम् 4.3.156, 5.1.21,5.1.37
शतृ 1.4.99
शतेन परिक्रीतः 1.4.44
शतेन बन्धितः 2.3.24
शत्ता 7.2.10
शत्य 2.3.1
शत्यः 5.1.38,5.1.47, 5.1.63
शत्यम् 4.3.156, 5.1.20,5.1.21, 5.1.37
शत्रुंसहः 3.2.46
शत्रुघातः 3.2.49
शत्रुजित् 3.2.61
शत्रुञ्जयः 3.2.46
शत्रुदमनः 3.1.134
शत्रुन्तपः 3.2.46
शत्रुहः 3.2.49
शत्रून् पराजयते 1.4.26
शत्स्यति 1.3.60
शद्रुः 3.2.159
शनकैः 5.3.71
शनैर्गङ्गम् 2.1.21
शन्तः 5.2.138
शन्तातिः 4.4.143
शन्ताति 4.4.144
शन्तिः 5.2.138
शन्तुः 5.2.138
शन्नो देवी 1.2.36
शपति 1.3.21
शपते देवदत्ताय 1.3.21
शपते यज्ञदत्ताय 1.3.21
शप्ता 7.2.10
शप्यम् 3.1.98
शफरीयम् 4.2.90
शफोरुः 4.1.70
शबराः 5.3.114
शबलगुः 1.2.48, 2.2.23,2.2.35, 5.4.73,7.1.90
शबली 4.1.40
शब्दकारः 3.2.23
शब्दनः 3.2.148
शब्दप्राट् 3.2.178, 6.4.19,8.2.36
शब्दानामनुशा 2.3.66
शब्दायते 3.1.17
शभी 4.1.41
शमं शमम् 6.4.93
शमः 5.2.37,7.3.34
शमः 6.1.203
शमकः 7.3.34
शममान्नम् 5.2.37
शमयति 6.4.92
शमयिता 6.4.54, 6.4.62
शमयिषीष्ट 6.4.62
शमयिष्यते 6.4.62
शमितः 7.2.27
शमिता 6.4.54
शमित्वा 7.2.56
शामिषीष्ट 6.4.62
शमिष्ठलम् 8.3.96
शमिष्यते 6.4.62
शमी 3.2.141,7.3.34
शमीं च 6.1.107
शमीजः 6.2.82
शमीध्वम् 7.3.95

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शमीनिवातम् 6.2.8
शमीम् 6.1.107
शमीरः 5.3.88
शमीवान् 8.2.9
शमुअस्तु 8.3.33
शम्बः 5.2.138
शम्बगाधम् 6.2.4
शम्बाकरो 5.4.58
शम्भः 5.2.138
शम्भवः 3.2.14
शम्भुः 3.2.180
शम्यः 5.2.138
शम्यत्र 1.1.12
शम्यम् 6.1.107
शम्वस्तु 8.3.33
शयण्डाः 5.3.114
(अहिः) शयते 2.4.73
शयनम् 3.3.115
शयनात् प्रेक्षते 2.3.28
शयाते 7.4.21
शयाना भुञ्जते 3.2.126
शयान्तै 7.1.5
शयालुः 3.2.158
शयितः 1.2.19, 3.2.188
शयितम् 3.3.114
शयितवान् 1.2.19
शयितव्यं भवता 3.4.70
शयिता 7.2.10
शये 7.1.41
शयै 3.4.96
शय्यते 7.4.22
शय्यते भवता 3.1.66
शय्या 3.3.99
शय्या 8.4.64
शय्योत्थाय धावति 3.4.52
शय्य्या 8.4.64
शरः 3.3.57, 4.1.175, 6.3.120
शरकाण्डगौरी 6.2.2
शरकाण्डम् 6.2.135
शरकुण्डम् 6.2.136
शरघातम् 3.4.37
शरजः 6.3.16
शरण्यः 4.4.98
शरदिजः 6.3.14
शरधिः 3.3.93
शरनिवासः 8.4.39
शरनिवेशः 8.4.39
शरपुच्छी 4.1.55
शरभकः 5.3.81
शरमय 4.3.144
शरमयम् 4.3.150
शरलावः 3.2.1
शरलावः 6.2.75
शरलोमा 4.1.85
शरवण 8.4.5
शरवाहणम् 8.4.8
शरशादम् 2.2.34
शराग्निः 8.4.39
शरादिः 6.3.120
शरारुः 3.2.173
शरावती 6.3.120
शरावती 6.1.219
शरावान् 6.1.219
शरेजः 6.3.16
शर्करा 4.2.83
शर्करावान् 5.2.105
शर्करिकः 4.2.83
शर्करिलः 5.2.105
शर्करीयम् 4.2.83, 4.2.84
शर्वकरिकम् 4.2.80
शर्त्स्यति 7.2.59
शर्द्धऋहाः 3.2.28
शर्म्मणा 6.4.144
शर्म्मणे 6.4.144
शर्वरी 4.1.7
शर्वाणी 4.1.49
शलङ्कम् 4.1.99
शलभच्छायाम् 2.4.22
शलभोत्थः 3.2.4
शलाकां व्यव० 2.3.57
शलाकापरि 2.1.10
शलालुकः 4.4.54
शलालुकी 4.4.54
शलिता 7.2.9
शलितुम् 7.2.9
शल्कः 7.2.9
शशःक्षुरम् 8.3.35
शशवत्थ 7.2.62
शशप्लुतम् 6.2.145
शशाम 7.3.34
शशासतुः 6.4.34
शशासुः 6.4.34
शशृधे 6.4.66
शश्रमतुः 6.4.120
शश्रमुः 6.4.120
शश्वच्चकार 3.2.116
शश्वत्तमः 6.1.160
शश्वदकरोत् 3.2.116
शष्कुलीमयम् 5.4.122
शष्कुलीमयः 5.4.22
शस्त्रपत्रस्योपस्कुरुते 2.3.53
शस्त्रम् 3.2.182
शस्त्रीश्यामा 6.2.2
शस्त्रीश्यामा 2.1.55
शस्त्रेण भेत्ता 2.3.65
शस्यम् 3.1.97, 3.1.109
शांशपः 7.3.1
शांशपास्थलाः 7.3.1
शांशित्यायनी 4.1.18
शाकं 8.1.55
शाकजम्बुकः 4.2.120
शाकटः 4.4.80
शाकटायनपुत्रः 6.2.133
शाकटिकः 4.4.8
शाकपणः 3.3.66
शाकपार्थिवः 2.1.60
शाकप्रति 2.1.9
शाकमय 4.3.144
शाकलः 4.3.128
शाकलकः 4.3.128
शाकलम् 4.2.2
शाकलसणकाः 6.2.37
शाकलिकः 1.2.8, 4.3.25
शाकलिकम् 4.2.2
शकलिका 4.2.117
शाकलिकी 4.2.117
शाकलो घोष 4.3.128
शाकल्यस्य 2.3.8
शाकल्यायनी 4.1.18
शाकुनिकः 1.1.58, 4.4.35
शाकुलिकः 4.4.35
शाकृत्कः 7.3.51
शाक्तीकः 4.4.59
शाक्तीक3 8.2.103
शाङ्कुपथिक 5.1.77
शाक्तिकी 4.1.15
शाख्यः 5.3.103
शाङ्गिनः 6.4.166
शाटीपिच्छक 2.4.11
शाट्यायनिनः 4.2.66, 4.3.105
शाण्डिक्य 1.3.7, 4.3.92
शातकौम्भः 7.3.20
शातपतम् 4.1.84
शातपथः 4.2.60
शातभिषः 4.2.8
शातभिषजः 4.2.8, 4.3.36
शातमानम् 5.1.27
शातयति 7.3.42
शातिकः 2.3.1
शात्यः 5.1.57
शादयति गोपालकः गाः 7.3.42
शाद्वलम् 4.2.88
शाधि 6.4.22
शान्तः 6.4.15, 6.4.37, 7.2.27
शान्तवान् 6.4.15, 6.4.37
शान्ता 6.4.15
शान्तिः 6.1.203
शान्तिः 6.4.15
शान्तिवाचनम् 5.1.111
शान्त्वा 6.4.15, 7.2.56
शाप्पिण्डिनिकायः 6.2.94
शाफरिकः 4.4.35
शाबरजम्बुकः 4.2.119
शाब्दिकः 4.4.34
शामं 6.4.93
शामिता 6.4.62
शामिषीष्ट 6.4.62
शामिष्यते 6.4.62
शामीलम् 4.3.142, 4.3.155
शामीली 4.3.142
शामीवत्यः 5.3.118
शाम्बरजम्बुकः 7.3.51
शाम्यति 7.3.74
शाम्यध्वम् 7.3.95
शाययति 1.4.52, 1.3.88
शायिका 3.3.108
(भवतः) शायिका 3.3.111
शायितं भवता 3.4.70
शारदः 4.3.13, 4.3.44
शारदकः 4.3.27
शारदण्डीः 4.1.173
शारदम् 4.3.12, 4.3.27, 5.1.96
शारदिकः 4.2.63, 4.3.13
शारदिकम् 4.3.12
शारद्वतः 4.1.102
शारद्वतायनः 4.1.102

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शारलोमाः 4.1.85
शारलोमिः 4.1.85
शारावः (ओदनः) 4.2.14
शारिका वण० 8.4.4
शारिकुक्षः 5.4.120
शारो वर्णः 3.3.21
शारो वायुः 3.3.21
शार्करः 5.2.105
शार्करकम् 4.2.83
शार्करम् 4.2.83, 5.2.104, 5.2.105, 5.3.107
शार्कराक्ष्या 4.1.74
शार्करिकम् 4.2.83, 4.2.84
शार्करीधानम् 4.2.109
शार्ङ्गजग्धा 4.1.53
शार्ङ्गजग्धी 2.2.36, 4.1.53
शार्ङ्गधन्वा 5.4.132
शार्ङ्गम् 8.4.64, 8.4.65
शार्ङ्गरवि 7.3.103
शार्ङ्गरवी 1.4.3, 4.1.2, 4.1.73, 6.4.148
शार्ङ्गरवीणाम् 7.1.54
शार्ङ्गरव्याशा 8.2.4
शार्ङ्गवेरिकम् 4.4.3, 4.4.22
शालङ्कायनः 4.1.99
शालङ्कायनाः 5.3.144
शालङ्किः 4.1.99
शालपर्णी 4.1.64
शालभञ्जिका 3.3.109
शालभञ्जिका 6.2.74
शालमय 4.3.144
शालाकिकः 4.4.2, 6.1.165, 7.2.118, 7.3.50
शालाकिकी 4.1.15
शालातुरीयः 1.3.10
शालातुरीय 4.3.94
शालाप्रस्थः 6.2.88
शालाबिलम् 6.2.102
शालालुकः 4.4.54
शालालुकी 4.4.54
शालावताः 5.3.118
शालावत्यः 5.3.118
शालिकः 5.2.116
शालिनः 5.2.116
शालिमान् 5.2.116
शाली 5.2.116
शालीनः 5.2.20
शालीनां 8.1.19
शालीयः 1.1.1, 1.1.73, 4.2.114
शालेयम् 5.2.2
शाल्मलयः 4.2.82
शाल्मलिकी 4.2.141
शाल्मलिमुनिः 6.2.85
शाल्वम् 4.3.166
शाशय्यते 7.4.22
शाश्वतः 6.4.144
शाश्वतिकः 6.4.144
शाष्कुलिकः 4.3.96, 4.4.51, 4.4.61, 4.4.65, 4.4.66, 5.4.22
शाष्कुलिकम् 4.2.47, 5.4.22
शासति 6.1.6, 6.4.34
शास्ति 6.4.34, 8.3.60
शास्त्रकृत् 3.2.89
शिंषन्ति 1.1.58
शिक्यम् 1.2.31
शिक्षकः 4.2.61
शिक्षति 7.4.54
(विद्यासु) शिक्षते 1.3.21
शिक्षा 1.4.1, 1.4.11
शिक्षाणः 8.4.27
शिक्ष्ये 7.4.21
शिखया परिव्राजकम् 2.3.21
शिखरदन् 5.4.145
शिखरदन्तः 5.4.145
शिखवला स्थूणा 5.2.113
शिखावलम् 4.2.89, 5.2.113
शिखावान् 5.2.96
शिखी 5.2.116
शिण्ढि 1.1.58, 8.4.65
शितिककुत् 6.2.138
शितिकण्ठः 6.2.114
शितिनाः 5.4.118
शितिपादः 6.2.138
शितिभसत् 6.2.138
शितिब्राह्मणी 4.1.39
शितिललाटः 6.2.138
शित्यंसः 6.2.138
शित्योष्ठः 6.2.138
शिनिवासुदेवाः 6.2.34
शिबयः 5.3.112
शिरः 6.1.60
शिरःपेषः युध्यन्ते 3.4.55
शिरः प्रति० 3.4.55
शिरश्छेद्यः 5.1.65
शिरस्पदम् 8.3.47
शिरस्पदी 8.3.47
शिरस्यति 6.1.61
शिरस्याः 6.1.61
शिरीषवणम् 8.4.6
शिरीषवनम् 1.2.51, 8.4.6
शिरीषाः 4.2.82
शिरो अव 6.1.115
शिरोग्रीव 2.4.17
शिरोग्रीवम् 2.4.2
शिरोबीजम् 2.2.31
शिरोर्त्तिः 3.3.108
शिलप्रस्थम् 6.3.63
शिलवहम् 6.3.63
शिलेयः 5.3.102
शिवः 5.3.99, 5.3.100
शिवतातिः 4.4.143, 4.4.144
शिवदत्तपुर० 6.2.99
शिवपुरम् 6.2.99
शिववैश्रवणौ 2.4.14, 6.3.25
शिवासो अव 6.1.116
शिशत्सति 1.3.60, 1.3.62
शिशयिषते 1.2.8, 1.3.62
शिशुः 4.1.20
शिशुक्रन्दीय 4.3.88
शिशुमारी 8.4.48
शिशृत्सति 7.2.59
शिश्याते 6.1.186
शिश्यिरे 6.1.187
शिश्ये 6.1.186, 7.4.21, 7.4.22
शिश्रावयिषति 7.4.81
शिश्रिवान् 7.2.67
शिश्राय 1.1.44, 6.1.30
शिश्रायथि 6.1.31
शिश्रियतुः 1.1.44, 6.1.30
शिष्टः 6.4.34, 8.3.60
शिष्टवान् 6.4.34, 8.3.60
शिष्मः 6.4.34
शिष्यः 3.1.109
शिष्येण सहोपाध्यायस्य 2.3.19
शिष्व 6.4.34
शीकायते 3.1.17
शीघ्रगङ्गो देशः 2.1.21
शीघ्रायते 3.1.12
शीतः 6.1.24, 8.2.47
शीतकः 5.2.72, 5.2.81
शीतभोजी 3.2.78
शीतम् 6.1.24
शीतालुः 5.2.122
शीतोदकम् 6.2.96
शीतोष्णम् 2.4.13
शीतोष्णे 2.4.14
शीतोष्णे उदके 2.4.14
शीधुपः 3.2.8
शीधुपी 3.2.8
शीनम् 6.1.24, 8.2.47
शीना 6.1.24
शीयते 1.3.60, 7.3.78
शीयन्ते 1.3.60
शीयेते 1.3.60
शीर्णिः 8.2.44
शीर्ण्णिः 3.3.93
शीर्षघाती 3.2.51
शीर्षच्छेद्यः 5.1.65
शीर्षण्यः 6.1.61
शीर्षण्याः 6.1.61
शीर्षण्वता 6.1.176
शीर्षण्वती 8.2.16
शीर्ष्णा 6.1.60
शीलितः 3.2.188
शीशांसते 3.1.6
शुकस्य 2.2.11
शुक्रः 8.2.18
शुक्रमसि 6.1.151
शुक्रामन्थिनौ 6.2.142
शुक्रियं हविः 4.2.26
शुक्रियोऽध्यायः 4.2.26
शुक्लः 8.2.18
शुक्लं वस्त्रम् 8.1.28
शुक्लकर्णः 6.2.111
शुक्लकृष्णौ 2.4.14
शुक्लतमे 6.3.17
शुक्लतरे 6.3.17
शुक्लता 5.1.123
शुक्लत्वम् 5.1.123
शुक्लानि 1.2.69, 8.1.63
शुक्ला व्रीहयो 8.1.63
शुक्लिमा 5.1.123
शुक्लीकरोति 1.4.61, 5.4.50, 7.4.32, 8.1.57

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शुक्लीकृतम् 1.4.61
शुक्लीकृत्य 1.4.61
शुक्लीभवति 5.4.53, 5.4.50,7.4.32
शुक्लीस्यात् 5.4.50, 7.4.32
शुचये 7.1.73
शुचि 6.3.120,7.1.74
शुचिनः 7.1.73
शुचिना 7.1.73
शुचिनि 7.1.73
शुचिने 7.1.73
शुचिनोः 7.1.73
शुचिरियम् 4.1.44
शुचिषत् 3.2.61
शुचीकरोति 7.4.26
शुची भवति 7.4.26
शुचीस्यात् 7.4.26
शुचेः 7.1.73
शुचौ 7.1.73
शुच्योः 7.1.73
शुण्डारः 5.3.88
शुद्धदन् 5.4.145
शुद्धदन्तः 5.4.145
शुनः 6.4.133
शुनः पुच्छः 6.3.21
शुनः शेपः 6.2.140
शुनः शेपः 6.3.21
शुनकधात्रेयाः 6.2.37
शुनस्कर्णः 8.3.48
शुनां 6.1.182
शुना 6.4.133
शुनासीरीयम् 4.2.32
शुनासीर्यम् 4.2.32
शुनिन्धयः 3.2.28
शुनें 6.1.182
शुने 6.4.133
शुनोलाङ्गूलः 6.3.21
शुन्यम् 5.1.2
शुभंयः 6.4.140
शुभंयाः 3.2.74,4.1.4, 4.1.95,6.4.140, 7.3.45
शुभंयिका 7.3.45
शुभंयुः 5.2.140
शुभंये 6.4.140
शुभति 7.1.59
शुभ्रदन् 5.4.145
शुभ्रदन्तः 5.4.145
शुम्भति 7.1.59
शुशाव 1.1.44,6.1.30
शुशावयिष 6.1.31
शुशुवतुः 1.1.44, 6.1.30
शुश्रावयिषति 7.4.81
शुश्रुम 7.2.13
शुश्रुव 7.2.13
शुश्रूषति 7.4.81
शुश्रूषते गुरुम् 1.3.57
शुश्रूषते देवदत्तं 1.3.59
शुश्रूषेण्यः 3.4.14
शुश्रोथ 7.2.13
शुष्कंः 6.1.206
शुष्कः 8.2.57
शुष्कगोमयेण 8.4.38
शुष्कजङ्घा 8.2.1
शुष्कपेषं पिनष्टि 3.4.35
शुष्कमुंखः 6.2.110
शुष्कवान् 8.2.51
शुष्किका 8.2.1
शुष्यन्ति 1.3.88
शूकरी 4.1.14
शूद्रकः 5.3.75
शूद्रा 4.1.4
शूद्रार्थम् 2.2.31
शूद्री 4.1.4
शूनः 6.1.15,7.2.14
शूनवान् 6.1.15, 7.2.14
शूनोलाङ्गूल 6.3.21
शून्यम् 5.1.2
शूरसेनी 4.1.176
शूर्पणखा 4.1.58,8.4.3
शूलाकरोति 5.4.65
शूल्यं मांसम् 4.2.17
शृगालगर्त्तीयम् 4.2.137
शृङ्खलकः 5.2.79
शृङ्गाच्छरो जायते 1.4.30
शृङ्गारकः 5.2.122
शृङ्गिणः 5.2.114
शृङ्गी 4.2.82
शृणाति 7.3.80
शृणुतः 3.1.74
शृणुधी 6.4.102
शृणोत 6.3.133, 7.1.45
शृणोति 1.3.57,3.1.74
शृण्वन्ति 3.1.74
शृतम् 6.1.27
शेकिथ 3.4.115, 6.4.121,7.2.63
शेकिवान् 7.2.67
शेकुण्ठः 8.3.97
शेते 1.3.12,1.3.62, 1.3.78,7.1.41, 7.2.35,7.4.21
शेतें 6.1.186
शेयम् 7.4.22
शेरताम् 7.1.6
शेरते 7.1.6,7.4.21
शेवलिकः 5.3.84
शेवलियः 5.3.84
शेवलिलः 5.3.84
शेश्वीयते 6.1.30
शेष्टा 7.2.10
शैंशपम् 4.3.141
शैक्षितः 4.1.113
शैखण्डाः 6.4.144
शैखावत्यः 5.3.118
शैग्रवाः 2.4.67
शैतबाहेयः 6.4.147
शैतिकाक्ष० 6.2.37
शैबः 4.2.52,4.2.69
शैब्यः 5.3.112
शैब्यौ 5.3.112
शैभनेयः 4.1.113
शैरीषम् 4.3.141
शैर्षच्छेदिकः 5.1.65
शैलपुत्री 6.3.70
शैलालम् 4.3.110
शैलाला 6.4.144
शैलालिनः 4.2.66, 4.3110
शैलेयम् 5.3.102
शैवः 4.1.112
शैवपुरम् 4.2.109
शैवरूप्यम् 4.2.106
शैव्यी 4.1.73
शैशिरम् 4.3.16, 4.3.43
शैष्यकम् 4.3.77
शैष्योपाध्यायिका 5.1.133
शोककरी 3.2.20
शोकापनुदः 3.2.5
शोकापनोदः 3.2.5
शोचनः 3.2.150
शोणा 4.1.43
शोणी 4.1.43
शोद्धा 7.2.10
शौनकायनः 4.1.102
शोभनः 3.1.134
शोभनकर्णः 6.3.115
शोभनम् 3.3.115
शोशूयते 6.1.30
शोष्टा 7.2.10
शौकेयी 4.1.178
शौक्रेयः 5.3.117
शौक्ल्यम् 5.1.123
शौङ्गः 4.1.117
शौङ्गिः 4.1.117
शौङ्गेयः 4.1.117
शौचम् 5.1.131
शौचिवृक्षी 4.1.81
शौचिवृक्ष्या 4.1.81
शौण्डिकः 4.3.76
शौतिकाक्षपाञ्चालेयाः 6.2.37
शौदायणः 4.2.54
शौनकः 4.1.102
शौनकिनः 4.3.106
शौनकोऽन्यः 4.1.102
शौनकीया 4.3.106
शौन्तिबाहेयः 4.1.135
शौभ्रेयः 4.1.123
शौभ्रेयी 4.1.178
शौर्पम् 5.1.26
शौर्पिकम् 5.1.26
शौल्कमाथिकः 4.4.37
शौल्कशालिकः 4.3.75, 4.4.50
शौल्कशालिकः 4.4.69
शौल्कशालकम् 4.4.47
शौवः 6.4.144
शौवनः 6.4.144
शौवनम् 7.3.4
शौवम् 6.4.133,7.3.4
शौवस्तिक 4.3.15
शौवस्तिकम् 4.2.105
शौवदंष्ट्रः (मणिः) 7.3.4
शौवापदम् 7.3.9
श्मशानम् 6.3.109
श्मश्रुकल्प० 6.2.139
श्मश्रुकेशौ 2.2.31
श्माशनिकः 4.4.71
श्यामगवः 4.1.92
श्यामाकिकः 4.4.32
श्यामायनकः 4.2.124
श्यामायनिनः 4.3.104
श्यालपुत्रः 6.2.133
श्यावदन् 5.4.144
श्यावदन्तः 5.4.144
श्येतयति 6.4.155
श्येता 4.1.39
श्येतायते 6.3.36

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्येनकपोतीय 4.3.88
श्येनचित् 3.2.91
श्येनपातः 6.3.71
श्येनी 4.1.39
श्येनायते 3.1.11
श्यैनम्पाता 4.2.58, 6.3.71
श्यैनेयः 6.3.35,
श्रत्करोति 5.4.57
श्रथित्वा 1.2.23
श्रथ्नाति 3.1.89
श्रद्दधे 3.3.155
श्रद्धा 1.4.59, 3.3.104, 3.3.106
श्रद्धातपसी 2.4.14
श्रद्धामेधे 2.2.34, 2.4.14
श्रद्धालुः 3.2.158
श्रद्धावान् 5.2.101, 5.2.115
श्रन्थना 3.3.107
श्रन्थिः 3.3.107
श्रन्थित्वा 1.2.23
श्रन्थीते ग्रन्थः स्वयमेव 3.1.89
श्रपिता 6.1.27
श्रमी 3.2.141
श्रयितव्यम् 7.2.11
श्रयिता 7.2.10, 7.2.11
श्रयितुम् 7.2.11
श्रवः 3.3.25
श्रवणा रात्रिः 4.2.5
श्रविष्ठः 4.3.34
श्राणा 6.1.27
श्राणाकंसः 6.2.71
श्राणिकः 4.4.67
श्राणिकी 4.4.67
श्रातः 6.1.36
श्राद्धः 5.2.101
श्राद्धकरः 3.2.20
श्राद्धम् 5.1.110
श्राद्धाय निग० 1.4.32
श्राद्धिकः 5.2.85
श्राद्धी 5.2.85
श्राम्यति 7.3.74
श्रायः 3.3.24
श्रायसम् 7.3.1
श्रावणः 4.2.23
श्रावणः शब्दः 4.2.92
श्रावणिकः 4.2.23
श्रावणी रात्रिः 4.2.5
श्राविष्ठीयः 4.3.34
श्रितः 7.2.11
श्रितम् 6.1.36
श्रितवान् 7.2.11
श्रित्वा 7.2.11
श्रियध्यै 3.4.9
श्रियः 1.1.72
श्रियम्मन्यः 6.3.68
(गवामिव) श्रियसे 3.4.9
श्रियाम् 1.4.5
श्रिये 1.4.6
श्रियै 1.4.6
(हे) श्रीः 1.4.4
श्रीः 3.2.178
श्रीकुलम् 6.3.61
श्रीणाम् 7.1.56
श्रीस्रजम् 5.4.106
श्रुतिः 3.3.93
श्रुधी 6.4.102
श्रुवः 6.4.20
श्रुवौ 6.4.20
श्रूः 6.4.20
श्रूतः 6.4.20
श्रूतवान् 6.4.20
श्रूतिः 6.4.20
श्रूयते 1.2.28
श्रेणिकृताः 2.1.59
श्रेणिकृतम् 6.2.46
श्रेणिकृताः 6.2.46
श्रेथतुः 1.2.6, 6.4.122
श्रेथुः 1.2.6, 6.4.122
श्रेयन् 6.4.10
श्रेयसः 7.1.70
श्रेयसितरा 6.3.45
श्रेयसीतरा 6.3.45
श्रेयस्कः 5.4.29
श्रेयस्तरा 6.3.45
श्रेयांसः 6.4.10, 7.1.70
श्रेयांसि 6.4.10, 7.1.72
श्रेयांसौ 6.4.10, 7.1.70
श्रेयान् 5.3.60, 6.4.10, 7.1.70, 8.2.23
श्रेष्ठः 5.3.60
श्रेष्ठतमाय 5.3.55
श्रोत्रियकुलीनः 4.1.139, 7.1.2
श्रोत्रियपुत्र 6.2.1
श्रौत्रम् 5.1.130
श्रौमत्यः 5.3.118
श्र्यर्थम् 1.4.13
श्लक्ष्णकेशीया० 6.3.40
श्लक्ष्णकेशीभा० 6.3.40
श्लक्ष्णचूडः 6.3.34
श्लक्ष्णमुखजातीया 6.3.42
श्लक्ष्णमुखदेशीया 6.3.42
श्लक्ष्णमुखवृन्दारिका 6.3.42
श्लक्ष्णयति 3.1.21
श्लक्ष्णसक्थ 6.2.198
श्लेषः 3.1.141
श्लेष्टा 7.2.10
श्लेष्मघ्नं (मधु) 3.2.53
श्लैष्मिकम् 5.1.38
श्लोककारः 3.2.23
श्वः करिष्यति 3.3.131
श्वकर्त्ता 3.3.15
श्वः कर्त्ता 8.1.29
श्वः कर्त्तारौ 8.1.29
श्वः कर्त्तासि 2.4.85
श्वः कल्पा 7.2.60
श्वः कारः 8.3.45
श्वः क्षिप्र० 3.3.133
श्वः श्रेयसम् 5.4.80
श्वगणिकः 4.4.10
श्वगणिका 4.4.10
श्वचण्डाल 2.4.11
श्वठः 6.1.216
श्वनिशम् 2.4.25
श्वनिशा 2.4.25
श्वपाकः 7.3.53
श्वभोक्ता 3.3.15
श्वभ्याम् 6.1.182
श्वभ्रेदर 6.1.160
श्वयथुः 1.3.5, 3.3.89
श्वयिता 7.2.10
श्वलिट् 8.4.56
श्वलिट् छेते 8.4.63
श्वलिट्शेते 8.4.63
श्वलिट् साये 8.3.29
श्वलिट्त् साये 8.3.29, 8.4.42
श्वलिड् 8.4.45, 8.4.56
श्वलिडत्र 8.2.39
श्वलिड् ढसति 8.4.62
श्वलिड्ढौकते 8.3.13
श्वलिड्नयति 8.4.45
श्वलिड् हसति 8.4.62
श्वलिण्नयति 8.4.45
श्वलेह्यः 2.1.33
श्वशुरौ 1.2.71
श्वशुर्यः 4.1.137
श्वशृगालम् 2.4.9
श्वश्रूः 4.1.68
श्वश्रूश्वशुरौ 1.2.71
श्वश्रूसुखम् 6.2.44
श्वसितः 6.1.188
श्वसन्ति 6.1.188
श्वसन्ति 6.1.188
श्वसितकि 5.3.76
श्वसिति 7.2.76
श्वस्तनः 4.3.15
श्वस्तनम् 4.2.105
श्वस्त्यः 4.3.15
श्वस्त्यम् 4.2.105
श्वाकर्णः 6.3.137
श्वाकुन्दः 6.3.137
श्वागणिकः 4.4.10, 7.3.8
श्वागणिकी 4.4.10
श्वादंष्ट्रः 6.3.137
श्वादंष्ट्रिः 7.3.8
श्वादन्तः 6.3.137
श्वापदः 6.3.137
श्वापदम् 7.3.9
श्वापुच्छः 6.3.137
श्वाफल्कः 4.1.114
श्वाफल्कचैत्र 6.2.34
श्वाफल्कः पिता 2.4.58
श्वाफल्कः पुत्रः 2.4.58
श्वाभस्रम् 7.3.8
श्वाभस्रि 7.3.8
श्वायूथिकः 7.3.8
श्वावराहः 6.3.137
श्वावित् 6.3.116
श्वाविद्गर्तीयम् 4.2.137
श्वाशुरिः 4.1.96
श्वासः 3.1.141
श्वेतवोभ्याम् 3.2.71
श्वेतः 5.2.94
श्वेतककुदः 5.4.146
श्वेतपादः 6.2.112
श्वेतवाः 8.2.67, 3.2.71
श्वेतवाहौ 3.2.71
श्वेतवोभिः 3.2.71
श्वेता 4.1.39
श्वेता गा आज्याय 8.1.63
श्वैतच्छत्रिकः 5.1.63
श्वोवसीयसम् 5.4.80

ष

षट् 7.1.22, 8.4.47
षट्कः 5.2.77
षट्ट् 8.4.47

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

षट् तिष्ठन्ति 1.1.24
षडिकः 1.3.6,1.3.8, 5.3.83,6.1.64
षड् दधाति 6.3.109
षड् धयति 6.3.109
षड्धा 6.3.109
षड्भिः 6.1.179, 6.1.180
षड्भ्यः 6.1.179
षड्भ्यः 6.1.180
षण्डः 1.3.6,6.1.64
षण्डकान् 6.1.103
षण्डीयति 6.1.64
षण्ढः 7.1.2
षण्णगरी 8.4.42
षण्णवतिः 8.4.42
षण्णाम् 8.4.42
षुण्णम् 6.1.179
षण्मासिकः 5.1.83
षष्टिः 5.1.59
षष्टिकाः 5.1.90
षष्टिक्यम् 5.2.3
षष्टितमः 5.2.58
षष्टिपथिकः 4.2.60
षष्टिपथिकी 4.2.60
षष्ठः 5.2.51,5.3.50, 5.3.51
षष्णाम् 7.1.55
षाड्गुण्यम् 5.1.124
षाण्मातुरः 4.1.115
षाण्मासिकः 5.1.83
षाण्मास्यः 5.1.83, 5.1.84
षात्वणत्विक 4.3.67
षाष्टिकः 5.1.57
षाष्टिपथः 4.2.60
षाष्ठः 5.3.50,5.3.51
षोडः 1.3.6
षोडन् 6.3.109
षोडश 6.1.64, 6.3.109
षोडीयति 6.1.64
षोढा 6.3.109
ष्ठीवति 6.1.64,7.3.75
ष्वष्कते 6.1.64

स

सः 1.1.3,1.1.57, 1.2.28,7.2.102, 7.2.106
स 8.1.12
संयच्छति 1.3.75
संयच्छते व्रीहीन् 1.3.75
संयत् 6.4.40
संयत 8.3.25
संयतः 3.2.188
संयमः 3.3.63
संयसति 3.1.72,
संयस्यति 3.1.72
संयामः 3.3.63
संयावः 3.3.23
सं॒युक्तपु॒त्रः 6.2.133
सं॒युत् 6.1.160
संयुत्य 6.4.58
संयुनक्ति 1.3.64
सर्यू॑य्यन्ता 8.2.3
संराजितव्यम् 8.3.25
संराजिता 8.3.25
संराजितुम् 8.3.25
संरावः 3.3.22,3.3.44
संवत्सरं कलयाणी 2.3.5
संवत्सरं गुडधानाः 2.3.5
संवत्सरजातः 2.2.5
सं॒वत्स॒र॒जा॒तः 6.2.170
संवत्सरजाता 2.2.36, 4.1.52
संवत्सरतमः 5.2.57
संवत्सरदेयम् 2.1.43
सँवत्सरपूर्वः 2.1.31
सँवत्सरपूर्वाय 1.1.30
संवत्सरम् अधीते 2.3.5
संवत्सरीणः 5.1.92
संवत्सरीयः 5.1.92
संवत्सरेणाऽनुवाकोऽधीतः 2.3.6
संवर्मयति 3.1.25
संवस्रयति 3.1.21
संवाह्यम् 3.1.131
संवित्ते 1.3.29
संविदताम् 7.1.7
संविदते 7.1.7
संविद्रताम् 7.1.7
संविद्रते 7.1.7
संविव्ययिथ 6.1.46, 7.2.66
संविव्याय 6.1.46
संवीतः 6.1.15, 6.1.37,6.4.1, 6.4.2
संवीतवान् 6.1.15
संव्याययति 7.3.37
संवृ॑ववत्सरः 8.2.3
संशकलाकृत्य 1.4.61
संशितः 7.4.41
संशृणुते 1.3.29
संश्यानः 6.1.24
सं॒श्रुतः 6.2.148
संसनिष्यदत् 7.4.65
संसन्यते 6.4.43
संसमिद्युवसे 8.1.6
संसर्गी 3.2.142
संसृजत 7.1.44
संसृजतात् 7.1.44
संस्कर्त्तव्य 6.1.135, 6.1.137
सँस्कर्त्तव्यम् 8.3.2, 8.3.5
संस्कर्त्तव्यम् 8.3.5
संस्कर्त्ता 6.1.135,8.3.5
सँस्कर्त्ता 8.3.2
सँस्कर्तुम् 8.3.2,8.3.5
संस्कर्तुम् 6.1.137
संस्कारः 3.4.74
संस्कारजः 3.2.98
संस्कृतम् 6.1.138
सँस्कृर्ता 8.3.5
संस्कृषीष्ट 6.1.135, 7.2.43,7.4.10
संस्क्रियते 6.1.135, 7.4.29
संस्क्रियात् 7.4.29
संस्तवः 3.3.31
संस्तावः 3.3.31
संस्त्यान 6.1.23
संस्त्यानवान् 6.1.23
संस्था 3.3.95,4.4.62
संस्थानः 6.3.85
संस्रावः 3.1.141
संस्वरते 1.3.29
संस्वेदयुः 3.2.171, 7.4.35
संस्स्कर्त्तव्यम् 8.3.5
संस्स्कर्त्ता 6.1.137, 8.3.5
संस्स्कर्तुम् 8.3.5
संस्स्कृर्त्ता 8.3.5
संहर्षणः 3.1.134
संहारः 3.3.122
संहिताम् अनु 1.4.84
संहितोरुः 4.1.70
संह्रतपुच्छि 5.4.128
संह्रयते 1.3.30
स उ एकविंशतिः 8.3.21
स उ एकाग्निः 8.3.21
सकर्मकः 2.2.28
सकर्मकरः 2.2.28
सकलम् 6.3.79
सका 7.3.45
सकाकिणीकः 6.3.79
सकिखि 2.1.6
सकृद् अधीते 5.4.19
सकृद्भुङ्क्ते 5.4.19
सकृल्ल्वः 6.4.83
सकृ॒ल्ल्वौ 6.1.175
सकृ॒ल्ल्वै 6.1.175
सकृल्ल्वौ 6.4.83
सकृल्ल्व्याशा 8.2.4
सकेशा 4.1.57
सको ददाति 6.1.132
सक्तव्या धानाः 5.1.2
सक्तुः 7.2.9
सक्तुधानी 3.3.117
सक्तुसैन्धवः 6.2.72
सक्तूनां पायकः 2.2.16, 2.3.70
सक्तून् पिबति 1.4.49
सक्थिनी 7.1.75
सक्थिभ्याम् 7.1.75
सक्थ्ना 7.1.75
सक्थ्ने 7.1.75
सक्षत्रम् 2.1.6
सखा 7.1.93
सखायः 7.1.92, 7.2.115
सखायौ 7.1.92, 7.2.115
सखिसुतौ 2.2.32
सखी 6.4.148,4.1.62
(हे) सखे 7.1.92, 7.1.93
सख्यम् 5.1.126
सख्या 1.4.7,7.1.12
सख्युः 1.4.7,6.1.112
सख्ये 1.4.7,7.1.13, 7.3.111
सख्यौ 1.4.7,7.3.118
सगर्भ्यः 4.4.114, 6.3.84
(स्वस्ति भवते) सगवे 6.3.83
सगोत्रः 6.3.85
सग्धिः 1.1.58, 6.4.100,8.2.25
सग्धिश्च 2.4.39
सङ्कटम् 5.2.28
सङ्कर्षणः 3.1.134

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सङ्कर्षणवासुदेवौ 6.2.34
सङ्कूटिनम् 3.3.44
संकृतिः 8.3.5
सङ्केतयति 3.1.5
सङ्कोटः 3.3.44
सङ्क्ता 7.2.10
सङ्क्रन्दनः 3.1.134, 3.4.74
सङ्क्रामति 1.3.39, 1.3.42
सङ्क्रामयति 6.4.92
सङ्क्रीडते 1.3.22
सङ्क्रीडन्ति शकटानि 1.3.21
सङ्क्ष्णुते 1.3.65
सङ्क्ष्णुवते 1.3.65
सङ्क्ष्णुवाते 1.3.65
संख्याकरः 3.2.21
सङ्ख्यातरात्रः 5.4.87
सङ्ख्याताहः 5.4.90
सङ्ख्याताहः 5.4.88
सङ्गसीष्ट 1.2.13
सङ्गसीष्ट 7.2.58
सङ्गस्यते 7.2.58
सङ्गच्छते 1.3.29
सङ्गन्ता 3.1.33
सङ्गसीष्ट 1.2.13
सङ्गिरति 1.3.52
सङ्गिरति ग्रासम् 1.3.52
सङ्गिरते 1.3.52
सङ्गीतिः 3.3.95
सङ्ग्मीय 1.1.62
सङ्ग्रहो (धान्यस्य) 3.3.36
सङ्ग्राहः 3.3.36
सङ्घः 3.3.86
सङ्घतिथः 5.2.52
सङ्घातः 3.3.86
सङ्घुष्टः 7.2.28
सङ्घुषितम् 7.2.28
सचक्रम् 2.1.6
सचिता 7.2.9
सचितुम् 7.2.9
स चेद् अधीते 8.1.30
स चेद् ङ्क्ते 8.1.30
सच्छात्रः 2.2.28, 6.3.82
सजति 6.4.25
सजनपदः 6.3.85
सजातीयः 6.3.84
सजूः कृत्य 1.4.61
सज्योतिः 6.3.85
सञ्चक्ष्याः 2.4.54
सञ्चरः 3.3.119
सञ्चरते अश्वेन 1.3.54
सञ्चरसि उभौ 1.3.54
सञ्चस्कर 6.1.135
सञ्चस्करतुः 7.4.10
सञ्चस्करिथ 7.2.13
सञ्चस्करिम 7.2.13
सञ्चस्करिव 7.2.13
सञ्चस्करु 6.1.135
सञ्चस्करुः 7.4.10
सञ्चस्कार 6.1.136
सञ्चाय्यः 3.1.130
सञ्चीवरयते 3.1.20
सञ्चेयः 3.1.130
(पितुः) सञ्जाना 1.3.46
(मातुः) सञ्जाना 1.3.46
(शतं) सञ्जानीते 1.3.46
सञ्जिगंसते 6.4.16, 7.2.58
सञ्जिगंसिष्यते 7.2.58
सञ्जिगमिषिता 7.2.58
सञ्जिहताम् 6.4.112
सञ्जिहते 6.4.112
सञ्जिहीते 6.4.113
सञ्जिहीध्वे 6.4.113
सञ्जिहीषे 6.4.113
सञ्जीवार्मम् 6.2.91
सञ्ज्ञापितः 6.4.52
सञ्ज्ञी 5.2.116
सञ्जुः 5.4.129
सञ्ज्वारी 3.2.142
सणकबांभ्रवाः 6.2.37
सत् 3.2.61
सत् अनस् 5.4.94
सततृप्रहृसितः 6.2.61
सततंप्रहसितः 6.2.61
सततम् 6.1.144
सतिः 6.4.45
सतीर्थ्यः 4.4.107, 6.3.87
सतृणम् 2.1.6
सत्कृतम् 1.4.63
सत्कृत्य 1.4.63
सत्कृत्वा 1.4.63
सत्ता 7.2.10
सत्पुरुषः 2.1.61
सत्पुष्पा 4.1.4
सत्यं भोक्ष्यसे 8.1.32
सत्यं वक्ष्यामि 8.1.32
सत्यङ्कारः 6.3.70
सत्यम् अध्येष्यसे 8.1.32
सत्यवद्यम् 3.1.106
सत्याकरोति 5.4.66
सत्यापयति 3.1.25
सत्योद्यम् 3.1.106
सत्रायते 3.1.14
स ददाति 6.1.132
सदस्कृतम् 8.3.50
सदा 1.1.38, 5.3.6, 5.3.15
सदृक् 3.2.60, 6.3.89
सदृक्च्छ्वेतः 6.2.2
सदृक्षः 6.3.89
सदृग् महान् 6.2.2
सदृग्लोहित 6.2.2
सदृङ् 7.1.83
सदृशः 3.2.60, 6.3.89
सदृशंमहान् 6.2.2
सदृशमहान् 2.1.68
सदृशंलोहितः 6.2.2
सदृशश्वेतः 2.1.68
सदृशंश्वेतः 6.2.2
सदृशो देवदत्तस्य 2.3.72
सदृशो देवदत्तेन 2.3.72
सद्यः 5.3.22
सद्यस्कालः 8.3.48
सद्यस्क्रीः 8.3.48
सद्रोणा खारी 6.3.79
सद्रुः 3.2.159
सधमादः 6.3.96
सधस्थ 6.3.96
सधस्थाः 6.3.96
सधिष्टव 8.3.102
सधुरम् 6.3.81
सध्रीचः 6.3.95
सध्रीचा 6.3.95
सध्र्यङ् 6.3.95
सध्र्यञ्चः 6.3.95
सध्र्यञ्चौ 6.3.95
सनङ्क्व्यं चर्म 5.1.2
सनाभिः 6.3.85
सनामा 6.3.85
सनासिका 4.1.57
सनिसंसनिवांसम् 7.2.69
सनीसंस्रीति 7.4.84
सनीस्रंसः 2.4.74
सनीस्रंस्यते 6.4.24, 7.4.84
सनुत्यः 4.4.114, 6.3.84
सनोति 3.1.79
सन्तक्षति 3.1.76
सन्ततम् 6.1.144
सन्तमसम् 5.4.79
सन्तिः 6.4.45
सन्ति 6.4.111
सन्तिष्ठते 1.3.22
सन्दमय्य 6.4.56
सन्दावः 3.3.23
सन्द्रावः 3.3.23, 3.3.44
सन् ब्राह्मणः 3.2.124
सन्यते 6.4.43
सपत्नी 4.1.35
सपत्राकरो 5.4.61
सपदि 5.4.128
सपलाशम् 6.3.78
सपशुबन्धम् 6.3.78
सपिशाचा वात्या 6.3.80
सपुत्रः 2.2.28, 6.3.82
सप्त 1.1.24, 1.1.63, 4.1.10, 7.1.22
सप्त ऋषयः 2.1.50
सप्तकः 5.1.47, 5.1.56
सप्तकृत्वः 5.4.17
सप्तगङ्गम् 2.1.20
सप्तगोदाव 5.4.75
सप्तगोदावरम् 2.1.20
सप्ततिः 5.1.59
सप्ततितमः 5.2.58
सप्तथः 5.2.50
सप्तदशः 5.1.58
सुप्तभिं 6.1.180
सप्तभिंः 6.1.180
सप्तमः 5.2.49, 5.2.50, 5.3.49
सप्तमिकः 5.1.48
सप्तर्षयः 2.1.50
सप्तर्षिमन्तम् 8.2.15
सप्तागच्छत 6.1.198
सप्तानाम् 7.1.54
सुप्तानाम् 6.1.179
सप्तानाम् 6.4.7
सबन्धुः 6.3.85
सब्रह्म 2.1.6
सब्रह्मचारी 6.3.86
सभासन्न 1.1.20
स भुङ्क्ते 6.1.132
सभेयः 4.4.106
सभ्यः 4.4.105
सम 1.2.30
समक्नौ 8.2.48

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समक्षम् 5.4.107
समगंस्त 1.2.13
समगत 1.2.13
समजः 2.4.56,3.3.69
समज्या 2.4.56,3.3.99
समदन्ता 4.1.55
समदन्ती 4.1.55, 5.4.143
समपादः 6.2.81
समपादि 3.1.60
सममयम् 4.3.82
सममयी 4.3.82
समयाक 5.4.60
समया ग्रामम् 2.3.2
समयो यद् 3.3.168
समरन्त 1.3.29,3.1.56
समरात्रः 5.4.75
समरूप्य 4.3.81
समर्णः 7.2.24
समवसर्ग्या 3.1.110
समविदत 7.1.7
समविद्रत 7.1.7
समस्करोत् 6.1.136
समस्कार्षीत् 6.1.136
समस्थः 3.2.3,6.3.20
समस्मै 1.1.27
समजिगांसत् 6.4.16
समजिहत 6.4.112
समांसमीना 5.2.12
समाजः 2.4.56,7.3.60
समाजो ब्राह्मणानाम् 3.3.69
समानग्रामिकः 4.3.60
समानदेशिक 4.3.60
समानपुरुषः 2.1.58
समानप्रभृतयः 6.3.84
समानमूर्द्धा 6.3.84
समानमूर्ध्नी 4.1.29
समाना 4.1.30
समानी 4.1.30
समानोदर्काः 6.3.84
समानोदर्यः 4.4.108, 6.3.88
समापम् 6.3.97
समावत् 5.4.25
समाशाशालयः 6.2.71
समाश्लिषत् 3.1.46
समाषः कार्षापणः 6.3.79
समिद् दृष 5.4.106
समिध् 5.4.106
समिधिता 6.4.50
समिध्यिता 6.4.50
समियात् 7.4.24
समीधे 1.2.6
समीनः 5.1.85
समीपम् 1.1.54, 5.4.74,6.3.97
समीयम् 4.3.81
समीयिवान् 3.2.109
समीर्णम् 7.1.102
समीह्यते 7.4.23
समुच्छ्रयः 3.3.49
समुत्तः 8.2.56
समुदानयति 8.1.70
समुदाहृतः 6.2.49
समुद्ग 8.3.37
समुद्गः 7.3.61
समुद्धृतः 6.2.49
समुद्रः 3.4.74
समुद्रकूलम् 6.2.135
समुद्रमात्र 6.2.14
समुद्रियाणाम् 4.4.118
समुन्नः 8.2.56
समुपच्छादः 6.4.96
समुपातिच्छदः 6.4.96
समुषद्धिः 7.4.48
समुहूर्त्तम् 6.3.79
समुह्य 7.4.23
समुह्यते 7.4.23
समूलकाषम् 3.4.34
समूलघातम् 3.4.36
समूहति 1.3.30
समूहते 1.3.30
समूहितम् 7.4.23
समूह्यः 3.1.131
समृच्छिष्यते 1.3.29
समेधितः 7.2.24
समेन धावति 2.3.18
समेयात् 7.4.24
समोह्यते 7.4.23
सम्पत् 3.3.93
सम्पत्तिः 3.3.93
सम्पत्तये 2.3.15
सम्पथम् 5.4.107
सम्पद्विप 5.4.106
सम्पन्नङ्कारं 1.1.39
सम्पन्नङ्कारम् 2.2.20
सम्पन्ना यवाः 1.2.58
सम्पन्ना व्रीहयः 1.2.58
सम्पन्नो यवः 1.2.58
सम्पन्नो व्रीहिः 1.2.58
सम्पर्की 3.2.142
(ग्रामं) सम्पश्यति 1.3.29
सम्पश्यते 1.3.29
सम्पाठे 1.2.34
सम्पीतिः 3.3.95
सम्पृच्छते 1.3.29
सम्प्रयच्छति पाणिना 1.3.55
सम्प्रयच्छते रतिं 1.3.55
सम्प्रयच्छते वृषल्या 1.3.55
सम्प्रवदन्ति कुक्कुटाः 1.3.48
सम्प्रवदन्ते क्षत्रियाः 1.3.48
सम्प्रवदन्ते ब्राह्मणाः 1.3.48,1.3.50
सम्प्रहरन्ते 1.3.15
सम्फला 4.1.4
सम्फुल्लः 8.2.55
सम्भरति 8.2.35
सम्भाण्डयते 3.1.20
सम्भार्या 3.1.112
सम्भावयामि 3.3.154, 3.3.155
सम्भुः 3.2.180
सम्भूतः 6.2.146
सम्भूतो रामायण 6.2.148
सम्भृत्याः 3.1.112
(कोकिलानां) सम्मदः 3.3.68
सम्मर्दी 3.1.134
सम्मादः 3.3.68
सम्मील्य हसति 3.4.21
सम्मुखीनः 5.2.6
सम्यङ् 6.3.93
सम्यञ्चः 6.3.93
सम्यञ्चौ 6.3.93
सम्राट् 3.2.61, 5.3.114,8.2.36, 8.3.25
सयूथ्यः 6.3.84, 4.4.114
सरकः 3.1.149
सरजसम् 5.4.77
सरणः 3.2.150
सरसिजम् 3.2.97
सरसी 7.1.39
सरस्वतीवान् 8.2.15
सराक्षसीका शाला 6.3.80
सरात्रिः 6.3.85
सरीसृपतम् 7.4.65
सरूपः 6.3.85
सरोजम् 3.2.97
सर्ज्जनम् 6.1.58
सर्त्ता 3.3.17
सुपिच्छिद्रम् 6.2.102
सुपिबिलम् 6.2.102
सर्पिः करोति 8.3.44
सर्पिरागच्छ 6.1.198
सुर्पिर्मण्डकंषायम् 6.2.10
सर्पिर्मधुनी 2.2.31, 2.4.14
सुर्पिर्मिश्राः 6.2.154
सर्पिष इष्टे 2.3.52
सर्पिःषु 8.3.58
सर्पिषो जानीते 1.3.44, 2.3.51
सर्पिषो ज्ञानम् 2.2.10
सर्पिषो दयते 2.3.52
सर्पिषो नाथते 2.3.55
सर्पिषोऽपि स्यात् 1.4.96
सर्पिष्कम् 8.3.38
सर्पिष्काम्यति 8.3.39
सर्पिष्कुण्डिका 8.3.45, 8.3.48
सर्पिष्टः 8.3.101
सर्पिष्टमम् 8.3.101, 8.4.42
सर्पिष्टरम् 8.3.101
सर्पिष्टा 8.3.101
सर्पिष्ट्वम् 8.3.101
सर्पिष्पानम् 8.3.45, 8.4.35
सर्पिष्पाशम् 8.3.38
सर्पिष्षु 8.3.58
सर्पिस्तरति 8.3.101
सर्पिस्साद् 8.3.101
सर्पीषि 8.3.24,8.3.58
सर्प्ता 7.2.10
सर्वसहः 3.2.41
सर्वः 6.1.191
सर्वः 1.1.27
सुर्वकः 6.1.191
सर्वकः 1.1.27
सर्वकम् 5.3.85
सर्वकर्मीणः 5.2.7
सुर्वकारकः 6.2.105
सर्वकृष्णः 2.2.35
सुर्वकृष्णः 6.2.92
सर्वकृष्णः 2.2.35
सर्वके 5.3.71,5.3.73

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सर्वकेशी 5.2.135
सर्वकैः 7.1.11
सर्वगः 3.2.48
सर्वङ्कषः 3.2.42
सर्वचर्मीणः 5.2.5
सर्वजनीनम् 5.1.9
सर्वजनीयम् 5.1.9
सर्वतः कृत्वा 3.4.61
सर्वतन्त्रः 4.2.60
सर्वतमः 6.1.191
सर्वतरः 6.1.191
सर्वतातिः 4.4.142
सर्वतो ग्रामम् 2.3.2
सर्वत्रगः 3.2.48
सर्वत्र देशे 5.3.15
सर्वथा 5.3.23
सर्वदा 1.1.38,5.3.6, 5.3.15
सर्वदेवाः 2.1.49
सर्वधनी 5.2.135
सर्वधुरीणः 4.4.78
सर्वपत्रीणः 5.2.7
सर्वपथीनः 5.2.7
सर्वपाश्चालकः 7.3.12
सर्वपांश्चालकः 6.2.105
सर्वपात्रीणः 5.2.7
सर्वप्रदः 3.2.6
सर्वबीजी 5.2.135
सर्वमनुष्याः 2.1.49
सर्वमंहान् 6.2.93
सर्वमहान् 2.2.9
सर्वमाशः 6.2.105
सर्वराजतः 6.2.93
सर्वरात्रकल्याणी 2.1.29, 6.2.2
सर्वरात्रशोभना 2.1.29, 6.2.2
सर्ववेदः 4.2.60
सर्वशुक्ला 2.2.9
सर्वश्वेतः 2.2.9,2.2.35
सर्वश्वेतः 6.2.93
सर्वश्वैतः 6.2.92
सर्वसेनः 8.3.99
सर्वसौवर्णः 6.2.93
सर्वस्तोमः 6.1.191
सर्वस्मात् 1.1.27, 7.1.15
सर्वस्मिन् 7.1.14
सर्वस्मै 1.1.27,7.1.14
सर्वस्याः 7.3.114
सर्वस्यै 7.3.114
सर्वाङ्गीणः 5.2.7
सर्वान्नीनः 5.2.9
सर्वासाम् 7.1.52
सर्वाह्णः 5.4.88
सर्वीयम् 5.1.10
सर्वे 7.1.17
सर्वे 6.1.191
सर्वे 1.1.27
सर्वेषाम् 1.1.27, 7.1.52
सर्वौ 6.1.191
सर्वौ 1.1.27
सलोमकः 2.2.28
सवः 3.3.56
सवचनः 6.3.85
सवत्साय 6.3.83
सवनमुखे 8.3.110
सवने 8.3.110
सवयाः 6.3.85
सवर्णः 6.3.85
सवार्तिकः 4.2.60
सविता 7.2.44
सव्येष्ठः 8.3.97
सव्येष्ठाः 8.3.97
सव्येष्ठासारथिः 8.3.97
सशिंशपम् 6.3.78
ससङ्ग्रहः 4.2.60
ससङ्ग्रहम् 6.3.79
ससर्जिथ 7.2.65
ससूव 7.4.74
ससृम 7.2.13
ससृव 7.2.13
सस्नौ 7.4.61
सस्मरतुः 7.4.10
सस्मरुः 7.4.10
सस्मर्थ 7.2.63
सस्मार 7.4.10
सस्यमतुः 6.4.125
सस्यमिथ 6.4.125
सस्यमुः 6.4.125
सस्यकः शालिः 5.2.68
सस्यकः साधुः 5.2.68
सस्यको मणि 5.2.68
सस्यात् 3.2.68
सस्रंसे 1.2.5
सस्रष्ठ 7.2.65
सस्रिः 3.2.171
सस्वनतुः 6.4.125
सस्वनिथ 6.4.125
सस्वनुः 6.4.125
सस्वरतुः 7.4.10
सस्वरुः 7.4.10
सस्वार 7.4.10
सहकृत्यः 6.3.82
सहकृत्वप्रियः 6.3.82
सहकृत्वा 3.2.96, 6.3.78,6.3.82
सहच्छात्रः 6.3.82
सहच्छात्राय 6.3.83
सहते 6.1.64
सहते भोक्तुम् 3.4.65
सहनः 3.1.134
सहपुत्रः 2.2.28,6.3.82
सहपूर्वाह्णम् 6.3.81
सहयुध्वा 3.2.96, 6.3.78,6.3.82
सहयुध्वा ब्राह्मणी 4.1.7
सहलाय 6.3.83
सहवत्साय 6.3.83
सहश्च सहस्यश्च 4.4.128
सहसाकृतम् 6.3.3
सहस्रतमः 5.2.57
सहस्रियः 4.4.135, 4.4.136
सहस्री 5.2.102
सहस्यः 4.4.128
सहस्रखाः 6.4.41
सहस्रंदायी 3.3.170
सहस्रं प्रति 2.3.59
सहस्रमपजानीते 1.3.44
सहस्रस्य दीव्य 2.3.58
सहस्रस्य पणते 2.3.57
सहस्रस्य प्रति 2.3.59
सहस्रस्य व्यव 2.3.57
सहस्राणि 1.1.24
सहस्राद् बद्धः 2.3.24
सहहलाय 6.3.83
सहाऽमात्याय 6.3.83
सहायता 4.2.43
स हि कुरु 8.1.34
स हि कूज वृषल 8.1.34
सहितम् 3.3.114, 6.1.145
सहिता 7.2.48
सहितोरुः 4.1.70
सहित्रम् 3.2.184
स हि पच 8.1.34
स हि पठ 8.1.34
सहिष्णुः 3.2.136
सहोरुः 4.1.70
सह्यम् 3.1.99
सांराविण 3.3.44
सांराविणम् 3.3.44, 5.4.15,6.4.164
सांवत्सरक 4.3.50
साँवत्सरम् 4.3.16
साँवत्सरिक 4.3.11, 4.3.47,4.3.50
सांवत्सारिक 5.1.93
सांवत्सरिकः 5.1.94
सांवत्सरिकम् 4.2.34, 5.1.78,5.1.96
सांवहित्र 4.3.120
सांशयिकः 5.1.73
सांसर्गविद्यः 4.2.60
सांस्थानिकः 4.4.72
सांहिकरोणः 4.2.78
सांहितम् 4.3.66, 4.3.67
सांकुकः 4.4.103
सांकुसैन्धवः 7.3.19
साक्षात्कृत्य 1.4.74
साक्षात् कृत्वा 1.4.74
साक्षी 5.2.91
साखम् उदकम् 6.4.174
साखिदत्तेयम् 4.2.80
साखेयम् 4.2.80
साग्नि 2.1.6
साग्निः कपोतः 6.3.80
साङ्कलः 4.2.75
साङ्काश्यकः 4.2.121, 6.4.151
साङ्काश्यभूतः 6.4.152
साङ्काश्यम् 4.2.80
साङ्काश्यसिद्धः 6.2.32
साङ्काश्यसिद्धः 2.1.41, 6.3.19
साङ्काश्यायते 6.4.152
साङ्काश्यिका 7.3.45
साङ्कूटिनम् 3.3.44, 5.4.15,6.4.164
साङ्ग्रहसूत्रिकः 4.2.60
साडिः 8.3.56
साढयै समन्तात् 6.3.113
साढा 6.3.113
साढ्वा शत्रून् 6.3.113
सातः 6.4.42
सातयः 3.1.138
सातवान् 6.4.42
सातिः 3.3.97,3.3.174 6.4.42,6.4.45
सात्यमुग्री 4.1.81
सात्यमुग्र्या 4.1.81
सात्वतः 6.4.144

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

साद्धा 7.2.10
साद्यस्क्रः 8.3.48
साधनः 3.1.134
साधयति 6.1.49
साधारणम् 5.4.25
साधारणा 5.4.25
साधारणी 5.4.25
साधिष्ठः 5.3.63
साधीयान् 5.3.63
साधुः 3.3.1
साधुकारी 3.2.78
साधु खलु 2.2.14
साधु खलु पयसः 2.3.66
साधुघाती 7.3.32, 7.3.53
साधुजम्भी 7.1.61
साधुजागरी 7.3.85
साधुदायी 3.2.78
साधुया 7.1.39
साधुरन्धी 7.1.61
साधुर्देवदत्तो 2.3.43
साधुर्देवदत्तो मातरि 2.3.36
साधुर्भृत्यो राज्ञः 2.3.43
साधुलक् 8.2.29
साधुलम्भी 7.1.64
साधु स्थाली 3.1.87
साधूनाम् 7.1.58
साध्वसिश्छिनत्ति 3.1.87
साध्वारम्भी 7.1.63
सान्तपनः 5.4.36
सान्तापिकः 5.1.101
सान्द्राविणम् 3.3.44
सान्धिवेल 4.3.16
सान्ध्यम् 4.3.16
सान्नाय्यम् 3.1.129
सान्नाहिकः 5.1.101
सान्निध्यम् 5.1.124
सान्निपातिकम् 5.1.38
सान्निवेशिकः 4.4.33, 4.4.43
साप्ततिकः 5.1.22
साप्ततिकम् 5.1.37
साप्तपदीनः सखा 5.2.22
साप्तपदीनम् 5.2.22
साप्तानि 5.1.61
साब्रह्मचाराः 6.4.144
साम 1.1.63
सामकः 4.2.61
सामगः 3.2.8
सामगी 3.2.8
सामनः 6.4.135, 6.4.167
सामनि 6.4.8, 6.4.136
सामनी 1.1.43, 6.4.136
सामन्यः 4.4.98, 6.4.168
सामयिकम् 5.1.104
सामवायिकः 4.4.43
सामसङ्गायः 3.2.8
सामस्याग्ने 8.2.91
सामाजिकः 4.4.33, 4.4.43
सामानि 6.4.8
सामानिकम् 4.3.60
सामान्यः 1.2.31
सामायिकः 5.4.5, 5.4.34
सामिकृतम् 2.1.27, 5.4.5
सामिधेनी 4.3.120
सामिधेन्यः 4.3.120
सामिपीतम् 2.1.27
सामिभुक्तम् 2.1.27
सामियुक्त 5.4.5
सामीप्यम् 5.1.124
सामीप्ये 3.3.133
सामुद्रं जलम् 4.2.127
सामुद्रको मनुष्यः 4.2.127
सामुद्रिका नौः 4.2.127
सामूहिकः 4.4.43
सामे 8.3.110
साम्ना 6.4.137
साम्नायः 5.4.36
साम्नि 6.4.136
साम्नी 6.4.136
साम्ने 6.4.137
साम्बः 6.1.160
साम्बक 4.3.99
साम्मातुरः 4.1.115
साम्मार्जिनम् 6.4.164
साम्राज्यम् 8.3.25
सायते 6.4.43
सायतै 6.1.195
सायन्तनः 7.1.1
सायन्तनम् 4.3.23
सायम्प्रातिकः 6.4.144
सायम्प्रातिक 6.4.144
सायाहनि 6.3.110
सायाह्नः 2.2.1, 6.3.110
सायाह्नातिरात्रम् 2.4.4
सायाह्नि 6.3.110
सायाह्ने 6.3.110
सारकः 3.3.17
सारघम् 4.3.117
सारङ्गजुग्धः 6.2.170
सारङ्गिकः 4.4.35
सारङ्गी 4.1.40
सारसायते 3.1.12
सारस्यायनभक्तः 4.2.54
सारिक 6.3.117
सारिकावणम् 6.3.117
सारो बलम् 3.3.17
सार्थाद्धीयते 5.4.45
सार्थाद् हीनः 1.4.24
सार्पिष्कः 7.3.51
सार्वजनिकम् 5.1.9
सार्वविधिकः 4.2.60
सार्वचर्मीणः 5.2.5
सार्वपौरुषम् 7.3.20
सार्वभौमः 5.1.41, 5.1.42, 7.3.20
सार्वम् 5.1.10
सार्वलौकिकः 7.3.20, 5.1.44
सार्वसेन्य 4.3.92
साल्वः 4.1.173, 4.3.93
साल्वक 6.3.117
साल्वको गौः 4.2.134
साल्वको मनुष्यः 4.2.134
साल्वम् 4.2.134
साल्वेयः 4.1.173, 4.1.169
साल्वेयो राजा 4.1.169
सार्वार्णिमाण्डूकेयौ 6.2.37
सावित्रम् 4.3.78
साश्वत्थम् 6.3.78
सासद्यते 3.1.24
सासहिः 3.2.171
सासायते 6.4.43
सास्वर्यते 7.4.30
साहदेवः 4.1.114
साहदेवक 4.3.99
साहसिकः 4.4.27
साहस्रः 5.1.38, 5.1.47, 5.1.56, 5.1.57, 5.1.63, 5.2.103
साहस्रम् 5.1.27
साहस्रः 4.3.156
साहस्री परिखा 4.2.68
साहस्रेण पशून् 2.3.18
साहायकम् 5.1.132
साहाय्यम् 5.1.132
साह्वान् 6.1.12
सिंहः 5.3.100, 6.3.109
सिंहकः 5.3.81, 5.3.82
सिंहगतिः 5.3.100
सिंहपात् 5.4.138
सिंहमुखः 6.2.169
सिंहमुखः 6.2.169
सिंहवान् 5.2.115
सिंहविनर्दितम् 6.2.145
सिंहविनर्दी 6.2.80
सिंहाजिनः 4.3.60
सिंहिलः 5.3.81
सिकतावान् 5.2.105
सिकतिलः 5.2.105
सिकतो देशः 5.2.105
सिक्तसम्मृष्टम् 2.2.31
सिञ्चति 6.1.64, 7.1.59
सिञ्चास्थ 2.2.31
सिद्ध्यः 3.1.116
सिद्ध्यपुनर्वसू 1.2.63
सिधितम् 7.2.10
सिध्मलः 5.2.97
सिध्मवान् 5.2.97
सिध्रक 6.3.117
सिध्रकावणम् 6.3.117, 8.4.4
सिनः 8.2.44
सिनोति 3.1.73
सिन्धुकः 4.3.32
सिप् 1.4.99
सिम 1.2.30
सिमस्मै 1.1.27
सिषक्ति 7.4.78
सिषङ्गयिषति 8.3.61
सिषासति 6.4.42, 7.2.49
सिषेच 8.3.61
सिषेव 8.3.55, 8.3.57, 8.3.59
सिषेवयिषति 8.3.61
सिष्वापकीयिषति 7.4.67
सिसनिषति 6.4.42, 7.2.49
सिसनायिषति 8.3.108
सिसनीः 8.3.108

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सिसाहयिषति 8.3.62
सिसिक्षति 8.3.61
सिसृक्षति 7.2.75
सिसेविषति 7.2.49
सिस्मयिषते 7.2.74
सिस्यन्त्सति 7.2.59
सिस्रावयिषति 7.4.81
सिस्वरिषति 7.2.49
सिस्वादयिषति 8.3.62
सिस्वेदयिषति 8.3.62
सीतापूरम् 3.4.32
सीताप्रम् 3.4.32
सीत्यम् 4.4.91
सीदति 7.3.78
सीमन्तः 6.1.94
सीमा 4.1.11,4.1.13
सीमाः 4.1.13
सीमानः 4.1.11
सीमानौ 4.1.11
सीमान्तः 6.1.94
सीमे 4.1.13
सीव्यति 8.2.77
सीव्यति 3.1.69
सीव्यन्ती 7.1.81
सुकरः 3.4.70, 3.3.126
सुकरः 6.2.139
सुकर्मकः 6.2.117
सुकर्म्मा 6.2.117
सुकुमारचरः 5.3.53
सुकुमारतमः 5.3.55
सुकुमारतरः 5.3.57
सुकुमारपू 6.2.22
सुकुमारोपक्र 6.2.14
सुकृत् 3.2.89
सुकृतम् 6.2.145
सुकृता 4.1.52
सुक्रतुः 6.2.118
सुक्रीता 4.1.50
सुक्षेत्रिया 7.1.39
सुखं देवदत्तस्य 2.3.73
सुखं देवदत्ताय 2.3.73
सुखजातः 6.2.170, 6.2.171
सुखजातः 6.2.171
सुखजाता 2.2.36, 4.1.52
सुखदुःखम् 2.4.14
सुखदुःखे 2.4.14
सुखप्रतीक्षः 3.2.1
सुखप्रतीक्षा 3.2.1
सुखप्राप्तः 6.2.47
सुखप्राप्तः 2.1.24
सुखसुखेन 8.1.13
सुखाकरो 5.4.63
सुखापन्नः 2.1.24, 6.2.47
सुखापेतः 2.1.38
सुखायते 3.1.18,7.4.25
सुखार्तः 6.1.89
सुखी 5.2.131
सुखेतः 6.1.89
सुखेन 8.1.13
सुखेनर्तः 6.1.89
सुगः 3.2.48
सुगजाजिनवाससा 2.2.24
सुगन्धः 5.4.135
सुगन्धिः 5.4.135
सुगरसत् 6.2.119
सुगला 4.1.56
सुगवा 6.1.182
सुगवै 6.1.182
सुगव्यम् 5.1.19
सुगात्रा 4.1.54
सुगात्रिया 7.1.39
सुगात्री 4.1.54
सुगुभ्याम् 6.1.182
सुगुल्फा 4.1.54
सुगौः 5.4.69
सुग्रीवः 6.2.114
सुग्लः 3.1.136, 6.1.45
सुग्लानः 6.1.45
सुचतुरः 5.4.77
सुचन्द्रा 6.1.151
सुचर्मा 4.1.12
सुचर्माणः 4.1.12
सुचर्माणौ 4.1.12
सुजम्भा 5.4.125
सुजाते अश्व 6.1.115
सुशुकः 6.2.174
सुतः 7.3.89
सुतक्षा 6.2.117
सुतङ्गमः 3.2.47
सुतसखायौ 2.2.32
सुताँश्च 8.2.104
सुतृणेषु 6.2.195
सुत्या 3.3.99
सुप्रलम्भः 7.1.67, 7.1.68
सुत्रामाणम् 5.4.103
सुत्वचा 6.1.169
सुत्वा 3.2.103
सुदत्तम् 1.4.57, 6.3.124,7.4.46
सुदन् 5.4.141
सुदानः 3.3.129
सुदामतः 4.3.113
सुदामा 3.2.74
सुदिनायते 3.1.17
सुदिनाऽहम् 2.4.18
सुदिवः 5.4.120
सुदुर्लभम् 7.1.68
सुदृतीकः 6.2.118
सुधर्म्मा 6.2.117
सुधितम् 7.4.45
सुधियः 6.4.85,6.4.86
सुधियौ 6.4.85
सुधीवा 3.2.74
सुध्यः 6.4.86
सुध्वत् 6.2.117
सुनयिका 7.3.45
सुनीथः 6.2.143
सुनु 1.1.48,6.4.106
सुनुते 1.3.72
सुनुमः 6.4.107
सुनुयात् 7.2.80,7.4.25
सुनुवः 6.4.107
सुनोत 7.1.45
सुनोति 3.1.73,7.3.89
सुनोति सुराम् 3.2.132
सुनोमि 7.3.89
सुनोषि 7.3.89
सुन्मः 6.4.107
सुन्वः 6.4.107
सुन्वती 7.1.80
सुन्वन्ति 6.4.87,7.1.3
सुन्वन्तु 6.4.87
सुन्वाते 7.2.81
सुन्विरे 3.4.117
सुप् 7.2.112
सुपथम् 2.4.18
सुपथिन्तरः 8.2.17
सुपदी 5.4.139
सुपयाः 6.2.117
सुपयाः 6.4.14
सुपरिकः 5.3.84
सुपरियः 5.3.84
सुपरिलः 5.3.84
सुपर्वा 4.1.12,4.1.28
सुपर्वाणः 4.1.12
सुपाकिका 7.3.45
सुपाञ्चालकः 7.3.12
सुपात् 5.4.140
सुपानः 3.3.128
सुपार्श्वा 4.1.54
सुपीतम् 6.2.145
सुपीवा 3.2.74
सुपुरुषः 2.2.18
सुप्तः 3.2.188,6.1.15
सुप्तप्रलपितम् 6.2.149
सुप्तवान् 6.1.15
सुप्त्वा 1.2.8
सुप्यते 1.3.13
सुप्रजाः 5.4.122
सुप्रत्यवसित 6.2.195
सुप्रथिमा 6.2.117
सुप्रातः 5.4.120
सुबाहुः 5.4.113
सुब्रह्मण्यो3म् 1.2.37
सुब्रह्मबन्धूकः 6.2.173
सुभगङ्करणम् 3.2.56
सुभगङ्करणी 4.1.15
सुभगम्भविष्णुः 3.2.57
सुभगम्भावुकः 3.2.57
सुभगा 4.1.56
सुभस्त्रका 7.3.47
सुभस्त्रिका 7.3.47
सुभुक्तम् 6.2.145
सुभोजः 3.3.126
सुभ्राता 5.4.157
सुमगधम् 2.1.6,2.4.84
सुमङ्गला 4.1.30
सुमङ्गली 4.1.30, 5.2.109
सुमङ्गलेति 6.1.129
सुमद्रम् 2.1.6,2.4.84
सुमनोत्तरा 4.3.87
सुमाषः 6.2.172
सुमाषकः 6.2.174
सुमेधा 5.4.122
सुम्नयुः 3.2.170, 7.4.35,7.4.38
सुम्नायन्तः 7.4.38
सुम्लः 3.1.136, 6.1.45
सुम्लानः 6.1.45
सुयजुष्केण 8.4.35
सुयवः 6.2.172
सुयवकः 6.2.174
सुयशाः 6.4.14
सुयशाः 6.2.117
सुरभिगन्धिः 5.4.135
सुराः 1.2.41
सुराजा 5.4.69,6.2.117

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुराज्ञी 4.1.29
सुरापः 3.2.8
सुरापा 3.2.8
सुरापाणम् 8.4.10
सुरापाणाः 8.4.9
सुरापाणि 8.4.12
सुरापानम् 8.4.10
सुरापी 3.2.8
सुरपीता 4.1.53
सुरापीती 4.1.53
सुरापेण 8.4.12
सुराष्ट्रब्रह्म 5.4.104
सुरुचो 6.4.73
सुरुचो वेन 2.4.80
सुलभम् 7.1.68
सुलाभः 7.1.68
सुलोमा 6.2.117
सुवर्गो 6.4.77
सुवर्णनिधायम् 3.4.45
सुवर्णपुङ्खेषुः 6.2.107
सुवर्णप्रस्थः 6.2.87
सुवर्णालङ्कारः 2.2.24
सुवाग् 1.2.28
सुवांचा 6.1.169
सुवाचा 6.1.169
सुवामहै 7.3.88
सुवावहै 7.3.88
सुवीरेण 6.2.120
सुवीर्यस्त 6.2.120
सुवृषलीकः 6.2.173
सुवेदनाम् 3.3.130
सुवै 7.3.88
सुव्रीहिः 6.2.172
सुव्रीहिकः 6.2.174
सुशक्तः 5.4.121
सुशक्तिः 5.4.121
सुशयिका 7.3.45
सुशर्मा 3.2.75,4.1.12
सुशर्माणः 4.1.12
सुशर्माणौ 4.1.12
सुशोकिका 7.3.46
सुश्चः 5.4.120
सुश्रोताः 6.4.14
सुश्लोकेति 6.1.129
सुश्वी 4.1.47
सुषन्धिः 8.3.98
सुषमम् 2.1.17,8.3.88
सुषमंम् 6.2.121
सुषामा 8.3.98
सुषाव 8.3.117
सुषिक्तम् 1.4.94
सुषीमो नागः 2.1.62
सुषुपिष 8.3.61
सुषुप्तः 8.3.88
सुषुप्सति 1.2.8,8.3.61
सुषुवाणः 3.2.106
सुषुवे 7.4.74
सुषूषते 8.3.61
सुष्ठुतम् 2.2.18
सुष्ठुती 1.1.19,7.1.39
सुष्ठुत्या 1.1.19
सुष्ठुः 8.3.98
सुष्पूर्षते नष्टम् 1.3.57
सुष्वपिथ 6.1.17
सुष्वाप 6.1.17,
8.3.55,8.3.57,
8.3.59
सुष्वापयिषति 7.4.67,
8.3.61
सुसक्थः 5.4.121,
5.4.69
सुसक्थिः 5.4.121
सुसर्पिष्केण 8.4.35
सुसिक्तं भवता 1.4.94
सुसूक्ष्मजटकेशेन
2.2.24
सुस्तुतं भवता 1.4.94
सुस्तुतुम् 6.2.144
सुस्थण्डिल 6.2.195
सुस्फीतः 6.2.195
सुस्यूषति 7.2.49
सुस्रुम 7.2.13
सुस्रुव 7.2.13
सुस्रुत् 6.2.117
सुस्रावयिषति 7.4.81
सुस्रूषति 7.4.81
सुस्रोतस्कः 6.2.117
सुस्रोतांः 6.2.117
सुस्रोता 3 अत्र 6.1.113
सुस्रोथ 7.2.13
सुस्वूर्षति 7.1.102,
7.2.49
सुहलः 5.4.121
सुहलिः 5.4.121
सुहिरण्यः 6.2.119
सुहृद् 5.4.150
सुहृदयः 5.4.150
सुहोता 5.4.158
सुह्मनगरम् 6.2.89
सुह्माः 4.2.31
सुह्माः 1.2.51
सूः 3.2.61
सूकरनिचयः 3.3.42
सूकरी 4.1.63
सूक्तवाकः 2.4.29
सूतका 7.3.45
सूतग्रामणीनाम् 7.1.56
सूतदुहिता 6.3.70
सूतपुत्री 6.3.70
सूतवे 3.4.9
सूतिका 7.3.45
सूतें 6.1.186
सूते 1.3.12,8.3.110
सूत्तम् 7.4.46,7.4.47
सूत्थितः 8.2.6
सूत्रकारः 3.2.23
सूत्रग्रहः 3.2.9
सूत्रग्राहः 3.2.9
सूत्रपदी 5.4.139
सूत्रम् 8.4.52
सूत्रयति 3.1.26
सूत्वा 7.2.44
सूदंः 6.1.203
सूदंरः 6.2.108
सूदिता 3.2.153
सूदोहनाम् 3.3.130
सूनः 8.2.45
सूनवान् 8.2.45
सूपगन्धिः 5.4.136
सूपपदी 5.4.139
सूपप्रति 2.1.9
सूपविलिप्ती 4.1.52
सूपसदनः 3.3.129
सूपसदनम् 3.3.129
सूपेशाणः 6.3.10
सूरी 4.1.48
सूर्तम् 8.2.61
सूर्यः 3.1.114,5.4.25
सूर्या 4.1.48
सूर्याचन्द्र 6.1.151
सूषा 6.2.117
सृतः 8.2.61
सृत्वरः 3.2.163
सृत्वरी 3.2.163
सृमरः 3.2.160
सृष्टः 6.1.58
सेकिमम् 4.4.20
सेक्ता 7.2.10
सेक्त्रम् 3.2.182
सेत्रम् 3.2.182
सेदिः 3.2.171
सेदु राजा 6.1.134
सेद्धा 7.2.10
सेधनम् 3.1.116
सेधयति 6.1.49
सेधिता 7.2.10
सेनाचरः 3.2.17
सेनाजघन्य 4.3.54
सेनानीः 1.2.47,1.4.3,
3.2.61,6.1.68
सेनान्याम् 7.3.116
सेनांपति 6.2.18
सेनापतेः 6.1.112
सेनामुख्य 4.3.54
सेरुः 3.2.159
सेष्टि 2.1.6
सेष्टिः 6.3.78
सेसिम्यते 6.1.19
सेहाते 6.4.120
सेहिरे 6.4.120
सेहे 6.4.120
सैकतः 5.2.104,
5.2.105
सैन्धकावतम् 4.2.72
सैनापत्यम् 4.1.85,
5.1.128
सैनिकः 4.4.45
सैन्धव 4.3.93
सैन्धवः 4.2.133,
4.3.33
सैन्धवकम् (जल्पितम्)
4.2.134
सैन्धवको मनुष्यः
4.2.134
सैन्धविका (चूडा)
4.2.134
सैन्धवो वार्णवः 4.2.134
सैन्धुवक्त्रकः 4.2.126
सैन्यः 4.4.45
सैन्यम् 5.1.124
सैरः 4.3.134
सैरिकः 4.4.81
सैरिकम् 4.3.124
सैरिध्रकः 4.3.118
सैषः 6.1.134
सैसम् 4.3.154
सोटायते 3.1.17
सोढव्यम् 6.3.112,
8.2.31
सोढा 6.3.112,
6.3.113,7.2.48,
8.2.31
सोढुम् 6.3.112
सोढुम् 8.2.31
सोढ्वा 6.3.113

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सोता 7.2.44
सोऽत्र 6.1.132
सोदर्यः 6.3.88, 4.4.109
सोभित्वा 7.2.54
सोमं पवमानः 2.3.69
सोमजम्भा 5.4.125
सोमनेत्राः 5.4.116
सोममय 4.3.144
सोमवान् 5.2.137
सोमविक्रयी 3.2.93
सोमसुच्विनोति 8.4.40
सोमसुच्छादयति 8.4.40
सोमसुच्छेते 8.4.40, 8.4.63
सोमसुज्जयति 8.4.40
सोमसुज्झकारम् 8.4.40
सोमसुञ्चकारः 8.4.40
सोमसुट्टीकते 8.4.41
सोमसुट्ठकारः 8.4.41
सोमसुड्डीनः 8.4.41
सोमसुद्धौकते 8.4.41
सोमसुण्णकारः 8.4.41
सोमसुत् 1.1.62, 1.3.3,3.2.90, 6.1.71,8.4.43
सोमसुतः 3.2.90
सोमसुता 6.1.169
सोमसुतौ 3.2.90
सोमसुत् शेते 8.4.63
सोमसुत् स्तोता 8.2.26
सोमसुद् धसति 8.4.62
सोमसुद् हसति 8.4.62
सोमसुल्लुनाति 8.4.59
सोमसू३त् 1.2.28
सोमस्य यजते 2.3.63
सोमस्याग्ने 1.2.35
सोमस्याऽग्ने 1.2.35
सोमारुद्रौ 6.2.142
सोमावती 6.3.131
सोमिनी 5.2.137
सोमी ऋक् 4.2.30
सोमेन यजते 2.3.63
सोमो गौरी 1.1.19
सोम्यः 4.4.137
सोम्या ब्राह्मणाः 4.4.136
सोऽयमग्नि 6.1.120
सोरीयः 6.4.149
सोषुप्यते 6.1.19
सोसूच्यते 3.1.22
सोसूत्र्यते 3.1.22
सौकरसद्माः 6.4.144
सौकरिकः 4.4.35
सौखशायनि 7.3.20
सौखरात्रिकः 4.4.1
सौख्यम् 5.1.124
सौघ्नः 4.3.84
सौढामित्रिः 7.2.3
सौतङ्गमिः 3.2.47, 4.2.80
सौतङ्गमी 4.1.65
सौत्रङ्गमीयम् 4.2.112
सौत्रनाडिः 1.1.73, 7.3.20
सौत्वनः 6.4.167, 6.4.170
सौदर्शनिका 4.2.118
सौदर्शनिकी 4.2.118
सौदर्शनीया 4.2.118
सौदामनी 4.3.112
सौधातकिः 1.1.51, 4.1.96
सौपः 4.3.66
सौपर्वाः 6.4.144
सौपर्णेयः 4.1.113, 4.1.120,7.1.2
सौपर्णेयी 4.1.15
सौपिकम् 4.4.26
सौभद्रः 4.2.56,4.3.87
सौभागिनेयः 4.11.26
सौभागिनेयः 4.1.126
सौभाग्यम् 7.3.19
सौमनोत्तरिकः 4.2.60
सौमात्रः 4.1.115
सौमित्रिः 6.4.148
सौमी 6.4.151
सौमेन्द्रः 7.3.22
सौम्यं हविः 4.2.30
सौरमसः 4.1.170
सौरी 6.4.149
सौर्यकैतवते 2.4.7
सौर्यम् 6.4.149
सौर्ये 6.4.148
सौलभानि 4.2.66
सौवः 7.3.4
सौवग्रामिकः 7.3.4
सौवम् 7.3.4
सौवरः 7.3.4
सौवर्गमिकः 7.3.4
सौवर्णवलज 7.3.25
सौवर्णवालज 7.3.25
सौवर्य्यः 7.3.4
सौवश्वः 7.3.3
सौवस्तिकः 7.3.4
सौवादुमृद० 7.3.4
सौवास्तवम् 4.2.77
सौवास्तवी नदी 4.2.77
सौवीरपायिणः 3.2.81
सौवीर्यः 4.1.171
सौवीर्या 4.1.74, 4.1.177
सौशमिकन्थम् 2.4.20
सौशमिकन्थम् 6.2.123
सौश्रुतपार्थवाः 6.2.37
सौषधिरनु 6.1.134
सौषामः 6.4.170
सौसुकीयम् 4.2.141
सौस्नातिकः 4.4.1
सौहार्दम् 7.3.19
सौहार्द्यम् 6.3.51, 7.3.19
सौहृदय्यम् 6.3.51
सौह्यकः 4.3.100
सौह्यनागरः 7.3.24
स्कन्ता 7.2.10
स्कन्त्वा 6.4.31
स्कन्दः 5.3.99
स्कन्दविशा 2.4.14
स्कभितः 7.2.34
स्कान्दविशाखः 7.3.21
स्कुनाति 3.1.82
स्कुनोति 3.1.82
स्कभ्नाति 3.1.82
स्कभ्नोति 3.1.82
स्तः 6.4.112
स्तनजाता 4.1.52
स्तनधयी 4.1.15
स्तनन्धयः 3.2.29
स्तनन्धयी 3.2.29
स्तनपदी 5.4.139
स्तनयित्नुः 6.4.55
स्तभितः 7.2.34
स्तभ्नाति 3.1.82
स्तभ्नोति 3.1.82
स्तम्बकरिर्वीहिः 3.2.24
स्तम्बकारः 3.2.24
स्तम्बघनः 3.3.83
स्तम्बघातः 3.3.83
स्तम्बघ्नः 3.3.83
स्तम्बेरन्ता 3.2.13
स्तम्बेरमः 3.1.92, 3.2.13,6.3.14
स्तुम्बेरमः 6.2.65
स्तम्भकः 5.3.86
स्तर्यः 3.1.123
स्तवः 3.3.27,3.3.57
स्ताव्यः 3.1.123
स्तीर्यते 6.1.195
स्तुतः 1.1.5
स्तुतवान् 1.1.5
स्तुतिः 3.3.93
स्तुत्यः 3.1.109
स्तुध्वे 8.3.78
स्तुभ्नाति 3.1.82
स्तुभ्नोति 3.1.82
स्तुवीत 7.3.95
स्तूपेशाणः 6.2.64
स्तूयात् 3.1.93,7.4.25
स्तूयते 7.4.25
स्तृणाति 7.3.80
स्तेयम् 5.1.125, 6.4.65
स्तैन्यम् 5.1.125
स्तोकं मुञ्चति 2.3.33
स्तोकशः 5.4.42
स्तोकान्मुक्त 6.3.1
स्तोकान्मुक्तः 2.1.39, 2.3.33
स्तोकेन मुक्तः 2.3.33
स्तोकेन विषेण 2.3.33
स्तोता 1.1.2,1.1.50, 6.1.45,6.4.48, 7.2.10,7.3.84
स्तोत्रम् 3.2.182
स्तोमै विधेमाग्नये8.2.90
स्तौति 7.3.89
स्तौमि 7.3.89
स्तौषि 7.3.89
स्थाता 8.4.47
स्थाली 8.4.47
स्रग्वान् 5.2.121
स्रजयति 6.4.155
स्रष्टव्यम् 8.2.36
स्रष्टा 8.2.36
स्रष्टुम् 8.2.36
स्रग्विणम् 6.4.164
(हे) स्त्रि 1.4.4
स्त्रितमा 6.3.44
स्त्रितरा 6.3.44
स्त्रियः 6.4.79,6.4.80
स्त्रियम् 6.4.80
स्त्रियम्मन्यः 6.3.68
स्त्रियै 1.4.6
स्त्रियौ 6.4.79
स्त्री इयती 1.4.13

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्त्रीकुमार 2.4.11
स्त्रीकुमारम् 6.2.37
स्त्रीणाम् 1.4.5,6.4.79
स्त्रीतमा 6.3.44
स्त्रीतरा 6.3.44
स्त्रीता 5.1.120
स्त्रीत्वम् 5.1.120
स्त्रीपुंसौ 5.4.77
स्त्रीप्रमाणाः 5.4.116
स्त्रीम् 6.4.80
स्त्रीम्मन्यः 6.3.68
स्त्रीसंभम् 6.2.98
स्त्रीसभम् 2.4.24
स्त्रैणः 4.1.92
स्त्रैणम् 4.1.87, 5.1.120
स्त्रैणी 4.1.15
स्त्रोतस्यः 4.4.113
स्त्र्यगारगः 3.2.48
स्त्र्यनुजः 3.2.100
स्थण्डिलशायी 3.2.80, 6.3.19
स्थला 4.1.42
स्थली 4.1.42
स्थलीविलीयाः 5.1.70
स्थवयति 6.4.155
स्थविरा 4.1.20
स्थविष्ठः 6.4.156
स्थवीयान् 6.4.156
स्थाण्डिलो भिक्षुः 4.2.15
स्थायी 3.1.134
स्थालपथं मरिचम् 5.1.77
स्थलपथं मधुकम् 5.1.77
स्थालपथिकः 5.1.77
स्थालपथिकम् 5.1.77
स्थालीपक्वः 2.1.41
स्थाली पचति 1.4.54
स्थालीपाकः 5.3.118
स्थालीबिल्याः 5.1.70
स्थाल्यां पचति 1.4.45, 2.3.36
स्थावरः 3.2.175
स्थाविरम् 5.1.130
स्थास्नुः 3.2.139
स्थितः 7.4.40
स्थितवान् 7.4.40
स्थीयते 6.4.66
स्थूरान् 6.1.103
स्थूलकः 5.4.3
स्थूलककुत् 5.4.146
स्थूलकर्णः 6.2.112
स्थूलङ्करणम् 3.2.56
स्थूलनासिक 5.4.118
स्थूलपतिः 4.1.34
स्थूलपत्नी 4.1.34
स्थूलपदी 5.4.139
स्थूलपूलासम् 2.2.31
स्थूलमुखः 6.2.168
स्थूलम्भावुकः 3.2.57
स्थूलम्भविष्णुः 3.2.57
स्थूलशृङ्गः 6.2.115
स्थूलाक्षिः 5.4.113
स्थूलोतुः 6.1.94
स्थूलौतुः 6.1.94
स्थेयम् 6.4.65
स्थेयात् 6.4.67,6.4.68
स्थेयान् 6.4.157
स्थेष्ठः 6.4.157
स्थोन 6.4.19
स्थौलशीर्षम् 6.1.62
स्नातः 8.2.43
स्नातकपुत्र 6.2.1
स्नातकराजानौ 2.2.31
स्नातवान् 8.2.43
स्नातानुलिप्तः 2.1.49
स्नात्वाकाल 2.1.72
स्नात्वाकालकः 6.2.2
स्नात्वा पीत्वा दत्वा 3.4.21
स्नात्वी 7.1.49
स्नानीयं (चूर्णम्) 3.3.113
स्नायात् 6.4.46
स्निक् 8.2.33
स्निग्धकण्ठा 4.1.54
स्निग्धकण्ठी 4.1.54
स्निग्धदन्ती 5.4.143
स्निट् 8.2.33
स्नुषु 6.1.63
स्नेग्धा 7.2.45,8.2.33
स्नेढा 7.2.45,8.2.33
स्नेयात् 6.4.46
स्नेहिता 7.2.45
स्नोग्धा 7.2.45
स्नोढा 7.2.45
स्नोहिता 7.2.45
स्पर्द्धते 1.3.1
स्पर्शः 3.3.16
स्पर्ष्टा 7.2.10
स्पष्टः 7.2.27
स्पाशितः 7.2.27
स्पृहयाय्यः 6.4.55
स्पृहयालुः 3.2.158, 6.4.55
स्प्रष्टा 7.2.10
स्फातिः 6.1.22
स्फारयति 6.1.54
स्फावयति 7.3.41
स्फीतः 6.1.22
स्फीतवान् 6.1.22
स्फेयान् 6.4.157
स्फेष्ठः 6.4.157
स्फैयकृतः 7.3.4
स्फोरयति 6.1.54
स्मरति 1.3.57
स्मरसि 3.2.112
स्मरिषीष्ट 7.2.43
स्मर्त्ता 7.2.63
स्मर्यते 7.4.29,8.2.77
स्मर्यात् 7.4.29
स्मितम् 8.4.47
स्मृतः 7.4.10
स्मृतवान् 7.4.10
स्मृषीष्ट 7.2.43
स्मेरः 3.2.167
स्यः 7.2.102,7.2.106
स्यन्त्वा 6.4.31
स्यन्स्यति 7.2.59
स्यान्दनाश्वः 4.2.56
स्यूद्दिताश्वः 6.2.108
स्यन्दित्वा 6.4.31
स्येमतुः 6.4.125
स्येमिथः 6.4.125
स्येमुः 6.4.125
स्योनः 6.4.19
स्रंसिता 6.4.24
स्रंसित्वा 1.2.23
स्रक् 3.2.59
स्रक्त्वचम् 5.4.106
स्रग्वी 5.2.121
स्रङ्मय 4.3.144
स्रजयति 6.4.162
स्रजिष्ठः 5.3.65, 6.4.162
स्रजीयान् 5.3.65, 6.4.162
स्रदिति 6.1.98
स्रप्ता 7.2.10
स्रवः 3.3.27
स्रवति 1.3.86
स्रष्टव्यम् 6.1.58
स्रष्टा 6.1.58,7.2.10
स्रष्टुम् 6.1.58
स्रस्तः 6.4.24
स्रस्तिः 3.3.93
स्रस्यते 6.2.24
स्रावयति 1.3.86
स्रीः 6.4.80
स्रुक् 3.4.74
स्रुघ्नं प्रति 2.1.14
स्रुघ्नमुपतिष्ठते अयं पन्थाः 1.3.25
स्रुचः 3.4.74
स्रुचयति 6.4.162
स्रुचिकः 5.3.83
स्रुचिष्ठः 6.4.162
स्रुचीयान् 6.4.162
स्रुच्यति 1.4.15
स्रुवः 6.4.20
स्रुवकर्णः 6.3.115
स्रुवप्रग्राहः 3.3.46
स्रुवौ 6.4.20
स्रूः 6.4.20
स्रूतः 6.4.20
स्रूतवान् 6.4.20
स्रूतिः 6.4.20
स्रौघ्नः 4.3.25, 4.3.38,4.3.53, 4.3.74,4.3.89, 4.3.95
स्रौघ्नजातीया 6.3.42
स्रौघ्नदेशीया 6.3.42
स्रौघ्नम् 4.3.85
स्रौघ्नीपाशा 6.3.40
स्रौघ्नीभार्य 6.3.38
स्रौघ्नीमानिनी 6.3.40
स्रौघ्नीयते 6.3.40
स्वं यज्ञं यजति 1.3.77
स्वं यज्ञम् यजते 1.3.77
स्वं कटं करोति 1.3.77
स्वं पुत्रम् अपवदति 1.3.77
स्वं पुत्रम् अपवदते 1.3.77
स्वका 7.3.47
स्वक्षः 5.4.69
स्वतवद्भिः 7.4.48
स्वतवौ 8.3.11
स्वतवान् 7.1.83
स्वधा पितृभ्यः 2.3.16
स्वध्यापकः 8.1.67
स्वनः 3.3.62
स्वनित्तम् 7.2.18
स्वपन्ति 6.1.188
स्वपन्ति 6.1.188

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वपानि 6.1.188
स्वपितः 6.1.188
स्वपितकि 5.3.76
स्वपिति 3.4.113, 7.2.9,7.2.76,
स्वपिहि 6.4.101
स्वपोषं पुष्णाति 3.4.40
स्वपोषम् 1.1.68
स्वप्ता 7.2.10,7.2.76
स्वप्नः 3.3.91
स्वप्नक् 3.2.172, 6.1.19
स्वप्नया 7.1.39
स्वप्यात् 6.1.188
स्वबुसम् 2.1.6
स्वयं 8.2.104
स्वयं विलीनम् 2.1.25
स्वयं ह रथेन 8.1.60
स्वयं हौदनं 8.1.60
स्वयं धोतौ पादौ 2.1.24
स्वयम् 8.2.104
स्वयमह रथेन याति 8.1.61
स्वयमहौदनं 8.1.61
स्वयम्भूः 4.1.47
स्वरत्र 6.1.113
स्वराट् 8.2.36
स्वरिता 7.2.44
स्वरिषयति 7.2.44
स्वरिष्यति 7.2.70
स्वरेण पुत्रं 2.3.51
स्वर्गकामिणौ 8.4.13
स्वर्गपतितः 2.1.38
स्वर्गह्वायः 3.2.2
स्वर्गो 6.4.77
स्वर्यम् 5.1.39, 5.1.111
स्वर्त्ता 7.2.44
स्ववद्भिः 7.4.48
स्ववान् 5.2.115, 5.2.126,7.1.83
स्वश्वः 6.2.119
स्वश्वास्त्वा 6.2.119
स्वसः 6.4.11
स्वसा 4.1.10,6.4.11
स्वसारः 6.4.11
स्वसारौ 6.4.11
स्वस्तिः 3.3.93
स्वस्तिककर्णः 6.3.115
स्वस्तिगोभ्यो 2.3.16
स्वस्ति देवदत्ताय 6.3.83
स्वस्ति प्रजाभ्यः 2.3.16
स्वस्ति ब्राह्मणेभ्यः 2.3.16
स्वस्ति भवते सह गवे 6.3.83
स्वस्तिमती गर्भिणी 2.1.71
स्वस्तिर्भवतु 2.3.16
स्वस्तिवाचनम् 5.1.111
स्वस्मात् 7.1.16
स्वस्मिन् 7.1.16
स्वस्रीयः 4.1.143
स्वाः 1.1.35
स्वागतिकः 7.3.7
स्वाङ्गिः 7.3.47
स्वाढ्यङ्करो 3.3.127
स्वाढ्यम्भवं 3.4.70
स्वाढ्यम्भवं 3.3.127
स्वात् 7.1.16
स्वातिः 4.3.34
स्वादुः 3.3.1
स्वादुङ्कारं भुङ्क्ते 2.2.20, 3.4.26
स्वादुङ्कारम् 1.1.39
स्वाध्वरिकः 7.3.7
स्वानः 3.3.62
स्वान्तः 7.2.18
स्वापकीयति 7.4.67
स्वापतेयः 7.3.7
स्वापतेयम् 4.4.104
स्वापितः 6.1.18
स्वापिशीय 4.3.131
स्वाप्यते 6.1.18
स्वामी 5.2.126
स्वायम्भुवः 6.4.146
स्वासृकम् 4.3.78
स्वाहाऽग्नये 2.3.16
स्विका 7.3.47
स्विन्नः 1.2.19
स्विन्नः 7.2.15
स्विन्नवान् 1.2.19, 7.2.15
स्वृत्वा 7.2.44
स्वृषीष्ट 7.4.29
स्वे 1.1.35,7.1.16
स्वेता 7.2.10
स्वेनतुः 6.4.125
स्वेनिथ 6.4.125
स्वेनुः 6.4.125
स्वैरम् 6.1.89
स्वैरिणी 6.1.89
स्वो 6.3.109

ह

हंसगद्गदा 2.1.55
हंसगंद्गदा 6.2.2
हंसचक्रवाकम् 2.4.12
हंसचक्रवाकौ 2.4.12
हंसपथः 5.3.100
हंसवती 6.1.220
हंसी 5.2.116
हतः 6.1.186
हतपिता 5.4.158
हतमाता 5.4.158
हतस्वसा 5.4.158
हथः 6.1.186
(वृत्रं) हनति 2.4.73
हननम् 6.4.98
हननीयकः 7.3.53
हनिष्यति 7.2.70
हनिष्यते 6.4.62
हंसकारण्डववती 6.3.119
हनु 6.3.120
हनुः 4.1.66
हन्त 8.1.54
हन्त करोति 8.1.30
हन्त कुरु 8.1.54
हन्त पचति 8.1.30
हन्त प्रभुञ्जामहै 8.1.54
हन्त प्रशाधि 8.1.54
हन्ता 6.4.62,7.2.10
हन्ति 2.4.72
हन्ति नि 1.4.81
हन्तीति पलायते 3.3.156
हन्यते 6.4.98
हन्यात् 2.4.35
हप्ता 7.2.10
हयः 6.1.203
हयी 4.1.63
हरणम् 8.4.2
हरणीयं चूर्णम् 6.2.2
हरणीयंम् 6.1.217
हरत् 6.4.74
हरिचन्द्रो 6.1.153
हरिणा 6.1.168
हरिणितरा 4.1.1
हरिणिम्मन्या 6.3.66
हरिणिम्मन्या 6.3.42
हरिणी 4.1.39
हरितज्म्भा 5.4.125
हरिता 4.1.39
हरिताः 2.4.67
हरिनन्दनः 8.4.39
हरिनन्दी 8.4.39
हरिवः 8.3.1,8.2.3, 8.2.15
हरिव आगच्छ 1.2.37
हरिश्चन्द्र 6.1.153
हरिषेणः 8.3.99
हरिष्यति 1.4.13, 7.2.38,7.2.70
हरिष्यामीति व्रजति 3.3.13
हरिसक्थम् 8.3.99
हरीतकी 4.1.41, 4.3.167
हरीतक्यः 1.2.51, 4.3.167
हर्त्तवे 3.4.9
हर्त्तवै 6.1.200
हर्त्तव्यम् 6.1.158
हर्त्ता 1.1.51,1.2.46, 1.4.13, 3.1.133, 6.1.8, 6.1.45, 7.1.94,7.2.10, 8.2.42
हर्त्तारः 6.4.11
हर्त्तारौ 6.4.11
हर्त्तुमनाः 6.1.144
हर्त्तृमान् 6.1.176
हर्त्तृषु 8.3.59
हर्त्तृणाम् 7.1.54
हर्त्तॄन् 6.1.103
हर्त्रर्थम् 6.1.77
हर्त्रर्थम् 6.1.77
हर्त्रा 6.1.174
हर्त्रा 6.1.174
हर्त्री 6.1.174
हर्त्री 6.1.174
हर्त्री 4.1.5
हर्यश्वः 6.2.107
हलः 6.4.1
हलकी 4.2.80
हलयति 3.1.21
हलस्पृक् 8.2.62
हलेत्रिपदिका 6.3.10
हलेत्रिपदिका 6.2.65
हलेद्विपदिका 6.2.64
हलेद्विपदिका 6.3.10
हल्यः 4.4.97
हवः 3.3.75
हविर्मथीनाम् 3.2.27
हविष्यम् 4.4.122, 5.1.2,5.1.5
हविष्षु 8.3.58

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हविःसु 8.3.58
हवीषि 8.3.58
हव्यवाडग्निरजरः 3.2.66
(दूतश्च) हव्यवाहनः 3.2.66
हसः 3.3.62
हसनम् 3.3.115
हसितम् 3.3.114
हसिता 7.2.9
हसितुम् 7.2.9
हस्तः 4.3.34, 5.3.100,7.2.9
हस्तग्राहम् 3.4.39, 3.4.50
हस्तबन्धः 6.3.13
हस्तवर्त्तम् 3.4.39
हस्तवान् 5.2.96
हस्तवान् पुरुषः 5.2.133
हस्तहार्यम् 6.2.150
हस्तिकान् 5.3.99
हस्तिघातः 3.2.54
हस्तिघ्नः (मनुष्यः) 3.2.54
हस्तिचर्म 5.4.103
हस्तिदध्नम् 5.2.38
हस्तिद्वयसम् 5.2.38
हस्तिनः 5.2.133
हस्तिनः पदे 1.4.76
हस्तिनौ 5.2.133
हस्तिपादः 5.4.138
हस्तिमात्रम् 5.2.38
हस्तिमृदिता 6.2.146
हस्तिवर्च्चसम् 5.4.78
हस्तिषड्गवम् 5.2.29
हस्ती 5.2.133
हस्तेकृत्य 1.4.77
हस्ते कृत्वा 1.4.77
हस्ते गृह्या 2.1.72
हस्तेबन्धः 6.3.13
हस्त्यम् 5.1.98
हस्त्युरसम् 5.4.93
हाटकः 4.3.153
हाटकमयी 4.3.153
हात्वा 7.4.43
हा देवदत्तम् 2.3.2
हानिः 3.3.93
हायते 6.4.66
हायनः संवत्सरः 3.1.148
हायना नाम व्रीहयः 3.1.148
हारः 7.2.115
हारकः 1.2.46, 3.1.133,6.4.51, 7.1.1,
हारणा 3.3.107, 6.4.46,6.4.51
हारयति 1.4.53, 1.4.55,6.4.46, 7.4.1
हारयाञ्चकार 6.4.55
हारयिता 6.4.51
हारा 3.3.104
हारिका 7.3.44
हारिणिकः 4.4.35
हारितकाता 1.1.73
हारितम् 6.4.52
हारितायनः 4.1.100
हारिद्रम् 4.2.2
हारिद्रविण 4.3.104
हारिद्रौ 4.2.1
हारिषीष्ट 6.4.46
हारिषेणिः 4.1.153
हारिषेण्यः 4.1.152
हारीतकम् 5.1.131
हार्त्रायणिः 4.1.156
हार्दः 6.3.50
हार्यते 1.1.63,6.4.51
हार्यम् 3.1.124
हार्यम् 6.1.185
हार्यी 5.2.115
(मा) हार्षीत् 3.3.175
हार्षीत् 6.4.74
हार्ष्टेयः 4.1.136
हालिकः 4.4.81
हालिकम् 4.3.124
हासः 6.1.216
हासः 3.3.62
हास्तिकः 4.4.8
हास्तिकम् 4.2.47, 6.3.35,6.3.41
हास्तिदासयः 2.4.66
हास्तिनपुरम् 6.2.101
हास्तिनम् 5.2.38
हास्तिनायनः 6.4.174
हास्तिपदः 4.3.132
हास्तिशीर्षिः 6.1.62
हिंसक 3.2.146
हिंसन्ति 6.1.188
हिंसन्ति 6.1.188
हिंस्रम् (रक्षः) 3.2.167
हिंस्यात् 6.1.188
हिंनसानि 6.1.188
हितं देवदत्तस्य 2.3.73
हितं देवदत्ताय 2.3.73
हितः 7.4.42
हितक्रोष्टुने 7.1.97
हितवान् 7.4.42
हित्वा 2.4.82,7.4.42
हित्वी 7.1.49
हिनस्ति 6.4.23
हिमवतस्परि 8.3.51
हिमवतो गंगा 1.4.31
हिमवतो हस्ती 2.3.62
हिमवत्तः 4.3.113
हिमश्रथः 6.4.29
हिमानी 4.1.49
हिमेलुः 5.2.122
हिम्याः पर्वताः 5.2.120
हिरकुत् 5.3.72
हिरण्मयः 6.4.174
हिरण्यकः 5.2.65
हिरण्यगवः 6.2.72
हिरण्यद्यूः 6.4.19
हिरण्ययम् 6.4.175
हिरण्यवः 5.2.109
हिरण्यष्ठ्यूः 6.4.19
हिरुक् कृत्वा 3.4.62
हिरुङ् देवात् 2.3.33
हुवे 6.1.34
हीयते 6.4.66,6.4.116
हुण्डा 1.4.11, 3.3.103,7.1.58
हुण्डितव्यम् 7.1.58
हुण्डिता 7.1.58
हुण्डितुम् 7.1.58
हुरः 6.4.21
हुरौ 6.4.21
हुवे 6.1.34
हूः 6.4.21
हूतः 6.1.15,6.4.2
हूतवान् 6.1.15
हूर्छिता 8.2.78
हूर्णः 6.4.21
हूर्णवान् 6.4.21
हूर्त्तिः 6.4.21
हृच्छोकः 6.3.51
हृतम् हृतम् 6.1.205
हृतवान् 8.2.23
हृतिः 3.3.110
हृत्वा 1.1.40, 1.2.18,7.1.37
हृत्वाऽपमयते 3.4.19
हृदयरोगः 6.3.51
हृदयवान् 5.2.122
हृदयशोकः 6.3.51
हृदयालुः 5.2.122
हृदयावित् 6.3.116
हृदयावी 5.2.122
हृदयिकः 5.2.122
हृदयी 5.2.122
हृदय्या 6.1.83
हृदा 6.1.63
हृदिस्पृक् 6.3.9
हृद्गोलीय 4.3.91
हृद्यः 4.4.95
हृद्यम् 6.3.50
हृद्रोगः 6.3.51
हृल्लासः 6.3.50
हृल्लेखः 6.3.50
हृषितं लोमभिः 7.2.29
हृष्टं लोमभिः 7.2.29
हृष्टानि लोमानि 7.2.29
हृष्टो देवदत्तः 7.2.29
हृषितानि लोमानि 7.2.29
हृषितो देवदत्तः 7.2.29
हृषीय 3.4.106
हृषीष्ट 1.2.12,7.2.43, 7.4.28
हृष्टः 3.2.188
हे अघो 8.3.1
हे अनड्वन् 7.1.82
हे उशनन् 7.1.94
हे करिष्यन् 3.3.14
हे क्रोष्टो 7.1.95
हे गोमत् 6.4.14
हे गोमन् 8.3.1
हे चर्म 8.2.8
हे चर्मन् 8.2.8
हेतक्षन् 8.2.8
हेतिः 3.3.97
हे देवदत्त 2.3.46
हे पटो 2.3.48
हे पपिवान् 8.3.1
हे पराण् 8.4.20
हे प्राण् 8.4.20
हे प्रियाऽनड्वन् 7.1.99
हे भगोः 8.3.1
हे भोः, हे भवन् 8.3.1
हेमन्तशिशिरवसन्ताः 2.2.34
हेमन्तशिशिरावृतूनां 2.4.28
(दुःखे) हेमन्तशिशिरे 2.4.28
हे महन् 6.4.10

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हेयम्	6.4.65	हैमन्यम्	5.1.96	होतापोतारौ	6.3.25, 1.1.53	होत् ल्कार	1.1.9	ह्सीयान्	6.4.156
हेयात्	6.4.67	हैमवतम्	4.2.70			होत्ल्लकार	6.1.105	ह्रियते	1.3.13,7.4.28
हे राजन्	8.2.8	हैमवती	4.3.83, 4.3.112	होतारः	6.4.11	होत्रेऽनुगृणाति	1.4.41	ह्रियात्	7.4.28
हे स	7.2.106	हैमवतीभ्यः स्वाहा		होतारौ	6.4.11	होत्रे प्रतिगृणाति	1.4.41	ह्रियेत	6.4.46
हे सुपयः	6.4.14		4.4.112	होतुः	6.1.111	होमवान्	5.2.137	हीच्छति	6.1.75
हैकुपादः	4.3.116	हैयङ्गवीनम्	5.2.23	होतुःपुत्रः	6.2.133	होमिनी	5.2.137	ह्रीणः	8.2.56
हैतनामः	6.4.170	हैलः	4.3.134	होतुःपुत्रः	6.3.23	हौतृकम्	4.3.78	ह्रीतः	8.2.56
हैतनामनः	6.4.170	होडते	3.1.11	होतुरन्तेवासी	6.3.23	ह्तते	6.1.187	ह्रेपयति	7.3.36,7.3.86
हैमनम्	4.3.22	होडायते	3.1.11	होतृकारः	6.1.105	ह्यस्तनम्	4.2.105	ह्रयामि	6.1.34
हैमन्तः	4.3.43	होतव्यं	8.2.97, 8.2.107	होतृगृहम्	6.3.23	ह्यस्त्यम्	4.2.105	ह्ररितः	7.2.33
हैमन्तम्	4.3.22	होता	3.2.135,6.4.11	होतृधनम्	6.3.23	ह्रदप्रस्थः	6.2.87	ह्रायकीयति	6.1.32
हैमन्तिकम्	4.3.21, 5.1.96			होतृकारः	1.1.9	ह्रसिमा	6.4.156	ह्राययति	7.3.37
				होतृश्यः	6.1.101	ह्रसिष्ठः	6.4.156	ह्रतम्	7.2.31

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कतिपय व्याकरणग्रन्थाः

अष्टाध्यायी । 'चन्द्रलेखा'-हिन्दीव्याख्यायुताऽनेकोपयोगीविषयैरुपबृंहिता ।
व्याख्याकार—पं. ईश्वरचन्द्र । 1-2 भाग सम्पूर्ण

काशिका । 'चन्द्रलेखा'-हिन्दीव्याख्यायुताऽनेकोपयोगिविषयैरुपबृंहिता ।
व्याख्याकार—पं. ईश्वरचन्द्र । 1-3 भाग सम्पूर्ण

परिभाषेन्दुशेखरः । 'सुबोधिनी' हिन्दीव्याख्या सहित ।
व्याख्याकार—आचार्य श्रीविश्वनाथ मिश्र

प्रौढमनोरमा-सशब्दरत्न । 'बालप्रकाशिका' संस्कृत-हिन्दीव्याख्या सहित । पञ्चसन्ध्यन्त ।
व्याख्याकार—श्रीद्वारकाप्रसाद द्विवेदी

बृहच्छब्दकुसुमाकरः । शब्दरूपों का संग्रह । सम्पादक—पं॰ हरेकान्त मिश्र

बृहद्धातुकुसुमाकरः । टिप्पण्यादिविभूषित-ण्यन्त-सन्नन्त-यङन्त-यङ्लुङन्त-भावकर्म-कृदन्तरूपसहित- सार्थसकलधातुरूपाणां सङ्ग्रहः । सम्पादक—पं॰ हरेकान्त मिश्र

मध्यसिद्धान्तकौमुदी । 'सुबोधिनी' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेता ।
व्याख्याकार—डॉ॰ श्रीसुरेशचन्द्र शर्मा । सम्पूर्ण (1-4 भाग)

मुग्धबोधव्याकरणम् । बोपदेव विरचित । श्रीदुर्गादास तर्कवागीश,
श्रीरामतर्कवागीश कृत टीका सहित । सम्पा॰ जीवानन्दविद्यासागर

लघुशब्देन्दुशेखरः । 'सुबोधिनी' हिन्दीव्याख्या सहित । पञ्चसन्ध्यन्त ।
व्याख्याकार—आचार्य विश्वनाथ मिश्र

लघुशब्देन्दुशेखरः । 'बैकुण्ठी' हिन्दी टीका । टीकाकार—बैकुण्ठनाथ शास्त्री ।
अव्ययीभावापर्यन्त

लघुसिद्धान्तकौमुदी । महेशसिंह कुशवाहा कृत विवेचनात्मक 'माहेश्वरी'
हिन्दी व्याखा सहित ।

वैयाकरणभूषणसारः। 'दर्पण'-'सुबोधिनी' संस्कृत-हिन्दी टीका सहित ।
डॉ॰ चन्द्रिकाप्रसाद द्विवेदी

वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी । श्रीज्ञानेन्द्रसरस्वतीविरचित 'तत्त्वबोधिनी' व्याख्यासंवलिता ।
श्रीजयकृष्णविरचित 'सुबोधिनी' टीकासहिता च । सम्पादक—श्रीवासुदेवलक्ष्मणशास्त्रीपणशीकर

वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी । 'बालमनोरमा' संस्कृत एवं 'दीपिका' हिन्दी व्याख्या सहित ।
व्याख्याकार—आचार्य श्रीगोपालदत्त पाण्डेय । 1-2 भाग मात्र

वैयाकरणसिद्धान्तपरमलघुमञ्जूषा । 'किरणावली' संस्कृत-हिन्दी टीका सहित ।
व्याख्याकार—आचार्य लोकमणि दाहाल

व्याकरणमहाभाष्यम् । सप्रदीप—'प्रकाश' हिन्दी टीका सहित ।
टीकाकार—आचार्य मधुसूदन प्रसाद मिश्र । आचार्य युधिष्ठिर मीमांसक सम्पादित ।
प्रथम आह्निक (पस्पशाह्निक) एवं 1-5 आह्निक

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
दिल्ली-110007

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri